





गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार  
पुस्तकालय



विषय संख्या

पुस्तक संख्या

आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना  
वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय  
तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112817



नम्बर



पुस्तकालय

(विज्ञान विभाग)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है ।  
इस तिथि सहित १५वें दिवस तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस  
आ जानी चाहिए । अन्यथा ५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से  
विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

12 NOV 1974

22 MAR 1975

562/67 JKSH

पुस्तक नम्बर ११४४-११८५



राहु

वि  
पु  
अ

व  
त



# सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग १२

सम्पादक,

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

१६११

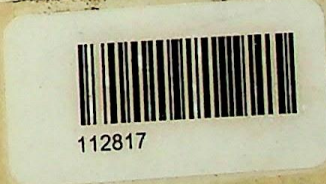
RECEIVED 1978

पुस्तक सं०... सर०...

आगत सं० १२(१-१२) ५

तिथि...

गुरुकुल ग्रन्थालय काशी



पृष्ठ  
२३  
६०४  
४२४  
११६  
८९  
३६४  
४९८  
४१४  
३४४  
३२२  
५४१  
६०१  
४९०  
५२८  
३५७  
३९४  
५१३  
९१  
५  
३३५  
५२०  
२७१  
३०४  
१२२  
१०५  
५६६  
५७  
१७३  
२४१  
४८२  
२१८  
१८७  
१७९  
६१



# सूची ।

१६११

## १-आख्यायिकायें ।

जिन लेखों के नामों के पहले \* ऐसा चिह्न है वे सचित्र हैं ।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	एक रात्रि ...	“वर्मा”	५५३
२	एक शिकारी की सच्ची कहानी	श्रीयुत निज़ामशाह	१५५
३	खानखाना और सुमेरु पर्वत	सम्पादक	४९
४	माला ...	श्रीयुत सत्यदेव ✓	३१७
५	मिर्जा अब्दुररहीम खानखाना की उदारता ...	सम्पादक	२५०
६	शायरों के शाहिनशाह अबू-तालिब और शाहे-जहाँ ...	”	९९

## २-ऐतिहासिक विषय ।

१	कालिदास का स्थिति-काल...	सम्पादक	३७१
२	कालिदास के समय का भारत	”	२५
३	प्राचीन भारत की एक झलक	”	१२३
४	बाली-द्वीप में हिन्दुओं का राज्य	श्रीयुत भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य	२१९
५	भूपति कवि का यथार्थ समय	मुंशी देवीप्रसाद	३९६
६	मित्र-मैत्रक	पण्डित रामनारायण दूगड़	८५
७	विक्रम-संवत्...	सम्पादक	४१५
८	शङ्कराचार्य का समय और उनका जन्म-पत्र ...	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	७३
९	सती की प्रथा	बाबू त्रिलोकचन्द्र	४

## ३-कविता ।

१	अंशमती ...	पण्डित गिरिधर शर्मा	२८१
२	अनुताप ...	पण्डित जनार्दन भा	१३१



नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अन्योक्ति-सप्तक ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	२३
४	आदर्श जीवन ...	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	६०४
५	उचित उत्तर ...	सत्कविदास ...	४२४
६	उद्योगनाटक ...	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा ...	११६
७	उल्लासी ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	८९
८	काल-कौतुक ...	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा ...	३६४
९	कीर्ति और शान्ति ...	सत्कविदास ...	४९८
१०	आर्य जीवन ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	४१४
११	गरमी ...	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	३४४
१२	च्यवन-पत्नी सुकन्या ...	„ गिरिधर शर्मा ...	३२२
१३	ज्ञानोदय ...	सत्कविदास ...	५४१
१४	तपोवन ...	पण्डित रामचरित उपाध्याय ...	६०१
१५	नर-जन्म की सार्थकता ...	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	४९०
१६	न्यायादर्श ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	५२८
१७	पञ्चर-बद्ध कीर ...	„ ...	३५७
१८	पुस्तक ...	पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ...	३९४
१९	पूर्व-प्रभा ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	५१३
२०	प्रयाग की प्रदर्शिनी ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	९१
२१	प्रह्लाद ...	„ ...	५
२२	प्रेम ...	बाबू व्रजनन्दनसहाय ...	३३५
२३	प्रेम-प्रशस्ति ...	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	५२०
२४	*बालक ...	„ कामताप्रसाद गुरु ...	२७१
२५	बाल-विनोद ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	३०४
२६	माता का पुत्र को उपदेश ...	पण्डित रामचरित उपाध्याय ...	१२२
२७	मातृ भूमि ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	१०५
२८	राज्याभिषेक ...	„ ...	५६६
२९	*वनवास ...	„ ...	५७
३०	वसन्त ...	राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल०, एम० आर० ए० एस० ...	१७३
३१	*शकुन्तला को कण्व का आशीर्वाद ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	२४१
३२	शय्याष्टक ...	सत्कविदास ...	४८२
३३	शान्ति-सङ्गीत ...	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	२१८
३४	श्रीरामनवमी ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	१८७
३५	सदुपदेश ...	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा ...	१७९
३६	सन्देश ...	सम्पादक ...	४६१



नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
३७	*सन्ध्या ...	श्रीयुत अमीरअली ...	३१
३८	सम्राट-स्वागत ...	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	६१३
३९	संरक्षती ...	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	४३७
४०	सुकवि-सङ्कीर्तन ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	२०८
४१	सुख का सिद्ध मन्त्र ...	पण्डित गिरिधर शर्मा ...	१५८
४२	*सुलेचना का चितारोहण ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	१८४
४३	सूर्य-ग्रहण पर अन्योक्ति ...	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा ...	३२
४४	सेने की थाली ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	६०६
४५	स्वर्गीय सङ्गीत ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	२६३
४६	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ...	" ...	४९४
४७	हिन्दू-विश्वविद्यालय ...	" ...	५९२
४८	हे हंस ...	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	४७५
४९	होली का हास्य ...	नित्यानन्द ...	१९०

#### ४-कौतूहल-वर्द्धक जातियों का वर्णन ।

१	*जूलू-लैंड (आफ्रीका) की असभ्य जूलू जाति	सम्पादक ...	२२९
२	तातार और लामा ...	पण्डित शिवरत्न शुक्ल ...	३७७
३	*प्रशान्त-महासागर के टापुओं की कुछ असभ्य जातियाँ ...	सम्पादक ...	४४०

#### ५-जीवन-चरित ।

१	अलवरुनी ...	श्रीकण्ठ पाठक, एम० ए० ...	२४२
२	* अलौकिक शिशु-गायक मास्टर मदन ...	सम्पादक ...	१४९
३	* डाकूर आनन्द के० कुमार स्वामी ...	"वर्मा" ...	२०५
४	* पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र ...	सम्पादक ...	२१
५	* बाबू शिशिरकुमार घोष ...	" ...	१०१
६	महाकवि मिल्टन ...	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ...	५२८
७	महात्मा सुन्दरदासजी ...	राय साहिब पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ...	४३३
८	महाबली कर्ण ...	पण्डित बदरीदत्त पाण्डेय ...	५१५
९	* महाराज रणजीतसिंह ...	लफ्टिनेंट अमरसिंहजी ...	१८८
१०	* महाराज मेरी ...	बाबू महादेवप्रसाद सेठ ...	५७१
११	युवराज प्रिन्स आर्च वेल्स ...	पण्डित ब्रजविहारी शुक्ल ...	५७४
१२	राजराना जालिमसिंह भाला ...	लफ्टिनेंट अमरसिंहजी ...	३०१
१३	* राजा सर साहिबदयालसिंह बहादुर, के० सी० एस० आई० ...	पण्डित केशवानन्द शर्मा द्विवेदी ...	५०९



पृष्ठ	नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१४	* राय नरेन्द्रनाथ सेन बहादुर	...	सम्पादक	... ४०५
१५	* राव बहादुर गणेश वेङ्कटेश जोशी, बी० ए०	...	"	... ४३९
१६	* वेदज्ञ पण्डित संत्यत्रत सामश्रमी	...	आ० भ०	... ३५३
१७	* शम्सुल-उल्मा मौलवी मुहम्मद जका-उल्ला	...	सम्पादक	... १७१
१८	* श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसाद	...	"	... ४८२
१९	* शास्त्र-विशारद जैनाचार्य श्रीविजय-धर्म सूरि	...	"	... २५८
२०	* सर विलियम वेडरबर्न	...	पण्डित नर्मदानारायण शर्मा, एम० ए०	... १
२१	* सम्राट पञ्चम जार्ज	...	पण्डित ब्रजविहारी शुक्ल	... ५६८
२२	सूाधु-शिरोमणि तुकारामजी महाराज	...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	... ४०
२३	* सेंट निहालसिंह	...	सम्पादक	... ५४
२४	* हैदराबाद के परलोकवासी निजाम	...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	... ४९९

### ६-देश, नगर, पर्यटन-आदि-वर्णन ।

१	* अमरीका-भ्रमण (मेरी दिनचर्या)	...	श्रीयुत सत्यदेव १७६, २१६, २७६, ३६०, ४०७, ४७५	
२	* देहली	...	पण्डित हरनारायण अग्निहोत्री	... ५८१
३	* प्रयाग	...	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए०	... १४
४	* प्रयाग-प्रान्त के प्राचीन ऐतिहासिक नगर	...	सम्पादक	... ७५, ११६
५	* माण्डू की सैर	...	लफ्टिनेंट अमरसिंह	... ३८८
६	* रोम की यात्रा	...	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बारिस्टर-एट-ला	... १६४
७	* लङ्का-द्वीप	...	"	... ४८६
८	हुपन सङ्ग की भारतयात्रा	...	पण्डित जनार्दन भट्ट	... ६०१

### ७-फुटकर विषय ।

१	अँगरेजों का रहन सहन	...	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बारिस्टर-एट-ला	... ४११
२	अभ्युदय और मर्यादा की महत्ता	...	सम्पादक	... ५०८
३	अमरीका की स्त्रियाँ	...	पण्डित भोलानाथ पाण्डे	... ३३९
४	* अमरीका के कृष्ण-वर्ण हबशी क्या कर रहे हैं	...	सेंट निहालसिंह	... २५३
५	आगामी देहली दरबार	...	सम्पादक	... ५८४
६	आत्मोत्सर्ग	...	श्रीयुत गणेश-शङ्कर विद्यार्थी	... ४२०
७	इंडियन प्रेस के सञ्चालकों पर स्त्री-दर्पण का आक्रमण	...	सम्पादक	... ९३
८	क्षमा-प्रार्थना	...	"	... ३५२



नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
९	कर्म-योग ...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	... २३२
१०	* चित्र-परिचय ...	सम्पादक ... ५२, १००, १४८, २०४, २५१, ३००, ३५२, ४०४, ४५२, ५०७, ५६४	...
११	* तारीख से दिन निकालने की रीति ...	{ बाबू सदानन्दलाल विद्यार्थी ... २४५ बाबू चम्पालाल सादानी ... ३९५	...
१२	देव-नागरी लिपि के प्रचार का प्रयत्न ...	सम्पादक ...	... ८३
१३	देहली के भूतपूर्व दो दरबार ...	" ...	... ५८७
१४	धीर ...	राय कृष्णदास गुप्त ...	... ५५०
१५	पश्चात्ताप ...	"जिज्ञासु" ...	... ५४५
१६	प्राचीन भारत में राज्याभिषेक ...	पण्डित गिरिधर शर्मा ...	... ५७८
१७	भारत-मित्र की शिष्टता ...	पण्डित रामजीलाल शर्मा ...	... १९७
१८	भारतवर्ष की चौथी मनुष्य-गणना ...	सम्पादक ...	... २८९
१९	मनोरञ्जक श्लोक ...	{ १ बाबू मैथिलीशरण गुप्त ... ४०४ २ पण्डित गिरिधर शर्मा ... ३५२ ३ पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए० ... ५६४ ४ पण्डित शुभानन्द शर्मा ... २५१ ५ श्रीयुत नित्यानन्द शास्त्री दाधीच ... ६२४ ६ सम्पादक ... ५०७	...
२०	*महाराज पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी का राज्याभिषेक ...	{ सेठ निहालसिंह ... ४५३	...
२१	मिस्टर ग्लैडस्टन की कुछ विशेष बातें ...	बाबू जगद्विहारी सेठ ...	... ३९४
२२	योरप के और हमारे विचार ...	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल, बी० ए०, (आक्सफ़र्ड) बारिस्टर—एट—ला ... ३६	...
२३	राज्याभिषेक का महत्त्व ...	सम्पादक ...	... ५७४
२४	वर्षा-विलास ...	पण्डित लक्ष्मण गोविन्द आठले ...	... ४२३
२५	वार्षिक विचार ...	सम्पादक ...	... ५६५
२६	† विविध विषय ...	{ सम्पादक ४९, ९५, १४२, १९९, २४७, २९३, ३४७, ३९७, ४४४, ५०१, ५५८, ६१७	...
२७	शाक-भोजन और मांस-भक्षण ...	भिमगाचार्य पण्डित केशवदेव शास्त्री ...	... २३६
२८	शिशु पोषण ...	डाकूर रामनारायण शर्मा, एल० एम० एस० ...	... २३५
२९	हृदयोद्धार ...	श्रीयुत सत्यदेव ...	... १७४
३०	हेग का राष्ट्रीय न्यायालय ...	सम्पादक ...	... २६

† विविध-विषय के अन्तर्गत कितने ही नोट्स सचित्र हैं।

‡ कुछ नोट्स औरों के भी लिखे हुए हैं।



## ८-विचित्र विषय ।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अफ्रीका के बाने ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी	... १३५
२	*गुहदासपुर का झूलना-महल ...	श्रीयुत फकीरचन्द शर्मा	... ५५७
३	चन्दा वसूल करनेवाले कुत्ते ...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	... ५३३
४	नर-भक्षक मनुष्य ...	पण्डित ब्रजविहारी शुक्ल	... ११८
५	पाताल-प्रविष्ट पाम्पियाई नगर ...	"भ्रमर"	... ४९६
६	पानी के भीतर चलने वाले धूम-पोत ...	सम्पादक	... ४९१

## ९-वैज्ञानिक विषय ।

१	उल्कापात ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी	... ३२४
२	*उषा ...	" गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	... १२९
३	*गरमी ...	" गिरधर शर्मा	... ११३
४	*जल का घनत्व ...	बाबू कृष्णचन्द्र गुप्त	... २२१
५	फलित ज्योतिष ...	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	... ५९५
६	भूकम्प से लाभ ...	श्रीयुत उमरावसिंह गुप्त, बी० एस सी०	... ५४२
७	मलेरिया के मच्छड़ ...	पण्डित ललीप्रसाद पाण्डे	... ६८
८	रक्त-विज्ञान ...	सम्पादक	... १८५
९	*लिखने के साधन ...	श्रीयुत पाण्डुरङ्ग खानखोजे	... १५१
१०	सौर जगत्...	पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, बी० ए०	... ४३०

## १०-शिक्षा-विषय ।

१	अमेरिका आनेवाले विद्यार्थियों को सूचना ...	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना	... ६१४
२	टोकियो-विश्वविद्यालय ...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	... ७८
३	प्राचीन ग्रीस की जातीय शिक्षा ...	प्रोफेसर विनयकुमार सरकार, एम० ए०,	... ५२१
४	प्राचीन ग्रीस की जातीय शिक्षा और भारत...	" "	... ५८८
५	प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकें ...	पण्डित रामजीलाल शर्मा	... ५३५
६	भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी ...	पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०	... २९

## ११-शिल्पोद्योग-आदि विषय ।

१	कृप का कारखाना ...	बाबू सीताराम	... ४५
२	*कारनेगी का शिल्प-विद्यालय ...	श्रीयुत सत्यदेव	... ३३६
३	प्रदर्शनी से लाभ ...	पण्डित जनार्दन मिश्र	... २४
४	*प्रयाग की प्रदर्शनी ...	" रामजीलाल शर्मा	... ३३



क्रम	नाम	लेखक	पृष्ठ
१२—साहित्य-विषय ।			
१	कवि का कर्तव्य ...	विद्यानाथ ...	३७
२	कवि बनने के लिए सापेक्ष साधन ...	सम्पादक ...	२८५
३	कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल ...	" ...	१७९
४	कालिदास की निरङ्कुशता ...	पण्डित इन्दु शर्मा ...	७, ५७, १०७
५	कालिदास की निरङ्कुशता पर विद्वानों की सम्मतियाँ ...	सम्पादक ...	३४६
६	कालिदास की विद्वत्ता ...	" ...	१९२
७	कालिदास की समालोचना ...	" ...	४२५
८	कालिदास के काव्यों में नीति-बोध ...	"त्रिमूर्ति" ...	३११
९	कालिदास के ग्रन्थ ...	पण्डित अक्षयवट मिश्र ...	२११
१०	प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्घाटना...	सम्पादक ...	६०४
११	पुस्तक-परीक्षा ...	सम्पादक ...	१५९, २२३, २७२
१२	भारतीय दर्शन-शास्त्र ...	सम्पादक ...	१४६, २०३, २५०, ३५१, ४०१, ४४९, ५०४, ५६२, ६२०
१३	मुद्राराक्षस का हिन्दी-अनुवाद ...	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी...	३२७
१४	मेघदूत-रहस्य ...	पण्डित मनोरथ पाण्डे ...	६०८
१५	रघुवंश-सम्बन्धिनी कुछ शङ्कायें ...	श्रीयुत भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य ...	३६५
१६	विहारी का विरह-वर्णन ...	मण्डला-निवासी एक जिज्ञासु ...	६१६
१७	शकुन्तला-रहस्य ...	पण्डित पद्मसिंह शर्मा ...	३८२
१८	सतसई-संहार की कुछ उक्तियों पर एतराज ...	श्रीयुत इन्द्रजितसिंह, बी० ए० ...	३०५
१९	संस्कृत और हिन्दी कविता का विम्ब-प्रति-विम्ब-भाव ...	सम्पादक ...	१३२
२०	सीता-स्वयंवर-सम्बन्धिनी शङ्का का समाधान ...	पण्डित पद्मसिंह शर्मा ...	४३८, ६१५
२१	हिन्दी का व्याकरण ...	पण्डित बदरीदत्त पाण्डे ...	३४५
२२	हिन्दी की वर्तमान अवस्था ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	१३९
		सम्पादक ...	४६४



## लेख-संख्या ।

नम्बर	विषय	संख्या
१	आख्यायिकाये ...	६
२	ऐतिहासिक विषय ...	९
३	कविताये ...	४९
४	कौतूहल-वर्द्धक जातियों का वर्णन ...	३
५	जीवन-चरित ...	२४
६	देश, नगर, पर्यटन आदि का वर्णन ...	८
७	फुटकर विषय ...	३०
८	विचित्र-विषय ...	६
९	वैज्ञानिक विषय ...	१०
१०	शिक्षा-विषय ...	६
११	शिल्पोद्योग-आदि विषय ...	४
१२	साहित्य-विषय ...	२२

कुल लेख-संख्या

१७७

## चित्र-संख्या ।

महीना	हाफ्टेन	रङ्गीन
जनवरी ...	२८ ...	१ प्रह्लाद
फरवरी ...	१८ ...	१ युधिष्ठिर का स्वर्ग-गमन
मार्च ...	१४ ...	१ मेघनाद का यज्ञानुष्ठान
एप्रिल ...	११ ...	१ सुलोचना का चितारोहण
मई ...	११ ...	१ शकुन्तला को कण्व का आशीर्वाद
जून ...	११ ...	१ दिल्ली की बेगमों का जल-विहार
जुलाई ...	५ ...	१ विरहिणी यक्ष-पत्नी
अगस्त ...	८ ...	१ विरही यक्ष
सेप्टेम्बर ...	१२ ...	१ कमलासना
अक्टोबर ...	९ ...	१ शेख़ सादी शीराज़ी
नवम्बर ...	९ ...	१ दीक्षा
दिसम्बर ...	२८ ...	१ महाराज पञ्चम जार्ज और मूहा- रानी मेरी

कुल १६४

१२



## कालिदास-सम्बन्धी लेखों की एकत्र सूची ।

नम्बर	लेख	लेखक	पृ.
१	कालिदास का स्थिति-काल	... सम्पादक ...	... ३७१
२	कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल	... ” ...	... १७९
३	कालिदास की निरङ्कुशता ...	... } पण्डित इन्दु शर्मा	७, ५७, १०७
४	कालिदास की निरङ्कुशता पर विद्वानों की सम्मतिर्याँ ...	... } सम्पादक ...	... ३४६
५	कालिदास की विद्वत्ता ...	... ” ...	... ४२५
६	कालिदास की समालोचना	... ” ...	... ३११
७	कालिदास के काव्यों में नीति-बोध	... त्रिमूर्ति ...	... २११
८	कालिदास के ग्रन्थ	... पण्डित अक्षयवट मिश्र ...	... ६०४
९	कालिदास के समय का भारत	... सम्पादक ...	... २६४
१०	प्राचीन भारत की एक झलक	... ” ...	... १२३
११	मेघदूत-रहस्य	... श्रीयुत भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य	... ३६५
१२	रघुवंश-सम्बन्धिनी कुछ शङ्कायें	... मण्डला-निवासी एक जिज्ञासु ...	... ६१६
१३	शकुन्तला-रहस्य	... श्रीयुत इन्द्रजितसिंह, बी० ए०	... ३०५

—:०:—

Printed and Published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.



# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

पुस्तक सं.

भाग सं.

तिथि

गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.

भाग १२ ] १ जनवरी, १९११। पौष शुक्ल १, १९६७। [ संख्या १

## सर विलियम वेडरबर्न ।



श्वर की कृपा से मनुष्य-जाति में कभी कभी ऐसे अलौकिक-गुण-सम्पन्न पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं जिनके चरित देखने, पढ़ने और मनन करने तथा जिनके सारगर्भित सदुपदेशों के अनुसार बर्ताव करने से संसार का बहुत कल्याण होता है। हमारे चरितनायक भी एक ऐसेही महानुभाव हैं। आपही इस गत दिसम्बर की प्रयागवाली कांग्रेस के सभापति थे। एक बार पहले भी आप इस पद की शोभा को बढ़ा चुके हैं।

जिस कुटुम्ब में ये उत्पन्न हुए हैं वह ऐतिहासिक विचार से बड़ा प्रसिद्ध और पुराना है। इस कुटुम्ब का वृत्तान्त १२९६ ई० से बराबर इंग्लैण्ड के इतिहास में चला आता है। इनके कुटुम्बी सदा से

राजनैतिक विषयों में योग देते आये हैं। इसी लिए राजनैतिक विषयों में योग देना आपके लिए स्वाभाविक बात है। आपका जन्म २५ मार्च १८३८ ई० को स्काटलैण्ड देश की प्रसिद्ध राजधानी एडिनबरा में हुआ था। आप सर जान वेडरबर्न के तृतीय पुत्र हैं। भारतवर्ष से आपका सम्बन्ध कई पीढ़ियों से चला आता है। आपके पिता ने बम्बई की उच्च-राजकीय-सेवा में १८०७ ई० में प्रवेश किया और ३० वर्ष तक भारतवर्ष में रहे। आपके ज्येष्ठ भ्राता १८४४ ई० में बंगाले के उच्च-राजकीय-सेवा-विभाग में आये और १८५७ ई० तक यहाँ रहे। सर विलियम वेडरबर्न भी इसी विभाग में घुसे और इस की परीक्षा में बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। आपका नम्बर उत्तीर्ण विद्यार्थियों में तीसरा था। पास होने पर आपको बम्बई हाते में १८६० ई० में नौकरी मिली। १८८७ ई० तक आप वहाँ रहे।



जब सर विलियम ने अप्रैल १८८७ ई० में नौकरी छोड़ी, बम्बई के गवर्नर लार्ड री ने एक खास गज़ट में आपके नौकरी से अलग होने पर शोक प्रकट करते हुए यों कहा:—“सर विलियम वेडरबर्न का सम्बन्ध गवर्नमेंट से बहुत घनिष्ठ रहा है। कुछ दिनों तक ये अस्थायी चीफ़ सेक्रेटरी रहे और कुछ दिन तक कौंसिल के मेम्बर। इन दोनों पदों पर रह कर उन्होंने गवर्नमेंट को अपने उत्तम विचारों से बड़ी सहायता दी। इनके शिक्षा-विषयक उत्साह ने और इनके इस देश की नैतिक और आर्थिक उन्नति-विषयक विचारों ने उन लोगों के दिलों में घर कर लिया है जिनके लिए उन्होंने इतना परिश्रम किया है”। यह तो सम्मान बम्बई सरकार की ओर से हुआ; परन्तु क्या आप समझते हैं कि बम्बई के बुद्धिमान सज्जनों ने ऐसे देश-गुमचिन्तक का यथोचित सम्मान नहीं किया। नहीं; बम्बई निवासियों ने इनकी याद-गार के लिए एक बहुत बड़ा चन्दा किया, जिसमें से कुछ रुपये से सर विलियम का चित्र तैयार कराया गया, जो अब तक बम्बई की प्रेसोडेंसी असोसिएशन के कमरों की शोभा बढ़ा रहा है। बाक़ी रुपया इस असोसिएशन को एक ऐसे फंड खोलने की गरज़ से दे दिया गया जिसकी आय से बम्बई-वासियों की राजनैतिक दशा का सुधार हो।

नौकरी की हालत में आप ऐसे ऐसे उच्चपदों पर रहे हैं जैसे गवर्नमेंट के सहायक मंत्री, हाई कोर्ट के रजिस्ट्रार, सिंध के जुडिशल कमिश्नर, गवर्नमेंट के न्याय, नीति और शिक्षा-विभागों के मंत्री और हाई कोर्ट के जज। जब आप नैतिक विभाग के अधिकारी हुए तब आपने अपने उन विचारों को कार्य-क्षेत्र में लाने का उपक्रम किया जो पहले से आपके दिल में जमे हुए थे। आपका खयाल था कि भारतवर्षीय राजों की स्थिति सुदृढ़ होनी चाहिए। क्योंकि, आपके विचारानुसार, भारतवासी एक उत्तम देशी राज्य में अधिक आनन्द से रह सकते हैं। इसलिए ज्योंही आप इस पद पर आये, बम्बई के गवर्नर की सहायता से निम्नलिखित कार्य किये:—

(१) राजकोट में एक ‘राजकुमार कालेज’ खुलवाया। इस कालेज के स्थापन करने से आपका यह अभिप्राय था कि राजे महाराजे उत्तम शिक्षा पाकर अपने राजकाज करने के योग्य हों।

(२) भावनगर में आपने सम्मिलित-शासन की प्रथा चलाई। अब तक राजा के बालिग होने तक राज्य एक पोलिटिकल एजेंट के सुपुर्द कर दिया जाता था। इसका नतीजा यह होता था कि राज्य का रूप ही प्रायः बदल जाया करता था। इसलिए सम्मिलित-शासन की प्रथा चलाई गई। अतलब यह कि राजा की अनुपस्थिति में राज्य का रूप न बदले, और गवर्नमेंट की नीति के अनुसार काम भी हो।

(३) काठियावाड़ के लिए आसिया अदालत की स्थापना, रियासतों के भगड़े तै करने के लिए, की गई।

सर विलियम वेडरबर्न ने इस देश के शासन में बड़ी ही सहानुभूति दिखाई। वे यद्यपि विदेशी हैं तथापि उन्होंने ऐसे ऐसे काम किये हैं कि इस देश के वासी उनकी सेवा को कदापि नहीं भूल सकते। श्रीमान् दादाभाई नौरोजी, माननीय रानडे, सर फिरोजशाह मेहता, माननीय तैलंग, माननीय बदरुद्दीन तैय्यबजी, बाबू सुरेन्द्रनाथ वैतरजी, माननीय गोखले, माननीय मदनमोहन मालवीय आदि सबसे आप भली भाँति परिचित रहे हैं और जब भारतवर्ष के सुधार का खयाल आपको आया तब आपने इन लोगों की सहायता से पहले इस बात का निश्चय किया कि दाल में कहाँ काला है। आपने बहुत जल्द इस बात को जान लिया कि इस देश की दरिद्रता ही एक मात्र सुधार की बाधक है। आपकी राय में इस जीर्ण रोग का इलाज यह निश्चित हुआ कि सरकार कर लेना कम करे, काश्तकारों को रुपया थोड़े सूद पर दिया जाय, और आपस के भगड़े अदालत में तै होने के बदले आपस में तै किये जायँ। इसलिए आपने तीन प्रस्ताव किये:—

(१) दक्षिण में इस्तमरारी बन्दोबस्त

(२) कृषि-बैंक

(३) पंचायत



प्रथम प्रस्ताव के विषय में आपने मनुस्मृति के आधार पर यह दिखलाया कि प्रजा अपनी आमदनी का राजांश रुपये के रूप में न देकर अनाज अथवा और वस्तु के रूप में दे और वह अंश आमदनी का सोलहवाँ हिस्सा नियत किया जाय। आपने अहमदनगर के निकट एक गाँव में इसका तजरिका करने का प्रयत्न भी किया। यह प्रस्ताव सबको रुचिकर हुआ। पर गवर्नमेंट ने इसे अस्वीकार किया। दूसरा प्रस्ताव भी सब लोगों को पसंद आया। पूना में एक सर्वसाधारण की सभा कलकूर की अध्यक्षता में हुई, कृषि-बैंक स्थापन करने के प्रस्ताव पास हुए, और एक कमिटी नियत की गई। कमिटी ने अपने प्रस्तावों को सर जेम्स फर्गुसन के सामने पेश किया। गवर्नर साहब ने उन प्रस्तावों को पसंद किया और भारतवर्ष की गवर्नमेंट को भेजने की प्रतिज्ञा की। लार्ड रिपन इस समय बड़े लाट थे। उन्होंने कमिटी के कथन को सहर्ष स्वीकार किया और इस बात पर राजी हो गये कि कुछ गाँवों में एक कमीशन द्वारा प्रजा का कर्ज अदा किया जाय, सरकार इस निमित्त ६१ लाख रुपया पेशगी प्रजा को दे और जो कृषि-बैंक खोला जाय उसका रुपया उसी तरह सरकारी अफसरों द्वारा वसूल किया जाय जैसे सरकारी रुपया वसूल किया जाता है। भारत-गवर्नमेंट के आग्रह करने पर बम्बई-गवर्नमेंट ने इस प्रस्ताव को कार्य में परिणत करने का भार अपने जिम्मे ले लिया और ३१ मई १८८४ ई० को वाइसरॉय और कौंसिल के मेम्बरों के हस्ताक्षरों से विलायत को इस विषय पर एक पत्र भेजा गया। परन्तु सेक्रेटरी आवू स्टेट के दफ्तर से कुछ हीला-हवाला होने के बाद १८८७ ई० में पारलियामेंट ने इस बात की इजाजत देने से साफ़ इन्कार कर दिया।

तृतीय प्रस्ताव का यह अभिप्राय था कि जब तक पंचायत से फ़ैसला हो सके तब तक कोई मुकद्दमा अदालत में न जाय। पंचायत की प्रणाली भारत-वासियों को बहुत प्रिय है। वे पंच को ईश्वर के तुल्य

समझते हैं। इस विचार को कार्यक्षेत्र में लाने के लिए पूना के टाउन हाल में एक बड़ी भारी सभा की गई। फिर एक कमिटी बनी। उसमें सदरआला, पेशान पाये हुए सदरआला, पेशान पाये हुए महकमे माल के अफसर, तीन वकील, दो खजानंची और एक मंत्री थे। इस कमिटी ने कानून का एक मसौदा तैयार किया। उसका यह मंशा था कि हर एक मुकद्दमा पहले जातीय अदालतों के सामने आवे। और यदि कोई इनके फ़ैसले से असंतुष्ट हो तो दौरे पर रहनेवाले सदरआला की अदालत में अपील करे। इस प्रस्ताव को बम्बई की गवर्नमेंट ने ही अस्वीकृत किया।

सर विलियम शिक्षा के, विशेष कर खीशिक्षा के, बड़े पक्षपाती हैं। आपका सम्बन्ध सिंध से कुछ दिनों तक था। उसके नाते कराची में, १८८० में, “वेडरबर्न-हिन्दू-क्यापाठशाला” खोली गई थी। १८८४ ई० में आपने श्रीमान् महादेव गोविन्द रानडे की सहायता से पूना में कयायों के लिए एक उच्च शिक्षा देने के लिए पाठशाला स्थापित की। आपने अपने भाई सर डेविड की यादगार में १०,००० रुपये देकर इस शाला के लिए छात्रवृत्तियाँ नियत कीं।

कांग्रेस के जन्मदाताओं में से आप भी एक हैं। मिस्टर हम्म और मिस्टर बैनर्जी के साथ आपने भारत की राष्ट्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन बम्बई में किया। लार्ड डफरिन इस समय बड़े लाट थे। उनसे प्रार्थना की गई कि लार्ड री को, जो बम्बई के गवर्नर थे, आज्ञा दी जाय कि वे प्रथम राष्ट्रीय सभा का सभापतित्व स्वीकार कर लें। परन्तु, यद्यपि राष्ट्रीय सभा से लार्ड डफरिन ने सहानुभूति प्रकट की, तथापि यह आज्ञा देना उन्होंने उचित न समझा। १८८९ ई० में आप राष्ट्रीय सभा के पाँचवें जलसे के सभापति चुने गये। इस जलसे में राष्ट्रीय सभा के विषय में आपने यह कहा था—“मैं आदि से ही उसे आन्दोलन को देख रहा हूँ जिसका परिणाम यह राष्ट्रीय सभा है। मेरी तुच्छ बुद्धि में यह आन्दोलन अपनी उत्पत्ति, उद्देश्य और पद्धति में अत्यन्त शुभकर



है । हम भली भाँति जानते हैं कि ब्रिटिश शासकों के उत्तम उद्योगों का यह उत्तमफल है । उच्च शिक्षा और स्वतंत्रता-सम्बन्धी अधिकार जो भारतवासियों को खुशी से दिये गये, उनका यह स्वाभाविक परिणाम है । इस आन्दोलन का उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन को पुनरुज्जीवित करना और देश की आर्थिक दशा को सुधारना है । हमारी काम करने की रीति खुली हुई है, कानून की मर्यादा के भीतर है और सब तरह गवर्नमेंट की न्यायशीलता पर अवलम्बित है ” ।

१८८९ ई० की राष्ट्रीय सभा में आपके साथ भारतवर्ष के शुभचिन्तक मि० ब्रेडला भी आये थे । १९०४ ई० में, फिर आप सर हेनरी काटन के साथ भारतवर्ष में पधारे थे । सर हेनरी उस साल की कांग्रेस के सभापति थे । नौकरी छोड़ कर जब आप विलायत गये तब वहाँ भी आपने भारतवासियों की उन्नति के लिए काम करना शुरू कर दिया । वहाँ आपने राजनैतिक आन्दोलन का एक नया ढंग निकाला । आपने सोचा कि यद्यपि सेक्रेटरी आव् स्टेट तक सीधे पहुँचना कठिन है तथापि यदि पारलियामेंट के द्वारा उन तक पहुँचने का उद्योग किया जाय तो सफलता की बहुत कुछ आशा है । अतः भारतवर्ष के विषय में जो कुछ अब कहा जाय वह विलायत के सर्वसाधारण से कहा जाय । सर्वसाधारण ही के नेता पारलियामेंट (हाउस आव् कामन्स) में बैठते हैं । वे सब कुछ कर सकते हैं । उनकी सिफारशों का विचार सेक्रेटरी आव् स्टेट को करना ही पड़ेगा । अतः विलायत में ब्रिटिश कमिटी नाम की एक सभा स्थापित हुई, जिसके सभापति सदा आपही रहे हैं । इन्हीं के आग्रह से विलायत में भी भारतवासियों ने राजनैतिक आन्दोलन करना शुरू कर दिया । १८९३ ई० में आप हाउस ऑफ् कामन्स के मेम्बर चुने गये और १९०० ई० तक मेम्बर रहे ।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि आपने भारतवर्ष के लिए एक लाख रुपये से अधिक अपनी

जेब खास से खर्च किया है ! जो कुछ उनके दक्षिण हस्त ने दिया है उसको वाम हस्त ने नहीं जाना है । आपने तन, मन, धन से भारत की दशा सुधारने की चेष्टा की है ।

जिस समय आप पारलियामेंट के मेम्बर थे उस समय आपने एक पारलियामेंट से सम्बन्ध रखनेवाली कमिटी स्थापित की थी । उसमें १२० मेम्बर थे । उसका उद्देश्य पारलियामेंट में भारत-सम्बन्धी बातों पर ध्यान रखने का था । इस कमिटी के भी आप सभापति चुने गये थे । इसी कमिटी की सहायता से १८९५ ई० में श्रीमान् नैरोजी भारत-सम्बन्धी व्यय का विचार करने के लिए एक रायल कमीशन नियत कराने में सफलीभूत हुए थे ।

अखबारों और व्याख्यानों के द्वारा भी आपने भारत के लिए बहुत काम किया है । आपकी अध्यक्षता में ब्रिटिश कमिटी ने ‘इंडिया’ नामक साप्ताहिक पत्र निकाला । पारलियामेंट में भारत-विषयक जो बातें होती हैं उनकी रिपोर्ट इसमें रहती है । अन्यान्य बातें भी भारतवर्ष के विषय की इसमें रहती हैं, जिससे विलायत वालों को इस देश का हाल भली-भाँति मालूम होता रहता है ।

आप सदा इस बात का आग्रह किया करते हैं कि विचारशील शिक्षित भारतवासी विलायत जाया करें और वहाँ वालों को अपनी दशा जताने के लिए व्याख्यानों द्वारा भारतवर्ष का सच्चा ज्ञान प्राप्त करावें ।

सर विलियम भारत के उन थोड़े से शासकों में से हैं जो इस देशवालों की कदर करते हैं और उनसे प्रेमभाव रखते हैं । जिस समय आप इस देश में उच्च अधिकारी थे उस समय प्रत्येक विषय में आप प्रजा की भलाई का खयाल रखते थे । आप भारतवासियों से ऐसा व्यवहार करते थे जैसे कोई बराबर वालों के साथ करता है । हाल में जो आपने अपने भारतवासी भाइयों के प्रति संदेशा भेजा है उसमें

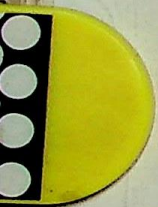




सर विलियम वेडरबर्न बार्ट ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



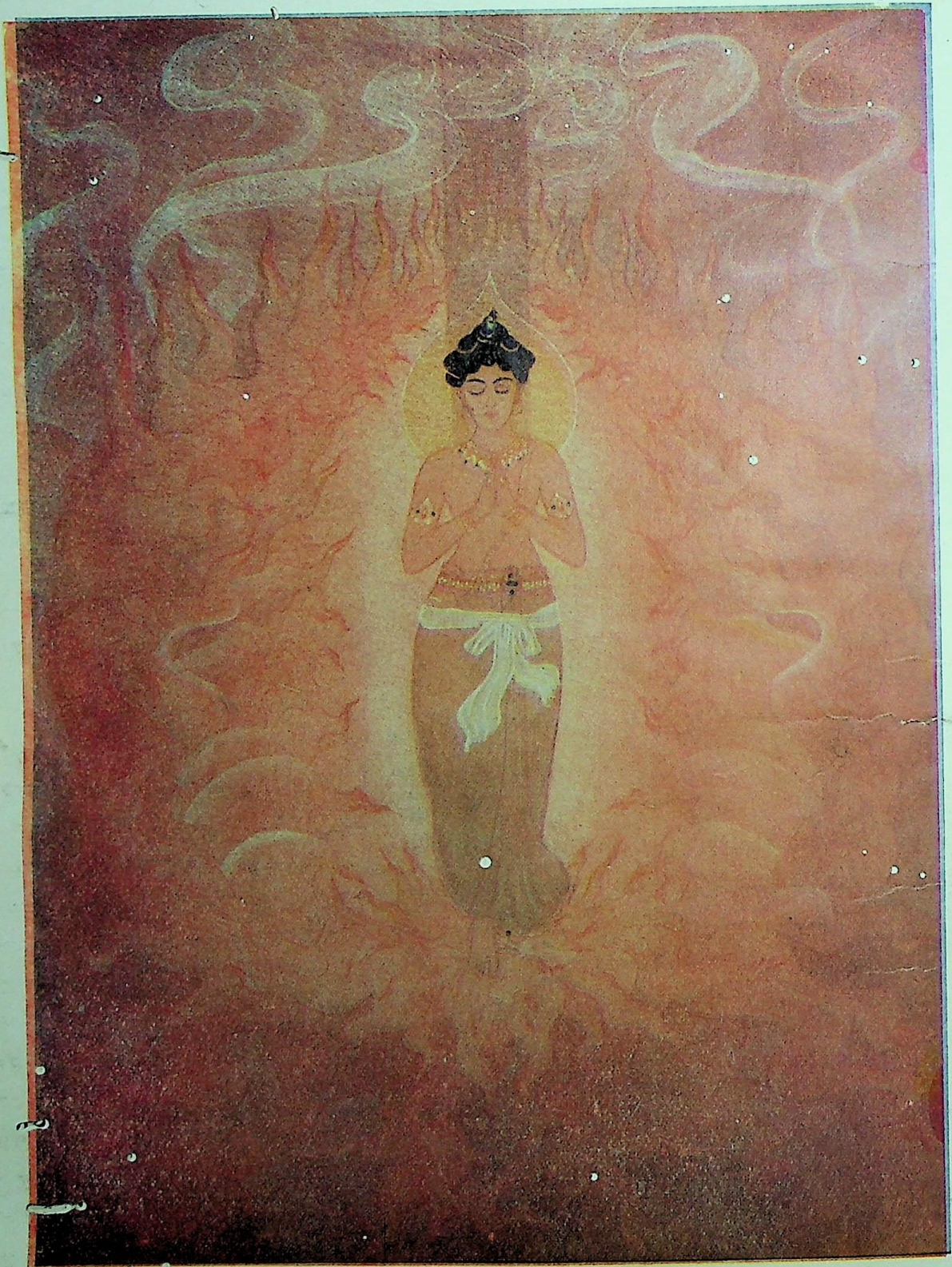








# सरस्वती



प्रह्लाद ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।



इस बात पर शोक प्रकट किया है कि कुछ एतद्देशीय आन्दोलनकारी अँगरेजों को प्रेम की दृष्टि से नहीं देखते । यह सचमुच बड़े दुःख की बात है । ऐसा न होना चाहिए । प्रेमभाव बना रख कर हमें जो कुछ कहना हो कहना चाहिए ।

नर्मदानारायण शर्मा ।

## प्रह्लाद ।

( १ )

भगवान् भक्त के लिए सभी कुछ करते,  
सन्तों के सारे दुःख दया कर हरते ।  
जन-रक्षक जो असुरारि न ऐसे होते,  
चिरनिद्रा में प्रह्लाद कभी के सेते ॥

( २ )

काकों में भी कलकण्ठ दीखते जैसे,  
दानव-कुल में प्रह्लाद हुए हैं वैसे ।  
काँटों में भी मृदुमञ्जु सुमन खिलते हैं,  
कङ्कड़-कुल में भी रुचिर रत्न मिलते हैं ॥

( ३ )

था कनककशिपु दैत्येन्द्र प्रसिद्ध प्रमादी,  
त्रैलोक्य जीतकर हुआ निरीश्वरवादी ।  
उस पापी के प्रह्लाद सरीखा सुत हो ।  
विधि की विधि ही क्या जो न महा अद्भुत हो ॥

( ४ )

आह्लाद-मूर्ति प्रह्लाद अभी बचा है,  
पर जान गया हरि नाम एक सच्चा है ।  
गाता है हरि-गुण कभी कभी नचता है,  
कल्पित क्रीड़ा प्रभु-सङ्ग कभी रचता है ॥

( ५ )

जग उसके लेखे अन्धकूप है मानों,  
असुरों में वह अपवाद-रूप है मानों ।  
'हरि कहाँ छिपे' इस भाँति कभी कहता है,  
रोता, हँसता है, कभी मौन रहता है ॥

पुस्तकालय  
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय  
( ६ ) हरिद्वार

पाठालय में प्रह्लाद नित्य जाता है,  
पर पढ़ना-लिखना उसे नहीं भाता है ।  
वे राजनीति के स्वार्थ-वचन खलते हैं,  
नित हरि-पद-प्रति प्रेमाश्रु-विन्दु ढलते हैं ॥

( ७ )

पाकर निमग्न स्वच्छन्द मोद में उसको,  
ले एक बार सानन्द गोद में उसको ।  
यों कनककशिपु ने कहा मुग्ध हो मन में—  
“है वत्स ! बता क्या इष्ट तुझे त्रिभुवन में ?”

( ८ )

फैला कर लोल प्रकाश खोल मुख भोला,  
तब सरसकण्ठ प्रह्लाद पिता से बोला—  
“मैं-मेरा” ऐसा मोह देख जन जन में,  
मन होता है हरि-भजन करूँ मैं वन में ॥

( ९ )

सुन कर निज सुत के वचन विलक्षण ऐसे,  
कर अट्टहास घन-घट्ट-नाद हो जैसे ।  
बोला यों उद्धत असुरराज उत्पाती,  
उन्मत्त सुरापी सर्वलोक-सङ्घाती—

( १० )

“होती क्या मीठी अहो ! बाल-वाणी है,  
अविवेक भरी भी बात सुधा-सानी है ।  
मेरा बेटा प्रह्लाद बड़ा भोला है,  
पर कैसे इसका चित्त आज डोला है ॥

( ११ )

“ईश्वर तो मैं हूँ, अतुल शक्ति है मेरी,  
सुत ! किसने तेरी बुद्धि बता यों फेरी ?  
मेरे भय से हरि छिपे पड़े रहते हैं,  
सुर खुले कण्ठ से बात नहीं कहते हैं ॥

( १२ )

“क्या वत्स ! सुरों को कुछ निदेश देना है,  
इन्द्रासन या वैकुण्ठ तुझे लेना है ?  
ये पद पाना तो और पतन है तेरा,  
मत्त कर तू छोटा हृदय तनय है मेरा ॥

पुस्तकालय



( १३ )

यों कह कर सुत से असुरराज अभिमानी,  
बोला कुल-गुरु से सभा मध्य फिर वाणी ।  
“बाते कहता प्रह्लाद आज क्यों ऐसी,  
यह शिक्षा है विपरीत तुम्हारी कैसी ॥

( १४ )

“देखो, तुम इसको यत्न समेत पढ़ाओ,  
उत्साह-शिखर पर बिना विलम्ब चढ़ाओ ।  
कुविचार दूर कर कुलाचार सिखलाओ,  
देकर सब शिक्षा मुझे शीघ्र दिखलाओ ॥

( १५ )

“छोटपन के संस्कार सदा रहते हैं,  
गुरुदेव ! सजग हो इसी लिए कहते हैं ।  
मुझसे भी मेरा पुत्र प्रबल हो जावे,  
सबको मनमाना मार्ग सदैव चलावे ॥”

( १६ )

है अपने से उत्कर्ष किसी का प्यारा,  
तो सुतोत्कर्ष को छोड़ नहीं वह प्यारा ।  
जिस दानव को पर-वृद्धि न नेक सुहाती,  
निज विभवाधिक सुत-वृद्धि उसे भी भाती ॥

( १७ )

कुल-गुरु फिर लगे अनेक प्रकार पढ़ाने,  
पर पढ़ते क्या प्रह्लाद प्रेम-रस-साने ।  
हो चुका प्राप्य जब प्राप्त रहा क्या पाना,  
जब मूल हाथ आ गया रहा क्या आना ॥

( १८ )

दिन दिन अधिकाधिक भक्ति-भाव बढ़ता है,  
नित रोम रोम में नया रङ्ग चढ़ता है ।  
करते गुरु ज्यों ज्यों यत्न और दृढ़ होता,  
प्रह्लाद विष्णुमय हुआ जागता सोता ॥

( १९ )

फिर गुरु ने उसको शुरू किया समझाना,  
“हे वत्स ! तुझे क्या हुआ ठीक बतलाना ।  
हरि से तुमसे क्या काम विचारो मन में,  
हैं गड़े तुम्हारे विजय-खम्भ त्रिभुवन में ॥

( २० )

“निज कुल के वैरी सदा विष्णु को जानो,  
अपने को उनसे कम न कभी तुम मानो ।  
मत करो पिता को रघु तजो हरि-वन्दन,  
है देवों का भी देव पिता कुलनन्दन !”

( २१ )

सुन कर निज गुरु की प्रेम भरी यह वाणी,  
बोले उनसे प्रह्लाद जोड़ युग पाणी—  
“गुरुदेव ! पिता जब पूज्य कहे हैं ऐसे,  
तब परमपिता पूजार्ह न होंगे कैसे ?

( २२ )

“हे आर्य्य ! किसी का शत्रु न हरि को जानो,  
अच्युत, अनादि, अखिलेश उन्हें तुम मानो ।  
हरि-भजन छोड़ मैं करूँ स्वार्थ की घाते,  
हा हा खाता हूँ कहे न ऐसी बातें ॥”

( २३ )

सुन कर गुरु ऐसे वचन विसार तितिक्षा,  
भयपूर्वक देने लगे उन्हें फिर शिक्षा ।  
पर हुई पुनः जब पिता-समक्ष परीक्षा,  
प्रह्लाद प्रकट कर चले वैष्णवी दीक्षा ॥

( २४ )

सब शिक्षा का हरि-नाम सार सुन सुत से,  
जल उठा दैत्य हो दग्ध क्रोध अद्भुत से ।  
कह ‘त्याज्य पुत्र’ प्रह्लाद भक्त को उसने,  
उस दिन से उनको दिया न घर में घुसने ॥

( २५ )

गुरु-गृह में ही प्रह्लाद लगे तब रहने,  
प्रभु-प्रेमरूप पीयूष-सिन्धु में बहने ।  
छात्रों को भी वे लगे भक्ति सिखलाने,  
बहु चमत्कार आश्चर्यपूर्ण दिखलाने ॥

( २६ )

हरि-नेम उन्होंने और विशेष निबाहा,  
तब मरवाना ही उन्हें असुर ने चाहा ।  
पर जान पड़े सब शस्त्र उन्हें सुमनों से,  
बोले वे हँसते हुए नृशंस जनों से—



( २७ )

“विश्वात्मा मुझमें व्याप्त हो रहे जैसे,  
इन शस्त्रों में क्या व्याप्त नहीं हैं वैसे ।  
दैत्यो ! तुम तज कर द्वेष भजो उनको ही,  
तज दुर्गुण को सब ग्रहण करो गुण को ही ” ॥

( २८ )

तब हुआ क्रोध से दैत्यराज मतवाला,  
उसने उनको उद्दोष अग्नि में डाला ।  
पर जलते क्या प्रह्लाद भक्ति-रत्नाकर—  
जल गई आग खुद उन्हें जलाने जाकर ॥

( २९ )

रखते जिसको वै चक्र धारने वाले,  
मरते हैं उलटे उसे मारने वाले ।  
रख हरि ने नरहरि रूप पाप नाशन को,  
कर अधम अशुर का नाश बचाया जन को ॥

( ३० )

वैकुण्ठविहारी, धन्य भक्तभयहारी !  
प्रभुवर ! महिमा है अगम अपार तुम्हारी ।  
पावक भी प्रिय पाटीर-पङ्क सम होता,  
बनता है विष भी सरस सुधा का सोता ॥  
मैथिलीशरण गुप्त ।

## कालिदास की निरंकुशता ।



वि होना कठिन काम है । महाकवि होना और भी कठिन काम है । कवित्व में सिद्धि प्राप्त करने के लिए बहुत पुण्य चाहिए; हृदय में ईश्वर-दत्त कवित्व-बीज चाहिए । परिश्रम भी चाहिए, अध्ययन भी चाहिए, मनन भी चाहिए । जो लोग कवि बनने की उच्च आकांक्षा रखते हैं उन्हें बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । अनेक परीक्षाओं में उन्हें उत्तीर्ण होना पड़ता है; अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं; अनेक अवहेलनायें सहन करनी पड़ती हैं । कवित्व-

शक्ति बहुत ऊँचे दर्जे की शक्ति है । इसी से ईश्वर किसी विरलेही भाग्यवान् को उससे विभूषित करता है ।

कवियों ही के नहीं, महाकवियों के भी काम में कभी कभी अचिन्त्य बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं । कभी कभी तो वे दूर हो जाती हैं, कभी कभी नहीं भी होती हैं । और, यदि, होती भी हैं तो बहुत तंग होने पर । जो कवि हैं और कवि-कर्म की कठिनाइयों को झेल चुके हैं वे इस बात को औरों की अपेक्षा अधिक समझ सकते हैं । बहुधा ऐसा होता है कि भाव अच्छा सूझ जाता है, पर उसे प्रकट करने के लिए समुचित शब्द नहीं मिलते । यदि शब्द मिल जाते हैं तो भाव में न्यूनाधिकता उपस्थित होने लगती है । उधर छन्द न बिगड़ने का खयाल मारे डालता है । कोई बात देश, काल, स्वभाव और पात्र के विरुद्ध तो नहीं; कहीं शास्त्रीय बातों की सीमा का उल्लंघन तो नहीं हुआ; लोकाचार के विपरीत तो कोई बात नहीं कही गई—ऐसी ऐसी न मालूम कितनी बातों का विचार कवियों को पद पद पर करना पड़ता है । जिस समय कविता करने की इच्छा या कामना उच्छ्वल हो उठती है उस समय मन में उत्पन्न हुए विकार प्रकट किये बिना नहीं रहा जाता । ऐसे समय में विचारों या विकारों को शब्दरूपी साँच में ढालने से एक प्रकार का विलक्षण आनन्द होता है । उसका अनुभव इतर जन नहीं कर सकते; कविही कर सकते हैं । उस प्रमोद-मद में मस्त होकर कवि-जन लेकरीति, शास्त्रीरिति, और शब्दशास्त्र आदि के नियमों का कभी कभी उल्लंघन कर जाते हैं । यह बात जान बूझ कर भी हो सकती है और बे जाने भी । ऋषियों और मुनियों तक से ये बातें हो सकती हैं और हुई भी हैं—“मुनीनाञ्च मतिभ्रमः” । आदराधिक्य के कारण टीकाकार और समालोचक लोग कवियों की कविता के अन्तर्गत ऐसे ऐसे स्थलों को भूल या प्रमाद में नहीं गिनते । उन्हें वे कवि की निरंकुशता कहते हैं । महाकवि कालिदास भी इस निरंकुशता से नहीं बचे ।



इस लेख का नाम-निर्देश देखकर ही शायद कोई कोई पाठक बिगड़ उठे । महाकवि कालिदास और निरंकुशता ! कविकुलगुरु पर ऐसा गुरुतर दोषारोप !! छोटे मुँह बड़ी बात !!! ऐसा आरोप जो लोग हम पर करें, प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं । हम उनके लिए यह लेख नहीं लिखते । जिनके विचार हमारे ही ऐसे हैं, उन्हीं का मनोरञ्जन हम इस लेख से करना चाहते हैं । विधि-विडम्बना और नैषध-चरितचर्चा लिखने और बाबू हरिश्चन्द्र की दो एक बातों की समालोचना करने के कारण हम पर जो आरोप, प्रकोप और आक्षेप हुए हैं उनकी याद हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों को अब तक बनी होगी । तिस पर भी हम यह लेख लिखने जाते हैं । इसका कारण यह है कि पूर्वोक्त प्रकार के आक्षेपों के हम कायल नहीं । खण्डन, मण्डन और समालोचन की रीति परम्परा से चली आई है । शङ्कराचार्य और कुमारिल भट्ट तक ने अपने पूर्वाचार्यों के मत की समालोचना की है और कभी कभी बड़े कड़े शब्दों में की है । औरों की तो बात ही क्या । कालिदास के रघुवंश की टीका मल्लिनाथ, हेमाद्रि, सुमतिविजय, वल्लभ और दिनकर मिश्र आदि कितने ही विद्वानों ने की है और पूर्व पूर्व टीकाकारों की भूलें दिखलाई हैं । इन लोगों ने यथास्थान कालिदास पर चोटें भी की हैं और उनके दोषों का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है । अलङ्कारशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थों में तो कालिदास आदि पुराने कवियों की कविता के दोष बड़ीही निष्ठुरता से दिखाये गये हैं । इस दशा में इन लोगों के दिखलाये या निर्माण किये हुए मार्ग से यदि हमारे समान अल्पज्ञ मनुष्य भी जाने का यत्न करे तो कोई आक्षेप की बात नहीं । और यदि हा भी तो हा :—

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते

यह खुद कालिदास का वचन है ।

कालिदास की निरंकुशता के उदाहरण संस्कृत के ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर दिये जा चुके हैं । तथापि, हिन्दी में उनका दिया जाना यदि बुरा और

पाप समझा जाय तो ऐसी समझ रखनेवालों से हमारा एक निवेदन है । कालिदास ने रघुवंश के आरंभ ही में लिखा है :—

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ

कालिदास को शङ्कर-पार्वती का इष्ट था । उनके इष्टदेव थे, यह एक बात । दूसरी बात यह कि उन्हें वे सारे संसार का माता-पिता समझते थे । इन्हीं जगत् के पितर और अपने इष्टदेव की शृङ्गार-रससम्बन्धिनी चैष्टाओं का वर्णन कालिदास ने एक साधारण कामुक की तरह कुमारसंगम में किया है । अपने माता-पिता के विषय में कोई मनुष्य ऐसी बात मुँह से नहीं निकालता, फिर संसार के माता-पिता के विषय में ! क्या यह कालिदास की निरंकुशता नहीं ? यदि इस काम को आप पाप या अनुचित कर्म नहीं समझते तो क्या इसकी गिनती निरंकुशता में भी नहीं कर सकते ? अतएव, यदि और किसी कारण से नहीं, तो अकेले इस एक कारण से तो उनकी निरंकुशताओं की समालोचना अवश्यही क्षमा की जाने योग्य है । इस तरह की समालोचना कालिदास के इस अनुचित काम का प्रायश्चित्त मान लीजिए । माता-पिता का सम्भोग-वर्णन करनेवाले को क्या इतना भी दण्ड देना मुनासिब नहीं ? मम्मट भट्ट ने तो उत्तम-देवता-विषयक सम्भोग-शृङ्गार-वर्णन को भी महा अनुचित माना है । उन्होंने काव्यप्रकाश में लिखा है :—

रतिः सम्भोगशृङ्गाररूपा उत्तमदेवताविषया न वर्णनीया ।

तद्वर्णनं हि पितोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम् ।

पाठक, विश्वास कीजिए यह लेख हम कालिदास के दोष दिखला कर उनमें आपकी श्रद्धा कम करने के इरादे से नहीं लिख रहे । ऐसा करना हम घोर पाप समझते हैं—भारी कृतघ्नता समझते हैं । इसे आप केवल वाग्विलास समझिए । यह केवल आपका मनोरञ्जन करने के लिए है । कालिदास को हम महाकवि ही नहीं समझते हैं; हम उन्हें देवता



समझते हैं, पूजनीय समझते हैं, अपना गुरु समझते हैं। अभी इस एक वर्ष की बीमारी में—और बीमारी अब तक गई नहीं—हमने गीता नहीं पढ़ी, श्रीमद्भागवत का पारायण नहीं किया, वाल्मीकिरामायण नहीं देखा। जब कभी हमने कुछ पढ़ा है, रघुवंश पढ़ा है। इससे आप जान सकेंगे कि हमारे हृदय में कालिदास का कितना आदर है। और, यह इसी आदर और अवलोकन का फल है जो हम यह लेख लिखने बैठे हैं।

संस्कृत, अंगरेजी और फ़ारसी आदि भाषाओं के महाकवियों के काव्य की आज तक अनन्त टीकाएँ और आलोचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनसे इन कवियों की कीर्ति कम नहीं हुई, प्रत्युत बढ़ती ही गई है। और, सच पूछिए तो इससे उनकी कीर्ति कम हो भी नहीं सकती। वह इतनी उज्ज्वल और व्यापक है कि आलोचनाओं से वह उज्ज्वलतर हो जाती हैं; उसकी उज्ज्वलता में बाधा नहीं आ सकती। यदि इस तरह का डर होता तो बड़े बड़े पण्डित और समालोचक क्यों ऐसा काम करते। इन कवियों के यश को लहराता हुआ अगाध सागर समझिए; और इनके निरंकुशत्व और दोष-समुदाय को केवल एक छोटा सा बूँद। उसके दिखलाने से इस रमणीय रत्नाकर का बिगड़ही क्या सकता है ?

सूक्तौ शुचावेव परे कवीनां सद्यः प्रमादस्वलितं लभन्ते ।

अधौतवस्त्रे चतुरं कथं वा विभाव्यते कज्जलविन्दुपातः ॥

काला धब्बा सफ़ेद ही वस्त्र पर देख पड़ता है, काले पर नहीं।

इस लेख में जिन बातों का उल्लेख किया जायगा उनमें से कितनी ही बातें, कालिदास के टीकाकारों और अलङ्कारशास्त्रियों ने अपने अपने ग्रन्थों में यथा-स्थान पहलेही से लिख दी हैं। किसी ने थोड़ा लिखा है किसी ने बहुत। अतएव इस लेख में दिखलाये गये निरंकुशत्वों और दोषों के सर्वांश का ज़िम्मेदार, अथवा अपराधी, पाठक अकेले हमों को न समझे। यह अपराध और लोग बहुत पहले कर चुके हैं।

हम तो सिर्फ़ उनके कथन को उचित शब्दों में आपके सामने रखते हैं। हाँ जो नई नई उद्दण्डियाँ हमने की हैं उनके लिए अकेले हमों दोषी हैं। एतदर्थ हम आपसे न्याय की प्रार्थना नहीं करते। हम इस बात का न्याय आपसे नहीं चाहते कि हमारा यह काम उचित है या अनुचित। हम सिर्फ़ आपसे इस उचित या अनुचित काम के लिए क्षमा चाहते हैं। हम सिर्फ़ आपसे दया के प्रार्थी हैं। हमारी प्रार्थना स्वीकार करना या न करना सर्वथा आप ही के हाथ में है।

## (१) उपमा की हीनता ।

उपमालङ्कार में और कोई कवि कालिदास की बराबरी नहीं कर सकता। कालिदास ने अपनी उपमाओं में उपमान और उपमेय का ऐसा अच्छा सादृश्य दिखलाया है जैसा और किसी की उपमाओं में नहीं पाया जाता। इनकी उपमाओं में लिङ्ग और वचन-सम्बन्धी भेद प्रायः कहीं नहीं देखा जाता। उपमा से इनकी वर्ण्य वस्तु इतने विशद भाव से हृदय में अङ्कित हो जाती है कि इनकी कविता का रसास्वादन कई गुना अधिक आनन्ददायक हो उठता है। यह सब होने पर भी इनके काव्यों में कुछ उपमाएँ ऐसी देखी जाती हैं जो इनकी अन्यान्य उपमाओं के मुकाबले में बहुत हीन हैं। एक उदाहरण लीजिए :—

लवण नामक राक्षस के अत्याचारों से पीड़ित होकर देवताओं ने रामचन्द्र की शरण ली। उन्होंने प्रार्थना की कि इसे आप मारिए। रामचन्द्र ने यह काम शत्रुघ्न के सिपुर्द किया। इस विषय में कालिदास रघुवंश के पन्द्रहवें सर्ग में कहते हैं :—

यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परन्तपः ।

अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः ॥ ७ ॥

अर्थात्—अपवाद जैसे उत्सर्ग का व्यावर्तन करने में समर्थ है वैसेही रघुवंशियों में से अकेला एक भी शत्रुसन्तापकर्ता रघुवंशी वैरियों को रोकने या उन्हें बाधा पहुँचाने में समर्थ है। अब विचार यह



है कि इस उपमा से रघुवंशियों की हीनता सूचित होती है या शक्तिमत्ता। विशेष-विधि को अपवाद कहते हैं और सामान्य-विधि को उत्सर्ग। लिखा है:—

भूयो दर्शनमुत्सर्गो बाधस्तस्यैकदेशगः ।

अपवादः स विशेषो मृग्यो व्याकरणादिषु ॥

उत्सर्ग सामान्य-शास्त्र हुआ, अपवाद विशेष-शास्त्र। सामान्य-शास्त्र अधिक व्यापक होता है, विशेष-शास्त्र बहुत कम। पूर्वोक्त उपमा में रघुवंशी अपवादवत् अल्पव्यापक शक्तिवाले माने गये हैं और उनके शत्रु उत्सर्गवत् विशेषव्यापक शक्तिवाले। अतएव अपने शत्रुओं के मुकाबले में रघुवंशी हीन हुए। रघुवंशी अपने शत्रुओं की व्यापकता और शक्ति के लिए रुकावट भलेही पैदा करें, पर उनकी अपेक्षा वे कम शक्ति रखनेवाले और कम व्यापक जरूर हुए। एक बात और भी है। राजनीति यह है कि छोटे भी शत्रु को बड़ा समझना चाहिए और उसे निर्मूल करने के लिए कोई बात उठा न रखनी चाहिए। यहाँ पर उपमा के अनुसार रघुवंशियों का शत्रु लवणासुर अधिक शक्ति-सम्पन्न है। उसका विनाश तो रघुवंशी कर नहीं सकते, उसकी शक्ति को बढ़ने से रोक भर सकते हैं। अतएव रघुवंशियों के लिए यह और भी कलङ्क की बात हुई। इसी से यह कहने का साहस होता है कि यह उपमा महा-कवि कालिदास के अनुरूप नहीं। यह सच है कि शत्रुघ्न ने लवण को आगे चल कर मारा है। पर विचार इसका नहीं किया गया कि आगे क्या हुआ है। उपमा से जो ध्वनि निकलती है, या उसका जो अर्थ होता है, उसी का विचार किया गया है। और, तदनुसार इस उपमा में बहुत नहीं तो थोड़ी हीनता अवश्य पाई जाती है।

कोई वैयाकरण शायद कह बैठे:—“सामान्य-शास्त्रतेऽन्ये विशेषे बलवान् भवेत्”। सही है। सामान्य-शास्त्र से विशेष-शास्त्र बलवान् हो सकता है, पर एक निश्चित सीमाही तक। सामान्य-शास्त्र को यदि आप चक्रवर्ती राजा मानें तो विशेष-शास्त्र

को माण्डलिक मानना पड़ेगा। माण्डलिक राजा स्वतंत्र हो सकता है और अपने राज्य की सीमा के भीतर अधिक बलवान् भी हो सकता है, पर चक्रवर्ती राजा की बराबरी नहीं कर सकता। अंगरेज इस देश के चक्रवर्ती राजा हैं और नेपाल-नरेश इस देश के अन्तर्गत एक माण्डलिक राजा। नेपालवाले अंगरेजी कायदे-कानून की पाबन्दी करने के लिए मजबूर नहीं। वे अपने राज्य की सीमा के भीतर स्वतंत्र हैं; जो चाहे कर सकते हैं। परन्तु बल, प्रभुता और शक्ति में वे अंगरेजों की समता नहीं कर सकते।

## (२) उद्देगजनक उक्ति।

श्रीयुत विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर ने बड़े गव के साथ लिखा है कि कालिदास की कविता में जरा भी ग्राम्यता या अश्लोकाता नहीं। इस दोष से उनकी कविता सर्वथा बची हुई है। इसे हम भी मानते हैं। यद्यपि आलङ्कारिकों ने अमङ्गल, ब्रीड़ा और जुगुप्सा-व्यञ्जक उक्तियाँ इनकी भी कविता में ढूँढ़ निकाली हैं, तथापि वे ग्राम्यता दोष की ठीक सीमा के भीतर नहीं आतीं। हाँ, उद्देग पैदा करने वाले स्थल इनके भी काव्यों में कहीं कहीं पाये जाते हैं। ऐसे स्थल बहुत खटकते हैं। कवियों के गुरुवर के काव्य में ये न होते तभी अच्छा था। रघुवंश के बारहवें सर्ग का बाईसवाँ श्लोक पढ़िए। एक पेड़ के नीचे सीता की गोद में (सिर रखकर) थके हुए रामचन्द्र सो रहे हैं। इसी समय:—

ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः ।

प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन् ॥

अर्थ:—इन्द्र के बेटे कौवे ने उनके स्तन-द्वय को नाखूनों से विदीर्ण कर दिया। वहाँ पर रामचन्द्र के उपभोग के जो चिह्न थे उनमें मानों उसने दोष दिखलाये। मतलब यह कि तुम्हें नखक्षत करना नहीं आता; देखिए, इस तरह करना चाहिए। पाठक, कृपा करके बतलावें, यह उक्ति उन्हें कहाँ तक पसन्द है। चित्त में कुछ उद्देग पैदा करती है या नहीं? रामचन्द्र



को कालिदास विष्णु का अवतार मानते थे । उन्होंने रघुवंश के तेरहवें सर्ग के आरंभही में लिखा है :—

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स-जायां

रामाभिधानो हरिरित्युवाच ।

इन्हीं राम-नामधारी हरि की जाया के विषय में आपने ऊपर की उक्ति कही है । भगवान् विष्णु के किये हुए नखर-क्षतों के वर्णन, और भगवती सीता के स्तनद्वय का कौवे के नाखनों से विदीर्ण होने के उल्लेख से काव्यानन्द की वृद्धि तो होती नहीं, मन में एक प्रकार की ग्लानि सी अवश्य उत्पन्न होती है । अच्छा, इस बात को जाने दीजिए । मान लीजिए कि कालिदास ने रामचन्द्र को हरि नहीं समझा ।

अतएव उनके विषय में कही गई पूर्वोक्त उक्ति अनुचित नहीं मानी जा सकती । खैर, न मानिए । आप इतना तो मानिएगा या नहीं कि रामचन्द्र उत्तम नायक थे । फिर क्या वे इतने मूर्ख थे कि नखक्षत करने की भी अङ्गुली उनमें न थी ? इस काम को क्या कौवा उनसे अच्छा कर सकता था ? एक बात का और भी तो विचार करना था । रामचन्द्र को अयोध्या छोड़े बहुत दिन हो गये थे । भरत के लौट जाने पर जिस समय वे चित्रकूट में थे उस समय की यह घटना है । वन में रामचन्द्र तापस के वेश में थे । लक्ष्मण बराबर उनके साथ रहते थे । इस बात का क्या प्रमाण कि वे ब्रह्मचर्यधारण-पूर्वक अपना काल-यापन न करते थे ? फिर ये “उपभोग-चिह्न” कहाँ से आये ? क्या ऐसे चिह्न महीनों बने रहते हैं ? अच्छा, इस कोटिक्रम को भी जाने दीजिए । क्या सीताजी नङ्गी रहती थीं ? क्या डुपट्टा, कञ्चुकी, मृगचर्म आदि वे कोई चीज न पहनती थीं ? सुहेली, जल, वुशम्यन, रेड इण्डियन आदि असभ्य जङ्गली लोगों की स्त्रियों की तरह केवल कटिप्रदेश को पत्तों या छाल से तो वे ढके रहती न थीं ? फिर कौवे ने उस अङ्गुली-विशेष को विदीर्ण कैसे किया ? याद रखिए, कालिदास ने “स्तनौ” लिख कर द्विवचन का प्रयोग किया है । आपको एकवचन से सन्तोष नहीं । द्विवचन लिखकर दोनों स्तनों को

एक ही साथ विदीर्ण कराया ? हमारी मन्द बुद्धि के अनुसार, यह उक्ति महाकवि कालिदास के काव्य की शोभा को बढ़ानेवाली नहीं, किन्तु घटानेवाली है ।

रघुवंश में इस घटना के उल्लेख की कोई वैसी आवश्यकता न थी । यदि मान लिया जाय कि थी ही, तो किसी और अवयव का नाम देने से क्या काम न चलता ? शायद न चलता । क्योंकि वैसा करने से उस अपूर्व उत्प्रेक्षा के लिए जगह न रहती । इस विषय में कालिदास की अपेक्षा तुलसीदास ने विशेष विवेक-बुद्धि से काम लिया है । उन्होंने लिखा है:—

सीता-चरन चांच हति भागा ।

महा-मन्द-मति कारन-कागा ॥

कौन न स्वीकार करेगा कि पैरों पर कौवे की चाँच या नखों का लगना अधिक संभवनीय है ?

वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड में यह घटना औरही तरह से वर्णन की गई है । वहाँ पर लिखा है कि खाने से जो मांस बच गया था वह धूप में सूख रहा था । सीताजी कौवों से उसकी रक्षा कर रही थीं । परन्तु, बार बार रोकने पर भी वे न मानते थे । यहाँ तक कि तंग किये जाने पर उन्होंने अपने पंखों, नखों और चाँचों से सीता को घाट पहुँचाई । वाल्मीकि ने किसी अङ्गुली-विशेष का नाम नहीं लिखा । उनका वर्णन सर्वथा स्वाभाविक है । मांसाशी कौवों के द्वारा सीता को कष्ट पहुँचाना और रामचन्द्र का उन कौवों पर बाण चलाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं । वाल्मीकि ने लिखा है:—

शिष्टं मांसं निकृष्टं यच्छोषणायावकल्पितम् ।

तद्रामवचनात्सीता काकेभ्यः पर्यरक्तम् ॥

✻ ✻ ✻ ✻

इतश्चेतश्च तां काको वारयन्तीं पुनः पुनः ।

पक्षतुण्डनखाग्रैश्च कोपयामास कोपनाम् ॥

अतएव कालिदास का पूर्वोक्त पद्य वाल्मीकि-रामायण का आधार नहीं रखता । उन्होंने किसी और पुराण के आधार पर वह उक्ति कही होगी ।



परन्तु यदि किसी पुराण में वैसा हो भी, तो भी उसका उल्लेख समुचित नहीं माना जा सकता। पुराणों की उद्देगजनक घटनाओं की नकल काव्यों और नाटकों में क्यों की जाय ? कालिदास ने पौराणिक घटनाओं में मनमाना फेर-फार करके उन्हें अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। यहाँ भी उन्हें ऐसाही करना था।

### (३) अनौचित्य-दर्शक उक्ति।

[ क ]

कुमारसम्भव के आठवें सर्ग में कालिदास का एक श्लोक है। उसमें आपने लिखा है कि शङ्कर को पार्वती जितना चाहती हैं, शङ्कर भी पार्वती को उतना ही चाहते हैं। दोनों के प्रेम को परस्पर का आश्रय है। कोई किसी का कम प्यार नहीं करता। वह श्लोक यह है:—

तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।

सागरादनपगा हि जान्हवी सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्॥

अर्थ:—अपने सदृश वर, अर्थात् शिव, पर वधू पार्वती जिस तरह अनुरागवती थी वर, अर्थात् शिव, भी उसी तरह वधू पार्वती पर अनुरागवान् थे। समुद्र में पहुँच कर गंगा फिर पीछे को नहीं लौटती और समुद्र भी गंगा के मुखरस (पान करने) में अपनी एकमात्र वृत्ति को प्रवर्तित कर देता है। अर्थात् और किसी नदी के मुखरस-पान में वह प्रवृत्त नहीं होता; अकेली गंगा के मुखरस-पान में वह एकवृत्ति हो जाता है। कालिदास की इस अनोखी उपमा से अनौचित्य की झलक आती है। जान्हवी का समुद्र से पीछे न हटना—उसी में लीन हो जाना—बहुत ठीक है। परन्तु समुद्र का उसमें एकवृत्ति होना कैसा ? जिस समुद्र में सैकड़ों-हजारों नदियाँ गिरती हैं और जो उन सब के मुखरस के स्पर्श में अपनी वृत्ति को प्रवृत्त रखता है, किसी को निराश नहीं लौटाता, उसकी उपमा शङ्कर से देना—उसे शङ्कर का उपमान मानना—मानो छिपे छिपे शङ्कर पर बहुपत्नी-प्रेम का आरोप करना है;

और साथही साथ समुद्र की दिलगी भी करना है। दिलगी क्या उसे शरमिन्दा करना है। यह उपमा शङ्कर और पार्वती दोनों के चरित्र में न्यूनता लानेवाली है। कविता के मर्मज्ञ रसिक जन इसके प्रमाण हैं। यदि वे ऐसा न समझें तो न सही, हम अपनी इस टिप्पणी को वापस ले लेंगे।

कुछ विद्वानों की राय है कि कुमारसम्भव के पहले सात सर्गही कालिदास के रचे हुए हैं। बाद के सब सर्ग किसी और के हैं। यह हो सकता है। ऐसा होने से पूर्वोक्त दोष कालिदास पर नहीं लगाया जा सकता। अच्छा इसे जाने दीजिए। कालिदास की एक और उक्ति सुनिए।

[ ख ]

विदर्भराज ने अपनी बहन इन्दुमती का स्वयंवर किया। देश-देशान्तर के राजा उसे पाने की इच्छा से कुण्डिनपुर आये। पर, उस कन्यारत्न ने सबका अनादर करके अज कुमार के गले में जयमाल पहनाया। यथाविधि अज का विवाह इन्दुमती से हुआ। विवाहविधि समाप्त होने पर अज अपनी नव-परिणीता वधू को लेकर अयोध्या को लौटा। उसे पहुँचाने के लिए कुण्डिनेश ने भी प्रस्थान किया। तीन रात उसके साथ मार्ग में रहकर कुण्डिन-नरेश अपनी राजधानी को वापस आये। स्वयंवर में निराश हुए राजों को अज की इन्दुमती-प्राप्ति असह्य हुई। ज्योंही विदर्भराज ने अज का साथ छोड़ा—ज्योंही अज कुमार अकेला रह गया—सब राजों ने मिलकर उस पर आक्रमण किया और उससे इन्दुमती छीन लेना चाहा। घोर युद्ध हुआ। युद्ध के मैदान में अज ने अपने वैरी राजवर्ग को सम्मोहनास्त्र से सुला दिया। उनके इस तरह मोहित हो जाने पर:—

ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः।

रघु०, सर्ग ७, श्लोक ६३

“प्रिया ने आस्वादन किया है रस जिस अधरोष्ठ का उस पर रखकर अज कुमार ने (विजय-



सूचक) शंख बजाया"। अब, विचार इस बात का है कि इस अधरोष्ठपान का प्रसङ्ग कहाँ तक युक्तिसङ्गत और सम्भव माना जा सकता है। विवाहोत्तर अज अपनी सलुराल में दो चार दिन भी नहीं रहा। या, यों कहिए कि कालिदास ने उसके वहाँ रहने का उल्लेख नहीं किया। युद्ध होने के पहले, मार्ग में भी उसने तीन ही रातें बिताई थीं और शाख की आज्ञा है :—

ऊर्ध्व त्रिरात्रमथवा द्वादशाहं भवेद्ब्रती ।

बारह दिन न सही तो तीन रात पर्यन्त तो अज को जरूर ही ब्रह्मवर्च्य धारण करना चाहिए। अतएव उसके अधरोष्ठ के लिए "प्रियोपात्तरस" विशेषण कैसे सार्थक हो सकता है? अब, यदि, यह मान लेते हैं कि कुण्डिनपुर में कुछ दिन रहने के बाद अज ने अयोध्या के लिए प्रस्थान किया तो भी कठिनता हल नहीं होती। क्योंकि, अज के द्वारा प्रिया के अधरोष्ठ-रस का पान सम्भव में आ सकता है। पर प्रिया के द्वारा अज के अधरोष्ठ-रस का पान अस्वाभाविक सा है। नव-विवाहिता इन्दुमती में इतना शीघ्र इतनी प्रौढ़ता और प्रगल्भता नहीं आ सकती। यदि कोई यह एतराज पेश करे कि यह बात असंभव नहीं, और स्त्रियों की अपेक्षा इन्दुमती शायद अधिक प्रगल्भ रही हो तो इसका उत्तर यह है कि खुद कालिदास उसे लज्जावती, अतएव अप्रगल्भा, बतलाते हैं। इसी सातवें सर्ग के पच्चीसवें श्लोक में वे कह आये हैं :—

चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ

पाठक कह सकते हैं कि यह विवाह के समय की उक्ति है। विवाहोत्तर उसकी सलज्जता कम हो गई होगी। यह एतराज भी ठीक नहीं। युद्ध समाप्त होने पर, ऊपर, जो तिरसठवें श्लोक का पूर्वाङ्ग दिया गया है उसके छः ही श्लोक आगे, अर्थात् उन-सठवें श्लोक के पूर्वाङ्ग में, महाकवि ने फिर भी इन्दुमती को लज्जावती बताया है। देखिए :—

दृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत् ।

इसका मतलब है—अपने प्रिय पति अज की जीत से प्रसन्न होने पर भी, लज्जा से जीती गई इन्दुमती अज का अभिनन्दन साक्षात् न कर सकी। अतएव इस काम को उसने अपनी सखियों की वाणी से कराया—उसकी सखियों ने अज को उसकी जीत पर बधाई दी। अतएव इन्दुमती की प्रगल्भता किसी तरह साबित नहीं हो सकती।

हाँ, एक बात लिखने को रह गई। पाठक यह कह सकते हैं कि—"प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे" का अर्थ राजा लक्ष्मणसिंह ने जैसा किया है वैसा क्यों नहीं करते? उन्होंने तो लिखा है :—"प्यारी का रस लिये हुए होठों पर रख कर कुमार ने शंख फूँका"। इस पर यह निवेदन है कि ऐसा अर्थ हो नहीं सकता। ऐसा अर्थ तब निकलता जब "उपात्तप्रियारसेऽधरोष्ठे" की तरह की पद-रचना होती। हेमाद्रि, चरित्रवर्धन और मल्लिनाथ आदि सभी टीकाकारों ने पूर्वोक्त पदों का वही अर्थ लिखा है जो हमने ऊपर लिखा है। और टीकाकारों की अपेक्षा मल्लिनाथ की टीका अधिक सुलभ है। उसे पाठक स्वयं देख सकते हैं। उसमें लिखा है :—

कुमारः प्रियेन्दुमत्योपात्तरस आस्वादितमाधुर्ये (अति-श्लाघ्य इति भावः) अधरोष्ठे जलजं शंखं निवेश्य दध्मौ ।

इन बेचारों से विवादास्पद पदों का जब और किसी तरह समर्थन न हो सका तब लिख दिया—  
"अतिश्लाघ्ये इति भावः"। "उपात्तरसेऽधरोष्ठे" का भाव अति-श्लाघ्य लिखकर इन्होंने छुट्टी पाई। परन्तु इनकी सच्चाई की तारीफ़ करना चाहिए। पूर्वोक्त पदों का ठीक ठीक जो अर्थ होता है वही इन्होंने लिखा। हाँ, वह अर्थ इनके मन में जैसा जरूर नहीं। इससे इनको उनका मतलब, उनका आशय, उनका भाव "अतिश्लाघ्य" बतलाना पड़ा। यदि कोई किसी के होठ पर ज़बरदस्ती अंगूर रख कर हटा ले और फिर यह कहने लगे कि, देखो, इसने अंगूर के रस का—उसके माधुर्य का—आस्वादन कर लिया



तो, विचार करने का स्थल है, उसकी बात कहाँ तक सार्थक मानी जा सकेगी। यदि ऐसा कथन ठीक माना जा सके तो राजा लक्ष्मणसिंह का किया हुआ अर्थ भी ठीक माना जा सकेगा। कालिदास का भी आशय यदि ऐसा ही हो तो वे जानें और उनकी रसिकता। हमारी शुद्ध बुद्धि तो काम नहीं करती।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि इन्दुमती से पहले अज ने और किसी कन्या से विवाह नहीं किया था। अर्थात् उसके और कोई "प्रिया" न थी। और, इन्दुमती के अतिरिक्त किसी अविवाहिता प्रिया का मानना रघुवंशियों के चरित पर धब्बा लगाना है।

### रस-सम्बन्धी अनौचित्य।

शङ्कर ने अखण्ड समाधि लगाई है। संसार से सारा लगाव उन्होंने छोड़ दिया है। ऐसे समय में देवता चाहते हैं कि वे पार्वती से विवाह कर लें। वे समाधिस्थ शङ्कर को जगाकर पार्वती के सम्बन्ध में उनके हृदय में अभिलाष उत्पन्न करना चाहते हैं। यह काम वे काम के सिपुर्द करते हैं। काम शङ्कर के आश्रम में आता है और स्थावर-जङ्गम सभी के हृदय में कामवासना उत्पन्न करने के लिए अकाल ही में वसन्त ऋतु का आविर्भाव करता है। उसके प्रभाव से प्राणिमात्र पागल हो उठते हैं और काम-चेष्टाएँ करने लगते हैं। यह सारा भ्रंश पार्वती में परमेश्वर के अभिलाष-शृङ्गार को उद्दीप्त करने के लिए है। इसी उद्दीपन-विभावोचित वर्णन में कालिदास एक जगह पर कहते हैं :—

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं

दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।

प्रायेष्ठा सामग्र्यविधौ गुणानां

पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥

कुमारसम्भव, सर्ग ३, श्लोक २८

अर्थात्—कनेर का रंग तो जरूर अच्छा है; परन्तु उसमें सुगन्धि नहीं, इससे मन को दुःख होता है—चित्त प्रसन्न नहीं होता। प्रायः यह देखा गया

है कि ब्रह्मा सारे गुण किसी एक पदार्थ में इकट्ठे नहीं उत्पन्न करता। इस वर्णन से कोई भी उद्दीपन बात नहीं निकलती। यह उक्ति ऐसी नहीं कि शङ्कर के अभिलाष-शृङ्गार का उद्दीपन करनेवाली हो। कनेर का रंग अच्छा होता है। होता होगा। उसमें सुवास का न होना हृदय में दुःख पैदा करता है। करे। ब्रह्मा की आदत है कि जहाँ गुण होते हैं वहाँ एक न एक दोष भी उत्पन्न किये बिना वह नहीं रहता। न रहे। इससे क्या? आप फूलों के गुण दोष दिखाने तो चले नहीं, और न ब्रह्मा की आदत ही का वर्णन करने चले। आप तो ऐसी बातें कहने चले हैं जिनसे शङ्कर की पार्वती-विषयक कामना उद्दीप्त हो उठे। सो वैसी कोई बात पूर्वोक्त पद्य में देख पड़ती नहीं। इसी श्लोक के आगे पीछे आपने जो पुँस्कोकिलों का कूजन, भ्रमरों और भ्रमरियों का एकही पुष्पपात्र में मधुपान, पलाश-कलिकाओं के मिस से वनस्थली के नखक्षत आदि का वर्णन किया है वह सब आपके अभीष्ट रस का उद्दीपन करता है। परन्तु इस श्लोक की उक्ति वैसी नहीं। इसीसे कहना पड़ता है कि इसमें शृङ्गार-रस-परिपोषक औचित्य नहीं।

[ असमाप्त ]

### प्रयाग।

नाम।



प्रयाग में इस समय बड़ा जमाव है। इसलिए उसका संक्षिप्त वृत्तान्त लिखा जाता है।

इलाहाबाद का पुराना नाम प्रयाग है। अधिकांश हिन्दू उसे अब भी प्रयाग ही कहते हैं। इस नगर का एक और भी पुराना नाम है। यह किसी समय प्रतिष्ठानपुर कहलाता था। यह प्रतिष्ठानपुर वहाँ पर था जहाँ अब झूँसी है। वहाँ के टीले स बात की गवाही दे रहे हैं



कि किसी समय वहाँ पर बड़े बड़े महल और राज-  
प्रासाद अवस्थित थे। प्रतिष्ठान गंगा के उस पार  
था; प्रयाग इस पार है। प्रतिष्ठानपुर में पुराने  
चन्द्रवंशी नरेशों की राजधानी थी। पुररवा यहाँ के  
प्रसिद्ध महाराज थे। कालिदास के विक्रमोर्वशीय  
नाटक का कथानक इसी प्रतिष्ठानपुर से सम्बन्ध  
रखता है। प्रतिष्ठान का प्राचीन इतिहास अप्राप्य है।  
इससे नहीं कह सकते कि क्यों इसका यह नाम  
हुआ। परन्तु प्रयाग के नामकरण का कारण पुराणों  
में पाया जाता है। लिखा है कि ब्रह्मा ने यहाँ बहुत  
से यज्ञ किये। इससे इसका नाम प्रयाग पड़ गया।  
प्र = प्रकृष्ट + याग = यज्ञ, इसी अर्थ का सूचक है।  
इसका इलाहाबाद नाम अभी कल का है। यह नाम  
अकबर बादशाह का रक्खा हुआ है। १५८४ ईसवी  
में अकबर ने यहाँ पर एक किला बनवाया। तब  
उसने इसका नाम प्रयाग से इलाहाबाद कर दिया।

### भौगोलिक अवस्थिति ।

इलाहाबाद इस प्रान्त की राजधानी है। पृथ्वी का  
वह अंश जो गंगा और यमुना के बीच में है उसके  
पूर्व कोण में यह शहर बसा हुआ है। उसमें शहर, सर-  
कारी अफसरों के बंगले और दफ्तर और छावनियाँ  
शामिल हैं। आगरे से यह २७९ मील है, कलकत्ते से  
५१४ मील और बम्बई से ८४४ मील। समुद्र-  
तल से यह ३४० फीट अधिक ऊँचा है। कीटगंज  
और मुट्टीगंज के पास यह शहर यमुना के किनारे  
पहुँच जाता है। जितना ही पश्चिम को जाइए  
उतना ही वह यमुना से हटता जाता है। शहर  
ज्यादातर उँचाई पर है; परन्तु अतरसुय्या और  
अहियापुर के महल्ले नीची ज़मीन पर हैं। १८७५  
ई० में यमुना में बाढ़ के समय इन महलों को  
बड़ी हानि पहुँची थी। कीटगंज भी किसी क़दर  
नीचा है। शहर के नीचेवाले हिस्से को गंगा की  
बाढ़ से बचाने के लिए एक बड़ा मज़बूत बाँध  
अकबर के समय में बनाया गया था। १८७५ में  
यह बाँध एक बार टूट चुका है। दारागंज का

महल्ला, जिसको शाहेजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने  
बसाया था, इसी बाँध के ऊपर बसा है। दारागंज  
बहुत सुन्दर बस्ती है। इसमें बहुत से देवताओं के  
मन्दिर हैं। प्रयागवाल भी अधिकतर यहाँ रहते हैं।

### जन-संख्या ।

इलाहाबाद की जन-संख्या, १९०१ ईसवी की  
मर्दुमशुमारी के अनुसार १,७२,०३२ थी। इसकी  
तफ़सील इस प्रकार है:—

हिन्दू	१, १४, ६७९
मुसल्मान	५०, २७४
ईसाई	४, ३०७
जैन	५५४
अन्यधर्मावलम्बी	२, २१८

जन-संख्या के हिसाब से इस शहर का  
इन प्रान्तों में पाँचवां नम्बर है और इस देश में  
चौदहवाँ।

### इतिहास ।

प्रयाग तीर्थराज कहलाता है। इसलिए कि यह  
सब तीर्थों से बड़ा है। देवताओं ने एक बार सब  
तीर्थों के माहात्म्य की जाँच की थी। उन्होंने सब  
को, या सब के माहात्म्य को, तराजू पर रखकर  
तौला था। तौल के समय प्रयागवाला पल्ला ज़मीन  
परही रहा, औरों का आकाश को उठ गया। तबसे  
प्रयाग को तीर्थराज की पदवी मिली। यहाँ गङ्गा,  
यमुना और सरस्वती का संगम है। तीनों नदियाँ  
एक होकर यहाँ से समुद्र की ओर गमन करती हैं।  
गङ्गा और यमुना तो प्रत्यक्ष हैं, सरस्वती अप्रत्यक्ष।  
यह तीसरी नदी कब से अप्रत्यक्ष है, कुछ पता  
नहीं। कालिदास के ज़माने में भी इसमें पानी न  
था। क्योंकि रघुवंश में इस कवि ने लिखा है:—  
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्वां महिषीमपश्यत् ।

अर्थात् राजा दिलीप ने अपनी रानी को अन्तः-  
सलिला सरस्वती की तरह सगर्भावस्था में देखा।  
इससे यह सूचित हुआ कि उस समय भी सरस्वती



के पेट के भीतर हो जल था, बाहर से न देख पड़ता था। कुछ भी हो, इन्होंने तीन नदियों के संगम के कारण इस संगमस्थली का नाम त्रिवेणी हुआ। इस त्रिवेणी-स्नान का बड़ा माहात्म्य है। औरों की अपेक्षा पद्म और मत्स्यपुराण में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। प्रयाग-माहात्म्य मत्स्यपुराण का एक अंश-विशेष है। उसमें प्रयागस्थ देवस्थानों और तीर्थों आदि की कथा और महिमा का वर्णन है। उसमें एक जगह लिखा है :—

सितासिते यत्र तरङ्गचामरे

नद्यौ विभाते मुनि-भानुकन्यके ।

नीलातपत्रं वट एव साक्षात्

स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

इस तीर्थराज प्रयाग में प्रत्येक मकर-संक्रान्ति पर एक प्रचण्ड मेला होता है। वह बहुधा माघ में होता है। इसलिए माघ-मेला कहलाता है। दूर दूर से लाखों आदमी त्रिवेणी-स्नानार्थ यहाँ आते हैं। हर बारहवें वर्ष यह मेला सैकड़ों गुना अधिक प्रकाण्ड रूप धारण करता है। तब वह कुम्भ-मेला कहलाता है। अगला कुम्भ-मेला १९१८ ई० में होगा। हर छठे वर्ष भी बहुत बड़ा मेला होता है। उसे अर्द्ध-कुम्भ या अर्धकुम्भी का मेला कहते हैं। प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम का उल्लेख तो ऋग्वेद तक में है। प्रयाग का नाम वेदों में तो नहीं, पर रामायण और महाभारत में पाया जाता है। अतएव तीर्थराज प्रयाग की महिमा आज की नहीं, बहुत पुरानी है। वन जाते समय रामचन्द्र जी भरद्वाज मुनि के आश्रम में ठहरे थे। उनसे मिलने के लिए जाते हुए भरत का भी आतिथ्य भरद्वाज ने किया था। शृङ्गवेरपुर में निषादों के राजा गुह ने रामचन्द्र के पैर धोये थे। यह कथा वाल्मीकिरामायण में है। भरद्वाज का वह स्थान अब तक प्रयाग में है। इलाहाबाद जिले के नवाबगंज परगने में पुराना शृङ्गवेरपुर भी अब तक मौजूद है। उसका नाम बदल कर अब सिंगरौर हो गया है। जिस वारणा-

वत् में पंच पाण्डव हस्तिनापुर से निकाल दिये गये थे वह भी प्रयाग ही के आस पास कहीं था। पुराण तत्त्वज्ञ पण्डितों ने बड़ी खोज के बाद उस पुराण वारणावत् का पता लगाया है। जिस कौशाम्बी नगरी का पुराणों और प्राचीन ग्रन्थों में जगह जगह पर उल्लेख आया है वह भी प्रयाग ही के पास थी। इस समय उसका नाम कोसम है।

कालिदास ने रघुवंश में प्रयाग का वर्णन कई श्लोकों में किया है। गंगा और यमुना के संगम की शोभा और महिमा के दर्शक दो श्लोक सुन लीजिए :—

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणोव भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य ।

पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥

समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतत्तिमनामत्र किलाभिषेकात् ।

तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥

लङ्का-विजय के अनन्तर अयोध्या को लौटते समय रामचन्द्र ने ये उक्तियाँ सीता से कही हैं। अक्षयवट का भी वर्णन कालिदास ने किया है :—  
त्वया पुरस्तादुपयान्वितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।  
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ॥

बौद्धों के समय में भी प्रयाग की महिमा पूर्ववत् जागरूक थी। ईसा के ६०० वर्ष पहले गौतमबुद्ध ने यहाँ पर अपने नव-स्थापित धर्म के सम्बन्ध में कितने ही व्याख्यान और उपदेश दिये थे। अनेक हिन्दुओं को उन्होंने यहाँ पर अपने धर्म का अनुयायी बनाया था। इसके कोई ३०० वर्ष बाद मगध-नरेश अशोक ने यहाँ पर कितने ही स्तूप और विहार बनवाये। अशोक का बनवाया हुआ पत्थर का एक स्तंभ इस समय तक विद्यमान है। पुराण-तत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि यह स्तम्भ पहले कौशाम्बी नगरी में था। पर जब वह उजड़ गई तब स्तम्भ प्रयाग को लाया गया। यह स्तम्भ इस समय प्रयाग में किले के भीतर खड़ा हुआ है। यह कई दफ़े गिरा और कई दफ़े फिर से खड़ा किया गया।



इसा की सातवीं शताब्दी में चीन के प्रसिद्ध  
परिव्राजक ह्वेनसांग ने भारतवर्ष की सैर की थी। कोई  
२० वर्ष तक वह यहाँ था। उसने जो प्रयाग का वर्णन  
लिखा है उससे जाना जाता है कि उस समय भी  
प्रयाग की बड़ी महिमा थी। वह समय वैद्यों के  
प्रभुत्व के हास का था। तथापि कई स्तूप और  
विहार तब भी यहाँ पर थे। पातालपुरी का प्रसिद्ध  
मन्दिर और अक्षयवट भी अश्रुण्ण था। अक्षयवट  
के नीचे एक कुंवा था। सैकड़ों—हजारों हिन्दू  
इस अक्षयवट के ऊपर से कूद कर नीचे एक कुवे  
में गिर कर मोक्ष प्राप्त करते थे। जिस समय ह्वेनसांग  
भारत में था, प्रयाग-नगरी कन्नौज-राज हर्षवर्द्धन  
की सत्ता के अधीन थी। हर पाँचवें वर्ष हर्षवर्द्धन  
प्रयाग में अपनी सारी सम्पदा, वैद्यों और हिन्दुओं  
को लुटाता था। ह्वेनसांग के सामने भी एक ऐसा  
ही उत्सव हर्ष ने किया था।

इसके बाद कई सौ वर्ष तक का प्रयाग का इतिहास ज्ञात नहीं। बारहें शतक में यह नगर कन्नौज के राजा जयचन्द्र के राज्य में शामिल था। शहाबुद्दीन के द्वारा जयचन्द्र के परास्त किये जाने पर प्रयाग में मुसलमानों का आधिपत्य हुआ।

कुछ दिन बाद यह कड़े मानिकपुर के सूबे में मिला दिया गया। तेरहवीं शताब्दी में यह अला-उद्दीन के हाथ में आया। उसने अपने बुढ़े चचा का काम कड़े और मानिकपुर के बीच गंगाजी के रेत में ही तमाम किया था। १५२९ ईसवी में बाबर ने इस स्थान को पठानों से छीन लिया था। शाह-जादा सलीम अपने पिता के समय में यहाँ का शासक बन बैठा था। खूसरो बाग में जो क़ब्र बनी हुई है वह इसके बागीपुत्र की यादगार है। जिस समय बुंदेला लोग छत्रसाल की अध्यक्षता में सिर उठा रहे थे उस समय यहाँ के गवर्नर फ़र्रुखाबाद के नवाब मुहम्मद खाँ थे। इसके बाद कुछ काल तक अवध के नवाब इसके शासक रहे। कुछ समय तक इस पर मराठों का भी शासन रहा। मुग़लराज ने

इलाहाबाद को थोड़े दिन तक की अपनी राजधानी भी बनाया था; परन्तु १७७१ ईसवी में शाहआलम देहली को चले गये। अतएव राजधानी भी बदल गई। अंगरेजों ने शाहआलम के राज्य का कुछ अंश लेकर इलाहाबाद के सूबे को अपने कब्जे में कर लिया और उसे नवाब अवध के हाथ ५० लाख रुपये पर बेच डाला। १८०१ ईसवी में नवाब अवध ने गङ्गा और यमुना के बीच का देश अंगरेजों को दे दिया। इलाहाबाद का जिला भी उसी में शामिल था। १८३४ ईसवी में पश्चिमोत्तर-देशीय गवर्नमेंट इलाहाबाद में स्थापित हुई; परन्तु सालही भर बाद आगरे चली गई। १८५७ ईसवी में सिपाही-विद्रोह के बाद इलाहाबाद फिर इस प्रान्त की राजधानी हुआ।

प्राचीन मन्दिर, देवस्थान, इमारतें आदि

इद्यपि समय के हेर फेर से शहर की शोभा बढ़ाने वाले बहुत से प्राचीन स्थान नष्ट हो गये हैं तथापि अब भी कई एक वर्तमान हैं। कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

क़िले में ज़मीन के नीचे पातालपुरी का विख्यात मन्दिर है। उसमें जाने का रास्ता ढालू है। मन्दिर प्रायः चौकोर है। उसकी छत खंभों के ऊपर सजी हुई है। मन्दिर के बीच में शिव का लिंग है। वहीं एक और अक्षयवट है। और भी कितनी ही मूर्तियाँ उसमें हैं। यह मन्दिर पहले शायद इस तरह ज़मीन के नीचे न था। अकबर ने जब यह क़िला बनाया तब यह नीचे हो गया होगा। प्रयागवाल इसे ११००० वर्ष का प्राचीन बताते हैं।

क़िले के भीतर अशोक का प्राचीन स्तम्भ है। वह ३५ फुट लम्बा और कोई ३ फुट मोटा है। मुठाई ऊपर की तरफ कुछ कम होती गई है। उस पर अशोक के छः आदेश बराबर सतरो में चारों ओर खुदे हुए हैं। अक्षर सब बराबर हैं, और बहुत गहरे तथा साफ़ खोदे गये हैं। परन्तु तीसरी और चौथी



सतर जहाँगीर ने अपने पूर्वजों के नाम लिखकर खराब कर दी है। पाँचवें आदेश की दो सतरे साफ़ हैं, अवशिष्ट सब छीलसी डाली गई हैं। आधी सतर के सिवा छठे आदेश का सर्वांश विद्यमान है। अशोक के इस लेख के ठीक नीचे गुप्तवंशी-नरेश समुद्रगुप्त का विख्यात और बड़ा लेख है। इस स्तंभ पर इधर उधर नागरी अक्षरों में और भी बहुत कुछ खुदा हुआ है। संवत् बहुत खुदे हुए हैं। मालूम होता है कि जो यात्री इसे देखने जाते थे वे कुछ न कुछ इस पर खेद देते थे। मन्दिरों और देवस्थानों में नाम इत्यादि लिखने की चाल अब तक वर्तमान है। स्तंभ पर वीरबल का भी एक लेख मौजूद है। वह इस तरह है :—

पहिली सतर—संवत् १६३२, साके १४२३, मार्ग वदी पंचमी

दूसरी सतर—सोमवार गंगादास सुत महाराज वीरबल श्री

तीसरी सतर—तीर्थराज प्रयाग की यात्रा सफल लिखितम्

प्रयाग-माहात्म्य में प्रयाग के सात प्रधान स्थानों के दर्शन करने की विशेष आज्ञा है। वे स्थान ये हैं :—

त्रिवेणी माधव सोम भरद्वाजञ्च वासुकिम् ।

वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागे तीर्थनायकम् ॥

ये सात स्थान त्रिवेणी, माधव, सोमेश्वर, भरद्वाजाश्रम, वासुकि, अक्षयवट और शेष हैं।

गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम का नाम त्रिवेणी है। उसका उल्लेख हो चुका है। अक्षय-वट का भी संक्षिप्त वर्णन दिया जा चुका है। माधव किंवा आदि-माधव का मन्दिर यमुना के दक्षिण तट पर है। यह त्रिणु का मन्दिर है। दारागंज में भी माधव का एक मन्दिर है। सोमेश्वर का मन्दिर गंगा के दक्षिणी तट पर है। वह आदि-माधव के मन्दिर से कुछ ही दूर उत्तर की ओर है। भारद्वाज का मन्दिर कर्नलगंज महल्ले में है। यहाँ पर भर-

द्वाज मुनि का आश्रम था। इन्होंने रामचन्द्र और भरत का आतिथ्य किया था। वासुकि अर्थात् शेषजी का मन्दिर दारागंज में है। अवशिष्ट शेष नाम का मन्दिर त्रिवेणी से ३ मील पूर्व गंगा के किनारे एक गाँव में है। भारतवर्ष में शायद शेषजी के यही दो मन्दिर हैं।

गंगा और यमुना के संगम पर जो किला अब तक वर्तमान है उसे अकबर ने १५७५ ईसवी में बनाया था। सुनते हैं अकबर ने इस किले को इस मंशा से यहाँ पर बनवाया था जिसमें अक्षयवट से कूद कर लोग आत्महत्या करना बन्द कर दें। इस किले में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। इसके मीनार इत्यादि बहुत से उतार दिये गये हैं। और इसकी सुन्दरता में बहुत कमी इसी कारण से आ गई है परन्तु इस परिवर्तन से यह बहुत अधिक उपयोगी हो गया है। अब इसमें बारखें, गोला-बारूद रखने और बनने के स्थान आदि बन गये हैं। किले के दक्षिण ओर दीवार से मिली हुई यमुनाजी बहती हैं। पूर्व की ओर गंगाजी हैं। गर्मियों में किले और नदियों के बीच में एक बड़ा भारी रेत का मैदान निकल आता है जिस पर मेले हुआ करते हैं।

जहाँगीर और उसके जेष्ठ पुत्र खुसरो से अकसर झगड़ा हुआ करता था। खुसरो की माता जो महाराज मानसिंह की बहन थी सदा अपने पुत्र का पक्ष लेती थी। इन झगड़ों से आजिज आकर उसने आत्मघात कर लिया था। एलफिन्स्टन साहब के लिखे हुए भारतीय इतिहास से मालूम होता है कि खुसरो भी १६२१ ईसवी में शाह-जहाँ के द्वारा मारा गया। खुसरो, खुसरो की माता, और उसकी बहन ये तीनों इलाहाबाद ही के हुए। इन तीनों की कब्रें खुसरो बाग में हैं। खुसरो बाग भी इलाहाबाद में एक प्रसिद्ध स्थान है। इसके भीतर की इमारतें सादी परन्तु विशाल हैं। मुख्य भवन के भीतर फूलों और चिड़ियों के बहुत सुन्दर चित्र हैं।



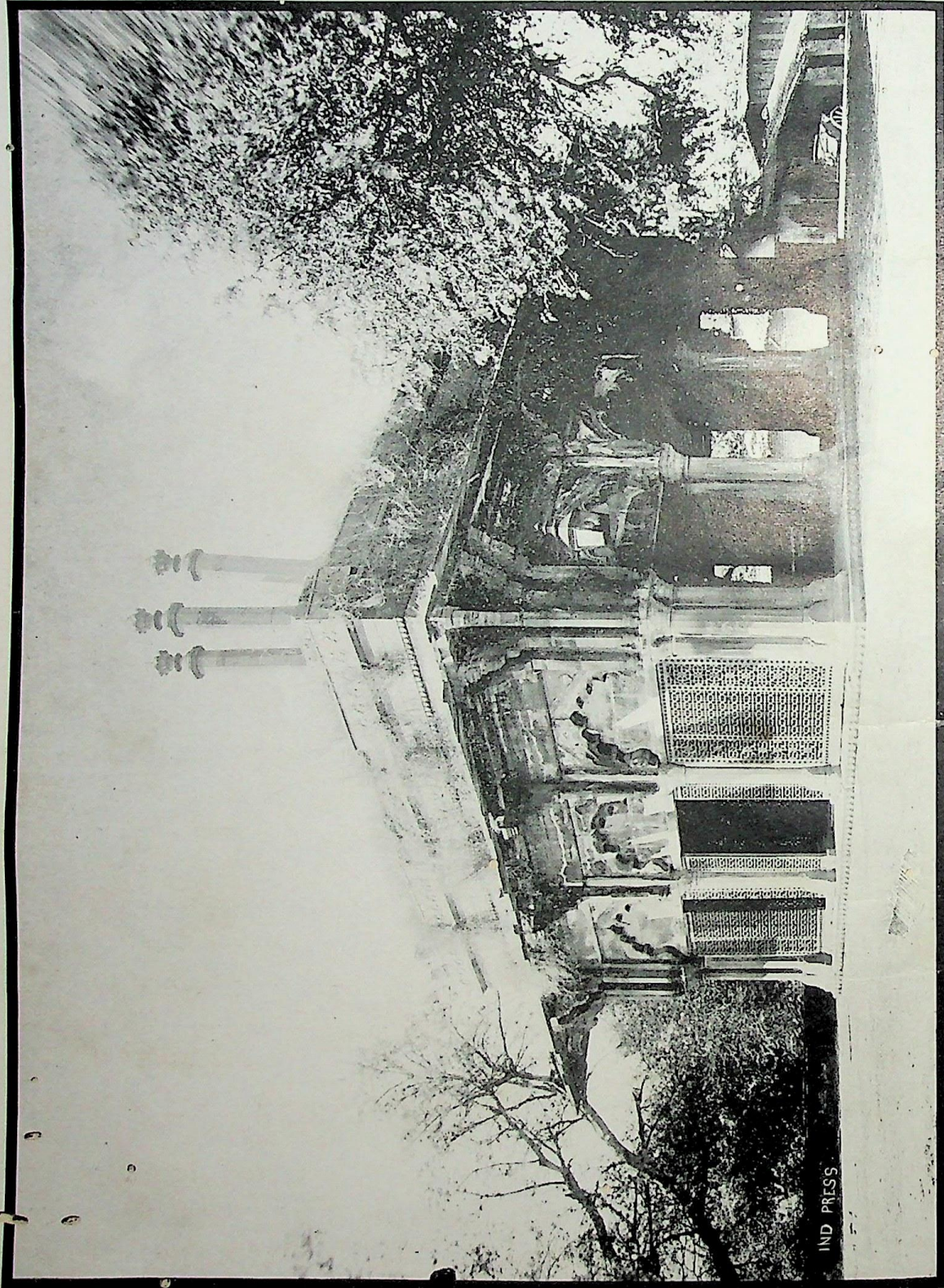
और  
पूजी  
का  
एक  
दो

अब  
नाया  
सा से  
कर  
ले में  
यादि  
रता  
इस  
है।  
ने के  
वार  
गाजी  
बड़ा  
मेले

अक-  
जा  
पुत्र  
गाकर  
सटन  
तलूम  
राहे-  
की  
की के  
सरो  
सके  
मुख्य  
उन्दर



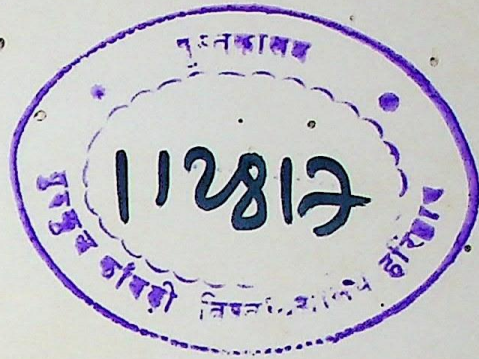
सरस्वती



बेगम का रौज़ा, मुहरीगंज ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

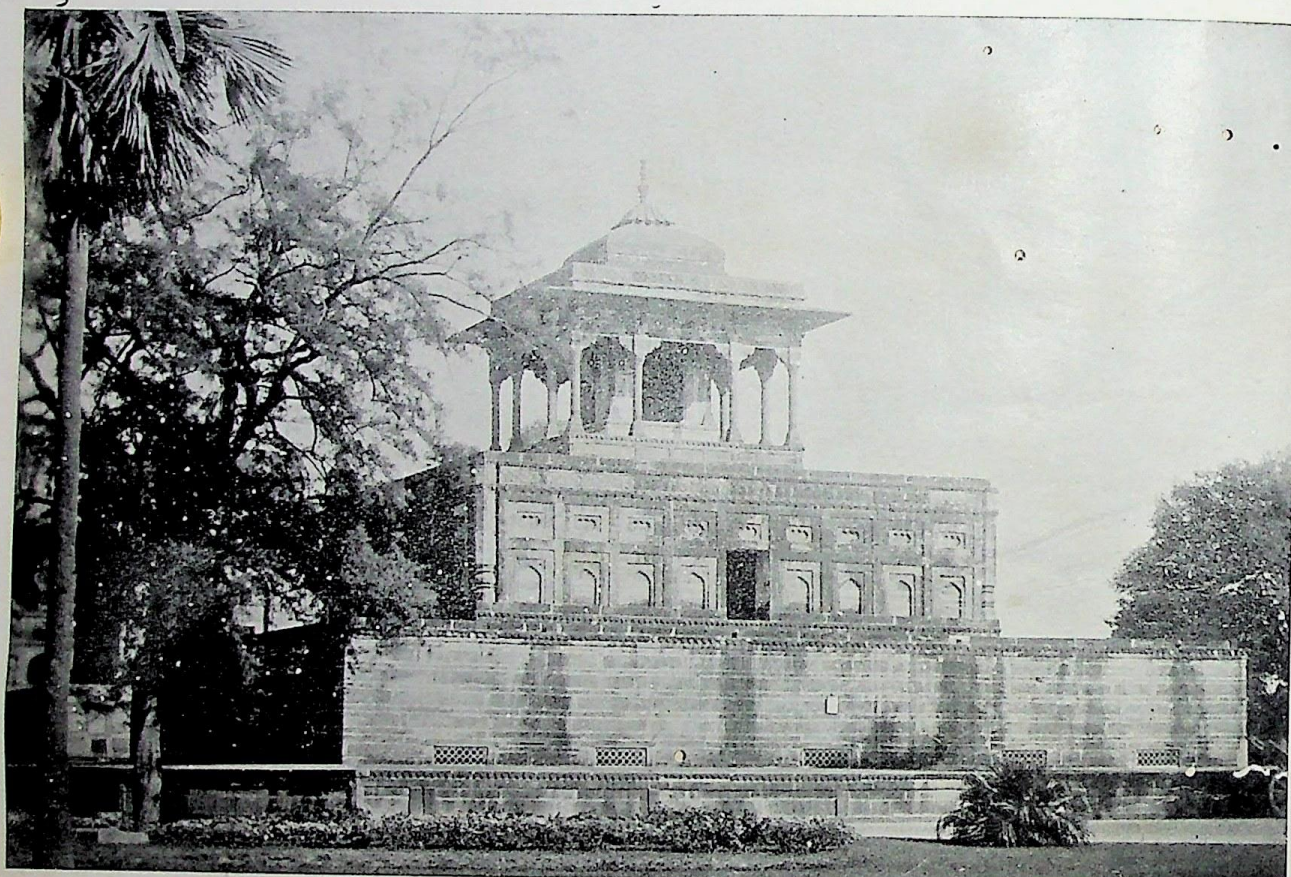




इंस्टीट्यूट प्रेस, इलाहाबाद ।



# सरस्वती



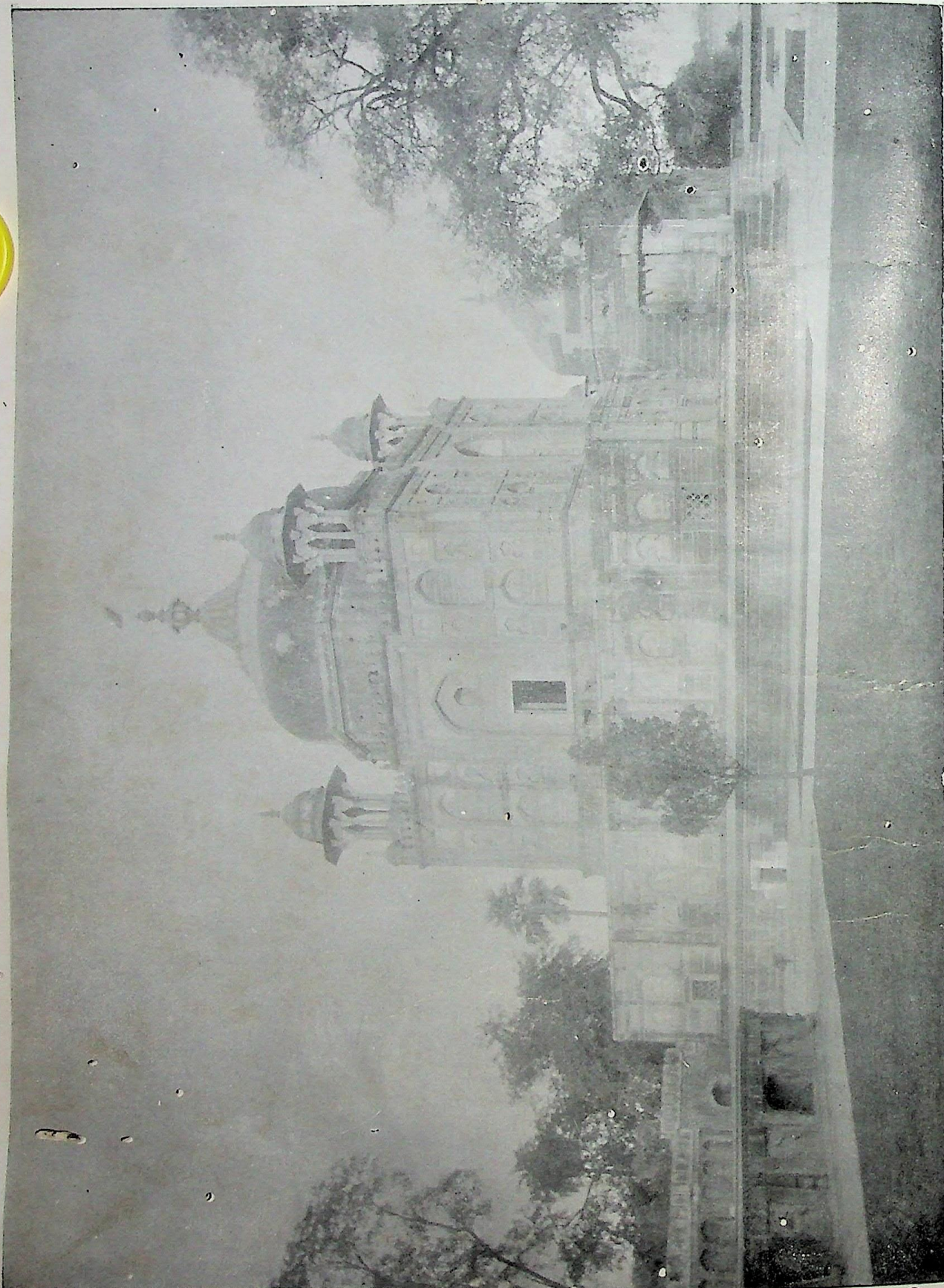
रौज़ा शाह बेगम ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।









मीर .खुसरो का रौज़ा ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

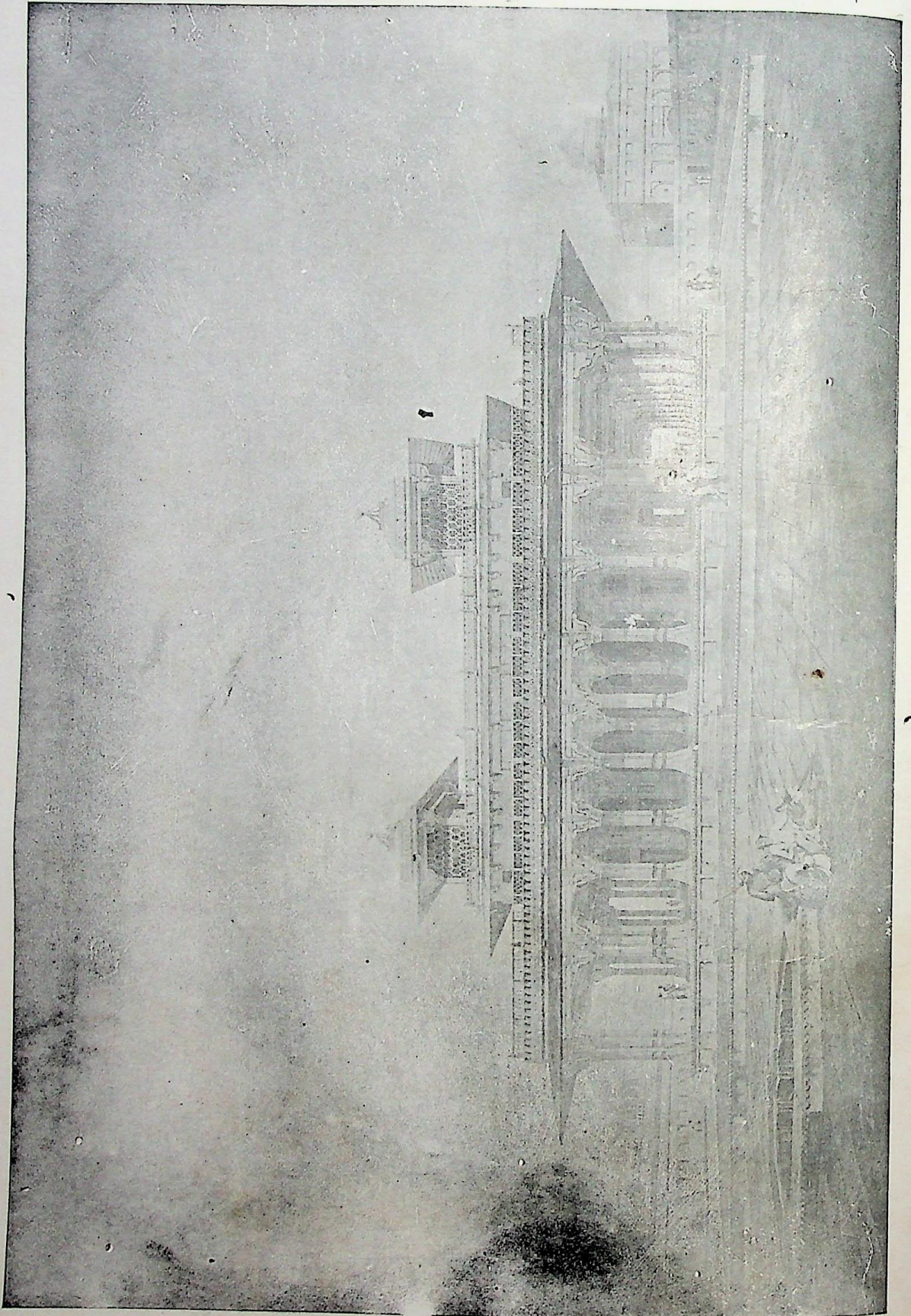


भारत खुसरा का राजा ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



# सरस्वती



अकबर का महल (फतेहपुर सिकरी के निकट)



अकबर का महल (इलाहाबाद के हिन्दू के मन्दिर)



सरस्वती



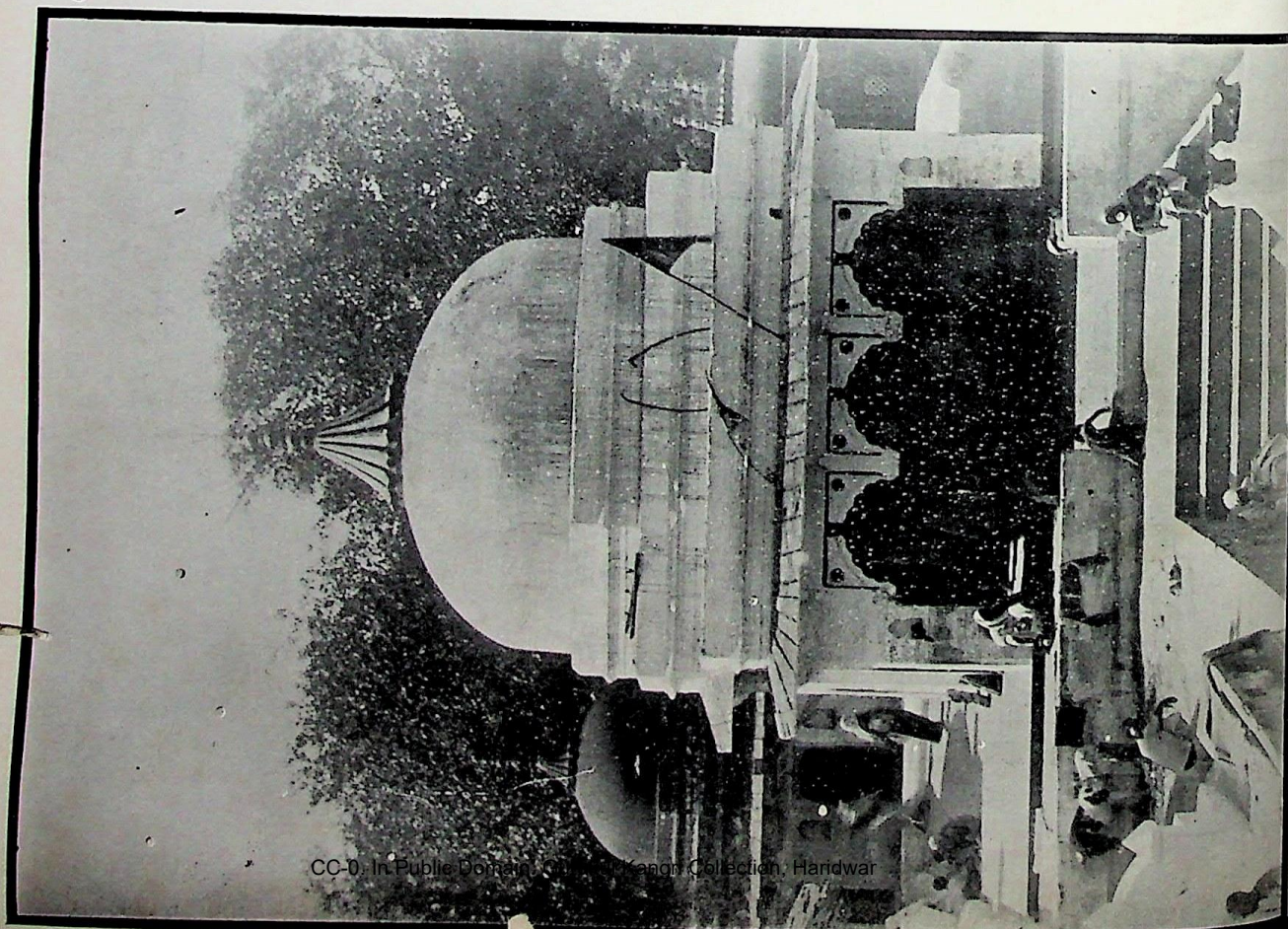
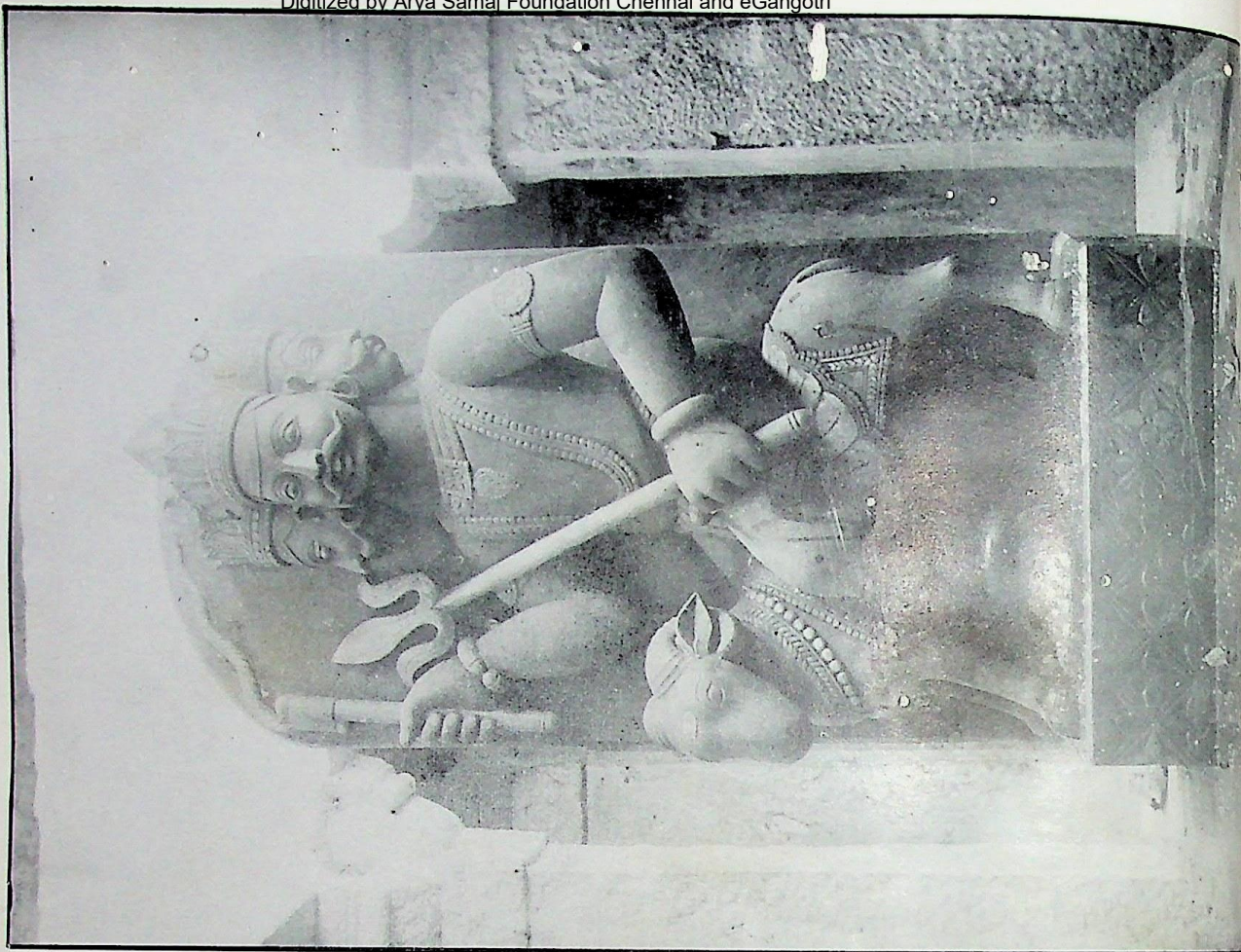
पातालपुरी में यमराज की मूर्ति ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







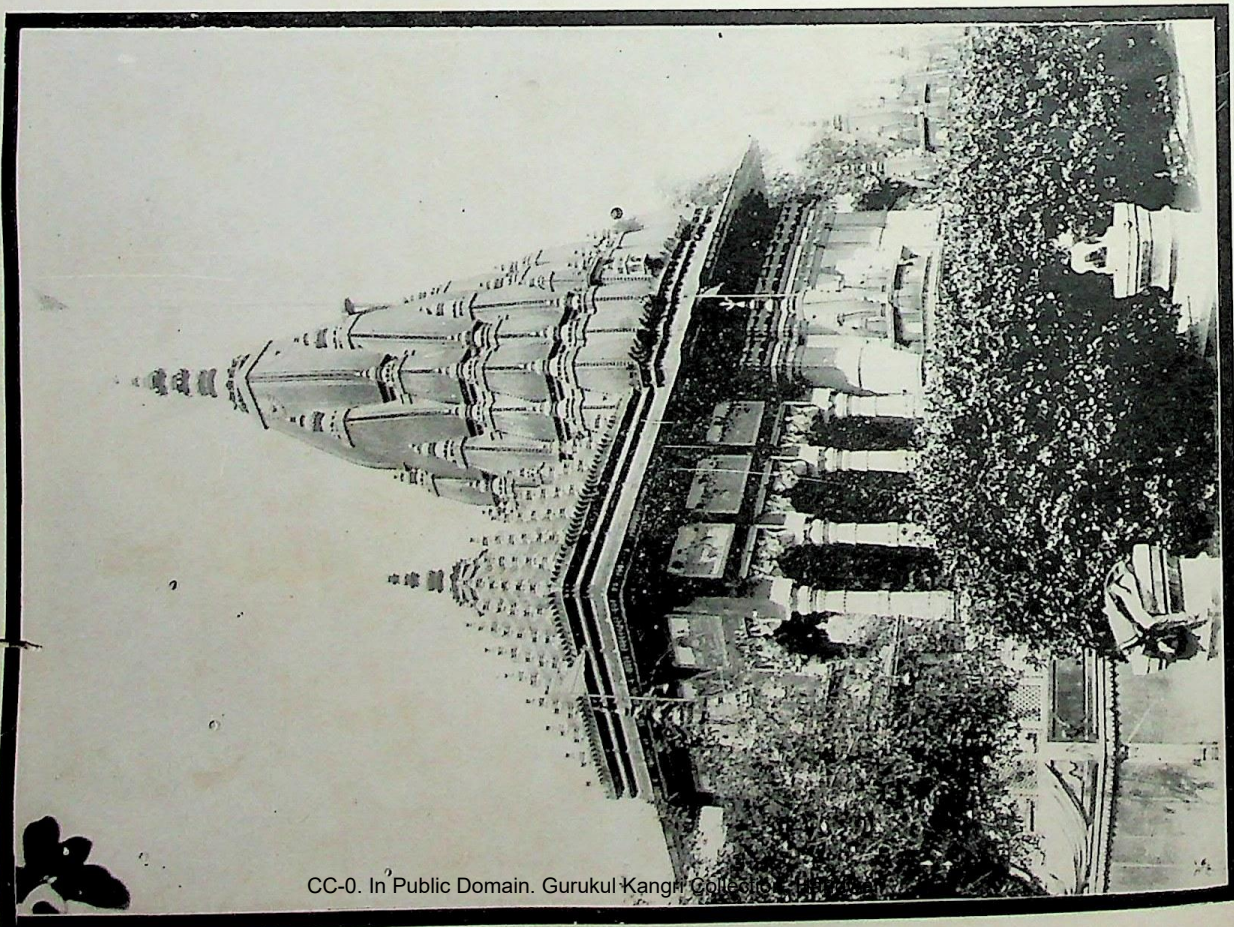






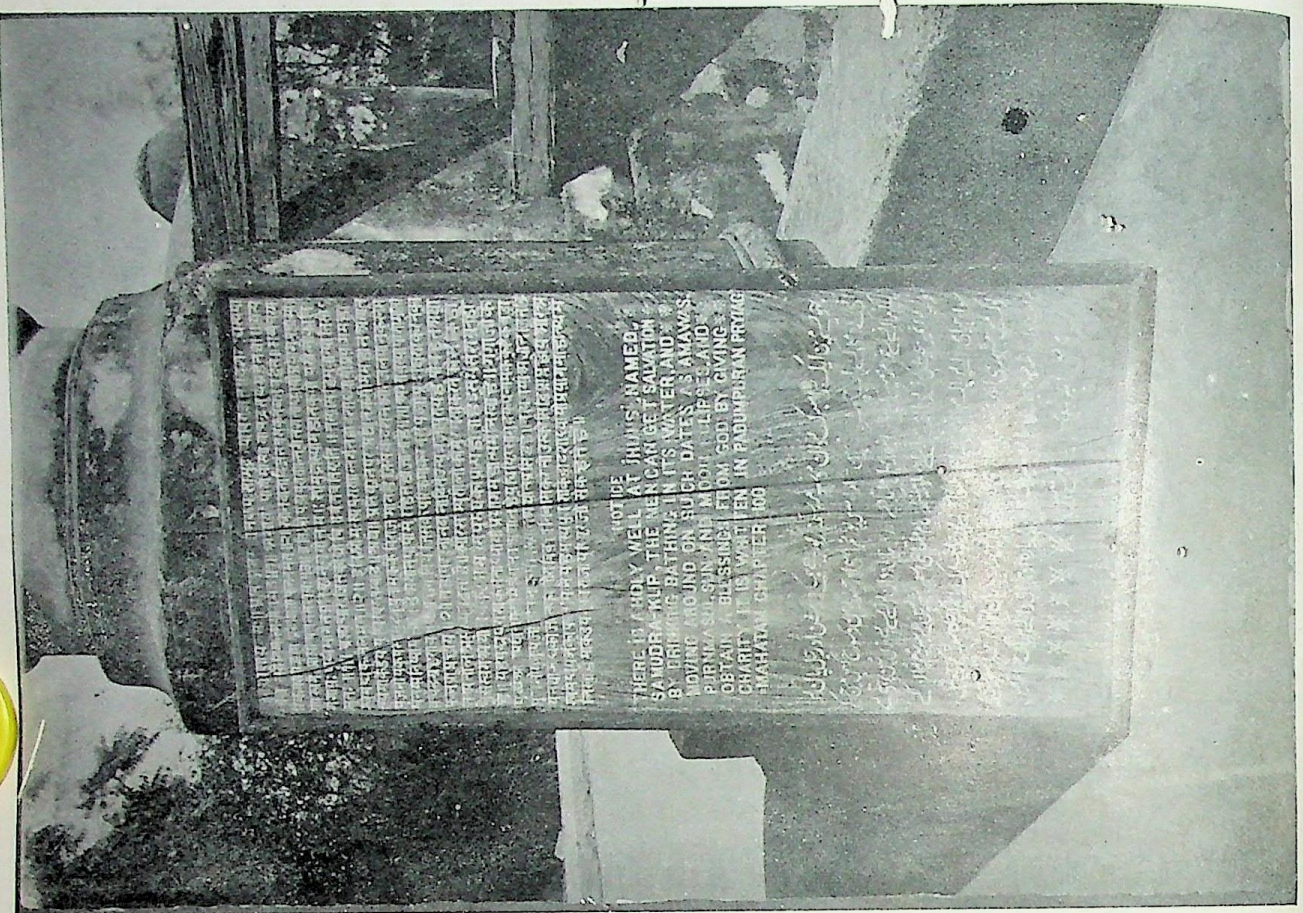


सरस्वती



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

सुवर्ण-मन्दिर अलोपी बाग ।



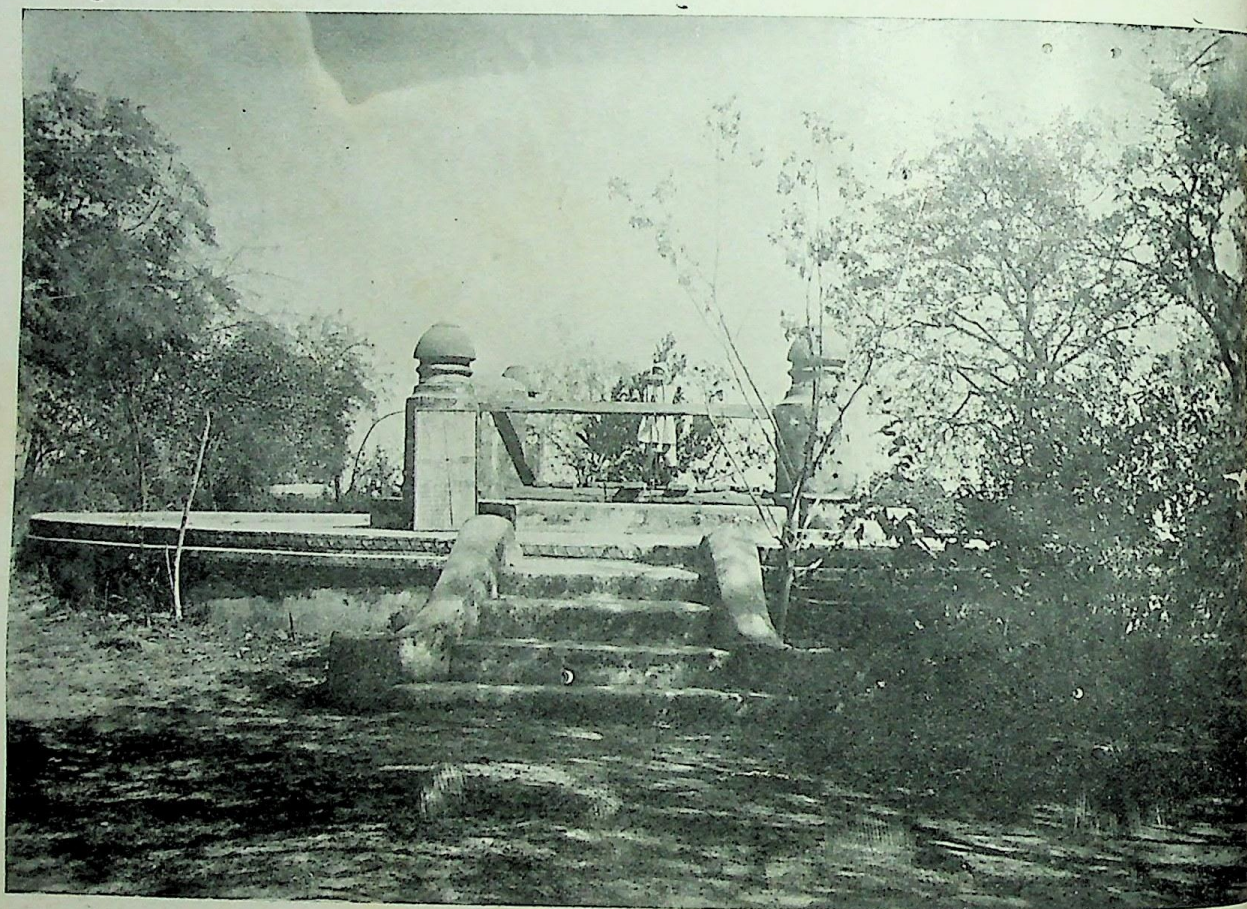
NOTICE  
THERE IS A DRY WELL AT JHUIS NAMED  
SAMUDRA-KRIP. THE MEN CAN GET SALVATION  
BY DRINKING BATHING IN ITS WATER AND  
MOVING AROUND ON SUCH DATES AS ANAVS,  
PURNIMA, SUN AND MOON ECLIPSE AND  
OBTAIN BLESSING FROM GOD BY GIVING  
CHARITY. IT IS WRITTEN IN BHAGVAD PURAN  
BHAGVAD CHAPTER 100







# सरस्वती



समुद्र-कूप ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





इंडियन प्रेस, प्रयाग की इमारत का पार्श्व दृश्य ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





इंडियन प्रेस, प्रयाग की इमारत का सामने का दृश्य

सं  
समु  
भर  
जल  
जाय  
दिय  
किय  
डाल  
था  
वेत्त  
का  
प्रस्  
राज  
चल  
ह  
ह  
से  
तैप  
सा  
नह  
बह  
निव  
ह  
के  
बा  
था  
सेन  
ग्रौ  
खा  
शो  
एव  
रुप



त्रिवेणी संगम के उस पार एक पहाड़ी के ऊपर समुद्रकूप नाम का एक कुर्वा है। सुनते हैं कि जब भरतजी रामचन्द्रजी को मनाने गये थे तब समुद्र का जल इस आशा से ले गये थे कि यदि रामजी मान जायेंगे तो उनको वहीं इस जल से राजतिलक कर दिया जायगा। परन्तु रामचन्द्र ने यह स्वीकार न किया। इसलिए भरत को वह समुद्र-जल वहीं डाल देना पड़ा। जिस स्थान में यह जल डाला गया था उसका नाम समुद्रकूप हो गया। परन्तु पुरातत्त्व-वेत्ताओं की राय है कि यह कुर्वा महाराज समुद्रगुप्त का बनवाया हुआ है। इसीसे उनके नाम से यह प्रसिद्ध है। यह बड़ा प्रतापी राजा था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। इसी ने गुप्त-संवत् चलाया। इसका समय ईसा की तीसरी शताब्दी है। इसके विषय में प्रयाग के पंडे कुछ और ही गाते हैं। वे कहते हैं कि इसका लगाव समुद्र (सागर) से था। इसलिए इसका समुद्र-कूप नाम पड़ा। यह तोप गया था। कुछ समय हुआ एक साधु इसे साफ़ कराने लगा। पंडों ने कहा, ऐसा न करो, नहीं तो समुद्र का सोता निकल पड़ेगा और प्रयाग बह जायगा। परन्तु कुर्वा साफ़ हो गया। सोता न निकला और प्रयाग भी बह जाने से बच गया।

### नवीन इमारतें और स्थान ।

नवीन इमारतों और स्थानों में मुख्य मुख्य ये हैं:—सरकारी दफ्तर, हाई कोर्ट, बारलाइब्रेरी (वकीलों के बैठने का भवन), ज़िला-अदालत, अँगरेजों की बारखे, गिरजे, म्योरसेन्ट्रल कालेज, मेयो हाल, थार्नहिल और मेनमेमोरियल, लाट साहब की कोठी, सेन्ट्रल जेल, एलफ़्रेड पार्क, मेकफ़ासन पार्क, गंगा और यमुना के पुल, रेलवे स्टेशन, सरकारी छापा-खाना, पायनियर प्रेस, इंडियन प्रेस आदि।

एलफ़्रेड पार्क नाम का बाग़ इलाहाबाद की शोभा का बढ़ानेवाला है। इसका विस्तार १३३ एकड़ मुरब्बा है। म्यूनीसिपैलिटी इसके लिए ८००० रुपया देती है और सरकार १६०० रुपया। इस पार्क

के बीच में बाजा बजने का एक बड़ाही सुन्दर चवूतरा बना हुआ है जिसके चारों तरफ़ फूलों की सजावट है। चवूतरे के चारों तरफ़ पैदल चलने वालों के लिए एक सड़क है और एक घोड़ा-गाड़ियों के लिए भी। अनेक लोग इस पार्क में चित्तविनोदनार्थ आते हैं। यह पार्क ड्यूक आफ़ एडिनबरा के १८७० ईसवी में आने की यादगार में बना था। मेन और थार्नहिल साहब की यादगार भी इसी पार्क में है। यह १८७८ ईसवी में बनाया गया था। यह विलकुल पत्थर का बना है। इसमें १९०,००० रुपया लगा था। इस भवन में सर्वसाधारण के लिए एक बड़ा उपयोगी पुस्तकालय है। माघ-मेला के फंड से इस पुस्तकालय को ३६०० रु० वार्षिक मिलता है।

लाट साहब की कोठी और पार्क के बीच में केवल 'पार्करोड' नामक एक सड़क है। कोठी सफ़ेद रंग की है। यद्यपि उसमें कोई बड़ी कारीगरी नहीं है, तथापि है बड़ी सुन्दर। उसका हाता भी एक पार्क ही सा मालूम होता है। कोठी का रोब इससे और बढ़ गया है कि वह एक ऊँचे स्थान पर है और उसके आस पास ढाल बहुत कम है।

पार्क के पश्चिम तरफ़ रोमनकेथलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों का एक बड़ा सुन्दर गिरजा है। इसमें जगह बहुत है और बहुत अच्छा बना है। इसकी नींव १८७१ ई० में रखी गई थी और कुल इमारत में १,५०,००० रु० खर्च हुआ था।

पार्क के उत्तर की ओर म्योर-सेन्ट्रल-कालेज है। इसकी नींव लार्ड नार्थब्रुक ने १८७४ ई० में डाली थी। यह इमारत हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध इमारतों में से है। ८, ९ लाख रुपये के करीब इसमें पहले लगा था। अब कई लाख के खर्च से पदार्थ-विज्ञान में कार्यकारिणी शिक्षा देने के लिए इमारतें बनाई गई हैं। सरकार का विचार है कि क्रमशः यहाँ पर शिक्षकों को शिक्षा देने का विश्वविद्यालय बनाया जाय। गत वर्ष हमारे सर्वप्रिय प्रान्तीय लाट ने सीनेट-हाउस और विश्वविद्यालय-भवन की नींव



रखी थी। ये इमारतें बड़ी शीघ्रता से तैयार हो रही हैं। जिस समय ये तैयार हो जायँगी और कानून की शिक्षा का कालेज और छात्रालय भी बनकर म्योर कालेज में एक पार्क द्वारा सम्मिलित कर दिये जायँगे उस समय यहाँ के विश्वविद्यालय का महत्त्व बहुत बढ़ जायगा।

पार्क के पास ही 'हिन्दू बोर्डिंग हास' (छात्रालय) है जो माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय के परिश्रम का फल है।

म्योर कालेज के पश्चिम की ओर मेयो हाल है। यह लाल पत्थर की इमारत १८७२ ई० में बनी थी। इसके भीतर एक बड़ा भारी कमरा है। एक मीनार १८० फुट ऊँचा है और कई एक कमरे करने लायक छोटे छोटे कमरे हैं। मेयोहाल की भी कारीगरी देखने योग्य है। इसका प्रबन्ध एक कमरे के अधीन है। यह स्थान सार्वजनिक सभाओं आदि के लिए मिल जाया करता है। इसमें लार्ड मेयो की मूर्ति है। इसकी लागत १,८५,०००) रुपया है।

स्टेनले रोड पर 'पश्चिमोत्तर देशीय क्लब' है। यह लाल ईंटों की इमारत है। १८६८ ई० में यह क्लब स्थापित किया गया था। इसके कई सौ सदस्य हैं।

कीन्स रोड के पश्चिम की ओर पायोनियर प्रेस है जो सैकड़ों आदमियों को जीविका देता है। पायोनियर प्रेस की इमारत १८७४ ई० में बनी थी और उसमें ३,४५,०००) रुपया लगे थे।

पायोनियर रोड पर इंडियन प्रेस की भी इमारत देखने योग्य है। यहाँ छापने का भी काम होता है, रंगीन और सादे चित्र भी बनते हैं, और ब्लॉक भी तैयार किये जाते हैं।

हार्ड कोर्ट और बोर्ड आफ् रेविन्यू की इमारतें, जो कीन्स रोड के पूर्व में हैं, १३ लाख के खर्च से बनी थीं।

यहाँ दो पुल हैं। एक यमुना पर; दूसरा गंगा पर। पहलेवाला १८६५ में तैयार हुआ था और दूसरा १९०४ में। यमुना के पुल में ४४,४६,३२३) रु०

लगे थे। इसकी लम्बाई १,११०३ गज है और पार्क की सतह से ऊँचाई १०६ फुट है। इसके ऊपर से ले जाती है और नीचे से गाड़ियाँ और पैदल आदमी

इलाहाबाद में साधुओं और फकीरों के कितने अखाड़े हैं। इनमें से बहुतेरे सधन और ऐश्वर्यवान हैं इनके काम क्या हैं, यह पाठक स्वयं जानते होंगे कुछ के नाम सुन लीजिए।

१—बड़ा पंचायती अखाड़ा (कीटगंज)

२—निर्मली अखाड़ा (पीलीकोठी, कीटगंज)

३—छोटा पंचायती अखाड़ा (मुट्ठीगंज)

४—रामानन्दी अखाड़ा (कीटगंज, बाबा हरी दास की धर्मशाला)

५—महा निर्वाणी अखाड़ा (दारागंज)

६—रामानुजी अखाड़ा (दारागंज)

७—निरञ्जनी अखाड़ा (दारागंज)—इसके पञ्चायती अखाड़ा भी कहते हैं।

८—वैरागी अखाड़ा (दारागंज)

इन अखाड़ों के अतिरिक्त छोटे छोटे और कई अखाड़े हैं। संगम के उस पार एक पहाड़ी जिस पर बहुत काल से साधु और फकीर रहते आते हैं। इसमें गुफायें बनी हैं; प्रत्येक में १५, २० साधु अपने महन्त के साथ रहते हैं। इनका कोई खास अखाड़ा नहीं।

शिक्षा, समाचारपत्र और छापेखाने।

इलाहाबाद इस प्रान्त की शिक्षा का केन्द्र-स्थान है। पदार्थ-विज्ञान की शिक्षा के लिए जो प्रबन्ध यहाँ हैं वह इस प्रान्त में और कहीं नहीं हैं। म्योर कालेज के अतिरिक्त यहाँ एक मिशन-कालेज और एक कायस्थ-पाठशाला है। अध्यापकों को अध्यापकी सिखाने के लिए भी यहाँ एक कालेज है।

यहाँ स्कूल भी कई एक हैं। एक नार्मल स्कूल है जिसमें हिन्दी-उर्दू स्कूलों के अध्यापक तैयार किये जाते हैं। अँगरेजों के लड़कों के लिए भी यहाँ स्कूल हैं।



अंगरेजी, हिन्दी, और उर्दू के कई पत्र यहाँ से निकलते हैं जिनमें मुख्य मुख्य ये हैं—अंगरेजी—दैनिक पायनियर और लीडर; अंगरेजी मासिक—हिन्दुस्तान रिव्यू, हिन्दी—अर्द्धसाप्ताहिक अभ्युदय, हिन्दी मासिक—सरस्वती, स्त्री-दर्पण, मर्यादा । उर्दू मासिक—अदौब । छापेखाने भी यहाँ पर बहुत हैं । उनमें से पायनियर प्रेस, इंडियन प्रेस और बेलवेडियर प्रेस मुख्य हैं ।

### म्यूनीसिपेलिटी ।

इलाहाबाद में १८६३ ई० से म्यूनीसिपेलिटी है । पहले से शहर की बहुत कुछ उन्नति हुई है । उत्तम उत्तम सड़कें, इमारतें, और नालियाँ बन गई हैं । पानी नलों द्वारा तमाम शहर में दौड़ा दिया गया है । लार्ड मिन्टो को जो अभिनन्दनपत्र अभी हाल में दिया गया था उसमें कहा गया था कि म्यूनीसिपेलिटी की आमदनी ५३ लाख और खर्च ५ लाख ३० हजार तक पहुँच गया है ।

### व्यापार ।

इलाहाबाद किसी खास व्यापार या कारीगरी के लिए प्रसिद्ध नहीं है । इलाहाबाद का सम्बन्ध इधर कलकत्ते से और उधर बम्बई से है । इस कारण साधारण व्यापार यहाँ का चला जाता है । प्रायः यहाँ से अनाज, अंडी, सरसों और तिल बाहर जाते हैं । शकर, घी, कपड़ा, धातु इत्यादि बाहर से यहाँ आते हैं । छापेखाने का काम यहाँ बहुत उन्नत दशा में है । सरकारी प्रेस में हजार के ऊपर मनुष्य काम करते हैं । शहर के बाहर ईंट और खपरेल के कई कारखाने हैं । इनसे भी ७००, ८०० मनुष्यों की जीविका चलती है । लोहा गलाने के भी कारखाने यहाँ हैं । कई आटा पीसने की चक्कियाँ भी हैं । एक शकर बनाने का भी कारखाना हाल में खुला है ।

### मिन्टो मेमोरियल पार्क और पिलर ।

इलाहाबाद में 'मिन्टो मेमोरियल पार्क और पिलर' बन रहा है । इससे इस शहर का गौरव अधिक

बढ़ जायगा । हाल ही में चलते समय लार्ड मिन्टो ने कृपा करके इसकी नींव रखी है । आशा है कि यह शीघ्र ही तैयार हो जायगा । यह पार्क और पिलर उस स्थान पर बनाये जायेंगे जहाँ से चिरसंणीय स्वर्गवासिनी महारानी विक्टोरिया का सुविख्यात घोषणापत्र ( Proclamation ) ग़दर के बाद देशीय राजों और प्रजा को सुनाया गया था । इस घोषणापत्र को भारतवासी बड़े मान की दृष्टि से देखते हैं और अपने राजनैतिक हकों का आधार समझते हैं । इस पिलर, अर्थात् स्तम्भ, पर इस घोषणापत्र की नक़ल खुदी रहेगी ।

सरयूनारायण त्रिपाठी ।

### पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र



पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र अब इस लोक में नहीं हैं । गत नवम्बर में आप इस संसार से तिरोहित हो गये । हिन्दी के आप पुराने लेखकों में थे । बड़े मधुरभाषी,

बड़े मिलनसार, बड़े शिष्टाचार-परायण थे । हँस-मुख और विनोदशील भी आप बड़े थे । कई दफ़े हमें आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ । हर दफ़े जी यही चाहता था कि इनके पास बैठे ही रहें । इनसे बातचीत करने में बड़ा आनन्द आता था । कलकत्ते के हिन्दी-प्रेमियों ने आप की यादगार बनी रखने के लिए कोई काम करना विचारा है । इसके लिए एक कमिटी भी बन चुकी है । यह बड़ी अच्छी बात है । हिन्दी-कोविद-रत्नमाला से आपका संक्षिप्त चरित नीचे दिया जाता है :—

“काश्मीर की राजधानी जंबू से बीस कोस पर जामवंत की बेटी जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्णजी के पुत्र शांब का बसाया हुआ साँवाँ नगर है । यही साँवाँ नगर पण्डित दुर्गाप्रसादजी की जन्मभूमि



है। आप सूर्यवंश के आदि-पुरोहित वशिष्ठ-ऋषि-कुलोत्पन्न सारस्वत ब्राह्मण हैं। इनकी वंश-परम्परा-उपाधि “राज्योपाध्याय” है; परन्तु पंजाब में ब्राह्मण मात्र को “मिश्र” कहते हैं। इसीसे इनके नाम के आगे यह उपाधि लगी हुई है। इनके पिता का नाम पंडित घसीटेराम मिश्र था।

पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र का जन्म आश्विन संवत् १९१६ की शारदीय नवदुर्गाओं में नवमी बुधवार को हुआ था। इसीसे आपका नाम दुर्गाप्रसाद रक्खा गया। पितामह आपके संस्कृत के अच्छे विद्वान् और कर्मकांड में परम प्रवीण पंडित थे। वे सपरिवार जगदीश के दर्शन करने गये। वहाँ से लौटकर आते समय कलकत्ता निवासी पंजाबी खत्रियों ने इनसे कलकत्ते में ही प्रवास करने का अनुरोध किया। इसलिए ये भी वहीं रहने लगे। इनके तीन पुत्र थे और वे तीनों सौदागरों की बड़ी बड़ी कोठियों में दलाली का काम करने लगे।

पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र ने बाल्यावस्था में डोगरी हिन्दी और बँगला-भाषाओं का घर पर ही अभ्यास किया और फिर काशी में आकर संस्कृत पढ़ी। इसके बाद फिर कलकत्ते चले गये और नार्मल-स्कूल में अँगरेज़ी का अभ्यास करने लगे। अँगरेज़ी में कुछ पढ़ने लिखने का ज्ञान प्राप्त करके इन्होंने स्कूल छोड़ दिया और अपने बड़ों की प्रेरणानुसार दलाली का काम करने लगे। इस काम को इन्होंने कुशलता से किया और अपनी आय भी अच्छी बढ़ाई, पर चित्त की प्रवृत्ति इस ओर न होने से इन्होंने इस काम को शीघ्र ही छोड़ दिया। छात्रावस्था में दुर्गा-प्रसादजी बँगला के समाचारपत्र बड़े प्रेम से पढ़ा करते थे और उस समय उनके चित्त में यह विचार उठता था कि यदि ऐसे ही पत्र हिन्दी में निकले तो अच्छा हो। सौभाग्यवश उसी समय काशी से कविवचनसुधा नाम का पत्र प्रकाशित होने लगा और ये उसके संवाददाता बने। इसके अनंतर पटने से बिहारबन्धु का जन्म हुआ। इसके भी ये सहायक रहे। अब दलाली का काम छोड़ कर ता० १७ मई

१८७८ को आपने हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक “भारतमित्र” को प्रकाशित करना आरंभ किया। परन्तु ग्राहकों के समय पर चंदा न देने से आर्थिक त्रुटि के कारण इस पत्र का भार “भारतमित्र-समाज” को दे दिया।

इसके कुछ दिनों पीछे स्वर्गीय पंडित सदाशिव मिश्र के अनुरोध से इन्होंने “सारसुधानिधि” नाम का एक पत्र निकाला। एक साल चल कर जब भी बंद हो गया तब सन् १८८० में केवल अपने बाल बल के आश्रय पर “उचितवक्ता” पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया। उचितवक्ता ने हिन्दी-सृष्टि में एक नया कर्तब कर दिखलाया। इस पत्र में राजनैतिक विषयों पर पंडितजी के हँसी-दिल्ली लेख सर्वप्रिय और प्रभाव-जनक होते थे।

जंबू-नरेश महाराज रणवीरसिंह पंडितजी विशेष प्रेम रखते थे। उन्होंने जंबू से “जंबूप्रकाश” पत्र चलाने की इच्छा से पंडितजी को बुलाया। परन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण यह न हो सका तब ये फिर कलकत्ते चले आये और उचितवक्ता चलाते रहे। महाराज रणवीरसिंह का स्वर्गवास हो जाने के कारण वर्तमान जंबू-नरेश ने इन्हें बुलाया और शिक्षा-विभाग के सर्वोच्च पद पर नियत किया। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद राज्यप्रबंध में कुछ गड़बड़ देख कर इन्होंने वहाँ रहना उचित न समझा और इस्तीफा देकर वहाँ से चले आये। इन्होंने स्वर्गीय बाबू भूदेव मुखोपाध्याय के अनुरोध से विहार प्रान्त के लिए हिन्दी में कुछ पाठ्य पुस्तकें भी लिखी थीं कि अब तक विहार के स्कूलों में प्रचलित हैं।

जंबू राज्य से पीड़ित एक स्वदेशीय पुरुष कहने से इन्होंने उचितवक्ता में जंबू राज्य के रहस्य को प्रकाशित करना आरंभ किया; परन्तु इससे जंबू की शासन-प्रणाली पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा तब इन्होंने देशवासियों के एक दल के सहित उस समय हिन्दुस्तान में आये हुए पार्ल्यामेंट के मैम्बर मिस्टर ब्रैडला से मुलाकात की और अपने देश



## सरस्वती



पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।



संख्य  
सिये  
नकी  
ती बा  
ो दिन  
गप्तानि  
न्द है  
अ  
वू  
पना  
प  
स्तके  
अ  
गार  
के जन्  
म  
ना जे  
गहों  
कृछ  
मृत्यु



सियों का दुःख सुनाया । उन्होंने विलायत जाकर नकी बड़ी तारीफ़ की और पार्लियामेंट में जंबूराज्य की बातें पेश करके उनका सुधार करवाया । थोड़े दिनों में हुए इन्होंने “मारवाड़ीबन्धु” नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला था पर वह भी आज कल बन्द है ।

अमृतबाज़ारपत्रिका के प्रवर्तक राजनीति-कुशल भावू शिशिर-कुमार घोष को पण्डित दुर्गाप्रसाद अपना राजनैतिक गुरु मानते थे ।

पण्डितजी ने हिन्दी में छोटी बड़ी कुल २०, २२ स्तकों लिखी हैं ।

आप बड़े साधारण स्वभाव के मिलनसार और हँसमुख मनुष्य थे और बँगाल में हिन्दी-पत्रों के जन्मदाता और प्रचारकों में थे ।

मालूम नहीं, पण्डितजी महाराजा रणवीरसिंह का जो चरित लिखते थे वह समाप्त हुआ या नहीं । कई एक कुटुम्बीय आपत्तियों के कारण कुछ दिन से आप विरक्त हो गये थे । आप की मृत्यु संग्रहणी रोग से हुई ।

## अन्योक्ति-सप्तक ।

• (सानुवाद)

भ्रमर

१—ये वर्द्धिताः करिकपोलमदेन भृङ्गाः,

प्रोत्फुलपङ्कजरजःसुरभीकृताङ्गाः ।

ते साम्प्रतं प्रतिदिनं क्षपयन्ति कालं,

निम्बेषु चाऽर्ककुसुमेषु च दैवयोगात् ॥

✽

जो पुष्ट मत्त-गज के मद से बने थे,

उत्फुल-कञ्ज-रज में रहते सने थे ।

हा हन्त !! दैव-वश वे अलि आज रोते,

हैं निम्ब-आक-कुसुमों पर काल खोते !

काक

२—कृष्णं वपुर्वहतु चुम्बतु सत्फलानि,

रम्येषु संवसतु चूतवनान्तरेषु ।

पुंस्कोकिलस्य चरितानि करोतु कामं,

काकः कलध्वनिविधौ स तु काक एव ॥

✽

है श्यामवर्ण रखता, फल मिष्ट खाता,

त्यों रम्य आम्रवन में बस मोद पाता ।

यों नित्य काक चलता पिक-तुल्यचाल,

पै काक ही निकलता कल-गान-काल !

मेघ

३—एतेषु हा ! तरुणमारुतधूयमान—

दावानलैः कवलितेषु महीरुहेषु ।

अम्भो न चेज्जलद ! मुञ्चसि मा विमुञ्च.

वज्रं पुनः क्षिपसि निर्दय ! कस्य हेतोः ?

✽

हैं वृक्ष ये विकल घोर विपत्ति मारे—

दावाग्नि-ग्रस्त प्रबलानिल-व्यस्त सारे ।

देता न जो जल, न दे, घन ! क्या उपाय ?

क्यों मारता कुलिश निर्दय ! हाय हाय !!!

चक्रवाक

४—अस्तंगतोऽयमरविन्दवनैकबन्धु—

भास्वान्न लङ्घयति कोऽपि विधिप्रणीतम् ।

हे चक्र ! धैर्यमवलम्ब्य विमुञ्च शोकं,

धीरास्तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः ॥

✽

अम्भोज-बन्धु यह अस्त हुआ दिनेश,

उलझ कौन सकता विधि का निदेश ?

हे कोक ! धैर्य धर, हो मत शोक-लीन,

हैं धीर ही विपद को तरते, न दीन ॥



## गज

१—केलिं कुरुष्व परिमुङ्क्ष्व सरोरुहाणि,  
गाह्रस्व शैलतटनिर्भरिणीपयांसि ।  
भावानुरक्तकरिणीकरलालिताङ्ग,  
मातङ्ग ! मुञ्च मृगराजरणाभिलाषम् ॥

✽

क्रीड़ा करो करि ! सरोज यथेष्ट खाओ,  
शैलेन्द्र-तीर-सरिता-जल में नहाओ ।  
प्रेमानुरक्त करिणीयुत मोद पाओ,  
इच्छा मृगेन्द्र-रण की मन में न लाओ ।

## समुद्र

६—स्वस्त्यस्तु विद्रुमवनाय नमो भणिभ्यः,  
कल्याणिनी भवतु मौक्तिकशुक्तिमाला ।  
प्राप्तं मया सकलमेव फलं पयोधे,  
यद्द्वारणैर्जलचरैर्न विदारितोऽस्मि ॥

✽

स्वस्ति प्रवाल-वन को, धन को प्रणाम,  
मुक्तादि रत्न शुभकारक हों ललाम ।  
पाये पयोधि ! हमने फल हैं अनन्त,  
जो घोर-वारिचर-भक्ष्य हुए न हन्त !

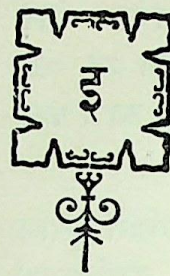
## कस्तूरीमृग

७—कस्तूरिकां हरिण ! मुञ्च वनोपकण्ठे,  
मा सौरभेण ककुभः सुरभीकुरुष्व ।  
आस्तां यशो ननु किरातशराभिघातात्,  
लातापि हन्त ! भविता भवतो दुरापः ॥

✽

कस्तूरिका-मृग ! अरण्य तजो तुरन्त,  
देखो सुगन्धित करो न सखे ! दिगन्त ।  
है कीर्त्ति तो अलग, घातक-तीव्र-बाण  
से त्राण भी कठिन है, भग, रक्ष प्राण ॥  
मैथिलीशरण गुप्त ।

## प्रदर्शिनी से लाभ ।



लाहाबाद में इस समय एक बहुत प्रदर्शिनी हो रही है । अतएव प्रदर्शिनी से क्या लाभ होते हैं, विषय पर कुछ लिखना अनुचित न होगा ।

इस भूमण्डल में अनेकानेक से विभूषित बहुत से पदार्थ भरे पड़े हैं । उनमें कुछ प्रकृति से उत्पन्न हैं और कुछ मनुष्यों के निर्माण किये हुए हैं । कितने ही पदार्थों के नाम तो लोगों ने अवश्य सुने हैं, और आपस की बात-में भी अकसर उनकी चर्चा किया करते हैं, उनके प्रत्यक्षदर्शन का सौभाग्य बहुत ही कम को होता है । क्या हम लोगों की इच्छा उन चीजों को देखने की नहीं होती ? यदि कहीं सुअवसर प्राप्त हो जहाँ वे सारी चीजें एकत्र मिलें, क्या हम उनको देखने के लिए उत्सुक न होंगे ? केवल यही होगा कि अवश्य होंगे । जब हम देश की दुरवस्था और विदेशियों की समृद्धि को हैं तब अनायास ही हृदय में यह प्रश्न उठ खड़ा है कि इस अन्तर का कारण क्या है ? क्या व्यापार, क्या कृषिकर्म में, क्या विद्या में, क्या व्यापार में, कलाकौशल में, क्यों हम लोग पीछे पड़े हैं । बात है कि हम अध्येसायशील नहीं । हम में शिक्षा ही कम है । व्यापार करना हम नहीं जानते । कौशल से हम लोग प्रायः अनभिज्ञ हैं । ५००० वर्ष पहले हम जैसे थे वैसे ही हम अब तक हुए हैं—हमारे पास धन की विशेष कमी नहीं है, है उससे लाभ उठाने के ढंग से अभिज्ञता की । अपने देश के धन से हम किस प्रकार उठा सकते हैं, इस बात का जानना सबको है । प्रदर्शिनियाँ इसी लिए की जाती हैं । प्रदर्शिनी से यदि आर्थिक लाभ न उठाया उस का करनाही व्यर्थ है । प्रदर्शिनी “एकत्र हुई बहुत सी वस्तुओं के समूह के



को" । प्रदर्शनी तभी हो सकती है जब बड़े और छोटे सभी लोग एकता और प्रेमपूर्वक अपने अपने प्रयोजनीय पदार्थों का एक स्थान में संग्रह करके हर खास व आम को देखने का मौका दें । प्रदर्शनी में जाकर जो जो वस्तु हम नई देखेंगे और अपने लाभ के अनुकूल पावेंगे उसको मँगाने और उससे लाभ उठाने को हमारा चित्त जरूर धरेगा । उस अभीष्ट पदार्थ के प्राप्त होने से हमारे मन में भी, जो हमें लाभ उठाते देखेंगे, उस वस्तु को मँगाना कर उससे लाभ उठावेंगे । इसी प्रकार कुछ समय में हम सब लोग अपने धन का सदुपयोग करने लगेंगे ।

हमारे देश के अधिकांश निवासी खेती ही से अपना जीवन पालन करते हैं ; खेती से विशेष लाभ नहीं होता । सरकारी और जमींदारी मालगुजारी देने के बाद मुश्किल से काश्तकारों के पास इतना अनाज बचता है जिससे वे अपनी गृहस्थी सुखेंगे ? पूर्वक चला सकें । इसका कारण क्या है ? कारण हम अभी पुराना ढर्रा है ? हम लोग जैसा हल अपने को देवाप-दादों को काम में लाते देखते थे वैसाही अब बड़ा बड़ा काम में लाते चले जाते हैं । एक ईंच भी उसमें फेरफार नहीं किया । जैसा कोल्हू ५०० वर्ष पहले था वैसाही अब भी बना हुआ है । कहीं भी कुछ उन्नति नहीं । प्रदर्शनी में जाने से हमें नये प्रकार के कोल्हू, नये प्रकार की कलें और सैकड़ों तरह के हल देखने को मिलेंगे । उनसे हमें लाभ उठाना चाहिए ।

प्रदर्शनियों का मुख्य उद्देश कलाओं और उद्यमों की उन्नति करना है । इसलिए नाना प्रकार की कलें वहाँ दिखाई जाती हैं और जो चीजें जिस तरह उनसे तैयार की जाती हैं वह सब भी दिखाया जाता है । देश और विदेश से अनन्त पदार्थ प्रदर्शनी में आते हैं । हमारे इस विशाल भारतवर्ष में कहीं कहीं क्या क्या पदार्थ बनते और बिकते हैं, यह बात प्रदर्शनी में जाने से तत्काल मालूम हो सकती है । विदेशी वस्तुओं के उत्पत्ति-स्थान आदि का भी ज्ञान

वहाँ जाने से होता है । संसार में ऐसी सैकड़ों चीजें हैं जो हमारे बड़े ही काम की हैं । उन्हें देखने से हम बहुदर्शी और विशेषज्ञ हो सकते हैं ।

इस देश में कपड़ा भी बनता है और उसका व्यापार भी होता है । इस समय कपड़े का कारोबार करनेवाली कम्पनियाँ कायम हो गई हैं । उनके बनाये हुए कपड़े प्रदर्शनी में दिखलाये जाते हैं और वे किस प्रकार बनाये, कलों पर से उतारे और रखे जाते हैं सो भी दिखाया जाता है । इन सब बातों को देखने से यह समझ में आजाता है कि किस कठिनता से जुलाहे कपड़े बनाते हैं और कितनी सरलता से कलें । अतः यदि कम्पनियाँ खड़ी कर के कलों के द्वारा कपड़े बनाये जायँ तो कितना लाभ हो । देशी व्यापार को उन्नत करने के लिए प्रदर्शनी से बढ़ कर सुगमतर उपाय और कोई नहीं है । प्रदर्शनी में जाकर हम यह मालूम कर सकते हैं कि कितनी पूँजी लगाकर हम कितना लाभ उठा सकते हैं और कहाँ कहाँ से क्या क्या चीजें हमको अपने व्यापार की वृद्धि के लिए सस्ते दामों पर मिल सकती हैं ।

बहुत लोग कन्याओं को विद्या पढ़ाने और कला-शिक्षण देने के विरोधी हैं । परन्तु जब वे प्रदर्शनी में जाकर छोटी छोटी बालिकाओं और स्त्रियों के बनाये हुए चित्र विचित्र पदार्थों का निरीक्षण करेंगे तब भी क्या उनके हृदय में यह न आवेगा कि कन्याओं को भी शिक्षित करना चाहिए और उनको भी उत्तम उत्तम कलाओं का ज्ञान प्राप्त कराना चाहिए ? इस प्रकार सब लाभों का लाभ और सब उन्नतियों का मूल स्त्रीशिक्षण का बड़ा विस्तृत और अचल प्रभाव दर्शकों के हृदय पर पड़ेगा ।

पूर्वकाल में हमारे देशवासी किस प्रकार के हथियारों को काम में लाते थे, यह भी प्रदर्शनी में दिखलाया जायगा । वर्तमान समय के भी अस्त्रशस्त्र देखने को मिलेंगे । यह कुछ कम लाभ की बात नहीं । इससे और कुछ न सही तो मनोरञ्जन तो



जरूरही होगा। इसके सिवा भारत की प्राचीन कारीगरी और कलाकौशल के जो नमूने वहाँ देखने को मिलेंगे उनसे किसी भी भारतवासी के हृदय पर असर पड़े बिना न रहेगा। और नहीं तो भारत के प्राचीन वैभव, गौरव और ऐश्वर्य का थोड़ा बहुत अन्दाज़ तो जरूर ही होगा।

हम लोग पूर्वकाल के विमानों की बातें सुनते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष आँखों से उन्हें नहीं देखा। प्रदर्शिनी में उड़ता हुआ विमान भी दिखाया जायगा, जिससे यह साबित होगा कि संसार में विज्ञान ने कितनी तरक्की की है और जिस बात को लोग असम्भव कहा करते हैं वह बुद्धि से सम्भव हो सकती है।

पहलवानों के मल्ल-युद्ध देखकर ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षा का माहात्म्य भी हमें प्रत्यक्ष देखने को मिलेगा।

वन-वस्तुओं को देखकर हम जान सकेंगे कि भारत में किस किस प्रकार के वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उनके क्या क्या गुण हैं और उनसे कितना लाभ उठाया जा सकता है। रेशम किस प्रकार के कीड़े से बनता है, वह कैसे तैयार किया जाता है, और क्यों कर उससे कपड़ा बनाया जाता है—यह भी देखने को मिलेगा। करोड़ों प्रकार की छोटी बड़ी कारीगरी के नमूने प्रदर्शिनी में देखकर कौन ऐसा मन्दबुद्धि और हतभाग्य होगा जो अपने देश की उन्नति के लिए मिनट दो मिनट सोच विचार में न पड़ जाय। प्रदर्शिनी में जाने से हम अपने देश और विदेश की वस्तुओं की परस्पर तुलना कर सकेंगे और उनके गुण-दोषों को विचार सकेंगे। प्रदर्शिनी में आई हुई वस्तुओं को देख कर और उनके बनाने की विधि जान कर हम अपनी उन्नति का रास्ता ढूँढ़ सकेंगे। अब हमारे देश में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है और नौकरी मिलना कठिन हो रहा है। अतः यदि पढ़े-लिखे लोग प्रदर्शिनी में जाकर अपने योग्य कोई व्यापार करना निश्चित कर लेंगे तो उनको किसी और का द्वार भाँकना और किसी और का मुँह ताकना न

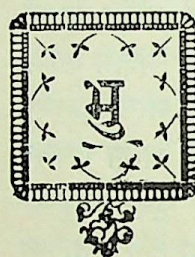
पड़ेगा। प्रदर्शिनी में जाकर हम अपनी बुद्धि की धार छूरे से भी अधिक तेज़ कर सकते हैं। पर, हाँ, वहाँ की हर एक वस्तु पर विचारपूर्वक ध्यान देना होगा और वहाँ से लौट कर अपनी योग्यता के अनुसार कोई काम भी करना होगा। क्योंकि—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

जनार्दन मिश्र ।

## हेग का राष्ट्रीय न्यायालय ।



जबल की अपेक्षा ज्ञानबल का माहात्म्य अधिक है। मनुष्य जैसे जैसे सज्ञान होता जाता है तैसे तैसे ज्ञानबल का महत्त्व अधिक उसकी समझ में आता जाता है। जैसे जैसे ज्ञान बढ़ता

है तैसेही तैसे बल की महत्ता कम होती जाती है। छोटे छोटे लड़के थोड़ी थोड़ी बात के लिए भारपीट करने पर उतारू हो जाते हैं; परन्तु समझदार आदमी बड़े बड़े कामों से सम्बन्ध रखनेवाले भगड़े भी युक्तिपूर्ण बातों, संभाषणों और तर्कनाओं से शान्ततापूर्वक निपटा लेते हैं। संसार का इतिहास देखने से मालूम होता है कि असभ्य जंगली आदमियों में थोड़ी भी सारासार-विचार-बुद्धि आतेही वे अपने आपस के भगड़े पंचायत के द्वारा तै करने लगते हैं। यही पंचायतें धीरे धीरे अधिक प्रशस्त होकर मुंसिफ, सदरआला, जज, सेशन जज और हाई कोर्ट के न्यायालयों का रूप धारण करती हैं। इन सब कोर्टों में ज्ञानबलही का प्राधान्य है। यही हाल देशों किंवा बड़े बड़े राज्यों का है। अन्तर सिर्फ इतनाही है कि राष्ट्रों से सम्बन्ध-रखनेवाले विवादास्पद विषय विशेष महत्त्व के होते हैं। साधारण मनुष्यों के भगड़ों की अपेक्षा राज्यों, देशों, अथवा बादशाहों के भगड़ों का रूप अधिक विशाल होता



है। जैसे अनेक व्यावहारिक बातों में लोग आपस में भगड़ा करते हैं वैसेही राजों के बीच भी आपस में कभी कभी भगड़ा उठ खड़ा होता है। ये भगड़े यदा कदा बड़ाही विकराल रूप धारण करते हैं। यहाँ तक कि इनके कारण बड़े बड़े युद्ध हो जाते हैं और हजारों मनुष्यों के रक्त की नदियाँ बह निकलती हैं। इन युद्धों की तैयारी के लिए करोड़ों रुपये खर्च करना पड़ते हैं। अकेले १९०९ ईसवी में, सेना और लड़ाकू जहाजों के लिए, इंग्लैंड ने ७,००,००,००० पाँड, जर्मनी ने ५,८०,००,००० पाँड और अमेरिका ने १७,००,००० पाँड खर्च किया। एक पाँड १५ रुपये का होता है, यह पाँठक जानते ही होंगे। यही रुपया यदि विद्या या विज्ञान की वृद्धि के लिए खर्च किया जाता तो कितना लाभ होता! सज्जन मनुष्य को ऐसे कामों के लिए इतना रुपया फूँक तापना शोभा नहीं देता। इस प्रकार रुपये का उड़ाया जाना देश की अभिवृद्धि के लिए बहुतही विघ्नकारक है। यह देख कर योरप के विद्वान्, विचारशील और दयालु लोगों ने यह सोचा कि इस प्रकार के अत्याचार की रीति बन्द करके देश देश में शान्तिवर्द्धक सभायें स्थापित करनी चाहिए। उनके अधिवेशन कराना चाहिए, उनके सभासदों के द्वारा व्याख्यान दिलवाना चाहिए और राजदण्डधारी पुरुषों का चित्त इस विषय की ओर आकृष्ट करना चाहिए।

इस तरह लन्दन, बर्न, हेग, ब्रुसल्स, बुडापेस्ट, क्रिश्चियानिया, वीना इत्यादि नगरों में इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली बातों पर खूब विचार किया गया। प्रसंगोपात्त गिरिजाघरों में भी इसी विषय के उपदेश होने लगे। इस उद्योग का यथारीति आरम्भ जर्मनी, फ्रांस, इटली, रूस, आस्ट्रिया-हंगरी, जापान, ग्रेट ब्रिटन और अमेरिका की स्वतंत्र रियासतों के राज्याधिकारी पुरुषों ने किया। इन आठों देशों को कुछ दिनों में यह मालूम हुआ कि इस काम को सुव्यस्थित रीति पर करने के लिए एक अच्छा दफ्तर चाहिए। इस पर वर्तमान समय के जगत्सेठ आँड्रू कारनेगी साहब ने ढाई लाख रुपये दिये।

इस धन से हालैंड देश के हेग नामक नगर में एक आलीशान इमारत तैयार की गई। उसका नाम रक्खा गया शान्तिनिवास।

इस समय इस भूमण्डल में जितने राष्ट्र या राज्य हैं उनमें से ३५ को इस शान्तिभवन के न्यायालय की स्थापना पसन्द हुई। उन्होंने इस न्यायालय से अपने पारस्परिक भगड़े निबटाना स्वीकार किया। इन ३५ राज्यों की खानाशुमारी १,२८,५२,७२,००० है। ५० राज्यों ने इस न्यायालय की दी हुई व्यवस्था मानना स्वीकार न किया। इन ५० की खानाशुमारी १६,७४,३६,००० है। अवशिष्ट चार राज्यों ने चुप्पी साधी; न हाँ कहा, न नहीं। इनकी खानाशुमारी ५५,६२,००० है। इस प्रकार का मतभेद होना स्वाभाविक है। क्योंकि इस न्यायालय की व्यवस्थाओं को मानने के लिए राज्यों को अपनेही वचनों से अपने को बद्ध करना पड़ता है। तथापि इसमें सबके सुभीते की एक बात रक्खी गई है। वह बात यह है कि कोई ऐसा नियम नहीं रक्खा गया कि भिन्न भिन्न राज्यों में आपस में जो सन्धिपत्र या दस्तावेज लिखे गये हैं उन सबके सम्बन्ध के विवादों का न्याय इस न्यायालय से करानाहीं चाहिए। जिन सन्धिपत्रों और इकरारनामों से सम्बन्ध रखनेवाले विवादों का फ़ैसला भिन्न भिन्न राज्यों ने इस शान्तिनिवास के न्यायाधीशों से कराने का निश्चय किया उनकी एक नामावली बना दी गई। इनके सिवा अन्य दस्तावेजों के विवादों का निर्णय इस न्यायालय से कराने के लिए कोई राज्य विवश नहीं किया जा सकता। मतलब यह कि जिस बात का निर्णय तुम खुशी से कराना चाहो कराओ, जिसका न कराना चाहो न कराओ। परन्तु, हाँ, पहले से बतला दो कि किस किस विषय में तुम इसके फ़ैसले को मानना चाहते हो, जिसमें पीछे से कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो सके। इस नियम के अनुसार जिन राज्यों ने जितने सन्धिपत्रों के सम्बन्ध के भगड़ों का फ़ैसला इस न्यायालय से कराना मंजूर किया है उनकी संख्या इस प्रकार है:—



इंग्लैंड	१२	इटली	९
पोर्चुगल	१०	नार्वे	९
स्विजरलैंड	१०	बेलजियम	८
स्पेन	९	डेनमार्क	८
फ्रांस	९	स्विडन	८
अमेरिका की संयुक्त रियासतें	७	जर्मनी	१
हालैंड	४	ब्रेजील	१
रूस	४	ग्रीस	१
आष्ट्रिया-हंगरी	३	हंडुरास	१
आर्जेन्टाइन	२	पेरू	१
मेक्सिको	२	रोमानिया	१

इन सन्धिपत्रों के सम्बन्ध में जो विवाद उपस्थित होते हैं उनका निर्णय कराने के लिए तत्सम्बन्धी राज्य अपने अपने पक्ष के प्रमाण इस न्यायालय के न्यायाधीशों के सामने पेश करते हैं। परन्तु इसके पहले किसी तटस्थ और बड़े राज्य को विवादास्पद बातों के विषय की पंचायत करने के लिए तीन पंच चुनना पड़ते हैं। अर्थात् वादी-प्रतिवादी राज्य को नहीं; किन्तु किसी ऐसे राज्य को जिसका प्रस्तुत विवाद से कोई सम्बन्ध न हो उसे ये तीन पंच नियत कराना पड़ते हैं। ये पंच न वादी राज्य के होते हैं, न प्रतिवादी राज्य के। किसी तटस्थ राज्य के होते हैं और ऐसे होते हैं जिनकी न्याय्य बुद्धि पर सबका पूर्ण विश्वास होता है। इन पंचों के दूढ़ने में कठिनता उपस्थित होती है, क्योंकि लोग बहुधा इस पंचायत का काम करना नहीं चाहते। वे समझते हैं कि पंच बनना मानो अपनी न्यायशीलता की परीक्षा देना है। तथापि यह कठिनाई किसी न किसी तरह हल हो ही जाती है। पंच भी मिल जाते हैं और विवादों का निर्णय भी हो जाता है। इस विषय के एक दो उदाहरण देने से बात अच्छी तरह समझ में आजायगी।

१९०२ ईसवी में इस प्रकार की पहली पंचायत हुई। “कैलीफोर्निया पायस फंड” से सम्बन्ध रखने-वाले एक मामले के विषय में अमेरिका की संयुक्त रियासतों और ब्रेजील के मध्य भगड़ा हुआ। यह विवाद इस न्यायालय के सम्मुख आया और उसने

संयुक्त रियासतों के पक्ष में निर्णय किया। उसे दोनों पक्षों ने कबूल किया। युद्ध होना बच गया। दोनों देशों के मध्य उत्पन्न हुआ वैषम्य दूर हो गया।

दूसरा विवाद वेनिज्यूला देश के सम्बन्ध में था। इस देश पर कई राज्यों का कर्ज था। इन राज्यों में ग्रेट ब्रिटन, इटली और जर्मनी भी थे। सब राज्य अपना अपना रुपया माँगने लगे। पर उनमें से पूर्वोक्त तीनों देशों ने बड़ा ही सख्त तकाजा शुरू किया। फल यह हुआ कि लड़ाई की नौबत आने के लक्षण देख पड़ने लगे। मामला इस शान्ति-मन्दिर को भेजा गया। फ़ैसला इस बात का माँगा गया कि वेनिज्यूला पर कई देशों का कर्ज है। सब तकाजा कर रहे हैं। पूर्वोक्त तीनों देश भिड़ने पर तैयार हैं। इस कारण से क्या यह न्याय्य होगा कि औरों का रुपया न देकर पहले इन्हीं तीनों का रुपया दे डाला जाय? मालूम नहीं इस मामले का क्या फ़ैसला हुआ। ज़रूर सब पक्षों के अनुकूल हुआ होगा। अन्यथा इस विषय की कोई विपरीत घटना ज़रूर ही संघटित होती।

न्यूफ़ाउंडलैंड में मछली का शिकार करने के सम्बन्ध में इंग्लैंड और अमेरिका को कुछ हक मिले हैं। उनके सम्बन्ध में अभी, कुछ ही समय हुआ, जो विवाद हुआ उसका भी फ़ैसला इसी न्यायालय ने किया है और उसे दोनों देशों ने सिर झुका कर मान लिया है। इस मामले का फ़ैसला करने के लिए जो पंच नियत किये गये थे उनमें डाकूर लामास्क सरपंच थे। ये आस्ट्रिया के रहने-वाले हैं, और बड़े विद्वान हैं। इंग्लैंड के पक्ष के एक विद्वान और बहुश्रुत वकील ने उनके विषय में लिखा है :—“इनमें आबालवृद्ध सबकी अत्यन्त पूज्य बुद्धि है। ये उत्तम अंगरेज़ी बोल सकते हैं। इसके सिवा लैटिन, फ़्रेंच और स्पैनिश भाषाएँ भी ये अच्छी तरह जानते हैं। जान पड़ता है कि सब देशों के क़ानून का इन्हें अच्छा ज्ञान है। न्याय का काम करने में इस ज्ञान का इन्हें बहुत उपयोग होता है। प्रतिष्ठा-पात्रता की ये प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। इनका



भाषण शान्त भाव से परिपूर्ण रहता है। प्रकृत विषय को छोड़ कर ये कभी एक शब्द नहीं बोलते। ये अत्युत्तम न्यायाधीश हैं। इस कारण, सब इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं”।

इन बातों से इस न्यायालय की महत्ता की थोड़ी बहुत कल्पना करने में पाठकों को कुछ सहायता जरूर मिलेगी। ये सब बातें यहाँ पर लिखने का असल मतलब यह है कि विनायक दामोदर सावरकर का मुकदमा इसी न्यायालय के न्यायाधीशों के सामने पेश होगा। सावरकर इंग्लैंड में पकड़े गये। एक जहाज में बिठा कर उन्हें इस देश को भेजने का प्रबन्ध हुआ। पुलिस के अफसर निगरानी के लिए साथ चले। जहाज मारसेलिस बन्दर में पहुँचा। यह स्थान फ्रांस के अधीन है। यहाँ सावरकर एक छेद के भीतर घुस कर जहाज के नीचे समुद्र में कूद पड़े और तैर कर किनारे पहुँच गये। वहाँ से उन्होंने भागने की चेष्टा की; परन्तु पुलिस उन्हें पकड़ कर फिर जहाज में ले आई और हिन्दुस्तान पहुँचा दिया। यह काम फ्रांस और इंग्लैंड के पारस्परिक सन्धिपत्र के अनुकूल हुआ या प्रतिकूल-विवाद इसी बात का है। दोनों देशों ने इस विवाद का निर्णय हेग के शान्ति-निकेतन से चाहा है। आवश्यक कागज़-पत्रों पर दोनों पक्षों के अधिकारियों के दस्तखत हो गये हैं। १५ फरवरी १९११ से इसकी पेशी है। हिन्दुस्तान से सम्बन्ध रखने वाला यह पहला ही मुकदमा हेग के राष्ट्रीय-नायालय में सुना जायगा।

“बालबोध”।

## भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी



अंगरेजी गवर्नमेंट की राजनीति का सबसे कल्याणकारी अङ्ग शिक्षा का प्रचार है। अंगरेजी राज्य से पहले पाठशालाओं और मकतबों द्वारा शिक्षा का प्रचार होता था; पर सर्वसाधारण में वर्तमानकालिक शिक्षा-सम्बन्धिनी जागृति इसी राज्य का फल

है। जब यह राज्य इस देश में स्थापित हुआ तब इस बात पर बहुत विवाद हुआ कि इस देश में प्राचीन रीति के अनुसार संस्कृत और अरबी भाषा में शिक्षा दी जाय अथवा अंगरेजी में। जिस समय इस बात पर विचार हो रहा था लार्ड मैकौले (Lord Macaulay) ने एक बड़ा ही प्रभावशाली लेख लिखा था। अंगरेजी में शिक्षा देने के पक्ष में लिखते हुए आपने यह दिखलाया था कि भारत की देशी भाषाएँ इस योग्य नहीं हैं कि उनके द्वारा उच्च शिक्षा दी जा सके। इस कारण यदि अंगरेजी भाषा के द्वारा शिक्षा देना स्थिर किया जायगा तो अनेक भारतवासी सुशिक्षित हो कर देशी भाषाओं में वैज्ञानिक ग्रन्थ लिख सकेंगे और सर्वसाधारण में शिक्षा के प्रचार में सहायता दे सकेंगे। यह बात १८३५ ईसवी की है।

इसके पीछे ईस्ट इंडिया कम्पनी (East India Company) के संचालकों ने १८५४ ई० में एक आज्ञापत्र, इस देश में शिक्षा के प्रचार के सम्बन्ध में, भारत-गवर्नमेंट के पास भेजा। यह आज्ञापत्र बड़े महत्त्व का है। हमारे देश में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार और विश्वविद्यालयों का स्थापित होना इसी आज्ञा-पत्र का फल है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो विश्वविद्यालय स्थापित हों उनमें अंगरेजी इत्यादि अन्य विषयों के अतिरिक्त देशी भाषाओं के लिए भी अध्यापक नियत किये जायें। इस आज्ञापत्र में यह भी लिखा है कि जो अध्यापक संस्कृत, फ़ारसी और अरबी पढ़ावें वे इस बात पर विचार करें कि इन प्राचीन भाषाओं के व्याकरण का प्रभाव देशी भाषाओं पर कहाँ तक पड़ा है। यह इसलिए कहा गया है जिसमें इस बात के जानने में सुभीता हो कि देशी भाषाएँ किस तरह उन्नत अवस्था को प्राप्त हो सकती हैं। इस आज्ञापत्र में यह भी सलाह दी गई है कि कालिजों के जो विद्यार्थी देशी भाषाओं में विद्वत्ता प्राप्त करें उनको छात्र-वृत्तियाँ दी जायें। ईस्टइंडिया कम्पनी के संचालकों (Directors) के इन आदेशों के अनुसार १८५७ ई० में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित किये



गये। परन्तु पञ्जाब और इलाहाबाद के विश्वविद्यालय १८८२ और १८८७ ई० में क्रमशः स्थापित हुए। इन विश्वविद्यालयों के द्वारा इस देश में अँगरेजी विद्या का अद्भुत प्रचार हुआ। बी० ए० और एम० ए० की उपाधियाँ ( डिग्रियाँ ) स्थापित की गईं और हमारे देश के अनेक विद्वानों ने अँगरेजी के पठन-पाठन में इतनी उन्नति की जिसे देख कर अँगरेज भी चकित हो गये। परन्तु देशी भाषाओं की शिक्षा और उन्नति पर उचित ध्यान किसी विश्व-विद्यालय ने नहीं दिया। यह सत्य है कि उस समय भी, विश्वविद्यालयों के शिक्षा-प्राप्त पुरुष बँगला, मराठी और गुजराती भाषाओं की उन्नति के बहुत कुछ कारण हुए थे; पर वह उन्नति उन पुरुषों की अपनी निज की चेष्टा का फल था, विश्व-विद्यालय की शिक्षा-प्रणाली का नहीं। इसका प्रमाण स्वर्गवासी श्रीरमेशचन्द्र दत्त के जीवन-चरित से मिलता है। ये महानुभाव स्कूल में पढ़ने के समय ही से अँगरेजी भाषा में बड़े चतुर थे और अपनी शिक्षा समाप्त करने के बहुत दिनों पीछे तक इनको कभी ध्यान भी नहीं हुआ कि अपनी भाषा का कुछ उपकार करें। यदि ये श्रीविक्रमचन्द्र चट्टोपाध्याय से न मिलते तो बँगला-साहित्य उन अनेक अपूर्व ग्रन्थों से वंचित रह जाता जो इन्होंने लिखे। तात्पर्य यह कि यद्यपि अँगरेजी-शिक्षा की ज्योति का प्रभाव इनके ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से पाया जाता है, तथापि विक्रम और रमेश को अपनी भाषा में लिखने की प्रेरणा इन विश्वविद्यालयों से नहीं मिली। अस्तु। अनेक वर्षों तक यही अवस्था रही। १८९९ ई० में लार्ड कर्जन की गवर्नमेंट ने विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए एक कमीशन बैठाई। इस कमीशन के सामने प्रायः जितने पुरुष उपस्थित हुए सबने मुक्त कंठ से इस बात को स्वीकार किया कि विश्व-विद्यालयों में देशी भाषाओं पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता और अनेक बी० ए०, एम० ए० उपाधियारी युवक अपनी मातृभाषा के साहित्य से अनभिज्ञ रह जाते हैं। इस कमीशन ने गवर्नमेंट को सलाह दी

कि (१) एम० ए० परीक्षा में देशी भाषायें भी शामिल की जायँ; इन भाषाओं की पढ़ाई इस प्रकार से हो जिसमें विद्यार्थी इनमें पूरे विद्वान् हों और विश्व-विद्यालय का धन ऐसे अध्यापकों को नियत करने में लगाया जाय जो इन भाषाओं को भली प्रकार पढ़ा सकें। (२) बी० ए० में भी देशी भाषाओं में निबन्ध लिखवाये जायँ (३) इस सिद्धान्त पर ध्यान रखा जाय कि अँगरेजी भाषा से जो अनुवाद परीक्षापत्रों के उत्तर में किया जाय वह देशी भाषा के व्याकरण की रीति से शुद्ध हो और (४) साहित्य और विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थों को स्वदेशी भाषा में लिखने के लिए पारितोषिक दिये जायँ। विश्वविद्यालय कमीशन का उद्योग, इस सम्बन्ध में, विलकुल निष्फल नहीं हुआ। मद्रास विश्वविद्यालय ने तमिल, तेलगु, कनाडी और और मलयालम में एम० ए० परीक्षा देने की आज्ञा दी। बी० ए० में भी, अन्य विषयों के साथ, ऊपर लिखी हुई भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू को भी जगह मिली। जो विद्यार्थी इन भाषाओं को पढ़ते हैं उनको प्रत्येक भाषा के साहित्य के इतिहास और भाषा-तत्त्व-सम्बन्धी सिद्धान्तों (Principles of Comparative Philology) का जानना भी आवश्यक है। बम्बई के विश्वविद्यालय में विद्यार्थी मराठी, गुजराती और कनाडी में एम० ए० हो सकते हैं, पर उन्हें अँगरेजी-साहित्य भी साथ ही पढ़ना पड़ता है। कलकत्ता-विश्व-विद्यालय में जो एम० ए० परीक्षा देते हैं उन्हें एक निबन्ध किसी देशी भाषा में भी लिखना पड़ता है। बस, इन तीन विश्व-विद्यालयों के अतिरिक्त अन्य किसी विश्वविद्यालय ने कुछ नहीं किया। इन तीनों ने भी देशी भाषाओं की उन्नति के लिए जितना चाहिए उतना नहीं किया। ये तीन विश्वविद्यालय भी साहित्य और विज्ञान के ग्रन्थों के लिए पारितोषिक नहीं देते।

हिन्दी के अभाग्य से जिन तीन विश्वविद्यालयों ने कुछ किया भी उनमें हिन्दी-भाषा-भाषियों की संख्या अधिक नहीं है। एक तो कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने मद्रास और बम्बई की तरह दिल खोल कर देशी



भाषाओं को स्थान नहीं दिया। तिस पर जो दो एक कालिजों में हिन्दी के अध्यापक नियत किये भी गये वे भी पीछे से हटा दिये गये। विहार-प्रान्त में रहने-वाले प्रायः सभी लोग हिन्दी-भाषा-भाषी हैं। इस सूबे का विस्तार भी इतना अधिक है कि यह एक स्वतन्त्र प्रान्त बन सकता है। इसके विद्यार्थी कलकत्ता-विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ देते हैं। फिर कोई कारण नहीं है कि हिन्दी-साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से कोई प्रबन्ध न हो। पर, खेद विशेष कर इलाहाबाद और पञ्जाब के विश्वविद्यालयों के विषय में है। मद्रास के मुसलमान विद्यार्थियों की मातृ-भाषा यद्यपि उर्दू नहीं है, तथापि वे आतिश, ग़ालिब और नासिख के ग्रन्थ पढ़ कर बी० ए० की परीक्षा पास कर सकते हैं; पर जिन प्रान्तों के मुसलमान वह भाषा बोलते हैं जिनमें इन कवियों ने अपने अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं, उन प्रान्तों के लोग उसमें परीक्षा देने से वंचित रक्खे जाते हैं। इससे बढ़ कर खेद की बात और क्या हो सकती है? आश्चर्य का विषय है कि इन प्रान्तों के मुसलमान सज्जनों का भी ध्यान इस ओर नहीं गया। हिन्दी का तो कुछ पूछना ही नहीं। कोई कोई यह भी कहते हैं कि हिन्दी-साहित्य में ऐसी पुस्तकें ही नहीं जो विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें हो सकें। बम्बई-विश्वविद्यालय में स्वर्ग-वासी रानडे ने जब मराठी और गुजराती को विश्व-विद्यालय में प्रवेश कराने का आन्दोलन किया था तब उनको भी यही उत्तर मिला था। इस पर रानडे महोदय ने अनेक मराठी पुस्तकों की सूची उपस्थित की थी जो विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के लिए पढ़ाई जा सकती थीं। आशा है कि हिन्दी के साहित्य-वेत्ता भी हिन्दी के सम्बन्ध में किये गये इस आक्षेप को निर्मूल सिद्ध करने का सप्रमाण प्रयत्न करेंगे। सूरदास, तुलसीदास, केशव, विहारी के ग्रन्थ बहुत अच्छी तरह से एम० ए० तक की परीक्षा में रक्खे जा सकते हैं। क्या इसमें कोई सन्देह कर सकता है कि हिन्दी-भाषा-भाषी विद्या-

र्थियों के लिए, जो अँगरेजी में एम० ए० की परीक्षा देते हैं, चौसर (Chaucer) कवि की अँगरेजी जानने के बदले चन्द कवि की हिन्दी जानना अधिक लाभ-दायक है? जिन्हें अँगरेजी स्कूलों का कुछ भी अनुभव है वे जानते हैं कि हमारे बालक एक पत्र भी हिन्दी में शुद्ध नहीं लिख सकते। क्लास के क्लास ऐसे मिलते हैं जिनका एक भी विद्यार्थी शुद्ध हिन्दी नहीं लिख सकता। क्या कभी इस बात की आशा की जा सकती है कि ये विद्यार्थी, और इनकी संख्या बहुत है, मातृ-भाषा की सेवा करने में समर्थ होंगे? हिन्दी के विद्वानों का धर्म है कि विश्वविद्यालयों का ध्यान इस ओर दिलायें और उनको बतलायें कि जब से विश्वविद्यालय स्थापित हुए हैं तब से लेकर विश्वविद्यालय-सम्बन्धी कमीशन के समय तक इस बात का आश्वासन दिया गया है कि देशी भाषाओं में भी उच्च शिक्षा दी जाय, परन्तु अब तक इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया। उचित तो यह है कि अँगरेजी स्कूलों में जब से ए० बी० सी० डी० (A. B. C. D.) पढ़ाई जाय तब से बी० ए० तक, किसी न किसी अंश में, देशी भाषा की शिक्षा ज़रूरी समझी जाय। एम० ए० में भी हिन्दी भाषा और साहित्य में परीक्षा होनी चाहिए। यदि कोई विद्यार्थी इस विषय में परीक्षा देना चाहे, जैसा कि मद्रास में तामील इत्यादि भाषाओं के सम्बन्ध में होता है, तो उसे भी परीक्षा पास करने का सुभीता हो जाना चाहिए। हिन्दी और उर्दू में “अपर प्राइमरी” दर्जे से लेकर एम० ए० तक निबन्ध और पत्र लिखाये जायें और अँगरेजी-पाठ्य-पुस्तकों में से जो प्रश्न भावार्थ लिखने के लिए परीक्षा में पूछे जाते हैं उनमें से कुछ प्रश्नों का उत्तर हिन्दी और उर्दू में भी लिखने की आज्ञा दी जाय।

देशी भाषा के साहित्य-भांडार को भरने के लिए इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है कि हमारे अँगरेजी पढ़े लिखे भाई इस ओर ध्यान दें। इतिहास, विज्ञान इत्यादि अनेक विषयों पर अँगरेजी भाषा में सहस्रों पुस्तकें हैं जिनके आधार पर, देश-



काल के अनुसार, अनेक ग्रन्थ हिन्दी में लिखे जा सकते हैं। परन्तु, खेद है, कि हमारी भावी उन्नति के इस सबसे बड़े द्वार की ओर योग्य पुरुषों का अभी ध्यान भी नहीं गया।

रामनारायण मिश्र ।

## सूर्यग्रहण पर अन्योक्ति ।

( १ )

रे रजनीश निरङ्कुश तूने,  
दिननायक का आस किया ।  
नेक न धूप रही धरणी पै,  
घोर तिमिर ने वास किया ॥

( २ )

जिसको पाय चमकता था तू,  
अधम उसी को रोक रहा ।  
धिक पापिष्ठ, कृतघ्न, कलङ्की,  
तेज त्याग तम पास किया ॥

( ३ )

मन्द हुआ सुन्दर मुख तेरा,  
छिटकी छवि तारागण की ।  
अपने आप जाति में अपना,  
क्यों इतना उपहास किया ॥

( ४ )

जुगनू जाग उठे जङ्गल में,  
दिये नगर में जलवाये ।  
मूँद महा महिमा महान की,  
अणु का तुच्छ विकास किया ॥

( ५ )

मङ्गल मान निशाचर सारे,  
चरते और विचरते हैं ।  
दिन को रूप दिया रजनी का,  
देव-समाज उदास किया ॥

( ६ )

उष्ण प्रभा विन वन-पुष्पों से,  
सार सुगन्ध न कढ़ते हैं ।  
रोक चाल नैसर्गिक विधि की,  
दिव्य हवन का हास किया ॥

( ७ )

चकित चकोर चाह के चरे,  
चिनगी चुगते फिरते हैं ।  
मुख, पग, पंख जलानेवाला,  
ज्वलित चन्द्रिका भास किया ॥

( ८ )

श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे,  
सकुचे कङ्ग, कुमोद खिले ।  
जोड़ तोड़ चकई चकवों के,  
खण्डित प्रेम-विलास किया ॥

( ९ )

दिन में चुगने वाली चिड़ियाँ,  
हा ! अब कहीं न उड़ती हैं ।  
सबके उद्यम हरने वाला,  
प्रकट तामसिक त्रास किया ॥

( १० )

नाम सुधाकर है पर तूने,  
विष बरसाना सीखा है ।  
विरहानल को भड़काने का,  
अति उत्तम अभ्यास किया ॥

( ११ )

बढ़ बढ़ कर पूरा होता है,  
घटता घटता छुपता है ।  
यों उन्नति अवनति के द्वारा,  
पक्षभेद प्रति मास किया ॥

( १२ )

छुटने लगी छूत अब तेरी,  
उकसी कोर प्रभाकर की ।  
फिर दिन का दिन हो जावेगा,  
भग क्यों वृथा प्रयास किया ॥



( १३ )

दिव्य उजाला देकर तुझको,  
परसों फिर चमकावेगा—  
कह दे कब सविता स्वामी ने,  
श्रीहत अपना दास किया ॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा ।

## प्रयाग की प्रदर्शिनी ।



याग की प्रदर्शिनी के सम्बन्ध में, हम सरस्वती की गत संख्या में कुछ लिख चुके हैं। हम अपनी प्रतिज्ञा-नुसार इस संख्या में भी प्रदर्शिनी-सम्बन्धी कुछ बातों का वर्णन करते हैं। पर, इस प्रदर्शिनी का कुछ वृत्तान्त लिखने से पहले, हम अपने पाठकों को, संक्षेप से, यह बतलाना चाहते हैं कि संसार में प्रदर्शिनी का प्रचार कबसे हुआ ? पहले पहल प्रदर्शिनी कहाँ खुली ? किसने खोली और किस किस तरह संसार में इसका प्रचार बढ़ा ? और यह भी कि संसार में अब तक कितनी प्रदर्शनियाँ हो चुकीं ? इन सब बातों का संक्षिप्त वर्णन सुनिए। विलायत की सोसाइटी आफ आर्टस् नाम की सभा को प्रदर्शनियों का जन्मदाता कहना चाहिए। उसने सन् १७६१ में पहली प्रदर्शिनी की। खेती की, तथा और और कलों की, नुमाइश उसने अपने दफ्तर में ही की।

तदनन्तर, दूसरी प्रदर्शिनी, सन् १७९८ में, नेपोलियन की आज्ञा से फ्रांस में हुई। आरम्भ में तो प्रदर्शिनी देखने के लिए बहुत कम लोग आये; पर धीरे धीरे लोगों को इसके देखने का चस्का पड़ गया। चस्का क्या पड़ गया उन्हें यह काम बड़ा लाभदायक प्रतीत होने लगा। फिर धीरे धीरे

लोग भी अधिक आने लगे, चीजें खरीजी जाने लगीं और चीजों की संख्या भी बढ़ने लगी।

सन् १८२० में आष्ट्रिया में भी कई प्रदर्शनियाँ हुईं। इसके बाद बहुत बड़ी बड़ी कई जातीय या सार्वदेशिक प्रदर्शनियाँ आष्ट्रिया की राजधानी वीना में हुईं। क्रम क्रम से लोग प्रदर्शिनी के लाभों को समझने लगे। वे खाली समझने ही न लगे, किन्तु बड़े बड़े चतुर कारीगरों ने प्रदर्शित की हुई अनेक अद्भुत अद्भुत चीजों को देख और अपने हाथों से बना बना कर उनका प्रचार किया और बहुत लाभ उठाया। फिर क्या था, जर्मनी, रूस, स्विजरलैंड, वेलजियम, स्पेन, पोर्चुगल और अमेरिका में भी इसका प्रचार हो गया।

सन् १८५१ में, लंदन में, गवर्नमेंट के प्रबन्ध से पहली प्रकाण्ड प्रदर्शिनी हुई। उसमें संसार के सारे सभ्य देशों की कारीगरी और कला का प्रदर्शन हुआ। इसकी आमदनी से, खर्च वसूल करने के बाद, २ लाख १३ हजार ३०५ पौंड का लाभ हुआ।

१८५५ में फ्रांस के राजा ने भी इसी तरह की एक प्रदर्शिनी खोली। १८६२ में अंगरेजों ने लंदन में फिर दूसरी सार्वदेशिक प्रदर्शिनी की। इसके अनन्तर १८६७ में फिर एक प्रदर्शिनी पेरिस में हुई। १८७३ में वीना में हुई और १८७६ में अमेरिका के फिलाडेल्फिया में हुई। इनके अनन्तर जो हुई उनका हाल नहीं तो नामलेख कितने ही पाठकों ने सुना होगा। जापान, देहली और इंग्लैंड में बहुत बड़ी बड़ी प्रदर्शनियाँ, जो अभी हाल में हुई हैं, उनके वर्णन तो अखबारों में सिलसिलेवार निकल ही चुके हैं।

इनके सिवा छोटी छोटी प्रदर्शनियाँ आज तक जो संसार में हो चुकी हैं उनकी संख्या तो १०० से भी अधिक पहुँच चुकी है।

भारतवर्ष में भी कई बड़ी बड़ी प्रदर्शनियाँ हो चुकी हैं। अभी गत वर्ष में लाहोर में जो प्रदर्शिनी हुई भी उसका वृत्तान्त पाठक सुन ही चुके हैं। पर

यह पुस्तक विवर्तित न की जाय

NOT TO BE ISSUED



भारतवर्ष में आज तक जितनी प्रदर्शिनियाँ की गई हैं उन सब में यह (सन् १९१०—१९११ की) प्रयाग प्रदर्शिनी कहीं बढ़ चढ़ कर है।

इस प्रदर्शिनी की सभी इमारतें देखने में बड़ी सुन्दर हैं। नुमाइशी इमारतें भला देखने में मनोहर क्यों न होतीं। इन इमारतों के सफेद गुम्बज और चौटियाँ हरे पेड़ों के बीच में विशेष शोभा देती हैं। पीले पत्थर की बनी होने के कारण धूप में खूब चमकती हैं।

इस प्रदर्शिनी का हाता १२० एकड़ जमीन में है और डेरे तम्बुओं की भूमि को मिला कर कुल २५० एकड़ है।

उत्तर की ओर से बड़े दरवाजे से भीतर घुसते ही एक बड़ा सहन मिलता है। इस सहन के तीनों ओर भारतीय कारीगरों का काम दिखाया गया है। बाईं ओर प्रदर्शिनी का कार्यालय है। उसी के सामने दाहनी ओर डाकघर और तारघर हैं। रात्रि को फौवारा इसकी शोभा बढ़ाता है।

प्रदर्शिनी दूसरे मैदान के बीच में एक गोल वाद्यघर बना हुआ है। उसमें रोज़ गोरखा पलटन का बाजा बजता है। इसके चारों ओर जापान, अवध, लखनऊ और देशी रियासतों की चीज़ें दिखाई गई हैं।

प्रकाशस्तम्भ का वर्णन हम गत अङ्क में कर चुके हैं। उसके पूर्व की ओर के मैदान में पोले खेल और पवनयान का मैदान है।

स्वागतभवन एक हिन्दू ढङ्ग का मकान है। उसके भीतर अच्छी सजावट की गई है। इस भवन की सजावट का समान डाकूर हेनकिन साहब ने आगरा और फ़तहपुर सीकरी से भेजा है।

पवनयान आज कल रोज़ प्रातः और सायंकाल उड़ते हैं। २८ दिसंबर से ३ जनवरी तक पवनयानों का खूब उड़ान होगा। एक रोज़ एक पवनयान प्रदर्शिनी से उड़कर मिर्ज़ापुर जाकर उतरेगा।

प्रदर्शिनी के हाते के भीतर ही, यमुना के तट पर लिपटन के चाय-पानी का प्रबन्ध किया गया है।

यमुना बैंक रोड से चल कर दाहने कृषि-विभाग का सहन है। यहाँ कई सड़कें हैं जो भील को जाती हैं जहाँ सैकड़ों यंत्र पानी उठाने के लगे हैं। पूर्व का भाग कृषि-सम्बन्धी यंत्रों से सजा है। यहाँ से बाईं ओर को जानवरों के खाने की चीज़ें दिखाई गई हैं और फिर उसके बाईं ओर रेशम के कीड़े पालने कातने और बुनने का काम दिखाया गया है। कृषि यंत्रों के बाद आबपाशी के भवन में पहाड़ से गंगा का निकलना और उससे नहरगंगा का काटना आदि बहुत ही सुघराई से दिखाया गया है। इस दृश्य को देख कर दर्शक को बहुत ही आनन्द प्राप्त होता है। प्रत्येक यात्री को इस का अवश्य दर्शन करना चाहिए।

ईरीगेशन-भवन से दाहिने हाथ की सड़क के उस तरफ़ हादी साहब की कढ़ाइयों और वाडवें की कलों द्वारा चीनी बनती है।

इसी से दक्षिण की ओर वनविभाग के तीन भवन हैं। उनमें वनसम्बन्धी अनेक वस्तुओं का संग्रह किया गया है। वन में पर्वती दृश्य भी एक अनाखा दृश्य है। वहाँ जाकर ऐसा मालूम होता है कि मानो हम किसी सुनसान जङ्गल में पहाड़ी के पास जा पहुँचे। वहाँ सिंह, व्याघ्र, हिरन आदि अनेक जङ्गली जीवों की असली चर्ममयी मूर्तियाँ खड़ी दिखाई गई हैं। पचासों प्रकार के भयंकर साँपों को देख कर ईश्वर की अद्भुत रचना का स्मरण होता आता है।

इसी विभाग के एक भवन में जङ्गली लकड़ियों के नमूने दिखाये गये हैं। सैकड़ों औषधियाँ यहाँ देखने में आती हैं।

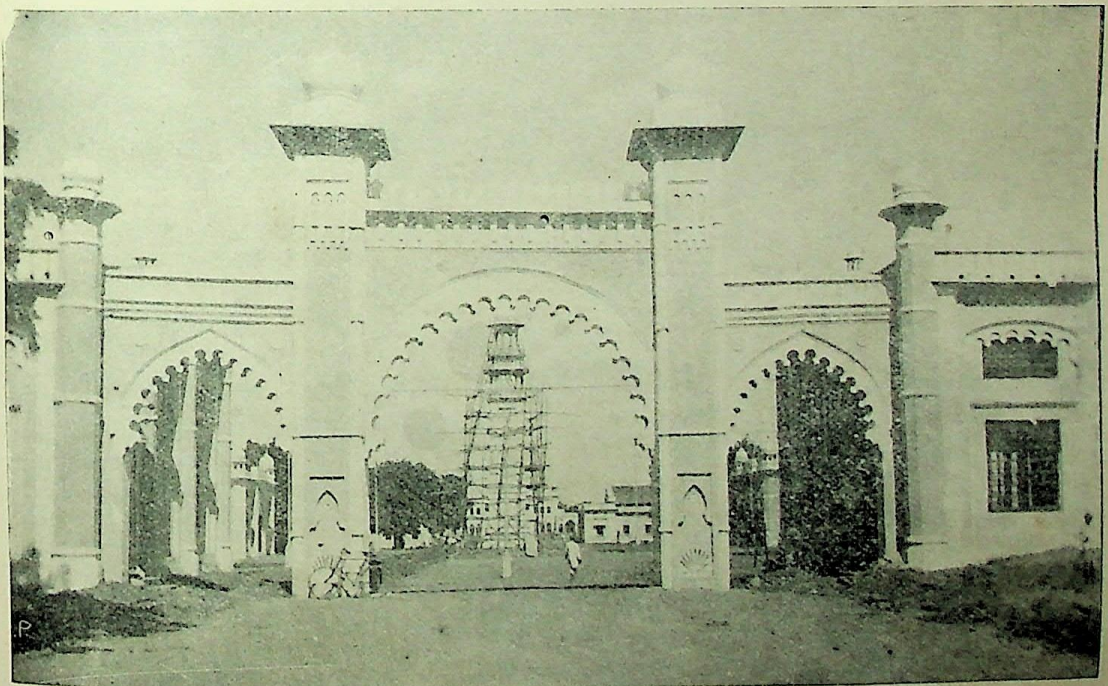
प्रदर्शिनी के दर्शकों को उत्तरी द्वार से भीतर आते ही बड़े सहन के तीन ओर १०० कोठरियाँ दिखाई देंगी। प्रत्येक कोठरी ८ फीट लंबी और



# सरस्वती



कैंप ।

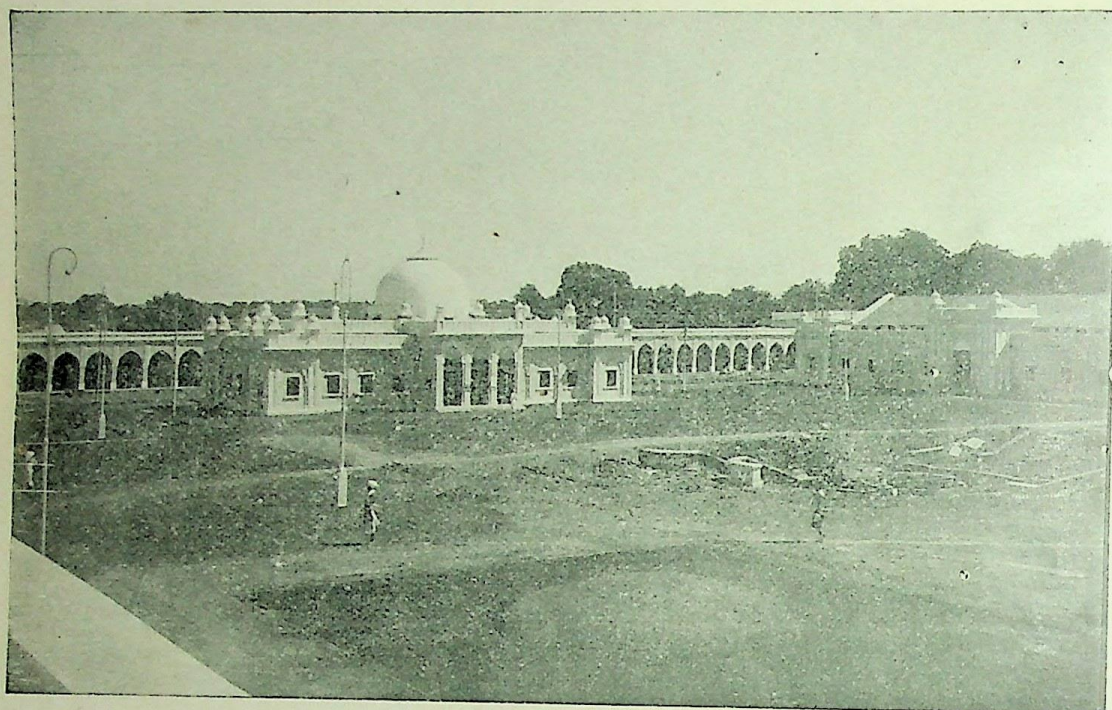


बीच का महाराबी दरवाज़ा ।

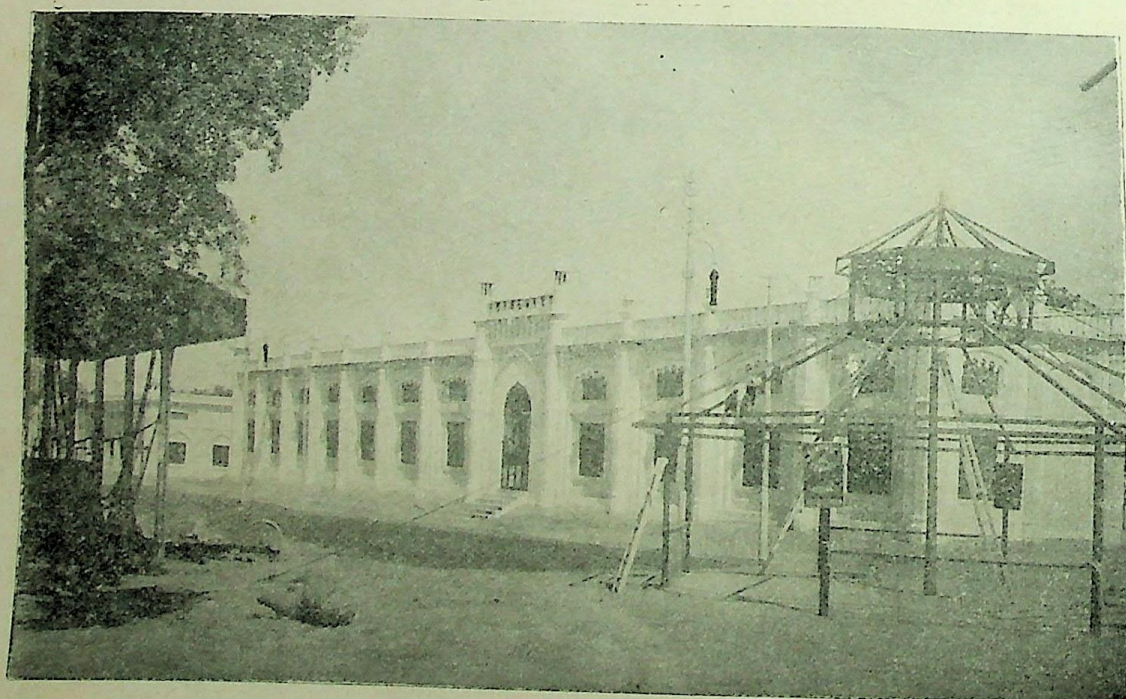
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद । "



# सरस्वती



प्रदर्शनी-कार्यालय ।

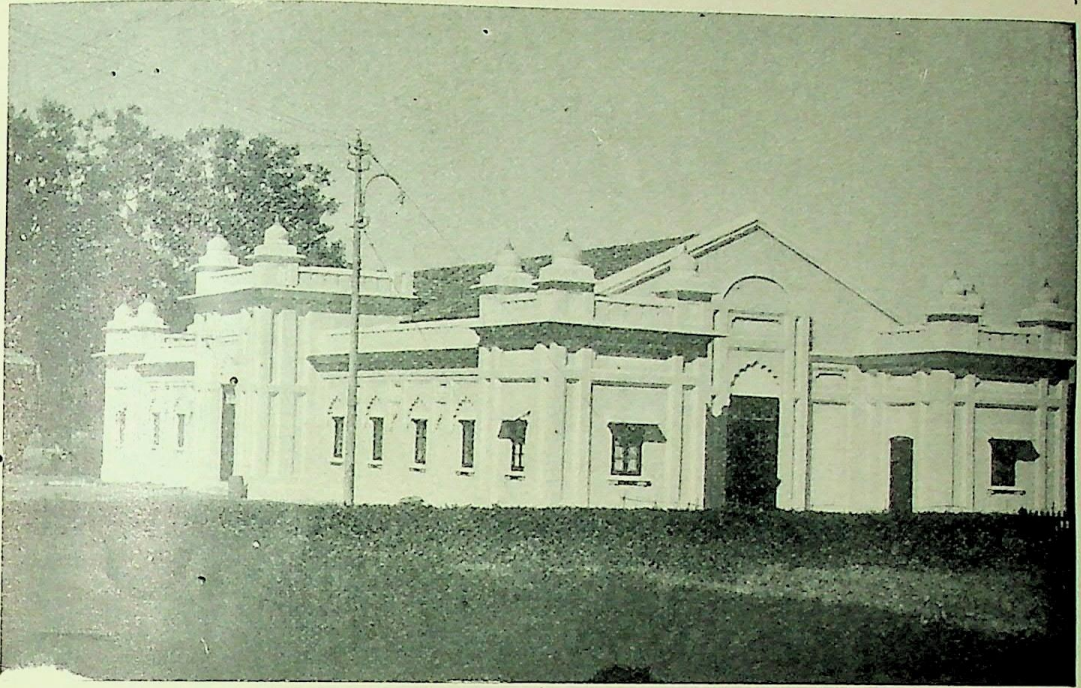


साधारण उद्योग वाली शाला का दृष्टभाग ।

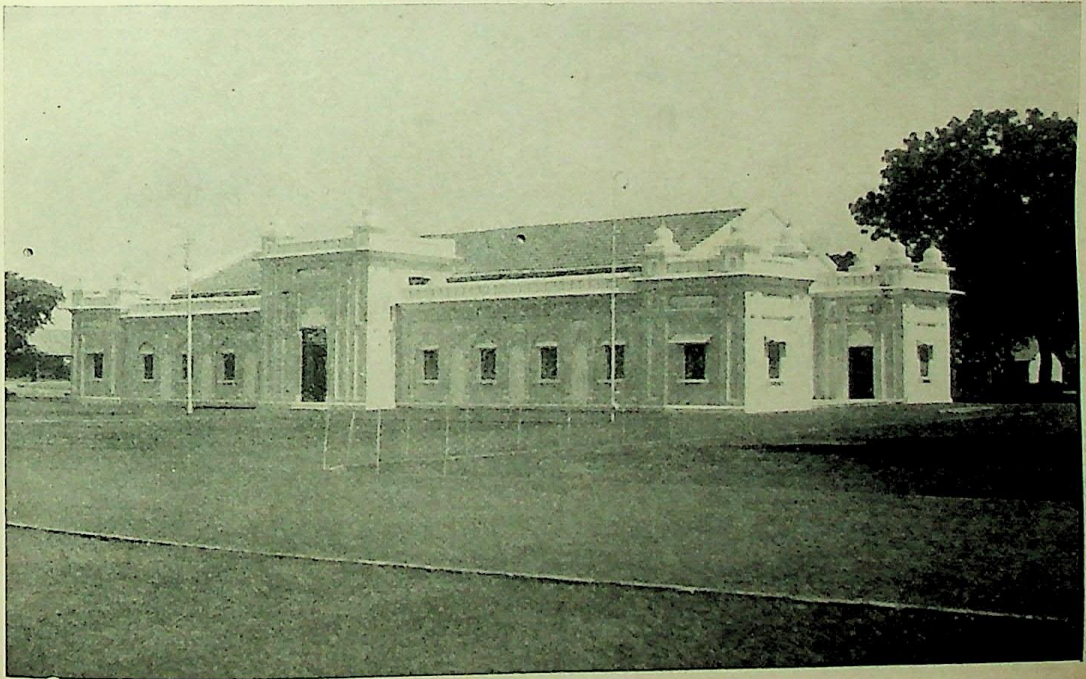
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



# सरस्वती



कृषि-विभाग ।

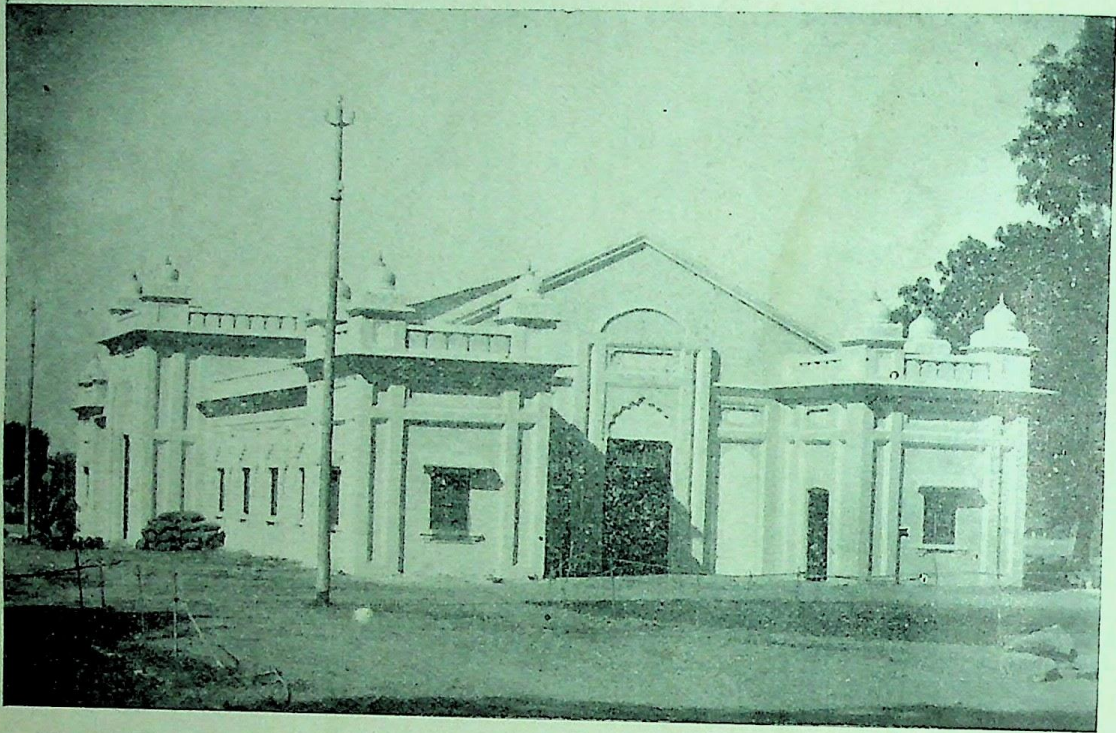


वन-विभाग । (१)

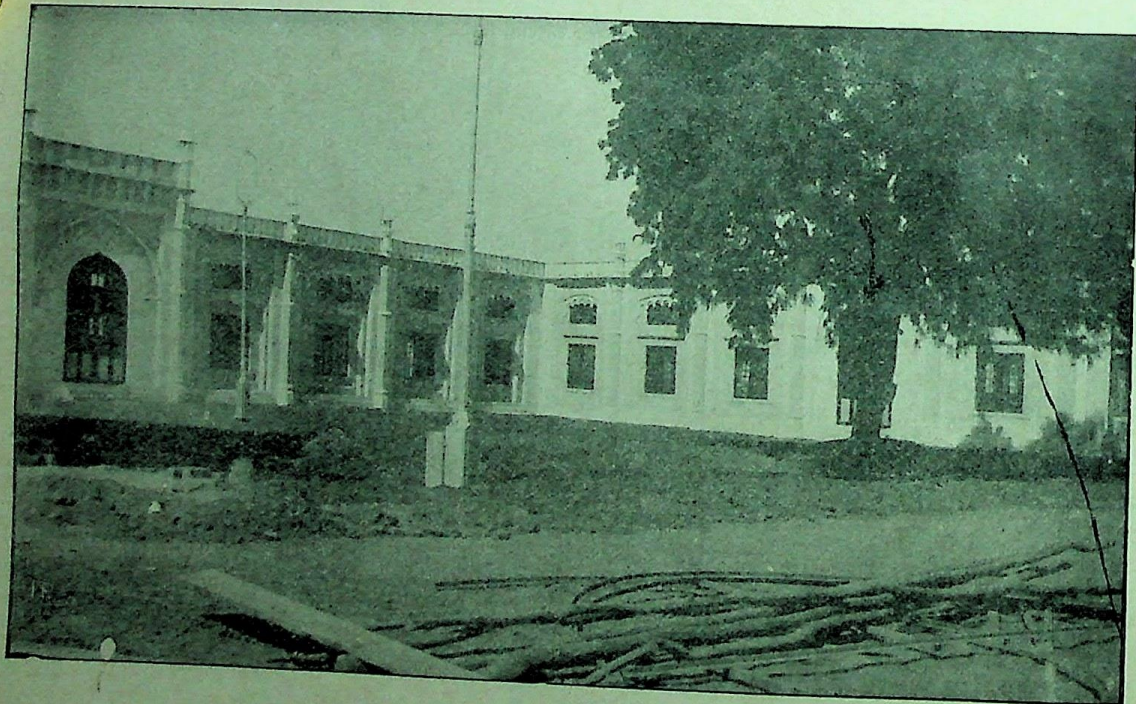
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



सरस्वती



कृषि-विभाग ।



साधारण व्यवसाय-भवन ।

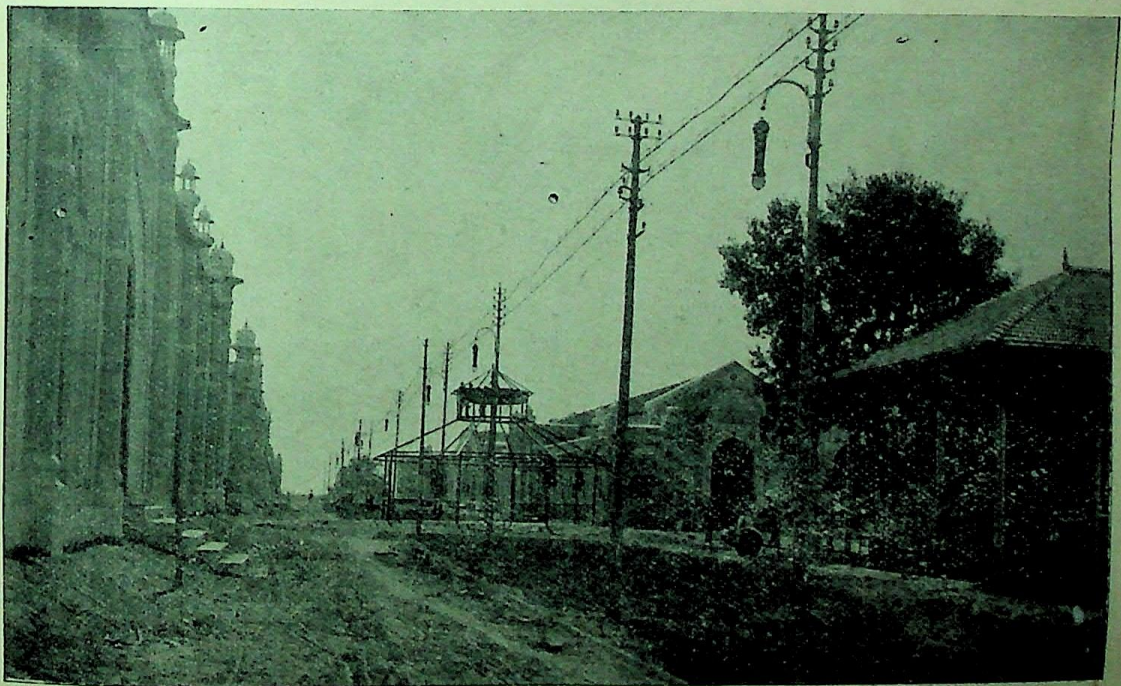
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



# सरस्वती



तन्तुव्यवसाय-भवन ।

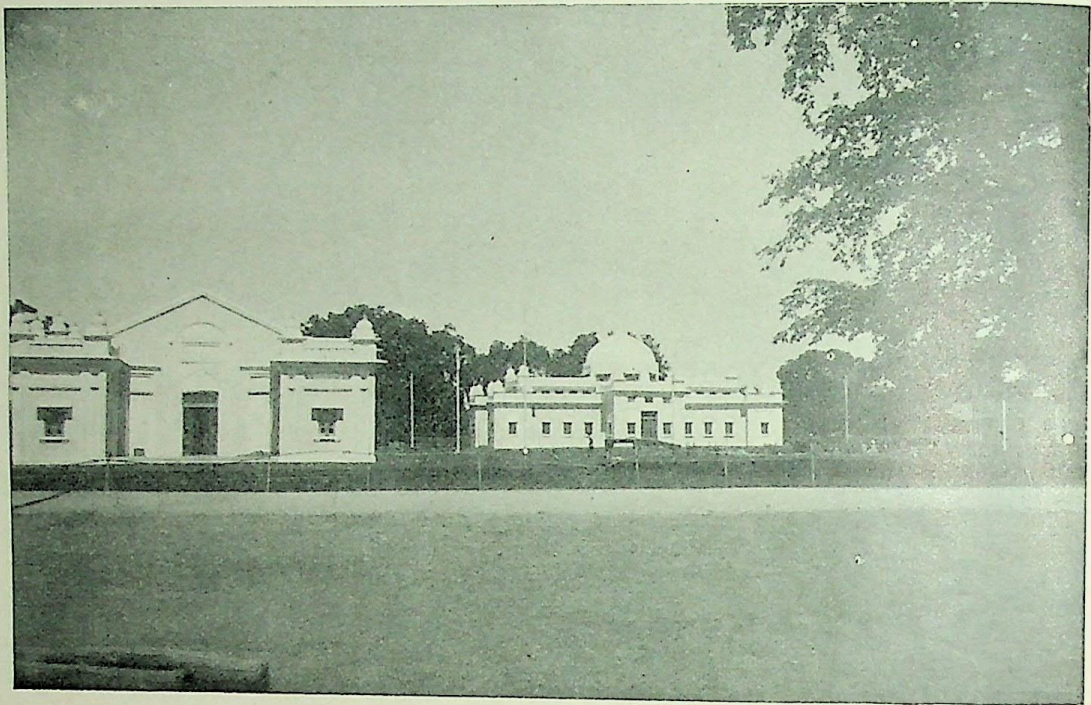


यंत्र-कला-भवन ।

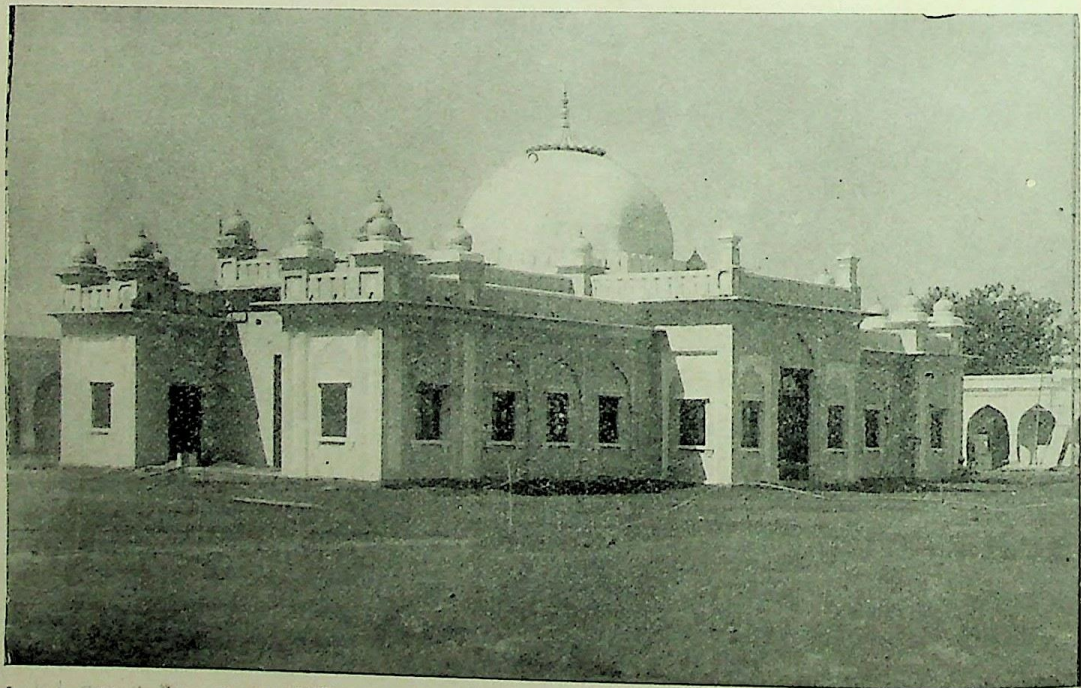
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



# सरस्वती



वन-विभाग । (२)



डाकघर ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



उतनी ही चौड़ी है। केवल २ कोठरियों को छोड़ कर शेष सब कोठरियों में देशी कारीगर काम करते हुए दिखाये गये हैं। इस प्रान्त के अनेक कारीगर अलग अलग कोठरी में काम करते दिखाई देंगे।

बाईं ओर की कोठरियों में कालीन बनानेवाले हैं जो काशी, आगरा, मिर्जापुर, लखनऊ, जौनपुर और अमृतसर से बुलाये गये हैं।

एक स्थान पर नगीना, फ़तहगढ़, वुलंदशहर, आगरा आदि प्रसिद्ध स्थानों के लकड़ी के काम के नमूने बहुत ही अच्छे दिखाये गये हैं। मैनपुरी के तारकशी के काम का भी नमूना दिखाया गया है। लकड़ी पर पीतल के महीन तार का काम कारीगरी की प्रसिद्धि कर रहा है।

शाहजहाँपुर के ज़िले में एक तहसील है। उसका नाम है तिलहर। वहाँ लकड़ी पर रोगन करने का काम बहुत अच्छा होता है। उसका नमूना भी यहाँ दिखाया गया है। मथुरा के बने हुए लकड़ी के सॉंचे भी बहुत उत्तम दिखाये गये हैं।

फाटक के दाहिनी ओर इत्र बनाने की रीति दिखाई गई है। देखिए, भारतीय कारीगर ताज़े फूल या तेल के आधार पर कैसा बढ़िया इत्र तैयार करते हैं।

गाज़ीपुर शीशे की चूड़ी के काम के लिए बहुत प्रसिद्ध है। सुनते हैं, वहाँ २०० तक जोड़ी की चूड़ियाँ तैयार होती हैं। वही काम इस प्रदर्शनी में भी एक स्थान पर दिखाया गया है।

सूक्ष्मकला के काम भी प्रदर्शनी के दो बड़े बड़े भवनों में दिखाये गये हैं। इन भवनों में प्राचीन सूक्ष्म-चित्रण-कला के अनेक नमूने और ढाँचे आदि दिखाये गये हैं। इसमें लङ्का से मँगाई हुई कपिल मुनि की एक मूर्ति रक्खी है। इस मूर्ति का विशेष आकार देखना हो तो उस ढली हुई काँसे की मूर्ति को देखना चाहिए जो अवलोकितेश्वर की मूर्ति लङ्का से मँगा कर रक्खी गई है। यहाँ बङ्गीय-साहित्य-

परिषद की संगृहीत चीज़ें भी प्रदर्शित की गई हैं। हिन्दू और बौद्धों तथा नेपाल के कारीगरों की कितनी ही मूर्तियाँ यहाँ रक्खी हैं।

यह तो हुई भारतीय पुरानी कारीगरी की बात। नई कारीगरी में बंगाल की बनी हुई कुछ चीज़ें दिखाई गई हैं। उनमें नन्दलाल बोस की बनाई हुई श्रीशिवजी के ताण्ड नृत्य की मूर्ति बहुत उत्तम है। जयपुर के मालीराम कारीगर के हाथ की बनी हुई कई चीज़ें यहाँ दिखाई गई हैं।

भारतीय चित्रकारी दो भागों में विभक्त की गई है। एक बौद्धों के समय की जो ईसा के ६५० वर्ष पहले की है और दूसरी अजंटा-गुफ़ा की चित्रकारी के बाद की। ये सब चित्रकारियाँ एशिया और यूरोप भर की चित्रकारी के समय से पहले की हैं।

६५० ईसवी से १५५० तक की चित्रकारी का ठीक ठीक पता नहीं लगता। यह विद्या उस समय भी अवश्य रही होगी, क्योंकि उस का प्रचार राजपूताने—विशेष कर जयपुर—में अभी तक विद्यमान है।

भारतवर्ष की हाथ की कारीगरी को अभी कोई देश भी नहीं पहुँचा। जैसा सस्ता और उत्तम हाथ का काम यहाँ होता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं होता। पहले यहाँ हाथ के बुने हुए सूती कपड़े ढाका आदि में ऐसे अच्छे बनते थे कि उनको देख कर विलायती लोग भी दङ्ग रह जाते हैं। पर, अब, दैवदुर्विपाक से भारत की यह कारीगरी नाम मात्र को रह गई है।

इसी भवन में काश्मीर-विभाग में दुशालों का काम दिखाया गया है और बनारस का कमखाब और फूलदार मखमल, खाकी और सुनहले कपड़े भी वहाँ रक्खे गये हैं।

एक भवन में लखनऊ और जयपुर के अजायब घरों से आई हुई कितनीही दर्शनीय चीज़ें रक्खी हैं।

देशी रियासतों से मँगाकर भी कुछ सामान यहाँ रक्खा गया है। इसी भवन में साढ़े आठ



फ्रीट लंबा हाथीदांत चाँदी में मढ़ा हुआ दीवार पर लटक रहा है ।

इसी भवन में एक तश्तरी रखी है । उसका रंग हरा है । उसमें बड़े महत्त्व और प्रशंसा की बात यह है कि यदि उसमें विष रक्खा जाय तो उसके दो टुकड़े हो जायेंगे ।

एक भवन में हाथ की लिखी हुई कुरान की पोथी रखी हुई है । उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसे पैगम्बर के नाती ने लिखा था ।

डेयरा के राजा की दो चीजें यहाँ बड़ी कीमती रखी हुई हैं । एक तो सच्चे मोतियों का हार और दूसरा हीरे, लाल और नीलम जड़ा हुआ सोने का सरपेंच । यह सरपेंच पगड़ी में लगाया जाता है ।

कलकत्ता और बम्बई के विख्यात सेठ बदरीदास ऐंड सन्स का भेजा हुआ एक बहुमूल्य ऐतिहासिक सरपेंच है । उसमें हीरा जड़ा हुआ एक लाल है इसकी लंबाई २१ इंच है । कहा जाता है कि इस चमकीले मणि के समान संसार में दूसरा मणि कहीं नहीं है ।

साधारण व्यवसाय-भवन में कोई १५० प्रकार की भिन्न भिन्न भाषाओं में बाइबिल की प्रतियाँ रखी हुई हैं । भारतवर्ष में जितनी बाइबिलें इस समय प्रचलित हैं उनके ३०० संस्करणों के नमूने यहाँ हैं । इन संस्करणों में अक्षर, साँची और कागज तथा जिल्दों में अन्तर है । ये सब जिल्दें भारतवर्ष में ही छपी और यहीं बाँधी गई हैं ।

कलकत्ते के इन्टेलिजेन्स सेंडिकेट विभाग के मैनेजर एस० एस० बेस ने २६ कारखानों का काम यहाँ दिखाया है । बेस महाशय ने दास-कम्पनी के प्रसिद्ध कार्यालय का बना हुआ एक ताला दिखाया है । इसमें खूबी यह है कि दूसरी ताली से यह नहीं खुलता । यही नहीं बल्कि दूसरी ताली एक बार डालने पर फिर निकलती ही नहीं । इसलिए चोर के भ्रममारने पर भी यह ताला नहीं खुलता । इसका मूल्य २५) है ।

मिर्जापुर के वेस्टर्न इंडिया एजन्सी कम्पनी के एस० एन० सिंह ने एक रेशमी कालीन दिखाया है । इसके १ इंच स्थान में ११७६ गदियाँ हैं ।

भारतवासी अपने महाभारत, रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों में पढ़ा करते थे कि पहले यहाँ ऐसे विमान भी थे जो आकाश में उड़कर थोड़ी ही देर में कहीं से कहीं इच्छित स्थान पर पहुँच जाते थे । पन्द्रह हजारों वर्षों से यहाँवालों को विमानों के साक्षात् दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था । इस प्रदर्शनी के प्रताप से भारतवासियों के वह सौभाग्य भी घर बैठे प्राप्त हो गया । इस प्रदर्शनी में जितनी अद्भुत और महत्त्व-पूर्ण घटनाएँ अब तक हुई हैं या हो रही हैं उन सब में विमान उड़ने का दृश्य बड़े महत्त्व का है ।

अभी लिखना चाहें तो प्रदर्शनी की अनेक बातें लिखी जा सकती हैं । पर हम अधिक न लिखने के लिए लाचार हैं । लाचारी के एक नहीं कई कारण हैं । एक तो सरस्वती में इतना स्थान नहीं । दूसरे यह कि सरस्वती के दस-बीस क्या पूरे सौ पृष्ठ लिखने पर भी हम प्रदर्शनी का पूरा वर्णन नहीं कर सकते इसीलिए हम यहीं विश्राम करते हैं ।

रामजीलाल शर्मा

## योरप के और हमारे विचार ।

[ भाग ११, संख्या ११, पृष्ठ ४=४ से आगे ]

८—उनके यहाँ उच्चाभिलाष गुण है, हमारे यहाँ घोर अवगुण है । ऊँचे अभिलाष से शून्य मनुष्य वहाँ बड़ी नीची निगाह से देखा जाता है । मनुष्य की उन्नति के मूल कारणों में उच्चाभिलाष भी एक कारण समझा जाता है । कर्जन जब आक्सफ़ोर्ड पढ़ते थे तभी कहते थे कि भारत के 'वाइसराय' ही उनकी उच्चाभिलाषा है । ऐसे ही प्रत्येक मनुष्य अपने सांसारिक जीवन का उद्देश निश्चित कर लेता है ।



पर हमारे यहाँ उच्चाभिलाष का नाम तृष्णा है और वह निन्दनीय है। हमारे यहाँ “संतोष परम सुख है।”

९—युवा अवस्था यहाँ मान का कारण नहीं। ४० वर्ष के ऊपर लोग कहने लगते हैं, मैं बूढ़ा हो गया हूँ। वहाँ युवा अवस्था का बड़ा मान है। कोई बूढ़ा होने पर भी बूढ़ा कहा जाना नहीं पसन्द करता। किसी को बूढ़ा कह देना उसे नाराज कर देना है—शिष्टाचार का सीमालङ्घन करना है। नौजवानी के कारण किसी की बात की अवहेलना नहीं की जाती। इसलिए नौजवान आदमी अपने विचार प्रकट करने में भेषता नहीं; अपनी किताब की भूमिका में नौजवानी के कारण कोई क्षमाप्रार्थी भी नहीं होता।

१०—वहाँ पण्डित की अपेक्षा राजनीतिकुशल का अधिक मान है। इसी लिए लन्दन में शेक्स-पियर की मूर्ति नहीं; पर तीसरे दर्जे के सेनापति हैवलक का प्रकाण्ड पुतला खड़ा है। जर्मनी के हर शहर में विस्मार्क की मूर्ति है, पर गेटअ की मूर्ति बहुत ढूँढ़ने से मिलेगी। या यों कहना चाहिए कि देश-भक्ति सब गुणों में श्रेष्ठ मानी जाती है। इसी से गम्बेटा की मूर्ति पेरिस में और नेलसन् की लन्दन में सबसे ऊँची है। देश-भक्ति से वीरत्व अलग नहीं; दोनों एक चीज हैं। देश-भक्ति का महत्त्व कवित्व, विद्वत्त्व, मुनित्व, दया, धर्म, परोपकार आदि सब गुणों से उत्तमतर माना जाता है। देशभक्ति वहाँ ईश्वर-भक्ति से भी ऊँची है। इसी से सेंट फ्रांसिस की नहीं, गैरीवाल्डी का स्मारक जगह जगह इटाली में पाया जाता है।

११—वहाँ मनुष्य-मात्र बराबर है। राष्ट्र में कोई ऊँच नीच नहीं है। गरीबों को भी कोई छोटा नहीं समझता, क्योंकि ऐसा समझना राष्ट्र की निर्वलता का कारण होता है। जन्म से मनुष्य बराबर है—यह सिद्धान्त अभिनव योरप और अमेरिका ही का

है। जबसे यह माना गया है तबसे अमेरिका स्वतंत्र, फ्रांस विजयी, जर्मनी स्वतंत्र, इटली स्वतंत्र, जापान बलिष्ठ और तुर्की सजीव—यह इस सिद्धान्त की महिमा काही प्रसार है। राष्ट्रीयता या जातीयता का भाव और मनुष्यमात्र का बराबर समझा जाना इन दो सिद्धान्तों ने योरप को कुछ का कुछ कर दिया। इसी से योरप नव योरप हो गया है। योरप को द्विजन्मा कहना चाहिए। यह सब फ्रांस के सामाजिक कायापलट का, जिसे हुए कोई सौ बरस हुए, फल है। अस्तु, वहाँ सब मनुष्य बराबर हैं।

हमारे यहाँ मनुष्य बराबर नहीं; ऊँच नीच है; स्पृश्यास्पृश्य तक है। यद्यपि इस सिद्धान्त के विरोधी-संन्यास-सम्प्रदाय, बौद्ध मत, वैष्णव मत, महाराष्ट्र-धर्म, सिक्ख-धर्म, साधमत, ब्राह्ममत आदि कितनेही धर्म, मत और सम्प्रदाय हुए, तथापि पूर्वोक्त सिद्धान्त बना ही रहा और अब तक बना ही है।

काशीप्रसाद जायसवाल।

## कवि का कर्तव्य।



सार में ईश्वर का या देवताओं का अवतार कई प्रकार का और कई कामों के लिए होता है। अलौकिक कार्य करनेवाले प्रतिभाशाली मनुष्य ही अवतार हैं। स्वाभाविक कवि भी एक प्रकार के अवतार ही हैं। इस पर कदाचित् कोई यह प्रश्न करे कि अकेले कवि ही क्यों अवतार माने गये, और लेखक इस पद पर क्यों न बिठाये गये? तो यह कहा जा सकता है कि लेखक का समावेश कवि में है, पर कवियों में कुछ विशेष शक्ति ऐसी होती है जिसके कारण उनका प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ता है। अब मुख्य प्रश्न यह है कि कवि का अवतार होता ही क्यों है?



इस प्रकार के विषय पर सरस्वती में एक दो लेख निकल चुके हैं। इस लेख का उद्देश यह है कि कोई विद्वान् इस विषय पर कुछ और गंभीर बातें लिख कर हमारे स्वाभाविक, होनहार और राष्ट्रीय कवियों को उनका कर्तव्य बता दे। हमारे विचार में कवि लोग भी “धर्मसंस्थापनार्थीय” उत्पन्न होते हैं। उनका काम केवल तुक मिलाना या “पावसपचासा” लिखना नहीं है। तुलसीदास ने कवि होकर वैष्णव धर्म की स्थापना की है, मतांतरों का भेद मिटाया है और “ज्ञान के पंथ को कृपाण की धार” बताया है। प्रायः उसी प्रकार का काम दूसरे रूप में सूरदास, कबीर और लल्लूजी ने किया है। हरिश्चन्द्र ने शूरता, स्वदेश-भक्ति और सत्य प्रेम का धर्म चलाया है। जिन कवियों ने केवल संस्कृत ही का भांडार भाषा में भरा है वे भी किसी न किसी रूप में लोगों के उपदेशक थे। हिन्दी के जितने कवि प्रसिद्ध हैं उन्होंने देश, काल, अवस्था और पात्र के अनुसार ही कविता की है। दूसरे देशों और दूसरी भाषा के कवियों का नाम लेने की यहाँ आवश्यकता नहीं है; क्योंकि हिन्दी के पूर्व कवियों ने, समय समय पर, अपने कर्तव्य को समझा है और उसका पालन भी किया है। शिवप्रसाद-सदृश इतिहासकारों ने भी अवतारी काम किया है, यद्यपि उनके विचारों को लोग मानते नहीं हैं। सारांश यह कि कवि लोगों को ऐसा काम करना पड़ता है—वे स्वभाव ही से ऐसा करते हैं—कि संसार का कल्याण हो और उस पर से उनका नाम आपही आप अमर हो जाय। भूषण के समान कवियों ने तो राजनैतिक आन्दोलन तक उपस्थित कर दिया है। “पूर्ण” कवि ने हमें यह उपदेश दिया है कि जो लोग खड़ी बोली से किसी प्रकार अप्रसन्न हैं वे भी अपनी पुरानी ब्रज (कविता) की बोली को बिना तोड़े मरोड़े काम में ला सकते हैं और यदि वे चाहें तो खड़ी बोली में भी कविता कर सकते हैं। सारांश यह कि कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊँचा उद्देश अवश्य रहना चाहिए। केवल कविता ही के लिए कविता करना एक तमाशा

है। हिन्दी में कविता-संबंधी इस प्रकार के लेख पढ़ कर बाहर के लोग यह अनुमान कर सकते हैं कि कदाचित् हिन्दी के कवि अपना कर्तव्य नहीं जानते, नहीं तो उनके लिए ऐसा लेख न लिखा जाता। यदि कोई मराठी या बँगला के समाचारपत्र या मासिक पत्र पढ़े तो उसे उनमें ऐसे लेख न मिलेंगे। ऐसे लेख उन भाषाओं में कम से कम चालीस वर्ष पहले निकल चुके हैं और उन लेखों के अनुसार उन भाषाओं की कविता इतने समय में इतनी ऊँची हो गई है कि समालोचकों के लिए जन्म भर विचार करने की सामग्री तैयार है। भाषा या साहित्य की जब जैसी अवस्था होती है तब उसमें उसी प्रकार के लेख निकलते हैं। हम यहाँ पर इस विषय का एक उदाहरण देते हैं। एक बार “छत्तीसगढ़-मित्र” में हिन्दी-व्याकरण के विषय में कुछ लेख निकले थे। कुछ महाराष्ट्र लोगों ने (बम्बई से) संपादक से यह पूछा कि क्या हिन्दी में कोई व्याकरण नहीं है। इस पर, सुनने में आया है कि, संपादक ने उनको यह उत्तर दिया कि और और भाषाओं के समान हिन्दी में भी व्याकरण है। परन्तु इस विषय का निरूपण परदेशियों ने किया है। हिन्दुस्तानी लोग न इसे खोज सके हैं और न खोज हो जाने पर भी उसकी ओर ध्यान देते हैं।

कवि की कल्पना-शक्ति तीव्र होती है। इस कल्पना-शक्ति के द्वारा वह कठिन बातों को ऐसे अनाखे ढंग से सबके सामने रखता है कि वे सहज ही समझ में आ जाती हैं। इसी शक्ति से वह अनजाने हुए पदार्थों या दृश्यों का चित्र ऐसा मनोहर खींचता है कि पढ़ने या सुननेवाले एकाग्रचित्त हो जाते हैं और उस बात पर प्रेमपूर्वक विचार करते हैं। फिर, कवि अपने अवलोकन और कल्पना से ऐसी शिक्षा देता है कि वह न तो आज्ञा का रूप धारण करती है और न अपना स्वाभाविक रूपापन ही प्रकट करती है; किन्तु भीतर ही भीतर मन को उकसा देती है। ताज-महल का वर्णन करते समय कवि इस बात पर ध्यान न देगा कि यह किस सन् में बना था,



इसकी लम्बी-चौड़ाई कितनी है, या इसका पत्थर कहां से आया है। इमारत को देखकर उसका मन कदाचित् उसके मीनार से भी ऊँचा बढ़ जायगा और वह उस समय की कल्पना करने लगेगा जब बादशाह की वेगम मरते समय रौजे की वसीयत करती थी। उसके मन में पुराने और नये समय के मिलान का भी चित्र खिंच जायगा और वह समय के फेर की घटनाओं को सोचने लगेगा। मनोहर वर्णन और शिक्षा के साथ साथ कवि अपने शब्द और वाक्य भी ऐसे मनोहर बनाता है कि पढ़ने वाले के आनन्द की सीमा नहीं रहती। कविता लिखते समय जो जो भाव कवि के हृदय में उदित होते हैं वही भाव पढ़नेवाले के हृदय में उत्पन्न हो सकते हैं। इसके लिए पढ़नेवाला सहृदय होना चाहिए, नहीं तो भैंस के आगे चीन बजने लगेगी। यदि स्वतः कवि में सहृदयता न हो तो फिर उसका श्रम ही व्यर्थ है। मनोविज्ञानी लोग कदाचित् किसी समय हमको यह बता सकेंगे कि मनोविकार प्रकट करने के लिए छंद ही का उपयोग क्यों होता है? गद्य में भी कोई कोई लेखक—विशेष कर उपन्यास-लेखक—ऐसा मनोहर वर्णन करते हैं और ऐसे भाव प्रकट करते हैं कि उनका गद्य पद्य हो जाता है। जो हो, अभी तो कवि लोग ही विशेष कर यह काम करते हैं और उसके लिए छंद काम में लाते हैं।

आज कल हिन्दू संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार कर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े लोगों में भी पुरानी कविता के साथ साथ नई कविता पढ़ने का अनु-राग उत्पन्न हो जाय। पढ़नेवालों के मन में नई नई उपमाओं को, नये नये शब्दों को, और नये नये विचारों को समझने की योग्यता उत्पन्न करना कवि ही का कर्तव्य है। जब लोगों का झुकाव इस ओर होने लगे तब समय समय पर कल्पित अथवा सत्य आख्यानों के द्वारा सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विषयों की मनोहर शिक्षा देवे। जब जो विषय

उसके अवलोकन में आवे तभी उस पर अपनी स्वाभाविक शक्ति से कविता लिख कर लोगों को परोक्ष रूप से सचेत करे। कविता के प्रभाव का हम एक छोटा सा उदाहरण देते हैं। पश्चात्तर कवि के घराने के लोगों में विवाह के समय कवित्त पढ़ने की चाल है। उनकी जाति के लोग कहते हैं कि यह चाल पश्चात्तर के समय से चली है और वह अब तक चली जाती है। क्या यह बात आज कल के कवियों में नहीं हो सकती? जान पड़ता है कि “अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करहिं प्रकाश”—जिसने यह दोहा लिखा है उसको बड़ी दूर की सूझी है। खड़ी बोली की आज तक ऐसी कोई कविता नहीं बनी जिसका प्रचार “चंद्र-कांता” के समान साधारण पढ़े लोगों में भी हुआ हो। सद्दोष होने पर भी इस उपन्यास के कारण पुरुषों और स्त्रियों में उपन्यास पढ़ने की रुचि उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार जब खड़ी बोली की कविता को, या आज कल के और दूसरे पद्यों को, साधारण लोग भी पढ़ने लगे तब सम-झना चाहिए कि कविता और कवि लोक-प्रिय हैं। आज-कल की संस्कृत-भरी कविता संस्कृतोपयुक्त छंदों में रचा जाना और भी अधिक हानिकारक है।

सारांश यह कि यदि आज कल की कविता में शास्त्रोक्त गुणों को छोड़ कर नीचे लिखे गुण हों तो संभव है कि वह लोक-प्रिय होगी :—

(१) कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोविकारों का वर्णन हो।

(२) उसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणों के उदाहरण रहें।

(३) कल्पना सूक्ष्म, और उपमादिक अलंकार गूढ़ न हों।

(४) भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो।

(५) छंद सीधा, परिचित, सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।

विद्यानाथ



## साधुशिरोमणि तुकाराम महाराज ।



स आर्यावर्त की पवित्र भूमि में समय समय पर अनेक देवभक्त और देश-भक्त साधु सन्त हो गये हैं । आज जिस महानु भाव का चरित हम सरस्वती के पाठकों को सुनाना चाहते हैं वह महाराष्ट्र-प्रान्त का बहुत बड़ा देवभक्त साधु है । आज लाखों महाराष्ट्र इस महात्मा की 'अभंग'—वाणी से अपने अन्तःकरण पवित्र कर रहे हैं ।

पूना के उत्तर ओर दस कोस पर इन्द्रायणी नदी के तट पर देहू गाँव में तुकाराम महाराज के पूर्वज रहते थे । वे जाति के कुनबी—शूद्र—थे और बनियाई का पेशा करके अपनी जीविका-निर्वाह करते थे । इस कुल में ईश्वरभक्ति कई पीढ़ियों से चली आती थी । अब भी इस वंश में कई भक्त हैं । तुकाराम महाराज के आठवें पूर्वज विश्वम्भर बाबा बड़े भक्त थे । देहू गाँव में जो विठ्ठलजी ( विष्णु ) का मन्दिर है वह विश्वम्भर बाबा का ही बनवाया हुआ है । उसमें जो मूर्ति स्थापित है वह विश्वम्भर बाबा को पृथ्वी में गड़ी हुई मिली थी । विश्वम्भर के पोते विठोबा भी अच्छे भगवद्भक्त थे । विठोबा के लड़के पदाजी, पदाजी के शङ्कर, शङ्कर के कान्होबा, कान्होबा के बोल्होबा और बोल्होबा के तुकोबा । यही तुकोबा हमारे चरितनायक साधुशिरोमणि तुकाराम महाराज हैं ।

महाराष्ट्र-प्रदेश में पंढरपुर बड़ा भारी तीर्थ-स्थान है । वहाँ विठ्ठलजी का बहुत बड़ा पवित्र मन्दिर है । आषाढ़ और कार्तिक में लाखों महाराष्ट्रीय साधु संत और गृहस्थ अब भी वहाँ जमा होते हैं और भजन-कीर्तन में मग्न रहते हैं । तुकाराम बाबा की माता का नाम कनकाई था । माता कनकाई और पिता बोल्होबा दोनों बड़े विठ्ठल-भक्त थे । दोनों ने लगातार २४ वर्ष तक पंढरपुर की यात्रा की थी । शके १५२० की माघ वृदि ५ गुरुवार के दिन

कनकाई की पवित्र कुक्षि से साधु तुकाराम का जन्म हुआ । कोई कोई इनके जन्म का शक १५३० मानते हैं । एक आधुनिक महाराष्ट्र इतिहासज्ञ श्रीयुक्त राजवाड़े ने इनका जन्म शके १४९० निश्चित किया है । तुकाराम के दो भाई और थे । एक उनसे बड़ा था और एक छोटा । बड़े का नाम सावजी और छोटे का कान्होबा था । सावजी पहले ही से विरक्त था । वह गृहकार्यों की ओर बिलकुल मन न लगाता था । इसलिए १३ वर्ष की अवस्था में ही तुकाराम पर, व्यापार में अपने पिता की सहायता करने का भार, आपड़ा । वे बड़ी सच्चाई के साथ अपने पिता को व्यापार में मदद देने लगे । अपने समयसम साथियों में खेलने का व्यसन उन्हें बिलकुल न था । नित्य शाम को वे अपने पिता के साथ मन्दिर में भजन गाते थे । इस प्रकार उन्हें ज्ञानेश्वर, निवृत्तिनाथ, मुक्ताबाई और नामदेव आदि साधुओं के अनेक पद और अभंग ( एक महाराष्ट्रीय छन्द का नाम ) कंठस्थ हो गये थे ।

जब तुकाराम की उम्र १७ वर्ष के लगभग थी तब उनके माँ-बाप और बड़े भाई सावजी की स्त्री का देहान्त हो गया । सावजी, स्त्री के मरने पर, और भी अधिक विरक्त हो गया और गृहस्थी का सारा बोझ तुकाराम पर छोड़ कर उसने संन्यास ले लिया । इन दुःखों के कारण तुकाराम का भी मन गृहस्थी से हटने लगा । कुछ दिनों के बाद दुर्दैव से अकाल पड़ा । द्रव्य और प्रतिष्ठा सब गई । इस अकाल में तुकाराम की पहली स्त्री रखमाई और शिवाजी नाम का लड़का भी चल बसा । तुकाराम की पहली स्त्री रखमाई को दमे की बीमारी थी । इस कारण तुकाराम के पिता ने उसके जीते जी ही तुकाराम का दूसरा विवाह कर दिया था । इस दूसरी स्त्री का नाम था जिजाबाई । अब यही स्त्री रह गई । पर तुकाराम का मन सांसारिक कामों से बिलकुल हट गया । तथापि वे अपने धर्म में डटे रहे— उन्होंने समझ लिया कि ये सब आपत्तियाँ ईश्वर ने हमारे कल्याण ही के लिए भेजी हैं । उन्होंने अपने



ग्रन्थों में एक जगह इस विषय में जो कुछ कहा है उसका मतलब यह है:—

हे ईश्वर ! बहुत अच्छा किया जो मुझे कर्कशा स्त्री दी और लोगों में मेरी हँसी कराई । इसके अनु-ताप से तेरा चिन्तन तो करूँगा । अच्छा हुआ जो यह संसार मुझे वमनप्राय हुआ । अब मेरे मन में यह विश्वास आ गया कि तू जो कुछ करता है वह मेरे हित ही के लिए करता है ।

अकाल और आपत्तियों के कारण उनका दिवाला निकल गया । अब उन्होंने गृहस्थी का प्रपंच छोड़ दिया और ईश्वर-भजन में रात दिन मग्न रहने लगे । उनको या उनकी स्त्री को जो कुछ भिक्षा माँगने से मिल जाती थी उसी से वे उदर-पालन करने लगे । उदर-निर्वाह के लिए अन्न के अतिरिक्त उन्हें और किसी चीज की परवा न थी । स्वार्थबुद्धि तो उनमें छू भी नहीं गई थी । इन्हीं दिनों उनके चरित में उनकी निर्लोभता और स्वार्थ-त्याग का एक उदाहरण लोगों के सम्मुख आया । उसे सुनिः—

किसी किसान ने एक दिन तुकाराम महाराज से कहा—“बाबा, मुझे किसी काम के लिए कहीं जाना है । एक महीना लगेगा । तुम यदि मेरे खेत रखा देगो तो मैं तुम्हें आधा मन अन्न दूँगा । मेरा काम होगा; तुम्हारे कुटुम्ब-पालन में सहायता होगी और तुम्हें ईश्वरस्मरण के लिए भी समय मिलेगा ।” तुकाराम ने यह काम स्वीकार कर लिया और खेत रखाने लगे । वे दिन रात विठ्ठल-नाम-स्मरण में मग्न रहने लगे । इधर खेत को पशु-पक्षियों ने चौपट कर दिया । परोपकारी और दयालु तुकाराम के मन में यह बात न आई कि इन अन्नार्थी भूखे प्राणियों को खेत चुनने से रोके । एक महीने के बाद आकर जब किसान ने अपने खेत की यह दुर्दशा देखी तब तो बहुत क्रुद्ध हुआ और गाँव के हाकिम के पास तुकाराम के विरुद्ध नालिश कर दी । तुकाराम बुलाये गये । अपराध साबित हो गया और तुकाराम जी हानि के देनदार ठहराये गये । बचा हुआ खेत किसान ने काट माड़ कर जब उसका अन्न तोला तो

इतना निकला जितना किसी के खयाल में भी न आया था । किसान बहुत पछताया और उसमें से बहुत सा अन्न लेकर तुकाराम के पास गया; पर उन्होंने उसे लेना स्वीकार न किया । उन्होंने कहा कि यह अन्न हमारे पुरखों के बनवाये हुए मन्दिर के जीर्णोद्धार में लगा दिया जाय ।

तुकाराम महाराज को एकान्तवास अधिक प्रिय लगने लगा । वे हरिकीर्तन, हरिभजन, व्रत आदि धार्मिक कर्म करने लगे । ज्ञानेश्वर, कबीर, नामदेव, एकनाथ आदि साधुओं के वेदान्त-विषयक ग्रन्थों का मनन करने लगे । मराठी में गीता, भागवत, रामायण और भर्तृहरिजी के वैराग्य और नीतिशतक का भी उन्होंने अभ्यास किया । वेदान्त-ग्रन्थों के अभ्यास, धर्माचरण और अपने अनेक सद्गुणों से उनको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और देह-बुद्धि का समूल नाश हो गया । शक संवत् १५४१, माघ शुक्ल १०, गुरुवार के दिन बाबाजी चैतन्य नामक किसी पवित्र ब्राह्मण ने स्वप्न में उन्हें “रामकृष्ण हरि” का मन्त्र दिया । मन्त्र-दीक्षा पाने पर वे अपने गाँव के पास ही भण्डारा नामक पर्वत पर एकान्त में जप करने के लिए चले गये । वहाँ उन्होंने गुरु-मन्त्र “रामकृष्ण हरि” का अखंड जप आरम्भ किया । समाधि लग गई । खाना पीना आदि भूल गये । उनके छोटे भाई और स्त्री ने बहुत प्रयत्न किया कि घर लौट आवें, पर कुछ फल न हुआ । अन्त में स्वर्गीय महासाधु नामदेव और स्वयं विठ्ठलजी ने दर्शन देकर उन्हें कविता द्वारा उपदेश करने और गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए ईश्वर-भजन और कीर्तन करने का उपदेश दिया । इस कारण तुकारामजी घर लौट आये । घर आ कर उन्होंने अपने सम्पत्ति-विषयक कागज़-पत्रों के दो भाग किये । अपना भाग तो इन्द्रा-यणी नदी में डुबो दिया और दूसरा भाग अपने छोटे भाई को दे दिया । वे स्वयं भिक्षा माँग कर खाने और अभङ्ग नामक मराठी छन्द में कविता रच कर लोगों को उपदेश देने लगे और ईश्वर का भजन-कीर्तन करने लगे ।



महाराष्ट्रीय लोगों में ईश्वर-भजन के साथ साथ लोकोपदेश करने का अच्छा अवसर मिलता है। स्थान स्थान में रात को मन्दिरों में, साधु-सज्जन और शिक्षित लोग, खड़े हो कर, सैकड़ों लोगों को ईश्वरभक्ति के साथ नाना प्रकार के उपदेश अब भी करते हैं। यह प्रथा बहुत पुरानी है। किसी समय यह कीर्तन सारे देश में होता था, पर खेद है कि अब और और प्रान्तों में लोग इसे भूल गये हैं। महाराष्ट्र-प्रान्त से लोगों को यह गुण ग्रहण करना चाहिए। तुकाराम ने कीर्तन के द्वारा लोगों को उपदेश देना शुरू किया। उनकी वक्तृत्वशक्ति इतनी मनेवेधक थी कि उनका कीर्तन शुरू होते ही श्रोताओं की मनावृत्ति, पहरों के लिए, तल्लीन हो जाती थी। भावुक जनों के मन में धर्म और नीति के तत्त्व उत्तम प्रकार से खचित हो जाते थे। ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं कि उनके कीर्तन से दुर्जनों का पाषाण-हृदय भी पसीज उठा और वे कुमार्ग छोड़ कर सुमार्गी बन गये।

चारों ओर तुकाराम महाराज की प्रशंसा होने लगी। उनका निरभिमान स्वभाव, दम्भरहित वृत्ति, निस्सीम ईश्वर-प्रेम देख कर लोग उन्हें सच्चा साधु समझने लगे और दूर दूर से अनेक भावुकों के झुंड उनके दर्शनों के लिए आने लगे। उस समय महाराष्ट्र देश में आडम्बरी और ढोंगी साधुओं की भी कमी न थी। इन लोगों से तुकाराम महाराज का यह माहात्म्य न देखा गया। नाना प्रकार से दुष्ट लोग उन्हें कष्ट देने लगे। परन्तु तुकोबा की सहनशीलता, सरल बर्ताव और अप्रतिम सत्यनिष्ठा के सामने किसी की भी कुछ न चली। जो लोग उन्हें सताते थे वही लोग उनके उपदेश से उनकी शरण में आ जाते थे।

रामेश्वर भट्ट नाम के एक विद्वान्, प्रतिष्ठित और राजमान्य ब्राह्मण ने जब यह सुना कि तुकाराम, जो जाति का शूद्र है, ब्राह्मणों को उपदेश करता है और उपदेश में श्रुति-स्मृति के वाक्य कहता है तब तो वह कर्मठ ब्राह्मण जल उठा। उसने तुकोबा को

बुलवाया और बहुत डाट कर कहा कि तुम्हें श्रुति का अधिकार नहीं है, तुम कीर्तन करना, कविता करना और ब्राह्मणों को उपदेश देना बन्द कर दो। इस पर तुकाराम महाराज ने पूछा कि हमारे पास जो कविता लिखी हुई रखी है उसे क्या करें? रामेश्वर भट्ट ने कहा कि उसे डुबो दो। ब्राह्मण के आज्ञा शिरसा मान्य करके तुकाराम महाराज ने अपने परम प्रिय अभंगों की बही इन्द्रायणी नदी में डुबो दी। इस पर लोग उन्हें बहुत बुरा भला कहने लगे। उनको यह कलङ्क लगाया गया कि तुमने अपने सम्पत्ति के कागज पत्र डुबो कर जिस प्रकार स्वात्त से हाथ धोया उसी प्रकार अपनी ईश्वर-विषय कविता डुबो कर परमार्थ भी खोया। इतने में चमत्कार क्या हुआ कि चौदहवें दिन अभंगों की बही पानी पर तैरती हुई तुकाराम महाराज के शिष्यों के मिली। बही पा कर उन्होंने फिर उसे अपने संग्रह में रख ली।

रामेश्वर भट्ट नागनाथ नामक किसी देवता के उपासक थे। एक दिन भट्टजी उस देवता के स्थान में जाकर स्नान करने लगे। पानी डालतेही सां शरीर में दाह होने लगा। भट्टजी ने सैकड़ों ओषधियाँ कर डालीं; पर वह दाह बन्द नहीं हुआ। अन्त में उन्हें स्वप्न हुआ कि तुम तुकाराम महाराज की शरण जाकर उनसे क्षमा माँगो। इतनेही भट्टजी को अभंगों की बही पानी में निकल आने की भी खबर लगी। भट्टजी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे तुरन्त ही तुकोबा की शरण में गये और उनके शिष्य हो गये। महाराज के अभंगरूप उपदेशात्मक से उनका दाह शान्त हुआ। तुकारामजी के अन्त समय तक ये उनकी सेवा में रहे।

तुकाराम की निस्पृहता, साधुता और आत्म संयमन की कीर्ति जब छत्रपति शिवाजी महाराज के कानों तक पहुँची तब उन्हें इच्छा हुई कि ऐसे सत्पुरुष का दर्शन हमको भी मिले तो अच्छा हो। उन्होंने सम्मानपूर्वक तुकाराम महाराज को बुलवाया। ऐसे अवसर में यदि वे चाहते तो शिवाजी महाराज



के समान दानी और धर्मात्मा राजा से अमित धन-  
लाभ और प्रतिष्ठा-प्राप्ति का आनन्द लूटते; पर वे  
आजकल के आडम्बरी साधुओं की तरह द्रव्य और  
सम्मान के भूखे न थे। वे छत्रपति महाराज के यहाँ  
न गये और न उनका भेजा हुआ नज़राना ही कबूल  
किया। उत्तर में उन्होंने अभंगों में एक चिट्ठी  
शिवाजी महाराज को लिखी। ये सब अभंग निस्पृहता  
और उपदेशपूर्ण हैं; पर विस्तारभय से हम उन्हें  
नहीं देते। उनमें से कुछ का सारांश यह है:—

“तू परम पवित्र और सामर्थ्यवान् राजा है।  
मुझे इसी बात का बड़ा अचरज है कि मेरे जैसे हीन  
दीन के दर्शन करने की तुझे क्यों इच्छा हुई। मैं  
वनवासी उदासीन हूँ। वस्त्रों के बिना मेरी काया  
मलीन है और अन्न के बिना क्षीण है। मैं फलाहारी  
हूँ। हाथ पैर निस्तैज हो रहे हैं। मैं दर्शन-योग्य नहीं  
हूँ। मैं विनती करता हूँ कि अब से तू फिर मेरे दर्शन  
की बात न निकालना।

“मैं तो श्रीविठ्ठलजी की शरण में हूँ। वही मेरा  
पालने पोसनेवाला है। उसने मुझे निराशा नाम का  
एक गाँव दे दिया है जिससे मेरा निर्वाह होता जाता  
है। अब मैं तेरे पास आकर क्या मागूँगा? जैसे  
पतिव्रता का मन पति में लगा रहता है वैसेही मेरा  
मन विठ्ठल में लगा है। उसी की मूर्ति में मैं तुझे भी  
देखता हूँ। परन्तु एक मेरी प्यारी बात सुन ले।  
तेरा सद्गुरु जो श्रीसमर्थ रामदास है उसकी आज्ञा  
मानते जा। रामदास बड़े भाग्य से मिलता है।

“और एक बात ध्यान में रखना। भलों की सेवा  
करते रह। ऐसा काम न करना जिससे तुझे कोई  
बुरा कहे। निन्दक और दुर्जन जो तेरे पास हों  
उनकी उक्ति चित्त में न लाना। सार-असार का  
विचार करके इस बात की परीक्षा करता रह कि कौन  
तेरे राज्य के रक्षक हैं और कौन भक्षक। तू सर्वज्ञ  
राजा है। तुझे कुछ बतलाने की ज़रूरत नहीं। अनाथों  
की सहायता करते रह। मेरे इतने वाक्य ही पढ़कर  
तू समाधान मान ले। दर्शनों की क्या ज़रूरत?  
पृथ्वी पर तेरी कीर्ति छाई है। तेरा जन्म धन्य है।”

इतना लिखकर फिर आप एक अभंग में छत्र-  
पतिजी के सब अधिकारियों को नमस्कार करके  
विनती करते हैं कि “मैं ने जो यह सात्विक और  
प्रेमपूर्ण पत्र लिखा है उसे आप लोग जैसा  
का तैसा राजा को सुनावें। अगर आप लोग डर के  
मारे इसका अर्थ छोड़ कर या बदल कर सुनावेंगे तो  
इससे अनर्थ होगा।”

यह पत्र पढ़ कर शिवाजी महाराज की दर्शन-  
लालसा और भी प्रबल हो गई। एक बार, जब  
तुकारामजी लोहगाँव में थे, छत्रपतिजी स्वयं उनके  
पास आये और उनका कीर्तन सुनने के लिए गये।  
तुकारामजी के मुख से, बड़े प्रेम और आवेश के  
सार्थ, परमार्थ-निरूपण सुनकर शिवाजी महाराज  
को विरक्ति हो गई और उनके मन में प्रबल इच्छा  
उत्पन्न हुई कि तुकोबा के साथही रहकर भजन, पूजन  
और कीर्तन में अपनी आयु व्यतीत करें। उन्हें राज्य-  
आदि विषय-भोग विषयवत् त्याज्य जान पड़ने लगे।  
महाराज ने सब राजकारबार अपने मंत्रियों को  
सौंपा और अपनी माता जिजाबाई को यह समाचार  
कहला भेजा। माता जिजाबाई को यह सुनकर बड़ा  
दुःख हुआ। वे तुकाराम के पास स्वयं आईं और  
उनसे विनती की कि आप कृपा करके शिवा को  
उपदेश दीजिए जिसमें उसका मन फिर राज्य-पालन  
की ओर लगे। तुकाराम ने जिजाबाई का समाधान  
किया और उसी दिन कीर्तन प्रारम्भ किया। शिवाजी  
महाराज भी कीर्तन सुनने के लिए आये। उस दिन  
के कीर्तन में तुकाराम महाराज ने पहले कर्म-कांड  
का निरूपण करके फिर चारों वर्णों और चारों  
आश्रमों का उत्तम रीति से प्रतिपादन किया। उन्होंने  
श्रोताओं के अन्तःकरण पर यह भी अच्छी तरह  
खचित कर दिया कि अपने अपने वर्णाश्रम धर्म के  
अनुसार चलने की कितनी आवश्यकता है। कीर्तन  
सुनतेही शिवाजी महाराज की वैराग्यवृत्ति ठंडी पड़  
गई और तुकाराम बाबा का प्रसाद और आशीर्वाद  
लेकर अपनी माता सहित वे अपनी राजधानी को  
चलते हुए।



शिवाजी महाराज तुकाराम का कीर्तन सुनने के लिए सदा जाया करते थे। एक बार कीर्तन हो रहा था। सब लोगों की वृत्ति बिलकुल तल्लीन हो गई थी। इतनेही में बादशाह औरंगजेब की तरफ के कुछ पठान शिवाजी को पकड़ने के लिए वहाँ आ पहुँचे। यह हाल सुन कर शिवाजी महाराज ने तुकाराम से जाने के लिए आज्ञा माँगी। परन्तु तुकाराम ने उन्हें आश्वासन देकर बिठाया और बड़े प्रेम और आवेश से विठ्ठलजी को पुकारने लगे। इधर पठान लोग शिवाजी को पकड़ने के लिए भीतर घुसे। पर उन्हें वहाँ शिवाजी देखही न पड़े! श्रोताओं में से एक मनुष्य बाहर निकला था। उसी को शिवाजी समझ कर पठानों ने दूर तक उसका पीछा किया। इस प्रकार यह विघ्न टल गया और कीर्तन समाप्त होने पर शिवाजी सुरक्षित सिंहगढ़ पहुँच गये। इसी प्रकार के अनेक चमत्कार तुकाराम के विषय में प्रसिद्ध हैं।

तुकाराम की अभंगरूपी कविता उदात्त विचारों से परिपूर्ण है। कविता बहुत सरल और प्रेमभाव-पूर्ण है। कहते हैं कि उन्होंने चार करोड़ से अधिक अभंग कहे हैं। वे जो कुछ कहते थे सब अभंगों ही में कहते थे। उपदेश देना छोड़ कर और उन्हें कोई काम ही न था। उन्होंने जन्म भर जो कुछ कहा है सब अभंगों ही में और सब उपदेशात्मक। ऐसी दशा में यदि चार करोड़ से भी अधिक अभंग वे कह गये हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस समय उनके केवल साढ़े चार हजार अभंग प्राप्य हैं, जिनकी एक 'गाथा' पुस्तकाकार छप चुकी है। खोज करने से अभी उनके और भी अभंग मिलने की आशा है। उनकी कविता से जान पड़ता है कि मनुष्यों पर उनका असीम प्रेम था—उनके उद्धार की उन्हें बड़ी चिन्ता थी। उन्होंने धूर्त, पाखंडी, नास्तिक, दाम्भिक और शाक्त लोगों पर तीव्र आक्षेप किये हैं।

यों तो जगत् को विष्णुमय माननेवाले इस महात्मा को कठोर बोलना बहुत बुरा लगता था, पर जीवों के विषय में उसकी दया यह सब कह-

लवाती थी। सच पूछिए तो हितकर्ता के वाग्वात पुष्प के समान सुखदायी होते हैं। उन्होंने अपने अभंगों में दुर्व्यसन, विषयसुख, आलस, अतिनिद्रा और अत्याहार का निषेध किया है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक धार्मिक और नैतिक विषय उन्होंने अपनी कविता में रखे हैं।

शक १५७१ की फाल्गुन कृष्ण द्वितीया आ गई उस दिन तुकाराम महाराज ने अपने शिष्यवर्ग को कहा कि "आज हम वैकुण्ठ जाने वाले हैं"। उन्होंने अपनी पत्नी के यहाँ भी संदेश भेज दिया कि "आज हम वैकुण्ठ जाने वाले हैं सो तुम भी साथ आओ" उनकी पत्नी ने समझा कि ये तो राजही वैकुण्ठ जाया करते हैं—जाते होंगे किसी तीर्थ को। उसी कहला भेजा कि—"मैं पाँच महीने की गर्भवती हूँ लड़के छोटे हैं, इसलिए नहीं आती"। महाराज ने अपने पूर्वजों के मन्दिर में पहले तो शिष्यों को कुछ उपदेश दिया। इसके बाद वे नामस्मरण करते हुए मन्दिर के बाहर निकले। इस समय उनके साथ चौदह शिष्य थे। किसी को इस बात की कल्पना भी न थी कि तुकारामजी कहाँ जाते हैं। अपने शिष्यों के साथ वे इन्द्रायणी नदी के तीर आये वहाँ उन्होंने पच्चीस अभङ्ग बना कर कीर्तन किया इतने ही में क्या चमत्कार हुआ कि तुकाराम का सारा शरीर अत्यंत दिव्य और तेजःपुंज हो गया। तेज के कारण सबकी आँखें चमकमा गईं। देवता वहाँ आये और तुकाराम को विमान पर बिठा लिया और चलते हुए। तुकाराम अदृश्य हो गये। सब शिष्य शोकमग्न हो गये। तुकाराम महाराज की स्त्री जिजाबाई को अपने पति के वैकुण्ठ-प्रयाण की खबर मिली तो उसे बहुत दुःख और पश्चात्ताप हुआ। \*

\* यह घटना बहुत प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र के बड़े कवि एम० ए० बी० ए० लोगों का भी इस पर विश्वास है और तुकाराम जी के समकालीन स्वामी रामदास आदि साधु ने भी अपनी कविता में इस घटना का जिक्र किया है।

लेखक



तुकाराम ने अपनी पत्नी को यद्यपि कर्कशा कहा है, पर थी वह पूर्ण पतिव्रता । महाराज तो वन वन घूमा करते थे और ईश्वरभजन में लगे रहते थे । उनकी पत्नी ही इधर उधर से माँग कर अपने लड़कों का पालन करती थी । वह रोटी की पोस्टरी लिये तुकाराम को वन वन ढूँढती थी और जब उन्हें खिला लेती थी तब खाती थी । कभी कभी जब वे न मिलते थे तब भूखी ही रह जाती थी । वह कभी कभी तुकाराम महाराज को घर में लाकर रखती थी । उनके वैकुण्ठ जाने के समय महादेव और विठोबा नाम के दो पुत्र और काशी, भागीरथी, गङ्गा नाम की तीन पुत्रियाँ थीं । जो पाँच महीने का गर्भ में था वह पुत्र पीछे से नारायण बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वह बड़ा भगवद्भक्त हुआ । उस समय के उत्तम कीर्तनकारों में उसके नाम पर प्रथम उँगली पड़ती थी । कदाचित् कोई यह आक्षेप करेगा कि जिन के इतने बाल-बच्चे थे उनकी ऐसी सुगति कैसे हो सकती है । ऐसे लोगों से यह प्रार्थना है कि वे प्राचीन समय के यमदग्नि, वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों का चरित देखें । यही तो चमत्कार है कि गृहस्थधर्म का पालन करना; पर किसी भी विषय-सुख में आसक्त न होना ! महासाधु तुकाराम जी सब कुछ करते थे और कुछ भी न करते थे—वे जो कुछ करते थे वह सब विट्ठल-मय या परब्रह्ममय था । चाहे कोई उसे स्वार्थ कहे चाहे कोई परमार्थ ।

तुकाराम का वैकुण्ठवास हो जाने पर उनके साथी शिष्य तीन दिन तक उसी स्थान में इस आशा से बैठे रहे कि वे लौट आवेंगे । वे तो नहीं लौटे; पर तीसरे दिन, अर्थात् पंचमी को, उनकी करताल, गुदड़ी और कुछ अंभग नीचे लौट आये । शिष्यों ने समझा कि बस अब यही उनका अन्तिम दर्शन है ।

तुकोबा ने हिन्दी में भी कविता की है । एक पद्य सुन लीजिए । इससे उस समय की दक्षिणी हिन्दी का नमूना देखने को मिल जायगा—

बार बार काहे मरत अभागी ।  
बहुरि मरन से क्या तोरे भागी ॥ १ ॥  
यहि तन करते क्या न होय ।  
भजन भगति करे वैकुण्ठै जाय ॥ २ ॥  
राम नाम मोल नहि कवरी ।  
वही सब माया लुड़ावत सगरी ॥ ३ ॥  
कहे तुका मनसुं मिल राखो ।  
रामरस जिन्हा नित चाखो ॥ ४ ॥

लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

## क्रप का कारखाना ।



रप और अमेरिका के प्रायः सब देशों में ईसपात ढालने के कारखाने हैं । पर जर्मनी के विख्यात क्रप साहब का कारखाना सब कारखानों का सिरमौर है । दुनिया के सारे देश लड़ाई की तोपों के लिए क्रप काही मुँह ताकते हैं । जिस एक उद्योगी पुरुष ने जर्मनी का सिर सारे संसार में ऊँचा किया उसका एवं उसकी सन्तान का कुछ हाल लिखना, सम्भव है, पाठकों को मनोरञ्जक हो ।

जर्मनी के डूसलड्राफ प्रान्त में रीन नदी के किनारे लोहे की बढ़िया बढ़िया खानें हैं । उसी प्रान्त में ईसन नाम की एक छोटी सी बस्ती है । इसी बस्ती में क्रप साहब ने लोहा ढालने का एक छोटा सा कारखाना सन् १८१० के लगभग बनाया । उस समय इंगलिस्तानवाले ही ईसपात का ढालना जानते थे । वे इस फन को और किसी देशवाले को नहीं बताते थे । फ्रडरिक क्रप साहब को भी ईसपात ढालने का शौक पैदा हुआ, जिसमें कामयाब हो जाने से उन्हें उम्मेद थी कि वह अपने छोटे से कारखाने से लाखों रुपया पैदा कर लेंगे । आप ईसपात ढालने की परीक्षाएँ करने लगे । सच है, उद्योगी पुरुष सब कुछ कर सकते हैं । सफलता



न प्राप्त होने पर भी क्रप साहब निरन्तर अपने उद्योग में लगे रहे। पर, अफसोस, उन्हें अपने उद्योग का फल भोगना नहीं बड़ा था। ईसपात ढालने की हिकमत उन्हें तब मालूम हुई जब मौत ने अपना डंका उनके सिर पर बजाना शुरू कर दिया। फ़डरिक क्रप को जब यह मालूम हो गया कि उनकी जिन्दगी के दिन थोड़े हैं तब उन्होंने अपने १४ वर्ष के लड़के को ईसपात ढालने की कुंजी बता दी और वह सन् १८२६ में ३९ वर्ष की उम्र पाकर मर गया। उस छोटे से झोपड़े को जिसमें फ़डरिक क्रप रहा करता था उसकी यादगार के लिए फ़डरिक क्रप के अधिकारियों ने ज्यों का त्यों अपने ईसन के विश्वविख्यात कारख़ाने में संरक्षित रखा है।

फ़डरिक क्रप के लड़के का नाम अलफ़्रड क्रप था। पिता के मर जाने पर उसने भी अपने पिता का अनुकरण किया। उसने ईसपात के चम्मच बनाने की हिकमत ईजाद की, जिसके फ़ायदे से वह अपने पिता के बताये हुए फन की परीक्षायेँ करते करते और भी तरक्की करता गया। सन् १८५१ में लंदन की नुमायश हुई। इंगलिस्तान के ईसपात ढालनेवालों में से एक ने वहाँ २० टन, याने ५४० मन, का ढला हुआ ईसपात का एक टुकड़ा भेजा। ढालनेवाले को बड़ा गर्व था कि उसकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। पर जब ईसन जैसी अनजान बस्ती से क्रप ने ४० टन, याने १०८० मन, का ढला हुआ ईसपात का एक टुकड़ा नुमायश में भेजा तब तो दुनिया की आँखें खुल गईं और इंगलिस्तान के ईसपात ढालनेवालों का गर्व चूर हो गया।

सन् १८५५ में पेरिस की नुमायश हुई। वहाँ अलफ़्रड क्रप ने योरप को और भी हैरत में डाल दिया। उसने वहाँ १०० टन याने २७०० मन, का ढला हुआ ईसपात का एक टुकड़ा भेजा। इसके साथही उसने १२ पौंड बारूद खानेवाली ईसपात की ढली हुई एक तोप भी भेजी। इसके पहले योरप में तोपें ब्रांज़ याने पीतल और लोहे की ढलती थीं।

ईसपात की ढली हुई तोप को देखकर योरप के सब बादशाह क्रप को अपनी मुट्ठी में करने की कोशिश करने लगे। फ़्रांस के लुई नेपोलियन ने क्रप को ३०० तोपें बनाने का हुक्म दिया, पर क्रप ने इसे नामंजूर किया। जर्मनी और फ़्रांस के बीच पुराना वैर था। इसलिए क्रप ने अपने देश का मान रखने के लिए फ़्रांस को तोपें न दीं। क्रप के कारख़ाने को आज भी इस बात का गर्व है कि उस कारख़ाने की बनी हुई एक तोप भी आज तक फ़्रांस के हाथ नहीं बँची गई। धन्य है योरपवासियों को ! मातृभूमि का मान रखना तुम्हों को मालूम है ! देशहित के लिए करोड़ों का नुक़सान उठाना विधाता ने तुम्हों को सिखाया है !!! अलफ़्रड क्रप ने ३२ वर्षों के भीतर करोड़ों रुपये पैदा कर लिये। सन् १८८७ में अलफ़्रड भी सारी सम्पत्ति अपने लड़के फ़डरिक अलफ़्रड क्रप के लिए छोड़ कर मर गया।

फ़डरिक अलफ़्रड क्रप के लिए जो सम्पत्ति उसका पिता छोड़ गया था उसका उसने बड़ा ही सदुपयोग किया। उसने अपने कारख़ाने का वंदोबस्त समय के अनुसार एक कमिटी के अधीन कर दिया। काम करनेवालों के आराम पर बड़ा ध्यान दिया गया, जिसका यह नतीजा हुआ कि उसका कारख़ाना दुगना-तिगुना हो गया और फ़डरिक अलफ़्रड क्रप जर्मनी में सबसे बड़ा धनी बन बैठा। लोहारी के काम काज की ओर से खिंच कर क्रप का मन साहित्य और चित्रकारी की ओर झुक गया। योरप के अनेक राजे महाराजे उसके मित्रों में गिने जाने लगे। चारों ओर से बड़ी बड़ी उपाधियों की बैछाई होने लगीं। पर तोप बनानेवाले विश्वकर्मा तोपों के राजा क्रप ने इन पदवियों को लेना नामंजूर किया। उपाधिधारी के बदले उसे साधारण मनुष्य कहलाना प्रिय था। उन्नीसवीं शताब्दी की नई रोशनी में कब हो सकता था कि क्रप बड़े बड़े आदमियों के भोजनों और नाच-रंगों में न शामिल होता ? क्रप का ऐसी सोसाइटी में फँसना उसके दुख का कारण हुआ। क्रप को मन्दाग्नि-रोग हो गया। संसार के सारे



पदार्थ केवल उसके देखने के लिए रह गये। उसका हाजमा यहाँ तक बिगड़ गया कि उसके अंतिम दिनों में उसके पास सदा एक डाकूर मौजूद रहता था। सन् १९०२ में काल-सर्प ने इसे भी डस लिया। उत्तराधिकारिणी इसकी बेटी हुई। उस समय इसकी सम्पत्ति ६० करोड़ रुपये की कूती गई थी। पर अब जमाना ७ वर्षों का हो गया। रूस-जापान युद्ध भी हो गया। अब तो उसके पास अरब खरब तक की नौबत पहुँची होगी।

कप का कारखाना संसार में एक अचंभे में डालनेवाली चीज़ है। इस कारखाने में तोपें ही नहीं बनतीं, सैकड़ों तरह के हथियार भी बनते हैं। इसकी एक शाखा ऐसी भी है जिसमें बड़े बड़े लड़ाकू जहाज़ तैयार होते हैं। लोहे की खाने भी इसकी निज की हैं। कोयला भी इसे औरों से मोल नहीं लेना पड़ता। अपनी ही खानों का कोयला इसमें काम आता है। यह कारखाना इतना बड़ा है, और इसका कार्य-क्रम ऐसा सुव्यवस्थित है कि यदि किसी उजाड़ टापू में यह रख दिया जाय तो भी इसका काम बन्द न हो। इस दशा में भी यह अपना काम प्रायः पूर्ववत् जारी रखे। स्वावलम्बन के नियमानुसार काम की व्यवस्था करने का यह फल है।

जो लोग इस कारखाने में काम करते हैं उन्हें वेतन तो बहुत नहीं मिलता; परन्तु यहाँ के कार्य-कर्त्ताओं में एक प्रकार की कुटुम्बीयता सी रहती है। किसी को यह खयाल नहीं होता कि मैं नौकर हूँ। हर आदमी इस कारखाने को अपनी ही चीज़ समझता है। इस कारखाने में काम करके किसी किसी को आमरण भोजन-वस्त्र की कमी नहीं रहती। कारखाने में काम करनेवालों के लिए तो खाने, पीने, लेटने, बैठने, खेलने और पढ़ने आदि का प्रबन्ध है ही। उसकी तो कुछ बात ही नहीं। जो लोग काम के लायक नहीं रहते उनकी एक अलग बस्ती है। वहाँ केवल पेन्शनपानेवाले कर्मचारी रहते हैं। उनके लिए अलग बाज़ार, अलग दुकानें, अलग

अस्पताल, अलग दवाखाने, अलग स्कूल, अलग खेलघर हैं। किसी को किसी चीज़ के लिए औरों का मुँह नहीं ताकना पड़ता।

इस कारखाने में गोप्य भाव का बड़ा खयाल रहता है। गोपनीय कागज़-पत्र और नक़्शे बड़ी होशियारी से लोहे की सन्दूकों में बन्द रहते हैं। जो अधिकारी या इंजीनियर जिस काम को करता है वह अपना भेद और किसी पर नहीं प्रकट होने देता। यहाँ तक कि दफ़्तर के भीतर भी कागज़-पत्र सन्दूकों में भर कर और ताले लगा कर एक कर्मचारी दूसरे के पास भेजता है। जो जिस काम को करता है उसे उतने ही का ज्ञान रहता है। दूसरे के काम की बाबत ज्ञान प्राप्त करने का उसे मौकाही नहीं दिया जाता। मतलब यह कि कारीगर इस कारखाने का भेद औरों को न बता दें, अथवा खुद ही कोई कारखाना खोलने की चेष्टा न करें।

इसकी बनी हुई तोपें बड़ी ही मजबूत होती हैं, दागने पर इनके भीतर गोले के फट जाने से भी ये बरबाद नहीं होतीं—प्रायः कुछ भी नहीं बिगड़तीं। बराबर वे काम दिये जाती हैं। इसकी कोई कोई तोप २५ मन वज़नी गोला फेंकती है। इस कारखाने की बनी हुई तोपों और लड़ाकू जहाज़ों की माँग बहुत बढ़ रही है। इससे इसमें पहले से अधिक फुरती से काम होने का प्रबन्ध किया गया है। जर्मन-नरेश कैसर इसे बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। इस पर वे बड़ी कृपा करते हैं।

कई वर्ष हुए इस कारखाने में आग लग गई। अनन्त बहुमूल्य नक़्शे और कागज़-पत्र जल गये। पर, नया कारखाना, जो अब बना है वह, पुराने से भी अच्छा और बड़ा है।

सीताराम



## सती की प्रथा ।



ति के मृत देह, अथवा पादुकाद्वय, के साथ जलती हुई चिता में स्त्री का प्राण-विसर्जन करना सती होना कहलाता है। इस प्रथा के शास्त्रोक्त नाम “अनुमरण” “सहमरण” अथवा “सहगमन”

हैं। खड़ाँऊ सहित स्त्री की चितारोहण-विधि ब्रह्म-पुराण में दी गई है। यथा :—

देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् ।

निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥

परन्तु ब्राह्मण-सम्प्रदाय के लिए यह विधि निषिद्ध है। यथा:—“पृथक्चित्तिं समारुह्य न विप्रो गन्तुमर्हति”

महाभारत में लिखा है:—स्वामी के मरने पर क्रोध, भय, या मोह से भी जो स्त्रियाँ मर जाती हैं वे भी पवित्र हो जाती हैं।

अति प्राचीन काल में भारतवर्ष ही में नहीं किन्तु पृथिवी के अन्य देशों में भी सती होने की प्रथा थी। ग्रीक-इतिहासवेत्ता, डायोडोरस साईक्युलस (Diodorus Siculus) और प्राचीन रोमन ग्रन्थकार, प्रोपर्टियस (Propertius) ने इस प्रथा का उल्लेख किया है। पूर्व काल में उत्तर यूरोप में सहमरण की रीति प्रचलित थी। ग्रीस के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता, हेरोडोटस् (Herodotus) ने लिखा है कि जब थेस-वासी किसी पुरुष की मृत्यु होती थी तब उसकी समाधि पर उसकी स्त्री को मार कर मृतक के सहित समाधिस्थ कर देते थे। ओशीयना द्वीप (Oceana) की स्त्रियाँ भी सती हुआ करती थीं। चीन देश में भी यह रस्स पूरे तौर से थी। यवद्वीप अर्थात् जावा के आस पास अब तक यह रस्स चली आती है।

जैसे ऊपर कहा गया है, महाभारत के समय इस देश में यह प्रथा प्रचलित थी। “राजतरंगिणी” ग्रन्थ के अनुसार कलियुग के ६५७ वर्ष बीतने पर कौरव-पाण्डवों का समय प्रतीत होता है।

इस विचार से (यदि यह मत स्वीकृत हो) न्यूनाधिक ४५०० वर्ष पूर्व इस देश में यह प्रथा वर्तमान थी। परन्तु पुराणादि से मालूम होता है कि उस समय में भी सब आर्य-विधवायें पति का अनुगमन न करती थीं। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा कुन्ती इत्यादि सती नहीं हुईं।

७० वर्ष पहले बंगाल में इसका बहुत रिवाज था

सती की प्रथा को निवारण करने की चेष्टा भारत वर्ष में सबसे पहले मुगल-सम्राट अकबर की। उसके एक सेनापति, जयमल्लसिंह, के मरण पर उस की स्त्री को चितारोहण से रोक कर, अकबर ने उसके पुत्र उदयसिंह पर मातृहत्या की चेष्टा करने का अपराध लगाया और उसे कैद किया फिर उसने यह मनादी करा दी कि कोई स्त्री बिना उसकी इच्छा के जबरदस्ती सती न की जावे। पर जहाँगीर के राज्य में जयपुराधिपति महाराजा मालसिंह की ६० रानियाँ उनके शव के साथ सती हुईं। मारवाड़ के राजा अजितसिंह की ५ रानियाँ और ५८ दासियों ने चितानल में शरीर-विसर्जन किया। सन् १८४० ईसवी में, जब राजा रंजीतसिंह का देहान्त हुआ तब, उसकी ४ रानियाँ और ७ दासियाँ सती हुईं।

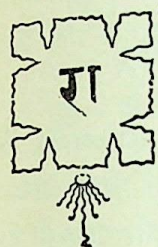
४ दिसम्बर, १८२९ ईसवी से इस प्रथा को लार्ड विल्यम बेंटिक ने बिलकुल ही बंद कर दिया यथा :—

दी उसने मिठा हिन्द से यों रस्स सती की।  
गोया वह सती हो गई उस अहदये कुहन पर  
(हाली)  
त्रिलोकचन्द



## आख्यायिका ।

### खानखाना और सुमेरु पर्वत ।



जा रुद्रदेव बड़ा दानी था । एक कवि देवता उसकी सभा में उपस्थित हुए और कहने लगे—महाराज, कल मैंने मार्ग में सायङ्काल एक अजीब बात सुनी । आपसे निवेदन करना चाहता हूँ । सुनिए :—

कतिपयदिवसैः क्षयं प्रयायात् कनकगिरिः कृतवासरवसानः ।  
इति मुदमुपयाति चक्रवाकी वितरणशालिनि वीररुद्रदेवे ॥

हे नृप ! आपकी दानशीलता को देख कर चक्रवाकी इस कारण खुशी मना रही थी कि यदि वीर रुद्रदेव इसी तरह दान देना जारी रखेंगे तो सोने का यह सुमेरु गिरि कुछ दिनों में अवश्य ही चुक जायगा । फिर क्या है । फिर कभी रात न होगी । सदा दिन ही बना रहेगा और मेरा वियोग मेरे स्वामी चक्रवाक से कभी न होगा ।

इस युक्ति से कवीश्वरजी का क्या आशय था, सो तो पाठक समझ ही गये होंगे । मालूम नहीं, राजा रुद्रदेव ने कहाँ तक उनकी इच्छा पूर्ण की । परन्तु, इस श्लोक की बदौलत एक और कवि का भला अवश्य हो गया । पूर्वोक्त श्लोक कुवलयानन्द का है । अब इसके विषय में प्रोफेसर आज़ाद अपनी किताब दरवारे-अकबरी में क्या फरमाते हैं, सो भी उन्हीं के शब्दों में सुन लीजिए :—

अहल हिन्द का खयाल है कि सूरज हर शाम को सुमेरु के पीछे चला जाता है और वह सोने का एक पहाड़ है । उन्होंने यह भी फर्ज किया है कि चक्रवा-चकई दिन को साथ रहते हैं, रात को दरिया के वार पर अलग अलग जा बैठते और रात भर जाग कर काटते हैं । एक भाट ने चक्रवा-चकवी की जबानी नवाब अब्दुरहीम खानखाना से कवित्त कहा, जिसका खुलासा यह कि, खुदा करे खान-

खाना का समन्द फ़तहात सुमेरु पहाड़ तक जा पहुँचे । वह बड़ा सखी है । सब बढ़ा देगा । फिर हमेशा दिन रहेगा और हम तुम मौज करेंगे । जब यह कवित्त पढ़ा गया । तमाम अहल दरबार ने तारीफ़ की कि नया मज़मून है । खानखाना ने पूछा कि पंडितजी तुम्हारी उम्र क्या है । अर्ज की कि ३५ बरस । कुल १०० बरस की उम्र लगाई गई और ५ रुपये रोज के हिसाब से ६५ बरस का जो कुछ रुपया हुआ खजाने से दिलवा दिया ।

आज़ाद यदि पंडितजी का कहा हुआ कवित्त भी लिख देते तो बहुत ही अच्छा होता । मज़मून पंडितजी के लिए तो नया न था, हाँ खानखाना के लिए नया ज़रूर था और उसने क़दरदानी भी खूब की ।

## विविध विषय ।

### १—बरोदा-राज्य में ग्रामीण पुस्तकालय ।

महाराजा बरोदा बड़े प्रजावत्सल, बड़े विद्याप्रेमी और शिक्षाप्रचार के बड़े ही पक्षपाती हैं । अपनी प्रजा को शिक्षित बनाने के उपायों की वे सदा नई नई योजना किया करते हैं । उन्होंने अपने राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त में दी जाने का प्रबन्ध कर दिया है । अब वे गाँव गाँव में पुस्तकालय स्थापित करने की फ़िक्र में हैं । राजा दिलीप के विषय में कालिदास का यह कहना कि :—

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः

महाराजा बरोदा ऐसे राजों के लिए भी तद्वत् चरितार्थ होता है । अभी हाल में महाराज ने तीस हजार रुपया इसलिए मंज़ूर किया है कि उससे उनके राज्य में सब कहीं पुस्तकालय और वाचनालय खोले जायँ । जितना रुपया गाँववाले हर साल आपस में चन्दा करके अखबारों और सामयिक पुस्तकों के



लिए जमा करेंगे उतनाही राज्य से भी इस काम के लिए दिया जायगा। परन्तु २४ रुपये साल से अधिक न खर्च किया जायगा। विद्या, विज्ञान और कला-कौशल से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों के लिए यदि गाँववाले सौ रुपये एकत्र करके राज्य के विद्याधिकारी के पास भेजेंगे तो राज्य से भी उतना ही रुपया दिया जायगा। इस तरह दो सौ की पुस्तकें प्रत्येक देहाती पुस्तकालय को मिल जायँगी। इसके सिवा राज्य के भाषान्तर-भाण्डार में जो पुस्तकें होंगी वे भी इन पुस्तकालयों को मुफ्त दी जायँगी। प्रधान प्रधान नगरों के लोकल बोर्ड्स भी समाचार-पत्र खरीदने के लिए इन देहाती वाचनालयों को कुछ रुपया देंगे। मतलब यह कि इन कामों के लिए रुपये की कमी न रहेगी। गत वर्ष के हिसाब से मालूम होता है कि राज्य ने इस निमित्त बहुत सा रुपया खर्च किया और महाराज की प्रज्ञाने भी उनकी इस उदारता से खूब लाभ उठाने की चेष्टा की। इतने थोड़े समय में इस तरह के १७२ पुस्तकालय राज्य के गाँवों में स्थापित हो चुके हैं। उन सब में इस समय कोई २८ हजार की पुस्तकें हैं। इन पुस्तकालयों पर देहाती पाठशालाओं के अध्यापकों की निगरानी रहेगी।

## २—बँगला-वर्णमाला की खोज के लिए पुरस्कार ।

विद्या और विज्ञान-सम्बन्धी नई नई खोज से पूर्ण निबन्ध लिखनेवालों को कलकत्ते का विश्व-विद्यालय हर साल एक पुरस्कार देता है। उसका नाम है “जुबली रिसर्च प्राइज”। १९१२ ईसवी के पुरस्कार के लिए विश्वविद्यालय के रजिस्टार ने दो विषय चुने हैं। एक तो गणितशास्त्र से सम्बन्ध रखता है, दूसरा बँगला-भाषा की वर्णमाला से। इस दूसरे विषय पर जो निबन्ध लिखा जायगा उसमें बँगला की वर्णमाला की उत्पत्ति और क्रमविकास का प्रमाण इतिहास रहेगा। यह निबन्ध ३० जून १९१२ तक रजिस्टार के पास पहुँच जाना चाहिए। विषय

बड़ा ही उपयोगी और मनोरञ्जक है। बड़े बड़े विद्वान इस पर निबन्ध लिखेंगे। आशा है, इन निबन्धों के प्रकाशित होने पर बँगला-भाषा की वर्णमाला सम्बन्ध में बहुत सी नई नई बातें मालूम होंगी।

## ३—जपान के समाचार-पत्र ।

इसे देश में जो नया कानून छापेखानों सम्बन्ध में जारी हुआ है उसे बहुत लोग अच्छे नहीं समझते। समझदार आम्हियों की राय है कि उससे विद्या और शिक्षा के प्रचार में बहुत बाधा उपस्थित होती है। कितने ही छापेखाने और समाचार पत्र इसी के कारण बन्द हो गये हैं। बड़ी बड़ी रकमें जमानत के तौर पर माँगी जाती हैं। छापेखानों के मालिक उन्हें नहीं दे सकते। फल यह होता है कि छापाखाना बन्द करना पड़ता है। हमारे पाठकों में से शायद बहुतों को न मालूम होगा कि जपान में छापेखानों से सम्बन्ध रखनेवाला कानून यहाँ से कम कड़ा नहीं है। वहाँ पर समाचार-पत्र निकालने, छापने और सम्पादन करने के लिए लाखों संस तो लेना ही पड़ता है। यह तो कोई बात नहीं। इसके सिवा एक से लेकर बीस हजार तक (जपान के सिक्के का नाम) तक की जमानत देनी पड़ती है। कुछ दिनों से समाचार-पत्रों के लेखक और संवाददाता भी इस कानून की सीमा भीतर आ गये हैं। इतना कड़ा कानून होने पर भी इतनी सख्ती की जाने पर भी—जपान में छापेखाने और समाचारपत्रों की अश्रुतपूर्व उन्नति हुई है और होती जाती है। सामयिक पत्रों और पुस्तकों को छोड़कर सोलह दैनिक पत्र जपान की राजधानी टोकियो से निकलते हैं। केवल अँगरेजी में निकलनेवाले पत्र जहाँ हैं, उनकी गिनती इसमें नहीं। पाँच हजार से लेकर डेढ़ लाख तक कापियाँ इनमें से प्रत्येक की निकलती हैं। योकाहामा और ओसाका का भी यही हाल है। ओसाका के एक पत्र का नाम है—“ओसाका असही न्यूज”। इसकी दो लाख कापियाँ निकलती हैं छोटे छोटे शहरों तक से दैनिक पत्र निकलते



कोगाशीमा एक क़सबा है। वह पचास हजार से अधिक की बस्ती नहीं। वहाँ से भी एक पत्र प्रति दिन निकलता है। छः हजार कापियाँ उसकी वहाँ विक जाती हैं, तीन हजार बाहर जाती हैं। जपानियों की विद्याभिरुचि का यह हाल है।

## ४—अंगरेजी में नया विश्वकोश ।

अंगरेजी में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका नाम का एक प्रचण्ड ग्रन्थ है। उसे विश्वकोश कहना चाहिए। विद्या, विज्ञान, इतिहास, जीवनचरित आदि से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें हैं सब पर उस में लेख हैं। १७६८ ईसवी में यह ग्रन्थ पहले पहल तीन जिल्दों में प्रकाशित हुआ। क्रम क्रम से उसकी जिल्दों की संख्या बढ़ती गई। उसके दसवें संस्करण को निकले कोई दस वर्ष हुए। उसमें ३५ जिल्दें हैं। तीन चार सौ रुपये इस समग्र ग्रन्थ का मूल्य है। अब तक इसका स्वत्व लन्दन के “टाइम्स” नामक समाचारपत्र के अधिकारियों के हाथ में था। अब उन्होंने अपने स्वत्व को केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय को बेच दिया है। यह विश्वविद्यालय इस ग्रन्थ की ग्यारहवीं आवृत्ति निकालनेवाला है। यह काम कई वर्षों से हो रहा है। शायद शीघ्र ही अब यह आवृत्ति निकल जाय। इस आवृत्ति का सम्पादन-कार्य बड़े बड़े विद्वानों को दिया गया है। इसमें अब की दफ़े केवल २८ जिल्दें रहेंगी। कई तरह के कागज़ पर यह आवृत्ति छपेगी। कुछ कागज़ ऐसा रहेगा जिससे जिल्दों का वज़न बहुत कम हो जायगा। वर्तमान जिल्दें इतनी भारी हैं कि बिना मेज़ पर रखे इन्हें पढ़ते नहीं बनता। यह कठिनता अब दूर हो जायगी। इसकी तैयारी में लाखों नहीं, करोड़ों रुपया खर्च होगा। पन्द्रह पन्द्रह, बीस बीस हजार रुपया इसके लेखकों को एक एक लेख के लिए दिया जाता है। विक्री भी इसकी बेहद होती है। दसवें संस्करण की बावन हजार कापियाँ सिर्फ़ ग्रेटब्रिटेन में विकीं। अमेरिका में कोई चार लाख कापियाँ हाथों हाथ विक गईं। और देशों में भी इसकी बड़ी

विक्री हुई। इसीसे इस बात का अनुमान करना चाहिए कि यह ग्रन्थ कितने महत्त्व का है।

## ५—विलक्षण बौने ।

इंग्लैंड में एक सभा है जिसका उद्देश मनुष्य की नई नई जातियों का पता लगाना और उनके स्वभाव आदि की जाँच करना है। वाल्टर गुडफेलो नाम के एक साहब इस सभा के मेम्बर हैं। न्यूगिनी नामक टापू के आदिम निवासियों और वहाँ के जीव-जन्तुओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत दिनों तक उन्होंने वहाँ भ्रमण किया है। कुछ समय हुआ, लन्दन के टाइम्स नामक समाचार-पत्र में उनका भेजा हुआ एक तार प्रकाशित हुआ था। उन्होंने उसमें लिखा है कि इस टापू के चार्ल्स लुई नामक पर्वत पर बौनों की एक बड़ी ही विलक्षण जाति है। इनकी उँचाई चार फुट तीन इंच है। रंग इनका आबनूस की तरह काला है, नाक चौड़ी और चिपटी है, बाल घुँघराले हैं, हाथ लंबे हैं। ये बौने नरभक्षी नहीं। जो लोग इनके यहाँ पहुँच जाते हैं उनका ये जी खोल कर आतिथ्य करते हैं। ये बड़े चतुर शिकारी हैं। मछली का भी ये शिकार करते हैं। शिकार ही इनकी जीवन-रक्षा का एक मात्र उपाय है। इनका प्रधान शस्त्र धनुष है। बाण इनके विक-राल विष में बुझे हुए होते हैं। उनके प्रहार से बड़े से बड़े जंगली जानवर मर कर गिर जाते हैं। भाले से भी ये लोग काम लेते हैं। इसके चलाने में भी ये बड़े प्रवीण हैं। इनकी स्त्रियों में बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित है। कई भाइयों के बीच में एक ही स्त्री होती है। इनके विषय में अभी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करना बाकी है।

## ६—प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार ।

जैन मत के अनुयायियों का न्यायशास्त्र-सम्बन्धी यह बड़ा ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके कर्ता जैन-महापण्डित श्रीवादिदेवसूरिजी हैं। विक्रम संवत् के बारहवें शतक में ये विद्यमान थे। ये श्वेताम्बर सम्प्रदाय के थे। दिगम्बर-सम्प्रदाय के नैयायिक



कुमुदचन्द्र सूरि के साथ इनका शास्त्रार्थ अणहिलपुर में हुआ था। वहाँ का राजा सिद्धराज इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ था। उसने विजय का सेहरा वीरदेव-सूरि ही के सिर पर बाँधा था। रत्नप्रभाचार्य ने इस ग्रन्थ की टीका संस्कृत गद्य-पद्य में की है। उसका नाम है—रत्नाकरावतारिका। यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है और आठ परिच्छेदों में विभक्त है। उनमें से पहले चार परिच्छेद, गुजरात के उम्भा-नगर-निवासी सेठ नगीनदास छगनलाल वैद्य ने निर्णयसागर प्रेस में छपा कर प्रकाशित किये हैं। उन्हीं से यह पुस्तक मिल सकती है। ग्रन्थ में मूल के सिवा रत्नाकराव-तारिका टीका भी है और पण्डित वंशीधर-विरचित उसका हिन्दी-अनुवाद भी। ग्रन्थ बहुत उत्तम छपा है। जिल्द भी मनुहार है। इसमें प्रतिपादन किये गये विषय कैसे हैं, इसके कोटिक्रम कैसे हैं, इसमें जिन बातों का वर्णन है वे ठीक हैं या नहीं—इन प्रश्नों का विचार नैयायिक ही कर सकते हैं। हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि इसकी टीका के हिन्दी-अनुवाद की भाषा जरा पुराने ढंग की है—कुछ कुछ पण्डिताऊ है, कहीं कहीं पर उसे समझने में प्रयास भी पड़ता है। प्रस्तावना के दूसरे पृष्ठ पर जो दूसरा श्लोक है उसमें कुछ गड़बड़ भी मालूम होती है; और “कः कण्ठीरव-कण्ठकेसरसटाभारं स्पृशत्यङ्घ्रिणा” इसका जो अर्थ किया गया है:—“वह मानो सिंह की सटा को हाथ से उखाड़ता है”—वह भी चिन्त्य है। ‘अङ्घ्रिणा’ का अर्थ किस जैन-कोश या व्याकरण के अनुसार ‘हाथ’ से होता है, नहीं कह सकते। पुस्तक का मूल्य मालूम नहीं।

### ७—महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी का परलोकवास ।

बड़े दुःख, शोक, सन्ताप और परिताप की बात है कि महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी का गत नवम्बर में शरीरपात हो गया। आप की आकस्मिक मृत्यु हुई। अभी दो महीने पहले आपको हिन्दी के सैकड़ों प्रेमियों ने काशी में नीरोग और सर्वथा

स्वस्थ देखा था। कुछ भी संभावना न थी कि इतना शीघ्र आप इस लोक से प्रस्थान कर देंगे। पर, काल की गति विचित्र है। वह समय असमय की कुछ भी परवा नहीं करता। आप की उम्र अभी केवल ५५ वर्ष की थी। आप काशी के क्रीन्स कालेज में गणित के अध्यापक थे। अच्छा वेतन पाते थे। सरयूपार ब्राह्मण थे। काशी के पास खजुरी नामक गाँव में रहते थे। गणित के सिवा ज्योतिष के भी आप उत्तम ज्ञात थे। संस्कृत और हिन्दी में आपने कितनी ही पुस्तकें लिखीं और सम्पादित की हैं। संस्कृत के पण्डित हिन्दी का अनादर करते हैं। पर आप उसका आदर करते थे; उसमें पुस्तकें लिखते थे; उसमें कविता भी करते थे। तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास और दादू ग्रन्थों से आपको बड़ा प्रेम था। सुनते हैं, उनके आप समझते भी खूब थे। आप के पाण्डित्य और लेखन-कौशल की प्रशंसा डाकूर ग्रियर्सन जैन विलायतवासी विद्वान् ने की है। आप यथा ज्योतिषी थे और जन्मपत्र आदि बनाते और उनका फल भी कहते थे तथापि फलित ज्योतिष पर आपका विश्वास न था। यह बात आपने अपने एक पत्र में कही है, जिसे पण्डित जनार्दन जोशी ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है। आप विलायत-यात्रा के पक्षपाती थे। आप की विद्वत्ता को देखकर गवर्नर ने आपको महामहोपाध्याय की पदवी दी थी। ऐसी बात है, ऐसे योग्य और आदरणीय विद्वान् काशी खाली हो गया।

### चित्र-परिचय ।

इस दफ्ते की इलाहाबाद वाली कांग्रेस के सभापति सर विलियम वेडरबर्न का सचित्र जीवन-चरित्र अन्यत्र प्रकाशित है। कांग्रेस की अभ्यर्थना-कमिटी चैयरमैन राय बहादुर, माननीय, पण्डित सुन्दरलाल का भी चित्र इस अंक में प्रकाशित किया जाता है। पण्डित महाशय का विशेष परिचय सरस्वती पाठकों को, कई वर्ष हुए, पहले ही दिया जा चुका है।



सरस्वती



राय बहादुर, माननीय पण्डित सुन्दरलाल, सी० आई० ई० ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।





ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



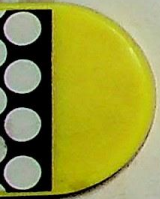
सरस्वती



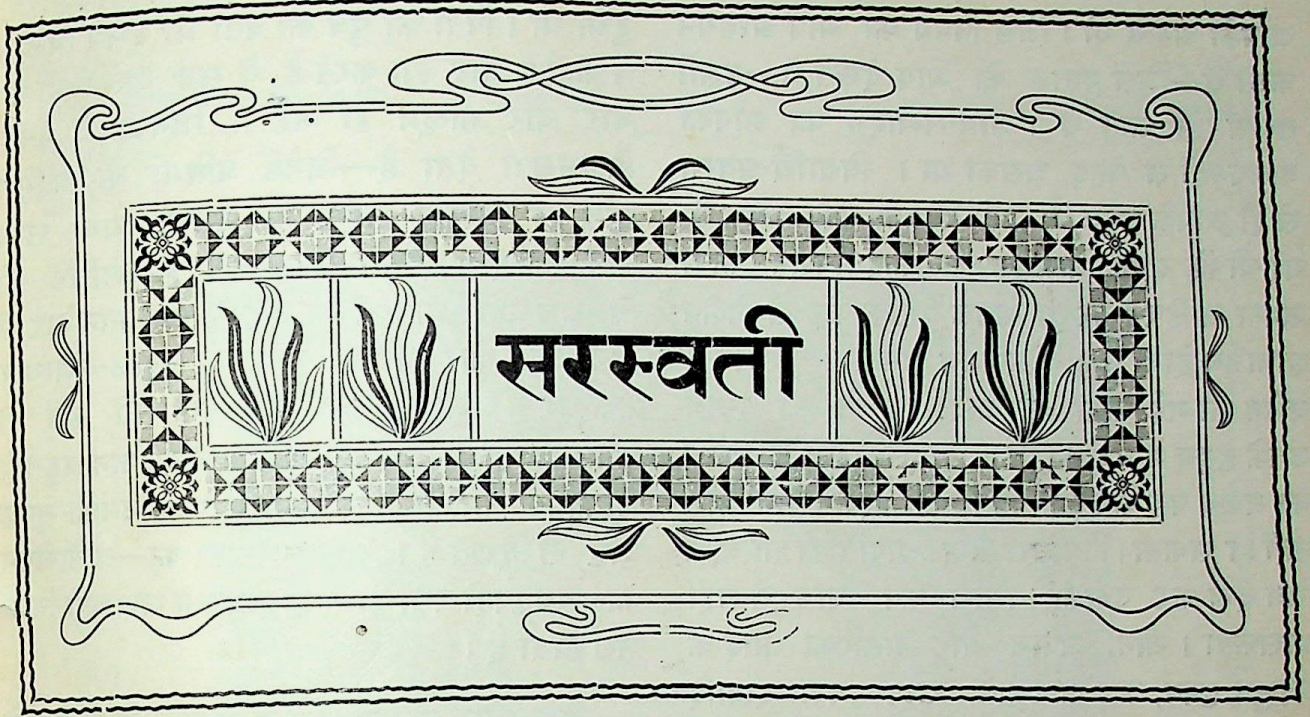
महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।









सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ] १ फेब्रुवरी, १९११ । माघ शुक्ल २, १९६७ । [ संख्या २

## सेंट निहालसिंह ।



गलैड से एक मासिक पत्र निकलता है । उसका नाम है रिव्यू आव् रिव्यूज । यह बहुत प्रसिद्ध पत्र है । इसके सम्पादक हैं—मिस्टर डब्लू० टी० स्टीड । आपकी गिनती ई गलैड के प्रतिष्ठित पुरुषों में है । आपका भी बड़ा नाम है और आपके पत्र का भी । चालीस वर्ष से आप पत्र-सम्पादन और लेखन-काम कर रहे हैं । आपने, कुछ दिन हुए, अपने पत्र में विलायत के नामी नामी समाचारपत्र के लेखकों और सम्पादकों का नामोल्लेख करके उन सबकी प्रसिद्धि के विषय में अपनी सम्मति प्रकट की थी । पाठकों को सुन कर शायद आश्चर्य होगा, इस बड़े सम्पादक की सम्मति में सेंट निहालसिंह उन सबसे बढ़ चढ़ कर हैं ।

समाचारपत्र-लेखन-कौशल में सिंह महाशय का आसन सबसे ऊँचा है । स्टीड साहब की राय में सेंट निहालसिंह विधाता की सृष्टि में एक अद्भुत पुरुष हैं । यह अद्भुत पुरुष, भाग्य से अथवा अभाग्य से, भारतवासी हैं । इनके कई अँगरेजी-लेखों का भावार्थ और सारांश सरस्वती में निकल चुका है । आज हम आपका थोड़ा सा जीवनचरित भी पाठकों को सुनाते हैं ।

निहालसिंह का जन्मस्थान रावलपिंडी है । कोई तीस वर्ष हुए आपने एक सिक्ख गृहस्थ के घर में जन्म लिया था । लड़कपनही से आप विद्या-व्यसनी थे । पाठशाला में आप साहित्य, इतिहास, सम्प्रति-शास्त्र और तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें बड़े चाव और बहुत विचार के साथ पढ़ते थे । इन विषयों से आप को बहुत प्रेम था । कविता में भी आपका बहुत जी लगता था । पर गणित से आप घबराते थे—उससे



आपको अरुचि थी। जिस विषय का आप अध्ययन करते थे—जिस पुस्तक को आप देखते थे—उसमें तन्मय हो जाते थे। ज्ञान-सम्पादन का आपको बालपनहीं से बेहद चसका था। विद्यार्थि-अवस्था से ही आपके हृदय में यह महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हो गई थी कि अपने विद्याबल से कोई विशेष कार्य करना चाहिए। परन्तु, केवल पुस्तक-पाठ से विशेष ज्ञानार्जन होना उन्होंने असंभव समझा। पुस्तकों में वर्णन की गई बातों को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा उनके हृदय में उद्भूत हुई। दियासलाई के कारखाने का वर्णन पढ़ कर उस विषय का पूरा पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। नियागरा के जल-प्रपात का शाब्दिक चित्र देख कर उसका यथार्थ रूप ध्यान में नहीं आसकता। चीन, जपान और अमेरिका आदि के अद्भुत दृश्य, कल-कारखाने, राज्य-व्यवस्था इत्यादि बातें प्रत्यक्ष देखनेहीं से अच्छी तरह समझ में आसकती हैं। अपने देश के भी भिन्न भिन्न प्रान्तों की दुरवस्था या सुव्यवस्था देखनेहीं से मालूम हो सकती है, पुस्तकों में उसका वर्णन पढ़ने से नहीं। इन बातों को स्वयं देखने के लिए देशपर्यटन करना चाहिए। पर, जिसके पास जेबखर्च के लिए दो चार आने से अधिक नहीं वह दूर देशों की यात्रा कैसे कर सकता है। परन्तु, निहालसिंह धनाभाव के कारण चुप बैठनेवाले युवक न थे। उन्होंने अपनी इच्छापूर्ति के मार्ग की कठिनाइयों की कुछ भी परवा न करके एक दिन चुपचाप घर से प्रस्थान कर दिया।

निहालसिंह के इस तरह निकल भगने से उनके पिता को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने बहुत दूँटा; पर पुत्र का कुछ भी पता न चला। एक दिन एक अँगरेजी अखबार में उन्होंने एक लेख पढ़ा। उसके ढंग से उन्हें यह सन्देह हुआ कि बहुत करके यह लेख मेरे निहालसिंह ही का लिखा हुआ है। अतएव उन्होंने उस पत्र के सम्पादक को लिख कर उस लेख की असल प्रति मँगवाई। उसे देखतेही उन्हें परमानन्द हुआ। वह लेख उन्हीं के निहालसिंह का लिखा

हुआ था। पिता को पुत्र का पता भी उसमें मिला वे कहाँ हैं और क्या करते हैं, ये सब बातें पिता के धीरे धीरे मालूम हो गईं। जिनको परमेश्वर विलक्षणता देता है—जिनमें प्रतिभा या अद्भुत बुद्धि का विकास करता है—उनकी प्रायः सभी बातें विलक्षण होती हैं। इसे निहालसिंह के विलक्षणताही समझिए जो उन्होंने अकस्मात् घर से निकल कर चल दिया और पत्र-द्वारा अपना कुशल-समाचार तक घर न भेजा। अनाखी आदमियों की बातें भी अनाखी होती हैं। जिन बातों को साधारण जन बहुत ही आवश्यक समझते हैं, असाधारण पुरुष उनको तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। असाधारणता का—अनाखीपन का—स्वरूपही ऐसा होता है। उसका लक्षणही विलक्षण होता है।

निहालसिंह जब पाठशाला में थे तभी से उन्होंने लेख लिखना आरम्भ कर दिया था। उस समय अपनी मातृ-भाषा में लिखते थे। पर अपना नाम न देते थे। विदेश जाकर आप अँगरेजी लिखने लगे। पहले आपने बँगाल की सैर की। पास कौड़ी थी। परन्तु नेत्र देखने को थे, कान सुनने को थे, बुद्धि विचार करने को थी। इन्हीं के बल से सिंह महादय को भोजन-वस्त्र के लिए काफ़ी धन-प्राप्ति होती गई। उन्होंने हर पदार्थ को ध्यान से देखा। जो कुछ उन्होंने देखा सबके गुण-दोषों को अपनी सदसद्विवेकिनी बुद्धि से तुरन्तही हृदयङ्गम कर लिया। जहाँ कहीं काम मिला, उसे करके खर्च चलाने भर के लिए रुपया कमाया। अवशिष्ट समय विद्याभ्यास, पुस्तकावलोकन और नई नई बातों का ज्ञान प्राप्त करने में आपने लगाया। कितनेही विद्यालयों को, कितनेही कारखानों को और कितनीही सार्वजनिक संस्थाओं को आपने प्रत्यक्ष देखा और मालूम कितने विद्वान्, उच्चपदाधिकारी, व्यापारी और प्रतिष्ठित पुरुषों की मुलाकात करके उन सब के सम्बन्ध की ज्ञातव्य बातें जानीं। बहुत दिनों तक आपने यही क्रम जारी रक्खा। आपकी जिज्ञासा में सरस्वती का वास था और लेखनी में अमृत-रस।



# सरस्वती



संत निहालसिंह ।



हं  
इस्  
गई  
जा  
की  
पूर्व  
की  
उठ  
सम  
अप  
अर्थ  
बहु  
अव  
दय  
का  
चल  
में  
और  
नहीं  
व्यव  
देहि  
नेही  
गये  
मेक  
राव  
निह  
करे  
सुन  
दर्श  
“वि  
वक्तृ  
कर  
अमे  
था,  
सिम्



इससे जहाँ आप गये सारी कठिनाइयाँ हल होती गईं। जब आप अपने देश की स्थिति का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर चुके तब एशिया के अन्यान्य देशों की व्यवस्था जानने के इरादे से आपने बंगाले के पूर्व में जितने एशियाई देश और द्वीप हैं प्रायः सब की सैर कर डाली ।

चीन और जपान में आपको बहुत तकलीफें उठानी पड़ीं। चीन में आप बीमार भी हो गये। उस समय एक कौड़ी भी आपके पास न थी। परन्तु अपने अप्रतिम लेखन-कौशल की बदैलत आपकी अर्थकृच्छता शीघ्रही दूर हो गई। पूर्वोक्त देशों में बहुत कम अखबार अँगरेजी में निकलते हैं। उनकी अवस्था भी अच्छी नहीं। तथापि उन्होंने सिंह महोदय के लेखों का बड़ा आदर किया और उनके श्रम का बदला भी इतना दिया कि उनका खर्च मजे में चलने लगा। धीरे धीरे मिस्टर सिंह का इन देशों में इतना मान हुआ कि प्रिंस ईटो, कौंट ओक्युमा और बैरन कांडा तक इनकी पहुँच हो गई। पहुँचही नहीं, किन्तु ये लोग सिंहजी के साथ मित्रवत् व्यवहार करने लगे। एक दफे जपान की राजधानी टोकियो में एक भोज हुआ। उसमें जपान के कितनेही उच्चोच्च अधिकारी और अमीर आदमी बुलाये गये। अँगरेजी गवर्नमेंट के प्रधान राजदूत सर क्लाड मेकडोनल भी उसमें आहूत हुए। इन सबके साथ रावल-पिंडी के निर्धन प्रवासी, अल्पवयस्क, सेंट निहालसिंह को भी एकही मेज पर बैठ कर भोजन करने का गौरव प्राप्त हुआ। जिसने यह समाचार सुना उसी ने दाँतों तले उँगली दबाई। जिनके दर्शन दुर्लभ उनके साथ बैठ कर भोजन करना ! “किमाश्चर्यमतः परम्” ! रसवती वाणी, अनुपम वक्तृत्वशक्ति और अद्भुत लेखन-चातुर्य क्या नहीं कर सकता ?

१९०६ ईसवी के अगस्त में सेंट निहालसिंह अमेरिका पहुँचे। न उनके पास धन था, न वैभव था, न किसी तरह का अधिकार था, न किसी की सिफारिश थी। था क्या ? वाणी, प्रयत्न, परिश्रम और

लेखन-चातुर्य। इन्हीं की बदैलत थोड़े दिनों में निहालसिंह वहाँ भी निहाल हो गये। सर्वत्र उनका मान होने लगा। उनके व्याख्यानों को लोग चाव से सुनने लगे; उनके लेखों को लोग प्रेम से पढ़ने लगे; उनकी मैत्री-सम्पादन करने के लिए लोग बड़ी उत्सुकता से उनसे मिलने लगे।

उस समय कनाडा-प्रवासी हिन्दुस्तानियों को बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। जहाज से उतरने, वहाँ रहने और मेहनत-मजदूरी करने में उन्हें सैकड़ों विघ्नों का सामना करना पड़ता था। निहालसिंह को यह असह्य हुआ। वे अपने खर्च से ओटावा नगर को गये। प्रकृत विषय की चर्चा आरम्भ कर दी। विज्ञतापूर्ण लेख प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों में प्रकाशित करवाने लगे। सरकारी अफसरों से मिल कर प्रवासी भारतवासियों की तरफ से विकालत करने लगे। इसका फल भी बहुत अच्छा हुआ। जिन बातों की शिकायत थी उनका विचार हुआ और प्रवासियों को बहुत कुछ दाद मिलने लगी।

कनाडा में भी, जपान की तरह, सेंट निहालसिंह को बड़े बड़े आदमियों और उच्च पदस्थ अधिकारियों के साथ बैठने-उठने और खाने-पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कनाडा के गवर्नर जनरल, अर्ल ग्रे, तक के साथ उन्होंने जलपान किया। यहाँ तक कि कई बार, कभी अर्ल ग्रे के आगे और कभी ठीक उनके बाद सेंट निहालसिंह को व्याख्यान देने की प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। निहालसिंह केवल समाचारपत्र-लेखक थे। न उनके पास और कुछ वैभव था, न ऐश्वर्य। परन्तु उनके लेख ऐसे होते थे कि पढ़नेवाले विवश होकर उन पर श्रद्धा करने लगते थे। वहाँ के समाचारपत्र-सम्पादकों और लेखकों को यह बात अच्छी नहीं लगी। वे सेंट निहालसिंह से ईर्ष्या करने लगे। गवर्नर जनरल के बराबर इनका सम्मान होते देख एक पत्र ने लिख तक दिया कि—“सिवा विभिन्न वर्ण और आकार-प्रकार के निहालसिंह में ऐसी और कौन सी बात है जो अन्यान्य पत्र-सम्पादकों और लेखकों में नहीं। फिर, नहीं मालूम, क्यों उनका



इतना आदर होता है । इस बात को निहालसिंह शायद खुद भी न जानते होंगे ” ।

इसके बाद सेंट निहालसिंह अमेरिका की स्वतंत्र रियासतों में सैर करने गये । वहाँ लोगों ने कहा— यहाँ आपकी दाल न गलेगी ; यहाँ आपका जीविका-निर्वाह होना कठिन है । परन्तु, पुरुषसिंह देश में रहे या विदेश में, कोई बात उसके इष्ट-साधन में बाधक नहीं हो सकती । वहाँ भी निहालसिंह को आशातीत सफलता हुई । बड़े बड़े समाचारपत्र उनके लेखों को सादर प्रकाशित करने लगे । उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने लगे और पुरस्कारस्वरूप यथेष्ट धन भी देने लगे । यहाँ तक कि सिंह महाशय को धीरे धीरे अपने लेखों के लिए पाँच पाँच छः छः सौ रुपये तक मिलने लगे । वहाँ इनकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि कुछ काल के लिए ये एक बहुत प्रसिद्ध मासिक पुस्तक के सम्पादक नियत किये गये । इस पर बड़ा कोलाहल मचा । लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही । जिस भारत के प्रवासियों को कनाडा और कैलीफोर्निया के गोरे फूटी आँखों नहीं देखना चाहते वहाँ के एक सिंह ने बहुत दिन तक अमेरिका-वालों को सम्पादन-कार्य-सम्बन्धी सबक सिख-लाया !

शिकागो में सेंट निहालसिंह की भेंट एक विदुषी स्त्री से हुई । उसका भी व्यवसाय वही था जो मिस्टर सिंह का था । कई पत्रों का सम्पादन-कार्य वे कर चुकी थीं । उस समय वे एक साप्ताहिक पत्र की सम्पादिका थीं । ये सेंट निहालसिंह के गुणों पर मुग्ध हो गईं और अपना काम, अपना घर, अपना देश, अपने इष्ट-मित्र सब कुछ छोड़ कर उनकी अर्द्धांगिनी होने को तैयार हुईं । सेंट निहालसिंह ने भी कृपा करके यथाविधि उनका पाणिग्रहण किया । तबसे ये महाशया अपने पति के साथ ही रहती हैं और उनके लेखन-कार्य में बहुत कुछ सहायता देती हैं । इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं । इस समय भी वे एक उपयोगी पुस्तक लिख रही हैं ।

अमेरिका से सेंट निहालसिंह इंग्लैंड गये । तब तक इनकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी थी । अतएव वहाँ भी इनका बड़ा आदर हुआ । बड़े बड़े पदाधिकारियों और सम्पादकों से इनकी भेंट हुई । लार्ड मार्ले के साथ घंटों इन्होंने वार्तालाप किया । वहाँ के अनेक प्रतिष्ठित पत्रों ने इनसे लेख देने की प्रार्थना की । उनमें से बहुतों की प्रार्थनायें इन्होंने स्वीकार भी कर लीं । इस तरह, दस-पाँच इंग्लैंड के और कई अमेरिका के पत्रों के ये नियमित लेखक हो गये ।

सेंट निहालसिंह आदर्श लेखक हैं । पूर्वी और पश्चिमी देशों के प्रचलित विषयों में ये बहुत ही प्रवीण हैं । इनकी भाषा भी अत्यन्त सरस और मधुर होती है । जिस विषय का ये विवेचन करने लग जाते हैं उसे ये चित्रवत् प्रत्यक्ष उपस्थित कर देते हैं । अपने लेखों में ये पाठकों के सम्मुख किसी पक्ष या मत-विशेष की तरफ नहीं झुकते । दोनों पक्षों के कथन को ये अपनी मधुर, मनोहर और विवेचनापूर्ण भाषा में इस तरह समझा देते हैं कि इनका लिखन सबको अच्छा लगता है । इनके लेखों को पढ़ कर किसी पक्षवाले को बुरा नहीं लगता । यही इनके लिखने की खूबी है ।

ये बड़ेही अध्ययनशील और परिश्रमी लेखक हैं । गत तीन वर्षों में इन्होंने दस-पन्द्रह लाख शब्द लिख डाले होंगे । ये नियमित रूप से सारा दिन लेखन और वाचन का काम करते हैं । सुबह से शाम तक इनके हाथ से लेखनी या पुस्तक नहीं छूटती । इन्होंने कितनेही लेख इस देश के माडर्न रिव्यू, हिन्दुस्तान रिव्यू और इंडियन रिव्यू में भी निकल चुके हैं और अब भी बराबर निकलते जाते हैं । अन्य देश के पत्रों में ये बहुधा भारत के विषय में लिखते हैं और अपने देश के पत्रों में अन्य-देश-सम्बन्धी बातों के विषय में । इन्होंने अँगरेजी में कई एक पुस्तकें भी लिखी हैं ।

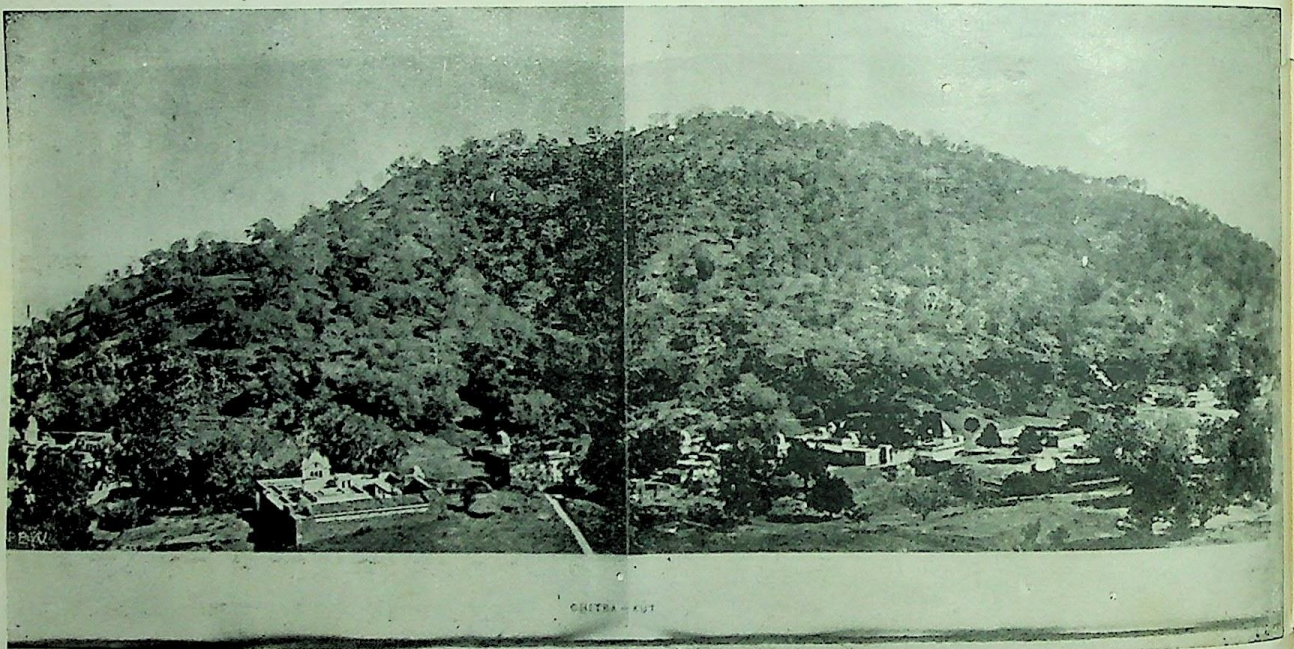
सेंट निहालसिंह अब भारत को लौट आये हैं । इस समय वे इसी देश में हैं और अपनी पत्नी सहित अपने लेखन-कार्य में लगे हुए हैं । भारत की सच्ची स्थिति, अवस्था और व्यवस्था का ज्ञान, अप



ग १२  
ये । त  
अतए  
पदाधि  
। ला  
। व  
प्रार्थन  
स्वीका  
के औ  
हो गये  
वी औ  
बहुत  
ार मधु  
रने ल  
देते हैं  
पक्ष य  
पक्षों  
चनापू  
लिखन  
पढ़ क  
ही इन  
खक  
ब्द लि  
न लेख  
गाम त  
। इन  
हेन्दुस्ता  
हैं औ  
के प  
ार अप  
के विष  
लेखी  
आये  
नी सहि  
की स  
न, अप



सरस्वती



चित्रकूट ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



लेखों द्वारा, इंग्लैंड की प्रजा को, वहाँ की प्रजा के नेताओं को और वहाँ के अधिकारियों को कराना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। साथ ही जो कुछ ज्ञान-सम्पादन उन्होंने विदेशयात्रा और विदेशवास से किया है उससे वे स्वदेशवासियों को भी लाभ पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। यह काम भी वे अपने लेखों ही के द्वारा करते हैं। उनकी किसी किसी बात का विरोध यहाँ के कोई कोई समाचारपत्र कभी कभी कर बैठते हैं। परन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। सेंट निहालसिंह का भाव और अन्तःकरण शुद्ध है। उनके कोई कोई विचार यदि औरों के मनोतीत न हों तो सिवा इसके क्या कहा जा सकता है कि—“भिन्नहृत्तिर्हि लोकः”। और मतद्वैध होना बुरा नहीं। उससे विचार करने का मौका मिलता है और विचारोत्तर सच्ची बात प्रकट हो जाती है।

सेंटजी से एक उलाहना है। अँगरेजी न जानने-वाले अपने देशभाइयों को अपनी बहुज्ञता से लाभ पहुँचाने का भी कभी उन्होंने खयाल किया है या नहीं? सबसे अधिक ज्ञानालोक की तो उन्हीं को ज़रूरत है। वह क्या उनके अँगरेजी लेखों से प्राप्त हो सकता है? जिस योरप और अमेरिका से उन्होंने इतना ज्ञानार्जन किया है वे सब अपनी अपनी मातृ-भाषाओं में लिखते हैं। फिर क्यों न सेंट निहालसिंहजी भी, कभी कभी, अपनी देशभाषा में कुछ लिखने की कृपा किया करें? अपनी माँ की बोली की—अपने देश की भाषा की—सेवा करना भी तो मनुष्य का कर्तव्य है। आशा है, सिंह महाशय इस उलाहने के लिए हमें क्षमा करेंगे।

## वन-वास ।

( १ )

ज्यों इन्दीवर में वराटक तथा ज्यों मेघ में दामिनी रम्बे राघव-अङ्गु में सिर तथा लेटी हुई भामिनी। उतफुलायत-लोचनी विधु-मुखी श्रीमैथिली ने कहा मानो पावन चित्रकूट-वन में पीयूष-सोता बहा ॥

( २ )

“देखो, देवर हैं गये विपिन मैं मैं हूँ गृह-स्वामिनी देखूँगी अतएव मैं प्रकृति की शोभा मनोगामिनी। बैठे क्या करते स्वयं तुम यहाँ यों हों बिना काम के मेरे हाथ थके प्रसून चुनते दावो इन्हें थाम के ॥

( ३ )

“होके राघव ने प्रसन्न उनकी आज्ञा शिरोधार्य की की तत्काल सुमन्द हास्य करके आरम्भता कार्य की। सीता ने हँस पुष्प-हार उनके डाला गले में अहा! यों ही हास-विलास आदि करके पीछे उन्होंने कहा ॥

( ४ )

“देखो तो यह आर्यपुत्र! वन का है दृश्य कैसा नया आहा! सुन्दर नन्दनोपवन ही मानो यहाँ आगया। बारंबार इसे निहार कर भी मैं तृप्ति पाती नहीं जाती है जिस ओर दृष्टि फिर सो है शीघ्र आती नहीं ॥

( ५ )

“देते जो द्विज-गान-पूर्ण तरु ये पुष्पादि की सम्पदा पूजा सी करते सुमन्त्र पद के माँ मेदिनी की सदा। तारे हैं जब टूटते गगन से सो दृश्य ऐसा कहाँ? देता है वह भीति, और इससे है प्रीति होती यहाँ ॥

( ६ )

“क्रीड़ा-पूर्वक वन्य जीव फिरते कैसे सभी ओर हैं देखो, मेघ-समान देख तुमको वे नाचते मोर हैं। नापे थे जिसके मुनेत्र तुमने मेरे दृगों से मिला आके पास अहो! मृगी यह वही ग्रीवा रही है हिला ॥

( ७ )

“शष्पश्यामल भूमि है, यह नदी कैसी बही जा रही स्वर्गझा-छवि, देख देख इसको, है ध्यान में आ रही। पानी के पट में तरङ्ग-मिस से भ्रू-भङ्ग होने लगा देखो, किन्तु न भूलना तुम मुझे, है नारि सी निम्नगा ॥

( ८ )

“वर्षा में जिसका वितान बनती उत्तुङ्ग काली घटा देखो, है इस चित्रकूट-गिरि की कैसी निराली छटा। है जो प्राप्त अभङ्ग सङ्ग मुझको प्यारा तुम्हारा यहाँ-है साकेत यही मुझे, इस लिए, है सौख्य सारा यहाँ ॥



( ९ )

“प्राणाधार ! परन्तु हाय तुम भी कैसे छली हो कहे लाते थे मुझको न साथ वन में आते अकेले अहे ! एकाकी यह सौख्य क्या तुम यहाँ थे लूटना चाहते ? किंवा निर्गुण हो निदान मुझ से थे लूटना चाहते ॥

( १० )

“अच्छा, हाँ, फिर तो कहे—‘विपिन में होगी बड़ीही व्यथा’ होती हा भगवन् ! मनुष्य-मन की कैसी कठोर प्रथा ! होती मैं घर तो सुखी तुम बिना, बाधा यहाँ मानती ! जानें क्या नर हाय ! प्रेम-महिमा जो नारियाँ जानती ॥

( ११ )

“देते हो तुम और देवर जिन्हें निर्विघ्नता कर्म में देते हैं मुनि पुण्य-दर्शन हमें जो लीन हैं धर्म में । पाया यों हमने यहाँ विपिन का कैसा बड़ा राज्य है पृथ्वी में इसके समक्ष मुझको वैकुण्ठ भी त्याज्य है ॥

( १२ )

“सोचा तो सुख-शान्ति-पूर्ण वन का है राज्य कैसा भला आधियाधि न ईति-भीति कुछ है, है पुण्य फूला-फला । कुञ्जों में मृग और सिंह मिल के निर्वैर हैं घूमते वल्ली-वेष्टित वृक्ष वायु-मिस से सानन्द हैं झूमते ॥

( १३ )

“क्याही पावन होम-धूम उठता आकाश की ओर है फैलाता वर वायु सन्तत उसे, होता नहीं शोर है । त्यों सांसारिक रोग-दोष कुछ भी पाये न जाते यहाँ होता है श्रुति-गान और तप का है दृश्य देखो जहाँ ॥

( १४ )

“देते हैं फल-फूल पादप सदा, आनन्द का वास है छाया ऊपर मेघ-वृन्द करता, नीचे हरी घास है । गाते हैं खग गीत, वायु झलती पड़्या बड़े प्रेम से सेवा में रहती स्वयं प्रकृति यों रखे हमें क्षेम से ॥

( १५ )

“हैं भोली वनदेवियाँ प्रिय यहाँ ज्यों आलियाँ थीं वने थे उद्यान वहाँ, परन्तु वन की शोभा शुभा है यहाँ देखो, साथ यहाँ सदैव तुम हो, साकेत में थे नहीं सीता के भगवान ! जन्म बस यों हो पूर्ण मेरा यहाँ

( १६ )

“कुञ्जों में, सर के सरोज-वन में, राका निशा में कहा जाती हूँ छिप मैं तथा तुम मुझे जा खोजते हो वहाँ ! होती है मुख-भाव की उस घड़ी जैसी तुम्हारी छत इन्द्राणी-सुख-गर्व, देख उसको, मैं नाथ ! देती हटा

( १७ )

“होता शोभित दीर्घ भाल जब है स्वेदाश्रु के विन्दु मानो होकर व्यक्त है बरसती मीठी सुधा इन्दु से । मेरे नेत्र-चकोर मत्त रहते जो यों तुम्हें देखते जानो सत्य, अरण्य और गृह को वे तुल्यही लेखते ।

( १८ )

“पौधों का यह सींचना सदन में पाती कहाँ मैं स्वयम् निस्सङ्कोच अभीष्ट गीत अब ज्यों गाती कहाँ मैं स्वयम् देता क्या सुख है भरा घट लिये आना नदी-रेत में पाती क्या श्रम-सौख्य मैं यह कभी हा ! शून्य साकेत में

( १९ )

“प्यारे देवर साथ साथ चलते हैं सौख्य देते सभी चिन्ता केवल ऊर्मिला बहन की जाती नहीं है कभी हा ! प्यारी भगिनी, तुझे शुभ रहें सत्कर्म मेरे किये, है सर्वस्व सहर्ष अर्पण किया तूने हमारे लिए ॥”

( २० )

वाणी यों कहती हुई जनकजा ध्यानस्थ सी होगई आँखें राघव के समेत उनकी प्रेमाश्रु से धो गईं । आये लक्ष्मण भी उसी समय में धन्वा लिये हाथ में तेजःपूर्ण महा मुनीश उनके थे चार छै साथ में ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।



## कालिदास की निरंकुशता ।

[ २ ]

[ गताङ्क से आगे ]

## व्याकरण-सम्बन्धी अनौचित्य ।

( क )

हते सङ्कोच होता है—सङ्कोच क्यों, हम जैसे निर्वल, अल्पज्ञ और असहाय मनुष्य को डर लगता है—कि कालिदास ने अपने काव्यों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों का अनेक बार उल्लंघन किया है। एक, दो, तीन बार नहीं, दस-बीस बार उन्होंने इस विषय में निरङ्कुशता दिखाई है। सम्भव है, जिन प्रयोगों की गिनती निरङ्कुशता में की जाती है वे ऐन्द्र और चान्द्रमस आदि व्याकरणों के अनुसार साधु प्रयोगों में गिने जा सकें। परन्तु, जब तक इन अन्य व्याकरणों के विद्वान् उन प्रयोगों को साधु न सिद्ध करें तब तक उनको कवि के स्वातन्त्र्य का विजृम्भण मानने के सिवा और कोई गति नहीं। ऐसे प्रयोगों के हम अधिक नहीं, केवल पाँच छः उदाहरण देंगे। अधिक उदाहरण देने की चेष्टा न करेंगे। रघुवंश के पहले सर्ग का अन्तिम श्लोक है:—

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्याशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः ।  
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशलयने निशां निनाय ॥

इसमें 'प्रयतपरिग्रहद्वितीयः'—इस पद को देखिए। यह 'सः' अर्थात् राजा दिलीप का विशेषण है। वशिष्ठ के आश्रम में राजा ने रात काटी। वह अकेला न था। उसके साथ उसकी रानी थी। इस बात को कवि ने 'प्रयतपरिग्रहद्वितीयः' कह कर सूचित किया है। इसका मतलब है:—अपनी ही इच्छा से नियम की रक्षा करने में तत्पर रानी है द्वितीय (अर्थात् सखी) जिसकी। अर्थात् एक वह था, दूसरी रानी थी। रानी से वह द्वितीय था। कहने

का यह बड़ाही अच्छा तर्ज है। इस पूर्वोक्त पद में बहुव्रीहि समास है। यही समास कवि को इष्ट भी है। क्योंकि, यही समास मानने से कवि का अभीष्ट अर्थ निकलता है। तत्पुरुष समास मानने से अर्थ में लाघव आ जाता है। इसी तरह का एक समास कवि ने रघुवंश के दूसरे सर्ग के चौबीसवें श्लोक में भी रखा है:—

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ।

क्रमेण सुतामनुसंविशेश सुतोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥

यहाँ भी देखिए—'गृहिणीसहायः' बहुव्रीहि ही समास है। तदनुसार इसका अर्थ होता है—गृहिणी है सहाय [ सहायक ], अर्थात् सखी, जिस राजा की। इस तरह के प्रयोग महाकवियों को बहुत प्रिय मालूम होते हैं। श्रीहर्ष ने नैषधचरित में लिखा है:—

रूपा निषिद्धालिजनां यदैनां छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार ।

तदा श्रमाम्भःकरणभूषिताङ्गीं स कीरवन्मानुप्रवागवादीत् ॥

इस श्लोक में—'छायाद्वितीयां' बिल्कुल वैसाही प्रयोग है जैसा कि कालिदास का—'प्रयतपरिग्रहद्वितीयः' और 'गृहिणीसहायः' है। अब, देखिए, इन्हीं प्रयोगों के कर्ता महाकवि ने किस तरह उलटी गङ्गा बहाई है। रघुवंश के पहले सर्ग का अड़तालीसवाँ श्लोक है:—

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः ।

सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः ॥

भावार्थ:—जिसके सदृश यश प्राप्त करना और लोगों के लिए कठिन काम है, जिसके रथ के घोड़े थक गये हैं, और जो अपनी महिषी—प्रधान रानी—का सखा, अर्थात् मित्र या साथी है, वह राजा दिलीप, सायङ्काल, उस संयमशील महर्षि के आश्रम में पहुँचा। इस पद्य में 'महिषीसखः' पद ठीक उसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है जिस अर्थ में कि 'प्रयतपरिग्रहद्वितीयः' और 'गृहिणीसहायः' हुआ है।

कवि के कहने का मतलब केवल इतनाही है कि राजा अकेला न था; उसके साथ उसकी रानी भी



थी । परन्तु पाणिनि की आज्ञा है कि ऐसा अर्थ इस पद से न निकाला जाय । क्यों ? व्याकरणाचार्य ने नियम कर दिया है :—“राजहः सखिभ्यश्च” । बहुव्रीहि करने से ‘टच्’ प्रत्यय यहाँ नहीं हो सकता । और ‘टच्’ है यहाँ जरूर । उसके बिना ‘महिषी-सखः’—इस पद की सिद्धि कैसे होगी ? ‘सखि’ शब्द का ‘सखः’ कैसे होगा ? अतएव अनन्यगतिक होकर यहाँ षष्ठी-तत्पुरुष समास मानना पड़ता है, जिसका अर्थ होता है—महिषी का सखा, महिषी का साथी, महिषी का मित्र । इस समास के कारण अर्थ में बड़ी हीनता आ जाती है । राजा दिलीप अपनी रानी का सखा या मित्र था, इसके कहने की यहाँ पर कोई जरूरत नहीं । जरूरत इतनाही कहने की है कि राजा के साथ उसकी रानी भी थी; रानी को साथ लिये हुए वह वशिष्ठ के आश्रम में गया था । इस काम में उसका और कोई सहायक न था; थी केवल उसकी रानी । इसी अर्थ को प्रधान मान कर मल्लिनाथ को—“महिष्याः सखा महिषीसखः” इस तरह समास-विग्रह करके “सहायान्तर निरपेक्ष इति भावः”—यह लिखना पड़ा । मतलब यह कि कालिदास ने कहना चाहा कुछ, पर पाणिनि के नियम का खयाल न रखने से उनकी उक्ति से निकला कुछ और ही अर्थ ।

ठीक इसी तरह का अनौचित्य कालिदास की एक और उक्ति में भी पाया जाता है । रघुवंश के पाँचवें सर्ग का सत्ताईसवाँ श्लोक है :—

वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावाद्बुधदन्वदाकाशमहीधरेषु ।

मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजने न हि तद्रथस्य ॥

भावार्थ :—वशिष्ठ के मन्त्रपूत जलाभिषेक के प्रभाव से, वायु के साथी बलाहक की गति की तरह, उस राजा रघु के रथ की गति समुद्र में, आकाश में, और पर्वतों के ऊपर, कहीं भी, रोकी नहीं जा सकी । यहाँ भी ‘मरुत्सखस्य’ में षष्ठी-तत्पुरुष समास करना पड़ता है । अतएव उसका अर्थ होता है—वायु का सखा । यह पद बलाहक का विशेषण

है, और बलाहक का सखा या सहायक पवन है, न कि पवन का सखा या सहायक बलाहक । पवन की सहायता से बलाहकों की गति अधिक व्यापक हो जाती है, यह सिद्ध बात है । पर मेघ किस तरह पवन का सखा या सहायक हो सकता है, यह वास्तव में नहीं आती । यहाँ भी कालिदास का मतलब बहुव्रीहि ही समास से है, तत्पुरुष समास नहीं । बहुव्रीहि करने से अर्थ निकलता है—मरुत्सखा यस्य, तस्य बलाहकस्य गतिरिव । अर्थात् जिस बलाहक का सखा या सहायक पवन है उसकी गति की तरह । यही अर्थ अपेक्षित भी है । पर पाणिनि ऐसा अर्थ होने नहीं देते । उनकी आज्ञा तत्पुरुष समास करने की है । वे कहते हैं कि ‘सखि’ शब्द को ‘सखा’ न बनाओ, और जो बनाओ तो बहुव्रीहि समास न करो । ‘सखि’ का ‘सखा’ कालिदास कर दिया । अतएव षष्ठी-तत्पुरुष समास का पड़ा । उसका अर्थ हुआ—पवन के सखा या सहायक बलाहक की गति की तरह । यह बड़ाही गौण अर्थ है । इसी से मल्लिनाथ को कहना पड़ा :—“मरुत्सखेति तत्पुरुषो बहुव्रीहौ समासान्ताभावात् । तवायुसहायस्येति लभ्यते” । हेमाद्रि ने तो साफ़ कह दिया कि यह प्रयोग चिन्त्य है । आप अपनी टीका में लिखते हैं :—

“मेघेन गमनार्थं मरुदपेक्षितत्वात्मरुत्सखा यत्समासोऽभिमतो न स्यात् । ‘राजहः सखिभ्यश्च’ इति न स्यात् । तस्य तत्पुरुषाभिधानात् । ततश्चिन्त्यमिदम्” ।

टीकाकार चारित्रवर्धन ने भी अपनी व्याख्या इसी प्रकार का एक नोट दिया है । इस कथन से निष्कर्ष निकला कि या तो कालिदास ने किसी व्याकरण के अनुसार ये प्रयोग किये, या उन्हें जान बूझकर निरङ्कुशता से काम लिया । भूल भी ऐसा हो सकता है ।

[ ख ]

रघुवंश के नवें सर्ग का छवीसवाँ श्लोक है—  
कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्  
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥



संख्या २ ]

इस श्लोक के दूसरे चरण में 'तदनु' सामासिक शब्द है। पर, इस तरह का समास पाणिनीय व्याकरण के मत से निषिद्ध है। अतएव रघुवंश के टीकाकार हेमाद्रि कहते हैं :—

‘पूरणगुण’—इति समासनिषेधात्तदनुशब्दे समासो महाकविप्रयोगादेव साधुः ।

कालिदास जैसे महाकवि ने ऐसा प्रयोग कर दिया; इससे यह असाधु भी प्रयोग साधु हो गया ! क्यों न हो। एकही दफे कुछ थोड़ेही ऐसा प्रयोग इस महाकवि ने किया है। इसी रघुवंश में एक और जगह भी आपने लिखा है :—

विश्वं तदनु विभ्रते.....

और, मेघदूत में भी आपने इस प्रयोग को याद किया है :—

सन्देशं मे तदनु जलद.....

इत्यादि। अच्छा, अब एक और प्रयोग की साधुता देखिए।

[ ग ]

रघुवंश के आठवें सर्ग का छियालीसवाँ पद्य यह है :—

वर्गिणं यदि जीवितापहा हृदये किं निहता न हन्ति माम् ।  
विषममृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥

इसमें 'जीवितापहा' पद की साधुता अथवा असाधुता के विषय में मल्लिनाथ तो चुप हैं। पर हेमाद्रि और चारित्रवर्द्धन ने आक्षेप किया है। प्रथम का कहना है :—

इत्ययं शब्दः चिन्त्यः । 'अपेक्षशतमसोः' इति डस्य विधानात् ।  
'क्षेशरागतमोर्दर्पदुःखरोगज्वरादिषु । डः कर्मस्वपहन्तेः स्याद्  
व्यातः पापापहः शिवः' इति गणदर्पणोक्तैर्घटते ।

'जीवितापहा'—में अप-उपसर्ग-पूर्वक हन् धातु से ड-प्रत्यय किया गया है। पर, यह प्रत्यय पाणिनि की आज्ञा के अनुसार क्लेश, राग, तम आदि शब्दों के योग में होता है; 'जीवित' शब्द के योग में

नहीं। इसी से हेमाद्रि इस प्रयोग को चिन्त्य समझते हैं। चारित्रवर्द्धन भी इनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं; पर यह भी कहते हैं कि किसी किसी की राय में और शब्दों के योग में भी यह प्रत्यय होता है। यह आप कहते तो हैं, परन्तु और किसी कवि या महाकवि के ऐसे प्रयोग का एक भी उदाहरण आप नहीं देते। कालिदास ने और स्थलों पर इस प्रत्यय का ठीक प्रयोग किया है। रघुवंश के सत्रहवें सर्ग के इकसठवें श्लोक में है :—

परकर्म्मार्पहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।

और उन्नीसवें सर्ग के उनतालीसवें श्लोक में है :—

अन्वसुक्तं सुरतकृमापहाम्

पर ऊपर के श्लोक में, आपने अपने टीकाकारों को, पूर्वोक्त प्रयोग को 'चिन्त्य' समझने का मौका दिया है। अब इसे चाहे कोई निरकुशता समझे, चाहे और कुछ।

[ घ ]

युष्मद्-शब्द की प्रथमा के द्विवचन का रूप होता है—युवां। उसका अर्थ है—तुम दोनों। परन्तु कालिदास ने रघुवंश के पन्द्रहवें सर्ग में युवां का 'वां' कर दिया है। वां—भी होता है; पर द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी के द्विवचन में। प्रथमा-विभक्ति में 'वां' नहीं होता। वह श्लोक यह है :—

गेये केन विनीतौ वां कस्य चेयं कृतिः कवेः ।

इति राज्ञा स्वयं पृष्ठौ तौ वाल्मीकिमशंसताम् ॥ श्लोक ६६

अर्थ—किसने तुम दोनों को गाना सिखलाया है और यह किस कवि की कृति है? इस प्रकार राजा रामचन्द्र से पूछे जाने पर उन दोनों ने वाल्मीकि का नाम बतलाया। लव-कुश ने रामचन्द्र को गा कर रामायण सुनाई। सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए और पूर्वोक्त बहुतही स्वाभाविक प्रश्न उन्होंने किये। टीकाकार लोग जब इस श्लोक का अर्थ समझाने लगे तब बड़ी मुश्किल में पड़े। वे 'वां' की सङ्कति कैसे लगावें? किसी ने कहा, यह पाठ



ठीक नहीं । ठीक पाठ है :—गेये को नु विनेता वां । किसी ने कहा, नहीं, ठीक पाठ है :—गेये कोऽत्र विनेता वां । तीसरे बोले, नहीं जी, शुद्ध पाठ यह है :—गेये को नु विनीतिर्वा । चौथे महाशय बोले :—युवां—का अर्थ देनवाला 'वां' यह अव्यय है ! इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि इन पाठान्तरों से 'वां' की मुश्किल हल हो जाती है । इसी लिए इन पाठान्तरों की रचना की गई है । किसी किसी ने तो 'वां' को षष्ठी समझ कर विलक्षण विलक्षण प्रकार से इस श्लोक के पूर्वाद्ध का अर्थ किया है । उन सबके उल्लेख की यहाँ पर आवश्यकता नहीं । क्योंकि, संस्कृत न जानने वाले पाठक इन लोगों के कोटिक्रम का ठीक ठीक मर्म न समझ सकेंगे । परन्तु, पूना के पण्डित गोपाल रघुनाथ नन्दर्गीकर ने रघुवंश के अनेक संस्करणों का मिलान करके जो देखा तो अधिकांश पुस्तकों में उन्हें वही पाठ मिला जो ऊपर हमने दिया है । वे उसी को कालिदास का मूल पाठ समझते हैं । इस बात को उन्होंने अपने सम्पादन किये गये रघुवंश में स्पष्टतापूर्वक लिखा है और इसे सप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा भी उन्होंने की है । प्रसिद्ध वैयाकरण नागोजी भट्ट की आज्ञा है—“नृसिंहाश्रम ते ख्यातिरित्यादौ, गेये केन विनीतौ वामित्यादाविव विभक्त्यन्तप्रतिरूपक-निपाताङ्गीकारेणादोषः” । यह वाक्य उन्होंने अपने लघुशब्देन्दुशेखर में लिखा है । खैर । पाठान्तरों के पक्षपाती इन टीकाकारों और वैयाकरणों से शास्त्रार्थ करने की हम में शक्ति नहीं । अतएव, इस विषय में हम सिर्फ इतनाही कहेंगे कि कालिदास के 'वां'-पद-प्रयोग में कोई कठिनाई की बात अवश्य इन लोगों ने देखी । यदि ऐसा न होता तो इतनी टीका-टिप्पणियों और प्रमाण-प्रमेयों की जरूरत न पड़ती ।

[ ड ]

संस्कृत में एक शब्द 'त्र्यम्बक' है । वह 'त्रि' और 'अम्बक' इन दो शब्दों के सन्धि-योग से बना है । 'अम्बक' का अर्थ नेत्र भी है और पिता भी ।

'त्र्यम्बक' शब्द वेद में भी आया है । ऋग्वेद एक मंत्र है :—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ७ । १६ ।

सायण ने अपने वेद-भाष्य में 'त्र्यम्बक' का अर्थ किया है—त्रयाणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणामम्बकः पितृ अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीनों के पिता । उसका नाम त्र्यम्बक है । यह तो वैदिक अर्थ हुआ । लैटिन रूप में अर्थ इस शब्द का है—त्रीणि चन्द्रसूर्याग्निरूपशक्ति-अम्बकानि नेत्राणि यस्य । अर्थात् चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि रूपी तीन आखें जिसके हों उसे त्र्यम्बक कहते हैं । त्र्यम्बक से मतलब यहाँ शिव से है । कालिदास ने इस पिछले अर्थ को अच्छी तरह जानते थे । इस शब्द का शुद्ध रूप क्या है, यह भी जानते प्रमाणः—

( १ ).....

जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणो न वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः  
रघु०, स० २, श्लो०

( २ ) हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्यैव  
एव नापरः ।

.....  
रघु०, स० ३, श्लो०

( ३ ).....  
प्रवर्तयामास किलानुसूया तिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालां  
रघु०, स० १३, श्लोक

यह तो हुई हमारे महाकवि के जानने न जानने की बात । अब देखिए, इसी 'त्र्यम्बक' शब्द को बिगाड़ कर आपने किस तरह 'त्रियम्बक' कर दिया है । कुमारसम्भव के तीसरे सर्ग का चवालीस पद्य पढ़िए :—

स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।  
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श ॥

छन्दोनियमानुसार इस पद्य के चौथे चरित्र शङ्कर के एक ऐसे नाम का होना आवश्यक जिसका दूसरा और चौथा अक्षर दीर्घ हो ।



संख्या २ ]

बात 'त्र्यम्बक' में न थी; इसलिए उसका रूप बिगाड़ कर कवि ने 'त्रियम्बक' कर डाला । क्यों ऐसा किया ? कालिदास ऐसे महाकवि ने इस दोष से बचने की क्यों चेष्टा न की ? त्रियम्बक के सदृश तौलवाला शङ्कर का एक नाम 'त्रिलोचन' भी है । उसे क्यों न रखा ? अथवा, पद्य को और किसी रूप में क्यों न ढाला ? क्या ऐसा करने की उसमें शक्ति न थी ? जो कवि हजारों श्लोक बना सकता था वह क्या इस एक पद्य को किसी और तरह न बक कह सकता था ? इन प्रश्नों का कौन उत्तर दे सकता है ? इन शङ्काओं का कौन समाधान कर सकता है ?

सम्भव है, किसी व्याकरण अथवा कोश के अनुसार, कालिदास के समय में, 'त्रियम्बक' शब्द भी शुद्ध माना जाता रहा हो । सम्भव है, यह कवि की भूल हो । जो विद्वान्—जो महात्मा—बड़े बड़े काम करते हैं उनसे कभी कभी छोटी छोटी बातों में भी भूलें हो जाया करती हैं । ऐसी कितनी ही आख्यायिकायें लोक में प्रसिद्ध हैं । यह भी सम्भव है कि कवि ने निरङ्कुशता-वश ऐसा प्रयोग किया हो । उसने कहा हो, कुछ परवा नहीं, मैं व्याकरण और कोश का अनुयायी नहीं । मैं जैसा प्रयोग करूँ, वैयाकरणों और कोशकारों को, हजार दफ्ते गरज हो तो, उसे शुद्ध मान कर अपने ग्रन्थों में स्थान दे । मैं उनका वशवर्ती नहीं । वे मेरे अनुगामा होना चाहें तो हो सकते हैं । कुछ भी हो, महाकवि के इस पूर्वोक्त शब्द-प्रयोग को विद्वानों ने उसके स्वातंत्र्य का नमूना जरूर माना है । इसी से मल्लिनाथ को पूर्वोक्त श्लोक की टीका लिखते समय कहना पड़ा :—

“केचित् साहसिकाः ‘त्रिलोचन’ इति पेटुः । त्र्यम्बकमित्युक्ते पादपूरणव्यासात् त्रियम्बकमिति पादपूरणार्थोऽयमियडादेशश्छान्दसो महाकविप्रयोगादभियुक्तैरङ्गीकृतः” ॥

इससे यह भी सिद्ध है कि 'त्रियम्बक' शब्द की अशुद्धि के खयाल से ही किसी किसी ने इसकी जगह 'त्रिलोचन' कर दिया था । इन लोगों को साहसिक कह कर मल्लिनाथ ने फटकार बतलाई है ।

टीकाकार के कहने का मतलब यह कि छन्द की पादपूर्ति के लिए यहाँ पर 'त्र्यम्बक' का 'त्रियम्बक' किया गया है । यह प्रयोग एक महाकवि ने किया है; इसलिए पण्डितों ने उसे मान लिया है । क्यों न हो :—“जबरदस्त का ठेंगा सिर पर”

[ च ]

दूती संस्कृत-शब्द है और ईकारान्त है । अथवा यह कहना चाहिए कि संस्कृत-साहित्य में यह शब्द ईकारान्त ही आया है । कालिदास भी इस शब्द का ईकारान्त होना मानते हैं । प्रमाण :—

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूतः ।

प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ॥

रघु०, स० ६, श्लोक १२

इस श्लोक में जो 'दूतः' शब्द है वह 'दूती' का बहुवचन है । इससे सिद्ध है कि कविकुल-गुरु 'दूती' शब्द को साधु और शुद्ध मानते थे । पर, अब, आपकी निरङ्कुशता देखिए । आपने इस 'दूती' को अनेक स्थलों पर 'दूति' कर दिया है :—

(१) प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः ।

रतिदूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिसर्गपण्डिताम् ॥

कुमारसंभव, स० ४, श्लो० १६

(२) प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसंदर्शिताभ्यः

समधिकतररूपाः शुद्धसन्तानकामैः ।

अधिविविदुरमात्यैराहतास्तस्य यूनः

प्रथमपरिग्रहीते श्रीभुवौ राजकन्याः ॥

रघु०, स० १८, श्लो० ५३

(३) तेन दूतिविदितं निषेदुषा पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु ।

शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रलम्भपरिशङ्किनो वचः ॥

रघु०, स० १९, श्लो० १८

(४) कलतपुष्पशयनौल्लताग्रहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः ।

अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेषयूत्तरम् ॥

रघु०, स० १६, श्लो० २३



( ५ ) संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं पुरोगताः ।  
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः कामुकेति चक्रपुस्तमङ्गनाः ॥  
रघु०, स० १६, श्लो० ३३

इन उदाहृत पद्यों में से कुमारसम्भववाले पहले पद्य की टीका में कवि की इस दूती-सम्बन्धिनी निरङ्कुशता पर मल्लिनाथ लिखते हैं :—

डीवन्तस्यापि दूतीशब्दस्य छन्दोभङ्गभयाद्भस्वः । “ अपि मापं मपं कुर्याच्छन्दोभङ्गं त्यजेद्विराम् ”—इति केचित् ।  
“ उणादयो बहुलम् ”—इति बहुलग्रहणाद्भस्व इति वल्लभः ।

और, रघुवंश वाले ( ४ ) पद्य की टीका में भी मल्लिनाथ ने प्रायः यही बात कही है :—

अत्र डीवन्तस्यापि दूतीशब्दस्य छन्दोभङ्गभयाद्भस्वत्वं कुतम् ।  
“ अपि मापं मपं कुर्याच्छन्दोभङ्गं त्यजेद्विराम् ”—इत्युपदेशात् ।

इस टिप्पणी में आपने वल्लभ की सम्मति देने की आवश्यकता नहीं समझी । उसे आपने छोड़ ही दिया है । शायद उस मत को आपने विशेष आदर की चीज नहीं समझा । रघुवंश के टीकाकार चारित्रवर्द्धन ने भी ‘दूती’ का ‘दूति’ कर दिया जाना ‘चिन्त्य’ माना है । पर साथही यह भी लिखा है—“ इदन्तो वा ” । अर्थात् ‘दूती’ इकारान्त भी होता है । हेमाद्रि की भी राय है कि यह शब्द इकारान्त भी होता है । इन्होंने प्रमाण में शब्दभेदप्रकाश का यह वचन उद्धृत किया है—“ दूत्यां दूतिरपि स्मृता ” ।

इन सम्मतियों से यह सूचित हुआ कि ‘दूती’ भी होता है और ‘दूति’ भी । पर किसी टीकाकार ने किसी और कवि, महाकवि या ग्रन्थकार का एक भी ऐसा वचन उद्धृत करने की कृपा नहीं की जिसमें ‘दूती’ की जगह ‘दूति’ शब्द आया हो । वामन शिवराम आपटे, जिन्होंने संस्कृत का एक बहुत बड़ा और प्रामाणिक कोश ( Dictionary ) बनाया है, बड़े विद्वान् थे । सारे संस्कृत-साहित्य का मन्थन करके उन्होंने अपने कोश में, निज-कृत अर्थ की पुष्टि के लिए, न मालूम कहाँ कहाँ के

वचनों के प्रमाण दिये हैं । वे भी दूती और दूति दोनों को शुद्ध समझते हैं । वे लिखते हैं :—“ The ती of दूती is sometimes shortened ” । अर्थात् दूती की ती कभी कभी ह्रस्व हो जाती है । पर इसका प्रमाण आप देने लगे तब कालिदास पूर्वोक्त पाँच उदाहरणों में से पहले तीन अर्थात् ( १ ) और ( २ ) और ( ३ ), देकरही चुप हो गये । जान पड़ता है इनके सिवा और कोई प्रमाण आपको नहीं मिला ।

यही हाल शब्दकल्पदुम का है । उसमें लिखा है :—“ दु + बाहुलकात् तिः दीर्घश्च । इत्युज्ज्वलदत्तः ” पर जब इस कोश के कर्ता अपने और उज्ज्वलदत्त के कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण ढूँढने लगे तो वही कालिदास के रघुवंश के अठारहवें सर्ग के त्रेपनवाँ श्लोक ढूँढे मिला ।

इससे क्या यह नहीं सूचित होता कि कालिदास ही के द्वारा प्रयुक्त ‘दूति’ शब्द को देख कर पूर्वोक्त पण्डितों और कोशकारों ने इस शब्द को ह्रस्व-इकारान्त माना है ? अच्छा, कालिदास ने ‘दूती’ के ‘ती’ को ‘ति’ क्यों कर दिया ? जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, कई लोगों की राय में सिर्फ छन्दोभङ्ग बचाने के लिए । पर एक बार नहीं, कई बार उन्होंने ऐसा किया है । क्या हर बार इसी छन्दोभङ्ग से बचने के लिए उन्होंने ऐसा किया ? सम्भव में नहीं आता । यदि वे चाहते तो और तरह से छन्दो रचना कर सकते थे । अस्तु । चाहे उन्होंने किस व्याकरण के नियमानुसार ऐसा किया हो, चाहे छन्दोभङ्ग से बचाने के लिए ऐसा किया हो, चाहे भूल या निरङ्कुशता से ऐसा किया हो, कुछ लोग उनके इस प्रयोग को चिन्त्य जरूर समझते हैं ।

[ छ ]

संस्कृत में कुछ धातु ऐसे हैं जिनमें, लिट् लकार आगे होने से, आम् प्रत्यय लगता है । तदनन्तर पाणिनि के—“ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ”—इस सूत्र से, लिट् लकार में, ‘कृ’ धातु जोड़ दिया जाता है :—प्रभ्रंशयाञ्चकार आदि रूप इसी तरह के हैं ।



संख्या २ ]

ऐसे क्रियापदों के तीन खण्ड हो सकते हैं । यथा—प्रभ्रंशय आम् चकार । परन्तु इन क्रियाओं का जब प्रयोग होता है तब इनका सिद्ध रूप एकत्र लिखा जाता है । दो या तीन खण्ड नहीं कर दिये जाते । अथवा, यह कहिए कि इनके बीच में कोई और शब्द नहीं आता । कालिदास इस बात को जानते थे । प्रमाण :—

( १ ) प्रमथमुखविकारैर्हासयामास गूढम् ।

कुमारसम्भव, सर्ग ७, श्लोक ६५

( २ ) उमामुखे विम्वफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलो-

चनानि । कुमारसम्भव, सर्ग ३, श्लोक ६७

परन्तु, इस नियम को आपने रघुवंश में कई जगह भङ्ग कर दिया है । यथा :—

( १ ) तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री

वन्धस्य नेत्रविचरे महिषस्य मुक्तः ।

निर्भिय विग्रहमशोणितलितपुङ्ख-

स्तपातयां प्रथममास पपात पश्चात् ॥

रघु०, सर्ग ६, श्लो० ६१

( २ ) भूभेदमात्रेण पदान्मघोनः

प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।

तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतो-

र्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥

रघु०, स० १३, श्लो० ३६

( ३ ) इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं

श्लाघ्यो भवान् स्वजन इत्यनुभाषितारम् ।

संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः

कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन ॥

रघु०, स० १६, श्लो० ८६

अब, देखिए, 'पातयामास' जो एक पद था उसके 'पातयां' और 'आस' ये दो टुकड़े करके उनके बीच में एक शब्द 'प्रथमं' रख दिया गया है । इसी तरह कवि ने 'संयोजयामास' के बीच में

'विधिवत्' रख दिया है । 'प्रभ्रंशयाञ्चकार' के बीच में तो 'यः' और 'नहुषं' ये दो शब्द रख दिये हैं । अश्वघोष कालिदास के बाद हुए हैं । उन्होंने अपने काव्य, बुद्धचरित, में कालिदास के पदों, वाक्यों, उक्तियों, यहाँ तक कि श्लोकों के एक एक दो दो चरणों तक को उठाकर वैसेही रख दिया है । कालिदास के पूर्वोक्त प्रयोगों की भी उन्होंने नक़ल की है । बुद्धचरित के छठे सर्ग का अष्टावनवां श्लोक है :—

पूजाभिलाषेण च बाहुमान्यादिवौकस्तं जगृहुः प्रविद्धम् ।

यथावदेनं दिवि देवसंघा दिव्यैर्विशेषैर्महयाञ्च चक्रुः ॥

इस श्लोक में 'महयाञ्चक्रुः' इस एक क्रियापद के बीच में अश्वघोष ने एक 'च' रख दिया है । माघ कवि कालिदास के बहुत पीछे हुए हैं । उन्होंने कालिदास के इस व्यवच्छेदक प्रेम का ठीक अनुकरण तो नहीं किया ; परन्तु कुछ कुछ इसी तरह का एक प्रयोग उन्होंने भी शिशुपाल-वध के दसवें सर्ग के उन्नीसवें श्लोक में किया है :—

छादितः कथमपि त्रपयान्तर्यः प्रियं प्रति चिराय रमयथाः ।

वारुणीमदविशङ्कमथाविश्रुतोऽभवदसाविव रागः ॥

'आचिरभवत्'—एक पद है । इसके 'आविः' और 'अभवत्' इन दो अंशों को अलग अलग करके बीच में माघ ने 'चक्षुषोः' पद को स्थान दिया है । उनका ऐसा करना मल्लिनाथ को सहन नहीं हुआ । उन्होंने इस प्रयोग को साधु सिद्ध करने की चेष्टा छोड़ कर साफ़ कह दिया है :—“आविर्भुवोर्व्यवधानं कविस्वातंत्र्यात्” । अर्थात् कवि की यह स्वतंत्रता या निरङ्कुशता है जो उसने 'आविः' और 'भू' में व्यवधान पैदा कर दिया—उन्हें पृथक् पृथक् करके बीच में एक और पद रख दिया । कालिदास के उदाहृत ( १ ) पद्य की टीका में भी मल्लिनाथ ने निःसङ्कोच होकर यह नोट दिया है :—

“कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” —इत्यत्र अनुशब्दस्य व्यव-

हितविपर्यस्तप्रयोगनिवृत्त्यर्थत्वात्—“पातयां प्रथममास” —



इत्यप्रयोग इति पाणिनीयाः । यथाह वार्तिककारः—“विपर्यासनिवृत्त्यर्थं व्यवहितनिवृत्त्यर्थञ्च” ।

मतलब यह कि पाणिनि के सूत्र में जो ‘अनु-प्रयुज्यते’ है उसके ‘अनु’ से यह तात्पर्य है कि ‘कृ-धातु का रूप, लिट् लकार में, ‘आम्’ प्रत्यय के ठीक आगे आना चाहिए—उससे लगा हुआ होना चाहिए । कालिदास ने अपने प्रयोग में ऐसा नहीं किया । अतएव पाणिनीय-मतानुसार वह अप्रयोग, अर्थात् असाधु या अशुद्ध प्रयोग, हुआ । अपने इस मत को मल्लिनाथ ने वार्तिककार की उक्ति उद्धृत करके पुष्ट किया है । चारित्रवर्धन ने भी अपनी टीका में मल्लिनाथ का अनुधावन किया है । उन्होंने लिखा है—“पातयां प्रथममासेति व्यवहितोऽनुप्रयोगः कवि-प्रमादः”—उसके आगे, कालिदास के प्रयोग में खींच खींच कर सही सावित करने की चेष्टा करने-वालों की विचार-कोटियों का उल्लेख करके आपने लिखा है—“यद्यप्येवं केचन समादधते”, तथापि कवेरियं रीतिस्तु न भवति । ..... । असौ ( प्रयोगः ) असाधुरेव” । टीकाकार हेमाद्रि ने यद्यपि और लोगों की समाधान-व्यवस्थाओं को विस्तारपूर्वक लिखा है तथापि अपनी सम्मति में उन्होंने भी यही कहा है—“तेन व्यवधाने प्रयोगं निराकरोति” । अतएव ये तीनों टीकाकार कालिदास के इन प्रयोगों को प्रामादिक समझते हैं । जिन्होंने इन प्रयोगों को साधु सिद्ध करना चाहा है उनका कोटि-क्रम बड़ा ही विलक्षण है । उन्होंने बड़ी ही बेढब बेढब तर्कनायें लड़ाई हैं । बेचारे कालिदास को कभी स्वप्न में भी न खयाल हुआ होगा कि मेरे इन प्रयोगों को शुद्ध सिद्ध करने के लिए पण्डितों को इतना वागजाल फैलाना पड़ेगा । कालिदास के समय में या तो ऐसे प्रयोग व्याकरण-सम्मत समझे जाते होंगे, या, इस सम्बन्ध में, कवि ने व्याकरण के नियम-पालन की आवश्यकता ही न समझी होगी । क्योंकि, पूर्वोक्त पदों में व्यवधान हो जाने पर भी उनका अर्थ समझने में बाधा नहीं उपस्थित होती । तथापि, अधिकतर विद्वानों की सम्मति में, पाणिनीय-व्याकरण

के अनुसार कालिदास निरङ्कुशता के आरोप नहीं बच सकते ।

## ६—नाम-सम्बन्धी अनौचित्य ।

पार्वती में उन्हें अनुरक्त करने के लिए शङ्कर समाधि से जगाने की चेष्टा जी तोड़ कर मन्महाराज कर रहे हैं । उन पर पञ्चबाण की बाण वर्षा हो रही है । शङ्कर का चित्त क्षुब्ध हुआ । जगे । क्षोभ का कारण ढूँढने लगे । देखा तो वसन्त के सखा मनोज महोदय कान तक धनुष ताने शर-सन्धान कर रहे हैं । पिनाकपाणि परमेश्वर कोप किया । तीसरे नेत्र को खोल कर उन्होंने उस धन्वी पर कोप-दृष्टि डाली तो उसकी ज्वाला से जल कर वह खाक हो गया । कुमारसम्भव कालिदास ने इस प्रसङ्ग का वर्णन इस प्रकार किया है :—

क्रोधं प्रभो संहार संहरेति यावद्विरः खे मरुतां चरति  
तावत्स वह्निर्भवेन्नजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! क्रोध न कीजिए, क्रोध कीजिए—इस प्रकार आकाश में देवगण जब तब प्रार्थना करें करें, तब तक भव ( महादेव ) के नेत्रों से निकली हुई उस ज्वाला ने काम को जला कर भस्मावशेष कर दिया । महादेव के मृड, रुद्र, ईश्वर, त्रिनेत्र, हर, स्थाणु आदि जहाँ और अनेक नाम हैं तहाँ उनका एक नाम भव भी है । यह भव शब्द उत्पत्तिवाचक है । उसी का प्रयोग इस पद्य में कालिदास ने किया है । पर, यह प्रसङ्ग उत्पत्ति का नहीं, नाश का है । अतएव संहार-वाचक हर शब्द के प्रयोग की ही यहाँ पर अपेक्षा थी । उसका प्रयोग नहीं किया गया । इस कारण इस श्लोक में नाम-सम्बन्धी अनौचित्य आगया । कुमारसम्भवसार में हम इस अनौचित्य का उल्लेख कर चुके हैं । उस पद कर उस समय एक सज्जन बहुत बिगड़े थे और हमें उन्होंने बहुत कुछ भला बुरा कहा था । परन्तु महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी कालिदास को इस दोष का



दोषी ठहराया है । उन्होंने अपने औचित्य-विचार-चर्चा नामक ग्रन्थ में लिखा है :—

“अत्र पश्यतो भगवत्त्रिनेत्रस्य स्मरशरनिपातक्षोभे  
वर्ण्यमाने तन्निकारकोपप्रशमाय संहर संहर प्रभो कोपमिति  
यावद्वचः खे देवानां चरति तावद्भवनेत्रोद्भवः स वहिर्मदनं  
भस्मराशिशेषमकार्षीदित्युक्ते संहारावसरे रुद्रस्य भवाभिधान-  
मनुचितमेव ” ।

मतलब यह कि, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, संहार के प्रसङ्ग में रुद्र का भव नाम से उल्लेख करना सर्वथा अनुचित है । कल्पना कीजिए कि माता-पिता ने अपने किसी लड़के का नाम उदार-राम रखा । बड़े होने पर उसने चोरी करना सीखा । कुछ दिनों में वह नामी चोर हो गया । तब लोग उसे आपस में चोरदास भी कहने लगे । अन्त को वह पकड़ा गया और उसने अपने चोर कर्म का सच्चा सच्चा हाल कह सुनाया । उसे किसी जासूसी उपन्यासकार ने उपन्यास के रूप में पुस्तका-कार प्रकाशित किया । अब यदि यह उपन्यास-लेखक इस आदमी की विकट चोरियों के वर्णन में इसे उदारराम के नाम से याद करेंगे तो यह नाम पढ़ने वालों के कान में जरूर खटेगा । ऐसे वर्णन में चोर-दास नामही सार्थक होगा और उसके प्रयोग से यथार्थता के सिवा एक प्रकार की सरसता भी आजायगी । यह कालिदास की निरङ्कुशता है जो उन्होंने पूर्वोक्त श्लोक में प्रसङ्ग की परवा न करके महादेवजी के अप्रासङ्गिक नाम से काम लिया ।

### (७) इतिहास-सम्बन्धी अनौचित्य ।

राजा दिलीप ने ९९ अश्वमेध-यज्ञ किये । इतने से उसे सन्तोष न हुआ । उसने एक और यज्ञ करके शतक्रतु इन्द्र की बराबरी करनी चाही । यह बात भला इन्द्र को कब पसन्द होनेवाली थी । उसने इस बार छोड़े गये घोड़े को छिप कर चुरा लिया और ले चला । घोड़े का रक्षक था दिलीप का पुत्र रघु । वह घोड़े को न देख कर बहुत घबराया । उसी

समय वशिष्ठ की नन्दिनी धेनु वहाँ आ गई । उसकी कृपा से वह सर्वदर्शी हो गया । अतीन्द्रिय पदार्थ भी उसे देख पड़ने लगे । इस गुण के प्रभाव से उसने इन्द्र को घोड़ा ले जाते देखा । अतएव उसने इन्द्र को ललकारा और उसकी निर्भर्त्सना करके घोड़ा छोड़ देने को कहा । इस पर इन्द्र ने उत्तर दिया कि सौ यज्ञ करनेवाला अकेला मैंहीं प्रसिद्ध हूँ । मेरे इस यज्ञ को तेरा पिता छीन लेना चाहता है । यह मैं नहीं होने दूँगा । इसका उल्लेख करके कालिदास ने रघुवंश के तीसरे सर्ग के पचासवें पद्य में इन्द्र के मुख से यह कहलाया है :—

अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः ।  
अस्मै प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्याः सगरस्य सन्ततिः ॥

अर्थात्—इसी से कपिल का अनुकरण करने-वाले मैंने तेरे पिता के इस घोड़े का हरण किया है । इसे छिना लेने का प्रयत्न व्यर्थ है । देख, कहीं सगर की सन्तति के मार्ग में पैर न रखना । इस पर विचार :—कपिल और सगर के सम्बन्ध की बात यों है कि सगर ने यज्ञ का घोड़ा छोड़ा । उसे भी, दिलीप के घोड़े की तरह, यही इन्द्र-महाराज चुरा ले गये । लेकर उसे आपने कपिल के आश्रम में बाँध दिया । सगर के लड़के उसे दूँ ढते दूँ ढते वहाँ पहुँचे । घोड़े को कपिल के पास ही बाँधा देख कपिलही को उन्होंने चोर समझा । इस पर कुपित कपिल ने उन्हें जला कर खाक कर दिया । इस आख्यान को ध्यान में रख कर, अब, यह विचार कीजिए कि इन्द्र का अपने को “कपिलानुकारिणा”, या किसी किसी पुस्तक के अनुसार “कपिलानुसारिणा”, कहना कहाँ तक ठीक है । “कपिलानुकारिणा मयायमश्वो-ऽपहारितः” कहना, मानो कपिल पर सगर का घोड़ा चुराने का आरोप करना है । परन्तु, कपिल चोर न थे । चोर थे यही हजरत इन्द्र । सगर की सन्तति के मार्ग की याद दिला कर कवि ने इन्द्र की उक्ति से जो यह ध्वनि निकाली है कि जैसे सगर-सन्तति को कपिल ने जला कर खाक कर दिया था वैसेही इन्द्र के द्वारा रघु का भी विनाश-साधन हो सकता है,



सो बहुत ठीक है। उसके विषय में हमें कुछ नहीं कहना। कहना है सिर्फ अश्वपहरण के सम्बन्ध में इन्द्र के कपिलानुकरण की उक्ति पर। सगर की सन्तति के जलाये जाने की बात तो श्लोक के उत्तरार्द्ध से निकलती है। पूर्वार्द्ध में “कपिलानुकारिणा मयापहारितः” की क्या सङ्गति? “अपहारितः” के, जिसका अर्थ ठीकाकारों ने “हतः” किया है, पासही “कपिलानुकारिणा” होने से क्या यह नहीं सूचित होता कि जैसे कपिल ने सगर के घोड़े का अपहरण किया था वैसेही मैंने तेरे पिता दिलीप के इस घोड़े का अपहरण किया है? और यदि होता है तो यह पद्य ऐतिहासिक अनौचित्य के दोष से नहीं बच सकता।

[ असमाप्त ]

## मलेरिया के मच्छड़ ।



सरस्वती की किसी विगत संख्या में “मलेरिया” शीर्षक एक लेख प्रकाशित हो चुका है। उसमें सिद्ध किया गया है कि इस रोग के उत्पादक मच्छड़ हैं। किन्तु उसमें इस बात का निर्णय नहीं

किया गया कि किस जाति के मच्छड़ों के काटने से यह रोग हुआ करता है। इसी दुविधा को मेटने के लिए यह लेख लिखा गया है।

भारतवर्ष में मलेरिया ने विकराल रूप धारण कर लिया है। इस देश की जन्म और मरण-सम्बन्धी रिपोर्ट देखने से विदित होता है कि इस रोग ने अगणित हिन्दुस्तानी नर-नारियों का भक्षण कर लिया। अस्पताल और औषधालयों में इस मर्ज के रोगियों की अधिकता रहती है। यद्यपि इस रोग का नाम प्लेग वगैरह के नाम की तरह भयङ्कर नहीं, तथापि वैज्ञानिक परीक्षा से यह सिद्ध हुआ है कि इस रोग का विष, शरीर में घुस जाने पर, सहसा बाहर नहीं निकलता, किन्तु थोड़ेही समय में भयङ्कर

रूप धारण कर लेता है और, अन्त में, रोगी के पेट लेकर ही पीछा छोड़ता है। इस विषय पर पश्चिमा विद्वानों ने बड़े बड़े ग्रन्थ लिख डाले हैं। ऐसे जाति कुछ ग्रन्थों के आधार पर यह लेख लिखा गया है।

मलेरिया का ज्वर वैसाही विषैला होता है जैसे कि शीतला और प्लेग का ज्वर। यह विष एक प्रकार के सूक्ष्म जन्तुओं से उत्पन्न होता है। ये जन्तु या मच्छड़ों के पेट में रहते हैं। मच्छड़ों के काटने से ये जन्तु उनके मुख की एक पतली नली के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके रक्त में मिल जाते हैं। इससे उसे बुखार आने लगता है। बुखार आने से पहले खूब जोर से जाड़ा लगता है। इसीसे इस रोग नाम जूड़ी पड़ गया है।

इस ज्वर के अनेक भेद हैं। किसी को चौबीस घण्टे में ज्वर आता है, किसी को अड़तालीस में, किसी को बहत्तर में। किसी किसी को तो यह समय तक रोज ही आया करता है। हम इन्हें से इकतरा, तिजारी और चौथिया कहेंगे।

## मच्छड़ों का उत्पत्ति-स्थान

जहाँ पानी, कूड़ा और गरमी के योग वनस्पति आदि चीजें सड़ती रहती हैं, वहाँ इस रोग का प्रकोप अधिक देखा जाता है। जिस जगह इकट्ठा होता है, या उसके रुक जाने से ज़मीन ज़ियादह कीचड़ होकर उसमें घास-फूस सड़ने लगता है और ऊपर से खूब घाम लगता है उस जगह इस रोग का विष उत्पन्न हो जाता है। चौमासे के अन्त में इस रोग की उत्पादक साम्य अधिकता से पाई जाती है। यही कारण कि कुआँर, कातिक और अगहन के महीनों में रोग कहर मचा देता है। जहाँ पानी और भाँड़ ज़ियादह होती हैं वहाँ भी यह रोग खूब होता करता है। इसी तरह, नदी या तालाब के किनारे की बस्तियों में, और जहाँ खेत सोंच कर केला या धान की खेती की जाती है वहाँ भी रोग बहुत होता है। ऐसे स्थानों के निवासियों



गी के पेट डाल के समान बड़े हुए देख पड़ते हैं । क्योंकि, घर पक्षिचार बार मलेरिया के आक्रमण से पेट में तिली बढ़ जाती है । ऐसे रोगियों का रंग हमेशा फीका सफ़ेद रहता है । आयुर्वेद में ऐसे देश का नाम अनूप देश है । वहाँ का जलवायु दूषित बतलाया गया है :—“अनूपन्तु कफोल्बणम् ।”

इसके सिवा, जहाँ पानी इकट्ठा होकर भरा रहता है वहाँ या कुआँ, तालाब, बावड़ी वगैरह के समीप और रास्ते के अगल बगल नालियों में भी—फिर चाहे वे मामूली गाँव की हों चाहे नामी शहर की—यह विष तैयार होता है । ऐसी जगह वनस्पतियों से इस विष और चीजों के सड़ने से डाँसों के झुण्ड के झुण्ड दिखाई देते हैं । इंग्लैंड के समान ठंडे देशों में यह रोग अधिक नहीं होता ; क्योंकि वहाँ गरमी कम होती है । इसके सिवा, वहाँ सफ़ाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे कोई चीज़ सड़ने गलने नहीं पाती । परन्तु, उसी यूरप के दक्षिणी भाग—इटली वगैरह में—गरमी की अधिकता से यह रोग बहुत हुआ करता है । हमारा देश स्वभाव से उष्ण-प्रधान है । यहाँ पानी भी खूब बरसता है । साथ ही घास फूस, लीद, गोबर आदि कूड़े कचरे की भी कमी नहीं है । इसके अलावा हम लोग नमी और बदबू वगैरह को दूर करने की विशेष परवा भी नहीं करते । इससे मलेरिया का विष प्रचुर परिमाण में उत्पन्न हुआ करता है । और, इसकी बदौलत हजारों नहीं लाखों हिन्दुस्तानी काल का कलेवा हुआ करते हैं ।

### विषैले डाँसों की पहचान ।

डाँसों की अनेक जातियाँ हैं, पर सबमें विष नहीं होता । अतएव इस बात की शङ्का न करनी चाहिए कि सभी मच्छड़ों के काटने से मलेरिया होता है । जिनके काटने से मलेरिया फैलता है वे एक ही जाति के होते हैं । उन्हें मलेरिया के मच्छड़ कहते हैं । एकाएक उन्हें पहचान लेना ज़रा कठिन है । किन्तु उनका रंग ढंग और बैठने उठने की रीति

वगैरह से वे पहचान लिये जाते हैं । मलेरिया के मच्छड़ों के पंखों पर काले दाग होते हैं । वे और मच्छड़ों की तरह कानों में बाँसुरी सी नहीं बजाते । जान ही नहीं पड़ता कि कब उन्होंने काटा । उनके बैठने की रीति भी निराली है । यदि वे कहीं बैठे हों तो देखिएगा कि उनका सिर अगले पैरों के ऊपर है और उनके पैरों का कुछ हिस्सा उनकी खोपड़ी पर है । सिर में किसी तरह की शिकन नहीं होती । सिर एक सरल रेखा के तौर पर रहता है । उनकी रक्त पीने की शुण्डिका बहुत ही महीन होती है । सिर छोटा और काला होता है । शरीर छोटा और पैर लम्बे होते हैं । ये तिरछे बैठा करते हैं । जब ये काटने बैठते हैं तब इनका मुँह शरीर के बिल्कुल पास आजाता है और धड़ ऊपर को उठा रहता है । इन्हें ज़ियादह उड़ने का अभ्यास नहीं होता । इनकी उत्पत्ति विशेष कर गरमी में होती है और संहार जाड़े में होने लगता है ।

इन मच्छड़ों में भी नर और मादी होते हैं । मलेरिया का विष मादी से उत्पन्न होता है । नर वनस्पति-जन्म पदार्थ खाता है । पर जिस समय उसे वनस्पति नहीं मिलती उस समय वह रक्त भी पीने लगता है । सारांश यह कि नर को रक्त पीने की विशेष आकांक्षा नहीं रहती । किन्तु मादी का स्वभाव बिल्कुल विपरीत है । वह रक्त को बड़े चाव से पीती है । जब उसे रक्त नहीं मिलता तब वनस्पति पर ही गुजर करनी पड़ती है । ऐसे समय में मानो उसे एकादशी का व्रत करना पड़ता है । मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों के रक्त पर मादी अपना गुजर करती है । अपना भक्ष्य खोजने के लिए ये जन्तु रात को घूमते हैं और दिन को घने अन्धकार में, जहाँ खूब नमी रहती है, छिपे रहते हैं । ये जन्तु रुके हुए स्थिर पानी के ऊपर अपने अण्डे रखते हैं । पानी उथला हो चाहे गहरा, पर स्थिर होना चाहिए । घर, बाहर, कुवाँ, तालाब, सड़े गले पानी से भरे बर्तन और कीचड़ आदि में, कहीं भी, अण्डे रखने में इन्हें कोई उज्र नहीं । ये अण्डे पानी के



ऊपर लकड़ी के बुरादे की तरह हिलते डुलते दिखाई देते हैं । इनके कई समूह जुदा जुदा होते हैं । इन समूहों का आकार किश्तीनुमा और कीचड़ सा देख पड़ता है । अण्डों को मछलियाँ और मेंडक खा जाते हैं । इसी तरह छिपकली और मकड़ी आदि कीड़े मच्छड़ों का भी संहार करते रहते हैं । मच्छड़ अपने अण्डों को कभी बहते पानी पर नहीं रखते । कदाचित् वे इस बात को समझते हैं कि बहते पानी में रखने से वे न जाने कहाँ बहकर चले जायँ । अण्डे देने पर, अड़तालीस घंटे के बाद, उनके ऊपर का कवच फूट कर सजीव प्राणी बाहर होने लगते हैं । जब ये पानी पर होते हैं तब ज़रा सा झोंका लगते ही पानी के नीचे जा बैठते हैं । इन सजीव प्राणियों के एक हफ्ते में पैर और पंख हो आते हैं । कोई अड़तालीस घण्टे के बाद यह प्राणी मच्छड़ों का कलेवर धारण कर लेता है । यही मच्छड़ मनुष्य और अन्य प्राणियों का रक्त पीने के लिए उड़ते फिरते हैं । रक्त पीकर सज्जित पानी के ऊपर ये आ बैठते हैं और हर घड़ी सैकड़ों अण्डे देते रहते हैं । इनकी उत्पत्ति का पारावार नहीं !

मलेरिया के मच्छड़ जब किसी रोगी को काट कर दूषित रक्त लगे हुए मुँह से किसी नीरोग मनुष्य को काटते हैं तब मलेरिया के सूक्ष्म जन्तु मच्छड़ की लार के द्वारा उस मनुष्य के रक्त में चले जाते हैं । इससे उसे बुखार आने लगता है । यद्यपि मच्छड़ों के पेट में ये जन्तु रहा करते हैं, तथापि इससे उन्हें कोई कष्ट नहीं होता । ईश्वर ने उन्हें ऐसी एक शक्ति दे रखी है । इसी तरह का सामर्थ्य पिस्सू में भी होता है । तभी तो उसके पेट में प्लेग के जन्तु बने रहते हैं और उसका बाल भी बाँका नहीं होता । मनुष्य के रक्त में इस विष के मिल जाने पर, बारह घण्टे के बाद, उसे जाड़ा लग कर बुखार आने लगता है । यदि इस अवस्था में मच्छड़ उसे काट कर, घर के और नीरोग मनुष्यों को काटे, तो घर भर में बुखार फैल जाता है ।

इन मच्छड़ों की बाढ़ दो जगह होती है । तो मनुष्यों के रक्त में और कुछ मच्छड़ों के ही में । मनुष्यों के रक्त में होनेवाली इनकी बाढ़ विषय समझने के लिए कुछ रक्त-सम्बन्धी जानकारी होनी चाहिए । इसलिए पहले रक्त के विषय में थोड़ा सा विचार करते हैं ।

एक प्रकार के लाल और सफ़ेद कण, तथा रक्त द्रव के योग से रक्त बनता है । रक्त में सफ़ेद कणों की अपेक्षा लाल कण अधिक रहते हैं । पाँच छः लाल कणों में एक आध सफ़ेद कण पाया जाता है । यह बात नीरोग और सशक्त प्राणियों की है । लाल कण आरोग्य-रक्षा के लिए जितने महत्त्व के होते हैं वे नाजुक भी हैं । अतएव विधाता ने उन रक्षा के लिए सफ़ेद कणों को निर्माण किया है । सफ़ेद कण अत्यन्त दृढ़ होते हैं । रक्त में किसी बाहरी पदार्थ के घुसने पर ये कण उसे तुरंत फुट कर डालते हैं । किन्तु, कणों की यह शक्ति, रक्त में प्रवेश करनेवाले जन्तुओं की न्यूनाधिकता पर लम्बित है । यदि रक्त में प्रवेश करनेवाले जन्तु का वान् हुए तो वे स्वयं सुरक्षित रह कर इन्हीं सफ़ेद कणों को नष्ट कर डालते हैं । मच्छड़ों के काटने के बाद जब ये जन्तु सफ़ेद कणों की उपेक्षा कर रक्त में जाते हैं, तब रक्त के लाल कणों का क्रमशः ख़ाली लगते हैं । ठीक इसी समय सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र के द्वारा देखने से जान पड़ता है कि उन लाल कणों में एक प्रकार के नये बिन्दु मिल गये हैं । ये जन्तु लाल कणों का जितना भाग खा जाते हैं उतना काला होता जाता है । रक्त में पैठ कर ये जन्तु लाल कणों को खा जाते हैं और उनकी जगह पर अपना कब्ज़ा कर लेते हैं । वहाँ पर जब उनकी पूरी बाढ़ हो चुकती है तो उनके कई विभाग हो जाते हैं । वे विभाग या कण इस जन्तु के बाल बच्चे हैं । ये बच्चे बच्चे हुए लाल कणों के पीछे पड़ जाते हैं और उनका थोड़ा ही समय में विनाश कर डालते हैं । ऐसी स्थिति में रोगी रङ्ग फीका पड़ जाता है । उसेही पाण्डु रोग कहते हैं ।

लाल कणों को खा कर जब ये जन्तु बच्चे लगते हैं तब ज़रा ही देर पहले मनुष्य को जाड़ा



कर बुखार आ जाता है। इस दशा में यदि रोगी के रक्त की परीक्षा की जाय तो इस जन्तु के सैकड़ों बच्चे रक्त में फैले हुए दिखाई देंगे। जन्तुओं की बाढ़ के सम्बन्ध में डाक़रों में मत-भेद है। कोई कोई कहते हैं कि मनुष्य के शरीर में रक्ताभिसरण के मारे नर और मादी को एकत्र होने का प्रसङ्ग ही नहीं आता। इससे इनकी बाढ़ बिना नर-मादी के संयोग के होती रहती है। और, कुछ डाक़र कहते हैं कि बिना नर-मादी के संयोग के बाढ़ हो ही नहीं सकती। यदि ऐसा होने लगे तो सृष्टि के एक व्यापक नियम में बड़ा भारी अन्तर पड़ जाय। जिस समय मलेरिया से पीड़ित किसी रोगी का रक्त मच्छड़ पीते हैं उस समय वह रक्त उनके पेट में जाकर स्थिर हो जाता है। उसमें नर और मादी दोनों प्रकार के जन्तु रहते हैं। वहाँ इन जन्तुओं को आप ही आप एकान्त मिल जाता है। इससे नर के संयोग से मादी गर्भवती हो जाती है। यह गर्भवती मादी मच्छड़ के पेट के एक परदे में बच्चे जनती है। प्रसूत होने पर इसके बच्चे मच्छड़ के रक्त में चले जाते हैं। वहाँ उन्हें कोई अच्छा खाद्य नहीं मिलता। इसी से वे उसके लाल पिण्ड में अपना अड्डा जमाते हैं। ऐसे मच्छड़ जब किसी प्राणी को काटते हैं तब ये जन्तु उसके रक्त में चले जाते हैं। इससे उसे ज्वर आने लगता है।

कुछ जन्तु ऐसे हैं जिन्हें अपनी जीवन-यात्रा में अनेक चाले बदलने पड़ते हैं। इसी तरह कुछ रोगों के जन्तुओं को यथाक्रम कुत्ता, सुअर और बकरे के शरीर में घूम लेने पर, मनुष्य के शरीर में रोग उत्पन्न करने की शक्ति प्राप्त होती है। इस कारण मलेरिया के जन्तुओं को, सर्वावयव-सम्पन्न होने के लिए, कुछ समय तक मच्छड़ के उदर में निवास करना पड़ता है। यहाँ एक आश्चर्य-जनक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि जब ऐसे ज्वर-जन्तु-युक्त मच्छड़ किसी निर्जीव पदार्थ पर बैठ कर अपनी गुण्डिका उसमें चुभाते हैं तब उनकी लार के साथ ये जन्तु बाहर नहीं आते। किन्तु ज्योंही ये किसी

सजीव प्राणी को काटने बैठते हैं त्योंही वे बाहर निकल कर उसके रक्त में घुस जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन्हें सजीव और निर्जीव जन्तु का ज्ञान है। इस बात का अब तक पक्का पता नहीं लगा कि पहले पहल इनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई।

मलेरिया के अनेक भेद हैं। उनमें से कुछ ये हैं—  
 इकतरा (अन्येद्युः)—यह चौबीस घण्टे में आता है।  
 अंगरेजी में इसे 'कोटिडियन' कहते हैं। तिजारी—  
 (तृतीयक) यह अड़तालीस घण्टे में आती है। इसे 'टर्शियन' कहते हैं। चौथिया—(चातुर्थिक)—यह बहत्तर घण्टे में आता है। इसे 'कार्टन' कहते हैं। एक, कुछ समय तक, नित्य ही आता रहता है। अंगरेजी में इसका नाम 'रेमीटेंट' है। ये जो चार भेद बतलाये गये हैं इनमें प्रत्येक के जन्तु भिन्न भिन्न हैं। परन्तु कभी एक ही प्राणी को कई रोगों के मच्छड़ काट खाते हैं। इससे उसे बिना किसी विशेष नियम के ज्वर आने लगता है। ऐसे रोगी को थोड़े ही समय में जाड़ा लगता है; थोड़े ही समय में पसीना भी आने लगता है। ऐसा ज्वर कभी कभी घंटों चढ़ा रहता है और कभी उतरने में देरी नहीं लगती। ऐसी विचित्र लीला देख कर कभी कभी लोगों को कई प्रकार के निर्मूल सन्देह होने लगते हैं। ऐसे ज्वर की आरम्भादि-क्रियाओं के अनियमित होने से आयुर्वेद में उसे "विषम ज्वर" कहते हैं। "विषमो विषमारम्भः क्रिया-कालेनुषङ्गवान्" (वाग्भट) मलेरिया के जो अनेक भेद हैं वे सब इन्हीं चारों के अन्तर्गत हैं। कभी कभी रोगी के अन्तरावयवों पर काले-पीले दाग पड़ जाते हैं। रोगी की जीभ देखने से यह बात जानी जा सकती है। इस रोग से तिल्ली बढ़ती है। इसी का दूसरा नाम 'प्लीहादर' है। प्लीहा के सिवा यकृत और मूत्रपिण्ड भी बिगड़ जाते हैं। इस रोग का दूसरा विकट परिणाम पाण्डुरोग है। क्योंकि, रक्त के लाल कणों को मलेरिया के जन्तु खा पी कर कम कर डालते हैं। इससे शरीर का रंग फीका हो जाता है और रक्त बिलकुल पतला पड़ जाता है। थोड़ा ही भोजन करने



से जान पड़ता है कि तृप्त हो गये । भूख अच्छी नहीं लगती । इससे कमजोरी बढ़ती है । मौका पाकर ऐसे रोगी को और भी कई रोग धर दबाते हैं और अन्त में बेचारे का अन्त भी हो जाता है ।

मलेरिया को रोकने के लिए, घर के बाहर या भीतर कहीं भी, पानी इकट्ठा न होने देना चाहिए । नालियाँ भी ऐसी साफ़ रखनी चाहिए कि उनमें पानी न भरा रहे । नाबदान हमेशा साफ़ रखना चाहिए । घर में कूड़ा कचरा और फलों के छिलके आदि पड़े रहने से बदबू आने लगती है । ऐसाही समय मच्छड़ों को अण्डे देने के लिए सुभीते का होता है । इस से मकान को बाहर-भीतर साफ़ रखने की बड़ी जरूरत है । कूड़े कचरे को कभी घर में न सड़ने देवे । यदि कहीं ऐसे गढ़े हों जिनमें भरा हुआ पानी सड़ने लगे तो उन्हें मिट्टी से पूर देना चाहिए । ऐसा करने से मच्छड़ों के अण्डे नष्ट हो जाते हैं । यदि अड़ोस पड़ोस में कोई ऐसी जगह हो, जहाँ मच्छड़ अण्डे रखते हों, और वह मिट्टी से पूरी न जा सकती हो, तो वहाँ थोड़ा सा मिट्टी का तेल छिड़क देना चाहिए । ऐसा करने से मच्छड़ों के अण्डे नष्ट हो जाते हैं । फिर उस स्थान पर कभी अण्डे रखे ही नहीं जा सकते ।

यदि किसी कारण से ऐसे स्थान में सोना पड़े जहाँ मच्छड़ों की अधिकता हो तो मसहरी का व्यवहार अवश्य करना चाहिए । पर, मसहरी ऐसी हो जिसके छिद्रों में होकर मच्छड़ों का आवागमन न हो सके । सोने का स्थान तड़ू न होना चाहिए । मच्छड़ों का अन्धकाराच्छन्न स्थान अधिक प्रिय है । इसलिए ऐसे स्थानों में कभी न सोवे । जो लोग मसहरी का बर्ताव न कर सकते हों उन्हें उचित है कि वे अपने शरीर के उन भागों पर, जो सोते समय प्रायः खुले रहते हैं, तारपीन का तेल और कपूर वगैरह लगा लिया करें । उनकी उग्र वास के मारे मच्छड़ पास नहीं आते । सोने से पहले शयनागार के दरवाजे बन्द करके तम्बाकू, गन्धक या धूप, जो कुछ मिल सके, उसका बुरादा इस रीति से बखेर देवे कि वह मच्छड़ों को

लगे और वे भाग जायँ । ऐसा करने से वे मर जाते हैं । रात होतेही मच्छड़ अपना शिकार खोज के लिए निकलते हैं और उजेला होने के पहले घने अन्धकार में जा छिपते हैं । पंखे का उपयोग करने से भी ये कुछ देर के लिए भाग जाते हैं । गरीब आदमी इनमें से किसी उपाय का उपयोग नहीं कर सकते । वे सदा अपने पेट के लिए ही रोग करते हैं । तब भला दवा वे कैसे खरीद सकेंगे और मसहरी वगैरह कहाँ से पावेंगे ? ऐसी स्थिति स्थानिक म्यूनीसिपलिटियों का कर्तव्य है कि वे पेट अण्डों को पानी पर छिड़कने के लिए मिट्टी का तेल आदि मुफ्त देने की तजवीज करें ।

इस तरह चलने पर, बहुत करके, ओषधि आवश्यकता ही नहीं रहती । किन्तु ये उपाय सभी के लिए लाभदायक नहीं । इससे जब मलेरिया का जो हो तब हफ्ते में कोई पन्द्रह ग्रैन किनाईन का सेवन करना अच्छा है । छोटे बच्चों को उनकी अवस्था अनुसार थोड़ी देना चाहिए । भोजन करने के कुछ देर पहले किनाईन का सेवन करना चाहिए । जि उष्णप्रकृति के पुरुषों को किनाईन पच न सकती है वे नींबू के रस में लिया करें । कोई भी ओषधि प्रवाही रूप में जितनी जल्दी पचती है अप्रवाही रूप में उतनी जल्दी नहीं । इससे नींबू के रस के साथ किनाईन का सेवन करना विशेष लाभकारी है । कोई कोई नींबू के रस के प्रपञ्च में न पड़कर बाजारू किनाईन की गोलियाँ खाया करते हैं । हवा लगने से विगड़ जाती हैं । किसी किसी ऊपरी कवच इतना कड़ा हो जाता है कि पेट में गलतीही नहीं । मलेरिया की प्रत्येक ओषधि किनाईन मिली रहती है ।

ऊपर बतलाये हुए म्यूनीसिपलिटि के कर्तव्य एक बात यह भी है कि वह दीन दुखियों को मुफ्त किनाईन बाँटे । ऐसा करने और स्वच्छता पर ध्यान देने से मलेरिया होने का डर नहीं रहता ।

लल्लीप्रसाद पाँडे



## शंकराचार्य का समय और उनका जन्मपत्र ।



दरास के इण्डियन रिव्यू नामक मासिक पत्र की जुलाई १९१० की संख्या में कोचीन-गवर्नमेंट के ज्योतिषी मिस्टर सी० बी० पिचु आइयर ने एक छोटा सा लेख श्रीशंकराचार्य के समय के विषय में प्रकाशित किया है। उसमें दक्षिण-देश की प्रसिद्ध जन-कथा और शंकरविजय-काव्य के आधार पर शंकराचार्य का समय निश्चित किया गया है। इसका सार यहाँ लिखा जाता है :—

अद्वैतवाद-संस्थापक श्रीशंकराचार्य का अवतार कुछ लोग विक्रम के १४ वें शतक में मानते हैं। कोई ३८८९ कलि-वर्ष बीतने पर मानते हैं। कोई कुछ और ही कहते हैं। इसी प्रकार बहुत से मत-भेद, मलाबार से भिन्न देशों में, प्रसिद्ध हैं। पर नीचे लिखी हुई बातों में प्रायः सबका एक ही मत है :—

अ—आचार्य का जन्म, ट्रावनकोर-राज्य के कालडी स्थान में, हुआ था।

ब—वे पूरे आत्मज्ञानी थे—यहाँ तक कि उनको हिन्दू लोग ईश्वरावतार मानते हैं।

क—उन्होंने मलाबार और भारतवर्ष के दूसरे स्थानों में बड़ेही अद्भुत अद्भुत काम किये हैं।

ख—उन्होंने विशेष विशेष सामाजिक और धार्मिक रीतियों का उपदेश केरल-देशवासियों को किया है और उन रीतियों का प्रचार भी किया है।

ग—अभी तक वही आचार, रीति और व्यवहार दक्षिण के भिन्न भिन्न स्थानों में प्रचलित हैं।

ऐसे अवतारी महानुभाव का जन्म किस समय हुआ और कितने दिनों तक अपनी प्रभाव-प्रभा से उसने भूमण्डल को प्रकाशित किया, यह जानने योग्य बात है।

मलाबार और दूसरे स्थानों में भी शंकर की चरितावली और जन्म-कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनका

मूलाधार माधवाचार्य कृत शंकर-विजय है। उसमें आचार्य के जन्म-समय की ग्रहस्थिति का वर्णन है। वह विशेष शुभफलदायक फलित सिद्धान्तों के अनुसार ठीक मानी जाती है। माधवाचार्य प्रसिद्ध राजधानी विजयानगर में वहाँ के हिन्दू-राजा हुक्क और बुक्क के समय में मन्त्री थे। वे विद्यारण्य नाम से भी प्रसिद्ध हैं। वेद-वेदाङ्गों पर इनकी लिखी टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। किसी समय ये शृङ्गेरीमठ के आचार्य भी थे। तभी से इनका नाम विद्यारण्य पड़ा था। ऐसे प्रसिद्ध विद्वान् का लेख सर्वथा विश्वास करने योग्य है। इसलिए शंकरविजय में जो बातें आचार्य के विषय में लिखी हैं उन्हें हम विश्वास-योग्य समझते हैं।

आचार्य ने शिक्षा समाप्त करके संन्यास ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने अपना मत-प्रचार आरम्भ किया। इस बात को सभी मानते हैं। कुछ लोगों का मत है कि दक्षिण के कोलम (कुडिलन) नामक स्थान में, चिनगम (चैत्र का यह केरली नाम है) मास की प्रथम तिथि को, उन्होंने निज-मत-प्रचार शुरू किया। वहाँ से, केरल होकर पश्चिम को गई हुई भारत नदी के दक्षिणी तट की तरफ वे गये। आश्विन की प्रथम तिथि से उनके मत का प्रभाव, केरल में, भारत नदी के उत्तरी तट पर खूब फैल गया। यह जनकथा मलाबार में सर्व-प्रसिद्ध है और यही कोलम-शक के आरम्भ की जड़ मानी जाती है। यह शक अभी तक मलाबार में प्रचलित है। भारत नदी के उत्तर-तटवासी मलाबारियों में, नवीन वर्षारम्भ, इसीलिए चैत्र-वदि प्रतिपदा को माना जाता है। दक्षिणतट-वासी आश्विन-प्रतिपदा से नवीन वर्ष मानते हैं। जब से कोलम में आचार्य का मत चला तब से वहाँ का शक 'कोलम अंदू' नाम से विख्यात हुआ। यह कोलम शक कलि के ३९२७ वर्ष बीतने पर आरम्भ हुआ था। इससे यह अनुमान होता है कि केरल में शंकर का मत-प्रचार हुए १०८५ वर्ष हुए।

कुछ प्राचीन हस्तलिखित दिनचर्याओं में, केरल के प्रसिद्ध पुरुषों के विषय में, ज्योतिष-सम्बन्धिनी



कालगणना उपलब्ध होती है। उनमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध उपदेश, आचार, देवमन्दिरों की प्रतिष्ठा आदि बातें, जिसने जब की हैं, सबकी तिथि आदि दी हुई है। ऐसीही एक पुस्तक का नाम आचार्यवाग्भेय है। इस पुस्तक में लिखा है कि मलाबार में श्रीशंकर का मत १४,३४,१६० सौर दिन को प्रचलित हुआ था। इस दिनमान के ३९२७ कलिवर्ष होते हैं। इसके आधार पर भी शंकर को हुए १०८५ वर्ष होते हैं।

माधवाचार्य ने शंकर-विजय में लिखा है कि आचार्य ने ३२ वर्ष के वय में शरीर छोड़ा। अतएव कलि के ३९२७ वर्ष के कुछ पहले आचार्य का जन्म हुआ होगा। माधवाचार्य ने आचार्य के जन्म-काल में ग्रहस्थिति यों लिखी है :—

लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमारं

श्रीपार्वतीव सुखिनी शुभवीक्षिता च ।

जाया सती शिवगुरोर्निजतुङ्गसंस्थे

सूर्ये कुजे रविसुते च गुरौ च केन्द्रे ॥

अर्थात् उस समय शुभ ग्रह के सहित शुभ लग्न थी। सूर्य, मंगल, शनि अपनी उच्च राशियों में स्थित थे। बृहस्पति केन्द्र में थे। मेष का सूर्य, मकर के मंगल, तुला का शनि अपनी उच्च राशि का माना जाता है। लग्न से चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान कुण्डली में केन्द्र कहलाता है। जिस वर्ष में जिस दिन ऐसी ग्रहस्थिति हो वही दिन-घड़ी आचार्य के जन्मकाल की जाननी चाहिए। शृङ्गेरीमठ और दूसरे स्थानों में भी जन्मोत्सव, वैशाख की शुक्ल ५ को, जब चन्द्रमा आर्द्रा नक्षत्र पर होता है, मनाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि वैशाख-शुदि ५ ही जन्म-दिन था। सूर्य उच्च का माना गया है। वह भी वैशाख ही में, मेष राशि में, उच्च का रहता है।

लेखक ने आचार्य के जन्मपत्र का गणित, भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रचलित रीति से न करके, मलाबार में प्रचलित पराहित नामक एक गणना विशेष के क्रम से किया है। यह गणना कलि के ३७८५ वर्ष बीतने पर, कालड़ी स्थान में, आचार्य-जन्म के १२५ वर्ष पूर्व जारी हो गई थी।

अब माधवाचार्य-लिखित ग्रहस्थिति और दक्षिण में प्रसिद्ध जनकथा आदि के अनुसार, परहित-विशेष से, शंकर की जन्म-कुण्डली का कालमान आदि प्रकार हुआ :—

विक्रम संवत् ८६३, शक ७२८, कलिवर्ष ३९२७ ख्रिस्ताब्द ८०५, वैशाख-शुदि ५ सोमवार। घटी १ पल २५। आर्द्रा नक्षत्र घटी ०। पल १९। कर्क राशि ३, अंश २९', कला १७'। कलि से सौराब्द १४२६७१५। घटी १७, पल २५।

### स्पष्टग्रह ।

	रा०	अं०	क०
सूर्य	०	१६	३६
चन्द्र	२	६	४५
मंगल	९	२९	५०
बुध	१	१	५८
गुरु	३	१९	४१
शुक्र	१	२९	२७
शनि	६	१३	२७
राहु	६	७	४४
केतु	०	८	४४

### जन्मग्रह ।

५	३ च०
६	४ बृ०
७ श० रा०	१ सू० के०
८	१० मं०
९	११
१०	१२ शु० बु०

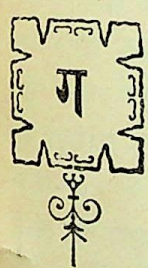


र दक्षि  
हेत-वि  
आदि  
र्ष ३१०  
घटी  
कर्क  
मोराहा

इस कुण्डली में कर्क-लग्न में बृहस्पति अपनी उच्च राशि में वर्तमान है और उसे बुध-शुक्र देखते हैं। यह बड़ा उत्तम योग है। सूर्य, शनि, मंगल भी उच्च राशि में स्थित हैं। फलित सिद्धान्तों के अनुसार यह कुण्डली महा-यशस्वी, विद्वान् और राजा की सिद्ध होती है।\*

बस, यही मिस्टर पिचु आइयर के लेख का सारांश है। सरस्वती के विश्व पाठक इसको पढ़ें और विचार करें। अन्त में पिचु ज्योतिषीजी से प्रार्थना है कि मलाबारी पराहित-गणना (Parahita System) का मूल और उसकी गणित-रीति यदि वे कभी इण्डियन रिव्यू में प्रकाशित करने का कष्ट उठावें तो भारत के दूसरे प्रान्तवाले गणित-विशारदों को भी इस गणना का परिचय हो जाय।  
गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

## प्रयाग-प्रान्त के प्राचीन ऐतिहासिक नगर।

 त संख्या में प्रयाग का प्राचीन और नवीन ऐतिहासिक वृत्तान्त संक्षेप में दिया गया है। इस दफ्ते प्रयाग के आस पास के दो चार प्राचीन स्थानों का थोड़ा सा उपलब्ध वृत्तान्त दिया जाता है।

पूर्व काल में इलाहाबाद के आस पास के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों में कालनगर, अलर्कपुरी, शृङ्गि-

\* वराहमिहिराचार्य-कृत बृहज्जातक नामक फलित-ग्रन्थ के राजयोगाध्याय में एक श्लोक है—

कर्कणि लग्ने तत्स्थे जीवे चन्द्रसितज्ञैरायप्राप्तैः।

मेघगतेऽर्के जातं विद्याद् विक्रमयुक्तं पृथ्वीनाथम्॥

अर्थात् जिस बालक के जन्मकाल में, कर्क-लग्न में बृहस्पति, मेघ का सूर्य और ग्यारहवें स्थान में बुध, शुक्र और चन्द्र हों उसको पराक्रमी राजा जानना चाहिए। यही राजयोग हमारे आचार्य के जन्मपत्र में पड़ा है।

वीरपुर, कौशाम्बी, भारहट और प्रतिष्ठानपुर मुख्य थे। मगधदेश के चक्रवर्ती राजा अशोक ने अपनी प्रजा के सुभीते के लिए कितनीहीं सड़कें बनवाई थीं। पत्थर के ऊँचे ऊँचे स्तम्भों और पहाड़ियों की चटानों पर उसने अपनी आज्ञायें और प्रतिज्ञायें खुदवा दी थीं। प्रजा के हित के लिए जो जो काम उसने किये थे उनका भी उल्लेख उसके इन आदेशों में पाया जाता है। उसके दो उत्कीर्ण शिलालेखों में लिखा है :— “मैंने सड़कें बनवा दी हैं; उनके किनारे बड़े बड़े बरगद और आम के पेड़ लगवा दिये हैं; एक एक मील पर कुँवे खुदवाये हैं; धर्मशालायें भी जगह जगह पर बनवाई हैं। मनुष्यों हों के नहीं, पशुओं और पक्षियों तक के आराम का मैंने प्रबन्ध कर दिया है”।

अशोक की बनवाई कई सड़कों का पता पुरातत्ववेत्ताओं ने लगाया है। उज्जैन उस समय मगध-राज्य का एक सूबा था। वहाँ से एक सड़क भिलसा, रूपनगर, भारहट, कौशाम्बी और प्रयाग होती हुई राज-गृह को जाती थी। अशोक के शासनकाल में ये नगर बड़ेही समृद्धिशाली थे। साँची के स्तूपों का वर्णन पाठक सरस्वती में पढ़ही चुके हैं। यह स्थान भिलसा के बिल्कुल पास है। पूर्व काल में भिलसा की बस्ती साँची तक थी। रूपनगर में अशोक के खुदे हुए शिलालेख मिले हैं। यह नगर भी उस समय बहुतही अच्छी दशा में था। भारहट और कौशाम्बी का क्या कहना है। इन नगरों की तो बड़ी ही ऊर्जितावस्था थी। काल-नगर और शृङ्गिवीरपुर भी खूब वैभवसम्पन्न थे।

### कौशाम्बी।

कौशाम्बी के आस पास का प्रान्त पहले वत्सदेश कहलाता था। कौशाम्बी उसकी राजधानी थी। इसका वर्तमान नाम कोसम है। यह जगह इलाहाबाद से कोई तीस मील दूर यमुना के तट पर है। बारह सौ वर्ष हुए जब चीनी परिव्राजक ह्वेन-सांग भारत में आया था। उसने लिखा है कि उस समय



तक कौशाम्बी नगरी अच्छी दशा में थी । वहाँ के राजा के राज्य का विस्तार बारह सौ मील के इर्द गिर्द में था । गौतम बुद्ध ने इस नगरी में दो दफे करके दो वर्ष तक धर्मोपदेश किया था । इस कारण बौद्ध लोग बड़े भक्ति-भाव से इस स्थान की यात्रा करने आते थे । ह्वेन-सांग ने, और उसके कुछ काल पहलेही आये हुए फा-हियान नामक चीनी यात्री ने भी, कौशाम्बी के दर्शन किये थे । उस समय यहाँ कितनेही स्तूप, विहार और संघाराम थे ।

बौद्ध धर्म के आविर्भाव के बहुत पहलेही कौशाम्बी बस चुकी थी । गंगा की धारा में हस्तिनापुर के बह जाने के बाद, सुनते हैं, पाण्डववंशी कुशाभ्य नामक राजा ने इसे बसाया था । पर इसकी विशेष उन्नति राजा चक्र के समय से हुई । आज से कोई ठाई हजार वर्ष पूर्व परन्तप का पुत्र उदयन यहाँ राज्य करता था । राजा उदयन-सम्बन्धिनी कथा पुराणों में भी है, पुराने काव्यों और नाटकों में भी है और कथा-सरित्सागर में भी है । कालिदास ने अपने मेघदूत में इसी उदयन का उल्लेख किया है । बौद्धों के धम्मपद नामक ग्रन्थ में अवन्ति-नरेश की कन्या वासवदत्ता और कौशाम्बी के अधीश्वर उदयन के विवाह की वार्ता बड़े विस्तार से लिखी है । बौद्धों के महावंश और ललितविस्तर नामक ग्रन्थों में भी कौशाम्बी के वैभव का बड़ाही महत्त्वदर्शक वर्णन है । उनमें लिखा है कि प्राचीन समय में कौशाम्बी की गिनती भारत के १९ प्रधान नगरों में थी । राजा उदयन ने बुद्ध की एक मूर्ति चन्दन की बनवाई थी । ह्वेनसांग के समय तक वह कौशाम्बी के राजमहलों में विद्यमान थी । उसके दर्शन के लिए हजारों कोस दूर के देशी और विदेशी बौद्ध वहाँ आते थे । कौशाम्बी में किसी समय बड़ा व्यापार होता था । यमुना के किनारे होने के कारण करोड़ों रुपये का माल यहाँ नावों से आता और यहाँ से श्रावस्ती, साकेत, प्रतिष्ठान और पाटलीपुत्र को जाता था ।

कौशाम्बी में कितनेही विहार और स्तूप थे । महाराजा उदयन के महल की उँचाई ६० फुट थी ।

इस नगर के इर्द गिर्द दो दो चार चार मील की दूरी पर बौद्धों के चार प्रसिद्ध विहार थे । इस स्थान की प्रसिद्धि और समृद्धि को देखकर ही अशोक यहाँ पर एक ऊँचा स्तम्भ बनवाया था और उस पर अपने आदेश खुदाये थे । प्राचीन इतिहास और इमारतों की खोज करनेवाले विद्वानों का अनुमान है कि इलाहाबाद के किले में जो स्तम्भ इस समय है वह पहले कौशाम्बी ही में था ।

इस समय कौशाम्बी के प्राचीन वैभव की गवाह देनेवाला वहाँ के किले का धुस्स मात्र रह गया है । उसका घेरा चार मील से भी कुछ अधिक है । भग्नावशिष्ट दीवार की उँचाई अब भी ३५ फुट है । पर, वुजें ५० फुट तक उँची हैं । ये सब मिट्टी के हैं । इस नष्ट-विनष्ट गढ़ के भीतर एक और पुराना चिह्न अब तक विद्यमान है । यह पत्थर का एक ऊँचा स्तम्भ है । इसकी वर्तमान उँचाई केवल १४ फुट है । पर, इसके पास इसके कई टूटे हुए टुकड़े पड़े हैं । जर्नेल कनिंघम ने इसके आस पास साठ फुट तक खोदा, पर इसकी जड़ न मिली । टूटे हुए टुकड़ों की उँचाई और आठ फुट नीचे खुदाई को जोड़ने से इस स्तम्भ की उँचाई २८ फुट होती है । परन्तु इस तरह के अन्यान्य स्तम्भों की उँचाई को देखते यह भी ३६ फुट से कम उँचा रहा होगा । यह स्तम्भ भी बौद्धों के समय का जान पड़ता है । इस पर अशोक का तो कोई लेख नहीं है पर और कितनेही लेख उत्कीर्ण हैं । उनमें से कौन एक बहुत पुराने हैं । एक गुप्त-वंशी नरेशों के समय का है । एक और उससे भी पुराना है । इस स्तम्भ को लोग अब “राम की छड़ी” कहते हैं ।

इस कौशाम्बी नगरी में न अब कोई विहार है न स्तूप हैं, और न अभ्रंकष प्रासादही हैं । हैं मिट्टी के धुस्स और एक टूटा फूटा स्तम्भ । कौशाम्बी का नाम और उसके प्राचीन वैभव का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखों में है । उसकी प्राचीन समृद्धि का सबसे अधिक स्वरण दिलानेवाला



भाग १  
मील  
इस सा  
अशोक  
उस  
हास  
अनुम  
इस स  
  
नी गवा  
गया  
धिक  
फुट  
मिट्टी  
र पुरा  
एक ऊँ  
१४ पु  
टुकड़े  
सा स  
ली।  
नीचे  
२८ पु  
तम्भों  
ऊँचा  
का जा  
रेख न  
में से क  
के सम  
न स्त  
  
वेहार  
। हैं अ  
कौशाम्बी  
लेख-मा  
नी प्राची  
छानेवा



सरस्वती



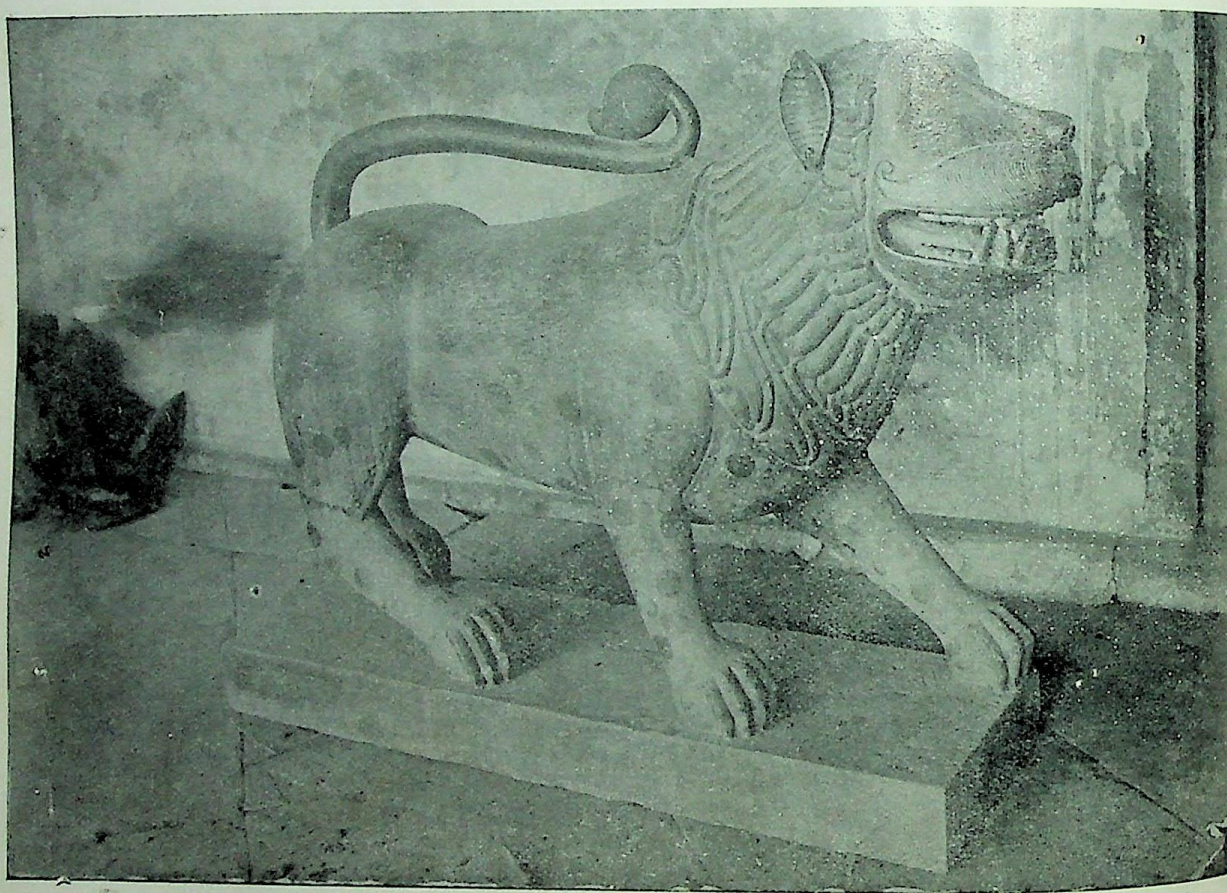
कोड़े का भग्नावशेष ।



कोटि का भगवत्प्रेष ।



# सरस्वती



अरैल में व्याघ्र की एक मूर्ति ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







## सरस्वती



अरैल में स्वामिकार्तिक की मूर्ति ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



पूर्वोक्त स्तम्भ है। काल बड़ा बली है। उसके प्रभाव से अनन्त वैभव-सम्पन्न नगर मिट्टी में मिल गये और जहाँ अखण्ड जंगल थे वहाँ बड़े बड़े किले और महल खड़े हो गये !

### शुद्धीवारपुर ।

गत संख्या में प्रयाग पर जो लेख प्रकाशित हुआ है उसमें सिंगरौर का उल्लेख है। यह जगह इलाहाबाद से १८ मील दूर गङ्गा के किनारे है। यही शुद्धी ऋषि का स्थान है। किसी समय यह बहुत बड़ा नगर था। पर गङ्गाजी के गर्भ में चला गया। प्राचीन समय की यहाँ केवल अब ईंटें मात्र कहीं कहीं देख पड़ती हैं। वर्तमान चबूतरे, स्थान और मन्दिर सब नये हैं। महम्मद मन्दारी नामक एक मुसल्मान की कब्र भी यहाँ है।

### कोड़ा ।

कोड़ा भी एक बहुत पुरानी बस्ती है। इसका प्राचीन नाम कर्कोटक-नगर है। पुराणों में लिखा है कि यहाँ पर अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में मरनेवाली सती का एक हाथ गिरा था। यहाँ पर कालेश्वर का एक प्रसिद्ध मन्दिर है। उसके नामा-नुसार इसे कालनगर भी कहते हैं। गङ्गा के किनारे यहाँ पहले एक बहुत मजबूत किला था। उसका चह-मात्र अब रह गया है। किसी समय यह शत्रुजराज जयचन्द के अधिकार में था। यहाँ पर बहुत पुराने समय के कितनेही सिक्के मिले हैं जो कलकत्ते के अजायब घर में रखे हैं। १०३५ ईसवी में खुदा हुआ राजा यशःपाल का एक शिलालेख भी यहाँ मिला है।

राजा करक नामक एक औरलिया की यहाँ सिद्ध कब्र है। १३०९ ईसवी में इसकी मृत्यु हुई। अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी ने जिस समय अपने चचा जलालुद्दीन मुहम्मद खिलजी को मारा उस समय राजा करक जीते थे। एक और भी कब्र यहाँ पर है। वह कमालखाँ की है।

कड़े के भग्नावशेष गंगा के किनारे किनारे कोई दो मील तक देख पड़ते हैं। पहले यह बहुत बड़ा शहर था। अनेक कब्रें, मसजिदें और ईदगाहें यहाँ अब तक हैं। मुगल बादशाहों के सूबेदार पहले यहाँ रहते थे। जबसे अकबर ने इलाहाबाद में किला बनवाया तबसे सूबेदारी वहाँ उठ गई और कड़े की अवनति आरम्भ हुई। इस समय यहाँ पृथ्वी के पेट में जितने मुर्दे गड़े हुए हैं उससे बहुत कम मनुष्य जीवित अवस्था में पृथ्वी के ऊपर हैं।

### अरैल ।

इलाहाबाद से चार मील दूर एक जगह अरैल है। इसका प्राचीन नाम अलर्कपुरी है। पर इसका पूर्व-ऐतिहास बिल्कुलही अज्ञात है। सोमेश्वर और वेनीमाधव के प्रसिद्ध मन्दिर यहाँ पर हैं। इन मन्दिरों की कोई कोई मूर्तियाँ महत्त्व की हैं।

### प्रतिष्ठानपुर ।

प्रतिष्ठानपुर के प्राचीनत्व के बोधक अब केवल मिट्टी के पुराने बर्तनों के टूटे फूटे टुकड़े, मिट्टी और ईंटों के ऊँचे ऊँचे धुस्स, और गुप्तवंशीय नरेश समुद्रगुप्त और हंसगुप्त के किलों के टीले मात्र हैं। जिस जगह पर प्राचीन प्रतिष्ठानपुर था वहाँ अब नई और पुरानी झूंसी नाम के दो गाँव हैं। झूंसी गंगा के उत्तरी तट पर है और इलाहाबाद से केवल तीन मील है। प्रतिष्ठानपुर चन्द्रवंशी राजाओं की बहुत दिन तक राजधानी था। प्रसिद्ध राजा पुरुरवा यहाँ हुआ है। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में जिस प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख किया है वह स्थान यही है। कोई ४५ वर्ष हुए, राजा कुमारगुप्त के समय की २४ सुवर्ण-मुद्रायें यहाँ मिली थीं। जैसे सारनाथ आदि स्थानों में खोदने पर सैकड़ों चीजें पुराने समय की मिली हैं वैसेही, यदि यहाँ पर भी खुदाई हो तो, बहुतसी चीजों के मिलने की संभावना है। इस विषय का एक नोट, राय कृष्णदास का लिखा हुआ, सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। राजा त्रिलोचनपाल का एक दानपत्र, जिस पर



विक्रम संवत् १०८४ खुदा हुआ है, यहाँ मिल भी चुका है। इस संवत् तक प्रतिष्ठानपुर का वैभव विशेष क्षीण नहीं हुआ था। पर इसके बाद ही इसकी उतरती कला आरम्भ हुई। धीरे धीरे काल ने इसकी वह गति कर डाली जिसमें यह इस समय वर्तमान है। उधर प्रतिष्ठान की अवनति हुई, इधर प्रयाग की उन्नति। किसी किसी का अनुमान है कि प्रतिष्ठान की अवनति के कारण मुसल्मान हैं। यह भी किंवदन्ती है कि हरबोंग नाम का एक मूर्ख राजा यहाँ हुआ। उसके सब कामों में :—

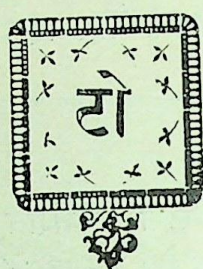
टका सेर भाजी टका सेर खाजा

वाली कहावत चरितार्थ होती थी। उसी के समय से प्रतिष्ठान की अधोगति का सूत्रपात हुआ। परन्तु इस विषय का कोई विश्वसनीय ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। नहीं मालूम, कौन बात सच है।

झूंसी में समुद्रगुप्त और हंसगुप्त के किलों में अब कुछ नहीं है। पर समुद्रगुप्त का समुद्र-कूप अब तक बना है। उसका कुछ हाल गत संख्या में दिया जा चुका है। इसी कूप के पास, थोड़ी दूर पर, हंस-कूप अथवा हंसतीर्थ नाम का एक और पुराना कुंवा है। यह महाराज हंसगुप्त का बनवाया हुआ है। यह विगड़ा पड़ा हुआ है। इस पर एक लेख खुदा है जिसमें लिखा है कि इसमें स्नान करने से पापों का क्षालन होता है। इसी के पास एक नया मकान बन गया है। लोग अब उसे ही हंसतीर्थ समझते हैं। पुराने और सच्चे हंसतीर्थ को वे भूल सा गये हैं।

झूंसी के नये स्थानों में से तिवारी का मन्दिर देखने योग्य है। उसके कुछ दृश्यों के चित्र पाठकों को इस संख्या में देखने को मिलेंगे।

## टोकियो-विश्वविद्यालय ।



टोकियो जापान का मुख्य शहर और राजधानी है। सन् १८७३ तक जापान में कोई ऐसा विश्वविद्यालय न था जिसमें प्रकार की उच्च शिक्षा दी जा हो। उसी साल जापान-सरकार

ने मिस्टर डायर नामक एक अमेरिकन पण्डित टोकियो में कलाकौशल का एक विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए बुलाया। डायर साहब ने भिन्न विषयों के पाश्चात्य अध्यापक बुला कर टोकियो में एक विश्वविद्यालय खोला। १८७७ ई० में इसे विश्वविद्यालय का स्वरूप दिया गया। पहले यह विश्वविद्यालय अमेरिका की पद्धति पर चलता था; पर वहाँ जर्मनी की पद्धति का विशेष आदर है।

टोकियो-विश्वविद्यालय शहर से दूर, एक और विस्तीर्ण मैदान में, स्थापित है। इस स्थान को “होगो” कहते हैं। इस विश्वविद्यालय में जो अलग अलग पाठशालायें हैं उनकी इमारतें भव्य, विस्तीर्ण, हवादार और सुन्दर हैं। विश्वविद्यालय के अभ्यासक्रम के लिए वर्ष के तीन सत्र किये गये हैं:—प्रथम ११ सितम्बर से २३ दिसम्बर तक, द्वितीय ८ जनवरी से ३१ मार्च तक, तृतीय ८ एप्रिल से १० जुलाई तक। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी को वार्षिक फ्रीस सिर्फ २५ “येन” (३९ रु०) देने पड़ते हैं। इंजिनियरिंग कालेज के विद्यार्थियों को कागुज, पेन्सिल आदि सामान काट से ही दिया जाता है। इसलिए १० येन अधिक पड़ते हैं। भारत-सरकार का मत है कि शिक्षा उत्कृष्टता फ्रीस की रकम से जानी जाती है। हिन्दुस्तान के कालेजों में कभी कभी विद्यार्थियों को वार्षिक फ्रीस के लिए १०० रु० से भी अधिक पड़े हैं। एक दो साल बम्बई एलफिन्स्टन कालेज प्रत्येक विद्यार्थी से १०४ रुपये और कलकत्ता



## सरस्वती



झूंसी क़सबे का दृश्य ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।







# सरस्वती



हंसकूप में उत्कीर्ण लेख । ( झूंसी )

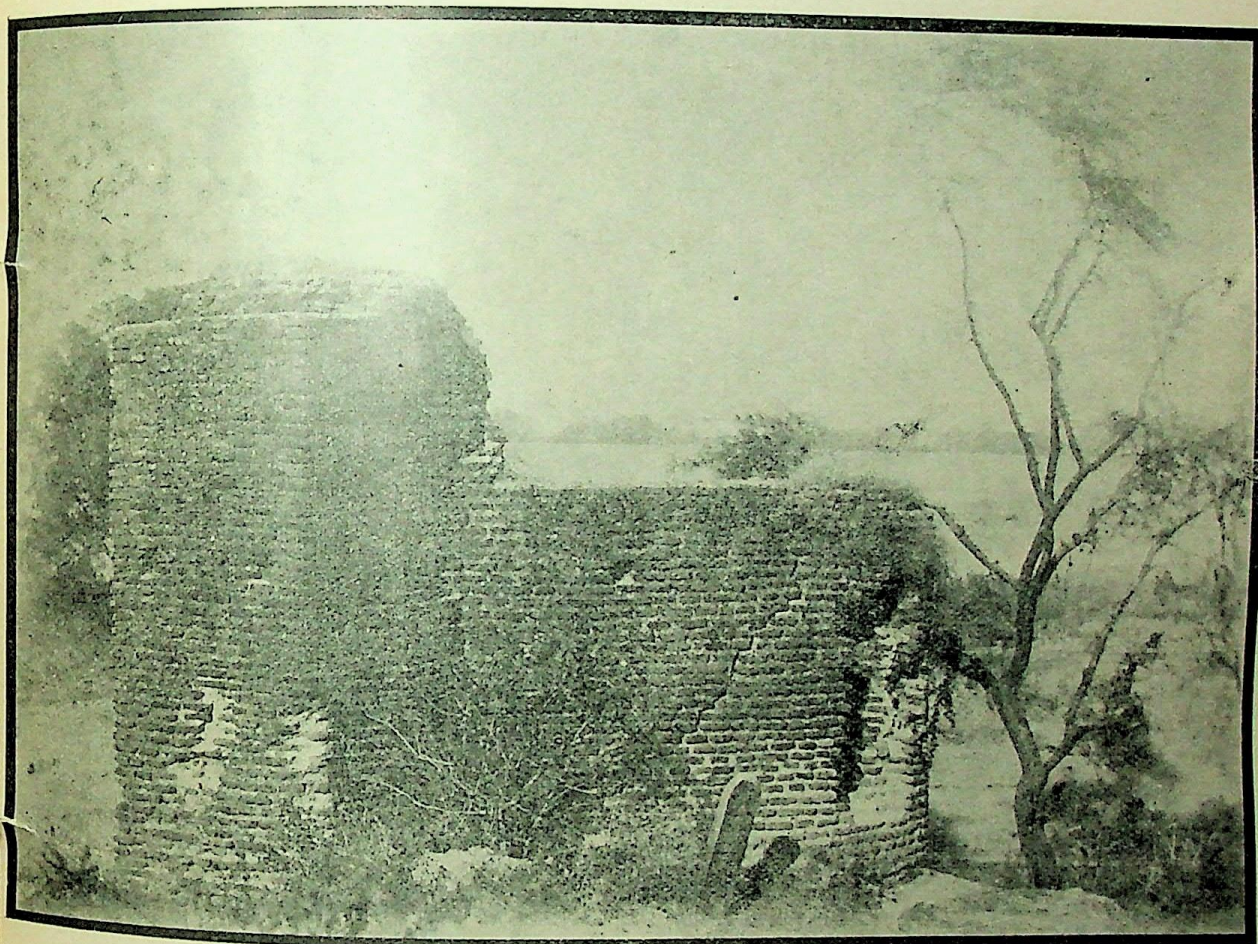
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







सरस्वती



हंसकूप । ( झंसी )

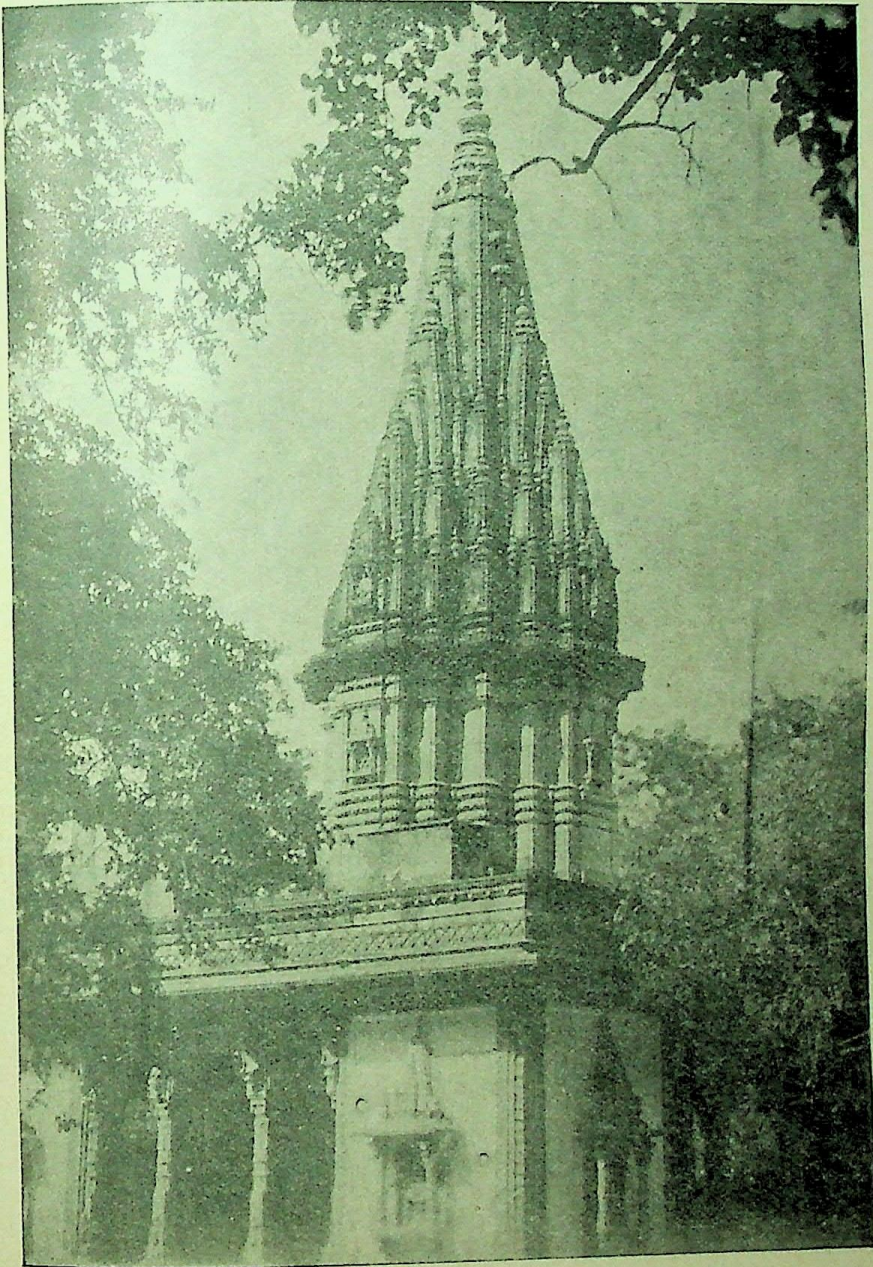
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







सरस्वती



तिवारी का मन्दिर । (झूँसी)

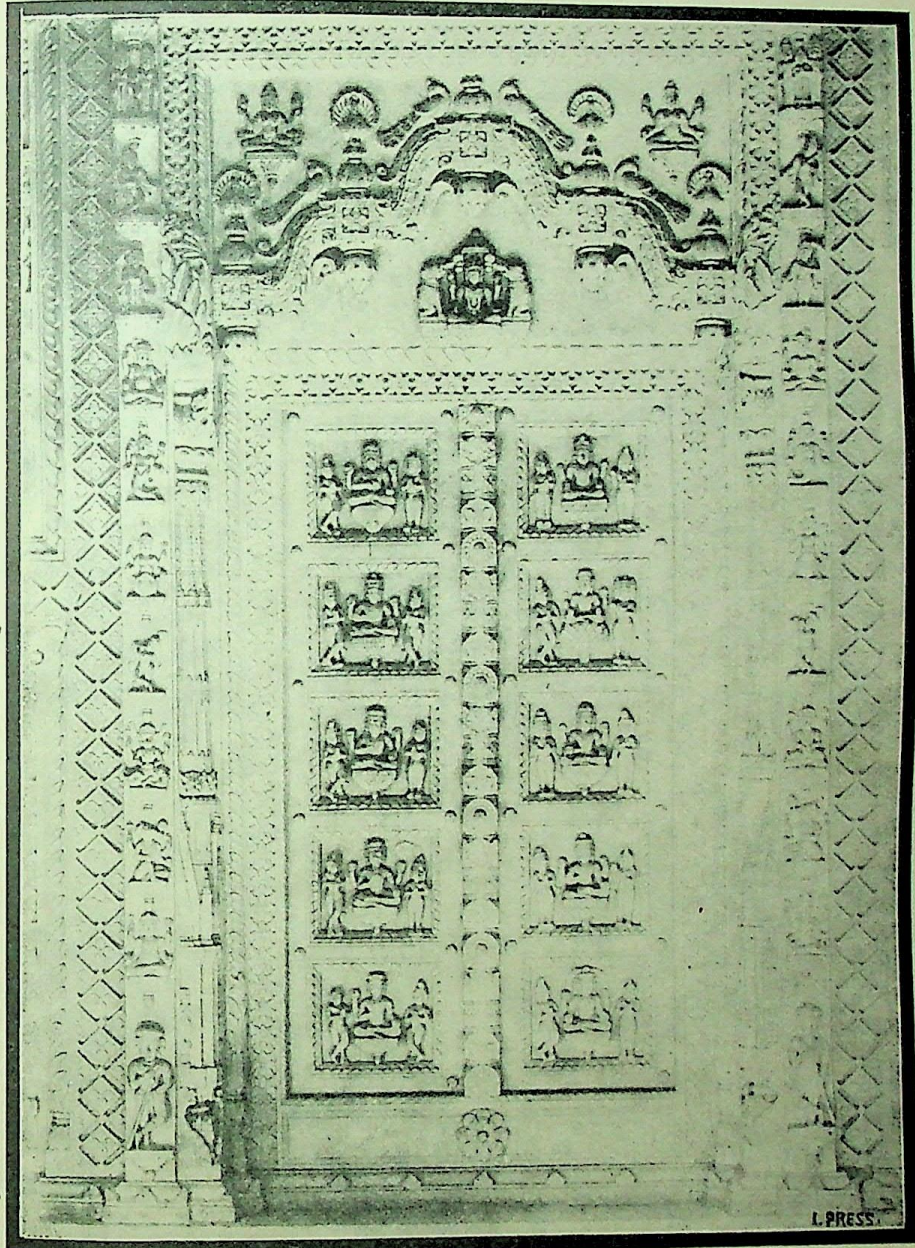
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







# सरस्वती



तिवारी के मन्दिर का द्वार ( झूंसी )

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।







सरस्वती



तिवारी के मन्दिर में अर्जुन की मूर्ति । ( झूंसी )  
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







# सरस्वती



तिवारी के मन्दिर में युधिष्ठिर की मूर्ति । ( झूंसी )  
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







## सरस्वती



तिवारी के मन्दिर में भीम की मूर्ति ( झूंसी )  
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।



संख्य

डन्सी

पये हैं

प्रार नि

इस क

सरका

इस सं

वि

सभा-

शेल्प,

कालेज

दिया

इ

राजने

है। ४

परीक्ष

का वि

रिक्त i

देना ३

इ

नियत

चाहे

ग्रभ्या

निवेद

में अम

वैठ स

परीक्ष

परीक्ष

कोई ३

परीक्ष

कुशी

पदवी

इ

वकाल



इन्सी कालेज के विद्यार्थी से १४६ रुपये तक लिये गये हैं। टोकियो-विश्वविद्यालय के लिए जितने भवन और शिक्षा-सामग्री चाहिए उतनी अभी नहीं है। इस बात का जापान-सरकार को बड़ा खेद है। सरकार चाहती है कि १२,००,००० पाँड खर्च करके इस संस्था की सब आवश्यकताएँ पूर्ण कर दी जायँ।

विश्वविद्यालय का एक बहुत बड़ा साधारण सभा-भवन है। उसके आस पास कानून, वैद्यक, शिल्प, साहित्य, भौतिकशास्त्र और कृषिशास्त्र के कालेज हैं। इन कालेजों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :—

College of Law.

### कानून की पाठशाला ।

इस पाठशाला के विद्यार्थियों को कानून किंवा राजनीति दोनों में से कोई एक विषय लेना पड़ता है। ४ वर्ष तक अभ्यास करने के बाद अन्तिम परीक्षा होती है। इस पाठशाला की ओर विद्यार्थियों का विशेष ध्यान रहता है। नियमित विषयों के अतिरिक्त निबन्ध लिखना, सम्भाषण करना और व्याख्यान देना भी यहाँ सिखाया जाता है।

इस पाठशाला में विद्यार्थियों के लिए कक्षाएँ नियत नहीं हैं। विद्यार्थी अपनी इच्छा के अनुसार, चाहे जितने वर्ष तक, अभ्यास कर सकता है। अभ्यास पूर्ण हो जाने पर उसे परीक्षा के लिए निवेदन करना चाहिए। विद्यार्थी एक वर्ष पाठशाला में अभ्यास किये बिना पहली परीक्षा के लिए नहीं बैठ सकता। चार वर्ष के बाद, चौथी या अन्तिम परीक्षा पास कर लेने पर, विद्यार्थी को एक और परीक्षा देनी पड़ती है। इसमें, नियत विषयों में से, कोई भी पाँच विषयों पर प्रश्न किये जाते हैं। इस परीक्षा में पास हो जाने वाले विद्यार्थी को “होगा-कुशी” (हो = धर्मशास्त्र, गाकुशी = पण्डित) नामक पदवी दी जाती है।

इस प्रकार पदवी मिल जाने पर विद्यार्थी वकालत कर सकता है और न्यायाधीश का पद

पाने के लिए अधिकारी समझा जाता है। नौकरी करने पर उसे उस विभाग की और और भी परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। इस पाठशाला में भिन्न भिन्न विषय सिखाने के लिए अनेक शिक्षक नियत हैं। नीचे दिये हुए विषयों पर स्वतंत्र व्याख्यान-पीठों की व्यवस्था की गई है :—

विषय	व्याख्यानकारों की संख्या
१ Constitution—राज्यव्यवस्था ...	१
२ Public Law—सार्वजनिक कानून	१
३ Civil Code—दीवानी कानून ...	४
४ Commercial Code—व्यापार-सम्बन्धी कानून ...	३
५ Code of Civil Procedure—दीवानी काम चलाने का कानून ...	१
६ Code of Criminal Procedure—फ़ौजदारी काम चलाने का कानून ...	१
७ Political Economy and Finance—अर्थ शास्त्र और कोश-व्यवस्था ...	३
८ Statistics—अंकशास्त्र ...	१
९ Politics—राजनीतिशास्त्र ...	१
१० History of Politics—राजनीति-शास्त्र का इतिहास ...	१
११ Administrative Law—राज्य-शासन नियम ...	२
१२ Public International Law—भिन्न-राष्ट्र-सम्बन्धी सार्वजनिक कानून ...	२
१३ Private International Law—भिन्न-राष्ट्र-सम्बन्धी व्यक्तिविषयक कानून ...	२
१४ History of Legal Institutions—धर्मशास्त्र संस्थाओं का इतिहास ...	१
१५ Comparative History of Legal Institutions—भिन्न-राष्ट्रीय-धर्मशास्त्र-संस्थाओं का तारतम्य-सूचक इतिहास ...	१
१६ Roman Law—रोमन-कानून ...	...
१७ English Law—अंगरेजी-कानून	...
१८ French Law—फ़्रेंच-कानून ...	...



- विषय व्याख्यानकारों की संख्या  
 १९ German Law—जर्मन-कानून ... १  
 २० Jurisprudence—धर्मशास्त्र की मीमांसा १

इस विषयमालिका से पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष और जापान की आधुनिक कानून शिक्षा में क्या फ़र्क है। इस पाठशाला में प्रत्येक विषय अतिव्यापक रीति से सिखाने के लिए प्रबन्ध किया गया है। इससे जापान-सरकार की उदारता और प्रजावत्सलता का अन्दाज़ पाठक सहज में कर सकते हैं।

College of Medicine.

### वैद्यकशास्त्र-शाला ।

इस पाठशाला में दो शाखाएँ हैं; वैद्यक और ओषधिक्रिया। वैद्यक शाखा में अभ्यास करने के लिए विद्यार्थी को चार वर्ष लगते हैं।

Anatomical and Physiological Science—  
 शारीर शास्त्र और इन्द्रियविज्ञान-शास्त्र ।

Surgical and Ophthalmological Science—  
 शस्त्रविद्या और नेत्रविद्या ।

Medical Obstetrical Science—वैद्यक और  
 प्रसवविद्या ।

इसकी तीनों शाखाओं में पास हो जाने वाले विद्यार्थी को “ईगाकुशी” (वैद्यक-विशारद) की पदवी दी जाती है।

इस पाठशाला से एक चिकित्सालय भी जोड़ा गया है। उसमें पाँच सौ रोगी रखने का प्रबन्ध है। वैद्यक और शस्त्रविद्या में नवीन आविष्कार करने के लिए जिस सामग्री की ज़रूरत पड़ती है वह सब यहाँ संग्रह की गई है। चिकित्सालय में सब प्रकार के रोगियों की मुफ़्त में चिकित्सा की जाती है। रोगियों के लिए अन्नवस्त्र का भी प्रबन्ध है; इस कारण सब प्रकार के रोगी यहाँ आते हैं और विद्यार्थियों को अनुभव प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिलता है। इस पाठशाला में शस्त्र-क्रिया-

सम्बन्धी, वैद्यक और रसायन-सम्बन्धी, और वनस्पति-सम्बन्धी तथा आरोग्य-विषयक भी अनेक वस्तुओं का बहुत बड़ा संग्रह है। संग्रह उत्तरोत्तर बढ़ाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। नवीन आविष्कार करने वाले पुरुष को उत्तेजन दिया जाता है। यहाँ के विद्वानों ने प्रशंसनीय आविष्कार किये हैं।

ओषधिक्रिया-शाखा के विद्यार्थियों को तीन तक अभ्यास करना पड़ता है। अभ्यास समाप्त पर, तीन प्रकार से, अर्थात् लिखित, प्रयोग-रूप और जबानी परीक्षा ली जाती है।

लिखित परीक्षा में दो विषयों पर प्रश्न जाते हैं :—

१ Pharmaceutical Chemistry—ओषधिरसायन-शास्त्र ।

२ Pharmacography and dispensing—ओषधि लिखने और देने की रीति ।

प्रयोग-परीक्षा में नीचे लिखे हुए चार विषयों पर प्रश्न किये जाते हैं :—

१ Analysis—पृथक्करण ।

२ Japanese Pharmacopoea—जापानी ओषधि-क्रिया ।

३ Forensic Chemistry—न्याय-विज्ञान-सम्बन्धी रसायन-शास्त्र ।

४ Sanitary Chemistry—आरोग्य-सम्बन्धी रसायन-शास्त्र ।

जबानी परीक्षा में पाँच प्रकार के प्रश्न जाते हैं :—

१ Pharmacography—ओषधि-लेखन ।

२ Medical Botany—ओषधीय-वनस्पति-शास्त्र ।

३ Organic Chemistry—संद्रिय-रसायन-शास्त्र ।



४ Forensic Chemistry—व्यायविभाग-सम्बन्धी रसायनशास्त्र ।

५ Sanitary Chemistry—आरोग्य-रक्षा-सम्बन्धी रसायन-शास्त्र ।

इस परीक्षा में पास होने वाले विद्यार्थी को “याकू-गाकुशी” (ओपधि-प्रक्रिया-विशारद) की पदवी प्रदान की जाती है। इस शाखा में बहुत कम विद्यार्थी शामिल होते हैं। वैद्यक-शास्त्र-पाठशाला में कुल २८ व्याख्यानकार शिक्षक हैं।

Engineering College.

### शिल्प-शाला ।

शिल्पशाला में कुल ९ शाखाएँ हैं। प्रत्येक शाखा का अभ्यास-क्रम ३।३ वर्षों का है।

१ Civil Engineering—राज-व्यापार-विषयक शिल्प-विद्या ।

२ Mechanical Engineering—यांत्रिक शिल्प-शास्त्र ।

३ Naval Architecture—नौका-प्रणयन-शास्त्र ।

४ Technology of Arms—शस्त्रास्त्र-निर्माण-शास्त्र ।

५ Electrical Engineering—विद्युद्-विषयक शिल्प-शास्त्र ।

६ Architecture—निर्माण-शिल्प ।

७ Applied Chemistry—सप्रयोग-रसायन-शास्त्र ।

८ Technology of Explosives—स्फोटक-वस्तु-विद्या ।

९ Mining and Metallurgy—खनिज-शास्त्र और धातु-शोधन-विद्या ।

इन ९ विषयों में से किसी एक विषय की परीक्षा पास कर लेने वाले विद्यार्थी को “को-गाकुशी” (शिल्प-विशारद) पदवी मिलती है। इस पाठशाला

में भौतिक शास्त्र भी सिखाया जाता है। विद्यार्थियों को अनुभव-ज्ञान प्राप्त कराने के लिए बहुत प्रयत्न किया जाता है। स्वदेश अथवा परदेश में, जहाँ कहीं, बड़े बड़े कारखाने, इमारतें और संस्थाएँ आदि हैं वहाँ, अनुभव प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी, सरकारी खर्च से, भेजे जाते हैं। इस पाठशाला से मिले हुए ऐसे कई भवन हैं जिनमें भिन्न भिन्न प्रकार के यंत्र और अस्त्रशास्त्र आदि रखे हैं। प्रत्येक विभाग के अलग अलग अध्यक्ष हैं। नूतन आविष्कार करने वाले पुरुष को खूब उत्तेजन दिया जाता है। इस पाठशाला से मिले हुए सात पदार्थ-संग्रहालय हैं। जापान में यह पाठशाला बहुत लोकप्रिय है। बहुत विद्यार्थियों को, उसमें प्रवेश न हो सकने के कारण, निराश होना पड़ता है। इस पाठशाला में कुल २९ अध्यापक हैं।

College of Literature.

### साहित्यशाला ।

इस पाठशाला में भी ९ शाखाएँ हैं और प्रत्येक का अभ्यासक्रम तीन तीन वर्षों का है :—

१ Philosophy—तत्त्वज्ञान ।

२ Japanese literature—जापानी साहित्य ।

३ Chinese literature—चीनी साहित्य ।

४ Japanese History—जापानी इतिहास ।

५ History—सामान्य इतिहास ।

६ Comparative Philology—अन्यापेक्ष्य भाषा-विज्ञान ।

७ English literature—अंगरेजी साहित्य ।

८ German literature—जर्मन साहित्य ।

९ French literature—फ्रेंच साहित्य ।

इनमें से किसी एक विषय का अभ्यास करके परीक्षा पास कर लेने वाले को “बन-गाकुशी” (साहित्य-विशारद) नामक पदवी मिलती है। इस पाठशाला के एक महाध्यापक के सम्पादकत्व में जापान का एक अति उत्तम—सर्वाङ्गपूर्ण—इतिहास लिखने के लिए सामग्री एकत्र की जा रही है।



अब तक कुल १,००,००० कागज़-पत्र और ग्रन्थ जमा हुए हैं; जिनमें से २०० बहुत प्राचीन हैं। इस पाठशाला में स्वतंत्र व्याख्यानकार (Expositor or Professor) कुल २१ हैं। संस्कृत-साहित्य पर व्याख्यान देनेवाला भी एक अध्यापक है।

College of Science.

### भौतिकशास्त्रशाला।

इस पाठशाला में आठ विषयों की शिक्षा दी जाती है :—

- १ Mathematics—गणित।
- २ Astronomy—ज्योतिष।
- ३ Theoretical Physics—औपपत्तिक पदार्थ-विज्ञान।
- ४ Experimental Physics—सप्रयोग-पदार्थ-विज्ञान।

- ५ Zoology—पशुविद्या।
- ६ Botany—वनस्पतिशास्त्र।
- ७ Chemistry—रसायन-शास्त्र।
- ८ Geology—भूगर्भ-शास्त्र।

उपर्युक्त विषयों के सिवा इस पाठशाला में भूकम्पशास्त्र और मनुष्यजाति-वर्गीकरणशास्त्र आदि विषयों की भी शिक्षा दी जाती है। व्याख्यानों के समय शिल्प और इतिहास आदि सीखनेवाले विद्यार्थियों को भी उपस्थित रहना पड़ता है। उपर्युक्त आठ शाखाओं में से किसी एक शाखा में पास हो जानेवाले विद्यार्थी को “री-गाकुशी” (भौतिक-शास्त्रविशारद) नामक पदवी मिलती है। इस पाठशाला में विद्यार्थियों का आधिक्य नहीं रहता।

इस पाठशाला से सम्बन्ध रखनेवाला एक बड़ा संग्रहालय है। उसमें नाना प्रकार के यन्त्र रखे हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी, भूगर्भस्थ पदार्थ और अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ यहाँ सुरक्षित हैं। पाठशाला से मिली हुई एक वेधशाला है। इस वेधशाला से फ्रेंच भाषा में एक पंचाङ्ग निकलता है। पाठशाला से करीब एक मील दूर, ४० एकड़ के

विस्तार में, वनस्पतियों का एक बाग है। वैद्यकशास्त्र और वनस्पतिशास्त्र सीखनेवाले विद्यार्थी, इस बाग में जाकर, वनस्पतिशास्त्र-सम्बन्धी विभिन्न प्रकार का अनुभव प्राप्त करते हैं। भूकम्प के विषय में इस पाठशाला के महाध्यापकों ने अनेक खोजें की हैं—इस विषय का एक स्वतन्त्र शास्त्र ही बना गया है। भूकम्पशास्त्र का अध्ययन करने के लिए एक अनुपम वेधशाला बनाई हुई है। कहते हैं कि पृथ्वी पर ऐसी वेधशाला और कोई नहीं है। इस पाठशाला के अधिकार में सामुद्रिक जीवों का भी एक संग्रहालय है। उसमें भिन्न भिन्न प्रकार के विभिन्न जलचरों का संग्रह किया गया है। इस भौतिकशास्त्रशाला में सब २३ व्याख्यानकार हैं।

College of Agriculture.

### कृषिशाला।

इस पाठशाला का अभ्यासक्रम तीन शाखाओं में विभक्त है। यथा :—

- १ Agricultural Chemistry—कृषि-सम्बन्धित रसायनशास्त्र।
- २ Forestry—वनशास्त्र।
- ३ Veterinary Medicine—पशु-वैद्यकशास्त्र।

इस पाठशाला से पास होकर निकलनेवाले विद्यार्थियों को “नो-गाकुशी” (कृषिशास्त्रविशारद) और “जुई-गाकुशी” (पशुवैद्यकविशारद) नाम की दो पदवियाँ मिलती हैं। यह पाठशाला टोकियो शहर से दूर है। खेती के लिए १३८ एकड़ जमीन इस पाठशाला को मिली है। नाना प्रकार के कृषियन्त्र, धान्य तथा दूसरे कृषिसम्बन्धी पदार्थों का यहाँ एक अपूर्व संग्रहालय है। पशुओं के एक दवाखाना भी है। उसमें सबको मुक्त दवा मिलती है। जापान के कई जंगल इस पाठशाला के अधिकार में हैं।

वनशास्त्र सीखनेवाले विद्यार्थियों और आविष्कार करनेवाले अध्यापकों के लिए “निबन्ध” नामक ज़िले में ४००० एकड़ से भी अधिक वि



संख्या २ ]

एक जंगल इस पाठशाला को मिला है। “हाको-  
उट” नामक प्रान्त में इस पाठशाला के लिए एक  
और बहुत बड़ा जंगल मिला है। उसका विस्तार  
३५००० एकड़ है। उत्तम वैज्ञानिक रीति से इन  
जंगलों का प्रबन्ध किया जाता है। इन जंगलों में  
अनेक प्रकार के वन्य वृक्ष, मूल अवस्था में, सुरक्षित  
हैं। इस पाठशाला से कृषि-सम्बन्धी एक पुस्तक  
निकलती है। कृषि और वन-सम्बन्धी नूतन आवि-  
ष्कारों का पूरा विवरण इस पुस्तक में प्रकाशित  
होता है। इस पाठशाला में भी २३ व्याख्यानकार हैं।

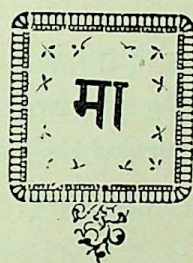
इस प्रकार टोकियो विश्वविद्यालय में ६ पाठ-  
शालाएँ हैं। इन पाठशालाओं से जो पदवीधर  
निकलते हैं उन्हें अगले अभ्यास के लिए विश्वविद्या-  
लय के सभा-स्थान में प्रवेश करने की आज्ञा मिलती  
है। यहाँ कोई नियत विषय नहीं सिखाया जाता।  
अपनी अपनी इच्छा के अनुसार विद्यार्थी अनेक  
विषयों का अध्ययन करते हैं। सभा की ओर से  
विद्यार्थियों को अध्ययन में सहायता मिलती है।  
पाँच वर्ष इसी प्रकार स्वतन्त्र अध्ययन करने के बाद,  
विद्यार्थी अपने अपने विषयों पर, निबन्ध लिख कर  
सभा के विद्याधिकारियों के पास भेजते हैं। निबन्धों  
की नूतनता और योग्यता निश्चित हो जाने पर  
विद्यार्थियों को “हाकुशी” (शास्त्री) नाम की  
पदवी मिलती है।

अध्यापकों और विद्यार्थियों के लाभार्थ विश्व-  
विद्यालय के साथ एक बड़ा भारी पुस्तकालय भी  
है। स्वसंरक्षण और उन्नति के लिए जिन जिन  
शास्त्रों, विद्याओं और कलाओं की राष्ट्र को आवश्य-  
कता है उन सबके अध्ययन और आकलन करने की  
व्यवस्था जापान-सरकार ने कर दी है। द्रव्य, सहा-  
नुभूति और जगत् की अनेक संस्थाओं के अनुभव से  
जो ज्ञान और ज्ञान-साधन प्राप्त हो सकते हैं वे सब  
जापान-सरकार ने अपनी प्रजा के लिए सुलभ कर  
दिये हैं। धन्य है जापान-सरकार की प्रजावत्स-  
लता को !

विश्वविद्यालय से निकलनेवाले विपुल विद्यास-  
म्पन्न लोगों की वहाँ बड़ी चाह है। भिन्न भिन्न सर-  
कारी विभागों से और बड़ी बड़ी व्यापारी कम्पनियों  
से इन लोगों की माँग आती है। शिक्षा की विचित्रता  
और सर्वसम्पन्नता के कारण इन विद्यार्थियों को सब  
प्रकार के कारखानेवाले बड़े आदर से ले लेते हैं।  
विद्या की महिमा अपार है। इसी विद्याही की बँदा-  
लत आज जापान एशिया का मुख उज्ज्वल किये  
हुए है।

लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

## देवनागरी लिपि के प्रचार का प्रयत्न ।



मनीय मिस्टर शारदाचरण मित्र ने  
कलकत्ते में एक-लिपि-विस्तार-  
परिषद् नाम की एक संस्था बनाई  
है। उसका उद्देश देवनागरी लिपि  
के प्रचार को बढ़ाना है। धीरे  
धीरे यह परिषद् अपने काम में  
आगे बढ़ने के लक्षण दिखा रही है। मित्र महाशय  
के प्रयत्न से इसका एक विशेष अधिवेशन २९  
दिसंबर को प्रयाग की कांग्रेस के मण्डप में हुआ।  
मदरास हाई कोर्ट के जज, माननीय मिस्टर कृष्णस्वामी  
आइयर सभापति हुए। आप बड़े विद्वान्, बड़े अच्छे  
वक्ता और देवनागरी-लिपि-प्रचार के बड़े पक्षपाती  
हैं। आपने एक बड़ाही मनोहर, अर्थ-गौरव-पूर्ण और  
प्रबल-युक्तिगर्भित व्याख्यान दिया। बाबू रामानन्द  
चैटर्जी, मिस्टर जी० ए० नटेशन, राय बहादुर  
लाला बैजनाथ, पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र और  
मिस्टर धी० एन० मेहता आदि और भी कितनेही  
विद्वानों ने अपने व्याख्यानों द्वारा इस लिपि के प्रचार  
और विस्तार से होनेवाले उपकारों का वर्णन  
किया। अन्त में कई प्रतिष्ठित पुरुषों की एक कमिटी  
बनाई गई। उसका काम यह होगा कि विज्ञापनों,  
हस्तपत्रों और उपदेशों के द्वारा देवनागरी लिपि



से होनेवाले लाभों को वह सर्वसाधारण को सम-  
भावे, भिन्न भिन्न भाषाओं की पुस्तकों को देवनागरी  
लिपि में प्रकाशित करावे, और अच्छी देवनागरी  
लिपि लिखनेवाले विद्यार्थियों को पदक आदि देकर  
उनके उत्साह को बढ़ावे। जस्टिस कृष्णस्वामी की  
राय है कि देवनागरी लिपि सर्वोत्तम होने पर भी,  
भारत में प्रचलित कई एक अन्य भाषाओं के विशेष  
वर्णोच्चारण की दृष्टि से, अपूर्ण है। तामील, तैलंगी  
और अरबी-फ़ारसी के कई वर्णों का ठीक ठीक  
उच्चारण इस लिपि के अन्तर्भुक्त वर्णों से नहीं  
होता। अतएव कुछ ऐसे वर्ण या संकेत बनाये जाने  
चाहिए जिसमें यह कमी दूर हो जाय। इस अभि-  
प्राय से जो कोई सबसे अच्छे वर्ण-सङ्केत बनावेगा  
उसे जस्टिस कृष्णस्वामी पारितोषिक देंगे।

देखिए, मदरास, बंगाल और पंजाब के प्रतिष्ठित  
पण्डितों का देवनागरी लिपि पर कितना पूज्य भाव  
है। हमारे प्रान्त के शर्मा, वर्मा और गुप्ता लोगों की,  
न मालूम, कब आँखें खुलेंगी और कब वे हिन्दी  
पढ़ना और नागरी लिखना सीखेंगे।

अब हमारे मुसलमान भाइयों की बातें सुनिए।  
बड़े दिन की छुट्टियों में इन्होंने नागपुर में अपना  
एक जातीय जलसा किया। उसमें हिन्दी के खिलाफ़  
और उर्दू की तारीफ़ में बड़ी बड़ी वक्तुतायें हुईं।  
आप लोग चाहते हैं कि एक सौ एक लड़कों में यदि  
एक मुसलमान हो तो उसके लिए उर्दू का एक  
अलग मदरसा खोला जाय ! इनकी सभा में मध्य-  
प्रदेश के कमिश्नर साहब भी पधारे थे। आपने इस  
हठवाद पर बहुत लम्बो टीका की और समझाया  
कि इसी दुराग्रह के कारण मुसलमान शिक्षा में बहुत  
पीछे पड़े हुए हैं। उन्हें चाहिए कि ऐसे दुराग्रहों को  
छोड़ दें। उनके लिए उर्दू में शिक्षा देने का यथा-  
संभव बहुत कुछ प्रबन्ध कर दिया गया है। पर यह  
नहीं हो सकता कि जिस मध्यप्रदेश में ९६१ फ़ी  
सदी हिन्दू और केवल ३१ फ़ी सदी मुसलमान हैं  
वहाँ मुसलमानों के लिए उर्दू पढ़ाने का अलग प्रबन्ध

किया जाय। इस दशा में मुसलमानों को भी  
सीखनी चाहिए।

परन्तु इसके दूसरेही दिन चीफ़ कमिश्नर साहब  
उपदेश की उलटी टीका हुई; हिन्दी की निन्दित  
गई; मालवीयजी ने कांग्रेस में जो वक्तुता हिन्दी  
की थी उसकी हँसी उड़ाई गई; उर्दू सारी भाषाओं  
की रानी (!) बनलाई गई—“Urdu is  
Queen of Languages”। बेहतर होगा,  
अंगरेजो गवर्नमेंट अपनी भाषा को हटा कर इस  
को उसकी जगह दे दे। मुसलमान उर्दू इस  
चाहते हैं कि उसके बिना उनके धर्म में  
पहुँचती है। और हिन्दू ! जो हिन्दू उर्दू पर  
उनकी धर्म-बुद्धि शायद अधिक निर्मल हो  
हेगी। मुसलमान आनन्द से उर्दू पढ़ें, उसकी  
के लिए मदरसे बनवावें, उसके साहित्य की  
करें। यदि वे इसी में अपनी भलाई समझते  
समझा करें, किसी को करनाही क्या है। वे  
इतनीही उदारता दिखावें कि हिन्दुओं को  
भाषा और अपनी लिपि सीखने दें; और  
भाषाओं और लिपियों का मुकाबला करते  
सचाई और यथार्थ-वाद से दूर न जा पड़ें।

लखनऊ से इंडियन डेली टेलीग्राफ़ नाम का  
दैनिक पत्र अंगरेजों में निकलता है। यह पत्र हमारे  
मुसलमान भाइयों का है। पर इसके सम्पादक  
खास विलायती साहब हैं। हिन्दू-मुसलमानों  
मामलों में आप अकसर हिन्दुओं पर आग उगलाने  
बिना नहीं रहते। आपने देखा कि कुछ देश-हिन्दुओं  
सज्जन देवनागरी लिपि के सार्वत्रिक प्रचार का  
कर रहे हैं। बस, भट, आपने अपने ५ जनवरी के  
में एक सम्पादकीय लेख लिख डाला। आपका कथाम  
है कि वर्तमान देवनागर-लिपि अशोक के समय  
लिपि से पैदा हुई है। पर अशोक की लिपि सीनकी  
सादी थी। सब लोग उसे आसानी से लिख पाते न  
सकते थे। परन्तु आज कल की जो लिपियाँ उसकी  
आधार पर बनी हैं वे सब बेतरह क्लिष्ट हैं; उनमें  
और मात्राओं की संख्या बहुत बढ़ गई है; और



कारण है जो हम लोगों में मूर्खता का इतना अटल राज्य है ! और कुछ सुनिष्ठा ? सुनिष्ठा । अशोक के समय की पाली लिपि इस देश की उद्भूत नहीं । हम लोगों ने उसे किसी विदेशी लिपि से उधार लिया है और उसे काट छाँट कर अपने मतलब का बनाया है !! और कुछ सुनने की इच्छा है ? अच्छा, और सुनिष्ठा । इलाहाबाद में जो मिंटो-स्तम्भ बनने-वाला है उस पर रोमन अक्षरों में एक लेख रहेगा । ही अक्षर सर्वोत्तम हैं । गवर्नमेंट को चाहिए कि एक प्रयत्न कमीशन नियत करे और इन रोमन अक्षरों को उलट फेर करके इन्हें ऐसा बनावे जिसमें ४८ अक्षरों के और १५ अतिरिक्त फ़ारसी के वर्णों का चारण और विलेखन ठीक ठीक इनसे होने लगे । ऐसा हो जाने पर सारे देश में यही रोमन-वर्णमाला चलिता कर दी जाय !!!

सुन लिया आपने । खैर, देवनागरी लिपि के अक्षरपातियों की मूर्खता का कारण तो उनकी अस-पूर्ण और क्लिष्ट वर्णमाला है, मुसलमानों में शिक्षा का जो कई गुना अधिक अभाव देखा जाता है उसका क्या कारण है ! फ़ारसी की वर्णमाला तो जागी ही नहीं, क्योंकि यदि यह बात होती तो एडिटर साहब जरूरही वैसा लिख देते । मालूम नहीं, आप इस देश की वर्णमालाओं का कहाँ तक ज्ञान रखते हैं । हमें तो जान पड़ता है कि आप प्रायः कुछ भी उनके विषय में नहीं जानते । जो जानते तो यह कभी कहते कि हमारी वर्णमाला किसी विदेशी वर्ण-माला के आधार पर बनी है । इस विदेशी-आधार-विषयक कल्पना का कई दफ़े सरस्वती में खंडन हो चुका है । लासन, टामस, डासन, कनिंहम आदि ने इस कल्पना को बिल्कुल ही निर्मूल बतलाया है । परन्तु टेलिग्राफ़ के सम्पादक साहब क्यों लिख पाते नहीं । वे अपनी मनमानी हाँकने से चूकने-लेपने का संहार करा कर रोमन जारी किया चाहते हैं । आपने सोचा होगा कि फ़ारसी लिपि तो सार्व-

दैशिक होही नहीं सकती, नागरी भी न हो तो अच्छा । हो रोमन, जिसका सार्वदैशिक प्रचार होना शायद गवर्नमेंट भी असम्भव समझती होगी । खैर, जी में आवे सो कहिए :—

मुखमस्तीति वक्तव्यं शतहस्ता हरीतकी ।

## मित्र-मैत्रक ।



शियाटिक सोसाइटी, बङ्गाल, के जर्नल, जिल्द ५, नंबर ६, सन् १९०९ ई० के पृष्ठ १६७ में देव-दत्त भाण्डारकर महाशय ने गुहिलोत वंश पर एक लेख अंग-रेजी में छपवाया और उसी का

भाषान्तर सरस्वती की संख्या ६ व ७, मास जून व जुलाई, सन् १९१० ई० में प्रकाशित कराया है । उक्त लेख के प्रमाण-भाग में तो कोई अपूर्वता नहीं । अतः उस अंश को छोड़ कर उद्धृत किये हुए प्रमाणों को सार्थक करने के लिए जो युक्तियाँ देवदत्तजी ने बतलाई हैं, उन्हीं पर मैं अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ ।

देवदत्तजी कहते हैं—( इससे पूर्व और भी कई विद्वान् ऐसे विचार प्रकट कर चुके हैं ) कि बलभी के राजा मैत्रक खाँप के थे, जैसा कि उनके दानपत्रों से पाया जाता है । मित्र और मैत्रक एकही वंश और एकही गोत्र के थे । मैत्रक और मिहिर या मेर एकही जाति का नाम है ; क्योंकि दोनों सूर्य के अर्थवाची शब्द हैं । अवध, रहेलखण्ड, गोरखपुर आदि में मिले हुए सिक्कों के मित्रराजा भी मैत्रक खाँप के जान पड़ते हैं । सन् ४८५ ई० से सन् ५३३ ई० के दर्मियान श्वेत हूण और मैत्रक प्रबल हुए । अतः स्पष्ट है कि मैत्रक भी गुर्जरा के सदृश एक जाति थी, जो हूणों के साथ छठी सदी के शुरू में हिन्दुस्तान में आई थी । हूणों के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध था । मैत्रक लोग पीछे आनेवाले अपनी छोटी खाँप के मेरों में मिल



गये। इसलिए अब मैत्रक नाम गूजरो में नहीं पाया जाता। नागर या नगर कहलाने के पूर्व नागर ब्राह्मण मित्र कहलाते थे, जो मैत्रकों की छोटी खांप थी। बलभी के राजा शोलादित्य के अलीनावाले दानपत्रों में दानपात्र ब्राह्मणों के नाम के अन्त में मित्र शब्द है। अतः, सम्भव है, वे शर्कराक्षि गोत्र के नागर ब्राह्मण हों। यह मित्र जाति बाहर से आई हुई ब्राह्मण जाति थी जो पीछे से यहाँ के ब्राह्मणों में मिल गई; जैसे मग या माघ ब्राह्मण पीछे से ब्राह्मणों में मिल गये हैं। जब कोई विदेशी जाति हिन्दुस्तान में आकर बसती और हिन्दू बनती, तब उसके भिन्न भिन्न वर्ण के मनुष्य उन हिन्दू जातियों के नाम रख लेते जिनका पेशा वे इत्तियार करते। अर्थात् विदेशियों के पुजारी ब्राह्मण; योद्धा, क्षत्रिय; सुनार, सेनी; और सुतार, खाती आदिक बन जाते थे। परन्तु पुराने हिन्दुओं से अपने को भिन्न प्रकट करने के लिए वे अपने नाम के पहले अपनी खांप भी लिखते थे; जैसे आभीर ब्राह्मण, अहीर सुतार, गूजर सेनी आदि।

यह देवदत्तजी की युक्तियों का सारांश है। अब इस पर मेरा निवेदन सुनिए। देवदत्तजी के लिखने के अनुसार मैंने बलभी के दानपत्रों के आरम्भ की इबारत ध्यानपूर्वक देखी तो जान पड़ा कि उसमें “मैत्रकाणामतुलबलसम्पन्न” नहीं, जैसा कि आज तक पढ़ा गया; किन्तु “मतुलबलसपन्न” पाठ है। अतः बलभी के राजाओं के मैत्रक वंश में होने में सन्देह नहीं। आपका यह अनुसन्धान भी असङ्गत नहीं कि मित्र और मैत्रक एकही वंश और एकही खांप के हैं। तदनुसार अवध और रुहेलखण्ड में मिले हुए सिक्कों के राजाओं का मैत्र होना सम्भव है; क्योंकि मैत्रक शब्द मैत्र के अन्त में ककार जुड़ने से बना है; और, मित्रवंश अर्थात् मित्र खांपवाले को मैत्र कह सकते हैं। परन्तु अन्त में क प्रत्यय होने से इतनी सम्भावना अवश्य हो सकती है कि मैत्र की छोटी शाखावाले मैत्रक कहलाये होंगे। पद के अन्त का ककार बहुत से शब्दों में उनकी अल्पता या

लघुता का बोध कराता है। जैसे—अणुक, अणुरक, राणक आदि। अब रही यह बात कि मित्र की तरह मैत्रकों का भी हूणों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, और उनके साथ ही मैत्रक हिन्दुस्तान में क्योंकि वे भी उसी समय प्रबल हुए जब हूणों की प्रबलता प्राप्त की थी, सो यह बात प्रामाणिक मानी जा सकती। ऐसी कल्पना को स्वीकार करने के बदले उसके विरुद्ध यह अनुमान करना अनुचित नहीं कि मैत्रक उत्तरी पाञ्चाल में मिले हुए सिक्कों के मित्र-पदान्त नामवाले राजाओं की छोटी खांप में थे; और, सम्भव है, वे मित्र राजा या तो सुवर्ण वंशी राजा, जिनका राज्य सन् ईसवी से १७८५ पूर्वं आरम्भ हुआ था, या उनके पीछे के सूर्यवंशी राजा सुमित्रादि से सम्बन्ध रखनेवाले हों। उन सम्बन्ध हूणों और गुजरो से बतलाना क्लिष्ट काम है\*। उन मित्र राजाओं का समय हम सिक्कों की लिपि के आधार से निश्चय कर सकते हैं। जनरल सर कनिंहम ने उस लिपि को पाली लिपि में कुछ पीछे की, और सन् ईसवी से पहले की, लाई है। उनका मत है कि “मैं इन राजाओं के सुवर्ण-वंशी नहीं कह सकता; उनका किसी और वंश में होना निश्चय करता हूँ। परन्तु वे सन् ईसवी से पहले अवश्य हुए थे”†। सुवर्ण-वंशी राजा मित्र और पुष्पमित्र आदि के राजसमय और उन पाञ्चाल के मित्र राजाओं के समय में कुछ किन्तु अन्तर न रहने से यह मान लेना अयुक्त नहीं हो सकता शायद वे राजा सुवर्ण-वंश की किसी शाखा में हों जिसमें पुराणों में उल्लिखित सुमित्र राजा। जनरल सर कनिंहम की सिक्कों की पुस्तक और इंडियन म्यूजियम के सिक्कों की फ़ेहरिस्त, दोनों, में इन मित्र-राजाओं

\* बलभी के विषय में अब तक अनेक कल्पनाएँ की चुकी हैं, परन्तु जब तक उस राज-वंश का कोई शिलालेख न मिले तब तक असली हाल निश्चित नहीं हो सकती।

† “काइन्स आफ एनश्यंट इंडिया” पृष्ठ ७६, कैप्टेन आर्चबिशप काइन्स आफ इंडियन म्यूजियम, जिल्द ३, पृष्ठ १०५



राजाओं के सिक्के दिये हुए हैं। यद्यपि उक्त पुस्तकों में दिये हुए नामों में कुछ अन्तर है, तथापि लक्षण दोनों के मिलते हैं।

प्रकट में तो मित्र किसी खास वंश, जाति, या खाँप का नाम होना पाया नहीं जाता। भारतवर्ष के द्विजों में पहले से प्रायः यह रूढ़ि चली आती है कि जो पद पिता, पितामह आदि के नाम के अन्त में होता है, उनकी सन्तति के नाम के अन्त में भी उसी पद का प्रयोग किया जाता है जैसे—अबलशङ्कर, विजयशङ्कर, शिवशङ्कर; युवनाथ, रोहिताथ, अयुताथ; प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन, हर्षवर्धन; पुष्प-पित्र, अग्निमित्र, सूर्यमित्र; महीचन्द्र, श्रीचन्द्र, मदन-चन्द्र, गोविन्दचन्द्र आदि। अतएव हम यह कदापि नहीं कह सकते कि शङ्कर, अथ, वर्धन, मित्र, चन्द्र आदि पद उनके वंश या खाँप के निश्चय करने में सहायक हो सकते हैं। गौड़देश के राजाओं के नाम के अन्त में पाल पद था। परन्तु अब तक इसका निश्चय नहीं कि वे किस वंश के थे। ऐसेही कर्नाली के यादव-वंशी राजाओं के नाम के अन्त में दीर्घकाल से पाल पद लगता चला आता है।

हम नहीं कह सकते कि लगभग ५०० वर्ष तक उन उत्तरी पाञ्चाल के राजाओं की क्या स्थिति थी; परन्तु दीर्घ काल तक उनका गुप्तवंशी राजाओं के अधीन रहना बुद्धिसङ्गत जरूर मालूम होता है। बलभी के मैत्रकों के मूल पुरुष, भटार्क, की पदवी सेनापति थी। आश्चर्य नहीं कि वह गुप्तवंशियों ही का सेनापति या सामन्त हो। संभव है, उसने अपना बल और कोष बहुत बढ़ा लिया हो। और यह भी सम्भव है कि परणदत्त के पीछे वह सुराष्ट्र का सूबेदार नियत किया गया हो। उसी समय हूणों की चढ़ाइयों से गुप्तों का राज निर्वल हो जाने के कारण भटार्क का बलभी में स्वतन्त्र राज्य-स्थापन कर लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

बलभी के राजा क्षत्रिय थे। इसका प्रमाण हमको चीनी यात्री हुएन्सङ्ग के सफरनामों में मिलता है। यह यात्री ६४० ई० में बलभी के महाराज ध्रुवभट

से मिला था। वह लिखता है कि—“राजा क्षत्रिय-वंश का है और मालवे के राजा शीलादित्य का भानजा और कन्नौज के राजा शीलादित्य (हर्षवर्धन) के पुत्र का दामाद है”। हुएन्सङ्ग का लेख बलभी का स्वतन्त्र राज्य-स्थापन होने से बहुत पीछे का नहीं। इसके सिवा, उसने लिखा है कि हूणों के राजा मिहिर-गुल ने गुप्तवंशी राजा बालादित्य पर चढ़ाई की थी। परन्तु, अन्त में वह कैद हो गया और बालादित्य की माता की सिफारिश से प्राणदण्ड से बच कर कश्मीर का राज्य उसने पाया। यदि बलभी के राजा तुरुक, तातारी हूण, या गुर्जर-शाखा के होते तो हुएन्सङ्ग सा सूक्ष्मदर्शी और खोज के साथ लिखने वाला विद्वान् कदापि इस बात की सूचना दिये बिना न रहता। संभव है, हूण उस समय तक क्षत्रियों से भिन्न समझे जाते हों; क्योंकि, सिन्ध के राजा को उसी यात्री ने शूद्र बतलाया है। सिन्ध में उस समय साहसीराय राज्य करता था, जिसका हूणवंशी होना सम्भव है; \* क्योंकि मिहिरगुल के पिता तोरमाण के लेख और मिहिरगुल के सिक्कों पर उनकी पदवी “शाही” लिखी है और सिन्ध के राजा भी शाही या शाहन्शाही का विरुद्ध रखते थे। इससे स्पष्ट है कि बलभी के मैत्रकों का अन्यदेशी हूण गुर्जरों से कोई सम्बन्ध न था, किन्तु वे पतदेशीय मित्र-पदान्त कुलीन क्षत्रिय वंश की शाखा में थे।

चीनी यात्री सङ्ग-यून के लेख से, जो ५१८ ई० में हिन्दुस्तान में आया और हूणों के राजा गोलस से मिला था, जाना जाता है कि येथा नामक हूण, तुर्कजाति के असभ्य और निरक्षर लोग थे। लिखने का प्रचार उनमें बिल्कुल न था। खगोल-विद्या से वे निरे अज्ञ थे और चर्म-वस्त्र पहनते थे। उन्होंने ईरान से लेकर मगध पर्यन्त ४० देश विजय किये थे और मालवे के बहुत से भाग पर अपना अधिकार

\* काइन्स आफ इंडो सीथियन्स, शक्स ऐंड कुशन्स नामी पुस्तक के पृष्ठ २८—२९ में जनरल कनिंहम भी साहसीराय को हूण वंश का बतलाते हैं।



जमा लिया था। इसी यात्री ने “लेलिह” शब्द लिखा है जिसका अनुवाद मालवा और लाट देश दोनों किये गये हैं। लेलिह से ले जाकर अपने किसी वंशज को उन हूणों ने गन्धार की गद्दी पर बिठाया था। ४८० से ५३३ ई० तक हूणों का प्रबल राज्य उत्तरी हिन्दुस्तान के कई विभागों में रहा। परन्तु मालवे में गुप्तों के सामन्त यशोधर्मन् से, और अन्त में मगध देश के गुप्त राजा बालादित्य से, परास्त होने के पश्चात् पञ्जाब और सिन्ध को छोड़ कर अन्यत्र उनकी बल-वृद्धि होने का कहीं पता नहीं चलता।

बलभी के राजवंश का सम्बन्ध महाप्रतापी महाराजाधिराज हर्षवर्धन और मालवे के महाराज से ( जो शायद मौर्य्य हों ) था इससे स्पष्ट है कि मैत्रक अन्य देशी शूद्र नहीं, किन्तु भारत के शुद्ध क्षत्रिय थे। हूणों या गुर्जरो का सम्बन्ध क्षत्रिय-राजाओं से होने का पता किसी प्राचीन लेख से नहीं लगता, और शादी-ब्याह का सम्बन्ध हो कैसे सकता था। यूनानियों और शकों के हिन्दुस्तान में आने के बहुत पूर्व वर्णव्यवस्था और जातिभेद यहाँ मजबूती के साथ जड़ पकड़ चुके थे।

मित्र और मिहिर दोनों शब्द सूर्य के अर्थवाची शब्द होने से कितनेही विद्वानों ने यह कल्पना की है कि बलभी के मैत्रक और मिहिर या मैर एकही जाति के थे। इधर देवदत्तजी कहते हैं कि मैत्रक अपनी छोटी खाँप के मैरों में मिल गये। इसलिए अब मैर या गूजरो में मैत्रक गोत्र नहीं रहा। यदि ऐसी कल्पना करने के पूर्व थोड़ा सा ध्यान हूण, मैर, गूजर आदि जातियों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, और आचार-विचार पर दिया जाता तो शायद बलभी के सभ्य क्षत्रियों को असभ्य जातियों से मिलाने की असङ्गत कल्पना का उदय न होता। मैरों में भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं। यहाँ तक कि वे गोमांस भी खाते हैं। मेरवाड़े के मैर अपने बुजुर्ग जोधा लाखण को चहुवाण वंश का बतलाते हैं, जिसने किसी मीणे जाति की स्त्री से विवाह कर लिया था। उससे आनल और अनूप दो पुत्र उत्पन्न

हुए। परन्तु जब लाखण को अपनी गलती मालूम हुई तब उसने उस स्त्री और दोनों पुत्रों को घर से निकाल दिया। वे मेरवाड़े में आकर रहे और दोनो से चीता और बरड़ नाम की दो शाखें मैरों में हुईं। चीता शाख में एक खाँप महारात है जो मुसलमान हो गये हैं। काठियावाड़ में भी पोरबन्दर के पास बरड़ा पहाड़ के इर्द गिर्द मैर लोग रहते हैं। सम्भव है कि मैर और मीणे या मियाना ( यहाँ उन मीणों से अभिप्राय है जो अपने को उजले मीणे कहते हैं ) और काठियावाड़, दुंढाड़, खैराड़ आदि में रहते हैं। मिलती जुलती जातियाँ हैं; क्योंकि मीणों के मोरिया और डाकुल आदि गोत्र मैरों में भी पाये जाते हैं। मैर, महारात, गूजर और मीणों का क्षत्रियों के सम्बन्ध न होना इस बात को सिद्ध करता है कि जातियाँ पहले से ही क्षत्रियों से भिन्न चली आ रही हैं। यद्यपि दीर्घ काल से ये यहाँ बसती आई हैं। बल-वैभव भी प्राप्त किया, तथापि भारत के जातिभेद ने उनको द्विजन्मों में प्रवेश पाने से दूर रक्खा।

बलभी के राजा शीलादित्य के अलीना के दानपत्रों में ब्राह्मण विष्णुमित्र, आखण्डलमित्र, केशवमित्र और नारायणमित्र नाम मिलने से शर्करा गोत्र के आधार पर उनको नगर या नागर ब्राह्मण मानना तो ठीक है; परन्तु भाण्डारकर महाशय यह युक्ति ठीक नहीं कि नागर उस मित्र-वंश के जो मैत्रकों की शाखा थी। यहाँ भी नाम के अन्त में मित्र पद होने का प्रमाण देकर आपने इतना अधिक कहा है कि पिछले दानपत्र में दानपत्र ब्राह्मण केशवमित्र का पुत्र नारायण मित्र ही है। परन्तु वहाँ उसको केशव-पुत्र नारायण लिखा है। स्पष्टतापूर्वक सूचित करता है कि वह ब्राह्मण खाँप का था।

\* मीणा नाम की एक जाति भीलवाड़े में भी है। यद्यपि वे अपने को भीलों से भिन्न समझते हैं, उनके आचार-विचार असभ्य भीलों से अच्छे नहीं हैं। बहुधा वे भीलों की बराबरी के ही गिने जाते हैं।



क्या पूरे नाम के बदले, लाघव के लिए, आधा नाम लिखने या बोलने का प्रचार पहले नहीं था या अब नहीं है ? व्याकरण के तद्धित-प्रकरण में एक सूत्र पर वार्तिककार लिखते हैं कि—“विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः” अर्थात् प्रत्यय के बिना भी विकल्पपूर्वक पूर्व या उत्तर पद का लोप हो जाता है। अथवा, जैसा कि मैं ऊपर बतला आया हूँ, पिता, पितामह आदि के नाम के अन्त में जो पद होता है सन्तान के नाम के अन्त में भी बहुधा वही पद लगाने की रूढ़ि है। अतएव उन दान-पात्र ब्राह्मणों के नाम के अन्त में मित्र शब्द लगाना, और केशव मित्र के पुत्र नारायण मित्र लिखने के बदले, लाघव के लिए, या विकल्पपूर्वक, केशव-पुत्र नारायण लिख देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। गुर्जर-राजदहप्रशान्तराग दूसरे के, केरावाले दान पत्र में कई ब्राह्मणों के नाम भट्टी, विशाख, द्रोण, शैल, घोष, धर, ईश्वर, मद्र आदि लिखे हैं जो उनके पूरे नाम भट्टिदामा, विशाख-स्वामि, द्रोणस्वामि, दामधर आदि के सूचक हैं।\* इस पर यह अनुमान करना कि नागर ब्राह्मण आर्यावर्त के ब्राह्मणों में से नहीं, किन्तु मैर-मैत्रकों से सम्बन्ध रखने वाले अन्य देशी ब्राह्मण हैं, सर्वथा अन्याय है। आर्यावर्त के क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रों में तो कई अन्य देशी जातियों का मिश्रण होना माना भी जा सकता है, परन्तु ब्राह्मणों में ऐसे मिश्रण का कोई प्रमाण नहीं। जो उदाहरण आपने मग या माघ ब्राह्मणों का दिया वे आज भी ब्राह्मणों की पंक्ति में नहीं हैं। ब्राह्मण तो क्या, शायद बहुतेरे वैश्य भी उनके हाथ का कच्चा भोजन नहीं खाते। वे सेवक या भोजक नाम से प्रसिद्ध हैं और कहते हैं कि हमारे पुरुष शाक-द्वीपी ब्राह्मण थे। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि ने हमको ब्राह्मण से सेवक बनाया। आभीर-ब्राह्मणों को भी ऐसाही समझना चाहिए। नागरों का व्यवहार एतद्देशी अन्य ब्राह्मणों के साथ सेवकों का ऐसा नहीं है। उनके यहाँ श्रीमाली ब्राह्मणों के सिवा सभी

ब्राह्मण खाते पीते हैं। हाँ, वे किसी के हाथ का नहीं खाते हैं; और न मैर-गुर्जर उनके यजमान हैं। अतः नागर या नागर कहलाने के पूर्व, मित्र अथवा किसी अन्य नाम से प्रसिद्ध होना इस बात का प्रमाण नहीं कि वे आर्य-ब्राह्मणों से भिन्न अन्यदेशी ब्राह्मण हैं।

सारांश यह कि बलभी के मैत्रक आर्य-क्षत्रिय थे; हूण, गुर्जर या मैर न थे। हूण, गुर्जर आदि ईसवी की सातवीं सदी तक क्षत्रियों से भिन्न शूद्र कहे जाते थे। नागर ब्राह्मणों का अन्यदेशी ब्राह्मण होने की अपेक्षा एतद्देशी होना विशेष सम्भव है। बलभी के साथ उनका सम्बन्ध था, परन्तु वैसा नहीं जैसा कि देवदत्तजी बतलाते हैं।

रामनारायण दूगड़ ।

## उल्लासी\* ।

( १ )

क्या है इसमें लाभ अचल नृप जो मैं होकर,  
इन टीलों के बीच, महल में सुख से सोकर,  
भोगूँ भोग-विलास, चलाऊँ न्याय अधूरा,  
अपढ़ प्रजा पर जिसे नहीं मम परिचय पूरा ?

( २ )

मैं न करूँगा कभी त्याग अपना देशाटन;  
तन रहते उत्साह दिखावेगा यह जीवन।  
ज्यों लूटा सुख परम, परम दुख भी त्यों झेला;  
कभी प्रियों के संग, कभी मैं फिरा अकेला ॥

( ३ )

लिये तृपित मन साथ, बहुत घूमा मैं जग में;  
किया नाम निज अमर कीर्ति के चलकर मग में;  
देखा, जाना बहुत,—नरों के नगर सुहावन,  
रीति भाँति, जल-पवन, सभाएं, नाना शासन ॥

( ४ )

नहीं आप मैं हीन, बरन इनमें आहत हूँ;  
समर-सेज पर सुला समानों को सत्कृत हूँ ।

\* इंडियन ऐंटीक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ ८२-८३ ।

\* टैनीसन-कृत “यूलीसीज़” के आधार पर ।



जो कुछ मैंने जहाँ लखा, सीखा या पाया,  
सब अंशों को मिला हृदय निज नया बनाया ॥

( ५ )

तोभी अनुभव सकल हाथ की ओट सरिस है,  
जिसमें से अनभ्रमा जगत भलकै चहुँ दिशि है ।  
ज्यों ज्यों बढ़ता हुआ पास उसके जाता हूँ,  
हटता है वह और; परे उसको पाता हूँ ॥

( ६ )

कैसा निपट उदास ठहरना, रुक जाना है;  
कुछ भी उजले बिना मोरचे का छाना है !  
त्यों उपयोगी होय कभी न चमक पाना है;  
जीवन मानो निरी साँस आना जाना है !

( ७ )

जीवन यद्यपि कई मिलें जीवन पर पूरे,  
तोभी मम कर्तव्य-हेतु हैं सभी अधूरे ।  
फिर यह जीवन एक आजकल है जो मेरा;  
शेष बचा है अल्प; काल करता है फेरा ॥

( ८ )

इस जीवन की एक घड़ी जो बच जाती है,  
सो दूजे की अगम अवधि नेरे लाती है ।  
तिस पर भी इस एक घड़ी में है यह गौरव,  
घड़ी घड़ी नित नया प्राप्त होता है अनुभव ॥

( ९ )

होगी शठता बड़ी समय की मेरे ऊपर,  
तीन वर्ष जो मुझे रखे वह मूँद सेंतकर;  
पा न सकै मन वृद्ध डूबता विद्या-तारा  
मनुज-बुद्धि की परम अवधि का लाँघ किनारा !

( १० )

यह मेरा प्रिय पुत्र जिसे करता हूँ अर्पण  
अब मैं अपना मुकुट, द्रोप, प्रभुता, धन, शासन,  
करने को यह महाकार्य है पूर्ण विवेकी;  
क्रम क्रम से मृदु बना सकेगा प्रजा कुटेकी ॥

( ११ )

निज वश में कर उन्हें उपायों से अति कोमल  
यह उपयोगी, भला बना लेगा उनका दल ।

दोष-हीन यह पुत्र सभी धर्मों में रत है;  
सभ्य शिष्ट आचार इसे पूरा अवगत है ॥

( १२ )

इतना है यह चतुर चले जाने पर मेरे,  
विनय-सहित नित खड़ा रहेगा मा के नेरे ।  
मेरे सब कुलदेव यही पूजेगा विधिवत्;  
मैं पालूँ निज धर्म रहे यह भी स्वकर्मरत ॥

( १३ )

यह बन्दर है, यहाँ पोत है पाल फुलाती;  
कृष्णायत जलराशि वहाँ है शोक जनाती ।  
ये मेरे मल्लाह जिन्होंने सँग में मेरे  
साहस, काम, विचार परिश्रम किये घनेरे ॥

( १४ )

सही जिन्होंने सदा जगत की सदी-गर्मी;  
कभी किसी से लड़े नहीं जो युद्ध अधर्मी;  
इन सबको मम सरिस आज यौवन है सपना;  
वृद्धापन भी नाम, काम करता है अपना ॥

( १५ )

मीच-सामने नहीं किसी के कुछ भी वश का  
तो भी उसके पूर्व कार्य कुछ ऊँचे यश का  
हो सकता है सहज जोग उन उच्च नरों के,  
करते हैं जो काज सभी जग में अमरों के ॥

( १६ )

आने लगा प्रकाश चटानों से अब बढ़ता;  
दीर्घ दिन घट गया; चन्द्र धीमा है चढ़ता;  
गरजै है बहु भाँति सिन्धु; मित्रों, अब आओ;  
अभी समय है; नये जगत का खोज लगाओ ॥

( १७ )

लंगर खोलो; ठीक बैठ, बजती लहरों को,  
पीटो; आगे बढ़ो; चलो पश्चिम-शहरों को ।  
है यह अटल विचार मीच के आगे मेरा—  
क्षितिज पश्चिमी लाँघ परे डालूँ मैं डेरा ॥

( १८ )

या तो हम अब कहीं भँवर ही में पड़ जावें;  
यह फिर सुन्दर नारिकेल का टापू पावें ।



भाग बहुत कुछ चला गया है अपने बल का ;  
तो भी जो है शेष रूप है चित्त अटल का ॥

( १९ )

जिस बल से आकाश और पाताल हिलाया ;  
हमने इसके पूर्व सभी कुछ कर दिखलाया  
सो बल, सो दल आज अलभ दोनों हमको हैं ;  
तो भी चिन्ता नहीं हमें ; हम जो हैं सो हैं ॥

( २० )

शूर-हृदय, सम-भाव, एक-मन, निश्चित-जी के,  
हम सब सहकर फेर भाग्य के, काल बली के  
दुर्बल हैं इस समय ; तदपि श्रम कर सकते हैं ;  
नहीं अगम की कठिन खोज में हम थकते हैं ॥

कामताप्रसाद गुरु ।

## प्रयाग की प्रदर्शिनी ।

( १ )

तीर्थराज की पावन यात्रा प्रदर्शिनी-दर्शन के साथ  
एक पथ-देा काज सिद्धि का देख सुअवसर आया हाथ ।  
उठी हमारे मानस में भी सहसा एक उमङ्ग-तरङ्ग  
चले अतः सानन्द एक दिन कुछ आत्मीय जनों के सङ्ग ॥

( २ )

हुई रेलगाड़ी में जैसी रेलपेल या ठैलाठैल  
नहीं कहेंगे उन बातों को था वह भी मेले का मेल ।  
वहाँ पहुँचतेही हम अपना मार्ग-कष्ट सब भूल गये  
कहें कहाँ तक देखे हम ने दृश्य एक से एक नये ॥

( ३ )

सुन कर स्वागतपूर्वक पहले पण्डा-दल का मृदुलालाप  
पुण्योदका त्रिवेणी-तट पर पूर्ण किया निज कार्य-कलाप ।  
मन्द-वायु-विक्षिप्त तरङ्गें शत शत सूर्यविम्ब कर व्यक्त  
शीत-समय भी दृष्टि-मार्ग में करती थीं मन को अनुरक्त ॥

( ४ )

सब कामों से लुहरी पा कर हम प्रदर्शिनी में आये  
ऊँचे ऊँचे पीतवर्ण के भव्य भवन थे मन भाये ।  
उनके भीतर विविध वस्तुएँ संग्रहीत सज्जित पाईं  
आकर्षित सी होकर आँखें जिन्हें देखने को धाईं ॥

( ५ )

कहीं सजावट की चीजों से हो जाता था चित्त प्रसन्न  
कहीं कलें अपनी महिमा से करती थीं विस्मय उत्पन्न ।  
भाँति भाँति की वस्त्र-राशियाँ कहीं दिखाई देती थीं  
कुशल कलाकारों की कृतियाँ चित्त चुराये लेती थीं ॥

( ६ )

नई-पुरानी तरह तरह की तस्वीरें छवि पाती थीं  
मनोविकार, प्राकृतिक शोभा, सभी दृश्य दिखलाती थीं ।  
कहीं मूर्तियाँ रम्य रूप से आँखों में घुस जाती थीं  
कर्ताओं की कला-कुशलता बोले बिना बताती थीं ॥

( ७ )

देख छटा वह गृह-रचना की होगा किसको हर्ष नहीं  
छोटे-बड़े शिविर या तंबू थे दिखलाये गये कहीं ।  
लकड़ी, पत्थर और काँच के कई तरह के सुन्दर काम  
देखे बिना नहीं हो सकता उन सबका अनुभव अभिराम ॥

( ८ )

कहीं स्त्रियों के कर-कौशल-काम अनेक निराले थे ?  
गिरी दशा में भी भारत का नाम बढ़ाने वाले थे ।  
कहीं कसीदा, पञ्चीकारी, तारकशी, नकाशी देख  
रुचिर बेल-बूटों से मन को होता था आनन्द विशेष ॥

( ९ )

तरह तरह के यन्त्र-मनोहर तरह तरह के थे औज़ार  
जलयानों की अनुपम रचना थलयानों का था व्यापार ।  
भाँति भाँति के बाजे सुन्दर कहीं दृष्टि में आते थे  
बीच बीच में बज कर कोई श्रवण-सुधा बरसाते थे ॥

( १० )

आभूषण-विभाग था मानों रत्नों का भाण्डार यथार्थ  
बड़ी सजावट से रखे थे यहाँ बहुत बहुमूल्य पदार्थ ।  
रंग बिरंगे रत्नों की वह ज्योति मनोरम जगती थी  
विद्युद्दीपों के प्रकाश में चकाचाँध सी लगती थी ॥

( ११ )

कहीं ऐतिहासिक पदार्थ थे रखे गये विचित्र विचित्र  
जिन्हें देख कर खिंच जाते थे आँखों में बहु घटना-चित्र ।  
हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें, शस्त्र, भूषणादिक अवलोक  
काल-चक्र की चाल लोक में विदित हो रही थी बेरोक ॥



( १२ )

किसी भवन में जीव जन्तु मय देख प्रकृति की अद्भुत सृष्टि  
विधि की रचना के अनुभव से मोहित हो जाती थी दृष्टि ।  
देहधारियों की विभिन्नता, रंग-रूप, आकार-प्रकार  
उस कारीगर की महिमा है महा महत्तापूर्ण अपार ।

( १३ )

कृषि-विभाग था हम लोगों को अति उपयोगी उपकारी  
जल-सिञ्चन की नई रीतियाँ कल के हल बहु बलधारी ;  
कृषि-सम्बन्धी काम यहाँ पर थे दिखलाये गये तमाम  
जिनके द्वारा लाभ उठा कर कृषक-वृन्द पावें आराम ॥

( १४ )

जल-विभाग में जल-यन्त्रों से पानी आता जाता था  
कहाँ पुलों का रचना-कौशल मन का मोद बढ़ाता था ।  
जल का कहीं जमाव जमा था, नहर निकाली गई कहीं  
नदियों की नैसर्गिक शोभा निपट निराली नई कहीं ॥

( १५ )

खेल-तमाशे भी कितने ही होते देखे जहाँ तहाँ  
यदपि हमारे लिए सभी कुछ था कौतूहल-जनक यहाँ ।  
चलती-फिरती तसवीरें थीं, सरकस, और थियेटर-गान  
कहीं अखाड़े में लड़ते थे नामी पहलवान बलवान ॥

( १६ )

वैज्ञानिक लोगों की कृतियाँ देख एक से एक बड़ी  
मनुज-बुद्धि-बल की असीमता हमें यहाँ पर जान पड़ी ।  
अहा ! विमानों के उड़ने का दृश्य और भी नूतन था  
अद्भुत भावों की लहरों में बहता नहीं कौन जन था ॥

( १७ )

सन्ध्या होने पर प्रदर्शिनी दिखलाती थी नई छटा  
उन्नत नैशिक नभस्थली का जिसे देख कर गर्व घटा ।  
विद्युद्दीपों के प्रकाश से अन्धकार का कर के नाश  
रत्नाभरण-युक्त रमणी सम करती थी मानों मृदु हास ॥

( १८ )

एक दूसरे की कृतियों को एकत्रित अवलोकन कर  
और अधिक उत्साह-सहित हों अपने कामों में तत्पर ।  
ज्ञानवृद्धि के साथ साथ ही नूतनता पर डालें दृष्टि  
इसी लिए ही विज्ञ जनों ने की प्रदर्शिनी की शुभ सृष्टि ॥

( १९ )

कला-कुशलता की उन्नति हो, अनुभव का विस्तार  
नये नये आविष्कारों की महिमा सब के चित्त चढ़े ।  
नानाविध वाणिज्य-वृद्धि से हो समृद्धिशाली निज देश  
इस प्रकार कितनेही उत्तम हैं प्रदर्शिनी के उद्देश ॥

( २० )

प्रदर्शिनी के द्वारा अब तक लाभ अनेक प्रसिद्ध हुए  
स्वप्राप्ति वस्तुओं के भी अनुभव हमको सिद्ध हुए  
अमरीका, जापान, जर्मनी, फ्राँस आदि जो उन्नत देश  
उनकी उन्नति का कारण है प्रदर्शिनी भी एक विशेष ।

( २१ )

आशा है प्रदर्शिनी द्वारा हम भी लाभ उठावेंगे  
करके सैर मात्र ही उसकी शान्त नहीं हो जावेंगे ।  
खोल कारखाने अनेक विध होंगे पूरे व्यवसायी  
स्वावलम्ब का तत्त्व समझकर काम करेंगे सुखदायी ॥

( २२ )

शुद्ध-वस्तु-हित भी हाहा ! हम मुँह औरों का तकते  
इससे अधिक खेद क्या होगा स्वयं न कुछ कर सकते  
अन्य देश से वस्तु आगमन रुक जावे जो यहाँ कहीं  
तो अभाव की पूर्ति अलग है, लज्जा भी रह सके नहीं ॥

( २३ )

अल्प समय में अधिक काम का देख कलों द्वारा होता  
नहीं छोड़ते हैं हम अब भी अपना वह पहला रोना  
वही पुराना ढीला ढाला चरखा चलता जाता है,  
पकड़ा जिसे, हमें क्या उसका पिण्ड छोड़ना आता है ॥

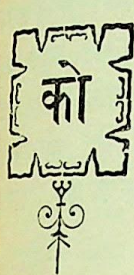
( २४ )

दीन दशा है, किन्तु देश में अब भी धन की कमी नहीं  
कमी ऐक्य-उद्यम की ही है, फिर क्या दोषी हमी नहीं  
अब भी धनवानों के घर में इतना धन बेकार पड़ा  
सभी कारखाने खुल सकते हो सकता है लाभ बढ़ा ॥

मैथिलीशरण गुप्त



## इंडियन प्रेस के संचालकों पर स्त्रीदर्पण का आक्रमण ।



ई डेढ़ वर्ष से प्रयाग से एक मासिक पत्र निकलता है। उसका नाम है स्त्रीदर्पण । उसके टाइटिल पेज से सूचित होता है कि उसका सम्पादन "श्रीमती रामेश्वरी नेहरू" नाम की कोई रमणी करती हैं । इस पत्र की प्रशंसा अक्टोबर १९०९ की सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है । तब से इसने बड़ी उन्नति की है । यह हमारे देश का, और उससे बढ़ कर हिन्दी का, अहोभाग्य है जो यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षा ही नहीं प्राप्त करने लगीं, किन्तु अब बार भी लिखने लगीं ।

प्रयाग में "मर्यादा" का जन्म हुआ देख नेहरू महाशय को परमानन्द हुआ है । इस नई पत्रिका की समालोचना आपने अपने गत मास के पत्र में की है । कोई दो पृष्ठ आपने इसके लिए खर्च किये हैं । मर्यादा में "धुरन्धर लेखकों के सरस लेखों को देख कर" आपको यह आशा हुई है कि यदि लेखों का ऐसाही तार बँधा रहा तो कुछ समय में मर्यादा हिन्दी-साहित्य की चोटी पर चढ़ जायगी । ईश्वर करे आपकी यह आशा शीघ्रही फलोद्भूत हो । परन्तु आपको एक बात के कारण बेकरारी भी होरही है । आपको मर्यादा के लेखों से तो यत्परो नास्ति सन्तोष है, पर उसके रूप-रङ्ग से सन्तोष नहीं । आपका चित्त तब तक "सुचित्त" न होगा जब तक मर्यादा अपने रूप-रंग से भी सरस्वती को मात न कर देगी; अथवा, यदि यह न हो सके, तो सरस्वती की बराबरी न करने लगेगी । यह सरस्वती के लिए बड़ेही असमंजस की बात है । अपने कारण किसी के—विशेष करके बड़े घर की एक शिक्षित महिला के—चित्त की सुचित्तता नष्ट हो जायगी, इसका खयाल सरस्वती को कभी स्वप्न में भी न हुआ था । खैर, जो कुछ होना था सो तो होगया । अब

मर्यादा को चाहिए कि कृपा कर के अपने रूप-रंग में अगलेही महीने से तरक्की करे; अन्यथा, श्रीमती नेहरू देवी को आज्ञा से सरस्वती ही को अपना रूप-रङ्ग मर्यादा के रूप-रङ्ग से कम दर्जे का करना पड़ेगा । क्योंकि, स्त्रीदर्पण की सम्पादिका का चित्त दुचित्त बनाये रखना सरस्वती को अभीष्ट नहीं ।

यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि मर्यादा की समालोचना करने में सरस्वती क्यों अकारण बीच में घसीटी गई । खैर, आप सरस्वती की शौक से समालोचना करें । यही नहीं, जी में आवे तो आप उसके सम्पादक की भी समालोचना करें । पर सरस्वती के संचालकों पर आक्रमण क्यों ? आपकी समालोचना सुनने लायक है । सुनिष्ट :—

सच पूछिए तो सर्वोत्तम सुन्दरी सरस्वती के चलानेवाले बंगाली हैं । वे हिन्दी की पूरी पूरी मर्यादा करने पर भी सम्भव है कि उनकी चलाई हुई पत्रिका में बहुत कुछ त्रुटियाँ रह जावें\* । सम्भव है कि अब उसके संचालकों में पहले की भाँति कोई सच्चा हिन्दी-हितैषी न रहा हो और वे लोग धन-लाभही की दृष्टि से इस समय सरस्वती को चला रहे हों ; क्योंकि हिन्दी के साथ ही साथ वे उर्दू-भाषा का भी एक मासिक पत्र निकाल रहे हैं । ..... यदि मर्यादा के सञ्चालक इंडियन प्रेस की भाँति धन खर्चने और योग्य कर्मचारियों और लेखकों का पूरा पूरा आदर करने में संकोच न करें तो मर्यादा को कमला के समान अकाल में कालग्रस्त होने का कुछ भी भय न होगा ।

सो, सरस्वती के चलाने वाले बंगाली होने के कारण उनकी पत्रिका में त्रुटियाँ रहती हैं । इस समय इंडियन प्रेस में कोई सच्चा हिन्दी-हितैषी नहीं । रुपया कमानाही अब सरस्वती के संचालकों का एकमात्र उद्देश है । इंडियन प्रेस न रुपया खर्च करता है और न योग्य कर्मचारियों और लेखकों का यथोचित आदर ही करता है । ये सब स्त्रीदर्पण की

\* बाहरी हिन्दी !



सम्पादिका जी की संभावनाये हैं । नहीं मालूम इंडियन प्रेस के बंगाली संचालक ने आपका क्या बिगाड़ा है जो उनके विषय में आपने ऐसी अनुदार और अनुचित टीका कर डाली । भला मर्यादा की समालोचना करते समय इंडियन प्रेस के स्वामी की समालोचना करने की कौनसी जरूरत आ पड़ी थी । हम आपके मुँह न लगते; पर यह आपकी नहीं, किसी पुरुष की करतूत जान पड़ती है; क्योंकि आपके लेख में पुँभाव और स्त्रीभाव, दोनों विद्यमान हैं :—

“ उदाहरणार्थ.....बहुत छोटे छोटे दोषों का उल्लेख हम यहाँ करेंगी ” । यह तो आपका स्त्री-भाव है । अब पुँभाव देखिए :—

“ हम उसके सच्चे हितैषी हैं, इस लिये अपने मन की सच्ची भावना प्रकाशित कर देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं ” ।

क्या बंगालियों की चलाई हिन्दी-पत्रिका में ही त्रुटियाँ रह सकती हैं; काश्मीरियों, पंजाबियों, संयुक्त-प्रान्त-वासियों की पत्रिका में नहीं ? आप और आपके अभिभावकों का जन्म तो शायद बंगाल का नहीं । फिर क्या आप कह सकती हैं कि आपका “ दर्पण ” बिल्कुल ही निर्मल है ? उसमें किसी तरह की कोई भी त्रुटि नहीं ? बेहतर तो यह होता कि आप पहले सरस्वती की त्रुटियाँ बतलातीं; फिर यह साबित करतीं कि वे उसके सञ्चालकों के बंगाली होने के कारण हुई हैं । सो तो आपने किया नहीं । जो कुछ कलम से निकला लिख डाला । इस तरह का अन्याय तो आपको शोभा नहीं देता ।

इसका आपके पास क्या प्रमाण कि अब सरस्वती के सञ्चालकों में पहले का ऐसा कोई सच्चा हिन्दी-हितैषी नहीं रहा ? देवी, अपनी बात को पुष्ट करने के लिए कुछ भी कारण तो दे देतीं । अकारण ऐसा आक्षेप क्यों ? क्या आप नहीं जानतीं कि सरस्वती और इंडियन प्रेस का सञ्चालक एक है ? वही पहले था और वही अब भी है । कर्मचारी बदलाही करते

हैं । पर इससे क्या ? पहले मुहर्रिर के न रहने क्या किसी वकील के व्यवसाय में कमी आ सकती है ? एक गया, दूसरा आ गया । दूसरा आ गया, तीसरा आ गया । क्या हिन्दी की सच्ची हितैषी केवल कर्मचारियों ही की प्रेरणा से किसी प्रेस पत्र के सञ्चालकों में आ सकती है ? यदि ऐसा सकेगा तो यह भी कहा जा सकेगा कि आप हिन्दी-प्रेम भी आपके नौकरों-ही की कृपा का होगा ।

धन-लाभ की दृष्टि क्या बुरी दृष्टि है ? आप तो शायद न चाहती होंगी कि इंडियन प्रेस लाभ परवा न करके हानि ही हानि उठाने की तरफ दृष्टि रक्खा करे । हानि उठाने से कितने दिन चल सकेगा । लाभ न होगा तो खर्च कहाँ से आयेगा और हिन्दी की सच्ची या झूठी हितैषणा कैसे जागती रहेगी । लाभ के आप इतना प्रतिकूल हैं आपके यहाँ कभी लाभ की दृष्टि से कोई काम है या नहीं ? यदि, नहीं, तो आपके हाथ कुंठ अक्षय्य सम्पत्ति जरूर लग गई होगी । अन्यथा लाभ के किसी का काम बहुत दिन नहीं चल सकता पर आपकी सखावत का कोई बहुत बड़ा आपके पत्र में अब तक नहीं देखा गया ।

उर्दू का पत्र इंडियन प्रेस ने निकाला तो बुरा किया ? उससे सरस्वती की क्या हानि हुई आपकी यह शिकायत तो तब जा समझी जब आप पहले अपने घर की तरफ नज़र उठा देखतीं । बतलाइए तो आपके समाज में कि रामायण और महाभारत के पढ़नेवाले हैं और शाहनामा, अकबरनामा, रुक्नात आलमगीरी रुक्नात अबुलफ़जल के । ज़रा आप अपने कार्यादर्पण की फाइलेहीं शुरू से देख जातीं । उस तरफ भी कभी आपने ध्यान दिया है ? इंडियन के बंगाली सञ्चालक इस प्रान्त के वासी नहीं यदि उर्दू और हिन्दी को बराबर समझे तो आश्चर्य की बात नहीं । आप तो इसी प्रान्त की



संख्या २ ]

फिर आपने अपने आदमियों का उर्दू-प्रेम कम करने के लिए क्या क्या यत्न किये ? बतलाइए न ?

इंडियन प्रेस धन खर्च करने में संकोच करता है, इसकी आपको क्या खबर ? क्या इंडियन प्रेस के हिसाब की जाँच आपही करती हैं ? यदि, नहीं, तो फिर क्यों आप ऐसी निर्मूल बात कहती हैं ?

बड़ी दया होगी यदि आप यह बतला दें कि प्रयाग के किन किन स्वदेशी प्रेसों में योग्य कर्म-चारियों और लेखकों का पूरा पूरा आदर होता है । यदि सम्भव हुआ तो इंडियन प्रेस उनका अनुकरण करने की चेष्टा करेगा । आप अपने पत्र के लेखकों का कितना आदर करती हैं, यही बतला दीजिए । यह भी न सही ; यही बता दीजिए कि पूरा पूरा आदर करना कहते किसे हैं । जहाँ तक हमारा अनुभव है, हम तो समझते हैं कि लेखकों और कर्म-चारियों का जितना आदर इंडियन प्रेस करता है उतना शायद ही और कोई करता होगा ।

मर्यादा में आपने जो गलतियाँ दिखलाई हैं उसकी जवाबदेह वह है । पर आपने अपनी गलतियों पर भी कभी खयाल किया है ?

बस, अब आपसे और क्या प्रार्थना करें । आशा है, आप इस थोड़े लिखे को बहुत समझेंगी ।

## विविध विषय ।

### १-अद्भुत जल-मनुष्य ।

त आठ वर्ष हुए सरस्वती में एक लेख एक जल-मनुष्य के सम्बन्ध में निकला था । वह एक सजीव मनुष्य के विषय में था । जिस जाति का वह प्राणी था उस जाति से भिन्न भी एक जाति जल-मनुष्यों की होती है । इस दूसरी जाति के जीवों के शरीर का ऊपरी भाग प्रायः मनुष्याकार होता है, पर नीचे का भाग मछली

के सदृश होता है । मछली और मनुष्य दोनों के आकार की संसृष्टि इन्हें कहना चाहिए । इस तरह के दो जीव—नर और मादा—इलाहाबाद की नुमा-यश में आये हैं । वे निर्जीव हैं । अदन के एम० जी० मोदी नामक एक पारसी उन्हें लाये हैं । उनका कथन है कि जॉन काकू नाम के एक कप्तान ने इन्हें लाल-सागर में पकड़ा था । इनकी लम्बाई कोई ६ फुट है । सिर, मुँह, आँखें, भौहें, नाक आदि अंग आदमी के ऐसे हैं । दो भुजायें भी आदमी ही की ऐसी हैं, पर जरा छोटी हैं । उनमें उँगलियाँ और उनके जोड़ साफ़ साफ़ देख पड़ते हैं । नर में नर का चिह्न और मादी में मादी का चिह्न है । नीचे, दोनों के, मछली की ऐसी पूंछ है । इन्हें एक प्रकार की सील नामक मछली कहना चाहिए । इनके विज्ञापन में जो “मच्छ औतार” लिखा गया है वह बहुत अनुचित हुआ है । प्रदर्शिनी के परमेश्वरों को ऐसा न करने देना चाहिए था ।

प्रयाग की प्रदर्शिनी में जहाँ पर ये दोनों जल-जन्तु रखे हैं वहाँ पर एक दो सिर वाला भैंस का बच्चा भी है । गरदन से उसके दो सिर हो गये हैं । दोनों अलग अलग हैं । नाक, कान, आँखें आदि भी प्रत्येक सिर में जुदा जुदा हैं ।

### २-हिन्दुस्तान में व्योम-विहारी विमान ।

सरस्वती में, समय समय पर, अनेक बार व्योम-विहारी विमानों, अर्थात् हवाई जहाज़ों, का हाल प्रकाशित हो चुका है । अब तक इन जहाज़ों का आगमन भारत में न हुआ था । पर अब इन्होंने इस देश में भी पदार्पण किया है । इलाहाबाद की प्रदर्शिनी के अधिकारियों ने पिकेट और डेविज़ नाम के दो व्योमविहारियों को योरप से बुलाया है । आस-मान में उड़ना इनका पेशा है । बड़े दिन की छुट्टियों में प्रदर्शिनी में इनके उड़ान की खूब धूम रही । रात्रि शाम को चार बजे के बाद ये लोग उड़ते रहे । कभी प्रदर्शिनी के ऊपर, कभी यमुना के ऊपर, कभी कांग्रेस के अहाते के ऊपर, कभी शहर की तरफ़,



कभी कहीं कभी कहीं—ये लोग अपने अपने व्योम-यानों पर चिड़ियों की तरह उड़ते और चक्कर काटते रहे । इनमें से एक मोनो-प्लेन नाम का है, दूसरा बाई-प्लेन नाम का । एक बहुत ऊँचा उठता है, दूसरा उतना ऊँचा नहीं जाता । उड़ने के पहले ये यान कुछ दूर तक ज़मीन पर घसिस्टते हुए जाते हैं; तब ऊपर उठते हैं । उतरते समय भी यही बात होती है; कुछ दूर घसिस्ट कर ये रुकते हैं । मोटरकार चलते समय जैसे गड़गड़ाहट होती है वैसेही इनमें भी होती है । आसमान में उड़ते समय भी आवाज़ सुनाई पड़ती है । हजारों आदमी तृपित नेत्रों से ऊपर को सिर उठाये इन्हें देखा करते हैं । जब तक प्रदर्शनी रहेगी ये यान निश्चित समय पर उड़ा करेंगे । मिर्ज़ापुर के कुछ लोगों ने दो हजार रुपये का इनाम उसे देने कहा है जो इलाहाबाद से मिर्ज़ापुर तक उड़ जाय । देखें इसका क्या फल होता है ।

उधर कलकत्ते में भी व्योम-यानों की खूब धूम रही । दिसम्बर में कई एक उड़ान हुए । बैरन डि केटर्स नाम के एक व्योमविहारी ने कई हजार फुट की ऊँचाई तक उड़ान किया । कई स्त्रियों को, जिनमें एक बंगाली-बाला भी थी, अपने यान पर बिठलाकर उसने आसमान की सैर कराई । एक और साहब ने भी अपना यान उड़ाया । इनका नाम है मांज़ टाइक । आप छः हजार फुट से भी ऊँचे उड़े ।

अमेरिका वाले इन यानों से अब कुछ लाभदायक काम लेने का विचार कर रहे हैं । वहाँ के कुछ यान एक घंटे में ६० मील के हिसाब से उड़ते हैं । अब उनसे डाक ले जाने का काम लिया जायगा । उनसे माल-असबाब ले जाने का काम भी लेने का विचार हो रहा है । अब तक इन पवन-यानों में कुछ न कुछ कमी बनी हुई है । उसे दूर करने के लिए अमेरिका वाले जी-जान से प्रयत्न कर रहे हैं । एडविन गोल नाम के एक अमीर आदमी ने ५० हजार रुपये का इनाम उसे देने का निश्चय किया है जो ऐसा व्योम-यान बनावे जिसके टूटने और बिगड़ने का डर न

हो । सो, अब कुछ दिनों में आसमान के रास्ते आदमियों मुसाफिरी करेंगे और व्यापारी लोग अपना माल उसी रास्ते एक जगह से दूसरी जगह भेजेंगे ।

### ३—एक हफ्ते में बम्बई से लन्दन ।

इस देश से लन्दन जाने के कई रास्ते हैं । वे तो बम्बई से जहाज़ में सवार होकर जिब्राल्टार रास्ते, पानीही पानी, इंग्लैंड तक चले जाते हैं । वे फ्रांस के मार्सेल्लस बन्दर तक जहाज़ में जाते हैं वहाँ से रेल पर सवार हो लेते हैं । कोई के ब्रिंडिसी ही में जहाज़ से उतर पड़ते हैं और वहाँ इटली और फ्रांस देशों को रेल से पार करके लन्दन पहुँचते हैं । इस तरह जाने में बारह चौदह दिन किसी तरह कम नहीं लगते । विलायतवालों ने इतने समय का लगना बहुत खलता है । वे चाहते हैं कि लन्दन से बम्बई और बम्बई से लन्दन जाने में पंद्रह दिन पड़ जाय । परन्तु उन्हें तो यह देरी खलती भर है, रूसवालों को असह्य सी हो रही है । रूस से रूस में एक कम्पनी खड़ी होने वाली है । रूस, फ्रांस और ग्रेट-ब्रिटन में रुपया इकट्ठा कर हिन्दुस्तान को रेल-द्वारा थोरप से जोड़ देना चाहते हैं । कास्पियन समुद्र के किनारे एक जगह बाकू है वहाँ मिट्टी के तेल का बड़ा कारोबार होता है । रूस की रेल वहाँ तक बनी बनाई तैयार है । उस रेल को रूस के यंजिनियर कास्पियन समुद्र के किनारे फ़ारस की सीमा तक लाना चाहते हैं । वे फ़ारस के रेस्त, तेहरान और किरमान होकर बलूचिस्तान के नुश्की नामक स्थान में हिन्दुस्तान की नार्थ वेस्टर्न रेलवे से वे मिला देना चाहते हैं । ऐसा हो जाने से एकही हफ्ते में यात्री लन्दन पहुँच जायेंगे । इस रेल से लन्दन तक की दूरी ५७०० मील होगी और किराये में फ़ी सदी बीस बचत भी होगी । उधर लन्दन भी नज़दीक जायगा, इधर रूस से भी आमद-रफ़ू का मार्ग जायगा । एक पंथ दो काज । रेल का अधिक फ़ायदा होकर निकलेगा । सो, फ़ारस शायद



मार्ग  
ते आद  
माल  
गे।  
दन।  
हैं।  
ब्राह्म  
हैं।  
जाते  
कोई  
र वहां  
के ल  
ह दिन  
वालों  
धे चा  
दन ज  
खलती  
है।  
है।  
कड़ा क  
सा चाह  
बाकू  
है।  
उस  
के कि  
हैं।  
मान हो  
हिन्दु  
वाहते  
दन प  
दूरी  
बीस  
जदीक  
मार्ग  
पधिक  
शायद



# सरस्वती



सैयद अली-इमाम, वैरिस्टर-एट-ला ।



संख्या २ ]

रोक टोक करे। रेल बन गई समझिए। तैयारियों से तो यही जान पड़ता है।

#### ४-परलोक-प्राप्त आत्माओं के अद्भुत काम।

रिव्यू आब रिव्यूज अँगरेजी का बहुत प्रसिद्ध मासिक पत्र है। उसके सम्पादक स्टीड साहब हैं। आप बड़े विद्वान् और प्रतिष्ठित पुरुष हैं। अध्यात्म-विद्या के आप बड़े प्रेमी हैं। कुछ समय हुआ आपने अपने पत्र में परलोक-प्राप्त आत्माओं के कई अद्भुत कामों का उल्लेख किया था। उनमें से एक घटना का वर्णन कास्टारिका के एक पत्र से उन्होंने उद्धृत किया था। अमेरिका में कास्टारिका एक छोटी सी, पर स्वतंत्र, रियासत है। वहाँ कुमारी कारेलस नाम की एक स्त्री है जिसके ऊपर परलोकगत आत्माओं का आविर्भाव हुआ करता है। यह स्त्री आत्माओं और सजीव सांसारिक मनुष्यों के बीच मध्यस्थ का काम करती है। एक बार मेरी ब्राउन नाम की एक परलोकगत आत्मा उसके ऊपर आई। कितनेही समय, शिक्षित और प्रतिष्ठित मनुष्य उस समय वहाँ उपस्थित थे। उनके सामने वह आत्मा दर्शकों की दृष्टि के सामने आ गई। उपस्थित जन उसे प्रत्यक्ष आँख से देखने लगे। कुछ देर में वह आत्मा एक की दो हो गई, तीन हो गई और अन्त को चार हो गई। आत्मा एक, पर उसने चार रूप, चारों एक से, धारण कर लिये। वे चारों भिन्न भिन्न दर्शकों से भिन्न भिन्न विषयों पर बातचीत करने लगे। उन्होंने बतलाया कि केवल मानसिक सङ्कल्प से एक आत्मा के कई रूप हो सकते हैं और इच्छामात्र से फिर वे चारों एक हो जा सकते हैं। परीक्षा के तौर पर इनमें से दो रूप कमरे के भीतर रहे, दो उसके बाहर हो गये। कमरे में भीतर से ताला लगा लिया गया। नियत सङ्केत पर बाहर की दोनों आकृतियाँ फिर भीतर आ गईं और कुछ देर में चार की केवल एक आकृति रह गई। एक बार पूर्वोक्त कुमारिका कारेलस को इन आत्माओं ने उठाकर ६०० रु. दूर

एक जगह पर आकाश-मार्ग से पहुँचा दिया। इन घटनाओं के सच होने की गवाही बड़े बड़े विश्वास-पात्र पुरुषों ने दी है। उनके नाम स्टीड साहब ने प्रकाशित किये हैं।

#### ५-मिस्टर सैयद अली-इमाम।

गवर्नर जनरल को सलाह देने के लिए एक कौंसिल है। उसके सारे मेम्बर अब तक अँगरेज ही होते थे। पर लार्ड मार्ले की कृपा से अब एक भारत-वर्षी मेम्बर भी रखा जाता है। यह मेम्बर कानूनी बातों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को सलाह देता है। इस तरह के पहले मेम्बर मिस्टर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह हुए। उनका संक्षिप्त चरित और चित्र सरस्वती में निकल चुका है। गत नवम्बर में किसी कारण से इन्होंने अपने इस उच्च पद से इस्तेफा दे दिया। अब इनकी जगह पर मिस्टर सैयद अली-इमाम नियत किये गये हैं। आप बैरिस्टर हैं और विहार प्रान्त के रहनेवाले हैं। पटना में बहुत दिन तक बैरिस्टरी करके आपने नाम पैदा किया है। कुछ समय हुआ, बंगाल की गवर्नमेंट ने आपको अपना स्टैंडिंग कौंसिल नियत किया था। अब तक यही काम आप करते थे। अब भारतेश्वर, जार्ज पञ्चम, ने आपको गवर्नर जनरल के कौंसिल का सदस्य नियत करके हमारे मुसल्मान भाइयों के सन्तोष की विशेष, और हिन्दुओं के सन्तोष की निर्विशेष, वृद्धि की है। अली इमाम साहब एक प्रसिद्ध घराने के हैं। आपके पूर्वज शाही ज़माने में बड़े बड़े ओहदों पर थे। मुसल्मान होकर भी आपका विचार एकपक्षीय नहीं। आप इस देश के बहुत बड़े हित-चिन्तक हैं। हिन्दू-मुसल्मानों के भेद-भाव को आप अच्छा नहीं समझते। शिक्षा-प्रचार के आप बड़े पक्षपाती हैं। अलीगढ़ कालेज के आप संरक्षकों में से हैं। गवर्नमेंट का आप पर पूरा विश्वास है। आशा है, आप अपने को इस विश्वास का पात्र सिद्ध करके राजा और प्रजा दोनों की भलाई करने की चेष्टा करेंगे।



## ६—कौंट टाल्सटाय का परलोक-गमन ।

रूस के दीनवत्सल, निरीह, सर्वोपकाररत महात्मा टाल्सटाय का परलोकवास हो गया । आपका जीवनचरित नवम्बर १९०४ की सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है । आपके सम्बन्ध में कई एक नोट भी सरस्वती में निकल चुके हैं । ८५ वर्ष की उम्र में आपने इस लोक से प्रस्थान किया । आपका पाञ्चभौतिक शरीर तो नष्ट हो गया, पर आपकी उज्ज्वल कीर्ति नष्ट नहीं हुई । वह नष्ट हो नहीं सकती । प्रत्युत वह अब उज्ज्वलतर हो गई है । उसकी उज्ज्वलता के प्रति दिन और भी अधिक निर्मल होने की संभावना है । आप यद्यपि रूस में उत्पन्न हुए, वहाँ रहे, और वहाँ आपका शरीरान्त भी हुआ; पर गुण आपमें भारतवर्षीय प्राचीन ऋषियों के से थे । आपको रूसही के नहीं, अन्यान्य देशों के निवासी भी पूज्य दृष्टि से देखते थे । आपकी मृत्युवार्ता सुन कर रूस की पार्लियामेंट, डूमा, ने अपना काम बन्द कर दिया । उसके सभासदों ने शोक मनाया और कौंट का बहुत कुछ गुणकीर्तन किया । टाल्सटाय ने कई उपन्यास लिखे हैं । हिन्दी में जैसे गन्दे उपन्यास आज कल निकलते हैं, टाल्सटाय के उपन्यास वैसे नहीं । टाल्सटाय ने अपने उपन्यासों में समाज की भिन्न भिन्न स्थितियों के चित्र से खींच दिये हैं । वे ऐसे अच्छे हैं कि उनका अनुवाद कितनीही विदेशी भाषाओं में हो गया है । इन उपन्यासों को पश्चिमी देशों के पण्डित उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से हिन्दू लोग गीता, भागवत और रामायण आदि को देखते हैं । टाल्सटाय मार-काट और परपीडन के बेतरह विरोधी थे । रूस-जापान-युद्ध के सम्बन्ध में उन्होंने रूस-राज के प्रधान मंत्रिमण्डलही को नहीं, प्रत्यक्ष ज़ार तक की निन्दा की थी । पर उन पर सारे देश की इतनी श्रद्धा और भक्ति थी कि उनके इन आक्षेपों को सुन कर किसी ने चूँ तक नहीं किया । अमीर होकर वे एक दरिद्र गृहस्थ की तरह रहते थे । कुछ

दिनों से रुपये पैसे को छूते तक नहीं थे । दीन-दुखियों की सदा सहायता किया करते थे । आप मृत्यु एक बहुत छोटे से गाँव में हुई । पर यह अब एक प्रकार का तीर्थ हो गया है । लाखों आदमियों वहाँ की यात्रा करने जाने लगे हैं । ऐसेही महात्मा का जन्म सफल समझना चाहिए ।

## ७—फादर मूलर का परलोकवास ।

कोई दो महीने हुए, रेवरंड आगस्टस मूलर मंगलौर में परलोकवास हो गया । ये बड़े नामवादी थे । होमियोपैथी नाम की चिकित्सा-प्रणाली में ये अद्वितीय थे । लड़कपन में ये बहुत बीमार रहते थे । अनेक प्रकार की डाकूरी दवायें करके हार गये; इनकी शिकायतें न गईं । अन्त में इन्होंने पेरिस में होमियोपैथी की चिकित्सा आरम्भ की उससे इनके रोग का समूल नाश हो गया । इन्होंने खुद भी इस चिकित्सा को सीखा और उसकी पूरी पूरी विज्ञता प्राप्त कर ली । इसके बाद पादर बनकर ये भारतवर्ष आये । यहाँ इन्होंने मंगलौर होमियोपैथी का एक दवाखाना खोला । कुछ दिनों में इनका इतना नाम हुआ कि दूर दूर से रोगी इन्हें पास आने और इनकी चिकित्सा से निरोग हो जाने लगे । धीरे धीरे ये होमियोपैथी आषधियाँ भी बनने लगे । उनका बड़ा प्रचार हुआ । इस समय हजारों होमियोपैथ डাক्टर इनके यहाँ से दवायें मँगाने लाखों मनुष्यों का हितसाधन कर रहे हैं । इनकी दवायें सचमुचही जादू का ऐसा असर करती हैं कि मंगलौर में इन्होंने दीन-दुखियों की चिकित्सा के लिए दो अस्पताल बनाये; कोढ़ियों के लिए एक अस्पताल और फ्लेग के रोगियों के लिए भी एक । ये अस्पताल के रोगियों की मुफ्त चिकित्सा करते और दवायें भी मुफ्त बाँटते थे । इनके इस औदार्य और परोपकारव्रत को देख कर गवर्नमेंट ने इन्हें क्रैसरे-हिन्द पदक से विभूषित किया था । इन्होंने होमियोपैथी पर कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं ।



# सरस्वती

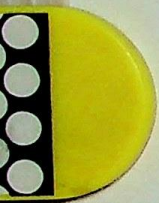


रक्षियन ऋषि।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

कौंट टाब्लेस्टाय।







# सरस्वती



फादर मूलर ।



सं  
पसन  
अधि  
तमा  
से अ  
सुनते  
इसे  
घटन  
इसक  
नय  
का प्र  
दिखा  
बदरी  
इसक  
शाय  
इस स  
दशर  
के का  
वनवा  
कथन  
को उ  
भलेही  
फिर,  
लोलुप  
थी या  
होकर  
तीन  
प्रमाण  
दू  
गंगाना  
के वौष  
गया ।  
सब अ  
राजेश्व



## ८—ओरियंटल पेजेंट ।

जो लोग नौहर-जान की मजलिस में जाना पसन्द नहीं करते उन्होंने प्रयाग की प्रदर्शनी के अधिकारियों की बदौलत ओरियंटल पेजेंट नाम का तमाशा जरूर ही देखा होगा । यह तमाशा २३ जनवरी से आरंभ होकर कई दिन तक प्रदर्शनी में हुआ । सुनते हैं, बड़े बड़े अंगरेज और राजे महाराजे तक इसे देखने आये थे । भारत की प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं का नाटक के रूप में अभिनय दिखाना ही इसका अभिप्राय था । इसमें कई घटनाओं के अभिनय हुए । पहले खेल में राम, लक्ष्मण और सीता का प्रयाग आना और भरद्वाज के आश्रम में जाना दिखाया गया । यह खेल हिन्दी में हुआ । पण्डित बदरीनारायण चौधरी ने इसकी रचना की थी । इसका कुछ अंश अभिनय में छोड़ दिया गया था—शायद खेल को छोटा करने के लिए । भरद्वाज ने, इस खेल में, रामचन्द्र से यह कहा कि तुम्हारे पिता दशरथ बड़े विषयी हैं । विषयभोग में लिप्त होने ही के कारण उन्होंने कैकेयी की बात मान कर तुम्हें वनवास दिया है । हमारी जड़ताक्रान्त बुद्धि इस कथन को अनुचित समझती है । रामचन्द्र के पिता को उन्हीं के मुँह पर विषयी बनाना और कहीं चाहे भलेही अच्छा लगे, पर नाटक में अच्छा नहीं लगता । फिर, क्या दशरथ सचमुच ही विषयी थे ? विषय-लोलुपता के कारण उन्होंने कैकेयी की बात मानी थी या पूर्वप्रतिज्ञानुसार वर देने के वचन से बद्ध होकर मानी थी ? प्राचीन समय में राजाओं के दो दो तीन तीन रानियों का होना उनके विषयी होने का प्रमाण नहीं । खैर । जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ ।

दूसरे धर्मोदय नामक खेल की रचना डाकूर गंगानाथ भा ने की थी । इसके द्वारा महाराज अशोक के बौद्ध-धर्म-विषयक संस्कार का प्रादुर्भाव दिखाया गया । यह खेल भी हिन्दी ही में हुआ । शेष खेल सब अंगरेजी में हुए । तीसरे खेल में कृष्णजी के राजेश्वर श्रीहर्ष का, ईसा की सातवीं सदी में, हिन-

सांग को साथ लिये हुए, प्रयाग में आना आदि दिखाया गया । इसके अनन्तर इंग्लैंड की रानी एलिजबेथ के भेजे हुए तीन अंगरेजों का अकबर के दरबार में जाना, अकबर की मृत्यु और अकबर का गोलकुंडा विजय करना आदि दिखाया गया । अकबर के दरबार में जब पूर्वोक्त तीनों अंगरेज आये तब अकबर ने खड़े होकर उन्हें देखतेही कहा—“ I bid you peace. That is our salutation in the East.” अकबर ने तो इस तरह उन्हें सलाम किया—दरबार बर्खास्त होते समय भी उसने ‘पीस’ और ‘सलाम’ कहा—पर आगत अंगरेज एलचियों ने न जातेही समय उसे सलाम किया; न उठते ही समय । किया चाहे भलेही हो, पर ग्रैंड ओरियंटल पेजेंट ( Grand Oriental Pageant ) नामक पुस्तक में इसका कहीं उल्लेख नहीं । एक बात और भी है । क्या अंगरेज-दूतों को देख कर, भरे दरबार में, अकबर सच मुच ही खड़ा हो गया था ?

हाँ, एक मूक-अभिनय भी बच्चों ने अंगरेजी में दिखाया । मुँह से कुछ नहीं कहा गया; कहने का आशय केवल नाच-कूद, भावभङ्गी और अङ्ग-सञ्चालन से बतलाया गया ।

## आख्यायिका ।

शायरों के शाहिन्शाह अबूतालिब और शाहेजहाँ ।



स दिन हम एक किताब पढ़ रहे थे कि शाहेजहाँ बादशाह और उसके मलकुशोरा अबूतालिब से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना का वृत्तान्त वहाँ मिला । शाहेजहाँ ने अबूतालिब पर बहुत प्रसन्न होकर उसे मुहर-दारी का काम देना चाहा । यह काम सबसे अधिक विश्वसनीय मनुष्य को ही मिलता है, क्योंकि शाही मुहर उसके पास रहती है । वही सब फ़रमानों पर



मुहर करता है। यह पद लार्ड चेम्बरलेन ( Lord Chamberlain ) के पद से मिलता जुलता है। पर अबूतालिब को यह बात पसन्द न आई। बादशाह ने ज्योंही अपनी इच्छा प्रकट की त्योंही उसने यह शेर पढ़ा :—

तु मेहरे तु दारम चे हाजत ब-मुहरम ।  
मरा मेहदारी बेह ज़ मुहदारी ॥

अर्थात्— यदि आपकी मेहर ( कृपा ) मुझ पर है तो मुहर की मुझे क्या ज़रूरत ? मुहरदारी की अपेक्षा मेहरदारी ही ( कृपापात्रताही ) मेरे लिए अधिक अच्छी है।

इसे पढ़ कर हमें एक और, कुछ कुछ ऐसीही, घटना याद आ गई। परलोकवासी राजा रमेशसिंह की एक हिन्दी लेखक पर बड़ी कृपा थी। जिस समय वे राजा रामपालसिंह के मुकाबले में रामपुर की रियासत की हक़दारी के लिए लड़ रहे थे उस समय उन्होंने पूर्वोक्त लेखक को लिखा कि यदि मैं इस मुक़दमे में जीत गया तो राजा होने पर मैं तुम्हें अपने राज्य में अमुक पद प्रदान करूँगा। राजा होने पर उन्होंने अपने वचन को पूर्ण करना चाहा। परन्तु उनके उस कृपापात्र लेखक ने उन्हें बहुत बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि मुझे कोई पद न चाहिए। चाहिए सिर्फ़ मुझे आपकी कृपा। वह जितनी इस समय मुझ पर है, उससे अधिक न हो, तो उतनी ही बनी रहे। मुझे और कुछ न चाहिए।

## चित्र-परिचय ।

( १ )



स संख्या के आरम्भ में जो रंगीन चित्र प्रकाशित है उसका नाम है— युधिष्ठिर का स्वर्गगमन। पार्थिव शरीर को छोड़ने के इरादे से युधिष्ठिर ने जब स्वर्गरोहण का मार्ग लिया तब धीरे धीरे एक एक

करके द्रौपदी, नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम का

शरीर निर्जीव हो हो कर ज़मीन पर गिरता गया परन्तु कुछ भी माया-मोह न दिखा कर युधिष्ठिर बढ़तेही गये। साथ में उनके रह गया एक उनका धर्म। वह कुत्ते के रूप में उनके साथ यथासमय उन्हें स्वर्ग में सशरीर ले जाने के देवताओं ने उनके पास विमान भेजा और कुत्ते छोड़ कर विमान में बैठने के लिए उनसे प्रार्थना परन्तु युधिष्ठिर ने इस बात को स्वीकार न किया अन्त तक कुत्ते के रूप में धर्म को उन्होंने अपने रक्खा। विमान आने के पहले का वही दृश्य चित्र में दिखलाया गया है।

( २ )

इस संख्या में भारत के नवीन सेक्रेटरी स्टेट, लार्ड क्रू, का चित्र प्रकाशित किया जाता। लार्ड मार्ले के बाद इस देश के शासन का सूत्र लैंड में आपही ने अपने हाथ में लिया है। आपकी इस समय कोई ५३ वर्ष की है। पहले पहल विलायत में वैदेशिक विभाग के सेक्रेटरी आप के सहायक मन्त्री थे। उसके बाद, १८८६ में, महारानी विकोरिया के “लार्ड-इन-वेटिंग” नियुक्त हुए। १८९२ में आप आयरलैंड के लार्ड लफि हुए। इसके १३ वर्ष बाद, जब सर हेनरी कैमर बैनरमैन प्रधान मन्त्री हुए तब, आप कौंसिल लार्ड प्रेजिडेंट बनाये गये। १९०८ में आपको प्रिवी सील का पद मिला। उसी साल उपनिवेश मन्त्री का पद आपको दिया गया। और, अब, भारत के सेक्रेटरी आर्ग स्टेट के पद की शोभा रहे हैं।

( ३ )

जुलाई १९१० की सरस्वती में भारत के नवा बड़े लाट सर चार्ल्स हार्डिंज का चित्र प्रकाशित चुका है। इस संख्या में हम लाट साहब का नया चित्र प्रकाशित करते हैं।



# सरस्वती

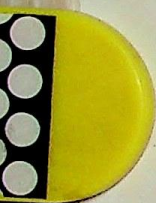


इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

युधिष्ठिरের স্বর্গপ্রস্থান

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar  
हिमे यदि যায় तनु त्रि द्रुथ हते ॥





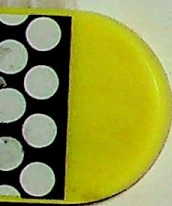


# सरस्वती



राइट आनरेबल अर्ल क्रू, सेक्रेटरी आव् स्टेट फार इंडिया ।





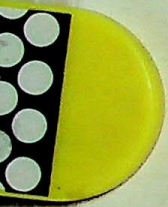


# सरस्वती



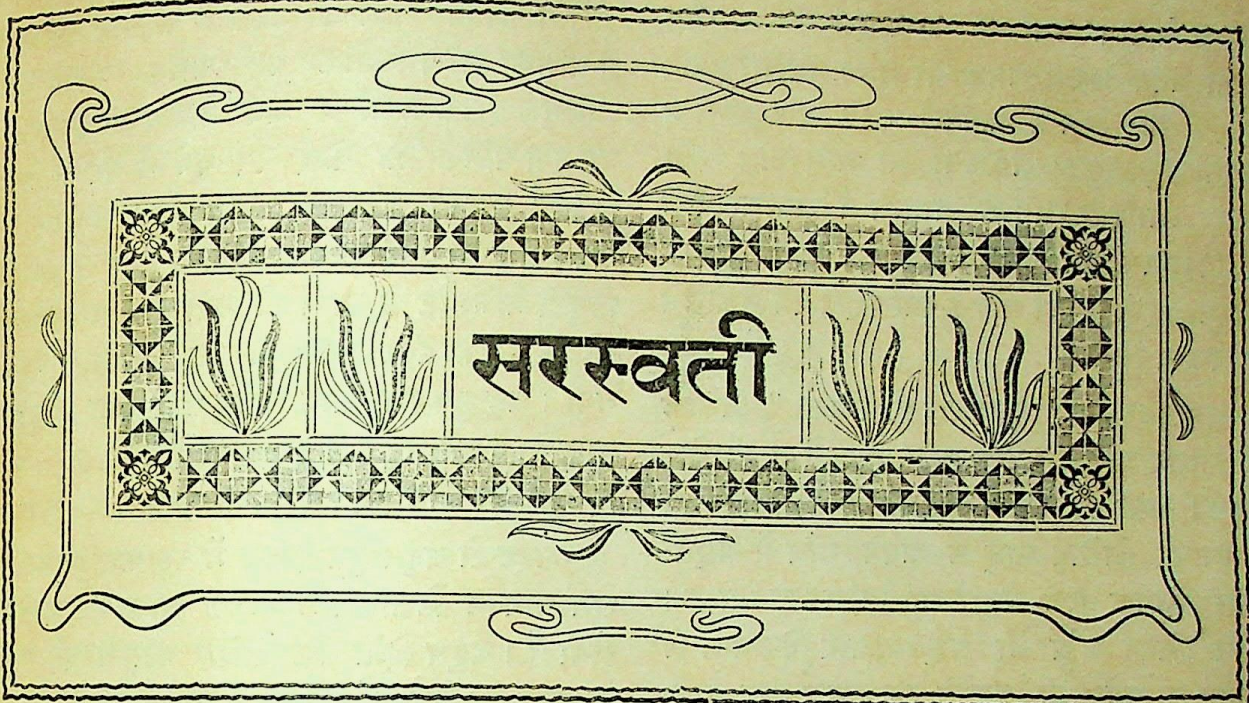
वाइकौंट हारडिंज, वाइसराय ऐन्ड गवर्नर जनरल । ( बड़े लाट )





भा  
उत्प  
समा  
कुमा  
था  
गाँव  
पाठ





# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ]

१ मार्च, १९११—फाल्गुन शुक्ल १, १९६७ ।

[ संख्या ३ ]

## बाबू शिशिरकुमार घोष ।

**रा**जनैतिक और धार्मिक जीवन में बड़ा अन्तर है। राजनैतिक भाव मनुष्य के हृदय में नाना प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प उत्पन्न करके उसे सांसारिक बनाते हैं; धार्मिक भाव विराग उत्पन्न करते हैं—मनुष्य को संसार से विरक्त बनाते हैं। इन दोनों परस्पर विरोधी भावों का एकत्र समावेश विरलेही पुरुष में होता है। बाबू शिशिरकुमार घोष ऐसेही विलक्षण पुरुष थे। खेद की बात है, इनका अभी हाल में शरीरपात हो गया।

शिशिरकुमार का जन्म १८४२ ईसवी में हुआ था। इनकी जन्मभूमि यशोहर जिले का पलनू मगरा गाँव है। बाल्यकाल में शिशिरकुमार ने अपने गाँव की पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। इसके आगे

किसी स्कूल या कालेज में अध्ययन करने का सुयोग इन्हें नहीं प्राप्त हुआ। किन्तु धीरे धीरे अपने असाधारण बुद्धिबल और अध्यवसाय से इन्होंने ऐसी योग्यता प्राप्त करली कि बड़े बड़े विद्वान् भी इनके आगे मस्तक झुकाने और इनकी विद्वत्ता तथा बहुदर्शिता की प्रशंसा करने लगे। ये कहा करते थे—“मनुष्य के लिए समय ईश्वर का दिया हुआ एक अमूल्य रत्न है”। इस अमूल्य रत्न का सदुपयोग शिशिर बाबू अच्छी तरह करते थे। उसके छोटे से छोटे टुकड़े को भी ये अपनी तथा भारत और भारतवासियों की उन्नति के यत्न में लगाते थे। ये निरन्तर ईश्वराराधन और लोकहितसाधन-सम्बन्धी विचारों में लगे रहते थे।

१८५९ ईसवी में पूर्व बङ्गाल में नील की खेती करनेवाले अँगरेजों का उपद्रव आरम्भ हुआ। उस उपद्रव से रक्षा पाने के लिए प्रजा ने घोर आन्दोलन



आरम्भ किया। प्रजा के न्याय्य पक्ष का समर्थन करना अपना कर्तव्य समझ कर युवक शिशिरकुमार भी इस आन्दोलन में शामिल हुए। इस कार्य में इन्होंने बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की। इसी समय प्रजाहितसाधन के सम्बन्ध में समाचारपत्रों की उपयोगिता पर शिशिरकुमार का ध्यान गया। अतएव इन्होंने बंगला में एक साप्ताहिक पत्र निकालने का संकल्प किया।

सन् १८६८ में “अमृतबाजार-पत्रिका” निकाल कर शिशिर बाबू ने अपनी इच्छा पूर्ण की। शिशिर बाबू की माता का नाम अमृतमयी देवी था। इन्होंने के नाम पर शिशिर बाबू ने अपने गाँव में अमृत-बाजार नामक एक छोटा सा बाजार लगवाया। तब से इनका गाँव भी अमृतबाजार के नाम से विख्यात हो गया। यहाँ इन्होंने एक स्कूल और औष-धालय भी स्थापित किया। इसी अमृतबाजार की एक छोटी सी दुकान में बंगला अमृतबाजार-पत्रिका का साप्ताहिक रूप में जन्म हुआ। पहले यह पत्रिका पुराने-धुराने टाइपों से लकड़ी के प्रेस पर छपती थी। धन का अभाव था; इसलिए ये सब भाई मिल कर खुदही प्रेस का काम करते थे। कोई कम्पोज़ करता था, कोई स्याही देता था और कोई छापता था। कुछ ही दिनों में शिशिर बाबू कम्पोज़ करने के काम में सिद्धहस्त हो गये। वे प्रकाशन के लिए लेख कागज़ पर न लिख कर टाइपों में ही कम्पोज़ किया करते थे।

एक कहावत है कि जो अपनी सहायता आप करते हैं ईश्वर भी उनकी सहायता करता है। बाबू शिशिरकुमार अपने भाइयों के साथ जब अपनी सहायता आप करने लगे तब ईश्वर भी उन पर सानुकूल हुआ। देखते देखते पत्रिका के पाँच सौ ग्राहक हो गये। पत्रिका का आदर दिन दिन बढ़ने लगा। उसकी बे-लगाव सच्ची बातें सबको अच्छी मालूम होने लगीं। कुछ ही दिनों में पत्रिका बंगला के पत्रों में सर्वश्रेष्ठ समझी जाने लगी। राज-कर्म-चारियों के कामों की तीव्र समालोचना करने और

कुरीति-संस्कार-सम्बन्धी प्रस्तावों का समर्थन करने में पत्रिका सदैव निर्भीक और अग्रसर रहती थी। यह गुण इसके लेखों में अब तक पाया जाता है। हम इस पत्रिका को कोई २५ वर्ष से बराबर पढ़ते हैं और इसकी बदौलत बहुत लाभ उठाया है। अपने जन्म से कोई पाँच ही महीने बाद इसने पत्र डिपुटी मैजिस्ट्रेट के कार्य की ऐसी तीव्र समालोचना की कि इसके ऊपर मानहानि का अभियोग लागू गया। यह मुकद्दमा आठ महीने तक चला। शिशिर बाबू को इसमें बहुत हैरानी उठानी पड़ी; पर अंत में उन्हीं की जीत हुई। मुकद्दमा खारिज हो गया।

शहर से बहुत दूर देहात में रह कर साप्ताहिक समाचारपत्र निकालने में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। बहुत दिनों तक शिशिर बाबू ने इन विषय-बाधाओं को धैर्य-पूर्वक झेला। पीछे, उन्होंने सोचा कि यदि उनकी पत्रिका कलकत्ते से निकले तो बहुत सुभीता हो। इस काम के लिए धन की आवश्यकता थी। किन्तु पत्रिका से अच्छी आमदनी हो पर भी व्यय की अधिकता के कारण शिशिर बाबू का कोष धनशून्य था। अतएव बहुत अधिक समय पर एक सौ रुपये ऋण लेकर वे पत्रिका-कार्यालय को कलकत्ते ले आये। मँगनी के एक पुराने प्रेस पत्रिका छापने का उन्होंने प्रबन्ध किया। इस तरह १८७२ ईसवी के फ़रवरी महीने में, अमृतबाजार पत्रिका का पहला अङ्क कलकत्ते से निकला। यह नई पत्रिका कलकत्ते के लोगों को बहुत पसन्द आई। गम्भीर राजनैतिक विषयों पर भी सरल और सरल भाषा में जोरदार लेख लिखने और बात बात चुटकियाँ लेने के कारण शिशिर बाबू आदर दृष्टि से देखे जाने लगे। इनकी सुख्याति दिन दिन बढ़ने लगी।

शिशिर बाबू को यदि भारतवर्ष में राजनैतिक समाजों की नाँव डालने वालों का मुखिया माना जाय तो शायद अत्युक्ति न होगी। वे जब कलकत्ता आये, वहाँ ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन नाम का एक सभा स्थापित थी। इस सभा के संचालक



योग्य और उत्साही पुरुष थे; किन्तु वे सब स्थानीय जमींदार तथा अन्य धनिक घरानों के थे। कलकत्ते के अधिवासियों का लोकमत इसी सभा द्वारा प्रकट होता था। शिशिरकुमार जी-जान से इस सभा के कार्यों में लग गये। इनके मुफस्सिल के जीवन-सम्बन्धी विस्तृत अनुभव से सभा को बहुत सहायता पहुँची।

छोड़े ही दिनों बाद सर फिट्जेम्स स्टीफन साहब के फौजदारी क़ानून से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव के विषय में ऐसोसियेशन के मेम्बरों से शिशिर बाबू का मतभेद हो गया। फिर, जब, इनकम-टैक्स-सम्बन्धी मसविदा पेश हुआ तब शिशिर बाबू उसके रक्षक में हुए; किन्तु ब्रिटिश-इंडियन-ऐसोसियेशन ने उसका घोर विरोध किया। इस समय शिशिर बाबू ने अपनी पत्रिका में ऐसे प्रभावशाली लेख लिखे कि अनेक आदमी इनके मतानुयायी बन गये। फल यह हुआ कि इंडियन-लीग नामक एक नई सभा की सृष्टि हुई। इस राजनैतिक सभा की स्थापना १८७५ ईसवी में हुई। इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ते में था। बरीसाल, ढाका, ब्रह्मपुर आदि मुफस्सिल के प्रधान प्रधान शहरों में भी इसके शाखा-कार्यालय थे। बाबू शिशिरकुमार घोष ही पहले इस सभा के मंत्री हुए; पीछे बाबू कालीचरण वैतरजी को यह पद प्राप्त हुआ। यह सभा सामाजिक तथा राजनैतिक कामों के लिए विख्यात है। इसने कई बड़े बड़े काम किये हैं। पंचों के द्वारा न्याय होने और म्युनिसिपैलिटी के लिए मेम्बरों के चुनाव की प्रथायें पहले पहल इसी सभा के उद्योग से प्रचलित हुई थीं। पीछे, उसी आदर्श पर, प्रान्तीय तथा बड़े लाट की सभाओं के मेम्बरों का चुनाव भी होने लगा। १८७६ ईसवी में तत्कालीन छोटे लाट, सर रिचर्ड टेम्पुल, ने कलकत्ते में म्युनिसिपैलिटी कायम करना चाहा। कलकत्तावासियों ने इसका विरोध किया। अतएव अपने उद्देश की सिद्धि के लिए छोटे लाट ने शिशिर बाबू से सहायता माँगी। शिशिर बाबू ने टाउन-हाल में एक बहुत

बड़ी सभा की। ब्रिटिश-इंडियन-ऐसोसियेशन ने भी शिशिर बाबू के प्रस्ताव का विरोध करने के लिए उसी दिन एक सभा की। किन्तु शिशिर बाबू का उद्योग ही सफल हुआ। म्युनिसिपैलिटी कायम हो गई।

बाबू शिशिरकुमार शिल्प-विद्या के बड़े पक्षपाती थे। कलकत्ते में शिल्पविद्या-सम्बन्धी पाठागार स्थापित कराने के लिए वे बहुत दिनों से आन्दोलन कर रहे थे। १८७५ ई० में, जब राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड (तत्कालीन प्रिंस-आव्-वेल्स) भारत आये थे, कलकत्ते के प्रतिष्ठित लोगों ने उनकी एक यादगार बनाने का विचार किया। यह सुअवसर आया देख कर शिशिर बाबू ने एक शिल्प-कालेज स्थापित करने का प्रस्ताव किया। इसी समय डाकूर महेन्द्रलाल सरकार ने “विज्ञानालय” (Science Association) स्थापित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया था। बंगाले के छोटे लाट शिशिर बाबू का बहुत सम्मान करते थे। इस कारण शिशिर बाबू का प्रस्ताव ही स्वीकृत हुआ। फिर छोटे लाट महोदय के सभापतित्व में स्थानीय प्रतिष्ठित पुरुषों को एकत्र करके शिशिर बाबू ने दो लाख रुपये का चन्दा इकट्ठा किया। इसी से अलबर्ट टेम्पल आव् सायन्स (Albert Temple of Science) नामक विद्यालय की स्थापना हुई। गवर्नमेंट ने भी इस विद्यालय को आठ हजार रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया। यह सहायता कुछ दिनों तक मिलती रही। जब सर ऐशले इडेन छोटे लाट हुए तब उन्होंने यह सहायता बन्द कर दी। यह विद्यालय अब तक मौजूद है।

सन् १८७९ में लार्ड लिटन ने देशी भाषा के पत्रों का मुँह बन्द करने के लिए एक क़ानून बनाया। शिशिर बाबू ने सोचा कि शायद यह क़ानून पत्रिका को ही लक्ष्य करके बनाया गया है। अब क्या किया जाय? इस कठिनता से त्राण पाने के लिए बंगला पत्रिका को अँगरेज़ी में निकालने का उन्होंने निश्चय किया। ऐसा ही किया गया। उक्त क़ानून के जारी



होतेही पत्रिका का भी कायापलट हो गया । वह अँगरेजी में निकलने लगी । प्रेस में अँगरेजी का काफी टाइप न था । अतएव कुछ दिनों तक मँगनी के पुराने टाइपों से काम चलाना पड़ा । इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण पत्रिका की ग्राहक-संख्या बहुत कम हो गई । परन्तु शिशिर बाबू इससे हताश नहीं हुए । वे पूर्ववत् हृदय से काम करते गये । उनकी अपूर्व लेखनशैली और असीम परिश्रम का फल यह हुआ कि ग्राहक-संख्या बढ़ने लगी । अन्त में बँगला की पत्रिका जिस तरह बँगला के अखबारों में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी उसी तरह अँगरेजी की पत्रिका ने भी अँगरेजी अखबारों में उच्च स्थान पाया । सन् १८९१ में इसने दैनिक रूप धारण किया । तबसे इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई है । इस समय हिमालय से कुमारिका अन्तरीप तक इसका प्रचार है । इसके सामाजिक तथा राजनैतिक लेखों का देश में विशेष आदर होता है ।

अनुचित बातें होते देख शिशिर को बहुत कष्ट होता था । इसी से विवश होकर ये कभी कभी सरकारी अफसरों के कार्यों की बड़ी तीव्र आलोचना किया करते थे । इनके इस काम से बहुत लोग असंतुष्ट भी रहते थे । पर शिशिर बाबू इसकी कुछ भी परवा नहीं करते थे । अपना सर्वस्व गवाँ कर भी देशहित-साधन करना शिशिर बाबू अपना परम धर्म समझते थे ।

सर लेपल ग्रिफ़िन के समय में इन्होंने भूपाल के राजकीय षड्यन्त्रों के विषय में बहुत कड़े, पर सत्यानुयायी, लेख लिखे । सर लेपल ग्रिफ़िन इससे बहुत विषण्ण हुए । उन्होंने पत्रिका पर मुकद्दमा चलाने के लिए गवर्नर जनरल से अनुमति माँगी । पर अनुमति न मिली । डाकखाने के महकमे में कुछ दिन बड़ा अन्धेर था । अयोग्य पुरुष बड़ी बड़ी जगहों पर भर दिये गये थे । इस पर भी शिशिर बाबू ने बड़ा कोलाहल मचाया । लगातार महीनों लेख लिखे । फल भी अन्त में अच्छा ही हुआ ।

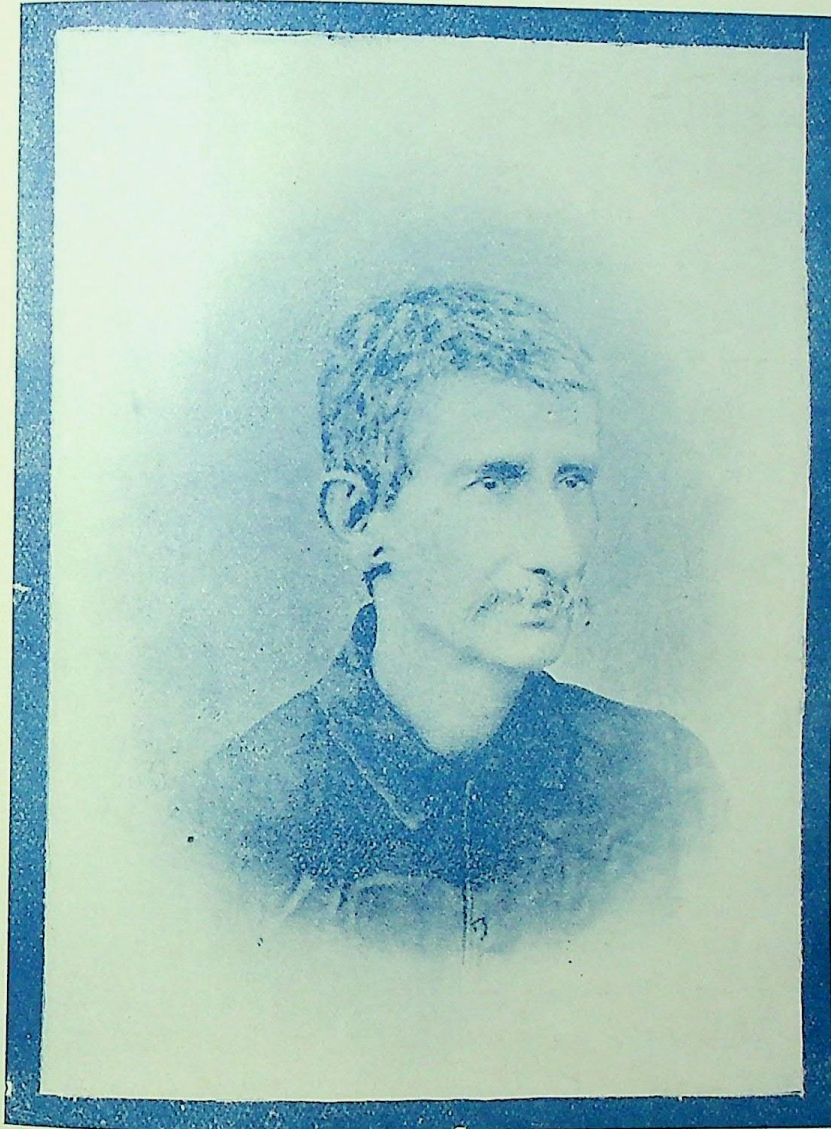
इस प्रकार शुद्ध हृदय से देश-सेवा का शिशिर बाबू ने असीम कीर्ति प्राप्त की । विद्वन्मण्डल इन्हें श्रद्धा-भक्ति की दृष्टि से देखने लगे । शिशिरकुमार यश अथवा सम्मान के भूखे न थे । केवल शान्ति-सुख के अभिलाषी थे । राजनैतिक जीवन में शान्ति-सुख प्राप्त करना उन्होंने असीम समझा । अतएव अपने सुयोग्य छोटे भाई, मोतीलाल घोष, पर पत्रिका के सम्पादन का रख कर वे कलकत्ते से अपने जन्मस्थान को गये । वहाँ शिशिर बाबू स्वास्थ्यसुधार तथा आत्मिक उन्नति में दत्तचित्त हुए । यह बात कोई वर्ष पहले की है ।

शिशिर बाबू का धार्मिक भाव अब तक लिखित हुआ था । राजनैतिक भ्रमों से अलग होने उनके उस भाव का क्रमशः विकास होने लगा । अपने धार्मिक विचारों को प्रकट करने के लिए उन्होंने “स्पिरिचुएल मेगज़िन” नामक मासिक पत्र अँगरेजी में निकाला । अन्त समय वह इस पत्र का योग्यतापूर्वक सम्पादन करते हुए इस पत्र ने अनेकानेक मनुष्यों के हृदय में धार्मिक भाव उत्पन्न करके उन्हें सुमार्ग में लगाया है । शिशिर बाबू चैतन्य-सम्प्रदाय के वैष्णव थे । उन्होंने प्रवर्तक महात्मा श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का जीवन-चरित्र अँगरेजी और बँगला दोनों भाषाओं में लिखा है । उनके उपदेशपूर्ण ग्रन्थों की व्याख्या भी इन्होंने लिख कर बँगला-साहित्य का उपकार किया है । बड़े अँगरेज़ विद्वानों ने इनके लिखे हुए गौराङ्ग-चरित्र की प्रशंसा की है । इन्होंने कई एक बँगला और अँगरेजी पुस्तकों द्वारा साहित्य-सेवा की है ।

बाबू शिशिरकुमार किसी धर्म-सम्प्रदाय के विरोधभाव नहीं रखते थे । ब्रह्मवादियों को विशेष आदर की दृष्टि से देखते थे । जब वे ब्लेवस्की और कर्नल ब्रौलकट बम्बई आये थे शिशिर बाबू उनसे मिलने के लिए बम्बई गये । उन लोगों के साथ वे तीन सप्ताह तक रहे भी थे । कहा करते थे कि इस सत्सङ्ग से वे बहुत उपकृत हुए ।



# सरस्वती



बाबू शिशिरकुमार घोष ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।



संस्कृत

शिशि

समय

में प्रा

समय

वि

बाद

आये

हुए वि

वंगाले

किंसी

और वि

ग

जब व

मिलने

ने इन

शिशि

स्वदेश

सम्राट

बाबू

सौभा

नहीं

अ

सुख-द

घोष

७१ व

शिशि

एक भ

नील

नदि



शिशिर बाबू हरिसङ्कीर्तन के बड़े प्रेमी थे । सन्ध्या समय इनके बाग-बाजारवाले मकान के छोटे बागोचे में प्रायः सङ्कीर्तन हुआ करता था । दोल-यात्रा के समय ये और भी अधिक उत्साह दिखाते थे ।

शिशिर बाबू के राजनैतिक चर्चा छोड़ देने के बाद जापानी-ग्रन्थकार मिस्टर ओककुरा हिन्दुस्तान आये थे । वे शिशिर बाबू से मिल कर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बहुत लोगों से स्पष्ट कह दिया कि बंगाल के जितने प्रतिष्ठित पुरुषों से मैं मिला हूँ, उनमें किसी को भी मैंने शिशिर बाबू के सदृश उच्चाशय और विद्वान् नहीं पाया ।

गत वार प्रिन्स-आव्-वेल्स ( वर्तमान सम्राट् ) जब कलकत्ते आये थे तब शिशिर बाबू को उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । प्रिन्स महोदय ने इनसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी । शिशिर बाबू ने अनुकूल समय देख कर प्रिन्स से स्वदेश-सम्बन्धी कुछ निवेदन किया था और उसे सम्राट तक पहुँचा देने की प्रार्थना की थी । शिशिर बाबू को यह प्रार्थना सादर स्वीकृत हुई । ऐसा सौभाग्य दूसरे किसी भी देशी-पत्र के सम्पादक को नहीं प्राप्त हुआ ।

अपने जीवन के अन्तिम भाग को इस प्रकार सुख-शान्तिपूर्वक व्यतीत करके बाबू शिशिरकुमार घोष ने गत दसवों जनवरी १९११, मङ्गलवार, को, ७१ वर्ष की उम्र में, अपनी मानवलीला संवरण की । शिशिर बाबू के परिवार में इस समय उनके दो भाई, एक भतीजा, तीन पुत्र और दो कन्याएँ हैं ।

## मातृभूमि ।

( १ )

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है ;  
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है ;  
नदियाँ प्रेम-प्रवाह ; फूल-तारे मण्डल हैं ;  
बन्दी विविध विहङ्ग ; शेष-फन सिंहासन हैं ;

करते अभिषेक पयोद हैं ,  
बलिहारी इस देश की !  
है मातृभूमि ! तू सत्य ही  
सगुण मूर्ति सर्वेश की ।

( २ )

मृतक-समान अशक्त विवश आँखों को मीचे  
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हम को नीचे ,  
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था ;  
लेकर अपने अतुल अङ्ग में त्राण किया था ;  
जो जननी का भी सर्वदा  
थी पालन करती रही ;  
तू क्यों न हमारी पूज्य हो  
मातृभूमि ! मातामही !

( ३ )

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं ;  
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं ;  
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये ;  
जिसके कारण ' धूलभरे हीरे ' कहलाये ;  
हम खेले कूदे हर्ष युत  
जिसकी प्यारी गोद में ,  
हे मातृभूमि ! तुझको निरख  
मग्न क्यों न हों मोद में ?

( ४ )

पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही ;  
वक्षःस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही ;  
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे  
बने हुए हैं अहो ! तुझी से तुझ पर सारे ;  
हे मातृभूमि ! जब हम कभी  
शरण न तेरी पायेंगे ,  
बस तभी प्रलय के पेट में  
सभी लीन हो जायेंगे !

( ५ )

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है ;  
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है ;  
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा  
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा ;



हे मातृभूमि ! उपजे न जो  
तुझसे कृषि-अङ्कुर कभी ,  
तो तड़प तड़प कर जल मरे  
जठरानल में हम सभी ।

( ६ )

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा ;  
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हम से होगा ?  
तेरीही यह देह तुझी से बनी हुई है ;  
बस तेरेही सुरस-सार से सनी हुई है ;  
हा ! अन्त समय तू ही इसे  
अचल देख अपनायगी ;  
हे मातृभूमि ! यह अन्त में  
तुझ में ही मिल जायगी ।

( ७ )

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खाता ;  
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता ;  
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित होजाता ;  
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता ;  
उन सबमें तेरा सर्वदा  
व्याप्त हो रहा तत्त्व है ;  
हे मातृभूमि ! तेरे सदृश  
किसका महा महत्त्व है ?

( ८ )

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है ;  
शीतल मन्द सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है ;  
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत कम है ;  
हरियाली का फ़र्श नहीं मखमल से कम है ;  
शुचि सुधा सौंचता रात में  
तुझ पर चन्द्र-प्रकाश है ;  
हे मातृभूमि ! दिन में तरणि  
करता तम का नाश है ।

( ९ )

सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं ;  
भाँति भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं ;  
ग्रासधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली ;  
खाने शोभित कहीं धातु-वर-रत्नोंवाली ;

आवश्यक जो होते हमें  
मिलते सभी पदार्थ हैं ;  
हे मातृभूमि ! ' वसुधा ' ' धरा '  
तेरे नाम यथार्थ हैं ।

( १० )

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी ;  
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी ;  
नदियाँ पैर पखार रही हैं बन कर चेरी ;  
फूलों से तरराजि कर रही पूजा तेरी ;  
मृदु मलय-वायु मानों तुझे  
चन्दन चारु चढ़ा रही ;  
हे मातृभूमि ! किसका न तू  
सात्विक भाव बढ़ा रही ?

( ११ )

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है ,  
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है ,  
विभवशालिनी विश्वपालिनी दुःखहर्त्री है ,  
भयनिवारिणी शान्तिकारिणी सुखकर्त्री है  
हे शरणदायिनी देवि ! तू  
करती सबका त्राण है ;  
हे मातृभूमि ! सन्तान हम,  
तू जननी तू प्राण है ।

( १२ )

आतेही उपकार याद हे माता ! तेरा  
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेर  
तू पूजा के योग्य कीर्ति तेरी हम गावें ;  
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें  
वह शक्ति कहाँ, हा क्या करें !  
क्यों हम को लज्जा न हो ?  
हम मातृभूमि ! केवल तुझे  
शीश झुका सकते अहो !

( १३ )

कारण-वश जब शोक-दाह से हम दहते हैं ,  
तब तुझ पर ही लोट लोट कर दुःख सब  
पाखण्डी भी धूल चढ़ा कर तनु में तेरी ,  
कहलाते हैं साधु, नहीं लगती है देरी ।



इस तेरी ही शुचि धूल में  
मातृभूमि ! वह शक्ति है,  
जो करो के भी चित्त में  
उपजा सकती भक्ति है !

( १४ )

कोई व्यक्ति-विशेष नहीं तेरा अपना है,  
जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है;  
तुम्हको सारे जीव एक से ही प्यारे हैं;  
कर्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं;  
हे मातृभूमि ! तेरे निकट  
सबका सम-सम्बन्ध है;  
जो भेद मानता वह अहो !  
लोचनयुत भी अन्ध है !

( १५ )

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,  
उससे हे भगवान् ! कभी हम रहें न न्यारे;  
लोट लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे;  
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे;  
उस मातृभूमि की धूल में  
जब पूरे सन जायँगे  
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम  
आत्म-रूप बन जायँगे !

मैथिलीशरण गुप्त ।

## कालिदास की निरङ्कुशता ।

[ गताङ्क से आगे ]

( ८ ) यतिभङ्ग ।

शब्दशास्त्र के कर्त्ता विद्वानों ने नियम  
कर दिया है कि किस वृत्त में कहाँ  
पर विराम होना चाहिए—अर्थात्  
कहाँ पर ठहर कर पढ़ना चाहिए ।  
जहाँ पर ठहरने का नियम होता है  
उस स्थल को यति कहते हैं । यह  
यति या विराम किसी शब्द के बीच में न होना

चाहिए । क्योंकि, बीच में होने से शब्द के टुकड़े हो  
जाते हैं जिससे सुननेवाले को ठीक ठीक अर्थ-ज्ञान  
नहीं होता और पढ़ते अच्छा भी नहीं लगता ।  
इसका हिन्दी में एक कल्पित उदाहरण लीजिए:—

सदा श्रीराजारा—मपदयुग वन्देों बहु विध

यह शिखरिणी छन्द है । इसमें १७ अक्षर होते  
हैं और छठे तथा ग्यारहवें अक्षर पर यति होती  
है । अब, देखिए, ऊपर के उदाहरण में छठा अक्षर  
'राम' का 'रा' है । वहाँ पर ठहरने से 'राम'  
का 'रा' एक तरफ़ रह जाता है और 'म' दूसरी  
तरफ़ चला जाता है । यह दोष माना गया है ।  
अब, इस उदाहरण में, कुछ फेर फार करके इसके  
आगे एक और चरण की कल्पना कीजिए । यथा:—

सदा श्रीराजारा—मपदयुग वन्देों विविध वि-  
ध सीताजी के हू पदकमल में वन्दन करूँ ।

इसमें 'विध' शब्द को देखिए । उसकी 'वि'  
तो पहले चरण के अन्त में है और 'ध' दूसरे चरण  
के आरम्भ में । यह यतिभङ्ग का और भी बुरा उदा-  
हरण है । यति-भङ्ग के उदाहरण संस्कृत-कवियों के  
काव्यों में बहुत पाये जाते हैं । पहले प्रकार के यति-  
भङ्ग तो और भी अधिक हैं । तथापि शास्त्रकारों ने  
यति-भङ्ग दोष को अवश्य माना है । मण्डन मिश्र  
और शङ्कराचार्य से जिस समय बातचीत होने  
लगी उस समय मण्डन से उसके पद्यात्मक भाषण  
में यतिभङ्ग दोष हो गया । इस पर शङ्कराचार्य  
तत्काल बोल उठे:—

अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभङ्गेन भाषिणा

अर्थात् यतिभङ्गपूर्वक भाषण करनेवाले तू ने  
अपने ज्ञान की इयत्ता का खूब अच्छा प्रमाण दिया ।  
इस यतिभङ्ग दोष से कालिदास भी नहीं बचे ।  
औरों के काव्य में यह दोष उतना नहीं खटकता ।  
पर कवियों के आचार्य महाकवि कालिदास के काव्य  
में जरूर कुछ अधिक खटकता है । रघुवंश के  
चौदहवें सर्ग का चालीसवाँ पद्य है:—



अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादे बलवान्मतो मे ।

छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वे-नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥

‘मलत्वेन’ एक पद है । उसका ‘मलत्वे’— इतना अंश तो तीसरे चरण के अन्त में रहा और अवशिष्ट अंश ‘न’ चौथे चरण के आरम्भ में चला गया । वहाँ पर न + आरोपिता मिलकर ‘नारोपिता’ हुआ है । इस पद्य में यद्यपि यति-भङ्ग-दोष है तथापि यह है बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पद्य । इसमें कालिदास ने चन्द्रग्रहण का यथार्थ कारण पृथ्वी की छाया का चन्द्रमा पर पड़ना बतलाया है । इससे सिद्ध है कि कालिदास और उनके पूर्ववर्ती विद्वान् यह जानते थे कि ग्रहण क्या चीज है ।

### (६) पुनरुक्ति ।

[ क ]

रघुवंश के पहले सर्ग का बारहवाँ श्लोक है :—

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमतः ।

दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव ॥

अर्थः—उस विशुद्ध वंश में और भी विशेष विशुद्ध, दिलीप नामक राजेन्दु, क्षीरसागर में इन्दु की तरह, पैदा हुआ । यहाँ पर बिना किसी कारण-विशेष के दो बार ‘इन्दु’ शब्द का प्रयोग किया गया है । न तो यहाँ कोई विशेषोक्ति है, न कोई विशेष कारण ही है । अतएव वाग्भट के मत में यहाँ पुनरुक्ति दोष है । ‘कथित-पद’ नाम का भी एक दोष होता है । एक बार कहा गया पद ( शब्द ) फिर भी उसी पद्य में आने से यह दोष होता है । आप चाहें तो पूर्वोक्त पद्य में पुनरुक्ति की जगह कथित-पद दोष मान सकते हैं ।

[ ख ]

अच्छा, अब, एक और तरह की पुनरुक्ति देखिए ।

रघुवंश के आठवें सर्ग का चालीसवाँ श्लोक :—

अथवा मम भाग्यविप्रवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।

यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विद्युत्पाश्रिता लता ॥

इन्दुमती के शव को गोद में रखे हुए अज विलाप करता है :—अथवा मेरे भाग्य के दोष से ब्रह्मा ने

इस माला को वज्र बना दिया—इससे वज्र का लिया । इसने पेड़ को तो नहीं गिराया, पर उस से लिपटी हुई, अर्थात् उसकी आश्रित, लता तोड़ कर गिरा दिया । यहाँ, इस पद्य में, ‘तरु’ ‘विद्युत्’ ये दो शब्द आये हैं; और ‘विद्युत्’ पहले ‘तत्’ शब्द भी आया है । ध्यान में आता कि एक बार तीसरे चरण में ‘तरु’ का करके चौथे चरण में फिर भी तरुवाची ‘विद्युत्’ शब्द की क्या ज़रूरत थी । ‘विद्युत्’ के पहले ‘तत्’ ( वह ) है उससे ‘तरु’ का तत्काल बोझ जाता है । “तदाश्रिता लता” कहने से भी अर्थ निकलता जो “तद्विद्युत्पाश्रिता लता” निकलता है । अतएव ‘विद्युत्’ शब्द यहाँ अर्थ उसे या तो पुनरुक्ति मानिए या अधिक पद पड़ता है कि महाकवि ने यहाँ पर ‘विद्युत्’ शब्द आवश्यकता अथवा अनावश्यकता का विचार किया । विचार केवल छन्दोरचना का कि इस शब्द के रखने से छन्द की पूर्ति होती अतएव उसे रख दिया ।

[ ग ]

कालिदास ने रघुवंश के कितनेही श्लोक कौत्स त्यों कुमारसम्भव में रख दिये हैं और कुमारसंवाणी के रघुवंश में । इससे कोई हानि नहीं । कवि अर्थात् एक पुस्तक की कविता दूसरी पुस्तक में रख हो ज है; क्योंकि, वह उसी की चीज है । परन्तु यदि वह वाला ही पुस्तक में, एकही जगह, पास ही पास, एक वाला का एक चरण दूसरे श्लोक में तद्वत् रख इस उल्लेख उसका यह कार्य ज़रूर खटकेगा । कालिदास चारि “वि रघुवंश के ग्यारहवें सर्ग में ऐसाही किया है :—

दृष्टसारमथ रुद्रकामुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः ।

राघवाय तनयामयोनिजां पार्थिवः श्रियमिव न्यवेदयत् ।

यह सतालीसवाँ पद्य है । इस श्लोक का चरण, इसके आगे, अड़तालीसवें ही पद्य में का तैसा रख दिया गया है । देखिए :—

मैथिलः सपदि सत्यसङ्गो राघवाय तनयामयोनिजां सन्निधौ द्युतिमतस्तपोनिधेरग्निसाक्षिक इवातिष्ठत् ।



देखा आपने ! क्या कालिदास को शब्दों का दुष्काल था ? क्यों न उन्होंने इस पाद-पुनरुक्ति को बचाया ? इन दोनों श्लोकों का अर्थ मिलता जुलता है। सम्भव है, इनमें से एक प्रक्षिप्त हो। यह भी सम्भव है कि इनका एक चरण लेखकों के प्रमाद से जाता रहा हो। इससे किसी ने “राघवाय तनया-मयोनिजां” को श्लोकपूर्ति के लिए दुबारा लिख दिया हो।

### (१०) अधिकपदत्व ।

रघुवंश के पाँचवें सर्ग का बत्तीसवाँ श्लोक यह है :—

अथोष्वासीशतवाहितार्यं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ।

सृशन्करेणानतपूर्वकायं सम्प्रस्थिता वाचमुवाच कौसः ॥

भावार्थ :—सैकड़ों ऊँटों और खच्चरों पर अनन्त धन-राशि लदवा देनेवाले और अपने शरीर के ऊपरी भाग को झुका कर बड़ी ही नम्रता से सामने खड़े होनेवाले प्रजा के ईश्वर राजा रघु को हाथ से स्पर्श करके, विदा के समय, प्रसन्न हुआ महर्षि कौत्स वाणी बोला। यहाँ पर ‘वाचं’—अर्थात् वाणी—शब्द की अपेक्षा न थी। सिर्फ ‘उवाच’—अर्थात् बोला—कह देनेही से अपेक्षित अर्थ-सिद्धि हो जाती है। अमुक मनुष्य अमुक से इस प्रकार बोला, या कहने लगा—यही मुहाविरा है। बात बोला या वाणी बोला—कहने का मुहाविरा नहीं। इस श्लोक की टीका लिखते समय इस दोष का उल्लेख मल्लिनाथ ने तो नहीं किया, पर हेमाद्रि और चारित्रवर्द्धन ने किया है। हेमाद्रि का कथन है—“विशेषणं विना वाक्शब्दप्रयोगश्चिन्त्यः”। अर्थात् विना विशेषण के वाक् शब्द का प्रयोग चिन्तनयोग्य है। विशेषण से मतलब है कि यदि यहाँ पर होता—“मधुरां वाचमुवाच” या “मनोरमां वाचमुवाच” तो वाक् शब्द का प्रयोग ठीक समझा जाता। मधुर वाणी बोला, मनोरम वाणी बोला, या कड़वी वाणी बोला—आदि प्रयोग ठीक समझे जा सकते हैं,

क्योंकि ऐसे उदाहरणों में वाणी शब्द विशेषण-सहित है। पर कालिदास ने कोई विशेषण नहीं दिया। इसलिए “वाचमुवाच” कहना निर्दोष नहीं। चारित्र-वर्द्धन इस विषय में लिखते हैं :—“शुचिसितां वाचमवाचदच्युतः—इत्यादौ यथा विशेषणं तद्वदत्रापि वाचो विशेषणयोगाद्वाचमुवाचेति चिन्तनीयम्”। शुचिसितां वाचमवाचदच्युतः—यह शिशु-पाल वध का पद्यांश है। इसमें ‘वाचं’ का विशेषण ‘शुचिसितां’ होने से वह दोष नहीं जो कालिदास की उक्ति में है। साहित्यदर्पण के मत में भी पूर्वोक्त पद्य में अधिकपदत्व दोष उसके कर्ता विश्वनाथ कविराज ने लिखा है :—“अत्र वाचमित्यधिकम्। उवाचेत्यनेनैव कृतार्थत्वात्”।

### (११) श्रुतिकटुत्व ।

जो शब्द, पद या पदैकदेश कान को कटु मालूम हो—जो कान को खटके—, पढ़ने या सुनने में जो कान को अच्छा न लगे, वह श्रुतिकटुत्व दोष से दूषित समझा जाता है। कुमारसम्भव के तीसरे सर्ग का अठारहवाँ श्लोक है :—

तद्गच्छ सिद्धौ कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तरभाव्य एव ।

अपेक्षिते प्रत्ययमङ्ग लब्धौ बीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवाम्भः ॥

उदाहरण के लिए दिये गये प्रत्येक पद्य का भावार्थ देने से यह निबन्ध बहुत बढ़ जायगा। अतः एव इस श्लोक का अर्थ न लिख कर केवल इतनाही कह देना हम बस समझते हैं कि इसमें ‘सिद्धौ’ और ‘लब्धौ’ का ‘ङ्कुर’ और ‘ङ्कुर’ कर्णकटु है। इनका उच्चारण करते समय कान को बुरा लगता है। काव्यरसिक सहृदय सज्जन इसके प्रमाण हैं। और लोग इस बात को मानेंगे या नहीं, नहीं कह सकते। उनका मानना न मानना प्रामाण्य भी नहीं। क्योंकि, जो जिस बात को जानता है उसी की गवाही उस विषय में प्रामाण्योग्य मानी जाती है; औरों की नहीं। काव्यप्रकाशकार आदि कई पण्डितों ने इस दोष का उल्लेख किया है।



किसी किसी पुस्तक में इस पद्य का तीसरा चरण इस प्रकार है :—

अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वाम्

यह पाठ 'लब्धै' के कर्णकटुत्व से बच जाता है। बहुत सम्भव है, इस दोष से बचनेही के लिए किसी ने पूर्व-पाठ को बदल दिया हो। कालिदास की कविता में इस तरह के पाठान्तर पण्डितों ने कारणवश कर दिये हैं, इस बात को कितनेही विद्वान् मानते हैं। मल्लिनाथ तक ने इसका अनुमोदन किया है। इस अनुमोदन का उल्लेख एक जगह पर हम पीछे कर आये हैं।

इस लेख का विस्तार बहुत बढ़ गया। इस कारण काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, काव्यानुशासन आदि ग्रन्थों में दिखलाये गये दोषों में से केवल कुछ का उल्लेख करके अब हम इसे समाप्त करना चाहते हैं।

### (१२) जुगुप्साव्यञ्जक।

मनीषिताः सन्ति गृहेऽपि देवतास्तपः क वसे क च तावकं वपुः ।  
पदं सहेतु भ्रमरस्य पेक्षत्रं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥

कुमारसम्भव, सर्ग ५, श्लोक =

इस श्लोक में 'पेक्षत्र' शब्द जुगुप्साव्यञ्जक है।

### (१३) ग्राम्य-भाव-व्यञ्जक।

कुमारसम्भव के पाँचवें सर्ग का अड़तीसवाँ श्लोक यह है :—

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवरोमराजिः ।

नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः ॥

काव्यानुशासन के कर्ता वाग्भट के मत में यहाँ 'मध्यमणि' शब्द से ग्राम्य-भाव व्यक्त होता है।

इस श्लोक में एक बात और भी विचारणीय है। इसके आरम्भही में 'तस्याः' पद है। उसका अर्थ यहाँ पर 'उसके' है। फिर, चौथे चरण में 'तत्' शब्द भी है। उसका भी अर्थ 'उसका' या 'उसकी' होता है। इस 'तत्' की कोई विशेष आवश्यकता न थी।

उसके बिना भी काम चल सकता था। टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है:—“तस्या इत्युक्तं पुनस्तच्छब्दोपादानं वाक्यान्तरत्वात्सोढ्यम्”। 'तत्' शब्द दूसरे वाक्य में है। इसलिए प्रयोग “सहन किया जाने योग्य है”।

### (१४) अविमृष्टविधेयांश।

[ क ]

जिस बात को मुख्यतया कहना है—जिस का प्रधानतापूर्वक प्रतिपादन करना है—अपनी मुख्यता या प्रधानता का खयाल न रख कर उसके तीनों जोर दिये बिनाही, कथनीय बात कह जाने से अर्थात्, यह विधेयांश दोष होता है। जो अंश विधेय है वह व्याप्ति अच्छी तरह नहीं स्पष्ट होता है वहाँ काव्यशाला प जाता इस दोष की उद्भावना करते हैं:—

सस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनः पुनः केसरपुष्पकाञ्ची-  
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण द्वितीयमैवीमिव कामुक-

कुमारसम्भव के तीसरे सर्ग का यह पद्य है। पार्वती की पुष्पकाञ्ची, अर्थात् फूल तागड़ी, का यह वर्णन है। कवि का आशय यह तागड़ी क्या है मानों काम के धन्वा की डोरी है। उसे पार्वती के पास धरोहर के तौर पर रख दिया है कि जब काम पड़ेगा तब ले लूँगा। उक्ति में मैवी, अर्थात् डोरी, की प्रधानता प्रधानता है उसके द्वितीयत्व की। इसलिए 'यमौर्वीमिव' न कह कर 'मैवी' द्वितीय कहना चाहिए था। 'इव' का सम्बन्ध 'मैवी' के साथ होना चाहिए था, 'मैवी' के साथ ही बात नहीं हुई, इसी से यहाँ पर अविमृष्टविधेयांश दोष हुआ। इस पद्य का जो पाठ हमने दिया है वही काव्यप्रकाश और काव्यानुशासन में है। परन्तु निर्णयसागर के छपे हुए कुमारसम्भव निर्दोष पाठ 'मैवी' द्वितीयमिव ही है। ऐसा ही पाठ होता तो पूर्वोक्त दोषों के इसमें दोष दिखलाने का मौका ही न मिलता। अतएव जान पड़ता है, कालिदास को इस



बचानेही के लिए किसी ने पुराने पाठ को बदल कर निर्दोष कर दिया है।

[ ख ]

वपुर्विरूपाक्षमक्षयजन्मता दिगम्बरवेन निवेदितं वसु।

वेषु यद्वालयमृगानि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥

कुमारसम्भव, सर्ग १, श्लोक ७२

—जिस पावती से ब्रह्मचारिवेशधारी शङ्कर अपनेही मुँह है—अपनी निन्दा करते हैं :—“रूप का तो यह हाल कर एक तीन आखें; जन्म का पता नहीं; धन कितना मे से अक्षि, यह दिगम्बरत्वही से प्रकट हो रहा है। हे बाल-य है वह व्याक्षि ! वर में जो बातें देखी जाती हैं उनमें से कायशाला एक भी बात त्रिलोचन में है ? अर्थात् न रूपही — न रूपयाही पैसा है, न जन्मही का पता ठिकाना । इस श्लोक में ‘अलक्षयजन्मता’ पद पर पण्डितों का एतराज है। वे कहते हैं कि वर के जन्म का पता चले या न चले—वह ज्ञात हो या अज्ञात—यह कोई डी बात नहीं। जो अपनी कन्या के लिए वर ढूँढने जाता है वह वर की जन्मता की—कब वर का जन्म आया इत्यादि बातों की—खोज नहीं करता। खोज करता वह वर की उत्पत्ति के विषय की :—वर का बाप कौन है, माँ कौन है, कुल कैसा है—इन्हीं बातों की खोज विशेष खोज करता है। अतएव कालिदास को चाहिए था कि वे शङ्कर के मुँह से उनकी उत्पत्ति की बात कहलाते, जन्मता की नहीं। ऐसा उन्होंने नहीं किया, इसलिए उनकी इस उक्ति में भी अविमृष्ट-दोषों का शोभोदाश दोष आ गया। ‘अलक्षयजन्मता’ की जगह यदि ‘अलक्षिता जनेः’ होता तो इस दोष से उनका अविमृष्टोक्त पद्य बच जाता। यह बड़ाही सूक्ष्म विचार है। तिस पर भी मम्मट भट्ट ने कालिदास को नहीं छोड़ा। ऐसे दोषों की अपेक्षा वे दोष, जिनका उल्लेख इस लेख के आरम्भ में हुआ है, विशेष कर रहे हैं। परन्तु साहित्यशास्त्र के आचार्यों के कालिदास के भी छोटे से छोटे दोषों तक को न छोड़ना दिखाये नहीं रहे।

## (१५) निहतार्थता ।

किसी किसी शब्द के दो दो तीन तीन अर्थ होते हैं। उनमें से कोई प्रसिद्ध होता है, कोई अप्रसिद्ध। जब कोई शब्द किसी ऐसे अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसका बोध कम, पर प्रसिद्ध अर्थ का बोध अधिक होता हो तब वहाँ निहतार्थता दोष माना जाता है। यथा :—

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्विभर्ति ।

वज्राहकच्छेदविभक्तारागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥

कुमारसम्भव, सर्ग १, श्लोक ४

यह हिमालय का वर्णन है। सिन्दूर और गेरू आदि धातु होने के कारण हिमालय धातुमान है। इस ‘धातुमान’ शब्द में भावार्थक प्रत्यय करने से ‘धातुमत्ता’ शब्द सिद्ध होता है। पर ‘मत्ता’ शब्द, जिसका खोलिङ्ग ‘मत्ता’ होता है, उन्मत्तता के अर्थ का भी बोधक है और यह अर्थ अधिक प्रसिद्ध है। पूर्वोक्त पद कान में पड़तेही इस अर्थ का भास भी होने लगता है। परन्तु कवि को यह अर्थ यहाँ अभीष्ट नहीं। अतएव निहतार्थता दोष हुआ।

## (१६) क्रमभङ्गता ।

( क )

भग्नप्रक्रम और अक्रम, ये दो दोष संस्कृत-साहित्य के ज्ञाताओं ने पृथक् पृथक् माने हैं। परन्तु इनमें बहुत अधिक अन्तर नहीं है। इस कारण, क्रमभङ्गता नाम देकर, हम इन दोनों प्रकार के दोषों का एकाही साथ उल्लेख किये देते हैं :—

अभिज्ञान-शाकुन्तल का एक पद्य यह है :—

गाहतां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं

छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्धमभ्यस्यतु ।

विश्रब्धैः क्रियता वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतः पल्वले

विश्रामं लभतामिदञ्च शिषिज्ज्याबन्धमसद्गुतुः ॥

इसके प्रत्येक चरण का सारांश है :—

(१) भैंसे पानी में उछले कूदें

(२) मृगों के झुण्ड छाया में पायुर करें



- (३) शूकरों के द्वारा मोथ-नामक घास खोदी जाय  
(४) मेरा भी धनुष विश्राम करे

उदाहृत पद्य के पहले, दूसरे और चौथे चरण का कारक एक प्रकार का है, अकेले तीसरे चरण का दूसरे प्रकार का । अतएव कारक का क्रम भग्न हो गया । इससे भग्नप्रक्रम दोष हुआ ।

[ ख ]

पार्वती ने इसलिए बड़ी तपस्या की कि शङ्कर उनका पाणिग्रहण करें । शङ्कर ने उनकी परीक्षा करनी चाही । वे ब्रह्मचारी का रूप धारण करके पार्वती के पास आये । पूछने पर पार्वती की सखी ने तपस्या का कारण बतलाया । तब ब्रह्मचारिरूपी शिव ने अपनी बड़ी निन्दा की, अनेक दोष अपने में दिखलाये और पार्वती से कहा कि ऐसे अमङ्गल वेशवाले शिव के साथ विवाह का विचार छोड़ दो । इस पर पार्वती ने कहा :—

विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा ।

जगत्कुरयस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहृतात्मवृत्तिभिः ॥

भावार्थः—सुनिप, जिनकी यह इच्छा हो कि उन पर विपत्ति न आवे, या जो बहुत कुछ ऐश्वर्य-प्राप्ति के अभिलाषी हों, वे मङ्गल-द्रव्यों की यथेष्ट सेवा करें । वे चाहे जितनी सुगन्धियाँ और मालायेँ आदि अपने शरीर पर धारण करें । उनकी बात जुदी है । परन्तु सारा संसार जिसे अपना शरण्य समझता है, और जिसे किसी भी वस्तु की कामना नहीं है, उस महात्मा को तृष्णा से दूषित अन्तःकरण वाले इन मङ्गल-द्रव्यों से क्या काम ? इस पद्य के पहले चरण में तो कालिदास ने एक वचनात्मक 'मङ्गल' शब्द का प्रयोग किया ; परन्तु चौथे चरण में उसी 'मङ्गल' के लिए विशेषणसहित 'एभिः'—यह बहुवचनात्मक सर्वनाम लिखकर क्रमभंग कर दिया । मल्लिनाथ ने इस श्लोक की टीका लिखते समय 'मङ्गल' शब्द को जातिवाचक बतलाकर कालिदास के वचन-सम्बन्धी इस दोष के परिहार

की चेष्टा की है । इस समाधान से यथाकथं सन्तोष हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता यदि कोई कहे :—

मङ्गल से कुछ भी नहीं योगी जन को काम  
इनकी क्या परवा उसे वह तो आत्माराम ।

यहाँ पर यदि 'इनकी' का प्रयोग खटक सकता है तो कालिदास के पद्य में 'एभिः' का प्रयोग खटक सकता है ।

[ ग ]

पार्वती की तपस्या से शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए । उनके साथ उन्होंने विवाह करना स्वीकार किया । इस पर पार्वती ने कहा कि आप ऐसा प्रबन्ध कीजिए जिसमें पिता हिमवान् मेरा विधिवत् विवाह कर सकें । शङ्कर ने इस बात को भी मान लिया । सप्तर्षियों को बुलाकर घटक का काम उनके द्वारा किया । वे हिमालय के पास गये और विवाह की बातचीत ठीक करके महादेव के पास लौट आये । इस सम्बन्ध में कालिदास कहते हैं :—

ते हिमालयमामंथ पुनः प्रेक्ष्य च शूलिनम् ।

सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विस्मृताः खमुद्युः ॥

हिमालय से सब बातें ठीक करके वे अर्थात् सप्तर्षि, शङ्कर से फिर मिले और उनके कह कर कि काम सिद्ध हो गया, उनके द्वारा किये जाने पर, वे आकाश को उड़ गये । यह 'अस्मै' और 'तत्' ये सर्वनाम विचारणीय हैं । 'अस्मै निवेद्य' का अर्थ है—इससे निवेदन करना और 'तद्विस्मृताः' का अर्थ है—उसके द्वारा या विदा किये गये । तीसरे चरण में जिसके सर्वनाम 'इस' का प्रयोग किया उसी के लिए चौथे चरण में अनुपदही 'उस' का प्रयोग किया । यह हिन्दी तो है नहीं कि जहाँ जी में आया लिख मारा और जहाँ जी में आया 'उस' । वेत्ता आलङ्कारिकों ने इसे दोष माना है । किसी वाक्य में 'इस' लिखिए तो 'इस' ही जाइए; 'उस' लिखिए तो 'उस' ही ।



प्रयोग कीजिए । शास्त्रज्ञ मनमानी नहीं करने देते ।  
वे इसे सर्वनाम-सम्बन्धी भग्नप्रक्रम दोष मानते हैं ।

[ घ ]

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः ।  
कजा च सा कान्तिमती कजावतस्त्रमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥  
कुमारसम्भव, सर्ग १, श्लोक ७१

भावार्थः—पिनाकपाणि शङ्कर के समागम की इच्छा से दो चीजें शोचनीय अवस्था को पहुँची हैं । एक तो चन्द्रमा की कला, दूसरी तू, अर्थात् पार्वती । यहाँ पर जैसे 'कला' के आगे 'च' आया है वैसेही 'त्व' के आगे भी आना चाहिए था ; 'लोकस्य' के आगे नहीं । अतएव, आलङ्कारिकों के मत में यहाँ अक्रम दोष हुआ ।

उपसंहार ।

बस, अब यहीं पर, इस लेख को समाप्त करते हैं । यहाँ तक जो दोष दिखलाये गये हैं वे, दो एक को छोड़ कर, कालिदास के केवल रघुवंश और कुमारसम्भव के हैं । प्राचीन टीकाकारों और अलङ्कार शास्त्र पर ग्रन्थ लिखनेवालों ने दो चार के सिवा, और इन सब दोषों का उल्लेख किसी न किसी रूप में किया है अतएव यदि कोई, इन दोषों के निराकरण करने का प्रयत्न करे तो यह समझना चाहिए कि उसने इन सारे प्राचीन विद्वानों को परास्त करने की चेष्टा करने का साहस किया !

गरमी ।

गरमी का प्राकृतिक ज्ञान कराने के पहले यह बतलाना ठीक होगा कि पदार्थों का संगठन कैसे हुआ है । जितनी चीजें इन्द्रियों के द्वारा जानी जाती हैं वे सब पदार्थ कहलाती हैं । पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं :—

( १ ) कठिन ( Solids )—जैसे धातु, लकड़ी, काँच आदि

( २ ) तरल ( Liquids )—जैसे तेल, घी आदि  
( ३ ) वायवीय ( Gases )—जैसे वायु

ये तीनों प्रकार के पदार्थ एक दूसरे के रूप में परिणत हो सकते हैं—अर्थात्—तरल पदार्थ कठिन या बाष्पमय हो सकता है ; बाष्पमय पदार्थ कठिन या तरल हो सकता है ; और कठिन पदार्थ तरल या बाष्पमय हो सकता है ।

तीनों प्रकार के पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म असंख्य अणुओं से संगठित हुए हैं । अणु कितने ही भिड़े हुए क्यों न देख पड़ते हों, परन्तु वे एक दूसरे से अलग अलग जरूर रहते हैं—एक दूसरे से कुछ न कुछ अन्तर पर रहते हैं । इस अन्तर को आणविक अन्तर ( Intermolecular Pores ) कहते हैं । अणु और आणविक अन्तर इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम उन्हें देख नहीं सकते । हाँ, कल्पना के द्वारा हम उस सूक्ष्मता का अनुभव कर सकते हैं ।

प्राचीन वैज्ञानिक गरमी को अतिसूक्ष्म, भारहीन और अदृश्य पदार्थ मानते हैं । गरमी प्रत्येक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में जा सकती है । जिस पदार्थ से वह निकलती जाती है वह ठंडा और जिस पदार्थ में इकट्ठा होती जाती है वह गरम होता जाता है । इसका अनुभव हमें स्पर्शेन्द्रियत्वक् से होता है । परन्तु वर्तमान समय के वैज्ञानिक गरमी का पदार्थत्व अङ्गीकार नहीं करते । उनके मत में पदार्थ की बदली हुई अवस्था का नाम गरमी है ; और कुछ नहीं । पदार्थ के अणुओं के कम्पन ( Molecular Vibration ) से गरमी पैदा होती है । आणविक कम्पन जितना जल्द होगा—अणु जितने जल्दी जल्दी हिलेंगे—पदार्थ उतना ही ज्यादा गरम मालूम होगा । अत्यन्त उष्ण पदार्थ का आणविक कम्पन बहुत जल्द होता है । आणविक कम्पन यदि बड़ेही बेहद वेग से होगा तो गरमी के साथही साथ प्रकाश भी पैदा हो जायगा । वर्तमान वैज्ञानिकों का मत है कि गरमी और प्रकाश की उत्पत्ति एकही कारण से है । पदार्थ के आणविक कम्पन की मात्रा



की कमी व बेशी के अनुसार पदार्थ गरम और प्रकाशित होता है।

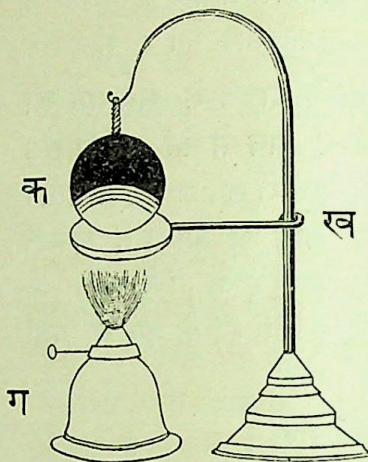
पण्डितों का यह भी अनुमान है कि पदार्थ मात्र में और नभोमण्डल में ईथर (Ether) नाम का एक अत्यन्त सूक्ष्म, भारहीन और अपनी अस्थिरता को कायम रखने वाला पदार्थ मौजूद है। यदि हम किसी शान्त सरोवर के जल में एक लोहे का टुकड़ा डाल दें तो उसमें तरङ्ग पर तरङ्ग उठती हुई किनारे तक पहुँच जायगी। इसी तरह पदार्थ के आणविक कम्पन का ईथर में आघात लगने से उसमें भी कम्पन (हरकत) होता है। इस कम्पन से दूसरे पदार्थ में कम्पन पैदा होता है और उससे गरमी पैदा होती है। आज कल के विज्ञानवेत्ताओं ने भी इस बात का अनुमोदन किया है। गरमी के संयोग से पदार्थ में परिवर्तन हो जाता है :—

(१) फैलना:—गरमी के संयोग से पदार्थ मात्र का फैलाव (Expansion) होता है—अर्थात् उसके आकार में वृद्धि होती है। और, यदि, पदार्थ से गरमी निकल जाती है तो वह सिकुड़ जाता है। यह हम पहले लिख आये हैं कि प्रत्येक पदार्थ अणुओं का संगठन है। अणुओं में एक दूसरे को आकर्षण करने की शक्ति है। इसी शक्ति के प्रभाव से एक अणु दूसरे अणु को अपनी ओर खींचने की चेष्टा करता है। जो इस शक्ति में कमी पड़ जायगी तो जितनी कमा पड़ेगी उतना ही एक अणु दूसरे अणु से दूर हो जायगा—आणविक अन्तर में वृद्धि होती जायगी और पदार्थ फैलता जायगा।

इसी तरह आकर्षण-शक्ति में जितनी विशेषता—ज्यादती-होगी पदार्थ का आकार छोटा होता जायगा—पदार्थ सिकुड़ता जायगा। अणुओं में जो आपस में आकर्षण करने की शक्ति है वह गरमी लगने से कम हो जाती है। इससे अणु दूर दूर हो जाते हैं और पदार्थ फैला हुआ मालूम होने लगता है। कठिन पदार्थ कम, तरल कुछ उससे ज्यादा और वाष्पमय पदार्थ बहुत ज्यादा फैलते हैं।

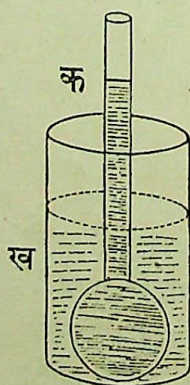
गरमी के संयोग से पदार्थों का फैलना जानने के लिए नीचे लिखी हुई रीतियों से परीक्षा करने चाहिए :—

### (१) कठिन पदार्थ के फैलने की परीक्षा।



(ग) स्पिरिट का जलता हुआ लैम्प है। आप इस लैम्प से गोले को गरम करेंगे तो वह फैल जायगा और छले में से उस वक्त तक नहीं निकलेगा जब तक कि वह शीतल होकर सिकुड़ न जाय। कठिन पदार्थ का फैलना इतना धीरे धीरे होता है कि वह आँख से दिखाई नहीं देता; परन्तु जाँच से अनुभव किया जा सकता है।

### (२) तरल पदार्थ के फैलने की परीक्षा।



एक मुँह खुला हुआ काच का नल—जिसके नीचे गोला (Bulb) हो—जल से भरो। जल इतना भरना चाहिए कि गोला भर जाय और कुछ नल भी भर जाय जैसा कि चित्र में (क) तक भरा हुआ है। इस (क.) वाले नल को पात्र में खूब गरम जल भर कर रखने से जल से ऊपर उठता जायगा।

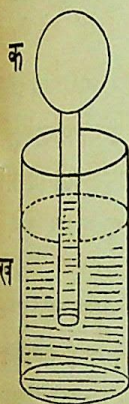
इस तरह जल के ऊपर उठने का क्या सबब है इसके सिवा कुछ नहीं कि गरमी से पानी फैलने से उसमें



संख्या ३ ]

की कोशिश करता है और वहाँ फैलने की जगह न होने से ऊपर को उठता है। इस बात को भी हम मानते हैं कि वह नल भी फैलता है; परन्तु जल के फैलाव के मुकाबले में वह कुछ भी नहीं फैलता और इसीसे पानी ऊपर को उठता है।

### (३) बाष्पमय पदार्थ के फैलने की परीक्षा ।

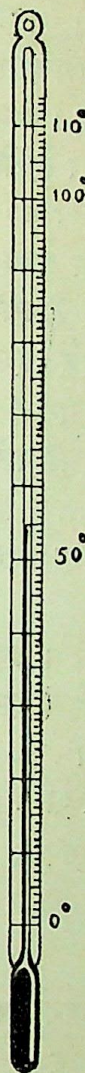


गोला ( Bulb ) वाले काच के जल से भरे हुए ( क ) नल को जल से भरे हुए ( ख ) पात्र में औंधा रख दीजिए। ऐसा करने पर नल जल से भरा हुआ और गोला खाली वायु से भरा हुआ हो जायगा। अब आप गोले को अपने हाथ से दबाइए तो हाथ की मामूली गरमी से हवा फैलेगी और वह पानी को दबावेगी। आपको दीख पड़ेगा कि पानी नीचे बैठता जाता है।

### तापमात्रा और तापपरिमाण ।

कोई भी पदार्थ क्यों न हो, वह जिस मात्रा (Measure) में दूसरे पदार्थ में अनुभव करने योग्य गरमी पहुँचावेगा वही उस पदार्थ का ( Temperature ) टेम्परेचर ( ताप की मात्रा ) है। तापमात्रा ( Temperature ) और ताप-परिमाण ( Quantity of Heat ) में फ़रक है—ये दोनों एक ही बात नहीं। दो चीज़ों में तापमात्रा बराबर हो सकती है, परन्तु उनमें संचित हुई गरमी अलग अलग रहेगी। एक गरम जल के मटके में से एक पक होने पर भी ताप-परिमाण में अन्तर रहेगा—अर्थात् ग्लास की अपेक्षा मटके में जल ज्यादा होने से उसमें ताप-परिमाण बहुत ज्यादा होगा।

### तापमानयन्त्र (Thermometer)



गरमी के न रहने से पदार्थ शीतल मालूम होता है। परन्तु पदार्थ कितनाही शीतल क्यों न जान पड़े, उसमें थोड़ी बहुत गरमी अवश्य रहती है। पदार्थ—मात्र में से गरमी का अत्यन्ताभाव कभी नहीं होता। हम केवल स्पर्श ज्ञान से—अपनी त्वचा से—पदार्थ की गरमी या शीतलता का बारीकी के साथ अनुभव नहीं कर सकते। अत्यन्त गरम या अतिशीतल वस्तु के छूने से शरीर को पीड़ा होती है। इस वास्ते किसी भी पदार्थ की गरमी का निर्णय करने के लिए यन्त्र की आवश्यकता है। जिस यन्त्र से इसका निर्णय किया जाता है उसे थर्मोमीटर—तापमान यन्त्र—कहते हैं। गरमी के लगने से पदार्थों के फैलने की बात ध्यान में रख कर यह यन्त्र बनाया जाता है। नाना भाँति की तापमात्राओं के जानने के लिए जो यन्त्र बनाये जाते हैं उनमें कठिन, तरल, और बाष्पमय तीनों प्रकार के पदार्थ काम में लाये जाते हैं। परन्तु आम तौर पर हम जिस यन्त्र का प्रयोग करते हैं वह पारे से बनता है। क्योंकि पारा एक ऐसा

पदार्थ है जो ३५० दरजे से ज्यादा गरमी पहुँचे बिना भाफ नहीं बनता और न बर्फ की मात्रा से ८० दरजे से कम तापान्श रहने पर जमता है—अर्थात् वह ८० दरजे की तापमात्रा से शुरू कर ताप की ३५० दरजे की मात्रा तक बराबर तरल अवस्था में रहता है; और ज्यों ज्यों गरमी या सरदी उस पर अपना असर करती है वह फैलता या सिकुड़ता जाता है—( ऊपर की ओर उठता है या नीचे बैठ जाता है )। इसी से पारा इस काम के लिए इतना उपयोगी होता है। परन्तु अत्यन्त ठंडे पदार्थ की गरमी पारे के यन्त्र से भी नहीं जानी जाती। उसका निश्चय करने के लिए अल्कोहल (Alcohol)



११६

का बनाया हुआ यन्त्र काम में लाया जाता है । जब अत्यन्त सखी पहुँचने से पारा जम जाता है तब हम उसका सिङ्गना या फैलना नहीं देख पाते । वहाँ अलकोहल—पुरासार—का बना हुआ यन्त्र काम देता है । परन्तु यह यन्त्र भी एक हद तक काम देता है । जब अत्यन्त सामान्य भाव से गरमी कम या ज्यादा होती है तब उसका ज्ञान हवाई थर्मामीटर (Air Thermometer) के सिवा खूब अच्छी तरह और किसी थर्मामीटर से नहीं होता । गरमी के लगने से हवा फैलती है । इसको पहले तीसरी परीक्षा में दिखा चुके हैं । इस यन्त्र की बनावट भी ठीक उसी सिद्धान्त पर है । अत्यन्त गरम पदार्थ की गरमी का निश्चय भी पारे के यन्त्र से नहीं होता, क्योंकि उसकी भाफ हो जाती है । ऐसी जगह कठिन धातु का एक खास तरह का बना हुआ यन्त्र काम में आता है ।

गरमी पर विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है । उस पर, आशा है, हिन्दी के प्रेमियों के लिए कोई विद्वान एक अच्छा लेख लिख कर प्रकाशित करेगा ।

गिरिधर शर्मा ।

## उद्बोधनाष्टक ।

( १ )

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की, पँचरङ्गी कर दूर  
एक रङ्ग तन, मन, वाणी में, भर ले तू भरपूर ।  
प्रेम पसार, न भूल भलाई, वैर विरोध विसार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( २ )

देख, कुदृष्टि न पड़ने पावे पर-वनिता की और  
विवश किसी को नहीं सुनाना कोई वचन कठोर ।  
अबला अबलों को न सताना पीय बड़ अधिकार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( ३ )

आय न उलझे मतवालों के छल, पाखण्ड, प्रमाद,  
नेक न जीवन काल बिताना कर कोरे बकवाद ।  
बाँटे मुक्ति ज्ञान बिन उनको जान अजान, लबार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( ४ )

हिंसक, मद्यप, आमिषभोजी, कपटी, वञ्चक, चोर  
ज्वारी, पिशुन, लबार, कृतघ्नो, जार, हठी, कुलधोर  
असुर, आततायी, नृपद्रोही—इन सब को धिक्कार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( ५ )

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं निर्भय देश विदेश  
तर्कसिद्ध श्रेयस्कर जिनसे मिलते हैं उपदेश ।  
ऐसे अतिथि महापुरुषों का कर सादर सत्कार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( ६ )

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा, कर सब का सम्म  
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को दे जल, भोजनदान  
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को पूज सुयश विस्तार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( ७ )

लगन लगाय धर्मपत्नी से कुल की वेलि बढ़ाय  
कर सुधार दुहिता-पुत्रों का वैदिक पाठ पढ़ाय ।  
सज्जन, साधु, सुहृद, मित्रों में बैठ विचार प्रचार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

( ८ )

पाल कुटुम्ब सदुद्यम द्वारा भोग सदा सुख-भोग  
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से निःश्रेयसप्रद योग ।  
जप, तप, यज्ञ, दान देवेंगे जीवन के फल चार  
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को धर्म दया उर धार ॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा

## प्रयाग-प्रान्त के प्राचीन

### ऐतिहासिक नगर ।

( २ )

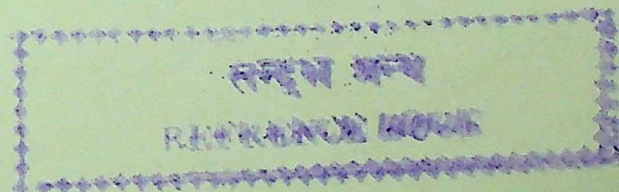
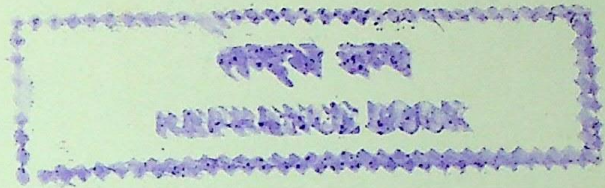
भारहट ।



यह जगह इलाहाबाद से यद्यपि दूर  
परन्तु, एक समय था जब यह  
चक्रवर्ती राजाओं के राज्य के  
गंत था जो प्रयाग और उसके  
पास के सारे प्रदेश पर शासन करते थे ।



# सरस्वती



भारहट के स्तूप का धर्मचक्र ।

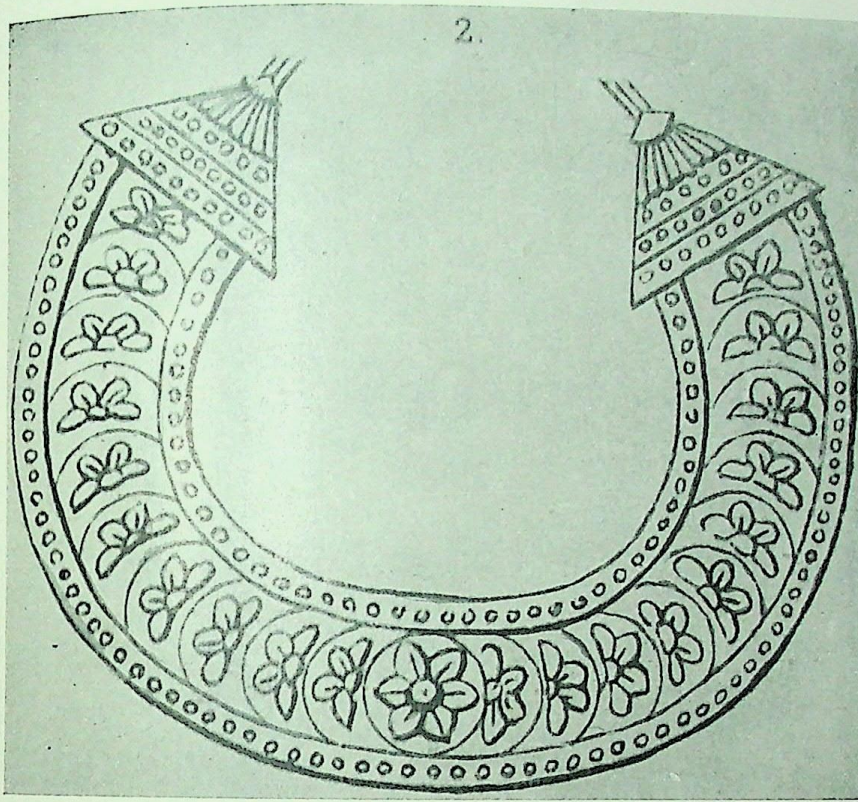
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



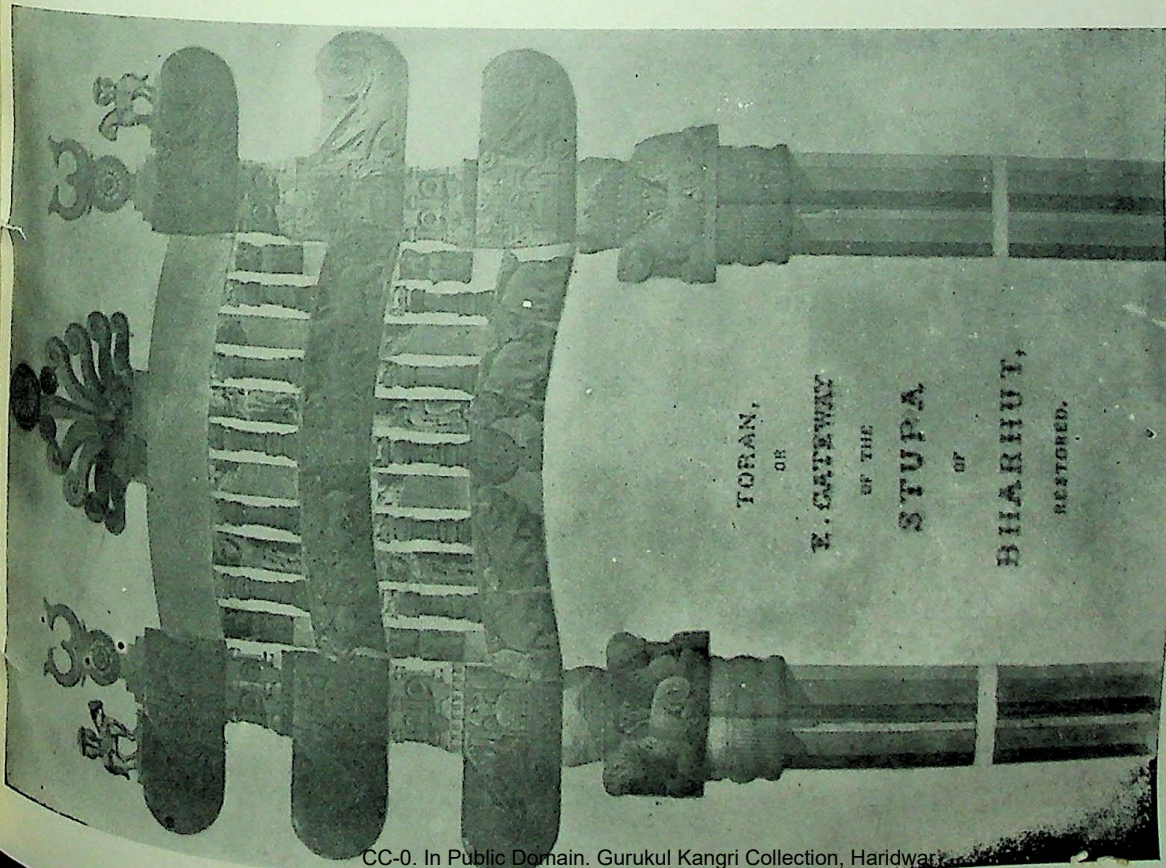




सरस्वती



भारहट-स्तूप में खुदा हुआ एक प्राचीन हार ।



भारहट-स्तूप का एक तोरण ।  
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



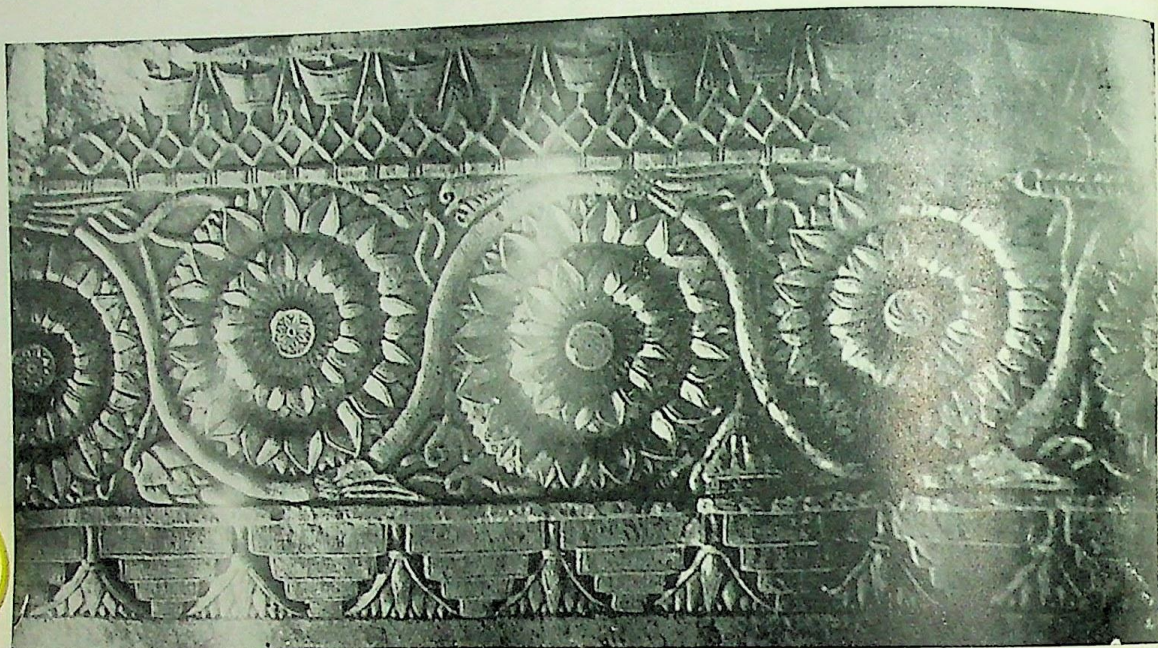








# सरस्वती



भारहट-स्तूप के एक छज्जे का भीतरी दृश्य ।



भारहट-स्तूप के एक छज्जे का भीतरी दृश्य ।

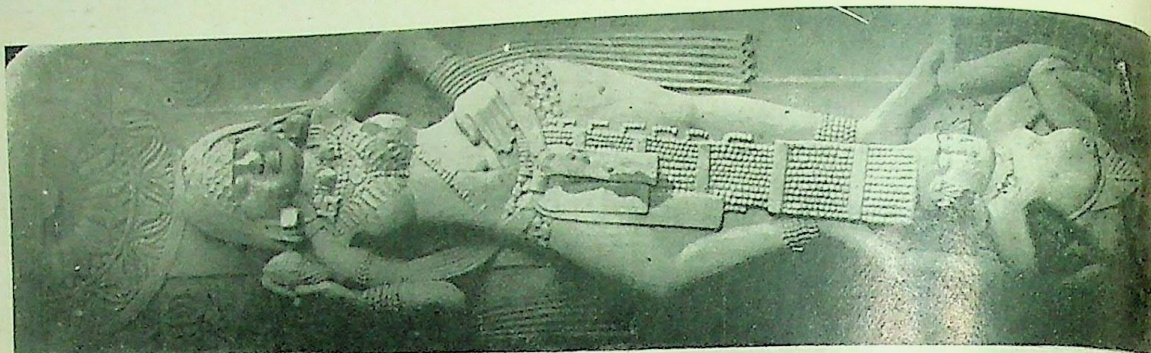
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।







# सरस्वती



संस्कृत  
अशोक  
जैसा  
भारह  
चक्रवर्  
इ  
पर एक  
है और  
१२० मी  
पुराना  
में यह  
सुझ रा  
के आस  
मिले हैं  
तक के  
एव यह  
जैस  
अशोक  
रूपनाथ  
प्रयाग  
दूसरी प  
प्रसिद्ध  
से देहल  
इस पर  
उनमें से  
चर्चा सां  
का वृत्त  
हमारतो  
यह प्रसि  
समय त  
अस्तित्व  
भार  
लगाना  
हो, पर  
तक लुप्त  
थे। शेर,



संख्या ३ ]

अशोक, समुद्रगुप्त, श्रीहर्ष और जयचन्द का अधिकार, जैसा कि प्रतिष्ठान और कौशाम्बी पर था, वैसाही भारहट पर भी था। भारहट-प्रान्त का राजा इन चक्रवर्ती नरेशों को कर देता था।

इलाहाबाद से जो रेल जबलपुर को गई है उस पर एक स्टेशन उँचहरा है। उससे भारहट ६ मील है और सतना से ९ मील। इलाहाबाद से वह कोई १२० मील है। भारहट नागोद राज्य में है। इसका पुराना नाम वरदावती है। किसी समय खुन्न प्रान्त में यह बहुत बड़ा स्थान था। ह्वेनसांग के समय में खुन्न राज्य का विस्तार एक हजार मील था। भारहट के आस पास अनेक शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्के मिले हैं। उनमें से कितनेहीं ३५० से ४०८ ईसवी तक के हैं। परन्तु कुछ इसके भी पहले के हैं। अतएव यह स्थान बहुत पुराना है।

जैसा पहले लेख में एक जगह, लिखा जा चुका है, अशोक के समय में एक सड़क उज्जैन से भिलसा, रूपनाथ, भारहट और कौशाम्बी को जाती थी। प्रयाग से उसकी एक शाखा श्रावस्ती को और दूसरी पाटलीपुत्र को गई थी। यह सड़क वैसीही प्रसिद्ध और अच्छी दशा में थी जैसी कि कलकत्ते से देहली जानेवाली आज कल की शाही सड़क है। इस पर कितनेहीं शहर, कसबे और बाजार थे। उनमें से रूपनाथ, कौशाम्बी और भिलसा के निकट-वर्ती साँची नामक स्थान की प्रसिद्धि और महत्ता इमारतों आदि के प्रेमी जनों को अवगत है। परन्तु यह प्रसिद्धि भारहट के भाग्य में न बदी थी। बहुत समय तक इधर उसे किसी ने नहीं जाना। उसके अस्तित्व का पता लगे अभी बहुत थोड़े दिन हुए।

भारहट के प्राचीन वैभव का ठीक ठीक अन्दाजा लगाना असंभव सा है। पहले वह चाहे जैसा रहा हो, पर इस समय के ८० वर्ष पूर्व उसके ध्वंसावशेष तक लुप्त थे। वे एक घने जंगल के बीच छिपे हुए थे। शेर, शिब, भेड़िये और गीदड़ वहाँ के भयविहारों

में आनन्द से विहार करते थे। जब यह जगह नागौद के राजा के अधिकार में आई तब भारहट के अस्तित्व का पता चला। जहाँ लोगों को मालूम हुआ कि जंगल में एक ऐसा पुराना मन्दिर या मकान है जिससे हजारों घर बनाने के लिए काफ़ी ईंट और पत्थर मिल सकते हैं तहाँ उन्होंने लूट शुरू कर दी। जहाँ तक उनसे ढोया गया उन्होंने ढोया और जितना सामान उठा ले जाने लायक था सब वे उठा ले गये। इस समय भारहट नाम का जो एक छोटा सा, दो तीन सौ घर का, गाँव है वह सारा का सारा प्राचीन भारहट के स्तूपों और विहारों की ईंटों से बना है। यही गाँव नहीं, पास पड़ोस के और भी कितनेहीं गाँवों में यहाँ की सामग्री यत्र तत्र देख पड़ती है। भारहट के स्तूप के कितनेहीं पट्टिये, जिन पर सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ और दृश्य खुदे हुए हैं, लोगों ने चवूतरोँ और दीवारों पर जड़ दिये, कुँवों पर स्नान करने के लिए रख दिये, यहाँ तक कि धोबियों ने कपड़े धोने के लिए उनसे लकड़ों के तख्तों का काम लिया ! कुछ समयोत्तर भारहट गाँव एक ब्राह्मण को जागीर में मिला। तबसे यह लूट बन्द हुई।

१८७३ ईसवी में जनरल कनिंहम नागोद राज्य से होकर निकले। वहाँ उन्हें प्राचीन भारहट के खँडहरों का पता मिला। वे वहाँ गये। देख कर उन्हें दुःख और आश्चर्य दोनों हुए। ऐसे विशाल स्थान की यह दुर्दशा ! परीक्षा करने पर उन्हें विदित हुआ कि वहाँ पर बहुत पुराना एक प्रकाण्ड स्तूप था और विहार भी कई एक थे। दो तीन बार में उन्होंने स्तूप की पार्श्ववर्ती ज़मीन खुदाई। खोदने से कितनी ही मूर्तियाँ, कितनेहीं उत्कीर्ण शिलालेख, कितनेहीं खंभे और कितनेहीं दूटे फूटे तोरण आदि उन्हें मिले। सैकड़ों शिलालेख भी पाली में खुदे हुए प्राप्त हुए। हथियारों, औजारों, पशुओं, पक्षियों, वृक्ष-फल-फूल-पत्तियों, गहनों, बर्तनों आदि के सैकड़ों प्रतिरूप उत्कीर्ण किये गये मिले। गौतम बुद्ध के चरितसम्बन्धी अनेक दृश्य खुदे हुए पाये गये।



अधिक कौन कहे, बौद्ध-धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का मूर्तिमय दृश्य आँखों के सामने आ गया। खोदने से मालूम हुआ कि यहाँ के स्तूप का व्यास ६८ फुट और प्रदक्षिणा का मार्ग २१३ फीट था। उसमें चार प्रवेश-द्वार थे और सब मिला कर ८० खंभे थे। बौद्ध-जातकों में जो कथाएँ हैं वे सब चित्र किंवा मूर्तिरूप में इन खंभों और तैरारणों पर उत्कीर्ण थीं। खोदने से कितनेही यक्ष, यक्षिणियाँ, देवता, नागराज और मायादेवी आदि की बड़ीही सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ अक्षत मिलीं। कनिंहम साहब ने इन सब वस्तुओं को कलकत्ते भेज दिया। वहाँ वे अजायबघर की शोभा बढ़ा रही हैं। साहब डरे कि यदि ये यहाँ पड़ी रहें तो कुछही दिनों में ये भी धोबियों के पटे बन जायँगी या तोड़ फोड़ कर देहातियों के मकानों में लग जायँगी।

प्राचीन शिलालेखों और सिक्कों से जनरल कनिंहम ने यह सिद्ध किया है कि भारहट का स्तूप कम से कम २१५० वर्ष का पुराना है। शुरू शुरू में खुन्न देश की राजधानी भारहटही के पास सुघ नाम के नगर में थी। यमुना किनारे यह अब एक छोटा सा गाँव है। पर यहाँ पर कितनेही पुराने सिक्के मिले हैं। इससे इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। खुन्न के राजा धनभूति का एक लेख भारहट के स्तूप के एक तैरारण पर खुदा हुआ है। यह राजा ईसा के २४० वर्ष पूर्व हुआ है। अतएव भारहट का स्तूप इक्कीस बाईस सौ वर्ष से कम पुराना नहीं। धनभूति के उत्कीर्ण लेख के सिवा भारहट के स्तूप के भग्नावशिष्ट पत्थरों पर सैकड़ों बौद्ध-यात्रियों के भी लेख पाली में हैं। स्तूप का जो अंश जिसने बनवाया है उसका उल्लेख उसने किया है। यों भी लोगों ने कुछ लेख अपने वहाँ आने की यादगार में खोद दिये हैं।

भारहट में एक स्तूपही नहीं, कई विहार भी थे। नगर बहुत बड़ा था। ऊँचे ऊँचे मकान थे। खूब व्यापार होता था। अनेक अमीर आदमी यहाँ रहते थे। इसके आस पास के ऊँचे ऊँचे टीलों को देखने से

इसके प्राचीन वैभव का थोड़ा बहुत अनुमान हुए बिना नहीं रहता। जनरल कनिंहम ने यहाँ के स्तूप आदि के आविर्भाव को इतने महत्त्व का समझा कि आपको इस विषय की एक बहुत बड़ी सचित्र पुस्तक अँगरेजी में लिखनी पड़ी। उसी से हमें भारहट-सम्बन्धिनी बातें मालूम हुई हैं।

## नरभक्षक मनुष्य ।



व से मानव-सृष्टि इस पृथ्वी पर हुई है तब से नाना प्रकार के परिवर्तन मनुष्य-जाति में हो चुके हैं। हमारे रहन-सहन में, खान-पान में, आपस के व्यवहार में, और, और बहुत सी बातों में ऐसी तबदीलियाँ हो गई हैं कि उनका असली रूप साधारणतः ध्यान में नहीं आता। भला आज कल के चमकते दमकते मकानों को देख कर सहसा कौन कह देगा कि किसी समय मनुष्य पहाड़ों की गुफाओं और वृक्षों की डालियों पर रात काटते थे। मैनेचेस्टर और लंकाशायर के बारीक और मुलायम कपड़ों से सुशोभित नाजूक बदन जेंटिलमैनों को देखकर किसके हृदय में वकल वस्त्रधारी मनुष्यों की स्मृति आकर उपस्थित हो सकेगी। छप्पन प्रकार के व्यंजनों को, होटल और पाकशालाओं में, मेज और दरियों पर, बढ़िया गुल दस्तों के बीच में रखे हुए देख और उनका आस्वादन कर कौन कच्चे फल और मांसादि पर जीवन निर्वाह करने का प्राचीनतम चित्र खींच अपने मन को खराब करेगा। हजारों बरसों से “अहिंसा परम धर्मः” की शिक्षा पा कर आज हम भारतवासी भला कैसे अनुमान कर सकते हैं कि भारतेतर देशों में मनुष्य ने पशु-पक्षियों को तो क्या अपने सजातीय मनुष्यों को भी खाने से नहीं छोड़ा। मनुष्य का मनुष्य को साग-पात की तरह खा जाना कैसे भीषण प्रतीत होता है। लेकिन यह कोई कल्पित



संख्या ३ ]

गाया नहीं है । मनुष्य ने मनुष्य को खाया है । प्राचीन समय में तो इसका खासा रिवाज था । परन्तु आजकल भी यह पाशविक प्रथा कहीं कहीं सुनने में आती है । हमारे इस लेख का विषय इसी की उत्पत्ति और हास का वर्णन करना है ।

मनुष्य स्वभाव से तो फलाहारी है । पर वह मांस भी उसी तरह खा सकता है जैसे कि अन्न । जंगली जातियाँ, जो कच्चा मांस खाती हैं, मनुष्य-मांस को और पशुओं के मांस की तरह खा सकती हैं । मनुष्य-मांस-भक्षण की प्रथा बहुत पुरानी है । जंगली जातियों में इसका खूब रिवाज रहा है । मध्य अफ्रीका के हबिशियों में यह प्रथा अब भी प्रचलित है । इस विषय का पूर्णतया विचार करने के लिए हमें इसे दो अंगों में विभक्त करना पड़ेगा । एक यह कि यह प्रथा कैसे प्रचलित हुई । दूसरे यह कि यह कैसे लोप होती जाती है । हमारा आज का विषय इसके प्रचलित होने के कारणों और उनकी भीषणता का वर्णन करना है । इसलिए हम पहले इसके बन्द करनेवाले कारणों को संक्षिप्त रीति से कहे देते हैं ।

जैसे जैसे किसी जाति में सभ्यता फैलती जाती है वैसे ही वैसे उसकी प्रत्येक बात में अन्तर पड़ता जाता है । यहाँ तक कि उसकी कायाही पलट जाती है । उसके विचार उच्च हो जाते हैं । धार्मिक कुरीतियाँ सुधर जाती हैं । स्वार्थ का जोर कम हो जाता है । मनुष्यों में दूसरों के हानि-लाभ का खयाल पैदा हो जाता है । अपने पराये का ज्ञान होने लगता है और भाव पवित्र होने लगते हैं । पाशविक वृत्तियाँ छूटने लगती हैं । विचार-शक्ति से काम लिया जाने लगता है । सुधार की अभिलाषा उत्पन्न हो उठती है । इसके जाग्रत होते ही घृणित और कुत्सित व्यवहारों के छोड़ने की इच्छा आप से आप उत्पन्न हो जाती है । उच्च भावों के उदय होते ही धर्म का भी उदय होता है । धार्मिक विषयों में भी बुद्धि काम देने लगती है । और वही धर्म जो अन्य देशों में पहले इस मनुष्य-मांस-भक्षण की प्रथा का

कारण था, इस रीति को उठा भी देता है । दूसरी बात जो इसको निर्मूल करने में मदद देती है वह माता-पिता और पितरों पर स्नेह है । इस स्नेह के कारण मनुष्य उनकी प्रतिष्ठा करने लगता है । यह भाव उनके जीते जी तक ही नहीं, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनके मृतक शरीर में वैसाही बना रहता है । इस कारण मरने के बाद उनके शरीर का अंग-भंग करना मनुष्य को पसन्द नहीं आता । तीसरी बात जो इसके उठाने में मदद देती है—“मरा सो पीछे पड़ा”—की कहावत है । मृत स्नेही के सूक्ष्म चिह्नों की अपेक्षा स्थूल चिह्न अधिक कष्टकर होते हैं । इसलिए मृतक की लाश को जल्दी आँख ओट कर देनाही अच्छा मालूम होता है । इससे लोग खाने पीने का खयाल कुछ भूल सा जाते हैं । चौथी बात आत्मा को अमर मान कर भूतों पर विश्वास करना है । जंगली असभ्य जातियाँ विशेष कर भूतों पर विश्वास करती हैं । और इस खयाल से कि मनुष्य के मर जाने पर भी उसकी आत्मा उसका बदला ले सकती है उनमें एक प्रकार का भय पैदा हो जाता है । इस तरह लाश खाने से बच जाती है ।

यही मोटे मोटे कारण हैं जो अनुसन्धान-विद्या-विशारदों के मत में इसको बन्द करने में मुख्य या गौण रूप से सहायता देते हैं । अब इसके प्रचलित करने वाले कारणों को सुनिए ।

अकाल ।

जब कभी खाने पीने के सामान की इतनी कमी पड़ जाती है कि श्रुधा-निवारणार्थ कुछ भी नहीं मिलता तब मनुष्य विवश होकर एक दूसरे को खाने लग जाते हैं । यह बात सामुद्रिक यात्राओं और किलों के घिर जाने पर बहुधा देखने में आई है । खाना चुक जाने पर, अन्य देशों में, बहुधा ऐसा हुआ है कि बेड़े के आदमियों ने एक दूसरे को खाया है । जिस समय जहाज बादबानों के जरिये चलाये जाते थे उस समय उनका ठीक रास्ते पर चलना



बहुत कुछ हवा के बहाव पर अवलम्बित था। तूफानों में वे प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाते थे; अथवा कहीं के कहीं बह जाते थे। रास्ता बहुत दिनों का हो जाता था। खाने पीने का सामान भी ऐसे लंबे मार्ग के लिए नहीं अटता था। और, जब स्वल्पाहार करते करते भी कुछ नहीं बचता था, और न किसी प्रकार से और कुछ मिलही सकता था; तब बहुधा मनुष्य व्याकुल होकर एक दूसरे को खाने लग जाते थे। ऐसी अवस्था में बड़ी बड़ी सभ्य जातियाँ भी अपनी सभ्यता भूल जाती हैं। भूख के मारे लोग मतवाले हो जाते हैं और उसी जहाजी बेड़े के साथियों में से एक दूसरे को खाना शुरू कर देते हैं। इस किस्म के बहुत से किस्से सामुद्रिक यात्राओं के वर्णन की किताबों में लिखे हैं। ऐसी एक मिसाल सोलहवीं सदी में इंग्लैंड के राजा हेनरी अष्टम के समय में हुई थी। इस समय लोग पेटलॉटिक महासागर से, उत्तरी अमेरिका के उत्तरी किनारे से होते हुए, बेरिंग स्ट्रेट से निकल कर पैसिफिक महासागर में आना चाहते थे। इस रास्ते को उत्तर-पश्चिम वाला रास्ता कहते थे। उसी रास्ते की तलाश में दो जहाज, मास्टर होर नामी एक अँगरेज की निगरानी में, गये थे। जब वे न्यू फौंडलैंड पहुँचे तब उनकी रसद चुक गई। थोड़े दिन तक कंद-मूलादि खाकर गुजारा किया गया। परन्तु आखिर-कार एक दूसरे को खाने ही लगे। मास्टर होर ने बहुत समझाया, नरक की प्रचण्ड ज्वाला का भय भी दिखलाया, मगर कुछ कारगर न हुआ। मार-काट शुरू हो गई। मौका पा कर एक दूसरे को चट कर जाने लगा। दैवात् एक फ़रासीसी जहाज वहाँ जा पहुँचा। इन मरभुखे अँगरेजों ने उसे जा पकड़ा और फ़रासीसियों को उनके भाग्य के सहारे छोड़ आप इंग्लैंड वापस गये। किलों के घेर में पड़ कर भी लोगों ने ऐसा ही किया है। टेरा डिल फ्यूगो (Tera del Fugo) के रहने वाले भी, जब जाड़े के दिनों में और कुछ नहीं मिलता तब, अपने यहाँ की बुड्डी औरतों को खाने लगते हैं। उन लोगों से

पूछने पर कि, वे अपने कुत्तों को पहले क्यों नहीं खाते, यह जवाब मिलता है कि कुत्ते खाने की चीजें उनके लिए ले आते हैं। इसलिए वे काम की चीज हैं। अतएव वे नहीं खाये जाते।

### वैरनिर्यातन ।

जब कभी मनुष्यों में आपस में वैर-भाव हो जाता है तब अवसर पा कर एक दूसरे का अनिष्ट करने में वे कोई कसर उठा नहीं रखते। कभी कभी शत्रु का मूलाच्छेदन करने के लिए मनुष्य बड़े बड़े कुत्सित काम कर बैठता है। इससे प्रतिघातक हृदय में भी बदला लेने की प्रबल ज्वाला धधक उठती है। वह भी उसके खून का प्यासा हो जाता है। कभी कभी मन का आवेग इतना बढ़ जाता है कि मौका पड़ने पर एक ने दूसरे का रक्तपान करके अपनी संतप्त आत्मा को शीतल किया है। उत्तरी अमेरिका के रहनेवालों और पालीनीशियन लोगों में ऐसे रक्त-पान का खूब रिवाज था। पर, द्वितीय पाण्डव की प्रतिज्ञाः—“दुःशासनस्य रुधिरं न पिबेत् मयुरस्तः”—हमारे देश में इस रिवाज की सूचना नहीं।

### मिथ्या-स्नेह ।

मृतकों का उनके सम्बन्धियों और मित्रों द्वारा खाया जाना महा असभ्य और जंगली जातियों में पाया गया है। यह प्रथा बहुत दिन तक प्रचलित नहीं रही। इस तरह की सबसे मशहूर मिसाल ग्रन्थकार हेरोडोटस द्वारा मध्य एशिया के डोनीज नामक मनुष्यों के मृतक-संस्कार की दाखिल की गई है। वहाँ पर मृतक के सम्बन्धी उसका मांस को दूसरे पदार्थों के साथ खाते देखे गये। खोपड़ी को जड़ कर रख छोड़ी जाती थी। यह रस्म लोगों में बड़ी पवित्र मानी जाती थी और मृतक इससे विशेष प्रतिष्ठा समझी जाती थी। तिब्बत में १३ वीं सदी तक लोग अपने मरे हुए सम्बन्धियों का मांस खा जाते थे और उनकी खोपड़ियों के



संख्या ३ ]

पानी पीने के लिए बनाते थे। आस्ट्रेलिया में भी यह प्रथा रही है।

## जादू ।

जंगली जातियों में यह दृढ़ विश्वास होता है कि किसी जानवर के खाने से उसके से गुण खाने-वाले में भी आ जाते हैं। यह समझ भी मनुष्य-मांस-भक्षण की जड़ डालनेवाली है। लड़ाइयों में विशेष कर इसके अनुसार काम किया जाता था। विजयी अपने पराजित शत्रु का मांस अपने को बहादुर बनाने की गरज से खाते थे। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और उत्तरी अमेरिका के मूल निवासियों में यह रिवाज रहा है। अशांटी और चीन में भी यह रीति कभी कभी देखी गई है। वहाँ बहुधा लोग पराजित शत्रु का भी मांस खाते थे। वीर शत्रु को तो कभी छोड़ते ही न थे। हृदय को तो साहस का केन्द्र समझ कर अवश्य ही खा डालते थे।

यह कल्पित सिद्धान्त कि, किसी आदमी का मांस खाने से उसकी सी खासियतें उसके भक्षक में आ जाती हैं, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के लोग अच्छी तरह जानते थे। परन्तु इसकी भलक अधिक सभ्य पशियाटिक योरोपियन जातियों की परम्परागत कहावतों में विशेषतया पाई जाती है।

## मजहब ।

मजहबी खयालातों ने इस विषय में एक अजब खेल खेला है। प्रारम्भिक अवस्था में इन्हीं के कारण मनुष्य की गरदन के सामने खटाखट काटी गई। परन्तु इन्हीं खयालातों ने मनुष्य के मन को इस घृणित रीति से फेर भी दिया। जंगली जातियों में नरबलि का रिवाज बड़े जोरशोर से रहा है। किसी न किसी रूप में वह प्रत्येक जंगली जाति में रहा है। फीजी टापू और मेक्सिको के असली बाशिन्दे आदमी के हृदय को सूर्य भगवान और दूसरे देवी-देवताओं की भेट करते थे। पश्चिम नामक असभ्य जाति ने भी अपने युद्ध-देव जोलैपोकली को, खूब ही मानव-रक्त पान कराया

है। अफ्रीका में मम्बो जम्बो महाराज ने भी अनगिनत युद्ध के क़ैदियों के खून से स्नान किया है। रोम ऐसी सभ्य जाति ने भी ज्युपिटर के सामने अपने क़ैदियों को खूब ही काटा है। हमारे यहाँ भी राक्षसों का नर-भक्षण करना लिखा है। गोसाईं तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—“नर अहार रजनीचर करहों”।

## स्वभाव ।

कहीं कहीं लोगों में उनकी आदत ही इसका कारण हुई है। लोग बहुत पुराने समय से नर-मांस खाते थे। खाते खाते आदत पड़ गई। मेक्सिको, सुमात्रा और पश्चिमी अफ्रीका के लोगों ने बहुत दिनों तक आदमी का मांस खाया है। वहाँ आदमियों का मांस बाजारों में बिकता था। मध्य अफ्रीका में कहीं कहीं इसका रिवाज अब भी सुना जाता है। यहाँ खाने को मनुष्य प्राप्त करने के लिए लड़ाइयाँ होती थीं। जो आदमी लड़ाई में मारे जाते थे उनका मांस दूसरी जगहों को भेजने के लिए सुखाया जाता था। क़ैदी लोग जानवरों की भाँति हाँक लाये जाते थे और बँचे जाते थे। जहाँ कहीं यह प्रथा सिर्फ़ खाने के लिए प्रचलित होती है वहाँ की आबादी कम हो जाती है। यहाँ तक कि कमजोर फिरके नेस्तोनावूद हो जाते हैं।

मानव-जाति के आदिम इतिहास का विचार करनेवाले विद्वानों का प्रश्न है—क्या किसी समय में पृथ्वी के सभी मनुष्य नर-मांसाहारी थे? इस विषय में अनैतिहासिक काल के आदमियों की हड्डियों को देख कर बहुत बहस हुई है। बहुधा वे समूची मिली हैं। इससे यह अनुमान किया गया कि यदि अनैतिहासिक काल के आदमी नर-मांसाहारी होते तो अवश्य ही पुरानी हड्डियाँ टूटी हुई मिलतीं। क्योंकि और जानवरों की हड्डियाँ, जिनका कि मांस खाया जाता था, टूटी हुई मिलती हैं। अगर गुफाओं के रहनेवाले लोग आदमी को खाते होते तो वे आदमी की हड्डियों को और जानवरों और मछलियों की हड्डियों के साथ



कूड़े में जरूर फेंकते । पर, कुछ पुरानी हड्डियाँ ऐसी भी निकली हैं जिनसे, भारतेतर देशों में, मनुष्य-मांस-भक्षण की प्रथा का प्रचलित होना सिद्ध होता है ।

सभ्यता बढ़ने पर इस घृणित प्रथा का हास हो चला । और अन्त में इसका मूलोच्छेद ही हो गया । अब तो इसकी याद भी आते रोमाञ्च हो आता है । यह बात स्वप्नवत् मालूम होती है । ईश्वर करे कि जहाँ यह पाशविक प्रथा प्रचलित सुनने में आती है वहाँ भी इसका नाश हो जाय । मानव-चरित्र की इस कालिमा का धुल जानाही अच्छा है ।

ब्रजविहारी शुक्ल ।

## माता का पुत्र को उपदेश ।

( १ )

पुत्र ! साथ तेरे रहती हूँ ;  
तेरे हित में चित धरती हूँ ।  
इस कारण जो कुछ कहती हूँ ;  
सुन कर उसे हृदय में धरना ॥

( २ )

रात नहीं है अब उठ बैठो ;  
आलस से निज देह न ऐँठो ।  
सत्य-सुधार-सिन्धु में पैठो ;  
पुत्र-चित्त में जरा न डरना ॥

( ३ )

रहे नहीं अब पिता तुम्हारे ;  
चेत करो नैनों के तारे ।  
देगे जो तुम भी न सहारे ;  
बेटा ! मेरा कठिन उबरना ॥

( ४ )

संकट में भी कभी न रोना ;  
धर्म-कर्म से विमुख न होना ।  
जग जाने पर कभी न सोना ;  
पुत्र ! प्रथम हरिनाम सुमिरना ॥

( ५ )

पर से अपना दुःख न कहना ;  
गुरुजन की बातें तुम सहना ।

सञ्चरित्र बन कर नित रहना ।

इधर उधर सुत ! वृथा न फिरना ॥

( ६ )

साहस, शक्ति, धीरता, उद्यम—

सीखो ये गुण, करो पराक्रम ।

ईश सहायक होगा हर दम ;

आलस-नद में भूल न गिरना ॥

( ७ )

शिवि, दधीचि, कर्णादि कहानी ,

सुन कर सीखो नीति पुरानी ।

बनना कभी न सुत ! अभिमानी ;

परहित से तुम कभी न मुड़ना ॥

( ८ )

जब तक तुम पयपान करोगे ,

नित नीरोग-शरीर रहेगें ।

फूलोगे नित नये फूलोगे ;

पुत्र ! कभी मदपान न करना ॥

( ९ )

भीख माँगना इक दम छोड़ो ;

दासवृत्ति से भी मुख मोड़ो ।

सबके साथ अपनपो जोड़ो ;

पढ़ो पुत्र ! शुभ उद्यम करना ॥

( १० )

जो कुछ कह दो हाथ उठाकर ,

उससे कभी हटो मत तिल भर ।

सभ्य और शिक्षित कहला कर ,

उचित सदा प्रण-पालन करना ॥

( ११ )

पर दुःख को अपना दुःख मानो ;

देश मात्र को अपना जानो ।

पुत्र ! वृथाही हठ मत ठानो ;

सीखो तुम पर-दुःख को हरना ॥

( १२ )

निज पूर्वज लोगों ने कैसे

काम किये, रहते थे कैसे ।



संख्या ३ ]

उचित तुम्हारा रहना वैसे ;  
अनुचित वेटा ! उससे ढरना ॥  
( १३ )

स्वार्थ को जो धर्म समझते ;  
पर को दुख देकर हैं हँसते ।  
ईश्वर से भी तनिक न डरते ;  
समझो उन्हें शीघ्र है मरना ॥  
( १४ )

जो धोखा देनेवाला हो ;  
मुँह मीठा दिल का काला हो ।  
सागर हो या नद-नाला हो ;  
उसके साथ कभी मत तरना ॥  
( १५ )

कपटी, कुटिल, कुमति, कुलघालक  
हैं, पर बनते हैं जगपालक ।  
जो ऐसे हों, हे प्रिय बालक !  
उनकी हाँ मैं हाँ मत करना ॥  
( १६ )

जहाँ न्याय का नाम नहीं है ;  
पक्षपात की धार बही है ।  
मेरा यह उपदेश सही है ;  
पुत्र वहाँ तू नहीं ठहरना ॥

रामचरित उपाध्याय ।

प्राचीन भारत की एक झलक ।

भारत ! क्या तुम वही पुराने भारत  
हो ? क्या तुम वही हो जहाँ रघु,  
दिलीप और राम का राज्य था ?  
समय ने तुम्हारी स्मृति भी प्रायः  
नष्टप्राय कर दी । समय की महिमा  
सर्वथा अज्ञेय और अतर्क्य है ।  
मैंने तुम्हें कुछ का कुछ कर दिया । अब तो तुम  
जाने तक नहीं जाते !

भारत ! क्या कभी तुम्हें अपनी पूर्व-स्मृति भी  
होती है ? तुम्हें भला कभी वे दिन भी याद आते हैं  
जब न रेल थी, न तार; न हाई कोर्ट था, न बोर्ड  
आव रेविन्यू का दफ्तर; न करंसी नोट थे, न प्रामी-  
सरी नोट । वह वह समय था जब न कहीं नुमायशों  
थों, न कांग्रेस थी, न मुसलिम लीग थी, न हिन्दू-  
सभा थी । यह सब न था, पर था कुछ जरूर । वह  
जो कुछ था, भूलने की चीज नहीं । उसकी याद  
सुखकारक भी है, दुःखकारक भी । तुम्हारी उस  
पूर्व दशा का दृश्य देखने को अब हम लालायित हो  
रहे हैं, पर नहीं देख पड़ता । कृतज्ञ हैं हम गवर्नमेंट  
के जिसकी बदैलत प्रयाग की प्रदर्शिनी में तुम्हारे  
कुछ प्राचीन-लीला-दृश्य देखने को मिल गये । पर  
उतने से सन्तोष कहाँ ? उससे तो उन दृश्यों के  
दर्शन की लिप्सा और भी बढ़ गई है । क्या कभी  
उसकी पूर्ति भी होगी ?

बात आज कल की नहीं; सौ दो सौ वर्ष की भी  
नहीं । उसे हुए हजारों वर्ष बीत गये । उस समय  
राजा रघु का राज्य था । ससागरा पृथ्वी के वे पति  
थे । साकेत-नगरी ( प्राचीन अयोध्या ) उनकी राज-  
धानी थी । सत्यात्रों को दे डालनेहों के लिए वे धनो-  
पार्जन करते थे; प्रजा के काम में लगा देनेहों के  
लिए ये कर लेते थे; निर्बलों को प्रबलों के उत्पीड़न  
से बचानेहों के लिए वे धनुर्बाण धारण करते थे ।  
विद्वानों का वे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते  
थे; उन्हें वे देवता समझते थे; उनके पैर तक अपने  
हाथों से धोते थे । यह मजाल न थी कि अरण्य-  
वासी विद्वानों के लगाये हुए एक छोटे से पौधे की  
एक टहनी भी कोई तोड़ ले—उनके खेतों से साँवा  
की एक बाल भी कोई चुरा ले जाय ।

बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी विद्वान् बड़ी बड़ी बस्तियों में,  
उस समय, न रहते थे । बस्ती से कुछ दूर, जंगल में,  
वे अपनी पर्णशालायेँ बनाते थे । साँवा, कोदों और  
कँगनी की वे खेती करते थे । गायें भी वे पालते थे ।  
उनके पास सैकड़ों नहीं, हजारों विद्यार्थी रहते थे ।  
वे उन्हें विद्या का भी दान देते थे और भोजन-वस्त्र



का भी । अन्याय, उत्पीड़न और चौर कर्म का कहीं नाम न था । यज्ञ के पावन धूम से आस पास का प्रदेश सुवासित हुआ करता था । वेद-घोष से दिशाये गुंजायमान रहती थीं । आचार्यों की आज्ञाये पालन करने में चक्रवर्ती राजा तक अपनी कृतार्थता मानते थे । ऐसे समय के भारत की एक भलक देखिए ।

राजा रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति विश्वजित् नामक यज्ञ में दे डाली है । पास कुछ भी नहीं रक्खा । पानी पीने के लिए पीतल का लोटा भी नहीं रह गया । रह क्या गया है मिट्टी ही का सकोरा, मिट्टी ही की हाँड़ी, मिट्टी ही की थाली ! इस प्रकार सर्वस्व दान देकर आप रिक्तहस्त हो गये हैं ।

इसी समय, वरतन्तु नाम के एक बड़े तपस्वी और बड़े विद्वान् महात्मा राजा रघु के राज्य में तपश्चर्या और अध्यापन का काम करते हैं । आश्रम उनका जंगल में है । खेत-पात भी उनके वहाँ हैं । अनेक ब्रह्मचारी आपके आश्रम में रहते और अध्ययन करते हैं । वरतन्तु ऋषि की विद्वत्ता का यह हाल है कि वे चौदहों विद्याओं के निधान हैं । तप उनका इतना बढ़ा चढ़ा है कि उनके डर से इन्द्र का आसन डिग रहा है । कहीं इतना घोर तप करके ये मेरा इन्द्रत्व तो नहीं छीन लेना चाहते ! इस डर से सुरेन्द्रशर्मा को अप्सराओं की शरण लेनी पड़ी । पर, वरतन्तुजी के सामने उनकी एक भी न चली । वे अपना सा मुँह लेकर लौट गईं । इन्द्र का वह भय सर्वथा निर्मूल था । इन्द्रासन पाने की इच्छा अल्पपुण्यात्माओं हों को हुआ करती है । वरतन्तु जी ऐसे नहीं ।

वरतन्तु के आश्रम में कौत्स नाम का एक विद्यार्थी है । जब उसका अध्ययन समाप्त हो गया और वह पूर्ण विद्वान् होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य हुआ तब वरतन्तु ने उसे घर जाने की आज्ञा दी । कौत्स ने भक्ति-भाव के उन्मेष में आकर प्रार्थना की :—

“आचार्य ! मुझ से कुछ गुरु-दक्षिणा लीजिए । आपकी कृपा से मैं मूर्ख से पण्डित हो गया । अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं पत्र-पुष्प-रूपी योग्य सी पूजा आपकी करूँ ” ।

वरतन्तु—“वत्स ! तुमने मेरे आश्रम में दस दिन तक रह कर जो मेरी सेवा-शुश्रूषा की है उसको मैं सबसे बड़ी गुरु-दक्षिणा समझता हूँ । क्या कम है ” ?

कौत्स—“नहीं, आचार्य ! कुछ आज्ञा अवश्यही दीजिए । कृपा कीजिए । मेरा जी मानता ” ।

वरतन्तु—“कौत्स ! दक्षिणा की अपेक्षा भक्ति मुझे विशेष सन्तोषदायिनी है । उसका मुकाबले में दक्षिणा कोई चीज नहीं । तुमसे मैं नहीं चाहता ” ।

कौत्स—“महाराज ! आपको मेरा अनुमान नहीं पड़ेगा । मुझे अपना सेवक समझ कर अपने मुँह से जरूर कहिए ” ।

शिष्य की इस हठ को देख कर आचार्य महासागर-सदृश शान्त चित्त भी क्षुब्ध हो उठा ।

“अतिशय रगड़ करे जो कोई—  
अनल प्रकट चन्दन तै होई ”

उन्हें रोष हो आया । उन्हें कौत्स की गरीबी कुछ भी खयाल न रहा । वे बोले :—“अच्छी है । तू गुरु-दक्षिणा दिये बिना जो घर नहीं चाहता तो अब देकर ही जाना । मैंने तुझे विद्याये पढ़ाई हैं । अतएव एक एक विद्या के एक एक करोड़ रुपया मुझे ला दे ” ।

कौत्स इस आज्ञा को सुन कर जरा भी घबराया । उसने—“जो आज्ञा”—कह कर गुरु प्रणाम किया और वहाँ से चल दिया । जिस ब्राह्मण कुमार के पास कौपीन, कमण्डलु और दण्ड के सिवा और कुछ नहीं था । उसने कौत्स को करोड़ अशरफियाँ अपने विद्यागुरु को देने की प्रतिज्ञा की ।



संख्या ३ ]

जरा इस घटना पर ध्यान दीजिए । वरतन्तु ने कौत्स को बरसों पढ़ाया—कौन जाने बीस वर्ष पढ़ाया, या पच्चीस वर्ष या उससे भी अधिक—पढ़ाया ही नहीं, अपने घर रक्खा; भोजन-वस्त्र भी दिया और बीमार होने पर सुताधिक-स्नेह से उसकी रक्षा भी की । और इसके बदले में आपने पाया क्या ? केवल शिष्यभक्ति ! उसी को आपने फ्रीस समझा, उसी को बोर्डिंग का खर्च, उसी को सब कुछ । यह तो हुआ आचार्य का हाल । अब शिष्य को देखिए । वह भक्तिदान से सन्तुष्ट नहीं । वह यथाशक्ति कुछ और भी देना चाहता है । विना दास्य के आचार्य के आश्रम से घर जाने के लिए उसका पैर ही नहीं उठता । और जब उससे चौदह करोड़ मांगा जाता है तब वह अपनी अकिञ्चनता का जरा भी खयाल न करके प्रसन्नतापूर्वक कहता है—“बहुत अच्छा, आचार्य ! चौदह करोड़ ही दूंगा” । ऐसी अवस्था में कौन अधिक प्रशंसनीय है—गुरु या शिष्य ? इसका उत्तर देना कठिन है । गुरु भक्ति-भाव ही से खुश है ! चैले के पास चौदह कौड़ियाँ नहीं; पर गुरु की आज्ञा के अनुसार चौदह करोड़ देने की वह प्रतिज्ञा करता है । इस दृश्य का वर्तमान समय के विद्यालय-संस्थानों का अन्तर है; तिल-ताड़ का अन्तर है; कौड़ी का अन्तर है । है या नहीं ? इसी से कहते हैं—भारत ! तुम कुछ के कुछ हो गये हो ।

अच्छा, इस दृश्य को आप देख चुके । अब उसके बाद का एक और दृश्य देखिए । उसमें आप को पूर्वोक्त वरतन्तु के आश्रम की भलक के सिवा और भी कुछ देखने को मिलेगा । साथही आपको एकवर्ती राजा ऐसे आश्रमों की कहाँ तक खबर मिलेगी । इस दृश्य के दिखाने का पुण्य महाकवि कालिदास को है । अपने रघुवंश में वे जो कुछ लिख रहे हैं उसी की बदौलत हमें यह दृश्य देखने का सामान्य प्राप्त हुआ है ।

चौदह करोड़ दे डालना ऐसे वैसे आदमी का काम नहीं । राजाओं के लिए भी इतना बड़ा दान देना कठिन काम है । यही सोच कर कौत्स ने राजा रघु से याचना करने का निश्चय किया । राजा रघु की जो स्थिति उस समय थी उसका उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है । परन्तु कौत्स को उसकी कुछ खबर न थी । अतएव वह गुरु-दक्षिणा के लिए धन प्राप्त करने के इरादे से रघु के पास पहुँचा ।

स मृगमये वीतहिरण्यमयत्वात् पात्रे निधायार्थमनर्शरीलः ।  
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥

जिस रघु के खजाने में, कुछ समय पहले, सोने के ढेर के ढेर भरे हुए थे उसके खाने पीने के पात्र भी सोनेही के होंगे, इसमें क्या सन्देह हो सकता है ? परन्तु वह समय सुवर्ण-सञ्चय का न था । वह तो सारा का सारा दिया जा चुका था । अब रघु के पास पात्र थे मिट्टी के । वे यद्यपि चमकदार न थे, तथापि रघु का शरीर उसके अत्युज्ज्वल यश से ज़रूर खूब चमक रहा था । उसके शील-स्वभाव का क्या कहना है । अतिथियों का—विशेष करके विद्वान् अतिथियों का—सत्कार करना वह अपना बहुत बड़ा कर्तव्य समझता था । इस कारण, जब उसने उस वेद-शास्त्र-सम्पन्न कौत्स के आने की खबर सुनी तब उन्हीं मिट्टी के पात्रों में अर्घ्य और पूजा की सामग्री लेकर वह उठ खड़ा हुआ ।

तमर्चयित्वा विधिवद् विधिस्तपोधनं मानधनाग्रयायी ।  
विशंपतिर्विष्टरमाजमारात् कृताञ्जलिः कृत्यविदियुवाच ॥

आज कल के राजा कहलाये जाने वाले लोगों की तरह रघु अपने आसन पर डटा नहीं बैठा रहा । कौत्स को देखतेही वह उठा । उठाही नहीं, उठ कर वह कुछ दूर तक गया भी और उस तपोधनी अतिथि को साथ लिवा लाया । रघु यद्यपि, उस समय, सुवर्ण-सम्पत्ति से धनवान् न था, तथापि मानरूपी धन को भी जो धन समझते हैं उनमें वह सबसे बढ़ चढ़ कर था । महा मानधनी होने पर भी रघु ने उस तपोधनी ब्राह्मण की विधिपूर्वक पूजा की ।



विद्या और तप के धन को उसने और सब धनों से बढ़ कर समझा । चक्रवर्ती राजा होने पर भी रघु को अभ्यागत के आदरातिथ्य की क्रिया अच्छी तरह मालूम थी । अपने इस क्रिया-ज्ञान का यथेष्ट उपयोग करके रघु ने कौत्स को प्रसन्न किया । जब वह स्वस्थ होकर आसन पर बैठ गया तब रघु ने नम्रता-पूर्वक, भृकुटी या हाथ के इशारे से नहीं, किन्तु वाणी द्वारा, कुशल-समाचार पूछना आरम्भ किया । इतनाही नहीं, राजा ने हाथ भी जोड़ने की ज़रूरत समझी । विद्वान् और तपस्वी की महिमा तो देखिए ।

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते ।

यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णारश्मेः ॥

हे कुशाग्रबुद्धे ! कहिए, आपके गुरु तो अच्छे हैं ? वे एक असाधारण विद्वान् हैं—वे सर्वदर्शी महात्मा हैं । जिन ऋषियों ने वेदमन्त्रों की रचना की है उनमें उनका स्थान सब से ऊँचा है । मन्त्र-कर्ताओं में वे सब से श्रेष्ठ हैं । जिस तरह सूर्य से प्रकाश प्राप्त होने पर यह सारा जगत्, सुबह, सोते से जग पड़ता है, ठीक, उसी तरह, आप अपने पूजनीय गुरु से समस्त ज्ञान-राशि प्राप्त करके और अपने अज्ञान-जात अन्धकार को दूर करके जग से उठे हैं । ज्ञानावस्था की प्राप्ति बड़ी ही सुखदायक होती है; उसकी महिमा अवर्णनीय है । एक तो आपकी बुद्धि स्वभावही से कुशल की नेक के समान तीव्र, फिर महर्षि वरतन्तु से अशेष ज्ञान की प्राप्ति । क्या कहना है । महाराज आप धन्य हैं ।

रघु ने, यहाँ पर, वरतन्तु ऋषि की जो प्रशंसा की है और उनके लिए जो विशेषण दिये हैं उनसे बड़ी व्यापक ध्वनि निकलती है । ऐतिहासिक दृष्टि से वह बड़े महत्त्व की है । उससे कालिदास के मानसिक भावों का भी खूब पता चलता है । दो हजार वर्ष पहले की ये बातें समझने और सोचने लायक हैं ।

कायेन वाचा मनसापि शश्वद्यत्सम्भृतं वासवधैर्य्यलोपि ।

आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥

हाँ, महाराज ! यह तो कहिए—आपके विद्यार्थी महर्षि वरतन्तु की तपस्या का क्या हाल है । उनके तपश्चरण के बाधक कोई विघ्न तो उपस्थित नहीं—विघ्न के कारण तपश्चर्या में कुछ कमी तो नहीं ? महर्षि बड़ा ही घोर तप कर रहे हैं । उनका तप एक प्रकार का नहीं, तीन प्रकार का है । कृच्छ्रचान्द्रायणदिवसे से शरीर-द्वारा, तथा वेदपाठ और गायत्री आदि मन्त्रों के जप से वाणी और मन के द्वारा वे अपने तपश्चर्या की निरन्तर वृद्धि किया करते हैं । उनका यह कायिक, वाचिक और मानसिक तप सुरेन्द्र धैर्य्य को भी चंचल कर रहा है । वह डर रहा है कि कहीं ये मेरा आसन न छीन लें । इसी से महर्षि का तपश्चरण सम्बन्ध में मुझे बड़ी फ़िक्र रहती है । मैं नहीं चाहता कि उसमें किसी तरह का व्याघात पड़े क्योंकि ऐसे ऐसे महात्मा मेरे राज्य के भूषण हैं । उनके कारण मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ ।

आधारवन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ।

कच्चिन्न वाय्वादिरूपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमनादपानाम् ॥

आपके आश्रम के पेड़-पौधे तो हरे भरे हैं ? सदा तो नहीं ? आँधी और तूफान आदि से उन्हें हानि तो नहीं पहुँची ? आश्रम के इन पेड़ों से बहुत आराम मिलता है । आश्रमवासी तो इनकी छाया से आराम पाते ही हैं; अपनी शीतल छाया से ये पथिकों के श्रम का भी परिहार करते हैं । इनके इसी गुण के कारण महर्षि ने इन्हें बच्चे की तरह पाला है । पालना बना कर उन्होंने इनको समय समय पर सींचा । तृण की टट्टियाँ लगाकर जाड़े से इनकी रक्षा है; काँटों से घेर कर इन्हें पशुओं से खा लिये जाने से बचाया है ।

रघु के इस प्रश्न से यह ध्वनित होता है कि वरतन्तु पर भी इस राजा का अधिकार था । सर्वतोभावे से धर्मपूर्वक राज्य करने के कारण पञ्च महर्षिों को भी इसने अपने वश में कर रक्खा था । पेड़ों को उखाड़ डालना या उनकी डालों को तोड़ देना



संख्या ३ ]

दूर रहा, रघुवंशी राजाओं के राज्य में स्त्रियों के वख भी वायु वेकायदा नहीं उड़ा सकता था :—

वर्तमान नख संयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ।

कुशल-सम्बन्धी प्रश्नों में ऋषि के मृग-समुदाय को भी राजा रघु नहीं भूले । प्राचीन काल में अरण्यवासी मुनि मृगों को भी पालते थे । वे गृह-पशुओं की तरह उनके आश्रमों में विचरा करते थे ।

क्रियानिमित्त ध्वपि वसलत्वादभयकामा मुनिभिः कुशेषु ।  
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कचिन्मृगीणामनवा प्रसूतिः ॥

मुनि जन बड़ेही दयालु होते हैं । आपके आश्रम की हरियाँ जब बच्चे देती हैं तब ऋषि लोग उनके बच्चों की बेहद सेवा-शुश्रूषा करते हैं । आश्रम के आस पास सब तरफ जंगल है । उसमें साँप और बिच्छू आदि विषैले जन्तु भरे हुए हैं । उनसे बच्चों को कष्ट न पहुँचे, इस कारण ऋषि उन्हें प्रायः अपनी गोद से नहीं उतारते । उत्पन्न होने के बाद दस बारह दिन तक वे उन्हें रात भर अपने उत्संगही पर रखते हैं । अतएव उनके नाभिनाल ऋषियों के शरीर पर ही गिर जाते हैं । परन्तु इससे वे ज़रा भी विषण्ण नहीं होते । जब ये बच्चे बढ़ कर कुछ बड़े होते हैं तब यज्ञादि बहुत आवश्यक क्रियाओं के निमित्त लिये गये कुशों को भी वे खाने लगते हैं । परन्तु उन पर ऋषियों का अत्यन्त स्नेह होने के कारण उन्हें ऐसा करने से भी वे नहीं रोकते । उनके नैमित्तिक कार्यों में चाहे भलेही विघ्न आजाय, पर मृग-पशुओं की इच्छा का वे विघात नहीं करते । आप की यह स्नेह-संवर्द्धित हरिण-सन्तति तो मजे में है ? उसे कोई कष्ट तो नहीं ?

निवर्त्यै यैर्यमाभिषेको येये निवापाञ्जलयः पितृणाम् ।  
तान्युन्मृशयित्वा तैस्तानि शिवानि वस्तीर्जलानि कश्चित् ॥

आपके तीर्थजलों की क्या हालत है ? उनमें कोई बुरा तो नहीं ? वे सूख तो नहीं गये ? पशु उन्हें चढ़ा तो नहीं करते ? इन तीर्थजलों को—इन नदीगंगा और बावलियों को—मैं आपके बड़े काम का समझता हूँ । यही जल आपके स्नानादि के नित्य

काम आते हैं । अग्निष्वात्तादि पितरों का तर्पण भी आप इन्हीं से करते हैं । इन्हीं के किनारे रेत पर आप अपने खेतों की उपज का पष्ठांश राजा के लिए रख छोड़ते हैं ।

यह वह समय था जब न कोई तहसीलदार था, न रेविन्यू मनीआर्डर थे, न लगान वसूल करने के लिए कोई क़ानून था । न किसी पर नालिशें होती थीं, न वेदखली थी, न कुर्की थी । राज-कर उपज के रूप में दिया जाता था—सो भी छः मन पीछे एक मन । झूठ, धोखेबाज़ी और चौर कर्म का कहीं नाम न था । जिसे जितना कर देना होता था वह उतना पास के किसी कुवे, तालाब या बावली के किनारे चुपचाप रख देता था । समय पर राजकर्मचारी उसे उठा ले जाते थे । भारत का यह प्राचीन दृश्य किस सहृदय के कण्ठ को गद्गद् और नेत्रों को साश्रु नहीं कर सकता ?

नीवारपाकादि कडङ्गरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कश्चित् ।

कालोपपन्नातिथिकल्पभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ॥

बलि-वैश्वदेव के समय अतिथि आजाने से उसे विमुख जाने देना मना है । अतएव जिस जंगली तृणधान्य ( साँवा, कोदों आदि ) से आप अपने शरीर की भी रक्षा करते हैं और अतिथियों की भी श्रुधा शान्त करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं उसे, भूल से छूट आये हुए, गाँव और नगर के पशु खा तो नहीं जाते ?

इन ऋषियों के उदर-निर्वाह की साधन-सामग्री को तो देखिए । वे खाते क्या थे—मक्का, कँगनी और साँवा ! पर विद्वत्ता उनकी ऐसी थी कि साकेत के चक्रवर्ती राजा उनके पैर अपने हाथ से धोते थे !! उनकी तपस्या का यह हाल था कि सुरराज इन्द्र भी उसे देख कर कम्पित होते थे !!! Plain living and high thinking का ऐसा उत्कृष्ट नमूना क्या कभी किसी देश की किसी जाति में और कहीं पाया जा सकता है ? जान पड़ता है, ये ऋषि अनाज काट कर या तो वहाँ खेतही में रखते थे, या आश्रम के हाते में किसी खुली जगह, या वहाँ कहीं छप्परो के नीचे ।



अन्यथा नगर के गाय-भैंसों से उसके खाये जाने का डर न होता। इससे सिद्ध है कि उस समय चोरी का तो कुछ जिक्र ही नहीं; पशु भी ऋषियों के आश्रम तक नहीं पहुँचने पाते थे। उनके मालिक उनकी रखवाली का बड़ा ही अच्छा बन्दोबस्त रखते थे। बहुत संभव है, इसमें गुफ़लत होने पर उन्हें सख़्त राजदण्ड भोगना पड़ता रहा हो।

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सभ्यविनीयानुमतो गृह्याय ।

कालोद्वयं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ॥

सब विद्याओं में निष्णात करके आपके गुरु ने आपको गृहस्थाश्रम-सुख भोगने के लिए क्या प्रसन्नता-पूर्वक आज्ञा दे दी है? ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन तीनों आश्रमों पर उपकार करने का सामर्थ्य एक गृहस्थाश्रम ही में है। आपकी उम्र अब उसमें प्रवेश करने के सर्वथा योग्य है।

तवाहृतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रियेतु कुं मे ।

अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनात्माम् ॥

आप हमारे परम पूज्य हैं। अतएव सिर्फ़ आपके आगमन से ही मुझे विशेष आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। यदि आप दया करके मुझसे कुछ सेवा भी लें तो अवश्य मुझे विशेष आनन्द हो सकता है। अतएव आप मेरे लिए कोई काम बतलावे—कुछ तो आज्ञा करें। हाँ, भला यह तो कहिए कि आपने जो मुझ पर यह कृपा की है वह आपने अपने ही मन से की है या गुरु की आज्ञा से। वन से इतनी दूर मेरे पास आने का कारण क्या?

इस विस्तृत कुशलप्रश्नावली के समाप्त होने पर कौत्स ने कहा :—

“राजन्! हमारे आश्रम में सब प्रकार कुशल है। हमारे तपश्चरण में कोई विघ्न नहीं; आश्रम-पादप खूब अच्छी दशा में हैं; जल की कमी नहीं; अन्न काफी है; पशवादिकों का कोई उपद्रव नहीं। आपके राजा होते, भला, हम लोगों को कभी स्वप्न में भी कष्ट हो सकता है। सूर्य के मध्य आकाश में स्थित रहते, मजाल है जो रात्रि-संभूत अन्धकार

अपना मुँह दिखाने का हौसला करे! रहा मेरे आने का कारण, सो मैं गुरु के लिए आपसे बहुत कुछ माँग आया था। परन्तु मैं देर से आया। आपके माँगने का समय जाता रहा। आपके ये मित्रों के पात्र इसके प्रमाण हैं। आप प्रसन्न रहें। अब आपसे इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहता। तो मनुष्य हूँ। गुरु की कृपा से चार अक्षर मैंने भी हैं। अतएव ऐसे समय में आपसे याचना करने मुझे मुनासिब नहीं। सारे संसार को जलवृष्टि द्वारा आर्द्रावित करके शरत्काल को प्राप्त होनेवाले ऋतु में घों को, पतङ्ग-येनि में उत्पन्न चातक भी, आप याचनाओं से तङ्ग नहीं करते”।

राजा ने उत्तर दिया—“अच्छा, बतलाइए तो कौन सी चीज़ आप अपने गुरु को देना चाहते हैं और कितनी देना चाहते हैं”।

इस पर कौत्स ने सब हाल कहा। सुन राजा बोला—“कुछ चिन्ता नहीं। आप दो दिन मेरी अग्निहोत्रशाला में ठहरिये। मैं आपका अर्थ-सिद्धि के लिए चेष्टा करूँगा। आपका मेरे पास से विफल-मनोरथ जाना मेरे लिए बड़े ही कलङ्क की बात होगी। यह मैं नहीं चाहता—यह मुझे असह्य होगा”।

रघु के खजाने में कौड़ी न थी। चौदह करोड़ द्रव्य कहाँ से आवे। राजा धर्म-संकट में पड़ा अन्त में उसने कुवेर पर चढ़ाई करके उतना द्रव्य प्राप्त करने का निश्चय किया। उसने अपना शरत्-खपूँर्ण रथ सजाया। प्रातःकाल यात्रा करने के लिए से रात को वह उसी रथ पर सोया। पर उसे प्रसन्न करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। रात ही को खजाना अशरफ़ियों से अकस्मात् भर गया। अतएव उसने वह सब धन कौत्स के सामने लाकर हाथ कर दिया। वह चौदह करोड़ से कहीं अधिक सवाल था सिर्फ़ चौदह करोड़ के लिए; पर उतना ही देना रघु के लिए कोई विशेष उदारता की बात न थी। इससे राजा वह सारा का सारा कौत्स को देने लगा। परन्तु वह मतलब से



संख्या ३]

क्यों लेता। उसने गिन कर चौदह करोड़ ले लिया। बाकी सब वहीं पड़ा रहा। अब बतलाइए उन दोनों में से किसे अधिक प्रशंसा का पात्र समझना चाहिए—दाता रघु को या याचक कौत्स को? रघु की राजधानी, साकेत-नगरी, के निवासियों ने तो उन दोनों को बराबर एकही सा अभिनन्दनीय समझा :—

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।  
गुरुप्रदेयाधिकनिष्ठोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥

बहुत प्राचीन भारत की यह एक धुँधली सी झलक है। उस ज़माने में विद्वत्ता की कितनी कदर थी; विद्वान् अपना जीवन किस तरह निर्वाह करते थे; वे कहाँ रहते थे, किस तरह रहते थे और क्या खाते थे; राजा कितने प्रजापालक थे, कितने दानी थे, कितने धर्मनिष्ठ थे; प्रजा-जन कितने-सख्यनिष्ठ और राजाज्ञा को कहाँ तक माननेवाले थे—इनका, और इनके सिवा और भी ऐसाही बहुतसी बातों का अनुमान कालिदास के पूर्वोक्त पद्यों से बहुत अच्छी तरह हो सकता है। हम लोग इस महाकवि के नितान्त कृतज्ञ हैं। उसी की कृपा से हमें यह प्राचीन भारत की झलक देखने को मिली है। रामायण और महाभारत के आधार पर कई विद्वानों ने भारत का तत्कालीन इतिहास लिखा है। क्या ही अच्छा हो, यदि कालिदास के ग्रन्थों के आधार पर भी कोई उस समय की सामाजिक, नैतिक और राजकीय व्यवस्था का एक लेख-चित्र तैयार करने की कृपा करे। इसके लिए सामग्री तो बहुत है। पर, हाँ, उसका उपयोग करनेवाला अप्राप्य नहीं तो दुष्प्राप्य जरूर है।

पूर्वस्मृति बुरी भी होती है, भली भी; पर होती बड़े महत्त्व की है। पुरातन बातों को भूलना न चाहिए। देखिए, गवर्नमेंट हमारे प्राचीन ग्रन्थों को लोप होने से बचाने का यत्न करती है; वह हमारी प्राचीन इमारतों को बना रखने की चेष्टा करती है; वह भारत के प्राचीन काव्यों को स्कूलों और कालेजों में पढ़ाती है। जो कुछ उसे करना मुनासिब है वह

करती है। अतएव यदि और किसी कारण से नहीं तो गवर्नमेंट की नक़ल करने के इरादे से ही हम लोगों को अपनी प्राचीन सभ्यता की स्मृति लुप्त न होने देना चाहिए। जहाँ हम और सैकड़ों बातों की नक़ल करते हैं तहाँ एक और बात की भी सही। कितनीही बातें अब अच्छी हैं; कितनीही तब अच्छी थीं। पर अच्छी हीं या बुरी, पुरानी बातों का स्मरण जरूर बड़े काम का होता है।

## उषा ।



उषा शब्द रात्रिशेष का वाचक है। सूर्योदय के पहले उषा-काल होता है। उषा के सम्बन्ध से ही उषःकाल शब्द प्रातःकाल का बोधक हुआ है। वेदों में उषा का कई प्रकार से वर्णन किया गया है। वैदिक निघण्टु में उषा के नाम—विभावरी, भास्वती, उदती, द्योतना आदि हैं। ऋक्संहिता में लिखा है—घोड़ों के रथ पर सूर्य से ३० योजन की दूरी पर उषा स्थित है। देखिए—अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका ऋतुं परियंति सद्यः । १ । १२३ । ८ । कहीं लिखा है—उषा को इन्द्र ने पैदा किया है। यथा—यः सूर्यं य उषसं जजान । २ । १२ । १

ऋग्वेद के

दुहिता दिवः—१ । ४८ । १६

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः—१ । १२३ । ५

यामिन्याः ज्येष्ठा सहोदरा—१ । १२४ । ८

इन मन्त्रों से ज्ञात होता है कि उषःकाल की देवता का प्रसङ्गवश अनेक रूप से वर्णन किया गया है। रात्रि के आरम्भ और अन्त में उषा की स्थिति है। इसीलिए ऊपर के मन्त्र में वह दिन-रात्रि की बड़ी बहन मानी गई है। सूर्योदय के पहले पूर्व दिशा में देर तक जो लालिमा दिखलाई देती है वही उषा है। उषा के ही प्रकाश से रात्रि का अंधकार दूर होता है। इस विषय का वैदिक सूक्त देखिएः—



उषा इच्छन्ती समिधाने अग्रा  
उद्यन्त सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।

सायणाचार्य के मत में सूर्योदय से २२½ पल पहले उषा का उदय होता है ।

पौराणिक मत से उषा बाण नामक राजा की कन्या और अनिरुद्ध की स्त्री है । हरिवंश में लिखा है:—

बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भाविनी ।

कुछ भी हो, उषा का अर्थ अमरकोष, मेदिनीकोष आदि कोषों में वही लिखा है जो वैदिक मत से होता है—अर्थात् प्रातःकाल या रात्रिशेष । पूर्व दिशा में सूर्य के अर्धविम्बोदय तक, और पश्चिम में अर्ध-विम्बास्त होने के बाद तक, उषा का समय रहता है । साधारणतः इसे संध्या-समय कहते हैं । प्रातः संध्या और सायंसंध्या का प्रमाण एक ही है । जो उषा-मान है वही संध्या-मान है । विशेषता इतनीही है कि उषा का नाम प्रातःकाल ही में लिया जाता है । सायंकाल का नाम संध्या या गोधूलि है ।

आचार्य वराहमिहिर ने अपने बृहत्संहिता नामक ग्रन्थ में उषा को संध्याकाल के नाम से अभिहित किया है:—

अर्धस्तमितानुदितात् सूर्यादस्वष्टमं नमो यावत् ।

तावत् संध्याकालश्चिह्नैरतैः फलं चास्मिन् ॥

अर्थात्, आधा सूर्यविम्ब अस्त होने के बाद, जब तक आकाश में तारकायें स्पष्ट न देख पड़ें तब तक, संध्याकाल है । और, सूर्योदय के पहले जब तारकायें मंद हो जायें तब से सूर्योदय तक प्रातः-संध्याकाल है । फलित ज्योतिष में उषाकाल और गोधूलि में पश्चिम और पूर्व दिशा की यात्रा शुभ मानी गई है ।

उषा का महत्त्व भारतवर्ष के सिवा अन्य देशों में भी है । उषा को ग्रीक भाषा में इयस ( Eos ) और लैटिन में आरोरा ( Aurora ) कहते हैं । अंगरेजी भाषा में प्रातःकालीन उषा को डान ( Dawn ) और सायंकालीन को ट्यू-लाइट ( Twilight ) कहते हैं ।

अच्छा, उषा के उदय का प्राकृतिक कारण क्या है और उषाकाल रहता कितनी देर तक है ।

सूर्यास्त के बाद, पृथ्वी की वक्रता के कारण सूर्य-किरण बहुत दूर तक न जाकर, ऊपरी वायुमण्डल के आघात से फैल कर, उसी स्थान में प्रतिबिम्बित हो जाते हैं । इस प्रतिफलन को अंगरेजी में रिफ्लेक्शन ( Reflection ) कहते हैं । यह क्षितिज के नीचे सूर्य के १८° अंश जाने तक रहता है । यह १८° अंश का अन्तर, निरक्ष देश में, जहाँ उत्तरी ध्रुव भूमि और आकाश से मिला हुआ मालूम होता है, लम्बरूप ( Perpendicular distance ) होता है । क्योंकि, निरक्ष देश में सूर्य का अहोरात्रवृत्त क्षितिज को लम्बरूप से काटता है, पर अक्षांशवाले देशों में वह तिरछा होकर काटता है । मतलब यह कि सरल मार्ग से चलने में थोड़ा काल लगता है और वक्र मार्ग से जाने में अधिक । इसीलिए निरक्ष देश में उषा थोड़ी ही देर रहती है । इन सब देशों में अक्षांश के अनुसार उषा न्यूनाधिक रहती है ।

उत्तरी ध्रुव-प्रदेश में, क्षितिज के नीचे, कोई छ महीने तक सूर्य रहता है—अर्थात् २३ सितम्बर से २१ मार्च तक । इस बीच में क्षितिज से सूर्य का लम्बरूप अन्तर २३° । २४' अंश से अधिक नहीं होता । इतने अन्तर पर सूर्य २१ दिसम्बर को पहुँचा करता है । इसलिए, १८° अंश का अन्तर २३° । २४' का उषा का भाग हो उसी के हिसाब से छः मास का भाग लेने से अपेक्षित देश का उषा-काल जाना जा सकता है । इस प्रकार २३ सितम्बर के बाद दो महीने तक, और ३१ मार्च के पहले दो महीने तक, उषा का उदय किंवा संध्याकाल रहता है । इस तरह कुल छ महीने उषा का उदय समझना चाहिए । इसी नियम के अनुसार २१ मार्च से २३ सितम्बर तक सूर्य दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में, क्षितिज के नीचे, रहा करता है । वही उषा के उदय का उतनाही समय समझिए ।

निरक्ष में उषा का उदय ।

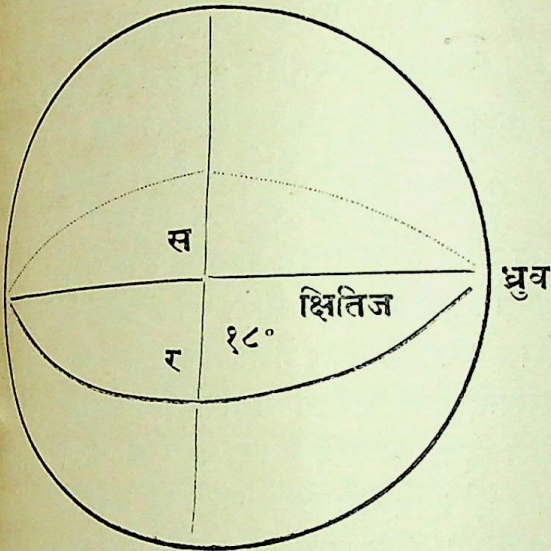
निरक्ष देश में, संपात-बिन्दु के पास, नाडीवृत्त ही सूर्य का अहोरात्रवृत्त हो जाता है । इसलिए



संख्या ३ ]

क्षितिजवृत्त को काट कर समकोण पैदा करता है।  
नीचे दिये गये क्षेत्र के संपात-बिन्दु में स सूर्यास्त का  
चिह्न और र संध्या के अन्त में सूर्य का चिह्न है।

आकाश का मध्य



यहाँ स र = १८° के हैं। अब यह जानना है कि  
इस मार्ग को सूर्य कितनी देर में तय करेगा।

२४ घंटे में सूर्य ३६०° अंश चलता है।

∴ ३६०° : १८° :: २४ : गति

$$\therefore \text{गति} = \frac{१८ \times २४}{३६०} = १\frac{१}{२} \text{ घंटा} = १ \text{ घं० } १२ \text{ मि०}$$

अर्थात् निरक्षदेश में १८° अंश क्षितिज के नीचे  
सूर्य १ घंटा १२ मिनट में चलेगा। निरक्ष से  
उत्तर देश उत्तर की तरफ हटा हुआ है। इसलिये  
यहाँ संध्या या उषाकाल १ घंटा १२ मिनट से  
अधिक होगा। प्राचीन घड़ी-घंटे के हिसाब से २३  
कड़ी घड़ियों का एक घंटा माना जाता है। १५° अंश  
चलने में १ घंटा लगता है। क्योंकि, ३६०° अंश चलने  
में २४ घंटे लगते हैं। यह मोटा हिसाब है। इसी से  
रामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ में लिखा है:—

संध्या त्रिनाडी प्रमितार्कविभ्यात्  
अर्धदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र।

अर्थात् संध्याकाल तीन घड़ी होता है। यह काल  
निरक्ष देश के मान से अधिक है। और अधिक होना

ही चाहिए। क्योंकि, रामदैवज्ञ ने काशी में मुहूर्त-  
चिन्तामणि बनाया है। काशी का अक्षांश २५°।  
१६' है।

प्रत्येक देश में उषा के उदय में अन्तर होता है।  
इसका मुख्य कारण अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति है।  
यह विषय ज्योतिष का है। अतएव इस पर और  
अधिक लिखना आवश्यक नहीं।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

## अनुताप ।

( १ )

बड़े भाग्य से इस दुनिया में दुर्लभ मानव-तन पाया;  
वृथा गँवाया उसको हमने, माया में मन उलझाया।  
क्या करना है उचित, जन्म से कभी न इस पर ध्यान दिया;  
अज्ञानी पशु-तुल्य सर्वदा बेसमझे सब काम किया ॥

( २ )

जी न लगा पढ़ने लिखने में खेलों ही में रहे फँसे;  
शिक्षा का जो उचित समय था किया वृथा बरबाद उसे।  
कहा न माना गुरुवर्यों का, फल उसका विषपूर्ण फला;  
बुरा काम करनेवालों का हो सकता है कभी भला ?

( ३ )

दुःशीलों की संगति करके कुजनों के सरदार बने;  
दिन दिन दुराचार कर हमने पाये दुःसह दुःख घने।  
अपने इन अनुचित कृत्यों की जब हमको है सुधि आती,  
तब ऋण-रोग-रागद्वेषों की ज्वाला सही नहीं जाती ॥

( ४ )

पुरखों की कुछ रही कमाई उस पर था सब ठाट खड़ा;  
उसे उड़ातेही आफत का हम पर दूट पहाड़ पड़ा।  
रही न पूँजी पास, न कोई रहा कर्ज देनेवाला;  
मित्र एक भी रहा न दुर्गम दुख में सुध लेनेवाला ॥

( ५ )

करके कुछ व्यवसाय न हमने सीखा स्वस्थ सुखी होना;  
सीखा नई जवानी में बस, व्याकुल हो दुखड़ा रोना।  
करते हम अनभिज्ञ काम क्या निरुद्योग हो बैठ रहे;  
लेकर भार गृहस्थी का हा ! दुख असंख्य चुपचाप सहे ॥



( ६ )

हाथ हमारी बुरी दशा पर निन्दा होने लगी बड़ी ;  
सह न सके, घर छोड़ दियेचल, होविरक्त हम उसीघड़ी ।  
घूमे ठौर ठौर, पर मन को ज़रा नहीं विश्राम मिला ;  
भरे तमोगुण से मानसमें नहीं सत्त्वगुण-कमल खिला ॥

( ७ )

विमलविवेक-भानु का मनमें उदय नहीं होता जब तक,  
सत्त्वकमलका विकसित होना देखा गया नहीं तबतक ।  
भटके हम बाबाजी बन कर, सारा भेस बदल डाला;  
भस्म लगाया, जटा बढ़ाया, गले बाँध कण्ठी-माला ॥

( ८ )

काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-वश हृदयविषयसे रहाभरा;  
रही वासना बनी हमारी, मिटा न मन का मैल ज़रा ।  
येही रहे भटकते सारी उम्र हमारी बीत चली;  
किया न कुछ परमार्थ, एकभी नहीं स्वार्थकी ढालगली ॥

( ९ )

किया न काम शुभद्वार कोई यह शरीर उत्तम पाकर;  
किया न कुछ उपकार किसीका इस अनित्य जगमें आकर ।  
नहीं सुधारी देशदशा कुछ, सदुपदेश भी नहीं दिया;  
नहीं जाति को उन्नत करने में हमनेकुछ भाग लिया ॥

( १० )

सन्तानों को देख अशिक्षित शिक्षा का न प्रचार किया;  
विद्वानों की सेवा में रह उनका वचनामृत न पिया ।  
बने विरोधी शुभ स्वधर्म के, मत विधर्मियों का भाया;  
विधि-निषेध पर ध्यान न देकर किया वही जो मन भाया ॥

( ११ )

हे ईश्वर ! तुम दीनबन्धु हो, हाथ जोड़ हम विनय करें;  
ऐसी बुद्धि हमें दो जिससे निष्कलङ्क होकर विचरें ।  
भजन तुम्हारा करें प्रेम से, रहें न्याय से जहाँ कहीं,  
जनसीदन अनुताप वृथा अब करने से कुछ लाभ नहीं ॥

जनार्दन भ्रा ।

## सतसई-संहार की कुछ उक्तियों पर एतराज़ ।



तसई-संहार नामक लेखमाला  
पण्डित पद्मसिंहजी ने विहारीलाल  
एक दोहे की बड़ी प्रशंसा की । उन्होंने  
यह कह दिया कि यह दोहा सतसई  
के चौटी के दोहों में से है । “राम”  
नामक एक महाशय को आप  
इस उक्ति में अनुचित अत्युक्ति जान पड़ी । अतएव  
उन्होंने इस पर एक छोटा सा आक्षेपपूर्ण लेख प्रका-  
शित करने के लिए भेजा । इस लेख को सरस्वती  
सम्पादक ने पण्डित पद्मसिंहजी के पास इसलिये  
भेज दिया कि यदि वे इस पर कुछ कहना चाहें  
कह दें । दोनों लेख साथ ही प्रकाशित कर दिये  
जायँगे । ऐसा करने से पाठकों को अधिक आनन्द  
आ सकता है । आक्षेप पहले और समाधान महीने  
महीने पीछे प्रकाशित करने से पहले लेख की बहुत  
बातें भूल जाती हैं । इस कारण मनोरञ्जन और  
आनन्द कुछ कम हो जाता है । अस्तु । पण्डित पद्म-  
सिंहजी ने अपना उत्तर भेजा है । वह, और “राम”  
महाशय का लेख, दोनों, अब साथ ही साथ प्रका-  
शित किये जाते हैं ।

### “राम” महाशय का लेख ।

मानहु विधि तन अच्छि छवि स्वच्छ राखिवे काज  
दृग-पग पोछन को किये भूषण पायन्दाज

गत सितम्बर की सरस्वती में श्रीमान पद्मसिंहजी ने श्रीविद्यावारिधिजी के अर्थ पर, उन्होंने विहारीलाल के ऊपर लिखे दोहे पर लिख डाला है कि “यह दोहा सतसई के चौटी के दोहों में से है” इत्यादि । परन्तु हमारी तुच्छ बुद्धि में इस दोहे पर विचार करने से यह प्रतीत होता कि योग्य समालोचक ने इस कथन में बहुत अनुचित अत्युक्ति से काम लिया है । क्योंकि



तो जिस उर्दू वाले शेर से इसे उत्तम बताया गया है इसके साथ न्याययुक्त तुलना नहीं की गई । दूसरे, दोहे में एक बड़ा भारी दोष है जिस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया ।

उर्दू का शेर यह है :—

क्या नज़ाकत है कि अरिज उनके नीले पड़ गये ।  
हमने तो बोसा लिया था ख़ाब में तसवीर का ॥

अर्थात् तन्वी के कपोल इतने कोमल हैं कि स्वप्न में भी, सीधे उनको नहीं, उनके चित्र को चुम्बन करने से उनको इतना कष्ट पहुँचा कि उन पर नीले दाग पड़ गये ।

संकल्पमात्र से, जो केवल मानसिक क्रिया है, शरीर पर इतना गहरा प्रभाव पड़ना, यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो, कोमलता के वर्णन की असम पराकाष्ठा है । अब इसके सम्मुख सतसई वाले दोहे को लीजिए, जिसका सार समालोचक जी के निज शब्दों में यह है कि—“ मानो ब्रह्मा ने भूषणों का पायन्दाज बना दिया कि दृष्टि अपने पग उससे छेड़ कर तन्वी के तन पर पड़े । शरीररूपी स्वच्छ चर्दियों को आँखों के मैले पैर ख़राब न कर दे । + + + आँखों के पैर और उनसे शरीर की कान्ति का मैला होना कितनी नज़ाकत, सफ़ाई और नाज़ुक-ख़याली है, कुछ ठिकाना है ? ” ) इत्यादि ।

पाठकवृन्द ! थोड़ा ध्यान देने से विदित होगा कि दोहे में जो कुछ कहा गया है वह इतनी असाधारण बात नहीं है जितना कि उसको बढ़ा कर तन का प्रत्यक्ष में सीधा सीधा सम्बन्ध है—अर्थात् यहाँ तन्वी के चित्र के प्रति केवल मानसिक क्रिया के तुच्छ उल्लेख है । इसलिए प्रत्यक्ष ही सिद्ध है, और जिसके बहुत शेर का भाव दोहे की अपेक्षा कहीं उच्च और प्रशंसनीय है ।

दूसरे, जब हम दोहे के ‘विधि’ शब्द पर दृष्टि डालते हैं तो हमें उपर्युक्त सम्मति के स्थिर करने में और भी कोई सन्देह नहीं रहता । सब जानते हैं कि ‘भूषण’ कोई दैवी पदार्थ नहीं है जिसको ‘विधि’ वा ‘ब्रह्मा’ पहना कर किसी व्यक्ति को उत्पन्न करता हो ; किन्तु वह एक कृत्रिम वस्तु है । अतः इस दोहे में उसके पायन्दाज बनाने का कर्ता ‘विधि’ को बतलाना कहाँ तक ठीक है, यह आप स्वयं सोच सकते हैं ।

सारांश यह कि विद्वान समालोचक का इस दोहे के प्रति यह व्यवस्था देना कि वह “ सतसई के चाटी के दोहों में से है ” हमारी समझ में सतसई के गौरव को बढ़ाता नहीं किन्तु कम करता है । अन्त में हम इतना और कहना चाहते हैं कि कोई महाशय इस लेख से यह न समझे कि हमारा अभिप्राय कवि-शिरोमणि श्रीविहारीलाल की अपूर्व कविता को सर्वथा दूषित वा कलङ्कित सिद्ध करने का है । नहीं नहीं, किन्तु हम मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार करते हैं कि उनके कितने सारगर्भित दोहे कविता के ऐसे ऐसे गूढ़ रहस्य से परिपूर्ण हैं, जिसके शिखर तक वेचारे उर्दू वाले क्या फ़ारसी के बड़े बड़े प्रसिद्ध कवि ( जिनकी कविता को देखने का हमको अब तक अवसर मिला है ) नहीं पहुँचे । परन्तु इससे यह व्यवस्था नहीं दी जा सकती कि उनकी सतसई का एक पद्य भी सदोष नहीं है । आखिर वे मनुष्य ही तो थे । यदि इतने अधिक ( ७०० ) दोहों के समूह में कहीं एक आध स्थल पर चूक गये तो आश्चर्य ही क्या है ! उसके प्रकट करने से उनकी जगद-विख्यात काव्य-प्रवीणता को कोई हानि नहीं पहुँच सकती । इसलिए कोई आवश्यकता नहीं है कि हम उस पर आवरण चढ़ाने का उद्योग करें ।

परिणत पद्मसिंह शर्मा का उत्तर ।

श्रीयुत “ राम ” महाशय ने इस दोहे की समालोचना के सम्बन्ध में मुझ पर और विहारी पर ये आक्षेप या पेटराज किये हैं कि मैंने ( १ )—“ जोश में



आकर अनुचित अत्युक्ति से काम लिया है"—उर्दू-वाले शेर के साथ न्याययुक्त तुलना नहीं की गई" (२)—“दोहे में जो कुछ कहा गया है वह साधारण बात है, मैंने उसे कोष्ठक (ब्रैकेट) के भीतर बढ़ा कर दिखलाया है” (३) यह दोहा सतसई के चौटी के दोहों में नहीं। इसे चौटी का दोहा बतलाना, “सतसई के गौरव को बढ़ाता नहीं किन्तु घटाता है”। और सबसे बढ़ कर यह कि (४)—“इस दोहे में एक बड़ा भारी दोष है, जिस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया”। यहाँ विहारीलाल “चूक गये” हैं—इत्यादि।

इन इलज़ामात की सफ़ाई में निवेदन है कि (१) उर्दूवाले शेर के साथ नितान्त न्याययुक्त तुलना की गई है। आपने व्यर्थ ही जोश में आकर उर्दूवाले शेर को दोहे पर तर्जिह देने की चेष्टा की है (२) जो कुछ दोहे में है (साधारण या असाधारण) वही कोष्ठक में दिखलाया गया है, एक मात्रा भी बढ़ाकर नहीं दिखलाई गई। कृपया फिर ध्यान से पढ़ जाइए। (३) यह दोहा बेशक सतसई के गौरव को बढ़ानेवाला और चौटी के दोहों में से है। यह कवितादेवी का मुकुटमणि है—प्रत्येक काव्य-मर्मज्ञ सहृदय इसका साक्षी है।—(४) यह दोहा सर्वथा निर्दोष है। बड़ा भारी तो क्या अणु मात्र भी कोई दोष इसमें नहीं है। इसमें विहारी की चूक बतलाना “सखुनफ़हमी आलमेबाला मालूमशुद्” की कहावत को चरितार्थ कर दिखाना है।

हमें यह धारणा हुई कि महाशय “राम”, जैसा कि उनके लेख से प्रकट है, उर्दू-फ़ारसी के उत्तम विद्वान् होंगे। अतएव, सम्भव है, फ़ारसी-साहित्य के अनुशीलन से ही कविता के विषय में उन्होंने ऐसी राय कायम की हो। यह भी सम्भव है कि फ़ारसी के साहित्य में उत्तम और निर्दोष कविता के कुछ निराले नियम हों, जिनके अनुसार विहारी का यह दोहा दूषित ठहरता हो। यही सोच कर हमने किसी उर्दू-फ़ारसी के सुप्रसिद्ध कवि से इस विषय में “न्याययुक्त तुलना” कराना उचित समझा। इस-

लिए शमशुलउल्मा मौलाना अलताफ़हुसेन हाली के पास उर्दूवाले शेर के साथ विहारी का दोहा तथा महाशय “राम” का ऐतराज भेज कर उनके प्रार्थना की कि इस पर अपनी पक्षपातरहित समीक्षा देकर अनुगृहीत करें। हमारे पत्र के उत्तर में “हाली” महोदय ने जो पत्र भेजा है उसे हाली नागराक्षरों में ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं।

## हाली साहब की सम्मति।

पानीपत,

६—दिसम्बर, सन् १९१०

जनाब मन—इनायतनामे का जवाब भेजने इस सबब से देर हुई कि मैं आँखों की शिकायत सबब लिखता पढ़ता बहुत कम हूँ। अक्सर तहरीरों में दूसरे का मोहताज रहता हूँ और बगैर सज्जुरत के जवाब नहीं लिखता।

विहारी सतसई के दोहे और एक उर्दू शेर मुताल्लिक़ जो आपने मेरी राय दरयाफ़ की है मेरे नज़दीक़ शेर को दोहे के मज़मून से कुछ निबत नहीं। शाइर कैसा ही नामुमकिन उलवकूत्र मज़मून बाँधे, जब उसके साथ गोया की कैद दी, फिर नामुमकिन नामुमकिन नहीं रहता।

मसलन—जैद बेऐब होने में गोया फ़रिश्ता या घोड़ा क्या है हवा है; या उसके दाँतों की बत्ती गोया मोतियों की लड़ी है; या उसका चहरा हवों रात का चाँद है। पस जब कि दोहे के मज़मून में ‘मानो’ यानी ‘गोया’ का लफ़्ज़ मौजूद तो उसमें कोई इस्तिहाला यानी\* अदमइमकान नहीं रहता। बरख़िलाफ़ इसके शेर का मज़मून बिल्कुल दायरे इमकान से ख़ारिज और नामुमकिन उलवकूत्र है। मोतरिज़ जिस दलील से शेर से मुताल्लिक़ हद्द दर्जे की नज़ाकत

\* अदमइमकान—असम्भवता।

† नामुमकिन उलवकूत्र—असम्भव, जो न हो सके।



करता है उससे नज़ाकत का सबूत नहीं बल्कि उसकी नफ़ी होती है :—

लखनऊ के एक नामवर शाइर ने अपनी मसनवी में बाज़ार की रैनक और चहल पहल इस तरह बयान की है कि “बाज़ार में आवे गौहर का छिड़काव होता है”—ज़ाहिर है कि इस बयान से बजाय इसके कि बाज़ार की रैनक साबित हो यह खयाल होता है कि वहाँ खाक उड़ती होगी, क्योंकि आवे-गौहर का छिड़काव खाक को दबा नहीं सकता। इसी तरह शेर मज़कूर का हाल है। क्योंकि—

तबाव में तसवीर का वोसा लेने से साहबों † तसवीर के होटों का नीला पड़ जाना बजाय इसके कि साहबे तसवीर की नज़ाकत साबित करे वोसा लेने वाले का जादूगर होना साबित करता है।

मोतरिज़ का यह ऐतराज़ भी सही नहीं है कि ज़ेवर चूँकि मसनूयी ‡ चीज़ है, इसलिए ब्रह्मा या कुदरत को उसका बनानेवाला करार देना ग़लत है। क्योंकि इनसान के तमाम मसनूयात § दरहकीकत खुदा के मसनूयात हैं। क्योंकि इनसान खुद उसका मसनूय है। इस पर दलील लाने की कुछ ज़रूरत नहीं है। क्योंकि हर ज़बान में ऐसी हज़ारों मिसालें मौजूद हैं कि इनसान के कामों को मजाज़न् खुदा की तरफ़ मनसूब किया गया है, और तसवीर और वेदान्तवाले तो इनसान के हर काम को मजाज़न् नहीं बल्कि हकीकतन् खुदाही का काम बताते

खाकसार दुआगो—

अलताफ़ हुसैन हाली ।

आशा है, हाली महोदय की इस विद्वत्तापूर्ण समाधान हो जायगा ।

\* नफ़ी—अभाव ।

† साहबे तसवीर—जिसका वह फ़ोटो है ।

‡ मसनूयी—कृत्रिम । § मसनूयात—रचनायें ।

अन्त में हम यह निवेदन कर देना आवश्यक और उचित समझते हैं कि विहारी के उक्त दोहे में स्पष्ट ही “उत्प्रेक्षालङ्कार” है। इसमें किसी भी साहित्य-मर्मज्ञ को सन्देह नहीं हो सकता। हरि-प्रकाश-टीकाकार ने “मानहु” पद का अन्वय दोहे के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों जगह किया है। रसचन्द्रिका-टीकाकार ने “हेतूत्प्रेक्षा” बतला कर साफ़ही लिखा है कि “विधि भूषणों के पायन्दाज़ बनाने का हेतु (कारण) नहीं है। उसमें हेतु की सम्भावना की गई है। उसे यहाँ हेतु मान लिया गया है। इत्यादि। अभिप्राय यह है कि अपनी दी हुई अलौकिक सुन्दरता की रक्षा के निमित्त मानों भूषण भी स्वयं विधि ने ही प्रदान किये हैं। अर्थात् उसके भूषण भी दिव्य हैं। और, यह अलौकिक विधि-दत्त भूषण भी शरीर-सौन्दर्य के सामने ऐसे हैं जैसे मखमली फ़र्श के आगे नारियल का पायन्दाज़ !!!

## अफ़रीका के बौने ।



अफ़रीका के बौने आदमियों के बारे में स्क्रिबनर्स मैगैज़ीन नामक पत्र में स्टैनली साहब ने कुछ दिन हुए एक लेख प्रकाशित किया था। वह बड़ाही कौतूहलोद्दीपक है। अतएव हम उसका सारांश

सरस्वती के पाठकों को भी सुनाना चाहते हैं। स्टैनली साहब का वृत्तांत उन्हीं के मुख से सुनिषः—

हमने अफ़रीका महादेश के समस्त पर्वत, मरु-भूमि, वन, इत्यादि में बहुत वर्षों तक भ्रमण करने के बाद जो अभिज्ञता प्राप्त की है उसे अपने एक ग्रन्थ में प्रकाशित कर चुके हैं। अफ़रीका के बौनों के सम्बन्ध में हमारे मन में पहले साधारणतः कई प्रश्न उठा करते थे। ये बौने सचमुच मनुष्य श्रेणी के हैं या नहीं? मनुष्यों की तरह इनमें युक्ति, तर्क और चिन्ता-शक्ति है या नहीं? वे जो कुछ देखते हैं उसे प्रकाशित कर सकते हैं या नहीं?



अभिज्ञता प्राप्त करने पर हम इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि वानों में और हम में कोई विशेष भेद नहीं। जैसे हम विचार और वार्तालाप करते हैं वैसेही वे भी सोचते, विचारते और बातचीत करते हैं। डार्विन साहब कुछ ही क्यों न कहें, इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य सदा से मनुष्य है। वह बन्दर की औलाद नहीं। मनुष्य का अन्य जन्तुओं के साथ सदा से पार्थक्य चला आता है। प्राचीन काल में जब हमारे पूर्व पुरुष पर्वत-गह्वरों में वास करते और पेड़ की छाल पहनते थे तब भी उनमें और अन्य जीवों में बड़ा भेद था। हमने मिलान करके देखा है कि वानों की बुद्धि हम लोगों की बुद्धि से किसी तरह कम नहीं। युग-युगांतर से उनकी दशा ऐसी ही रही है। ईसा के चार सौ पैंतालीस वर्ष पहले, हिरोडोटस के समय में, इन लोगों की जैसी दशा थी वैसेही आज भी है। उस समय तथा उसके पहले वे पेलबर्ट भील के आस पास रहते थे। इन वाने आदिमियों का आविष्कार पहले पहल हिरोडोटस तथा ऐण्ड्रू बार्डिल ने किया था। अठारह सौ छिअत्तर ईसवी में हमने पहले पहल एक बाना मनुष्य देखा; परन्तु उसको अच्छी तरह न देख पाये। १८८१ ईसवी में, जब हम एमिल पाशा को छुड़ाने के लिए फ़ौज लेकर अफ़्रीका के जंगलों में गये थे, तब भिन्न भिन्न उम्र के कोई पचास वानों को वहाँ से पकड़ लाये थे। अफ़्रीका में इहूरियो और इतूरी नाम की दो नदियाँ हैं। इन्हीं दोनों नदियों के बीच के प्रदेश में वाने रहते हैं। इस प्रदेश का विस्तार कोई तीस हजार मील है। ऊपर लिखे हुए वानों को जब हमने पकड़ा था तब उनके बहुत से गाँव देखे थे और उनके सम्बन्ध में बहुत सी बातें भी जानी थीं। एक गाँव को पार करने में कोई डेढ़ दो घंटे समय लगता है।

जिन जंगलों में ये वाने रहते हैं उनके बाहर अपेक्षाकृत सुसभ्य कृषक बसते हैं। वानों की अपेक्षा वे ऊँचे, बलिष्ठ और सुन्दर होते हैं। शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए वे मनुष्यों के दाँत और बन्दरों

की हड्डियाँ आदि के माला बनाकर पहनते हैं। साधारण मनुष्यों की तरह वानों की उँचाई भी न्यूनाधिक होती है। वानों की अधिक से अधिक उँचाई पचास इंच होती है। सैकड़ों ऐसे भी जवान वाने देखने में आते हैं जो केवल तैंतीस इंच लम्बे होते हैं।

हमने पहले सुना था कि वाने-योद्धा खूब लम्बे दाढ़ी रखते हैं; पर अनुसन्धान से मालूम हुआ कि केवल एक को छोड़ कर और किसी के दाढ़ी नहीं है। उनके शरीर का चमड़ा इतना ढीला होता है कि सहज ही में उँगली से पकड़ कर खींचा जा सकता है।

अन्न, शस्त्र, गहना इत्यादि अपने इस्तेमाल के कोई भी पदार्थ ये स्वयं नहीं प्रस्तुत कर सकते वन के बाहर जो कृषक रहते हैं उन्हीं से ये लोग अन्य वस्तुओं के बदले में ये पदार्थ ले आते हैं, या चुरा लाते हैं। शहद, जंगली जानवरों का मांस व्याघ्रचर्म, पक्षियों के पर आदि ही इनके परिवर्तन मुख्य पदार्थ हैं। अन्य मांस जब नहीं मिलता तब लोग गढ़ा खोद कर हाथियों या जंगली भैंसों का शिकार करते हैं; और उनके मांस तथा हड्डियों के बदले में कृषकों से तीर-कमान, लोहे के गहने, कम्बु, तरकश, छुरे, थैले इत्यादि पदार्थ ले आते हैं। कच्चे पक्के केले तथा केले का मद्य ये लोग बहुत पसंद करते हैं। इसी मद्य को पीकर ये लोग आलस से नृत्य करते हैं। यही शराब इनकी विलासिता सामग्री है। ये लोग नाना प्रकार के जंगली फल खाते हैं। उनमें से कुछ ऐसे मीठे और मजेदार हैं कि पृथ्वी की कोई भी सभ्य जाति उनका आनंद कर सकती है। इसके सिवा, जिन फलों को ये खाते हैं उनमें से कोई कोई ऐसे विषाक्त भी होते हैं यदि कोई अन्य मनुष्य उनको खा ले तो तुरन्त ही मर जाय। मांस को ये अच्छी तरह पका कर खाते; केवल उसको सेंक लेते हैं। नहीं कह सकते कि ये उसको पकानाही नहीं जानते, या शायद कच्चाही मांस अच्छा लगता है। वाने लोग



संख्या ३ ]

को बड़े प्रेम से खाते हैं। हमने देखा है कि ये लोग कृत्र बोद कर मृत देह को उठा ले गये हैं। हमारे दल के लोगों को मार कर भी इन्होंने खाया है। एक दिन हमने देखा कि एक आहत स्त्री को घरे हुए कुछ बौने बैठे हैं और उसके चारों ओर अग्नि जल रही है। प्रत्येक बौने के हाथ में एक एक बर्तन है। उनके बैठने के ढंग से ही मालूम होता था कि उस स्त्री का मांस खाने का ये लोग बन्दोबस्त कर रहे हैं। हमने अपने क़ैदियों से पूछ कर निश्चय कर लिया है कि अफ़्रीका के बौने नर-मांस-भक्षी हैं।

बौने खेती नहीं करते और न कोई अन्य पदार्थ ही उत्पन्न करते हैं। वन के बाहर वाले कृषक तंबाकू, केला इत्यादि उत्पन्न करते हैं; उन्हीं को चुरा कर बौने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इन लोगों के अख-शख बरछे, तीर, कमान और छुरे हैं। धनुष के दोनों किनारों पर ये रेशम के फूल लगाते हैं और बीच में बन्दर की पूँछ बाँधते हैं। यह पूँछ धनुष को कड़ा बनाये रखने के लिए व्यवहार की जाती है। तीरों की लम्बाई कोई अठारह इंच होती है। इनका अगला सिरा विष से बुझा रहता है। इन तीरों को बड़ी सावधानी से छूना चाहिए; क्योंकि सूखा विष भी बड़ा भयानक होता है। इस विष के प्रयोग से बड़ीही भीषण-यन्त्रणा-दायक मृत्यु होती है। ईश्वर न करे किसी की मृत्यु इससे हो। इस विष से मरने की अपेक्षा अन्य सब प्रकार से मरना मनुष्य सादर स्वीकार कर सकता है। इस विष-प्रयोग की बात हम पहले न जानते थे। १८८७ ई० में इन बौनों के साथ एक क्षुद्र युद्ध में हमारे कई सिपाही सामान्य रूप से घायल हुए। हमने उनका उपचार इलाज किया; परन्तु तब भी वे न बच सके। यदि वे तीर विषाक्त न होते तो बिना किसी चिकित्सा के ही वे अच्छे हो जाते। घायलों में से कई एक धनुषकार रोग से पीड़ित होकर मरे। कई एक के आहत स्थान सड़ गये और उनकी बुरी मृत्यु हुई। जो लोग कुछ दिन बचे भी उनका रक्त ऐसा दूषित

हो गया कि वे अपने जीवन को बोझ समझने लगे। उनकी समझ में ऐसे जीवन से मृत्यु ही भली।

इस विष का प्रतीकार करनेवाली ओषधि हमने कोई एक साल में ढूँढ़ निकाली। बहुत परीक्षा करने के बाद यह मालूम हुआ कि आहत स्थान के निकट एमनकार्ब (Ammon Carb) ओषधि का प्रवेश करने से बड़ा लाभ होता है। ये लोग अपने विष को जिस वस्तु से तैयार करते हैं उससे डाकूर प्रोज़र ने स्ट्रोपांथिन (Stropanthin) नाम की एक ओषधि तैयार की है। इसकी  $\frac{1}{4}$  ग्रेन मात्रा व्यवहार करने से मृत्यु हो सकती है।

बौने मनुष्य दो भागों में विभक्त हैं। एक दल के लोगों का रंग कुछ कुछ लाल होता है; दूसरे दल-वाले बेहद काले होते हैं। दोनों ही दलवालों का मस्तक छोटा और ठुड्डी बड़ी होती है। उनके हाथ छोटे और चिकने तथा पैर टेढ़े होते हैं। तिस पर भी कितने ही बौनों का चेहरा खूबसूरत होता है।

बौनों के सरदार की एक स्त्री का रूप वर्णन करने योग्य है। उसके शरीर का रंग अत्यन्त उज्ज्वल था। वह बहुत गहने न पहने थी; केवल लोहे के कुछ बाले और नाक में नथ थी। उसके छोटे छोटे काले बालों में एक प्रकार का तेल लगा हुआ था। इससे उसके मुख का सौन्दर्य और भी बढ़ गया था। वह खूब शान्त थी। वह जिस कार्य पर नियुक्त थी उसको बड़े मनोयोग तथा अध्यवसाय के साथ करती थी।

यह हम लिख चुके हैं कि ये बौने सैकड़ों वर्ष से एक ही अवस्था में हैं। इसका कारण कदाचित् यह होगा कि ये सभ्य मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते। शिक्षा पाने पर ये लोग भी योरुप और अमेरिका-निवासियों की तरह सभ्य हो सकते हैं। एक चालीस वर्ष की उम्रवाली स्त्री हमारे दल में रहने से पाक-विद्या में ऐसी निपुण हो गई थी कि योरुप का कोई प्रथम श्रेणी का बाबर्ची भी उसका मुकाबला न कर सकता था। वह बहुत ही सफ़ाई से रहती,



साफ कपड़े पहनती, और कोई भी वस्तु बिना हाथ धोये न छूती थी। उसमें यदि कोई दोष था तो यह कि वह बड़ी वाचाल थी। वह अपनी जिह्वा को थोड़ी देर भी न रोक सकती थी। यह न समझिए कि वह कोई बुरी बातें कहती थी; उसकी बातें बड़ी ही रहस्य-पूर्ण होती थीं।

हमारे क़ैदियों में एक अठारह वर्ष का बालक भी था। वह बड़ा अल्पभाषी था। दिन रात वह अपने काम में ही लगा रहता था; किसी से बातचीत न करता था। यदि कोई उससे प्रश्न करता तो वह लज्जा के मारे मर सा जाता था। कोई उस पर यदि अत्याचार भी करता तो वह उसे चुपचाप सह-लेता था।

मतलब यह कि असभ्य बौने शिक्षा पाने पर थोड़े ही दिनों में सभ्य हो सकते हैं। यद्यपि वे अपने व्यवहार की एक भी वस्तु नहीं बना सकते तथापि उनमें अत्यन्त मनुष्यों की तरह सञ्ज्ञानता ज़रूर है। ये लोग प्रेम करना और प्रेम का बदला देना भी जानते हैं। ये बड़े ही साहसी तथा अध्यवसायी होते हैं। वन में सिंह और बाघ से भी नहीं डरते और चतुरता में चिम्पेंजी बन्दर को भी इनसे हार माननी पड़ती है। हमें योरपवालों के ऐसे बहुत से दृष्टान्त मालूम हैं जो जंगली भैंसों और हाथियों के द्वारा हत हुए हैं। पर ये क्षुद्र असभ्य बौने इन भीषण जन्तुओं को सहज ही में मार डालते हैं।

बौने लोगों के गाँव बड़े बड़े पेड़ों के नीचे होते हैं। हमने एक ऐसा गाँव देखा है। उसमें छियानवे घर थे। वे छोटे घर बहुत ही साफ़ सुथरे थे। चलने फिरने से बीच में जो रास्ता बन गया था वह पाँच छः फीट से अधिक चौड़ा न था। जिस गाँव का रास्ता जितना ही अधिक चौड़ा होता है उसकी बस्ती उतनी ही अधिक होती है। घर के दोनों ओर दर-बाज़े होते हैं। दरवाज़े तीन फीट से अधिक ऊँचे नहीं होते। आक्रमण के समय घर से बाहर भागने के लिए गुप्त द्वार भी होते हैं। गाँव के सब घर वृत्ताकार बने होते हैं और वृत्त के बीच में उनके

राजा या सरदार का घर होता है। राजा की चौकसी रखना प्रत्येक बौने का मुख्य कर्तव्य है। घरों की उँचाई चार फीट, लम्बाई आठ-दस फीट और चौड़ाई छः सात फीट होती है। पेड़ों के बड़े बड़े पेड़ ही उत्तम बिछौने समझे जाते हैं।

सवेरा होने पर प्रायः सभी बौने भोजन का सामग्री एकत्र करने के लिए घर से बाहर निकलते हैं। पहले दिन के बनाये हुए जाल और गदों के ढूँढ़ना ही उनका प्रथम कार्य होता है। घरों में लोग रह जाते हैं वह गाँव की रखवाली करते हैं।

इन बौनों के साथ कभी कभी बाहर रहनेवाले किसानों की लड़ाई हो जाती है। इसका कारण यह है कि ये लोग रात को उनके यहाँ से चीज़ें चुरा लेते हैं। इन लोगों में कोई नैतिक नियम न होने से चोरी करने में बड़ी सुविधा होती है। इन्हें ज्यों की त्यों चीज़ पसन्द आती है त्योंही ये उसे ले भागते हैं। इसीलिए किसान कहते हैं कि यह जाति पृथ्वी से लिखा मिट जाय तो अच्छा हो। बौने यदि अस्त्र शस्त्र सज्जित न हों तो कई मिल कर भी एक किसान का मुकाबला नहीं कर सकते। किन्तु यदि हाथ में अस्त्र हो तो एक बौना भी एक बड़े अस्त्रधारी योद्धा का सामना कर सकता है। हमारे दल का एक साहसवान बन्दूक धारी सिपाही एक दिन एक साधारण बौने का सामना न कर सका था। बौने सदा सतर्क रहते हैं। किन्तु हमारे सिपाही किसी को देख कर तुरन्त असावधान हो जाते हैं। इसीलिए वे मारे जाते हैं।

बौनों की देह से एक प्रकार की दुर्गन्धि आती है। इसलिए यदि वे कहीं आस पास होते हैं तो तुरन्त जान लिये जाते हैं।

कितनी शताब्दियों से ये लोग इस जंगल में रह रहे हैं, इसका निर्णय करना कठिन है। किसी इतिहास-वेत्ता का अनुमान है कि ये लोग कोई सात-तीन हजार वर्ष से यहाँ रहते हैं। इतने दिन असभ्य अवस्था में रहने पर भी ये पृथ्वी से लुप्त नहीं हुए



अतएव यह आशा की जाती है कि ये भविष्यत् में उदयनारायण वाजपेयी ।

## हिन्दी का व्याकरण ।

हिन्दी की इतनी उन्नति होने पर भी आज तक हिन्दी में न तो हिन्दी का व्याकरण ही लिखा गया और न ( उससे कठिन ) उसका इतिहास ही बना । यद्यपि ये दोनों काम एक प्रसिद्ध सभा द्वारा हो रहे हैं तो भी ये काम एक ही शिक्षित महाशय की शक्ति के बाहर नहीं हैं । विद्यार्थियों ने हिन्दुस्तान-सम्बन्धी अनेक विषयों के साथ साथ अपनी भाषा में हिन्दी-साहित्य का इतिहास और उसका व्याकरण भी यथोचित पूर्णता से लिखा है; पर हम लोग उस आधार पर भी कुछ न कर सके । हमसे कई लोगों ने यह पूछा कि हिन्दी में ऐसा साहित्य-संग्रह और व्याकरण बताओ जो एक ० ५० के दर्जे में पढ़ाया जाय । पाठक-गण कदाचित् इस प्रश्न का उत्तर दे सकेंगे ।

हिन्दी के व्याकरण जो हिन्दी में पहले पहल लिखे गये हैं वे बहुधा पादरी लोगों ने लिखे हैं । हम लोग “भाषा-भास्कर” की निन्दा किया करते हैं; पर उसके सत्र आज तक “भाषा-प्रभाकर” में पाये जाते हैं । साहित्य के आधार से व्याकरण लिखना हम लोगों को तना कठिन हो रहा है कि पण्डित केशवराम भट्ट को अपनी पुस्तक में उर्दू शायरों के उदाहरण देने पड़े हैं । अब यहाँ यह संदेह हो सकता है कि क्या हिन्दी-रचना अभी इतनी स्थिर नहीं है कि उसका व्याकरण लिखा जा सके; अथवा कविता के रस में भ्रम होने से हम लोगों को व्याकरण तलछट के समान दिख पड़ता है । जो हो, पर, व्याकरण के बिना हिन्दी की शोभा फीकी है और शिक्षित हिन्दुस्तानियों के लिए यह कलंक की बात है । बंगाली और मराठी

भाषाओं में एक आने से लेकर सोलह आने व्याकरण अँगरेजी और देश-भाषा में लिखे हुए पाये जाते हैं; पर हिन्दी में ऊँची कक्षाओं में भी “बालबोध व्याकरण” पढ़ाया जाता है । हाल में “वर्तमान अँगरेजी-व्याकरण के ढंग पर” लिखा हुआ एक और व्याकरण प्रचलित हुआ है जो उसी प्रकार काम दे रहा है । पाठ्य पुस्तकें नियत करनेवालों को विवश हो कर व्याकरण के नाम से कोई न कोई पुस्तक चुननी ही पड़ती है ।

इस लेख में हम व्याकरण की पुस्तकों के विषय में कुछ न कह कर उसके वाद-ग्रस्त विषयों का उल्लेख करते हैं; और हमें इस बात की आशा है कि हिन्दी-व्याकरण लिखनेवाले इसका निर्णय करेंगे । कुछ उदाहरण अशुद्ध भाषा के भी दिये जायेंगे ।

(१) राजा का बहुवचन—कई पुस्तकों और पत्रों में ‘राजे’ शब्द पाया जाता है । आगरे और दिल्ली की बोली में ‘राजे’ शब्द नहीं आता है । प्रेमसागर और परीक्षा-गुरु इसके लिए प्रमाण हैं । राजा शिव-प्रसाद ने भी ‘राजे’ कभी नहीं लिखा । आज तक की छपी व्याकरण-पुस्तकों में भी राजा का बहुवचन ‘राजे’ नहीं बताया गया । उर्दू में भी ‘राजे’ नहीं होते । तो क्या अब इस रूपान्तर को एकदेशीय प्रयोग कहना चाहिए ? व्याकरण बहुधा लिखी हुई भाषा पर से बनता है । और लिखने की तथा बोलने की भाषाओं में प्रायः सभी कहीं अन्तर हुआ करता है । ऐसी अवस्था में “राजे” लिखना ठीक है या नहीं ? और यह नया रूपान्तर केवल लेखकों की भूल के कारण व्याकरण में लिया जाना चाहिए या नहीं ? काल पाकर ‘राजे’ प्रबल होकर ‘राजा’ को कुछ न समझेंगे । यहाँ उन नियमों के बताने की आवश्यकता नहीं है जिनके कारण ‘घोड़ा’ का ‘घोड़े’ हो जाता है; पर ‘पिता’ का ‘पिते’ नहीं होता । मेरा मत यह है कि “दिल्ली और आगरे की खड़ी बोली” के अनुसार ‘राजे’ अशुद्ध है ।

(२) भाववाच्य—हिन्दी में अकर्मक-क्रियाओं का कर्मवाच्य रूप पाया जाता है और उनके साथ



कोई कर्त्ता नहीं रहता । इस रूप को भाववाच्य कहते हैं । इस रूप से बहुधा अशक्यता का बोध होता है ; जैसे, मुझसे उठा नहीं जाता । कभी कभी कर्मवाच्य में भी यही अर्थ रहता है ; जैसे, मुझसे उसका दुख न देखा गया । यहाँ तक तो सब बातें व्याकरण की हैं । अब हिन्दी में कहीं कहीं एक निराला ही भाववाच्य पाया जाता है, जिसका किसी व्याकरण में पता ही नहीं लगता । लेखों में भी विशेष लोग और विशेष स्थान ही इसके जन्मदाता हैं । वह भाववाच्य यह है—“इसके पीछे नौकर को बुलाया गया” । जान पड़ता है कि जल्दी के कारण शब्दों का परस्पर सम्बन्ध ध्यान में न रहने से इस प्रयोग की सृष्टि हुई है । हमने एक व्याकरण की प्रस्तावना में यह रचना देखी ; पर वाच्य के प्रकरण में उसके विषय में कुछ भी लिखा हुआ न पाया । इससे यह अनुमान होता है कि लोग ऐसा बोलते हैं और लिखते भी हैं ; पर उसे व्याकरण में स्थान पाने के योग्य नहीं समझते । यह वाच्य बहुधा उपन्यासों में मिलता है, जिनके लेखक वर्णन में तलोंन होकर कभी कभी वाक्यों का सिर-पैर भूल जाते हैं । क्या यह वाच्य भी व्याकरण में लिया जाय ?

( ३ ) कर्मणि प्रयोग—यह विषय व्याकरणों में इस नाम से बहुधा नहीं मिलता । भाषाभास्कर में केवल एक जगह इस सम्बन्ध में “प्रयोग” शब्द नाममात्र के लिए आया है । अँगरेजी में हार्नली ने जो गौड़-भाषाओं का व्याकरण लिखा है उसमें यह विषय समझाया है और “प्रयोग” शब्द के विषय में लिखा है कि ये नाम देशी हैं । जिस प्रयोग का वर्णन हम यहाँ करते हैं उसका उदाहरण यह है—मैंने आपकी बात सुनी । यहाँ पर कर्म के लिंग और वचन क्रिया के अनुसार होने से इस रचना को कर्मणिप्रयोग कहते हैं । मराठी में यह विषय आता है और हरि गोपाल पाध्ये की “भाषातत्त्वदीपिका” में मराठी के अनुसार इसका वर्णन हिन्दी में किया गया है । इस विषय में जो भूल होती है उसके कई उदाहरण एक बार सरस्वती में सत्यहरिश्चन्द्र और

मुद्राराक्षस से दिये गये थे । लव-कुश चरित में इस कई उदाहरण हैं जो “छत्तीसगढ़-मित्र” में बताये गये थे ; जैसे,

मैंने टिप्पणी भी लिख दिया है ।

अस कहि सकल कथा तेहि केरी ।

कह्यो कीश रिस रोकि घनेरी ” ॥

“युद्धाज्ञा सिय सों बहुरि पाये लव रणधीर”

ऐसी रचना सब जगह नहीं पाई जाती । राधा शिवप्रसाद ने जिस काशी में रह कर ऐसी भाषा नहीं लिखी उसी पुरी से ऐसी भाषा का देशान्तर में प्रचार होना बड़े ही अचरज की बात है । ये बातें छपने में हो जाती हैं तो फिर उसके लिए कुछ उपाय ही नहीं है ! क्या इस रचना के समर्थन में भी व्याकरण में एक नियम बढ़ाना पड़ेगा !!!

( ४ ) स्त्रीलिंग हाथी—किसी किसी ( बनारसी ) व्याकरण में हाथी स्त्रीलिंग लिखा है ; क्योंकि लोग उसे वहाँ स्त्रीलिंग बोलते हैं । बुंदेलखंड के कुछ भागों में ‘मोर’ भी स्त्रीलिंग है ; पर व्याकरणों में ‘मोर’ पुल्लिंग और ‘मोरनी’ स्त्रीलिंग लिखा जाता है । क्या हिन्दी का व्याकरण बनारसी हिन्दी अनुसार होना चाहिए ? या यह समझना चाहिए कि बनारसी लोग शुद्ध हिन्दी नहीं बोलते ? ‘हाथी’ शब्द सब जगह स्त्रीलिंग नहीं है ; क्योंकि संसार में सब से बड़े जन्तु का लिंग जानने में सब को कठिनाई नहीं पड़ती । किसी पुस्तक में भी हाथी स्त्रीलिंग नहीं है ; तो फिर बोलने की भाषा को, और तिस भाषा को केवल एक देशी भाषा को, इतना मान क्यों दिया जाय ? देश-भेद के कारण भाषा कई प्रकार की अवश्य होती है ; पर सब लोग कई कारणों से एक विशेष स्थान की भाषा को प्रमाण मान कर उसी के अनुसार व्याकरण लिखते हैं । उर्दू में भी दिल्ली के लखनऊ ही प्रमाण हैं ; क्योंकि इन दो स्थानों में भाषा को राजाश्रय प्राप्त था और लेखकों की संख्या अधिक थी । उर्दू में जब किसी शब्द के विषय या किसी रचना के सम्बन्ध से विवाद होता है तो यही पूछा जाता है कि यह बात किसके “कलाम”



में आई है। हिन्दी का विस्तार बहुत है; इसलिए इस भाषा का कोई माननीय रूप अवश्य निश्चित होना चाहिए। यदि ऐसा न होगा तो सब को “हमने आपकी बात नहीं सुना” लिखना पड़ेगा, और फिर इस बात की खोज में रहना पड़ेगा कि सब प्रदेशों के सब रूप किस पत्र में इकट्ठे मिल सकेंगे। समा-लोचना के अभाव से तो यहाँ तक हुआ है कि भूलों से भरी हुई हिन्दी पुस्तकें भी ऐसी ऊँची जगह पहुँच गई हैं जहाँ पर विद्या का अंत हो जाता है और भाषा के भगड़ालू लोग भाँक तक नहीं सकते।

(५) कोई कोई ‘चाहिये’ का रूप ‘चाहिए’ लिखकर उसका बहुवचन चाहिए लिखते हैं, यद्यपि यह शब्द अव्यय-रूप है। ‘लड़की’ का बहुवचन कहीं लड़किये और कहीं ‘लड़कियाँ’ लिखा जाता है। ‘मिलाया’ का स्त्रीलिंग रूप कोई मिलाई और कोई ‘मिलायी’ लिखते हैं। कोई ‘जावे’ और कोई ‘जावै’ लिखते हैं। इन सब उदाहरणों में यह नहीं जान पड़ता कि ये रूप उच्चारण के अनुसार होते हैं अथवा इन रूपों के अनुसार उच्चारण करना पड़ता है।

(६) “कटू ने विनता को दासी बना ली” — इस प्रकार के वाक्यों में बहुधा भूलें होती हैं। और ये भूलें प्रायः सभी स्थानों में पाई जाती हैं। ऊपर के उदाहरण में दो कर्म हैं। जब सकर्मक क्रिया में एक ही कर्म रहता है और उसकी विभक्ति प्रकट रहती है तब अप्रधान कर्ता के साथ क्रिया अन्य पुरुष पुल्लिंग एकवचन में रहती है; जैसे, “रानी ने सहलियों को बुलाया”। इस नियम के अनुसार ऊपर के वाक्य की क्रिया मुख्य कर्म “विनता को” के कारण “बना लिया” होनी चाहिए; पर उसके साथ एक दूसरा कर्म “दासी” है जो क्रिया के निकट है और स्त्रीलिंग है। इससे “बना ली” भी ठीक जान पड़ता है। इसी प्रकार का उदाहरण “गाड़ी को खड़ा करो” है। इस वाक्य को कोई “गाड़ी को खड़ी करो” कहते हैं। एक और

वाक्य हम इसी प्रकार का लिखते हैं। साधु ने स्त्री को रानी समझा (समझी?) इस वाक्य में कठिनाई यही है कि क्रिया किस कर्म के अनुसार होनी चाहिए।

(७) अब हम कुछ भूलें एक हिन्दी मासिक पत्र से उद्धृत करते हैं। यह पत्र नागपुर के कृषि-विभाग से प्रकाशित होता है और ६ वर्ष से मध्य-प्रदेश के किसानों को शिक्षा दे रहा है। ये भूलें छठी पुस्तक के आठवें नम्बर में हैं। इस पत्र की भाषा के विषय में, जहाँ तक जाना गया है, आज तक किसी ने कुछ नहीं लिखा।

(१) सुधारण करने की एक रीति है कि जो साथी होकर खर्च की नहीं है और वह हर एक किसान के ताकद के बाहर नहीं है।

(२) कन्हार यह काली नरम ज़मीन होती है।

(३) सिंचाई के न होने से यहाँ की रैयत को जो बुरा अनुभव आया है उस पर से उन्होंने यह सिखापन लिया है कि बुरे सालों में अगर किसी बात की वे आशा कर सकते हैं तो वह केवल प्राण बचाना यही है।

(४) इन लोगों को कामदार यह नाम दिया गया है।

(५) शर्त यह रहती है कि एक साल के आखीर में उतनाही बीज उसने वापिस ला देना चाहिये।

(६) यह काम सरकार का न रहना चाहिए कि वे बीज पैदा करने के लिये खेतियाँ रखे।

इन उदाहरणों से दो बातें जान पड़ती हैं (१) अंगरेजी का जो अनुवाद होता है वह शब्द-प्रति-शब्द रहता है (२) अनुवाद करनेवाला हिन्दी नहीं जानता और उसकी मातृ-भाषा कदाचित् मराठी है। प्रायः इसी प्रकार की भाषा उन प्रश्न-पत्रों में रहती है जो हिन्दी-नार्मल-स्कूल के विद्यार्थियों की परीक्षा में दिये जाते हैं। भाषा और व्याकरण का संहार इससे अधिक और क्या होगा?

(८) एक व्याकरण में, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, ‘किन्हीं ने’, ‘किन्हीं को’, ‘किन्हीं से’,



आदि रूप दिये हैं। पुस्तक में इन शब्दों के उदाहरण वाक्य बनाकर नहीं लिखे गये। इसलिए हम, यहाँ पर, वाक्यों में उनका प्रयोग करते हैं।

यह काम किसी ने नहीं किया।

यह काम किन्हीं ने नहीं किया।

यह पुस्तक किसी को दे दो।

यह पुस्तक किन्हीं को दे दो।

व्याकरण की बहुत सी पुस्तकों में लिखा है कि 'कोई' शब्द बहुवचन में घटित नहीं होता और साहित्य में भी इस प्रकार के उदाहरण नहीं मिलते। बोलने में भी ऐसी रचना नहीं पाई जाती। ऐसी अवस्था में यह रूप कहाँ से आया, इसका निर्णय कठिन है। जो लोग हिन्दी का शुद्ध व्याकरण लिखते हैं वे बहुधा साहित्य पढ़ कर नियम बनाते हैं। वे अँगरेजी के व्याकरण का हिन्दी में अनुवाद कर उस अनुवाद को हिन्दी व्याकरण नहीं कहते।

(९) "राजा को नौ पुत्र थे"। इस प्रकार के कई उदाहरण भारतेन्दु की पुस्तकों में पाये जाते हैं। कोई कोई लेखक "को" के बदले "के" लिखना अधिक शुद्ध समझते हैं। "उसका एक पुत्र था", "उसको एक पुत्र था" और "उसके एक पुत्र था"—इन एकार्थी तीन वाक्यों में थोड़ा सा अर्थ-भेद है और उस पर ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार के वाक्यों में 'को' का उपयोग मराठी में बहुत होता है; जैसे, त्याला एकंदर सहा मुलें आहेत। संभव है कि मराठी का प्रभाव हिन्दी पर पड़ा हो।

(१०) क्रियार्थक संज्ञा—इसके सम्बन्ध में तीन प्रकार की रचना देखने में आती है:—तुमको यह बात कहना पड़ेगा; तुमको यह बात कहना पड़ेगी; तुमको यह बात कहनी पड़ेगी। इस प्रकार के कई उदाहरण पुस्तकों में मिलते हैं। जो लोग पहले उदाहरण का उपयोग करते हैं वे "बात-कहना" को एक शब्द मानते हैं और अंतिम शब्द के अनुसार क्रिया रखते हैं। दूसरे उदाहरण ये हैं:—बातें करना कठिन थीं; बातें करनी कठिन थीं; बातें करना कठिन था। यहाँ दो उदाहरणों में कर्त्ता 'बातें' हैं और पहले

उदाहरण में क्रियार्थक संज्ञा विशेषण के समान आकर 'बातें' संज्ञा से लिंग में अन्वित होती है।

कामताप्रसाद गुरु।

## विविध विषय।

### १—आसमानी युद्ध।



बड़े बड़े ज्ञानियों और विज्ञानियों का यह खयाल है कि हवा में उड़नेवाले विमानों या जहाजों का खूब प्रचार होने से संसार में शान्ति का निकल आना एक राज्य हो जायगा। फिर लड़ाइयाँ न होंगी। खून का बहाव

न हो जायगा। कोई देश किसी अन्य देश को व्यर्थ छेड़ने की मूर्खता न करेगा। परन्तु यह जल्द होगा तब। इस समय तो बिलकुल ही उलटे सामान हो रहे हैं। कभी यह पढ़ते हैं कि किसी ने तीर की शकल की एक ऐसी कल बनाई है जो आसमान पर बहुत ऊँचे चढ़ जायगी और वहाँ से नीचे, थोड़ा उँचाई पर उड़नेवाले, हवाई जहाजों पर गिर कर उन्हें चकनाचूर कर देगी। कभी यह पढ़ते हैं कि ऐसी तोपें तैयार हुई हैं जिनका मुँह आसमान की तरफ रहेगा और जिनसे छोड़े गये गोले उड़नेवाले जहाजों को तोड़ कर एक क्षण में नीचे गिरा देंगे। कभी यह पढ़ते हैं कि हवाई जहाजों पर खुद ही तोपें रहेंगी और वे एक मिनट में सौ सौ पचास गोलों की बाढ़ें दागेंगी। सो शान्ति तो दूर रही, अशान्तिही उत्पन्न करने की सामग्री इकट्ठी की जा रही है। कुछ भी हो, आसमान से गोले और गोलियों का छोड़ा जाना बड़ा ही भयङ्कर होना है। एक हजार गज की उँचाई से छोड़ी गोलियों का वेग—एक सेकंड में चार सौ फुट की गैली के हिसाब से भी अधिक होगा। इस समय तक जितनी अच्छी अच्छी हवाई कलें बनी हैं चार हजार गोलियाँ रह सकती हैं। यदि इस



संख्या ३ ]

की पचास कलों से गोलियों की बाढ़ दागी जाय तो लाखों सेना का नाश ज़रा ही देर में हो सकता है । इस दशा में आक्रमण की गई सेना यदि ज़मीन से ऊपर की ओर फ़ायर करेगी तो उसकी गोलियों की बाढ़ लौट कर उलटा उसी पर गिरेगी और उसी का संहार करेगी । फ़्रांस के पास इस समय कोई बालीस पचास ऐसे हवाई जहाज़ हैं जिनसे चार चार पाँच पाँच सौ गोलियाँ दागी जा सकती हैं । वहाँ के फ़ौजी अफ़सरों का यह ख़याल है कि इन इतनी कलों के कारण उनकी सेना का बल इतना बढ़ गया है जितना कि डेढ़ लाख योद्धा और रखने से भी न बढ़ता । शायद वह दिन दूर नहीं है जब ये कलें बड़ी बड़ी सेनाओं का रखना बिलकुल ही बर्‍या साधित कर देंगी ।

## २—‘ज़’ का उच्चारण ।

पण्डित माधव राव आठले, भेलसा से लिखते हैं:—

हिन्दी भाषा की लिखावट और उसका उच्चारण, संस्कृत भाषा की लिखावट और उच्चारण से सब प्रकार मिलता है । अतएव संस्कृत भाषा के उच्चारण के नियम हिन्दी भाषा में भी चरितार्थ हो सकते हैं । जिन जिन अक्षरों का संयोग संयुक्ताक्षर के उच्चारण में मालूम होता है, उन उन अक्षरों को मिलाकर संयुक्ताक्षर लिखा जाता है । परन्तु वर्णमाला में क्ष, ज और ञ ये तीन संयुक्ताक्षर ऐसे हैं कि जिन अक्षरों का संयोग इनके उच्चारण में मालूम होता है वे अक्षर इनमें बिलकुल नहीं दिखाई देते । इसलिए ये अक्षर वर्णमाला में जोड़ दिये गये हैं । ऐसा मेरा मत है । अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिस प्रकार क्ष का उच्चारण ‘क्ष’ के सदृश होता है, क्योंकि वह क और ष के संयोग से बना है; और ज का उच्चारण ‘ज’ के सदृश होता है, क्योंकि वह त और र के संयोग से बना है; उसी प्रकार ञ का उच्चारण ‘ञ’ के सदृश होना चाहिए क्योंकि वह ज और ञ के संयोग से बना है । फिर क्ष का उच्चारण ‘क्ष’ के सदृश क्यों नहीं होता ?

आज कल इसका उच्चारण महाराष्ट्र लोग प्रायः ‘दून्ज’ और कोई कोई ‘गज’ करते हैं । परन्तु शुद्धता के संबंध में विचार किया जाय तो ‘दून्ज’ और ‘गज’ ये दोनों उच्चारण अशुद्ध मालूम होते हैं, क्योंकि जिस अक्षर का जो स्थान हो उस अक्षर का उच्चारण उसी स्थान से होना चाहिए—यह प्रसिद्ध व्याकरणप्रणेता पाणिनि मुनि का मत है । ञ बना है ज और ज के संयोग से । इससे इसका स्थान तालु है । दून्ज उच्चारण करने से दंत और गज उच्चारण करने से कण्ठ—ये स्थानविशेष आते हैं । इसलिए ञ का उच्चारण ‘दून्ज’ या ‘गज’ के सदृश करना अशुद्ध है । मेरी राय में इसका शुद्ध उच्चारण ‘ञ’ है ।

मेरी यह इच्छा है कि इस अक्षर के उच्चारण के विषय में कोई महाशय निर्णयात्मक उत्तर दें तो मैं उनको बहुत धन्यवाद दूँ ।

## ३—मिट्टी की ईंटों पर ग्रन्थ ।

पहले कागज़ बनाना लोग न जानते थे । भोजपत्र और ताड़ के पत्तों पर लिखने की तरकीब भी न मालूम थी । उस समय मिट्टी की ईंटों पर ग्रन्थ लिखे जाते थे । लिखे क्या जाते थे, उन पर खेदे जाते थे । ऐसे एक बहुत बड़े ग्रन्थ-समूह या पुस्तकालय का पता प्राचीन बाबुल के चालिडया प्रान्त में लगा है । लाखों ईंटें ज़मीन में गड़ी हुई मिली हैं । उन पर बत्तीस हजार लेख हैं । ग्रन्थ भिन्न भिन्न विषयों के हैं । छोटे छोटे बच्चों से लेकर वयस्क आदमियों तक के लिए रचे गये ग्रन्थ इस संग्रह में हैं । यह संग्रह कोई साढ़े चार हजार वर्ष का पुराना है ! इन लेखों से उस समय की लिपि, भाषा, व्यवहार और रीति-रस्स आदि अनेक बातों का पता लगाया जा सकता है । कितनेही पुरातत्त्वज्ञ इन लेखों को पढ़ने और उन्हें टीका-टिप्पणी समेत प्रकाशित करने का उद्योग कर रहे हैं । आशा है, इन लेखों की सहायता से दुनिया के बहुत पुराने समय का इतिहास मालूम हो जायगा ।



## ४—विलक्षण स्मरणशक्ति ।

लन्दन में लास्टन नाम का एक आदमी है । उसकी स्मरण-शक्ति बड़ीही विलक्षण है । अंगरेजी की “रिव्यू आन् रीव्यूज” नामक मासिक पुस्तक में लिखा है कि लास्टन को दुनिया भर की मुख्य मुख्य चालीस हजार घटनाओं की तारीखें याद हैं ! पूर्वोक्त मासिक पुस्तक के सम्पादक ने लास्टन की परीक्षा ली और जैसा वह दावा करता है वैसाही उसे पाया । इस अद्भुत स्मरण-शक्ति के आदमी को कोई १४०० लड़ाइयों की तारीखें याद हैं । किसी भी महत्त्वपूर्ण घटना का आप नाम लीजिए, वह तत्काल उसकी तारीख बतला देगा । हजारों तारीखें उसके सिर में भरी हुई हैं । आप उसे एक सौ घटनाओं की तारीखें आध घंटे में बतला दीजिए । बस इतनीही देर में वे उसके दिमाग ने नक़्श हो जायँगी । फिर आप जो तारीख जब चाहिए पूछ लीजिए । लास्टन ने अपना सिर बेच देने की नोटिस दी है । वह उसके लिए कम से कम १५००० रुपये माँगता है । इतने रुपये देने से, मरने पर, उसका सिर परीक्षा के लिए डाक़रों को मिल सकेगा । परीक्षा से वे इस बात की जाँच कर सकेंगे कि इसके सिर में है क्या बात, जो हजारों तारीखें इसे याद रहती हैं ।

## ५—जालन्धर का कन्यामहाविद्यालय ।

जालन्धर में जो कन्या-महाविद्यालय है उस पर सरस्वती में दो एक दफ़े लेख और नोट निकल चुके हैं । इस विद्यालय को स्थापित हुए १३ वर्ष हुए । इसकी गत वर्ष की रिपोर्ट देखने से जान पड़ता है कि यह दिनों दिन उन्नति कर रहा है । जिन्हें इसकी बाबत कुछ विशेष जानना हो वे विद्यालय के मुख्याधिष्ठाता से नियमावली और रिपोर्ट आदि मँगा कर सब बातें जान सकते हैं । इस संख्या में इस विद्यालय की चिकित्सा-श्रेणी का एक चित्र प्रकाशित किया जाता है । यह १९०९ ईसवी का है । इस चित्र में जो लड़की बैठी हुई है उसका नाम है भगवान देवी । इस लड़की ने एक गरीब के घर जन्म पाया ।

पर अपनी विद्याभिरुचि से प्रोत्साहित होकर इसने एक सद्गृहस्थ के यहाँ नौकरी कर ली । इस तरह जीविका-निर्वाह का प्रबन्ध हो जाने पर यह इस विद्यालय में पढ़ती रही । इसे विद्यालय के खेलों से बड़ा शौक था । लुधियाने के एक सज्जन के साथ इसका विवाह हुए अभी सात ही आठ महीने हुए । अभी हाल की बात है, एक दिन एक चार भगवान देवी के घर घुसा । उस समय घर पर कोई पुरुष नहीं था । स्त्रियाँ कई थीं । पर चार को देख कर वे सब भाग गईं । भगवान देवी डरी नहीं । उसने एक डंडा उठाया और उससे चार की बेतरह खबर ली । चार ने जो माल असबाब चुराया था भगवान देवी ने सब उससे रखवा लिया और पुरुषों के आने तक घर से उसे निकलने भी नहीं दिया । इस कारण देवीजी की अखबारों में खूब स्तुति हो रही है । सचमुच ही भगवान देवी स्तुतिपात्र है ।

## ६—भारतीय गणित और ज्योतिष-शास्त्र का उद्धार ।

प्राचीन भारत में गणित और ज्योतिष-शास्त्र बड़ी उन्नत अवस्था में था । इन विषयों पर यहाँ के विद्वानों ने अनेक ग्रन्थ ऐसे लिखे हैं, जिनके जो के ग्रन्थ अन्यत्र नहीं मिलते । किन्तु कालक्रम से यह के लोगों का ध्यान इन शास्त्रों की ओर से हट जाने के कारण कितनेही ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गये हैं । हर्ष का विषय है कि उनके उद्धार का प्रयत्न हो लगा है ।

इस विषय में कासिम-बाज़ार के महाराज उद्योग प्रशंसनीय है । गत कई वर्षों से आप भारतीय गणित और ज्योतिष की उन्नति का प्रयत्न कर रहे हैं । आप चाहते हैं कि भारतीय गणित और ज्योतिष के इतिहास की खोज की जाय । कलकत्ते के विश्वविद्यालय को आप चार हजार रुपये सालाना हिसाब से पाँच वर्ष में बीस हजार रुपये देना चाहते हैं । इस रुपये से भारतीय गणित और ज्योतिष सम्बन्धी प्राचीन पुस्तकों की खोज की जायगी,



# सरस्वती



जालन्धर के कन्यामहाविद्यालय की प्रारम्भिक चिकित्सा-श्रेणी और डाकूर गणेशदास ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



संख्या

पर टीका

प्रकाशित

पुस्तकें

कन का

इस दान

७-गो

धोर

को अपने

होना वे

की सन

इसी चम

इनके इस्

एक और

न सभ्य

दक्षिणी

की वस्ती

एच० फा

लोग वेह

वाल कुछ

ज्ञान प्रदे

मुद्दों से

इनकी वा

अविचार

दिया । इ

सैलानिके

कि इन अ

कहाँ से

जानने के

बढ़ रही

वातें जा

शोषही इ

भारत

बहुत पुर

से शरीर



संख्या ३ ]

पर टीकायें लिखी जायँगी, फिर वे सटीक ग्रन्थ प्रकाशित किये जायँगे। इससे इन विषयों की संस्कृत-पुस्तकें लुप्त न रहेंगी और विद्वानों को उनके अवलोकन का अवसर मिलेगा। विश्वविद्यालय ने आपके इस दान और प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया है।

७-गोरे आदिमियों की एक नई जाति।

योरप और अमेरिका के सभ्य और शिक्षित लोगों को अपने गोरे होने का बड़ा गर्व है। गोरा चमड़ा होना वे अधिक बुद्धि, बल, पराक्रम और तेजस्विता की सनद समझते हैं। कालों पर प्रभुत्व करना भी वे इसी चमड़े की सफेदी का एक गुण मानते हैं। मानों इनके इस घमंड को निःसार सिद्ध करनेही के लिए एक और गोरी जाति का पता लगा है। यह जाति न सभ्य है, न शिक्षित है, न सम्पत्ति-शालिनी है। दक्षिणी अमेरिका के अगम्य जंगलों में, सभ्य समाज की बस्ती से हजारों कोस की दूरी पर, मेजर पी० एच० फासेट ने इस जाति का पता लगाया है। ये लोग बेहद गोरे हैं; पर वे डाढ़ी मूछ के हैं। इनके बाल कुछ कुछ सुखी लिये हुए हैं। अमेरिका के अमे-जान प्रदेश के असभ्य इंडियन इनके अस्तित्व को मुद्दों से मानते चले आते हैं। पर सभ्य गोरों को इनकी बातों पर विश्वास न आता था। उनका वह अविश्वास अब पूर्वोक्त मेजर महाशय ने दूर कर दिया। इस खबर ने योरप और अमेरिका के बड़े बड़े वैज्ञानिकों के कान खड़े कर दिये हैं। वे सोच रहे हैं कि इन असभ्यशिरोमणियों के शरीर पर गोरा चमड़ा कहाँ से आया? इन लोगों के विषय में विशेष बातें जानने के लिए सभ्य पण्डितों की उत्सुकता बेहद बढ़ रही है। इन नये गोरों की बस्ती में जाकर सब बातें जानने की तैयारियाँ हो रही हैं। सम्भव है, शीघ्र ही इनका विशेष वृत्तान्त प्रकाशित हो।

८-उपोषण-व्रत।

भारतवर्ष में उपोषण या उपास करने की प्रथा बहुत पुरानी है। आठवें पन्द्रहवें दिन उपवास करने से शरीर के भीतर इकट्ठा हुआ विकार प्रशमित हो

जाता है। पर अनाज की जगह पेट भर दूध बालाई खाना या फल-मूल आदि से आकंठ तृप्ति करना उपोषण नहीं कहलाता। उससे कोई लाभ नहीं। कुछ दिनों से पश्चिमी देशों में भी इस व्रत का आरम्भ हुआ है। इससे अन्यान्य विकारों के दूर होने के सिवा स्थूल-रोग को बहुत लाभ पहुँचता है। डाक्यूरो की राय है कि पाँच छः रोज़ से अधिक बिना खाये पिये कोई मनुष्य जीता नहीं रह सकता। परन्तु अमेरिका में एक अस्पताल है जहाँ उपोषण-व्रत के द्वारा रोगों की चिकित्सा होती है। वहाँ बीस बीस पच्चीस पच्चीस दिन तक तो साधारण आदमी उपोषण करते हैं। कुछ समय हुआ फासेल नाम के एक आदमी ने ९० दिन तक उपोषण-व्रत किया था। वह बेहद मोटा था। उसके शरीर में चर्बी का अत्यन्त आधिक्य था। उसकी यह शिकायत उपोषण से बिलकुल ही जाती रही। उपोषण से शरीर के धातुओं में समत्व आ जाता है। उपोषण के बाद शरीर ऐसा हलका और नीरोग हो जाता है जैसा कि माँ के पेट से बाहर आने के बाद होता है। परन्तु उस स्थिति को बनी रखने के लिए शराब पीना, तंबाकू पीना या खाना, और मनमाने खाद्य पदार्थ पेट में न भरते रहना चाहिए। संयम से रहना चाहिए। इस देश में भी उपोषण-व्रत की महिमा अब लोगों के ध्यान में आने लगी है। कई आदिमियों ने पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस दिन तक उपोषण करके लाभ उठाया है। इसमें मरने का डर नहीं रहता; परन्तु, हाँ, सावधानी से रहना चाहिए।

९-अंगरेजी-विश्वकोश का प्रकाशन।

यह विश्वकोश छप कर प्रकाशित होने पर है। इसके विषय में एक नोट जनवरी की सरस्वती में निकल चुका है। यह बड़ाही महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है। विद्या, विज्ञान और कला-कौशल आदि से सम्बन्ध रखने-वाली जितनी शाखायें हैं सबके विषय में आज तक जो कुछ मालूम हुआ है वह इस ग्रन्थ में आपको मिलेगा। सब मिलाकर इसकी २९ जिल्दें हैं। इसके



हर पृष्ठ में दो कालम हैं। कुल ग्रन्थ बावन हजार कालमों में खतम हुआ है। पन्द्रह सौ चुने चुने पण्डितों ने इसके भिन्न भिन्न लेखों को लिखा है। इसके यदि दस सफे आप रोज़ पढ़ें तो पूरा ग्रन्थ पढ़ने के लिए सात वर्ष चाहिए। इसमें जिन विद्वानों ने लेख दिये हैं उन्हें चौबोस लाख पैंतालीस हजार रुपया पुरस्कार देना पड़ा है। इस आवृत्ति के निकालने में कोई पचहत्तर लाख रुपया खर्च हुआ है। इसमें सैकड़ों पूरे पृष्ठ के और हजारों छोटे छोटे चित्र हैं। सब लेखों की संख्या चालीस हजार हैं। दो तरह के कागज़ पर यह ग्रन्थ छपा है। कुछ कापियों का कागज़ पतला है, कुछ का मोटा। जिल्द भी कई तरह की है। कोई चार सौ रुपये इसकी कीमत है। चाहे एक मुश्त दे दे, चाहे किस्तबन्दी करके थोड़ी थोड़ी। जो अँगरेज़ी जानते हैं और खर्च करने का सामर्थ्य रखते हैं उन्हें यह ग्रन्थ जरूर अपने संग्रह में रखना चाहिए। उसे देख कर उन्हें शायद कभी यह खयाल आ जाय कि हम लोगों की अपनी निजकी मातृ-भाषा में विश्वकोश क्या एक अच्छा शब्दकोश भी नहीं—यहाँ तक कि उसे बनाने की योग्यता रखनेवाले भी ढूँढ़ने पर नहीं मिलते।

### १०—साहित्यरत्नमाला।

कलकत्ते में जो नागरीप्रचारिणी सभा है उसके मन्त्री अपने १९।१, सूतापट्टी के आफ़िस से साहित्य-रत्नमाला नाम की एक मासिक पुस्तक आगामी चैत्र से निकालनेवाले हैं। इस पुस्तक के प्रत्येक अङ्क में ५६ पृष्ठ होंगे। इसमें अनेक भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रन्थों के अनुवाद क्रम क्रम से प्रकाशित हुआ करेंगे। हाजीबाबा, अपना सहारा, नेपालियन का जीवन-चरित और ध्रुव-लोक का शीतकाल आदि सात पुस्तकें पहले अङ्क में आरम्भ की जायँगी। कितनी ही पुस्तकें सचित्र रहेंगी। ऐसी उपयोगी मासिक पुस्तक का वार्षिक मूल्य केवल दो रुपये रक्खा गया है। हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि के इच्छुकों को चाहिए कि इस पुस्तक को एक बार अवश्य देखें।

### पुस्तक-परीक्षा।

१—श्रीशान्तिनाथ—महाकाव्यम्। श्रीमुनिभद्रसूरि-चित। श्रावक-पण्डित-हरगोविन्ददास और वेचरदास द्वारा संशोधित। पृष्ठ-संख्या १८ + ३५५। मूल्य रुपये। बनारस की जैन-यशोविजय-पाठशाला से। पुस्तक-मालिका निकलती है उसका यह बोस ग्रन्थ है। विक्रम संवत् १४१० में यह काव्य प्रकाशित हुआ था। इसके कर्ता मुनिभद्रसूरि ने पुस्तकालय एक प्रशस्ति लिखी है। तदनुसार आप फीरोजशाह बादशाह के बड़े कृपापात्र थे:—“श्रीपेरोजशाह महेंद्रसदसि प्राप्तप्रतिष्ठोदयः”। आपके गुरु गुरु भद्रसूरि महम्मदशाह बादशाह के कृपाभाजन थे बड़े पण्डित थे। बादशाह ने आपको बहुत कुछ देना चाहा। पर आपने न लिया। आपने कहा, मैं तपस्वियों को द्रव्य-ग्रहण करना मना है। इस संस्कृत-काव्य-ग्रन्थ में १९ सर्ग हैं। किसी किसी में दो दो तीन तीन सौ श्लोक हैं। काव्य मूल्य प्रकाशित हुआ है। कोई टीका नहीं। इससे थोड़ा संस्कृत जाननेवाले इससे विशेष आनन्द नहीं ले सकते। इसमें इसके नामानुसार शान्तिनाथ चरित है। महाकाव्य का लक्षणानुयायी बनाने लिए इसमें ऋतु-नगर-उपवनविहार-पर्वत-सुरादि का भी वर्णन है। “तुष्करयमकालङ्काम् सर्ग” से भी महाकवि मुनिभद्र ने इस ग्रन्थ महाकाव्य पदवी चरितार्थ की है। इसमें सन्देह न कि यह महाकाव्य है। परन्तु दुःख के साथ कह पड़ता है कि इसके कर्ता महाकवि मुनिभद्रसूरि धार्मिक दुराग्रह की कमी न थी। उन्होंने काव्य दास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों के विषय में एक जगह इस काव्य की प्रशस्ति में लिखा है—

मिथ्यावाञ्छितकाव्यपञ्चकमिदं व्याचक्षते सूरयः

आपका कहना है कि पण्डित लोग (शायद पण्डितों से ही मतलब है) इन पञ्च महाकाव्यों मिथ्यात्व दोष से दूषित बतलाते हैं। उन्हें पढ़ाते हैं सिर्फ व्युत्पत्ति के लिए। पर शान्तिनाथ



संख्या ३ ]  
इस चरित में वह दोष नहीं । इससे इसे पढ़ने से  
व्युत्पत्ति भी हो सकती है और पुण्य भी । इस पर  
हमारी प्रार्थना है कि सूरिवर्य्य मुनिभद्रजी ने जो इस  
काव्य में नदी-पर्वत-समुद्र और उपवनविहार आदि  
का वर्णन किया है क्या वह साद्यन्त याथार्थ्याञ्चित  
है ? क्या उसमें कपोल-कल्पना से कुछ भी काम  
होया है ? शान्तिनाथजी के चरित से  
लिया गया ? शान्तिनाथजी के चरित से  
सम्बन्ध रखनेवाले ताम्रपत्रों और शिला-लेखों ही के  
आधार पर क्या उन्होंने इस महाकाव्य को बनाया  
है ? यदि नहीं, तो वे कालिदास आदि की कक्षा से  
वर्जित नहीं हो सकते । हाँ, यह हो सकता है कि  
किसी का आसन मिथ्यात्व-सम्बन्ध में कुछ ऊँचा हो,  
किसी का नीचा । परन्तु, कुछ भी हो, हमें तो इस  
शान्तिनाथ महाकाव्य की अपेक्षा मिथ्यात्व-दोषपूर्ण  
पूर्वक पंच महाकाव्य ही अधिक अच्छे मालूम होते  
हैं । वाज्र आये हम मुनिभद्रजी के \*‘राट्रप्रिया’,  
तपःकृतु †’ और ‘भवेऽज्रेतः ‡’ आदि सुन्दर-सुहा-  
वने पदों से ।

जैनों के कितनेही ग्रन्थों का संशोधन और  
प्रकाशन पाश्चात्य पण्डितों ने किया है । जैकोबी  
साहब भी उनमें से एक हैं । आपने एशियाटिक  
सोसायटी के लिए हेमचन्द्राचार्य के परिशिष्टपर्व  
नामक ग्रन्थ का सम्पादन किया है । उसमें उन्होंने  
नामक की कुछ भूलें दिखलाई हैं । इस कारण,  
शान्तिनाथ महाकाव्य के संशोधकों ने इस पुस्तक  
की रचने की भूमिका में उन्हें बेतरह आड़े हाथों लिया  
है और उनकी दिखलाई हुई प्रत्येक अशुद्धि को शुद्ध  
किया है । यहाँ तक कि ऐसे वृत्त को भी  
जिसके तीन चरणों में आठ आठ और एक में नौ  
चरण थे, उन्होंने ठीक बतलाया है । प्रमाण इस  
प्रकार के प्रमाणोद्धृत पद्य भी किसी ने आँख मूँदकर  
नहीं देखे ।

आपने शिवतोऽवतीर्णके जीव एव विजयस्य राट्रप्रिया—पृष्ठ १०७  
उत्पत्त्या जलभूतसमयोऽन्यदा तपःकृतु गमयन्विषयाद्वहिः—पृष्ठ ११२  
मनात् चर्का भविता भवेऽज्रेतः पञ्चमे पञ्चम एव चर्का—पृष्ठ १६१

लिखे हों तो ? मतलब यह कि हमारे पण्डितों से कभी  
गलती होती ही नहीं । खैर, न होती होगी । परन्तु  
आपको इन पाश्चात्य पण्डितों पर इतना खफा न होना  
चाहिए । उन्होंने आपका कुछ काम भी तो किया है ।  
क्या आप कह सकते हैं कि उनके कारण आपकी  
हानिही हानि हुई है ; लाभ कुछ भी नहीं हुआ ?

अपनी भूमिका में इस महाकाव्य के संशोधकों  
ने व्यंग्य से अन्य-धर्मवालों पर भी आक्षेप किये हैं ।  
हमारी प्रार्थना है कि आप लोग इस समय काशी में  
हैं ; गिरिनार, पाटन या सम्मेद-शिखर पर नहीं ।  
अतएव कोई काम ऐसा न करना चाहिए जिससे  
किसी को व्यर्थ कष्ट पहुँचे । औरों पर चोट-चपेट  
किये बिना भी तो आप अपना काम कर सकते हैं ।

इस महाकाव्य में एक सर्ग-सूची की कमी है ।



२—सुलभ व्याकरण । यह हिन्दी का सुलभ व्याकरण  
है । इन्दौर-राज्य के मदरसों की चौथी और पाँचवीं  
दफ़ा के लिए बना है । इसे इन्दौर के पण्डित कन्हैया-  
लाल उपाध्याय ने बनाया और बंबई के निर्णयसागर  
प्रेस में छपाया है । छोटे साँचे के ११० पृष्ठ इसमें  
हैं । मूल्य साढ़े छः आने रक्खा गया है । पुस्तक पर  
पतली जिल्द है । छपाई साफ़ और सुन्दर है । इस  
व्याकरण की रचना नये ढंग से की गई है । कुछ  
प्रकरण अँगरेजी व्याकरण की प्रणाली पर लिखे गये  
हैं । थोड़े में बहुत बातें बतलाने का प्रयत्न किया  
गया है । उपाध्यायजी को उसमें बहुत कुछ सफलता  
भी हुई है । पुस्तक की भाषा में कहीं कहीं दोष  
देख पड़ते हैं । उदाहरणः—

जिससे किसी निश्चय पदार्थ का बोध हो उसे निश्चयवाचक  
सर्वनाम कहते हैं । पृष्ठ ३४

इस वाक्य में—“निश्चय पदार्थ” की जगह  
“निश्चित पदार्थ” होता तो अच्छा होता ।



३—ज्ञानसागर । लेखक श्रीयुत नारायण महादाजी  
आगरे, मुल्ताई, मध्य-प्रदेश । बड़ी खुशी की बात



है, महाराष्ट्र सज्जन भी हिन्दी में पुस्तकें लिखने लगे। हिन्दी के लिए यह शुभ लक्षण है। इसमें पृथ्वी की बनावट, पानी, वायुमण्डल, सूर्यमण्डल, मनुष्य की उत्पत्ति आदि २० विषयों पर छोटे छोटे निबन्ध हैं। यथास्थान चित्र भी दिये गये हैं। भौतिक-शास्त्र-सम्बन्धी बातों को आगरे महाशय ने सरल भाषा में बहुत अच्छी तरह समझाया है। आप वैज्ञानिक शिक्षा के बड़े पक्षपाती हैं। पर इस विषय की पुस्तकों का हिन्दी में प्रायः अभाव है। उसे आप दूर करने की चेष्टा में हैं। यह बड़ी अच्छी बात है। हिन्दी पढ़ने वालों को चाहिए कि “ज्ञान-सागर” लेकर आगरेजी के उत्साह को बढ़ावें। पुस्तक अच्छे कागज़ पर बड़ी सुन्दरता से छपी है। जिल्द बँधी हुई है। अन्त में कठिन शब्दों का कोश भी है और सूचीपत्र भी। पृष्ठ-संख्या २०० से अधिक है। दाम केवल सवा रुपया है। लेखक की मातृभाषा मराठी है। अतएव उनसे भाषा-सम्बन्धिनी भूलें होना स्वाभाविक है। इस बात को उन्होंने स्वीकार भी किया है। हिन्दी-प्रेमियों को भाषा-सौन्दर्य की परवा न करके इस पुस्तक के विषय की ओर ध्यान देना चाहिए :—

भणित भदेसि वस्तु भलि वरणी—

विश्वकथा जगमंगलकरणी

पुस्तक का नाम ज्ञानसागर होने की अपेक्षा ज्ञानसीकर होता तो अच्छा था।

## चित्र-परिचय ।

( १ )

निकुम्भिला-यज्ञमन्दिर में मेघनाद का  
यज्ञानुष्ठान ।

मेघनाद अग्नि का उपासक था। विजय की इच्छा से अपने उपास्य देव को सन्तुष्ट करने के लिए

वह रात्रि में यज्ञ करने गया। वह यज्ञ करही रहा कि विभीषण को खबर हो गई। विभीषण जानता कि यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण होने से मेघनाद अजेय जायगा। इसलिए वह लक्ष्मण को लेकर मेघनाद पास गया। आप तो अलग द्वार पर खड़ा हो गए लक्ष्मण उसके पास पहुँचे। उन्हें देखकर मेघनाद कहा—“तुम कौन हो ? क्या मेरे इष्टदेव हो ?” लक्ष्मण ने कहा—“नहीं, मैं तुम्हारा इष्ट नहीं; किन्तु तुम्हारा कालरूप यम हूँ। तुम्हें यम को आया हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।” इस पर मेघनाद होकर मेघनाद ने अपना यज्ञपात्र—अर्घा—फेंक कर उन्हें मारा। उसके लगते ही लक्ष्मणजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। मेघनाद ने द्वार की ओर देखा कि विभीषण को वहाँ खड़ा पाया। इससे क्रुद्ध होकर वह बोला—“रे कुलाङ्गार ! रे कुलकलङ्क ! रे पितृव्य ! तू अपने परमप्रतापी भाई को छोड़कर नराधम राम से जा मिला ! इस पर मेघनाद ने विभीषण के मध्य बहुत उत्तर-प्रत्युत्तर हुए। अन्त में जब लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई तब, उन्होंने मेघनाद के साथ घोर युद्ध करके तलवार से उसे मार डाला। इस संख्या का रंगीन चित्र इसी घटना सम्बन्ध रखता है।

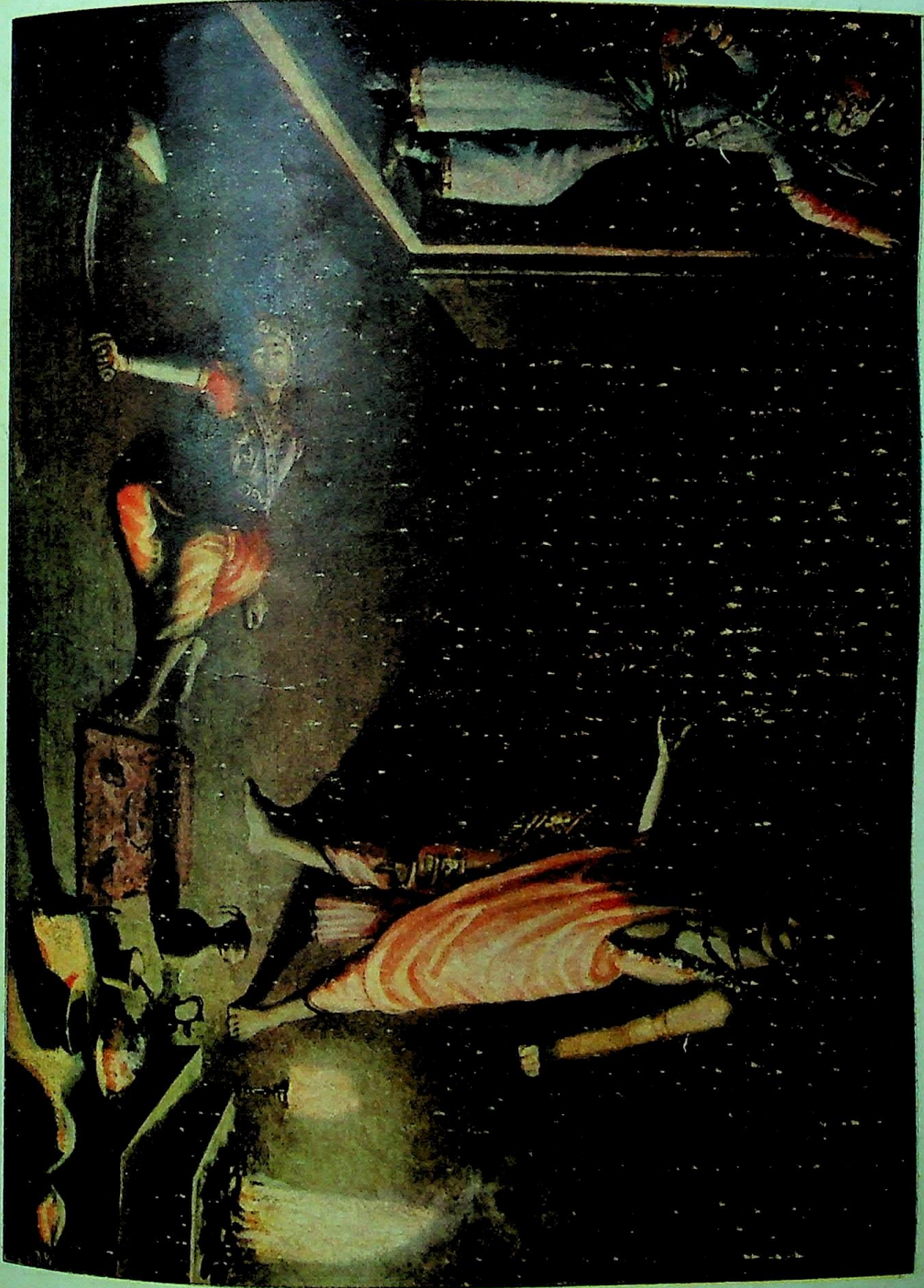
( २ )

गत संख्या में एकलिपिविस्तार-परिषद् के प्रथम सभापति माननीय मिस्टर कृष्णस्वामी आइयर के चित्र इस बार अन्यत्र प्रकाशित है। आइयर महोदय अब तक मद्रास-हाई-कोर्ट के जज थे। आप योग्यता पर मुग्ध होकर गवर्नमेंट ने अब आप मद्रास के गवर्नर की कार्यकारिणी सभा का सभापति बनाया है :—

चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः



# सरस्वती



निकुम्भिला-यज्ञमर्षिद्वर में मेघनाद का यज्ञानुष्ठान ।

संक्षिप्त मेघ, दत्तात्रेयनाद ।









माननीय मिस्टर कृष्णदासी आइयर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.





भाग

अलौकिक

जं

मदन को  
यार यह  
हस अले  
वर्ष के  
सकते।  
कल मां  
होते पर  
तब नहीं



# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ]

१ एप्रिल, १९११—चैत्र शुक्ल २, १९६८ ।

[ संख्या ४ ]

## अलौकिक शिशु-गायक मास्टर मदन ।



लोग जन्म परम्परा को नहीं मानते—  
जो लोग इस बात पर विश्वास  
नहीं करते कि पूर्व-जन्म के संस्कार  
बीज रूप से बने रहते हैं और  
समुचित उत्तेजना पाते ही फूलने  
और फलने लगते हैं—उन्हें मास्टर

मदन को देखना चाहिए, उसका गाना सुनना चाहिए  
और यह सोचना चाहिए कि इस शिशु में उत्पन्न हुई  
इस अलौकिक गान-शक्ति का कारण क्या है । तीन  
वर्ष के बालक अच्छी तरह बात-चीत भी नहीं कर  
सकते । किसी अपरिचित आदमी को देखते ही भाग  
कर भाँकी गोद में छिप रहते हैं; और पाँच वर्ष के  
बालक भी क, ख, ग, तक का भी शुद्ध शुद्ध उच्चा-  
रण नहीं कर सकते । पर मास्टर मदन को देखिए ।

यह शिशु इस समय केवल ५ वर्ष का है । पर गाने  
में यह इतना प्रवीण है कि यदि मिर्याँ तानसेन भी  
इसे गाते सुनते तो इसे गोद में उठा लेते और प्रस-  
न्नता से पागल हो कर नाचने भी लगते ।

मास्टर मदन का पूरा नाम मदनमोहन चैटजी  
है । यह अद्भुत बालक कलकत्ते की एमहर्स्ट स्ट्रीट  
में रहनेवाले बाबू वसन्तकुमार चैटजी का पुत्र है ।  
वसन्त बाबू को सङ्गित-विद्या से बड़ा प्रेम है । आप  
हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते हैं । एक दिन की  
बात सुनिए । मदन उस समय केवल दो वर्ष का  
महीने का था । वसन्त बाबू ने देखा कि मदन बड़े  
मजे में गा रहा है । आवश्यकतानुसार कभी वह  
अपनी आवाज़ को धीमी कर देता है और कभी खूब  
उच्च स्वर से गाने लगता है । उन्हें यह तमाशा देख कर  
बड़ा आश्चर्य हुआ । उसकी परीक्षा करने के लिए  
उन्होंने हारमोनियम बजाना शुरू किया और मदन



से कहा, गाओ। मदन ने हारमोनियम पर गाया। खूब अच्छा गाया। ताल-स्वर में उसने कहीं भी भूल न की। वसन्त बाबू अवाक हो गये। उन्होंने समझा, यह शिशु उस जन्म का कोई प्रसिद्ध गायक है। सङ्गीत-विद्या का बीज इसके हृदय में जो संस्कार-रूप से विद्यमान था वह मेरे हारमोनियम का सस्वर वादन सुन कर उग आया।

१९०८ ईसवी की देवी-पूजा का उत्सव बाबू एच० सी० राय चौधरी के मकान पर हुआ। यह महाशय कलकत्ते की मल्लिक लेन में रहते हैं। उस समय मदन तीन वर्ष दो महीने का था। पिता के साथ मदन भी इस उत्सव में गया। सैकड़ों प्रतिष्ठित पुरुषों के सामने वहाँ पर उसका पहला सर्व-साधारण गाना हुआ। मदन ने कई एक ऐसे गाने गाये जिन्हें गाना बड़ा कठिन काम था—जिन्हें केवल अभ्यस्त और अच्छे गानेवाले ही गा सकते थे। इस तरह सब को प्रसन्न करके और सब का आशीर्वाद लेकर मास्टर मदन हँसता हुआ अपने घर आया। बस इसी समय से मास्टर मदन के इस अपूर्व करतब की प्रशंसा आरम्भ हुई। उसकी प्रसिद्धि दिन दिन बढ़ने लगी। बड़े बड़े उत्सवों और समारोहों में उसे निमन्त्रण दिया जाने लगा और वह श्रोताओं को अपने अलौकिक गान से मुग्ध करने लगा।

१९०९ के अगस्त में अलीपुर के जाइंट मैजिस्ट्रेट, मिस्टर डी० एल० राय के मकान पर मदन ने अपना सुरीला गाना सुनाया। उस समय मदन का वय केवल चार वर्ष का था। कलकत्ते के कितनेही सम्मान्य श्रोता उपस्थित थे। गायक था अकेला मदन। पर उसने सबको अपने मनोहर और ताल-स्वर-विशुद्ध गान से प्रसन्न और पुलकित कर दिया। दस दस पन्द्रह पन्द्रह वर्ष तक अभ्यास करनेवाले गायकों और गायिकाओं से जो बात नहीं हो सकती वह मास्टर मदन ने कर दिखाई।

मार्च १९१० में कलकत्ते के राय सिताबचन्द्र बहादुर ने अपने स्थान पर सायड्वाल एक भोज

दिया। महाराजा कासिम-बाजार, महाराजा निशिपुर माननीय बाबू राधाचरण पाल आदि अनेक बहुत बड़े सज्जन निमंत्रित हुए। इन सब का मनोरञ्जन करने के लिए आहूत हुआ मास्टर मदन। इस बार वर्ष के बालक को पिता वसन्त बाबू गोद में लेकर वहाँ पहुँचे। उसे देख कर उपस्थित सज्जनों को उसने गायक होने में सन्देह होने लगा। चार वर्ष का बालक कहीं गाता है! यह उम्र खेलने-कूदने, रोने और शोरोगल मचाने की है, गाने की नहीं। बहुतों सज्जनों ने यहाँ तक विकल्प किया कि इतनी बड़ी सभा को देख कर यह बालक गाने के बदले ज़रा रोने लगेगा। पर इस तरह के सारे संकल्प-विकल्प को मदन ने भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया। डरना और रोना तो दूर रहा, उसने उस उतने बड़े समाज को बड़ी बेपरवाही से देखा। हारमोनियम बजने लगा। बालक मदन ने भी आलाप आरम्भ किया। सामाजिकों का आश्चर्य उत्थित हो कर बढ़ने लगा। मदन भी गान का आरम्भ करके सब को मुग्ध करने लगा। उसकी स्पष्ट, मधुर और सुरीली आवाज़ को सुन कर श्रोता जन अलौकिक आनन्द सागर में निमग्न होने लगे। मदन का निर्दोष, स्वर-ताल-पूर्ण और शास्त्र-सम्मत गाना सुन कर सब लोग बड़ेही प्रसन्न हुए। सब के हृदय में यही भाव उद्भूत हुई कि इतनी थोड़ी उम्र में इतना अच्छा गाना ईश्वर की कृपा और पूर्व-जन्म के सज्जित संस्कार के बिना शक्य नहीं।

सितम्बर १९१० में मास्टर मदन की पाँचवीं वर्ष-गाँठ थी। इस उपलक्ष्य में मदन के पिता ने एक उत्सव किया। कलकत्ते के बड़े बड़े धनी, मानि उपाधिवारी प्रतिष्ठित पुरुष वसन्त बाबू की 'बाड़ी' में पधारे। मदन का सुर श्रोत-सुखद है और रूप ने सुखद। गौर वर्ण मदन रेशमी कोट, मखमली शर्ट पहन कर और कई एक सोने के पदक छाती पर लटका कर सब के सामने उपस्थित हुआ। सर यु. दास बैनर्जी के चरणों पर गिर कर उसने उन्हें मातृ-पहनाई। उन्होंने आशीर्वाद दिया:—“जिस तरह



# सरस्वती



मास्टर मदन ।

हृषिकेश प्रेस, इलाहाबाद ।





संख्या  
तुम इ  
तरह  
समाधि  
को प्र  
की त  
बीमारी  
चीजें ग  
हो उठे  
उठना  
अद्भुत  
वे कहते  
वर्णन व  
हो सक  
हे कि उ  
तरह क  
मद  
में मदन  
में आज  
नामी ग  
तक के  
निकले है  
उनका  
रखता ।  
अभी त  
उसे को  
हो वह  
उसे एक  
छुक हैं

व  
शास्त्रवे



तुम इन इतने सज्जनों को प्रसन्न कर रहे हो उसी तरह परमेश्वर तुम्हें प्रसन्न करेगा” । मदन की समर्पित माला को सर गुरुदास चलते समय उसी को प्रसादरूप पहना गये । इस अवसर पर मदन की तबीयत अच्छी न थी । वह बहुत अशक्त था । बीमारी से हालही में उठा था । तथापि उसने कई चीजें गाईं । सुन कर सब लोग प्रेमानन्द से पुलकित हो उठे । उसके छोटे छोटे हाथों का यथासमय उठना और उसका सशास्त्र और सस्वर गाना एक अद्भुत दृश्य था । जिन्होंने मदन को गाते देखा है वे कहते हैं कि उस श्रवण और दशन का आनन्द वर्णन की वस्तु नहीं । उसका अनुभव देख करही हो सकता है । उसे सुननेही से यह जाना जा सकता है कि उसमें क्या जादू है—उससे कितना और किस तरह का आनन्द प्राप्त हो सकता है ।

मदन एक अलौकिक बालक है । सङ्गीत-विद्या में मदन की बराबरी करनेवाला अन्य बालक संसार में आज तक और कहीं उत्पन्न नहीं हुआ । नामी नामी गवैयों की यही राय है । योरप और अमेरिका तक के अखबारों में मदन की प्रशंसा से पूर्ण लेख निकले हैं । उनके लेखक भी यही बात कहते हैं । उनका भी यही मत है कि मदन अपना सानी नहीं रखता । वह भारत का भूषण है । मदन ने यद्यपि अभी तक वर्णमाला अच्छी तरह नहीं सीखी तथापि उसे कोई एक सौ गीत कण्ठाग्र हैं और उन सब को वह विशुद्धतापूर्वक गाता है । इस समय तक उसे एक चाँदी का और पन्द्रह सोने के पदक मिल चुके हैं । मदन—चिरञ्जीव !

## लिखने के साधन ।

नचरावस्था से बाहर निकलने का प्रयत्न जिस समय मनुष्य करता है उस समय उसे एक नया जन्म सा मिलता है । इस उत्क्रमण को गार्हपत्या वानर से नर-अवस्था में आना कहते हैं ।

इस अवस्था में बुद्धिविकास होता है । बुद्धिविकास से सभ्यता जन्म लेती है । सभ्यता को वृद्धिगत करने के लिए विचार-विकास और विचार-प्रचार की आवश्यकता होती है । इसी समय भाषा की उत्पत्ति होती है । तदनन्तर मानसिक ग्रन्थों का जन्म होता है । ऐसे ग्रन्थ अति मूल्यवान् समझे जाते हैं । क्योंकि इन्हीं ग्रन्थों में परमेश्वर की अगाध लीला का प्राथमिक वर्णन ग्रथित होता है । ऐसे ग्रन्थों का कितना सम्मान होता है, इसकी कल्पना करना हो तो जगन्मान्य वेदों का स्मरण करना चाहिए । वेदों ने भारतीय पण्डितों को तो प्रेम से पागल किया ही है; परन्तु मैक्समूलर आदि पाश्चात्य पण्डितों को भी पागल कर डाला है । मानसिक ग्रन्थों का स्मरण रखना मनुष्य को जिस समय कठिन हो जाता है उस समय वह उन्हें लिखने की चेष्टा करता है । लेखन-कला उत्पन्न होने से लिखित ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं । धीरे धीरे पुस्तक-कल्पना व्यक्त होकर पुस्तकें लिखी जाने लगती हैं । पुस्तक-लेखन से पुस्तक-संग्रह और पुस्तक-संग्रह से पुस्तकालय उत्पन्न होते हैं ।

मानसिक ग्रन्थ मन से उत्पन्न होते हैं । उन्हें कण्ठ करना पड़ता है । यही स्मृति-ग्रन्थ हैं । इनसे स्मरण रखे हुए विचारों का प्रचार होता है । इनमें प्राचीन कथायें, कवितायें, पद और गीत आदि होते हैं । पुराने धार्मिक और ऐन्द्रजालिक मन्त्र-तन्त्र तथा पैशाचिक बातें भी इस तरह के ग्रन्थों में समाविष्ट रहती हैं । वे एक विचित्र भाषा में होती हैं । इन्हीं भाषाओं से संसार की मनोरम भाषाओं ने जन्म लिया है । ऐसी भाषाओं का प्रचार—ऐसे स्मृति-ग्रन्थों का ज्ञान—प्रपितामह से पितामह को, पितामह से पिता को और पिता से पुत्र को हुआ करता था । इससे स्मरण-शक्ति बहुत बढ़ती थी । इसी शक्ति की कृपा से हमारे पूर्वजों ने वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि ग्रन्थों को हजारों वर्ष तक अक्षुण्ण रखा । यदि वे ऐसा न करते तो इस समय के अवशिष्ट ग्रन्थ भी कब के लुप्त हो गये होते । स्मृति-ग्रन्थों का प्रचार केवल भारतवासियों ही ने नहीं किया, हिब्र



भाषा के ग्रन्थों का प्रचार भी प्राचीन काल में इसी तरह होता था । ग्रीस के महाकवि होमर के महाकाव्य का बड़ा आदर है । उसका प्रचार श्रवण-परम्पराही से हुआ था । ईसा के ४७६ वर्ष पहले होमर के महाकाव्य इलियड और आडिसी प्रणीत हुए थे । यह महाकवि अन्धा हो गया था । यह अपने काव्य को गाते हुए भ्रमण किया करता था । इन काव्यों को होमर के मुख से सुन कर ही लोगों ने याद कर लिया था । जपानियों के कोजिकी ग्रन्थ का प्रचार भी इसी तरह हुआ था । चीन में लेखन और मुद्रण-कला का प्रचार होने के पहले वहाँ के पुराण, नीति, उपदेश और धर्म-ग्रन्थों का प्रचार भी स्मृति-पथ से ही हुआ था ।

मानसिक ग्रन्थों की वृद्धि होते होते उनका याद रखना कठिन हो गया । इससे उनको लिख रखने की जरूरत हुई । पर कागज़ पहले था नहीं । इससे पत्थर, शिला, हड्डी, सींग, हाथीदाँत, मिट्टी के पक्के पात्र, और ईंट आदि पदार्थों पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे । भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि सबसे पहले पत्थरों और शिलाओं पर हथियारों से खोद कर लोग अपने मन की बात लिखते थे । संसार के कितने ही अति प्राचीन ग्रन्थ चित्रलिपि द्वारा हड्डी, पत्थर और शिला आदि पर लिखे गये हैं । पाठक शायद यह जानना चाहें कि यह चित्रलिपि क्या चीज़ है । यह वह लिपि है जिसमें मनुष्य अपने मन के भाव चित्रों द्वारा व्यक्त करते थे । इस लिपि का एक नमूना आपको हम बतलाते हैं । अलास्का-प्रान्त में एक इस तरह का लेख मिला है । उसका संक्षिप्त वर्णन सुनिए:—

एक असभ्य मनुष्य मछली का शिकार करने गया था । उसे यह बतलाना था कि मैं नाव से गया था । इसलिये उसने पहले एक मनुष्य का चित्र बनाया । फिर एक और मनुष्य का चित्र बना कर उसके दोनों हाथों पर एक डोंड़ रख दिया । पहले मनुष्य-चित्र का हाथ दूसरे की तरफ उठा कर उसने यह सूचित किया कि इस तरह मैं नाव पर

शिकार खेलने गया था । रात को वह दो झोपड़ों वाले एक टापू में सोया । इस बात को उसने इसी तरह जाहिर किया । एक मनुष्य का चित्र बना कर कान पर हाथ लगाया । इससे सोना सूचित हुआ फिर एक गोल दायरा खींच कर उसके भीतर दो बिन्दु दे दिये । इससे उसने दो झोपड़ों के टापू ज्ञान कराया । इसके अनन्तर वह एक और टापू गया । इसे बताने के लिए उसने फिर एक मनुष्य का चित्र बनाई और उसके आगे एक दायरा खींचा । वहाँ उसे एक और आदमी मिल गया । वे दोनों उस टापू में सोये । अतएव एक हाथ को कान पर रख कर दूसरे हाथ की दो अँगुलिया उठा कर उसने इस बात को दिखाया और ऐसा ही चित्र भी उसने बनाया । उन दोनों ने मछली मारी । इसके लिए उसने मछली का चित्र बनाया और मनुष्य का खोद कर उसकी दो अँगुलियाँ उठाई । मछली का शिकार उन्होंने धनुष-बाण से किया था । अतएव मनुष्य का आकार खींच कर धनुष उसके हाथ में दिया । इसी तरह उसने और भी कई चित्र खोद कर अपने मन का भाव प्रकट किया । इसी नाम है चित्रलिपि । ईजिप्ट में इस तरह के हजारों लेखों का पता लगा है । विद्या की वह एक शाखा ही हो गई है । अनेक विद्वान इस विषय योग्यता सम्पादन करने और प्राचीन चित्रलिपि पढ़ने के लिए बरसों परिश्रम करते हैं ।

चीनवालों ने इस चित्रलिपि को विशेष उद्योग किया है । जपान, कोरिया और तिब्बत आदि में भी चीन से सम्पर्क होने के कारण, यह लिपि प्रचलित थी । जपान में इसी तरह की एक और लिपि प्रचार था । उसे इरोहर कहते हैं । उसका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है । उस पर मैं फिर कभी लिखूँगा । मैं एक साल तक जपान में था । उस समय इस विषय की कुछ छान बोन भी मैंने की थी । उससे मेरी यह धारणा हुई है कि जपान इतिहास का भारत के प्राचीन इतिहास से कुछ सम्बन्ध अवश्य था ।



भाग १२ संख्या ४ ]  
 अमेरिका के आदिम निवासी, जिन्हें असभ्य  
 कहते हैं, अब तक इस चित्रलिपि का व्यव-  
 हार करते हैं ।  
 ईंटों और पत्थरों पर लिखे हुए चित्रलिपि-  
 ग्रन्थ सब से अधिक मिश्र देश में हैं । कारनाक में  
 वे बड़े खंभों के ऊपर अनेक शिलालेख अब तक  
 मौजूद हैं । ये ईसा के ४००० वर्ष पहले के हैं ।  
 इस देश का प्राचीन इतिहास ईंटों के ऊपर चित्र-  
 लिपि में लिखा हुआ है । इस ग्रन्थ-भाण्डार से स्पर्धा  
 करने योग्य दूसरे किसी भी देश में शक्ति नहीं है ।  
 मिश्रवालों में अद्भुत ग्रन्थ-लेखन-शक्ति थी । इन  
 लोगों को सरस्वती ने इतना पागल कर दिया था  
 कि वृक्ष, पाषाण, पर्वत ईंट, चमड़ा इत्यादि जो कुछ  
 मिला है सब पर इन्होंने लिख मारा है । मिश्रवालों  
 ने पहले पशु-पक्षियों आदि के चित्र खोद कर अपने  
 मन के भाव प्रदर्शित किये । धीरे धीरे जब इन्हें  
 बहुत लिखने की जरूरत पड़ने लगी तब यह चित्र-  
 लिपि आसदायो मालूम होने लगी । अतएव इन  
 लोगों ने उस लिपि का संशोधन करके कुछ सुलभ  
 चिह्न निर्माण किये । तत्पश्चात् इन्होंने कुछ समय  
 बाद अक्षर बनाये । इन लोगों के बहुत से ग्रन्थ इन  
 विषयों के प्रकार की मिश्र-लिपियों में लिखे हुए हैं ।  
 धीरे धीरे लिपि-विस्तार होने लगा । इस कारण  
 ग्रन्थ-साहित्य की आवश्यकता लोगों को अधिका-  
 धिक मालूम होने लगी । फल यह हुआ कि कुछ  
 लोगों ने आसिरिया, ग्रीस आदि देशों में ध्वनि के  
 अनुसार लेखन-प्रणाली का जन्म हुआ । इस समय  
 ईंटों और ईंटों पर लिखने से लोगों को तकलीफ  
 होती थी । इससे अन्य साधन ढूँढ़ने का प्रयोजन  
 था । तब लोगों ने नरम नरम लकड़ियों के तख्तों  
 पर लिखना शुरू किया । बाँस पर लिखने में  
 लोगोंने बड़ी कुशलता प्राप्त की । बुद्धकालीन  
 लेख भारतवर्ष में लकड़ी के ऊपर लिखे हुए  
 पाये गये हैं । चीन की तो बात ही नहीं । वहाँ तो  
 अनेक लेख मिलते हैं ।

लकड़ी पर लिखने का रवाज भारतवर्ष में अभी तक था । मेरे पितामह पूर्वकालीन विद्योपार्जन की कष्टदायकता के विषय में मुझ से बहुधा बातें किया करते थे । वे कहते थे कि हम लोगों ने तख्तों के ऊपर ईंट का चूर डाल कर बाँस की लकड़ी से 'श्रीगणेशाय नमः' से प्रारम्भ करके अन्त तक अध्ययन किया था । मैंने मारवाड़ियों की दुकानों पर रंगीन तख्तों पर रंग से लिखने का रवाज बहुत जगह देखा है । यदि साधनों की दुष्प्राप्यता के कारण अब तक यह दशा थी तो पुराने समय की असुविधाओं का क्या पूछना है । अतएव धन्य है उन भारतवर्षीय महात्माओं को जिन्होंने भोजपत्र पर अमूल्य ग्रन्थ-रत्न लिख डाले हैं । लकड़ी पर लिखे हुए ग्रन्थ ग्रीस और रोम आदि देशों में भी पाये जाते हैं ।

लकड़ी और भोजपत्र के पश्चात् लोगों ने अन्य वृक्षों के पत्तों पर भी लिखना शुरू किया । ताड़पत्र पर भारत में लाखों ग्रन्थ लिखे गये हैं ।

जिस समय संसार की सभ्यता इतनी उच्च स्थिति पर पहुँच गई उस समय लेखों का समूह पुस्तकों का रूप धारण करने लगा ।

एक बात लिखने को रह गई । वह यह कि भोजपत्र आदि पर लिखने के पहले भारत में ताँबे आदि के टुकड़ों पर लेख लिखे जाते थे ।

भारतवर्ष में सोने और ताँबे के पत्रों का प्रचार बहुत पहले से था । वेदों में भी इस बात का उल्लेख है । बुद्धकालीन अनेक लेख ताँबे और लोहे पर भी लिखे गये मिले हैं । तक्षशिला में अनेक ताम्रपत्रों पर लेख पाये गये हैं । माडगाँव में सुवर्णपत्रों पर लेख मिले हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि धातुपत्रों पर लेख लिखने का तरीका भारतवासी आर्यों ने ही निकाला है । भारतवर्ष से ही यह तरीका अन्य देशों में पहुँचा है । चीन, जपान आदि देशों में भी धातु-पत्रों पर लेख लिखने की प्रणाली थी और अब भी है । ईजिप्ट, आसिरिया, ग्रीस आदि पाश्चात्य देशों



में भी, किसी समय, धातुपत्रों के ऊपर ग्रन्थ लिखे जाते थे। कुछ विद्वानों का खयाल है कि भारत ने यह तरीका बाबुल वालों से सीखा था। पर मेरी सम्मति इसके विपरीत है।

पत्थरों, हड्डियों, तांबे और लोहे के पत्रों पर लोग लोहे की शलाकाओं और औजारों से अक्षर खोदते थे। यह बड़े मेहनत का काम था। कुछ लोग यही पेशा करते थे। इससे अभ्यास के कारण वे यह काम बहुत अच्छा और बहुत जल्दी करते थे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि भारतवर्ष में धातु-पत्रों पर लेख उत्कीर्ण करनेवाले कारीगर गन्धकक्षार आदि रसायनों का भी उपयोग करते थे। इनके उपयोग से अक्षराङ्कन में विशेष सुभीता होता था।

प्राचीन समय से ही भारत में चित्रकला का प्रचार चला आता है। सुन्दर रंगों से जैसे चित्र बनाये जाते हैं वैसेही अक्षर लिखने और उत्कीर्ण करने में भी रंग काम में लाया जाता था। चित्र बनाने में ब्रश का प्रयोग करना पड़ता है। ब्रश बनाना भी प्राचीन भारतवासी जानते थे। गिलहरी की पूँछ के बालों से प्रायः ब्रश बनाये जाते थे। इन ब्रशों से धीरे धीरे लिखने का भी काम लिया जाने लगा था। परन्तु ब्रश से लिखने में देर लगती थी। इस कारण लेखनी का जन्म हुआ। कलम का आदिम रूप ब्रशही है।

चीनी और जपानी लोग अब भी ब्रश से ही लिखते हैं। कुछ दिनों बाद कोयले से तख्ते आदि पर लोग लिखने लगे। तब उन्हें स्याही बनाने की सूझी। पहले कोयले से ही स्याही बनी होगी, उसके बाद और चीजों से।

जब से भोजपत्र और ताड़पत्र पर लोग लिखने लगे तबसे लेखनकला का विशेष प्रचार हुआ। गौसिंहविहार में भारतवर्ष के अतिप्राचीन कितनेही बुद्धकालीन ग्रन्थ भोजपत्र पर लिखे हुए पाये गये हैं। इन ग्रन्थों के कुछ अंश पेरिस और सेंटपिटर्सबर्ग में अब तक रक्खे हैं। ये ग्रन्थ कम से कम ५०० वर्ष ईसा

के पहले लिखे गये होंगे। इतने प्राचीन होने पर ये ग्रन्थ स्याही से लिखे हुए हैं, और स्याही भी अब है। प्राचीनता के कारण भोजपत्र और ताड़पत्र भारतवासियों को इतने पूज्य हो गये हैं कि वे भी धार्मिक संस्कारों और धार्मिक प्रसंगों में उनका व्यवहार करते हैं। यंत्र-मंत्र बहुधा इन्हीं पर लिखे जाते हैं।

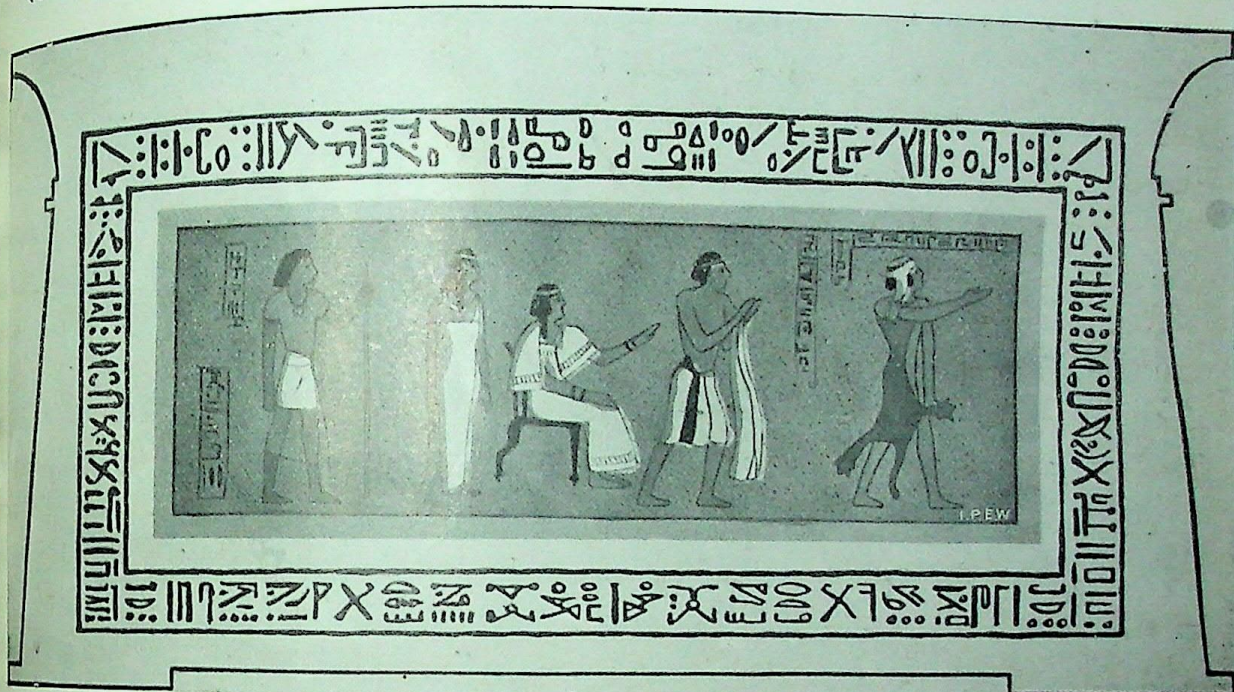
एक समय था जब चमड़े पर भी पुस्तकें लिखी जाती थीं। विद्वानों का अनुमान है कि किसी समय संसार के सारे प्राचीन देश चमड़े पर लिखा करते थे। भारतवर्ष में भी प्राचीन समय में चमड़े का उपयोग इस काम के लिए होता था। पर "अहिंसा परमो धर्मः" का उपदेश शुरू होने के कारण चमड़े का व्यवहार लिखने के काम में कम होते चला गया। तथापि व्याघ्र, सिंह, हरिण आदि जानवरों के चमड़े का उपयोग पवित्र कामों में अब भी होता है। पर अपवित्रता के खयाल से लोग चमड़े का व्यवहार पुस्तक लिखने में करना अब पसन्द नहीं करते। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के पदवी-पत्रों (Diploma) में चमड़े का व्यवहार गवर्नर इस समय भी करती है। पुस्तकों की जिल्द बनाने में तो चमड़े का व्यवहार सार्वत्रिक सा है।

ईजिप्ट देश में प्राचीन काल से चमड़े पर लिखते थे। चमड़े पर लिखने का तरीका वहाँ पत्र-गामस के राजा ने सबसे पहले निकाला। उस राजा की यादगार में उस समय से चमड़े के कागज लोग पार्चमेंट (Parchment) कहने लगे। पार्चमेंट की कहानी बड़ी मनोरञ्जक है। उसे थोड़े-थोड़े सुनाता हूँ।

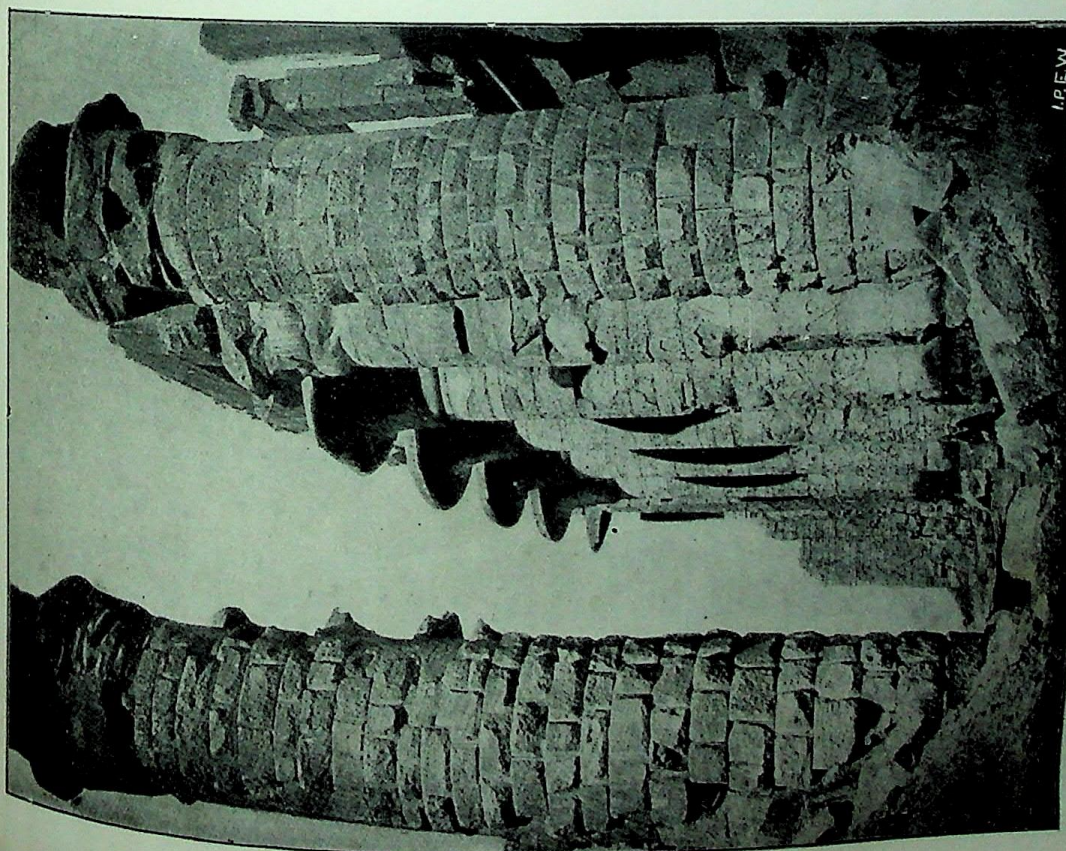
सीरिया देश का सेल्यूकस निकेटर विख्यात राजा हो गया है। उसके मरने के पश्चिमी एशिया मायनर का परगामम नाम का संस्थान स्वाधीन हो गया। परगामम का राजा बड़ा योग्य था। इससे वहाँ पर एक बहुत बड़ा पुस्तकालय और विश्वविद्यालय संस्थापित था।



# सरस्वती



ईजिप्ट के प्राचीन निवासी और उनके लेख ।



कारनाक के प्राचीन स्तम्भ ।  
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





संख्या १  
पुस्तकालय  
वनाने की  
उसने ईई  
कागज में  
ने परगामें  
कर इस  
पार्चमेंट—  
पहले २८  
राज्य से  
परगामेंट  
अमरी  
काम में  
करते आ  
चित्र बड़े  
चित्र-विचित्र  
अति प्राची  
सबसे  
ने किया।  
गुरु हो ग  
कागज की  
यूरोप  
गंगा के कि  
भारत में र  
ट से यूरो  
पापिरस न  
लो से ई  
लिट के  
र हैं। इ  
क्य” ( )  
खा हुआ  
। पापिरस  
ध्वनी व  
सी से इ  
कागज न  
की आगे



संख्या ४ ]

पुस्तकालय को जगत् में सबसे बड़ा पुस्तकालय बनाने की इच्छा परगामम् के राजा की थी। अतएव उसने ईजिप्ट से पापिरस (Papyrus) नामक कागज मँगाना शुरू किया। परन्तु ईजिप्ट के राजाओं ने परगामम् में कागज भेजना रोक दिया। यह देख कर इस परगामम् के राजा ने अपनी सम्पूर्ण पुस्तकें परगामम्-चमड़े के ऊपर लिखवाईं। यह बात ईसा के पहले २८०८ वर्ष की है। पार्चमेंट शब्द “परगामम्” शब्द से निकला है। परगामम् से परगामेंट और परगामेंट से पार्चमेंट बना है।

अमरीका के रक्तवर्ण असभ्य इंडियन लिखने के काम में चमड़े का उपयोग अति प्राचीन काल से करते आये हैं। इनकी मनोहर चित्रलिपि और चित्र बड़े आह्लादकारक हैं। इनके चमड़े के ग्रन्थ चित्र-चित्र अक्षरों में लिखे हुए हैं। हिब्रू-भाषा की अति प्राचीन पुस्तकें भी चमड़े पर लिखी हुई हैं।

सबसे पहले कागज का आविष्कार चीनवालों ने किया। १३७२ ईसवी में चीन में कागज बनना शुरू हो गया था। विद्वानों का मत है कि भारत में कागज चीन से ही आया।

यूरोप में कागज का प्रचार ईजिप्ट से हुआ। गंगा के किनारे तपश्चर्या करनेवाले महर्षियों ने जैसे भारत में सभ्यता फैलाई वैसेही नील नदी के पवित्र तट से यूरोप में सभ्यता फैली। इस नदी के जल में पापिरस नाम की एक वनस्पति पैदा होती थी। इसी से ईजिप्ट के निवासियों ने कागज बनाया। अतिप्राचीन ग्रन्थ इसी पापिरस कागज पर हैं। इनका सुप्रसिद्ध पुराण “मृत मनुष्यों का पुस्तक” (Book of the Dead) पापिरस पर ही लिखा हुआ था। यह ग्रन्थ इन लोगों का गरुड़पुराण है। पापिरस कागज ईजिप्ट ही में बनता था। सम्पूर्ण पश्चिमी वाणिज्य भी इन्हीं लोगों के हाथ में था। इसी से इन लोगों की इच्छा के विरुद्ध परगामम् में कागज न पहुँच सका। इस पापिरस (Papyrus) शब्द ‘पेपर’ (Paper) बना है।

संसार की सभ्यता की वृद्धि कागज, स्याही और कलम ने जितनी की है उतनी और किसी बात ने नहीं। यदि लिखने के ये साधन प्राप्त न होते तो संसार का इतिहास आज कुछ और ही तरह का होता।

पाण्डुरङ्ग खानखोजे।

(कारवालिस, अमरीका)

## एक शिकारी की सच्ची कहानी।



ठक, आप लोग मेरी एक सच्ची कहानी सरस्वती की अगस्त ०५ की संख्या में पढ़ चुके हैं। उसके अनुसार मैंने शिकार खेलना बिलकुल छोड़ दिया था। उससे ठीक एक साल बाद मुझे एक साहब मिले। इनसे मुझसे पहले से जान पहचान थी। यह साहब बहादुर मुझ पर बड़े मेहरबान थे। एक दिन उनके पास, विलायत से, उनके एक बहुत बड़े और धनी मित्र की चिट्ठी आई। उस चिट्ठी में लिखा था—“मुझे शेरनी के दो बच्चे चाहिए। मैं उन्हें अपने नज़रबाग में रखना चाहता हूँ। आप किसी शिकारी से इस काम के लिए कहिए। जो शिकारी शेरनी के दो बच्चे पकड़ देगा उसे मैं एक हजार रुपया इनाम दूँगा। आप जानतेही हैं कि मुझे अपने बाग में शेर रखने का कितना शौक है। और मुझे पूरा विश्वास है कि आप ही मेरे इस शौक को पूरा करेंगे”।

यह चिट्ठी मुझे, साहब ने, पाकट से निकाल कर, दिखलाई। लेकिन, साहब को यह नहीं मालूम था कि मैं भी एक नामी शिकारी हूँ। इसलिए वे मुझसे ही पूछने लगे कि क्या यहाँ कोई ऐसा आदमी मिलेगा जो शेरनी के दो बच्चे, डेढ़ महीने के अन्दर, पकड़ लावे। मैंने कहा, साहब, मैं तो नहीं कह सकता



कि ऐसा शिकारी आपको मिले; तलाश करा देखिए; शायद कोई मिल जाय ।

इस बीच मैं मैं पाठकों को अपने दिल का कुछ थोड़ा सा हाल भी बता देना जरूरी समझता हूँ । जब साहब ने वह चिट्ठी मुझे दिखलाई तब मैं मन ही मन घबराने लगा कि कहीं साहब यह काम मुझे ही न सौंपें । इससे मैंने, उस समय, साहब के साथ बड़ी होशियारी से बात चीत की; क्योंकि मुझे डर था कि कहीं साहब को यह न मालूम हो जाय कि मैं भी शिकारी हूँ ।

खैर, मैं उस दिन टाल टूल करके साहब से बिदा होकर चला आया । पर साहब के पेट में—शेरनी के बच्चे कैसे मिलेंगे—यही बात, आकाश में बादलों के समान, घूमने लगी । उस दिन से साहब के पास जो कोई जाता उससे वे यही पूछते कि क्या तुम शेर के बच्चे ला सकते हो ? इस भयानक काम को सुन कर मैं भी साहब के पास बहुत कम जाने लगा ।

दुनिया में सबका कोई न कोई दोस्त या दुश्मन होता ही है । सो मेरा भी एक दुश्मन निकल आया । वह साहब का मुँहलगा था । उससे भी साहब ने शेरनी के बच्चों की बात कही । उसने भट मेराही नाम बतला कर मेरी पहले की सारी कहानी साहब से कह सुनाई । तब तो साहब को इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि मैंही उन्हें शेर के बच्चे ला सकूँगा ।

उसी समय साहब ने रुकड़ा देकर एक चपरासी मेरे पास भेजा । रुकड़े में साहब ने विनीत भाव से मुझे अपने बँगले पर आने के लिए लिखा था । उस समय मैं खान कर रहा था । इस कारण मुझे कुछ देर लगी । उधर साहब को यहाँ तक चटपटी पड़ी कि मैं कपड़े पहन ही रहा था कि खुद वे मेरे घर के सामने “सलाम सलाम” कहते हुए पहुँच गये । मैंने भट बाहर निकल कर साहब को, आदर के साथ, अपने कमरे में, एक कुरसी पर बिठाया ।

साहब बहादुर किस काम के लिए खुद मेरे आये थे, सो मैं भली भाँति समझ गया था । इसलिए साहब को किसी प्रकार टालने के लिए मैंने उनकी बेहद खुशामद शुरू की । पर मेरी खुशामद ने काम न दिया । दोही तीन बातों के बाद साहब ने वही विलायत की चिट्ठी पाकट से निकाल कर हाथ पर रख दी । आप कहने लगे कि आपही प्रयत्न से मुझे शेरनी के बच्चे मिल सकेंगे । तब साहब लाचार होकर यथाशक्ति इस काम के कारने वचन दिया । यह सुन कर साहब बहादुर बहुत खुश हुए । तत्काल उन्होंने सौ कारतूसों के साथ एक कीमती बन्दूक मुझे दी ।

इसके बाद मैंने बहुत कोशिश की कि शेरनी के बच्चे, किसी जंगली आदमी के जरिये, मिल जायें । पर, मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ । बच्चे मिलने के लिए मैंने अनेक उपाय किये; परन्तु एक भी उपाय काम न हुआ ।

एक दिन एकाएक एक उपाय मुझे सूझा । मैंने ठान लिया कि इसी उपाय से काम चलाया जाए । बस, सबेरा होते ही साहब की दी बन्दूक और चार दिन के लिए हलका भोजन लेकर, पूर्ववत् शिकारी पोशाक पहन, अकेला नदी के किनारे किनारे चला । यह नदी पहाड़ी के काटती हुई निकली है ।

नदी के किनारे किनारे चलते चलते, दूसरे सबेरे ही, मैंने, रात को नदी से पानी पीकर हुई एक शेरनी के पद-चिह्न देखे । उन चिह्न देख कर मैं वहीं खड़ा हो गया । इस समय मैंने विचित्र विचार पैदा होने लगे । कुछ विचार कर, बन्दूक में कारतूस भर, उन्हीं पद-चिह्न के देखता हुआ मैं शेरनी के पीछे पीछे चला । के ठीक १० बजे मैं एक पहाड़ी के पास पहाड़ी पर शेरनी के पद-चिह्न कठिनता से ढूँढ पाया । मैंने वहीं पहाड़ी पर पहुँचा । आवाज़ सुन



संख्या ४ ]

निश्चय हुआ कि वह शेरनी ही की आवाज़ है। तब मैं एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गया और इधर उधर देखने लगा। शेरनी पहाड़ी के एक खोह की तरफ सीधी जाती हुई देख पड़ी। उसे देख कर मुझे कुछ डर सा लगा। क्योंकि मैं अकेला था। पर जब बन्दूक को आँखों के सामने देखा तब मेरा डर काफ़ूर हो गया। शेरनी जब नज़र से गायब हो गई तब मैं पेड़ से उतर कर फिर उसके पीछे पीछे चला। कुछ दूर चल कर मैं फिर एक पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ से शेरनी एक खोह में, जहाँ ऊँचे ऊँचे पत्थर और बहुत घने पेड़ थे, उतरती हुई देख पड़ी। इस समय मेरी घड़ी में शाम के ४ बजे चुके थे। मैंने देखा कि शेरनी उस खोह के एक गढ़े में कूद पड़ी। तब मैंने अनुमान से समझ लिया कि उस गढ़े में शेरनी के बच्चे ज़रूर होंगे।

इतने में रात हुई। इससे मैंने उसी पेड़ पर रात बिताना निश्चय किया। ठीक ८ बजे रात को आँधी आई। उसी गर्द गुबार में मैंने थोड़ी सी खूब खोई और तुम्बे का पानी पिया। खास कर मैं एक डाल पर जम कर बैठ गया और मुझे से बदन को डाल के साथ बाँध कर रात बिताई। प्रातःकाल ठीक ६ बजे शेरनी गढ़े से बाहर निकल कर उस पहाड़ी के ऊपर से जंगल की ओर शायद शिकार के लिए चली गई। यदि शेरनी बीस दिनों मेरी तरफ से जाती तो मैं उसे अपनी बन्दूक से निशाना बनाता। पर वह बहुत फ़ासले से गई। उसके जाने के बाद मैं ठीक ८ बजे पेड़ से उतरा और बन्दूक में कारतूस भर कर इधर उधर देखता रहा उस गढ़े के पास पहुँचा।

गढ़े के पास पहुँच कर उसके भीतर देखने से मैंने देखा कि दो बच्चे, जो बड़ी बिल्ली के बराबर थे, सो रही हुई देख पड़े। इन बच्चों को देख कर मुझे जो ख़ुशी हुई वह मैं लिख नहीं सकता। मेरा मन बहुत हिल उठा। मैं मारे ख़ुशी के फूल न लगा। लेकिन गढ़े में उतर कर उन बच्चों को कठिन काम था। क्योंकि गढ़ा क़रीब

आठ हाथ गहरा था। उसके चारों तरफ सपाट पत्थर थे। मैंने उस गढ़े में उतरने की बहुत कोशिश की, पर उतर न सका। अन्त में जब गढ़े के ऊपर की तरफ मैंने देखा तब एक पेड़ की डाल गढ़े की तरफ झुकी हुई देख पड़ी। उसी डाल को पकड़ कर गढ़े में उतरना मैंने निश्चित किया। बन्दूक को वहीं चटान पर रख कर मैं उस पेड़ पर चढ़ा। गढ़े की तरफ झुकी हुई डाल पर जाते ही वह डाल गढ़े के भीतर आधी दूर तक झुक गई। इससे मैं आसानी से उस गढ़े में उतर गया।

मेरे उतरते ही वे बच्चे मुझे अपनी मां समझ कर भीतर के एक कोने से मेरे पास चले आये। बच्चे बिल्कुल अज्ञान थे। बच्चों के मेरे पास आते ही मैंने अपना कोट उतार कर उन दोनों को उसमें बाँध लिया और बाहर निकलने के लिए खड़ा हुआ। अब जो मैं उस डाल को देखता हूँ, जिससे भीतर गया था, तो वह अपने पूर्व स्थान को चली गई है। मेरे बोझ के कारण गढ़े की तरफ झुक कर उसने मुझे गढ़े में नीचे उतार दिया और आप ऊपर चली गई। गोया उसने मुझे धोखा दिया।

गढ़े से बाहर आने के लिए मैंने अनेक उपाय किये। पर सभी निष्फल हुए। तब मैं एक दम डर गया। यद्यपि मैं एक निर्भय और पुराना शिकारी हूँ। पर, पाठक, मृत्यु का स्मरण करके किसे भला डर न लगेगा। मेरा कलेजा उछलने लगा और दम जल्दी जल्दी चलने लगा। शेरनी के बच्चे बहुत छोटे थे; पर कोट में बाँधे जाने के कारण वे गुर्र गुर्र करने लगे। उन्हें छटपटाते देख मैंने उनको गढ़े के एक कोने में ढकेल दिया और उनको रोकने के लिए उनके रास्ते में अपना कोट रख दिया। क्योंकि वे गुर्राने के सिवा मुझे नोचने भी लगे थे। वहाँ पड़े पड़े किसी तरह दिन के ४ बजे। इतने में कुछ आवाज़ सी सुन पड़ी। मैं समझ गया कि शेरनी आ रही है। तब मैं चुपचाप बैठ रहा। शेरनी गुर्राती हुई आई। आते ही वह गढ़े के अन्दर न देख कर, बल्कि गढ़े की तरफ पूँछ करके, ऊपर ही उस



बन्दूक को, जिसे मैं एक पत्थर पर रख आया था, देखने और गुराने लगी। सूर्य की किरणों के पड़ने से बन्दूक में लगे हुए चमकीले पट्टे चमक रहे थे। इसी से शेरनी उस बन्दूक को गौर से देख रही थी और मेरी तरफ गढ़े के भीतर तक पूँछ भी हिलाती जाती थी।

उस समय की अपनी हालत का मैं वर्णन नहीं कर सकता। पाठक ही उसका अनुमान कर लें। पर मैं किसी बात को देखतेही या सुनतेही एकदम घबरानेवाला भी नहीं हूँ। उस समय मुझ में एक अद्भुत जोश आ गया। उस जोश में मैंने शेरनी की पूँछ को, जो गढ़े में लटक रही थी, सावधानी के साथ खूब मजबूती से पकड़ लिया। पूँछ के पकड़तेही शेरनी घबराहट की मारी जोर से उछली। उसके उछलतेही मैं अपनी बन्दूक के पास ऊपर जा गिरा। गिरतेही भट पट उठकर और बन्दूक हाथ में लेकर मैंने शेरनी पर गोली चलाई। क्योंकि वह मेरे ऊपर भपटने ही को थी। बस मेरी एकही गोली ने शेरनी का काम तमाम कर दिया। शेरनी तड़पने लगी और मैं दीर्घ सांस लेता हुआ चटान पर बैठ गया। कुछ देर मैं वह मर गई। तब उसे वहाँ छोड़ कर मैं घर आया।

सबेरा होते ही मैं साहब के बँगले पर पहुँचा। साहब मुझे देखते ही दौड़ आये। साहब को मैंने अपनी कुल कहानी कह सुनाई। तब साहब बहादुर ने खुद मौक़े पर जाकर सब बातें देखीं और मेरी बहुत तारीफ़ की। शेरनी के बच्चे सीढ़ी लगा कर गढ़े से बाहर निकाले गये। साहब ने उन्हें विलायत भेज दिया।

इस बहादुरी के लिए सरकार से, साहब से, और उन विलायत के साहब से मुझे बहुत कुछ इनाम मिला। गवर्नमेंट को भी इसकी रिपोर्ट हुई है और मुझे आशा है कि बहुत जल्द मैं सी० आई० ई० हो जाऊँगा।

निज़ाम शाह ।

## सुख का सिद्ध मंत्र ।

( १ )

सुख के लिए हुआ घर बाहर,  
गया वृक्ष-बेलों के पास।  
वन, उपवन, गिरि, खेत, विहङ्गम,  
कोई पूर सका नहीं आस ॥

( २ )

मैं हारा, भुँझलाया, मैंने—  
दी सब सुख की आशा छोड़।  
गंगाजी के तट जा बैठा;  
लिया जगत से सुख को मोड़ ॥

( ३ )

इतने में कुछ मानव आये;  
बोला पहला उनमें से।  
“भूखा हूँ मैं”—भोज्य दिया तब  
जो कुछ वहाँ बना मुझसे ॥

( ४ )

कहा दूसरे ने—है भाई  
बड़ी ज़रूरत पैसे की।  
पाकिट से देकर कुछ पैसे  
शान्ति हो सकी वैसे की ॥

( ५ )

हमदर्दों के लिए तीसरा  
दुख का मारा मेरे पास।  
खूब तपाया खूब सताया  
आया, हो अत्यन्त उदास ॥

( ६ )

उसकी बातें सुन दिल पिघला;  
आँखों में जल भर आया।  
उसे प्रेम के पावन जल से  
मैं कुछ शीतल कर पाया ॥

( ७ )

खोज शान्ति की करता करता  
चौथा जन आया सुध भूल।  
तन मन धन से उसके सारे  
किये काम मैंने अनुकूल ॥



संख्या ४ ]

( ८ )

ज्योंही शान्ति इन्होंने पाई  
ज्योंही मेरे सम्मुख भी ।  
दिव्य, मनोहर, रम्य रूप धर  
आकर खड़ा हुआ सुख भी ॥

( ९ )

बोला मेरे कानों में यों—  
“हुआ आज से मैं तेरा ।  
तूने अपने शुभ कामों से  
बना लिया मुझको चेरा ” ॥

( १० )

गिरिधर सुख का सिद्ध मंत्र यह  
पाकर मैं हो गया महान ।  
वन, उपवन, तरु, लता, विहग क्या—  
सुखदायक हो गया जहान ॥

श्रीगिरिधर शर्मा ।

## प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना ।



समालोचक की उपमा न्यायाधीश से दी जा सकती है । जैसे न्यायाधीश राग-द्वेष और पूर्व-संस्कारों से दूर रह कर न्याय का काम करता है, सच्चा समालोचक भी वैसा ही करता है । उसके फ़ैसले को सुन कर कोई प्रसन्न होगा या अप्रसन्न, उसकी निन्दा होगी या प्रशंसा, इसकी वह कुछ परवा नहीं करता । कलकत्ता-हाईकोर्ट के विचारपति माननीय फ्लेचर साहब के कई फ़ैसलों पर कुछ स्वार्थी लोगों ने बेहद नाराज़गी जाहिर की । परन्तु उससे जज महोदय ज़रा भी विचलित नहीं हुए । वे अपना न्यायकार्य पूर्ववत् शुद्धहृदय से कर रहे हैं । समालोचक भी राग और द्वेष, द्रोह और दुराग्रह, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि की प्रेरणा से

की गई टीकाओं की ओर दृकपात नहीं करते । उन्हें घृणापूर्ण उपेक्षा की दृष्टि से देख कर केवल हँस दिया करते हैं ।

कभी कभी कम उम्र के नये न्यायाधीशों को बड़े पुराने और बड़े कानूनी बैरिस्टरों की बहस सुननी पड़ती है । पर उनकी बहस का कुछ भी फल नहीं होता ; फ़ैसला उनके मुक्किलों के खिलाफ़ हो जाता है । इस दशा में कोई यह नहीं कह सकता कि इस नये न्यायाधीश को इस पुराने खुरीट बैरिस्टर के खिलाफ़ फ़ैसला सुनाने का मजाज़ नहीं । न्यायाधीश का आसन बहुतही उच्च और पवित्र समझा जाता है । जो बादशाह न्यायाधीश को नियुक्त करता है, खुद उसे भी अपने ही नियुक्त किये गये न्यायाधीश के सामने हाज़िर होना पड़ता है । अभी, उस दिन, विलायत में एक ऐसीही घटना हो गई है । एक आदमी ने राजेश्वर जार्ज पंचम के विषय में एक अपमान-जनक बात लिख दी । उस पर मुक़द्दमा चलाया गया । राजेश्वर के प्रतिनिधि को इस मुक़द्दमे की पैरवी के लिए राजेश्वर ही के द्वारा मुक़रर किये गये न्यायाधीश के सामने हाज़िर होना पड़ा । सच्चे समालोचक का भी यही हाल है । बड़े बड़े कवि, विज्ञान-वेत्ता, इतिहास-लेखक और वक्ताओं की कृतियों पर फ़ैसला सुनाने का उसे अधिकार है । सभ्यता-पूर्ण और युक्तिसङ्गत शब्दों में उसके फ़ैसले की आलोचना करने का सबको मजाज़ है । यदि असभ्यता-पूर्ण और उपहास-जनक शब्दों में कोई किसी जज के फ़ैसले की आलोचना करता है तो उसे अदालत से दण्ड मिलता है । दूसरे का उपहास करनेही के उद्देश से असभ्यता-पूर्ण शब्दों में समालोचना करनेवाले को भी, हिन्दी को छोड़ कर, अन्य भाषाओं के साहित्य-सेवियों की अदालत से सज़ा मिलती है ।

योग्य समालोचक के लिए यह कोई नहीं कह सकता कि जिसकी पुस्तक की तुम समालोचना करना चाहते हो उसके बराबर विद्वत्ता प्राप्त कर लो तब तुम समालोचना लिखने के लिए कलम उठाओ ।



होमर ने ग्रीक भाषा में इलियड काव्य लिखा है। वाल्मीकि और कालिदास ने संस्कृत में अपने अपने काव्य लिखे हैं। फिरदौसी ने फ़ारसी में शाहनामा लिखा है। कौन ऐसा समालोचक इस समय है जो इन भाषाओं में पूर्वोक्त विद्वानों के सदृश योग्यता रखने का दावा कर सकता हो ? तो, फिर, क्या इन पुस्तकों की समालोचना ही न हो ? कोई भी समझदार आदमी ऐसी राय न देगा। इस तरह की राय देना मानो यह कहना है कि साहित्य की समालोचना-शाखा एकदम ही काट डाली जाय। क्योंकि काहे को कोई कालिदास और वाल्मीकि के तुल्य विद्वान और कवि होगा और काहे को इनके काव्यों की कभी समालोचना होगी, और काहे को समालोचना से होनेवाले लाभों से साहित्य का उपकार होगा।

समालोचना करने की प्रणाली इस देश में बहुत पुराने समय से है। परन्तु वह प्रणाली पुराने ढंग की है। समालोचना करने की नई प्रणाली अँगरेजी-शिक्षा की बदौलत हम लोगों ने सीखी है। अँगरेजी-साहित्य का एक अंश समालोचना भी है। अँगरेजी-साहित्य के हितैषी सच्चे समालोचकों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। अँगरेजी में समालोचना का इतना आदर और इतना प्रचार है कि महाकवि शेक्सपियर के ग्रन्थों की नई नई समालोचनायें अब तक निकलती जाती हैं। ये सब समालोचनायें प्रशंसात्मक ही नहीं; इनमें शेक्सपियर के दोष भी दिखलाये जाते हैं। और, दोष भी एक तरह के नहीं, सब तरह के—शेक्सपियर की भाषा के दोष, शेक्सपियर की कविता के दोष, शेक्सपियर के नाटक-पात्रों के दोष। पर इन बातों को कोई बुरा नहीं समझता।

हिन्दी की अपेक्षा बँगला, मराठी और गुजराती भाषायें बहुत उन्नत हैं। इन भाषाओं के विद्वान भी प्राचीनों के ग्रन्थों की समालोचना करना बुरा नहीं समझते। और, जो वे इतने संकीर्ण-हृदय होते कि ऐसी बातों को बुरा समझें तो उनकी भाषाओं

की कभी इतनी उन्नति न होती। सरस्वती के पास का परिचय गुजराती भाषा के ग्रन्थकारों से नहीं जितना कि बँगला और मराठी के ग्रन्थकारों से है। इस कारण गुजराती को हम जाने देते हैं। इस लेख में हम केवल बँगला और मराठी के नामी नामी विद्वानों की की हुई समालोचनायें नमूने उद्धृत करके यह दिखलाना चाहते हैं कि लोगों ने प्राचीन कवियों के काव्यों पर कैसे दोषारोपण किये हैं।

### पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

का जीवनचरित सरस्वती में निकल चुका है। आप संस्कृत के कैसे पण्डित और कैसे महाभाष्य यह पाठकों को विदित ही है। इन्होंने बँगला एक पुस्तक लिखी है। उसकी कई आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। उसमें संस्कृत-भाषा और संस्कृत साहित्य का वर्णन और समालोचन है। विद्यासागर महाशय ने इस पुस्तक में संस्कृत-भाषा और संस्कृत काव्यादि की भूरि भूरि प्रशंसा की है। परन्तु जहाँ आपको मुनासिब मालूम हुआ है वहाँ आपने उनके दोष भी दिखाये हैं। ऐसा करने उन्होंने ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया। कालिदास कुमारसम्भव में १७ सर्ग हैं। पर, पहले के सात सर्गों के पढ़ने पढ़ाने की परिपाटी बहुत दिनों चली आती है। पिछले १० सर्ग विलुप्तप्राय थे। उनका प्रचार अभी कुछ ही समय से, छापेखाने की बदौलत हुआ है। उनके अप्रचार का कारण विद्यासागर महाशय यह बतलाते हैं :—

“आठवें सर्ग में महादेव-पार्वती का विहार-वर्णन है। भी एक सामान्य नायक-नायिका के विहार-वर्णन के सदृश नवें सर्ग में पार्वती का कैलास-गमन और दसवें में कालिदास का जन्मवृत्तान्त वर्णित है। इन दोनों सर्गों में भी पार्वती-विहार अश्लील वर्णन है। भारतवासी महादेव और पार्वती को जगन्मोक्ष और जगन्माता समझते हैं। जगत्पिता और जगन्माता-समझते हैं। अश्लील वर्णन पढ़ना अत्यन्त अनुचित जान कर लोगों ने उन संभव के शेष दस सर्गों का अनुशीलन बन्द कर दिया।”



[ भाग ४ ]

कवियों ने भी कुमारसम्भव के महादेव-पार्वती-विषयक विवरणों को अत्यन्त अनुचित और अत्यन्त दूष्य बतलाया है ।

देखिए, विद्यासागर जैसे विख्यात पण्डित और महात्मा ने कालिदास के इस काव्य पर कैसे स्पष्ट शब्दों में दोषारोप किया है । इन्होंने भारवि के किरातार्जुनीय काव्य में भी दोषोद्भावना की है । लिखा है कि यह काव्य—“किञ्चित् दुरूह है—कालिदास की रचना की तरह सरल नहीं है” । माघ कवि के शिशुपालवध पर तो विद्यासागर ने बड़ेही कठोर दूषण लगाये हैं । सुनिए वे क्या कहते हैं :—

“इस काव्य के वर्णन अन्त में अत्यन्त नीरस हैं । + + + अलङ्कारों का बड़े विस्तार से वर्णन करना माघ का अति-लघु दोष है । + + + + + भारतवर्ष के पण्डित माघ को सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य कहते हैं । परन्तु उनकी यह बात किसी तरह अङ्गीकार नहीं की जा सकती” ।

इससे यह न समझिए कि विद्यासागर ने सब कहीं सब काव्यों की निन्दाही निन्दा की है । नहीं, प्रशंसनीय बातों की उन्होंने प्रशंसा भी की है । पर जहाँ उन्हें कोई दोष देख पड़ा है वहाँ उन्होंने उसे भी दिखाने में कसर नहीं की ।

अब जरा श्रीहर्ष के नैषधचरित में विद्यासागर के द्वारा की गई दोषोद्भावना सुन लीजिए :—

“इसमें सन्देह नहीं कि श्रीहर्ष में असाधारण कवित्वशक्ति थी । परन्तु उनमें तादृश सहृदयता न थी । उन्होंने नैषधचरित को अत्यन्त अयुक्तियों से इतना भर दिया है और उनकी इतनी माधुर्यवर्जित, लालित्यहीन, सारव्यथूल्य और अपरि-पूर्ण है कि उसे किसी तरह अत्युत्तम काव्य नहीं कह सकते । + + + श्रीहर्ष की अयुक्तियाँ इतनी उत्कट हैं कि उनके द्वारा उनकी कविता उपादेय होने के बदले हेय ही अधिक हो जाती है” ।

कैसी तीव्र सम्मति है । इस इतने विख्यात काव्य को विद्यासागर ने एकदम हेय कह दिया । बाणभट्ट की कादम्बरी को इन्होंने अनेक स्थलों पर “दुरूह बतलाया है और उसके लम्बे लम्बे अंशों को भी बुरा कहा है । दण्डी के दशकुमार-

चरित और सुबन्धु की वासवदत्ता पर भी विद्यासागर ने कई तरह के दोषारोपण किये हैं ।

## श्रीयुत अरविन्द घोष

की विद्वत्ता, योग्यता और समालोचन-शक्ति छिपी नहीं है । कई साल हुए उन्होंने कालिदास पर एक लेख अँगरेजी में लिख कर मदरास के “इंडियन रिव्यू” नामक मासिक पत्र में प्रकाशित किया था । उसमें उन्होंने अपूर्व विद्वत्ता का परिचय दिया है । अनेक दृष्टि से उन्होंने कालिदास के काव्यों पर अपने विचार प्रकट किये हैं । स्थान स्थान पर उन्होंने कालिदास की प्रशंसा की है । परन्तु इसके साथही कालिदास पर दोषारोपण भी उन्होंने किये हैं । आपने अपनी समालोचना में एक जगह लिखा है :—

“कालिदास का आत्मिक चरित्र उतना अच्छा नहीं मालूम होता । उनके बुरे चालचलन के विषय में बहुतसी बातें सुनी भी जाती हैं । उन्हें हम सत्य नहीं भी मान सकते । किन्तु कालिदास के काव्यों का कोई भी पक्षपातरहित पाठक यह न कह सकेगा कि कालिदास धर्मानुरागी अथवा धार्मिक नियमों की पाबन्दी करनेवाले थे । उनके काव्यों में श्रेष्ठ आदर्श और अच्छे विचारों की प्रशंसा अवश्य है ; पर यह प्रशंसा काल्पनिक है । उनके अच्छे विषयों के वर्णन से उनकी कल्पनाशक्ति की श्रेष्ठता मात्र साबित होती है । उसका प्रभाव भी अच्छे लोगों कीही कल्पना-शक्ति पर पड़ सकता है । वाल्मीकि और व्यास के काव्यों की तरह कालिदास के काव्यों में चरित्र सुधारने की शक्ति नहीं” ।

तो अरविन्द बाबू की राय में कालिदास के काव्य चरित्र सुधारनेवाली सामग्री से एकदम खाली हैं !

## कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

से पाठक अवश्यही परिचित होंगे । वे बंगाल के सर्वोत्तम कवि, समालोचक और उपन्यासकार हैं । उनके कई लेखों के अनुवाद सरस्वती में निकल चुके हैं । उन्होंने “प्राचीन साहित्य” नाम की एक पुस्तक लिखी है । उसके कादम्बरी-चित्र नामक निबन्ध में एक जगह आप लिखते हैं :—



“ बाणभट्ट लिखने तो बैठे थे कहानी, पर भाषा को ही उन्होंने विपुल गौरव दिया है। कहानी के लाघव की उन्होंने कुछ भी परवा नहीं की। भाषा खूब आलङ्कारिक हो, कहानी चाहे बिगड़ जाय। उन्होंने संस्कृत-भाषा को अनुचरों से घिरे हुए राजेश्वर की तरह आगे चलाया है। कहानी के हाथ में छत्र देकर उसे प्रच्छन्न भाव से पीछे पीछे चलाया है। भाषा की राजमर्यादा बढ़ाने के लिए ही कहानी की थोड़ी सी ज़रूरत समझी गई है। यही कारण है जो वह बेचारी वहाँ रहने पाई है। परन्तु उसकी तरफ़ किसी की भी दृष्टि नहीं ”।

कैसी कठोर आलोचना है। पर कौन कहेगा कि यह आक्षेप ठीक नहीं ?

डाक्टर सतीशचन्द्र विद्या-भूषण, एम०

ए०, पीएच० डी०

कलकत्ते के संस्कृत-कालेज के प्रधान अध्यापक हैं। आप नामी विद्वान् हैं। संस्कृत के सिवा पाली और तिब्बतीय आदि भाषाये भी जानते हैं। इन्होंने भवभूति पर एक पुस्तक, बंगला में, लिखी है। उसमें भवभूति के नाटकों की विस्तृत आलोचना है। भवभूति के सम्बन्ध की और भी कितनीहीं बातों का विचार उसमें किया गया है। इस पुस्तक में डाकूर साहब ने आलङ्कारिकों का हवाला देकर लिखा है:—

“ भवभूति के काव्यों में स्थान स्थान पर दोष दिखलाये गये हैं। महावीरचरित के दूसरे अङ्क में परशुराम और रामचन्द्र आपस में युद्ध-सम्बन्धी बातें कर रहे हैं। परशुराम ने जिस समय रामचन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा उसी समय कंचुकी ने आकर कहा—राजन् ! कङ्कण खोलने के लिए रामचन्द्र को रनिवास में भेज दीजिए यह अक्रायणच्छेद नामक दोष है ”।

मम्मट ने इस दोष का उल्लेख काव्यप्रकाश में किया है।

डाक्टर रामदास सेन

नाम के एक बड़े विद्वान् बंगाल में हो गये हैं। ये एशियाटिक सोसायटी के मेम्बर थे। इन्होंने

प्राचीन भारत के इतिहास, दर्शनशास्त्र, विज्ञान के कलाकौशल आदि पर अनेक गवेषणापूर्ण लेख लिखे थे। वे सब कई जिल्दों में पुस्तकाकार छपे हैं। अध्यापक मोक्षमूलर को समर्पित किये गये हैं। लेखों में एक लेख नैषधीयचरित के रचयिता पर भी है। इस लेख में डाकूर रामदास सेन जगह पर लिखते हैं:—

“ इन सब वर्णनों को देखने से मालूम होता है कि एक अद्वितीय कवि थे। परन्तु, दुःख की बात है, उनकी अत्युक्ति-दोषों से अत्यन्त दूषित है ”।

बाबू दीनेशचन्द्र सेन, बी० ए०

के नाम से पाठक अवश्य परिचित होंगे इन्होंने “ वङ्गभाषा और साहित्य ” नाम का बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है। बरसों की मेहनत खोज से यह ग्रन्थ तैयार हुआ है। इसने सेन बाबू का स्वास्थ्य का सत्यानाश कर दिया। यह ग्रन्थ प्रामाणिक समझा गया कि गवर्नमेंट ने इसे लिखने उपलक्ष्य में सेन बाबू को पेन्शन दे दी। इस पुस्तक का उल्लेख कई बार सरस्वती में हो चुका है। सेन बाबू ने वङ्ग-भाषा के पुराने कवियों के काव्यों की बहुत विचार-पूर्वक समालोचना की है। समालोचना में उन्होंने दोष भी खूब ही दिखलाये हैं। बड़े से बड़े कवियों तक को इन्होंने नहीं छोड़ा। किसी की भाषा को दोषपूर्ण बतलाया है; किसी की रचना को विरक्ति-उत्पादक बतलाया है; काव्यांश को प्राचीन संस्कृत-कवियों की नक़ल बतलाया है; किसी की कविता को उम्बर का ख़ज़ाना बतलाया है; किसी के अति निकृष्ट और लज्जाजनक बतलाया है। भारतचन्द्र के विषय में उन्होंने लिखा है:—

“ देवादिदेव महादेव की इस प्रकार अवमानना का शक्ति-उपासक कवि के लिए अच्छी बात नहीं ”।

दीनेश बाबू ने “ चन्द्रकान्त ”, “ कामिनीकुमार ” और “ जीवनतारा ” काव्यों के विषय में लिखा है:—



संख्या ४ ]

इन काव्यों ने बहुत दिन तक लोक-रुचि पर दौरात्म्य-भाव प्रकट किया है। ये इतनी अश्लील हैं कि इन्हें पढ़ते समय महादेव की अवमानना करनेवाले) खुद भारतचन्द्र को लज्जित करने पड़ता। कठोर समालोचना करके ही छोड़ देना इन काव्यों के लेखकों के लिए यथेष्ट दण्ड नहीं। नैतिक अदालत में इन का कट पड़ने चाहिए।

कहिए, ऐसी कठोर समालोचना कभी आपने हिन्दी में भी देखी है? यह लेख बढ़ता जा रहा है, इसलिए दो एक महाराष्ट्र-विद्वानों की दोषारोपपूर्ण समालोचनाओं के नमूने दे कर अब हम इसे समाप्त करेंगे।

ए० माधवराव व्यंकटेश लेले० बी० ए०,

एल० सी० ई०

मराठी के प्रसिद्ध लेखक हैं। इन्होंने कालिदास और भवभूति आदि के प्रायः सारे नाटकों का सार ग्रन्थ और समालोचन मराठी में लिखा है। भवभूति के से लिखे मालतीमाधव पर इनकी राय सुनिए :—

“इसमें व्यर्थ विस्तार और द्विरुक्तियों का कमाल है। + + + + + इसमें संविधानक सम्बन्धी कोई वैचित्र्य है और न कवियों का मन आकर्षण करने योग्य कोई गुण ही है। इसमें समसप्रचुर, पात्रों के मुँह में शोभा न देने योग्य, पुनरुक्ति और व्यर्थ भाषण हैं”।

इसी तरह महावीरचरित पर भी इन्होंने दोषा-लोचना किया है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में तो कई जगह इन्होंने दोषोद्भावना की है। कहीं किसी भाषण की योग्यता के सम्बन्ध में शङ्का की है, कहीं किसी बात को वस्तु-स्थिति के अननुरूप बत-लाया है, कहीं लिखा है कि—“कवि-कल्पना की दौड़, यही सोच कर समाधान करना चाहिए”।

विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूनकर, बी० ए०

का चरित सरस्वती में निकल चुका है। ये संस्कृत के उद्भट विद्वान् और संस्कृत-काव्यों के

उत्कृष्ट ज्ञाता थे। पूना के चित्रशाला प्रेस और केसरी तथा मराठा पत्रों के जन्म प्रधानतया इन्हीं की मानसिक उद्भावना के फल हैं। शास्त्रीजी ने कालिदास, भवभूति, बाण, सुबन्धु और दण्डो कवियों पर आलोचनात्मक बड़े बड़े निबन्ध लिखे हैं। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के विषय में इनकी राय है कि इसका सिर्फ पहला और चौथा अङ्क अच्छा है। शकुन्तला, मेघदूत और रघुवंश की बहुत सी बातें इसमें आ जाने से “इस नाटक की बड़ी ही रसहानि हुई है”। इनका आक्षेप है कि—“पात्रों का स्वभाववैचित्र्य साफ़ साफ़ दिखाना संस्कृत-नाटकों में तो क्या सारी संस्कृत-कविता में बहुत कम पाया जाता है”।

शास्त्री जी ने वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु की बेतरह खबर ली है। आप कहते हैं :—

“सुबन्धु ने कथा के प्रधान अङ्ग की सर्वथा उपेक्षा की है। + + + उसका ग्रन्थ अनेक स्थलों में दूषित हो गया है, कहीं कहीं तो हास्यास्पद भी हो गया है। + + + उसने अपने पात्रों की इतनी दुर्दशा की है कि कहा नहीं जाता”।

दशकुमारचरित के विषय में तो इन्होंने बहुत ही कड़ी बातें कही हैं। पर विस्तारभय से हम उन्हें उद्धृत नहीं करते।

राव-बहादुर शङ्कर पारुडुरङ्ग पण्डित, एम० ए०

संस्कृत के उत्तम विद्वान् थे। बंबई के गवर्नर के दफ्तर में ये प्रधान अनुवादक—“ओरियंटल ट्रान्सलेटर”—थे। इनकी लिखी हुई वेदों की टीका बहुत दिनों तक इनके “वेदार्थयत्न” नामक पत्र में प्रकाशित होती रही थी। इन्होंने रघुवंश का सम्पादन करके उसका एक नया संस्करण निकाला था। गत जनवरी की सरस्वती में प्रकाशित कालिदास की निरङ्कुशता में हमने कालिदास की एक उपमा में हीनता बतलाई है। वह हीनता—“अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः”—इस श्लोकार्द्ध से सम्बन्ध रखती है। इस उपमा पर पण्डित महाशय अपने सम्पादित रघुवंश में लिखते हैं :—



“Whatever may be the fitness of the simile as regards the similitude, it certainly cannot be said to be very poetical, being derived altogether from a pedant's life.”

अर्थात्—समता के विचार से इस उपमा की चाहे जो योग्यता समझी जाय; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह उपमा विशेष कवितानुयायिनी नहीं—इसमें कोई विशेष कवित्व की बात नहीं; क्योंकि एक विद्यादात्मिक के जीवन से इसकी सामग्री ली गई है। मतलब यह कि कालिदास ने केवल अपना वैयाकरणत्व दिखलानेही के लिए इस उपमा का प्रयोग किया है। शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित ने अपने सम्पादित रघुवंश में और भी कई जगह कालिदास पर आक्षेप किये हैं।

### श्रीयुत गोपाल रघुनाथ नन्दर्गीकर

कालिदास के काव्यों के अच्छे ज्ञाता हैं। पूने के न्यू इंगलिश स्कूल में ये संस्कृत के अध्यापक थे। शायद अब तक वहीं हैं। इन्होंने भी रघुवंश का सम्पादन किया है। “कालिदास की निरङ्कुशता” में—“ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः”—इत्यादि पद्य के विषय में हमने लिखा है कि यह उक्ति उद्बेगजनक है। नन्दर्गीकरजी इस उक्ति पर लिखते हैं :—

“This incident, as related by our poet, does not appear chaste, for Ramayana nowhere says that the crow attacked any particular portion of Sita's person.”

अर्थात्—हमारे कवि ने इस घटना का जैसा वर्णन किया है वह विशुद्ध नहीं। रामायण में यह कहीं नहीं लिखा कि कौवे ने सीता के किसी विशेष अङ्ग पर आक्रमण किया था। सो ये महाशय भी कालिदास की इस उक्ति को बुरा कहते हैं और उनके विरुद्ध टीका करना अनुचित नहीं समझते।

मार्च की सरस्वती में कालिदास के यतिभङ्ग का जो हमने उदाहरण दिया है उससे ये भी सम्मत हैं।

इन्होंने लिखा है:—“This is an example what is called यतिभङ्ग”। इसके सिवा, जनक की सरस्वती में प्रकाशित—“ततः प्रियोपात्तरसे रोष्टे”—इत्यादि श्लोक में दिखलाया गया अनैतिक भी इन्हें खटका है।

ये तो एतद्देशीय विद्वानों के द्वारा की गई दोषावनाओं के उदाहरण हैं। प्राचीन आलङ्कारिकों अपने भूतपूर्व कवियों की कविता की जो छान की है और उसके दोषों का जो सूक्ष्म विचार है उसके नमूने फिर कभी दिखाने की चेष्टा जायगी। इस दफ्ते इतना ही बस है।

### रोम की यात्रा ।



स्विट्जरलैंड की सैर समाप्त कर हम इसकी राजधानी रोम पहुँचे। मार्च अगस्त का था। स्विट्जरलैंड सरहद छोड़ते ही स्वच्छ दिखाई देने लगा। कुछ कुछ ऐसा मालूम कि भारत में भ्रमण कर रहे हैं। रोम पहुँचते हिन्दुस्तान की सी कड़ी गरमी मालूम होने लगा। गरम कपड़े और ओवर-कोट फेंक देने की जरूरत पड़ी। एक दिन पहले यही कपड़े प्राण से प्यारे आज वे बोझ हो गये। सबेरे ९ बजे के स्टेशन पर पहुँचे। चट गाड़ी से निकल टिकट कुक के क्लर्क से मिले। उससे कुक के पता इत्यादि पूछा। बाहर आकर निकट ही होटल में जाकर डेरा डाला। पश्चात् कुक के वतीं आफिस को गये। यह दफ्तर स्टेशन से कुछ दूर ही था। मैं जानता हूँ, प्रायः सभी स्टेशनों में इनके दफ्तर ऐसे ही मौकों पर बने हैं। फिरोँ को बड़ा आराम मिलता है। आफिस में कुकों से ज़रूरी बातें पूछी। कुक लोग इटली निवासी थे। वे इटैलियन और अंगरेजी भाषाएँ बोलते थे। ये लोग मुसाफिरोँ से बड़ी नम्रता से



संख्या ४ ]

करते हैं। यात्री उनका घंटे का दिमाग चाटते हैं, पर वे उनका शांतिपूर्वक समाधान करते हैं। लेडियाँ बहुत बड़ी बतकड़ होती हैं। जिस क्लर्क से हमें पूछपाछ करनी थी उसी से एक लेडी बातचीत कर रही थी। बीच में हम उस क्लर्क से बोल नहीं सकते थे। ऐसा करना लेडी का अनादर समझा जाता। अतएव हम चुपचाप खड़े रहे। करीब एक घंटे में लेडी साहबा ने उसका पीछा छोड़ा। तब क्लर्क से बातचीत करने की हमारी बारी आई। प्रथम उसने माफ़ी माँगी। कहने लगा, अफ़सोस है, आपको इतना खड़ा रहना पड़ा। पर क्या करें, आप जानते हैं, कितनी बतकड़ होती हैं। हमने कहा, कुछ दर्ज नहीं। बातचीत करने के बाद हम बाहर आये तो मालूम हुआ कि कुक की सैर कराने वाली गाड़ी चली गई। इस गाड़ी में २५ या ३०, कभी कभी ज्यादा भी, मुसाफ़िर बैठ कर शहर की सैर करने निकलते हैं। प्रत्येक यात्री को किराया देना पड़ता है। इसके साथ एक गाइड (Guide) याने जानकार आदमी रहता है। इसे कुछ नहीं देना पड़ता। यह गाइड अंगरेजी के सिवा दो एक भाषायें और भी जानता है, जिनमें मुसाफ़िरों को सब बातें समझाता जाता है। इन गाड़ियों द्वारा ऐसी बड़ी जगहों की सैर सहज में और कम खर्च में हो जाती है। मुसाफ़िरों के साथ एक दूसरे से हिलमिल जाते हैं। हँसी-मजाक उड़ता जाता है। समय अच्छा कटता है। कल टाईम पर अगम्यवश उस दिन उस पूर्वोक्त लेडी साहबा के दफ़्तर में पहुँचते हैं। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। कुछ भूख भी थी। उधर धूप भी सताने लगी। सोचा, लौट कर होटल में कुछ आराम करें। होटल में आकर कपड़े बदले। बड़ी घबराहट मालूम हुई। पसीना से तैयार थे। नौकर से कहा, गुसल करने के लिए जल्द तैयार कर। वह पूछने लगा, ठंडा या गरम। कहा, ठंडा। गुसलखाने में जाकर खूब धोया। तबीयत ठिकाने हुई। हलके कपड़े पहने।

कुछ फलाहार किया और शहर देखने निकले। रोम में दो प्रकार की बस्ती है—नई और पुरानी।

### नई बस्ती ।

नई बस्ती में नये नगरों की भाँति जगमगाहट है। बड़े बड़े ऊँचे मकान हैं। सत-खण्डे, अठ-खण्डे होटल हैं। नई तरह की ट्रेमें चलती हैं। भाँति भाँति की अच्छी सजी हुई दूकानें हैं। सुहावने पार्क और चौड़े चौक हैं। सड़कें भी चौड़ी हैं। पर बहुधा मोटे पत्थरों से पटी हैं, जिन पर गाड़ी घोड़े चलने से बड़ी आवाज़ होती है। बहुत से रास्ते कम चौड़े भी हैं। बाज़ की पटरियाँ बहुत तंग हैं। कहीं कहीं हैं भी नहीं। लोग चाहे जहाँ थूकते हैं। इनकी अपेक्षा विलायत के लोग स्वच्छ कहे जा सकते हैं। रोम और योरप के अन्य देशों के नगरों की सड़कों के बड़े मकानों के कोनों पर घड़ियाँ लगी रहती हैं। विलायत में यह चाल नहीं है। वहाँ बहुधा गिरजा-घरों, कचहरी, पार्लिमेंट, दूकान इत्यादि पर भी बड़ी बड़ी घड़ियाँ लगी रहती हैं। इटली तथा अन्य देशों की ट्राम गाड़ियाँ उस तर्ज की नहीं हैं जो अब विलायत में हैं। वे पुराने फैशन की हैं। किसी किसी में बैठने से बड़ी तकलीफ होती है। ट्रेमें बहुधा घोड़ों की हैं, जो बहुत समय नष्ट करती हैं। नये रोम के भी कई हिस्से ऐसे मैले हैं कि वहाँ फिर दुबारा जाने को जी नहीं चाहता। घर बहुत छोटे और मैले कुचैले हैं। रास्तों में कूड़ा कचड़ा दिखाई देता है। गरीब लोग बाहर सड़क पर बैठते हैं। वहाँ लड़के बच्चे खेलते हैं। बड़ा हल्ला होता है। दो चार सड़कों से हम निकले। पर बड़ा भय लगा कि कहीं बच्चे हमें विदेशी जान अंडों के छिलकों से स्वागत न करें। पर खैर हुई। कहीं कहीं बालक-बालिकाओं ने हमें देख अपनी भाषा में कुछ कहा, पर इससे अधिक खराबी की नौबत नहीं पहुँची।

### पुरानी बस्ती ।

पुरानी बस्ती का हाल कुछ न पूछिए। इसे देखने के लिए हमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। भूखों मरने के



सिवा पैदल भी चलना पड़ा। प्राचीन रोम के लोगों की दशा देख कुछ हमें अपने देश का स्मरण हो आया। बहुत शोक हुआ। मन में कई विचार हुए। समय का चक्र विचित्र है। इसके चक्र से कौन बचा है? जो उन्नति के हिमालय पर चढ़ जाता है, काल उसे मौका पाकर धूल में मिला देता है। जिस रोम की सभ्यता की छाया सम्पूर्ण पाश्चात्य देशों पर फैली थी—वह सभ्यता जिसके चिह्न आज भी दूर दूर तक पाये जाते हैं—वही रोम समय के प्रभाव से रसातल को पहुँच रहा है। पुराने रोम के पुरखों की संतान आज अविद्या के सागर में डूबी हुई है। आज वहाँ न धन है न विद्या। तन ढाँकने को वस्त्र भी दुर्लभ हैं। मकान क्या, मिट्टी के झोंपड़े हैं। सड़कों पर आधा फुट धूल जमी है। बरसात में इन रास्तों पर एक पैर से दूसरा पैर उठाना कठिन होता होगा। खो-पुरुष सब प्रायः नंगे पैर फिरते हैं; व्यसनों में खूब लिप्त हैं। कहीं से निकलिये, छोटे बड़े सभी मदिरा-पिशाचिनी के पंजे में पड़े दिखाई देते हैं। बड़ी खराब दशा है। पुराने और नये रोम के बीच से टाइबर नदी निकली है। नगर की तरह इसकी भी दशा बहुत हीन है। इसके किनारे रैनक नहीं है। चौड़ाई मामूली है। सफ़ाई में इसका पानी पहले बरसाती भोल के पानी को मात करता है। सब उजाड़ सा दीखता है। कवियों ने टाइबर नदी की प्रशंसा के पुल बाँधे हैं; पर हमें कोई विचित्र बात न देख पड़ी।

### कुछ देखने योग्य स्थान ।

रोम की पुरानी चीजों को देखने के लिए महीनों की ज़रूरत है। इतिहास में जो बहुत सी बातें हैं उनमें बहुतों का चिह्न तक नहीं है। जहाँ टीले थे वहाँ मैदान हैं। रोम के प्राचीन देवी-देवताओं के मन्दिर पादड़ियों के गिरजाघर हो गये हैं। बहुतों की ईंट, लकड़ी, पत्थर से पोपों के प्रासाद बने हैं। वही दशा प्राचीन नाटक-गृहों की है। यहाँ के सबसे प्राचीन नाटकघर को कालोसियम (Colosseum) कहते हैं। यह विराट् और विचित्र भवन है।

उसकी बराबरी का कदाचित् ही इस संसार में कोई हो। यह अब बे-काम पड़ा है। इस पर ना के रगड़ों के अतिरिक्त मनुष्यों ने भी नष्ट हमले किये हैं। पर इतने आक्रमणों पर भी अब उससे रोम की रैनक है। इसकी दूरी फ़ीटों से भी रोमन-कारीगरों के कौशल का अच्छा चलता है। यहाँ लोगों में एक कहावत है कि तक कालोसियम खड़ा है तब तक रोम खड़ा है। कालोसियम गिरेगा रोम गिरेगा। और जब गिरेगा तब संसार को भी डूबा समझिए।

“While stands the Colosseum, Rome shall stand,

When falls the Colosseum, Rome shall fall,

And when Rome falls, the world.”

इसकी नींव दो हजार वर्ष हुए डाली गई केवल बाहरी दीवारों की कीमत पाने दो करोड़ समझी जाती है। एक फ़ीट कोई दस आने के बर होता है। कुल इमारत में कितना व्यय इसका पता नहीं। बहुत कुछ पूछा, पर ठीक हिसाब न बताया। यह एक सादा, पर भवन है। इसके पत्थर लोहे की कड़ियों से जुड़े बाहर से संगमरमर की जुड़ाई है। यह भवन मंजिला है। इसमें पचास हजार आदमी तभी समय अच्छी तरह बैठ सकते थे। मानो एक का नगर इसमें समा सकता था। ऊँचाई अनुमान दो सौ फुट है। बैठके संगमरमर की थीं। इसमें नाटकों के सिवा जङ्गली जानवर लड़ाये जाते थे। पीछे से इसने किले, अस्पताल कारखानों का काम दिया। हम लिख चुके हैं। इसके ईंट-पत्थरों से अनेक गिरजाघर और भवन चुके हैं। तिस पर भी यह सिर उठाये खड़ा है। सोलहवीं सदी में यह भवन तीसरे पोप के मंत्र में था। इनसे एक पादड़ो ने कुछ सामान की आज्ञा माँगी। पूछा कि हमें केवल बाहरी आप मुहलत दें तो इसमें से कुछ मकान



[ भाग १ ]  
 सार में है  
 स पर का  
 नष्टका  
 भी अब  
 फूटी  
 अच्छा  
 त है कि  
 खड़ा है  
 र जव  
 ए।  
 eum, R  
 um, R  
 world.  
 ली गई  
 करोड़  
 आने के  
 यय  
 पर कि  
 रा, पर  
 में से जु  
 यह भव  
 दमी तम  
 तो एक  
 उंचाई  
 परम की  
 ने जान  
 अस्प  
 ख चुके  
 और पर  
 ठायें ख  
 प के अ  
 मामान  
 बारह  
 कान

जाती नहीं चाहता। गिरजे के सामने दोनों ओर  
 ऊँचे पुरे पत्थर के पक्के बरामदे हैं, जिनमें से  
 जाग, वर्षा या धूप के समय, गिरजाघर या पोप के  
 महल में जाते हैं। इन बरामदों में गरीब, भूखे, वस्त्र-  
 विहीन स्त्री-पुरुष बैठे दिखाई देते हैं। ऊपर छत और  
 भों पर कबूतर और दूसरे पक्षी बसेरा लेते हैं।  
 तिरफे पर ऐसा गलीज है जैसे बरसों से झाड़ा न  
 गया हो। दो एक स्त्री-पुरुष इन बरामदों में चुहट और  
 गंदे आदि की दुकानें रखे हैं। इस गिरजाघर तक  
 आस पास बस्ती बड़ी खराब है। बुरा मालूम होता है। यह  
 बस्ती का बाहरी स्वरूप है। पर गिरजाघर का भीतरी  
 स्वरूप अलग है। गिरजाघर खूब लम्बा  
 छायें खड़ा है। लोहारों के समय इसमें अस्सी हजार  
 तक समा सकते हैं। ईस्टर के समय यहाँ बड़ी  
 भीड़ भरती है। बड़ी बड़ी दूर से यात्री आते हैं।  
 इनके कैथलिक लोग हिन्दुओं की भाँति मूर्तिपूजक

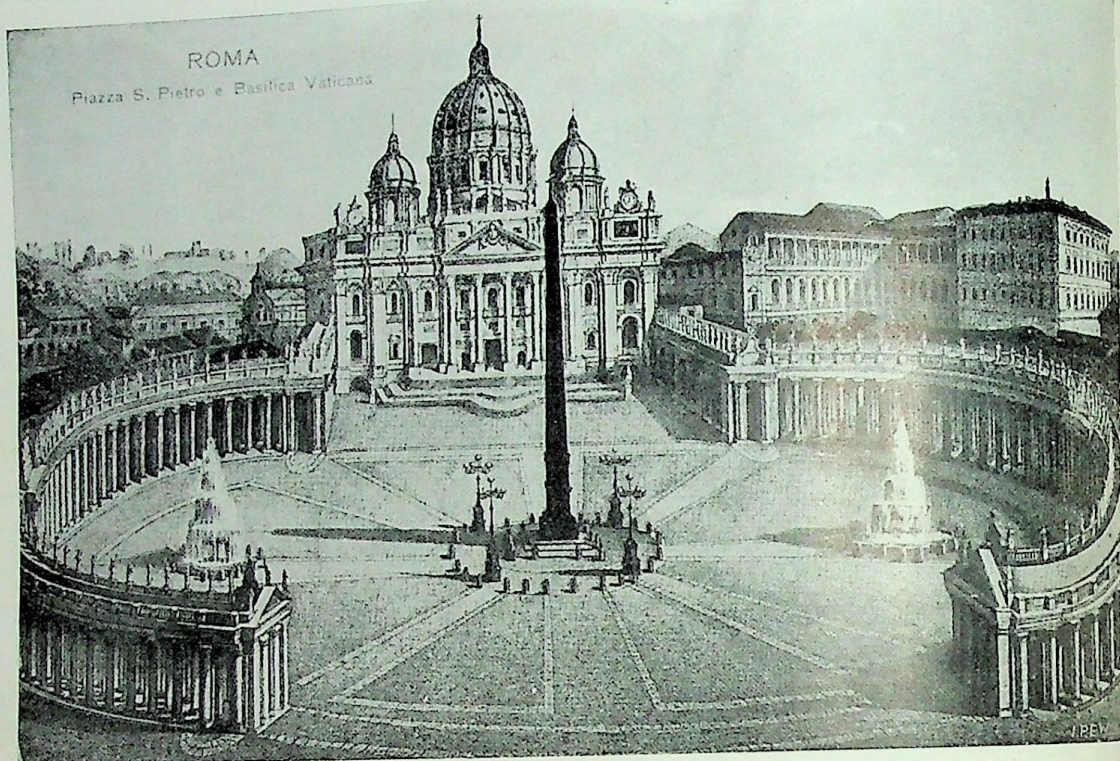
अनेक प्रकार के चित्र चित्रित हैं। ये बहुत सुन्दर  
 हैं। ऊपरी छत की कीमत तीन लाख रुपये से  
 अधिक समझी जाती है। पुराने काल के प्रसिद्ध  
 भवनों का सामान इसमें भी लगा है। इसका नक्शा  
 बनाने के लिए बड़े बड़े नामी चित्रकारों की ज़रूरत  
 पड़ी थी। इसकी नींव १५०६ ई० में डाली गई थी।  
 पचास साल से अधिक समय में यह तैयार हुआ  
 था। इसके आस पास कई छोटे छोटे गिरजाघर हैं।  
 पर उन पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

### पोप का महल ।

गिरजाघर की तरह पोप का महल भी बहुत  
 बड़ी इमारत है। बाहर से महल किसी काम के नहीं  
 देख पड़ते; पर भीतर खूब लम्बे चौड़े हैं। इनमें कम  
 से कम एक हजार छोटे बड़े कमरे हैं। महल एक  
 भाँति का नगर है जिसमें अजायबघर, पुस्तकालय,



# सरस्वती



रोम के सेंट पीटर नाम का गिरजा-घर ।

नदी निकली है। नगर की तरह इसकी भी दशा बहुत हीन है। इसके किनारे रैनक नहीं है। चौड़ाई मामूली है। सफ़ाई में इसका पानी पहले बरसाती भोल के पानी को मात करता है। सब उजाड़ सा दीखता है। कवियों ने टाइबर नदी की प्रशंसा के पुल बाँधे हैं, पर हमें कोई विचित्र बात न देख पड़ी।

## कुछ देखने योग्य स्थान ।

रोम की पुरानी चीजों को देखने के लिए महीनों की जरूरत है। इतिहास में जो बहुत सी बातें हैं उनमें बहुतों का चिह्न तक नहीं है। जहाँ टोले थे वहाँ मैदान हैं। रोम के प्राचीन देवी-देवताओं के मन्दिर पादड़ियों के गिरजाघर हो गये हैं। बहुतों की ईंट, लकड़ी, पत्थर से पोपों के प्रासाद बने हैं। वही दशा प्राचीन नाटक-गृहों की है। यहाँ के सबसे प्राचीन नाटकघर को कालोसियम (Colosseum) कहते हैं। यह विराट् और विचित्र भवन है।

पर हाता है। कुल इमारत में कितना व्यय इसका पता नहीं। बहुत कुछ पूछा, पर ठीक हिसाब न बताया। यह एक सादा, पर भवन है। इसके पत्थर लोहे की कड़ियों से जुड़े बाहर से संगमरमर की जुड़ाई है। यह भवन मंजिला है। इसमें पचास हजार आदमी तब समय अच्छी तरह बैठ सकते थे। मानो एक का नगर इसमें समा सकता था। उँचाई अनुमान दो सौ फुट है। बैठकें संगमरमर की थीं। इसमें नाटकों के सिवा जङ्गली जानवर लड़ाये जाते थे। पीछे से इसने किले, अस्पताल कारखानों का काम दिया। हम लिख चुके इसके ईंट-पत्थरों से अनेक गिरजाघर और मठ चुके हैं। तिस पर भी यह सिर उठाये खड़ा सोलहवीं सदी में यह भवन तीसरे पोप के आँखों में था। इनसे एक पादड़ो ने कुछ सामान की आज्ञा माँगी। पूछा कि हमें केवल बारह आप मुहलत दें तो इसमें से कुछ मकान



संख्या ४ ]

सामान निकाल ले जायँ । पोप साहब ने प्रार्थना मंत्र की । पादड़ी ने चार हजार मजदूर लगाये और जितना सामान बना उठवा ले गया । पर पोप साहब वचन दे चुके थे । इससे वे चुप रहे । इसी घर से इस बृहत् भवन का आकार समझा जा सकता है । इसके देखने ही से इसकी मजबूती मालूम हो सकती है ।

## रोम का प्रसिद्ध गिरजाघर और

### पोप का महल ।

रोम के सबसे प्रसिद्ध गिरजाघर का नाम सेंट पीटर्स ( St. Peters ) है । लोग इसे संसार के गिरजाघरों से बड़ा बतलाते हैं । बाहर देखने में इसका आकार इतना बड़ा नहीं जान पड़ता, क्योंकि यह कुछ नीची ज़मीन पर बना है । इसके सामने सेंट पीटर और सेंट पाल ( St. Paul ) महात्माओं की दो बड़ी मूर्तियाँ खड़ी हैं । इन मूर्तियों के बीच पानी का फ़वारा है । गिरजाघर के सामने का फ़र्श मोटे कड़े पत्थरों से पटा है, जिस पर चलने का जी नहीं चाहता । गिरजे के सामने दोनों ओर ऐसे पत्थर के पक्के बरामदे हैं, जिनमें से लोग, वर्षों या धूप के समय, गिरजाघर या पोप के दरबार में जाते हैं । इन बरामदों में गरीब, भूखे, वस्त्र-हीन स्त्री-पुरुष बैठ दिखाई देते हैं । ऊपर छत और ओरों पर कबूतर और दूसरे पक्षी बसेरा लेते हैं । गिरजाघर के सामने ऐसा गलीज़ है जैसे बरसों से भाड़ा न मिले । दो एक स्त्री-पुरुष इन बरामदों में चुरट और गिरजाघर की ओर आदि की दूकानें रखे हैं । इस गिरजाघर तक आस पास बस्ती बड़ी ख़राब है । बाड़ सा दीखता है । बुरा मालूम होता है । यह गिरजाघर का बाहरी स्वरूप है । पर गिरजाघर का भीतरी स्वरूप अलग है । सोहारों के समय इसमें अस्सी हजार लोग समा सकते हैं । ईस्टर के समय यहाँ बड़ी भीड़ भरती है । बड़ी बड़ी दूर से यात्री आते हैं । रोम के यहाँ लोग हिन्दुओं की भाँति मूर्तिपूजक

हैं । अतएव गिरजाघर के भीतर खड़ी हुई महात्मा पीटर की मूर्ति के एक पैर को लोगों ने चूम चूम कर और छू कर तानसैन की इमली की तरह विलकुल घिस कर पतला कर डाला है । यह गिरजाघर केवल देवस्थान ही नहीं, किन्तु कब्रिस्तान भी है । इसके भीतर बहुत से प्राचीन और आधुनिक पोप बादशाह और वेगमें गड़ी हैं । महात्मा पीटर और पाल यहाँ समाधि ले रहे हैं । कहते हैं, कई वर्ष पूर्व इनके शरीर ज्यों के त्यों उखाड़े गये थे; फिर जहाँ के तहाँ रख दिये गये । गिरजाघर के भीतर अन्य महात्माओं की भी मूर्तियाँ खड़ी हैं । नीचे का फ़र्श कई प्रकार के संगमरमर से पटा है, जिस पर चलते समय फिसल जाने का भय लगता है । भीतर जाकर दर्शक हल्ला नहीं करते । विलकुल सन्नाटा रहता है । बहुत शीतल जगह है । मालूम भी होता है कि यह कोई पवित्र स्थान है । पर नीचे ऊपर देखते देखते आँखें और पैर थक जाते हैं । जी बैठ कर आराम लेने को चाहता है; पर कहीं कुर्सी बेंच नहीं देख पड़ती । इसकी भीतरी ( बीच के भाग की ) उँचाई करीब पौने दो सौ फुट है । छत और दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र चित्रित हैं । ये बहुत सुन्दर हैं । ऊपरी छत की कीमत तीन लाख रुपये से अधिक समझी जाती है । पुराने काल के प्रसिद्ध भवनों का सामान इसमें भी लगा है । इसका नक्शा बनाने के लिए बड़े बड़े नामी चित्रकारों की ज़रूरत पड़ी थी । इसकी नींव १५०६ ई० में डाली गई थी । पचास साल से अधिक समय में यह तैयार हुआ था । इसके आस पास कई छोटे छोटे गिरजाघर हैं । पर उन पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं ।

### पोप का महल ।

गिरजाघर की तरह पोप का महल भी बहुत बड़ी इमारत है । बाहर से महल किसी काम के नहीं देख पड़ते; पर भीतर खूब लम्बे चौड़े हैं । इनमें कम से कम एक हजार छोटे बड़े कमरे हैं । महल एक भाँति का नगर है जिसमें अजायबघर, पुस्तकालय,



चित्रशाला, दफ्तर, बारके इत्यादि हैं। इसी में पोप साहब रहते हैं। पुस्तकालय में करीब डेढ़ लाख पुस्तकें हैं जिनमें बहुत सी धर्मसम्बन्धी हैं। किसी समय एक आदमी ने पोप से कहा कि हमें अमुक पुस्तक दीजिए। हम उसके वजन के बराबर सोना उसकी कीमत देते हैं। पर पोप साहब ने इनकार कर दिया। इस पुस्तकालय का मूल्य इसी एक उदाहरण से जान लेना चाहिए। हस्तलिखित पुस्तकों की कीमत ढाई लाख पौंड समझी जाती है। पर इनके देखने के लिए पोप साहब की खास आज्ञा की आवश्यकता है। इसी तरह, चित्रशाला में प्राचीन चित्रकारों की कारीगरी के नमूने हैं, जिन्हें अच्छी तरह देखने को सप्ताहों की जरूरत है। चित्रशाला में अभी तक चित्रकारी होती है। कई कमरों में पोप और उनके मातहतों के दफ्तर हैं। बाहरी और सिपाही और नौकरों की बारके हैं। पाँच सौ बरस से ऊपर हुआ, पोप लोग इन महलों में रहते आये हैं। पोप से मिलने को सदैव दूर दूर के लोग आया करते हैं। रोमन कैथलिक लोगों के वे शंकराचार्य हैं। उनके दर्शनों से वे पवित्र होते हैं। पर ये दर्शन कुछ कठिनाई से मिलते हैं। हम जैसे बाहरी आदमियों को विलायती एलची की चिट्ठी की जरूरत होती है। एलची वहीं रोम में रहता है। एलची साहब की चिट्ठी मिलने में हमें कोई अड़चन न होती, पर समय न था। इससे यत्न नहीं किया गया। इसलिए हम पोप को नहीं देख पाये। पर चिट्ठी मिलने के बाद भी हमें पोप तक पहुँचने के लिए कई मुकाम करने पड़ते। हमने कई यात्रियों को देखा जो घंटों दर्शनों के लिए एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में मारे मारे फिरे। महल के दरवाजों पर अच्छे ऊँचे पूरे संतरी भाले लिये खड़े हैं। भीतर जाने के पहले ये भी प्रश्न करते हैं। पर इनकी भाषा न समझने वालों को इशारे से काम लेना पड़ता है। हम सब महल में हो आये; पर कहीं कोई अँगरेजी जानने वाला न मिला। बड़ी निराशा हुई। मन चाहता था कि जी खोल कर किसी से महल और

पोप का हाल पूछें। पर कोई न मिला। निरकारडिनल साहब के दफ्तर में आये। वहाँ भाषा टूटी फूटी अँगरेजी जाननेवाला एक रोमन मिला। उसके द्वारा कारडिनल साहब से कुछ सवाल और घर चले आये। लौटते समय संतरियों ने सलामें फटकारों। पर हम किस किस को देते। इससे चुपचाप ही लौट आये। महलों में सैक दर्शक रहते भी ज़रा सा भी हल्ला गुल्ला नहीं होता। सब लोग धीरे धीरे और इशारे से बात चीत हैं। यह बात हमें केवल पश्चिमी देशों ही में पड़ी। नाटकघर, गिरजाघर, अजायबघर, सभा-घर और कई भाँति के बड़े बड़े जलसों में वहाँ कुंज पन नहीं होता। स्त्री-पुरुष आपस में बड़े नम्र से बर्ताव करते हैं। धोंगामस्ती, गाली-गलौज, गुल्ला वहाँ नाम को नहीं देखने को मिलेगा। दसवें पोप हैं। इसलिए इन्हें Pope Pious, X हैं। आयु इनकी अनुमान ७२ वर्ष की है। पर लिखने और धार्मिक कार्यों में तरुण पुरुष की तरफ रखते हैं। लोगों में उन पर असीम भक्ति है। देवता की तरह वे पूजते हैं। उनमें पाप-मेचन और स्वर्ग भेजने की शक्ति समझी जाती है। पोप प्रभाव, प्रजा पर, बेहद है। वहाँ का बादशाह उतना प्रभावशाली नहीं है। रोमन कैथलिक एक प्रकार के मूर्तिपूजक हैं और ढोंग-धूर्त अधिक विश्वास करते हैं। जहाँ जहाँ यह पंथ वहाँ वहाँ इनके बड़े बड़े गिरजाघर बने हुए हैं, मेरी और क्रायस्ट की मूर्ति रखी है। रोमनगर लिक लोगों की काशी होने से, छोटे बड़े पादरी से भरा है। सहस्रों पादड़ी काले कपड़े पहने पर बिलबिलाते फिरते हैं। इन्हें रोटी प्रजा की से मिलती है। प्रजा का इन पर अटल विश्वास जो ये लोग कहें उसे वह मानती है। राज पापों को पादड़ी लोग ही मिटाते हैं। बात यह है कि गिरजा में जाकर उनके सामने स्त्री, पुरुष सब इस प्रकार राज अपने अपने



माफ़ करा लेते हैं। जहाँ ये पाप माफ़ होते हैं उस गिरजाघर में लकड़ी की एक छोटी सी कोठरी होती है। उसके दोनों बाजू दो छोटी छोटी खिड़कियाँ और सामने एक दरवाज़ा रहता है। पादड़ी बीच में जाकर बैठ जाते हैं। दरवाज़ा सामने से आधा बन्द कर दिया जाता है। दाहनी और बाईं ओर की खिड़की में स्त्री-पुरुष बाहर से अपना सिर घुसाते हैं। भीतर से पादड़ी अपना कान निकट लाकर पापी के पापों को सुनता है। बात-चीत बहुत धीरे होती है। भीतर कोठरी में अँधेरा रहता है; क्योंकि पाप अँधेरे में कहने से ही माफ़ हो सकते हैं, विशेष कर स्त्रियों के। पादड़ी बड़े ध्यान से सुन कर अपना धुआँ हुआ सिर हिलाते जाते हैं, जिससे पापी को डर होता जाता है। यदि कोई बाहर से इनकी ओर देखे तो सामने वाला द्वार बन्द कर देते हैं। यों कुछ देर तक यह मामला चलता है। फिर पापी पवित्र होकर अपने पापों का बोझ उतार पीछे का पीछे लाट आता है। पाप सुनाते समय घुटने टेक खाता रहता है। इस प्रकार रोमन कैथलिक लोग रोज़ रोज़ के पापों को यदि रोज़ रोज़ पादड़ियों से कह आये तो मरते समय तक कोई बकाया नहीं रहता। पर मरते समय भी बचे खुचे पाप कह देने चाहिए। पादड़ी तब भी बुलाये जाते हैं। पर बिना दक्षिण के पाप-मोचन नहीं हो सकता। दक्षिण में कसर पड़ी तो पाप भी कुछ रह जाते हैं। बीमारी के समय पादड़ी बुलाये जाते हैं; पर फीस पहले ठहरा ली जाती है। कुछ कम हुई तो वे जाने से इनकार करते हैं। लोग डाकूरो की दवा की अपेक्षा पादड़ियों के आशीर्वाद में अधिक विश्वास रखते हैं। इस कारण पादड़ों को वे मांगते हैं देना पड़ता है। गरीब हो या अमीर, पादड़ों को बिना ठहरावे के आगे नहीं बढ़ते। एक दिन हम गरीबाल्डी की मूर्ति देखने गये। लाटते समय संध्या हो गई। रास्ते में जिससे कोई बात पूछे वही कुछ न समझे। निदान एक स्त्री से, जो बच्चे धूलने लाई थी, अँगरेज़ी में कुछ प्रश्न किये। उसने उत्तर अँगरेज़ी में दिया। बड़ा हर्ष हुआ। मालूम

हुआ, वह विलायत की रहने वाली थी और छोटेपन से रोम में रहती थी। वहाँ उसका एक रोमन से ब्याह हुआ। बड़े प्रेम से बोली। हम दोनों धीरे धीरे टहल रहे थे। सामने से कई पादड़ी, काली पोशाकें पहने, गले में माला डाले, आते दिखाई दिये। हमने उससे पूँछा, ये कौन हैं। बड़े क्रोध से उसने जवाब दिया कि ये सत्यानाशी पुरोहित हैं, जो हम लोगों से परवरिश पा कर चैन उड़ाते फिरते हैं। कहने लगी, एक बार मेरा यह छोटा लड़का (जो उसके साथ था) बीमार पड़ा। मेरे पति और पड़ोसियों ने कहा, जल्द पुरोहित को बुलाओ। आज्ञा पालन करनी पड़ी। पर जब पुरोहित के पास पहुँची तो वह २५ लायरा (Liara) माँगने लगा (एक लायरा १० आने के बराबर होता है। यह वहाँ का चाँदी का अठन्नी के बराबर एक सिका है) मैंने कहा मैं इतना देने में अशक्त हूँ। कुछ कम ले लो। न माना। मैं घर लौटी। पति रुष्ट हुआ, क्योंकि वह रोमन था। पुरोहितजी के भाड़-फूँक और आशीर्वाद पर उसे पूर्ण विश्वास था। मैंने कहा, मैं उसके लिए कर्ज न करूँगी और इस धूर्त की अपेक्षा डाकूर को बुला कर दवा करूँगी। दोनों में खूब होड़ा होड़ी हुई। अंत में स्त्री की बात रही। डाकूर आया। बच्चा बच गया। पुरोहितजी कोरे रह गये। स्त्री ने हमें दो एक और उदाहरण सुनाये। सुन कर हमें विस्मय हुआ। इस समय प्रयागी-पंडों की भी याद आई। धर्म के केन्द्र-स्थलों में कहीं जाइए, यही धूर्तपना दिखाई देता है। चिराग के नीचे अँधेरा होता है। धर्म के नाम से जो जो पाप ये देशी विदेशी पुरोहित करते हैं उनको न कहना ही अच्छा है। इसमें संदेह नहीं कि इनमें कोई कोई अच्छे हैं। पर उनकी गिनती उँगलियों पर हो सकती है। सो रोम क्या सारा रोमन कैथलिक संसार पुरोहितों के पंजों में पड़ा है। रोम को रसातल पहुँचाने का यह भी एक कारण है।

कुछ फुटकर बातें।

प्राचीन नगरों की भाँति रोम के चारों ओर कोट है। पर यह कोट अब गिर गया है। एक ओर अल-



बत्ता कुछ दूर तक दिखाई देता है। यह दीवार रोम की पुरानी बातों की याद दिलाती है। इटली देश की धरती अपने देश से मिलती है। किसान लोग बैलों से खेती करते हैं। बहुत गरीब हैं। पैरों में जूते तक नहीं। दिन रात खेतों में रहने से स्त्री-पुरुष काले दिखाई देते हैं। पर बहुत काले नहीं। देहाती स्त्रियों की पोशाक एक नीला लहंगा और छोटी सी फुत्तूही है। सिर पर लाल रूमाल बांधती हैं। उनके जूते देहाती बनावट के होते हैं। देखने में परिश्रमी जान पड़ती हैं। शहर की स्त्रियाँ कुछ गोरी होती हैं। आँख इनकी काली और चेहरा खूबसूरत होता है। मर्द बहुत ऊँचे पूरे नहीं होते, न बहुत मजबूत ही होते हैं। इटली में गरमी अधिक पड़ने से वहाँ के निवासी अधिक मांसाहारी नहीं। फल, तरकारी और कई प्रकार के मेवों पर उनका निर्वाह होता है। विलायत में सुना था कि इटली के लोग धोखेबाज और चोर होते हैं। कदाचित् यह सच हो। क्योंकि बहुधा विदेशी यात्री थोड़े बहुत ठगे जाते हैं। हम को इस कारण बहुत चौकन्ना रहना पड़ता था। इसका कारण दरिद्र है। और देशों की अपेक्षा इटली कंगाल है। शहरों के बाहर बुरा लगता है। भारत की भाँति कोसों तक ज़मीन ऊसर पड़ी है। पहाड़ और जङ्गल दिखाई देते हैं। उदास और सुनसान मालूम होता है। यहाँ धूप अधिक होने से हरियाली कम या बिल्कुल नहीं होती। आँखें थक जाती हैं। रेलों में बहुत आराम नहीं। लोग उन्हीं में थूकते हैं। इटली के लोग विलायतियों की तरह मूछ नहीं मुड़ाते। बहुत कम पेसा करते हैं। डाढ़ी भी नहीं रखते। भले आदमी अच्छे कपड़ों के बड़े शौकीन होते हैं। गरमी अधिक पड़ने से जाकट पहिनने की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसलिए उनकी घड़ी के पाकट पतलूनों में रहते हैं। इटली की लकड़ी और पत्थर की कारीगरी अभी तक प्रसिद्ध है। वही दशा चित्रकारी की है। बड़े बड़े नामी चित्रकार इटली में हुए हैं। उनकी कारीगरी के नमूने सब देशों में मिलते हैं। रोम, मिलान, नेपिल्स इत्यादि नगरों के अजायब-

घर इसके साक्षी हैं। इटली के कोई कोई भाग निस्सन्देह रमणीय हैं। मई-जून महीनों में इटली की भोली के किनारों पर बसे हुए नगरों में बहुत शौनक रहता है। पर स्विट्ज़रलैंड से बढ़ कर नहीं। मेरी कराली इत्यादि उपन्यास-लेखकों ने इन छटाओं की बड़ी प्रशंसा की है। पर जब स्वतः देखो तब उतनी नहीं पाई जाती। हम ऊपर लिख चुके हैं कि रोम अथवा इटली-निवासी विषयासक्त होकर धूल में मिल रहे हैं। जिनके पास द्रव्य है वे उसे पानी की तरह भोग-विलास में बेकलेजे उलीच रहे हैं। इटली वालों का आन्तरिक रहस्य शर्म को भी शर्म दिलाते वाला है। लार्ड लिटन के उपन्यासों में इसका ठीक चित्र खिंचा है। पाम्पयाई शहर के दूटे फूटे मकानों पर जो अश्लील चिह्न अभी तक बने हैं वे इसकी साक्षी चिल्ला चिल्ला कर दे रहे हैं। देखने से माने लज्जा के सिर नीचा करना पड़ता है। यह उजाड़ शहर स्त्री-दर्शकों को न देखना ही ठीक है। रोम के कुछ स्थानों में यही हाल है। मैकाले, लार्ड लिटन और ग्लडस्टन इत्यादि ने रोम की तारीफ़ करते हुए पीछे से लम्बी साँस खींची है। हम कहते हैं कि आज इटली को देखते तो न जाने उनके हृदय को कितना भारी धक्का लगता। अब केवल दूर के डोल सुहावने हैं। प्राचीन सभ्यता अब स्वप्नवत् हो गई है। कवियों के कंठ बन्द हैं। शूरोں की शमशेर शीतल है। वक्ताओं की वाणी और दाताओं के दात बन्द हैं। कोई भी देशभक्त नहीं रहा, और न होते की आशा ही है। इससे तो हम हों अच्छे हैं। इन्क बाल ने ठीक कहा है :—

यूनानो, रोम, मिसरा सब मिट गये जहाँ से,  
बाक़ी मगर है अब तक नामोनिशां हमारा।

प्यारेलाल मिश्र



संख्या ४ ]

## खानबहादुर, शम्सुल्-उल्मा, मौलवी महम्मद जकाउल्ला ।

ल में हमारे एक मित्र ने एक किताब लिखी है । उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि अब हिन्दी के बड़े बड़े लेखक पैदा हो गये हैं । इसका क्या मतलब है, मालूम नहीं । हमारी राय में तो हिन्दी में अभी कुछ भी नहीं है ।

दूरे फूटे शब्दों में हम जैसे दो चार आदमी जो हिन्दी लिखते हैं उनसे काम ही कितना हो सकता है । दस पाँच बूंद डाल देने से एक छोटा सा घड़ा भी नहीं भर सकता, समुद्र भरने का तो जिक्र ही नहीं । हिन्दी में अभी है ही क्या ? उसका मैदान बिलकुल ही खाली पड़ा है । जिस भाषा को हम लोग देश-आपक भाषा बनाना चाहते हैं उसकी इतनी दरिद्रता देख कर दुःख होता है । जब हम हिन्दी के साहित्य का मुकाबला उर्दू से करते हैं तब यह दुःख दूना-चौगुना हो जाता है । इसका दोष किसके सिर है ? हमारे ही न । यदि हम चाहें तो बहुत जल्द इसका राज हो सकता है । पर हम चाहते ही नहीं । अकेले इस सूँवे में हजारों आदमी ऐसे हैं जो अच्छी तरह हिन्दी लिख पढ़ सकते हैं, अथवा बहुत थोड़े प्रयत्न से वे अच्छे लेखक बन सकते हैं । पर नहीं बनना चाहते । उनकी शिकायत है कि उन्हें समय नहीं—अवकाश नहीं । जो लोग सरकारी मुलाजिम हैं उनकी समय-सम्बन्धी शिकायत की तो कुछ पूछिए ही नहीं । औरों की हम नहीं कह सकते, पर जो लोग शिक्षा-विभाग में कर्मचारी हैं क्या उनको भी समय नहीं मिलता ? जी हाँ, उन्हें भी समय नहीं मिलता । वे भी सरकारी काम की चक्की में पीसे जाते हैं । कहते तो वे यही हैं । आर० सी० दत्त को कलेक्चरी और कमिश्नरी का काम करके किताबें लिखने के लिए समय मिल जाता था । बंकिम बाबू को विपरीत मैजिस्ट्रेटी कर के भी साहित्य-सेवा के लिए

समय मिलता था । विन्सेंट स्मिथ, ग्रियर्सन, डब्ल्यू हर्स्ट आदि बड़े बड़े अँगरेज-कर्मचारियों को भी समयाभाव की शिकायत नहीं करनी पड़ी । उनके अनेक बड़े बड़े ग्रन्थ इसका साक्ष्य दे रहे हैं । परन्तु हमारे स्कूलों और कालिजों के अध्यापकों और शिक्षा-विभाग के अन्यान्य कर्मचारियों को एक मिनट की भी फुरसत नहीं । अपने महाह मुदर्रिसों और मातहतों से घिरे आप घंटों बैठे फ़िज़ल बातें किया करेंगे, पर हिन्दी लिखने के लिए आपको कभी समय नहीं मिलता । कालेजों के संस्कृत-प्रोफेसरो को बहुत ही कम काम पड़ता है, परन्तु बेचारी हिन्दी पर उन्हें भी दया नहीं आती । इनमें से कुछ महाशय यह उज्र पेश करते हैं कि हिन्दी हमारी मातृभाषा नहीं । अच्छा तो आप अपनी मातृभाषा ही में कुछ लिख डालने की कृपा करते । सो भी तो आपने नहीं किया । जिस भाषा को आपने अपनी माँ का स्तन्य-पान करते समय सीखा और जिसमें आप सदा अपने माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-कलत्र से बातें करते हैं वह भाषा आपको नहीं आती ! कभी अगर कोई भाषा लिखना आपको आ जाता है, तो वह छः हजार मील दूर के एक टापू की भाषा है । बरसों सिरखपी करके और N—o—No,—S—o—So—रट कर जिसका आपने अभ्यास किया उसमें आप कभी कभी कुछ लिख देते हैं तो लिख देते हैं । परन्तु उसमें भी आप ऐसी बातें लिखते हैं जो केवल आपही के ऐसे दो चार आचार्य और उपाध्याय समझ सकें, सब अँगरेजी जाननेवाले नहीं । इस दशा में हिन्दी की उन्नति क्या खाक हो सकती है । समयाभाव की शिकायत बिलकुल ही निर्मूल है । इच्छा होने पर बहुत समय मिल सकता है । दस मिनट रोज़ निकालने से महीने के पाँच घंटे होते हैं । इतने समय में एक छोटा ही सा लेख सही । पर आप कुछ न करेंगे । जब आपको अपने बने बिगड़े की परवा ही नहीं तब आपको क्यों कभी समय मिलेगा और आप जिस हिन्दी को पैशाची भाषा से भी अधिक क्लिष्ट समझ रहे हैं उसमें लिखना सीखने



की चेष्टा भी आप क्यों करेंगे। खैर ! आज आप एक ऐसे लेखक की दो चार बातें सुन लीजिए जो म्यूँर सेंट्रल कालेज में बहुत बरसों तक अरबी-फ़ारसी के प्रोफ़ेसर रहे। तिस पर भी उन्हें अपनी मातृभाषा में किताबें और लेख लिखने के लिए समय मिल गया। उन्होंने कभी इस बात की भी लज्जाजनक शिकायत नहीं की कि मुझे अपनी माँ की बोली बोलना या लिखना नहीं आता। उनका नाम क्या है—जका-उल्ला। उनका शरीरपात हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ।

मौलवी जकाउल्ला की जन्मभूमि देहली है। वहाँ के कालेज में इन्होंने शिक्षा पाई थी। शिक्षाप्राप्ति के बाद आप उसी कालेज में गणित के अध्यापक हो गये। वहाँ से आपकी बदली आगरा-कालेज को हुई। वहाँ आप अरबी-फ़ारसी पढ़ाते रहे। सात वर्ष तक यह काम आपने किया। तदनन्तर आप स्कूलों के डिप्टी इन्स्पेक्टर हुए। इस ओहदे पर आप ग्यारह वर्ष तक रहे। १८६९ में आप देहली के नार्मल स्कूल के हेडमास्टर हुए। तीन वर्ष बाद आप को इलाहाबाद के म्यूँर कालेज में जगह मिली। वहाँ आप पन्द्रह वर्ष तक अरबी और फ़ारसी पढ़ाते रहे। इसके बाद आपने पेन्शन ले ली। उसका उपभोग आपने कोई चौबीस वर्ष तक किया।

जकाउल्ला साहब ने उर्दू के साहित्य को अपनी बनाई हुई सैकड़ों किताबों से भर दिया। बहुत थोड़ी उम्र से ही आपको लिखने का शौक हुआ था। आपने सरकारी काम करके अवशिष्ट अवकाश को कभी व्यर्थ नहीं जाने दिया। पेन्शन लेने के बाद तो आप इस तरह साहित्य के काम में जुट गये कि कितनेहों बड़े बड़े और अनमोल ग्रन्थ आपने लिख डाले। इतिहास और गणित से आपको बड़ा प्रेम था। परन्तु इन्हीं दो विषयों पर नहीं, और भी कितनेहीं विषयों पर आपने पुस्तक-रचना की। सम्पत्तिशास्त्र एक बहुत ही गहन और रूखा विषय है, पर उस पर भी आपने किताबें लिखीं और ऐसे समय में लिखीं जब इस विषय की प्रायः बिल्कुल ही चर्चा इन प्रान्तों

में न थी। यदि यह कहा जाय कि ये उर्दू के सबसे बड़े लेखक थे तो कोई अत्युक्ति न होगी। इन्होंने विद्वत्ता को देख कर गवर्नमेंट ने इन्हें शम्सुल-उल्ला की पदवी दी थी। गणितशास्त्र पर इन्होंने जो किताबें लिखी हैं उनके उपलक्ष्य में गवर्नमेंट ने डेढ़ हजार रुपया इनाम भी इन्हें दिया था। ख़ाबहादुर खिताब भी इन्हें मिला था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ये फेलो भी थे।

मौलवी जकाउल्ला ने छत्तीस वर्ष तो सरकारी नौकरी की और चौबीस वर्ष तक पेन्शन लेकर बैठे। आपने सब मिलाकर कोई डेढ़ सौ किताबें लिखीं। अकेले गणित विषय पर आपने ८७ किताबें लिख डालीं। भूगोल और इतिहास पर आपने १० किताबें लिखीं। शेष किताबें और और विषयों पर आपने लिखीं। दस पाँच किताबों को छोड़कर इनकी और सब किताबें प्रकाशित हो गई हैं। किताबों की तो अनेक आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। कुछ इन्होंने लिखा प्रायः उर्दू ही में लिखा। चतुरस्र विद्वान् थे। कोई विषय ऐसा न था जिसकी गति न हो।

आपका सबसे बड़ा और सबसे अधिक महत्त्व का ग्रन्थ भारतवर्ष का इतिहास (तारीख़े हिन्दुस्तान) है। इसकी तेरह जिल्दे हैं। बड़ी खोज से यह लिखा गया है। हिन्दी के पक्षपाती हम हिन्दुओं को यह सुन कर, यदि और कुछ न बन पड़े तो, क्षम्य भर के लिए अपना सिर ही नीचा कर लेना चाहिये। ब्रिटिश गवर्नमेंट का इतिहास भी इन्होंने तीन जिल्दों में लिखा है। महारानी विक्रोरिया का जीवनचरित्र जो इन्होंने लिखा है वह भी बड़े विस्तार से लिखा गया है और बहुत अच्छा समझा जाता है। मरने से पहले आप एक और बहुत बड़े काम में लगे थे। आप मुसलमानों का एक इतिहास लिख रहे थे। वह पूरा न होने पाया।

मौलवी साहब की बनाई हुई हिसाब की किताबें बहुत बरसों तक इन प्रान्तों और पंजाब के सरकारी



भारत  
के स  
। इ  
मुल-उ  
जो कि  
डेह ह  
बहादुर  
विश्ववि

# सरस्वती



खान बहादुर, शम्सुल-उल्मा, मौलवी मुहम्मद  
जका उल्ला साहब ।

की कि  
सरका

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





संख्या  
मदरसें  
भी बहुत  
इतने  
साहब के  
में लेख  
लिखे हुए  
पाठ  
परमेश्वर  
लिखनेवा  
एर दया  
अथापके  
वालि  
सिसिर के  
लो हैं कु  
है ॥ लार  
दुख लागे  
कंजन के  
बारा है  
भयो  
अहन प्रन  
ले नाह  
तेरा को  
जात देख  
है फूले  
कली पै  
कुछ  
ना दिने  
सारी स  
उधियारे  
रथाम रं



संख्या ४]

मदरसों में जारी हो चुकी हैं । इनकी उर्दू-रीडरों भी बहुत समय तक कोर्स में थीं ।

इतनी किताबें लिख कर भी मौलवी जकाउल्ला साहब को उर्दू के अखबारों और मासिक पुस्तकों में लेख लिखने के लिए समय मिल जाता था । इनके लिखे हुए दस पाँच नहीं, हजारों लेख निकले होंगे ।

पाठक, आइए, हम और आप दोनों मिल कर परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वह एक आध हिन्दी लिखनेवाला भी ऐसाही प्रोफेसर पैदा करके हिन्दी पर दया दिखावे । अथवा वर्तमान प्रोफेसरों और अध्यापकों की रुचि को ही हिन्दी की तरफ झुका दे ।

## वसन्त ।

( १ )

बाटिका बिपिन लागे छावन रंगीली छटा छिति सेों सिसिर को कसाला भयो न्यारो है । कूजन किलोल सेों लोहें कुल पंछिन के पूरन समीरन सुगंध को पसारो है ॥ लागत बसन्त नव, संत मन जाग्रो मैन, दैन दुख लागो विरहीन बरियारो है । सुमन निकुंजन में कूजन के पुंजन में गुंजत मलिन्दन को वृन्द मत-वारो है ॥

( २ )

भयो ना विकास, है सुवास को सुपास नहीं, अरु प्रकास भानु जो पै बिसतारो है । रज नाहीं, लो नाहीं, मधु को प्रसंग नाहीं, होत ना तरल लै तरंग को सहारो है ॥ ता पै भौर रीभयो मन खीभयो जात देखे दशा पूरन ये कैसो हाय नेम अनुसारो है । फूले कज्ज वृन्द मकरंद को बिहाय अरविन्द की कलो पै जो मलिन्द मतवारो है ॥

( ३ )

कुञ्जन में सघन तमालन के पुञ्जन में करत प्रवेश ना दिनेश उजियारो है । प्यारी सुकुमारी श्याम सारी सजे ठाढ़ी तहाँ नीलमनि मालन को जाल उवियारो है ॥ छिटिके बदनचन्द कुंतल अनंद श्याम श्याम रंग पागी नाम श्यामा तासु प्यारो है । पूरन

सुअंगन पै सौरभ प्रसंग पाय झूमै श्याम भौरन को झौर मतवारो है ॥

( ४ )

कूजनि विहंगन की घटिका बजै सो मंजु ओस-कन सोई मद भरत निहारो है । पूरन प्रसूनन की सुरंग अम्बारी सजी भृंगन की भीर सो शरीर बरियारो है ॥ बैठो ऋतुराज ता पै जग की करत सैर सौरभ अतंक जग माहिं बिसतारो है । धावत महावत अनंग के इशारे बीर सुरभि समीर ये मतंग मतवारो है ॥

( ५ )

तूही है द्रुमन वृन्द सुमन अमंद तूही रंगन की सोभ तूही भृंगन की भीर है । रुचिर विहंग तूही कूजनि अभंग तूही ऋतुरस रंग तूही रसिक अमीर है ॥ जगत बसंतवारी सुखमा अनंत तूही तूही निशकंत तूही दम्पति अमीर है । पूरन अनंद तूही सुचिर सुगंध तूही शीतल सुमंद तूही सुखद समीर है ॥

( ६ )

चन्दन बलित चारु देखियतु शुंड दंड भृंगन की जौन रज रंजित पतीर है । सोहत श्रवण हालै पल्लव विशाल जौन मंजुल सुगंधित श्रवत मद नीर है ॥ सेत कुंद पंत एक दंत की अनंत शोभा मंजरी मुकुट अंग फूलन की भीर है । पूरन निकुंज रूपी कुंजरबदन जूको बंदत बसंत लीन्हें बिजन समीर है ।

( ७ )

अंचल उड़ावै भपकावै री हंगंचल को चंचल महान छिन धरत न धीर है । केसन बिखारै रस-ग्राही देस देसन को धूरिसें बलित करि डारै नयो चीर है ॥ अंगन लगत नेक संग न तजत आली सुमन खिलावत थकावत शरीर है । आली सांवरे की लँगराई नहीं मेरी बीर, लागी या समीरहू को ब्रज की समीर है ॥

( ८ )

तूही है सुमन तूही रंग है प्रसूनन में सुखमा असीम तूही तूही हरियाली है । तूही नीर नाली



घट कुण्ड तरुमूल तूही तूही फल बाली तूही पात  
तूही डाली है ॥ जगत की बाटिका को सार सब  
भाँति तूही तूही ब्रह्म पूरन करत रखवाली है ।  
भृङ्गन पतीर तूही भीर है विहङ्गन की सौरभ समीर  
तूही स्वामी तूही माली है ॥

( ९ )

चम्पकलता को मेल कीन्हों है तमाल सङ्ग मानौ  
कोउ बालाबर पाये बनमाली है । पूरन सुरंग स्वच्छ  
फूलन की क्यारी रची मानो मनि चौकन की सुखमा  
निराली है ॥ द्रुमन बसाये हैं विहङ्ग बर बैन वारे  
मानौ गान मङ्गल की विदित प्रनाली है । दम्पति  
विवाह को उछाह होत देखे जाहि आली यहि बाग  
को प्रवीन कोउ मालो है ॥

( १० )

चम्पक निवारी घोना मोगरा चमेली बेला गेंदा  
गुलदाउदी गुलाब सोभ साली है । केतकी कनैर  
गुलसबो गुलनार लाला हिना जसवन्त कुञ्ज केवड़ा  
की बाली है ॥ पूरन विविध चारु सुन्दर प्रसूनन  
की छटा छितमण्डल में छै रही निराली है । पूजन को  
मानौ बनमाली के चरन कंज साजत बसंत माली  
फूलन की डाली है ॥

( ११ )

कूक कूक कोकिला करेजा करै टूक टूक पाछे  
परी कारी दर्ईमारी काकपाली है । काम के कृशानु  
को बढ़ावत समीर तापै जारत पलास कचनारन  
की लाली है ॥ आय निरदर्ई ये लगावत जरे पै लोन  
पूरन जू यामे काहू सौत की कुचाली है । लाये  
बनमाली बिन साजि कै बसंत डाली आली थे  
कितै को बजमारो बरैमाली है ॥

राय देवीप्रसाद

## हृदयोद्धार ।

( १ )



जगदीश ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ  
स्वामिन् ! आपने जो कृपा मुझ पर  
की है उसके लिए मैं आपको कृतज्ञ  
तक धन्यवाद दूँ । हे ज्योतिः  
रूप ! जब पिछले जून की छुट्टी  
तारीख को मैंने अमरीका-भ्रमण पर  
कमर कसी थी उस समय मुझे आपकी दयालुता  
का इतना ज्ञान न था । पर्वतों की श्रेणियों के मध्य  
सायँ सायँ करते हुए जङ्गलों से अकेले जब मुझे गुजरना  
पड़ा तब कहाँ आपकी महिमा का ज्ञान मुझे हुआ ।  
दीनबन्धो ! जिस प्रकार पिता अपने बालक की रक्षा  
करता है उसी प्रकार आपने इस अश्वत्थ बालक की रक्षा  
की है । पिता ! आप इतने दयालु हैं, इसका ज्ञान मुझे  
स्वप्न में भी न था । जब अरीजोना के उजाड़ वियावान में मैं  
आधी रात के समीर में एक पुल से नीचे गिर गया—जब बीस  
फीट की ऊँचाई से अपनी मूर्खतावश मैं नीचे एक गढ़ में जा  
पड़ा—तब आपही ने मुझे बचाया । मुझे चोट न लगी, मुझे  
लगने दी, फूल की भाँति आपने अपने हाथों पर मुझे दिन  
लिया । जब मेरा ऐनक खो गया, जब मुझे अन्धकार में  
मैं कुछ भी सुभाई न देता था, तब मैं बेतरह लाचार  
था । न मैं आगे जाने योग्य था, और न वहाँ ठहर ही  
सकता था । ऐनक छोड़ कर आगे जाता तो तीसरे  
रुपये की हानि ? पास एक फूटी कौड़ी नहीं । और  
वहाँ ठहरना जान को खतरे में डालना था ; क्योंकि  
शीत से शरीर के अकड़ जाने का भय था ।  
करुणासागर ! उस समय जब इस बालक ने छुट्टी  
टेक कर आपकी शरण ली और आपकी सहायता  
चाही तब आपने उसकी गुहार सुन ली । तुरन्त ही  
आपने मेरा दुख दूर किया । हे नाथ ! सच मुच ही  
आप, जो आपकी शरण जाता है उसे, अपनाते हैं ।  
जगदाधार ! मैं केवल छः रुपये लेकर सियेटल से  
चला था । मेरा भरोसा केवल आप पर था ।



संख्या ४ ]

देत सभी ने सहायता देने से हाथ खींच लिया था। पर आपने मुझे इस संसार में रख लिया। मैं आपकी बार बार वन्दना करता हूँ। आप ही मेरे सच्चे सखा हैं। मुझ में इतनी शक्ति न थी कि मैं वाशिङ्गटन, आरोन, केलीकोर्निया, अरीज़ोना, टेकसाज़, न्यू मेक्सिको आदि रियासतों में पैदल घूम सकता। आपकी सहायता बिना यह २३०० मील का सफ़र न हो सकता था। न्यू मेक्सिको के घोर शीत में, जहाँ मीलों रेगिस्तान और पहाड़ियाँ हैं, और खाना मिलना भी असंभव है, वहाँ आपने ही मेरी बाँह पकड़ी और मुझे पार लगाया। दयानिधे ! कई बार मैं अश्रीर हो गया था। मैं सोचता था कि क्या कभी इन आफ़तों से मुझे गुज़रना-जागता निकल सकूँगा ? क्या फिर भी कभी किसी गरम कमरे में अँगोठी के पास बैठना नसोब होगा ? पर धन्य हैं आप ! आपकी कृपा से असम्भव सम्भव हो गया। महात्माओं ने सच कहा है कि परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तपस्या की जरूरत है। आज आप पर जितना विश्वास मेरा है उसका इस सफ़र के पहले न था। आज आपकी फीट की धरनें मुझे जैसा आनन्द आता है उसका वखन नहीं हो सकता। आज आपका यशोगान कर रहे हैं मुझे अलौकिक सुख प्राप्त हो रहा है। बड़े ही अच्छे दिन मैंने अमरीका-भ्रमण का प्रण किया था। इस भ्रमण से मुझे बड़ा ही लाभ हुआ है। आपकी लाचार कृपा से मैं एक नया आदमी हो गया हूँ। मुझे बड़ी अच्छी अमोल शिक्षाएँ मिली हैं। कैसी कैसी सुन्दर आवाज़ों के दर्शन आपने मुझे करा दिये हैं। देवों के देव महादेव ! आपको मेरा बार बार नमस्कार है। आपकी शक्ति में लाभ उठाने की चेष्टा करूँगा। अन्त में इस दास की यही विनती है कि आप मुझे आत्मिक प्रदान कीजिए जिससे मैं आपकी सेवा दत्तचित्त कर सकूँ।

( २ )

हे भारत-भूमि ! १९०५ की आठवीं मई को जब आपको छोड़ा था तब मेरे मन में जो भाव थे वे

आपसे छिपे नहीं। उस समय मैं भारी अज्ञानी था। मैं समझता था कि इस देश में आने से मुझे सुख मिलेगा। यह मेरी भूल थी। आज मैं आपके चरणों में सिर रख कर अपने अपराधों की माफ़ी चाहता हूँ। मुझे अब जान पड़ा है कि माँ की गोद जैसा सुख कहीं भी नहीं है। अपने कर्तव्यों का ज्ञान मुझे अब हुआ है। आज मुझे यह जान कर बड़ा ही आह्लाद होता है कि मैं आपका पुत्र हूँ। मेरे अहो-भाग्य हैं कि मेरा जन्म आपसे हुआ है। मैं यह सोच कर आनन्द-मग्न हो जाता हूँ कि मैं राम, कृष्ण, भीष्म, याज्ञवल्क्य आदि महात्माओं के वंश से हूँ। माँ ! यदि मैं दूसरे किसी देश में उत्पन्न होता तो मैं अपने को बड़ा ही अभागि समझता। मैं एक ऐसी भूमि में उत्पन्न हुआ हूँ जिसकी रज तक पवित्र है। मैंने आप से जुदा हो कर बहुत भ्रमण किया है, भाँति भाँति के फल, फूल, वनस्पति देखे हैं; भिन्न भिन्न स्थानों का जल-पान किया है; पर्वतों, जङ्गलों, रेगिस्तानों में मैं घूमा हूँ; बड़े बड़े शहरों को मैंने देखा है। मैंने अमरीका की चढ़ती सभ्यता की भली प्रकार परीक्षा भी की है। पर, माँ ! जो कुछ आपके पास है वह कहीं भी नहीं। आपकी फटी पुरानी गुदड़ी में अमूल्य रत्न हैं, जिनको आपकी सन्तान साधारण पत्थर समझ कर क़दर नहीं करती। माँ ! मैं आपके दर्शनार्थ लालायित हो रहा हूँ। यदि पड़ू होते तो उड़कर मैं आपके चरण छूता और आपका आशीर्वाद लेता। हे भारत ! मैंने बड़ी बड़ी नदियाँ देखी हैं, पर आपकी पुण्यवाहिनी जाह्नवी जैसी नदी कहीं। बड़े बड़े पर्वतों की घाटियों से मुझे गुज़रना पड़ा है, पर पूजनीय हिमालय की जैसी घाटियाँ और गुफायें भला और कहीं मिल सकती हैं। कहीं नहीं, कहीं नहीं। पिता भारत ! आपकी वह सन्तान मूर्ख है जो आपकी क़दर नहीं करती, जो आपको छोड़ दूसरे देशों में रहना चाहती है, और जो वहाँ जाकर आपको बिलकुल ही भुला देती है। भारत भारत ही है। ऐसी पवित्र भूमि दूसरी नहीं। यह ज्ञान मुझे देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में घूमने से हुआ है।



माता ! आपका कोई पुत्र चाहे वह मुसलमान हो, चाहे ईसाई, चाहे यहूदी, चाहे बौद्ध, चाहे जैनी—मेरा भाई है। माता ! मैंने प्रण किया है कि जिन भाइयों के साथ हम सैकड़ों साल से अन्याय कर रहे हैं, जिनको अपने साथ बैठने तक का अधिकार हम नहीं देते, जिनको अविद्यान्धकार में रख कर हमने पशुओं से बदतर कर दिया है, उनको मैं गले लगा कर भाई के नाम से पुकारूँगा। हम लोगों ने अपने भाइयों पर अन्याय किया है। आशा है, परमात्मा अब हमें सुबुद्धि देगा। माँ ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो और आशीर्वाद दो कि मुझे आपके शीघ्र ही दर्शन हों।

✓ सत्यदेव—अमरीका ।

## मेरी दिनचर्या ।



जून ५, १९१० ईसवी—आज मैंने अमरीका भ्रमण का दृढ़ निश्चय कर लिया है। सियेटल से टकोमा तक स्टीमर में जाऊँगा। वहाँ से पोर्टलैंड पैदल रवाना हूँगा। “वाशिङ्गटन डेली” हमारे विश्वविद्यालय का दैनिक पत्र है। उसके सम्पादक मिस्टर राय डी पिङ्करटन से आज सुबह मैं मिलने गया। मिस्टर पिङ्करटन का सम्बन्ध टकोमा के प्रसिद्ध दैनिक पत्र “टकोमा लेज़र” से है। उसमें मेरे भ्रमण विषय पर लेख छापने की आवश्यकता थी।

मैं वाशिङ्गटन-विश्वविद्यालय के पास ग्यारहवीं गली के ४१२३ नंबरवाले मकान के एक कमरे में रहता हूँ। किराया २४ रुपया महीना देता हूँ। यह मकान तिमंजिला है। इसमें सब तरह का आराम है। इस घर के मालिक का नाम मिस्टर लिटलफील्ड है। उनकी स्त्री का स्वभाव बहुत अच्छा है। यहाँ मैं घर की तरह रहा और सब प्रकार का आराम पाया।

दो पहर को मैं शहर गया। अपना बड़ा कबूतर अपने मित्र मिस्टर जार्ज स्वान के यहाँ रख दिया। न्यूयार्क पहुँचने पर उसे मँगवा लूँगा। छोटा कबूतर अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी द्वारा टकोमा पोर्टलैंड भेज दिया जायगा।

अपना सब सामान ठीक कर लिया है। सुबह होते ही यहाँ से टकोमा के लिए कूच करूँगा। परमात्मा को स्मरण कर सोने की तैयारी की। मैं इस समय तीन डालर पचास सेन्ट हूँ।

जून ६—सियेटल से टकोमा को दो रास्ते हैं—एक जल द्वारा, दूसरा स्थल द्वारा। यदि मैं जल से कोई जाय तो किराया अधिक लगता है। स्थल से किराया कम है। इसलिए प्रायः सियेटल से टकोमा अथवा टकोमा से सियेटल जाने आने वाले लोग स्टीमर द्वारा ही जाते आते हैं।

प्रातःकाल के स्टीमर से मैं न जा सका। देरी हो गई। इसलिए दूसरे स्टीमर की राह बजे तक देखनी पड़ी। टकोमा के स्टीमर पर सवार होने के लिए, बन्दरगाह पर, मैं ११ बजे ही पहुँचा गया। वहाँ मैं एक हिन्दी पुस्तक पढ़ने में लग गया। बहुत से यात्री वहाँ बेंचों पर बैठे अपने-अपने स्टीमरों का मार्ग देख रहे थे।

यहाँ एक नई कल देखने में आई। इस कल का काम इश्तिहारबाजी था। सियेटल की कई प्रसिद्ध कम्पनियों के नाम, धाम तथा काम विजली भरे हुए अक्षरों में छपे थे। धीरे धीरे बारी बारी से, दर्शकों के सामने आते और उनका अपना गुणानुवाद सुना कर कुछ काल के लिए लोप हो जाते थे। बस दिन भर इस कल का काम था।

इसी के पास ही एक पिआनो रक्खा हुआ था। उसके एक ओर छोटा सा सूरख था। इस सूरख में रसिक यात्री ढाई आने का एक सिक्का डाल देते थे। तब पिआनो मीठे राग अलाप कर यात्री को खुश करता था। इस पिआनो का दिन रात काम था—अपने स्वामी के लिए धन पैदा करना।



भाग १  
संख्या ४ ]

आखिर, टकोमा जाने वाला स्टीमर आया। मेरे पास टिकट पहले से ही था। टिकट दिखा कर मैं उस पर चढ़ गया।

आज बदली थी। शीत के कारण यात्री प्रायः अन्दर ही बैठे थे। मैं भी अन्दर ही घुस गया और कुर्सी पर बैठ कर अपनी पुस्तक पढ़ने लगा। एक घंटे के बाद जी उकताया तो बाहर निकल कर देखता क्या हूँ कि दो सिक्ख खाकी धूमने लगा। देखता क्या हूँ कि दो सिक्ख खाकी ज़ीन की पोशाक पहने एक बेंच पर बैठे हैं। दूसरे यात्री उनको देख देख कर हँस रहे हैं। क्योंकि उनके शिरों पर पगड़ियाँ थीं और इधर पगड़ो वालों को लोग बहुत घृणा से देखते हैं।

मेरे सिर पर टोपी थी। मेरा रंग भी ऐसा बुरा नहीं। देखने वाला शीघ्र पहचान नहीं सकता कि मैं भारतीय हूँ। मुझे इन लोगों ने नहीं पहचाना। मैं इनके पास बैठ गया। मैंने इनसे कुछ हिन्दी में पूछा। एक आदमी थोड़ी अँगरेजी जानता था। वह थोड़ी थोड़ी अँगरेजी में उत्तर देने लगा—हालांकि मैंने हिन्दी में प्रश्न किया था। आखिर, मैंने ठठ पंजाबी में उनसे पूछा तो मालूम हुआ कि वे नये ही अमरीका में आये हैं। फिलिपीन द्वीप के मनीला नगर से उन्होंने सियेटल का टिकट लिया था। इसी से कि किसी रोक टोक के ये सियेटल पहुँच गये।

ये लोग अमरीका के धूर्तों से नावाकिफ़ थे। सियेटल पहुँच कर स्टीमर से उतरते ही वे लोग उनके जाल में फँस गये। ज्योंही ये लोग स्टीमर से बाहर निकले, गाड़ी वालों ने इनको देखा। किस रूप में? खाकी ज़ीन की पोशाक पहने, पगड़ियाँ बाँधे, और उन पगड़ियों पर अपने बड़े बड़े समक लिया कि आज चिड़िया फँसी।

दोनों को पकड़ कर उन्होंने गाड़ी में बिठा लिया। असवाब अन्दर लाद लिया और ले चले। कहाँ? एक बहुत बढ़िया, पाँच रुपये रोज़ के, सियेटल के आगे ले जाकर उन्होंने गाड़ी खड़ी की और इन बेचाराओं को अन्दर से निकाला। पहले

पन्द्रह रुपये फ्री आदमी से गाड़ी का भाड़ा लिया। फिर होटल में उनकी खूब दिल्लगी उड़ाई। जब इनकी यहाँ से नजात हुई और ये दोनों नौकरी की तलाश में निकले तो नौकरी दिलाने वाली कम्पनियों के जाल में फँस गये। वहाँ पाँच रुपये देने की जगह दस रुपये देकर टकोमा की तरफ़ नौकरी ढूँढ़ने चले थे। इस बदकिस्सती को तो देखिए।

मैंने इनकी सारी कथा सुनी। दुख के सिवा और क्या हो सकता था। सियेटल में काम की कमी न थी। इन लोगों को आसानी से वहाँ काम मिल सकता था, यदि ये लोग किसी वाकिफ़कार हिन्दुस्तानी से मिलते। खैर, मैंने इनसे कहा कि अब जिस जगह का कागज़ तुम्हारे पास है वहाँ जाव। यदि वहाँ काम न मिले तो फिर सियेटल लौट कर “मिडवे लम्बर कम्पनी” में जाना। वहाँ अपने यहाँ के लोग बहुत हैं। वे काम दिला देंगे।

अब एक और तमाशा देखिए। अमरीका में प्रायः सभी लोग फेशन के गुलाम हैं। काली पोशाक चाहे सर्ज की हो, चाहे बानात की, चाहे गहरे नीले रंग की, साधारणतया सब लोग उसे पसन्द करते हैं। पोशाक में अधिकतर उसूल यह रक्खा गया है कि ऊपर का कपड़ा जल्द मैला न हो। अन्दर सब कोई बनियायन पहनते हैं जो शीघ्र धुल सकती है। जहाँ फेशन का इतना खयाल है और जहाँ कालर, टाई के बिना कोई बाहर नहीं निकलता, वहाँ हिन्दुस्तानी पोशाक में धूमना सचमुच एक स्वाँग के सिवा और कुछ नहीं; और फिर अमरीका के उस प्रान्त में जहाँ ‘हिन्दू’ नाम से चिढ़ हो!

इस कारण टकोमा पहुँचते ही जब हम लोग उतरे तब सब कोई हम लोगों को देख कर घूरने लगे। वहाँ दो तीन टोपी वाले भारतीय मज़दूर भी खड़े थे। उन्होंने मेरे साथ तो बातचीत की; पर पगड़ी वालों से वे बोले तक नहीं। कारण यह कि लोग हमें भी हँसेंगे।

खैर, मैंने उन दो सिक्ख भाइयों को सब बातें बतला कर विदा किया। सियेटल में दो एक मित्रों



का नाम, धाम भी मैंने बतला दिया; ताकि यदि टकोमा में कार्य सिद्ध न हो तो सियेटल लौट कर ठिकाने पहुँच जायँ। उनसे छुट्टी पा कर मैं यंगमेन क्रिश्चियन एसोसियेशन में गया। यह एक बड़ी विशाल इमारत है। वहाँ बैठ कर दो चार आवश्यक पत्र लिखे। इस कार्य से छुट्टी पाने पर रात को सोने और खाने पीने की खोज में चला।

टकोमा एक लाख की बस्ती है। आबादी दिनों दिन बढ़ रही है। समुद्र के किनारे होने के कारण लकड़ी लाने में बड़ा सुभीता है। वाशिंगटन रियासत के जंगलों से बेहद लकड़ी यहाँ के कारखानों में आती और कटती है। कट कटा कर वह अनेक रूप में देश देशान्तर को जाती है। शहर पहाड़ी के ऊपर बसा है। बिजली की गाड़ियाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ती रहती हैं। परन्तु शहर में दुराचार बहुत होता है। मजदूर लोग जो पैसा पैदा करते हैं प्रायः उसको पानी की तरह बुरे कामों में खर्च कर देते हैं। शराब की दुकानें यहाँ बहुत हैं। यह पाश्चात्य सभ्यता की महिमा है जिसका आविर्भाव इस तरफ के प्रायः सभी शहरों में है। यहाँ के भारतीय मजदूरों में से दो एक मेरे परिचित थे। इसलिए सोने खाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। भाई चूह-डुङ्गाँ से मेरी जान पहचान वेंकोवर की थी। मुझसे मिल कर आप बहुत प्रसन्न हुए। यथाशक्ति मेरी खातिर तवाजो भी उन्होंने की।

मुझे दूसरे दिन पैदल जाना था। इसलिए मैं स्टेशन पर टाइमटेबिल लेने गया। वहाँ से जब मैं लौट रहा था तब रास्ते में मुझे एक होबो (Hobo) मिला। इस शब्द का मेरे भ्रमण से बड़ा सम्बन्ध है। इसी लिए मैं इसे यहाँ पर लिखता हूँ। इसके विषय में मैं किसी और लेख में सविस्तर लिखूँगा। अँधेरा हो जाने के कारण मैं बहुत सावधानी से चल रहा था। मुझे इस होबो ने देखा तो बोला—

“Hollow ! Bum !”—कहो “मरभुखे राम !”

मैंने हँस कर कहा:—“जी हाँ—आप अपनी कहिए”।

“मैं भी वैसा ही हूँ।”

“अच्छा, तो खूब मिले ! नंगम नंग चवाल तो

इतना कह मैं ज़रा मुसकराया और आगे बढ़ गया। चूह-डुङ्गाँ मेरा रास्ता देख रहा था। पहुँच कर मैंने सोने की तैयारी की। मजदूर मुझे बेवकूफ समझते थे, क्योंकि मैं पैदल सफ़र चला था। एक ने कहा कि हम लोग आपको से पोर्टलैंड का किराया दे देते हैं। पर यहाँ धुनही और थी।

चुपचाप बिस्तरे पर पड़ गया। पर नौद आती—यह क्यों ?

जिस पुरुष को सदा साफ़ सुथरे बिस्तरे पर सोने की आदत हो, जो खाने और पहनने में सदा साफ़ और घ्राणेन्द्रिय के आज्ञानुसार चलता हो, जिसके सदा अच्छे कमरे में सोने का अभ्यास हो वह मजदूरों के बिस्तरे पर पड़ा हो तो कैसे नौद घ्राणेन्द्रिय बार बार उससे कहती है कि यहाँ सोने दूँगी, ये कपड़े मैले हैं। स्पर्शेन्द्रिय कहती है—“हैं ! यहाँ तो..... हैं”। संकल्प-विकल्पों का धूम मच रही है। अन्त में एक ज़बरदस्त आवाज़ सबको चुप कर दिया:—

“देखो, करोड़ों भारत-सन्तान मैले कुत्ते के बिस्तरों पर सोते हैं। उनके दुःख का अनुभव तो हो सकता है जब उनके बिस्तरों पर सोया जाय। अपढ़ भारतसन्तानों के दुःख को शिक्षित भारतवासियों को भी नहीं समझते, उनके साथ इसलिए हमदर्दी नहीं करते, क्योंकि उनको अपने अविद्या-अंधकार से पड़े हुए भाइयों के दुःख का अनुभव-जन्य ज्ञान नहीं है। देखते नहीं, ये भारतीय मजदूर तथा भारतीय अधिकांश निवासी स्वदेश में ऐसे ही बिस्तरों पर सोते हैं। क्या उनको तुम्हारी तरह साफ़ सुथरे बिस्तरों की ज़रूरत नहीं ? क्या वे आदमी नहीं ? देखो, अन्याय का पहला अनुभव आज मैं तुम्हें करा रहा हूँ। बस, तसल्ली होगई और मैं सो गया।

सत्यदेव—अमरीका



## सदुपदेश ।

( १ )

महादेव को भूल जाना नहीं  
किसी और से लौ लगाना नहीं ।  
बनो ब्रह्मचारी सुविद्या पढ़ो  
द्विजाभास कोरे कहाना नहीं ।

( २ )

करो प्यार पूरा सदाचार पै  
दुराचार से जी जलाना नहीं ।  
तिरालस्य विद्या बढ़ाते रहे  
अविद्या नटी को नचाना नहीं ।

( ३ )

न पापिष्ठ के पास बैठा कभी  
खलों की प्रतिष्ठा बढ़ाना नहीं ।  
बड़ाई करो ज्ञान विज्ञान की  
महामोह की मार खाना नहीं ।

( ४ )

अहिंसा न छोड़ो दया दान दे  
किसी जीव को भी सताना नहीं ।  
सुना के कटीली कथा जाल की  
मरी मण्डली को रिझाना नहीं ।

( ५ )

बिना याचना और की वस्तु को  
उगी से न लेना चुराना नहीं ।  
अनाचार से जाति के मेल को  
धृष्ट के गढ़े में गिराना नहीं ।

( ६ )

न छूना छड़ी राज-विद्रोह की  
प्रजा की प्रशंसा घटाना नहीं ।  
महाशोक-सन्ताप के सिन्धु में  
कभी भी किसी को डुबाना नहीं ।

( ७ )

चलाना सदुद्योग से जीविका  
दिखा कर्म काले कमाना नहीं ।  
न चूको मिलो शङ्करानन्द से  
तिरे तर्क के गीत गाना नहीं ।

नाथूराम शङ्कर शम्भ

## कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल ।



चित्र-कला और कविता का घनिष्ठ सम्बन्ध है । दोनों में एक प्रकार का अनोखा सादृश्य है । दोनों का काम भिन्न भिन्न प्रकार के दृश्यों और मनो-विकारों को चित्रित करना है । जिस बात को चित्रकार चित्रद्वारा व्यक्त करता है उसी बात को कवि कविताद्वारा व्यक्त कर सकता है । कविता भी एक प्रकार का चित्र है । कविता के श्रवण से आनन्द होता है, चित्र के दर्शन से । कवि और चित्रकार में किसका आसन उच्चतर है, इसका निर्णय करना कठिन है; क्योंकि किसी चित्र के भाव को कविताद्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है उसी प्रकार कविता-गत किसी भाव या दृश्य को चित्रद्वारा प्रकट करने से भी आनन्द की प्राप्ति होती है । चित्र देखने से नेत्र तृप्त होते हैं; कविता पढ़ने या सुनने से कान । अतएव यदि एक ही वस्तु, दृश्य या भाव का व्यक्तीकरण कविता और चित्र दोनों के द्वारा हो तो नेत्र और कान दोनों की एक ही साथ तृप्ति होने से अवश्य ही आनन्दातिरेक की वृद्धि होगी । यही समझ कर राजा रवि-वर्मा आदि भारत के आधुनिक चित्रकारों ने पुराणों और प्राचीन काव्यों के मुख्य मुख्य दृश्यों के चित्र खींच कर आँख और कान के असूया-जात पार-स्परिक विवाद को दूर करने की चेष्टा की है । सर-स्वती के सिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त इसका विपरीत व्यवहार करके पाठकों का मनोरञ्जन करते हैं । वे चित्रकार नहीं, कवि हैं । अतएव चित्रकारों के चित्रगत भावों को वे कविताद्वारा प्रकट करते हैं । अथवा यह कहिए कि वे चित्रों के टीकाकार, भाष्य-कार या भावार्थ समझाने वाले सायण हैं ।

प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राचीन काव्यों में अनन्त स्थल ऐसे हैं जिन पर बड़ेही भाव-भरे चित्र तैयार किये



जा सकते हैं। तुलसीदास के रामचरितमानस के स्थल-विशेषों पर कितने मनोहर चित्र बनाये जा सकते हैं, यह बात इंडियन प्रेस के द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के देखने से मालूम हो सकती है। जब पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं तब शाह, बाद-शाह, राजे, महाराजे और अमीर आदमी रामायण, महाभारत, शाहनामा, बाबरनामा और गुलिस्ताँ आदि ग्रन्थों को खुशखत लिखा कर उनके प्रायः प्रति पृष्ठ को प्रसिद्ध चित्रकारों द्वारा चित्रित कराते थे। ऐसे ग्रन्थ बड़ेही बहुमूल्य होते थे। इनके दर्शन अब भी कभी कभी हो जाते हैं। अब तो ये प्रदर्शिनियों में रक्खे जाते हैं और दर्शक उन्हें एक अजूबा चीज समझते हैं।

कालिदास कितने ऊँचे दर्जे के कवि थे, इस बात के बतलाने की जरूरत नहीं। उनके काव्यों को कभी किसी ने सचित्र लिखवाने का यत्न किया है या नहीं, मालूम नहीं। शायद बहुत पुराने ज़माने में किसी ने किया हो तो किया हो। या, कहीं किसी रियासत के पुस्तकागार में ऐसा कोई ग्रन्थ पड़ा हो तो हो सकता है। हाँ, इधर, कुछ समय से, कालिदास के काव्यों में वर्णित दृश्यों और पात्रों के चित्र बनने लगे हैं। शकुन्तला-जन्म, शकुन्तला-मेनका-मिलन, शकुन्तला-पत्र-लेखन, शकुन्तला-दुष्यन्त, दुर्वासा-शाप, उर्वशी और पुरूरवा, मदन-दहन, प्राणघातक माला, मेघदूत का विरही यक्ष—इत्यादि चित्र ऐसे ही चित्रों में से हैं। पर ये दाल में नमक के भी बराबर नहीं। कालिदास की कविता के सम्बन्ध में सैकड़ों चित्र बन सकते हैं और बहुत उत्तम उत्तम बन सकते हैं। उनके बन जाने से और उनका मिलान तत्सम्बन्धिनी कविता के साथ करने से इस महाकवि की कीर्ति और भी उज्ज्वलतर हो सकती है। पाश्चात्य देशों ने अपने अपने देश के विख्यात कवियों के काव्यों के सचित्र संस्करण निकाले हैं। देखें हमारे अभाग्य भारत के प्राचीन संस्कृत-कवियों के काव्य कब सचित्र निकलते हैं।

कालिदास के काव्यों पर वही चित्रकार चित्र बना सकेगा जिसने उन्हें अच्छी तरह पढ़ा समझा है। इसके लिए संस्कृत जानने की आवश्यकता है। राजा रविवर्मा संस्कृतज्ञ थे। कलकत्ता एक आध वर्तमान चित्रकार भी संस्कृत जानते इसी से वे भी दो चार चित्र इस विषय के बना सकते हैं। हमने दो एक बार इस तरह के बनवाने की चेष्टा की, पर हमारी सारी चेष्टा गई। कालिदास के काव्यों में ऐसे तो सैकड़ों हैं जिन पर अच्छे से अच्छे चित्र बन सकते तथापि उनमें से कुछ स्थल-विशेष बड़े ही मारक हैं। उस तरह के स्थल-विशेष दो चार नहीं, हैं। उन सबका उल्लेख इस लेख में न हो सके केवल छः सात का उल्लेख हम यहाँ पर करेंगे।

( १ )

रघुवंश की बात है। राजा दिलीप निरपराध पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से वे रानी-सहित वशिष्ठ आश्रम में पधारे। वशिष्ठ ने कहा, हमारी नामक धेनु की सेवा करो। वह तुम्हारी इच्छा करेगी। राजा रोज उसे जङ्गल में चराने के ले जाने लगे। कई रोज तक उन्होंने उसकी सेवा की। तब नन्दिनी ने उनकी भक्ति की फल लेने का निश्चय किया। उसने माया रची हिमालय के एक कन्दरामें जा घुसी। वहाँ एक मारु शेर ने उसे पकड़ा। वह चिल्लाने लगी। राजा दौड़कर उसने शेर पर बाण चलाया। पर हाथ ही धनुष पर चिपक गया। बाण न छूट सका शेर मनुष्य की वाणी बोला। उसने कहा, मैं तुम्हारा का गण हूँ। यहाँ पर जो यह देवदारु का उसकी रक्षा करता हूँ। आये गये जीवों के कर यहीं अपनी क्षुधा शान्त करने की शक्कर आज्ञा दी है। इस गाय को मैं न छोड़ूँगा अपने घर जाव। राजा ने उसे बहुत कुछ भाया। पर उसने एक न मानी। तब कहा, इस गाय की रक्षा का भार मैंने लिया है। तुम मुझे खा कर अपनी क्षुधा



संख्या ४ ]

करो । पर इसे छोड़ दो । इस पर शेर ने राजा को  
मूर्ख बनाया । उसने कहा, क्या तुम पागल हो गये  
हो । इतना बड़ा राज्य, इतना विशाल ऐश्वर्य, यह  
तुम्हें छोड़—इस सबको एक गाय के लिए छोड़ते हो ।  
अभी एक क्या, तुम इस तरह की और दस बीस  
गायें वशिष्ठ को दे सकते हो । यह न सही । इसे मुझे  
सा लेने दो । दिलीप बोले—मैं इस नश्वर शरीर की  
परवा नहीं करता । इसकी अपेक्षा यश मुझे अधिक  
प्यारा है । दया करो । इसे छोड़ो । मेरे शरीर से अपनी  
भुजा निवारण करो । शेर ने कहा, बहुत अच्छा :—

तथैते गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्ठम्भविमुक्त्वाहुः ।

स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयति पण्डमिवामिप्रस्य ॥

तब दिलीप ने हथियार फेंक दिये ; भुजाओं को  
छोड़ दिया ; अपनी देह को झुकाकर मांस के टुकड़े  
की तरह उसके सामने कर दिया ; और, यह सब  
करके, उस शेर के आक्रमण की राह देखने लगा ।  
उस समय उस पर पुष्प-वृष्टि हुई । नन्दिनी ने  
प्रसन्नता प्रकट की । वह सारी माया तिरोहित हो  
गई । दिलीप की पुत्रविषयक कामना सफल होने  
का प्रतीक मिला । यह स्थल—यह दृश्य—बड़े महत्त्व  
का है । शरीर की अपेक्षा यश को ही श्रेष्ठ समझने-  
वाले और सामने खड़े गरजते हुए शेर का भक्ष्य  
बनने के लिए अपना शरीर आगे कर देनेवाले इस  
राजा के चरित की जितनी प्रशंसा की जाय कम  
होगी । उसके इस चरित से बहुत सी शिक्षाएँ मिलती  
हैं । भारत के प्राचीन राजाओं और पुरुषों के जीवन  
का उच्च आदर्श एकदम आँखों के सामने आ जाता  
है । अतएव इस घटना का दर्शक चित्र क्या बनाये  
जाने योग्य नहीं ?

( २ )

विदर्भ-नरेश के यहाँ, कुण्डिनपुर में, उसकी बहन  
इन्दुमती का स्वयंवर है । अज-कुमार भी स्वयंवर  
में गया है । स्वयंवर-स्थल में कितने ही राजा सज  
जैसे हैं । इन्दुमती के हाथ में संवरण-माला है ।  
इन्दुमती नाम की एक प्रगल्भा स्त्री उसके साथ है ।  
उस राजा के सामने इन्दुमती जाती है सुनन्दा उस

के रूप, गुण, ऐश्वर्य आदि का वर्णन करती है ।  
इन्दुमती इस तरह कई एक राजाओं और राजकुमारों  
को निराश कर के अज के पास पहुँची । सुनन्दा ने  
उसका गुण-वर्णन बड़े ही मधुर और मनोहर शब्दों  
में किया । जब अज-विषयक वर्णन करके सुनन्दा  
चुप हो गई तब इन्दुमती ने आँख उठा कर अज की  
तरफ देखा । देखते ही वह उस पर आसक्त हो गई ।  
मुँह से तो वह कुछ न बोल सकी, पर उसके हृदय  
की प्रीति, रोमांच के बहाने, शरीर से फूट निकली ।  
सुनन्दा यह बात ताड़ गई । तब उसे दिल्लगी सूझी ।  
उसकी वह दिल्लगी और इन्दुमती का उत्तर, रघुवंश  
में जैसा है, सुनिष्ट :—

तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्तुमृदावभाषे ।

आर्य्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूसूयाकुटिलं ददर्श ॥

आर्य्ये ! चलो, आगे बढ़ो, और किसी राजा को  
देखो ; यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ! इस व्यंग्य वचन  
को सुन कर इन्दुमती ने वे तरह आँखें तिरछी करके  
उसकी तरफ देखा । इस तिरछी आँख से देखने के  
दृश्य में जो भाव है वह सर्वथा चित्रित किये जाने  
योग्य है ।

( ३ )

इन्दुमती ने अज को ही पसन्द किया । अतएव  
दोनों का विवाह हो गया । इन्दुमती को लेकर  
अज अयोध्या को लौटा । पर स्वयंवर में निराश  
हुए राजाओं ने उसे मार्ग ही में रोका । उन्होंने चाहा  
कि इन्दुमती को अज से जबरदस्ती छीन लें । अज ने  
यह देख कर अपने पिता के मंत्री से कहा कि कुछ  
योद्धाओं सहित तुम इन्दुमती की रक्षा करो । मैं  
शत्रुओं की खबर लेता हूँ । दोनों पक्षों में घोर युद्ध  
हुआ । अन्त को अज ने सम्मोहनास्त्रद्वारा वैरियों  
को समर-भूमि में कठपुतली बना दिया । उनके  
हाथ-पैर बेकार हो गये । जहाँ के तहाँ वे लोग चित्र-  
लिखित से खड़े रह गये । उनकी ऐसी दुर्दशा कर के  
अज इन्दुमती के पास लौट आया :—

स चापकोटीनिहतैकत्राहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणमिन्नमौलिः ।

ललाटवद्धश्रमवारिविन्दुर्भूतिं प्रियामेत्य वचो बभाषे ॥



उस समय उसका रूप कैसा था, सुनिष्ट। धन्वा का एक सिरा तो ज़मीन पर था, दूसरे सिरे पर उसका हाथ था। शिरस्त्राण को सिर से उतार कर उसने दूसरे हाथ में ले लिया था। ललाट पर उसके पसीने के बूँद छाये हुए थे। इस रूप में उसने अपनी डरी हुई प्रियतमा इन्दुमती से कहा :—

इतः परानर्भकहार्थशस्त्रान् वैदर्भि पश्यानुमता मयासि ।

एवंविधेनाह्वयेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः ॥

हे वैदर्भि ! मेरे कहने से इन लोगों को तो तू देख। ये बेचारे ऐसे हतवीर्य और सम्मोहित हो गये हैं कि एक बच्चा भी इनके हाथ से हथियार छीन सकता है। ऐसे ही पराक्रम और युद्ध-कौशल के बल पर ये तुझे मेरे हाथ से छीन लेना चाहते हैं !

इस उक्ति को सुन कर इन्दुमती का डर छूट गया और उसके मुख पर एक अपूर्व कान्ति आविर्भूत हुई। अज का पूर्वोक्त रूप और सामने खड़ी हुई उसकी नवविवाहिता वधू का पहले डरा हुआ, परन्तु पीछे से प्रसन्न हुआ, वह अनिर्वचनीय मुख, एक चित्र के लिए बहुत अच्छी सामग्री है।

( ४ )

कालिदास के मेघदूत में जिस कल्पित यक्ष ने मेघ से अपना सँदेसा कहा है उसका चित्र तो एक बंगाली चित्रकार ने बना डाला है; परन्तु यक्ष की विरह-विधुरा यक्षिणी का चित्र शायद अभी तक किसी ने नहीं बनाया। उत्तर-मेघ में उसका जैसा वर्णन कालिदास ने किया है उसे ध्यान में रख कर कोई चित्रकार यदि चाहे तो यक्षिणी का भी उत्तम चित्र तैयार कर सकता है।

( ५ )

पार्वती पहले बहुत दिन तक शङ्कर की सेवा करती रहीं। पिता ने शङ्कर के आश्रम में उन्हें इसी लिए भेजा था। मतलब यह था कि शङ्कर पार्वती में यदि अनुरक्त हो जायँ तो उन्हें विवाहसूत्र में बाँधने का मार्ग साफ हो जाय। परन्तु, महादेव ने काम को भस्म करके हिमाचल, मेना, इन्द्र आदि सभी की

आशाओं पर तुफान डाल दिया। तब पार्वती ने तपस्या द्वारा शंकर को प्रसन्न करके उनकी अर्पण-ङ्गिनी होना चाहा। बड़ी धीर तपस्या उन्होंने की। इस पर महादेव ने पार्वती की प्रेम-परीक्षा लेने की ठानी। उन्होंने एक ब्रह्मचारी का वेश बनाया और पार्वती के तपोवन में आये। पार्वती ने उनका उत्तम आतिथ्य किया। शंकर ने तपस्या का कारण पूछा। पार्वती की सखियों ने सब हाल कहा। सुन कर वटु-वेशधारी शङ्कर ने अपनी निन्दा आरम्भ की। महादेव में उन्होंने सैकड़ों दोष बतलाये और पार्वती से कहा कि इस पागलपन को छोड़ दे। किसी योग्य वर के साथ विवाह करो। पार्वती ने शङ्कर के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि तुम भूख हो। तुम महादेव को जानते ही नहीं। इसीसे ऐसी अपमानकारक बातें करते हो। पार्वती के उत्तर का जब महादेव प्रत्युत्तर देने लगे तब पार्वती बहुत विगड़ीं। उन्होंने अपनी सखी से कहा—इसे मना कर। यह फिर भी कुछ प्रलाप करना चाहता है। देख, इसका होंठ फरक रहा है। अथवा, बकने दे। मैं खुद ही यहाँ से उठी जाती हूँ। कि महात्माओं की निन्दा करने वाले ही को नहीं, सुनने वाले को भी पाप होता है। यह कह कर वह शीघ्रता से पार्वती अपने आसन से उठीं और शंकर को छोड़ कर अन्यत्र चली जाने को तैयार हुईं। तब शंकर ने अपना असली रूप धारण कर के उभर पकड़ लिया—उन्हें चले जाने से रोका :—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि—

निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्रहन्ती ।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।

शङ्कर को देख कर पार्वती कँप उठीं। उस बदन पसीने पसीने हो गया। चलने के लिए पैर को उन्होंने ऊपर उठाया था वह वैसाही उठा रह गया। उस समय पार्वती की वह दृष्टि हुई जो दशा राह में पर्वत के आजाने से नहीं होती है। न वे जाही सकीं, न बैठही सकीं।



भाग १२

पार्वती ने  
की अद्वैत  
होंने की  
लेने का  
नाया और  
का उल्लेख  
रण पूछा  
सुन का  
रम्भ की  
गार पार्वती  
केसी और  
ने शङ्कर  
ने कहा कि  
ही नहीं  
। पार्वती  
लगे तब  
से कहा-  
ना चाह  
थवा, ह  
हूँ। क  
नहीं, उ  
कर व  
और शं  
यार हुई  
कर के उ

। उत  
लिपि लि  
साही अ  
वह द  
से नदी  
हीं।



## सरस्वती



शकुन्तला और दुष्यन्त ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।



लंका ४ ]

यदि किसी चित्रकार की दृष्टि इस लेख पर पड़े तो वह कृपा करके सोचे कि कुमारसम्भव के इस दृश्य का कोई अच्छा चित्र बन सकता है या नहीं ।

( ६ )

अलम्बती-समेत सप्तर्षि हिमाचल के घर घटक बन कर गये । हिमाचल से उन्होंने प्रार्थना की कि पार्वती का विवाह शंकर के साथ विधिवत् कर लिया जाए । उस समय पिता के पास पार्वती भी मौजूद थीं । वे सब बातें सुन रही थीं । इस दृश्य का कालिदास ने, थोड़े में, इस तरह वर्णन किया है:—

एवं बादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥

इस प्रकार जिस समय अंगिरा ने कहा, पिता के पास नीचा सिर किये खड़ी हुई पार्वती कमल के पत्रों को गिन रही थीं । पार्वती के हृदय में इस समय जो विकार-तरंग-वली उठी होगी । उसे यदि कोई निपुण चित्रकार चाहे तो चित्र द्वारा व्यक्त कर सकता है ।

( ७ )

कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के आधार पर कई चित्र बन चुके हैं । यह नाटक इतना अच्छा है कि इसका आश्रय लेकर दस बीस उत्तमोत्तम चित्र बनाये जा सकते हैं । साधारण चित्र कितने बना सकते हैं, इसकी तो गिनतीही नहीं । इसके अलावा अनेक राजा दुष्यन्त और विदूषक में शाकुन्तला-प्रस्थिति की बातचीत है । राजा ने शाकुन्तला-विषयक अपना अनुराग और अपने विषय में शाकुन्तला का प्रशंसा वर्णन किया है । मैंहीं उस पर अनुरक्त होकर राजा कहता है:—

दर्शयिष्ये चरणः कृत इत्यकारण्डे

तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।

आसीद्विद्वत्तवदना च विमोचयन्ती

शाखासु बल्कलमसक्तमपि दुमाणाम् ॥

तपोवन में दुष्यन्त से साक्षात् होने के बाद जब शाकुन्तला अपने आश्रम की ओर दुष्यन्त को छोड़ कर चली तब उसकी दोनों सखियाँ—प्रियंवदा और अनुसूया—तो कुछ आगे बढ़ गई; वह पीछे रह गई । उस समय उसने किया क्या, यह इस पद्य में कालिदास ने राजा के मुख से कहलाया है । उसका मतलब है:—वह दो तीन कदम चली और अकस्मात् खड़ी हो गई । क्यों ? इसलिए कि पैर में कुश की नोक चुभ गई थी । पर क्या यह बात सच थी । अजी, नहीं । यह मेरे देखने का एक बहाना मात्र था । इतनाही नहीं, एक और भी बहाना मुझे दुबारा देखने के लिए उसने किया । पास के पेड़ की शाखा से वह अपना बल्कल छुड़ाने लगी । शाखा में न तो बल्कल लिपटा था, न उलझा था, न कुछ । परन्तु वह उसे मेरी तरफ मुँह फेर कर इस तरह छुड़ाने लगी जैसे वह बेतरह उलझ गया हो । यह क्यों ? यह भी इसीलिए कि मुझे एक बार वह फिर देख ले ।

इस पद्य में—इस घटना में—इस दृश्य में एक अपूर्व भाव है । उसे राजा रविवर्मन् ने एक चित्र में दिखाया है । यह चित्र सर्व-सुलभ है—सब कहीं मिल सकता है । परन्तु चित्रकला-विशारदों को यह चित्र पसन्द नहीं । इसी से, कुछ समय हुआ, बंगलौर की एक सभा ने विज्ञापन दिया था कि यदि कोई चित्रकार इस पद्य के आधार पर एक सर्वोत्तम चित्र बनावेगा तो उसे सोने का एक पदक दिया जायगा । कई चित्र बनाये गये । उनमें से बंबई के पास घाटकूपर में जो रवि-उदयनामक प्रेस है उसके चित्रकार श्रीयुत महादेव आत्माराम जोशी का चित्र सबसे अच्छा समझा गया । उन्हीं को पदक मिला । यह चित्र इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है । नहीं कह सकते, पूर्वोद्धिखित अन्याय दृश्यों के चित्र प्रकाशित करने का कभी मौका आवेगा या नहीं ।



## सुलोचना का चितारोहण ।

[ अनुष्टुप् ]

( १ )

वीर लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजीत महाबली ।  
प्रसन्न रणचण्डी का हुआ आज अहा ! बलि ॥

( २ )

मिठी आज बड़ी भारी उर्वी की अनुशोचना ।  
किन्तु हाय ! हुई दीना पतिहीना सुलोचना ॥

( ३ )

सदा को सो गया स्वामी सुख-सर्वस्व खो गया ।  
हुआ संसार निस्तार भार जीवन हो गया ॥

( ४ )

शुष्क सी हो गई काया धूल में है सनी हुई ।  
रोती वियोगिनी जाया योगिनी सी बनी हुई ॥

( ५ )

रुद्ध गद्गद वाणी है मुक्त केश-कलाप है ।  
नेत्रों में जल-धारा है चित्त में तीक्ष्ण ताप है ॥

( ६ )

घेर के समभाती हैं रोती हुई सहेलियाँ ।  
दीखती सब यों मानो तप-सन्तत बेलियाँ ॥

( ७ )

है कराल मनोज्वाला शून्य सा भाल हो गया ।  
बड़ी बेहाल है वाला हाय ! क्या हाल हो गया ॥

( ८ )

निरालोक हुआ लोक शोक ही अब शेष है ।  
दशा उन्माद की सी है अस्त-व्यस्त सुवेश है ॥

( ९ )

शिखा शोकाग्नि की क्याही होती अद्भुततामयी ।  
जहाँ नेत्राम्बु-धारा भी हा ! धृताहुति हो गई ॥

( १० )

हिमार्द्र पद्मिनी तुल्य अश्रुपूर्ण महादृगी ।  
काल की खोज में मानो चौकती यह ज्यों मृगी ॥

( ११ )

कह "हा नाथ ! हा नाथ !" रोती या यह दीखती ।  
मानो सन्ताप-शाला में मृत्यु का पाठ सीखती ॥

( १२ )

"मुझे छोड़ यहाँ यों ही कहाँ तुम चले गये ।  
सपत्नी अप्सराओं से क्या प्राणेश ! छले गये ?

( १३ )

"अपनाके किसी को यों छोड़ना ठीक है नहीं ।  
जोड़ के गहरा नाता तोड़ना ठीक है नहीं ॥

( १४ )

"ठहरो, शीघ्रता क्या है, मुझे लेते न साथ क्यों !  
हा ! यहाँ न रहूँगी मैं हो के नाथ ! अनाथ यों ॥

( १५ )

"देखो बुला रही हूँ मैं बोलते क्यों नहीं, कहे ?  
कलाई थाम के मेरी क्यों नहीं हैंसते, अहो !

( १६ )

"युद्ध में देवताओं को बद्ध था तुमने किया ।  
काल पा के उन्हींने क्या बदला आज है लिया !

( १७ )

"फूल सा जिसने जाना इन्द्र के वज्रपात को ।  
चितानल जला देगी तुम्हारे उस गात को ॥

( १८ )

"जिनको देख प्राणों में नित्य पीयूष सा बहा ।  
आज प्राण जले जाते उन्हीं के ध्यान से हहा !

( १९ )

"हे दुःखो ! प्रिय के आगे तुम्हारी न चली कभी ।  
काल की बलिहारी है घेर लो मुझको सभी ॥

( २० )

"अश्रुधारा ! चली तू भी मुझको छोड़ शोक में ।  
हाय रे ! दुःख का साथी न कोई इस लोक में ॥

( २१ )

"जलेगी देह तो मेरी साथ ही प्रिय-गाल के ।  
क्यों न साथ गये हा ! हा ! प्राण धिक्कार-पाव ॥



## रक्त-विज्ञान ।



सार के सब जीवों का श्रेणि-विभाग उनके रूप के अनुसार हुआ है। चार्ल्स डारविन नामक प्रकृतितत्त्व-विज्ञानी ने जीवों के रूप और स्वभाव आदि की परीक्षा कर के स्थिर किया है कि रूप की समानता रखनेवाले जीवों के स्वभाव भी प्रायः एक से होते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने जीवों की उत्पत्ति का क्रम स्थिर किया है। मनुष्य की उत्पत्ति उन्होंने बन्दर से बताई है।

अब अमेरिका के पेंसिलवेनिया-विश्वविद्यालय के अध्यापक डाकूर ऐडवर्ड टी० रीचर्ट ने एक नये तरीके से उक्त सिद्धान्त को पुष्ट किया है। उन्होंने अनेक जीव-जन्तुओं के रक्त की परीक्षा कर के निश्चय किया है कि प्राणियों के आकार का प्रभाव उनके रक्त पर भी पड़ता है। रक्त-बिन्दुओं की, सूक्ष्म रीति से, परीक्षा करने से ठीक ठीक जाना जा सकता है कि वह रक्त किस जीव का है। इसके सिवा इस परीक्षा से यह भी जाना जा सकता है कि किस श्रेणी के जीव से किस श्रेणी के जीव का कैसा सम्बन्ध है। डारविन ने तो केवल एप (Ape) नाम के बन्दर से मनुष्य का सम्बन्ध बताया था। परन्तु डाकूर रीचर्ट ने बैबून नाम के बन्दर और लेमर नाम के जन्तु से भी मनुष्य का सम्बन्ध निश्चित किया है।

रासायनिकों ने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक नमकीन पदार्थ जमने पर एक स्वतंत्र रूप धारण करता है। डाकूर रीचर्ट ने भी निश्चय किया है कि प्रत्येक श्रेणी के जीव का रक्त भिन्न भिन्न आकार में जमता है। नमकीन पदार्थों की तरह रक्त भी जमने पर बिलौरी शीशे के टुकड़ों के सदृश हो जाता है और रेखागणित के कोष्ठों का आकार धारण करता है। कभी कभी जमने पर दो जानवरों के रक्त के आकार में प्रायः समानता देखने में आती है; किन्तु कोणों की बनावट में सदैव कुछ न कुछ न्यूनाधिकता जरूर रहती है। अतएव कोणों को भी

( २२ )

काफी सुलोचना यों ही रही पाती महा व्यथा ।  
स्ती होने चली पीछे गम्भीरा सरिता यथा ॥

( २३ )

खननों ने उसे रोका किन्तु व्यर्थ हुआ सभी ।  
मृदु तो सह ली जाती न वैधव्य व्यथा कभी ॥

( २४ )

अग्नि से भी महातीव्र होता प्रिय-वियोग है ।  
न जानता वियोगी को भोग भीषण रोग है ॥

( २५ )

मरना मानतीं अच्छा विधवा कुल-नारियाँ ।  
पति के सङ्ग जीते जी जल जातीं सुकुमारियाँ ॥

( २६ )

अन्त में स्वर्ग-वीथी सी चिता चन्दन की बनी ।  
पैताने पति के बैठी विधवा शान्ति से सनी ॥

( २७ )

बढ़ी चण्डायि की ज्वाला पा के योग उमङ्ग से ।  
मानो कृतार्थ होने को उसके शुद्ध सङ्ग से ॥

( २८ )

बाघनाद फँसा मानो वहि-हुङ्कार जाल में ।  
समी की दहली छाती दुःख से उस काल में ॥

( २९ )

खलेजा घाम लोगों ने उसकी ओर दृष्टि की ।  
हाथ जोड़े स्त्रियों ने त्यों साश्रु हो पुष्प-वृष्टि की ॥

( ३० )

जलता देख के आगे खजनों ने उसे वहाँ ।  
मानो चिता बुझाने को छोड़े अश्रु जहाँ तहाँ ॥

( ३१ )

थानमग्रा स्थिरा धीरा शान्तरूपा यथा मही ।  
यन् यन् पतिप्राणा जीती ही जलती रही ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।



नाप लेने से कभी परीक्षा में भ्रम होने की सम्भावना नहीं रहती। कभी कभी एक ही जानवर के रक्त से दो प्रकार के चित्र भी उत्पन्न होते हैं। यह केवल रक्त में दो प्रकार के रासायनिक गुणों का होना सूचित करता है। इससे किसी तरह का भ्रम नहीं हो सकता।

इस नवीन आविष्कार का पदार्थ-विद्या के इतिहास पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उसके अनेक अंशों में सुधार की आवश्यकता हो गई है। विज्ञानवेत्ता भालू को कुत्ते, भेड़िये और लोमड़ी की श्रेणी में गिनते थे। किन्तु, अब इस नये तरीके से यह सिद्ध हुआ है कि उक्त जानवरों से भालू का कोई सम्बन्ध नहीं है। सामुद्रिक सिंह (Sea Lion) और सील (Seal) मछली से इसका निकट-सम्बन्ध पाया जाता है। इसी तरह परीक्षा कर के देखा गया है कि गीनी-फ़ाउल (Guinea Fowl) नाम की चिड़िया साधारण चिड़ियों की श्रेणी की नहीं है। उसका अधिक सम्बन्ध शुतुर्मुर्ग से है। इसी तरह बंगाल के शेर का सम्बन्ध बिल्ली के साथ सिद्ध हुआ है।

घोड़े और कुत्ते के रक्त में परस्पर भेद होने पर भी अनेक अंशों में समानता पाई जाती है। यह बड़े ही अचरज की बात है। इतिहासों से पता भी लगता है कि बहुत प्राचीन समय में विलायत के घोड़े न्यूफ़ा-उंडलैंड के कुत्तों के कूद के हेतु थे और अन्यान्य गुण भी दोनों में एक से थे।

इस आविष्कार से खून के मुकद्दमों का फ़ैसला करने में भी बहुत सहायता मिलेगी। अब कपड़े पर लगे हुए रक्त के चिह्न से यह जाना जा सकेगा कि वह चिह्न वास्तव में आदमी के रक्त का है या और किसी जानवर के रक्त का।

ऐसा परमोपकारी आविष्कार करने का गौरव अकेला डाकूर रीचर्ट को ही प्राप्त नहीं है। उक्त विश्व-विद्यालय के खनिज तथा भूगर्भविद्या के अध्यापक डाकूर एमास पीज़ली ने इस काम में डाकूर रीचर्ट की बहुत सहायता की है। अतएव वे भी

प्रशंसा के पात्र हैं। किन्तु रक्त-विन्दुओं के जमने की बात इन लोगों की ईजाद की हुई नहीं है। यह वास्तव में बहुत पहले आविष्कृत हो चुकी है। एक बार शास्त्रज्ञानी ने एक छोटे कीड़े के रक्त को परीक्षा लिए अपने खुरदबीन की पट्टी पर रख कर उसे दिया। इसके बाद कुछ देर के लिए वह कहीं गया। लौट कर उसने देखा कि वह रक्त जम कर स्फटिकवत् हो गया है। उसने अपने इस तजरिबे को इस हाल प्रकाशित किया। पर यह एक छोटे कीड़े की बात थी। इससे लोगों ने उधर ध्यान नहीं दिया। कई साल बाद फिर भी एक जीव के रक्त में इसकी बात देखी गई। तब वैज्ञानिकों का ध्यान इस विषय की ओर आकृष्ट हुआ। शरीर-शास्त्र के ज्ञाता परीक्षा कर के देखने लगे कि सब जीवों का रक्त इसी तरह जम सकता है या नहीं। परीक्षा करने पर उन्होंने धारणा सत्य निकली। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया कि प्रत्येक जानवर का खून निराले ढाँचा वह जमता है। इस पर लोगों ने निश्चय किया कि जानवरों के स्वभाव की विभिन्नता के कारण ही रक्त जमाव में यह भेद पाया जाता है। परन्तु उस समय कुछ वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त का विरोध किया। उन लोगों ने कहा कि जम कर खून का स्फटिक पारदर्शी हो जाना आकस्मिक घटना है। यह किसी बाहरी कारण से हुआ होगा। जानवरों के रक्त में भेद से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव उस समय इस यथार्थ तत्त्व का अधिक अनुसन्धान हो सका। अब डाकूर रीचर्ट ने बहुत तजरिबा कर इस सिद्धान्त को फिर से नया किया है।

डाकूर रीचर्ट को अपने अन्यान्य कामों के जो फुरसत मिलती थी उसी में वे इस विषय परीक्षाये किया करते थे। ऐसे समय में ऐसे गम्भीर विषय की आलोचना करना कैसा कठिन काम यह बात विज्ञान जन स्वयं जान सकते हैं। तिस भी डाकूर रीचर्ट ने बहुत आश्चर्य-जनक काम किए हैं। उन्होंने कोई सवा सौ रीढ़दार तथा विना रीढ़वाले जानवरों की परीक्षा की



[ भाग ४ ]

परीक्षा करके देखा है कि रक्त की परीक्षा से  
के जमने के काले और गोरे पन का भेद भी जाना जा  
। यह आदमी के खून में हबशी और गोरे आदमी के खून में  
क बार परीक्षा है। जिन जानवरों के खून में  
परीक्षा मालूम पड़ता है। उनके आकार-प्रकार में भी  
उसे कुछ समानता है उनको मालूम होता है।

कहाँ कुछ भेद अवश्य पाया जाता है।  
तज्जिवे पर विचार करने से मालूम होता  
कि इस विज्ञान की पूरी आलोचना की जाय तो  
ये कीड़े इसके द्वारा यह भी अवश्य जाना जा सकेगा कि  
नहीं दिया रक्त पुरुष का है अथवा स्त्री का। रक्त का भेद  
रक्त में व्यक्ति की विभिन्नता पर अवलम्बित है। हम लोग  
इस विचार हैं कि संसार में भिन्न भिन्न दो व्यक्तियों का  
पता परीक्षा—चाहे वे पुरुष हों चाहे स्त्री—एक सा नहीं  
इसी तल्लू। तब क्या ऐसा अनुमान करना युक्ति-संगत  
पर उतारा है? चेहरा देख कर जब आदमी के शील-  
ह भी देखना आदि का हाल जाना जा सकता है तब  
आले ढंग का यह सम्भव नहीं कि रक्तद्वारा भी मनुष्य के  
कि जिनका पता लग सके?

## श्रीरामनवमी ।

( १ )

अद्वितीय, अपूर्व, अनुपम दिन अलौकिक आज का,  
यह कि हमारे सुखमय दृश्य है शुभ सत्त्व गुण के साज का।  
के रक्त और सुखमय दृश्य है शुभ सत्त्व गुण के साज का।

रतएव उल्लास के अवतार का अवसर मिला,  
मन्यान न कयाही मनोहर पुण्य-कुसुमाकर खिला ॥

( २ )

श्रीरामनवमी नाम की है आज पावन तिथि वही,  
मैंने दिन स्वयं सर्वेश हरि ने स्वर्गमय की थी मही।  
विषय होकर आज ही रघुराज ने नरलोक में,  
येसे गमन दर्शित किया निज रूप के आलोक में ॥

( ३ )

। तिस दिन को हमें प्रभु ने मनुज-लीला रची,  
काम किया न रामचरित्र से है एक भी बाहर बची।  
। उतरे कया सङ्कट मिटाया सुख सभी हम को दिये,  
की है नही करता पिता सन्तान के हित के लिए ?

( ४ )

किस भौंति करना चाहिए वह लोक-रञ्जन सर्वदा,  
किस भौंति रखना चाहिए ध्रुव-धर्म-मर्यादा सदा।  
कर्त्तव्य कहते हैं किसे है शील की सीमा कहाँ,  
आती सहज ही ध्यान में है आज ये बातें यहाँ ॥

( ५ )

मुनि-यज्ञ-रक्षा की तथा अवला अहल्या तार दी,  
ब्याही विदेह-सुता, पिता पर राज्यलक्ष्मी वार दी।  
मारे निशाचर गण अहा ! कण भी न छोड़ा पाप का,  
हे राम ! हम भूलें कभी वह राम-राज्य न आपका ॥

( ६ )

फिर एक बार दयानिधे ! निज दिव्य दर्शन दीजिए,  
इस रामनवमी नाम को भगवान ! सार्थक कीजिए।  
फिर दुःख-पारावार से संसार का उद्धार हो,  
दुष्कर्म का संहार हो, सद्धर्म का विस्तार हो ॥

( ७ )

जिन कारणों से आपका अवतार होता है हरे !  
वे सब उपस्थित हो चुके अब भूरि भीषणता-भरे।  
प्राबल्य पापों का बड़ा है पुण्य पंगु हुआ पड़ा,  
दुष्काल दानव सा अड़ा है रोग राजस सा खड़ा !

( ८ )

अति तीक्ष्ण तापों से हमारे प्राण मानो जल रहे,  
दुखपूर्ण आँखों से अहो ! अविराम आँसू चल रहे।  
विकराल जीवन भी हमें अब कल जैसा हो रहा !  
विश्वेश ! देखो तो हमारा हाल कैसा हो रहा !!!

( ९ )

दुख, शोक, पापाचारता के नाथ्य हम दिखला चुके,  
आँसू न जिनको देख कर सहृदयजनों के हैं रुके।  
हे लोक-नाटक-सूत्रधर ! अब और कुछ आज्ञा मिले,  
लाखों करोड़ों खेल हैं मन की कली जिनसे खिले ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।



## महाराज रणजीतसिंह ।



महाराज रणजीतसिंहजी के पूर्व पुरुषों का वृत्तान्त १४७० ईसवी से पहले का नहीं मिलता । उस समय लाहौर से चालीस पचास मील दक्षिण-पश्चिम की ओर बट्ट नाम के गाँव में वारे जाति का एक हिन्दू जाट

कालू नामक रहता था । उसका निवास तीन पीढ़ी से वहाँ था । इस गाँव वाले लूटमार किया करते थे । पर यह मनुष्य सीधा था । इस कारण आपस में अनबन होने से वह वहाँ से चला आया और अमृतसर से चार पाँच कोस पश्चिम को सांसेरी गाँव में आ बसा । इस स्थान में उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जादू बट्टी रक्खा गया । १४७६ ई० में कालू सपरिवार सांसेरी से उठ कर सुंड में जा बसा । यह गाँव वज्जिराबाद से चार कोस है । सन् १४८८ ई० में कालू मर गया । जादू लुटेरों के साथ लूटपाट करने जाया करता था । १५१५ ई० में वह इसी लूट के एक धावे में मारा गया । उसका पुत्र गालिब था । उसको लोग मन्नू भी कहा करते थे । उसने भी पिता के समान लूटपाट का काम करना शुरू किया । एक धावे में वह घायल हुआ और १५४९ ई० में वह भी मरा ।

गालिब के कीड़ेह नाम का एक पुत्र था । उसे लूटपाट पसंद न थी । इस कारण वह सुंड से उठ कर गूजरवाले के निकट एक गाँव में आ बसा और खेती से निर्वाह करने लगा । सन् १५७८ में उसकी मृत्यु हुई । उसके राजदा और प्रीनू दो पुत्र थे । इनमें से जेठे ने गुरमुखी पढ़ना सीख लिया था और सुकुरकुच में एक दुकान कर ली थी । वह नमक, मिर्च, मसाला बेचा करता था । सन् १६२० में उसकी मृत्यु हुई । उसके पुत्र तख्तमल ने अपने पिता की सम्पत्ति बढ़ाई और बहुत सी ज़मीन माल ली । सन् १६५३ ईसवी में यह भी मर गया । इसका पुत्र बारा सिक्ख हो गया और गुरु-ग्रन्थ का उपदेश

करने लगा । सन् १६७९ में इसकी मृत्यु हुई । इसका पुत्र बुद्धसिंह बड़ा वीर था और सदैव मारका किया करता था । इसकी सवारी में एक देशी की अबलक घोड़ी थी जिससे लोग इसको कहते थे । कहते हैं कि इस घोड़ी पर सवार हो उसने भीलम, चनाब और रावी नदियों को पार बार तैर कर पार किया था । इसके शरीर पर घाव तलवार के और ९ गोलियों के थे । सन् १७०० में यह फालिज की बीमारी से मरा । जब इसकी स्त्री ने यह समाचार सुना तब शोक के मारे भी कटारी मार कर मर गई । फिर इन दोनों के साथही दाह-क्रिया की गई ।

बुद्धसिंह का जेठा पुत्र नोदसिंह, अपने पिता की मृत्यु के बाद, रावलपिंडी से सतलज तक तराज करने लगा । सन् १७२१ ई० में, जब अहमद शाह अबदाली अपने देश को लौट रहा था, उसने आदमियों को इसने खूब लूटा और बहुत द्रव्य चुरा लिया । सन् १७४७ में उसके एक गोली जिससे पाँच वर्ष तक कष्ट उठा कर वह मर गया उसके जेठे पुत्र चूरतसिंह ने लूटमार करने के लिए अपनी एक पृथक् टोली बनाई और वह इसमें प्रसिद्ध हो गया कि बहुत लोग उससे आ मिले थोड़ेही दिनों में गूजरवाले के आस पास के गाँव पर इसने अपना कब्जा कर लिया और कच्छी सराय में रहने लगा । इसी समय इसका विवाह एक बड़े घराने में हो गया । तब इन दोनों घरानों ने मिल कर गूजरवाले में एक क़िला बनाया लाहौर का हाकिम इनको वहाँ से निकालने आया परन्तु चूरतसिंह ने उसको परास्त करके उसका सारा सामान लूट लिया । सन् १७६२ में अहमद शाह अबदाली आया तो चूरतसिंह ने अपने गाँव वालों को पर्वतों पर भेज दिया और आप शत्रु पीछे पीछे हो लिया । जब उसे मौका मिलता तब शत्रु की छोटी छोटी टोलियों का वह मार करता था । यह देख कर अफ़ग़ानों ने गूजरवाले क़िले को तोड़ कर ज़मींदोज़ कर दिया । सन् १७६२ में





महाराज रणजीतसिंह ।

रवियल प्रेस, इलाहाबाद ।





हस्त्या  
६० में पक्ष  
समय इस  
की थी।  
इसकी मा  
को फिर  
जापतिसि  
इसके थो  
मुसलमाने  
दिखाई। र  
नाए रख  
इसकी ज  
अधिक म  
महारा  
की शरद  
समय इन  
कारण ज  
करते थे  
आप संभा  
शिखे इन  
के आप अ  
बड़ी सुग  
आप का  
आप बिना  
जगतसिंह  
जात हुआ  
र रहे हैं  
आप सात  
कर दिया  
इस तर  
प्राज्ञासिंह  
कर के  
आपने अ  
आप मरता  
र लेने ल  
सन् १०  
प्राज्ञाजी



१० में एक बंदूक के फूटने से इसकी मृत्यु हुई। इस समय इसके पुत्र महासिंह की आयु केवल १४ वर्ष की थी। इस कारण इसके पैतृक काम का भार इसकी माता पर पड़ा। उसने गूजरवाले के किले को फिर से बनवाया। सन् १७७१ में भींद के जगपतिसिंह की कन्या से इसका विवाह हुआ। इसके थोड़ेही समय बाद उसने चीता जाति के मुसलमानों से रसूलनगर विजय करके बड़ी वीरता दिखाई। रसूलनगर का नाम बदल कर उसने राम-नगर रक्खा। महासिंह ने बड़े बड़े काम किये और अपनी जागीर भी बहुत बढ़ाई। सन् १७८० में अफ़ग़ान मंदिरा पीने से बीमार होकर वह मर गया।

महाराजा रणजीतसिंह का जन्म सन् १७७६ ई० की रात ऋतु में हुआ। अपने पिता की मृत्यु के समय इनकी आयु केवल चार ही वर्ष की थी। इस कारण जागीर आदि का सारा काम इनकी माता करती थी। १७ वर्ष की आयु में इन्होंने अपना काम आप सँभाला। कुछ वर्ष तो इन्होंने आराम से काटे। फिर इनको लाहौर के मुसलमानों ने निमंत्रण दिया कि आप अचानक यहाँ आवें तो हम आपको लाहौर की सुगमता से दिलवा दें। इनको इससे अधिक प्यार था चाहिए था। लाहौर में ये अचानक ही गये और बिना रोकटोक के घुस गये। परन्तु किले में वेरतसिंह ने खूब युद्ध किया। अंत में जब उसको पता हुआ कि उसकेही आदमी उसके साथ दगा कर रहे हैं तब उसने रणजीतसिंह से बनया गाँव की सात हजार की जागीर लेकर किला खाली कर दिया।

इस तरह एक बार विजय का मज़ा मिलने पर रणजीतसिंह को उसका चसका लग गया। एक कर के उन्होंने पञ्जाब के सारे सिक्ख-सरदारों को अपने अधीन कर लिया। जब कभी कोई सरदार मरता तब वे उसकी जागीर तुरन्त खालसा कर लेने लगे।

सन् १९०९ ईसवी की २५ अप्रैल को अमृतसर के कैंग्रेजी गवर्नमेंट से उनका अहदनामा हुआ।

उसमें महाराज ने सतलज नदी को अपने राज्य की दक्षिणी सीमा बनाना स्वीकार किया। इस तरह इस ओर मार्ग बंद हो गया तो उन्होंने दूसरी तरफ़ देश-विजय करना आरम्भ कर दिया।

सन् १८१३ ई० के मार्च महीने में शाह गुजा काबुल से भाग कर रणजीतसिंह की शरण आया तो उसे बहुत तंग कर के महाराज ने उससे कोहनूर नाम का प्रसिद्ध हीरा और अन्य बहुमूल्य रत्न ले लिये। १८१८ के आरम्भ में महाराज ने मुलतान का परगना विजय किया और इसी वर्ष के अंत में पेशावर पर भी अपना अधिकार जमाया। काश्मीर विजय करने का इनका बहुत इरादा था। दो बार निष्फलता होने पर भी इन्होंने उद्योग नहीं छोड़ा। अंत में सन् १८१९ ई० के जुलाई की पाँच तारीख को वहाँ की सेना का पराजय कर के उस देश को भी अपने राज्य में इन्होंने मिला लिया।

महाराज रणजीतसिंह की सेना में अधिकतर रिसालाही था; परन्तु जब उन्होंने अँगरेजी सेना की पलटने देखीं तब आपने भी पैदल फ़ौज की भरती की। उनकी शिक्षा के लिए उन्होंने दो फ़्रांसीसी जनरल, वैनदूर और ऐलार, को रक्खा। इन लोगों ने महाराज के काम को बड़ी योग्यता से किया।

विस्तारभय से हम महाराज की सब जीतों का वृत्तान्त यहाँ नहीं लिखते। इतनाही कहना हम बस समझते हैं कि सतलज नदी से लेकर उस तरफ़ पर्वतों तक इन्होंने अपना राज्य बढ़ा लिया।

विजय और युद्ध में प्रसिद्धि प्राप्त करना उनके लिए एक सहज काम था। ये बड़े वीर थे; परन्तु काम बहुत सोच विचार कर करते थे और बिना आवश्यकता के मनुष्यों का नाश कभी न करते थे। हाँ, यदि आवश्यकता होती थी तो फिर किसी बात का विचार ये न करते थे। कार्य की सिद्धि के लिए चाहे कितनेही मनुष्य मारे जायँ और चाहे कितनीही पीड़ा पहुँचे वे कुछ परवा न करते थे। उनमें मनुष्य की प्रकृति पहचानने की बड़ी शक्ति थी। इसी से उन्होंने पञ्जाब के सारे सरदारों को विजयही नहीं



कर लिया किन्तु अपने बराबरी के कितनेहीं सरदारों को स्वाधीन कर के उनसेही अपने राज्य की नाँव को दृढ़ कराया । उन्हें पढ़ना लिखना कुछ न आता था । परन्तु उनकी सरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी और वे राजनीति में बड़े निपुण थे । उनकी सफलता का एक बड़ा भारी कारण यह था कि वे सदैव सब काम विचारपूर्वक करते थे । धर्म की ओर वे सदैव दृष्टि रखते थे । जब जीत होती थी तब वे यही कहते थे के श्रोगुरु की कृपा से जीत हुई है । ग्रन्थ का पाठ उनके यहाँ सदाही हुआ करता था । देशी राज्यों में राजा के विशेष बीमार होने पर बहुधा उपद्रव हो जाया करते हैं, परन्तु महाराज रणजीत-सिंह की अंतिम बीमारी में, और उनके स्वर्गवास होने तक, किसी को बलवा करने का साहस नहीं हुआ । सन् १८३९ ई० के जून महीने की २७ तारीख को, ६३ वर्ष की उम्र में, रणजीतसिंह का परलोक-वास हुआ ।

अमरसिंह ।

## होली का हास्य ।

( १ )

सम्पादक जी ! जय श्रीराम,  
जय शङ्कर, जय श्यामाश्याम ।  
नमो नमस्ते और प्रणाम,  
गुड मॉर्निङ्ग, जुहार, सलाम ॥

( २ )

है वसन्त होली का रङ्ग,  
छनी खूब केसरिया भङ्ग ।  
रुक सकती अब नहीं उमङ्ग,  
रहिए आज क्षमा के सङ्ग ॥

( ३ )

डाल डाल कर रङ्ग-गुलाल,  
लाल लाल कर सब का भाल ।

रसमय समय दशा को देख,  
भेजा जाता है यह लेख ॥

( ४ )

सोच हमारे श्रम को आप,  
देना इसे समय पर छाप ।  
इससे सरस्वती का अङ्क—  
नहीं रहेगा रस का रङ्क ॥

( ५ )

सरस्वती का पत्र-विभाग—

है कोरा काँटों का बाग ।  
पर इसमें है रस भर पूर,  
होगा अब भद्रापन दूर ॥

( ६ )

काव्य हमारा उत्तम जान,  
अपना उससे नीरस मान ।  
हिन्दी के लेखक निःशेष—  
रखते हम पर ईर्ष्या-द्वेष ॥

( ७ )

कहें हमें चाहे जो अज्ञ,  
हैं हम पूर्ण काव्य-मर्मज्ञ ।  
काव्यतीर्थ का पद प्रधान—  
हमें दे चुके हैं विद्वान ॥

( ८ )

अहा ! हमारा काव्य-विलास—  
करता ब्रह्मानन्द-विकास ।  
सरस्वती के वाचक-वृन्द—  
पावें आज वही आनन्द ॥

( ९ )

सरस्वती में बारंबार—  
चमकें हम भी किसी प्रकार ।  
यह उत्कट इच्छा है आज,  
करिये पूर्ण इसे महाराज ॥



( १० )

कई हमारे लेख ललाम,  
गद्य-पद्यमय रस के धाम ।  
दिये आपने हैं लौटाल ,  
हो अबके भी वही न हाल ॥

( ११ )

सच कहते हैं, जो इस बार  
छप न सके ये विमल विचार ।

तो यह समझ लीजिए आप—  
होगा हमें बड़ा परिताप ॥

( १२ )

जो हम अबके हुए हताश,  
तो फिर होगा वैर-विकास ।

सरस्वती पर करके रोष  
ढूँढ़ेंगे हम नाना दोष ॥

( १३ )

केवल लेखक मात्र महान—

आप न हमको लेना जान ।

समालोचना का भी गर्व—

रखते हैं हम सदा अखर्व ॥

( १४ )

लिख न सकें चाहे कुछ शुद्ध,

पर कर सकते हैं हम युद्ध ।

लेखक छोटे-बड़े तमाम—

डरते हमसे आठों याम ।

( १५ )

जो कह दें हम कविता-कान्त ,

है वह ईश-वाक्य निर्भ्रान्त ।

सुनते रहते हैं सब मौन ,

चूँ तक कर सकता है कौन ॥

( १६ )

रहते हैं जो लोग विरुद्ध ,

होते हैं हम उन पर क्रुद्ध ।

करने को उनका अपमान

करते हैं बहु यत्न-विधान ॥

( १७ )

हो विपक्ष का कहना ठीक—

सिद्ध करें हम उसे अलीक ।

लें जो हम झूठा भी पक्ष ,

आसकता है कौन समक्ष ॥

( १८ )

बढ़ता देख किसी का मान ,

होता हम को दुःख महान ।

लेकर तब हम कलम-कुठार—

करते उस पर प्रबल प्रहार ॥

( १९ )

कवियों के हम हैं कविराज ,

समालोचकों के सिरताज ।

लेखन-कला-प्रवीण प्रसिद्ध ,

सम्पादन में भी हैं सिद्ध ॥

( २० )

सरस्वती-सम्पादन-कार्य

दें जो आप हमें अनिवार्य ।

तो फिर देखें शीघ्र सुयोग ,

हों भट दूने ग्राहक लोग ॥

( २१ )

करने में ग्राहक-गण-वृद्धि—

पाई हमने पूर्ण प्रसिद्धि ।

हो कैसा ही सड़ियल पत्र ,

बढ़े माँग उसकी सर्वत्र ॥

( २२ )

है सब ओर जरा सी आड़ ,

ज्यों तिनके की ओट पहाड़ ।

कलह-पूर्ण हो लेख अमन्द ,

क्यों न बढ़ेंगे ग्राहक-वृन्द ॥



( २३ )

सच्चे-झूठे किन्तु विचित्र,  
कृपा करें यदि चित्र-चरित्र ।

बड़े पत्र का ऐसा नाम,  
दें सब ग्राहक दूने दाम ॥

( २४ )

लेख न भेजे जो लिक्खाड़,  
पावे हमसे बुरी लथाड़ ।

समालोचना रूपी शूल—

तत्क्षण दें हम उस पर हूल ॥

( २५ )

हैं हम बड़े धीर-गम्भीर,  
त्यों समाज-संशोधक वीर ।

लिख लिख उपन्यास अश्लील,  
रक्षित रखते सब का शील ॥

( २६ )

देशोद्धारक भी सब काम,  
करते हैं हम बिना विराम ।

चन्दा करते हुए वसूल,  
खिल जाते हैं जैसे फूल ॥

( २७ )

है हम में गुण-गर्व अतीव,  
हम हैं बड़े विलक्षण जीव ।

नित्यानन्द हमारा नाम,  
हँसना और हँसाना काम ॥

नित्यानन्द ।

## “कालिदास की निरङ्कुशता” पर विद्वानों की सम्मतियाँ ।



कुछ लोगों का खयाल है कि प्राचीन कवियों और ग्रन्थकारों की पुस्तकों की समालोचना न होनी चाहिए । और, यदि, समालोचना भी हो तो उनके दोष दिखलाने की चेष्टा न करनी चाहिए । क्योंकि,

एक तो उनके ग्रन्थों में दोष हैं ही नहीं, और यदि भी तो साधारण मनुष्यों की समझ में वे आ सकते । दूसरे, यदि उनकी कृतियों में दोष पाये जायँ तो उन्हें दिखलाना अच्छा नहीं । उनके दिखलाने से सर्व-साधारण की श्रद्धा उन पर रहेगी । अतएव यदि कोई प्राचीन कवियों के दिखलावे तो उसकी प्रत्येक उक्ति का खण्डन कर चाहिए—चाहे उसके दिखलाये हुए दोष ठीक ही न हों और चाहे उनकी निर्दोषता सिद्ध करने लिए अन्याय, असत्य, असभ्यता, पक्षपात, उपहास और परिहास का आश्रय ही क्यों न लेना पड़े । लोग द्रोह और दुराग्रह के शिकार बन कर कहते और तदनुसार व्यवहार करते हैं उनसे कुछ नहीं कहना । वे खुशी से अपनी आत्मा हनन करें । परन्तु, जो भ्रम से ऐसा समझें उनसे हमारी प्रार्थना है कि “कालिदास की निरङ्कुशता” नामक लेख के सम्बन्ध में नीचे दी विद्वानों की सम्मतियों को पढ़ें ।

( १ )

म्यूर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद, के प्रधान संताध्यापक

महामहोपाध्याय परिडत गङ्गानाथ भा

एम० ए०, डाक्टर आर्च लिटरेचर

लिखते हैं :—

“कोई आश्चर्य नहीं जो लोग संस्कृत-कवियों काव्यों की समालोचना करना पाप समझे । लोगों की प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी हो रही है कि संस्कृत में लिखी हुई सभी बातों को हम उतनाही और पूज्य समझते हैं जितना कि वेद के पवित्र पवित्र मन्त्र को समझते हैं ।

“आपकी उल्लिखित लेखमाला को पढ़ कर बड़ा आनन्द हुआ । उसमें कही गई सब बातें कोई सहमत हो या न हो—यह तो बात ही है—परन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि बड़—जिस प्रणाली—का अवलम्बन करके



संख्या ४ ]

समालोचना लिखी गई है उसका कोई भी विरोध नहीं कर सकता। एक बात और भी है। जो दोष पूर्वक लेखमाला में दिखलाये गये हैं उनमें से कितनी को प्रायः सभी अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने दोष माना है। मम्मट भी इन्हीं आचार्यों में से हैं। हमारे मित्रवर्यों को यह बात न भूलनी चाहिए। उन्हें इस बात को भी याद रखना चाहिए कि खुद कालिदास, इस विषय में, क्या कहते हैं। उनका कथन है :—

“पुराणमित्येव न साधु सर्वम्”

अर्थात्—पुराना होना ही किसी वस्तु के अच्छे और निर्दोष होने का प्रमाण नहीं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपने ही निश्चित किये गये सिद्धान्तों के अनुसार कालिदास अपने काव्यों की परीक्षा की जाने का कभी विरोध न करते।

“यदि हम लोग पुराने प्रसिद्ध कवियों के काव्यों की आलोचना न करें तो करें किसकी? समालोचना-सम्बन्धी साहित्य की उत्पत्ति फिर कैसे हो?”

( २ )

भिन्न भिन्न लिपियों पर सरस्वती में जो विद्वत्तापूर्ण लेख निकल चुके हैं उनके लेखक और ज्योतिष-वेदाङ्ग के भाष्यकार

“बार्हस्पत्य” जी

से पाठकों का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं। आपने “कालिदास की निरङ्कुशता” शीर्षक लेख के विषय में जो सम्मति प्रकट की है उसकी याथातथ्य नकल नीचे दी जाती है :—

“यद्यपि कारण-विशेष से मुझे इन दिनों इतना अवकाश नहीं मिला है कि मैं हिन्दी या संस्कृत में साहित्य या विज्ञान-संबन्धि-विषयों पर कोई लेख लिख सकूँ; मगर अवकाश न होने पर भी जब कभी सरस्वती मेरे पास पहुँच जाती है तो मैं आनन्द से उसको पढ़ता हूँ। जनवरी से मार्च तक की सरस्वती किसी विद्वान् ने ‘कालिदास की निरङ्कुशता’ शीर्षक एक गवेषणापूर्ण लेख लिखने की कृपा की

है। वह लेख भी मैंने पढ़ा है और हिन्दी-समाचार-पत्रों में जो कुछ उस लेख पर पर्यालोचनायें हुई हैं उनका हाल भी मुझे मालूम है। मेरी राय में गणित-विद्या को छोड़ कर और कोई विद्या ऐसी नहीं है जिसके विषय में विद्वानों का मतभेद न हुआ करता हो। बल्कि मैं तो यह कहता हूँ कि जिस विषय में विद्वानों का मतभेद नहीं उसका न तो यथार्थ निर्णय हो सकता है और न उस विद्या की उन्नति। और, यह भी याद रखना चाहिए कि किसी महत्त्वपूर्ण विषय में किसी लेखक से मतभेद रखने के यह माने नहीं हैं कि उस लेख का आदर न किया जावे। यह बातें ध्यान में रख कर मैं कहता हूँ कि ‘कालिदास की निरङ्कुशता’ शीर्षक लेख जो सरस्वती में छपा है वह आदर करने के योग्य है। जिन लोगों ने इस लेख की आलोचनायें की हैं—खेद की बात है कि वह इस शब्द ‘आलोचना’ का तात्पर्य नहीं जानते। और, हिन्दी-प्रेमियों की यह अवस्था देख कर यह खयाल होता है कि अभी भारतवर्ष में ऐसे लेखों के हिन्दी में प्रकाशित होने का समय नहीं आया है! इन आलोचकों को यह नहीं मालूम कि प्राचीन महाकवियों या अन्य लेखकों के दोष किस मतलब से दिखाये जाते हैं। यह तो सब जानते हैं कि जब तक कालिदास के काव्य या नाटक इस लोक में वर्तमान हैं तब तक उनकी त्रुटियाँ भी वर्तमान रहेंगी। कोई साहित्यप्रेमी ऐसा मूर्ख न होगा जो कालिदास के किसी श्लोक को किसी समय पर उद्धृत करते हुए उसके संशोधन का साहस करे। अगर ऐसा किया जायगा तो वह श्लोक कालिदास का न होगा बल्कि उस साहसी मूर्ख का होगा जो ऐसा नीच काम करता है। फिर सरस्वती में कालिदास की त्रुटियाँ दिखाने से क्या मतलब? मतलब यह कि जो लोग कविता करनी चाहते हैं उनको मालूम हो जाय कि पद्य-रचना के वक्तु किन किन बातों का खयाल रखना जरूरी है। गूढ़ बातों समझाने के लिए उदाहरणों की हमेशा जरूरत हुआ करती है। उदाहरण के लिए छोटे छोटे कवियों या



लेखकों की त्रुटियाँ दिखाना उचित नहीं। हमेशा यथाशक्य महाकवियों की त्रुटियाँ दिखानी चाहियें। इसमें दो फायदे हैं। एक तो यह कि उनके 'कलङ्क' दिखलाये जाने पर भी उनकी 'सुषमाहानि' नहीं हो सकती। 'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्' को पढ़कर कोई काव्य-रसिक रघुवंश को जला नहीं देगा। दूसरा फायदा यह है कि बड़े बड़े कवियों के काव्यों को सब लोग पढ़ते हैं, छुटभइयों की कविता किसी ने पढ़ी, किसी ने नहीं पढ़ी। कालिदास-सदृश महाकवियों की त्रुटियाँ दिखाने की एक और भी आवश्यकता है। भारतवासी लकीर के फ़कीर मशहूर हैं। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' पर लट्टू हैं। अगर किसी के बाप ने यज्ञ के वक्त घर की बिल्ली को खूँटे से बाँध दिया, तो बेटा यज्ञ करे या न करे मगर बिल्ली को ज़रूर खूँटे से बाँधेगा। किसी महाकवि ने नायिका के कुच की 'कलश' से उपमा दे दी। बस फिर क्या था, हमारे कविकल्पों को उपमा क्या मिली कलसे ढालने का साँचा ही हाथ आ गया। वह कविता ही क्या जिसमें कलसे का नाम न आवे। यही वजह है कि आज कल हिन्दी या संस्कृत की अच्छी कविता नहीं होती। जो लोग कालिदास की त्रुटि को त्रुटि नहीं मानते वह खुद क्या अच्छी कविता करेंगे। कालिदास के काव्य में त्रुटि बतलाने से उस महाकवि पर बढ़ा नहीं लगता, मगर उस त्रुटि को जान कर नई कविता करने वाले ज़रूर लाभ उठा सकते हैं। वामनजी ने बल को छल कर चाहे देवताओं का उद्धार ही किया हो, मगर वामनजी छली ज़रूर कहलावेंगे। सब हिन्दू मात्र उनकी पूजा ज़रूर करेंगे, मगर साथ ही उनको छली भी ज़रूर कहेंगे।

“मेरे इस निवेदन से यह नहीं समझना चाहिए कि मैं कालिदास की निरङ्कुशता के विषय में लेखक महाशय से बिल्कुल सहमत हूँ। नहीं, मेरे खयाल में उक्त महाशय ने दो चार बातें ऐसी कही हैं जिनको मैं समझस नहीं समझता; और, अगर, मुझे फुर्सत होती तो मैं ज़रूर इस विषय में कुछ लिखने

का साहस करता। मगर, खैर, कुछ कुछ मतलब होने पर भी, मैं इस लेख को बहुत ही यथार्थ और उत्तम समझता हूँ। हाँ, एक बात और भी कहनी है। मेरे खयाल में लेखक महाशय भी इतने स्वतंत्र नहीं हैं जैसा उनको होना चाहिए। मैंने मम्मट के काव्य-प्रकाश की सैर की है। उनकी भी अनेक निश्चानवे बातें ठीक हैं तो एक ग़लत है।

“लेखक महाशय को चाहिए था कि ग़लत को वह ठीक न मान लेते। यह ठीक है कि शब्द बोच में यति नहीं होनी चाहिए, मगर यदि उपर के अन्त में यति हो तो कोई हर्ज नहीं है। मम्मटजी इसके विरुद्ध कहते हैं तो उनकी भूल हम

“यह जो कुछ मैंने ऊपर निवेदन किया है केवल 'कालिदास की निरङ्कुशता' शीर्षक लेख के विषय में मेरी सम्मति है, अब रही यह बात संस्कृत में ऐसे लेखों का छपना हिन्दी-साहित्य लिए लाभदायक है या हानिकारक। सो इस विषय में मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी लिखने और पढ़ने वालों की अभी यह अवस्था है कि उनके सामने ऐसे लेख रक्खे जावें। उनको यह सिखलाना चाहिए कि कालिदास का कौन थे और उनमें गुण क्या थे। गुणों का परिचय न होकर दोषों का परिचय होना सर्वशः हानिकारक है। जब तक शिष्य बालक है उसको हर चीज़ का गुण ही बताने अच्छे हैं। जब उसमें गुण और दोष का भेद समझने की अकल आ जावे तब दोष प्रकाश करने में हर्ज नहीं है”।

मम्मट आदि ने कालिदास की जो त्रुटियाँ बताई हैं उसके ज़िम्मेदार वे हैं। हमने उनकी उक्तियाँ सही या ग़लत होने का विचार नहीं किया। हम तो सिर्फ़ इतना ही कहा है कि इन लोगों ने कालिदास की अमुक उक्ति में अमुक दोष बतलाया। यदि बार्हस्पत्यजी की यह राय न होती कि हिन्दी पाठक अभी इस तरह की समालोचनाओं प्रसन्न नहीं हो सकते तो हम किसी समय



संख्या ४ ]

आलङ्कारिकों के निश्चित सिद्धान्तों पर भी कुछ खिलने का साहस करते ।

बड़े अफसोस की बात है कि जिस हिन्दी को उन्नत करने की सब तरफ चेष्टा हो रही है उसके प्रयोगों में समालोचना के यथार्थ तत्त्व को समझने वालों का अभाव हो । सरस्वती में यदि कालिदास की त्रुटियाँ बतलाई गई हैं तो उनके गुणों का गान भी तो कई दफे हुआ है, और अभी बराबर होता जा रहा है । फिर भी यदि किसी को कुछ शिकायत हो तो हिन्दी का दुर्भाग्य समझना चाहिए । रही यति-भङ्ग की बात, सो उसके सब अंशों का विचार हमने नहीं किया । कालिदास के एकही यति-भङ्ग दोष को हमने दिखाया है । उसमें उपसर्ग का संसर्ग नहीं । उपसर्ग ही क्यों, पद के मध्य में स्वरसन्धि के अग्रम से भी यतिभ्रंश दोष नहीं माना जाता । यथा—

पदने सा शोभां व्रजति पदमध्ये त्यजति च ।

पुनस्तत्रैवसौ स्वरविहितसन्धिः श्रयति ताम् ॥

( ३ )

### पण्डित दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

जयपुर की राजकीय संस्कृत-पाठशाला के प्रधान अध्यापक हैं । आप बड़े विद्वान् हैं । संस्कृत में आपने स्वतन्त्र-ग्रन्थ-रचना भी की है और कई पुस्तकों का बड़ीही योग्यता से सम्पादन भी किया है । संस्कृत के साहित्य और काव्य में आप सविशेष निपुण हैं । प्रस्तुत विषय में आपकी राय संस्कृत में सौ की सौ नोच दी जाती है :—

यमलिनायादिभिरादरेण

निरङ्कशाः सत्कवयो निरुक्ताः ।

तथापि पूर्वं कविकालिदास—

निरङ्कुशलं मुदमादधाति ॥

प्रसिद्धमैतद्वत्तत्वालङ्कारिकाः सूक्ष्मसूक्ष्मतरविचारेण काव्य-विशेषाः उपरिचरन्ति न विरमन्ति । अतएव बहुधा गुणदोषादि-विचारविचारचर्चादिषु पूर्वास्पृष्टा एव कतिचन गुण-विचारः सहृदयदृष्टयैकसाक्षिणो लक्षिताः । तावता पर्यवसानमजनी-

त्यपि न युक्तम् । शास्त्रमात्रस्याप्यपरिच्छिन्नत्वे साहित्यशास्त्रं हि सहितप्रकृतिकतया विशिष्यात्मनोऽपरिच्छिन्नतां द्योतयति । अहो कथं कविकर्म ! अतएव ध्वनिकारैवोचि :—

“अतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चपा वा महाकवयः ” ।

भवतु पूर्वा परा वा कोटिस्तत्र तत्रभवतः कालिदासस्यावकाश-लामे नास्माकं तच्छिष्याणां केषांचिदपि विवादवासरः । इयता तत्काव्यमेकान्ततो दोषनिर्मुक्तमित्यपि न सिद्धान्तयितुं पार्थ्यते । तत्र तत्र तच्छिष्यप्रशिक्ष्यभूतरालङ्कारिकैर्दोषपरीक्षायामपि लक्ष्यतया समुदाहृतत्वात् । नायमपराधस्तेषां यच्छरीरस्येव काव्यशरीरस्य दोषात्यन्ताभावस्याशक्यतायां लक्ष्यभूते युधिष्ठिरादिशरीरिणि कादा-चित्को मिथ्यालदोष इव महाकाव्यशरीरे दोष उदाह्रियते । न हि सैहिकेयः कलङ्कीति कीर्यते कैश्चित् । किन्तु सुधासूतिः शशाङ्क एव । स दोषोऽवधानतयानवधानतया वा जायतामित्यन्यदेतत् । कविकुञ्जराणामेव निरङ्कुशलं शोभते परीक्ष्यते च न पुनरन्यथा । इदमत्राकृतम् । कालिदासादिभिः सत्यपि लोकोत्तरवर्णननैपुण्ये बहुत्र गजनिमीलिकायितम् । नेयं निरङ्कुशता केवलं काव्यकाराणा-मेव किन्तु दर्शनकाराणामपि । तत्र शाब्दस्वलनमालक्ष्य मीमांसा-वार्तिके श्रीकुमारिलस्वामिना :—

“कल्पसूत्रस्मृतिग्रन्थमीमांसागृह्यकारिणः ।

शिष्टा दृष्टाः प्रयुञ्जाना अपशब्दाननेकशः ” ॥

इत्युदटङ्कि ।

एवमादिगानुगतिकन्यायेन यत्सरस्वतीसम्पादकेन पण्डित-महावीरप्रसादद्विवेदिना कविकुलगुरोर्निरङ्कुशतादर्शनाय प्रबन्ध आरब्धः स सकलः संस्कृतसाहित्यविदामप्यानन्दाय सुधापिण्डीभूतः किमुत हिन्दीभाषासाहित्यविदाम् । मन्मतेन क्रमेणोन्नतिं नीयमान-मपि हिन्दीभाषासाहित्यमद्यावधि प्रौढभावं नाधिगतम् । मन्ये सरस्वतीप्रतिच्छाये द्वित्रोऽपि प्रबन्धो यदि प्रकाश्येत तर्हि शनैः प्रकृतत्रुटिपूर्तिर्भवेदिति शिवम् ।

इसका मतलब थोड़े में सुन लीजिए—“यद्यपि आलङ्कारिकों ने काव्यों की बहुत ही सूक्ष्म समालो-चना की है तथापि विचार करने से फिर भी उनमें गुण-दोष-विवेचना की नई नई सामग्री मिल सकती है । कालिदास महाकवि थे । परन्तु इससे यह सिद्धान्त नहीं निकाला जा सकता कि उनका काव्य बिल्कुल ही निर्दोष है । उनके शिष्यों के शिष्य आलङ्कारिकों ने



खुद ही उनके दोष दिखलाये हैं । शरीर में जैसे दोष का अत्यन्ताभाव होना असम्भव है वैसेही काव्य में भी असम्भव है । युधिष्ठिर आदि शरीरधारियों में जिस तरह मिथ्यात्व आदि दोष कभी कभी देख पड़ते हैं । वैसे ही महाकाव्य-शरीर में भी दोष दिखाई देते हैं । कविकुञ्जरो ही को निरङ्कुशता शोभा देती है, टुटपुँजिए तुकबन्दों को नहीं । उन्हीं की निरङ्कुशता की आलोचना भी की जाती है । कालिदास आदि में लोकोत्तर वर्णन करने का नैपुण्य जरूर था; परन्तु उनके काव्यों से यह साबित होता है कि कभी कभी वे हाथी की जैसी तन्दा में निमग्न हो जाया करते थे । अर्थात् कहीं कहीं पर मालूम होता है, उन्होंने आँख मूँद कर कविता की है । इस तरह की निरङ्कुशता कवियों ही में नहीं पाई जाती, दर्शन-शास्त्र के कर्ताओं ने भी निरङ्कुशता दिखाई है । इसी से इन लोगों के शब्दशास्त्र-सम्बन्धी प्रमादों को देख कर, मीमांसावार्तिक में कुमारिलभट्ट ने इस विषय की शिकायत की है ।

“ इस तरह की आलोचना करना कोई नई बात नहीं । यह तो परम्परा से चली आई है । अतएव कविकुलगुरु कालिदास की निरङ्कुशता दिखलाने के लिए सरस्वती-सम्पादक ने जिस सुधासदृश लेख का आरम्भ किया है वह सर्वांश में संस्कृत-साहित्य के ज्ञाताओं के लिए भी आनन्ददायक है, हिन्दी-साहित्य के ज्ञाताओं को वह आनन्ददायक होगा—इसमें संदेह ही क्या है । मेरी राय में हिन्दी-साहित्य अभी तक प्रौढ़ता को नहीं पहुँचा; धीरे धीरे वह उन्नति जरूर कर रहा है । मेरा अनुमान है कि सरस्वती की छाया के आश्रय पर यदि दो तीन भी लेख इस तरह के निकल जायँ तो प्रकृत विषय की शनैः शनैः वृष्टिपूर्ति हो जाय ” ।

( ४ )

काशी में जो यशोविजय-जैन-पाठशाला है उसके प्रधानाध्यक्ष शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्म सूरि के सामने भारत के बड़े बड़े विद्वान् सिर झुकाते हैं । आप लिखते हैं :—

“ कालिदास की निरङ्कुशता शीर्षक लेख हमने आद्यन्त पढ़ा । यह लेख बहुत अच्छा और महत्त्वपूर्ण है । यद्यपि बहुत लोगों को इसमें कहीं बात अङ्गीकार करने में पहले संकोच अवश्य होगा परन्तु साहित्यशास्त्र में दिखलाये हुए दोषों पर वे विचारपूर्वक दृष्टि देंगे तो उन्हें भी उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा । श्रीहेमचन्द्राचार्य ने भी काव्यानुशासन-ग्रन्थ में सरस्वती-सम्पादक के उक्त खित कई एक श्लोकों को स्पष्टरूप से दोषपूर्ण बतलाया है । निःसन्देह यह लेख हिन्दी-साहित्य लिए बहुत उपयोगी और उपकारी है ” ।

( ५ )

संस्कृत-मासिक-पत्रिका “सहृदया” के सम्पादक और त्रिचनापल्ली-कालेज के प्रधान-संस्कृत-ध्यापक—

आर कृष्णामाचार्य, एम० ए० विद्यानिधि

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और कालिदास काव्यों के उत्तम ज्ञाता हैं । जिन्होंने सहृदया देखी उनसे आपका परिचय कराने की जरूरत नहीं । संस्कृत-गद्य लिखने में आप कादम्बरीकार बाण बराबरी करते हैं । इसी से आपको “अभिनव बाण” की उपाधि मिली है । आप लिखते हैं :—

“ श्रीमतां कालिदासनिरङ्कुशताविचारः प्रायेण युक्तिविधिनोति मे मानसम् ” ।

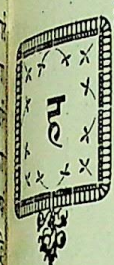
अर्थात्—आपने कालिदास की निरङ्कुशता जो विचार किया है वह प्रायः युक्तिपूर्ण है और मन को आनन्दित करता है ।

इस विषय में और भी कई विद्वानों की सतियाँ आई हैं । परन्तु स्थल-सङ्कोच के कारण उन्हें नहीं उद्धृत कर सकते । पाठक इतने ही कालिदास की निरङ्कुशता नामक लेख के उपयोगी होने का निश्चय कर सकेंगे ।



## भारत-मित्र की शिष्टता ।

मैं यह देख कर बड़ा खेद हुआ कि भारतमित्र के सम्पादक को सन्निपात रोग ने बेतरह धर दबाया है । हमों नहीं, भारतमित्र के और भी कितने ही पाठक ऐसा ही समझते हैं । और, यह समझना



ही ठीक । होली के रंगीन अङ्क के देखने से यह बात और भी पुष्ट हो गई । भारतमित्र के छबीले सम्पादक ने होली के रंगीले अङ्क में एक जगह नहीं, जगह, प्रलाप किया है । इस अङ्क की प्रायः सभी सम्पादकियाँ और लेख ऐसे हैं जिनके पढ़नेवाले को स्पष्ट विदित हो जाता है कि उनका लेखक समुच्च सन्निपाती, अतएव प्रलापी है ।

भारतमित्र के हिन्दू सम्पादक का हिन्दूपन कितना उच्च है, उनके हृदय का भाव कितना शुद्ध है, और उनका आचार कितना पवित्र है—इन सब बातों का उत्तर आपके एक ही लेख से मिल गया । होली के नाम से प्रचलित बुराइयों का समर्थन करते हुए आपने यहाँ तक लिख मारा है कि होली के दिनों में व्यभिचार करना भी अशिष्ट नहीं । पाठक इस बात से आपके सदाचार और आपकी सनातन-धर्मानुरागिता का अच्छी तरह पता लगा सकते हैं ।

कितने ही पढ़े लिखे सभ्य हिन्दू आज कल होली के अनेक दूषणों को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं । वे कहते हैं कि गाली-गलौज करना भले आदमियों का काम नहीं । होली के अवसर पर सभ्यता से भरे हुए गीतों का गाना और सुनना हिन्दू जाति के सभ्य सम्पादक कहते हैं—होली के दिनों में गाली बकें, गंदे गीत गावें, जी खोल कर बुरी बर्तन को पूर्ण करें और जो मन में आवे करें । किसी बात की रोक टोक नहीं ।

एक तो बेचारी हिन्दू जाति योंही असंख्य कुरीतियों के भार से दबी पड़ी थी, दूसरे भारतमित्र के सभ्यशिरोमणि सम्पादक ने पापकर्म का एक और भी भारी पहाड़ उसके सिर पर लादने का प्रस्ताव कर दिया । हिन्दू जाति ! अब तेरी खैर नहीं । तेरे ही सपूत तेरे जातीय त्योहारों की पवित्रता पर कलङ्क का धब्बा लगाने में अग्रसर हो रहे हैं । जब भारत के सुधाररूपी रथ को सुमार्ग पर चलाने के लिए ऐसे ऐसे हिन्दी-पत्र-सम्पादक सारथ्य करने लगे हैं तब भारत को सुधार के उच्च शिखर पर गया ही समझिए ! यदि उक्त सम्पादक की तरह हमारे देश के दो एक और पत्र-सम्पादकों की बुद्धि निर्मल हो जाय तो फिर बेड़ा पार है ।

अस्तु, पाठक, अब आपकी मधुरभाषिता और कृतज्ञता की भी बानगी देख लीजिए ।

होली की भंग के नशे की तरंग में आपने प्रयाग के इंडियन प्रेस पर भी ज़हर उगला है । मालूम होता है, आप इंडियन प्रेस से सख्त नाराज़ हैं । इतनी नाराज़गी का क्या कारण है, ईश्वर ही जाने । आप गत जनवरी के “अदीब” को ११ मार्च के दिन, सामने रख कर, बहुत कुछ अंड बंड बकने के बाद फ़र्माते हैं :—

“खैर मुसलमान लोग उर्दू के लिए जो चाहे कहें, पर इंडियन प्रेस के सञ्चालक हिन्दू होकर उर्दू की हिमायत क्यों करते हैं ? उनके प्रेस की उन्नति तो हिन्दी की ही बढ़ावत हुई है । अतएव उन्हें हिन्दी के साथ ऐसी नमकहरामी नहीं करनी चाहिए ।”

पाठक, सुना आपने ! उक्त सम्पादक ने कैसी बेतुकी हाँकी है । अदीब के सम्पादक की भूल को इंडियन प्रेस के संचालकों के सिर मढ़ना कहाँ तक न्यायसङ्गत है, पाठक इसका स्वयं विचार करें । हम अभी तक नहीं समझे कि इंडियन प्रेस ने हिन्दी के गले पर कब छुरी फेरी ? यदि इंडियन प्रेस से उर्दू का पत्र निकलनाही हिन्दी का गला घोटना है और उर्दू के पत्र निकलने से ही हिन्दी का दमघुटता



है तो भारतवर्ष में, हिन्दुओं के द्वारा कोड़ियां उर्दू-पत्र निकलने पर हिन्दी क्यों ज़िन्दा है? कितनेही हिन्दी-भाषा-भाषी उर्दू के पत्र निकालें; तब तो हिन्दी का बाल भी बाँका न हो; पर इंडियन प्रेस से “अदीब” के निकलतेही हिन्दी की जान के लाले पड़ जायँ। उर्दू के पत्र निकलने से हिन्दी को उतनी हानि नहीं पहुँचती जितनी उन लोगों के आलस्य या प्रमाद से पहुँचती है जिनकी मातृभाषा तो हिन्दी है; पर उसमें लिखना-पढ़ना वे अपनी अप्रतिष्ठा का कारण समझते हैं। हिन्दी को हानि वे लोग पहुँचाते हैं जो कहने को तो हिन्दी के सेवक बनते हैं; पर, काम पड़ने पर, दैनिक पत्र-व्यवहार तक में, हिन्दी की चोटी पकड़ कर उसको घर से बाहर निकाल देते हैं और उसके स्थान में उर्दू या अँगरेज़ी को पुचकार कर बिठाते हैं।

जिसके आँखें हैं और जिसे भगवान् ने थोड़ी सी भी बुद्धि दी है वह यह नहीं कह सकता कि इंडियन प्रेस ने कभी हिन्दी की हत्या करने की चेष्टा की है। आप अभी नशे में हैं। इसलिए आप को चाहे इस समय न मालूम हो; पर प्रायः सारा हिन्दी-संसार इंडियन प्रेस का ऋणी है। नशा उतर जाने पर आपको मालूम होगा कि सरस्वती-पत्रिका तथा अन्यान्य अत्युपयोगी हिन्दी-पुस्तकों को प्रकाशित करने के कारण, हिन्दी-भाषा-भाषी जन इंडियन प्रेस की उदारता के कितने कृतज्ञ हैं।

रही हिन्दी की बढ़ौलत धन-संग्रह और प्रेस की उन्नति की बात, सो उसका भी उत्तर सुन लीजिए।

हमको इंडियन प्रेस के संचालकों के साथ हिन्दी-पुस्तकों के लाभालाभ पर वार्तालाप करने का अनेक बार अवसर मिला है। इसलिए हमें अच्छी तरह मालूम है और हम कह सकते हैं कि अभी इंडियन प्रेस ने सर्वसाधारण के लिए प्रकाशित की गई हिन्दी-पुस्तकों की बिक्री से कुछ भी धन-संचय नहीं किया। उदाहरण के लिए—

१—रामचरितमानस को ही लीजिए। इसकी तीन हजार कापियाँ के छपाने आदि में पूरे ११ हजार

नक़द खर्च हुए थे। इसको छपे ८ वर्ष हो गये अभी एक हजार से भी ज़्यादा कापियाँ बिकने के लिए मौजूद हैं। इस हिसाब से इनके बिकने के लिए अभी कम से कम चार वर्ष और लगेंगे। पाठक स्वयं हिसाब लगा कर देखलें कि इंडियन प्रेस ने कितने तोड़े हिन्दी वालों से पेंठ लिये।

२—सरस्वती को ही देखिए। इसमें अब कई हजार का घाटा हो चुका है। अब कहीं दो दो साल से कुछ मिलने लगा है।

३—जापान-दर्पण की कुल कापियाँ बिक तो २८४५ का घाटा रहेगा।

४—सम्पत्तिशास्त्र में बाईस तेईस सौ रूप्य खर्च हुआ है। इसकी कुल कापियाँ निकल जाने पर इससे कितना लाभ होगा, आप जानते हैं? १४२॥ का।

५—शिक्षा की भी यही दशा है। हजारों लागत लगाने पर यदि इसकी कुल कापियाँ जायँ तो १०६५ की बचत हो। मूल धन का जोड़ा जाय तो वह इस बचत से कहीं ज़्यादा जायगा।

इसी हिसाब को देख कर पाठक समझ सकते कि इंडियन प्रेस ने हिन्दी-किताबों को बेच कर लाख की पूँजी जमा कर ली है। छोटी मोटी किताबों की बिक्री से जो कुछ बचा भी है वह इन पुस्तकों के घाटे में खप गया।

आप यह कह सकते हैं कि जो हिन्दी-पुस्तकें से कुछ लाभ नहीं होता तो फिर इंडियन प्रेस के संचालक क्यों हिन्दी-पुस्तकें प्रकाशित करते हैं? इसके उत्तर में हम इतना ही कह सकते हैं कि इंडियन प्रेस के संचालकों की सच्ची हिन्दी-हितैषी ही उन्हें इस काम में प्रवृत्त कर रही है। हमने उनसे एक दिन यह प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया कि जो कहा वह सुनने लायक है। वे बोले—“हम बात को जानते हैं कि अभी हिन्दी के पाठकों की उपयोगी और बड़ी पुस्तकों को खरीदते हैं। पर हम जी से चाहते हैं कि हिन्दी



संख्या ४ ]

उपयोगी पुस्तकों की संख्या बढ़े । इसलिए, चाहे हमें ऐसी पुस्तकों छाप कर कितना ही घाटा न उठाना पड़े, हम अपना उद्योग बराबर जारी रखेंगे । हानि सह कर भी हम हिन्दी में उपयोगी पुस्तकों प्रकाशित करना अपना कर्तव्य समझते हैं ।”

पाठक, अब आपही बतलाइए कि इन शब्दों से इंडियन प्रेस के संचालकों की हिन्दी-हितैषिता सिद्ध होती है या हिन्दी की हितैषणा में सन्देह उत्पन्न होता है । इन्हों को भारतमित्र कहता है कि ये हिन्दी के साथ नमकहरामी कर रहे हैं !

हमारी समझ में तो इंडियन प्रेस के परमोदार संचालकों ने हिन्दी का जितना उपकार किया है उतना उपकार अभी उन लोगों से भी नहीं बन पाया जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जो रात दिन हिन्दी के लिए गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाया करते हैं । इन दस वर्षों के भीतर इंडियन प्रेस या सरस्वती ने हिन्दी में जो युगान्तर उपस्थित कर दिया है—हिन्दी की जो काया पलट कर दी है—उसको सारा हिन्दी-संसार जानता है । हमारे कहने की आवश्यकता नहीं ।

हमें खेद है कि भारतमित्र के सम्पादक ने वे सब बूझ, नादानों से, इंडियन प्रेस के संचालकों को वे अभद्र शब्दों से याद किया । हम इसे उक्त सम्पादक की कृतघ्नता के सिवा और कुछ नहीं कह सकते । यदि वे होली में अपने सिद्धान्तानुसार जल जल्य मानस-वृत्ति को पूर्ण करने में मतवाले हो जाते तो इस तरह की बातें उनके मुँह से कभी न निकलतीं । भारतमित्र के अबोध सम्पादक ने याद किया है उस शब्द की उनमें पूरी पात्रता है पर भी, हम उनके लिए ऐसे असम्बोधित शब्द प्रयोग करना अपने सिद्धान्त के विरुद्ध समझते हैं ।

रामजीलाल शर्मा ।

## विविध विषय ।

### १—देवनागरी वर्णमाला का त्रुटि-निवारण



त फरवरी की सरस्वती में देवनागरी लिपि के प्रचार के सम्बन्ध में जो लेख प्रकाशित हुआ है उससे पाठकों को विदित हुआ होगा कि माननीय मिस्टर कृष्णस्वामी आइयर की राय में इस वर्णमाला में कुछ त्रुटियाँ भी हैं । उनका कथन है कि अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी और तामील-तैलङ्गी आदि कई भाषाओं के कुछ उच्चारण इस लिपि द्वारा ठीक ठीक नहीं व्यक्त किये जा सकते । पाठकों के पूर्व परिचित “बार्हस्पत्यजी” की भी यही राय है । बार्हस्पत्यजी कैसे विद्वान् हैं यह बात उनके लिपि-सम्बन्धी लेख से अच्छी तरह जानी जा सकती है । १९०८ ईसवी की सरस्वती में उनके तीन लेख देवनागरी लिपि के विषय में निकले हैं । उन्होंने अपने तीसरे लेख में, जो दिसम्बर १९०८ की सरस्वती में निकाला है, इस त्रुटि का बड़ा ही योग्यतापूर्ण विचार किया है । अँगरेज़ी, फ़ारसी और अरबी भाषाओं के उच्चारण-विशेषों के द्योतक कई नये वर्णों की सृष्टि भी उन्होंने की है । उनके आकार भी पूर्वोक्त लेख में दिये गये हैं—यहाँ तक कि इबारत में उनका प्रयोग भी दिखलाया गया है । बार्हस्पत्यजी के उस लेख को माननीय कृष्णस्वामी देख कर यह निश्चय कर सकते हैं कि उन नवोद्भूत वर्णों से इस लिपि की त्रुटि किसी अंश में दूर हो सकती है या नहीं । हमारी राय में तो अरबी, फ़ारसी और अँगरेज़ी की सब प्रकार की अतिरिक्त ध्वनियों का समावेश इन नये वर्णों में हो जाता है । रही तामील और तैलङ्गी आदि द्रविड भाषाओं की लिपियों से सम्बन्ध रखनेवाली त्रुटियाँ, तो उनका दूरीकरण कृष्णस्वामी महोदय खुद ही कर सकते हैं या अपने प्रान्त के किसी विद्वान् से करा सकते हैं ।



## २-सन् १९०६-१० में प्रकाशित

## पुस्तकें आदि ।

इन प्रान्तों की गवर्नमेंट ने अपनी १९०९-१० की शासन-सम्बन्धिनी रिपोर्ट जो प्रकाशित की है उसमें लिखा है कि गत वर्ष कुल १९८८ पुस्तकें प्रकाशित हुईं—अर्थात् १९०८-९ की अपेक्षा ५३५ पुस्तकें अधिक निकलीं। सामयिक पुस्तकों की संख्या पहले से दूनी हो गई, पर धार्मिक पुस्तकों में बड़ी कमी रही। इससे सूचित हुआ कि इन प्रान्तों के निवासियों की प्रवृत्ति धार्मिक पुस्तकें लिखने और प्रकाशित करने की तरफ इस वर्ष विशेष नहीं रही। उर्दू में कम पुस्तकें निकलीं, अँगरेजी और हिन्दी में अधिक। गवर्नमेंट की राय है कि आर्य-समाज की पुस्तकों में तीक्ष्णता की मात्रा अधिक थी। नाभा-दास का भक्तमाल नामक ग्रन्थ अच्छा निकला। हाफिज और नेपाल के सर जङ्गबहादुर के जीवन-चरित ही इस प्रकार के ग्रन्थों में नाम लेने योग्य समझे गये। मौलवी शिबली नेमानी का फ़ारसी कविता का इतिहास, और बाबू दीनेशचन्द्र सेन का वङ्गभाषा और साहित्य नामक ग्रन्थ भी प्रशंसनीय हुए। कविता के ग्रन्थ अच्छे नहीं निकले। नाटक भी कोई अच्छे नहीं निकले। सम्पत्तिशास्त्र और रसायनशास्त्र पर एक एक पुस्तक निकली। पर गवर्नमेंट की राय है कि इन पुस्तकों के लेखकों के “स्वदेशी” विचारों ने इनके महत्त्व को कम कर दिया। मालूम नहीं, इन पुस्तकों के पढ़नेवालों की भी यही राय है या और कुछ। समाचारपत्रों और सामाजिक पुस्तकों की संख्या ११४ से १२३ हो गई। इनमें से उर्दू के ६७ हिन्दी के ४२ और अँगरेजी के ९ पत्र और पुस्तकें थीं। अवशिष्ट पुस्तकें अरबी-उर्दू, अँगरेजी-उर्दू और रोमन की थीं। इकतीस पत्र नये निकले। उनमें १५ हिन्दी के थे। इस तालिका से मालूम हुआ कि हिन्दी को अपेक्षा उर्दू में अधिक पत्र निकले। हिन्दी के लिए यह दुर्भाग्य की बात है।

## ३-तुलसीदास और शेख सादी ।

गत सितम्बर के हिन्दुस्तान रिव्यू में एक लेख निकला है। उसमें यह दिखलाया गया है कि तुलसीदास के रामचरितमानस में शेख सादी की कविता के बहुत से भाव पाये जाते हैं, यहाँ तक कि शायद किसी किसी उक्ति का तुलसीदास ने पूरा अनुवाद करके अपने काव्य में रख दिया है। लेख की एक भी समालोचना किसी हिन्दी पत्र पर निकली हुई हमारे देखने में नहीं आई। जिन लेखों ने “कालिदास की निरङ्कुशता” का एक एक अक्षर, निःसार और विचार विरहित समझा उनको तुलसीदास के द्वारा सादी की उक्तियों को चुराया जाना शायद अत्यन्त प्रामाणिक जाना जा सकता है! तुलसीदास ने संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों को अवश्य सहायता ली है। इस बात को उन्होंने स्वीकार भी किया है। तुलसीदास के काव्य में प्राचीन कवियों के भावों का प्रतिबिम्ब जगह जगह मिलता है। इस विषय का एक लेख सरस्वती शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। उसमें विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव वाले पद्य भी दिये जायेंगे। परन्तु हमारे अल्प बुद्धि के अनुसार तुलसीदास ने शेख सादी की पुस्तकों से सहायता नहीं ली। दो कवियों के भावों का लड़ जाना इसका सबूत नहीं। उर्दू, अँगरेजी, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक और अरबी तक में पद्य मिलेंगे जिनका भाव तुलसीदास की कविता में पाया जाता है। पर इससे यह सिद्ध नहीं कि तुलसीदास ने इन भाषाओं के ग्रन्थों को देखकर रामचरितमानस लिखा है।

## ४-सीता-स्वयंवर-सम्बन्धिनी एक शङ्क

ठाकुर शङ्करसिंह की धर्मपत्नी मुरादाबाद लिखती हैं :—

सीता के स्वयंवर में सब द्वीपों और देशों के राजा निमन्त्रित हुए थे। परन्तु क्या राजा जहाँ ने अयोध्या के महाराज दशरथ को निमन्त्रण दिया था। रामचन्द्र स्वयंवर में गये थे, जहाँ



संख्या ४ ]

वे निमन्त्रित होकर न गये थे । वे विश्वामित्र के साथ  
बोली गये थे, जैसे द्रौपदी के स्वयंवर में पाण्डव  
पूछते फिरते पहुँच गये थे ।

स्वयंवर में रामचन्द्र के जाने का कुछ भी  
समाचार अयोध्या में कोई न जानता था । यदि  
जानता तो भरत पिता से, जनकपुर के दूतों के  
पहुँचने पर, यह न पूछते

कुशल प्रान प्रिय बन्धु दोउ अहहिँ कहहु केहि देस ।

महाराज दशरथ दूतों से कहते हैं—

जा दिन तें मुनि गये लिवाई ।

तब तें आजु साँचि सुधि पाई ॥

इससे स्पष्ट है कि दशरथ को भी रामचन्द्र के  
जनकपुर जाने की खबर न थी । विश्वामित्र दोनों  
पक्षों को ले कर जब जनकपुर पहुँचे और राजा  
उन्हें उनसे मिलने के निमित्त गये तब राम-लक्ष्मण  
में प्राचीन दोह कर जनक विश्वामित्र से पूछते हैं :—

कहु नाथ सुन्दर दोउ बालक ।

मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुल-पालक ॥

इससे यह विदित होता है कि जनक भी उन्हें  
उस समय तक न जानते थे कि ये कौन हैं । तभी  
विश्वामित्र ने—

रघुकुल-मनि दसरथ के जाये ।

मम हित लागि नरेस पठाये ॥

यह कह कर उनका समाधान किया ।

महाभारत तथा और पुराणों से जाना जाता है

कि सब राजाओं को स्वयंवर का निमन्त्रण दिया

गया था और राजा लोग अन्य यज्ञों के समान

स्वयंवर में भी सम्मिलित होते थे । जब काशिराज

की अग्न्या, अम्बिका और अम्बालिका इन तीन

राजा विचित्रवीर्य छोटे थे । इससे भीष्म उनके

अपत्य, इसका क्या कारण था कि महाराज

स्वयंवर के विवाह-योग्य पुत्रों को स्वयंवर में जाने

नहीं भेजा ।

## ५—चीन के समाचार-पत्र ।

चीन को समाचारपत्रों का जनक कहना चाहिए ।  
६१८ ई० में पहले पहल वहाँ इनका प्रचार हुआ ।  
राज-दरबार-सम्बन्धी समाचार कुछ लोग एक  
कागज़ पर लिख कर उसे तख्ते पर चिपकाते थे । फिर  
उसे पेकिन शहर में गली गली दिखाते फिरते थे ।  
सर्वसाधारण से जो कुछ उन्हें मिल जाता था उसी  
पर वे बसर करते थे । धीरे धीरे मुख्य मुख्य समा-  
चार छाप कर बाँटे जाने लगे । इस तरह, कुछ  
समय बाद, पेकिन-गज़ट का जन्म हुआ । यह पत्र  
दुनिया के सब पत्रों में पुराना है । बड़े बड़े २० सफ़ों  
में यह अब तक निकलता है । चीन में पादरियों का  
प्रवेश होने पर समाचार-पत्रों की विशेष उन्नति हुई ।  
कितने ही नये नये पत्र और पुस्तकें निकलने लगीं ।  
उनकी देखा देखी चीनियों ने भी अपने अखबार जुदा  
निकाले । बाक्सर-विद्रोह के बाद तो समाचारपत्रों  
का तूफ़ान सा आया । चीन-राज्य के प्रधान प्रधान  
नगरों से सैकड़ों पत्र निकल पड़े । अब, आज कल,  
यह हाल है कि अकेले शांहाई से आठ दैनिक पत्र  
निकलते हैं । हाँ—काऊ से तीन निकलते हैं, टॉटसिन  
से पाँच, पेकिन से भी पाँच, और फूचू से दो । साप्ता-  
हिक पत्रों की तो कुछ गिनती ही नहीं । मासिक पत्रों  
की संख्या तो हजारों तक पहुँची है । पर भारत  
वेचारा इस बात में चीन से भी पीछे पड़ा हुआ है !

## ६—अद्भुत जलवृक्ष ।

पेरू देश में एक बड़ा ही अद्भुत वृक्ष होता है ।  
उससे जल-वृष्टि हुआ करती है । उसका तना बहुत  
मोटा होता है । डालियों और पत्तियों की भी उसमें  
बड़ी अधिकता रहती है । उसमें यह बड़ा ही विलक्षण  
गुण है कि वायुमण्डल में जो नमी रहती है—पानी  
के काम जो उसमें रहते हैं—उसे वह वृक्ष खींच कर  
अपनी पत्तियों में भर देता है । जब गरमी का मौसम  
आता है और पानी की बहुत कमी होती है तब यह  
वृक्ष अपने सञ्चित जल को पत्तियों से बरसाने  
लगता है । उस समय इससे इतना पानी गिरता है



कि इसके नीचे पानी ही पानी देख पड़ता है। इस पानी के छोटे छोटे नाले बह निकलते हैं। यदि वे सब किसी गहरी जगह काट दिये जायँ तो बड़े बड़े तालाब हो जायँ और उनसे हजारों बीघे फसल सोंची जा सके। हर वृक्ष से चौबीस घंटे में आठ नौ गैलन पानी टपकता है। इस तरह के लाखों वृक्ष पेरू में हैं। उनसे अनन्त जल-राशि नीचे ज़मीन पर आती है। अब इस पानी को जगह जगह पर इकट्ठा करने और उससे सोंचने का काम लेने का विचार हो रहा है।

### ७—पोलोनियम नामक एक नया पदार्थ।

पाठकों ने रेडियम के सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ा होगा और उसके अद्भुत गुणों का वर्णन भी सुना होगा। अब उससे भी अधिक अद्भुत एक और चीज़ का पता लगा है। उसका नाम है पोलोनियम। आधी छटाँक रेडियम में इतनी शक्ति है कि वह कोई तीन लाख मन वज़न पृथ्वी की सतह से एक मील ऊपर फेंक सकती है। यदि ग्यारह छटाँक रेडियम मिल सके तो उसकी शक्ति से तीन लाख चौबीस हजार मन वज़नी जहाज़ छः हजार मील तक समुद्र में बड़े वेग से दौड़ाया जा सके। इंजिन में कोयला, तेल या और कोई ईंधन जलाने की ज़रूरत न पड़े। यदि कहीं इतनी पोलोनियम मिल जाय तो यही जहाज़ कोई पच्चीस लाख मील तक दौड़ाया जा सके। एक टन सत्ताईस मन का होता है। और, बड़े जहाज़ को चलाने के लिए फ़ी मील एक टन कोयला खर्च होता है। अतएव ग्यारह छटाँक पोलोनियम कोई पच्चीस लाख टन कोयले के बराबर हुई !!!

### ८—हिन्दू शब्द की उत्पत्ति।

पण्डित लक्ष्मण गोविन्द आठले लिखते हैं:— महाराष्ट्र देश में विनायक काशिनाथ राजवाड़े एक प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता हैं। उन्होंने हिन्दू शब्द पर केसरी में एक लेखमाला निकाली है। उनकी राय है कि पुराने ज़माने में भारत के नौ विभाग थे और उसके पश्चिमोत्तर-प्रदेश का नाम इन्द्रद्वीप था।

विष्णुपुराण के दूसरे अंश का दूसरा अध्याय इस बात का प्रमाण है। इन्द्रप्रस्थ इसी इन्द्रद्वीप का एक प्रधान नगर था। पश्चिमी देशों के निवासियों ने पहले पहल इसी इन्द्रद्वीप का नाम सुना था। हिन्दू इसी इन्द्र का अपभ्रंश है। इन्द्रदीअ इन्द्रअ और इंडिया आदि शब्द भी इसी के रूपान्तर हैं। हिन्दू इसी पूर्वोक्त हिन्द की बँदालत बना है।

### ९—नये तारघर।

बिना तारों की सहायता के तार-समाचार भेजने के लिए मारकोनी साहब ने जो नई ईजाद की उसका हाल पाठक जानते ही हैं। भारत में भी अब इसका प्रचार होनेवाला है। भारत-सरकार ने कलकत्ता, एलाहाबाद, शिमला और दिल्ली के दरमियाँ वे तार की तारबर्क़ी जारी करने के लिए मारकोनी कम्पनी को ठेका दिया है। इस काम में कोई सात लाख रुपये खर्च होंगे। दिल्ली-दरबार के समस्त तारों तक ये नये तारघर तैयार हो जायँगे। इनके द्वारा अभी केवल सरकारी तार जायँगे।

### १०—पण्डित प्यारेलाल मिश्र का स्वदेशीय

सरस्वती-पाठकों के परिचित पण्डित प्यारेलाल मिश्र कोई तीन वर्ष बाद विलायत से बैरिस्टर होकर फिर स्वदेश को लौट आये। हमारे शिक्षितसमुदाय में बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्हें हिन्दी से शौक हो जो पहले कुछ शौक रखते भी हैं वे भी वकील-बैरिस्टर होते ही, अथवा किसी अच्छे पद पर पहुँचते ही हिन्दी से नफ़रत सी करने लगते हैं। परन्तु मिश्र जी ऐसे नहीं। आप उन अत्यल्प-संख्यक सत्पुरुषों में हैं जो हिन्दी लिखना और पढ़ना अपना काम समझते हैं। आपकी सरस्वती पर विशेष दया इस संख्या में भी आपका एक लेख है।

### ११—कोटला के रईस, ठाकुर उमरावसिंहजी

का परलोकगमन ।

आगरे के ज़िले में एक जगह कोटला है। के नामी रईस ठाकुर उमरावसिंहजी का प्रयाण



सरस्वती



पण्डित व्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर—एट—ला ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



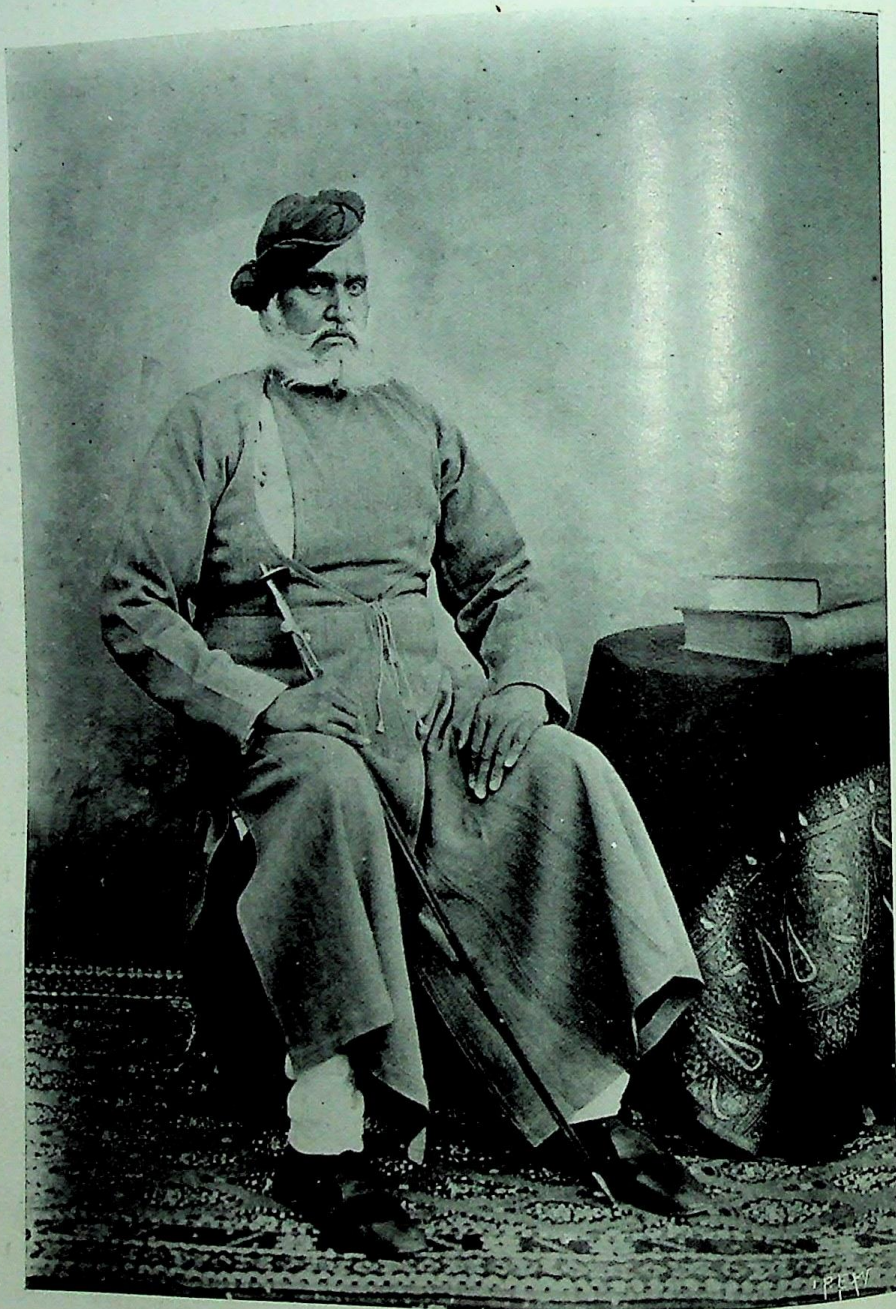








# सरस्वती



कोटला के रईस, ठाकुर उमरावसिंहजी ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



गत ३० दिसम्बर को परलोकवास हो गया। आप बहुत दिन से बीमार थे। पर, चल फिर सकते थे। प्रयाग आप नुमायश देखने गये थे। वहीं आप का शरीर छूट गया। उम्र आपकी कोई ६४ वर्ष की थी। आप बड़े उत्साही, बड़े गुण-ग्राही, बड़े विद्या-प्रेमी थे। आगरा प्रान्त के क्षत्रियों के आप नेता थे। अँगरेजों, फ़ारसी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत—इन सब भाषाओं में आपकी गति थी। राजकीय कामों में आप विशेष प्रवीण थे। कोई दस वर्ष तक आप जयपुर के स्टेट-कौंसिल के मेम्बर थे। आगरे का राज-पूत-बोर्डिंग-हाउस और राजपूत-हाई स्कूल आपही की कृपा, अथर्वसाय, उदारता और स्वजाति-हितैषण का फल है। आपने अपने पुत्रों और भतीजों को उच्च शिक्षा दिला कर उन्हें सब प्रकार सुयोग्य बनाने में कोई कसर नहीं की। आनरेबिल ठाकुर कुशल-लालसिंह, एम० ए०, एल० एल० बी० आपके सबसे बड़े पुत्र हैं। आप इन प्रान्तों के लाट की कौंसिल के मेम्बर हैं। वहाँ आप बड़ी योग्यता से अपना कर्तव्य-पालन कर रहे हैं। पाठकों को याद होगा, कुछ दिन हुए, हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में भाषा और विषय आदि के परिवर्तन के विषय में जो विचार कौंसिल में हुआ था वह इन्हीं के प्रयत्न और प्रश्नों का शुभंकर परिणाम था।

## पुस्तक-परीक्षा ।

१—साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण। काशी में जो हिन्दी-साहित्य सम्मेलन हुआ था उसके कार्य-विवरण का यह दूसरा भाग है। सम्मेलन में जो लेख और कविताएँ उपस्थित की गई थीं उनका यह संग्रह है। आरम्भ के साँच की १५० पृष्ठों की पुस्तक है। जो उत्तमता से छपी गई है। दाम १२ आने हैं। ना० १० सभा, काशी, से मिलती है। सब मिला कर २२ लेख और कविताएँ इसमें हैं। हिन्दी-भाषा, हिन्दी-साहित्य और देवनागरी लिपि आदि से सम्बन्ध रखने वाली अनेक ज्ञातव्य बातों का विचार इस लेखमा-

लिका में किया गया है। पण्डित गौरीशङ्कर हीरा-चन्द्र ओझा का—“वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति” और पण्डित केशवदेव शास्त्री का “देवना-गरी लिपि”—ये दो लेख सचित्र हैं। ये दोनों लेख बड़ी योग्यता के हैं। अन्य लेख भी सब अपने अपने विषय के अच्छे हैं। पर उपयोगिता की दृष्टि से बाबू गोपालराम का लिखा हुआ—“नाटक और उपन्यास” नामक लेख सबसे बढ़ कर है। इस लेख में नाटक और उपन्यास के असली उद्देश, उनकी सिद्धि के उपाय और वर्तमान हिन्दी-नाटकों और उपन्यासों के दोष दिखलाये गये हैं। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी के “हिन्दी-साहित्य” नामक लेख में बाबू गदाधरसिंह की अनुवादित कादम्बरी और लाला सीताराम के अनुवादित रघुवंश में दोषोद्घा-वनाये की गई हैं। बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह ने अपने “हिन्दी-भाषा” नामक लेख में लिखा है—“हिन्दी की पुरानी किताबों के अच्छे संस्करणों का बड़ा अभाव इस समय है। अँगरेजी चाल के संस्क-रण हैं ही नहीं। काव्य-ग्रन्थों की आलोचना सहित टीका हुई ही नहीं”। बाबू साहब को शायद मालूम नहीं कि पुराने काव्यों की आलोचना करना हिन्दी में मना है। आलोचना में यदि वे केवल गुणों का उल्लेख करना चाहें तो खुशी से कर सकते हैं। अस्तु। यह “कार्यविवरण” बहुत अच्छी और उपादेय पुस्तक है।

२—वैद्यक गाइड का नमूना। व्यावर, राजपूताने, के आयुर्वेद पंचानन, व्यास पूमनचन्द तनमुख वैद्य ने इसे तैयार किया है। इसमें प्राचीन ग्रन्थों में लिखी हुई सब प्रकार के ज्वरों की ओषधियों के नाम, गुण के अनुसार, लिखे गये हैं और उनका पता लगाने के लिए ग्रन्थों के हवाले भी दिये गये हैं। वैद्यजी इसी नमूने के अनुसार वैद्यक-सम्मेलन से एक “वैद्यक गाइड” बनवाना चाहते हैं। उद्देश अच्छा है।

✽

३—पुस्तक-चतुष्टय। पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, सम्पादक सुधानिधि इलाहाबाद ने (१) भारत में हुए



(२) पुरुषोत्तम चरित्र (३) आयुर्वेद का महत्त्व और (४) शङ्कर चरित—ये चार पुस्तकें कृपा करके भेजी हैं। दूसरी में परलोकवासी महन्त श्रीपुरुषोत्तमानन्द गिरि का और चौथी में पण्डित शङ्कर दाजी शास्त्री पदे का सचित्र और संक्षिप्त जीवन-चरित है। पहली और तीसरी पुस्तक का विषय नाम ही से स्पष्ट है, सब पुस्तकें अच्छी हैं। दाम पहली का दो आने और शेष तीनों का एक एक आना है। पूर्वोक्त शुक्रजी को लिखने से सब पुस्तकें मिल सकती हैं।

✽

४—हितकारिणी। इस नाम की एक मासिक पत्रिका नवंबर १९१० से जबलपुर से निकलने लगी है। हर महीने इसमें सरस्वती की माप के कोई ३२ पृष्ठ रहते हैं। अब तक जो तीन अंक इसके निकले हैं उनमें दो दो चित्र भी हैं। इसके सम्पादक पण्डित रघुवरप्रसादजी द्विवेदी, बी० ए० हैं। वार्षिक मूल्य ३ रुपये है। इसमें जो लेख निकलते हैं यद्यपि विशेष करके विद्यार्थियों ही के लिए होते हैं तथापि और लोगों का भी उनसे यथेष्ट मनोरञ्जन हो सकता है। अब तक सब लेख अच्छे और लाभदायक निकले हैं। खबरें भी इसमें चुनी चुनी रहती हैं। विद्या और विज्ञान-सम्बन्धी बातों पर लेख और नोट अधिकता से रहते हैं। पत्रिका सचमुच ही हितकारिणी है।

✽

५—सफलता के सिद्धान्त। संग्रहकार पण्डित महेन्दु-लाल गर्ग। मथुरा की सुखसंचारक कम्पनी से प्राप्त। पृष्ठ-संख्या ४५। मूल्य चार आने। भिन्न भिन्न विषयों से सम्बन्ध रखने वाली सफलता के सिद्धान्तों का इसमें दिग्दर्शन है। यह दिग्दर्शन सूत्ररूप है। पर है बहुत अच्छा। एक एक बात लाख लाख रुपये की है।

## चित्र-परिचय ।

( १ )

इलाहाबाद की नुमायश में जो हवाई जहाज उड़ते रहे हैं उनमें से एक कुछ बड़ा है, जो आकाश

में अधिक ऊँचा उठता और उड़ता है। दूसरा कुछ छोटा है और बहुत ऊँचा नहीं जाता। छोटे का नाम मोनो-प्लेन है, बड़े का बाई-प्लेन। बड़े जहाज के चलानेवाले एक फ्रांसीसी साहब थे। उनका नाम है मि० पिकेट। उसी जहाज को, १९ फ्रांसीसी के दिन, पहले पहल डाक ले जाने का सामान प्राप्त हुआ। उस दिन दर्शकों की बड़ी भीड़ थी। शाम के पाँच बजे दर्शनी से डाक लेकर यह नैनी पहुँचा। उसी बड़े हवाई जहाज का एक चित्र इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है।

( २ )

इस संख्या में १७ धर्मोपाचार्यों का एक चित्र छपा गया है। यह चित्र वृन्दावननिवासी श्रीगुरु राधाचरण गोस्वामी का भेजा हुआ है। इसके बगल वाले श्रीयुक्त गोस्वामी बालकृष्णजी हैं। उन्होंने असली चित्र का यह प्रतिविम्ब है।

## चित्रावली ।

- ( १ ) सुलोचना का चितारोहण ( रंगीन ) ...
- ( २ ) अलौकिक शिशु-गायक, मास्टर मदन ...
- ( ३ ) ईजिप्ट के प्राचीन निवासी और उनके लेख ...
- ( ४ ) कारनाक के प्राचीन स्तम्भ ...
- ( ५ ) रोम का सेंट पीटर नामक गिरिजाघर ...
- ( ६ ) हवाई जहाज—जो प्रयाग की प्रदर्शनी में डाक लेकर उड़ा था ...
- ( ७ ) खान-बहादुर, शम्सुल-उल्मा, मौलवी महम्मद जकाउल्ला ...
- ( ८ ) दुष्यन्त और शकुन्तला ...
- ( ९ ) महाराज रणजीतसिंह ...
- ( १० ) पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बारिस्टर-एट-ला ...
- ( ११ ) कोटला के रईस ठाकुर उमरावसिंह ...
- ( १२ ) सप्तदशाचार्य ...

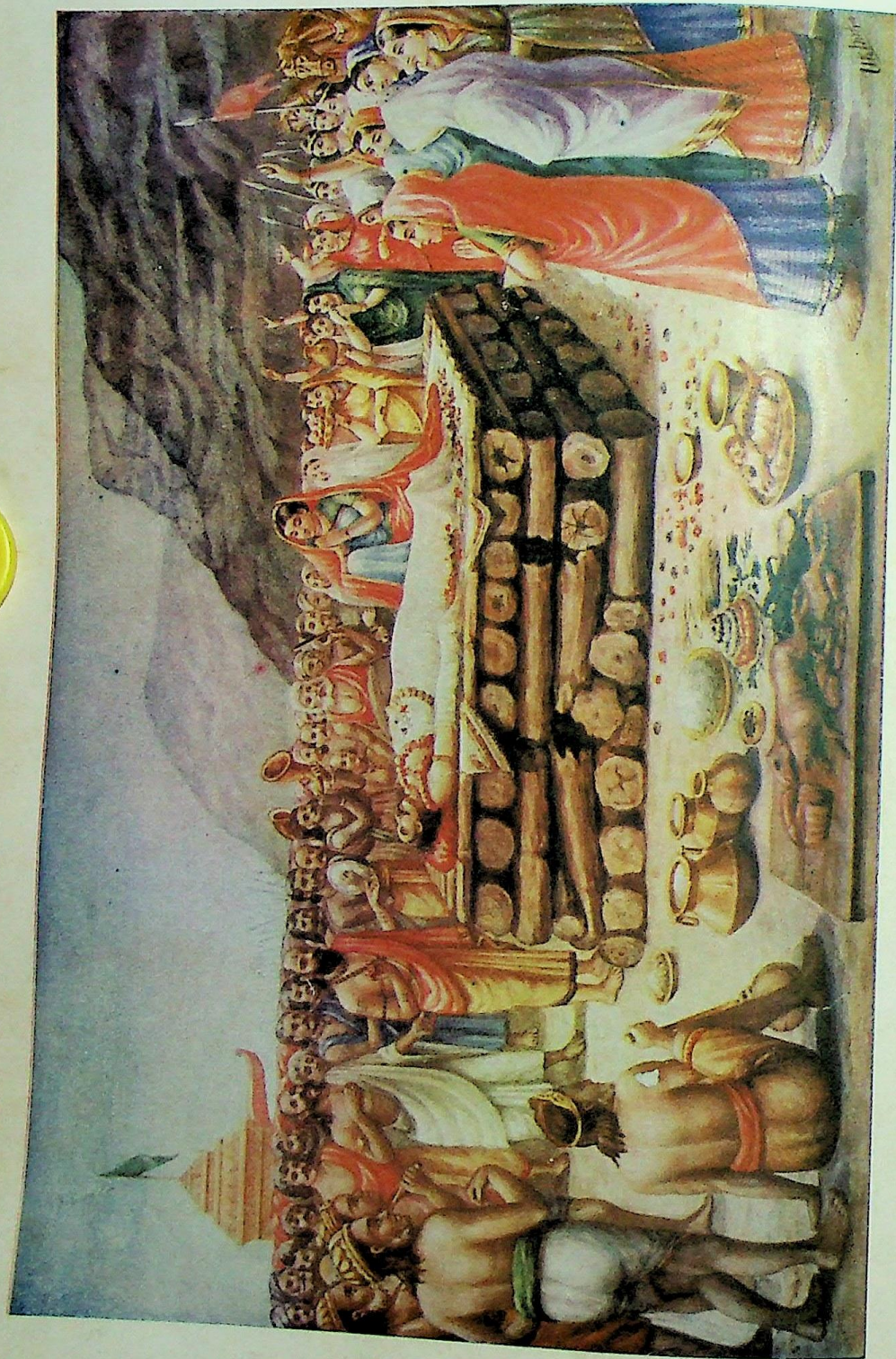


भाग ११  
सरा कु  
छोट  
इ जहा  
। उज  
१९ प्रवि  
सौभाग  
भीड़  
यह  
एक वि

एक वि  
मि श्रोत  
के वन  
। उन्ही

) ...  
न...  
लेख  
...  
र...  
शैली  
...  
लवी  
...  
...  
...  
ट-ला  
इ ...  
...





सुलोचना का वितरोहण ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





आचार्य

काई चेतन्य

बुद्ध

जोसेफ़स्ट

ईसू काइस्ट

यसनीइतपक

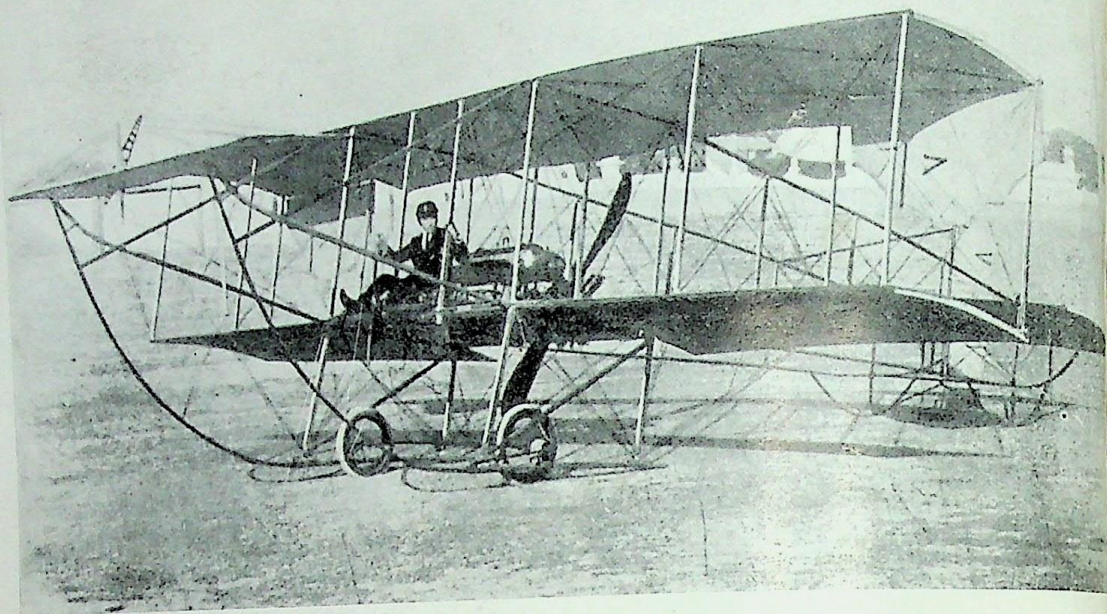
आदिनाथ

मोनेज़

मोइमद

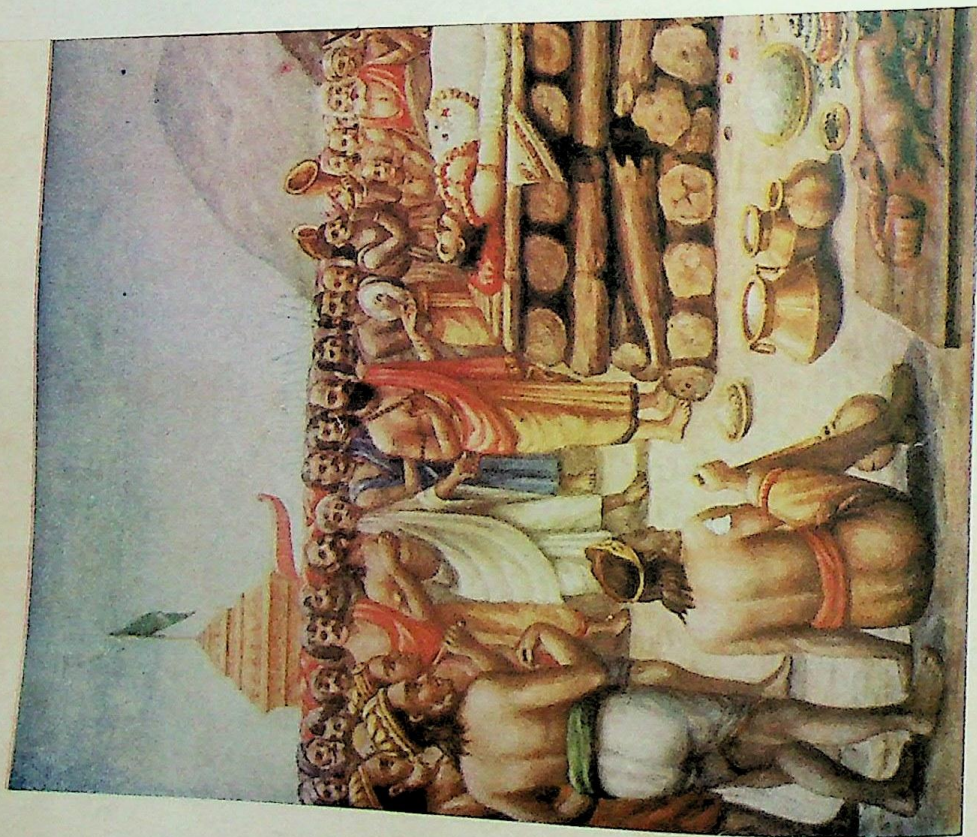
महात्मा गांधी





हवाई जहाज़—यह प्रयाग की प्रदर्शिनी में उड़ा था ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



सुलोचना का चितारे

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



# सरस्वती



रामकृष्णदेव दयानन्द सरस्वती नानक शक्त  
 वल्लभाचार्य निम्बाकार्यार्य माधवाचार्य रामानुजाचार्य शङ्कराचार्य  
 गार्ड चैतन्य बुद्ध ज़ोरोएस्ट्र मोजेज़ ईसू काइस्ट  
 मोहम्मद एममोइन्नोव

( शिवरात्री सायंकाल १८८१ )

समस्त धर्माचार्य





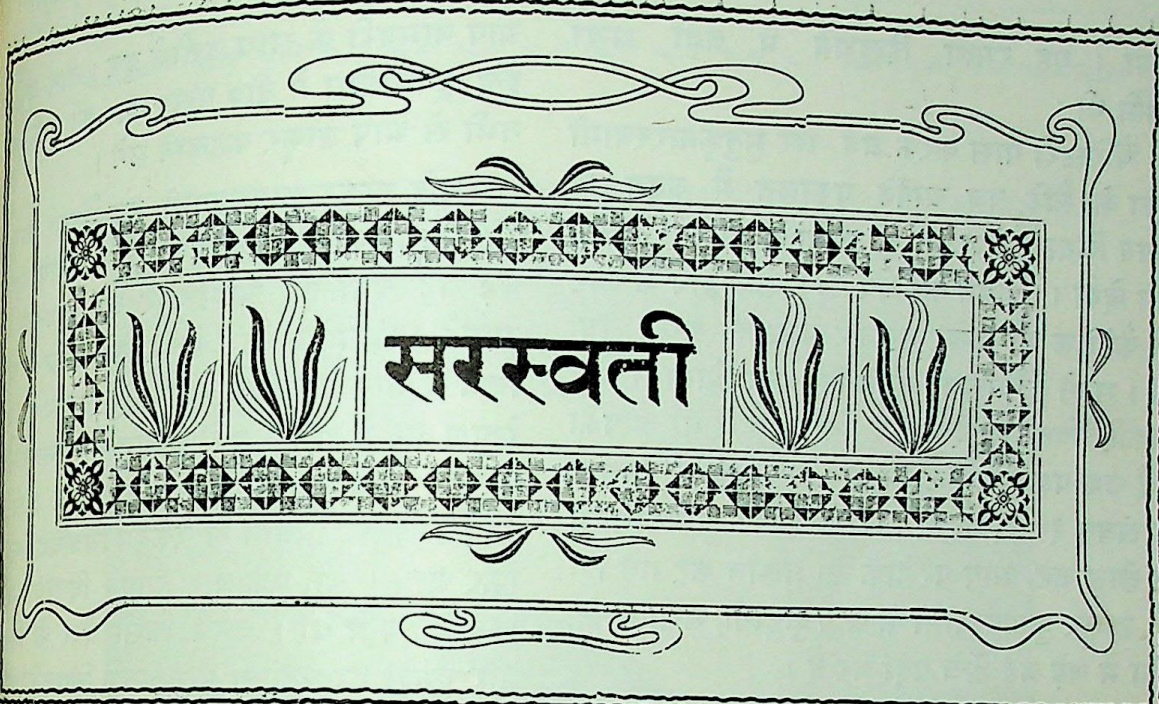
भाग १२

डाक्टर

डा

मनो की क  
अधिष्ठित  
आपने बड़  
करकार नह  
आप व  
को दे  
मिती से  
लिए ।





# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ]

१ मई, १९११—वैशाख शुक्ल ३, १९६८ ।

[ संख्या ५ ]

डाक्टर आनन्द के० कुमारस्वामी ।

पूर्वज और जन्मभूमि ।

डाक्टर कुमारस्वामी के नाम से प्रायः सभी शिक्षित-समुदाय परिचित होगा। सभी नहीं, तो अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों में से तो बिरला ही कोई ऐसा होगा जिसने आपका नाम न सुना हो। प्रयाग की प्रद-  
 र्भा की कमेटी ने आपको बुलाकर चित्रकला-भवन में अधिष्ठाता नियत किया था। चित्रविद्या की परीक्षा आपने बड़ा नाम पाया है। यद्यपि आप बहुत बड़े नामकार नहीं हैं, तथापि चित्राङ्गण-विद्या के मर्मों को आप बहुत ही अच्छी तरह जानते हैं। आप लोगों को देख कर उनके गुण-दोषों की परीक्षा बड़ी आसानी से करते हैं। आपका संक्षिप्त परिचय

मद्रास-प्रान्त में तांजोर नामक एक नगर है। कोई तीन सौ वर्ष हुए वहाँ से भल्लाल जाति का एक परिवार लंका में जा बसा। भल्लाल तामिल जाति का ही भेद है। उक्त जाति में खेती का काम होता था। इसलिए बहुत से लोगों की राय है कि इसकी गणना वैश्य जाति में की जानी चाहिए। पर अधिकांश लोग इस जाति को क्षत्रिय जाति बतलाते हैं। अस्तु, ये लोग जाफ़ना में जाकर खेती का काम करने लगे।

डाक्टर कुमारस्वामी के प्रपितामह बड़े माननीय और धनाढ्य ज़मींदार थे। आपके पितामह भी गुणों में अपने पिता के ही समान थे। डाक्टर कुमारस्वामी के पिता का नाम सर मुतु-कुमारस्वामी था। आप बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत गये। वहाँ आपने एक कुलीन गोरी-रमणी का पाणिग्रहण



किया। यह रमणी हिन्दूधर्म में बड़ी श्रद्धा रखती थी।

बैरिस्टरी पास करके जब सर मुतुकुमारस्वामी लंका को लौटे तब आपने वकालत में बहुत धन संचय किया। देशहित के कामों में भी आपने बड़ा योग दिया। आपने कई वर्ष तक लंकाद्वीप के लाट की कौंसिल का मेम्बर रह कर प्रजा की अच्छी सेवा की। सुनते हैं, आपकी नीति-निपुणता, योग्यता और लोकहितैषिता को देख कर विलायत में भी आपको कोई उच्च पद मिलने वाला था। पर, खेद की बात है कि संवत् १९३६ में, तीन वर्ष के बालक कुमारस्वामी को छोड़ कर, आप परलोक को प्रस्थान कर गये।

डाकूर कुमारस्वामी के अन्य कुटुम्बो, चचा आदि, लंका में बड़े बड़े ऊँचे पदों पर हैं।

### जन्म और बाल्यावस्था।

डाकूर कुमारस्वामी का जन्म विक्रमाब्द १९३४ में लंका में हुआ था। इनके पिता के परलोक-गमन के बाद इनकी माता ने इनको विलायत ले जाकर ही शिक्षित करना उचित समझा। इसलिए तीन वर्ष का शिशु कुमारस्वामी लंदन जा पहुँचा। बड़े होने पर आपकी माता ने आपको कालेज भेजा। पढ़ने में आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। खेल-कूद से आपको बड़ी नफरत थी। इसलिए पढ़ने से जो समय मिलता था उसमें ये पहाड़ियों पर चढ़ जाते थे और वहाँ अकेले भूगर्भ-विद्या और वनस्पतिविद्या की खोज में लगे रहते थे। इन्हीं विषयों से इन्हें बड़ा प्रेम था। इन्हीं का ये अध्ययन भी करते थे।

### विश्वविद्यालय में अध्ययन-काल।

स्कूल की पढ़ाई पूरी करके कुमारस्वामी ने उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए लंदन के विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। आपने अपनी कुशाग्रबुद्धि और विद्वत्ता से वहाँ कई छात्रवृत्तियाँ पाईं। संवत् १९५९ में आपने बी० एस० सी० की परीक्षा पास की। इसमें आप प्रथम कक्षा में रहे। बड़ा नाम पाया। वनस्पतिविद्या और भूगर्भविद्या की परीक्षाओं में भी

आप नामवरी के साथ उत्तीर्ण हुए। तीन वर्ष इन्हें भूगर्भविद्या में डी० एस० सी० की सनद मिली तभी से आप डाकूर कहलाने लगे।

यदि डाकूर कुमारस्वामी भूगर्भविद्या और स्पतिविद्या की ओर बराबर ध्यान लगाये तब बड़े बड़े वैज्ञानिक आविष्कार कर दिखलते आपकी स्वदेशप्रेम और ईश्वर की इच्छा ने चित्त में भारतीय चित्रविद्या के पुनरुद्धार का रोपण कर दिया। यद्यपि विज्ञान और चित्रकला परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं, तथापि न जाने आपके विचार विज्ञान से एकदम चित्रविद्या की फिर आये! हाँ, एक बार आपने विलायत में किताबें पढ़ी थीं। उनमें किसी देश के किताबों की वीर पुरुषों का वृत्तान्त और अच्छी चित्रकला के और बुरी के दोष वर्णन किये गये थे। तभी से चित्त में चित्रकला का चित्र अङ्कित हो गया। यह चसका बढ़ता ही गया। इंग्लैंड के चित्रविद्याविज्ञान जॉन रस्किन की पुस्तकें भी पढ़ डालीं। इसका परिणाम यह हुआ कि भली बुरी चित्रकला का ज्ञान और भेद मालूम लगा। तभी से आप इस ओर अधिक ध्यान लगे और इस विद्या से अधिक प्रेम करने लगे।

संवत् १९६० में आपका विवाह हो गया। की अर्धाङ्गिनी भी आपकी सहपाठिका थीं। आप भी भूगर्भविद्या और चित्रकला से विशेष प्रेम करते थे। इस प्रकार विलायत में ही एक गौरवपूर्ण का पाणिग्रहण करके आप संवत् १९६० में जन्मभूमि लंका में आये। वहाँ की सरकार ने आपको ७५० रुपये मासिक पर खनेज-विभाग का रेकॉर्ड जनरल नियत कर दिया। इसी कारण सारे लंका-द्वीप में भ्रमण करना पड़ा। इसी भ्रमण में इनको कितने ही प्राचीन स्थानों पर प्राचीन चित्रकला के टूटे फूटे चिह्न दिखाई पड़े। उनसे कर आपके चित्त में आया कि “ओहो! प्राचीन काल में भारतीय चित्रकला इतनी उन्नत थी! मैं इस बूढ़े भारत की प्राचीन चित्रकला को



# सरस्वती



डाकूर आनन्द के० कुमार स्वामी डी० एससी० ।

हरिद्वयन प्रेस, इलाहाबाद ।



सख्या ५  
मान करके  
रहोंने तभी  
जीवन के नि  
सरकार  
एक भारी ए  
उसका नाम  
विचकला ।  
लंका में  
मिले थे  
बनाये थे  
व्या का झ  
हुने ।  
इतिहास  
सचिविया भ  
गई थी ।  
ममलान भ  
वचार करके  
आरम्भ में, ३  
कितने ही  
प्रमाण किया  
पूरे फूटे नम  
हुआ ।  
कलकत्ते  
उत्तमत  
। इस चि  
दिनाथ ठा  
वचकार हैं  
प्राप्त की है ।  
कुशलता को  
प्राप्ता करते  
मिल कर  
सुख हुए ।  
। ठाकुर म  
निष्ठ मित्रता



संख्या ५]

जान करके संसार को क्यों न दिखाऊँ ?” निदान उन्होंने तभी से भारतीय पुरानी चित्रकला के पुनरु-  
ज्जीवन के लिए शिव सङ्कल्प किया।

सरकारी काम करते हुए आपने चार साल में एक भारी पुस्तक की सामग्री तैयार कर डाली। उसका नाम आपने रखा “मध्यकालिक लंका की चित्रकला।”

## भारत में भ्रमण।

लंका में जो पुरानी चित्रकला के कुछ नमूने आप मिले थे सो क्या वे वहाँ के थे ? वहाँ के लोगों के बताये थे ? और यदि हाँ, तो वहाँ वालों को इस कला का ज्ञान कहाँ से हुआ ? आप जानते हैं ?

इतिहासवेत्ता महाशयों का निश्चय है कि यह चित्रविद्या भारतवर्ष से बौद्ध धर्म के साथ ही लंका गई थी। पूर्वीय देशों की चित्रविद्या का आदिम जन्मस्थान भारतवर्ष ही है। इन्हीं सब बातों पर विचार करके डाकूर कुमारस्वामी, संवत् १९६३ के आरम्भ में, भारतवर्ष आये। यहाँ आकर आपने यहाँ के कितने ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों में भ्रमण किया। भारतवर्ष की चित्रकला के यत्र तत्र मिलने नमूने देख कर आनन्दस्वामी को अत्यन्त आनन्द हुआ।

कलकत्ते में एक प्रसिद्ध चित्रशाला है। उसमें जो उत्तमता से भारतीय चित्र बनाने का काम होता है। इस चित्रशाला के आचार्य हैं—श्रीयुक्त अवधानन्द ठाकुर। ठाकुर महाशय स्वयं एक प्रसिद्ध चित्रकार हैं। चित्रकला में आपने बड़ी प्रसिद्धि पाई है। आपके कई शिष्य हैं, जिनकी चित्राङ्गण-कला को देख कर बड़े बड़े चित्रविद्या-विशारद आश्चर्य करते हैं। डाकूर कुमारस्वामी ठाकुर महाशय से मिल कर और उनकी चित्रकला को देख कर बड़े आनन्द हुए। “समानशीलयसनेषु सख्यम्” होता ही है। ठाकुर महाशय के साथ डाकूर महाशय की मित्रता हो गई। भारत में आदर्श चित्रकार

तो था ही, अब आदर्श चित्रसमालोचक भी मिल गया। आशा है, इन दोनों महानुभावों की सृष्टि का सुफल भारत की भावी सन्तान अवश्य भोगेगी।

## ग्रन्थ-प्रणयन।

डाकूर कुमारस्वामी कोरे चित्रकला-प्रेमी और चित्रपरीक्षक ही नहीं हैं, किन्तु आप अँगरेज़ी के अच्छे लेखक भी हैं। आपने भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों में लेख लिखे हैं और पाठकों के हृदय पर भारतीय प्राचीन चित्रकला के माहात्म्य का चित्र अच्छी तरह अंकित कर दिया है। अँगरेज़ी के मासिक पत्र माडर्नरिव्यू में आपके कई लेख लगा-तार निकले हैं। ये लेख बड़े मार्के के हैं। आपने अभी हाल में ही अँगरेज़ी में कई बड़ी बड़ी किताबें लिखी हैं। मिडीवियल सिंहालीज़ आर्ट अर्थात् “मध्यम-कालिक सिंहलद्वीपवासियों की कलाविद्या” नाम की एक बड़ी किताब आपने लिखी है। उसका मूल्य है ५० रुपये।

विलायत में भी जाकर आपने भारतीय पुरानी कलाविद्या की खूब प्रशंसा की। इनके वर्णन को सुन कर वहाँ वालों के चित्त पर भी यहाँ की ललितकला का माहात्म्य खचित हो गया। पाश्चात्य चित्रकार और चित्रविद्यातत्त्वज्ञ इनके गुणों और विद्वत्ता पर मोहित हो कर इनके मित्र और गुण-ग्राहक बन गये।

आप गत वर्ष फिर भारतवर्ष में आये थे। पर उन दिनों, आप, स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण, शीघ्र ही विलायत को लौट गये। पर, तो भी उस थोड़े से समय में आपने कितने ही स्थानों में भ्रमण किया।

विलायत में, लंदन से कोई १०० मील की दूरी पर, केम्पडन में आपका ग्यारह सौ वर्ष का पुराना मकान है। आप सख्खो उसी में निवास करते हैं।

गत वर्ष आपने वहाँ रह कर चार उपयोगी पुस्तकों का प्रणयन किया। उनके नाम मूल्यसहित ये हैं:—



- ( 1 ) Indian Craftsman (भारतीय शिल्पी) २॥  
 ( 2 ) Essays on National Idealism ( राष्ट्रीय  
 आदर्श पर निबन्ध ) २॥  
 ( 3 ) Selected Examples of Indian Art (भार-  
 तीय कलाकौशल के चुने हुए नमूने ) ५०  
 ( 4 ) Indian Drawings (भारतीय चित्रकला) २०

इन ग्रन्थों के नाम से ही पाठक इनके महत्त्व का अनुमान कर सकते हैं। यदि इन ग्रन्थों की विस्तार-पूर्वक आलोचना की जाय तो बहुत विस्तार हो जाय। इसलिए हम इन पुस्तकों को मनन-पूर्वक पढ़ने के लिए समर्थ पाठकों से अनुरोध करते हैं।

आप इन पुस्तकों को विलायत में छपा ही रहे थे कि इतने में प्रयाग की प्रदर्शनी-कमेटी ने शिल्प-कला-विभाग की रचना और उसकी देख भाल के लिए आपको यहाँ बुला लिया। बहुत अच्छा हुआ। हमों को क्या और भी हमारे कितने ही भाइयों को आपके दर्शन और परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

### उपसंहार ।

डाकूर कुमारस्वामी की अवस्था अभी ३३ ही वर्ष की है। पर, आप में गम्भीरता आदि गुणों की इतनी भरमार है जितनी कितने ही साठ वर्ष के बुढ़ों में भी नहीं पाई जाती। आपकी सादगी तो पाठक चित्र को देख कर ही समझ सकते हैं। विलायती जननी के गर्भ से जन्म लेकर भी, विलायती माता की गोद में पालित-पोषित होने पर भी, डाकूर कुमारस्वामी भारतमाता का उतना ही मान करते हैं जितना यहाँ वाले अन्य देशभक्त करते हैं।

आप पक्के स्वदेशभक्त हैं। यह बात हम यों ही नहीं कहते; इसका हमारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण है। आपके हाल के चित्र से बढ़ कर और इस बात का क्या प्रमाण होगा। आपकी हर एक बात से, हर एक काम से, भारतीयता टपकती है। आप विलायत वालों के गुणों पर ही विशेष ध्यान देते हैं, दोषों पर नहीं। विलायती लोगों के दोषों की नकल

करने वाले शिक्षितमान्य भारतवासियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आपकी राय है आँख मीच कर विदेशियों की नकल करना नहीं।

चित्रकला को आप योग-क्रिया तथा आत्मिक-विद्या का अंग मानते हैं। राजा रविवर्मा बनाये हुए भारतीय देव-देवियों के चित्रों को देख कर आपकी राय है कि इनमें दिव्य-भाव का अभाव है। भारतीय चित्रकारों में आप अवनोदनाथ की विशेष प्रशंसा करते हैं।

हमारे पाठक इस बात को सुन कर बहुत प्रसन्न होंगे कि आप भारतभूमि के सच्चे प्रेमी, हिन्दीभाषी के पक्के शुभचिन्तक और देशी चाल ढाल से रहने बड़े ही दृढ़ पक्षपाती हैं।

### सुकवि-सङ्कीर्तन ।

( १ )

हे सुकवे ! तुम धन्य धन्य हो;  
 अन्य विधाता ईश-जन्य हो।  
 सुधा-समान तुम्हारी वाणी—  
 है सब को अतीव कल्याणी ॥

( २ )

दिव्य गान के तुम गायक हो;  
 कविता-कान्ता के नायक हो।  
 सुख-पूर्वक शिक्षा-दायक हो;  
 नीति-रीति के उन्नायक हो ॥

( ३ )

तुम रस की वर्षा करते हो;  
 सारा मनस्ताप हरते हो।  
 सद्भाववाङ्मय फैलाते हो;  
 सुख के फल सम्मुख लाते हो ॥



( ४ )

कभी वीर रस की अर्चा से;  
कभी रौद्र रस की चर्चा से ।  
तुम भुजदण्डों को फड़काते;  
भीरु जनों को वीर बनाते ॥

( ५ )

जब तुम करुण-गीत गाते हो—  
पथर को भी पिघलाते हो ।  
झरोखों के दुख में मन रोता;  
इस रोने में भी सुख होता ॥

( ६ )

युक्ति-पूर्ण अद्भुत-रस-वर्णन—  
सहसा विस्मित करता है मन ।  
प्रतिभा का वह परिचय पाकर,  
बढ़ती भक्ति हमारी तुम पर ॥

( ७ )

लोक-सुरचि-रक्षा करने को,  
हिंसादिक दुष्कृत हरने को ।  
तुम बीभत्स-कथा कहते हो;  
सने लोक-हित में रहते हो ॥

( ८ )

शब्द-चित्र-गत न्यारे न्यारे—  
दिखला कर कलम-फल सारे ।  
दुष्टों में तुम भय सरसाते;  
महा-भयानक रस बरसाते ॥

( ९ )

रदासीनता के रहते भी,  
चिन्ता-लहरी में बहते भी ।  
देख हास्य-रस-रङ्ग तुम्हारा,  
खिल जाता है हृदय हमारा ॥

( १० )

जब शृङ्गार-सुरस में सनते;  
स्वयं मनोज-बाण तुम बनते ।  
कट जाती रातों की रातें;  
चुकती नहीं प्रेम की बातें ॥

( ११ )

अहा ! शान्त-रस की सुरसरि का  
( मद-मालिन्य, मोह-अघ-अरि का )  
जब तुम पुण्य-प्रवाह बहाते;  
धरा-धाम को स्वर्ग बनाते ॥

( १२ )

बड़े बड़े षट्शास्त्री देखे;  
तर्क खेल है जिन के लेखे ।  
पर, वर वचन मंत्रमय सारे,  
हिस्से में बस पड़े तुम्हारे ॥

( १३ )

सुन कर वे रसभरी उक्तियाँ,  
और तुम्हारी नई युक्तियाँ ।  
विस्मित से हम रह जाते हैं;  
महा अलौकिक सुख पाते हैं ॥

( १४ )

शब्द-सृष्टि के तुम पालक हो;  
तुम्हीं समय के संचालक हो ।  
तुम भावों के भव्य भूप हो;  
तुम समाज के प्राण-रूप हो ॥

( १५ )

यदपि कल्पना के स्वामी हो;  
किन्तु सत्य के अनुगामी हो ।  
कुछ भी हो तुम झूठ न कहते;  
दूर चाटुकारी से रहते ॥

( १६ )

जिन वाक्यों को हम कहते हैं—  
वे ही कविता में रहते हैं ।  
पर वे चित्त-चमत्कृत करते;  
तुम उन में बिजली सी भरते ॥

( १७ )

तब सुवर्ण-मय सुन्दर मोती—  
ज्योति समुज्ज्वल जिनकी होती ।  
रसिक-कण्ठ भूषित करते हैं;  
मन में महामोद भरते हैं ॥



( १८ )

जालरन्ध्रगत आतप-द्वारा  
लहराती जो भू-कण-धारा ।  
प्रतिभा-मय सिर-मध्य तुम्हारे  
सृष्टि-पदार्थ घूमते सारे ॥

( १९ )

जब प्रतिभा विकास पाती है,  
सुध बुध तुम्हें भूल जाती है ।  
मिल जाती है दिव्य दृष्टि सी;  
करते हो तुम सुधा-वृष्टि सी ॥

( २० )

स्वस्थ बैठ जब नेत्र मँचते,  
तुम भविष्य का चित्र खींचते ।  
भूत काल की जब सुध लेते,  
वर्तमानता उसको देते ॥

( २१ )

हम भी चारों ओर विचरते;  
प्रकृति-पदार्थ निरीक्षण करते ।  
पर तुम दृश्य देखते जैसे,  
दुर्लभ हमें स्वप्न में वैसे ॥

( २२ )

तुच्छ वस्तु हम जिसे लेखते,  
तुम महत्त्व-मय उसे देखते ।  
जब तुम उसका भेद बताते—  
तब हम भी उसको लख पाते ॥

( २३ )

छोटी से छोटी बातों में,  
खेल-कूद की भी घातों में ।  
तुम वे वे निष्कर्ष दिखाते,  
दङ्ग हुए से हम रह जाते ॥

( २४ )

अप्रतिबन्धकता के प्रेमी,  
सदाचार के सच्चे नेमी ।  
तुम श्रम-जन्म-खेद-हर्ता हो,  
अनुपम कामों के कर्ता हो ॥

( २५ )

तुम स्वतन्त्रताप्रिय सहृदय हो,  
मनमौजी हो, मुद-मद-मय हो ।  
महा-मनोरञ्जन रस-धन हो,  
रसिक जनों के जीवन-धन हो ॥

( २६ )

तुम मनुष्यता के बाता हो,  
भद्र भारती के भ्राता हो ।  
देते हो तुम शान्ति शोक में,  
हैं न तुम्हारा साम्य लोक में ॥

( २७ )

तुम नव-जीवन सञ्चारक हो,  
पतित जाति के उद्धारक हो ।  
अति अपूर्व उन्नतिकारक हो,  
अनुत्साह के संहारक हो ॥

( २८ )

तुम गौरव-गरिमा के गृह हो,  
निलोंभी, निश्चल, निस्पृह हो ।  
राज्य तुम्हारे निकट तुच्छ है,  
सब कुछ काय्य प्रसून-गुच्छ है ॥

( २९ )

सुयश-चिह्न उत्तुङ्ग हमारे  
मिट्टी में मिल जाते सारे ।  
किन्तु, तुम्हारी प्यारी कविता  
रहती है जब तक शशि-सविता ॥

( ३० )

सब भगड़ों से निपट निराले,  
तदपि लोक-हित करनेवाले ।  
धन्य तुम्हारे सभी काम हैं;  
करते हम तुमको प्रणाम हैं ॥

( ३१ )

अनुभव करता है सब कोई,  
करा सके जो, कवि है सोई ।  
कवि होना ईश्वराधीन है;  
ईश्वर सन्तत सुकृत-लीन है ।  
मैथिलीशरण गुप्त



## कालिदास के काव्यों में नीति-बोध\* ।

पण्डितराज जगन्नाथ एक स्थान में कहते हैं कि द्रव्यप्राप्ति या पुत्र-लाभ से जो आनन्द होता है उसकी अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द काव्य से होता है । कोई भी लौकिक आनन्द इस आनन्द की बराबरी नहीं कर

सकता । साधारण लोग उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते । चित्तरञ्जनद्वारा सदुपदेश करना ही काव्य का मुख्य प्रयोजन है । अन्तःकरण के कुविचार निकाल कर उनकी जगह सुविचारों का बीजारोपण करने, मनुष्य को कुमार्ग से परावृत्त करके सुमार्ग में आने, और उसे इहलोक तथा परलोक से सुख प्राप्त करा देने के लिए काव्य के समान और दूसरा कोई भी उत्कृष्ट साधन नहीं है । और, इसी दृष्टि से पश्चिमी और पूर्वी पण्डितों ने कालिदास को कवि-मालिका में अत्यन्त उच्च स्थान दिया है । कितने ही आध्यात्म विद्वानों ने तो इस कवि को भारत का गुरुसिपियर कहा है । कालिदास के काव्य-नाटकों का वर्णन करना इस लेख का उद्देश नहीं है; किन्तु आज हमें सिर्फ यही दिखाना है कि हमारे कवि-गुरु ने अपने ग्रन्थों में नीतिबोध करने के लिए किस प्रकार के आदर्श पाठकों के सामने रखे हैं ।

स्थूल दृष्टि से देखने से नीति के चार प्रकार हैं । पहली आत्मविषयक नीति, दूसरी कौटुम्बिक नीति, तीसरी सामाजिक नीति और चौथी राज-नीति ।

आत्मविषयक नीति में आत्मरक्षा, सती न होना, आत्मभय न करना, आरोग्यरक्षा, द्रव्यार्जन, विनय-शीलता, आत्मनिरोध आदि अनेक बातों का समावेश होता है । रघुवंश में राजा दिलीप का वर्णन करते हुए कवि ने यह बात स्पष्ट रीति से बतला दी है कि आत्मरक्षा पर ही संसार के उत्तमोत्तम कार्यों की

इमारत खड़ी की जाती है । वह राजा निर्भय होकर अपनी रक्षा करता था । उसी प्रकार कुमारसम्भव में वटुवेशधारी शङ्कर ने, तपश्चर्या से शरीर को तपानेवाली पार्वती को यह उपदेश किया है कि शरीर ही धर्म का मुख्य साधन है; इसलिए तू शरीर की उपेक्षा न कर । वसिष्ठ ऋषि की धेनु नन्दिनी ने भी राजा दिलीप से स्पष्ट कहा है कि हे राजा ! तू अनेक सुखों का उपभोग करनेवाले अपने शरीर की रक्षा कर । जिस समय इन्दुमती की अचानक मृत्यु से राजा अज विह्वल हो रहा था उस समय वरतन्तु मुनि के शिष्य ने उसे अनेक प्रकार समझा कर इस बात का विश्वास करा दिया कि स्त्रीवियोग के दुःख से जीव देना महा अविचार का काम है और जीवन की रक्षा करने ही में सच्चा पुरुषार्थ और चातुर्य है ।

कालिदास ने स्पष्टतापूर्वक यह कहीं नहीं कहा कि सती न होना चाहिए । इसके विरुद्ध यह दिखलाया है कि स्त्री की मृत्यु से दुःखित हुआ पति अपनी पत्नी के साथ चिता में प्रवेश कर सकता है । परन्तु कवि ने यह बात घटनाओं के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं घटित की है; किन्तु इन्दुमती के मरने पर, कुछ वर्षों बाद, अज का भागीरथी में जलसमाधि लेना वर्णन किया है । शङ्कर ने जब कामदेव को भस्म कर डाला तब रति सती होने के लिए तैयार हुई । उस मौके पर कवि ने उससे आत्महत्या न कराकर आकाशवाणी द्वारा यह आश्वासन दिलाया है कि तेरा पति तुझे फिर प्राप्त होगा । इस घटना से कवि ने यह दिखाया है कि सती होना प्रशस्त नहीं ।

यद्यपि कवि ने प्रत्यक्ष शब्दों में यह कहीं नहीं कहा कि आरोग्यरक्षण करना प्रत्येक का अवश्य कर्तव्य है तथापि उसने यह कहा है कि रघुवंश के सब राजा उचित समय पर उठते थे । इसके सिवा, अज का उदाहरण देकर यह बात कवि ने पर्याय से सूचित की है कि प्रातःकाल शीघ्र उठना नैरोग्य का मुख्य साधन है । मृगया से नीरोगता मिलती है और शरीर-सामर्थ्य बढ़ता है; इसी लिए राजा दशरथ को, मृगया के लिए, उसके सचिवों ने अनु-

\* भाटी-भाटिकमनोरञ्जन के आधार पर लिखित ।



मति दी है। शाकुन्तल नाटक में कवि ने, राजा दुष्यन्त के सेनापति के मुख से, मृगया की बड़ाई गाई है। इससे पाठकों को मालूम हो जाता है कि सुबह जल्दी उठना और व्यायाम करना, दोनों बातें, आरोग्य और शरीर-सामर्थ्य के लिए आवश्यक हैं। द्रव्यार्जन करना भी मनुष्य के कर्तव्यों में से एक मुख्य कर्तव्य है। कालिदास का ध्यान इस बात पर रहा है कि द्रव्यसंग्रह करना भी अपना एक प्रकार का सामर्थ्य बढ़ाना ही है। तथापि रघुवंश में यह तत्त्व अनेक स्थलों में दर्साया गया है कि केवल अपने ही उपयोग के लिए द्रव्य न कमाना चाहिए; किन्तु, विशेषतया परोपकार में उसका विनियोग करना चाहिए। उदाहरणार्थ, कवि ने यह वर्णन किया है कि सूर्यवंश के राजा दान, धर्म करने के लिए ही द्रव्य-संचय करते थे; राजा दिलीप धनलोभ न रखते हुए, प्रजा से कर वसूल करता था। मेघदूत में एक जगह यह कहा है कि दुखियों का दुखनिवारण करना ही बड़े लोगों की द्रव्य-प्राप्ति का फल है।

विनयशीलता या नम्रता का गुण सब गुणों में श्रेष्ठ है। यह गुण मनुष्य की सब प्रकार की उन्नति के लिए आधारभूत है। विनय के बिना अन्य गुणों का विकास हो ही नहीं सकता। विनय से अन्य गुणों में विशेष शोभा आ जाती है। कालिदास की इस उक्ति से कि यद्यपि मुझ में योग्यता नहीं है तथापि सूर्यवंश के वर्णन करने का मैं साहस करता हूँ, उसकी विनयशीलता पाठकों के सामने प्रत्यक्ष उपस्थित सी हो जाती है। राजा रघु के विषय में कवि ने कहा है कि उसने कांबोज देश के राजाओं को जीत कर उनकी सम्पत्ति हरण कर ली; पर उनका गर्व ग्रहण नहीं किया—अर्थात् इतना पराक्रमी होने पर भी उसे तिल मात्र गर्व नहीं हुआ। श्रीराम-चन्द्रजी और उनके भाइयों का स्वाभाविक विनय शिक्षा पाकर और भी अधिक बढ़ा। लवणासुर का वध करने पर जब ऋषियों ने शत्रुघ्न का अभिनन्दन किया तब उन्होंने लज्जा से गर्दन नीची कर ली। तारुण्य, सौन्दर्य और सम्पत्ति में से एक भी यदि

किसी के पास होता है तो वह उन्मत्त हो जाता परन्तु राजा अतिथि के पास ये तीनों एकत्र थे तो भी उसके अन्तःकरण में गर्व का लेश भी न पुरुरवा राजा ने केशी नामक बलवान् और दैत्य के हाथ से जब उर्वशी नामक अप्सरा छुड़ाया तब गन्धर्वराज चित्ररथ ने उसकी स्तुति की। उस समय राजा विनय-पूर्वक बोला “उँ ! इसमें मैंने क्या किया ? यह केवल मेरे पराक्रम का फल है।” यह विनय देख कर चित्ररथ का यह कथन ठीक ही है कि “गर्व न हो पराक्रम के लिए भूषण है।”

आत्मनिग्रह अथवा विचारशक्ति के योग से मनुष्य के विकारों को रोकने के असामान्य गुण का कालिदास के ग्रन्थों में अनेक जगह उल्लेख पाया जाता है। सूर्यवंश के राजा इन्द्रियदमन करने वाले थे। दिलीप और दूसरे राजाओं ने केवल वंशवृद्धि ही के लिए विवाह किये। राजा अग्निवर्ण की आकालिक मृत्यु से यह बात स्पष्टतया ध्यान में आ जाती है कि विनय से यह सक्ति का कैसा भयंकर परिणाम होता है। अतः निग्रह का अतिउत्तम उदाहरण रघुवंश ही में बहुत बड़े राज्य के अधिपति राजा दिलीप की बात की चाह न थी। उसकी प्रजा सन्तुष्ट थी जिन राजाओं को उसने पादाक्रान्त किया था वे उसके साथ नम्रता का बर्ताव करते थे। इतना ही होने पर भी, पुत्र न होने के कारण, वह दुखी राजा सदा इस चिन्ता से उद्विग्न रहा करता था—मेरे बाद पितरों को उदक देने के लिए कोई नहीं है मेरा वंशच्छेद होने वाला है। पुत्रप्राप्ति के लिये रानी सुदक्षिणा को साथ ले कर दिलीप अपने गुरु वसिष्ठ ऋषि के आश्रम को गया। वसिष्ठ त्रिकालज्ञ थे। उन्होंने विचार करके राजा से कहा कि—एक बार तू स्वर्गधेनु सुरभी को भूल गया था। इसी से तेरे सन्तति इस भूल का प्रायश्चित्त करने के लिए तू उसकी मेरी होमधेनु नन्दिनी, की सेवा कर। गुरु की आज्ञा के अनुसार राजा ने तीन अठवाड़े तक,



भाग ५ ]  
 हो जाते हैं, मनःपूर्वक नन्दिनी की सेवा की । जहाँ जहाँ  
 जाते हैं, वहाँ वहाँ उसके पीछे राजा भी जाता ।  
 उसके ठहरने पर राजा भी खड़ा हो जाता और  
 उसके चलने पर आगे पैर बढ़ाता । नन्दिनी के बैठने  
 पर खंय बैठता और उसकी तृषा शान्त हो जाने पर  
 खंय उठता । इसी प्रकार इक्कोस दिन  
 जल-पान करता । इसी प्रकार इक्कोस दिन  
 गये । बाइसवें दिन राजा की भक्ति की परीक्षा  
 के लिए नन्दिनी हिमालय की एक गुफा में घुस  
 गई । राजा निश्चिन्तता के साथ हिमालय की रम-  
 न्य शोभा देख रहा था । इतने ही में नन्दिनी का  
 आना उसे सुन पड़ा । राजा ने आँख उठा कर  
 देखा तो मालूम हुआ कि एक सिंह ने उस पर भय-  
 आक्रमण किया है । भटपट, ज्योंही वह सिंह  
 आगे चलाने के लिए अपना हाथ प्रत्यंचा पर ले  
 था कि वहाँ उसका हाथ वहाँ चिपक गया । इस  
 ही के कारण बात से विस्मित होकर राजा मन्त्र-द्वारा  
 मालिक के रूप भुंग की तरह जहाँ का तहाँ ही क्रोध से  
 कि विचलित हुआ । इतने ही में वह सिंह मनुष्यवाणी में  
 है । उसने बोला—“राजा, मैं भगवान् शङ्कर का गण  
 ही मैं वहाँ उनकी आज्ञा से सिंह-रूप धारण करके  
 प को कि पार्वती के प्यारे इस देवदारु वृक्ष की रखवाली  
 पुष्ट थी हूँ । मर्यादित स्थान से बाहर जाने के लिए  
 था वे जाना नहीं हैं । इसलिए मेरे पंजों में फँस जाने  
 ना ऐसी प्रयत्नों पर ही मुझे अपनी क्षुधा शान्त करनी  
 दुखी पड़ने है । अतएव इस धेनु पर मेरी पूर्ण सत्ता  
 रता था । तुझे न कर । अपने मार्ग से लौट जा । तू ने  
 ई नहीं किया कर्तव्य पूरा किया है ; तेरे लिए कोई दोष  
 से के लिए जो बात होगई उसके लिए सोच करना  
 अपने लिए है ।”  
 वसिष्ठ सिंह का भाषण सुन कर राजा को यह जान  
 जा से कि सन्तोष हुआ कि मेरी यह दशा मानवी सामर्थ्य  
 नन्दन का नहीं हुई ; किन्तु शङ्कर के प्रभाव से हुई है ।  
 हों ही जायेंगे, नन्दिनी को छोड़ कर वह लौट नहीं सकता  
 उसने सिंह से विनती की कि नन्दिनी के बदले  
 रु की अपनी देह तुझे अर्पण करता हूँ । इस पर सिंह  
 प्रत्यक्ष कर बोला—“राजा, तू क्या बावला हो गया

है ? अरे, तेरी देह लेने से इस गाय के प्राण अवश्य  
 बच जायेंगे ; परन्तु तेरी मृत्यु से लाखों लोग अनाथ  
 हो जायेंगे । इस बात का भी तुझे कुछ विचार करना  
 चाहिए । तू एक मामूली जानवर के लिए विस्तृत  
 राज्य, अनन्त सम्पत्ति, सुन्दर तारुण्य और अलौ-  
 किक रूप को तिलाञ्जलि दिये देता है । यह कितनी  
 बड़ो भूल है । तू इसलिए न डर कि ऋषि तुझ पर  
 अप्रसन्न होंगे । तू राजा है । एक गाय के बदले लाखों  
 गाय तू उन्हें दे सकता है ।”

सिंह के इस कथन का राजा के मन पर कुछ  
 भी असर न हुआ । दीन-दुखियों को संकट से मुक्त  
 करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म है । इस धर्म को छोड़ने  
 की अपेक्षा राजा दिलोप ने अपने प्राण दे देना अच्छा  
 समझा । इसके सिवा, वह गाय भी कोई साधारण  
 गाय न थी । करोड़ों गाय दे देने पर भी उसका  
 बदला नहीं चुका सकता था । अतएव राजा फिर  
 सिंह से बोला—“मुझ पर कृपा कर । तू मेरी इस  
 मिट्टी की नखर देह की परवा न कर । मेरे कीर्ति-  
 रूपी शरीर की रक्षा करने की मुझे भिक्षा दे ।”

राजा का दृढ़ निश्चय देख कर सिंह राजा को  
 गया । उसने नन्दिनी को छोड़ दिया । राजा आनन्द-  
 पूर्वक गर्दन नीची करके सिंह के सामने बैठ गया ।  
 वह इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि सिंह मुझ  
 पर दूटना ही चाहता है कि अकस्मात् उस पर स्वर्ग  
 से पुष्प-वृष्टि होने लगी और “बेटा, उठ” ये अमृत-  
 तुल्य शब्द उसके कानों में पड़े । आँखें खोल कर  
 जा वह देखता है तो माता के तुल्य प्रेम-पूर्ण दृष्टि  
 से उसकी ओर देखती हुई नन्दिनी खड़ी थी और  
 सिंह का कहीं नामोनिशान भी न था । उसकी भक्ति  
 की परीक्षा लेने के लिए नन्दिनी ने ही यह लीला  
 रची थी । नन्दिनी प्रसन्न होकर बोली कि वर माँग ।  
 राजा ने अपनी इच्छा के अनुसार, वंश के लिए  
 आधारभूत, पुत्र उत्पन्न होने का वर माँगा । नन्दिनी  
 बोली—“पत्नों का दोना बना कर उसमें मेरा दूध  
 दुह कर पान कर; तेरी इच्छा पूर्ण होगी ।”







भाग ५ ]

और कृतज्ञता का अच्छा परिचय मिलता है । अनेक राजपुत्र घृणित और घोर दुष्कर्म करके राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं; परन्तु अज ने अपने पिता का त्यक्त राज्य, निष्काम बुद्धि से और पिता की आज्ञा पालन करने के लिए स्वीकार किया । अपने पुत्र आयु को गद्दी पर बिठा कर जब राजा पुरुरवा ने उर्वशी सहित तपोवन में जाने का निवार किया तब राजपुत्र ने अत्यन्त विनीत भाव राज्य स्वीकार करने में अपनी अप्रसन्नता प्रकट की । बालक राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ लेने की जब राजा दशरथ ने आज्ञा दी तब वे भी विलम्ब न करके, आनन्दपूर्वक, मुनि के पुत्रों को तैयार हुए । उसी प्रकार पिता की आज्ञा पाते ही, बड़े आनन्द से, श्रीरामचन्द्रजी ने इस कार्य छोड़ कर, भयङ्कर वनवास के कष्टों को, पर, दस वर्ष तक, स्वीकार किया । परशुराम की पितृ-प्रेम, आदि प्रायः सभी जानते हैं ।

राम-लक्ष्मण के भी अनुकरणीय उदाहरण कवि ने दिये हैं । राजा दशरथ के राम-लक्ष्मण आदि पुत्र, अपने भी, परस्पर अत्यन्त प्रेमपूर्ण बर्ताव रखते हैं । अत्यन्त प्रेम और निस्सीम भक्ति से प्रेरित हो राम-लक्ष्मणजी राम के साथ वनवास के लिए और अन्त को देहत्याग करने में भी उन्होंने सोचा नहीं । भरतजी राम पर जो प्रेम और भक्ति रखते थे वह किस बन्धु के अनुकरणीय नहीं है ? राम के वनवास करने की पादुका सिंहासन पर रख कर, राम के जाने के नाते से ही उन्होंने राज्य की रक्षा और पालन किया और कठिन व्रत तथा तप का निवारण किया । वनवास से लौटने पर बड़े आदर से उन्होंने राज्य राम को सौंप दिया । राम के पुत्र कुश और लव का परस्पर प्रेम ऐसा सामाजिक नीति में सत्य भाषण, शिष्टाचार, आदि बातों का समावेश होता है जिससे निश्चय से रघुकुल के राजा

मितभाषण करते थे । दशरथजी महा सत्यवादी थे; उन्होंने सुख और प्राणों की परवा न करके अपने वचनों का प्रतिपालन किया । जिस समय राजा दिलीप रानी सुदक्षिणा सहित वसिष्ठ मुनि के आश्रम में गये उस समय मुनि ने उन दोनों का बहुत ही अच्छा आतिथ्य किया । राजा दशरथ अपने कष्ट वैरियों से भी कठोर शब्द न बोलते थे । वटुवेश-धारी शङ्कर ने पार्वती से जो शिष्टाचारपूर्ण भाषण किया और भेंट के लिए आये हुए मुनियों का हिमाचल ने जो आदर किया उसे पाठक कभी नहीं भूल सकते । उदारता के विषय में राजा रघु का उदाहरण अच्छा आदर्श है । उन्होंने जिस समय विश्वजित् नामक यज्ञ किया उस समय अपना सारा धन ब्राह्मणों को दे दिया । वरतन्तु का शिष्य कौत्स गुरु-दक्षिणा के लिए राजा रघु के पास जब धन माँगने के लिए आया तब गुरुदक्षिणा के लिए आवश्यक चौदह करोड़ से भी बहुत ही अधिक द्रव्य उसने कौत्स को दिया । राजा अतिथि ने दूसरे को दी हुई सम्पत्ति कभी नहीं वापस ली । रघुवंश के राजाओं का यह बाना था कि चाहे प्राण भले ही चले जायँ, पर याचक को कभी विमुख न जाने देना चाहिए । विदर्भ देश के राजा भोज ने अपनी बहन इन्दुमती के स्वयंवर में अनेक राजाओं को बुलाया था । सब राजाओं के आदर-सत्कार का उसने बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया था ।

राजनीति और युद्धनीति के विषय में रघुवंश में लिखा है कि सब राजा जय प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक और कुछ नहीं चाहते थे । शत्रु के शरण आने पर ही वे सन्तुष्ट हो जाते थे और पराजित शत्रुओं को फिर वैभवसम्पन्न करना वे अपने लिए भूषण समझते थे । शत्रुओं को विपत्ति-ग्रस्त करके जय प्राप्त करने की वे कभी इच्छा न रखते थे । राजा रघु के मन्त्रियों ने उसके सामने सच्ची और झूठी दोनों प्रकार की नीतियाँ बतलाई; परन्तु राजा ने झूठी नीति का तिरस्कार करके सच्ची नीति का अवलम्ब किया । कवि ने कहा है कि शूरता के साथ साथ



सच्चे नीति का आश्रय भी अवश्य चाहिए । नीति-रहित शूरता व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं की करता के समान है और शूरता के अभाव में शुक्ल नीति क्लोबता की दर्शक है । कालिदास ने जिन राजाओं का वर्णन किया है वे सब अत्यन्त सद्गुणी और नीतिमान् थे । भारी कर का बोझा प्रजा पर उन्होंने कभी नहीं लादा और जो कर उन्होंने वसूल भी किया उसका उपयोग प्रजा के कल्याण ही के लिए किया । न्याय करने का काम वे, अधिकारियों को न सौंप कर, स्वयं करते थे । उनका प्रजावात्सल्य अवर्णनीय था । कवि ने कहा है कि 'राजा' नाम इसी लिए पड़ा है, क्योंकि वह प्रजा का रक्षक करता है । रामचन्द्र के विषय में कवि ने लिखा है कि इस राजा में द्रव्यलोभ बिल्कुल न था; इसी कारण प्रजा सम्पत्तिमान् और सुखी थी । वह प्रजा को समार्ग में लगाता था, इसलिए वह लोगों का पिता था; और उनका दुःखनिवारण करता था, इस कारण वह उनके लिए पुत्र के स्थान में था । राजा दुष्यन्त से वैतालिक कहता है, "राजा" तेरे प्रजाजनों के कुटुम्बी केवल सुख के साथी हैं; परन्तु उनका सच्चा कुटुम्बी तू ही है । क्योंकि आनन्द के और दुःख के, दोनों मौकों पर, तू उनकी सहायता करता है ।"

प्रजा का कल्याण करने में रघुवंश के राजाओं को स्वयं चाहे जितना दुःख हुआ हो तथापि उन्होंने इस काम से कभी मुख नहीं मोड़ा । दूसरे का दुःख निवारण करने में वे सदा तत्पर रहते थे । प्रजा के साथ वे ऐसा अच्छा बर्ताव करते कि प्रत्येक को यही जान पड़ता कि केवल मेरे ही ऊपर राजा की कृपा है । ऐसे ही राजाओं के उत्कृष्ट बर्ताव से प्रजा राज-निष्ठ रहती है । इतना ही नहीं, किन्तु वह राजा के सुख-दुःख में अपने को शामिल समझती है । सब प्रकार की नीति में यह तत्त्व पाया जाता है कि हमारा जीवन केवल हमारे ही लिए नहीं है; किन्तु अधिकांश में वह दूसरों के सुख और उपयोग के लिए है । प्रिय पत्नी के अकाल-मरण से राजा अज ने जो

प्राण त्याग नहीं किया इसका एक कारण यह है कि वह यह समझता था कि राजा के नाते से प्रजा का पालन करना मेरा कर्तव्य है । अतएव जीवित रहना ही चाहिए । इसी राजा के विषय में कवि ने लिखा है कि उसकी शूरता दुखियों का निवारण करने के काम में आती थी और अज्ञानोपयोग राज्य के विद्वान् लोगों का सत्कार में होता था ।

## अमरीका-भ्रमण ।



रमात्मा की कृपा से मेरा भ्रमण हो गया । जिन जिन भावों सरस्वती में मेरे भ्रमण करने विचार पढ़ कर मुझे प्रेम भर लिखे थे और ईश्वर से मेरी प्रार्थना की थी वह प्रार्थना के लिए प्रार्थना की थी । धन्यवाद देता हूँ ।

मेरे कई एक मित्र यह जानने के लिए आगे कि मैंने इस भ्रमण का निश्चय क्यों किया था । इसका कारण मैं आज इस भूमिका में बतलाऊँगा । धीरे धीरे मैं अपनी सारी रामकहानी सुनाऊँगा ।

फरवरी १९१० में मैं अपनी शिक्षा-प्राप्ति के लिए से निवृत्त हो गया । तब मैंने विचार किया कि मिया-विश्वविद्यालय में जाकर एक वर्ष मुझे पढ़ना चाहिए । मेरे अध्ययन के विषय राज-विज्ञान, साहित्य और शिक्षा-सम्बन्धी हैं । कोलम्बिया में इन विषयों के धुरन्धर आचार्य हैं । इसलिए मैं इन विषयों के धुरन्धर आचार्य हैं । इसलिए मैंने निश्चय किया था । मेरे पास धन नहीं था । इससे मैंने इरादा किया कि फरवरी से लेकर तक वैंकोवर ( कनाडा ) जाकर काम करूँ ।

सौभाग्य या दुर्भाग्यवश उन दिनों वैंकोवर एक भारतीय सज्जन एक कम्पनी खोलने की



भाग ५ ]  
 उनका नेता एक चलता पुरजा अंगरेज था।  
 उनकी के सभी संचालक मेरे मित्र और वाकिफ़कार  
 थे। इसलिए उन्होंने मुझे भी उसमें शामिल कर  
 लिया।  
 मैंने अपनी आयु विद्यार्थिदशा में ही गुजारी है।  
 सांसारिक दाँव-पेंच की बातें नहीं जानता। इस  
 कारण एक महीने से अधिक मैं उस कम्पनी में न रह  
 सका। मुझे अपना सम्बन्ध उससे तोड़ना पड़ा।  
 कम्पनियों के काम रुपये से चला करते हैं। मेरे  
 पास रुपया न था। इस कारण सम्बन्ध तोड़ने के  
 लिए और कोई इलाज न था। निदान निराश हो  
 मैं सियेटल लौट आया। इस कम्पनी के बखड़े में  
 दो तीन महीने व्यर्थ गये।

अब क्या किया जावे? यदि इस समय मेरे पास  
 न्युयार्क जाने भर को किराया होता तो मैं अवश्य  
 न्युयार्क चला जाता और कोलम्बिया-विश्वविद्या-  
 लय में भरती हो जाता। क्योंकि मेरे एक अमरीकन-  
 मित्र ने मुझे पत्र लिखा था कि यदि तुम कोलम्बिया-  
 विश्वविद्यालय में एक साल पढ़ा तो मैं साल का  
 (१००) रुपये देने को तैयार हूँ। परन्तु ईश्वर  
 की इच्छा और ही थी। वह तो मुझे जंगल और  
 झाड़ों की सैर कराना चाहता था।

अमरीका-भ्रमण की मेरी इच्छा मुदत से थी।  
 पर हासला नहीं पड़ता था कि ऐसा कठिन काम  
 है। एक दिन कमरे में बैठे बैठे मैंने निश्चय किया  
 कि अमरीका-भ्रमण अवश्य करना चाहिए। इस  
 उद्देश्य के तीन बड़े भारी कारण थे:—

(१) मुझे अमरीका में रहने से इस बात का  
 पता हो गया है कि यहाँ के लोग भारत के  
 सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विषयों को  
 बहुत कम जानते हैं। और, जो कुछ वे जानते हैं वह  
 जो उन्हीं पादरियों की रिपोर्टों से या भारत-द्वेषी  
 लेखकों के लेखों से मालूम हुआ है। इसलिए मेरा  
 उद्देश्य इस भ्रमण का यह था कि अमरीका के  
 लोगों को भारत की वर्तमान दशा से वाकिफ़ करूँ।

(२) किताबी विद्या और व्यावहारिक अनुभव में  
 बड़ा भेद है। मनुष्य यदि किसी जाति के रहन-  
 सहन तथा उसकी सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करना  
 चाहे तो उसके लिए जरूरी है कि वह हर तरह के  
 लोगों से खुद मिले और देश में पैदल भ्रमण करके  
 हर बात की जाँच करे। अतएव मेरा दूसरा उद्देश्य  
 इस भ्रमण का यह था कि अमरीका की सामाजिक,  
 राजनैतिक तथा वैज्ञानिक उन्नति का सच्चा हाल  
 जानूँ।

(३) मेरी इच्छा हिन्दी-भाषा की सेवा करने  
 की है। इसके लिए वाक्फ़ोयत का दायरा बढ़ाने  
 की जरूरत है। अतएव मेरा तीसरा उद्देश्य हिन्दी-  
 साहित्य की सेवा के लिए सामग्री एकत्र करना था।

इस भ्रमण में मेरे साढ़े आठ मास खर्च हुए हैं।  
 ६ जून १९१० को मैं सियेटल से चला और २० फ़र-  
 वरी को न्युयार्क पहुँचा। यदि मेरे पास काफ़ी खर्च  
 होता तो मैं शीघ्र ही न्युयार्क पहुँचता, पर खर्च न होने  
 से कई एक तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा।  
 इस भ्रमण में मैंने वाशिङ्गटन, आरेगन, केलेकोर्निया,  
 अरीज़ोना, न्यू मेक्सिको, टेक्साज़, ओकलहोमा,  
 कन्साज़, मजरे, इल्लोनाय, इन्डियाना, ओहाइयो,  
 पनसलवेनिया और न्युयार्क—इन रियासतों की सैर  
 की। सियेटल से मैं केवल सात आठ रुपये लेकर  
 चला था। जैसे पन्द्रह रुपये लेकर काशी से अम-  
 रीका जाने के इरादे से मैं समुद्र में कूद पड़ा था  
 वैसे ही ईश्वर के भरोसे यहाँ भी काम किया। पर  
 दोनों दफ़े प्रभु ने मेरी लाज रक्खी।

यदि उत्साह मिला तो मैं इंग्लैंड, फ़्रांस, स्वीट-  
 ज़रलैंड, जर्मनी तथा इटली का भी भ्रमण करके  
 और बहुत सी सामग्री इकट्ठी करूँगा। क्योंकि  
 भारत को लौटने में यूरोप रास्ते में पड़ता है। यह  
 मैंने अमरीका-भ्रमण से जान लिया है कि मनुष्य  
 चाहे पैदल ही सफ़र क्यों न करे, पर उससे उसे  
 पूरा लाभ तभी हो सकता है जब उसे खर्च की कमी  
 न हो।



यह मेरे भ्रमण-सम्बन्धी लेखों की भूमिका मात्र है । और बातें अगले लेखों से मालूम होंगी ।  
सत्यदेव—अमरीका ।

## शान्ति-सङ्गीत ।

( १ )

भाई, सभी दिन सदा न समान जाते;  
हैं मूढ़ जो विभव में मन गर्व लाते ।  
है देह ही जब विनश्वर सत्य सत्य,  
तो क्या भला विभव-भंगुरता असत्य ?

( २ )

तू देख ले नयन को अपने उधार,  
देता तुझे जगत है उपदेश-सार :—  
है सर्वदा स्थिर यहाँ किसकी अवस्था ?  
होती अखण्ड जग में किसकी व्यवस्था ?

( ३ )

है विश्व-वस्तु परिवर्तनशील, मित्र !  
होते चरित्र भव के सब हैं विचित्र ।  
है सौख्य में दुख छिपा रहता अदृश्य ।  
दुःखान्त में प्रकटता सुख-शान्ति-दृश्य ॥

( ४ )

भाई, हुई कलह से किसकी भलाई ?  
त्यागो सतर्क नित आपस की लड़ाई ।  
रक्खो सदैव सबसे शुचि-साधु-भाव ;  
होगा कभी फिर नहीं सुख का अभाव ॥

( ५ )

जो अन्य-अल्प-गुण भी गिरि सा बिचारे  
हैं सन्त सो सविधि पूज्य सदा हमारे ।  
होते प्रफुल्ल पर के गुण जो विलोक,  
वे स्वर्ग-तुल्य करते यह मर्त्य-लोक ॥

( ६ )

होती अलक्षित अहर्निश आयु क्षीण;  
आलस्य में सतत तू नर ! हो न लीन ।  
कर्त्तव्य में निरत हो, तज मूढ़ ! माया;  
खो पाप में न यह दुर्लभ दिव्य काया ॥

( ७ )

क्यों भूतकालिक दुखों पर खेद पाते ?  
भाई ! गये दिन कभी फिर हैं न आते ।  
लो वर्त्तमान अपने कर सर्व कार्य,  
सत्कार्य-जात कल को रखते न आर्य ॥

( ८ )

पाया शरीर जिससे इस लोक बीच,  
तू है उसे स्मरण भी करता न नीच ।  
है मत्त तू विषय में पुरुषत्त्व खो के,  
क्यों आत्म-शत्रु बनता गतसत्त्व हो के ?

( ९ )

तू धर्म से विमुख ही रहता सदैव,  
आमोद-सिन्धु-जल में बहता सदैव ।  
है सौख्य-भोग नर-जीवन का न काम,  
हो भोग-लिप्सु मत तू बन रोगधाम ॥

( १० )

तू भिन्नता-विषय का तज निन्द्य गान,  
संसार को निज-कुटुम्ब-समान जान ।  
निष्काम हो दुःखित को दुख से उबार;  
है धर्मसार बस एक परोपकार ॥

( ११ )

है सर्वथा सहज मौखिक धर्म-शिक्षा,  
लेना बड़ा सुगम है शुभ साधु-दीक्षा ।  
है किन्तु दुष्कर बड़ी इनकी समीक्षा;  
होती यथा-समय है सबकी परीक्षा ॥

( १२ )

लाखों हुए नृपति वैभवशक्ति-पूर्ण,  
हा ! मृत्यु के मुख हुए पड़ सर्व चूर्ण ।  
है और अन्य जन का तब क्या ठिकाना ?  
सद्धर्म से पद नहीं अपना हटाना ॥

( १३ )

सेवा सदैव जग की करना सभक्ति;  
सद्धर्म का पथ सदा धरना सभक्ति ।  
आपत्ति दीन जन की हरना सभक्ति;  
आनन्द से अभय हो मरना सभक्ति ॥



( १४ )

हिंसा, आलस्य, ईर्ष्या, कलह, रुज, घृणा, फूट, चिन्ता, विवाद,  
जावे लोप सारे असन, अघ, व्यथा, मोह, माया, प्रमाद ।  
क्रोध, तृष्णा, तज, जगत करे धर्म-स्वातन्त्र्य-पान,  
सारे सारे सुख, नित, करते शान्ति-सङ्गीत-गान ॥  
लोचनप्रसाद ;

## बाली-द्वीप में हिन्दुओं का राज्य ।

रत्त-महासागर और प्रशान्त-महासागर  
जहाँ पर मिलते हैं वहाँ सुमात्रा,  
जावा आदि बहुत से द्वीप हैं ।  
किसी समय इन द्वीपों में हिन्दुओं  
का राज्य था । संस्कृत-भाषा और  
हिन्दू-धर्म ने यहाँ पर अपना अटल  
प्रभाव जमा लिया था । इस बात के यहाँ सैकड़ों  
साक्ष्य पाये जाते हैं । चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों  
के आक्रमण के बाद इन द्वीपों में हिन्दुओं का प्रभाव  
कम हो गया । धीरे धीरे हिन्दू-धर्म, हिन्दू-राज्य और  
संस्कृत-भाषा का यहाँ लोप हो गया । इन द्वीपों के  
अधिकांश अधिवासी मुसलमान हो गये । परन्तु जो  
अपने धर्म को अपनी जान से अधिक प्यारा  
मानते थे वे मुसलमान-संसर्ग-दूषित बड़े बड़े द्वीपों  
को छोड़ कर छोटे छोटे टापुओं में जा बसे । बाली,  
जावा आदि द्वीप इसी प्रकार के छोटे टापुओं में  
हैं । इन टापुओं में अब भी हिन्दू-धर्म और हिन्दू-  
राज्यों का राज्य है ।

बाली और लम्बक-द्वीप जावा के पूर्व हैं । ये तो  
जहाँ पर सैकड़ों छोटे बड़े द्वीप हैं ; पर हिन्दुओं का  
अब केवल इन्हीं दो द्वीपों में बाकी रह गया है ।  
इन द्वीपों ने इन दोनों द्वीपों को देखा है उनका  
अर्थ है कि ये द्वीप प्राकृतिक सौन्दर्य में अद्वितीय  
हैं । यहाँ के नगर और ग्राम संसार के बड़े बड़े  
नगर, मनाहर और शोभासम्पन्न स्थानों से टकर ले  
जाते हैं । बाली द्वीप की बनावट बड़ी विचित्र है ।

यह बीच में तो खूब ऊँचा है ; पर चारों ओर ढालू  
होता चला गया है । कहते हैं कि इन दोनों द्वीपों के  
चारों तरफ का समुद्र सदा तरङ्गसङ्कुल रहता है ।  
वहाँ अकसर तूफान आया करते हैं । इसलिए जहाज  
के द्वारा इन टापुओं में जाना बड़ा विपन्नक है ।

बाली और लम्बक द्वीप के आदिम निवासियों  
को शशक कहते हैं । उनको पराजित करके हिन्दुओं  
ने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया है । सुनते हैं कि  
लम्बक द्वीप के कुछ शशक इस समय मुसलमान हो  
गये हैं । परन्तु यहाँ के अधिकांश निवासी हिन्दू ही  
हैं और उन्हीं का इन द्वीपों में राज्य है । हिन्दू लोग  
शशक-मुसलमानों पर किसी प्रकार का अत्याचार  
नहीं करते ; किन्तु उन लोगों से अच्छी तरह मिलते  
जुलते हैं । यहाँ का राज्य यद्यपि राजतन्त्र है, तथापि  
सर्वसाधारण-जन राजशासन से अप्रसन्न नहीं हैं ।  
हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि किसी किसी अपराध का  
दण्ड बड़ा ही कठोर है । इस राज्य में चारों को अब  
भी प्राणदण्ड दिया जाता है । व्यभिचारी ( स्त्री-पुरुष  
दोनों ही ) बाँध कर समुद्र में फेंक दिये जाते हैं ।  
सतीत्व-धर्म का इतना अधिक सम्मान किया जाता है  
कि पता लगते ही असती स्त्रियाँ तुरन्त मार डाली  
जाती हैं । एक बार किसी व्यभिचारिणी स्त्री को एक  
यूरोपियन सौदागर ने अपने यहाँ रख लिया । खबर  
लगते ही राजा का दूत साहब के घर पहुँचा । साहब  
और कुलटा एक कमरे में बैठे बातें कर रहे थे । यह  
देखते ही राज-दूत क्रोध से जल उठा । उसने आव  
देखा न ताव, म्यान से तलवार निकाल कर उस  
असती का सिर धड़ से जुदा कर दिया और यह कह  
कर वहाँ से चल दिया कि हमारे राजा ने साहब को  
ऐसा ही पुरस्कार देने के लिए कहा था ।

बाली और लम्बक के निवासियों में जितने हिन्दू  
हैं वे प्रायः सभी शैव हैं । केवल दो चार बौद्ध हैं ।  
शैव लोग चतुर्वर्ण में विभक्त हैं । वहाँ वाले इन्हें  
अपनी भाषा में ब्राह्मण, सत्रिय, विषिय और शूद्र  
कहते हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये  
शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के परिवर्तित



उच्चारण मात्र हैं। बालीनिवासी चतुर्वर्ण को “चतुर्जन्म” कहते हैं। उच्च जाति के लोग नीची जाति की कन्या के साथ विवाह कर सकते हैं; परन्तु उन्हें अपनी कन्या नहीं दे सकते। यदि ऐसा सम्बन्ध कहीं हो जाता है तो उससे जो सन्तान होती है वह वर्ण-सङ्कर कहलाती है। असवर्ण-विवाह में कोई बाधा नहीं दे सकता। तथापि ऐसा सम्बन्ध धर्मानुमोदित नहीं समझा जाता। केवल सवर्ण-विवाह ही को वे लोग धर्मानुकूल समझते हैं। इस हिन्दू-राज्य में जितने नगर और ग्राम हैं उनमें केवल चतुर्वर्ण ही रह सकते हैं। कुम्हार, धोबी, रंगरेज, चमार और मेहतर आदि नगरों और ग्रामों के भीतर नहीं रह सकते; उनके लिए गाँव के बाहर स्थान नियुक्त होता है। वे लोग वहीं रहते हैं। इन सब जातियों को बाली के चतुर्वर्ण हिन्दू चाण्डाल कहते हैं और उन्हें छूते तक नहीं।

इन चतुर्वर्ण-हिन्दुओं में केवल वैश्य और शूद्र ही नाना प्रकार के देवताओं और देवियों की मूर्तियों की पूजा करते हैं। ब्राह्मण लोग किसी प्रकार की मूर्ति नहीं पूजते। यहाँ ब्राह्मणों का प्रताप अब भी अशुण्य है और सर्वसाधारण उन्हें भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। क्षत्रिय लोग सेना और विचार-विभाग में काम करते हैं। ब्राह्मण लोग शिक्षा धारण करते हैं; पर यज्ञोपवीत नहीं पहनते। मन्त्रोच्चारण में ओंकार का व्यवहार प्रचलित है। परन्तु वहाँ वाले इसे “ओंग” कहते हैं। शिवजी की पूजा करते समय वे लोग—“ओंग शिव चतुर्वर्ज”—यह मन्त्र पढ़ते हैं। ये शब्द “ओं शिव चतुर्भुज” का केवल विगड़ा हुआ रूप है।

बाली-द्वीप के ब्राह्मणों के हिन्दू खाद्यान्न का कुछ भी विचार नहीं रखते। वे गोमांस तक खाते हैं; अन्य पशु-पक्षियों की तो बात ही क्या है। मुर्गी और सुअर का मांस तो वहाँ वालों का अत्यन्त प्रिय खाद्य है। यह बात बाली के केवल क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों ही की है। वहाँ के ब्राह्मण निरामिषाहारी हैं। उनमें से कोई कोई ऐसे भी हैं जो केवल फल-

फूल खाकर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं; खाद्य पदार्थ हाथ से भी नहीं छूते।

द्वीप में भिखारी ढूँढने पर भी नहीं मिलते। यदि कोई मनुष्य कोई साधारण पाप-कर्म करता तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। परन्तु प्रायश्चित्त करनेवाले को शारीरिक दण्ड नहीं भोगना पड़ता। गोबर या गोमूत्र भी नहीं खाना पड़ता। किन्तु वह अपना प्रियतम खाद्य त्याग करता है तब किशुफा में जाकर अज्ञात वास करता है और ब्रह्मचर्य धारण करता है। तभी उसका प्रायश्चित्त होता है। बाली और लम्बक में सतीदाह की प्रथा भी वर्तमान है। इसे वहाँ वाले “सत्य” कहते हैं। यह प्रथा क्षत्रियों और वैश्यों में विशेष रूप से प्रचलित है। यहाँ के हिन्दू बहु-विवाह कर सकते हैं। इसलिए यह अकसर देखा जाता है कि मनुष्य के मरने पर कई विधवायें चिता पर जलाती हैं। मृत मनुष्य का सत्कार करने की प्रणाली यहाँ विचित्र सी है। जब कोई मनुष्य मरता है तब उसका समय वह जलाया नहीं जाता; किन्तु एक महीने के बाद उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की जाती है।

साधारण आदमियों की अन्त्येष्टि-क्रिया तरह की जाती है उस तरह राजा की नहीं जाती। रानियों की सहमरण-रीति भी कुछ अलग है। राजा की अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हो जाने के दिन सब रानियाँ एक निर्दिष्ट स्थान पर इकट्ठी होती हैं। उस समय पटरानी एक गोला फेंकती है। गोला जहाँ गिरता है उसी जगह रानियाँ अपनी अपनी छतियों में छूरियाँ भोंक लेती हैं। इस तरह उनकी सहमरण-क्रिया समाप्त हो जाती है।

बाली द्वीप में शालिवाहन का शकाब्द व्यवहृत है। वहाँ वाले इसे “शकवर्षचक्र” कहते हैं। यहाँ के शैव लोगों के पास बहुत से लिखित ग्रन्थ पाये जाते हैं। इनमें से प्रधान ग्रन्थों के नाम उन लोगों की बोली में ये हैं—



भाग ५ ]

सारसमुद्रयागम, देवागम, मैश्वरलत्त्व, गम्यागम इत्यादि । वहाँ के अनेक विद्वान् विलुप्त हो गये हैं ।

बाली और लम्बक द्वीप के हिन्दू पहले जावा में मुसलमानों के भय से वे वहाँ से बहुबाहु राजा के साथ बाली द्वीप में चले आये । ये जावा में कब और किस सिलसिले से आये थे, किन्तु यह बात कोई नहीं जानता । हाँ, इतना पता अवश्य है कि कलिङ्गदेश के शैवों ही ने जावा में बौद्ध धर्म स्थापित किया था ।

भाषा, धर्म, आचार, व्यवहार आदि सभी बातें और काल के भेद से विभिन्न हो जाती हैं । विशेष रूप से विभिन्न हो जाने पर भी उनमें कुछ कुछ समानता रहती है । बाली द्वीप की भाषा, धर्म, आचार और व्यवहार में भी इसका परिचय पाया जाता है । इस द्वीप तथा आस पास के अन्यान्य द्वीपों की भाषा के साथ संस्कृत का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । इस बात को इन द्वीपों में जाने वाले एक भारतीय लोगों ने स्वीकार किया है ।

भारत-महासागर के इन दो हिन्दू-द्वीपों का इतिहास इस समय भी तिमिराच्छन्न है । इन द्वीपों में हिन्दू लोगों ने कब और किस प्रकार उपनिवेश स्थापित किया, इसका लिखित इतिहास न तो बाली द्वीप में मिलता है और न अन्य ही किसी देश में ।

यदि यह मान लिया जाय कि शैव लोगों ने यहाँ उपनिवेश स्थापित किया तो यह भी मानना पड़ेगा कि यहाँ घटना बौद्ध धर्म के आविर्भाव होने के पीछे है । बाली द्वीप में शकाब्द का प्रचलन भी इस बात को पुष्ट करता है । परन्तु उपनिवेश-स्थापन करने के पहले भी हिन्दू लोग इन द्वीपों में प्राचीन काल से आते जाते थे । इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं । मृत्यु के बाद एक मास तक शव रखना प्राचीन प्रथा है । बौद्ध धर्म के आविर्भाव के बहुत पहले भी भारतवर्ष में इसका

भारतवर्ष की भाषा (संस्कृत) बाली आदि द्वीपों में वहाँ की असभ्य भाषाओं के मेल से जिस प्रकार बदल गई है उसी प्रकार भारत के आचार-व्यवहार भी वहाँ परिवर्तित हो गये हैं । जब स्थान, काल और पात्र के भेद से भारतवर्ष ही के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न आचार-व्यवहार और भाषायें प्रचलित हैं तब यदि समुद्र पार के द्वीपों की भाषा, आचार और व्यवहार भारत की भाषा, आचार और व्यवहार से कुछ कुछ भिन्न हो जायँ तो आश्चर्य ही क्या है ? इस भिन्नता के होते भी भारतवर्षीय हिन्दुओं और बाली आदि द्वीपों के हिन्दुओं के आचार-व्यवहार और भाषा में बहुत कुछ सादृश्य वर्तमान है । जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इन द्वीपों के हिन्दू भारत के प्राचीन हिन्दुओं के अध्यवसाय के कीर्ति-चिह्न-स्वरूप होकर अब भी उनकी गौरवपताका पहना रहे हैं ।

भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य ।

## जल का घनत्व ।

जल पदार्थ के किसी भाग के ठोस पन को कहते हैं । इसी पर उस भाग का हलका या भारी होना अवलम्बित रहता है ।

जब हम जल से उष्णता निकाल कर उसे शीतल करते हैं तब वह धीरे धीरे शीतलता की उस अवस्था को प्राप्त हो जाता है जिसमें वह बर्फ की सूरत में परिणत होने लगता है । जल की इस नितांत शीतावस्था को वैज्ञानिक लोग “शीतबिन्दु” (Freezing Point) कहते हैं । उस समय यदि सेंटीग्रेड (Centigrade) नामक तापमान यन्त्र से परीक्षा की जाय तो उसका पारा ९° शतांश पर आ जाता है ।

जल में यह एक विशेष प्राकृतिक गुण है कि उसका घनत्व एक निर्दिष्ट शीतावस्था तक ही बढ़ता

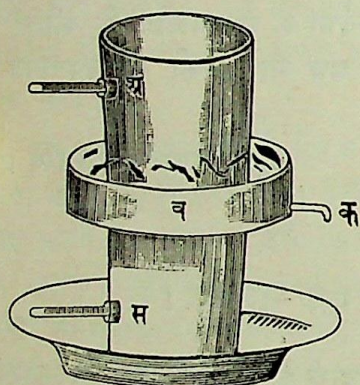


है। यदि वह उससे अधिक शीतल किया जाय तो उसका घनत्व अन्य पदार्थों की तरह बढ़ने के बदले घटने लगता है।

जल का सबसे अधिक घनत्व ( Maximum Density ) उस समय होता है जब उसमें रखे हुए तापमान-यन्त्र का पारा  $4^{\circ}$  शतांश पर आता है।

जल का यह अद्भुत गुण निम्नलिखित परीक्षा से भली भाँति प्रकट होता है।

किसी धातु का ( अ, व, स ) लम्बा ग्लास लो, जैसा कि चित्र में दिया हुआ है। इस ग्लास के ऊपरी मध्य भाग को एक ऐसे ( व ) जेकेट ( Jacket ) से चारों तरफ घेर दो जिसमें बर्फ के टुकड़े सुगमता से रखे जा सकें।



( ब ) जेकेट में एक ( क ) नली लगा दो, जिससे होकर घुले हुए बर्फ का जल निकल जाय। पूर्वोक्त ग्लास में ऊपर और नीचे ( अ, स ) दो छिद्र होने चाहिए। उन्हें

दो छेददार कागों ( Corks ) से बन्द कर दो और उन कागों के छेदों में होकर दो तापमान-यन्त्र इस तरह लगा दो कि उनका वह भाग जिसमें पारा रहता है ग्लास के भीतर पहुँच जाय। अब ग्लास में जल भर दो और इस जल को एक या दो बार किसी वस्तु से चला दो जिसमें जल में ऊपर से नीचे तक बराबर उष्णता हो जाने के कारण दोनों ( अ, स ) तापमान-यन्त्रों में पारा किसी एक ही दर्जे पर आ जाय। फिर ( ब ) जेकेट को नमक-मिश्रित बर्फ से भर दो।

उस समय ग्लास के मध्य-भाग का जल बर्फ से शीतल हो जायगा और उसका घनत्व बढ़ जायगा। इससे वह नीचे बैठ जायगा और नीचे का जल ऊपर

आ जायगा। यह बात हम को नीचेवाले ( स ) तापमान-यन्त्र के पारे के उतरने से प्रतीत होगी परन्तु ग्लास के ऊपरी भाग का जल पहली अवस्था में बने रहने के कारण ऊपर वाले ( अ ) तापमान-यन्त्र का पारा उसी स्थान पर रहेगा जहाँ पर वह पहले था। इस तरह जल का उतार-चढ़ाव उस समय तक होता रहेगा जब तक ग्लास के नीचे का जल इतना शीतल न हो जाय कि वह नीचे ( स ) तापमान-यन्त्र के पारे को  $4^{\circ}$  शतांश पहुँचा दे। इसके बाद यदि ग्लास के मध्य-भाग जल और अधिक शीतल होता जाय तो उसका घनत्व कम हो जाने के कारण वह नीचे बैठने के पहले ऊपर आता जायगा। यहाँ तक कि मध्य-भाग में बर्फ छोटे छोटे टुकड़े जम कर ऊपर जायँगे और जल में घुल जायँगे। इससे ऊपर का जल इतना शीतल हो जायगा कि वह ( अ ) तापमान-यन्त्र के पारे को शीतबिन्दु पर ले आवेगा। परन्तु ग्लास की तलहटी का जल  $4^{\circ}$  शतांश पर ही बना रहेगा। इससे यह बात अच्छी तरह साबित होती है कि जल का घनत्व अन्यान्य अवस्थाओं की अपेक्षा  $4^{\circ}$  शतांश पर ही अधिक होता है।

जिस समय हम जल की ऐसी विलक्षणता विचार करते हैं उस समय हमको परब्रह्म परम की दयालुता का परिचय इस भाँति मिलता है:-

जब जल की शीतावस्था  $4^{\circ}$  शतांश पर होती तब वह तरल-दशा में रहता है। परन्तु जब शीतलता शीतबिन्दु पर पहुँच जाती है तब वह की सूरत में जम जाता है। शीत-काल में बहुत नदियाँ और समुद्र के भी बहुत भाग बर्फ से ढाँके जाते हैं। बर्फ का घनत्व कम होने के कारण ऊपर तैरता रहता है और उसके नीचे बहुत तक वह अधिक घनत्व वाला जल रहता है शीतलता  $4^{\circ}$  शतांश पर है। इस जल की लता बहुत धीरे धीरे  $4^{\circ}$  शतांश से बढ़ती है कारण यह उस समय तक तरलावस्था ही में



## प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना ।

( २ )



त संख्या में कितनेही प्रतिष्ठापात्र आधुनिक विद्वानों की सम्मतियाँ उद्धृत करके यह दिखलाया गया है कि इन लोगों ने अत्यन्त सज्जोच-रहित हो कर प्राचीन कवियों के दोष दिखलाये हैं । इनकी की हुई दोषोद्भावना से यह न समझना चाहिए कि जिनके दोष इन्होंने दिखलाये हैं उनसे इनकी शत्रुता थी, अथवा दुराग्रह और द्वेष की प्रेरणा से इन्होंने ऐसा किया है । प्राचीन कवियों के काव्यों की समालोचना करने में इन लोगों ने उनकी प्रशंसा भी की है । परन्तु जहाँ कहीं इन्हें, अपनी समझ के अनुसार, दोष देख पड़े हैं वहाँ इन्होंने उनका निरूपण करने में कसर भी नहीं की ।

यह तो आधुनिक समालोचकों की बात हुई । प्राचीन समालोचकों ने भी अपने पूर्व-कवियों के काव्यों पर दोषारोपण किये हैं । मल्लिनाथ आदि टीकाकारों ने तो कालिदास आदि महाकवियों के शब्द-प्रयोगों पर विचार करते समय कई जगह “निरङ्कुशः कवयः” लिखा है । अतएव प्राचीन कवियों के काव्यों की आलोचना करने में यदि कोई लेखक उन पर निरङ्कुशता का आरोप करे तो चौंकने की कोई बात नहीं । जिन लोगों ने साहित्यशास्त्र पर ग्रन्थ लिखे हैं वे, दोष-निरूपणवाले अध्याय में, पूर्व-कवियों के दोष न दिखलाते तो दिखलाते किसके ? यदि काव्यों में दोष न होते तो दोषों के निरूपण की आवश्यकता ही क्यों होती ? और, यदि, प्राचीन कवियों के दोष दिखलाना बुरा समझा जाता तो अपने अपने ग्रन्थों में दोषप्रकरण को ये लोग जगह क्यों देते ? अब, यदि, इनके दिखलाये हुए दोषों को एक एक करके निर्मूल सिद्ध करने की कोई चेष्टा करे तो उससे या तो यह सूचित होगा कि उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं

कृष्णचन्द्र गुप्त ।



है, या वह दुराग्रह और ईर्ष्या-द्वेष के मद से मत्त होकर दोष दिखलाने वाले की केवल निन्दा करने के लिए ऐसा करता है। परन्तु ऐसा दुष्कर्म करने वाले की लोक में खुद ही निन्दा होती है।

आज हम अलङ्कारशास्त्र पर ग्रन्थ लिखने वाले मुख्य मुख्य विद्वानों के दिखलाये हुए दोषों का दिग्दर्शन कराते हैं। ये सब दोष प्राचीन महाकवियों के काव्यों के हैं और अधिकांश वैसे ही हैं जैसे कालिदास की निरङ्कुशता नामक लेख में दिखलाये गये हैं। जो दोष उस लेख में हमने दिखलाये हैं उनमें से कुछ को छोड़ कर शेष सब दोष ऐसे हैं जिनका उल्लेख प्राचीन टीकाकारों और अलङ्कारशास्त्र के ज्ञाताओं ने पहले ही से कर रखा है। इस बात को हमने उस लेख में कह भी दिया है।

### क्षेमेन्द्र

नाम का एक महाकवि काश्मीर में हो गया है। वह ईसा के ग्यारहवें शतक में विद्यमान था। उस की प्रतिभा अत्यन्त व्यापक थी। विविध विषयों के उसने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उस पर एक अलग लेख सरस्वती में शीघ्र ही प्रकाशित होगा। उसने अपने सुवृत्ततिलक नामक ग्रन्थ में यह दिखलाया है कि किस वृत्त में कौन बातें होने से वह अधिक अच्छा मालूम होता है। उसका मत है कि वंशस्थ-वृत्त में समस्त पद न होने चाहिए, सब चरणों के अन्त में विसर्ग होने चाहिए, और चरणों की सन्धि विच्छेदयुक्त होनी चाहिए। इन लक्षणों से युक्त और अयुक्त पद्यों के उदाहरण देकर उसने अपने कहे हुए लक्षण की यथार्थता साबित की है। प्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट का, वंशस्थ-वृत्त में रचा हुआ, एक पद्य उसने दिया है। वह पद्य यह है:—

नमामि भवोश्चरणांभुजद्वयं सशेखं मौखरिभिः कृतार्चनम् ।

समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोलुठितारुणाङ्गुलि ॥

उसकी राय है कि यह वृत्त अच्छा नहीं। क्योंकि इसमें वे बातें नहीं—वे गुण नहीं—जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। क्षेमेन्द्र बड़ा ही पक्षपात-रहित

समालोचक था। उसने, जगह जगह पर, खुद अपने पद्यों के भी दोष दिखलाये हैं।

क्षेमेन्द्र ने एक और ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम औचित्यविचारचर्चा है। उसमें एक जगह उसने कालिदास पर इसलिए आक्षेप किया है कि उन्होंने कुमारसम्भव में हर-गौरी का सम्भोगशृङ्गार वर्णन किया है। कालिदास का एक श्लोक है:—

ऊरुपूजनखमार्गपक्तिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः ।

वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वती प्रियतमामवासरम् ॥

इस पर क्षेमेन्द्र की टीका सुनिष्ट ।

अत्राभिकासम्भोगवर्णने पामरनारीसमुचितनिर्लेजसम्पन्नजिविराजितोरुपमूलहृतविलोचनत्वं त्रिलोचनस्य भगवत्स्त्रिजगद्गुरुर्यदुक्तं तेनानौचित्यमेव परं प्रवन्धार्थः पुष्पाति ।

अर्थात् तीनों लोकों के गुरु, भगवान् त्रिलोचन के विषय में ऐसी बात कहने से पूर्वोक्त श्लोक अत्यन्त अनौचित्य आ गया है। देखिए, इस का वर्णन करने के कारण कालिदास को सम्भोग ने भी फटकारा, विद्यासागर ने भी फटकारा, विश्वनाथ ने भी फटकारा और अब महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी फटकार रहे हैं। आगे चल कर आपको मालूम होगा कि विश्वनाथ कविराज ने भी, इस का कालिदास पर आक्षेप किया है। परन्तु हिन्दू एक आध “त्रिजगद्गुरु” ऐसे वर्णन को दूषण और भूषण समझते हैं !

क्षेमेन्द्र का कथन है कि जिस रस का उद्बोधन किया जाय वह वर्णन के सर्वांश में व्याप्त होना चाहिए। ऐसा न होने से रस का यथेष्ट परिपोषण नहीं होता। सरस्वती की जनवरी की संख्या चौदहवें पृष्ठ पर हमने कालिदास का—“वर्णनं सति कर्णिकारं” इत्यादि श्लोक उद्धृत करके कहा है कि इसमें रस-सम्बन्धी अनौचित्य है। उसने भी यही बात कही है। औचित्यविचारचर्चा इस श्लोक का अवतरण देकर यह कहता है:—

अत्र केवलकर्णिकारकुसुमवर्णनमात्रेण विधातृवाच्यता प्रस्तुतशृङ्गारानुयोगिना तदुद्दीपनविभावोचितं न किञ्चिदतिरिक्तं



संख्या ५ ]

मतलब यह कि इस वर्णन में कालिदास ने कोई बात ऐसी नहीं कही जिससे शृङ्गार-सम्बन्धी उद्दीपन-विभाव की पुष्टि हो सके । इसमें जो कुछ कहा गया है वह प्रस्तुत शृङ्गार-रस के लिए उपयोगी नहीं ।

कुमारदास बड़ा प्रसिद्ध कवि हो गया है । उसकी बराबरी कालिदास से की जाती है । उसके काव्य "जानकीहरण" की सारे विद्वान् हृदय से प्रशंसा करते हैं । उसका एक श्लोक है:—

अपि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसङ्गमभीरु वल्लभम् ।  
अरुणकोदम एष वर्तते वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः ॥

इसकी लम्बी चौड़ी समालोचना करके क्षेमेन्द्र ने लिखा है:—

तत्र संप्रोपसर्गशून्यशय्या (ब्दा) पूरणमात्रेण निरर्थकत्वा-  
न्निर्दिष्टमेव ।

इसमें क्षेमेन्द्र ने सम् + प्र-उपसर्ग का होना निरर्थक, अतएव अनुचित, बतलाया है ।

भवभूति का एक श्लोक है:—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्ततां  
पुद्गं धीदमनेऽप्यखण्डयशो लोके महान्तो हि ते ।  
यानि त्रीणि कुतो मुखान्यपि पदान्यासन्वरायोधने  
यदा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥

इस पर क्षेमेन्द्र की समालोचना सुनने लायक है:—

अत्राप्रधानस्य रामधृतोः कुमारलवस्य परप्रतापेत्कर्षासहिष्णो-  
रदोषोदीपनाय सकलप्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य प्रधाननायकगतस्य  
तदकादमनखररणापसरणान्यरणसंसक्तवालिव्यापाद-  
नैकनिहितापवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृत  
इति चेत् ।

अर्थात् भवभूति ने इस श्लोक में कुमार-लव-सम्बन्धी वीररस का उद्दीपन कराने के लिए प्रधान नायक रामचन्द्र के विषय के ताड़का-दमन इत्यादि सर्वथा विनाश कर डाला । क्षेमेन्द्र का भवभूति पर यह आक्षेप बड़ा ही कठोर है । परन्तु आज तक इस पर हस्ताल लगाने की किसी ने चेष्टा नहीं की ।

इस कवि ने प्राचीन कवियों के इस तरह के न मालूम कितने दोष दिखलाये हैं । किसी किसी पर तो बहुत ही गुरुतर आक्षेप किये हैं । परन्तु उन सबका उल्लेख इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता ।

## मम्मट भट्ट

क्षेमेन्द्र के बाद हुए हैं । ये भी काश्मीरक थे । इनका काव्यप्रकाश बहुत ही आदरणीय ग्रन्थ है । इसके सातवें उल्लास में दोषों का निरूपण है । इसमें कालिदास, भारवि, भवभूति, भट्टि, राजशेखर और भट्टनारायण आदि कवियों के अनेक दोष दिखलाये गये हैं । मार्च की सरस्वती में कालिदास की निरङ्कुशता नामक लेख का जो अंश प्रकाशित हुआ है उसमें ( १ ) "ते हिमालयमामन्त्र्य" ( २ ) "द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां" ( ३ ) "गाहन्तां महिषा निपानसलिलं" ( ४ ) "सस्तां नितम्बादवलम्बमाना" ( ५ ) "वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता" ( ६ ) "यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां" ( ७ ) "तद्रच्छ सिद्धयै कुरु देवकार्यं" आदि श्लोकों में जो दोषोद्भावनाये की गई हैं उन सबका उल्लेख मम्मट ने काव्यप्रकाश में किया है । उनके सिवा कुमारसम्भव के "महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिः", रघुवंश के "जुगोपात्मानमत्रस्तः", विक्रमोर्वशीय के "नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः" आदि श्लोकों को भी मम्मट ने दूषित बतलाया है । इनके सिवा कालिदास के और भी कई पद्यों में उसने दोषोद्भावना की है ।

किराताज्जुनीय में भारवि का एक पद्य है:—

तपस्विभिर्या सुचिरेण लभ्यते प्रयत्नतः सन्निभिरिष्यते च या ।  
प्रयान्ति तामाशु गतिं यशस्विनो रणाश्रमेधे पशुतामुपागताः ॥

इस पर मम्मट का आक्षेप है:—

अत्र पशुपदं कातरतामभिव्यनक्तीत्यनुचितार्थम् ।

उसका कहना है कि रणरूपी अश्वमेध में जो लोग मरते हैं उन्हें पशु कहना अनुचित है । भारवि के तो न मालूम कितने श्लोकों को मम्मट ने दूषित सिद्ध किया है ।



भवभूति के मालतीमाधव में एक श्लोक है ।  
उसका आरम्भ इस प्रकार है:—“जगति जयिनस्ते  
ते भावा नवेन्दुकलादयः” । इस पर मम्मट ने व्याह-  
तत्व-दोष लगाया है ।

प्रसिद्ध भट्टि-काव्य में एक श्लोक है:—  
सोऽव्यष्ट वेदास्त्रिदशानयष्ट पिःतृताप्सीं सममस्त बन्धून् ।  
व्यजेष्ट षड्वर्गमस्त नीतौ सपूजघातं न्यवधीदरींश्च ॥

इसे मम्मट ने श्रुतिकटु-दोष के उदाहरण में  
उद्धृत किया है ।

इस साहित्यशास्त्र-प्रणेता ने अपने ग्रन्थ के  
दोषनिरूपण-प्रकरण को बड़े विस्तार से लिखा है ।  
उसमें इसने अपने भूतपूर्व अनेक छोटे बड़े कवियों  
के दोषों का उद्धोष किया है । हम सिर्फ उसके दिख-  
लाये हुए कुछ ही दोषों का दिग्दर्शन कराना यहाँ पर  
काफ़ी समझते हैं ।

### वाग्भट ।

वाग्भट भी एक प्राचीन और प्रतिष्ठित साहित्य-  
शास्त्र के वेत्ता हो गये हैं । उनके बनाये हुए नेमि-  
निर्वाण-काव्य, काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन और  
वाग्भटालङ्कार बड़े प्रामाणिक ग्रन्थ समझे जाते हैं ।  
काव्यानुशासन के दूसरे अध्याय में उन्होंने भी महा-  
कवियों के दोष दिखलाये हैं । रघुवंश के चौथे सर्ग  
में राजा रघु का दिग्विजय-वर्णन है । उसके उनचा-  
सवें श्लोक का उत्तरार्द्ध है—

तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विप्रेहिरे

इस पर वाग्भट ने लिखा है—

अत्र पाण्ड्या इति बहुवचने तद्धितप्रत्ययलोपे पाण्डवा-  
इति प्राप्नोति ।

इसमें ‘पाण्ड्याः’ शब्द को उन्होंने अशुद्ध बत-  
लाया है । वे कहते हैं कि उसकी जगह ‘पाण्डव’  
होना चाहिए । इसी तरह कालिदास के—तं पातर्या  
प्रथममास पपात पश्चात्—में ‘पातर्यामास’ के  
बोच में ‘प्रथमं’ पद का आ जाना वे संस्कृत-व्याक-  
रण-विरुद्ध समझते हैं । उनकी टीका है—

अत्र पातर्यामासेऽपि अथवधानेन प्रयोगः प्राप्नोति ।  
फरवरी की सरस्वती के पैंसठवें पृष्ठ पर इस  
दोष का उल्लेख किया जा चुका है ।

शिशुपालवध के बारहवें सर्ग में माघ ने लिखा  
है—“व्यथां द्व्येषामपि मेदिनीभृताम्” । इसके विषय  
में वाग्भट की राय है:—

अत्र द्व्येषामिति न प्राप्नोति ; द्वयानामिति भवति ।

‘द्व्येषां’ को वे शब्दानुशासन-रहित समझते हैं ।  
इसी तरह भारवि के—

गाण्डीवी कनकशिलानिमं भुजाभ्या—

माजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः ।

इस श्लोकार्द्ध के विषय में वे कहते हैं—“अत्र  
आजघ्ने इति आत्मनेपदं न प्राप्नोति” । मतलब यह  
कि भारवि ने गलती की । ‘आजघ्ने’ रूप व्याकरण में  
नहीं सिद्ध हो सकता ।

छन्दोऽनुशासन के लक्षण से रहित वृत्त का  
उन्होंने यह उदाहरण दिया है:—

कुरङ्गाक्षीणां गण्डतलफलके स्वेदविसरः

इस पर उनकी टीका है—

इति शिखरिणी-छन्दसि षष्ठे यतिर्या नियता सा नास्ति ।

पाठकों को याद होगा कि मार्च की सरस्वती  
में कालिदास-कृत यति-भङ्ग का जो उदाहरण हमने  
दिया है वह ठीक इसी तरह का है ।

महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श नाम का साहित्य-  
शास्त्र-सम्बन्धी एक ग्रन्थ बनाया है । उसमें उन्होंने  
भी यतिभ्रंशता को दोष माना है । उदाहरण के  
उन्होंने—

स्त्रीणां सङ्गीतविधिमयमादित्यवंशो नरेन्द्रः

इत्यादि पद्य दिया है । यह मन्दाक्रान्ता वृत्त है  
इस वृत्त के चौथे वर्ण पर यति होती है । परन्तु  
उदाहरण में चौथा वर्ण सङ्कोत शब्द का ‘ङी’ है  
और वह पदान्तगत है । इसलिए इसमें यतिभ्रंश  
दोष आ गया है । अतएव काव्यादर्श और काव्यानु-



हृत्वा ५]

काव्य दोषों के दिये हुए उदाहरणों से कालिदास के दोषों के उदाहरण में यह दोष पाया जाता है।

कालिदास के (१) “स्रस्तां नितम्बादवलम्ब-  
कालिदास के (२) “मनीषताः सन्ति गृहेऽपि देवताः”

“तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं” में वाग्भट ने जिन दोषों की उद्भावना की है उनका उल्लेख मार्च की प्रकृति में किया जा चुका है।

कालिदास के—“तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः  
पुनरुत्तरः” में हमने जो पुनरुक्ति-दोष की भावना की है उससे वाग्भट भी सहमत हैं। उन्होंने इस पर लिख दिया है—“अत्रेन्दुरिति पुनरुक्तम्”।

जैसे वाग्भट ने माघ, भारवि, मयूर, भट्टना-  
महर्षि आदि महाकवियों के कितने ही काव्यों में दोष दिखलाये हैं। परन्तु विस्तारभय से हम उन्हें यहाँ पर नहीं लिखते।

## श्रीहेमचन्द्राचार्य

जैन-धर्मावलम्बी महा-पंडित हो गये हैं। उन्होंने जैन-मालूम कितने ग्रन्थ बनाये हैं। प्रतिभा और विद्वत्ता में इनकी तुलना क्षेमेन्द्र से की जा सकती है। काव्यानुशासन नाम का एक ग्रन्थ इनका भी है। यह वाग्भट के काव्यानुशासन से बड़ा है। हमने इन्होंने भी कालिदास के कितने ही पद्यों को उद्धृत करके दिखलाया है। इन पद्यों का उल्लेख “कालि-  
दास की निरङ्कुशता” में, और, यहाँ, इस लेख में भी, हो चुका है। अतएव उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं।

## श्रीविश्वनाथ कविराज

का साहित्यदर्पण नामक अलङ्कार-शास्त्र भी बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन्होंने रस-विशेष का बार बार उद्घोष करना दोष माना है। उसका उदाहरण इन्होंने कालिदास-कृत कुमारसम्भव में दिया है। जिस नायक का जैसा स्वभाव हो उसका वैसा ही नायक न करना प्रकृतिविपर्यय नामक दोष कहलाता है।

इसके उदाहरण में ये लिखते हैं :—

धीरोदात्तस्य रामस्य धीरोद्धतवत् हृद्मना वालिवधः यथा  
वा कुमारसम्भवे पार्वतीपरमेश्वरयोः सम्मोहाश्रङ्गारवर्णनम्।

अब, देखिए, इनको भी कालिदास का हरगौरी-सम्बन्धी वैसा श्राङ्गारिक वर्णन दूषित जँचा है। किराताज्जुनीय में सुरनारियों के विलासादि का जो वर्णन है उसे भी ये दूषित समझते हैं। इनकी राय है कि काव्याङ्ग का हृद् से अधिक विस्तृत वर्णन करना दोष में गिना जाता है। कर्पूरमञ्जरी और वेणीसंहार में भी इन्होंने दोष दिखलाये हैं। भवभूति के महावीरचरित में राम-भार्गव में जिस समय परस्पर संग्राम-सम्बन्धी बातें हो रही थीं उस समय रामचन्द्र का यह कहना कि मैं कङ्कण खोलने के लिए भीतर जाता हूँ अकाण्डच्छेद नामक दोष से दूषित बतलाया गया है।

भारवि के ‘आजज्ञे’ प्रयोग को इन्होंने भी गलत समझा है। इनका कहना है—

इह + + + + व्याकरणलक्षणहीनत्वात् च्युत-संस्कृतत्वम्।

कालिदास के—“द्वयं गतं सम्प्रति शोचनी-  
यतां” इत्यादि पद्य में इन्होंने भी भग्नप्रक्रम दोष बताया है।

माघ के शिशुपालवध में एक श्लोक है—

अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम्।

निरकासयद् विमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका॥

इस पर विश्वनाथ का आक्षेप है कि ‘अपरदिक्’ शब्द से ही गणिका का भाव सूचित हो जाता है। उस शब्द को स्पष्ट लिखने की आवश्यकता न थी। उसके लिखने से पुनरुक्तत्व दोष आ गया।

किराताज्जुनीय के “यशोधिगन्तुं सुखलिप्सया  
वा” इत्यादि श्लोक में इनके अनुसार प्रक्रम-भङ्ग-  
दोष और उसी काव्य के “सहसा विदधीत न  
क्रियां” में पुनरुक्तता-दोष है।

## आनन्दवर्द्धनाचार्य

ने ध्वनि-सम्बन्धी ध्वन्यालोक नामक एक ग्रन्थ की रचना की है। उसमें इन्होंने भी प्राचीनों के दोष दिखलाये हैं।



परिडतराज जगन्नाथ

को हुए अभी दो ही तीन सौ वर्ष हुए । उन्होंने तो रसगङ्गाधर में जगह जगह पर प्राचीनों की उक्तियों का विरोध किया है । इनकी और आनन्द-वर्धन की राय है कि महाकवियों के काव्यों का तत्त्व केवल सहृदय और साहित्य-शास्त्र के ज्ञाता ही अच्छे तरह जान सकते हैं, दूसरे नहीं । जो लोग केवल व्याकरण जानते हैं, उनकी भी समझ में काव्यों का तत्त्व अच्छी तरह नहीं आ सकता । आनन्दवर्धन ने लिखा है—

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते ।

वेद्यते स हि काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥

अतएव काव्य-विषय में अभिज्ञों के सिवा औरों का जिह्वा-चापल्य करना अनधिकार-चर्चा है।

वैयाकरणों के द्वारा दिखाई गई

महाकवियों की भूल ।

पण्डित राजाराम शुक्ल संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। आपने सरस्वती में प्रकाशनार्थ एक लेख भेजा है। उसमें आपने महाकवियों की व्याकरण-सम्बन्धिनी ऐसी कितनी हों भूलों की एक तालिका दी है जिनका उल्लेख वैयाकरणों ने अपने ग्रन्थों में किया है। खेद है, स्थल-सङ्कोच के कारण, हम आपके पूरे लेख को नहीं प्रकाशित कर सकते। परन्तु आप की निर्दिष्ट त्रुटियों के कुछ नमूने हम नीचे देते हैं। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि हमारे वैयाकरण विद्वानों ने व्यास और वाल्मीकि तक की खबर ली है, कालिदास आदि की तो कुछ बात ही नहीं। पाणिनि के

“ पतिः समास एव ”

इस सूत्र के अनुसार समास ही में 'पति' शब्द की 'धि' संज्ञा होती है और उसके रूप 'मुनि' शब्द के तुल्य होते हैं, अन्यत्र नहीं। परन्तु।

“ सीतायाः पतये नमः ”

और

“ नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ”

इन ऋषि-वचनों में समास-रहित 'पति' शब्दों के रूपों में व्याकरण के नियम का उल्लंघन किया गया है। पहले उदाहरण में, 'पतये' की जगह 'पत्यै' और दूसरे में 'पतौ' की जगह 'पत्यौ' चाहिए।

व्यास ने महाभारत में लिखा है:—

“ कृष्णस्य सखिरज्जनः ”

और वाल्मीकि ने रामायण में लिखा है:-

“ सखिना वानरेन्द्रेणा ”

परन्तु इन दोनों उदाहरणों में पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'सखिः' और 'सखिना' ये दोनों कृत गलत हैं। उनकी जगह पर चाहिए—सखा और सख्या। "पतिः समास एव"—इस सूत्र पर टीका करते समय, स्मृतियों और पुराणों में प्रयुक्त 'सखि' और 'पति' शब्द के अशुद्ध रूपों के विषय में, नारद भट्ट ने लघुशब्देन्दुशेखर में लिखा है:—

स्मृतिपुराणेषु पतये-सखिनेत्यादि व्याकरणनिष्पन्न वेनासाधे  
त्रिशंकाद्ययाज्ययाजनादाविव तपोमाह्वाभ्येनासाधुप्रयोगेऽपि कृत्वा  
दोषाभावात् । याज्ञे कर्मण्येवासाधुप्रयोगे दोषाच्च । असाधु  
स्मृतिपुराणाद्यध्ययनविधिबलात् तेषां तपोबलाच्च यज्ञमध्ये तदव्यय  
तत्पाठे दोषाभावः । स्वातंत्र्येणैव प्रयुज्जाना असादादयः प्रयुज्य  
वयन्त्येव । अतएव नदी-संज्ञासूत्रभाष्ये छन्दोवत् कवयः कुर्वन्ति  
त्युक्त्वा नह्येपेष्टिरस्ती युक्तम् ।

मतलब यह कि स्मृतियों और पुराणों में 'पतये' और 'सखिना' आदि प्रयोग हैं वे व्याकरण की दृष्टि से जरूर अशुद्ध हैं। परन्तु ऋषि तपोबल से निकालना केवल यज्ञकर्म में मना है, अन्यत्र परन्तु हम लोग यदि ऐसे प्रयोग स्वतन्त्रतापूर्वक नदी-संज्ञा-सूत्र पर भाष्य रचते समय पतञ्जलि साफ़ कह दिया है कि केवल वेद में आये हुए प्रयोग या रूपों का जो कवि लौकिक ग्रन्थों में प्रयोग करते हैं वे अच्छा नहीं करते। ऐसा करना इष्ट नहीं



गणित, कात्यायन और पतञ्जलि—इन तीनों  
अचार्यों के मत में 'कनु' प्रत्यय केवल वेद में  
है। परन्तु महाकवि कालिदास ने रघुवंश में—  
तं तस्थिवासं नगरोपकपटे

और—  
श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुप्रस्ते  
लिख कर इन आचार्यों की राय में अनुचित  
किया है। क्योंकि 'तस्थिवासं' और 'अधिज-  
ग्मु' में कनु—प्रत्यय है और इस प्रत्यय का प्रयोग  
के सिवा अन्यत्र मना है। इस विषय में तत्त्व-  
विचार ने लिखा है:—“गतानुगतिकतयेत्यर्थः”।  
कवियों ने शुद्धाशुद्ध का खयाल न करके  
गतानुगतिकता से प्रेरित होकर ऐसे प्रयोग  
किये हैं। मतलब यह कि यह एक प्रकार का भेड़िया-  
प्रानपन है। एक को ऐसा प्रयोग लैकिक ग्रन्थों  
में देख दूसरे ने भी कर दिया है।

भट्टिकाव्य के कर्ता बड़े भारी वैयाकरण थे।  
उन्होंने एक जगह:—

हा पितः कासि हे सुभ्रु बह्वेवं विललाप सः  
दिया है। यहाँ “यडुवडुस्थानावस्त्रो”—इस  
नदी-संज्ञा का निषेध होने से, 'सुभ्रु' की  
'सुभ्रु' चाहिए। इस पर भट्टोजी दीक्षित ने  
लिखा है—“प्रमाद एवायमिति बहवः”। अर्थात्  
इसे गलत समझते हैं। इसी तरह माघ-  
कवि शिशुपालवध के:—

जगत्प्रभोरप्रमविष्णुवैष्णवम्  
‘प्रमविष्णुः’ पद को प्रामादिक समझ कर  
महाशय ने लिखा है—“इति निरङ्कुशाः—  
क्योंकि ऐसा प्रयोग वैदिक साहित्य ही में  
लैकिक साहित्य में नहीं।

जो कुछ यहाँ तक लिखा गया उससे यह सिद्ध  
है कि बड़े बड़े विद्वानों ने प्राचीन कवियों के दोष  
को नहीं समझा। इस विवेचन से  
हमें को यह भी मालूम हो जायगा कि कालिदास  
नामक लेख में जिन दोषों का उल्लेख

हुआ है उनमें से दो चार को छोड़ कर शेष सब  
दोषों को संस्कृत के साहित्यशास्त्र-प्रणेताओं ने  
स्वीकार किया है। जो बातें इन महात्माओं ने पहले  
ही से लिख रखी हैं उनका निदर्शन करना भी यदि  
हिन्दी में मना हो तो अगले साहित्यसम्मेलन के  
कर्ताओं से हमारी यह प्रार्थना है कि वे इस विषय  
का एक निश्चय प्रकाशित कर दें, जिसमें आगे के  
लिए लोग सचेत हो जायँ।

## जूलूलैंड अफ़रीका की असभ्य जूली-जाति ।



जूलूलैंड दक्षिण-अफ़रीका का एक  
प्रदेश है। इसका विस्तार कोई  
८९०० वर्ग-मील है। इसके उत्तर  
में स्वाज़ीलैंड और टोंगालैंड हैं  
और पूर्व में भारत-महासागर।

दक्षिण में टुगेला नदी इसे नेटाल से अलग करती  
है। इसके पश्चिम में ड्राकेंसबर्गेन नाम की पर्वत-  
माला है। यह प्रदेश अँगरेज़ी गवर्नमेंट द्वारा संर-  
क्षित नेटाल राज्य के अधीन है। यहाँ की जन-संख्या  
डेढ़ लाख है। उसमें कोई साढ़े छः सौ अँगरेज़ हैं।

इस देश में जूली-जाति का निवास है। इसीसे  
इसका नाम जूलूलैंड है। यह जाति बांटू नामक  
हबशियों की एक शाखा है। नेटाल, केप-कालोनी,  
दक्षिण-पूर्व-अफ़रीका और सोफाला आदि प्रदेशों  
के समुद्र के किनारे वाले हिस्सों में भी इस जाति के  
लोग रहते हैं। कोई कोई इन्हें जूलू काफ़िर भी कहते  
हैं। पर यह इनका उपयुक्त नाम नहीं। काफ़िर  
अरबी भाषा का शब्द है। जंज़िबार और सोफाला  
के अरब लोग इन्हें मूर्ति-पूजन करते देख घृणा से  
इन्हें काफ़िर कहा करते थे। तभी से इनका यह नाम  
पड़ गया।

जूली लोगों का आदिम स्थान कहाँ था और वे  
लोग कब इस प्रदेश में आये, इसका ठीक पता अभी



तक नहीं मिला । कुछ लोगों का अनुमान है कि ये लोग अन्यान्य हबशी-जातियों के पीछे यहाँ आये । इनके आने का समय अंगरेजों के आने के हजार डेढ़ हजार वर्ष पहले माना जाता है । किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है ।

जूली लोगों का रङ्ग-रूप मध्य-जॉर्जिया और कांगोलैंड के निवासियों से मिलता है; पर इनकी भाषा उन लोगों की भाषा से भिन्न है । इनके शब्दों के उच्चारण से हाट्टाट लोगों के शब्दों की तरह खट-खटाहट की ध्वनि निकलती है । इन लोगों के शब्दों की व्युत्पत्ति सेकुआना और डमारा भाषा के शब्दों से अधिक मिलती है । कृषिविद्या, सामाजिक नियम, युद्धविद्या और अस्त्रशस्त्र में पूर्व-अफ्रीका और विकटोरिया न्यांजा के निवासियों से इनका सादृश्य पाया जाता है ।

जूली लोग बांटू श्रेणी की अन्यान्य जाति के लोगों से सुडौल और सुन्दर होते हैं । इन लोगों का रङ्ग भी उन लोगों से कुछ साफ होता है । पहले ये लोग बैल, भेड़ आदि के चमड़े से अपने पहनने के वस्त्र तैयार करते थे, पर अब ये कम्बल और सूती कपड़ों का भी व्यवहार करने लगे हैं । परन्तु इन लोगों को कपड़े लत्ते की परवा बहुत कम रहती है । केवल जाड़े और बरसात में ही ये लोग लम्बा अंगरखा पहनते हैं । अन्य ऋतुओं में मर्द-औरत दोनों कमर से ऊपर का समूचा अंग खुला ही रखते हैं । स्त्रियाँ कभी कभी अपने वक्ष-स्थल ढँके रहती हैं, पर पुरुषों का वक्षः स्थल सदैव खुला ही रहता है । इनके अंगरखों के रङ्ग और काट छाँट में परस्पर बहुत भेद पाया जाता है । कोई कोई काच के मनकों, बटनों और कौड़ियों से अपने अंगरखों को सजाते हैं ।

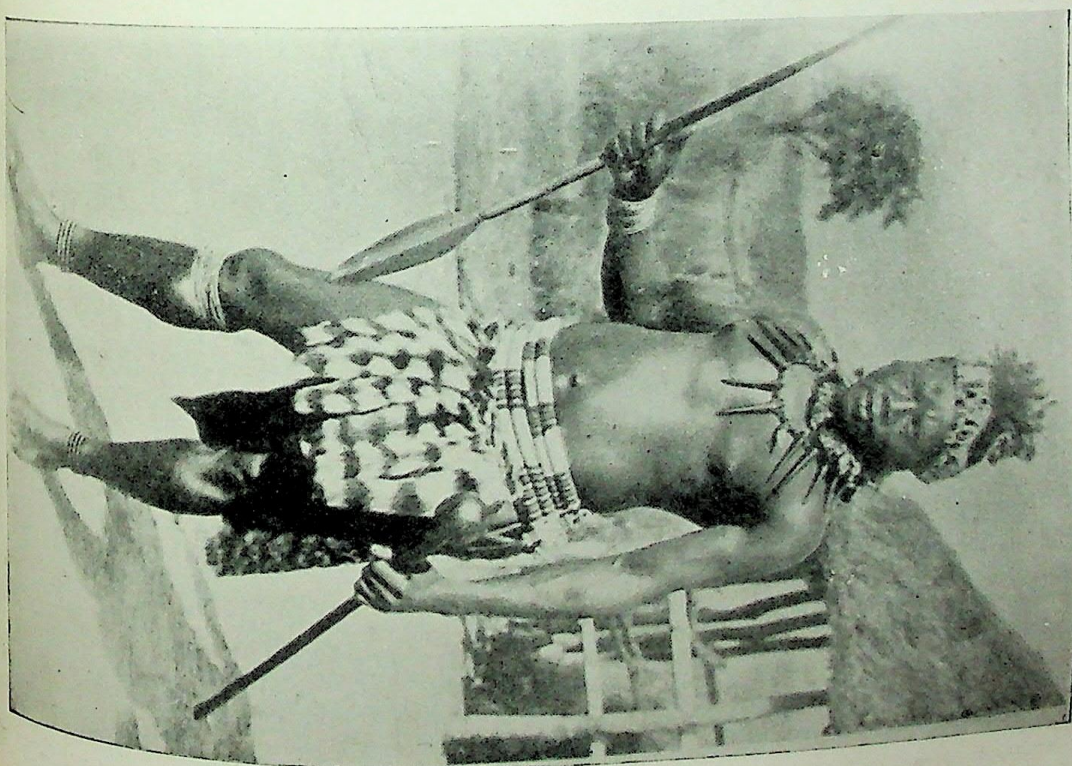
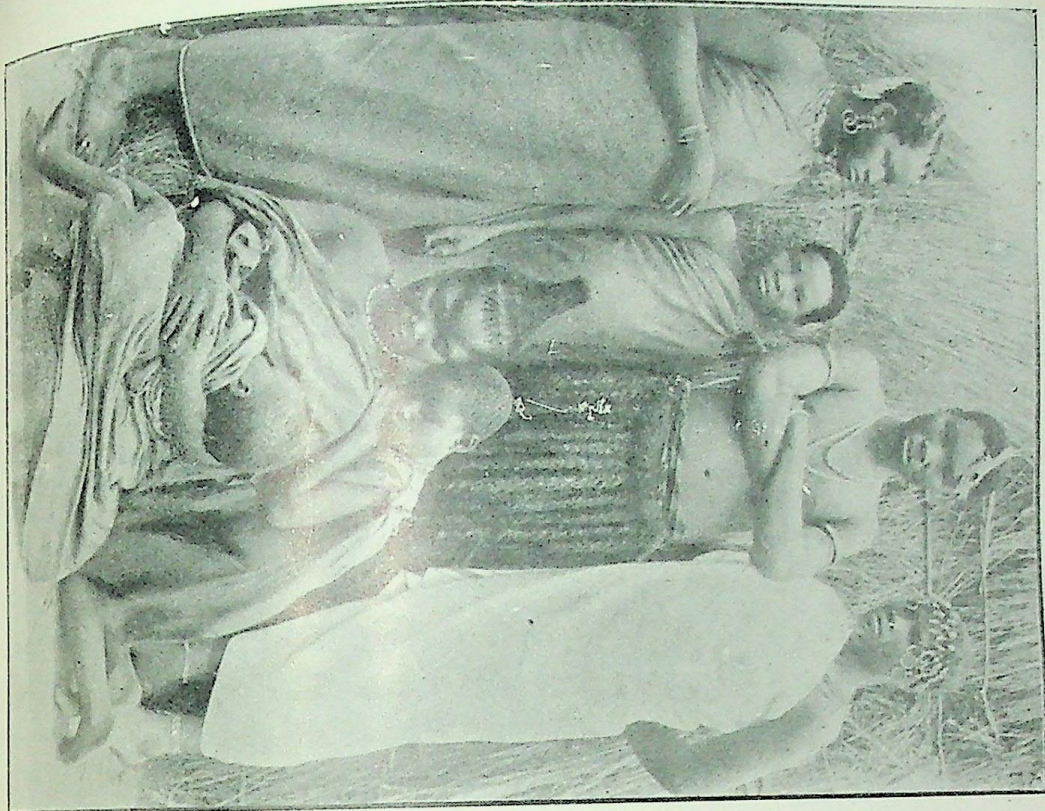
इन लोगों में बाल सँवारने की चाल बड़ी विलक्षण है । मर्द समूचा सिर मुड़ा कर बीच में एक चाँटी रखते हैं । इसी चाँटी में कोई पाँच इंच व्यास का एक चक्र लगा कर ये जूड़ा सा बना लेते हैं । जूड़े में ये लोग कभी कभी चिड़ियों के पर भी खोसते

हैं । तम्बाकू का डब्बा, सूई आदि भी ये जूड़े में रखते हैं । औरते अपने बालों में चरबी तथा कई चीजें लगा कर उन्हें कड़ा बना लेती हैं । उनको एक साथ लपेट कर ऊपर की उठी हुई लम्बी चाँटी तैयार करती हैं । कोई कोई अपने बालों की पतली पतली चाँटियाँ बना कर उन्हें जूड़ा की तरह छाँट देती हैं । दाँतों में मिस्सी मलने की लें लगवाने का भी इन्हें शौक है । अन्यान्य अफ्रीकी जातियों की तरह जूली लोग भी अपना बदन रंगते हैं । इन लोगों में इस रिवाज ने कुछ कुछ प्राचीन भाव धारण किया है । जैसे हम लोगों के यहाँ कर्णवेध या यज्ञोपवीत होता है वैसे ही इनके यहाँ भी एक रस्म होती है । उसके पहले लड़कों का बदन खून और पानी में घुली हुई सफ़ेद मिट्टी से रंगा जाता है । एक बार सिर से पैर तक मिट्टी से रंगा कर लड़के धूल में नंगे नाचने के लिए छोड़े जाते हैं । बदन सूख जाने पर फिर पोता जाता है । इस प्रकार जब तक उनके बदन का रंग उजला नहीं हो जाता तब तक बार बार उनका बदन रंग चढ़ाया जाता है । जवानी में औरते भी अपने बदन को रंगती हैं । नाक, कान और छाँट छिदाने की चाल भी इन लोगों में है । बहुतों औरते तो अपना ऊपर का हाँठ भी छिदा लेती हैं और उसमें बहुत मोटी नथ पहनती हैं । किन्तु यह रवाज धीरे धीरे कम हो रही है ।

जूली लोग छोटी छोटी फूस की झोपड़ियाँ बनाते हैं । वृक्षों की मजबूत और झुकाई जाने वाली शाखाओं को ये ज़मीन में गाड़ देते हैं और दूसरे सिरों को चारों तरफ से झुका कर मिलाने में आते हैं । ऊपर से फूस डाल देते हैं । इसी तरह झोपड़ियाँ बनती हैं । ये झोपड़ियाँ बहुत छोटी होती हैं । इनके भीतर कोई आदमी सीधा नहीं खड़ा हो सकता । इन झोपड़ियों का दरवाज़ा इतना ही होता है कि ये लोग चौपायों की तरह हाथों के बल उसके अन्दर जाते हैं । ये लोग ज़मीन ही पर चटाई और कम्बल बिछा कर सोते हैं और



# सरस्वती

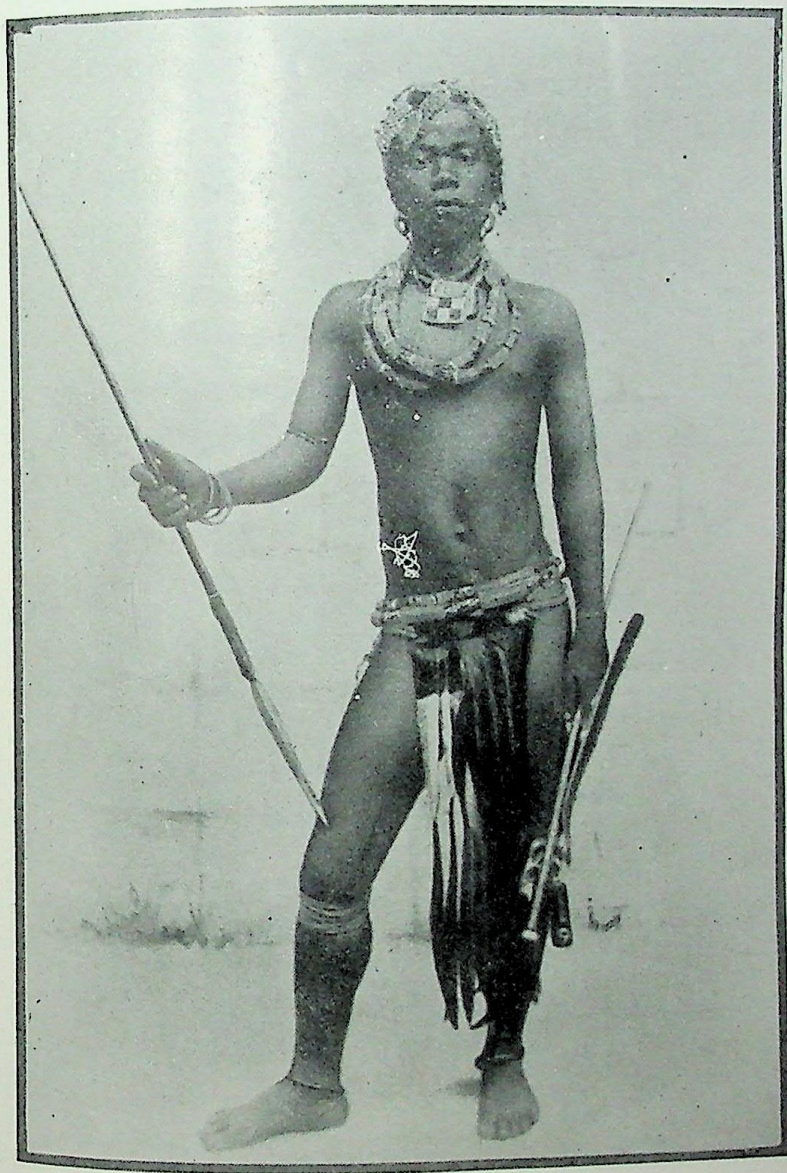








# सरस्वती



एक .जूलू योद्धा ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।









जूल् जादूगरनियों का नाच ।





संख्या ५ ]

विशेष धोड़ते भी  
करते हैं। इन  
ले लोग खाने  
भर कर रखते  
रहती  
जाते हैं। इन  
रसोई बनाने  
मूल भी रहते

इनके भे  
ध, मांस, द  
पि आदि भ  
सद करते

जुली ले  
माता पिता के  
गले की ओर  
जा जाता है  
र लिया तो  
छी हो गई।  
जाता है। त  
पि के सम  
पर बहुत से  
जाते हैं। इन  
का बाधक न  
वस्था पर  
लोगों में है  
रि छी को

जुली ले  
नका विश्वास  
यत्र ठीक  
हाँ रहते थे  
कती हैं। म  
वस्था है। व  
से प्रेत की व  
न्यः प्रेत-नि  
को बड़ो करा



संख्या ५ ]

तो सोड़ते भी है। तकिये का व्यवहार भी ये लोग करते हैं। इनके तकिये मुलायम चमड़े के होते हैं। ये लोग खाने की चीजें और कपड़े आदि वोरों में भर कर रखते हैं। वोरों के मुँह पर पीतल की छल्लियाँ लगा रही हैं। उन्हीं छल्लियों में ताले डाले जाते हैं। इन सब चीजों के सिवा प्रत्येक झोंपड़ी में रसोई बनाने के बरतन और तीर, भाले आदि रखे भी रहते हैं।

इनके भोजन की मुख्य सामग्री जंगली फल, मूँ, मांस, शहद आदि हैं। इसके सिवा ये मछली, मीठी आदि भी खाते हैं। ये लोग शहद को बहुत प्रशंस करते हैं।

जूली लोगों में लड़के लड़कियों की शादी उनके पिता के अधीन है। साधारण तौर पर लड़के भाले की ओर से एक बैल लड़की के पिता के पास लाया जाता है। यदि उसने उस उपहार को स्वीकार कर लिया तो समझा जाता है कि शादी की बात सही हो गई। इसके बाद लड़के वाला फिर एक बैल लाता है। तब शादी का दिन नियत होता है। शादी के समय लड़की को तीन लैंडियाँ, दस बैल और बहुत से कपड़े लड़के वाले की ओर से दिये जाते हैं। इन लोगों का सामाजिक नियम बहुविवाह का बाधक नहीं है, पर यह बात आदमी की आर्थिक अवस्था पर अवलम्बित है। तलाक़ की प्रथा भी इन लोगों में है। किन्तु इसके लिए पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का दोष दिखाना पड़ता है।

जूली लोग अपने पूर्व-पुरुषों की पूजा करते हैं। इनका विश्वास है कि मरे हुए आदमियों की आत्माएँ अन्यत्र ठीक उसी तरह निवास करती हैं जैसे वे जीते रहते थे और आराधना द्वारा वे बुलाई जा सकती हैं। मन्त्र-तन्त्र पर भी उन लोगों का पूरा विश्वास है। कोई शारीरिक कष्ट होने पर वे प्रायः इसे प्रेत की बाधा समझते हैं। उनके चिकित्सक ही प्रेत-निवारण किया करते हैं। ये चिकित्सक को बड़े करामाते दिखाने का दावा करते हैं। ये

कहते हैं कि चिकित्सक जब चाहें पानी बरसा सकते हैं और आँधी तूफ़ान आदि को भी अपने मन्त्र के बल से रोक सकते हैं। डाइन और ओम्भा लोगों से ये लोग बहुत डरते हैं।

जूली लोगों में सुन्नत का रिवाज है। किन्तु मुसलमानी धर्म की और बातें इनमें नहीं। इस समय ईसाई धर्म का प्रभाव इन लोगों पर खूब पड़ रहा है। कुछ लोग ईसाई हो भी गये हैं। जिन लोगों ने यह धर्म स्वीकार कर लिया है उनके सामाजिक नियम भी बहुत बदल गये हैं।

जूली लोग मुरदे को नहीं जलाते। ये उन्हें गाड़ देते हैं। प्रायः ओम्भा लोग अपनी तान्त्रिक क्रिया सिद्ध करने के लिए मुरदों को उखाड़ लिया करते हैं। इससे अमीर जूली लोग अपने सम्बन्धियों की कब्र पर बरसों दिन रात पहरा बिठाये रहते हैं।

शिकार, खेती और पशुपालन ही जूली लोगों की प्रधान आजीविका है। ये लोग लोहा, पीतल आदि गला कर मामूली हथियार बनाना जानते हैं।

जूली लोग बड़े बहादुर और युद्ध-विद्या में निपुण होते हैं। ये लोग पैदल ही युद्ध करते हैं। तीर, कमान, भाला, ढाल, तलवार, गदा आदि इनके मुख्य अस्त्र-शस्त्र हैं। ये कभी कभी दूसरे प्रदेशों पर भी आक्रमण करते हैं। कोई अस्सी वर्ष पहले इन लोगों ने रोडेशिया, जांबेजी, न्यासालैंड तथा जरमनी वालों के पूर्व-अफ्रीका आदि प्रदेशों पर अधिकार कर के वहाँ अपनी भाषा का प्रचार किया था। कुछ जूली सरदारों ने एक दफ़े आधे अफ्रीका को तबाह कर दिया था।

इनके सरदार डेनी जूलू का नाम पाठकों ने अखबारों में पढ़ा होगा। अभी कुछ ही समय हुआ उस ने बगावत करके अँगरेजी गवर्नमेंट को तंग किया था। पर अन्त में वह पकड़ा गया और उसे सज़ा हुई।

जूली लोगों ने अपनी सामाजिक और राज-नैतिक अवस्था में बहुत उन्नति की है। प्रायः सब



असभ्य जातियों में “वीरभोग्या वपुन्धरा” की प्रथा ही प्रचलित है। परन्तु जूली लोगों के राजा वंश-परम्परा के अनुसार ही होते हैं। इनके यहाँ फौज-दारी और दीवानी दोनों तरह के क़ानून हैं। पर वे लिपिबद्ध नहीं हैं। वहाँ क़ानून जानने वाले लोगों की एक श्रेणी है। उस श्रेणी के लोग परम्परा से बराबर क़ानूनी विषयों की ही चर्चा करते आते हैं। वे इस काम के सिवा और कुछ नहीं करते। वहाँ खुली अदालत में न्याय होता है और सबको बोलने की स्वतन्त्रता दी गई है।

## कर्मयोग ।



नवरी, १९०९ की ‘सरस्वती’ में कर्मयोग पर एक लेख पाठकों ने पढ़ा होगा। आज हम दूसरी दृष्टि से उस पर विचार करते हैं।

कर्मयोग का अर्थ है कर्म से होनेवाला ऐक्य। स्थूल दृष्टि से

देखने से यह बात कुछ अटपटी सी मालूम होती है कि कर्म से जीवात्मा का परमात्मा से कैसे ऐक्य उत्पन्न हो सकता है। परन्तु यह केवल विरोधाभास है। “योगः कर्मसु कौशलम्”—इस भगवदुक्ति के अनुसार, कर्म यद्यपि बन्धस्वरूप हैं, तथापि यदि वे चतुरता के साथ किये जायँ तो उनसे मोक्षरूप फल की प्राप्ति हो सकती है। अब यह देखना चाहिए कि वह चतुरता कौन सी है। आगे जो विवेचन किया जायगा उससे यह बात पाठकों के ध्यान में आ जायगी।

प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्व, रजस् और तमस्—इन्हीं तीन गुणों में मनुष्य फँसा हुआ है। सृष्टि के सारे व्यापार इन्हीं तीन गुणों से चल रहे हैं। वास्तव में यही तीन गुण सब कुछ करते हैं; पर मनुष्य को भ्रम हो गया है कि “मैं करता हूँ”। इन्हीं गुणों की खींचतान में पड़ कर मनुष्य भूला हुआ

है। इन गुणों का सच्चा स्वरूप, अच्छी तरह पहचान लेने पर मालूम हो जायगा कि मैं इस सृष्टि से बिलकुल अलिप्त हूँ। श्रीकृष्ण परमात्मा अर्जुन को कुरुक्षेत्र-युद्ध में इसी तत्त्व का उपदेश किया है। संसार में रह कर, प्रारब्ध से प्राप्त कर्म यथावत् करके, गुणों के फन्दे में न पड़ते हुए उनसे अलिप्त रह कर—परमार्थप्राप्ति किस की जा सकती है? इस प्रश्न का उत्तर दुर्लभ है और किसी ग्रन्थ में इतनी खूबी के साथ मिलता जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में मिलता है।

यह सारी सृष्टि त्रिगुणों से बद्ध है। शरीर के स्वामी जीवात्मा को चाहिए कि वह इन गुणों के अधीन न हो, किन्तु उन्हीं को अपने में रखे—अर्थात् अपने को त्रिगुणों से भिन्न कर स्वयं उनका साक्षी होकर रहे। छोटा जिस प्रकार एकदम प्रौढ़ पुरुष का काम नहीं सकता उसी प्रकार मनुष्य एक दम गुणतीत हो सकता। यह बात बड़ी दुर्घट है। इतना ही किन्तु इस बात का प्रयत्न करना ही बड़े संकट का काम है। इस प्रकार का सामर्थ्य सम्पादन करने का प्रयत्न क्रम क्रम से करना चाहिए। पहले इन गुणों का यथार्थ स्वरूप समझ लेना चाहिए। करने से हम इस बात का निश्चय कर सकेंगे हमारे लिए उनमें से कौन गुण कितना उपयोगी होगा।

पहले हम तमोगुण का विचार करते हैं। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण परमात्मा तामसी लक्षण इस प्रकार बतलाते हैं :—

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।  
विवादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामसं उच्यते ॥

अर्थात् जो अयोग्य, विद्याहीन, अनम्र, शठ, आलसी, विवादी और दीर्घसूत्री हो वह तामसी है। तात्पर्य यह कि तामस गुण यद्यपि यह गुण तीनों गुणों में छोटा माना जाता तथापि इसे बिलकुल निरूपयोगी भी नहीं कहें। मुमुक्षु पुरुष को उसका नाश अवश्य करना



[ भाग ५ ]

पहलवान के लिए डंवल या मुद्रर जिस प्रकार उनके बायु मजबूत करने में मदद देते हैं उसी प्रकार तमोगुण भी मुमुक्षु को पहले पहल मदद देता है। मुमुक्षु जब अपनी इच्छाशक्ति प्रबल करेगा तमोगुण का पराजय हो सकेगा। तमोगुण का मनोनिग्रह और इंद्रिय-बन्धन करने के लिए मुमुक्षु को मनोनिग्रह और इंद्रिय-बन्धन नाम के हथियारों की जरूरत है। हमारे धर्म में कर्मकांड विषय का यह भी एक उद्देश है कि यह तमोगुण के साथ कुश्ती लड़ कर उसे हरावे और आत्मा को बल-प्रदान करे। विधिनिषेधों का पालन करना कोई सामान्य काम नहीं। अमुक घड़ी में, अमुक कर्म, अमुक ही रीति से करना मानों आलस, अज्ञान और विवाद आदि तमोगुणी लक्षणों का पराजय कर देना ही स्वभाव लूट जाने पर मुमुक्षु की इच्छा-शक्ति को आगे बढ़ने का अच्छा अवसर मिलता है।

रजोगुणी कर्ता के लक्षण श्रीमद्भगवद्गीता में इस प्रकार किये गये हैं :—

गणं कर्मफलप्रेप्सुर्बुधो हिंसात्मकोऽशुचिः ।

ह्यशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

अर्थात् जो पुरुष रागी (कर्म में आसक्त), कर्म-फल की इच्छा रखनेवाला, लुब्ध, हिंसाळु, अपवित्र और हर्षशोकयुक्त हो वह राजस कर्ता है। सारांश यह कि रजोगुणी मनुष्य को कर्म करने की सदा इच्छा बनी रहती है। परन्तु उसका मुख्य उद्देश यही रहता है कि हमारा शरीर सुख से रहे; दूसरों को सुख भी हो तो कुछ परवा नहीं। इस प्रकार की शक्ति मुमुक्षु के लिए घातक है; पर बिल्कुल निरयोगी नहीं है।

“योजकस्तत्र दुर्लभः”—इस न्याय से भगवान् ने अर्जुन को कर्म करने की एक युक्ति बतलाई है। उस युक्ति से कर्म करने पर रजोगुणरूपी दोष नहीं रहता और सात्विक गुण की प्राप्ति होती है। उसी युक्ति की गीता शास्त्र में “कर्मयोग” संज्ञा है। “कर्मयोगोऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”—यह

वही बीजमन्त्र है जिससे कर्म, बन्धनरूप होने पर भी, मोक्ष साधक बनते हैं। मनुष्य का काम सिर्फ इतनाही है कि वह स्वधर्महित कर्म करे। किये हुए कर्मों का विचार करने तक का उसे अधिकार नहीं है। निष्काम कर्म करने से मनुष्य में पाप-पुण्य का मल इस प्रकार नहीं लगता जैसे पानी में रहते हुए भी कमलपत्र को जल-स्पर्श नहीं होता—“लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा”।

कर्म करने से मनुष्य का सदा यही उद्देश रहता है कि अपने शरीर को सुख मिले। वह सदा इस प्रकार के क्षुद्र हेतुओं के लिए कर्म करता है जैसे अमुक कृत्य करने से मुझे बहुत सा धन मिलेगा, अथवा अमुक कृत्य करने से मेरी कीर्ति होगी, या मेरा सामर्थ्य बढ़ेगा। उसके मन में यह बात कभी नहीं आती कि कर्म से अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिए। यही कारण है जो हम लोग विषयी हो रहे हैं। “कर्मयोग” का मुख्य कटाक्ष यह है कि कर्म का हेतु विषय-सुख नहीं है; किन्तु स्वधर्मानुष्ठान ही उसका मुख्य हेतु है। श्रीकृष्ण परमात्मा ने स्पष्ट कह दिया है कि निरपेक्षता के साथ स्वकर्म करने ही से यह संसारचक्र सुव्यवस्थित रीति से फिरता रहता है। जो इस प्रकार कर्म नहीं करता वह मनुष्य जीवित नहीं है मृततुल्य है। उन्होंने अर्जुन से कहा है कि “मैं स्वयं भी इसी हेतु से कर्म करता हूँ; इसलिए तुम मेरा ही अनुकरण करो”। परमेश्वर का अनुकरण करना क्या है? इसका अर्थ यही है कि मनुष्य को ऐसा बर्ताव करना चाहिए जिससे जगत् का कल्याण हो—स्वार्थान्धता छोड़ देनी चाहिए। स्वधर्म की प्रत्येक विधि इसी तत्त्व पर रची गई है।

कर्म करने के पहले मनुष्य को यह विश्वास कर लेना चाहिए कि कर्म ऋण रूप है। हम लोग संसार के ऋणी हैं। और इस ऋण से मुक्त होना हमारा कर्तव्य है। ऐसा विश्वास रख कर कर्म करने से कुछ दिन में ऋण की कल्पना स्वयं नष्ट हो जाती है। इसके बाद यज्ञ की कल्पना उत्पन्न होती है। मनुष्य बड़े



आनन्द के साथ अपने को—अपने सर्वस्व को—जगत् के लिए अर्पण कर देता है। ऋण की अपेक्षा यह अर्पण की कल्पना अधिक उदात्त है और यहीं कर्म-योग की चरम सीमा है।

मनुष्य जिस कुटुम्ब में जन्म पाता है, जिस समाज में वह बढ़ता है, और जिस देश में वह रहता है उन सबके साथ उसे कुछ न कुछ कर्तव्य है। कुटुम्ब, समाज और देश के साथ जो कर्तव्य-कर्म है उसी का नाम “स्वधर्म” है। प्रत्येक मनुष्य के साथ “स्वधर्म” लगा हुआ है। स्वधर्मभ्रष्ट कभी न होना चाहिए। कभी कभी स्वधर्म की अपेक्षा परधर्म बहुत रमणीय जान पड़ता है। परन्तु श्रीकृष्ण परमात्मा ने अर्जुन से, जोर के साथ, कहा है कि परधर्म चाहे जितना रमणीय हो; पर उसकी ओर देखना भी न चाहिए। यों तो “सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्नि-रिवावृताः” के न्याय से कोई भी धर्म निर्दोष नहीं है। ऐसी दशा में स्वधर्म छोड़ कर परधर्म का स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है। इसके सिवा जिस वर्ण में हम उत्पन्न हुए हैं उसका धर्म हमारी प्रकृति के अनुसार होता है। जिस प्रकार मछलियों के लिए पानीही में रहना हितकारक और स्वाभाविक है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को “स्वधर्म” ही कल्याणकारी है। इसीलिए भगवान् ने कहा है “स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः”, “श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्”—। हाँ, इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि स्वधर्मानुष्ठान निष्काम हो। इस विषय पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं:—

नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

अर्थात् इस मोक्ष मार्ग में निष्काम कर्म करने-वालों के लिए किसी प्रकार का विघ्न नहीं है। वह जितने कर्म करता है सब सफल होते हैं और अन्त में वह इस भयंकर संसार से मुक्त हो जाता है।

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि द्वंद्वों से व्याकुल न होकर, शान्ति के साथ, स्वकर्म करना ही कर्मयोग का मुख्य लक्षण है। कहा भी है:—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

अब, यहाँ पर यह शंका उठ सकती है कि मनुष्य जो कुछ करता है सब अपने सुख के लिए—इस कारण, गीता हमको सब सुखों की इच्छा कर कर्म करने के लिए जो उपदेश करती है कैसे माना जा सकता है? इसके सिवा यदि मनुष्य फल पाने की उत्कंठा रख कर कर्म न करेगा तो उसके उस कर्म के निष्फल हो जाने की सम्भावना है। इसलिए “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन” यह भगवदुपदेश हमको समझ नहीं आता। शंका यद्यपि ऊपर से जबरदस्त मालूम होती है; पर थोड़ा सा विचार करने पर यह ध्यान में आ जाता है कि इस शंका में तथ्यांश नहीं। अकसर देखा जाता है कि जो मनुष्य सुख के लिए बहुत उतावला रहता है उसे सुख नहीं मिलता। जो पुरुष कर्म में हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि द्वंद्वों का ही विचार किया करता है उसके हाथ से कोई भी बड़ा काम नहीं होता। प्रथम तो ऐसा पुरुष किसी काम में हाथ ही नहीं लगाता, और यदि बहुत सोच विचार के बाद काम शुरू भी करता है तो, फल की इच्छा से उसका चित्त लगा रहने के कारण, वह काम सुचारु रूप से पूर्ण नहीं होता। आज तक जगत् में जो अनेक कर्तृत्ववान् पुरुष हो गये हैं वे ऐसे नहीं थे कि फल के विचार ही में उन्होंने अपना मस्तिष्क लगा कर डाला हो; वे बड़े निरपेक्ष थे। शान्ति के साथ जितना अच्छा काम होता है उतना उतावली से नहीं। फल के विषय में असंगतता रखने से काम की हिम्मत कम नहीं होती, किन्तु बढ़ती जाती है। इन सब बातों के सिवा जो पुरुष निरपेक्ष भाव से काम करते हैं उन्हें निराशा या दुराशा की दुःसह अवस्था नहीं सहनी पड़ती। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को के उपर्युक्त उपदेश का सदा मनन करते रहना चाहिए।

हम सबको ‘कर्मयोगी’ बनने का सदा प्रयत्न करना चाहिए। “स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धयं कर्तुं याचते”



इस वचन के अनुसार निष्कामता के साथ कर्म करने से हमको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त हो सकते हैं। अन्त में हमको यह विश्वास दृढ़ होना चाहिए कि—

यन् योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

यन् श्रीविजयो भूतिर्भुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं और जहाँ भूतन धनुर्धर है वहाँ लक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य और अर्थात् धर्मनिष्ठवृत्ति, ये चीजें सदाही बनी रहती हैं—किसी वस्तु की कमी नहीं रहती ।

लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

## शिशु-पोषण ।

जहाँ तक हमें मालूम है, हिन्दी में, आज तक, किसी ने इस विषय पर कोई उत्तम पुस्तक लिखने का प्रयत्न नहीं किया। इस लेख में हम संक्षिप्त रूप से शिशु-पोषण पर मोटी मोटी बातों का जिक्र करेंगे ।

प्रत्येक सभ्य देश, आज कल, अपनी जन-संख्या को बढ़ाने में दक्षचित्त है। इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि पाश्चात्य देशों में अपनी अपनी जन-संख्या-वृद्धि करने की बड़ी चिन्ता है। वहाँ अब अविवाहित स्त्री-पुरुषों पर टैक्स लगाने का विचार हो रहा है। इन देशों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से कहीं अधिक है। उस पर तुरी यह है कि प्रत्येक पुरुष विवाह के बन्धन में फँस कर बच्चेवाला बनना नहीं चाहता। इसलिए यहाँ पुरुषों की संख्या कम हो रही है। वृद्ध कुमारे पुरुष हजारों की संख्या में बढ़ रहे हैं।

सामान्यतः भारतवर्ष में इस प्रकार जन-संख्या की वृद्धि को धक्का पहुँचाने वाला कोई कारण नहीं है। हमारे देश में हर एक आदमी को अधिक या अनुचित अवस्था में एक बार शादी अव-

श्यही कर लेता है। कुछ लोग तो एक से अधिक बार भी विवाह कर डालते हैं। यदि विवाहितों की संख्या के अनुसार हिसाब लगाया जाय तो इस समय भारतवर्ष की जन-संख्या में अन्य देशों की अपेक्षा दूनी वृद्धि होनी चाहिए। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगा कि इस जन-संख्या की न्यूनता का कारण हमारे बच्चों की अकाल मृत्यु है। यद्यपि दरिद्रता, अकाल, महामारी और भूकम्प इत्यादि दैवी आपत्तियाँ भी कुछ न कुछ अंश में देश की जन-संख्या को कम कर देती हैं, किन्तु मुख्य कारण जो हमने लिखा वही समझना चाहिए। यदि जितने बच्चे प्रति वर्ष पैदा होते हैं वे सब किसी उपाय से जीवित रखे जा सकें तो केवल दस ही वर्ष में मालूम हो जायगा कि हमारी असली जन-संख्या कितनी होनी चाहिए।

भारत में इतने बच्चे क्यों अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं? कुछ लोग इस बात को परमात्मा की इच्छा समझ कर सन्तोष करते हैं। कुछ बाल-विवाह को इसका मूल कारण समझ कर इसे रोकने का उपाय करते हैं। कुछ इसे मौसम की खराबो तथा माता के दूध की प्रतिकूलता का परिणाम समझते हैं। गरज, लोग किसी न किसी तरह अपनी मनसमझौती कर लेते हैं।

जिन्होंने कभी स्वास्थ्य-विभाग की सरकारी रिपोर्ट पढ़ी होगी उनको विदित होगा कि बहुत से बच्चे ऐसे रोगों से मरते हैं जो माताओं की अज्ञानता के कारण हो जाते हैं। यदि हमारी कन्या-पाठशालाओं में, अथवा घरों में, विवाह से पूर्व लड़कियों को शिशुपोषण-विषय में कुछ शिक्षा दी जाया करे तो कदापि सम्भव नहीं कि प्रति वर्ष हमारे इतने बच्चे काल के ग्रास बनें।

इतनी भूमिका के बाद हम इस विषय पर दो चार बातें लिखने का साहस करते हैं।

जिस समय तक बालक माता के गर्भ में रहता है उस समय तक उसको मामूली भोजन की आव-



श्यकता नहीं होती—माता के रक्त द्वारा उसे गर्भ-जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में जो चीजें बालक को मिलती हैं, सब माता के द्वारा मिलती हैं। इसलिए जहाँ तक हो सके, माता के स्वास्थ्य पर खूब ध्यान रखना चाहिए।

गर्भिणी स्त्री को अच्छे और पुष्टिकारक भोजन, ताजी हवा, साफ़ पानी और स्वच्छ वस्त्र इत्यादि मिलना चाहिए। थोड़ा बहुत व्यायाम भी उससे नित्य ही कराना चाहिए। सुन्दर दृश्य, अच्छी तसवीरें और उत्तम पुस्तकें उसे देखने को मिलनी चाहिए। इन सब बातों का बालक पर बड़ा असर पड़ता है।

जिस समय बालक गर्भ से बाहर निकले उसी समय उसको किसी अनुभवशील स्त्री के सुपुर्द कर देना चाहिए। जो डाकूर या दाई माता की सेवा में तत्पर है उसे उस समय इतना अवकाश नहीं मिलता कि वह दोनों को सँभाल सके। जो स्त्री बालक को ले उसे सबसे पहले यह देखना चाहिए कि बालक बखूबी साँस लेता है या नहीं। (प्रायः बालक गर्भ से बाहर निकलते ही रोते हैं, जिससे मालूम हो जाता है कि बालक जीता है) इसके बाद बालक के मलस्थान को देख कर उसे ठीक कर देना चाहिए।

अब स्पंज या बहुत नरम फलालेन लेकर बालक के शरीर को नीम गरम पानी से धीरे धीरे पोंछ डालना चाहिए। फिर बहुत महीन मैदा या चावलों का आटा, रुई के फोहे से, बालक के सारे बदन पर लगा देना चाहिए।

सबसे अधिक ध्यान बालक के नाभितन्तु पर देना चाहिए। नाभितन्तु के मुँह पर थोड़ा सा “बोरो-आइओडोफार्म” (Boro-Iodoform) लगाकर उसे महीन गजी के कपड़े से लपेट देना चाहिए। नाभितन्तु प्रायः ६ दिन तक बालक के शरीर पर लगा रहता है, पश्चात् गिर जाता है। उसे कदापि खँचना या बलात् अलग करना अच्छा नहीं।

स्नान इत्यादि करा कर बालक को वस्त्र पहना देना चाहिए। चाहे कैसा ही मौसम क्यों न हो बालक के शरीर से स्पर्श करने वाला वस्त्र हमेशा नरम, गरम और सफ़ेद होना चाहिए। इस काम के लिए सफ़ेद फलालेन बहुत अच्छी चीज है। पैरों को और छाती को छोड़ कर किसी और अङ्गों के वस्त्रों का घनिष्ठ स्पर्श आवश्यक नहीं है। हो सके तो पेट पर एक खास फलालेन की पट्टी हलके हाथ से लपेट देनी चाहिए। इस बात का पूरा खयाल रखना चाहिए कि वस्त्र बालक के साँस लेने में कोई खराबी न डाले। बालक का सिर ऊपर वाला जामा बहुत लम्बा और ढीला होना चाहिए। जन्म लेते ही बालक को माता के स्तनों से लगाने की कोई आवश्यकता नहीं। पर कभी-कभी माता के लाभ के लिए बालक को तुरन्त ही स्तन लगाना पड़ता है।

स्तन्य-पान से पहले स्तनों को इस प्रकार तैयार कर लेना अत्यावश्यक है। प्रसूति से कुछ दिनों पहले ही यह संस्कार आरम्भ कर दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। माता को चाहिए कि वह नित्य अपने उस अंग को साबुन और गरम पानी से धो करे। पहले पहल दूध पिलाने से पूर्व स्तन-स्थान को अवश्य ही धो डालना चाहिए। माता के दूध में पहले पहल चावलों की तरह सफ़ेद सफ़ेद कीले निकलते हैं। वे बालक के लिए जुलाब का काम देती हैं।

यदि स्तन्य-पान कराने में निम्न लिखित बातों का खयाल रक्खा जाय तो माता और बालक दोनों को किसी प्रकार की पीड़ा की आशङ्का नहीं हो सकती।

बालक को हमेशा नियत समय पर दूध पिलाना चाहिए। पृथक् पृथक् अवस्थावाले बालकों के लिए पृथक् पृथक् समय इस प्रकार है—

पहले दो दिन—कुछ नहीं।  
दो महीने तक—प्रति दो घंटे बाद दिन में दो बार दूध पिलाना।  
को केवल एक बार दस बजे।  
प्रातःकाल सात बजे।



भाग ५ ]

प्रति तीसरे घंटे दिन में । रात को सिर्फ एक बार ।

जिन बालकों को माता दूध नहीं पिला सकती या प्राय भी नहीं प्राप्त हो सकती उनके लिए ये नियम हैं :—

प्रथम सप्ताह में—हर दफ़े गाय का दूध आधी छटाँक—कुल २४ घंटे में ५ से ८ छटाँक तक ।

द्वितीय महीने के अन्त तक—हर दफ़े एक छटाँक—२४ घंटे में १० छटाँक ।

तृतीय महीने के अन्त तक—हर दफ़े आधपाव । २४ घंटे में १५ छटाँक ।

चतुर्थ महीने के अन्त तक—हर दफ़े साढ़े तीन छटाँक—२४ घंटे में सवा सेर ।

नियत समय पर दूध पिलाने से कई लाभ हैं ।

सबसे बालक की आदत सुधर जाती है । हाजमा ठीक खराब नहीं होता । निद्रा भङ्ग नहीं होती । भूके लगे या अधिक दूध पी जाने का डर नहीं होता ।

माता को क्रोध नहीं होता, न नींद खराब होती है । दोनों सुखी रहते हैं । बालक हंसमुख तथा रोना मेटा ताज़ा रहता है । उसे कभी कोई रोग नहीं होता ।

माता को चाहिए कि बालक को दूध पिला कर अपने स्तन अवश्य गरम पानी से धो डाले ।

बालक के वस्त्रों का वर्णन हम ऊपर लिख चुके हैं । केवल इतना कहना बाकी है कि कपड़े गरम और नरम तथा आरामदेह होने चाहिए । रंगीन और ज़री गोटे के वस्त्र हानिकारी होते हैं ।

बालक को ताज़ी हवा तथा रोशनी इत्यादि की ज़रूरत ही आवश्यकता है जितनी अन्य मनुष्यों को ।

सुलाए उसका मुँह ढक कर सुलाना या बन्द कमरे में रखना बुरा है ।

यदि बालक पूर्वोक्त प्रकार से पाला जायगा तो तीन महीने में सिर सँभालने और ग्यारहवें या बारहवें महीने बैठने लगेगा । नवें महीने घुटने के

बल चलने, बारहवें महीने खड़े होने और चौदहवें या पन्द्रहवें महीने में चलने लगेगा ।

नौ महीने बालक को अन्न-स्पर्श न कराना चाहिए । मेदे में उस अवस्था तक ऐसे रस नहीं पैदा होते जिनके द्वारा वह दूध के अतिरिक्त कोई और चीज़ पचा सके । मूर्ख माताये इस बात को न जान कर बालकों को सब प्रकार के भोजन खिलाने लगती हैं । इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे को बदहजमी—दस्त वगैरह की शिकायत—हो जाती है । उसका पेट बढ़ने लगता है, शरीर सूखने लगता है, हड्डियाँ नरम पड़ने लगती हैं और कई प्रकार के रोग उसे घेर लेते हैं ।

जिन बालकों को माता का दूध न प्राप्त हो सके या किसी कारण कम प्राप्त हो सके, उनको गाय का दूध गरम करके पिलाना चाहिए ।

बच्चों की मृत्यु प्रायः निम्नलिखित रोगों से होती है ।

क्षयरोग—इसके ये लक्षण हैं । बालक रात दिन बिना किसी कारण के सूखता जाता है । या उसे दस्त, खाँसी और ज्वर हो जाता है । यदि बालक को यह रोग हो जाता है तो प्रायः माताये भूत, प्रेत, डायन इत्यादि औपसर्गिक कारणों का भय करके बच्चे को मन्त्र-तन्त्र से और जादू टोने से अच्छा करने का प्रयत्न करती हैं । उसके खाने पीने, कपड़े लत्ते और ओषधि इत्यादि की विशेष परवा नहीं की जाती । इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा शीघ्र ही चल बसता है और माता महारानी हाथ मलती रह जाती है ।

क्षयरोग प्रायः बालक के शरीर में दो द्वारों से प्रवेश करता है । प्रथम उदर के द्वारा, द्वितीय फेफड़ों के द्वारा ।

उदर में क्षयरोग दूध की खराबियों से उत्पन्न होता है । क्षयरोग वाली गायों का दूध उसका मुख्य कारण है ।



फेफड़ोंवाला क्षयरोग अन्य क्षयरोगी मनुष्यों के संसर्ग से होता है। इसलिए बालक को कभी तपे-दिकवाले बोगमरों के पास नहीं ले जाना चाहिए।

न्यूमोनिया। यह रोग प्रायः सरदी से होता है। यद्यपि वास्तव में इस रोग का कारण एक विशेष प्रकार का सूक्ष्म जंतु है, किन्तु बिना सरदी पाये यह जीव, अन्य किसी कारण से हानि पहुँचाते कम देखा गया है। इसके प्रतिकार के लिए बालकों को ठंडे मौसम में गरम कपड़े पहनाने चाहिए।

प्लूरीसी अर्थात् उरोग्रह रोग। इसके ठीक वही कारण हैं जो पूर्वोक्त रोग के हैं।

स्कोटक ताप। इससे मतलब चेचक इत्यादि से है। यह रोग संसर्गजनित है। बालकों को इन रोगवालों से दूर रखना चाहिए। डाकूर ऐनर के परिश्रम से चेचक के प्रतिकार का उपाय हमारे हाथ में है। टीके के नाम से कोई अपरिचित नहीं। केवल मूर्ख और अपढ़ लोग कभी कभी टीका लगवाने में उज्र करते हैं। किन्तु इनकी संख्या अब दिन प्रति दिन कम होती जाती है। चेचक के लिए टीका रामबाण है।

आमरोग, दस्त, उलटी इत्यादि। ये सब रोग भोजन की खराबी के कारण होते हैं।

अन्य रोग, जो पालन-पोषण में भूल होने के कारण नहीं, बल्कि माता पिताओं के रोगों के कारण या अकस्मात् होते हैं, उनका वर्णन हम यहाँ पर नहीं करना चाहते।

अन्त में हम हिन्दी-हितैषियों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि हिन्दी-साहित्य में स्त्रियों और बालकों की चिकित्सा के ग्रन्थों का बड़ा अभाव है। हमारी स्त्रियाँ इस भाषा के सिवा अन्य कोई भाषा जानती नहीं। इसलिए उनकी शिक्षा के लिए अवश्य कुछ न कुछ उपाय होना चाहिए।

रामनारायण शर्मा—[ लन्दन ]

## शाकभोजन और मांसभक्षण ।



वर्तमान समय में भी इस विषय में प्राणी लोग वही युक्तियाँ पेश करते हैं जैसा यूनान के वृद्धरत्न श्रीयुत प्लूटार्क के समय में मांसाहारी लोग उपलब्ध किया करते थे। यह सच है कि सृष्टि में आत्मरक्षा के लिए हर प्राणी चेष्टा करता है। यह भी निर्विवाद है कि प्राणी ही जीवनयात्रा में सफल-मनोरथ प्राप्त करते हैं। और यह भी अनिवार्य है कि वीर पुरुष सदा भीरु पुरुषों को अपने वश में रखेंगे। परन्तु इस सन्देह नहीं कि “जिसकी लाठी उसकी भैंस” वाला जगद्विख्यात सिद्धान्त प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। वीरत्व केवल शारीरिक बल का प्रतीक नहीं। बुद्धिबल आदि अन्य प्रकार के बल से भी मनुष्य वीर कहलाया जा सकता है। जगत् में जंगम और स्थावर दोनों प्रकार की सृष्टियाँ प्राणियों के आहार हैं। जंगम-जगत् के जीव-जन्तु स्थावर-जगत् में से ही अपना आहार ढूँढ़ते हैं; और, जो प्राणी के मांस पर पलते हैं वे भी पुराने शाकादि पदार्थों का ही सेवन करते हैं; क्योंकि जिन पदार्थों का खाकर प्राणियों का “रसाद्रक्तं ततो मांसं” सिद्धान्त से मांस बना है उसी मांस को उन्होंने खाया है। दूसरे शब्दों में उन्होंने भी स्थावर-जगत् के ही पदार्थ खाये; पर पुराने और संभवतः रोगों परमाणुओं से युक्त पदार्थ खाये। यदि हम आदिम जगत् को कुछ काल के लिए दृष्टि से हटा दें तो भी शारीरिक रक्षा के पवित्र नियमों के अनुसार हमें यह विचार करने की आवश्यकता रहेगी कि मनुष्य की देह मांसाहारियों की बनावट के अनुसार है अथवा शाक-भोजियों की बनावट के अनुसार है। हम इस विषय पर आगे चलकर विचार करेंगे। हम इस विषय पर आगे चलकर विचार करेंगे। यदि केवल युक्तियों पर ध्यान दिया जाय तो हमें यह होगा कि मनुष्य स्वभाव से मांसाहारी नहीं है।



[ पृष्ठा ५ ]

पशुओं की युक्ति—मांसाहारी पशु अपने आहार के लिए प्रायः रातही को शिकार करते हैं। अतएव उन्हें दिन की अपेक्षा रात को देखने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। दिन को उन्हें दीखता भी कम है। विपरीत इसके मनुष्यों में यह बात नहीं। मनुष्य प्रायः रात को विश्राम करते हैं।

पशुओं की युक्ति—फलाहारी प्राणियों के समान मनुष्य को स्वयमेव भी पसीना आता रहता है। प्रत्येक दिन प्रायः एक सेर पसीना उसके शरीर से निकलता है। पर मांसाहारी जन्तुओं को स्वयं पसीना कभी नहीं आता।

पशुओं की युक्ति—मांसाहारी पशुओं को अपना आहार चबाना नहीं पड़ता। कारण यह कि उसमें निशास्ता कम होता है। पर मनुष्य को अन्य शाकभोजी प्राणियों के समान अपना आहार खूब चबा कर खाना पड़ता है।

पशुओं की युक्ति—मनुष्य अन्य फलाहारी प्राणियों के समान होठों से जल-पान करते हैं। विपरीत इसके मांसाहारी जानवर जिह्वा द्वारा जल-पान करते हैं।

पशुओं की युक्ति—फलाहारी जानवरों के मुख में लार अधिक उत्पन्न होती है; और उसी लार से वे निशास्ता वाली वस्तुओं को हल करके आमाशय में ले जाते हैं।

पशुओं की युक्ति—मनुष्यों के दाँत भी निशास्ता को पीसने और बारीक करने के लिए चिपटे और सम होते हैं। विपरीत इसके मांसाहारियों के दाँत बड़े और नुकीले होते हैं।

पशुओं की युक्ति—मांसाहारी जानवरों की आँतें बहुत छोटी होती हैं; फलाहारियों की बहुत बड़ी। शेर की आँतें पाँच फीट लम्बी और मनुष्य की प्रायः २५ फीट लम्बी होती हैं।

पशुओं की युक्ति—सन्तान की उत्पत्ति का क्रम मांसाहारी जानवरों का शाकभोजियों से भिन्न है और मनुष्य शाकभोजियों से मिलता जुलता है।

इन युक्तियों से हमें केवल इतना ही दिखाना अभीष्ट था कि शरीर की बनावट से मनुष्य मांसाहारियों से नहीं मिलता। अब वैज्ञानिक दृष्टि से हमें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है। जो कुछ हम खाते हैं, या संसार में जितने आहार्य पदार्थ हैं, उनमें निशास्ता—चरबी, नमक आदि वस्तुओं के अतिरिक्त उष्णता पैदा करने की सामग्री भी रहती है। फलों और अनाजों में ये सभी पदार्थ न्यूनाधिक अंश में पाये जाते हैं। मांस की बनावट उस रस के सूक्ष्म भाग से होती है जो इन पदार्थों के खाने से शरीर में भिन्न भिन्न तेजावों के मिलने से बनता है और जिसमें मल का अंश नहीं रहता। मांस में मांस-वृद्धि की शक्ति के अतिरिक्त निशास्ता और चीनी का कोई अंश नहीं रहता। अन्य आहार्य पदार्थों अर्थात् अनाजों, दालों और फलों में सब प्रकार की सामग्री न्यूनाधिक भाव में विद्यमान रहती है। फलों, दालों और अनाजों में से किसी एक पर मनुष्य का निर्वाह हो सकता है। मगर केवल मांस पर कदापि नहीं हो सकता। शरीर बना रहने के लिए उष्णता की अतिशय आवश्यकता है और वह उष्णता चीनी से मिलती है। फलों और अनाजों में भी चीनी का अंश होता है; परन्तु मांस में कुछ भी नहीं होता। मांस कितना ही साफ़ क्यों न हो—वह कभी शुद्ध नहीं हो सकता। प्राणियों के जीवित शरीर में रस और मल का सर्वदा संयोग रहता है। रस से मल निकला करता है। शरीर में एक न एक दोष बनेही रहते हैं। मल, मूत्र के अतिरिक्त रक्त में अनेक प्रकार के विकार सर्वदा देखे जाते हैं। रक्त द्वारा सारे शरीर में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। नसों और नाड़ियों में इन दोषों की विद्यमानता से ही रोगों की उत्पत्ति होती है। जब पशुओं का वध किया जाता है तब जहाँ जहाँ पर रक्त का संचलन होता था वहाँ वहाँ रक्त के साथ मिले हुए दोष भी मांस की पेशियों में रह जाते हैं। वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ताओं ने मांस में अनेक प्रकार के रोगों का बीज पाया है। इसी लिए आज कल बीमार



पशुओं के मांस को डाकूर लोग बेचने नहीं देते । अनेक भयानक रोगों का कारण मांस ही बतलाया जाता है । मांस के साथ साथ अशुद्ध और विषैले परमाणु पेट में चले जाते हैं । उत्तम से उत्तम और ताजे मांस में भी अशुद्ध पदार्थों का थोड़ा बहुत मेल होता है । विक्री के लिए जो पशु प्रति दिन मारे जाते हैं उनका मांस खानेवालों में ८० फ्री सदी न्यूनाधिक रोगी हो जाते हैं । यह संभव है कि रोग का आक्रमण कुछ काल के अनन्तर हो, पर होता है अवश्य, पशुओं में आदर्श स्वास्थ्य केवल वन में रहने से होता है; किन्तु पालतू जानवर, जिनका मांस मनुष्य खाते हैं, बहुत कम नीरोग होते हैं । यह सार्व-भौम सिद्धान्त है कि मांस का कोई जितनाही अधिक सेवन करता है उतनाही वह अधिक रोगाक्रान्त होता है । आमवात और नुकरस, अर्थात् बाई का रोग, तो मांसाहारियों में बहुत ही अधिक पाया जाता है ।

विपरीत इसके फलादि का आहार सात्विक आहार है । इस आहार से पवित्र और सूक्ष्म विचारों की सामग्री भी मिलती है । सात्विकाहारही से मानसिक शक्तियाँ उत्तम और निर्मल होती हैं । अनाजों, फलों और दूध आदि आहार्य द्रव्यों से स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है और सदाचार और सौशील्य आदि की ओर प्रवृत्ति भी बढ़ती है । उससे मनुष्य-देह आत्मिक उन्नति करने में समर्थ हो जाता है; मानसिक शक्तियों की भी अतिशय वृद्धि होती है; क्योंकि मन की उत्पत्ति भी तो अन्न ही से है । मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसाही उसका स्वभाव भी हो जाता है ।

मांसाहार उत्तेजक होता है और अन्य उत्तेजक पदार्थों की तरह जीवन को क्षीण करने का कारण हो जाता है ।

जो मनुष्य मादक और उत्तेजक पदार्थों का सेवन करते हैं कदापि दीर्घजीवी नहीं हो सकते । एक पश्चिमी विद्वान् डाकूर ने लिखा है कि “जो मनुष्य चिरस्थायी रोगों से (जो मांसाहार करने से

उत्पन्न होते हैं) पीड़ित हैं उन्हें, जहाँ तक मैंने अनुभव किया है, किसी प्रकार के मद्य-मांस से लाभ नहीं पहुँचा । मैं अपने तीस वर्ष के अनुभव से कह सकता हूँ कि जहाँ कहीं ऐसे रोगियों के साथ मैं इस आहार का प्रयोग किया, सफलता नहीं हुई । परन्तु सात्विक आहार से मुझे आज तक केवल रोगियों के सम्बन्ध में सफलता नहीं हुई ।”

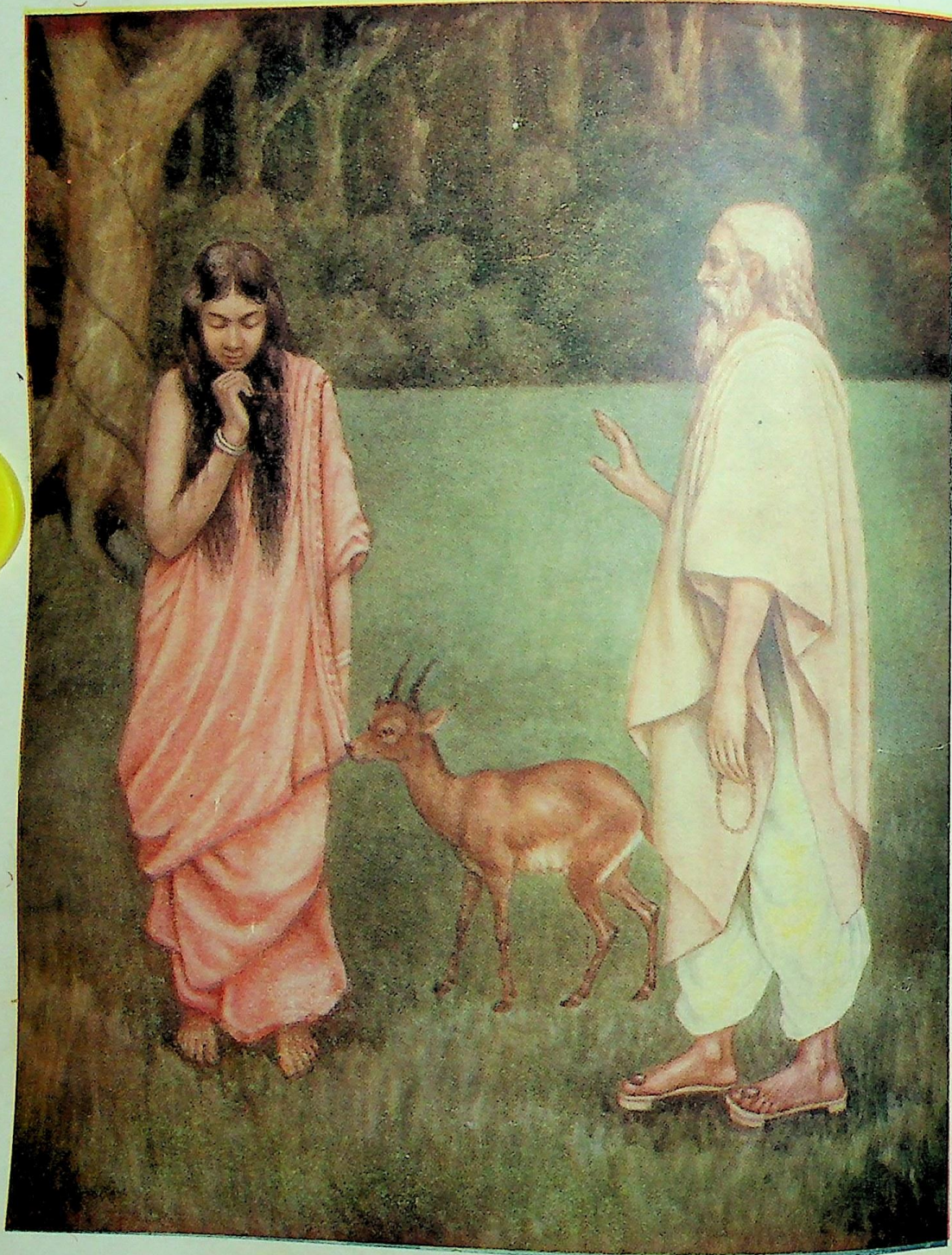
इसी प्रकार कलन नाम के एक और डाकूर कहा है कि “हर मनुष्य, जो आरम्भिक जीवन परिश्रमी है, यदि मांस न खाय तो वात-जनित रोगों से बच सकता है” । ऐसे ही और अनेक अनुभव डाकूरों ने मांस-भक्षण को मनुष्य के लिए असंभाविक बतलाया है । सुतरां, वैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी ऐसी बात नहीं मिलती जिससे मांसाहार की उत्तमता ज्ञात हो । हाँ, कुछ डाकूरों का विचार है कि क्षीण मनुष्य के लिए मांसाहार उपयोगी है । क्योंकि मांस से शरीर की शीघ्र वृद्धि हो जाती है । हम इसे स्वीकार करते हैं और साथ ही कहते हैं कि उन रोगों का भय भी रहता है जो मांस के सेवन से उत्पन्न होते हैं । परन्तु कोई भी वैज्ञानिक विद्वान् इसको अस्वीकार नहीं कर सकता कि जो परमाणु मांस में पाए जाते हैं वे वनस्पतियों में भी पाये जाते हैं । वनस्पति वह सब सामग्री विद्यमान रहती है जो मांस में पाई जाती है । रसायनशास्त्री इस बात को अस्वीकार तरह जानते हैं । भेद केवल इतना है कि दालों, नाइट्रोजन, अनाजों से निशास्ता, फलों से शर्करा, शाकों से लवण और घी-दूध आदि से चर्बी का अंश मनुष्य को प्राप्त करना पड़ता है । यदि हम परिश्रम तथा पुरुषार्थ करें तो वनस्पति से ही अभीष्ट आहार की उतनी ही सामग्री प्राप्त कर सकते हैं जितनी कि मांस से प्राप्त होती है । साथ ही हम उन सम्पूर्ण रोगों से भी मुक्त हो सकते हैं जो मांस के आहार से उत्पन्न होते हैं । अस्तु । इस विचार का निष्कर्ष यह है कि वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य को उपयोगी आहार मांस कदापि नहीं हो सकता । मनुष्य अपना कल्याण चाहते हैं वे सृष्टि की



भाग १५  
 न मैंने अनु  
 स से ला  
 सब से क  
 न साथ में  
 नहीं हूँ  
 केवल  
 १”  
 डाकू  
 जीवन  
 नित रो  
 न अनुभ  
 लए अस्  
 णि से के  
 साहार  
 चार है  
 है। क्यों  
 है। हम  
 न उन ए  
 उत्पन्न  
 को अस्  
 स में ए  
 वनस्पति  
 मांस  
 को अस्  
 दलों  
 से शक  
 चरवी  
 यदि  
 ति से  
 कर सब  
 राथ ही  
 हैं जो मा  
 स वि  
 मनुष्य  
 कता  
 की



# सरस्वती



शकुन्तला प्रती कथेर आशीर्वाद

कण्व का शकुन्तला को आशीर्वाद ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



[ ५ ]

अन्य वस्तुओं से शुद्ध और पवित्र आहार की सामग्री प्राप्त कर सकते हैं ।

प्राणियों को वध करके उनका मांस खाने के विषय में लोग दया, न्याय और करुणा के नाम पर हजारों वर्षों से अपीलें करते आये हैं, परन्तु जिन मनुष्यों के स्वभाव क्रूर हो चुके हैं उन पर इन अपीलों का बहुत कम असर होता है । यदि पढ़े लिखे मनुष्य आत्मा की सत्ता, जन्म-जन्मान्तर की कर्मों और कर्मों की प्रतिपत्ति को समझ लें तो उन्हें किसी भी प्राणी को कष्ट पहुँचाने और उसके प्राण लेने का साहस न हो । पर यदि हम इन बातों को अत्यधार्मिक पुरुषों के विचार के लिए छोड़ दें तो भी वैज्ञानिक दृष्टि से हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य स्वभावतः मांसाहारियों की श्रेणी में नहीं पैदा हुआ है । जिस वनमानुष ( Chimpanzee ) से उसकी समानता बतलाई जाती है और जो मनुष्येतर योनि में उत्पन्न होने के कारण अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं कर सकता वह भी तो स्वभावतः मांस नहीं खाता । स्वास्थ्यरक्षा के लिए भी सात्त्विक आहार की आवश्यकता है । इस लोक तथा परलोक के कल्याणों की सिद्धि के लिए स्वास्थ्य और दीर्घजीवन की आवश्यकता होती है । और यह तभी हो सकता है जब मनुष्य खाने पीने के विषय में दुर्लक्ष्य न करे । इसमें उसका कल्याण है ।

केशवदेव ।

शकुन्तला को कण्व का आशीर्वाद ।

( १ )

शान्त हृदय वात्सल्य-करुण से सना हुआ है,  
कण्व-तपोवन आज सदन सा बना हुआ है ।  
शकुन्तला की विदा आज है पति के घर को,  
तेरे मुनि आशीष उसे ऊँचा कर कर को ॥

( २ )

तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा—  
जो ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा ।

सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे—  
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे ।

( ३ )

गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो;  
सखी-भाव से हृदय सदा सौतेलों का हरियो ।  
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,  
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से ॥

( ४ )

परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो;  
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गव न कीजो ।  
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं;  
उलटी चल कर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥

( ५ )

शकुन्तले ! निश्चिन्त आज हूँ यद्यपि तुझ से,  
सहा न जाता किन्तु विरह यह तेरा मुझसे ।  
अहो ! गृहस्थ-समान मानता हूँ अपने को;  
सच्चा सा मैं आज जानता हूँ सपने को ॥

( ६ )

सुते ! तब स्मृति-चिह्न तपोवन में बहुतेरे—  
देते थे जो महामोद मानस में मेरे ।  
उदासीनता बढ़ा रहे हैं आज सभी ये;  
कुछ के कुछ हो गये दृश्य सब अभी अभी ये ॥

( ७ )

सारा आश्रम आज शून्य सा दिखलाता है;  
वन से भी वैराग्य-भाव बढ़ता जाता है ।  
वनदेवी सी कौन विपिन में अब बिचरेगी;  
मृग-सन्तति अब किसे घेर कर केलि करेगी ॥

( ८ )

कौन मालिनी-तीर नीर लेने जावेगी;  
कौन मछलियाँ चुना चुना कर सुख पावेगी ।  
कौन प्रेम से पुष्प-वाटिका को सीँचेगी;  
कौन अचानक सखी-जनों के हृग मीचेगी ॥

( ९ )

कौन दौड़ कर शीघ्र उठाने को हीरे से—  
नीड-व्युत खग-पोत सँभालेगी धीरे से ।  
खड़-खड़ के वन-विहङ्ग पेड़ों से उड़ कर—  
बोलेंगे मृदु घन-बैठ किस के अङ्गों पर ॥



( १० )

बिना कहे भी कौन अखिल आलसता त्यागे—  
रक्खेगी होमोपकरण वेदी के आगे ।  
मेरे पथ के कौन कास-कण्टक चुन लेगी;  
कौन उचित आतिथ्य अतिथि लोगों को देगी ॥

( ११ )

वेदी खुदती देख हरिण-शृङ्गों के मारे—  
बेटी कह कर किसे बुलाऊंगा मैं द्वारे ।  
किस को आया देख शान्त वे हो जावेंगे;  
अपनी खोई हुई सम्पदा सो पावेंगे ॥

( १२ )

जाने दूँ, यह विषय और भी है दुखकारी;  
सुते ! धैर्य धर, बने मार्ग तेरा सुखकारी ।  
मेरा वह उपदेश कभी तू भूल न जाना;  
शील-सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना ” ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

## अलबरूनी ।



चीन काल से लेकर अब तक न मालूम कितने ग्रीक, रोमन, चीनी, अरब, तुर्क, फ्रेंच और अँगरेज आदि भारतवर्ष में आये हैं। उनमें से सैकड़ों ने भारतवर्ष-विषयक पुस्तकें भी लिखी हैं। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का प्रायः अभाव है। अतएव ये पुस्तकें इस देश का इतिहास संकलित करने में बड़ी सहायक हुई हैं। इस हिसाब से ये ग्रन्थ बड़े ही उपयोगी हैं। परन्तु इनमें से अधिकांश ग्रंथ भ्रमात्मक और ईर्ष्याद्वेष-पूर्ण हैं। कारण यह कि लेखकों ने बिना अच्छी तरह खोज किये ही, जो कुछ उनकी समझ में आया, लिख मारा है। हाँ, कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिन्होंने गहरी खोज के बाद उदारतापूर्वक अपने ग्रंथ लिखे हैं। इतिहासकार अलबरूनी इसी श्रेणी के लेखकों में थे।

अलबरूनी के जीवन का इतिहास नितान्त संक्षिप्त है। वर्तमान खीवा नगर के निकट सन् ९७३

ई० में उनका जन्म हुआ था। उनका असली नाम अबूरैहान था। बाल्यकाल में उन्होंने गणित, ज्योतिष और विज्ञान की शिक्षा पाई थी। धीरे धीरे उन्होंने इन विषयों में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली। अलबरूनी की जन्मभूमि प्राचीन बाल्हीक (बलख) राज्य के अन्तर्गत थी। वहाँ इस्लाम के अभ्युदय पहले बौद्ध धर्म का प्रचार था। युवावस्था में अलबरूनी खीवानरेश के मन्त्री हो गये। इस समय में उन्होंने अपने देश को स्वाधीन बनाये रखने के लिए बड़ी चेष्टा की। परन्तु १०१७ ई० में गुजनी दिग्विजयी सुलतान महमूद ने खीवा की स्वाधीनता के छीन ली और राजपरिवार के साथ अलबरूनी को भी कैद करके गुजनी भेज दिया। यहाँ राजपरिवार का भी बड़ी दुर्दशा हुई। परन्तु अलबरूनी के पाण्डित्य का खयाल करके महमूद ने उन पर कृपा की। उन्हें सुलतान भेज दिया।

सुलतान में अलबरूनी कोई तरह वर्ष रहे। समय उन्होंने संस्कृत सीखने और ज्ञानालोक करने में बिताया। इसके बाद जब सुलतान मूद की मृत्यु हुई तब उन्होंने “इंडिका” की रचना की। इंडिका किसी ग्रन्थविशेष का अनुवाद किन्तु मूल ग्रन्थ है। यह बड़ी दुरूह अरबी भाषा में लिखा गया है। साधारण अरबी जाननेवाला पण्डित नहीं समझ सकता। परन्तु पाश्चात्य पण्डितों ने कृपा से अब उसका अनेक यूरोपियन भाषाओं में अनुवाद हो गया है।

भारतीय साहित्य, दर्शन, गणित, ज्योतिष, धर्मशास्त्र आदि का अध्ययन तथा लोकाचार-व्यवस्था का अध्ययन तथा लोकाचार-व्यवस्था का अध्ययन करके अलबरूनी ने भारतीय शिक्षा, सभ्यता और सदाचार के सम्बन्ध में जो तथ्य सङ्ग्रहित किये थे उसी को वे इंडिका में लिख गये हैं। इंडिका के सिवा अलबरूनी ने ऐसे और भी कई ग्रन्थ लिखे जिनमें उन्होंने भारतीय गणित और ज्योतिष आलोचना की है।

अलबरूनी के इन सब ग्रंथों में कूट कृत पाण्डित्य भरा हुआ है। अब भी बड़े बड़े विद्वानों ने इन ग्रंथों का अध्ययन किया है।



बो भाषा अलबरूनी में सब से बड़ा गुण यह था कि वे नेवाला विद्वान होने पर भी अध्ययनशील थे और मुसलमान पण्डितों होने पर भी हिन्दुओं से द्वेषभाव न रखते थे । यह भाषाओं की इंडिका के प्रत्येक पृष्ठ से प्रकट होती है । उन्होंने उसे एक बार भी पढ़ा है वे उसके लेखक की योग्यता और सच्ची समालोचना-शक्ति पर मुग्ध हुए किता नहीं रहे । उन्होंने जहाँ हम लोगों के आचार, विचार और शिक्षा, दीक्षा के प्रतिकूल समालोचना पायी है वहाँ पर मूल संस्कृत-शास्त्र का प्रमाण अवश्य प्रयुक्त किया है; ऐसा किये बिना उन्होंने कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया । प्रतिकूल समालोचना करते समय उन्होंने एक जगह यह भी लिखा है—“सम्भव है कि इस उद्धृत अंश का कोई सुसङ्गत अर्थ हो; किन्तु अब तक हमने उसे नहीं सुना” । यह हम लिख चुके हैं कि अरबी और ग्रीक-भाषा-विशारद अलबरूनी

अलबरूनी ने जब इंडिका की रचना की थी तब मुसलमान लोग भारतवर्ष को काफ़िरस्तान कह कर घृणा करते और पराजित देश समझ कर उसकी उपेक्षा करते थे। इधर भारतवासी मुसलमानों को स्नेह कह कर तिरस्कार करते और विजेता समझ कर भय खाते थे। उस समय गुज़नी के सुलतान और उनके साथी विजयोल्लास में मग्न होकर भारत-वर्ष का वक्ष विदीर्ण करने में लगे हुए थे। ऐसे समय में एक मुसलमान का काफ़िरी का धर्मशास्त्र पढ़ना और समालोचना करने में धीरता के साथ दार्शनिक प्रणाली से प्रत्येक विषय की मीमांसा करना बड़े विस्मय की बात है। इंडिका से मालूम होता है कि काफ़िर होने पर भी हिन्दू अलबरूनी के विचार में भक्ति और श्रद्धा के पात्र थे। आज कल के यूरोपियन विद्वान् कहते हैं कि इसका एक विशेष कारण था। वह यह कि जिस सुलतान महमूद ने अलबरूनी की जन्मभूमि खीवा की स्वाधीनता हरण की थी उसीने भारतवर्ष को भी जीता था। अतएव स्वाधीनता-रत्नविवर्जित स्वदेशप्रेमी के लिए समदुःखदुःखी एक पराधीन देश के प्रति सहानुभूति का होना स्वाभाविक ही है। जो हो, यद्यपि अलबरूनी ने इसलामधर्म का माहात्म्य-प्रकाश करने में कोई कसर नहीं रखी, तथापि उस हिंसाविद्वेष के युग में भी उन्होंने हिन्दुओं को काफ़िर समझ कर उनसे घृणा नहीं की। इस बात को पाश्चात्य पण्डित भी मानते हैं।

अलबरूनी मूर्तिपूजा को अच्छा न समझते थे। वे कहते थे कि मूर्तिपूजा साधारण आदमियों ही के लिए है; विद्वानों के लिए एकेश्वरवाद है। भारत का वेदान्तसम्मत धर्म इस्लाम के एकेश्वरवाद धर्म से मिलता जुलता है, यह बात अलबरूनी ने कई बार लिखी है।



अलबख़नी ने जिस समय इंडिका रची थी वह समय एशिया-खण्ड के लिए विप्लव का युग था। एक ओर बौद्ध और हिन्दुओं के संघर्ष के कारण बौद्ध लोग विताड़ित हो रहे थे। दूसरी ओर बौद्ध और इस्लाम के परस्पर युद्ध में इस्लाम विजयी हो रहा था। बीच बीच में ईसाइयों और मुसलमानों में भी झगड़ा हो जाता था। इससे ईसाई लोग एशिया से भागे जा रहे थे। इस विप्लव के समय में दर्शनशास्त्रों की चर्चा की जगह बाहुबल और शान्त समालोचना की जगह तेज़ तलवार चल रही थी। इससे कुछ दिन के लिए उच्च शिक्षा विलुप्त हो गई थी। अशिक्षित सेनादल प्राधान्य और प्रतिष्ठा लाभ कर रहा था। इसीलिए विजयेन्मत मुसलमान लोग भारतवर्ष को काफ़िरस्तान कहने में कुछ भी सङ्कोच न करते थे। भारतवर्ष ही के विपुल ज्ञानभाण्डार ने अरबी-साहित्य की प्राणप्रतिष्ठा की है और उसके द्वारा जंगली विदुइनों को विद्वान् बनाया है। इस बात को अलबख़नी की तरह दो चार विद्वानों के सिवा और कोई न जानता था और सुनने पर भी विश्वास न करता था। अलबख़नी भारतवर्ष पर क्यों अनुरक्त हुए थे और बाल पक जाने पर क्यों संस्कृत सीखी थी, यह बात समझने के लिए अरबी-साहित्य की आलोचना करना चाहिए।

यद्यपि अरबी भाषा बहुत पुरानी है तथापि अरबी-साहित्य ग्रीक और हिन्दू-साहित्य की तरह बहुत पुराना नहीं है। कुछ दिन पहले बहुत लोग इस बात को न मानते थे। परन्तु जर्मनी के पुरा-तत्त्ववेत्ताओं ने इस बात को सत्य सिद्ध कर दिया है।

अरबी के प्राचीन साहित्य में केवल कविता ही की अधिकता थी। मरुभूमि अरब के निवासी उसी को यथेष्ट समझते थे। कुछ दिन बाद कुरान और हदीस भी उसमें मिल गई। परन्तु तब भी अरबी-साहित्य में केवल इने गिने ग्रंथ थे। इसके कई सौ वर्ष बाद तक उसकी यही दशा रही। इसमें संदेह नहीं कि अरब की मरुमरीचिका ही में इस्लाम

धर्म का अभ्युदय हुआ था; परन्तु वहाँ उसने गौरव लाभ नहीं किया। सुप्रसिद्ध बुग़दाद राज्य ही इस्लाम धर्म और अरबी-साहित्य का गौरव क्षेत्र हुई।

पश्चिमी देशों के साथ भारत का व्यापार प्राचीन काल में बुग़दाद के ही रास्ते होता था। इसीलिए इन देशों में भारतवासी बराबर आते जाते थे। किसी समय बौद्ध-धर्म-प्रचारकों ने एशिया-खण्ड इन सब पश्चिमी देशों में बौद्ध मत का खूब प्रचार किया था। उनके द्वारा भारतीय साहित्य का प्रचार भी इन देशों में हो गया था। कुछ दिनों बाद इस्लाम धर्म ने आकर बौद्ध धर्म को वहाँ से निकाल दिया और अपना राज्य जमा लिया। बौद्ध धर्म वहाँ से विलुप्त हो गया; परन्तु बौद्ध लोग विलुप्त नहीं हुए। इसका अर्थ यह है कि जो लोग बौद्ध वही मुसलमान हो गये। मुसलमान-राज्य का पहले दमस्कस नगर में प्रतिष्ठित हुआ। परन्तु राज्य संस्थापन की गड़बड़ के कारण वहाँ साहित्य-शक्ति-लाभ न कर सकी। इसके बाद मुसलमान साम्राज्य का केन्द्रस्थान बुग़दाद हुआ। सच पूछें तो यहीं मुसलमानों में ज्ञानपिपासा उत्पन्न हुई। समय विपुल भारतीय साहित्य के सामने क्षुद्र अरबी साहित्य को कोई न पूछता था। अतएव बुग़दाद खलीफ़ा लोग भारतीय साहित्य-भाण्डार को हस्तगत करने के लिए व्यग्र हो उठे। दो कारणों से व्यग्रता और भी प्रबल हो उठी।

इस्लाम धर्म के अभ्युत्थान की प्रथम अवस्था में फ़ारस मुसलमानों के कब्जे में आ गया था। बाहुबल में बलवान होने पर भी बुग़दाद ज्ञानवल फ़ारस के समकक्ष न था। फ़ारस ने किसी समय बौद्ध-शिक्षा के कारण अच्छी उन्नति लाभ की थी। अतएव पराजित होने पर भी फ़ारस बुग़दाद अपेक्षा अधिक ज्ञानोन्नत समझा जाता था। भारतवर्ष की शिक्षा ही फ़ारस की ज्ञानोन्नति का मूल। यह बात जानते ही बुग़दादवासी भारतीय भाण्डार को करतल-गत करने के लिए



भाग ५ ]  
उसने इसी समय ब्रह्मगुप्त के “ब्रह्मसिद्धान्त” का अनुवाद अरबी में किया गया ।

उस समय तक जिन जिन देशों में मुसलमानों का राज्य था उन सबमें भारतीय ज्ञान का यशः-काय फैला हुआ था । उस समय इसलाम केवल एक नवोत्थित महाशक्ति थी, उसके पास पूर्व-ज्ञान-का कुछ भी न था । परन्तु भारतवर्ष बहुत प्राचीन ज्ञान-देश है । मुसलमानों में उसके ज्ञानभाण्डार को खोज करने की इच्छा का होना स्वाभाविक ही था । उसी समय अरबनिवासियों ने भारतवासियों से ज्योतिषविद्या का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया । इससे वे सब लोग मानते हैं ।

सुप्रसिद्ध खलोफा हारुनुरशीद के समय में अरबी-साहित्य की खूब उन्नति हुई । प्राचीन भारत के “नवविहार” नामक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ के ‘परमक’ नामक बौद्ध यति के वंशधर इस समय हारुनुरशीद के मन्त्री थे । ये इस समय मुसलमान हो गये थे और ‘वरमक’ गोत्रिय कहलेंगे । इनकी चेष्टा से भारतीय गणित, ज्योतिष, धनुर्वेद, दर्शन, विज्ञान और विषचिकित्सा-शास्त्र के सैकड़ों ग्रंथ अरबी भाषा में अनुवादित हुये गये । इसके साथ मिश्र और ग्रीस देश का साहित्य मिल कर अरबी-साहित्य को दिन दिन उन्नत करने लगा ।

इस तरह अलबरूनी के पैदा होने के पहले ही अरबी-साहित्य उन्नत हो चुका था । उसको पूर्ण रूप से अध्ययन करने के बाद अलबरूनी के मन में संस्कृत सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई । भारत-वर्ष में निवासित होने पर उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई । उसी समय अलबरूनी भारतीय-साहित्य के केवल मूल ग्रंथों पर पहुँचे थे । अब उसके भीतर प्रवेश करने की धारणा थी कि मूल संस्कृत-ग्रंथ का अरबी-अनुवाद में रक्षित नहीं रहता ।

संस्कृत सीखने पर उनकी यह धारणा बद्ध-मूल हो गई । इस समय अलबरूनी एक मुसलमान साहित्य-प्रेमी के साथ अकसर तर्क-वितर्क किया करते थे । उसका विचार था कि मूल संस्कृत-ग्रंथ अध्ययन करने के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है; अरबी-साहित्य में जो अनुवाद मौजूद हैं वही यथेष्ट हैं । परन्तु अलबरूनी का मत इसके विपरीत था । धीरे धीरे दोनों का वाद-विवाद बढ़ गया । अतएव अलबरूनी ने अपने मत का महत्त्व स्थापन करने के लिए मूल संस्कृत-शास्त्रों के प्रमाण उद्धृत करके इंडिका की रचना प्रारम्भ की ।

इंडिका के पढ़ने से मालूम होता है कि उसकी रचना के पहले अलबरूनी ने कई संस्कृत-ग्रंथों का अध्ययन किया था । इनमें से सांख्यदर्शन, योग-दर्शन, गीता, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, आदित्यपुराण, पुलिशसिद्धान्त, ब्रह्मसिद्धान्त, बृहत्-संहिता, पंचसिद्धान्तिका, करणसार, करणतिलक, भुवनकोश और चरक विशेष उल्लेख योग्य हैं । इसके सिवा रामायण, महाभारत, मानवधर्मशास्त्र, छन्दः-शास्त्र और सामुद्रिक-शास्त्र-विषयक ग्रंथ भी अलबरूनी ने पढ़े थे । क्योंकि इनका उल्लेख भी इंडिका में जगह जगह पर पाया जाता है ।

श्रीकण्ठ पाठक ।

## तारीख से दिन निकालने की तरकीब ।



सन् १७०१ ई० से लेकर २०९९ ई० तक की किसी तारीख के दिन निकालने की तरकीब यह है :—

जिस सन् की तारीख निकालना हो उसे पहले २८ से भाग दीजिए । जो बाकी बचे उसे नकशा १ में ढूँढिए । फिर देखिए कि उसके सामने कौन अङ्क है । (नकशा एक में तीन खाने हैं, जिस सदी



का सन् हो उसी में देखिए । ) इसको अलग रखिए । फिर महीने का नम्बर नक्रशा २ में देखिए । [ इसमें दो चक्र हैं । ( ब ) में उस सन् का महीना देखना चाहिए जिसमें नक्रशा १ में यह ( + ) निशान बना हुआ है और दूसरे ( अ ) में बाकी सन्ओं का ] फिर सन् का नम्बर, महीने का नम्बर और तारीख तीनों जोड़ कर उसमें सात का भाग दीजिए । जितना बाकी बचे उसको नक्रशा तीन में ढूँँटिए । फिर देखिए कि उसके सामने कौन दिन है । बस वही दिन उस तारीख का दिन होगा ।

जैसे यह मालूम करना है कि १० मई, १९५७ ई० को ( जिस दिन बलवा शुरू हुआ था ) कौन दिन था । अब १८५७ में २८ का भाग दिया । बाकी बचा ९ । नक्रशा १ के + १९ वीं सदी के खाने में ९ के सामने २ है । यह सन् का नम्बर हुआ । फिर मई महीने का नम्बर नक्रशा २ के ( अ ) चक्र में १ है । यह महीने का नम्बर हुआ । अब सन्, महीने और तारीख के नम्बरों को आपस में जोड़ा ( २ + १ + १० = १३ ) तो १३ हुआ । इसमें सात का भाग दिया तो छः ( ६ ) बचा । नक्रशा तीन में ६ के आगे इतवार है । इसलिए मालूम हुआ कि दस मई, सन् १८५७ ई० को इतवार था ।

नोट—नक्रशा १ में यह ( + ) जिसे बाकी बचे पर हो उसके सन् को लैंड का साल ( Leap Year ) समझना चाहिए । यानी उसमें फरवरी २९ दिन का होता है । उसके महीने को नक्रशा दो के ( ब ) चक्र में देखना चाहिए । पर सन् १८०० और १९०० लैंड के साल नहीं । इसलिए उनके महीने को ( अ ) चक्र में ही देखना चाहिए ।

## नक्रशा १

१८ सदी में बाकी नक्रशा	१९ सदी में बाकी नक्रशा	२०, २१ सदी में बाकी नक्रशा	नम्बर
०	१२	२४	५
१	१३	२५	७
२	१४	२६	१
३	१५	२७	२
४	१६	०	३
५	१७	१	५
६	१८	२	६
७	१९	३	७
८	२०	४	१
९	२१	५	३
१०	२२	६	४
११	२३	७	५
१२	२४	८	६
१३	२५	९	१
१४	२६	१०	२
१५	२७	११	३
१६	०	१२	४
१७	१	१३	६
१८	२	१४	७
१९	३	१५	१
२०	४	१६	२
२१	५	१७	४
२२	६	१८	५
२३	७	१९	६
२४	८	२०	७
२५	९	२१	२
२६	१०	२२	३
२७	११	२३	४



## नक्शा २



## नक्शा ३



०	सोमवार
१	मङ्गल
२	बुध
३	गुरु
४	शुक्र
५	शनि
६	रविवार

सदानन्दलाल विद्यार्थी ।

## विविध विषय ।

## १-जोधपुर-नरेश का परलोक-वास ।



द की बात है, जोधपुर-नरेश महा-राज सरदारसिंह बहादुर, जी० सी० एस० आई० का गत २० मार्च को शरीरान्त हो गया। अभी आपकी कुछ भी उम्र न थी। तीस ही इकतीस वर्ष में अपने जीवन-यात्रा समाप्त कर दी। आपके दो बेटे हुए थे—एक तो बारह वर्ष की उम्र में, एक अठारह वर्ष की उम्र में। पिछले विवाह को भी दो ही तीन वर्ष हुए। आपके तीन पुत्र पैदा हुए हैं। जेठे पुत्र महाराज-कुमार सुमेरु सिंह पैरु-सिंहासन के अधिकारी हैं। जोधपुर राज्य का बहुत प्राचीन राज्य है। भारतवर्ष का प्रमुख राजा है। यहाँ बड़े बड़े वीर, योद्धा, राजनीतिज्ञ राजा हो गये हैं।

## २-श्रीयुत सत्यदेवजी का अमरीका-

## भ्रमण ।

सरस्वती के चिरपरिचित लेखक और सहायक श्रीयुत सत्यदेवजी अमेरिका में हजारों मील की पैदल यात्रा करके न्यूयार्क को लौट गये हैं। आपने अपने भ्रमण का सचित्र वृत्तान्त सरस्वती में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। वह जैसे जैसे आता जायगा, क्रम क्रम से, सरस्वती में प्रकाशित होता जायगा। आशा है, पाठक इस वृत्तान्त को पसन्द करेंगे और उससे लाभ भी उठावेंगे। सत्यदेवजी का नया फ़ोटो इस संख्या में दिया जाता है। आपका वर्तमान पता यह है:—C/o E. Giltner, 418—118th Street, W., New York City. जिसे उनके साथ पत्र-व्यवहार करना हो इसी पते पर करे; हमसे लिख कर पूछने का कष्ट न उठावे।

## ३-‘ज्ञ’ के उच्चारण की मीमांसा ।

मार्च की सरस्वती में ‘ज्ञ’ के उच्चारण के सम्बन्ध में पण्डित माधवराव आठले का एक नोट छपा



था। उसके विषय में फर्हखाबाद के सनातन-धर्म-विद्यालय के मुख्याध्यापक पण्डित लक्ष्मीनारायण शास्त्री लिखते हैं :—

महाराष्ट्र लोग 'ज्ञ' का उच्चारण 'द्वज' के सदृश करते हैं। इसमें उनकी प्रचलित उच्चारण-परिपाटी के सिवा कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। 'गज' के सदृश उच्चारण का भी यही हाल है। परन्तु 'जज' के सदृश उच्चारण करना वेदमूलक प्रतीत होता है और युक्ति से भी यही ठीक मालूम होता है। ज और ज के संयोग से 'ज्ञ' बनता है और इन दोनों अक्षरों का उच्चारणस्थान तालू है। इससे इसका उच्चारण 'जज' के सदृश ही होना चाहिए। वैदिक व्याकरण की एक कारिका है :—

ख्यां यमाः खप ७ क ७ पौ विसर्गः शर एव च ।

एते श्वासानुप्रदाना अघोषाश्च विवृण्वते ।

इस कारिका की व्याख्या करते हुए महामहिम श्रीमद्गोपी दीक्षित लिखते हैं :—

वर्गेष्वध्यानां चतुर्णां पञ्चमे परे मध्ये यमो नाम पूर्वसदृशो वर्णः प्रातिशाख्ये प्रसिद्धः ।

अर्थात् वर्गों में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग में प्रथम चारों के पञ्चम वर्ण ( उ, ज, ण, न, ) के परे मध्य में यम नामक, पूर्व के सदृश वर्ण, प्रातिशाख्य में प्रसिद्ध है। उदाहरणस्वरूप पलिक्की, चक्खनुः, अग्निः, घ्नन्ति—ये शब्द लीजिए। इनमें क्रमसे क, ख, ग, और घ से पर उसीके सदृश यम है। मतलब यह कि कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग या तवर्ग के किसी वर्ण के बाद यदि उ, ज, ण, या न आवे तो वैदिक प्रयोग में उन वर्णों का द्वित्व हो जाता है। इस दशा में उ आदि से अव्यवहित पूर्व का वही वर्ण यम कहलाता है।

अब 'ज्ञ' को देखिए। उसमें 'ज' के बाद 'ज' है। उक्त नियम के अनुसार ज का द्वित्व होने से उसका रूप 'ज् ज् ज्' होगा। अब "अज्भीनं परेण संयोज्यम्" के अनुसार 'ज्' के पूर्ववर्ती जकार को उसके साथ मिला दीजिए तो 'ज्ज' रूप होगा। इस रूप को प्रचलित परिपाटी के अनुसार उच्चारण कीजिए

तो आप खुद समझ सकेंगे कि 'ज्ञ' का 'द्वज' या 'गज' के सदृश उच्चारण न होना चाहिए। उस उच्चारण 'ज् ज्' के सदृश ही ठीक प्रतीत होता है। अतएव मेरी राय है कि 'ज्ञ' का उच्चारण 'ज् ज्' के सदृश ही किया जाय। यही युक्ति और व्याकरण दोनों के अनुसार शुद्ध जान पड़ता है। आशा है पाठक इस पर ध्यान देंगे।

## ४—अथर्व-वेद का रचना-काल ।

कलकत्ते की बंगला-साहित्य-परिपत्ति के सत्रहवें भाग की तीसरी संख्या, जो गत मार्च निकली है, उसमें श्रीयुक्त पञ्चानन नियोगी, एम० ए० का लिखा हुआ "आयुर्वेद की उत्पत्ति" नामक लेख है। उसमें यह प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है कि अथर्ववेद के समय में ही, अथवा उससे कुछ पहले, भारत में आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। अथर्ववेद के रचना-काल के विषय में नियोगी महारायण राय है :—“और वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद नया है वह उनके बाद का है। हाँ, वह रामायण, महाभारत और तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि से पुराना है। अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड के सातवें सूत्र में लिखा है कि जिस समय उसका सङ्कलन हुआ उस समय कृत्तिका नक्षत्र राशि के आदि में शक्र और आश्लेषा के अन्त में अथवा मघा के प्रथम मांश में क्रान्ति हुई थी। इस पर श्रीयुक्त कृष्ण शास्त्री ने ज्योतिष-सूत्रों की सहायता से गणना करके सिद्धान्त निकाला है कि ईसा के १५१६ वर्ष पहले अथर्ववेद का सङ्कलन हुआ था। सब काण्डों में सब सूत्रों की रचना एकही साथ नहीं हुई। तब स्थूल रीति से यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेद प्रायः ३००० वर्ष पहले सङ्कलित हुआ था।” अतएव हमारे आयुर्वेद को उत्पन्न हुए भी प्रायः इतने समय हुआ।

## ५—मुंशी ज्वालाप्रसाद का परलोकवास

मार्च के अन्त में, लखनऊ की अदालत के जज, मुंशी ज्वालाप्रसाद का प्लेग से देहान्त



# सरस्वती



श्रीयुत सत्यदेव ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।



1577

सर

20



सरस्वती



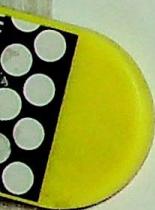
منشی جوالا پرشاد صاحب برق بی۔ اے۔ بی۔ ایل۔ جج خفیفہ لکھنؤ

دلاوت ۱۳۶۱ء وفات ۱۳۶۱ء

मुंशी ज्वालाप्रसाद साहिब, बी० ए०, बी० एल०, जज अफीफा, लखनऊ ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





संख्या ५  
तथा । ये  
उच्च शिक्षा  
इस दुष्ट,  
क्षोभता से  
कोर्ट के ज  
द्वारा शय  
लखतऊ के  
इसके गुण  
साल-काज़  
जालाप्रस  
में इन्होंने  
समता क  
नास न ति  
अनुवाद इ  
नो कई पुर  
र के बाव  
लेखक सम  
एहले इनके  
चाव से प  
करके भी  
लेते थे । इ  
ग्रहण कर  
हिन्दू सम  
ताह की ति  
से बहुत स  
प्राप्त-क-  
।-“का  
एपिड  
संस्कृत के  
निरुद्धता  
“आ  
ने उक्त मह  
व्यर्थ में  
पण्डित भट्ट  
क करील



[ ५ ]

ये खीरी जिले के रहने वाले थे। लखनऊ में शिक्षा प्राप्त करके ये विकालत करने लगे। बीस वर्ष हुए, इनको मुन्सिफ का पद मिला। अपनी सेवा से धीरे धीरे तरकी करके ये साल्-काज कोर्ट के जज हो गये। बड़े योग्य, बड़े विद्वान्, बड़े दयालु थे। इनकी मृत्यु का समाचार सुन कर लखनऊ के जुडिशल कमिश्नर और सेशन जज ने उनके गुण गाये, मृत्यु पर शोक प्रकाशित किया और साल्-काज कोर्ट उस दिन बन्द रखवा। मुंशी वालाप्रसाद ऊँचे दर्जे के साहित्यसेवी थे। उर्दू में इन्होंने ऐसे अच्छे उपन्यास लिखे हैं जिनकी प्रशंसा करने वाला हिन्दी में शायद एक भी उपन्यास न मिले। शेक्सपियर के कई नाटकों का भी अनुवाद इन्होंने उर्दू में किया है। इसके सिवा और भी कई पुस्तकें इन्होंने लिखी हैं। पण्डित रत्ननाथ के बाद हिन्दुओं में यही सबसे अच्छे उर्दू के लेखक समझे जाते थे। लखनऊ के अवध-पंच में पहले इनके लेख निकाला करते थे। उन्हें लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। मुन्सिफो और जजी का काम इनके भी साहित्यसेवा के लिए ये समय निकाल लेते थे। इनके इस उदाहरण से हम लोगों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हिन्दी के पक्षपाती कितनेही हिन्दू समयाभाव की शिकायत करते हैं। पर इस तरह की शिकायतों का कुछ अर्थ नहीं। इच्छा करने से बहुत समय मिल सकता है। पर आलसियों और प्रमाद-प्रेमियों को समय कहाँ ?

—“कालिदास की निरंकुशता” पर सम्मति।

पण्डित माधवराम शास्त्री कानपुर-कालेज में संस्कृत के प्रोफ़ेसर हैं। आपने “कालिदास की निरंकुशता” नामक लेख पर यह सम्मति दी है :—

“आपने कालिदास की निरंकुशता नामक लेख में एक महाकवि की जो स्वतन्त्रता दिखलाई है वह यथार्थ में वैसी ही है, और अनेक टीकाकारों तथा सम्राट् भट्ट आदि आलङ्कारिकों को सम्मत भी है। वह कोशल-कल्पित नहीं है।

ऐसी ऐसी समालोचनाओं से कई तरह के लाभ हो सकते हैं। प्रथम तो ये दोष भिन्न भिन्न स्थलों में होने से छात्र और अध्यापकों की स्मृति में एकही समय आरुढ़ न होते थे। अतएव विस्मृत हो जाया करते थे। परन्तु अब वे सब एकत्र एकही जगह मिल जायेंगे। दूसरे काव्यकर्तृत्व में तत्पर मनुष्यों को अब यह अच्छी तरह विदित हो जायगा कि कवियों की स्वतन्त्रता का यहाँ तक प्रसर है। इत्यादि”।

### ७—मर्दुमशुमारी का फल ।

इस दफे की मर्दुमशुमारी से मालूम हुआ कि सारे हिन्दुस्तान की आबादी ३१, ५०, ०१, ०९९ है। उसकी तफ़सील इस प्रकार है :—

अँगरेज़ी गवर्नमेंट के

अधीन हिन्दुस्तान

स्वदेशी संस्थान

२४, ४१, ७२, ३७१

७, ०८, २८, ७२९

गत दस वर्षों में सारे हिन्दुस्तान की आबादी फ़ी सदी ७ के हिसाब से बढ़ी। जो प्रान्त अँगरेज़ी राज्य के अन्तर्गत हैं उनमें फ़ी सदी सिर्फ ५४ की बढ़ती हुई; पर स्वदेशी राज्यों की आबादी में फ़ी सदी १२९ मनुष्यों की वृद्धि हुई। अर्थात् देशी राज्यों में अँगरेज़ी राज्य की अपेक्षा ढाई गुना अधिक आबादी बढ़ी। अँगरेज़ी राज्य के भिन्न भिन्न प्रान्तों में बढ़ी हुई आबादी का फ़ी सदी हिसाब नीचे दिया जाता है :—

मध्य-प्रदेश और बरार—

ब्रह्मदेश—

पूर्वी बङ्गाल और आसाम—

मदरास—

बंबई—

बंगाल—

१६३

१४९

११४

८३

६

३८

फ़ेग और फ़सली बुखार आदि के कारण पंजाब की आबादी फ़ी सदी १८ और संयुक्त प्रान्तों की फ़ी सदी १ के हिसाब से कम हो गई।



## ८—भूल-सुधार

गत एप्रिल की संख्या में जो सप्तदशाचाय का चित्र छपा है वह श्रीगोस्वामी राधाकृष्णजी का भेजा हुआ है। चित्रपरिचय में गोस्वामी राधाचरण का नाम भूल से छप गया।

## पुस्तकपरीक्षा ।

१—सिल या दिक् का इलाज व इन्सिदाद । यह उर्दू की पुस्तक है। १६२ पृष्ठ इसमें हैं। दाम सिर्फ ॥) आना है। लाला जगेश्वरनाथ निगम, कूचा नटवाँ, देहली से मिलती है। बाबू हरगोविन्दप्रसाद निगम, एम० ए० इसके कर्ता हैं। राजयक्ष्मा प्राणनाशक रोग है। विरले ही उससे पीड़ित हो कर बचते हैं। इस पुस्तक में उसके कारण, आदिरूप, लक्षण और इलाज आदि का अच्छा विचार किया गया है। लेखक का कहना है कि इस पुस्तक की बातों को उन्होंने अपने तजरिबे से लिखा है और उनका बतलाया हुआ इलाज 'सही' और 'कुदरती' है। यदि ऐसा न भी हो तो भी पुस्तक बहुत उपयोगी है। यह पुस्तक यदि देवनागरी अक्षरों में भी प्रकाशित की जाय तो बहुत अच्छा हो। सच तो यह है कि यह देवनागरी में ही होनी चाहिए थी।

✽

२—नवदर्शन-संग्रह । डी० ए० वी० कालेज लाहौर के संस्कृताध्यापक पंडित राजाराम शास्त्री आर्ष-ग्रन्थावलि नाम की एक मासिक पुस्तक बहुत दिनों से निकाल रहे हैं। इसमें हिन्दी-अनुवाद-सहित अच्छे अच्छे संस्कृत-ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं। आज कल वाल्मीकि-रामायण निकल रही है। नवदर्शन-संग्रह इसी ग्रन्थावलि का एक ग्रन्थ है। इसमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त, योग, बौद्ध, आर्हत, चार्वाक आदि नौ दर्शनों का वर्णन और विचार है। जगह जगह पर मूल-संस्कृत-सूत्र देकर हिन्दी में सब बातें समझाई गई हैं। अच्छी पुस्तक है। पूर्वोक्त दर्शनों की बहुत सी बातें इससे मालूम हो सकती हैं। पृष्ठ-संख्या १५२, दाम एक रुपया।

३—कान्यकुब्ज । इस पुस्तक का पूरा नाम है—कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की प्राचीन तथा अर्वाचीन स्थानों का वर्णन । यह बंबई के श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस से छपी है। वहाँ से मिलती है। पुस्तक छोटी अर्थात् केवल ७६ पृष्ठ की है। पर इसके कर्ता श्रीयुत पंडित गङ्गाप्रसादजी अग्निहोत्री ने इसे बड़े परिश्रम से लिखा है। कान्यकुब्जों की प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का इसमें अच्छा चित्र है। जगह जगह पर शास्त्रों के प्रमाण भी दिये गये हैं। कान्यकुब्जों में प्रचलित कुरीतियों को अग्निहोत्रीजी ने इस पुस्तक में निडर होकर दिखलाया है। अतएव कान्यकुब्जों को चाहिए कि इसे एक बार अवश्य पढ़ें।

## आख्यायिका ।

मिर्जा-अब्दुर्रहीम खानखाना की उदारता । शम्सुल् उल्मा मौलाना मौलवी मुहम्मदहसन साहब 'आजाद' ने हिन्दी के प्रसिद्ध कवि खानखाना [ रहिमान ] की उदारता और दानशीलता की किताब ही बातें अपनी एक किताब में लिखी हैं। उनमें कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

( १ )

एक दिन खानखाना कुछ चिट्ठियों पर दस्तखत कर रहे थे। उनमें से एक चिट्ठी किसी पियादे के नाम थी। उसमें एक हजार दिरम की जगह एक हजार रुपये आपने भूल से लिख दिये। दीवान ने प्रार्थनापूर्वक कहा कि आप भूल से दिरम के बजाय रुपये लिख गये हैं। खानखाना ने उत्तर दिया कि भरे कलम से जो निकल गया निकल गया। पियादे के भाग्य में रुपये ही थे, दिरम नहीं।

( २ )

एक दिन नजीरी नेशापुरी ने कहा—नवाब, मैंने लाख रुपये का ढेर कभी नहीं देखा कि कितना होता है। खानखाना ने अपने खजानची को आज्ञा दी कि उसने लाख रुपये का अंवार लगा दिया। नजीरी ने कहा—परमेश्वर का धन्यवाद है कि आपकी कृपा से आज मैंने लाख रुपये देख लिये। खानखाना ने उस



भाग १२, संख्या ५ ]  
नाम है—  
चीन और  
श्वर प्रेस  
छोटी अयो  
युत पंक्ति  
परिभ्रम  
और अ  
जगह जा  
न्यकुलो  
इस पुल  
कान्यकु  
उदारा  
रमदहु  
खान वा  
की कि  
उन्में

क्या कि इस इतनी छोटी बात के लिए परमेश्वर को आप धन्यवाद ? ये सारे रुपये आपने नज़ीरी को भेज दिये और कहा कि अब परमेश्वर को धन्यवाद देने वाले और आपकी कृतज्ञता प्रकट करो तो बात भी है ।

( ३ )

एक बार एक गरीब ब्राह्मण खानखाना के दर-  
वाजे पर आया । दरबानों ने उसे भीतर जाने से रोका ।  
उसने कहा कि नवाब से कह दो—तुम्हारा ‘हमजुल्फ’  
तुमसे मिलने आया है और साथ अपनी बोंबों को  
भी लाया है । इसकी खबर खानखाना को दी गई ।  
उन्होंने उस ब्राह्मण को भीतर बुला लिया, अपने पास  
बैठाया और पूछा कि कहो, तुमसे और मुझसे क्या  
रहता है । ब्राह्मण ने कहा—सम्पदा और विपदा दो  
हमें हैं । पहली आपके घर आई है, दूसरी मेरे घर ।  
जब आप और मैं ‘हमजुल्फ’ नहीं तो और क्या  
है ? यह उक्ति सुन कर नवाब बहुत खुश हुए ।  
आपने उसे विलम्ब दी । एक उत्तम घोड़े पर बहुत  
ही अच्छा साज सजवा कर उस पर उसे सवार  
कराया । और बहुत रुपया और चोज-वस्तु देकर  
उसे विदा किया ।

संस्कृत सुभाषित के जाननेवालों से यह बात  
छिपी नहीं कि ब्राह्मण की यह उक्ति बहुत पुरानी है ।

## मनोरञ्जक श्लोक ।

सरस्वती, भाग १२, संख्या ३ में “प्राचीन भारत  
का एक भूलक” शीर्षक संस्कृतसाहित्य-सम्बन्धी  
लेख बड़े महत्त्व का है । विशेष कर संस्कृत-साहित्या-  
नियों के लिए । अस्तु । इसे पढ़ते समय मुझे एक  
श्लोक बारम्बार स्मृतिगोचर होता था, जिसे रघु  
की दानवीरता का वर्णन कहना चाहिए । अतः  
इस श्लोक को उद्धृत करके मैं सरस्वती के पाठकों  
के सम्मुख रखना आवश्यक समझता हूँ । सम्भव है,  
जिन महाशयों ने उक्त संख्या की सरस्वती में उक्त  
श्लोक लेख की ओर दृष्टि दी होगी उन्हें यह श्लोक  
भी मनोरञ्जक हो :—

औदास्यं न विधेहि गच्छ न गृहात्संवीक्ष्य मृद्भाजनं  
याचे किन्तु भवन्तमेतदखिलं कौत्स क्षणं क्षम्यताम् ।  
दासश्चेदहमस्मि चेद्वसुमती सर्वैव सा गृह्यतां  
स्वर्णं चेद् गुरुदक्षिणा धनपतेरानीय संपाद्यते ॥

महाराज रघु को मृद्भाजनावशेष देख कर कौत्स  
जब निराश हो कर लौटने लगा तब रघु ने हाथ जोड़  
कर यह विनती की:—हे कौत्स ! आप मेरे इन मिट्टी  
के पात्रों को देख, उदास होकर, घर से न जाइए ।  
क्षण भर क्षमा करके आप मेरी प्रार्थना सुन  
लीजिए । यदि आपको दासकी जरूरत हो तो मैं  
प्रस्तुत हूँ । यदि पृथ्वी की हो तो वह सम्पूर्ण ही  
आप ग्रहण कीजिए । और, यदि गुरुदक्षिणा के  
लिए अशर्कियाँ दरकार हों तो मैं अभी कुवेर से  
लाकर आपको देता हूँ ।

दानवीरता की हद हो गई । कर्ण बनने वाले आज  
कल के राजाओं की तरह रघु ने अहन्ता नहीं दिखाई ।  
सब कुछ देने के लिए तैयार होकर भी दासता  
दिखाई ! इससे अधिक और क्या नम्रता हो सकती है ।

## चित्र-परिचय ।

( १ )

दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य को एक मन्त्र याद  
था । देवासुर-संग्राम में जो दैत्य मारे जाते थे उन्हें वे  
उसकी बदौलत जिला देते थे । इस कारण देवता  
बड़े हैरान थे । उन्होंने आपस में सलाह करके बृह-  
स्पति के पुत्र कच से कहा कि तुम शुक्राचार्य के  
शिष्य बन कर यह मन्त्र उनसे सीख आओ । कच  
शुक्राचार्य के पास पहुँचे । दैत्यों को जो यह बात  
मालूम हुई तो उन्होंने कच को मार डाला । वे न  
चाहते थे कि कच को यह मन्त्र सिखाया जाय । पर  
उनका मार डालना व्यर्थ हो गया । अपनी कन्या  
देवयानी की सिफारिश से शुक्र ने कच को जिला  
दिया । इस पर दैत्यों ने कच को दुबारा मार  
डाला । फिर भी देवयानी ने पिता से प्रार्थना करके  
कच को जीवित कर दिया । तीसरी दफ़े दैत्यों ने



कच को मार कर जला दिया और उनके शरीर की राख को शुक्राचार्य महाराज की सुरा में मिला कर उन्हीं को पिला दिया। देवयानी का कच पर बेहद प्रेम था। उसने फिर पिता के हाथ पैर जोड़े और बोली, कच को फिर सजीव कर दीजिए। शुक्र ने कच को जिला दिया तो वे उन्हीं के पेट के भीतर से बोले ! अब, शुक्र का पेट चाक किये बिना वे वहाँ से निकलें कैसे ? इस असमझस में पड़ कर शुक्र ने वह मन्त्र कच को बता दिया और अपना पेट फाड़ कर उन्हें बाहर निकाला। कच ने बाहर आ कर उसी मन्त्र से शुक्र को जिलाया। इस तरह सफल-मनोरथ होकर कच जब गुरु के आश्रम से प्रस्थान करने लगे तब देवयानी ने उन पर अपनी पूर्व-प्रीति स्पष्ट शब्दों में प्रकट की और उनसे विवाह करना चाहा। कच ने कहा—तुम मेरी बहन की बराबर हो। मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं कर सकता। पर देवयानी बे-तरह उनके गले पड़ी। तथापि उन्होंने उसकी बात न मानी। तब देवयानी ने खिजला कर कच को शाप दिया कि तुम्हारा यह मन्त्र निष्फल हो जायगा। कच को भी क्रोध आया। उन्होंने कहा—तू ब्राह्मण-कन्या है। पर, जा, कोई ब्राह्मण तेरे साथ विवाह न करेगा। कच और देवयानी नाम का जो चित्र इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है वह इसी समय का है। विदा होते समय देवयानी को कच समझा रहे हैं कि तुम्हें ऐसा प्रस्ताव करना मुनासिब नहीं।

( २ )

प्रयाग की प्रदर्शिनी के थियेटर में अकबर के दरबार का एक दृश्य दिखलाया गया था। इस दृश्य में जो अकबर बना था उसने आगत अँगरेज-दूतों को खड़े होकर ताजीम दी थी। परन्तु एक पुराने चित्र से मालूम होता है कि हिन्दुस्तान के मुगल बादशाह ऐसा न करते थे। जिस समय जेम्स पहले ईंग्लैंड के राजा थे उस समय भी एक अँगरेज-दूत हिन्दुस्तान आया था। उसका नाम था सर टामस रो। यह १६१५ ईसवी की बात है। यह दूत ईस्ट

इंडिया कम्पनी पर देहली के बादशाह जहाँगीर के कृपा सम्पादन करने के लिए भेजा गया था। सूरत बन्दर में उतरा। वहाँ से बुरहानपुर के चित्तोर होते हुए वह अजमेर आया। जहाँगीर के समय गुजरात जा रहा था और अजमेर में डाले पड़ा था। वहाँ जहाँगीर ने टामस रो से मुलाकात की और उससे बड़ी मेहरबानी के साथ आया। इस मुलाकात का दृश्य एक चित्र अङ्कित किया हुआ महाराजा जयपुर के संग्रह में है। उसकी नकल “जर्नल आव् इंडियन आर्ट” के पृष्ठ १३७ में प्रकाशित की गई है। वहाँ से हम सरस्वती की इस संख्या में प्रकाशित करते हैं। पाठक देखेंगे कि जहाँगीर बैठा है और टामस रो दूर खड़ा है। टामस रो की पोशाक भी कुछ मुसलमानी ढंग की है। इससे जान पड़ता कि विदेशी पोशाक में लोग शाही दरबार में न जाने पाते थे।

## चित्रावली ।

- |  |     |     |     |
|--|-----|-----|-----|
| ( १ ) शकुन्तला को कण्व का आशीर्वाद ( रंगीन )   | ... | ... | ... |
| ( २ ) डाकूर आनन्द के० कुमारस्वामी, डी० एससी०   | ... | ... | ... |
| ( ३ ) जल के घनत्व से सम्बन्ध रखनेवाला एक चित्र | ... | ... | ... |
| ( ४ ) एक जूल्-कुटुम्ब                          | ... | ... | ... |
| ( ५ ) जूल्-सरदार बाटू                          | ... | ... | ... |
| ( ६ ) एक जूल् योद्धा                           | ... | ... | ... |
| ( ७ ) जूल्-जादूगरनियों का नाच                  | ... | ... | ... |
| ( ८ ) जूल्-लोगों का एक समुदाय                  | ... | ... | ... |
| ( ९ ) श्रीयुत सत्यदेवजी ( अमरीका )             | ... | ... | ... |
| ( १० ) स्वर्गवासी मुंशी ज्वालाप्रसादजी         | ... | ... | ... |
| ( ११ ) कच और देवयानी                           | ... | ... | ... |
| ( १२ ) जहाँगीर के दरबार में सर टामस रो         | ... | ... | ... |



# सरस्वती



कच और देवयानी ।  
गुरुकन्ये ! छोड़ो अहो ! यह अनुचित प्रस्ताव ।  
प्यार करूँगा मैं तुम्हें, रख कर भगिनी-भाव ॥







# सरस्वती



जहाँगीर के दरबार में सर टामस रो ।  
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।





भाग १२


अमेरिका



७७

ले मनुष्य  
जारी र  
दोनों द  
देश में  
दलों क  
दक्षिण द  
मौर





# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ]

१ जून, १९११—ज्येष्ठ शुक्ल ५, १९६८ ।

[ संख्या ६ ]

## अमेरिका के कृष्ण-वर्ण हबशी क्या कर रहे हैं ।

अमेरिका के संयुक्त प्रान्तों के लोग, पचास वर्ष हुए, अपने देश से गुलामी की प्रथा को दूर करने के विषय में दो दलों में विभक्त हो गये थे। उत्तरीय प्रान्त के लोग दासत्व को दूर करना और दक्षिणीय प्रान्त मुख्यरूपी पशुओं के लेनदेन की घृणित प्रथा जारी रखना चाहते थे। अपनी अपनी पूर्ति के लिये दोनों दल युद्ध करने पर आमादा हुए। चार वर्ष तक देश में परस्पर भयंकर युद्ध होता रहा। उसमें दोनों दलों के बहुत से लोग मारे गये। निदान दक्षिणीय दल सर्वथा परास्त हुआ। अतएव स्वतन्त्रता और धीरता की भूमि अमेरिका में बलात्कारो-

त्पन्न दासत्व के पाशों से प्रत्येक कृष्ण वर्ण हबशी मुक्त हो गया ।

उस चिरस्मरणीय शुभ दिन से अमेरिका के हबशियों ने बहुत उन्नति की है। अर्द्ध शताब्दी के पहले उनकी संख्या चालीस लाख थी। आज वह एक करोड़ है। पचास वर्ष हुए अमेरिका में एक भी श्यामवर्ण हबशी अपना नाम तक लिखना अथवा छपा हुआ एक पृष्ठ भी पढ़ना नहीं जानता था। इस समय उनमें फ्री सदी चालीस मनुष्य लिखे पढ़े हैं।

इन लिखे पढ़े लोगों में से अधिकांश पूर्ण विद्वान् नहीं हैं। किन्तु साधारण लिखना पढ़ना वे सीख गये हैं। उनमें जो विद्वान् और पूर्णतया शिक्षित हैं उन्होंने बड़ी उन्नति की है। वह उन्नति स्तुति के योग्य है। इस १९११ ईसवी में इन श्याम-वर्ण लोगों में बहुत से स्त्री-पुरुष विशेष योग्यता रखते हैं। उससे अधिक योग्यता का होना किसी जाति या



धर्मवालों में प्रायः असम्भव है। संयुक्त प्रान्तों में यात्रा करता हुआ प्रत्येक मनुष्य अनेक श्याम-वर्ण प्रोफेसर, पत्र-सम्पादक, बैरिस्टर और डाक्टर आदि को पाता है; एवं अनेक कृष्णवर्ण मनुष्यों को बैंकों, उद्योग-शालाओं और कारखानों के मैनेजर के पद पर प्रतिष्ठित पाता है। उन श्याम-वर्ण लोगों की संख्या, जो अनन्त धन कमा रहे हैं तथा जो शिक्षितों के करने योग्य व्यवसायों और शिल्प तथा कृषिकर्मादि में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं, दिन दिन बढ़ती जा रही है। अमेरिका में आज अनेक ऐसे श्याम-वर्णों सेठ हैं जिनकी लाख रुपये से भी अधिक हुंडी लोग खुशी से सकारते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि ये और इनके मातापिता दोनों निर्धन ही न थे; किन्तु कुछ समय पहले औरों के गुलाम भी थे। इन लोगों ने इतना शीघ्र ऐसी उन्नति की है।

इस अलौकिक उन्नति का कारण इन लोगों के अद्भुत गुण समझने चाहिए। अमेरिका के श्याम वर्णों हबशियों ने जो उन्नति की है वह हमारे लिए बहुत सन्तोषजनक है। यही नहीं, किन्तु हम लोगों का अधिकांश समुदाय इनके समान विद्वान् और धनवान् बनने के लिए इनसे सबक सीख सकता है। इसके साथ ही हमें इनके दोषों की ओर भी दृष्टिपात करना चाहिए; क्योंकि बिना ऐसा किये उनके पूर्ण रूप का बोध न हो सकेगा। इनके दोषों का चित्र देखने में अच्छा नहीं, परन्तु लाभदायक अवश्य है।

दक्षिणीय अमेरिका के श्यामवर्ण दरिद्र हबशी बड़ी ही हीन दशा में अपने दिन व्यतीत करते हैं। उनकी अवस्था उस अवस्था से भी कुछ अधिक बुरी है जिसमें कि भारतीय ग्रामीण लोग रहते हैं। जो हबशी नगरों तथा ग्रामों से दूर रहते हैं उनकी झोपड़ी खुरदरे अनघड़ लकड़ की बनी हुई होती है। भारतवर्ष के कच्चे घरों की तरह, इसमें भी खिड़कियाँ नहीं होतीं। कहीं कहीं भीत में काठ की जाली जरूर होती है, जो प्रायः बन्द ही रहती है। दरवाजे से ही प्रकाश भीतर पहुँचता है। जाड़ों में भी दर-

वाजा बहुधा खुला रहता है। इस कारण ठंडी हवा से बहुत कष्ट मिलता है। परन्तु, फिर भी दरवाजा खुलाही रखना पड़ता है। बन्द करने से भीतर अन्धकार छा जाता है। प्रायः दीवारों गन्दी होती हैं। चूल्हे से जो धुआँ निकलता है वह समाचार पत्रों के पत्रों पर, जो कुटिया की दीवारों पर लगे काये रहते हैं, घना बैठ जाता है। फर्श लकड़ी का होता है और प्रायः बहुत ही मैला रहता है। भोजन बनाने तथा शीतक्रतु में तापने और गर्म रखने का काम देता है। रात को सोने की लकड़ी का एक टुकड़ा मेज़ पर रखी हुई आँक में जलाया जाता है। इससे गला घोटने और पर चिपकने वाले धुएँ के साथ कुटी में धुँधला प्रकाश भी होता है। परिवार के सब मनुष्य एक कमरे में सोते हैं जो भोजन बनाने, भोजन का और बैठने का भी काम देता है। जिस तरह जो आता है बच्चे अन्दर आते जाते हैं और रोटी पकवाली अपनी माँ से बात-चीत करते हैं। कुत्ते, बिल्लियाँ, मुर्गे, बकरियाँ और सूअर, जो वहाँ आराम से खाया भोजन की तलाश में अकस्मात् आ निकलते उनके साथ बच्चे मजे में खेलते रहते हैं। प्रत्येक वस्तु अत्यन्त रोगोत्पादक, अनवलोकनीय सर्वथा कुरुचिपूर्ण होती है। भारतवासियों की अवस्था बहुत भयङ्कर न प्रतीत होगी, क्योंकि तो इससे भी अधिक दुःखद दरिद्रावस्था का भव है। परन्तु अमरीका में, जहाँ प्रायः सभी सांसारिक सुख का सर्वोत्तम भोग करते हैं, अवस्था महाभयङ्कर और खेदजनक प्रतीत है। नगरों में श्यामवर्ण वालों की बस्ती प्रायः के सबसे गन्दे और खराब भाग में, दरिद्रता सम्पत्ति की मध्यवर्ती सीमा पर, रहती है।

बड़े संतोष की बात है कि अमेरिका के श्याम वर्ण हबशी इस दुर्दशा से निकलने का यत्न करते हैं। अपने समूह की सामाजिक, मानसिक, और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उनमें नेता प्रकट हुए हैं जिन्होंने इस काम के लिए



विद्यालय में उसे सिखलाया गया था। इसलिए उसने अपने ही घर को अपनी इति-कर्तव्यता का स्थल बनाया। वहाँ स्वजातीय स्त्रियों को उत्तमता से जीवन व्यतीत करने के योग्य शिक्षा देने की उसने योजना की।

उसने शीघ्र ही मनोनिश्चय किया कि वह अपने गृह को प्रमोदमय बनावेगी। अतएव प्राप्त की गई अपनी सुशिक्षा की सहायता से वह घर की न्यूनताओं को पूर्ण करने लगी। उसने अपने पड़ोसियों से कहा कि जिस समय वे उसके घर आना चाहें आ सकते हैं। उसने यह निमन्त्रण स्वजाति के थोड़े से सभ्यों को, साधारण रीति से, दिया। उसने अपनी मनोऽभिलषित संशोधन-विधि के सम्बन्ध में किसी से कुछ भी नहीं कहा। उसने औरों से केवल अपने घर आने और मिलने के लिए प्रार्थना की। श्यामवर्ण हबशियों की स्त्रियाँ वार्तालाप करना और दूसरों से मिलना जुलना बहुत पसन्द करती हैं। इसलिए पड़ोस की स्त्रियों की, बैरिट के घर में, भीड़ लगने लगी। दिन भर, विला नागा, बैरिट के यहाँ जमघट होने लगा। इस जमघट से और कोई होता तो घबरा जाता। परन्तु बैरिट की पत्नी बड़ी दृढ़-व्रता थी। न वह घबराई और न उसने सुधार-सम्बन्धी अपने विचारों ही को छोड़ा। इस उत्साह-शील श्यामकाय स्त्री ने समागत स्त्रियों का हार्दिक सत्कार किया और उनसे जी खोल कर बातें कीं।

उन स्त्रियों को घर में बुलाने से श्रीमती बैरिट का यह मतलब था कि वह उनको यह दिखलावे कि गृहकार्य किस प्रकार करना चाहिए। उसने यह सोचा कि ये लोग मेरे काम की ज़रूर नक़ल करेंगी—इनमें स्पर्द्धा और अनुकरण की वृत्ति ज़रूर जागृत होगी। इस बात का उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह कभी भी उन पर यह न प्रकट करेगी कि काम करने का मेरा ढंग उनके ढंग से अच्छा है। वह मनुष्य-स्वभाव को भली भाँति जानती थी। उसे विश्वास था कि उसके कार्य के सम्बन्ध में स्त्रियाँ उससे ज़रूर प्रश्न करेंगी। जिस समय वह स्त्रियों

जीवन अर्पण कर रक्खा है। उनमें से बहुतों ने अपनी जाति की उन्नति के लिए चंदा एकत्र करके पाठ-शालाएँ स्थापित की हैं। उनमें सबसे प्रसिद्ध बुकरटी बरिंगटन नाम के एक महाशय हैं। एलबामा प्रान्त के टस्कगी नामक स्थान में उन्होंने एक विद्यालय के टस्कगी नामक स्थान में उन्होंने एक विद्यालय खोल रक्खा है। यहाँ श्यामवर्णी लड़के-लड़कियों को साहित्य, विज्ञान-सम्मत कृषि-कर्म और अनेक उपयोगी व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है। महाशय बरिंगटन ने स्वयं हैम्पटन के नार्मल तथा कृषि-विद्यालय में शिक्षण पाया है। वहाँ की शिक्षा-प्रणाली ही आदर्श पर इन्होंने अपना विद्यालय खोला है। उनके स्कूल से कई छात्र परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अनेक प्रकार के काम कर रहे हैं। ऐसे शिक्षण का यह परिणाम हुआ है कि श्याम-वर्णियों की नैतिक तथा शारीरिक दशा शीघ्रता और दृढ़ता से सुधर रही है। एक श्यामकाय स्त्री ने अपनी जाति के अभागों को उद्धारार्थ एक अद्भुत युक्ति निकाली है। उसने हैम्पटन के विद्यालय में अच्छी तरह शिक्षा पाई है। सौभाग्यवश उसका विवाह हैरिस बैरिट नामक एक उन्नतिशील सज्जन से हुआ है। उसने उसी विद्यालय में शिक्षण पाया है। इस स्त्री की स्त्रियाँ थी कि वह एक ऐसा स्कूल खोले जहाँ उसके स्वजातीय प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सकें। पर उस स्थान में वह ऐसा स्कूल न खोल सकी। अतएव उसने एक ऐसी नई युक्ति निकाली जिससे वह स्वजातीय स्त्रियों का उद्धार कर सके। यद्यपि उसका निर्वाह शोभाँति चलता था, परन्तु दूसरों के लिए खर्च करने को उसके पास धन न था। उसे इस काम के लिए समय भी न था और न उसमें शक्ति ही थी; क्योंकि वह गृहपत्नी का भार धारण कर चुकी थी। उसने पति और बच्चों के लिए आनन्दकारी बनाने का प्रयत्न कर लिया था। इसीसे घर के कामों को दूसरों पर छोड़ कर उसने परोपकार-व्रत में अपना जीवन उचित नहीं समझा। उसने अपने घर के काम को विज्ञान-दृष्टि से किया, जैसा कि हैम्पटन के



से मिलती उस समय वह अपना काम, जो उसे उस समय करना होता, बराबर करती रहती थी। चाहे वह कपड़े धोने का काम हो, चाहे घर के कपड़ों पर इस्तरी करने का हो, चाहे भाड़ने बुहारने का हो, चाहे बच्चों को स्नान कराने का हो, अथवा चाहे भोजन करने का हो। इन सब बातों का परिणाम वही हुआ जो उसने सोचा था। उसकी मिलने वाली स्त्रियाँ उससे तरह तरह के प्रश्न करने लगीं। उन्होंने पूछा कि वह स्वजाति की अन्य स्त्रियों से निराले ढंग पर अपना काम क्यों करती है? इस पर बैरिट की स्त्री ने सरलता-पूर्वक, स्पष्ट शब्दों में, उनसे गृहकार्य-कौशल की युक्तियाँ बतलाईं। थोड़े ही समय में जो लड़कियाँ उससे मिलने आती थीं उन्होंने उसके काम में मदद देने की इच्छा प्रकट की। वह इस तरह काम करती थी कि देखने वाले को वह खेल सा प्रतीत होता था। अतएव वह भी इस खेल में शामिल होने को उत्सुक हो उठता था। इस तरह पहले देखने और फिर हाथ से करने से उस छोटे से नगर की स्त्रियों ने नवीन वस्त्र काटने और सीने, भोजन बनाने और परोसने, फर्श पर भाड़ू लगाने और उसको स्वच्छ करने, घर के असबाब को भाड़ने पोछने, घर को सजाने, बच्चों की देखभाल करने और बाग में फल, फूल, तरकारी आदि बोन की विद्या सीख ली। निदान जब उस परोपकारिणी स्त्री ने सबको अपना विश्वासपात्र बना लिया तब उसने उनको थोड़ी थोड़ी शिक्षा देनी आरम्भ की। परन्तु वह बहुत थोड़े शब्दों के द्वारा शिक्षा देती और यह भी वह तभी करती जब उससे मिलने वाली स्त्रियों में से कोई उससे किसी विषय का वर्णन करने की प्रार्थना करती।

धीरे धीरे, वरजीनीया प्रान्त के हैम्पटन नगर की लोकस्ट नामक गली में श्रीमती बैरिट का घर वहाँ की स्त्रियों के एकत्र होने का एक विशेष स्थान बन गया। थोड़े ही समय में इतने बच्चे और स्त्रियाँ उस के यहाँ आने लगीं कि उसका छोटा सा घर उन सब के लिए काफी न हुआ। इस कठिनाई को दूर

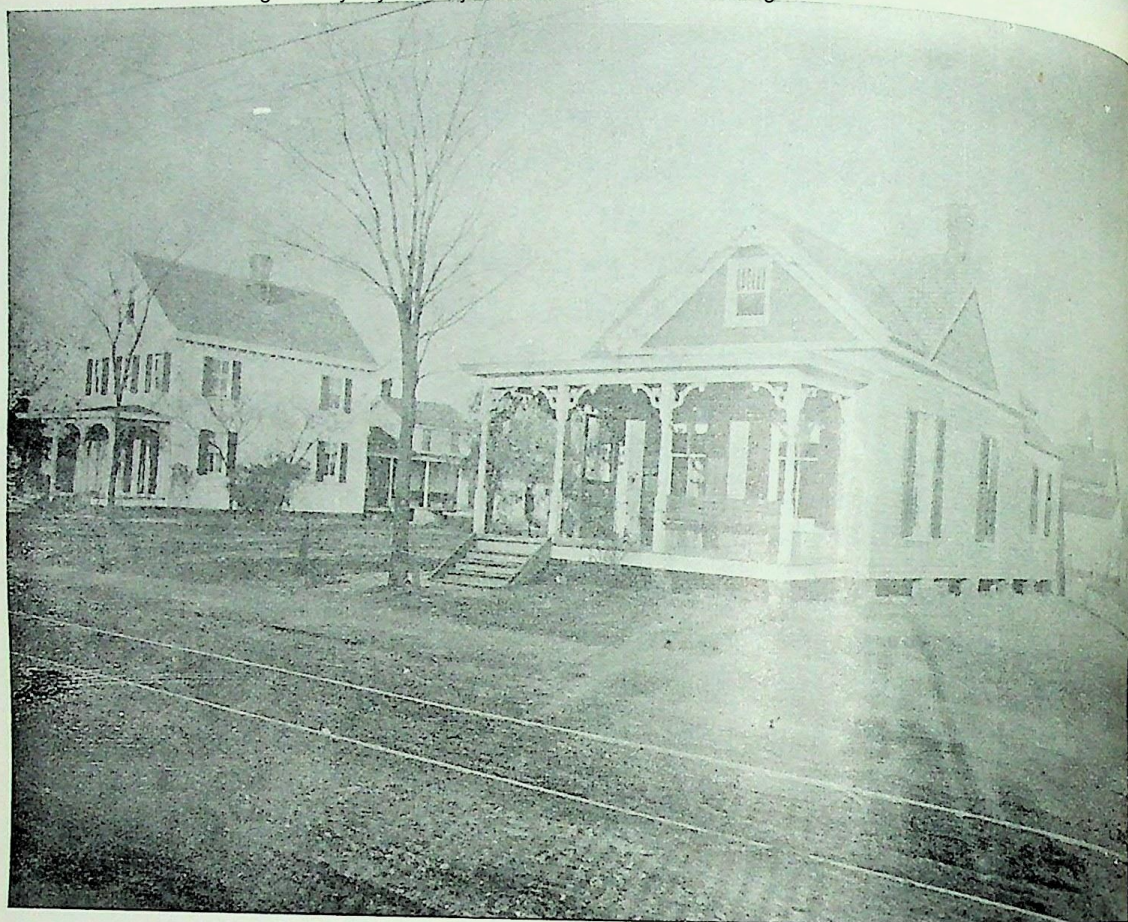
करने के लिए उसके पति ने, पास की जमीन पर एक और घर इस काम के लिए बनवा दिया। उसकी भायरी ने निष्काम रीति पर जो काम आरम्भ किया था उससे उसकी पूर्ण सहानुभूति थी। उस नये मकान में उस प्रान्त की स्त्रियाँ और बालक सीधे सादे खेल खेलने और उन बातों को सीखने के लिए जिनसे उनकी शीघ्र उन्नति हो सके, अधिक के साथ इकट्ठे होने लगे। क्योंकि, लोगों में जीवन सम्बन्धी जागृति से उन्नति करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई थी। और ऐसा होना ही चाहिए था। इस समय वहाँ हफ्ते में तीन दफे लड़कियों के बड़ी बड़ी क्लासें सीना, बखिया करना, कुर्ते बनाना, टोकरे बुनना और भोजन पकाना सीखने के लिए एकत्र होती हैं। ऊपर के कमरे में, एक छपर नीचे, किण्डर गार्टन नामक क्रीडामय शिक्षा छोटे छोटे बच्चों को दी जाती है। गरमी के दिनों में बालक-बालिकायेँ बाग लगाने का काम सीखती हैं। भजन-गायन और धार्मिक-शिक्षण रविवार के दिन दिया जाता है। लड़के और लड़कियाँ, प्रौढ़ स्त्रियाँ और पुरुष, उत्तमता से जीवन व्यतीत करने की विधि और अधिक पुरुषार्थ तथा अधिक उपयोगी काम करने की रीति सीखते हैं। श्रीमती बैरिट शिक्षण और निरीक्षण का सब काम वास्तविक रीति से स्वयं करती हैं। थोड़े से परोपकाररत जनों के बिना वेतन के ही श्रीमती बैरिट को सहायता देना स्वीकार किया है। वे भी वहाँ काम करते हैं।

यह सुशीला और परार्थव्रत-धारिणी स्त्री सिद्धान्त को मानती है कि निकम्मे रहने से बचने के लिए विचार चित्त को चञ्चल करते हैं। इसलिए वे लोगों को मनोरञ्जक कामों में लगाये रहती हैं जो काम भी वह ऐसे कराती है जो खेल से मिलते हैं। उसके छात्र खेतों को बना कर बाग लगाते हैं। इससे परिश्रम की आदत पड़ जाती है और काम एक प्रकार का खेल जान पड़ता है। घर के उसके छात्र खेल-कूद करते और पुस्तकें पढ़ते मासिक पत्र पढ़ते हैं। मकान के पास ही बहुत



भाग १२  
तमीन ए  
देया । उ  
म आरम्भ  
थी । उ  
र वाल  
सीखने के  
अधिकत  
में जीव  
वल इ  
गहिए था  
इकियों के  
ते वना  
के लिए  
छपर के  
राक्षा छो  
दिनों में  
सीखने  
चिवार के  
गोड खि  
करने के  
उपयोग  
ती वैरि  
वेक रीति  
त जनों के  
यता देन  
हैं ।  
स्त्री इ  
ने से दु  
लिए व  
तो है  
से मा  
रुगाते हैं  
और व  
। घर  
कें त  
बहुत



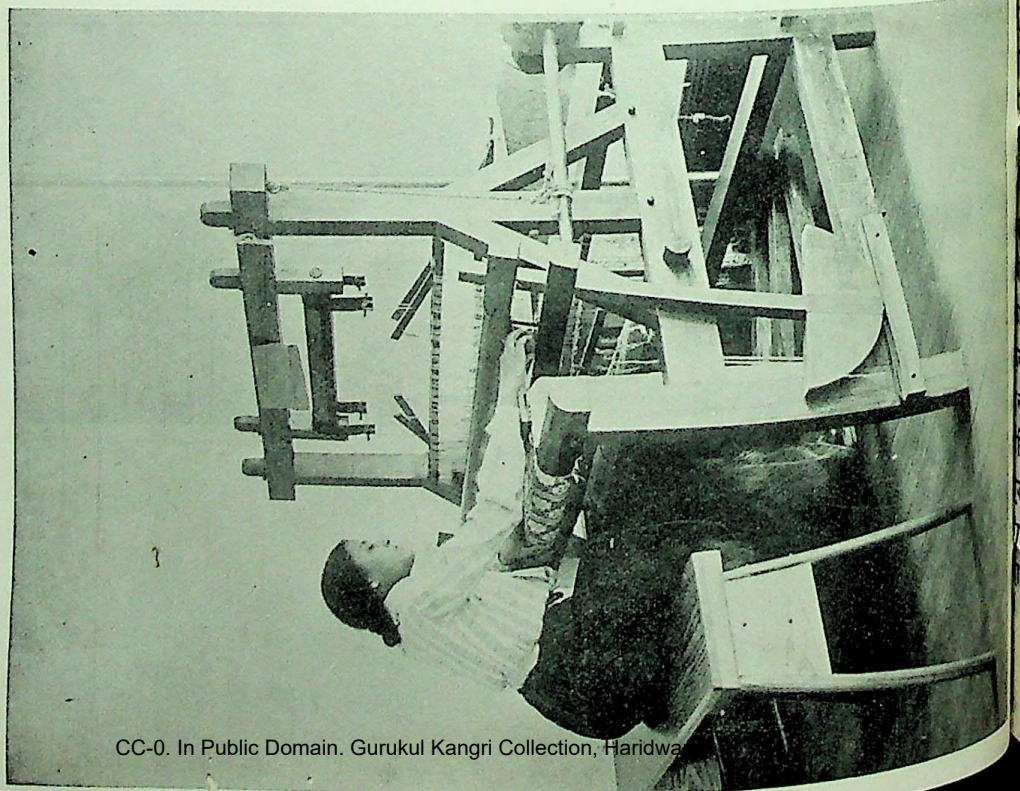




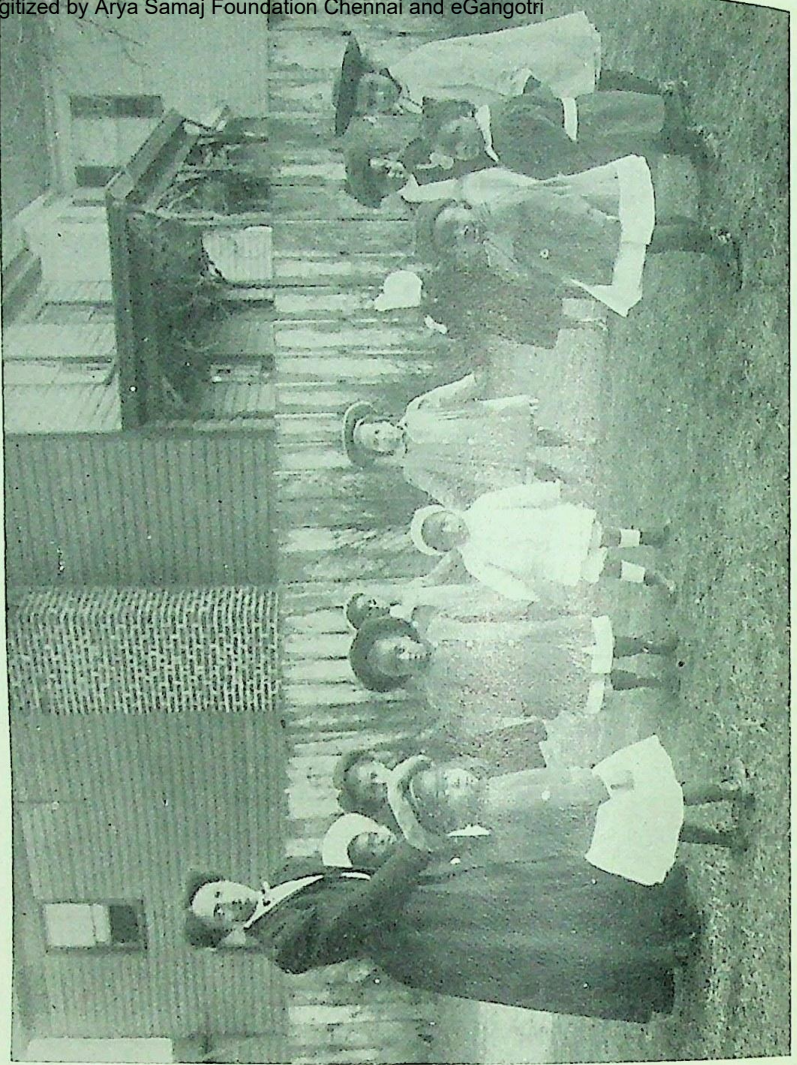




सरस्वती



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



श्रीमती चैरिट के यहाँ खेलकुद के बहाने शिक्षा पाने वाले श्यामकाय लड़के और लड़कियाँ ।

लगा ६ ]  
 प्रोप्रायताज  
 रही सब  
 किने ऊपर  
 किने उत  
 बने के काम  
 कुछ रहने  
 गी हैं। के  
 के खेलते  
 ना। यदि  
 वह सभा  
 जब तक  
 विषय में  
 मीनी वैरि  
 प्रारण स  
 य तो बड़  
 कता। स  
 डके, लड़  
 मो इस व  
 मत करती  
 हैं होने पर  
 म जायँ ।  
 लोकस्ट  
 एक वि  
 ता है ।  
 दिन कहते  
 गया जाता  
 यह दिन  
 गने और  
 मन का प्र  
 नाम " वि  
 गी है ।  
 के माता  
 रित एक सै  
 द और निव  
 ७ जिन्हें कमी  
 गी। इस म



तला ६]

श्रीमती वैरिट के बहाने शिक्षा पाने वाले इयामकाय लड़के

श्रीमती वैरिट के बहाने शिक्षा पाने वाले इयामकाय लड़के

श्रीमती वैरिट के बहाने शिक्षा पाने वाले इयामकाय लड़के

और दिल लुभानेवाले खेत हैं।  
सब लोग घूमते हैं। झूले, लोहे के डंड,  
जोने ऊपर ले जाने वाले क्रीडा-डंड, खेलने की  
बातों उन लोगों के दिल बहलाने और व्यायाम  
के काम आती हैं। कुमारों और कुमारिकाओं को  
सुन्दर रहने और पवित्राचरणी बनने की शिक्षा दी  
जाती है। कोई लड़ने भगड़ने नहीं पाता। सब प्रेम-  
कर खेलते हैं। कोई किसी को गाली नहीं  
देता। यदि कोई इन नियमों का पालन नहीं करता  
तो वह सभा के अधिकारों से वञ्चित किया जाता  
है। अब तक कि वह क्षमा का प्रार्थी न हो और  
नियम में सदाचारी होने की प्रतिज्ञा न करे।  
श्रीमती वैरिट का सिद्धान्त है कि यदि लड़का  
सभ्यता के नियमों के अनुसार चलाया  
जा तो बड़ा होने पर वह उनको कभी भूल नहीं  
सकता। सदाचारी होना सभ्यता का चिह्न है। जो  
लड़के, लड़कियाँ या जो उसकी संगति में रहती हैं  
सब इस बात की शिक्षा देने का वह पूरा पूरा  
समर्थन करती हैं। उसका अभीष्ट यह है कि बच्चे  
बड़े होने पर सदाचारी तथा सभ्य पुरुष और स्त्रियाँ  
बन जायँ।

लोकस्ट गली की नई बस्ती में प्रति वर्ष एक  
बार एक विशेष महोत्सव के लिए नियत किया  
जाता है। इस दिन को "बेबी डे" अर्थात् बच्चों  
का दिन कहते हैं। इस रोज़ एक प्रकार का त्योहार  
कराया जाता है, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट  
है। यह दिन बस्ती के बच्चों को बाहर जाकर मेला  
लाने और स्वादिष्ट पदार्थ खिलाने के लिए है।  
यह दिन का प्रबन्ध युवक स्त्रियों की एक सभा, जिस  
का नाम "किंग्स डाटर्स" अर्थात् राजपुत्रियाँ हैं,  
करती है। प्रत्येक बड़ी लड़की दस बच्चों और  
एक माता पिता को निमन्त्रण देती है। श्रीमती  
वैरिट एक सौ मेहमानों का आतिथ्य करती है। वह  
लड़के और निर्बल जनों को भी बुलाती है—ऐसे जनों  
को जिन्हें कभी मेला मनाने का अवसर प्राप्त नहीं  
जाता। इस महोत्सव पर आनेवाले जन-समूह को

भोजन देने के निमित्त अनेक लोग उस वर्ष प्राप्त की  
गई अपनी सारी चीजों को बेच डालते हैं। इस  
प्रकार जो धन प्राप्त होता है वह खाने के पदार्थों  
के लिए खर्च किया जाता है। इससे बहुत थोड़ी  
आमदनी होती है; पर शेष धन की पूर्ति बस्ती के  
और लोग कर देते हैं। इससे सामग्री प्रस्तुत करने में  
कोई विशेष कष्ट नहीं होता। "ईस्टर" की  
तातीलों में हर साल बच्चों के लिए एक और  
त्योहार मनाया जाता है। उससे भी बच्चों का  
बहुत मनोरञ्जन होता है।

वैरिट के परिवार के लोगों के पुरुषार्थ से अनेक  
मण्डलियाँ स्थापित हो गई हैं। इनमें से सबसे  
अधिक लोकप्रिय "मदर्स क्लब" अर्थात् मातृ-मण्डली  
है। इसमें क्रीडामय शिक्षण पानेवाले बालकों के  
माता-पिता शामिल होते हैं। एक और मण्डली में  
बूढ़ी स्त्रियाँ प्रविष्ट होती हैं। फूलों का प्यार करने-  
वाले युवकों की भी एक मण्डली है। ये लोग  
बाग़ लगाने की विद्या सीखते हैं। गृहोद्यानमण्डली  
में लड़के भी होते हैं और लड़कियाँ भी। इनके  
अतिरिक्त युवा पुरुषों की एक छोटी सी सभा शाम  
को हुआ करती है।

श्रीमती वैरिट के शिक्षण का प्रभाव उसकी  
सखियों के घरों में अच्छी तरह देख पड़ता है।  
उनके घरों में उन्नति के चिह्न सब बातों में देखे जाते  
हैं। जिनको सुधारने के लिए उसने इतना श्रम किया  
है उन्हें वह सदा उत्तेजित और उत्साहित किया  
करती है। उत्साहित करना ही उसका बीज मन्त्र  
है। उसकी छात्र-स्त्रियाँ उसको शिक्षिका नहीं, किन्तु  
सखी समझती हैं, मित्र समझ कर ही वह उनको  
पहले अपने साथ भोजन करने के लिए बुलाती थी।  
जब वे उसको भोजन बनाने में सहायता देती थीं तब  
सहायता देते ही समय उन्होंने स्वयं भोजन बनाना  
और परोसना सीखा था। थाल और छुरी आदि  
का दस्तरखान पकड़ना भी उन्होंने इसी तरह  
सीखा था। खाना खाते समय ही घटनाक्रम से  
उन्होंने सभ्यता के नियम भी सीखे थे। तब से ले



कर आज तक उसकी सहायिकाओं ने अपनी इच्छा से ही उसकी सहायता की है और धन भी अपनी ही इच्छा से इसलिए दिया है जिसमें उसका काम सुगमता से चल सके। ऐसी सहायिकाओं में से परोपकार-व्रत-रत श्रीमती कोलिस पी० हन्टिङ्गटन भी हैं। तथापि श्रीमती बैरिट इस कार्य की एक मात्र जीवन-मूल है। इस अद्भुत और निष्काम शिक्षा-कर्म की वही जीवनी शक्ति है। उसका एक मात्र उद्देश स्वजाति की स्त्रियों का उद्धार करना है।

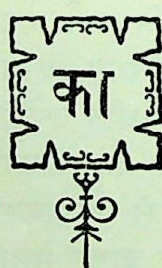
इस परोपकारिणी श्यामकाय स्त्री का पति भी स्वजाति के पुरुषों के उद्धार के लिए हृदयव्रत है। महाशय बैरिट ने हैम्पटन के नार्मल और कृषि-विद्यालय से उच्चपरीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद ही अपने नगरनिवासियों और सहयोगि-विद्वानों के साथ मिल कर, काले हबशियों के लाभ के लिए एक मकान बनवाया और उधार देनेवाली एक सभा स्थापित की। आरम्भ से ही वे इसके सञ्चालक और सूत्रधार हैं। तभी से ये इसके मन्त्री भी हैं। यह कम्पनी केवल हैम्पटन में ही नहीं, किन्तु उस प्रान्त भर में सबसे सुरक्षित धन-सम्बन्धिनी संस्था समझती जाती है। गृहहीनों के लिए घर बनाने और निर्धनों में सञ्चय की आदत बढ़ाने में इस संस्था ने बहुत बढ़ चढ़ कर काम किया है। १८८९ ई० में इसका काम १२ हिस्सेदारों में बँटा हुआ था। उस समय मूल-धन के केवल १८ हिस्से थे। जबसे यह कम्पनी खड़ी हुई तबसे आज तक इसने कभी विश्वासघात नहीं किया। धन-सम्बन्धी प्रत्येक काम बड़ी शीघ्रता से यह करती है। खड़ी होने के १५ वर्ष बाद इस कम्पनी के ६३६ हिस्सेदार हो गये। हिस्सेों की संख्या २२१२ हो गई और प्राप्त धन ३,१५,००० रुपया हो गया। इस धन में से श्यामकाय लोगों का २,२५,००० रुपया समझिए। कम्पनी माल रखनेवालों को उधार देती है। जायदाद रहन करने पर भी उधार दिया जाता है। जायदाद को देख कर उसकी ज़मानत पर भी रुपया दिया जाता है। इस कम्पनी ने हैम्पटन के श्यामकाय लोगों को

३,००,००० रुपया उधार दे रखा है, और लिए ३५० घर खरीद कराने में सहायता दी। बचत खाते में इसके पास १८,००० रुपया है। नामी जाँच करनेवाले ने, जिसने इस कम्पनी का हिसाब की जाँच की है, कहा है कि उसने अधिक पक्का और चातुर्यदर्शक प्रबन्ध और कम्पनी में नहीं देखा। इस “पीपल्स विल्डिङ्ग लोन एसोसिएशन” की सहायता से हैम्पटन के से उच्चपरीक्षोत्तीर्ण तथा भूतपूर्व छात्रों ने खरीद कर उस पर बड़े बड़े मकान बना लिए हैं।

यह सब काम एक श्यामवर्ण दम्पती स्वजाति उद्धारार्थ कर रहे हैं। और भी ऐसे ही अनेक अमेरिका में इन्हीं के समान जातिहितैषी वे भी बड़े ही उपयोगी और शीघ्र फलदायक में लगे हुए हैं।

सेंट निहालसि

## शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्म सूरि।



श्री की जैन-यशोविजय पाठशाला कई पुस्तकों की समालोचना स्वती में निकल चुकी है। उपाध्याय ने इन पुस्तकों को इस पाठशाला के से ज़रूर ही परिचय हो गया होगा। आज हम इस पाठशाला के आचार्य श्रीविजयधर्म सूरि का संक्षिप्त पाठकों को सुनाते हैं। ये ऐसे महात्मा हैं कि उनके अनेक प्रतिष्ठित विद्वान् इनका आदर कर और इन पर बड़ी ही श्रद्धा रखते हैं। आपका कुछ समय हुआ, बँगला की वाणी नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ था। उसी से प्राप्त सामग्री यह लेख प्रस्तुत हुआ है।

काठियावाड़ में माहुवा नामक एक गाँव वहाँ विशाश्रिमाली जातीय वैश्य के घर संवत्



[ भाग ६ ]

जैन मत में साधुओं के जीवन का प्रधान उद्देश आत्मोन्नति और जगत् का उपकार करना है। जैनी साधु धर्म की शिक्षा देकर संसार का उपकार करते हैं। धर्मोपदेश के लिए विशेष शास्त्रज्ञान होना जरूरी है। पूरे शास्त्रज्ञान के बिना सर्वसाधारण पर उपदेश का अच्छा असर नहीं पड़ता। इस कारण ये महात्मा भी दीक्षा ग्रहण करने के बाद गुरु-सेवा में तत्पर रह कर उनसे धर्मशिक्षा ग्रहण करने लगे। ये गुरु-सेवा में अधिक मन लगाते थे। पर उस समय उन्हें संस्कृत-भाषा का ज्ञान नहीं था। इससे इनकी धर्मशिक्षा शीघ्र सम्पन्न नहीं हुई। केवल प्रतिक्रमण\* अर्थात् पंचसंन्या सीखने में उन्हें डेढ़ वर्ष लगा। इस कारण इनके गुरुभाई और दूसरे साधु इनकी हँसी किया करते थे। परन्तु ये कभी हतोत्साह नहीं हुए; बराबर धीरे धीरे अपना कार्य करते गये।

इनकी गुरुभक्ति और धर्म-निष्ठा देख कर इनके गुरु ने अपने अन्तिम समय में इन को 'पंथास' उपाधि देने के लिए अपने शिष्यों को आदेश किया। संवत् १९४९ की वैशाख शुक्ला सप्तमी को इनके गुरु का शरीरपात हुआ। उसी समय उन्हें उक्त उपाधि मिली। उसके बाद उन्होंने भावनगर परित्याग किया। संवत् १९४९ का चातुर्मास्य उन्होंने लीमड़ी नगर में बिताया। इस तरह गुजरात के अनेक नगरों में घूम घूम कर उन्होंने लोगों को धर्मोपदेश देकर कृतार्थ किया। इस कार्य से इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। इनके धर्मोपदेश से जैनियों के सिवा अन्यान्य सम्प्रदायवालों का भी बहुत उपकार हुआ। इस समय इनका विद्यानुराग भी बहुत प्रबल हो उठा। लड़कपन में नियमित रूप से संचालित न होने के कारण इनकी बुद्धि मन्द पड़ गई थी।

\* जैनी लोग सन्यावन्दना को प्रतिक्रमण कहते हैं। अपने किये हुए पापादि के निवारणार्थ जैन पांच प्रतिक्रमण करते हैं,—प्रातःसंन्या, सायं संन्या, पान्क्ति संन्या, चातुर्मासिक संन्या और वार्षिक संन्या।



तथापि अपार परिश्रम करके इन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। धर्म और दर्शनशास्त्र का भी इन्होंने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया।

लुप्तप्राय जैन-गौरव का पुनरुद्धार करना इनके जीवन का प्रधान उद्देश है। इस उद्देश की सिद्धि के निमित्त इन्होंने अब तक अनेक कार्य किये हैं। संवत् १९५२ में इन्होंने जैन-सम्प्रदाय के अनेक विवादों को मिटा कर बहुत कष्ट से राणकपुर में जैन-श्वेताम्बर-मन्दिर की प्रतिष्ठा की। १९५३ संवत् में इन्होंने उपलियारा तीर्थ का उद्धार किया। यह तीर्थ काठियावाड़ में देउली गाँव से बारह कोस पर है। यहाँ फाल्गुन-शुक्लाष्टमी को बहुत बड़ा मेला होता है।

१९५७ संवत् में, श्रावणी पूर्णिमा के दिन, इन्होंने वीरमगाँव के जैनियों को उत्साहित करके एक बड़ा पुस्तकालय स्थापित कराया। उसका नाम “धर्म-विजय-पुस्तकालय” पड़ा। इसके सिवा इन्होंने सौराष्ट्र, गुजरात, मालव, काठियावाड़ आदि देशों के अनेक लुप्तप्राय और सम्पूर्ण-विलुप्त जैन-तीर्थों का उद्धार किया और अनेक स्थानों में संस्कृत-पाठशालायें तथा ज्ञानागार स्थापन कराये।

प्राचीन समय में संस्कृत और प्राकृत-साहित्य में जैनियों का जो स्थान था उसको पुनः प्राप्त करने की इन्हें इच्छा हुई। बहुत सोच विचार कर इन्होंने यह निश्चय किया कि काशी में एक जैन-पाठशाला स्थापित करके जैन छात्रों को संस्कृत की उत्तम शिक्षा दी जाय तो इस उद्देश की सिद्धि हो सकती है। अतएव इन्होंने उसके लिए प्रयत्न करना आरम्भ किया। अनेक स्थानों में घूम घूम कर इन्होंने लोगों पर अपने विचार प्रकट किये। इनके परमोपयोगी संकल्प का हाल सुन कर अनेक लोग इनके सहायक हुए। वीरमगाँव में एक कार्यकारिणी समिति प्रतिष्ठित हुई। वह समिति पाठशाला के खर्च के लिए रुपये जमा करने लगी। कुछ धन इकट्ठा होने पर विजयधर्मजी कुछ विद्यार्थियों और जैन साधुओं को साथ लेकर काशी को रवाना हुए। जैन-सम्प्रदाय

में साधुओं को किसी सवारी पर चढ़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान जाना मना है। अतएव ये लोग पैदल ही रवाना हुए। रास्ते में स्थान स्थान पर धर्मोपदेश देते हुए सब लोग चार महीने में काशी पहुँचे।

ये लोग, संवत् १९५९ की वैशाख शुक्ला तृतीया को, काशी में उपस्थित हुए। इसके पहले काशी जैन-साधुओं का बहुत कम आवागमन था। वहाँ के गृहस्थ जैन अपने साधुओं का उचित सम्मान करना नहीं जानते थे। काशी में जैन यतियों अधिक रहते थे। इससे वहाँ के गृहस्थ जैन यतियों के आचार-व्यवहार का ही ज्ञान था। और साधु का भेद वे नहीं जानते थे। अतएव महाराज और उनके साधु शिष्यों के आचार-व्यवहार उन्हें नवीन से मालूम होने लगे। जो विजयधर्म सूरि और उनके संग के साधुओं का काशी के जैन गृहस्थों को अपने उपदेशों द्वारा साधु-जीवन की श्रेष्ठता समझा दी। इसका फल हुआ कि वहाँ के जैनों की इन पर दिन दिन आस्था-भक्ति होने लगी। इसी समय मुनिजी ने प्राचीन धर्मशाला में जैन-पाठशाला का आरम्भ कर दिया। इस पाठशाला का नाम श्रीयशोविजय † जैन-पाठशाला रक्खा गया। उसके

\* यति शब्द का अर्थ भी साधु है। किन्तु जैनियों ‘यति’ उन साधुओं को कहते हैं जो द्रव्य और धातु दोनों रात को चिराग जलाते हैं और भोजन करते हैं, एक जगह दूसरी जगह सवारी पर जाते हैं, दूरे से हजामत बनवाते हैं और भोग विलासादि भी करते हैं। ‘साधु’ उन्हें कहते हैं जो वे कर्म नहीं करते। जैन यति शुद्ध वस्त्र पहनते हैं और जैन साधु यति नहीं करते।

† यशोविजय एक विख्यात जैन साधु थे। कोई डेढ़ वर्ष हुए उन्होंने काशी आकर अपने को ब्राह्मण बताया। नवीन प्रणाली का न्यायशास्त्र अध्ययन किया। शिवाजी सम्राट् होने पर उन्होंने अपना यथार्थ वेश प्रकट किया और मत पर शास्त्रार्थ करके वहाँ के पंडितों को चकित किया। उन्होंने उनकी बुद्धि का चमत्कार देख कर उन्हें न्यायविशारद की उपाधि दी। उन्हीं के कीर्त्ति-स्मरणार्थ इसका नाम यशोविजय-जैन-पाठशाला रक्खा गया।



[ भाग ६ ]

महाराज श्रीधर्मविजयजी को पाठशाला के एक अच्छा मकान प्राप्त करने की फिक्र हुई। उन्होंने नन्दन साहु के महल्ले में "अंगरेजी कोठी" नामक मकान उसके लिए उपयुक्त समझा। मुनि महाराज के आदेशानुसार उनके शिष्य वंबई-निवासी गिरचन्द्र दीपचन्द्र, सी० आई० ई०, जे० पी० सेठ गोकुलभाई मूलचन्द्र ने पच्चीस हजार रुपये में उक्त मकान पाठशाला के लिए खरीद दिया। इस मकान में पाठशाला आजाने पर श्रीधर्मविजयजी ने चेष्टा करके वहाँ एक संस्कृत-पुस्तकालय भी खोला गया। उसका नाम "हेमचन्द्राचार्य-विद्यालय" रखा गया।

संवत् १९६२ में, प्रयाग में, कुम्भ का मेला हुआ। उस समय पण्डित मदनमोहनजी मालवीय के आग्रह से वहाँ "सनातन-धर्म-महासभा" का अधिवेशन हुआ। उस सभा में भारतवर्ष के सब स्थानों से पण्डित लोग आये थे। श्री धर्मविजय महाराज भी वहाँ गये थे। उन्होंने माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन उस सभा की ज्ञानगोष्ठी के 'ऐक्य' विषय पर बहुत ही उत्तम ज्ञान-गर्भित वक्तृता दी थी। उस अधिवेशन में उत्कलखण्ड के शङ्कराचार्यजी सभा में भाग ले गये।

वहाँ से मुनि महाराज फिर काशी लौट आये। पाठशाला की उन्नति के लिए अनेक यत्न करने के बाद पाठशाला के काम में सहायता

हेमचन्द्र जैन-संप्रदाय के एक विख्यात आचार्य हो गये। वे ईसा की बारहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। उन्होंने १ वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की और २१ वर्ष की उम्र में आचार्य की उपाधि प्राप्त की। वे संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे। संस्कृत भाषा में अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे। वे अणहिल पाठन नामक एक संस्कृत और प्राकृत व्याकरण लिखा। उन्होंने अनेक नामों पर पुस्तकालय का यह नाम रखा गया।

देने के लिए उन्होंने अपने एक गुरुभाई को गुजरात से बुलाया। पाठशाला का सब काम उनके संपूर्ण करके, संवत् १९६३ की कार्तिक-शुक्ल प्रतिपदा के दिन, श्रीधर्मविजयजी श्रीपार्श्वनाथ तीर्थ की यात्रा को रवाना हुए। इस समय उनके साथ बहुत से विद्यार्थी और साधुशिष्य थे।

पार्श्वनाथ-यात्रा समाप्त करके ये बीस विद्यार्थियों और पाँच साधुओं के साथ ले कर बंगदेश की ओर चले। कुछ दिनों में ये कलकत्ते पहुँचे। वहाँ भी इन्होंने जैन धर्म का प्रचार शुरू किया। जैनियों की तो कोई बात ही नहीं, दूसरे लोग भी बड़ी श्रद्धा से इनके उपदेश सुनने लगे। अनेकानेक बंगाली युवकों का धर्म, ज्ञान और विद्या में विशेष अनुराग देख कर इन्होंने राय बदरीदास बहादुर के मकान में कई व्याख्यान दिये। इसी समय महामहोपाध्याय पण्डित सतीशचन्द्र विद्याभूषण का मुनि महाराज से परिचय हुआ। पण्डित महाशय मुनिजी के अगाध-शास्त्रज्ञान पर मुग्ध हो गये। उन्होंने इनसे जैन दर्शन पढ़ा और इनके उपदेश से मांस-मछली खाना छोड़ दिया।

वङ्गीय-साहित्य-परिषद् के सभ्यों के अनुरोध से श्रीधर्मविजयजी ने उसके दो अधिवेशनों में सभापति का आसन ग्रहण किया। दोनों दफ्ते उन्होंने बहुत ही सुन्दर और सारगर्भित व्याख्यान दिये। इनकी वक्तृता पर मुग्ध होकर बहुतों ने इनका मत ग्रहण किया।

जैन पाठशाला की संस्कृत-शिक्षा-प्रणाली का संस्कार करने के निमित्त श्रीधर्मविजयजी ने कलकत्ते से बङ्गदेश के प्रधान विद्यापीठ नवद्वीप की यात्रा की। वहाँ जाकर इन्होंने बहुत विचारपूर्वक वहाँ की शिक्षा-प्रणाली का निरीक्षण किया। नवद्वीप के महामहोपाध्याय पण्डितों ने इनका बड़ा आदर किया। वहाँ से ये काशी लौट आये। यहाँ पहुँच कर इन्होंने पाठशाला की बहुत ही बुरी दशा देखी। उसके छात्रों की संख्या ५३ से घट कर ८ हो गई थी। अतएव ये फिर से उसकी उन्नति की चेष्टा



करने लगे । अब इस पाठशाला की दिन दिन उन्नति हो रही है ।

श्रीविजयधर्मजी के काशी लौट आने पर, संवत् १९६४ की श्रावण-शुक्ल-चतुर्दशी को, श्रीयशो-विजय-जैन पाठशाला में एक बड़ी भारी सभा हुई । काशीनरेश महाराज प्रभुनारायणसिंह बहादुर, जी० सी० एस० आई० ने सभापति का आसन ग्रहण किया । इस सभा में भारतवर्ष के सब स्थानों के पण्डित एकत्र हुए थे । सब ने एकमत होकर श्रीधर्मविजयजी को “शास्त्रविशारद जैनाचार्य” की उपाधि दी । प्रतिष्ठापत्र पर सब पण्डितों ने हस्ताक्षर किये ।

जैन पाठशाला में इस समय अच्छे अच्छे अध्यापक हैं । विद्यार्थियों को संस्कृत और प्राकृत भाषा की उत्तम शिक्षा दी जाती है । मुनि महाराज के सुयोग्य शिष्य इन्द्रविजयजी पाठशाला का बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध करते हैं । परन्तु इतने पर भी श्री धर्म-विजय महाराज को संतोष नहीं । उनकी राय है कि पाली भाषा जाने बिना भारतीय साहित्य, भारतीय इतिहास, भारतीय दर्शन और भारतीय धर्म की शिक्षा पूरी नहीं होती । इसी से उस साल, जब महामहोपाध्याय डाकूर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०, भारत-गवर्नमेंट की आज्ञा से, सिंहल द्वीप ( Ceylon ) गये थे तब, मुनि महाराज ने भी अपने दो शिष्यों को पण्डित महाशय की निगरानी में रह कर पाली भाषा सीखने के लिए सिंहल भेजा था । उन दोनों ने वहाँ रह कर पाली भाषा का अध्ययन किया और उसमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । वहाँ से लौटने के पहले उन्होंने जैनधर्म पर पाली भाषा में एक व्याख्यान दिया । यह व्याख्यान सिंहल के प्रधान विद्यालय में वहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डितों और पाली-भाषा-विशारद बौद्ध साधुओं के सामने हुआ था । उन विद्यार्थियों को इतने कम समय में पाली-भाषा में ऐसी योग्यता प्राप्त करते देख सुमङ्गलाचार्य आदि पाली-भाषा के आचार्यों ने उन्हें प्रतिष्ठापत्र और तालपत्र-लिखित पुस्तकों का उपहार

दिया । परन्तु इतना खर्च करके श्रीधर्मविजयजी जिस उद्देश से विद्यार्थियों को सिंहल भेजा था सिद्ध नहीं हुआ । मुनि महाराज ने विद्यार्थियों को यह जानने के लिए भेजा था कि जैन और हिन्दू-बौद्ध शास्त्रों में बौद्ध मत की जो छाया देख पड़ती है उसका मूल पाली ग्रन्थों में है या नहीं । किन्तु सिंहल में बौद्ध साधु दर्शन-शास्त्र पर चर्चा नहीं करते । इस कारण केवल भाषा मात्र की शिक्षा देकर इन लोगों ने दोनों विद्यार्थियों को विदा दिया । मुनि महाराज इन दोनों विद्यार्थियों को काम के लिए तिब्बत और ब्रह्मदेश भेजने का विचार कर रहे हैं । इन विद्यार्थियों से क्यों, महापण्डितों से, एक बार काशी में मिल कर हमने बहुत आशा प्राप्त किया है ।

लुप्त जैन-ग्रन्थों का उद्धार और उनका प्रकाशित करना भी इनके जीवन का एक उद्देश है । उस उद्देश की सिद्धि के लिए इन्होंने पाठशाला से “श्रीधर्म-विजय-जैन-ग्रन्थमाला” प्रकाशित करना आरम्भ किया है । अब तक इसमें कोई १५, १६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । यह ग्रन्थमाला हर महीने प्रकाशित होती है । इसके लिए पाठशाला में एक छापाखाना भी है । इस पुस्तकमाला से केवल जैनधर्म ही उपकार नहीं होता, प्राचीन इतिहास और भाषाशास्त्र की भी बहुत कुछ सामग्री इसमें इकट्ठी हो रही है ।

श्रीविजयधर्म सूरि जी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैनों के प्रधान आचार्य हैं । ये बड़े ही दृढ़व्रत सत्यनिष्ठ हैं । इनकी स्थापित की हुई जैन-पाठशाला में जैन-विद्यार्थियों के सिवा हिन्दू-विद्यार्थियों को भी शिक्षा दी जाती है । ये दोनों ही पर समान रखते हैं—दोनों ही के अभावमोचन की एक सी प्रवृत्ति करते हैं । इनकी राय है कि प्रकट रूप से जैन धर्म ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं । जैन धर्म उपदेशों के अनुसार कार्य करना ही यथार्थ प्रवृत्ति है । ये जैन धर्म को ही भारत का धर्म और मुख्य धर्म मानते हैं । योरप में जैन धर्म प्रचार करने की ओर भी इनका ध्यान है ।



स्वर्गीय सङ्गीत ।

मर्मविजयजी और धर्मप्रचार-समर्थ दो तीन छात्रों को भेजा था कि वे विचार कर रहे हैं। मुनि और जैनशास्त्र और जैनधर्म में विशेष श्रद्धा रखनेवाले योराप के विद्वानों को प्राचीन जैनशास्त्र के पढ़ने को देते हैं और पत्र द्वारा उनकी शङ्काओं का समाधान किया करते हैं। इन्होंने 'विबलिओ-विका इडिका' नाम की अंगरेजी ग्रन्थमाला में योगशास्त्र आदि पुस्तकों का स्वयं सम्पादन किया है और गणित पण्डितों को अनेक प्राचीन जैन ग्रन्थों के सम्पादन में सहायता दी है। इसके सिवा जैनतत्त्व-दर्शन, आत्मोन्नतिदिग्दर्शन, पुरुषार्थ-दिग्दर्शन, प्रियवराजयदिग्दर्शन आदि कितने ही ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों को पढ़ने से इनके और विचारों का अच्छा परिचय मिलता है। ये संसार की भलाई की ही चिन्ता किया करते हैं। भूतदया, अहिंसा और स्वार्थत्याग इनका मूल-मंत्र है। फ्रांस की राजधानी पेरिस से एशियाटिक सोसायटी के जर्नल की तरह की एक पत्रिका प्रकाशित होती है। उसका नाम है जर्नल एशियाटिकी (Journal Asiatique) उसके गतवर्ष के एक अङ्क में एक फ्रांसीसी विद्वान् ने श्रीविजयधर्मसूरि का जीवन-चरित प्रकाशित किया है और उसमें इनके योगों की भूरि भूरि प्रशंसा की है। अभी हाल में जर्मनी काशी में एक पशुशाला स्थापित की है। महाराज काशिराज उसके रक्षक हुए हैं। आप बड़े विद्वान् हैं। इनके दर्शनों से हम कई बार कृतार्थ हुए हैं।

## स्वर्गीय सङ्गीत ।

### ( उपक्रमणिका )

जो आत्म-कर्तव्य निबाहना है,  
यहाँ सुधास्वादन चाहना है।  
तो छोड़ के तू सब और काम,  
अरी रसज्ञे ! रट राम राम ॥ १ ॥

गाना नहीं है यह आशिकाना—  
जहाँ दिलेविस्मिल का खजाना ।  
सुनो, यहाँ आकर सानुराग—  
स्वर्गीय सङ्गीत पुनीत राग ॥ २ ॥

जीते हुए भी मरना नहीं है,  
वे सर्द आहें भरना नहीं है।  
जीना सदा को मर के यहाँ है,  
ऐसी सुधा-वृष्टि कहा कहाँ है ? ॥ ३ ॥

शराब की वोतल और प्याली,  
साफ़ी यहाँ है करता न खाली ।  
अलौकिकानन्द यहाँ अपार,  
है मुग्ध होता मन बार बार ॥ ४ ॥

न काकुलों में दिल कैद होता,  
माशूक को आशिक है न रोता ।  
होता यहाँ अद्भुत आत्मयोग,  
हैं दूर होते विषयोपभोग ॥ ५ ॥

बाँकी अदायें, तिरछी निगाहें,  
पड़ी गले में दिन-रात बाहें ।  
यों इश्क की है बढ़ती न बेल,  
होता यहाँ ईश्वर-जीव-मेल ॥ ६ ॥

रोते हुए रात यहाँ न जाती,  
यों ही न होठों पर जान आती ।  
होते यहाँ ग़ाब न जागने में,  
है शान्ति पाना सब त्यागने में ॥ ७ ॥

न दूसरों के घर यार जाते;  
यहाँ स्वयं ही सरकार आते ।  
जानूँ सरो का सहते न भार;  
गम्भीर होते सिर के विचार ॥ ८ ॥

न एक आहू करते शिकार—  
बेजार होते दस पाँच यार ।  
होता उदू का न यहाँ जमाव;  
है फैल जाता बस भ्रातृभाव ॥ ९ ॥

यहाँ दिलों में पड़ते न दाग;  
आकाश में हैं लगते न बाग ।  
होता यहाँ मानस है पवित्र;  
हैं सत्यतापूर्ण महच्चरित्र ॥ १० ॥



वे फ़ाहिशाना ग़ज़ले नहों हैं ;  
 वे आशिक़ाना अज़ले नहों हैं ।  
 है दूसरा ही इस ओर ठाठ ;  
 होता अहा ! पुण्य पुराण-पाठ ॥११॥

ऐयार की चाल यहाँ नहों है ;  
 तिलस का जाल यहाँ नहों है ।  
 यहाँ सभी हैं सरल-स्वभाव ;  
 है बन्धनों का अति ही अभाव ॥१२॥

अश्लीलतापूर्ण, चरित्रनाशी—  
 यहाँ उपन्यासमयी न काशी ।  
 ज्यों जाह्नवी की सित-नील धारा—  
 है शील-धारा बहती अपारा ॥१३॥

न इन्द्रियों का चिरदास होना ;  
 हो के स्वयं यों परतन्त्र रोना ।  
 आती यहाँ संयम की सुयुक्ति ;  
 हैं प्राप्त होती युग भुक्ति-मुक्ति ॥१४॥

न तो यहाँ है हठ-पक्षपात ;  
 न स्वार्थ से पूर्ण परापघात ।  
 होता मनोयोग यथार्थ में ही ;  
 है स्वार्थ पूरा परमार्थ में ही ॥१५॥

यहाँ अघों के घट फूट जाते ;  
 संसार के बन्धन टूट जाते ।  
 सारे दुखों से सब छूट जाते ;  
 विख्यात चारों फल लूट पाते ॥१६॥

होती यहाँ बोध-विवेक-वृष्टि ;  
 है प्राप्त होती द्रुत दिव्य दृष्टि ।  
 पाता न कोई जिसका महत्त्व—  
 है सूझ जाता वह सूक्ष्म तत्त्व ॥१७॥

होता किसी से न यहाँ विरोध ;  
 समाप्त होता शुभ सत्य-शोध ।  
 हृद्ग्राम में है रहता न शोक ;  
 विलीन होता यह बाह्य लोक ॥१८॥

आलाप में ताप यहाँ नहों है ;  
 न प्रेम में पाप यहाँ कहीं है ।  
 संयोग में है न यहाँ वियोग ;  
 हैं इन्द्रियों में अटके न भोग ॥१९॥

विश्वेश की निर्गुण-रङ्ग-बोरी—  
 यहाँ निराकार दशा न कोरी ।  
 साकार लीलामय के ललाम—  
 हैं एक से एक अपूर्व काम ॥२०॥

देता अहा ! है स्वर पाञ्चजन्य ;  
 है सत्यसत्तात्मक गीत धन्य ।  
 गाती यहाँ है प्रकृति प्रवीणा ;  
 सरस्वती की बजती सुवीणा ॥२१॥

क्या ही सुधा-सिञ्चन हो रहा है ;  
 आलाप तापत्रय खो रहा है ।  
 हरे, हृषीकेश, दयानिधान ।  
 भूले न हिन्दू यह दिव्य गान ॥२२॥

मैथिलीशरण गुप्त

## कालिदास के समय का भारत



युत बाबू अरविन्द घोष का पत्र  
 कराने की आवश्यकता न  
 बहुत छोटी उम्र में वे विल  
 गये थे । वहाँ, केंब्रिज के वि  
 विद्यालय में उन्होंने शिक्षा  
 की । अँगरेज़ी के वे बड़े भा  
 विद्वान् हो गये । हिन्दुस्तान को लौट आने पर उन्हें  
 संस्कृत-साहित्य का भी अध्ययन किया और उन्हें  
 गुणों पर मुग्ध होकर उसके पङ्के पक्षपाती हो गये  
 कई साल हुए, उन्होंने मदरास के इंडियन-मि  
 नामक अँगरेज़ी के मासिक पत्र में कालिदास  
 विषय में एक लेख प्रकाशित किया था । उस  
 से अरविन्द बाबू की असाधारण विद्वत्ता और  
 विचारशक्ति का पता लगता है । वाल्मीकि,  
 और कालिदास के काव्यों का उन्होंने जो भाव समझ  
 है वह शायद ही और किसी के ध्यान में आ  
 होगा । उसी लेख का मतलब, दूरे दूरे शायद  
 नीचे प्रकाशित किया जाता है ।



वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के ग्रन्थों में प्राचीन भारत का इतिहास विद्यमान है। ये तीनों आत्मा की भिन्न भिन्न भिन्न तीन अवस्थाओं के उदाहरण हैं। ये शक्तियाँ नैतिक, वैज्ञानिक और पाञ्चभौतिक हैं। इनके काव्यों में इन तीनों शक्तियों का पूर्ण विकास पाया जाता है। इन तीनों कवियों में असाधारण कविताशक्ति थी। इनमें अपने समय के मनुष्यों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं की छोटी बड़ी सभी घटनाओं को वर्णन करने की विलक्षण शक्ति थी। विलायत के प्रसिद्ध विद्वान् होमर, शेक्सपियर तथा दान्ते से इन तीनों की तुलना की जा सकती है। इन तीनों काव्यों में आर्य-जाति की सभ्यता-सम्बन्धी तीन अवस्थाओं के बहुत ही सुन्दर चित्र मिलते हैं। वाल्मीकि के काव्य में आर्यों की नैतिक अवस्था के चित्र हैं; व्यास के काव्यों में मानसिक अवस्था के; और कालिदास के काव्यों में पाञ्चभौतिक अवस्था के। आत्मा की एक और अवस्था होती है। उसे आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं के गुणों का एकत्र समावेश होता है। इन तीनों अवस्थाओं का इतिहास आध्यात्मिक शक्ति का पूर्ण प्रभाव प्रकट करता है। परन्तु इस चौथी शक्ति का कोई विशेष समय-विभाग नहीं किया जा सकता। प्राचीन भारत के इतिहास में ऐसा कोई समय न था जब केवल आध्यात्मिक शक्ति ही की प्रधानता होती हो।

रामायण में एक आदर्श समाज का चित्र है। इससे बहुत लोग अनुमान करते हैं कि उसकी कथा कालिदास की है। परन्तु यह अनुमान युक्ति-संगत नहीं है। रामायण से जन-समाज का आदर्श-रूप में परिभाषा होना साबित होता है। किसी कवि में यह सामर्थ्य नहीं देखा गया कि इतनी बारीकी और सततता से केवल अनुमान द्वारा इतना बड़ा और वैशिष्ट्यपूर्ण चित्र बना सका हो। ऐसा करने की

भूल कर बैठेगा। खैर, इस जगह वाल्मीकि के समय या उनके काव्य की आलोचना करने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, यहाँ पर, इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि रामायण के उत्तर-काण्ड में बहुत सी कथाएँ पीछे से जोड़ी गई मालूम होती हैं। पर वे आसानी से अलग कर दी जा सकती हैं। बाक़ी का सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही विद्वान् का बनाया हुआ जान पड़ता है। घटनाक्रम से मालूम होता है कि वाल्मीकि-रामायण की रचना व्यास के महाभारत से पहले की है; और वे कृष्ण तथा महाभारत में वर्णन किये गये अन्य लोगों के बहुत पहले विद्यमान थे। किन्तु काव्य की रचना और उसमें उल्लिखित कई विषयों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि की रचना के समय भी देश की राज-नैतिक और सामाजिक अवस्था वैसी ही थी जैसी व्यास के समय में थी। मतलब यह कि वाल्मीकि का प्रादुर्भाव उस समय हुआ था जिस समय क्षत्रिय-नरेश अपने बल के अभिमान से प्रेरित होकर अपने मनोऽनुकूल नैतिक नियमों का सर्वत्र प्रचार करना चाहते थे; अतएव उनकी मनमानी राजनीति के विरुद्ध, जिस समय, देश में, घोर आन्दोलन होने वाला था। व्यास ने महाभारत में जरासन्ध के मुख से उस स्थिति का वर्णन कराया है, और वाल्मीकि ने राम के मुख से उसका बार बार प्रतिवाद कराया है। ये नीति-नियम, बड़े लोगों के चरित्र-सम्बन्धी नियमों की तरह, वीरता और सच्चरित्रता के सूचक थे। परन्तु पुरुषों की सच्चरित्रता के सम्बन्ध में ये नियम कुछ कमजोर थे। समाज का नियमन कराने की ओर भी इनका झुकाव था। वाल्मीकि का स्वभाव बहुत ही शुद्ध और धार्मिक था। वे बड़े ही प्रतिभावान् और उत्साही थे। उन्हें इन नियमों की कमजोरी और उद्दण्डता खटकने लगी। यदि वे चाहते तो, अन्यान्य बुरी और नीतिविरुद्ध बातों की तरह, इस पर भी चुप हो रहते। परन्तु यह बात उन्हें पसन्द नहीं आई। इसी से उन्होंने बहुत पुराने जमाने के एक अनुकरणीय, उन्नत और धार्मिक



समाज की शरण ली। इससे उनको सभ्यता का एक बहुत बड़ा चित्र बनाने के लिए पूरा मसाला मिल गया। उन्होंने अपने ग्रन्थ में विलक्षण कवि-कौशल से दो प्रकार के जन-समाज के चित्र बनाये हैं। दोनों ही चित्र अपनी अपनी पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचाये गये हैं। एक चित्र तो एक ऐसे आदर्श समाज का है जिसमें समाज को उन्नत करने और उसका गौरव बढ़ानेवाली सामग्रियों का बहुत ही उत्तम रीति से उपयोग किया जाता है। दूसरा चित्र एक ऐसे अमानुषिक समाज का है जहाँ बल, अत्याचार, लोभ, अभिमान, इच्छा-स्वातन्त्र्य आदि का ही साम्राज्य है। कवि ने राम और रावण को इन्हीं दोनों तरह के समाजों के आदर्श पुरुष बना कर उनके युद्ध का परिणाम दिखाया है। रामायण की रचना इसी तरह की है। वाल्मीकि का यह काव्य बहुत ही अच्छा है। कविता के श्रेष्ठ गुणों से वह युक्त है। यह सच है कि सब लोग इसके यथार्थ आशय को नहीं समझ सकते; किन्तु जिन्होंने इसका तत्त्व समझा है वे संसार के किसी अन्य काव्य को इससे ऊँचा स्थान कभी देने के नहीं।

तात्पर्य यह कि वाल्मीकि-रामायण में एक विशुद्ध नैतिक अवस्था का चित्र पाया जाता है। उस में शारीरिक और मानसिक, दोनों, शक्तियों का पूर्ण विकास दिखाया गया है। साथ ही साथ उन शक्तियों को, स्वभाव की शुद्धता और श्रेष्ठ धार्मिक जीवन के कार्यों का सहायक बनाने की आवश्यकता भी बतलाई गई है। तथापि वाल्मीकि ने निष्काम धर्म का कहीं भी उपदेश नहीं दिया। इस धर्म की शिक्षा महाभारत में ही पूरी तरह दी गई है। वाल्मीकि के पात्र सारे काम मानसिक उत्तेजना से करते हैं, दोषारोपण की बुद्धि से नहीं। धर्म की उत्तेजना ही राम से सब काम कराती है और अधर्म की उत्तेजना रावण को अत्याचार में प्रवृत्त करती है। वाल्मीकि ने पुराने धार्मिक नियमों को ही सर्वत्र फैलाने की चेष्टा की है। उन नियमों में अपनी ओर से कुछ फेर फार करना उन्होंने अच्छा नहीं

समझा। इसी से वाल्मीकि का काव्य उस समय के नैतिक अवस्था का श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता जिस समय हिन्दुओं में वीरता का पूर्ण विकास था।

व्यास वाल्मीकि के बाद हुए हैं। उस देश में और भी अधिक अशान्ति फैली हुई थी उस अशान्ति से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कथाएँ सुनने में आती हैं। वे यदि सत्य हों तो यह ही मान लेना पड़ेगा कि, वाल्मीकि के आदर्श के सार, साम्राज्य स्थापन करने और समाज का संस्कार करने में व्यास ने बहुत सहायता दी है। व्यास आदर्शियों की उस राजनीति के प्रचार के पक्षपाती थे जो देश के प्रधान पुरुषों के मनोऽनुकूल हो जाँचे वे चाहते थे कि देश में एक ऐसा साम्राज्य स्थापित हो जाँचे जो उच्च प्रवृत्ति का उदाहरण समझा जा सके और जो नीच प्रवृत्ति को दबाने या उसको दूर करने में समर्थ हो। वाल्मीकि और व्यास के विचारों में अन्तर है। वाल्मीकि ने देश की सामयिक स्थिति का खयाल न करके प्राचीन समय के आदर्श ग्रहण किया। पर व्यास का सारा लक्ष्य अपने समय की स्थिति पर था। उसके साथ सहानुभूति दिखाने हुए वे उसे, कुछ समयान्तर, आदर्श में परिणत करने की आशा रखते थे। वाल्मीकि पुराने और प्रतिष्ठित राजनियमों के पक्षपाती थे वे समाज को प्राचीन समय के आदर्श पर ले जाँचे चाहते थे। किन्तु व्यास राजनीति के नवीन संस्कार के पक्षपाती थे। इसी से उन्होंने प्रचलित नियमों का विरोध नहीं किया। उन्होंने उन नियमों को आधुनिक संस्कार का आधार माना और निष्काम धर्म की शिक्षा से उन्हें आदर्शरूप में परिणत किया।

व्यास का बुद्धिबल बड़ा प्रबल था। धारणा, अध्यात्मविद्या और नैतिक विचारों में उनका मन बहुत लगता था। उन्होंने प्रचलित नीति-नियमों की परीक्षा धर्माधर्म की दृष्टि से की और उत्तम रीति से उनका सुधार किया। उन्होंने नियमों के आधार पर उन्होंने ऊँचे दर्जे के नियम बनाए राजशासन और समाज, दोनों को, उन्होंने



[ भाग ६ ]  
 दूसरी तक पहुँचाया। उन्होंने एक एक करके सभी  
 कलाओं का नये ढंग से संस्कार किया। उनकी  
 विचार-दृष्टि बड़ी सूक्ष्म थी। उसकी बदौलत उन्होंने  
 सभी विषयों का संस्कार किया। उन्होंने अपने समय  
 की सभ्यता को हम लोगों के सामने आईने की तरह  
 प्रकाश दिया है। उस सभ्यता में नैतिक और भौतिक  
 दोनों ही अवस्थाओं पर बुद्धिबल का पूरा प्रकाश  
 देता है। महाभारत के सब पात्रों में, सब  
 बुद्धिबल की ही प्रधानता देखी जाती है।  
 लोग प्रत्येक काम मन की प्रबल उत्तेजना से  
 करते हैं। इसी से उनके कार्यकलाप के चिह्न पत्थर  
 की तरह साफ़ नज़र आते हैं। इस प्रबल  
 शक्ति का माहात्म्य महाभारत में सब जगह  
 तोरह पाया जाता है जिस तरह रामायण में  
 और अधर्म की उत्तेजना का माहात्म्य। महा-  
 भारत के सब पात्रों को कवि ने भिन्न भिन्न प्रकार  
 की मानसिक उत्तेजना के बल से ही सभ्यता की राह  
 पर पहुँचाया है। इसी से उसमें रामायण की अपेक्षा  
 बहुत ही कम पाई जाती है, शान्ति की  
 और अशान्ति और विद्रोह के समय के चित्र हैं; रामा-  
 यण में सुख-शान्ति के समय के।  
 व्यास के कोई हजार वर्ष बाद कालिदास उत्पन्न  
 हुए। उन्होंने भी अपने समय की सामाजिक अवस्था  
 को बहुत ही अच्छे चित्र खींचे हैं। वाल्मीकि और  
 उनके समय के बीच जितनी घटनाएँ हुई थीं  
 उन्हीं अधिक घटनाएँ कालिदास और व्यास  
 के समय के बीच में हुईं। कालिदास का प्रादुर्भाव  
 एक भाव फैला हुआ था जब देश में सब जगह पैशा-  
 च और बौद्ध मत की सृष्टि हो चुकी थी। सार्वजनिक  
 विषय के नियम बनाने की धुन में थे।  
 शास्त्र के नियम-बद्ध हुआ, धर्मशास्त्र और नीति-  
 शास्त्र के नियम बने—विद्या और ज्ञान के जितने  
 सभी नियमबद्ध हुए। इस समय एक

और तो बड़े बड़े विद्वानों, नीतिशास्त्रियों, नैयायिकों  
 और दार्शनिक तत्त्ववेत्ताओं के ग्रन्थ बन रहे थे।  
 दूसरी ओर जातीय उत्साह और सांसारिक जीवन  
 के सौन्दर्य के विषय में काव्यों की रचना हो रही  
 थी। लोगों के जीवन में विलासिता घुस गई थी। वे  
 जीवन और सौन्दर्य ही को सब कुछ समझने लगे  
 थे—उनका उन्हें बड़ा अभिमान था। चित्रकारी,  
 गृहनिर्माण-विद्या, सङ्गीत, नाट्यकला, वनस्पतिशास्त्र  
 आदि विलासिता की सूचक सभी विद्याएँ उन्नति  
 की चरम सीमा तक पहुँचाई गई थीं। यह बात  
 ठीक ठीक समय में नहीं आती कि ऐसी प्रवृत्ति  
 ग्रीक लोगों की सभ्यता की बदौलत उत्पन्न हुई थी  
 या बौद्ध लोगों की सभ्यता की बदौलत। बहुत  
 करके बौद्ध लोग इसके जन्मदाता नहीं हैं। ग्रीक  
 लोगों के विलासप्रिय जीवन का ही यह फल होगा।  
 तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि यह परिवर्तन  
 एकाएक हुआ हो। पहले समय से इस समय के  
 अलगाव की सीमा नहीं निश्चित की जा सकती।  
 ऐसा निश्चय करना मानो मनुष्य की उन्नति के प्राकृ-  
 तिक नियमों का विरोध करना है। इस समय की  
 प्रत्येक विद्या और शिल्पकला किसी न किसी रूप में  
 प्राचीन भारत में भी विद्यमान थी। प्राचीन समय  
 में भी कानून थे। शिल्प और नाटक की उत्पत्ति भी  
 बहुत प्राचीन समय में हुई थी। योग की क्रिया तो  
 बहुत पहले से वर्तमान है। पाञ्चभौतिक जीवन  
 के भी जो चित्र रघुवंश में हैं उनसे कहीं अच्छे चित्र  
 रामायण और महाभारत में दिखाये गये हैं। किन्तु  
 भेद इतना ही है कि पहले ये बातें किसी किसी श्रेष्ठ  
 कल्पनावाले विद्वान् के द्वारा होती थीं; पर कालि-  
 दास के समय में ये प्रधानता से फैल गई थीं।  
 अच्छे अच्छे लोग अपना बल-पौरुष इन्हीं कामों में  
 व्यय करते थे। इस उत्तेजना की बदौलत, बौद्ध धर्म  
 के विकास से शङ्कराचार्य के प्रादुर्भाव के बीच की  
 शताब्दियों में लोगों का जीवन बहुत ही विज्ञान-  
 मूलक और सांसारिक हो गया था। आत्मविद्या में भी  
 सांसारिक भाव प्रवेश कर गया था। परन्तु चार-



वाक के मत को लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे, अतएव नास्तिकता ने विशेष जोर नहीं पकड़ा था । इसी समय आत्मविद्या, विज्ञान, राजनीति और अनेक शिल्पकलाओं के नियम बनाये गये थे ।

इसी ज़माने के शुरू में, यहाँ, दर्शनशास्त्र के नियम बन रहे थे और शिल्प और विज्ञान की उन्नति हो रही थी । उपनिषदों के आधार पर पुराणों की रचना हो रही थी । वेदान्त और सांख्य के उत्तम सिद्धान्तों का योग की क्रियाओं और न्याय-सम्बन्धी विचारों के साथ मेल होने लगा था । किन्तु ये काम पूर्ण नहीं होने पाये थे कि उज्जयिनी में कालिदास प्रकट हुए । उन्होंने लोगों की सामयिक प्रवृत्ति का पूरा ज्ञान प्राप्त किया था । उनके काव्यों से मालूम होता है कि वे बड़े भारी विद्वान् थे । उनका बड़े बड़े लोगों से सम्बन्ध था । वे हमेशा अमीरों के साथ रहा करते थे । ऐशोआराम से रहना उन्हें बहुत पसंद था । शिल्प और विज्ञान का उन्हें अच्छा ज्ञान था । राजनीति के वे पूरे पण्डित थे । दर्शनशास्त्र में भी उनकी अच्छी गति थी । कई बातों में वे शेक्सपियर के समान थे । शेक्सपियर की तरह वे भी कुछ दिन पहले की घटनाओं को सामयिक रूप देकर उनका वर्णन करते थे । सामयिक घटना का उल्लेख करते समय कभी कभी उनके भावी फल को भी वे झलका देते थे । शेक्सपियर की तरह धर्म का भी उन्हें खूब खयाल था ।

कालिदास का वेदान्त पर पूरा विश्वास था । पर आचरण उनका शैवों के सहश था । मालूम होता है कि उन्होंने अपने समय और देश की प्रथा के अनुसार ही ऐसा आचरण ग्रहण किया था, धार्मिक बुद्धि से नहीं । वे स्मृतियों के सिद्धान्तों को भी मानते थे और उनकी प्रशंसा भी करते थे । परन्तु उनका आत्मिक चरित्र उतना अच्छा नहीं मालूम होता । उनके बुरे चालचलन के विषय में बहुत सी बातें सुनी जाती हैं । उन्हें हम सत्य नहीं भी मान सकते हैं । किन्तु, कालिदास के काव्यों को कोई भी पक्षपातरहित पाठक यह न कह सकेगा कि

कालिदास धर्मानुरागी अथवा धार्मिक नियमों को पाबन्दी करनेवाले थे । उनके काव्यों में श्रेष्ठ और अच्छे विचारों की प्रशंसा है ; पर यह प्रमाण काल्पनिक है । उनके अच्छे विषयों के वर्णन से उनकी कल्पना शक्ति की श्रेष्ठता मात्र साबित हो सकती है । उसका प्रभाव भी अच्छे लोगों की ही कल्पना शक्ति पर पड़ सकता है । वाल्मीकि और व्यास काव्यों की तरह उनके काव्यों में चरित्र सुधारने की शक्ति नहीं है । कालिदास की स्वाभाविक प्रशंसा सौन्दर्य की ओर है । सौन्दर्य-वर्णन में उनकी सफलता प्राप्त की है वैसी और किसी कवि के वर्णन में नहीं ।

कालिदास की तर्कना-शक्ति बहुत ही अत्यन्त थी । शृङ्गार और करुण रस के वर्णन में वे सिद्ध हस्त थे । कालिदास में प्रधान गुण यह था कि प्रत्येक काव्योपयोगी सामग्री को—काव्य के प्रत्येक अंश को—बड़ेही कौशल से सुन्दर बना देते अपने वर्णनीय विषय की मूर्ति पाठकों के सामने खड़ी कर देने की जैसी शक्ति कालिदास में वैसी और किसी कवि में नहीं पाई जाती ।

बड़े बड़े कवि जब बहुत उत्तेजित होकर किसी बात का वर्णन करने लगते हैं तभी उनमें उस बात का प्रत्यक्षवत् दिखा देने की शक्ति आती है । कालिदास में यह विलक्षण शक्ति सब समय वर्तमान रहती थी । इसी शक्ति के साथ अपनी सौन्दर्य-कल्पना की सर्वश्रेष्ठ शक्ति को मिला कर वे कालिदास चित्र बनाया करते थे । वे जैसे उत्तम विषयों को कल्पना कर सकते थे वैसे ही उसे खूबसूरती के साथ सम्पन्न भी कर सकते थे । भाषा और अर्थ आदि के सौन्दर्य तथा उनकी ध्वनि और अर्थ आदि भी वे बड़ा खयाल रखते थे । उन्होंने संस्कृत के भाण्डार से बहुत ही ललित छन्दों और सरस शब्दों को चुन चुन कर अपनी कविता में लगाया है । इससे उनकी रचना देववाणी की तरह मालूम होती है । कालिदास की भावोद्बोधन शक्ति ऐसी अच्छी थी कि पिछले हजार वर्षों







कालिदास के समय में शिल्पकलायें खूब उन्नत थीं। इससे प्राकृतिक-सौन्दर्य-दर्शन की चाह बहुत बढ़ गई थी। पहाड़ों और जङ्गलों की शोभा, भीलों और नदियों की रमणीयता, पशुओं और पक्षियों के जीवन की मोहकता पर लोग मुग्ध होने लगे थे। इसके सिवा, बौद्ध मत के प्रभाव से लोग वृक्षों, लताओं और पहाड़ों को भी जीवधारी समझने और पशु-पक्षियों में भी भ्रातृ-भाव की स्थापना करने लगे थे। इन कारणों से कालिदास को सौन्दर्य-वर्णन में बहुत सहायता मिली। उन्होंने अपने अपूर्व कवि-कौशल से अनूठे अनूठे पौराणिक दृश्यों पर नये नये बेलबूटे लगा कर उनकी सुन्दरता और भी बढ़ा दी। आँख, कान, नाक मुँह आदि ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति के विषय, तथा कल्पना और प्रवृत्ति, यही बातें काव्यरचना के मुख्य उपादान हैं। कालिदास ने इन सामग्रियों से एक आदर्श-सौन्दर्य की सृष्टि की है। कालिदास के काव्यों में स्वर्गीय सौन्दर्य की आभा झलकती है। वहाँ सभी विषय सौन्दर्य के शासन के अधीन हैं। धार्मिक भाव और बुद्धि भी सौन्दर्य-शासन में रक्खी गई है। परन्तु, इतने पर भी, अन्यान्य सौन्दर्य-उपासना-पूर्ण कविताओं के स्वाभाविक दोषों से कालिदास की कविता बची हुई है। अन्य कविताओं की तरह इनकी कविता धीरे धीरे कम-जोर नहीं होती गई। इसमें दुराचार की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। इनकी कविता अपनी नायिकाओं की काली कुटिल अलकों और भ्रमझुझियों में भी अत्यन्त उलझी हुई नहीं जान पड़ती। कालिदास की रचना इन सब दोषों से बची हुई है। समुचित शब्दों के प्रयोग और काव्य के चमत्कार की ओर ही इनका अधिक ध्यान था।

रामायण और महाभारत में, हम लोग, उनमें वर्णन किये गये पात्रों को धर्म या अधर्म की बुद्धि से उत्तेजित होते देखते हैं। उसी तरह कालिदास के पात्रों के वाक्य-प्रयोग, और, और काव्यों से भी मानसिक उत्तेजना प्रकट होती है। कालिदास के सारे पात्र सुखप्राप्ति के इच्छुक थे। प्रत्येक विषय में वे

सुख की कल्पना करते थे। वे प्रेम से उन्मत्त हो शोक से विह्वल हो जाते थे। विषयवासना से एक दम लिप्त थे। सुन्दरता की उन्हें बहुत चाह थी। इन सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि कालिदास के समय में लोगों की आध्यात्मिक शक्ति बहुत कुछ शिथिल हो गई थी। उस शक्ति बल से आत्मज्ञान प्राप्त करना उनके लिए असंभव हो गया था। इसी कारण वे प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्ध में यह पता लगाने की कोशिश करते कि उसकी पहुँच कितनी दूर तक है। ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से ईश्वरप्राप्ति की इच्छा से ही वे कल्पना करते थे।

यह समय वैष्णव धर्म के विकास का था। धर्म से सम्बन्ध रखने वाले पुराणों की रचना जारी रही थी। इस धर्म में ईश्वर से वैसा ही प्रेम की शिक्षा मनुष्य को दी गई है जैसा प्रेम प्रेयसों को अपने प्रेमी से होता है। शैव धर्म का तब प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। किन्तु कालिदास के समय से पता लगता है कि बुद्धिमानों के मानस-क्षेत्र उसका अङ्कुर उग चुका था।

कालिदास का कुमारसम्भव बहुत ही उत्कृष्ट काव्य है। उसमें शिव और पार्वती के विवाह का कथा है। वास्तव में कवि ने उसमें पुरुष और स्त्री के संयोग का चित्र दिखाया है। इसी संयोग से संसार की सृष्टि हुई है। इस काव्य में कवि ने यह स्पष्टतापूर्वक दिखाया है कि जीवात्मा किस तरह ईश्वर की खोज करता है और कैसे उन्हें प्राप्त करता है। इस तरह कवि ने धर्म-सम्बन्धी दो बड़े विषयों को आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्त्वों को स्त्री-पुरुष चरित्र के व्याज से प्रकट कर दिखाया है। सांसारिक विषयों के वर्णन का यह बहुत ही अच्छा ढंग है। पर विचार करने से मालूम होता है कि वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी पुराणों में जिस सिद्धान्त का पीछे से विचार हुआ उसे कालिदास ने पहले ही झलका दिया है। इसी से पहले कहा जा चुका है कि कालिदास, कभी, वर्तमान समय की घटना का वर्णन

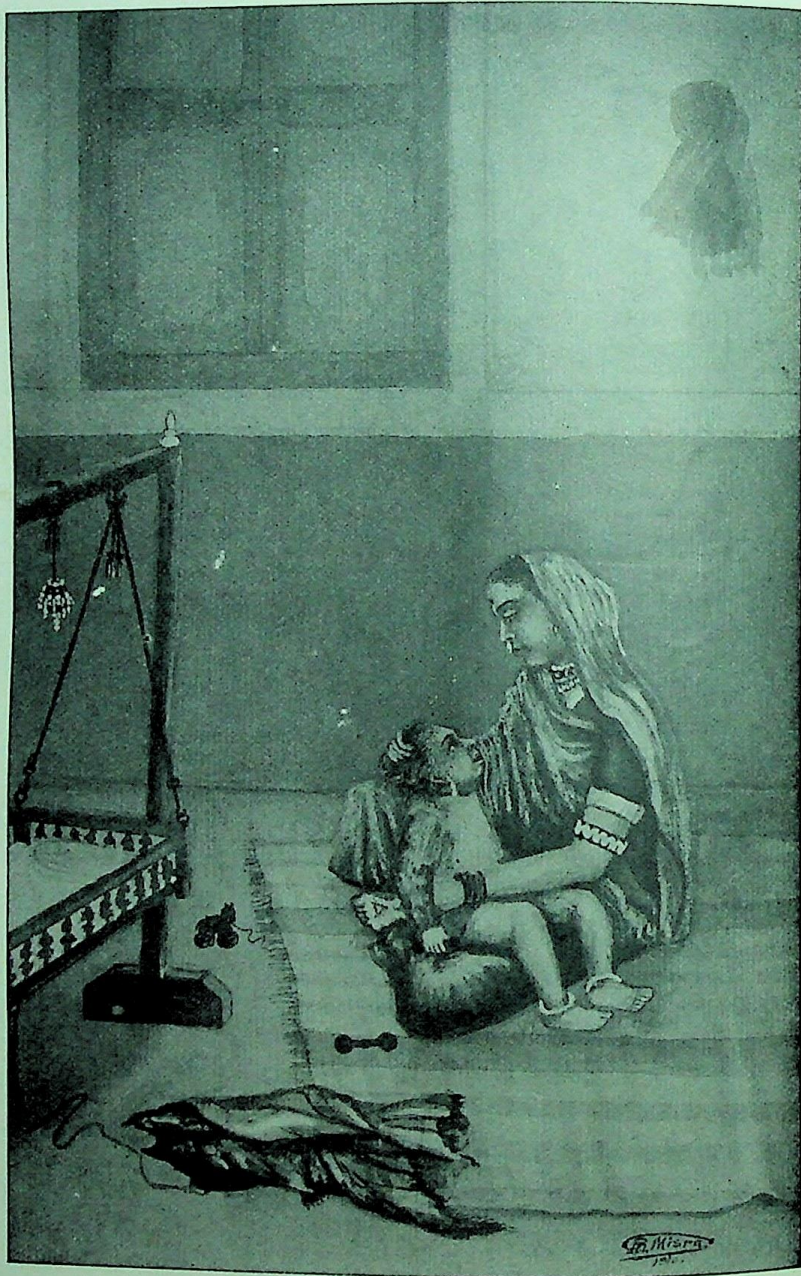


[ भाग ४ ]  
 मे उन्मत्त  
 यवासना मे  
 हुत चाह  
 लूम हे  
 नि आश्रय  
 उस शक्ति  
 लिए अस्म  
 क ज्ञानेन्द्रि  
 शेष कल  
 ज्ञानेन्द्रियों  
 मे ही वे  
 का था ।  
 की रचना  
 ही प्रेम क  
 म प्रेयसे  
 का तव  
 रास के क  
 मानस-श्रे  
 त ही उ  
 विवाह  
 और प्र  
 संयोग से  
 वि ने यह  
 किस त  
 प्रात क  
 दो बड़े  
 स्त्री-पु  
 । सांसा  
 ढंग है ।  
 वैष्णव-श  
 छे से वि  
 दिया  
 रुद्रास  
 वर्णन

13/11/1913



# सरस्वती



बालक ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



कथा ६ ]

अपने, उसके भावी परिणाम को भी भूलका दिया करते थे। इस बात से यह भी समझा जा सकता है कि सांसारिक विषयों में लिप्त होने पर भी मँभले अपने के भारतवासियों में धार्मिक और दार्शनिक जीवन की कल्पना की कितनी शक्ति थी। ऋतुसंहार कालिदास के समय की सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था का चित्र है। रघुवंश, वीरचरित्र-सम्बन्धी कथा है। मेघदूत शोक-संगीत का उदाहरण है। कुम्भल नाटक-सम्बन्धी चित्र है और कुमारसम्भव धार्मिक और दार्शनिक कथा है। कालिदास ने अपने समय की सभ्यता के अनेक तरह के चित्र अपने कवियों में दिखाये हैं। इसी से, वाल्मीकि और व्यास के अलावा, ये भी अपने समय की सभ्यता के उदाहरण दे सकते हैं।

इस प्रकार हजारों वर्ष में भारत ने विविध क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त किया। किन्तु दुःख का अनुभव है, दुर्भाग्यवश उसे इस अनुभव से लाभ उठाने में अवसर न मिला। इसके बाद ही चौथी अवस्था आयी, जिसमें पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं का एकत्र समावेश होता। पर इसके पहले ही असभ्य लोगों का उस पर आक्रमण आरम्भ हो गया। इस विपत्ति पड़ जाने से उसका सामाजिक जीवन छिन्न भिन्न हो गया। शङ्कराचार्य ने इस चौथी अवस्था की शुरुआत की। उन्होंने साकार मत को सिद्ध कर ईश्वरवासा को ऊँचे शिखर पर चढ़ाना चाहा। भवभूति के नाटकों से भी इस बात का पता चलता है। उसके पात्रों की चित्त-वृत्ति विकार-रहित है। वे विषयवासना में लिप्त नहीं। विषय-वासना से अलग रख कर वे आत्मतत्त्व के विचार में प्रवृत्त किये गये हैं। विषयवासना भी सच्चरित्रता के अर्थन रक्षणी गई है, और फिर से सामाजिक जीवन निर्मल और संयमशील बनाया गया है। उस समय ऐसे संस्कार की अतीव आवश्यकता थी। किन्तु यह काम अच्छी तरह शुरू भी नहीं हुआ था कि विपत्ति पड़ गया। अतएव भारत उसी विषया-समाज के बचे खुरचे निकम्मे लोगों को लेकर

ही पुनः अपना सामाजिक जीवन कायम करने को मजबूर हुआ। शङ्कराचार्य बहुत थोड़ा काम करने पाये। तथापि जो कुछ वे कर गये उससे भारत का बहुत उपकार हुआ है। उसी के बल से भारत का सामाजिक जीवन अभी तक बना हुआ है। नहीं तो असीरिया, ईजिप्ट, ग्रीस, रोम आदि देशों की पुरानी सभ्यता जैसे नष्ट हो गई वैसे ही भारत की सभ्यता भी नष्ट हो गई होती। योरप की सभ्यता में भी यदि धार्मिकता न आई तो थोड़े ही दिनों में वह भी अवश्य ही नष्ट हो जायगी। यह शङ्कराचार्य और उनकी दिखलाई हुई राह को प्रशस्त करनेवाले महानुभावों की कृपा का ही फल है जो हमारे देश की सभ्यता का बीज अब तक बना हुआ है।

भारत ने अपने उस काम को जिस जगह पर छोड़ दिया था उस जगह से क्या फिर भी वह उसे आगे बढ़ा सकेगा? हमें तो ऐसी आशा नहीं!

## बालक ।

माता-तन का सार, पिता का तू सर्वस है।  
 दोनों का संसार, वंश का विस्तृत यश है ॥  
 माता-पितानुराग, प्रकट तेरा यह तन है।  
 मूर्त्तिमान सौभाग्य, पुत्र तू अद्भुत धन है ॥१॥  
 जब तू जग में आय, भूमि पर गिर कर रोया।  
 मा ने हिये लगाय, कष्ट सब अपना खोया ॥  
 सुन तेरा प्रिय रुदन, पिता का मन यों जागा।  
 हुई झोपड़ी भवन, मिला सब को मुँह माँगा ॥२॥  
 प्रबल प्रेम में पगे, पिता मा तन के फल से।  
 बली समझने लगे, आपको तेरे बल से ॥  
 भोला रूप निहार, हुए दोनों मन भोले।  
 मानो इष्ट विचार, हृदय ने निज पट खोले ॥३॥  
 अंधकार मिट गया, हुआ चहुँ ओर उजैला।  
 बास बसा फिर नया, भरा ऊजड़ में मेला ॥  
 चिन्ता में दिन रात, जलाती थीं जो मन को।  
 सो अब होकर शांत, पालती हैं शिशु-तन को ॥४॥



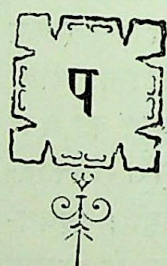
तेरा जीवन-भेद, बुद्धि में नहीं समाता ।  
 तोभी मान अभेद, मानता है मन नाता ॥  
 यह सम्बन्ध अटूट, एक ही धर्म जगत में ।  
 सब सुख की लूट, संग है सदा विपत में ॥५॥  
 मा को जब टक लाय, निहारे तू पय पीते ।  
 भरै प्रेम उमगाय, पयोधर पल में रीते ॥  
 फिर अवाक मुसकान, कुंद की खिली कली सी ।  
 मीठी सुधा समान, लगे प्रिय मा को जी सी ॥६॥  
 तेरे सब व्यापार, खेलना, खाना, सोना ।  
 भाषा, भाव, विचार, सभी हैं केवल रोना ॥  
 करे न इसका मान, भलेही भाषा-ज्ञाता ।  
 पर निज गिरा समान, इसे गिनती है माता ॥७॥  
 एक वर्ण आकार-सहित पद जटिल बनाकर ।  
 दरसाता है प्यार, क्रोध, इच्छा तू सब पर ॥  
 फिर स्वर सप्त सुनाय, हृदय सब का हरता है ।  
 माता-मन सुख पाय, भरा भी फिर भरता है ॥८॥  
 राजा-सम हठ कठिन, कभी तेरी ठनती है ।  
 पर यह बिगड़ी रहन, एक पल में बनती है ॥  
 है पदार्थ वह कौन, जिसे तू कर न बढ़ावे ।  
 धरै नहीं तू मौन, न जब लौं उसको पावे ॥९॥  
 कोमल कमल समान, निरख तेरा तन चंचल ।  
 करते हैं छवि-पान, मधुप माँ के हृग पल पल ॥  
 चूम चूम शशिवदन, रैन दिन रूप सुधा पी ।  
 होकर भी अति मगन, नया नित अनुरागै जी ॥१०॥  
 तेरा सोना निरख, और सोते मुसकाना ।  
 माँ को होवै हरष, पाय ज्यों लुपा खजाना ॥  
 यह सोना अनमोल, अधिक सोने से घन है ।  
 मुहरों से भी गोल, जगत में सच्चा धन है ॥११॥  
 तेरे सुख के लिए, कष्ट सहती है माता ।  
 तुझे लगाये हिये, उसे दुख नहीं सताता ॥  
 खान, पान, व्यवहार, नौद, श्रम, सब कुछ मित है ।  
 है नित यही विचार, पुत्र का किसमें हित है ॥१२॥  
 तुझको तेरे मित्र, खिलौने हैं यों प्यारे ।  
 मन से उनके चित्र, नहीं करता तू प्यारे ॥  
 उन्हें देख कर फूल, बढ़ा कर कर मिलता है ।  
 अपना सब दुख भूल, फूल सा तू खिलता है ॥१३॥

कभी कभी पयपान, स्वप्न में तू करता है ।  
 देकर माँ को ज्ञान, मोह उसका हरता है ॥  
 फिर उदास मुख बना, नौद में तू रोता है ।  
 दशा देख दुख घना, दीन माँ को होता है ॥१४॥  
 विद्या, कला, प्रवास, सभी कुछ माँ को तू है ।  
 तूही उसकी आस, सदा सर्वत्र हितू है ॥  
 पट, भूषण, छवि, साज, रूप, वय तूही सब है ।  
 तू ही राज, समाज, पुत्र, तूही उत्सव है ॥१५॥  
 सत्य सनातन धर्म, पिता माता को सुत है ।  
 पालन है नितकर्म, पढ़ाना पुण्य बहुत है ॥  
 सदाचार-उपदेश, नीति-शिक्षा तीर्थ है ।  
 देह निरोग, सुवेश, मुक्ति का निश्चित पथ है ॥१६॥  
 जिनके धोये वसन, न बिगड़े शिशु-पद-रज से ।  
 चूमे कोमल कर न, जिन्होंने खिले जलज से ॥  
 बके न जो बकवाद, बोल कर बालक-भाषा ।  
 तिनका विभव प्रमाद, वृथा है शुभ-गति-आशा ॥

कामताप्रसाद

## प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना ।

( ३ )



श्रीमी देशों के विद्वान् भारतवर्ष के प्राचीन कवियों पर यह दोषारोपण करते हैं कि वे समालोचना करना नहीं जानते । गुण-दोष-परीक्षा करने की शक्ति ही उनमें नहीं है । “Critical faculty” से वे प्रायः खाली

जिस देश के पढ़े लिखे लोगों का यह हाल है पुराने ग्रन्थों के दोष दिखलाना वे पाप समझते हैं । उनमें गुण-दोष-निर्णायक शक्ति, बतलाइए, उत्पन्न हो सकती है ? ऐसी शक्ति उत्पन्न होना ही, बोले मत । वाल्मीकि और कालिदास के दोष दिखला कर नरक में जाने का उपक्रम मत करो । यदि समालोचना किये बिना न रहा जाय



[ भाग ६ ]

प्राचीन ग्रन्थकारों के गुण ही गुण गावो । जब उन्हें सुनते सुनते लोग ऊब जायें तब दोष दिखाना । साधुविज्ञान और गुण-दोषविवेचनात्मक आलोचना साहित्य के लिए गवर्नमेंट भारतीय युवकों को इंग्लैंड और जर्मनी भेजे तो उसे भेजने दो । तुम क्यों पुराने पण्डितों के दोष दिखा कर व्यर्थ के लिए पातक मोल लेते हो ? न सुनाओ तो तुम्हें बरसों सालों सुनावेंगे और तुम्हारे लेख ही की नहीं, किन्तु तुम्हारी भी समालोचना करेंगे । जो लोग प्राचीनों की समालोचना के खिलाफ हैं वे और, अतिथि और हमारे परम मित्र ऐसी ही तर्कना करते हैं । परन्तु, समय की गति को रोकना किसी के हाथ में नहीं । उसका वेग ऐसा प्रबल है कि वह किसी के रोके नहीं रुकता । समालोचना इस देश में हजारों वर्ष से होती आई है, अब भी हो रही है और अब इससे भी अधिक विस्तार से होगी ।

प्राचीन पण्डितों के ग्रन्थों की दोष-विवेचक समालोचनाओं के नमूने गत संख्या में दिये जा चुके हैं । आधुनिक बंगाली और महाराष्ट्र विद्वानों की आलोचनाओं की बानगी भी उसकी पूर्व संख्या में दिखाई जा चुकी है । उर्दू और गुजराती तथा तामील और तेलुगू आदि भाषाओं में भी प्राचीन ग्रन्थों की गुण-दोष-दर्शक समालोचनायें हुई हैं और अब भी जारी होती जा रही हैं । इस दशा में यह कहना कि किसी में ऐसी आलोचनायें न हों, किसी प्रकार युक्तिहीन नहीं । ऐसी समालोचनायें पढ़ते समय कुछ लोगों को पहले चाहे भलेही भिन्नक मालूम पड़े, पर तब भी उन्हें भी ऐसे लेखों को पढ़ने और उनसे लाभ उठाने की आदत पड़ जायगी । “ कालिदास की निरङ्कुशता ” पर कई प्रतिष्ठित विद्वानों की समालोचनायें जो सरस्वती की गत एप्रिल की संख्या में प्रकाशित हो चुकी हैं उनसे पाठकों को विदित हो गया होगा कि प्राचीनों के दोष दिखलाना बुरा नहीं । यदि सरस्वती में कालिदास के दोष दिखलाये गये हैं तो उनके गुणों का प्रदर्शन पहले भी किया गया है और अब भी कई महीने से बराबर किया जा रहा है ।

यदि समालोचक योग्य है और उसकी नीयत नेक है तो उसे समालोचना करने का पूरा अधिकार है । हाँ, जो लोग बदनीयती से समालोचना करते हैं वे जरूर समालोचक के पवित्र पद को कलङ्कित करते हैं ।

आज हम इस देश के नहीं, किन्तु योरप के कुछ विद्वानों की समालोचनाओं से दो चार अवतरण देना चाहते हैं । ये सब विद्वान् संस्कृतज्ञ थे । इन्होंने हमारे प्राचीन कवियों के काव्यों की समालोचनायें की हैं । सम्भव है, इस काम में उनसे भी भूलें हुई हों—और भूलें होती किससे नहीं ?—पर दिखलाना यह है कि जब अँगरेज, जर्मन, बङ्गाली, मदरासी, गुजराती और महाराष्ट्र सभी ने प्राचीन भारतीय कवियों की समालोचना की है और उसका क्रम अब तक बराबर जारी है तब हिन्दी ने क्या अपराध किया है जो वह गुण-दोष-विवेचक-समालोचना-साहित्य से वञ्चित रखी जाय । बात यह है कि जिनमें सारासार विचार-शक्ति है वे कभी ऐसी समालोचनाओं का विरोध न करेंगे ।

अच्छा, अब, भारतीय कवियों के काव्यों के सम्बन्ध में योरप के कुछ पण्डितों की समालोचनायें सुनिए । इन लोगों ने हमारे पुराने कवियों के दोष भी दिखलाये हैं और गुण भी । यहाँ पर हम उनकी समालोचनाओं के केवल वे अंश उद्धृत करेंगे जिनमें दोषों का उल्लेख है । क्योंकि हमें सिर्फ यही दिखलाना है कि सरस्वती ने जो बात की है वह नई नहीं । इस देश के और विदेश के भी अनेक विद्वानों ने हमारे प्राचीन कवियों के दोष दिखलाये हैं ।

( १ )

मुग्धानलाचार्य ( Prof. A. A. Macdonell ) आक्सफर्ड में संस्कृत के प्रधान अध्यापक हैं । उन का जिक्र कई दफे सरस्वती में आ चुका है । उन्होंने संस्कृत-साहित्य का इतिहास लिखा है । इस इतिहास में कई स्थलों पर उन्होंने संस्कृत-ग्रन्थों की प्रतिकूल आलोचना की है । खास कालिदास के नाटकों के विषय में एक जगह वे लिखते हैं:—



इस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि कालिदास के ग्रन्थों में जो सबसे अच्छे नाटक हैं उनका अभिनय दोष-रहित नहीं—नाट्यशाला में उनका निर्दोष अभिनय नहीं हो सकता। इस कवि की कल्पनाएँ ऐसी नाजुक हैं और उनमें निष्क्रियता का अंश इतना अधिक है कि देखनेवालों के चित्त पर विशेष असर डालने की उनमें शक्ति नहीं। + + + + शकुन्तला और विक्रमोर्वशीय में ऐसे दृश्य हैं जो वास्तविकता से बहुत दूर जा पड़े हैं। इन दृश्यों में ज़मीन और आसमान एक कर दिये गये हैं; और मनुष्य, अर्द्ध-देवता, अप्सरायें और तपस्वी, सब का मिश्रण कर डाला गया है।

यह दोषारोपण चाहे अलीक और निर्मूल ही क्यों न हो; परन्तु, मुग्धानाचार्य की पूर्वोक्त पुस्तक में वह बरसों से लिखा हुआ विद्यमान है।

( २ )

जर्मनी के वेबर साहब ने भी भारत के साहित्य का इतिहास लिखा है। इस देश के विद्वान् वेबर साहब की समालोचना का बहुत सा अंश अनुचित और पक्षपात-पूर्ण बतलाते हैं। परन्तु कुछ लोगों की सम्मति है कि वेबर साहब ने बुद्धिपुरुष-रस अनुचित आक्षेप नहीं किये। क्योंकि, कहीं कहीं पर उनकी समालोचना ऐसी है जिसे कोई भी पक्षपातहीन मनुष्य मान लेने में आना कानी नहीं कर सकता। संस्कृत के शृङ्गाररस-प्रधान कुछ काव्यों के विषय में वेबर साहब की राय है:—

साधारणतः इस शृङ्गाररस-प्रधान कविता में निरङ्कुशता और उत्कट विषयासक्तिप्रवर्तक वर्णनों की बड़ी ही भरमार है।

पीछे से बने हुए काव्यों के विषय में वेबर साहब कहते हैं:—

इस प्रकार के काव्यों में, क्रम क्रम से, वीररसात्मकता से सम्यन्ध छूटता गया है और अच्छे अच्छे शब्दों में शृङ्गाररसात्मक वर्णन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती गई है। परन्तु, कुछ दिनों में, धीरे धीरे, भाषा ने अपनी सरलता को छोड़ कर बड़े बड़े शब्दों और समासों का आश्रय लिया है। अन्त में, यहाँ तक नौवत पहुँची है कि नवीन बने हुए सारे काव्य कृत्रिम शब्दाडम्बरमात्र में परिणत हो गये हैं। कविता का मुख्य उद्देश्य बाह्य शोभा,

टेढ़ी मेढ़ी अलङ्कार और श्लेषयोजना; शब्दविन्यासचातुरी इत्यादि समझा जाने लगा है। काव्य का विषय गौण हो गया है; लोग उसका उपयोग इतने ही के लिए करने लगे हैं कि उसके बहाने अपने भाषा-प्रयोग-चातुर्य को प्रकट करने का सर हाथ लगे।

( ३ )

डाकूर रोयल संस्कृत के अच्छे ज्ञाता श्रीहर्ष के नैषधचरित पर उनकी राय एशियाटिक सोसायटी के द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की ग्यारह जिल्द के प्रथम भाग में छपी है। उसका आरम्भ यह है:—

जिस प्रकार के प्रेमातिशय का वर्णन कवि ने किया है वह लौकिक है—कामुकों का ऐसा है। यहाँ तक कि वह किसी रोमन कवि के विषयसम्भूत प्रेम से भी बढ़ गया है। अश्लीलता सब कहीं विद्यमान है और स्त्रियों तक के चित्त विचलित करती है। यह बात दमयन्ती की सखियों की उक्ति स्पष्ट है। नल और दमयन्ती का भी प्रेम बहुधा विषयासक्ति पहुँच जाता है; और, अनेक स्थलों में, कामशास्त्र में वर्णित गई बातों का क्रियासिद्ध उदाहरण कहा जा सकता है।

( ४ )

एडिनबर्ग-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विद्वान् डाकूर जूलियस एंगिल्ड, पी-एच० डी०, का लिखना है कि हुआ, संस्कृत-साहित्य-विषयक, एक विस्तृत एन्साइल्कोपीडिया ब्रिटानिका में है। उसमें प्रोफेसर महाशय संस्कृत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध काव्यों के विषय में लिखते हैं:—

समष्टिरूप से इन काव्यों में नई घटनाओं और विलक्षण नये विषयों की बड़ी कमी है। इनके प्रायः सभी वर्णन रामायण और महाभारत से लिये गये हैं। तथापि यह बात कि योग्यतादर्शक और आनन्दोत्पादक सामग्री से ये खाली हैं। इनमें से कई काव्य ऐसे हैं जिनमें विषयवर्णन और कविजनोचित मनोहर भावों और कल्पनाओं का बहुत विकास देखा जाता है। तिस पर भी, दुःख से कहना पड़ेगा इनकी भाषा कुछ ऐसी है जिसने इनके महत्व को अधिक कम कर दिया है।



सख्या ६ ]

कालिदास के कुमारसम्भव के आठवें सर्ग के विषय में इनकी राय है कि उसमें जो हर-गौरी का सम्बोधन-शृङ्गार-वर्णन है उसी से वह बहुत करके हलिलिखित पुस्तकों में छोड़ दिया जाता रहा है । नैपथ्यवर्ति के विषय में जो इनकी राय है उसका आशय यह है :—

जो कथा महाभारत में थोड़े में कही गई है वही यहाँ बड़ा बड़ा कर खूब ही परिष्कृत पद्यों में वर्णन की गई है । अनेक नैपथ्यवर्ति-गत कामासक्ति-सूचक वर्णन में उस समय की नैपथ्यवर्ति की बड़ी ही भयावनी मूर्ति देखने को मिलती है । सम्भव है, यह बात कवि की अत्यधिक कल्पनाशक्ति के फल हो ।

इन अवतरणों से किसी को यह न समझना चाहिए कि इन विद्वानों की यह दोषोद्घातिनी आलोचना द्वेषमूलक है । अपने देश के कवियों की भी समालोचना की है, और किसी किसी ने कभी कभी कड़े शब्दों में की है । विलायती कवियों में शेक्सपियर का आसन सब से ऊँचा है । उसकी पुस्तकों की संख्यातीत समालोचनायें हुई हैं । उनमें उस महाकवि के दोष भी दिखलाये गये हैं । विलायत में सेंट-ऑड्र ज-विश्वविद्यालय के अध्यापक टी० एल० वेन्स, एल० एल० डी० ने तो यहाँ तक कहा है कि शेक्सपियर ने अपने जन्मस्थान स्ट्रटफर्ड पर टामस लूसी के बाग में चोरी की थी—एक चुराया था । इस कारण उसे बहुत मुसीबतें पड़ीं और अन्त में लाचार होकर उसे वहाँ से भागना तक पड़ा । यह घटना झूठ हो या सच, लेखकों ने उसका उल्लेख करना अनुचित नहीं समझा । शेक्सपियर के विषय में उसके समालोचकों ने यह भी कहा है कि उसने अपने नाटकों में इतालियन भाषा के नाटकों का कथानक और शब्दावली ही नहीं चुरा ली, किन्तु कहीं कहीं पर उसने इस भाषा के नाटकों के नाटकीय पात्रों के नामों के लिये अपनी पुस्तकों में रख दिये हैं । शेक्सपियर के रोमियो और जूलियट के विषय में एल० वेन्स की राय है कि वह पूर्णतया इटा-

लियन है । उसकी सभी बातें इटली की हैं, इंग्लैंड की नहीं । शेक्सपियर ने इटली के नाटक-ग्रन्थों को सामने रख कर, या उनका यथेष्ट परिशीलन करके, अपनी कई पुस्तकें लिखी हैं । यदि वह ऐसा न करता तो इटली की सामाजिक दशा आदि का वैसा चित्र उसके नाटकों में देखने को न मिलता ।

एमरसन ने कवि श्यली के विषय में लिखा है :—

“I cannot read Shelly with comfort. His visions are not in accord with the facts; they are not accurate.”

अर्थात् :—श्यली की कविता में मुझे आनन्द नहीं मिलता । उसकी कल्पनायें वर्णन की गई यथार्थ घटनाओं से नहीं मिलतीं । वे ठीक नहीं । उसकी कल्पनाओं और वर्ण्यमान बातों में अनुरूपता नहीं ।

जे० ए० सिमंजु नाम का एक प्रसिद्ध कवि, समालोचक और इतिहासकार हो गया है । उसे मरे अभी कोई चौदही वर्ष हुए । महाकवि बाइरन पर उसके दोषारोप सुनिष्ट :—

Byron, it may be said at once, was destitute of critical insight. Therefore, not only are the judgments of English Bards and Scotch Reviewers worthless, but his maturest works are marred by strictures on contemporaries which now appear ridiculous.”

इसका भावार्थ है :— यह बात बिना ज़रा भी सोच विचार के, सहसा, कही जा सकती है कि गुण-दोष-विवेचना करने की शक्ति बाइरन में बिल्कुल ही न थी । अतएव अपने “अंगरेज़ कवि और स्काटलैंड के समालोचक” ग्रन्थ में जो सम्मतियाँ उसने प्रकाशित की हैं वे कौड़ी काम की नहीं । इतना ही नहीं, अपने समय के लेखकों पर उसने जो आक्षेप किये हैं उनसे उसके प्रौढ़ से प्रौढ़ ग्रन्थों का भी महत्त्व कम हो गया है । उसके वे आक्षेप, इस समय, उपहासास्पद मालूम होते हैं ।



विलायत में एस० टी० कोलरिज नामक एक कवि था। १७७२ ईसवी में वह उत्पन्न हुआ और १८३४ में मरा। कवि होने के सिवा वह बहुत अच्छा समालोचक भी था। उसने महाकवि वर्डस्वर्थ के काव्यों की समालोचना में न मालूम कितनी दोषोद्घावनार्यों की हैं। कहीं पर आपने वर्डस्वर्थ के "Mentall Bombast" (गर्वसूचक, पर निःसार मानसिक भाव) की निन्दा की है; कहीं पर उसके "Inconstancy of the Style" (रचना-रीति के विषमत्व) पर कटाक्ष किया है; कहीं पर उसके "Faulty and Equivocal Syntax" (दूषित और संदिग्ध पद-समुदाय) के लिए भला बुरा कहा है। कहीं कहीं पर तो उसने इस महाकवि की बहुतही बुरी तरह खबर ली है। एक छः वर्ष के लड़के पर बाइरन की लिखी हुई एक कविता है। उसमें बाइरन ने लड़के की उपमा तत्ववेत्ता से दी है। इस पर इस समालोचक ने बाइरन को वे तरह फटकारा है।

इस, और इसके पहले के लेखों से, पाठकों को यह बात अच्छी तरह विदित हो गई होगी कि प्राचीन कवियों की समालोचना करना और नेकनीयती से उसमें यथार्थ दोषों को दिखाना, बुरा नहीं। इस तरह की समालोचना से कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है।

## अमेरिका-भ्रमण ।

### मेरी दिनचर्या ।

( २ )



न ७—प्रातःकाल परमात्मा का नाम लेकर मैं चूहड़खों के घर से चला। टकोमा में मेरे ये आखिरी घंटे थे। इसलिए इसकी अच्छी तरह भांकी लगाना मैंने उचित समझा। टकोमा एक खाड़ी पर बसा है। यह एक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर, सुन्दर

मकानों से विभूषित और विजली की रोशनी में अलङ्कृत है। आधुनिक वैज्ञानिक रीति से बसा हुआ यह शहर किसी दिन बहुत बड़ा शहर हो जायगा क्योंकि पानी पास है, और उस पर जहाज आ जाते रहते हैं। टकोमा का सम्बन्ध समुद्र से होने के कारण इसकी पैदावार चीन और जापान को सीकरी जाती है। लकड़ी, अनाज, रुई और दूसरी चीजें इससे एशिया में अन्यत्र भी जाती हैं।

इस शहर में आठे की पाँच बड़ी चकियाँ हैं। उनसे लाखों मन आटा पिसता है और देशदेशान्तरों को जाता है। यहाँ पर लकड़ी के भी बड़े बड़े पुतलीघर हैं। उनसे, पिछले साल, चालीस करोड़ फीट लकड़ी कट कर बाहर भेजी गई थी। यहाँ पर धातु शुद्ध करने के भी कारखाने हैं। उनमें एलास केनेडा, आरेगन आदि की खानों से निकली मिश्रित धातुयें शुद्ध की जाती हैं।

यहाँ के लोग मालदार हैं। यह बात शहर के देखने से ही मालूम हो जाती है। परन्तु प्राचीन सभ्यता की बुराइयाँ भी यहाँ मौजूद हैं, जिनके हर जगह देख पड़ते हैं।

खैर, मैंने भांकी लगा ली और अपना रास्ता पकड़ा। दिन चढ़ गया था। मेरे पास मेरा बैग था उसे साथ कैसे ले चलता। इससे बेहतर यह समझा कि इसे पहले ही पोर्टलैंड भेज देना चाहिए। इसलिए टकोमा स्टेशन पर जा कर उसे मैंने अमेरिकन कन कम्पनी के हवाले किया और ४५ सेंट, अर्थात् डेढ़ रुपये, के करीब किराया दिया। अमेरिकन ऐसी कई कम्पनियाँ हैं जिनका काम पारसलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रेल द्वारा पहुँचाना है। एक देश से दूसरे देश को भी ये कम्पनियाँ असेल भेज सकती हैं और वहाँ से मँगा सकती हैं। लकड़ी करोड़ों रुपये का माल इन कम्पनियों के दिसावर को जाता और वहाँ से आता है। इन्हीं हुंडियाँ चलती हैं और इनकी साख दुनिया के करीब सभी सभ्य देशों में है।



क्या इन कम्पनियों से अमेरिकन लोगों के लिये बेहतर समझता हूँ कि इस प्रश्न का जवाब है ? मैं यहाँ दे दूँ, तब आगे का हाल लिखूँ ।

कम्पनियों से अमेरिका के सर्वसाधारण जन को लाभ नहीं; उल्टा उनकी भारी हानि है । कम्पनियाँ मनमाने दाम वसूल करती हैं और कम्पनियों का नाकें दम कर देती हैं । लोगों को चीजें बेचने हों तो दूसरा कोई उपाय नहीं । इससे भ्रष्ट लोग इनके पास जाना पड़ता है और मुँहमाँगा कर देना पड़ता है । ये कम्पनियाँ आपस में मिली हैं । सबका एक भाव—सबका एक निर्वृत्ति है । यह होता है कि लोगों को इनकी मुँहमाँगी चीजें देनी पड़ती हैं और कम्पनियों के इन्ने गिने हुए मालदार हो जाते हैं । डाकखाने वाले लोग से अधिक वजन की चीज नहीं भेजते । जहाज भी कम्पनियों से मिले रहते हैं । अतएव जहाजों में फँसे बिना काम नहीं चलता ।

कोई शायद यह पूछे कि अमेरिका की संयुक्त राज्यों की गवर्नमेंट कानून बना कर “पारसल जिनके लिये” का प्रबन्ध क्यों नहीं कर सकती ? हाँ, कर सकती है । पर कम्पनियों वाले करोड़पति कुछ करने नहीं चाहते । गवर्नमेंट को इन्होंने काबू में कर रक्खा है । यह क्या ! अमेरिका की गवर्नमेंट तो प्रति-पक्ष के सिद्धान्त पर स्थित है । फिर ऐसी सरकार क्यों ? चलो, चलो, आगे चलो । दिन बहुत गया है । सफ़र लम्बा है । इन बातों को जाने दो ।

अपने बैग को कम्पनी वालों के हवाले कर मैंने आगे बढ़ा । अब मेरे पास कुछ पैसे कम ढाई डालर बचे थे । कुछ असबाब साथ नहीं था; केवल एक छोटा और डायरी हाथ में थी । हाँ, मेरी जेबें भरी हुई थीं । आधे दर्जन रुमाल, एक पैरसिल, रेलवे का टाइम टेबल—बस, यही चीजें मेरी जेबों में थीं । तमंचा या और कोई शस्त्र तो नहीं लेना मैंने उचित न समझा । रामभरोसे रेल सड़क चला ।

आज मौसिम अच्छा न था । बादल घिर आये थे । बूँदा-बाँदी आरम्भ हो गई थी । अपना छाता ताने मैं अकेला रेल की सड़क पर जा रहा था । सड़क के दोनों ओर हरे हरे वृक्ष थे । उनमें से वर्षा का जल टप टप करता सुनाई देता था । अपने सामने कुछ फ़ासले पर मैंने एक पुल देखा । उसके नीचे एक आदमी खड़ा था । मुझसे ५०० गज के फ़ासले पर वह होगा । मैं चुपचाप बढ़ता चला गया । पुल के पास पहुँचा तो मैंने देखा कि एक बुड्ढा आदमी अपना बेरिया-विस्तरा ज़मीन पर रक्खे एक शिला पर बैठा हुआ कुछ खा रहा है । उसने मेरी ओर देखा । मैंने उससे बोलना उचित न समझा और आगे बढ़ता चला गया ।

जब मैंने सियेटल में अमेरिका-भ्रमण का इरादा किया था तब अपने एक हितैषी अमेरिकन से पूछा था कि क्या मुझे रास्ते में लुटेरे तो नहीं मिलेंगे । उसने यह कहा था कि तुमको रास्ते में होबो लोग (Hobo)\* मिलेंगे । मगर उनके मुँह न लगना । अपने रास्ते चले जाना । उनसे अधिक मिलना जुलना नहीं । इसी लिए मैंने इस बुड्ढे से बात चीत नहीं की । अपने रास्ते चला गया । पर मुझे यह नहीं मालूम था कि दैव मुझे कई रातों इन्हीं के साथ बिताने के लिए मजबूर करेगा, जिसमें मैं मनुष्य-समाज के एक दूसरे परदे का नज़ारा भी देख लूँ ।

खैर, ग्यारह बजे के करीब मैं लेक-व्यू ( Lake View ) नामक जगह में पहुँचा । भूख बहुत लगी थी । सुबह कुछ खाया न था । लेक-व्यू टकोमा से थोड़े ही फ़ासले पर है । यह एक छोटा सा क़सबा

\* अमेरिकन परिभाषा में होबो उसे कहते हैं जो काम कुछ न करे और सदा धूमता फिरता रहे । रेलगाड़ी के गार्ड को धोखा देकर सफ़र करे । भूख लगने पर भीख मांगे खाये, या एक आध दिन सड़क ज़रूरत पड़ने पर, काम भी कर ले । मौका लगे तो आँख बचा कर चीज भी चुरा ले और लूट भी ले । मुझको इनके साथ रहने का बहुत इत्फ़ाक़ पड़ा है ।

लेखक ।



है। घर गिनती के हैं, पर एक दूसरे से फ़ासले फ़ासले पर। यहाँ लेक-व्यू होटल है। पर मुझे तो होटल से कुछ काम न था। मुझे तो सिर्फ़ दूध चाहिए था। इसलिए मैंने एक वृद्ध पुरुष से दूध के लिए पूछा। वृद्ध ने उत्तर दिया:—

“भला इस वक्त दूध कहाँ। जिनके पास गाये हैं वे प्रातःकाल दुह कर दूध बेच देते हैं। सायंकाल दुह कर रख छोड़ते हैं। उस समय कोई आ जाय तो चाहे भले मोल ले ले। बाद को नहीं मिलता।”

देहात में जिनके गाये हैं उनके पास बहुधा दूध, छाछ, मक्खन जुदा करने वाली कले भी हैं। वे दूध दुह कर कल से मक्खन निकालते हैं और छाछ सूअरों को दे देते हैं। मक्खन और ‘क्रीम’ वे गाड़ी वाले को बेच देते हैं जो प्रति दिन बाहर से गाड़ी लेकर आता है। गाड़ी वाला बड़े बनियों का नौकर होता है। बनिये इसी प्रकार देहात वालों से माल खरीदते हैं। इसीसे देहात में दूँढ़ने पर भी दूध नहीं मिलता। शहर में अलबत्ता मिल सकता है। मुझे होटल से दूध मिल सकता था; मगर वह आधा पानी और अधिक दाम पर। एक और बात है। होटल से मुझे नफ़रत है। पर सोने के लिए जाना ही पड़ता है।

जब दूध न मिला तब मैंने एक भले घर की स्त्री से रोटी मोल लेनी चाही। वह स्त्री एक दूसरे घर को काम पर जा रही थी। मुझसे उसने कहा:—

“आप यहीं ठहरिए, मैं लौट कर आती हूँ।”

“बहुत अच्छा” कह कर मैं वहाँ ठहरा रहा। थोड़ी देर बाद वह स्त्री आई और मुझे अपने घर ले गई। बड़े प्रेम से उसने ले जाकर बिठलाया।

वार्तालाप करने से मालूम हुआ कि वह सोशलिस्ट है और उसने मेरे विषय में अखबारों में पढ़ा है। “टकोमा लेजर” नाम का एक अखबार है। उसमें मेरे भ्रमण के विषय में एक लेख छपा था। उसे इस रमणी ने भी पढ़ा था। इससे बहुत काम निकला। उस स्त्री की श्रद्धा मुझ पर बढ़ गई।

भारत के विषय में बहुत कुछ बातचीत उस भद्रा नारी का भारतवर्ष-प्रेम देखकर मैं कर गया। वह तो मेरे लिए खाने पकाने में लगी और मैं वृक्ष के साये में बैठा सोचने लगा:—

“कहाँ लेक-व्यू, और कहाँ भारतवर्ष। फ़ासला। यह स्त्री वृद्धा। इसको मेरे देश से कैसे? यह केवल विद्या का प्रभाव है। स्त्री शिक्षा ने हज़ारों मीलों की दूरी को निकट दिया। दुःखी भारत के इतिहास को इस रमणी पढ़ा है। इसी से उस पर इसका प्रेम है। इस भारतवर्षियों के प्रति इसे इतनी हमदर्दी है। यह मेरे साथ माता के तुल्य सलूक कर रही है।

आहा! सुशिक्षा में कितना बल है। भारत रमणियाँ मूर्ख हैं। भारत-सन्तान अन्धकार में तभी तो उनके दिल तंग हैं। घर से बाहर की नहीं। अखबार पढ़ने की लियाक़त नहीं। देशान्तरों का हाल मालूम नहीं। उन्नति कैसे विचारशक्ति कैसे बढ़े। धी पत्ते के ऊपर पत्ता धी के ऊपर—ऐसी वितण्डाओं में आयु बर्बाद रही है। दूसरे देशों में ग्रामीण औरतें अखबार पढ़ती हैं। सब बातों का पता रखती हैं। पुराने अवलोकन करती हैं। ज़िन्दगी का मज़ा लेती हैं। यह स्त्री सोशलिस्ट है। सोशलिज़्म क्या है। इस जानकारी पाठक अँगरेज़ी पुस्तकें देख कर प्राप्त सकते हैं।

खाना तैयार हो गया। मैंने उस देवी से दिया था कि मैं मांस और चूड़े नहीं खाऊँगा। इससे उसने फलाहारी खाना बनाया और श्रुधा-निवृत्ति हुई। साढ़े बारह बज गये थे। मैंने रुख़सत होकर मैं अपने रास्ते लगा।

धूप निकली हुई थी। सूर्य देवता प्रसन्न हैं। मैंने रेल की सड़क सड़क चलना ही उचित समझा। रास्ते में विस्तरे पीठ पर रखे हुए तीन और मुझे मिले। ये लोग भी उधर ही जाते थे। मेरा रुख़ था। पर मैंने कदम बढ़ाया और



को व्याख्यान क्यों देने देंगे। हाँ, अगर आप ईसाई-धर्म की तारीफ़ करें और हिन्दू-धर्म को गालियाँ दें तो अलबत्ता वे कुछ करें। वह भी तब जब आप Congregationalist\* हैं तो।”

मैंने पूछा—“क्या कहीं व्याख्यान का प्रबन्ध हो सकता है?”

मिस्टर बीयर—“यहाँ एक बड़ा कमरा व्याख्यानों के लिए है। उसका मालिक उस (हाथ के इशारे से खिड़की के बाहर) शराब खाने का मालिक है। उसके पास जाव तो वह जरूर ही मंजूर कर लेगा। मैं आपके नोटिस मुफ्त छाप दूँगा। लोग इकट्ठे हो जायेंगे।”

मैं—“शराब खाने में मैं कभी नहीं गया और न मैं उसके मालिक के पास जाना ही चाहता हूँ। आप इतनी कृपा करें कि जो मैं कहना चाहता हूँ उसका संक्षेप अपने अखबार में छाप दें।”

मिस्टर बीयर—“बहुत अच्छा।”

कागज़-कलम लेकर मिस्टर बीयर ने मेरे विचार लिख लिये और वादा किया कि वे अपने अखबार में वह सब छाप देंगे।

अपने कर्तव्य से निपट कर मैं होटल में सोने के लिए गया। और जगह सोने को न थी; इसलिए वहाँ जाना पड़ा। बारह आने के पैसे एक रात के दिये। खाने के लिए एक रोटी और शकर ले आया। वही खाकर सो रहा।

जून ८—प्रातःकाल चार बजे उठ कर और नित्यकर्तव्य से निवृत्त होकर मैंने प्रस्थान किया। इस समय पाँच बज चुके थे। ठंडी ठंडी हवा चल रही थी। वाशिङ्गटन रियासत के घने जंगलों के दृश्य अब शुरू हो गये थे। ऊँची ऊँची पहाड़ियों के बीच से रेल की सड़क साँप की तरह बल खाती हुई

\* ईसाई मजहब के एक फिर्के का नाम है—लेखक।



पोर्टलैंड को गई है। पहाड़ियाँ वृक्षों से लदी हुई हैं। ऊँचे ऊँचे वृक्षों की चाटियाँ आकाश से बातें करती हैं। यत्र तत्र भरनों का शब्द हो रहा था। उनके सोतों के पास टीन के बर्तन पड़े हुए थे, जो अमेरिकन घुमकड़ों ने प्यास बुझाने के लिए रखे थे।

सुबह की सैर से बड़ा आनन्द मिलता है। जंगलों के बीच से प्रकृति की शोभा देखता हुआ मैं चुपचाप जा रहा था। सब संसार शान्त था। हाँ, प्रकृति अपनी वाणी से इस शान्ति को भंग करती थी। ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया, शब्द की महिमा बढ़ती गई। पक्षियों ने अपना राग आरम्भ किया। बन-बिलारों का चीत्कार भी पहाड़ियों में सुनाई देने लगा।

मैं बढ़ता गया। सड़क पर काम करने वाले मजदूरों की भरमार दिखाई देने लगी। कहीं पचास का दल काम करता दृष्टि पड़ता, कहीं सौ का। इनमें से शायद ही कोई अमेरिकन मजदूर हो, सभी परदेशी थे। हाँ, सब का जमादार अमेरिकन था। जापानियों के दल भी काम करते थे। आस्ट्रिया, इटली, हंगरी आदि देशों के मजदूरों की अधिकता थी। यहाँ नई सड़क बन रही थी। पोर्टलैंड से टकोमा को रेल का प्रबन्ध हो रहा था। इन मजदूरों में प्रत्येक को कोई चार रुपये रोज मिलता था।

इनके खाने, कपड़े, पकाने का प्रबन्ध इस प्रकार था। किसी छोटे स्टेशन पर एक और लाइन डाल कर मजदूरों की गाड़ियाँ खड़ी की गई थीं। उन्हीं में से एक गाड़ी में खाना पकता था। वहाँ सब खाते थे। जापानी बाबरवी जापानी लोगों के लिए रोटी बनाता था। थोड़े थोड़े फासले पर स्टेशन हैं। जहाँ दस पाँच घर हुए वहाँ पड़ाव डाल दिया। भिन्न भिन्न पड़ावों पर भिन्न भिन्न दल के मजदूर काम करते थे।

ये पड़ाव, पड़ाव ही नहीं रहते। बहुत शीघ्र ये शहर बन जाते हैं। जहाँ पानी की कमी है, या अच्छा पानी नहीं है, या बहुत दूर तक खोदने पर पानी मिलता है, वहाँ बर्फीस्तानी पर्वतों से सौ पचास

मील की दूरी से पानी लाया जाता है। एक सोते के पास तालाब खोद कर उसमें बड़े बड़े नालियों से कर दिया जाता है। इस प्रकार पर्वतों के बीच से मीलों पानी आता है—सुन्दर, मीठा जल शहरों और गाँवों के रहने वालों को मिलता है। जहाँ पानी की किल्लत दूर हुई लगी बस्ती बढ़ने।

एक गुण अमेरिकन लोगों में बहुत बड़ा लोग दिक्कतों को दूर करने में बड़े निपुण हैं। सड़क जाता था—पानी लाने के लिए लोहे के को देखता था—काम करने वाले मजदूरों बातें करता था और सोचता था। क्या हम देश में ऐसे प्रबन्ध नहीं हो सकते? क्या हम भारतीय लोग पर्वतों का शुद्ध स्वच्छ जल नहीं सकते? परन्तु वे अभागे गन्दे तालाबों का पीते हैं—सड़े हुए कुण्डों का जल काम में लते उसी जल में उनकी गायें और भैंसें नहाती हैं। जल में वे लोग कपड़े धोते हैं और उसी को पीते हैं। हे नाथ! भारत-सन्तान की इन दुःख-मा काँवों को दूर कीजिए। ऐसे ही जल के इस्ते से महामारी और प्लेग आदि का भयानक होता है। उससे लाखों का प्राण हर वर्ष जाता है।

परमात्मा ने हमें ऐसा सुन्दर देश दिया है उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब कहीं प्राकृतिक पदार्थों की बहुलता है। पर्वतों, सोतों, नदियों खानों की कमी नहीं। यदि कमी है तो उद्योग कवि ने ठीक कहा है :—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।  
न हि सुतस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

हमारे देश में कहीं भी पानी की कमी नहीं सकती। राजपूताना भी आवू पर्वत की बर्फीयों से विभूषित है। ऐसे देश में जगह जगह नलों द्वारा पानी लाया जा सकता है। पर्वतों से लाकर शहरवालों की तृप्ति की जा सकती है।



[ भाग ६ ]

लोता आनन्द और सुख से रह सकते हैं। पर उद्योग  
कैसे करे ?

खुदा ने वहाँ मस्खियाँ मारने को,  
बनाये हैं, खुशरू जवाँ कैसे कैसे।

सब मुच ही उद्योग बड़ी चीज़ है। अमेरिका में  
बहुतों को साफ़ करके घर बसाये गये हैं। बड़े बड़े  
गाँव और क़स्बे आबाद हो रहे हैं। कहीं गाँवों के  
बुड़ खेतों में चर रहे हैं, कहीं बैलों के। कहीं  
मुक्तों की मण्डलियाँ धूप का आनन्द ले रही हैं  
और जो सामने आता है उसी को चट कर जाती  
है। इकले दुकले किसानों के घर मीलों के घेरे में  
मज़दूर पड़ते हैं।

भूख लगी हुई थी। सुबह कुछ खाया नहीं था  
और बारह बजने पर थे। रेल की सड़क के पास ही  
घोड़े गाड़ी की सड़क भी आरम्भ हो गई थी, क्योंकि  
अब पर्वतों से निकल आया था। रेल की सड़क  
आड़ कर मैंने दूसरी सड़क ली। एक किसान का  
बारह वर्ष का लड़का घोड़ेगाड़ी पर सवार कहीं  
जाने को तैयार था। मैंने उससे पूछा :—

“क्या यहाँ दूध मिलेगा ?”

“हाँ मिलेगा। आप उस सामनेवाले घर में ( हाथ  
से इशारा करके ) जाइए और कहिए कि ‘जो’  
( Joe ) ने मुझे भेजा है। आपको दूध मिल  
जायगा ”।

लड़के को धन्यवाद दे कर मैं खेत का द्वार खोल  
कर गया। वहाँ एक आदमी खेत पर काम ख़तम  
कर खाने जा रहा था। मैंने उसके पास पहुँच कर  
दूध के लिए पूछा और ‘जो’ की सिफ़ारिश भी  
पुगई। वह आदमी कोई पैंतीस वर्ष का होगा।  
मैंने मुझे आदर-पूर्वक एक वृक्ष के नीचे बिठलाया  
और आप अन्दर दूध लेने गया। कुछ देर बाद दूध,  
सूजन और रोटी एक बर्तन में रखे वह बाहर  
आया और मुझे दिया। मैंने धन्यवाद देकर पाँच  
पैसे उसके हाथ में दिये। यह किसान अच्छा  
मालदार था—नये, सुन्दर घर में रहता था। दो

बड़े बड़े कुत्ते बँधे थे जो रक्षकों का काम देते थे।  
बन्दूक और तमंचे तो यहाँ सभी के पास होते हैं।  
क्योंकि स्वतंत्रता मनुष्य का धर्म है।

खाने से निश्चिन्त हो, कुछ देर विश्राम कर, मैं फिर  
सड़क पर पहुँचा और चला। राय से सेण्ट्रेलिया  
नामक स्थान तीस मील है। मैं १८ मील आ चुका  
था। रास्ते में दो चार जगह ठहरने से मुझे देरी हो  
गई थी। इसलिए अब मैंने कहीं ठहरना उचित न  
समझ चलने की ठानी और पाँच बजे शाम के सेण्ट्रे-  
लिया पहुँच गया।

सेण्ट्रेलिया खासा गाँव है। बस्ती यहाँ की घनी  
है। कारखाने खुल रहे हैं। बहुत शीघ्र यह शहर  
बन जायगा। यहाँ एक अच्छा हाई स्कूल है, जहाँ शिक्षा  
का उत्तम प्रबन्ध है।

मैं थका हुआ था। इसलिए होटल में जाकर मैं  
ने एक कमरा लिया। १२ आने देकर मैं अपने कमरे  
में गया। कपड़े उतारे। फिर खटिया की शरण ली।  
सारी रात मुझे दीन दुनिया की कुछ खबर नहीं  
रही।

जून ९—सुबह छः बजे मैं उठा। हाथ मुँह धो  
कर हजामत बनाई। ईश्वर का नाम लेकर कपड़े  
पहन फिर अपना रास्ता लिया।

सेण्ट्रेलिया से थोड़ी दूर पर चदेलस नाम का एक  
पाँच हजार की आबादी का अच्छा क़स्बा है। मैं  
आठ बजे वहाँ पहुँच गया। इस गाँव में दो साप्ताहिक  
अख़बार “बिग निगेट” ( Big Nigget ) और  
“एडवोकेट” ( Advocate ) नामी निकलते हैं।  
गलियाँ भी पक्की बन रही हैं। हाई स्कूल और बैंक  
भी हैं। यह गाँव भी बढ़ रहा है। लोग अच्छे  
मालदार हो रहे हैं। ज़मीन की कीमत दिन बदिन  
बढ़ती जाती है।

यहाँ मैं कुछ देर घूमता रहा। एक रोटी की  
दुकान पर जाकर रोटी ले आया। उसको एक  
जगह बैठ मैं खाने लगा। जब ज़रा बुभुक्षा शान्त  
हुई तो फिर कमर कसी और चला।



रेल की सड़क आज बहुत खराब थी। मीलों कंकड़ों के ऊपर से चलना पड़ा। नई लाईन बनने के कारण मजदूर लोग कंकड़ बिछाने में लगे थे। छाता लिये हुए मैं उनके पास से गुजरता तो वे बहुत हँसते। क्योंकि यहाँ मर्द धूप में छाता नहीं लगाते। स्त्रियाँ ही लगाती हैं। एक मजदूर ने मेरी हँसी उड़ाकर कहा :—

“देखना, कहीं धूप से रंग काला न हो जाय”।

मैं कुछ न बोला; अपने रास्ते चला गया। असल में मैंने छाता धूप के डर से नहीं लगाया था; बल्कि सूर्य की रोशनी से आँखों को बचाने के लिए छाते का उपयोग किया था। खैर, मैं बढ़ा चला गया। धूप सख्त थी। जहाँ जंगलों के कारण छाया मिल जाती वहाँ ठंडी हवा के कुछ भँकोरे मिल जाते।

चौबीस मील का सफ़र तै करके पाँच बजे मैं लिटिल फाल्ज पहुँचा। मेरे पैरों में आज छाले पड़ गये थे। और थकान का क्या कहना। जब सेटकोमा छूटा था एक वक्त भी पेट भर खाने को नहीं मिला था। भला डबल रोटी और चीनी से कहीं पेट भरता है। कहीं ज़रा सा दूध मिल गया तो क्या हुआ। पर क्या किया जाता, मांस मुझे खाना न था।

राय में किसी ने मुझ से कहा था कि लिटिल फाल्ज में आपके भारतीय मजदूर कारखानों में काम करते हैं। सो यहाँ मैंने उनको ढूँढ़ा। भूख सख्त लग रही थी और मिठास से मुँह बिगड़ रहा था। मन में मैंने कहा कि यदि भारतीय बन्धु मिल जायँ तो खूब रोटी तरकारी उड़े। मैंने कारखानों में जाकर बहुत देखा भाला। मगर नहीं मिले। बाद में पोर्टलैंड जाकर पता लगा कि वे इस गाँव से कुछ मील दूर काम करते हैं।

अब मैं क्या कर सकता था। पाँच आने में बिस्कुटों का एक डब्बा लिया। उन्हें खाकर तीन गिलास पानी पिया और अपने कमरे में जाकर सो रहा।

जून १०—आज बहुत सवेरे उठा और सात बजे ही सड़क पर हो लिया। भूख बहुत लगी हुई थी। पर उसकी कुछ भी परवा न करके बराबर चलताही गया। पहाड़ियाँ फिर आरम्भ हो गईं और वृक्षों की सघनता भी थी। सात बजे के करीब कैसिल राक ( Castle Rock ) नामी एक छोटे से क़सबे में मैं पहुँचा। वहाँ एक दुकान वाली से रोटी मखन और नारंगियाँ खरीदीं। इससे भूख निवृत्ति की। अब मैंने रेल की सड़क छोड़ दूसरी सड़क पर चलना आरम्भ किया। एक घर के सामने कुछ वृक्ष थे। उनकी छाया में दम लेने को मैं खड़ा हो गया। उस घर की मालकिन और उसकी लड़की बाहर बरामदे में बैठी हुई पुस्तकें पढ़ रही थीं। मैं अहाते के बाहर सड़क पर खड़ा था। उस घर ने मेरी ओर देखा और मुझसे पूछा :—

“आप कहाँ से आते हैं?”

“मैं सेटकोमा से आता हूँ”

“क्या पैदल सफ़र कर रहे हो?”

“जी, हाँ।”

“आप इस देश के वासी नहीं जान पड़ते।”

“नहीं, मैं इस देश का वासी नहीं। मेरा भारतवर्ष में है।”

“आइए, अन्दर आकर कुछ सुस्ता लीजिए”

रमणी का आदेश पाकर मैं अन्दर चला गया और बरामदे की सीढ़ियों पर जाकर बैठ गया। उस देवी ने मुझ से भाँति भाँति के प्रश्न किये—

“आपके देश में अकाल बहुत पड़ता है?”

“जी हाँ। भारत अकाल से बहुत पीड़ित रहता है।”

“इसका कारण क्या है? मैं खयाल करती हूँ बहुत आबादी इसका कारण है।”

“नहीं, आबादी के कारण नहीं। देश में पंचवार तो काफ़ी होती है पर वहाँ रहने नहीं पाती।”

“अच्छा बेरियाँ तो खाइए। दरख्त पर जाइए और खाइए”।



और साँ  
बहुत लगे  
रके बरान  
हो गई थी  
जे के करीब  
क छोटे ज  
ली से रोटी  
भूख को  
छाड़ दूसरे  
रके सामने  
को मैं खड़े  
की लड़की  
रही थी  
। उस ख

आवा पाकर मैं दरखत पर चढ़ गया और  
पेट भर फल खाये। इसके बाद पेड़ से  
और उस स्त्री से बिदा होकर मैंने सड़क  
आरम्भ किया।  
जंगल फिर आरम्भ हो गया था। पहाड़ों के दृश्य  
मनोहर थे। पहाड़ों से पानी लाने का काम यहाँ  
सैकड़ों मजदूर इस काम में लगे  
हुए थे, जिनको साढ़े सात रुपया रोज मजदूरी  
मिलती थी। छोटी छोटी नदियों के नजारे देखता  
हूँ तो दो बजे के करीब प्रसिद्ध कोलम्बिया नदी  
किनारे पहुँचा। धूप की शिद्दत होने के कारण  
पसीने से तर था। चित्त ने कहा कि इस नदी में  
स्नान करो। फिर क्या था, कपड़े उतार किनारे रखे  
और नदी में कूद पड़ा। अच्छी तरह मलमल कर  
स्नान किया। इसके बाद बनिआइन आदि धोकर  
उन्को सुखाया भी। इस नदी के उस पार कई एक  
आवातों की चिमनियों से धुँआ निकल रहा था।  
ये लकड़ी काटने के पुतलीघर हैं। यहाँ लाखों फीट  
लकड़ी प्रति वर्ष कटती है। मैंने जंगलों में कई जगह  
देखे। वहाँ से लकड़ी काट काटकर इन  
पुतलीघरों में लाई जाती है। लकड़ी के व्यवसाय  
से वाशिंगटन रियासत को करोड़ों रुपये की  
आमदनी होती है।

चार बजे मैं कलामा पहुँचा। यह कसबा बहुत  
सुधरा है। इसकी आबादी भी दिनों दिन बढ़  
रही है। आज मैंने ३० मील का सफ़र किया।  
कलामा होटल में एक कमरा किराये पर लेकर सोने  
की तैयारी की और रात सुख से काटी।

जून ११—प्रातः काल पाँच बजे उठ सफ़र के  
तैयार हुआ। आज बादल घिरे हुए थे, मगर  
सूखी अवस्था थी। चल दिया। वर्षा आरम्भ हो  
गई। मैंने भागना शुरू कर दिया। तीन घण्टे खूब  
बारिश होती रही। मेरी पतलून सब भीग  
गई, क्योंकि चौड़ाड़ जोर की लगती थी। पर क्या  
करता; लाचारी थी।

नौ बजे के करीब मैं बुडलान पहुँचा। वहाँ रोटी  
तलाश की, मगर न मिली। भूख के मारे जी घबरा  
रहा था। पर लाचार होकर आगे बढ़ा।

रिजफील्ड पहुँचा तो मैंने परमेश्वर को धन्यवाद  
दिया कि यहाँ खाने को रोटी तो मिलेगी। गाँव की  
और जाने ही पर था कि किसी ने आवाज़ दी :—

“हेलो, देवा !”

हैरान हो मैंने घूम कर देखा। सामने ईस्टरड़े  
खड़ा था। मैंने आगे बढ़ कर उससे हाथ मिलाया  
और पूछा :—

“तुम कहाँ ?”

“तुम कहाँ ?”

मैंने हँस कर कहा—“पहला प्रश्न मेरा है।”

“मुझे यह बताओ कि तुमने यह क्या शकल  
बनाई है ?”

“क्यों, क्या बुरी है ?”

“खूब अच्छी है ? सच कहो, तुम्हें रुपये की  
ज़रूरत है ?”

“बस, तुम्हारी मेहरबानी चाहिए। मैं तो सैर  
करने निकला हूँ।”

“भूखे रह कर सैर कैसे करोगे। तुम्हारे चेहरे  
से जान पड़ता है जैसे दस दिन से रोटी नसीब  
नहीं हुई।”

“दस दिन तो नहीं; हाँ पाँच चार दिन से पेट  
भर खाने को नहीं मिला।”

“अच्छा आओ, आज तुम्हें पेट भर खिलावेँ।”

ईस्टरड़े भी वाशिंगटन के विश्व-विद्यालय सिये-  
टल में पढ़ा करता था। वहाँ से पढ़ाई अधूरी छोड़  
रुपया कमाने की धुन में बाहर निकल गया था।  
यहाँ इब्जिन चलाने का काम करता था। मेरी इस  
से अच्छी वाक्फ़ीयत थी। बहुत ही हँसमुख और  
मिलनसार लड़का है; पर है खाने पीने वाला।

मुझको साथ ले जाकर उसने अपने कमरे में  
बिठाया। फल खाने को दिये। बाद को भोजन तैयार  
करवाया। मैंने पेट भर खाना खा कर परमात्मा का



धन्यवाद दिया । ईस्टरडे के साथ कुछ देर घूम फिर कर मैं चलने को तैयार हुआ । ईस्टरडे ने मेरी डायरी, अर्थात् दिनचर्या, मैं अपने घर का पता लिख दिया जिसमें मैं न्यूयार्क पहुँच कर उसको समाचार दूँ ।

अब मैंने कदम उठाया । पुतलीघरों के सिवा और कुछ देखने को न था । कोलम्बिया दरिया साथ साथ पोर्टलैंड की ओर से आता है और गोबल होता हुआ अस्टोरिया पहुँचता है । वहाँ से समुद्र देवता की मुलाकात करता है ।

शाम को छः बजे के करीब मैं वेनकोवर पहुँच गया । यह गाँव कोलम्बिया के किनारे बसा हुआ है । यहाँ वाशिङ्गटन रियासत की हद पूरी होती है । कोलम्बिया से उस पार आरेगन रियासत की हद है । आज भी मैं तीस मील चला था ।

मुझे मालूम था कि यहाँ भारतीय कुलियों के घर हैं । उनकी तलाश की । दो घंटे तलाश करने पर उनका पता मिला । उनके घर पहुँचा तो उन लोगों ने बड़ा आदर-सत्कार किया । मेरी रुचि अनुकूल भोजन बनाया और सोने का भी प्रबन्ध कर दिया । ये लोग यहाँ कारखानों में काम करते हैं । साढ़े छः रुपये रोज मिलता है । हजार-बारह सौ रुपया हर साल घर भेजते हैं । बीस के करीब मजदूर यहाँ हैं । जिनके यहाँ आज मैं ठहरा था वे सब मुसलमान हैं । हिन्दू लोग दूसरी जगह रहते हैं । पर अपने सभी भाई हैं । भारतीय चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान—भारत-सन्तान होने से देश-बन्धु हैं । इसी बात की चर्चा हम लोग रात को देर तक करते रहे । बाद में मैं सो गया ।

सत्यदेव—अमेरिका ।

## अंशुमती ।

( १ )

बालपने में भृगु महर्षि से, थी जिसने शिक्षा पाई ।  
सुव्रत मुनि की पतिव्रता स्त्री, अंशुमती थी मनभाई ॥  
इसकी बुद्धि चतुरता इसकी, इसकी मतिगति थी उत्तम ।  
पति-सेवा की इसकी शैली, थी अद्भुत अपूर्व अनुपम ॥

( २ )

घर के काम काज कर सारे, प्रिय पति की आज्ञा केली  
करती थी उपकार लोक का, दीन जनों को सुख देकर  
भूखे को भोजन देती थी, प्यासे को पानी भर भर  
वस्त्रहीन को वस्त्र मनोहर, सिले सिलाये अतिहितकर

( ३ )

अंधे, बहरे, लूले, लँगड़े, ओषधि इसके घर पाते ।  
धन्यवाद दे दे कर रोगी, चंगे हो हो कर जाते ॥  
इससे इसका सुयश मनोरम, फैला सारी पृथ्वी पर  
आने लगे विविध-दुख पीड़ित, दो दो सौ नित नारी पर

( ४ )

कोई कहता “मेरे शिशु की, देवी ! चली गई हसली”  
कोई कहता “मुझको ज्वर है” “मेरी दुखती है पसली”  
कोई कहता “मुझे श्वास है, मुझे कास, मुझको क्षय है”  
दृष्टिमान्ध मुझको, मुझको व्रण, मुझे मूर्छना का भय है

( ५ )

आर्य्य जनों को रुग्ण देख यह मन में अति दुख पाती थी  
धीरज और दवा दे उनको पथ्यापथ्य बताती थी ।  
थे इसके कर से सब रोगी, अच्छे हो हो ही जाते  
नीति-नियम की भी शिक्षा वे, थे इसके द्वारा पाती

( ६ )

कहती यह प्रत्येक व्यक्ति से, “कर अपना नियमित आर  
रख विचार शुभही शुभ, भ्रम तज, सदाचार को मन में धार  
कर सत्सङ्गति, भज श्री हरि को, अरे बुराई कभी न कर  
पाया मनुजजन्म है तूने, जो कुछ बने भलाई कर”

( ७ )

“निशिदिन सदा ! काम कर वेही, जिन से सुख पावे जग  
स्वयं तुझे संतोष महा हो, चल ऐसे ही सत्य पर  
सुन इसका उपदेश सभी जन, अति प्रसन्न हो जाते  
सत्य-मार्ग पर चल कर अपना, जीवन सुखद विताने

( ८ )

पूर्ण परिश्रम कर, सुनीति से धन संचय कर लेते  
वेद-शास्त्र-सम्पन्न द्विजों को, सरबस तक दे देते थे  
गिरधर भारत भूमि धन्य यह ! धन्य यहाँ का तनू  
धन्य आर्य्य-ललना-कुल-भूषण अंशुमती देवी गुण  
गिरधर शर्मा



## कवि बनने के लिए सापेक्ष साधन।

ज कल हिन्दी के कवियों ने बड़ा जोर पकड़ा है। जिधर देखो उधर कविही कवि। जहाँ देखो वहाँ कविताही कविता। कवि बनाने के लिये भी दिन रात जारी हैं। कोई कहता है, पिछले बीस सालों के प्रचार से गाँव गाँव में कवि हो जाते हैं। कोई कहता है, हमारा काव्यकल्पद्रुम पढ़ लो। कोई कहता है, हमारा काव्यभास्कर ही कवि बनने के लिए आवश्यक है; उसकी एकही भाँकी मनुष्य कवित्व की प्राप्ति करा सकता है। कोई कहता है, जो समा की दी हुई समस्याओं की पूर्तियाँ करने के लिये व्यास और वाल्मीकि फिर जन्म ले सकते हैं। यदि यह इहाँ लोगों के उद्योग का फल है जो हिन्दी आज कल इतने कवियों का एकही साथ प्रादुर्भाव पाया है। पर, इन कविता-कुबेरों के प्रादुर्भाव से कविता बहुत तंग आ रही है। उसमें छपने के लिए कवितायें आती हैं, और, वे, यदि, नहीं छपतीं शिकायतों से भरे हुए तकाजे आते हैं; धमकियाँ आती हैं; झिड़कियाँ सहनी पड़ती हैं। जो काम कठिन समझा गया है वह इन कवियों के लिए आसान हो रहा है। कविता करना और लोग चाहे जैसा समझे, हमें तो यह एक तरह दुःसाध्यही पड़ता है। अज्ञता और अविशेष के कारण दिन हमने भी तुकबन्दी का अभ्यास किया था। कुछ समझ आतेही हमने अपने को इस काम में अधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से जाना था; बन्द कर दिया।

विक्रम के ग्यारहवें शतक में काश्मीर में अनन्त-नामक एक राजा था। उसके शासन-समय में कविता बहुत और बहुदर्शी विद्वान् था। उसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि हर विषय उसके लिए

हस्तामलकवत् था। उसने, न मालूम, कितने ग्रन्थ बना डाले। उनमें से दस बीस तो छपकर प्रकाशित भी हो गये हैं। अपने शिष्यों की शिक्षा के लिए छोटे छोटे ग्रन्थ तो वह हँसते हँसते बना डालता था। जरा उसकी बुद्धि की व्यापकता तो देखिए। कभी तो आप वैदान्त पर ग्रन्थ लिखते थे। कभी कुट्टिनेयों की लीला का उद्धाटन करने के लिए समय मातृका निर्माण करते थे। कभी दशावतारचरित लिख कर विष्णु भगवान् की लीला वर्णन करते थे। कभी बौद्ध धर्म के तर्कों से भरा हुआ महाकाव्य लिखते थे। कभी काव्य और छन्दःशास्त्र पर ग्रन्थ-रचना करते थे। कभी कलाविलास बनाने बैठ जाते थे। इसी से कहते हैं कि क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बड़ी ही प्रखर थी। क्षेमेन्द्र का बोधिसत्वावदानकल्पलता नामक ग्रन्थ बड़ा ही अपूर्व है। उसकी भाषा प्राञ्जल है और भाव तथा कवित्व अतीव मनोहर है। इस ग्रन्थ का एक तिथतीय अनुवाद, अभी कुछ ही समय हुआ, प्राप्त हुआ है। इसे बंगाल की ऐशियाटिक सोसायटी प्रकाशित कर रही है। श्रीयुत शरच्चन्द्र दास इसके सम्पादक हैं।

क्षेमेन्द्र ने कविकण्ठाभरण नाम का एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। उसमें आपने बतलाया है कि किन साधनों से मनुष्य कवि हो सकता है और किस तरह उसकी तुकबन्दी, कविता कहलाये जाने योग्य हो सकती है। क्षेमेन्द्र खुद भी महाकवि था अतएव उसके बतलाये हुए साधन अवश्य ही बड़े महत्त्व के होने चाहिए। यही समझ कर हम अपने हिन्दी के कवियों के जानने के लिए क्षेमेन्द्र के निर्दिष्ट साधनों का थोड़े में उल्लेख करते हैं।

कवि होने के लिए पाँच बातें अपेक्षित हैं। वे पाँच बातें ये हैं :—

- १—कवित्वशक्ति
- २—शिक्षा
- ३—चमत्कारोत्पादन
- ४—गुणदोषज्ञान
- ५—परिचयवाहता

इन पाँचों का संक्षिप्त विवेचन सुनिए :—



## कवित्व-शक्ति ।

किसी किसी में कवित्व-शक्ति बीज रूप से रहती है। उसे अङ्कुरित करना पड़ता है। जिसमें वह नहीं होती वह अच्छा कवि नहीं हो सकता। कवित्व-शक्ति को जागृत करने के दो उपाय हैं—दिव्य और पौरुषेय ।

सरस्वती देवी के क्रियामातृका-मन्त्र का जप करना, उसकी मूर्ति का ध्यान करना, और उसके मन्त्र का पूजन करना इत्यादि दिव्य उपाय हैं ।

पौरुषेय उपाय यह है कि किसी अच्छे कवि को गुरु बना कर उससे काव्यशास्त्र का यथाविधि अध्ययन करना ।

कवि बनने की इच्छा से काव्यशास्त्र का अध्ययन करनेवाले शिष्य तीन प्रकार के होते हैं :—अल्प-प्रयत्नसाध्य, कृच्छ्रसाध्य और असाध्य ।

थोड़े ही अध्ययन से जो सफलमनोरथ हो जायें वे अल्पप्रयत्नसाध्य; अध्ययन में विशेष परिश्रम करने से जिन्हें इष्टलाभ हो वे कृच्छ्रसाध्य; जो बरसों सिर पीटने पर भी कुछ न हो सकें वे असाध्य समझे जाते हैं ।

अल्पप्रयत्नसाध्य शिष्यों के कर्तव्य सुनिए । ऐसे पुरुषों को चाहिए कि वे किसी अच्छे साहित्यज्ञाता कवि से अध्ययन करें । जो केवल तार्किक या वैयाकरण हो उससे सदा दूर रहें । जो सरसहृदय हो, स्वयं कवि हो, व्याकरण भी जानता हो, छन्दो-ग्रन्थों का भी पारगामी हो उसे गुरु बनाना चाहिए । अच्छे अच्छे काव्यों को उसके मुख से सुनना चाहिए । गाथा, प्राकृत तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं के पद्यों का भी सावधान श्रवण करना चाहिए । चमत्कारपूर्ण उक्तियों के विषय में चर्चा करनी चाहिए । प्रत्येक रस के आस्वादन में तन्मनस्क हो जाना चाहिए । जहाँ जिस गुण का प्रकर्ष हो वहाँ उसका अभिनन्दन करके आनन्दित होना चाहिए । विवेकबुद्धि द्वारा भले बुरे काव्य को पहचानने की चेष्टा करनी चाहिए । ऐसा करते करते

कुछ दिनों में कवित्व-शक्ति अङ्कुरित हो जायेगी और उस शक्ति से सम्पन्न होने पर कविता की योग्यता आ जाती है ।

कृच्छ्रसाध्य जनों को चाहिए कि काव्य आदि सत्कवियों के सारे प्रबन्धों को साधन पढ़ें और खूब विचारपूर्वक पढ़ें । इतिहासों का अध्ययन करें । तार्किकों की उग्र गति से बचें । कविता के मधुर सौरभ को उससे नष्ट हो बचाते रहें । अभ्यास के लिए कोई नया पद्य तो महाकवियों की शैली को सदा ध्यान में रखकर पुराने कवियों के श्लोकों के पाद, पद और आदि को निकाल कर उनकी जगह पर अपने पाद, पद और वाक्य रखें । अभ्यास बढ़ाने के लिए वाक्यार्थ-शून्य पद्य बनावें । कभी कभी कवियों की रचना में फेरफार करके, कुछ अपना उनका रख कर, नूतन अर्थ का समावेश करने की चेष्टा करें ।

जो लोग किसी बहुत बड़े रोग से पीड़ित अथवा व्याकरण और तर्कशास्त्र के सतताभ्यास जिनकी सहृदयता नष्ट हो गई है; अतएव सुख की कविता सुनने से भी जिन्हें कुछ भी आनन्द प्राप्त होता उन्हें असाध्य समझना चाहिए । हृदय पथर के समान कड़ा हो जाता है; कोमलता विलकुल ही जाती रहती है ।

न तस्य वक्तृत्वसमुद्भवः स्याच्छिष्टाविशेषैरपि सुप्रयुक्तः ।  
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि सन्दर्शितं पश्यति नार्कमयः ।

उसे चाहे कैसा ही अच्छा गुरु क्यों न मिले चाहे कितनी ही अच्छी शिक्षा क्यों न दी जाय कवि नहीं हो सकता । सिखलाने से भी क्या कभी गीत गा सकता है और हजार दफे देख सकता है भी क्या अन्धा कभी सूर्य को देख सकता है ।

## शिक्षा ।

कवित्व-शक्ति स्फुरित हो जाने पर क्या चाहिए—किस तरह की शिक्षा से उसकी को बढ़ाना चाहिए—सो भी सुनिए ।



[ भाषा ६ ]

प्राप्त-कवित्व-शक्ति कवि को चाहिए कि वह दूसरे की कविताओं का पाठ किया करे; काव्य के अर्थों का ज्ञान प्राप्त करे; सत्कवियों की सङ्गति करे; महाकवियों के काव्यार्थ का विचार किया करे; अछे वेश में रहा करे; नाटकों का अभिनय देखे; गाना सुनने का शौक रखे; चित्र-कला का ज्ञान प्राप्त करे; इतिहास देखे; चित्र-कारों के अछे अछे चित्रों और शिल्पियों के अछे शिल्पकार्यों का अवलोकन करे; वीरों का वीरत्व देखे; श्मशान और अरण्य में धूम और आर्त शब्दों की शोकप्रलापपूर्ण वचनों को सुने। इन सब बातों से शिक्षा प्राप्त करना उसके लिए बहुत जरूरी है।

परन्तु इतनी ही शिक्षा बस नहीं। और भी उसे बहुत कुछ करना चाहिए। उसे मीठा और स्निग्ध भाषन करना चाहिए; धातुओं को सम रखना चाहिए; कभी शोक न करना चाहिए; दिन में कुछ सो लेना चाहिए और थोड़ी रात रहे जाग कर अपनी प्रतिभा को प्रखर करना चाहिए—उस समय कुछ कविता करनी चाहिए; प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा करनी चाहिए; समुद्र-तट और पर्वतों की परीक्षा करना चाहिए; सूर्य, चन्द्रमा और तारागणों के स्थान और उनकी गति आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; सब ऋतुओं की विशेषता और उनका भेद जानना चाहिए; सभाओं में जाना चाहिए; एक एक लिखी हुई कविता का दो तीन दफे संशोधन करके उसे खूब परिमार्जित करना चाहिए। सुकवि होने की इच्छा रखनेवाले के लिए अभी भी बहुत से काम हैं। उसे पराधीनता में न पड़ना चाहिए; अपने उत्कर्ष पर गर्व न करना चाहिए; पराये उत्कर्ष को सहने की आदत डालनी चाहिए; दूसरे की श्लाघा सुन कर उसका अभिनय करना चाहिए; अपनी श्लाघा सुनने में सङ्कोच नहीं करना चाहिए। व्युत्पत्ति के लिए—शिक्षा या विद्या-शब्द के लिए—सबकी शिष्यता स्वीकार करने को

तैयार रहना चाहिए; सन्तुष्ट रहना चाहिए; सत्त्व-शील बनना चाहिए; किसीसे याच्ना न करनी चाहिए; ग्राम्य और अश्लील बात मुँह से न निकालनी चाहिए; निर्विकार रहना चाहिए; गाम्भीर्य धारण करना चाहिए; दूसरे के द्वारा किये गये आक्षेपों को सुन कर विगड़ना न चाहिए; और, किसी के सामने दीनता न दिखानी चाहिए।

कवि के लिए क्षेमेन्द्र ने इस तरह की शत शिक्षायें दी हैं। पर उनमें से हमने यहाँ कुछ ही का उल्लेख किया है। सबका नहीं। इन शिक्षाओं या उपदेशों पर विचार करने से पाठकों को मालूम होगा कि कवि-कर्म कितना कठिन है। विद्यार्थी की सारी सृष्टि का ज्ञान कवि को होना चाहिए—लोक में जो कुछ है सबसे उसे अभिज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को खुद देखना चाहिए और प्राणियों के स्वभाव से भी उसे परिचित होना चाहिए। ये सब बातें इस समय कौन करता है? फिर, कहिए, कोई कवि कैसे हो सकता है? पिङ्गल पढ़ लेने और काव्यभास्कर या काव्यकल्पलता देख जाने से यदि कोई कवि हो सकता तो आज कल कवि गली गली मारे मारे फिरते। तुकबन्दी करना और चीज है, कविता और चीज।

### चमत्कारोत्पादन ।

शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परमावश्यक है। यदि कविता में चमत्कार नहीं—कोई विलक्षणता नहीं—तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्षेमेन्द्र की राय है:—

“ नहि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम् ”

यदि कवि में चमत्कार पैदा करने की शक्ति नहीं तो वह कवि ही नहीं। और, यदि, चमत्कार-पूर्ण नहीं तो काव्य का काव्यत्व भी नहीं। अर्थात् जिस गद्य या पद्य में चमत्कार नहीं वह काव्य या कविता की सीमा के भीतर नहीं आ सकता:—

एकेन केनचिदनर्थमणिप्रभेण  
काव्यं चमत्कृतिपदेन विना सुवर्णम् ।



निर्दोषलेशमपि रोहति कस्य चित्ते  
लावण्यहीनमिव यौवनमङ्गनानाम् ॥

काव्य चाहे कैसा ही निर्दोष क्यों न हो—उसके सुवर्ण चाहे कैसे ही मनोहर क्यों न हों—यदि उसमें अनमोल रत्न के समान कोई चमत्कार-पूर्ण पद न हुआ तो वह, स्त्रियों के लावण्यहीन यौवन के समान, चित्त पर नहीं चढ़ता ।

कविता में चमत्कार लाना लाख पिङ्गल पढ़ने और रस, ध्वनि, अलङ्कारादि के निरूपक ग्रन्थों के पारायण से सम्भव नहीं । उसके लिए प्रतिभा, साधन, अभ्यास, अवलोकन और मनन की ज़रूरत होती है । पिङ्गल आदि का पढ़ना एक बहुत ही गौण बात है ।

एक विरहिणी अशोक को देख कर कहती है :—  
तुम खूब फूल रहे हो; लतायें तुम पर बेतरह छाई हुई हैं; कलियों के गुच्छे सब कहीं लटक रहे हैं; भ्रमर के समूह जहाँ तहाँ गुञ्जार कर रहे हैं । परन्तु मुझे तुम्हारा यह आडम्बर पसन्द नहीं । इसे हटाओ । मेरा प्रियतम मेरे पास नहीं । अतएव मेरे प्राण कण्ठगत हो रहे हैं । इस उक्ति में कोई विशेषता नहीं—इसमें कोई चमत्कार नहीं । अतएव इसे काव्य की पदवी नहीं मिल सकती । अब एक चमत्कार-पूर्ण उक्ति सुनिए ।

कोई वियोगी रक्ताशोक को देख कर कहता है :—  
नवीन पत्तों से तुम रक्त ( लाल ) हो रहे हो; प्रियतमा के प्रशंसनीय गुणों से मैं भी रक्त ( अनुरक्त ) हूँ । तुम पर शिलीमुख ( भ्रमर ) आ रहे हैं । मेरे ऊपर भी मनसिज के धनुष से छूटे हुए शिलीमुख ( बाण ) आ रहे हैं । कान्ता के चरणों का स्पर्श तुम्हारे आनन्द को बढ़ाता है; उसके स्पर्श से मुझे भी परमानन्द होता है । अतएव हमारी तुम्हारी दोनों की अवस्था में पूरी पूरी समता है । भेद यदि कुछ है तो इतना ही कि तुम अशोक हो और मैं सशोक । इस उक्ति में सशोक शब्द रखने से विशेष चमत्कार आ गया । उसने “अनमोलरत्न” का काम

किया । यह चमत्कार किसी पिङ्गल-पाठ का प्रतीक नहीं; और न किसी काव्याङ्ग-विवेचक ग्रन्थ के लिए परिपालन का ही फल है ।

उस दिन हम एक महायात्रा में कुछ लोगों साथ गङ्गा-तट तक गये थे । यात्री की मृत्यु पञ्च में हुई थी । शव चिता पर रखा गया । अग्नि-संस्कार के समय एक लकड़ी खिसकी । इससे चिता का सिर हिल गया । इस पर एक आदमी बोला लकड़ी खिसकने से सिर हिल गया । यह सुन दूसरा बोल उठा—नहीं नहीं, अमुक चाचा हिला कर मना कर रहे हैं कि अग्नि-संस्कार न हो । हम धनिष्ठा-पञ्चक में मरे हैं । यह उक्ति यद्यपि ग्रामीण की है तथापि इसमें चमत्कार है । कवि ऐसे ही चमत्कार लाने का उद्योग करना चाहिए ।

क्षेमेन्द्र ने दस प्रकार के चमत्कार बतलाये और सबके उदाहरण भी दिये हैं । पर प्रबन्ध जानने के भय से हम उनका निदर्शन नहीं करते ।

## गुण-दोष-ज्ञान

काव्य के पाँच प्रकार हैं :—सगुण, निर्दोष, सद्दोष, निर्दोष और गुणदोषमिश्रित । गुण दोषों के हैं :—शब्दवैमल्य, अर्थवैमल्य और रसवैमल्य । दोष भी तीन प्रकार के हैं :—शब्दकालुष्य, अर्थकालुष्य, रसकालुष्य । इन सब के लक्षण इन नाम ही से व्यक्त हैं । इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते । “कालिदास की निरङ्कुशता” नाम के लेख में शब्द, अर्थ और रसकालुष्य के कई उदाहरण दिये गये हैं । काव्य के गुण-दोषों के सम्बन्ध में और कितनी ही बातों का विचार उस लेख में किया गया है । उसे देखने से पाठकों को क्षेमेन्द्र का अभिप्राय समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है । कवि के लिए निर्दिष्ट दोषों से बचने का यत्न करना चाहिए । परन्तु बचेगा उनसे वही जो उन्हें जानता होगा । अतएव कविता-विषयक गुण-दोषों का ज्ञान प्राप्त करना भी कवि के लिए आवश्यक है ।



## परिचय-चारुता ।

कवि को सब शास्त्रों, सब विद्याओं और सब कलाओं आदि से परिचित होना चाहिए । क्षेमेन्द्र की आज्ञा है कि तर्क, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, काम-शास्त्र, राजनीति, महाभारत, रामायण, वेद, पुराण, आत्मज्ञान, धातुवाद, रत्नपरीक्षा, वैद्यक, ज्योतिष, गज-तुरग-पुरुष-परीक्षा, इन्द्रजाल आदि सब विषयों का ज्ञान कवि को सम्पादन करना चाहिए । कवियों को पद पद पर इनसे काम पड़ता है जो इनसे परिचय नहीं रखता वह बहुश्रुत नहीं हो सकता और विद्वानों की सभा में उसे आदर नहीं मिल सकता । प्राचीन कवियों के काव्यों को देखने से यह साफ मालूम होता है कि वे लोग अनेक शास्त्रों के तत्त्वों से अभिज्ञ थे । इसका परिचय उन्होंने जगह जगह पर दिया है ।

क्षेमेन्द्र जब ये सब बातें लिख चुके तब उन्हें आपद सन्देह हुआ कि उनके कथन को कोई असत्य या अतिशयोक्तिपूर्ण न समझे । अतएव उन्होंने पुस्तकान्त में लिखा :—

कृत्वा निश्चलदैवयैरुषमयोपायं प्रसूयै गिरां  
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम् ।  
निर्विघ्नप्रतिभाप्रभावमुभगा वाणी प्रमार्गाकृता  
सद्भिर्वाग्भवमंत्रपूतविततश्रोत्रामृतस्यन्दिनी ॥

अर्थात् वाणी की उत्पत्ति के लिए मैंने दैव और मानव-मय दोनों उपायों को किया है और उनसे शुभ फल की प्राप्ति भी मुझे हुई है । मेरी अब यह कामना है कि उस शुभ फल की प्रेरणा या प्रसाद से कवि होने की इच्छा रखने वालों को भी पवित्र कविता करना आ जाय । भगवान् करे, क्षेमेन्द्र की शुभ कामना हमारे वर्तमान कवियों के विषय में भी फलवती हो । उनसे हमारी एक विनीत प्रार्थना यह है कि यदि वे इस महाकवि के दिये हुए कवि-मरणा को कण्ठ में न धारण करें तो उसे फेंक देंगे । और, यदि, यह कुछ उनसे न हो सके

तो यह निबन्ध लिख कर हमने जो अपराध किया है उसे उदारतापूर्वक क्षमा ही कर दें ।

## भारतवर्ष की चौथी मनुष्य-गणना ।



मनुष्य-गणना की प्रथा बहुत पुरानी है । राज्य-शासन और प्रजाहित-साधन, दोनों में, इससे बहुत सहायता मिलती है । इसीसे सभ्य और समुन्नत देश के इतिहास में मनुष्य-गणना की प्रथा का उल्लेख पाया जाता है । सभ्यता के सूर्य की दिव्य ज्योति का विकास सबसे पहले हमारे भारतवर्ष की भूमि पर ही हुआ था । अतएव यह सर्वथा सम्भव है कि यहाँ भी प्राचीन समय में मनुष्य-गणना की प्रथा सर्वत्र प्रचलित रही हो । चन्द्रगुप्त के समय में तो यहाँ अवश्यही मनुष्य-गणना होती थी । चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख किया है । परन्तु हमारे यहाँ शृङ्खलाबद्ध इतिहास का सर्वथा अभाव है । इसी से यह नहीं मालूम होता कि प्राचीन समय में किस तरह मनुष्य-गणना होती थी और उसके द्वारा कौन कौन कार्य सम्पन्न होते थे ।

रोम के इतिहास से विदित होता है कि सर्वियस ट्यूलियस ( Servius Tullius ) नामक राजा ने पहले पहल अपने राज्य में मनुष्य-गणना की प्रथा चलाई । उसके समय की मनुष्य-गणना में नाम, ग्राम आदि के सिवा प्रत्येक परिवार के मनुष्यों का पारस्परिक सम्बन्ध और उनकी सम्पत्ति की इयत्ता की भी जाँच होती थी । इससे प्रत्येक परिवार की शक्ति और विभूति का पता लगता था । उसी न्यून-धिक्य पर विचार करके प्रजा को कई प्रकार के अधिकार दिये जाते थे और उसी हिसाब से कर भी लगाया जाता था । रोम के शासनकर्त्ताओं ने मनुष्य-गणना को इतना उपयोगी समझा कि कुछ दिनों बाद उन्होंने हर पाँचवें वर्ष मनुष्य-गणना करने की चाल चला दी ।



सन् १७८७ ईसवी में अमेरिका के युक्त-संस्थानों (United States) की स्थापना हुई। उस समय यह निश्चय हुआ कि पूर्व-प्रतिष्ठित प्रादेशिक राज्यों को अपनी अपनी सीमा के भीतर स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अधिकार दिया जाय और अन्यान्य जातीय कार्यों के निमित्त राजनैतिक व्यवस्था दो तरह से हो—प्रादेशिक राज्यों के द्वारा तथा मनुष्यों की संख्या के अनुसार स्वतन्त्ररूप से। इसी राजनैतिक आवश्यकता के कारण वहाँ मनुष्य-गणना की प्रथा प्रचलित हुई। पहली मनुष्य-गणना सन् १७९० ईसवी में हुई। तबसे बराबर दसवें वर्ष वहाँ मनुष्य-गणना होती है। पहली गणना में बहुत कठिनाता हुई थी और उसका फल भी असन्तोष-जनक हुआ था। परन्तु उसके बाद से बराबर यह कार्य अच्छी तरह सम्पन्न होता है और प्रति बार ज्ञातव्य विषयों की सूची बढ़ाई जाती है। १८५० ईसवी से अमेरिका की मनुष्य-गणना के समय कृषि, शिल्प, व्यवसाय, स्कूल, गिरजाघर, समाचारपत्र आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में भी जाँच की जाती है।

ग्रेट ब्रिटेन की पहली मनुष्य-गणना १८०१ ई० में, अर्थात् अमेरिका की पहली गणना के ११ वर्ष बाद, हुई थी। इस मनुष्य-गणना का उद्देश पूर्वोक्त रोम और अमेरिका की मनुष्य-गणना के उद्देशों से भिन्न था। राज्यशासन-सम्बन्धी काम के लिए एक प्रधान समिति स्थापन करने तथा पुलिस का प्रबन्ध करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन के भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासियों की संख्या जानने की आवश्यकता हुई। इसी से वहाँ मनुष्य-गणना की प्रथा चली। पहली गणना में मनुष्यों की संख्या केवल तीन विभागों में बाँटी गई थी—(१) विशेषतः खेती करनेवाले (२) विशेषतः व्यापार और शिल्प कार्य करनेवाले (३) उक्त दोनों श्रेणियों में न गिने जाने योग्य मनुष्य। परन्तु यह गणना सन्तोष-दायक न हुई। तबसे दसवें वर्ष वहाँ मनुष्य-गणना होती है। १८४१ तक तो उसका फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। किन्तु १८५१ से इधर यह काम बहुत उत्तम रीति से होता है। १८५१

में मनुष्यों के धर्म और शिक्षा के सम्बन्ध में भी जाँच की गई थी। उसके बाद से प्रति मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में नये नये उपयोगी विषयों का उल्लेख किया जाता है।

भारतवर्ष के प्राचीन समय की मनुष्य-गणना का विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं। ब्रिटिश-शासन के समय की मनुष्य-गणना का सिलसिला कोई पचास वर्ष पहले से चला आता है। पहली मनुष्य-गणना १८७१ और १८७२ ईसवी के बीच में हुई थी। किन्तु उस समय हैदराबाद, काश्मीर, और मध्य-भारत, राजपूताना तथा पञ्जाब प्रान्त के देशी राज्यों की गणना नहीं हुई। अन्यान्य प्रान्तों की गणना भी एक ही समय नहीं हुई। इस कारण उसमें अनेक प्रकार की त्रुटियाँ रह गईं। तो भी उससे बहुत लाभ हुआ। १८८१ ईसवी की १७ फरवरी को फिर मनुष्य-गणना हुई। इस दफे सब कहीं एक ही समय मनुष्यों की गिनती हुई और इसमें काश्मीर तथा सुदूरक कुछ छोटे छोटे राज्यों के सिवा बाकी सारे देशी राज्य सम्मिलित किये गये। मनुष्य-गणना के नियम प्रायः सर्वत्र एक ही से रखे गये। केवल जङ्गली और मरुप्रदेशों में कुछ नियमों में हेर फेर हुआ। यही गणना सरकारी रिपोर्ट में पहली मनुष्य-गणना कही गई है।

दूसरी मनुष्यगणना १८९१ ईसवी की २६ फरवरी को हुई। इस बार के नियम भी प्रायः पहले ही के नियमों के सदृश थे। भेद केवल इतना ही था कि इस बार का प्रबन्ध पहले के प्रबन्ध से अच्छा था और इस बार की गणना में काश्मीर, सिक्किम और ऊपरी ब्रह्मदेश भी शामिल किया गया था।

१, मार्च १९०१ ईसवी को भारत की तीसरी मनुष्यगणना हुई। इस समय बलूचिस्तान एजेंसी राजपूताना में भीलों की बस्तियाँ, अंडमन तथा निकोबार के टापू, ब्रह्मदेश, पञ्जाब तथा काश्मीर की सीमा के अन्तर्गत प्रदेशों की भी गिनती हुई।

इस साल गत १० वीं मार्च की रात को चौथी मनुष्यगणना हुई थी वह भारत वर्ष की चौथी



मनुष्यगणना है। इस मनुष्यगणना में पहली गणनाओं की अपेक्षा उत्तमतर व्यवस्था की गई थी। कमिश्नर, सुपरवाइजर इन्सुमरेटर आदि सब रिपोर्टेंट, सुपरवाइजर द्वारा इस वर्ष मिलाकर कोई बीस लाख आदमियों का कार्य सम्पन्न हुआ है।

इंग्लैंड आदि देशों में, जहाँ विद्या का अधिक प्रचार है, प्रत्येक परिवार का स्वामी मनुष्यगणना के कागजात अपने हाथ से लिखता है। इसीसे गणना करने वालों को कुछ दिक्कत नहीं होती। परन्तु हमारा देश अविद्या के अन्धकार में पड़ा है। इस कारण गणकों को ही सब कागजात तैयार करने पड़ते हैं। कितने ही इन्सुमरेटर, अर्थात् गणक, भी अपना बताये काम करने के योग्य नहीं समझे जाते। अतएव कागजात पहले से ही तैयार कराये गये थे। गणना की रात को केवल इतना ही काम हुआ कि सुपरवाइजर लोगों ने अपने अपने हलक़े में घूम कर कागजात के सही होने की जाँच कर ली। जहाँ कहीं कुछ कमी वेशी देख पड़ी वहाँ संशोधन कर दिया।

अभी तक कागजात की जाँच पूरी नहीं हुई। इसीसे इस मनुष्यगणना की व्यौरेवार रिपोर्ट प्रकाशित होने में विलम्ब है। परन्तु तब तक गणना के कमिश्नर ने एक साधारण रिपोर्ट प्रकाशित कर दी है। यद्यपि यह रिपोर्ट प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती; कागजात की जाँच के बाद इसमें शायद सुधार करना पड़े; तथापि पहले के अनुभव से प्रतीत होता है कि यह रिपोर्ट बहुत कुछ ठीक होगी। इस रिपोर्ट से मालूम हुआ कि भारतवर्ष की मनुष्य जनसंख्या ३१५००१०९९ है। उसमें ब्रिटिश राज्य की जनसंख्या २४४१७२३७१ है और देशी राज्यों की ७०५८२७२८। १९०१ ईसवी की गणना से मिलाने से विदित होता है कि गत दस वर्षों में सब मिलाकर २०६४००४३ आदमी बढ़े हैं। परन्तु वृद्धि सब प्रदेशों में नहीं हुई है। कितने ही प्रदेशों की जनसंख्या बढ़ने के बदले घट गई है। दुःख का विषय है कि कुछ प्रदेश की जनसंख्या का ही अधिक हास हुआ है। इस बार की गणना में युक्त प्रदेश की संख्या

१९०१ की अपेक्षा ४९७८४६ कम रही। इसका प्रधान कारण प्लेग का प्रकोप है। गया, नागपुर और इन्दौर की जनसंख्या भी इस वर्ष प्लेग के कारण बहुत कम हो गई।

रिपोर्ट के अन्त में गणना के कमिश्नर ने भिन्न भिन्न प्रान्तों के विषय में अपनी टिप्पणी प्रकाशित की है। उससे मालूम होता है कि गत दस वर्षों में किस प्रान्त की कैसी अवस्था रही और उसका क्या कारण था।

बङ्गाल के विषय में कहा गया है कि पहले चार वर्ष तक कृषि की दशा अच्छी रही। उसके बाद लगातार चार वर्ष तक फसल खराब होती गई। और, फिर पीछे दो वर्ष अच्छी उपज हुई। १९०६ में दरभङ्गा जिले में पहले भयङ्कर बाढ़ आई। पीछे पानी विलकुल न बरसा। इससे उस साल वहाँ घोर दुर्भिक्ष पड़ा। १८०७ में बहुत जल्द वर्षा बन्द हो जाने के कारण बङ्गाल प्रान्त भर में कहीं भी अच्छी फसल नहीं हुई। चार जिलों में लोगों को सहायता देने का प्रबन्ध करना पड़ा। १९०८ में फिर वही दशा हुई। इसका प्रभाव दस जिलों पर पड़ा। दो जिलों में तो दुर्भिक्ष पड़ गया। प्लेग का उपद्रव प्रतिवर्ष होता रहा। बिहार के कितने ही जिलों में इस रोग से बहुत मनुष्य मरे। गत दस वर्षों में बङ्गाल प्रान्त भर में इस रोग से पाँच लाख छियानवे हजार आदमी मरे।

बम्बई के सम्बन्ध में कहा गया है कि १९०८—०९ तक इस प्रान्त के व्यापार की दशा अच्छी रही। किन्तु उस साल कपास का भाव चढ़ जाने से काम कुछ ढीला पड़ गया। १९०९—१० में फिर भी व्यापार कुछ चमका और कराची बन्दर का कारोबार पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा। हर साल कोई सौ मील के हिसाब से रेलवे का विस्तार होता रहा और नहर का काम भी धीरे धीरे बढ़ता रहा। इस प्रान्त में प्लेग से तेरह लाख तेरह हजार आदमी मरे।



इस दशाब्दी में मध्य प्रदेश और बरार की दशा बहुत शोचनीय रही। किसी साल अच्छी फसल नहीं हुई। १९०७ में वर्षा कम होने के कारण जबलपुर और नर्मदा-प्रान्तों में लोग बहुत दुखी रहे; किन्तु अन्यान्य वर्षों में कई बार यहाँ अच्छी फसल भी हुई। पिछले वर्षों में लोगों ने कपास की खेती करना शुरू किया। इससे अच्छा लाभ हुआ।

मद्रास प्रान्त की फसल की दशा साधारणतः अच्छी रही। १९०६ से १९०८ तक यहाँ हैजे का प्रकोप रहा। इसके सिवा अन्य वर्षों में यहाँ का स्वास्थ्य अच्छा रहा। इस दशाब्दी में यहाँ से बहुत आदमी उत्तर-बर्मा और लंका में जा बसे। कुछ लोग मलय-राज्य (Malay States) को भी चले गये। किन्तु आखिरी रिपोर्ट तैयार हुए बिना उनकी ठीक संख्या नहीं बताई जा सकती।

इस दशाब्दी के आरम्भ में पूर्व-बङ्गाल और आसाम में चाय का व्यापार कुछ मन्द पड़ गया, परन्तु पीछे इसकी खूब तरक्की हुई। १९०९ में तेईस करोड़ पाँड, अर्थात् कोई २८७५,००० मन, चाय इस प्रान्त में तैयार हुई। इसी बीच में आसाम-बङ्गाल रेलवे जारी हुई और ईस्टर्न-बङ्गाल-स्टेट-रेलवे का भी गोलकगंज से गौहाटी तक विस्तार हुआ। यह प्रान्त अभी तक प्लेग से बचा हुआ है।

उत्तर-पश्चिम-सीमान्त-प्रदेश में आबादी लायक जितनी जमीन है वह सब १९०१ के पहले ही प्रायः आबाद हो चुकी है। इस दशाब्दी में यहाँ सड़कों और रेलवे का अधिक विस्तार हुआ। इस प्रान्त का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा रहा।

पञ्जाब में पहले दो वर्षों में बहुत कम उपज हुई। १९०१—०२ में देहली के इलाक़े और कांगड़ा जिले में, तथा उसके दूसरे वर्ष रोहतक और हिसार जिले में लोगों को बहुत अन्नकष्ट हुआ। उसके बाद, १९०७—०८ के सिवा और सब सालों में साधारणतः अच्छी फसल हुई। यहाँ प्लेग का उपद्रव बराबर बना रहा। कोई बीस लाख आदमी इस बीमारी से मरे। इसके सिवा साधारण और फसली

बुखार से भी कोई दस लाख आदमी मरे। प्रान्त की जनसंख्या बढ़ने के बदले फो सैकड़ों के हिसाब से घट गई।

युक्त-प्रदेश में, १९०० ईसवी में, घोर दुर्भिक्ष पड़ा। उसके बाद चार वर्ष तक इस प्रदेश की दशा अच्छी रही। फिर १९०६ में रबी की फसल खराब हो गई। इस कारण बुन्देलखंड और आगरे दक्षिण प्रान्त में अकाल पड़ गया। १९०७ में खरीफ और रबी की उपज अच्छी होने से देश की दशा कुछ सुधरी। परन्तु अगस्त में फिर भी एकाध वर्षा बन्द हो गई। इससे सब जगह घोर अकाल पड़ गया। १९०८ की खरीफ कटने तक इसका प्रकोप रहा। उसके बाद से अब तक फसल की गुणवत्ता दशा साधारणतः अच्छी रही है। प्लेग से इस प्रान्त में इस दशाब्दी में कोई पन्द्रह लाख आदमी मरे। फसली बुखार से मरनेवालों की संख्या इससे अधिक है। उससे, केवल १९०८ में, कोई बीस लाख आदमियों की मृत्यु हुई !!!

बर्मा की आबादी पहले बहुत कम थी। किन्तु इस बार की गणना से मालूम हुआ कि वहाँ की जनसंख्या बहुत बढ़ी है। इसके दो कारण हैं—पहला तो यहाँ बीमारी का उपद्रव अधिक नहीं, दूसरा यहाँ मद्रास से बहुत लोग यहाँ आकर बस गये हैं। यहाँ की जमीन बहुत उपजाऊ है। खेती की अवसर सन्तोषजनक है। गत दो वर्षों में यहाँ बहुत अच्छी उपज हुई। तेल के कारोबार में विशेष उन्नति हुई। व्यापार बढ़ा है और मजदूरी भी पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई है। देश का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा है।

ऊपर लिखी हुई बातों पर विचार करने पाठकों को मनुष्यगणना की उपयोगिता ज्ञात जायगी। मनुष्यगणना की रिपोर्ट पर विचार करने से कितनी ही ऐसी बातें मालूम हो सकती हैं जिनसे देश और समाज के कु-संस्कार-निवारण और उन्नति-साधन में सहायता मिल सकती है।



[ भाग ६ ]

मनुष्यगणना के कागज़ों में एक खाना विवाह-  
सम्बन्धी जाँच के लिए रहता है। उम्रवाले खाने के  
उप उसका मुकाबला करने से यह जाना जा  
सकता है कि किस प्रान्त में किस उम्र तक ब्रह्मचर्य  
का नियम पाला जाता है। इस पर अच्छी तरह  
विचार करने से प्रत्येक प्रान्त के आदमियों के बल,  
बुद्धि, साहस आदि, तथा आयु और नैरोग्य आदि  
का भी अन्दाज़ा किया जा सकता है।

विद्यासम्बन्धी खाने को देखने से यह जाना  
जा सकता है कि किस प्रान्त में शिक्षा का कैसा  
प्रभाव है और कहाँ किस भाषा का अधिक प्रभाव  
है। शिक्षित और अशिक्षित जनसमाज के स्वाभा-  
विक गुण-दोषों पर ध्यान देकर इस खाने पर विचार  
करने से बहुत सी सामाजिक तथा राजनीति-  
सम्बन्धी बातें जानी जा सकती हैं।

रोजगारसम्बन्धी विवरण पर विचार करने से  
प्रत्येक प्रान्त के लोगों की आर्थिक दशा का पता  
लाया जा सकता है। इससे प्रत्येक प्रान्त अथवा प्रत्येक जाति  
के लोगों के शील, स्वभाव आदि का भी अनुमान  
लाया जा सकता है।

अंगरेजी पढ़े हुए लोगों के रहन-सहन, आचार-  
नर्तक, दुरुस्ती, रीति-नीति, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि पर ध्यान  
देने से यह पता चल सकता है कि अंगरेजी शिक्षा-सम्बन्धी विवरण पर  
की अवलोकन किया जाय तो कितनी ही उपयोगी बातें  
यहाँ बहुत सी जानी जा सकती हैं।

## विविध विषय ।

### १-भारतवर्ष की भावी लिपि ।

लायत के पादड़ी जे० नेल्स भिन्न  
भिन्न लिपियों का पारस्परिक युद्ध  
करवा रहे हैं। ६ मार्च को उन्होंने  
लन्दन में एक व्याख्यान इसी विषय  
पर दिया। ईस्ट इण्डिया सोसायटी के जर्नल के  
अगले अंक में आपका एक लेख प्रकाशित हुआ

है। उसमें भारत की भिन्न भिन्न लिपियों के नमूने दिये  
गये हैं और यह दिखलाया गया है कि रोमन लिपि ही  
ऐसी लिपि है जो यहाँ की देशयापक लिपि हो  
सकती है। अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के शब्द  
जिसमें ठीक ठीक लिखे जा सकें इसलिए इस  
लिपि में कुछ परिवर्तन और परिवृद्धि करके  
तद्वत बुद्धियों की पूर्ति करने की चेष्टा की गई है।  
अतएव देवनागरी लिपि को सार्वदेशिक बनाने का  
प्रयत्न करने वालों को सावधान हो जाना चाहिए।

### २-कालिदास का एक और ऐतिहासिक अनौचित्य ।

बनारस के राय कृष्णदास लिखते हैं :—  
“कालिदास की निरङ्कुशता देख कर जी बहुत खुश  
हुआ। कालिदास ने रघु के दिग्विजय में मथुरा का  
भी वर्णन किया है। मथुरा शत्रुघ्न ने बसाई थी।  
इसलिए रघु के दिग्विजय में उसका उल्लेख करना  
ऐतिहासिक भूल है। कालिदास की निरङ्कुशता में  
इसका भी उल्लेख हो जाता तो अच्छा था”।

खैर, तब न सही, अब सही।

### ३-हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी ।

श्रीमती अनी बेजुंट और माननीय पण्डित  
मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से काशी में जिस  
हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना होने वाली है उसका  
विवरण प्रकाशित हो गया। उसके उद्देश बहुत  
अच्छे हैं। उसमें विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचर्याश्रम  
भी रहेंगे और विद्यालय भी। जो विषय आज कल  
इस देश के विश्वविद्यालयों के अन्तर्भुक्त विद्यालयों  
में सिखलाये जाते हैं उनके सिवा धर्म और सदाचार  
की भी शिक्षा उसमें दी जायगी और हिन्दू-शास्त्रों  
की, तथा साधारणतः संस्कृत-साहित्य की भी शिक्षा  
देने का प्रबन्ध किया जायगा। प्रधान प्रधान  
स्वदेशी भाषाओं में कला, विज्ञान, शिल्प और व्यव-  
साय-सम्बन्धी पुस्तकें बनवाने और उनके बनाने  
वालों को उत्साहित करने का भी प्रबन्ध होगा।



जहाँ तक हो सकेगा, विद्यार्थियों की मातृभाषा में भी गहन विषयों की शिक्षा दी जायगी। बनिज-व्यापार, खेती, सङ्गीत, चित्रकारी, अध्यात्म-विद्या तथा और भी अनेक उपयोगी विषयों की भी शिक्षा दी जायगी। सब जातियों और सब श्रेणियों के विद्यार्थी इसमें भरती हो सकेंगे। इस महोपकारी सदुद्योग के लिए श्रीमती अनी वेजंट और माननीय मालवीयजी हम लोगों के धन्यवादपात्र हैं। प्रत्येक हिन्दू का धर्म है कि इस विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए वह यथाशक्ति सहायता करे। भारत में कई करोड़ हिन्दू रहते हैं। उनमें से यदि एक करोड़ हिन्दू केवल एक एक रुपया दे डालें तो एक करोड़ हो जाय और सहज ही में अपेक्षित धन से अधिक धन एकत्र हो जाय। हमें चाहिए कि ज़रा अपनी आन्तरिक स्थिति को देखें, समय को देखें, देश-दशा को देखें और पास पड़ोस की व्यवस्था को देखें और इस विश्वविद्यालय को अपना समझ कर इसके सहायक बनें। इसकी स्थापना से अपनी ही नेक-नामा और उसमें विघ्न उपस्थित होने से अपनी ही बदनामी है। बदनामी ही नहीं, किन्तु बहुत बड़ी हानि भी है।

### ४—उर्दू-शार्ट-हैंड अर्थात् क्षिप्र-लेखन-प्रणाली।

लखनऊ के गीड-क्रिश्चियन-कालेज में कोई दो वर्ष से पुलिस के सब इन्स्पेक्टरों को उर्दू-शार्ट-हैंड की शिक्षा दी जाती है। गवर्नमेंट की इच्छा है कि ये लोग इस प्रणाली में खूब दक्ष हो जायँ जिसमें ये सर्वसाधारण-सभाओं आदि में दी गई वक्तृताओं की रिपोर्ट यथावत् अपने अफसरों के पास भेज सकें। इन लोगों की पहली परीक्षा हुए बहुत दिन हुए। उसका उल्लेख सरस्वती में हो चुका है। इनकी दूसरी परीक्षा गत एप्रिल में हुई। गवर्नमेंट के कुछ अफसर और कई एक अन्य प्रतिष्ठित सज्जन उस समय कालेज में उपस्थित थे। अध्यापक एम० एल० घोष ने इस प्रणाली का आविष्कार, आइज़क पिटमैन

की प्रणाली के आधार पर, किया है। पहले उन्होंने इसके मूलतत्त्व समझाये। फिर बाबू गङ्गाधर वर्मा ने एक स्पीच उर्दू में दी। आप बड़ी शीघ्रता से बोले। कभी कभी आपकी गति एक मिनट दो सौ शब्द तक पहुँच जाती थी। तिस पर जिन तीन सब इन्स्पेक्टरों ने परीक्षा दी थी उन्होंने बड़ी योग्यता से बाबू साहब की स्पीच लिख तद्वत् सुना दी। सुन कर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। इससे यह सिद्ध है कि उर्दू की क्षिप्र-लेखन प्रणाली चल निकली। संस्कृत-मिश्रित हिन्दी प्रणाली द्वारा ठीक ठीक नहीं लिखी जा सकती। नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी को चाहिए कि क्रिश्चियन कालेज के अधिकारियों और गवर्नमेंट पत्र-व्यवहार करके हिन्दी की क्षिप्र-लेखन-रीति भी शिक्षा दी जाने का प्रबन्ध करे।

### ५—सीता-स्वयंवर-सम्बन्धिनी शङ्का का समाधान।

श्रीयुत पण्डित लल्लूप्रसाद जी, मुरार, (गवर्नमेंट यर) से लिखते हैं :—

एप्रिल की सरस्वती में ठाकुर शङ्करसिंह धर्म-पत्नी की की हुई सीता-स्वयंवर-सम्बन्धिनी शङ्का का समाधान, मेरी अल्प मति के अनुसार निम्न-लिखित बातों से हो सकता है :—

(१) तुलसीदास ने जनक का दशरथ के यहाँ निमन्त्रण भेजना नहीं लिखा, यह सच है; परन्तु जनक का और किसी राजा को न्योता देना भी नहीं लिखा। सम्भव है, उन्होंने किसी को न्योता हो, क्योंकि जब सब राजा अपना अपना धनुष पर आजमा चुके और किसीसे वह भी न हिला तब राजा जनक बोले :—

द्वीप द्वीप के भूपति नाना।

आये सुनि हम जो प्रण ठाना ॥

यदि उन्होंने निमन्त्रण दिया होता तो वे ऐसा न कहते। यदि राजा जनक पहले तो निमन्त्रण भेज कर बुलाते और फिर सबके



[ भाग १ ]

कहते कि हमने जो प्रण ठाना था उसी को सुन  
सब राजा आये हैं, अर्थात् निमन्त्रित होकर नहीं  
तो यह बात शिष्टाचार के विरुद्ध होती। यदि  
कहा जाय कि सन्ताप-वश राजा ने ऐसा कह  
आये थे। सब राजा निमन्त्रित होकर ही आये थे।  
सका भी तो कोई प्रमाण नहीं है कि अयोध्या  
नहीं गया। जिस प्रकार और राजाओं  
निमन्त्रण भेजा जाना तुलसीदास ने नहीं वर्णन  
उसी प्रकार दशरथ को न्योता भेजा जाना  
सम्भव है, उन्होंने न लिखा हो। इसका उत्तर  
है कि स्वयं दशरथ की अवस्था विवाह करने  
न थी। निस्संदेह उनके पुत्र विवाह-योग्य  
न थे। परन्तु उनके सबसे ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र तो वन में  
विश्वामित्र के साथ थे—

तब मुने सादर कथा बुझाई ।  
चरित एक देखिय प्रभु जाई ॥  
धनुष-यज्ञ सुनि रघुकुल नाथा ।  
हराखि चले मुनिवर के साथ ॥

(२) यह भी सम्भव है कि राजा दशरथ ने निम-  
न्त्रण आने पर भी अपने पुत्रों को यज्ञ में सम्मिलित  
नहीं किया न समझा हो; क्योंकि जिस समय विश्वामित्र  
अपने यज्ञ की रखवाली के लिए रामचन्द्र को माँगा  
समय दशरथ ने देने से साफ़ इनकार कर  
दिया। उन्होंने कहा :—

सब सुत प्रिय मोहि प्राण कि नाई ।  
राम देत नहिं बने गुसाई ॥  
कहं निशिचर अति धोर कठोरा ।  
कहं सुत सुखर परमकिशोरा ॥

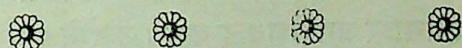
जब सामान्य राक्षसों का सामना करने के लिए  
अपने पुत्रों को देने में राजा दशरथ ने इतनी  
काफी की तब—

रावण बाण महाभट भारे ।  
देखि शरासन गवहिं सिधारे ॥

(३) इन बातों के अतिरिक्त तुलसीदास ने  
अपनी कवियों और पंडितों में कराने के हेतु

से रामायण नहीं लिखी। सबसे पहले ही उन्होंने  
साफ़ साफ़ कह दिया है कि मैं न तो कवि हूँ, न  
पंडित हूँ। मैं केवल भक्त हूँ। मेरी रामायण केवल  
मेरी भक्ति की प्रेरणा का फल है। वह काव्य नहीं।  
उसमें कविता-विषयक दोष बहुत होंगे। और, और  
भी बहुत सी त्रुटियाँ होंगी। उनको पाठक इस  
खयाल से क्षमा करें कि मैंने केवल राम-गुण-गान  
किया है।

इसी से ऐसी ऐसी बारीक बातों का छूट जाना  
बहुत सम्भव है। वास्तव में गोस्वामीजी ने कवि होने  
की परवा ही नहीं की। परन्तु वे स्वभाव ही से  
कवि थे। भक्ति में मग्न होकर वे बराबर लिखते गये  
हैं। उन्होंने सांसारिक और काव्य-सम्बन्धी नियमों के  
पालन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। तिस पर  
भी उनसे सांसारिक नियमों का बहुत कम उल्लङ्घन  
हुआ है। और, जहाँ कहीं हुआ भी है वहाँ उनके  
गाढ़े भक्ति-भाव ने उस त्रुटि को ऐसा छिपा दिया है  
कि वह दिखाई ही नहीं देती। उदाहरणार्थ देखिए  
कैकेयी को गोस्वामीजी ने कितने और कैसे अप-  
शब्दों से सम्बोधित किया है। कुछ भी हो, कैकेयी  
गोस्वामीजी के परम इष्टदेव रामचन्द्रजी की माता  
ही तो थी। परन्तु प्रेम-मग्न तुलसीदास ने इसका  
बहुत ही कम खयाल किया है। यह उनके प्रगाढ़  
भक्तिभाव और अनन्य प्रेम ही का फल है जो  
ऐसी ऐसी बातों पाठकों को नहीं खटकती।



बड़ेदे से यमुना बाई ने लिखा है कि जनक ने  
किसी को भी न्योता नहीं दिया। अपनी प्रतिज्ञा को  
उन्होंने चारण लोगों के द्वारा देश में प्रकाशित किया  
था। यदि निमन्त्रण देते तो वे विश्वामित्र से यह  
न कहते :—

देश देश के भूपति नाना ।  
आये सुनि जो हम प्रण ठाना ॥



रामनगर, बनारस, से श्रीमती पुष्पकुमारी देवी  
ने भी इसी तरह इस शङ्का का समाधान किया है।



उनका भी कथन है कि जनक ने किसी राजा को न्योता नहीं दिया था । उनकी प्रण-सम्बन्धी बात सूतों और मागधों से सुन कर सब राजा गये थे । प्रमाण में इन्होंने भी वही “द्वीप द्वीप के भूपति नाना” — दोहा उद्धृत किया है ।

### ६—नागरीप्रवर्द्धिनी-पत्रिका ।

प्रयाग की नागरीप्रवर्द्धिनी सभा ने एक पत्रिका निकालना आरम्भ किया है । उसका पहला अङ्क गत एप्रिल में निकला है । वार्षिक मूल्य इसका १॥) रक्खा गया है । डील डौल सरस्वती के सदृश है । पहले अङ्क में २८ पृष्ठ हैं । आरम्भ में जस्टिस कृष्ण-स्वामी आइयर का चित्र है । यह वही चित्र है जो सरस्वती में निकला था एक-लिपि-विस्तार-विषयक उनका व्याख्यान भी इस अङ्क में है । श्रीयुत शारदा-चरण मित्र, महाराजा गायकवाड़ और पण्डित मदन-मोहन मालवीय आदि के भी हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में व्याख्यान हैं । सभी व्याख्यान उपयोगी और महत्व-पूर्ण हैं । हम इस पत्रिका का सानन्द स्वागत करते हैं । इसमें कहीं यह नहीं लिखा कि साल में इसके कितने अङ्क निकलेंगे ।

### ७—वङ्गीय साहित्य-सम्मेलन ।

वङ्गीय साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन मैमनसिंह में होने वाला था वह हो गया । सभापति थे विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु । उन्होंने पहले दिन एक बड़ा ही सारगर्भित व्याख्यान दिया । उसमें उन्होंने कवि और वैज्ञानिक के कामों का उल्लेख किया और कहा कि परिणाम में इन दोनों का उद्देश एक ही है । उन्होंने बतलाया कि यह विश्व एक अदृश्य आलोक-सागर में डूबा हुआ है । जितने प्रकाश को हम नेत्रेन्द्रिय से देख सकते हैं वह उस प्रकाशाणव के मुकाबले में केवल एक बूँद के बराबर है जो नेत्रों से नहीं देखा जा सकता । चीनी मिट्टी का एक टुकड़ा जितने अदृश्य आलोक को अपने भीतर लेकर रख सकता है उतने दृश्य आलोक

को काँच का एक टुकड़ा अपने भीतर नहीं प्रत्येक कर सकता । संसार में हम लोग प्रायः नेत्रहीन हैं, क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत ही परिमित है । विचार और विवेचना से हम लोग अदृश्य बातों का प्रमाण लगाने का यत्न करते हैं । परन्तु उससे सृष्टि के लक्षण कौतुकों का ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है । इस अनन्तर वसु महोदय ने उद्भिज्जों की जीवनी और यन्त्र-द्वारा उनके सुख-दुःख आदि की विलेख क्रिया का उल्लेख किया । आपका व्याख्यान बहुत ही पाण्डित्य-पूर्ण हुआ । दूसरे दिन कई एक योगी मन्त्र-निश्चित हुए । उनमें से मुख्य मुख्य थे:—(१) वंशविज्ञान, जीवविज्ञान और समाजविज्ञान आदि पर पुस्तक लिखने के लिए सामग्री एकत्र करना (२) बंगाली जाति की उत्पत्ति के विषय पुस्तक लिखने के लिए सामग्री एकत्र करना (३) बंगाल प्रान्त की असभ्य आदिम जातियों और उनकी भाषाओं के सम्बन्ध में पुस्तक-रचना करना (४) प्राचीन इतिहास, कलाकौशल, भवन-निर्माण तथा प्रान्तिक भूगोल लिखने के साधन प्राप्त करना (५) विपत्तिग्रस्त ग्रन्थकारों की सहायता के लिए धन एकत्र करना । इनके सिवा और भी कितनी उपयोगी बातों पर विचार हुआ ।

### ८—चड़क-पूजा ।

सोंथाल परगने में कहीं कहीं एक विलक्षण पूजा होती है । उसका दृश्य बड़ा ही हृदयद्रावक होता है । कोई कोई तो उसे एक प्रकार का अत्याचार समझते हैं । वे उसे बन्द कराने की भी चेष्टा किया करते हैं । यह पूजा अब बहुत कम होती है । पर सुनो तो यही पूजा अब भी है । विशेष करके इसका अर्थ है चैत्र की पूर्णिमा को होता है । नीच जाति के लोग भील और सोंथाल ही बहुधा इसका अनुष्ठान करते हैं । इसका नाम है—चड़क-पूजा । किसी देवता के मन्दिर के पास ही यह होती है । पर सुनो तो हैं यह शिव की पूजा है । इसे देखने के लिए हजार आदमी इकट्ठे होते हैं । किसी इष्ट वस्तु की

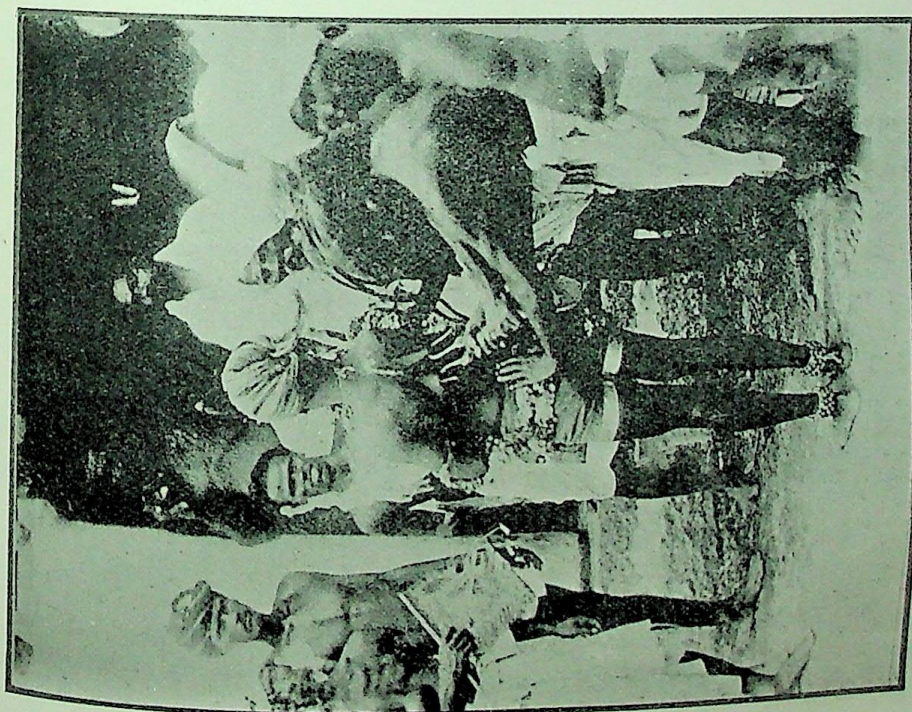


[ भाग १ ]

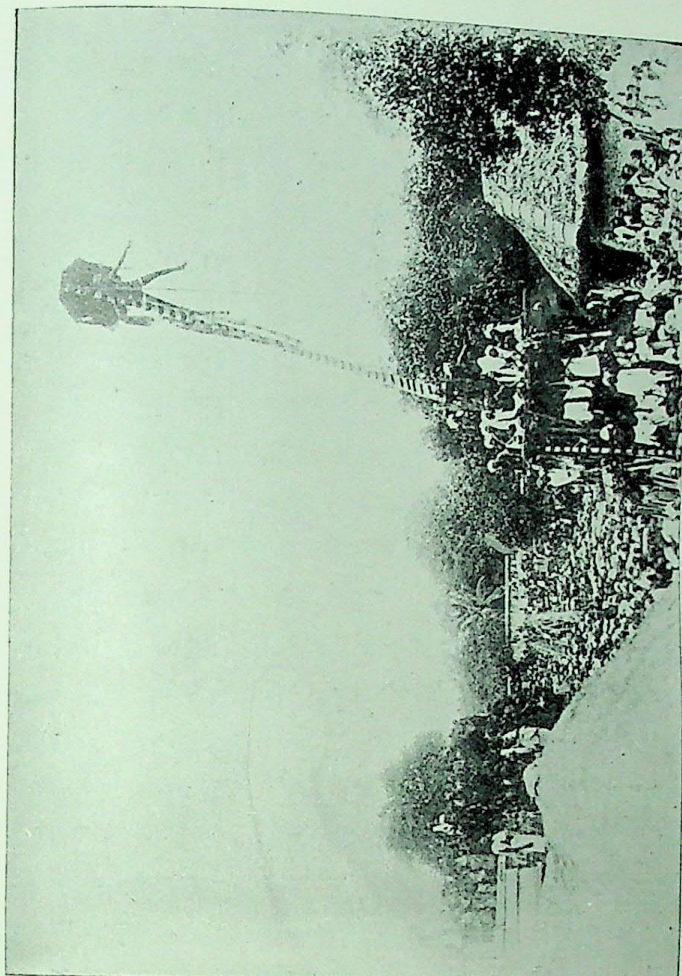
नहीं प्रविष्ट  
: नेत्रहीन  
त है। विचार  
तों का पर  
सृष्टि के ल  
नव है। इस  
जीवनी शं  
की विलेख  
ालयान क  
ई एक  
मुख्य मुल्य  
समाजविह  
सामग्री ए  
के विषय  
करना (।  
यों और  
करना (।  
निर्माण  
प्राप्त क  
ययता के  
मी कितनी

विलक्षण  
वक होता  
चार सम  
दया करते  
पर सुते  
का अमु  
गति के  
प्रनुष्ठान  
किसी  
हे। पर  
लिए  
स्तु की

## सरस्वती



इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



चङ्क-पूजा सम्बन्धी चित्र ।



संख्या ६

के लिए यह  
कोई रोग न  
से इसे कर  
उस पर ख  
एक मोटा  
बड़ा किया  
कल रस्सी  
दूसरा सिर  
कर हिलात  
आसमान न  
कभी इस प  
हैं। खंभे के  
हैं। उसका  
हैं। उसके  
हैं। वे रस्सि  
या रीढ़ के  
हुए पूजक  
रामाञ्चका  
की मृत्यु हे  
एक चित्र इ  
पूजा के सर  
में प्रकाशित  
मतारा गय  
अपनी पीठ  
और पानी  
अन्न हो र

६

इन प्रा  
जानते हैं।  
कुछ समय  
अरबी-फार  
परन्तु इन प्र  
एक आध व  
की कोशिश  
का अनुवाद



के लिए यह की जाती है। कोई पुत्र की इच्छा से, कोई रोगनाश की इच्छा से, कोई और किसी इच्छा से इसे करता है। एक मचान बनाया जाता है। उस पर खास खास आदमी बैठते हैं। उसके ऊपर एक मोटा बाँस या लकड़ी का स्तम्भ खूब ऊँचा बड़ा किया जाता है। उसके ऊपर पूजक कमर के बंधा हुआ लटकता है। रस्सी का दूसरा सिरा नीचे रहता है। उसे एक आदमी पकड़ कर हिलाता है। इस तरह बड़ी देर तक पूजक आसमान में इधर से उधर झुलाया जाता है। कभी कभी इस पूजा का रूप और भी भीषण हो जाता है। खंभे के ऊपर एक आड़ा बाँस लगाया जाता है। उसका मध्य भाग एक चरखी के भीतर रहता है। उसके दोनों सिरों पर दो रस्सियाँ बँधी रहती हैं। वे रस्सियाँ दो पूजकों की पीठ की नस छेद कर पीठ के भीतर बाँधी जाती हैं। उसी से लटके हुए पूजक झूला करते हैं। कैसा भयानक और रोमाञ्चकारी पूजन है! रस्सियों के टूटने से पूजकों की मृत्यु हो सकती है। पहले प्रकार के पूजन का एक चित्र इस संख्या में देखने को मिलेगा। इस पूजा के सम्बन्ध का एक और भी चित्र इस संख्या में प्रकाशित है। पूजनकर्त्ता हिला झुला कर नीचे उतारा गया है। वह बेहोश है। एक आदमी उसे अपनी पीठ पर लिये है। उस पर पंखा झलक कर पानी की छोट्टें मार कर उसे होश में लाने का प्रयत्न हो रहा है।

### ६—एक अरबीदाँ बंगाली ।

इन प्रान्तों के कितनेहीं हिन्दू अच्छी फ़ारसी जानते हैं। अरबी जानने वाले भी बहुत निकलेंगे। कुछ समय पहले लखनऊ के केनिंग कालेज में अरबी-फ़ारसी के जो प्रोफ़ेसर थे वे हिन्दू ही थे। परन्तु इन फ़ारसी-अरबी जानने वाले हिन्दुओं में से एक आध को छोड़ कर और किसी ने कभी इस बात की कोशिश नहीं की कि इन भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद करके, उनका सारांश लिख कर, या

और ही किसी तरह से हिन्दी जानने वाले अपने भाइयों को फ़ायदा पहुँचावे। बंगाल में फ़ारसी-अरबी का बहुत ही कम प्रचार है। पर वहाँ के एक बंगाली सज्जन की ज्ञानपिपासुता देखिए। ४२ वर्ष की उम्र में वे लखनऊ आये और बरसों वहाँ रह कर उन्होंने अरबी पढ़ी। थोड़ी सी फ़ारसी वे पहले ही से जानते थे। उसमें भी उन्होंने खूब विज्ञता प्राप्त की। तदनन्तर उन्होंने ग्रन्थ-रचना आरम्भ की। मुहम्मद साहब का जीवन-चरित उन्होंने तीन जिल्दों में लिखा और मुसल्मान महात्माओं के चरित छः जिल्दों में। फिर उन्होंने सारे कुरान का अनुवाद बँगला में किया। हदीस का अनुवाद भी उन्होंने आरम्भ किया था। पर केवल चार जिल्दें लिख चुके थे कि मृत्यु ने उन्हें इस लोक से उठा लिया। दीवाने हाफ़िज़ का भी उन्होंने अनुवाद किया। हसन और हुसैन का भी चरित लिखा। मुसल्मानी धर्म से सम्बन्ध रखने वाली और भी न मालूम कितनी पुस्तकें लिखीं। पर सब बँगला में। इनका नाम था—गिरिशचन्द्र सेन। बंगालियों की ज्ञानलिप्सा और ज्ञान-प्रसार-प्रवृत्ति की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

### १०—गोरे पर काले हबशी की जीत ।

कुछ समय हुआ अमेरिका में जॉनसन नामक एक हबशी की एक गोरे से कुश्ती हुई थी। उसमें काले ही की जीत हुई थी। इस पर गोरी दुनियाँ में आतङ्क सा छा गया था; क्योंकि काले हर बात में गोरे से कम समझे जाते हैं। इस सिद्धान्त को अखण्डित बना रखने के लिए इस कुश्ती के चित्रों का अन्य देशों में जाना बन्द कर दिया था। अब एक और काले की जीत की खबर आई है। उस दिन अमेरिका के रहने वाले लैंगफ़ार्ड नामक एक हबशी और आस्ट्रेलिया के एक गोरे में परस्पर धूँ सेबाजी हुई। लाखों आदमी तमाशा देखने के लिए अखाड़े में जमा हुए। गोरा देखने में तो काले से लंबा और मोटा था, पर काला अपने फ़न और मज़बूती में उस



से कहीं बढ़ चढ़ कर था। लैंगफ़ोर्ड ने गोरे को घूँसों से लोह-लुहान कर दिया। कई दफ़े वह गिर भी पड़ा। उसके मुँह से खून की धारा बह निकली। दर्शकों को उस पर रहम आया। सब ने कहा कि यदि काला हबशी चाहता तो इसे ज़रा ही देर में हरा देता। पर हबशी उसे धीरे धीरे खिलाता रहा। जान बूझ कर वह गोरे के घूँसों को अपने बदन पर फूल की तरह लेता रहा—यह बात उसने सिर्फ़ अपनी मज़बूती दिखाने के लिए की। कुछ देर में काला अचानक ज़मीन पर आ गया। ऐसी अवस्था में मार करना मना है। पर खिजलाये हुए गोरे ने इस दशा में भी उस पर घूँसे जमाये। यह देख कर सरपंच ने उसकी बड़ी निन्दा की और कहा कि तुमने घूँसेबाज़ी के नियमों का उल्लङ्घन किया। अब तुम घूँसेबाज़ी जारी रखने के लायक नहीं समझे जा सकते। जाव, खेल ख़तम। कहने की ज़रूरत नहीं, दर्शकों ने काले ही की जीत समझी।

### ११—पाताल में पानी का पता बताने वाला यन्त्र ।

किसी जगह कुआ ख़ुदवाने के पहले यह जान लेना बहुत ज़रूरी है कि वहाँ ज़मीन के नीचे जल की धारा है या नहीं, और अगर है तो कितना नीचे है। इसका पता लगाने के लिए ज्योतिष के ग्रन्थों में अनेक नियम बताये गये हैं। परन्तु इस समय इनके जानने वाले बहुत कम हैं। सुनते हैं, पुराने ज़माने में लोग एक छड़ी ज़मीन में गाड़ कर अपनी विद्या के बल से यह बता सकते थे कि वहाँ खोदने पर पानी निकलेगा या नहीं। पर यह विद्या अब लुप्त सी हो गई है। इससे हम लोगों को अनेक समय व्यर्थ परिश्रम और कष्ट उठाना पड़ता है।

जो बात हमारे यहाँ साधारण विद्या के बल से जानी जाती थी उसी को विलायत वाले यन्त्र-विद्या से जानने की चेष्टा किया करते हैं। हाल में लिवर-पूल की मैस फ़िल्ड ऐंड कम्पनी ने औटोमेटिक-

वाटर-फ़ाइंडर (Automatic Water Finder) नाम की एक कल ईजाद की है। उससे हजार फीट नीचे तक की जल की धारा का पता लग जाता है। यह कल ऐसे तरीक़े से बनाई गई है कि साधारण आदमी भी इस का व्यवहार कर सकता है। पुराने हैं कि बम्बई में इसकी परीक्षा हो रही है। जहाँ रख दी जाती है वहाँ यदि नीचे पानी होता है तो इसकी सूई हिलने लगती है। पानी में विजली का अंश रहता है। इस कल में भी विजली की शक्ति का भाव से ऊपर आकर इस कल की सूई को हिलाने लगती है।

### १२—एक अद्भुत दूरबीन ।

कोई नौ वर्ष हुए मिस्टर आँडू कारनेगी अमेरिका में एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक विद्यालय स्थापित किया था। संसार में इसकी बराबरी और कोई विद्यालय नहीं है। इस की स्थापना समय मिस्टर कारनेगी ने तीन करोड़ रुपये दिये थे। उसके बाद उन्होंने डेढ़ करोड़ रुपये दिये। अभी हाल में फिर उन्होंने इस विद्यालय के लिए तीन करोड़ रुपये दिये हैं। इस विद्यालय की कई शाखायें हैं। उनमें भिन्न भिन्न वैज्ञानिक तत्त्वों की परीक्षा और आविष्कार के काम होते हैं। मैट विलसन नामक पर्वत पर इसकी एक बेधशाला है। अध्यापक हेल वहाँ के अध्यक्ष हैं। उन्होंने अरिष्क में साठ हजार नये विश्वपिण्डों का पता लगाया है। यह सुन कर कारनेगी इतने खुश हुए कि उन्होंने एक बेश कीमती दूरबीन बनवा कर इस बेधशाला को दी जाने की आज्ञा दी है। इस शीशे का व्यास सौ इंच होगा। विद्वानों का क्या है कि इस नये दूरबीन की सहायता से अन्तर्-सम्बन्धी ज्ञान बहुत बढ़ जायगा और ऐसी ऐसी मालूम होंगी जिनका स्वप्न में भी किसी को नहीं हुआ होगा।



भाप १२  
Finder  
ज़ार फ़ो  
जाता है  
साधारण  
है। मु  
जहाँ  
हाता है  
विजली  
की गले  
ले अन्न  
को हिल  
  
।  
  
कारने  
विद्या  
परावरी  
स्थापना  
रूपये  
रूपये  
म विद्या  
रस वि  
अ वैज्ञानि  
म होते  
क वेधशा  
होंने  
का  
खुश  
बनवा  
है। इ  
का ख  
ने अन्त  
तो ऐसी  
को ख



# सरस्वती



शम्सुल् उल्मा डाकूर सैयद-अली ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।



### १३—बुद्धि मापने की कल ।

अमेरिका के वैज्ञानिकों के सभी काम हम लोगों को वकिल और स्तम्भित करनेवाले होते हैं । वे लोग सब काम कल ही से करना चाहते हैं । इस कारण वे नई नई कलें ईजाद किया करते हैं । तौलने की कल, माप करने की कल, सर्दी गर्मी की ठीक मात्रा जानने की कल—इस तरह की कितनी ही बुद्धि कराने वाली कलें वे ईजाद कर चुके हैं और करते जा रहे हैं । जान ग्रे नामक एक विज्ञानवेत्ता ने बुद्धि मापने की कल भी ईजाद की है । अब तक परीक्षा द्वारा ही किसी आदमी के बुद्धिबल का ज्ञात किया जाता था । पर परीक्षा करने में अधिक समय लगता था और कभी कभी जाँच का कल गलत भी निकलता था ।

जान ग्रे की बनाई हुई कल की शकल सन्दूक की शकल की है । उसके भीतर एक आईना है जो अपनी धुरी पर घुमाया जा सकता है । उसके चारों तरफ रङ्गीन शीशे लगे हुए हैं । एक तरफ आईना घुमाने के लिए एक मूँठ और दूसरी तरफ आईने की गति जानने के लिए एक यन्त्र लगा हुआ है । एक रङ्गीन शीशे की खिड़की के सामने उजले कागज का परदा पड़ा हुआ है । उसके बाहर रोशनी पड़ती है । यह रोशनी कागज और शीशे से छन कर आईने पर पड़ती है । जब आईना घुमाया जाता तो रङ्गीन रोशनी एक छेद से बाहर निकलती है । इसी छेद के सामने परीक्षार्थी की आँख रहती है । एक रोशनी से हट कर जब तक आईना दूसरी रोशनी के सामने पहुँच कर उसे प्रतिबिम्बित करता है तब तक अन्धकार रहता है । पर रोशनी हट जाने पर भी परीक्षार्थी की आँख पर कुछ देर तक उसका अन्धकार रहता है—किसी पर कम देर तक और किसी पर अधिक देर तक । इसी कमीवेशी के हिसाब से आदमी की बुद्धिमत्ता की इयत्ता जानी जाती है ।

इस कल के आविष्कर्ता ने दो सिद्धान्त स्थिर किए हैं । एक तो यह कि स्त्रियों की बुद्धि पुरुषों की

बुद्धि की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है । दूसरा यह कि काले आदमियों की बुद्धि भूरे बाल वालों की बुद्धि से प्रखरतर होती है ।

### १४—शम्सुल-उल्मा डाक्टर सैयद-अली बिलग्रामी का परलोकवास ।

खेद की बात है, एक और विद्वान् मुसल्मान का अचानक परलोकवास हो गया । डाक्टर सैयद-अली बिलग्रामी ने २ मई की रात को, १० बजे, हरदोई में, शरीर छोड़ दिया । मरने के पाँच मिनट पहले तक आप अच्छी तरह थे । एकाएक जी घबराया और प्राणोत्क्रमण हो गया । फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी के सिवा ये संस्कृत के भी विद्वान् थे । ये वही महाशय हैं जिन्होंने अपनी एक पुस्तक में देवनागरी लिपि की प्रशंसा की है और लिखा है कि अरबी लिपि के दोषपूर्ण होने ही के कारण मुसल्मानों के बच्चों की शिक्षा में बहुत समय लगता है । कोई दस वर्ष हुए आपका चरित सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है ।

हरदोई ज़िले में एक जगह बिलग्राम है । आप वहाँ के निवासी थे । पहले आपने लखनऊ के केनिंग-कालेज में शिक्षा पाई थी; फिर पटना और रुड़की में । एल० एल० बी० की परीक्षा में आपने बड़ा नाम पाया । हिन्दुओं के धर्मशास्त्र-सम्बन्धी परचे को आपने सबसे अच्छा किया था । इसका कारण यह था कि इन्होंने संस्कृत में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी । इनकी विद्वत्ता के उपलक्ष में कलकत्ते के विश्वविद्यालय ने इन्हें एल० एल० डी० की उपाधि से विभूषित किया था । शम्सुल-उल्मा की पदवी भी गवर्नमेंट ने इन्हें दी थी । भारतवर्ष में विद्योपार्जन करने के बाद ये इंग्लैंड गये । वहाँ इन्होंने केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय से एम० ए० पास किया । पदार्थविज्ञान, भूगर्भ-विद्या और रसायनशास्त्र का इन्होंने वहाँ अच्छा अभ्यास किया था ।



ऊँचे दरजे की शिक्षा समाप्त करके, सर सालारजंग के बुलाने पर, ये हैदराबाद आये और बहुत बरसों तक एक ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित रहे । तदनन्तर पेन्शन लेकर ये इंग्लैंड चले गये । वहाँ कोई दस वर्ष तक मराठी-साहित्य के प्रोफ़ेसर रहे । तदनन्तर ये अपने देश को लौट आये और हरदेई में रहने लगे ।

इन्होंने कई उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखीं । उनके नाम हैं:—“अरब-निवासियों की सभ्यता”, “संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा-सम्बन्धिनी पारस्परिक योग्यता” और “हैदराबाद के खनिज पदार्थ” । हाल में ये “भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास” लिख रहे थे । उसके प्रकाशित होने के पहलेही आपकी मृत्यु हो गई । मरने के समय आपकी उम्र कोई ५७ वर्ष की थी । आप अलीगढ़ के महम्मडन-कालेज के ट्रस्टियों में से थे । उसकी उन्नति के लिए आप जी जान से चेष्टा करते थे ।

### १५—बाबू हरिश्चन्द्र की कविता में दोषोद्भावना ।

काशी की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में “हरिश्चन्द्र-समीक्षा” नामक एक लेखमाला निकल रही है । उसमें लेखक महाशय बाबू हरिश्चन्द्र की कविता की समालोचना बड़ी योग्यता से कर रहे हैं । उनकी कविता में जो गुण हैं—जो विशेषतायें हैं—उन्हें भी आप दिखाते हैं और जो दोष हैं उनका भी उल्लेख करते जाते हैं । समालोचना बड़ी मार्मिकता से हो रही है । बाबू हरिश्चन्द्र काशी के ही निवासी थे । वहाँ से यह पत्रिका निकलती है । नागरी-प्रचारिणी सभा के अधिकारी ही इसके सञ्चालक हैं । अतएव यह समालोचना बड़े महत्त्व की है । इससे सूचित होता है कि हिन्दी के वर्तमान युग के महाकवियों के भी दोष दिखलाना हिन्दी के सच्चे शुभचिन्तक बुरा नहीं समझते ।

## चित्र-परिचय ।

### देहली की बेगमों का जल-विहार ।

( १ )

शाही जमाने में देहली की बेगमों नाच सवार होकर चाँदनी रात में यमुना में जल-विहारी करती थीं । यह ऐतिहासिक बात है, कालेज नहीं । इसी घटना का दर्शक एक चित्र लखनऊ प्रसिद्ध चित्रकार हकीम महम्मदख़ाँ ने अङ्कित किया है । हकीम साहब प्रतिभाशाली चित्रकार हैं । ऐतिहासिक घटनाओं को चित्रित करने में आपकी अच्छी प्रसिद्धि है । आपका यह रंगीन चित्र, सरस्वती की इस संख्या के आरम्भ में दिया गया इस बात का यथेष्ट प्रमाण है । यमुना, यमुना और शाही बजरे का दृश्य अङ्कित करने में चित्रकार ने अप्रतिम कौशल दिखाया है ।

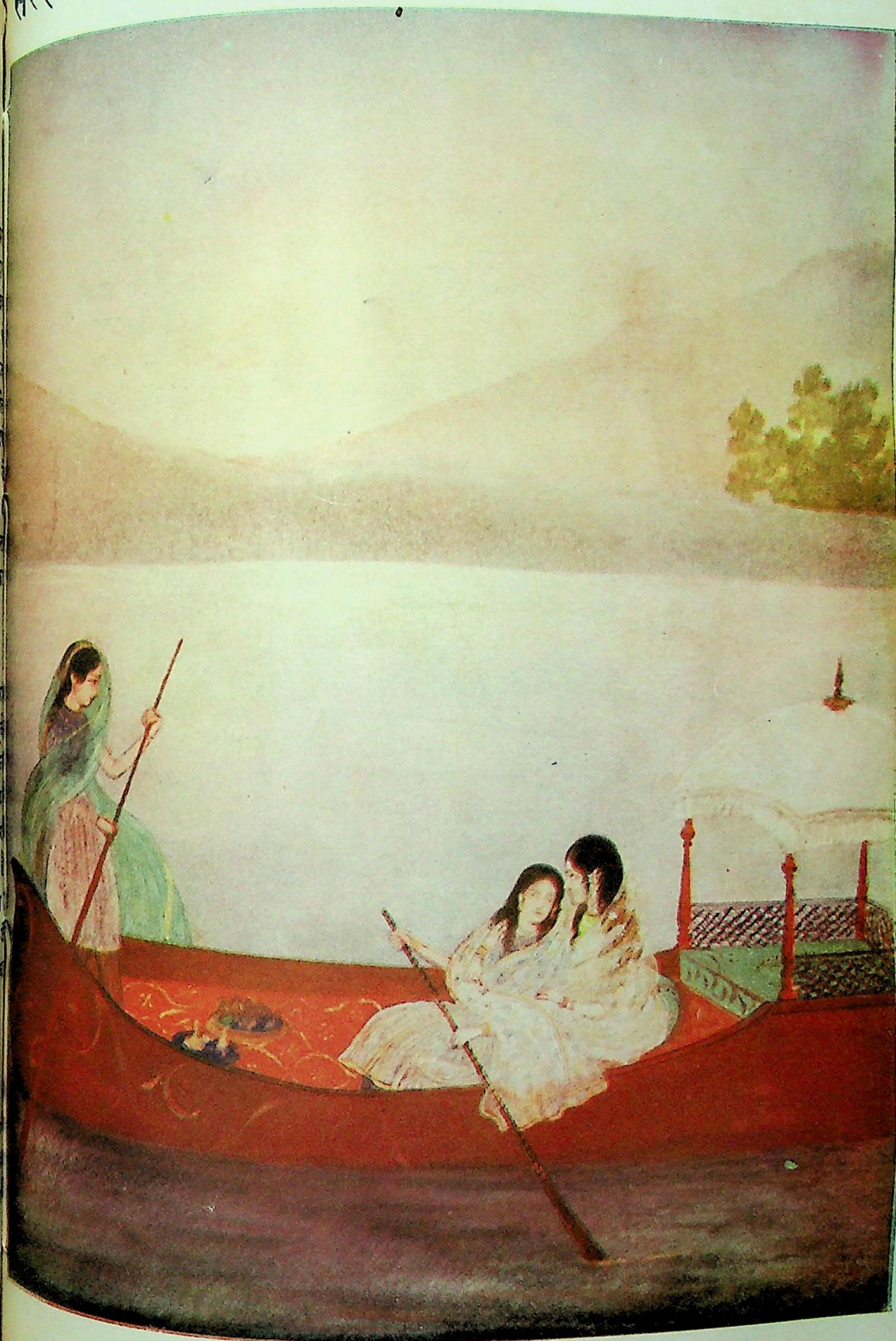
( २ )

महाभारत-युद्ध समाप्त हो चुका है; धर्मराय युधिष्ठिर हस्तिनापुर के सिंहासन पर धर्मराय राज्य कर रहे हैं । उनकी इच्छा अश्वमेध-यज्ञ करवाने की थी । वह भी पूरी हो चुकी है । इस उपलक्ष्य पर आये हुए श्रीकृष्ण, बहुत दिन तक हस्तिनापुर रह कर अब द्वारका लौट जाने के लिए तैयार रह रहे हैं । अतएव आप अपने परम मित्र अर्जुन से विदा ले रहे हैं । यही इनकी अन्तिम भेंट है । अन्यत्र श्रीकृष्णार्जुन का चित्र प्रकाशित किया गया है । इसी दृश्य का सूचक है ।

( ३ )

शङ्कर के ताण्डवनृत्य का चित्र कलकत्ता प्रसिद्ध चित्रकार बाबू गगनेन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र का प्रतिबिम्ब है । इस विषय का एक चित्र सरस्वती में निकल चुका है । परन्तु इस चित्र की अपेक्षा कुछ विशेषता है ।





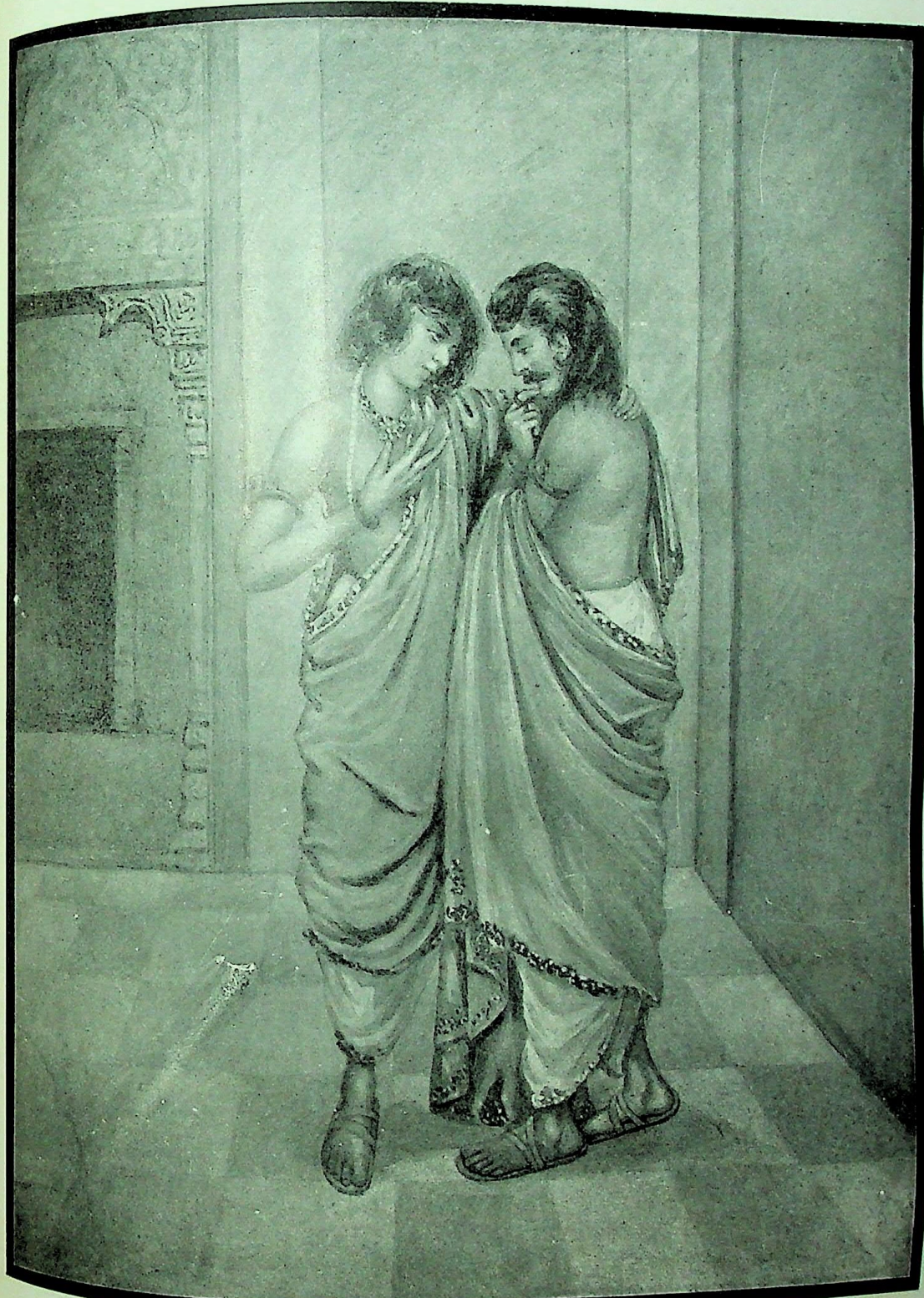
दिल्ली की बेगमों का जल-विहार ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।









अर्जुन से श्रीकृष्ण की अन्तिम बिदाई ।  
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।







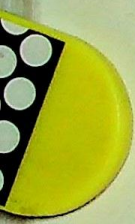
# सरस्वती



इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

शङ्कर का ताण्डवनृत्य ।






भाग १२

राजरा



मोदीदार  
राज के त  
के ठाकु  
कर राजा  
दिन र  
सिंह र  
वाद वे  
का इ  
प्राप्त करने





# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ]

१ जुलाई, १९११—आषाढ शुक्ल ५, १९६८ ।

[ संख्या ७ ]

## राजराना जालिमसिंह भाला ।

राजराना जालिमसिंह भालावाड़ राज्य के प्रतिष्ठाता थे । इनका जन्म संवत् १७९६ में हुआ था । ये भाला जाति के राजपूत थे । इनके पूर्वपुरुष भालावाड़ राज्य के अन्तर्गत हलवद के फौजदार थे । जिस समय औरङ्गजेब के पुत्र आपस राज्य के लिए युद्ध कर रहे थे उसी समय हलवद के ठाकुर माधवसिंह कुछ सवारों के साथ राजा भीमसिंह के पास कोटे पहुँचे । वहाँ कुछ दिन रहने के बाद उन्होंने महाराज-कुमार जालिमसिंह से अपनी बहन का विवाह कर दिया । जालिमसिंह का इलाका उन्हें जागीर में मिला । इस पद पर नियत हुए और वहाँ की सम्पूर्ण

सेना पर उनका अधिकार हो गया । उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र मदनसिंह फौजदार हुए । मदनसिंह के दो पुत्र थे—हिम्मतसिंह और पृथ्वीसिंह । यही पृथ्वीसिंह जालिमसिंह के पिता थे । अपने पिता के शरीरपात के बाद हिम्मतसिंह ने फौजदार का पद प्राप्त किया । इस पद पर रह कर उन्होंने अनेक प्रशंसनीय कार्य किये ।

हिम्मतसिंह के कोई पुत्र न था । अतएव उन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र जालिमसिंह को गोद लिया । संवत् १८१७ में जालिमसिंह को भी फौजदारी का पद मिला । इस समय इनकी अवस्था इक्कीस वर्ष की थी । इसी साल जयपुर के महाराज माधवसिंह ने एक बड़ी भारी सेना लेकर कोटे पर चढ़ाई की । बटवाड़ा नामक स्थान के निकट फौजदार जालिमसिंह ने हाड़ों की केवल पाँच हजार सेना लेकर उनका सामना किया । इस युद्ध में जालिम-



सिंह ने बड़ी बुद्धिमानी और वीरता का परिचय दिया। महाराज होलकर उस समय थोड़ी ही दूर पर डेरा डाले हुए पड़े थे; परन्तु उन्होंने किसी का भी पक्ष नहीं लिया था। जालिमसिंह ने उनसे प्रार्थना की कि यदि आप युद्ध करना नहीं चाहते तो जयपुर वालों के डेरे ही लूट लीजिए। ऐसे कामों के लिए होलकर सदैव तैयार रहते थे। इससे उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। यह समाचार सुनते ही जयपुर की सेना विचलित हो गई। सब लोग इधर उधर भागने लगे। इसी समय हाड़ों ने उनका पीछा करके बहुत हानि पहुँचाई। इस युद्ध में जालिमसिंह ही विजयी हुए।

संवत् १८२२ में कोटा-नरेश छत्रशाल का देहान्त हुआ। उनके पुत्र गुमानसिंह पिता के राज्याधिकारी हुए। इसके थोड़े ही दिनों बाद जालिमसिंह से उनकी अनबन हो गई। इससे उन्होंने जालिमसिंह को फौजदारी के पद से अलग कर दिया और उनकी जागीर भी जब्त कर ली। अतएव जालिमसिंह उदयपुर के महाराना अरसीजी के पास चले गये। अरसीजी इन्हें अच्छी तरह जानते थे। इससे उन्होंने इनका अच्छा सत्कार किया और अपने यहाँ रख लिया। जालिमसिंह के प्रयत्न से अरसीजी अपने सरदारों के दबाव से स्वतन्त्र हुए। इनके गुणों को देख कर महाराना इनसे बहुत प्रसन्न हुए और पारितोषिक स्वरूप इन्हें चित्रखेड़ा की जागीर दी।

कुछ दिनों बाद मेवाड़ के सरदार महाराना अरसीजी को राज्यच्युत करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने यह जाहिर किया कि महाराना राजसिंह की गर्भवती स्त्री के एक पुत्र हुआ है। वही राज्य का अधिकारी है। फिर उन्होंने महादाजी सेंधिया को उस लड़के के पक्ष में खड़ा किया। अन्त में युद्ध हुआ। इस युद्ध में जालिमसिंह ने ऐसी वीरता दिखाई कि सेंधिया को परास्त होकर भागना पड़ा। भाग कर वे उज्जैन आये। वहाँ उन्हें सहायता मिली। इससे वे फिर लौट पड़े और फिर युद्ध हुआ। इस बार मेवाड़ की सेना को बहुत हानि पहुँची।

जालिमसिंह का घोड़ा मारा गया और वे घायल होकर पकड़े गये। यह घटना संवत् १८२३ की है।

मरहटों से किसी तरह पिण्ड छुड़ा कर जालिमसिंह फिर कोटे आये। उस समय कोटे पर विपत्ति थी। मल्हारराव होलकर कोटे के किलों पर दखल कर चुके थे और राजधानी तक जाने की फ़िक्र में थे। सन्धि के लिए बहुत प्रयत्न करके लोग निराश हो चुके थे। पर जालिमसिंह बिना बुलाये ही आ कर सन्धि करा दी। इस काम से प्रसन्न होकर कोटे के तत्कालीन राजा महाराज गुमानसिंह ने जालिमसिंह की जागीर वापस कर दी और उन्हें फिर फौजदार बनाया। कुछ दिनों बाद गुमानसिंह बहुत बीमार हुए। उनके उत्तराधिकारी की उम्मेद न रही। अतएव उन्होंने अपने सब सरदारों को एकत्र करके अपने पुत्र उममेदसिंह जालिमसिंह की गोद में दिया और उन्हें सिंधिया तथा प्रधान मन्त्री नियत किया।

संवत् १८२७ में उममेदसिंहजी गद्दी पर बैठे। उनके राजतिलक के दिन ही हाड़ों ने कैलवाड़ा किला विजय किया। इससे जालिमसिंह की प्रभुता और भी बढ़ गई। कोटे के सरदार इनकी इस उन्नति से असन्तुष्ट होकर बखेड़े करने लगे। किन्तु जालिमसिंह ने इसकी कुछ भी परवा न की। इन्होंने सरदारों को कोटे से निकाल दिया और उनकी जागीरें छीन लीं। जब उन सरदारों को शरण न मिली तब वे फिर जालिमसिंह की आये। अतएव जालिमसिंह ने उनकी जागीरों का कुछ हिस्सा देकर उन्हें रख लिया। तथापि जालिमसिंह को उन लोगों से शक्का बनी ही रहती थी। कई बार उन लोगों ने इनके प्राणघात की भी कोशिश की। परन्तु जालिमसिंह बहुत सावधान रहते थे। इससे उनकी दाल न गली।

महाराना उममेदसिंह के बालिग होने पर उनका लड़कपन न गया। वे कोई काम



जालिमसिंह से विना पूछे न करते थे। जालिमसिंह भी प्रत्येक काम महारावजी की आज्ञा लेकर किया करते थे। एक बार जालिमसिंह को कोई अनुचित बात पुत्र ने महाराजकुमार को कोई अनुचित बात कही। इस पर इन्होंने अपने लड़के को अपनी जागीर से भेज दिया। जब स्वयं महाराव ने बहुत कुछ अनुग्रह किया तब, तीन वर्ष बाद, उसका अपराध जालिमसिंह ने क्षमा किया और कोटे आने की आज्ञा दी।

जालिमसिंह ने कोटे के सब किलों को खूब युद्ध और युद्ध के सामान से सुसज्जित किया। कोटे का नगरकोट भी उन्होंने ऐसा बनवाया कि इस नगर को भी आगरे के सिवा और कहीं का नगरकोट की बराबरी नहीं कर सकता। अन्योन्य राज्यों तथा पिंडारियों के सरदारों से भी, जालिमसिंह बहुत अच्छा वर्त्ताव किया करते थे। मेवाड़ और मेवाड़ के सरदारों ने अपने स्वामियों से बखेड़ा करके जब जब जालिमसिंह की शरण ली तब तब इन्होंने सुलह करा दी।

कर्मल मानसून होलकर से परास्त हो कर कोटे आये तो जालिमसिंह ने उन्हें नगर में घुसने से मना किया। उन्होंने कहा, आपकी सेना नगर में जाकर निवास न करेगी। इसके सिवा होलकर भी हमें न सतावेंगे। इससे अच्छा यही होगा कि आप नगर के बाहर रहिए। हम रसद आदि का इन्तजाम कर देंगे और होलकर के आक्रमण से आपकी रक्षा भी करेंगे। उन्होंने किया भी ऐसा ही। इस कारण जालिमसिंह से होलकर बहुत असन्तुष्ट हुए और लाख रुपये जुर्माने के मांगे। किन्तु जालिमसिंह ने तीन लाख रुपये दे कर अपना पिण्ड छुड़ाया।

सन् १८१७ ईसवी में पिंडारियों के साथ अंगरेजों का युद्ध हुआ। उस समय जालिमसिंह ने अंगरेजों की मदद की। इन्हीं की सहायता से मैलकम पिंडारियों को दमन कर सकें। इसके पुरस्कार के लिये अंगरेजी गवर्नमेंट ने जालिमसिंह को चार परगने

हमेशा के लिए जागोर दी। ये परगने होलकर-राज्य की ओर से जालिमसिंह के ठेके में थे। होलकर का अधिकार उनसे उठा दिया गया और वे जालिमसिंह के अधिकार में कर दिये गये। उसी साल, दिसम्बर में, कोटा-राज्य और अंगरेजों के दरमियान सन्धि हुई। १८१८ ईसवी के मार्च महीने में जालिमसिंह ने सरकार से इक़रार करा लिया कि कोटे के मन्त्री का पद सदैव उनके ही घराने में रहे।

सन् १८१९ ईसवी के नवम्बर महीने में महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु हुई। उनके तीन पुत्र थे—किशोरसिंह, विष्णुसिंह और पृथिवीसिंह। किशोरसिंह और विष्णुसिंह तो शान्त स्वभाव के थे और अपना अधिक समय ईश्वराराधन में ही लगाते थे; किन्तु पृथिवीसिंह युद्धप्रिय थे और जालिमसिंह को अलग करना चाहते थे। जालिमसिंह के दो पुत्र थे—एक औरस, जिसका नाम माधवसिंह था; दूसरा अनौरस, जिसका नाम गोवर्द्धनदास था। महाराव तथा उनके भाई लोग माधवसिंह से अप्रसन्न रहते थे; पर गोवर्द्धनदास पर उनकी बड़ी कृपा थी।

इसी गोवर्द्धनदास ने पृथिवीसिंह को जालिमसिंह के विरुद्ध उभारा। पृथिवीसिंह और गोवर्द्धनदास के बहकाने से महाराव किशोरसिंह ने जालिमसिंह से खुलमखुला शत्रुता प्रकट करने की ठानी। उन्होंने क़िले में बैठ कर युद्ध छेड़ दिया। इस पर पोलिटिकल एजेंट, कर्नल टाड, और जालिमसिंह ने आपस में विचार करके क़िले में रसद जाना बन्द कर दिया। तब लाचार होकर महाराव जी पाँच सौ सवारों के साथ क़िले से निकल भागे और रङ्गवाड़ी में जाकर ठहरे। वहाँ पोलिटिकल एजेंट ने महाराव को बहुत समझा बुझा कर जालिमसिंह से मेल करा दिया। पृथिवीसिंह महाराव के पास से अलग कर दिये गये और गोवर्द्धनदास दिल्ली में कैद रखे गये।

१८२० ईसवी के अगस्त महीने की सत्रहवीं तारीख को महाराव किशोरसिंह के राज्याभिषेक का उत्सव हुआ। उस समय जालिमसिंह ने दो



बहुत ही अच्छे काम किये। एक तो उन्होंने महाराव माधवसिंह और एजेंट कर्नल टाड से यह लिखवा लिया कि पुराने विश्वासपात्र मुलाजिमों को हिसाब समझाने के लिए कोई तड़क न करे और यदि वे नौकरी से हटाये जाय तो जहाँ चाहें वहाँ रह सकें। दूसरा यह कि कोटे के राज्य से बेगार का दण्ड उठा दिया जाय। इस प्रस्ताव को स्वीकार कराकर उन्होंने कोटा राज्य के प्रत्येक गाँव में पत्थर के खम्भे पर यह खुदवाकर गड़वा दिया कि आज से बेगार का दण्ड उठा दिया गया।

१८२१ ईसवी में गोवर्द्धन के बहकाने पर महाराव किशोरसिंह ने फिर भी जालिमसिंह से युद्ध करने की तैयारी की। इस बार पोलिटिकल एजेंट के हजार समझाने पर भी उन्होंने न माना। कोटे के सब सरदार महाराव के पक्ष में हो गये। तब एजेंट साहब ने जालिमसिंह की सहायता के लिए नीमच से रिसाले मँगवाये। पहली अक्टूबर को सवेरे ही युद्ध आरम्भ हुआ। अन्त में महाराव हार खा कर नाथद्वारे चले गये। महाराव के भाई पृथिवीसिंह इस युद्ध में काम आये।

संवत् १८८० में एजेंट साहब के समझाने पर महाराव किशोरसिंहजी फिर कोटे आये। जालिमसिंह ने उनके खर्च आदि का प्रबन्ध कर दिया। संवत् १८८४ में महाराव किशोरसिंहजी का स्वर्गवास हुआ। उनके पुत्र रामसिंह जी गद्दी पर बैठे। इसके थोड़े ही दिनों बाद जालिमसिंह ने भी, पचासी वर्ष की अवस्था में, शरीर-त्याग किया। उनके बाद माधवसिंह राजमन्त्री हुए। किन्तु उनसे भी महाराव सदैव अप्रसन्न रहते थे। इससे अँगरेजी गवर्नमेंट की सलाह से रामसिंह ने माधवसिंह को बारह लाख की आमदनी के सत्रह परगने दे कर महाराज राना की उपाधि दी और भालावाड़ का पृथक् राज्य स्थापित कर दिया।

इस राज्य पर अभी उस साल जो विपत्ति आई थी उसका स्मरण पाठकों को अब तक बना होगा।

उसकी बदौलत इसका बहुत सा अंश कट कर कोटे में मिल गया। मैं इस पर कुछ नहीं चाहता—और लोग बहुत कुछ कह चुके हैं।

## बाल-विनोद ।

### सुकुमारी ।

( यथा बीजं तथाङ्कुरः )

गोपुर नामक एक ग्राम में, अपने योग्य मनोज्ञ धाम में। एक कुलीन विप्र रहते थे, उन्हें 'सुदर्शन' सब कहते थे। वे अत्यन्त सदाचारी थे, सुजनाचित सद्गुणधारी थे। थे वे यदपि बड़े विद्वान, किन्तु न था उनको अभिमान। रहन सहन उनकी थी ऐसी, होनी श्रेष्ठ चाहिए। किसी बात से वे न दुखी थे, सभी भाँति सन्तुष्ट सुखी थे। 'शान्ति' नाम की शोभा सानी, थी उनकी गृहिणी मनमोहक वह सरला, गुणवती, सती, थी, मिष्टभाषिणी, बुद्धिमती थी। अल्पवयस्का एक बालिका, मानों सुन्दर रूप-मालिका। थी उनकी पुत्री अति प्यारी, 'सुकुमारी' नामक सुकुमारी छोटे से ही उसको दम्पति, शिक्षा देने लगे यथामति। जो कुछ उसे सिखाया जाता, फिर न भूलते पाया जाता। पाक-शास्त्र-युत सूचीकर्म, लिखना-पढ़ना, नारी-धर्म। अल्प वयस ही में सुकुमारी, सीख गई ये बातें सारी। पौराणिक इतिहास पढ़ा कर, सदाचार का प्रेम बढ़ा कर। उसे शान्ति जो शिक्षा देती, कण्ठ शीघ्र ही वह कर लेती। सावित्री की कथा पवित्र, हरिश्चन्द्र का पुण्य चरित्र। कितने ही ऐसे आख्यान, पढ़ती थी वह धर के ध्यान। सत्य बोलना, गर्व न करना, परमेश्वर से मन में डरना। विपत्ति-काल में धीरज धरना, सुवचन से सबका मन हरना। सदा पाप से करनी भीति, तजनी नहीं धर्म की रीति। सब जीवों पर रखनी प्रीति, सीखी उसने यह सब नीति। पाँच बरस कीही थी वह जब, देती थी निज गुण-परिचय। उदाहरण सुन इसका एक, सोचो उसका बुद्धि-विवेक।



भाग १७ ]  
 एक दिन जुड़ कर, खेल रहे थे इसके घर पर ।  
 जब भी उस दल में शामिल, क्रीड़ा करते थे सब हिलमिल ॥१३॥  
 जब ग्राह गुड़ियों के घर था, वर-दुलहिन का मेल सुघर था ।  
 नौकरों की धूम मची थी, शेष न कोई रीति बची थी ॥१४॥  
 किसी एक इसी अवसर पर, रङ्ग-विरङ्गी बड़ी मनोहर ।  
 कूनी हुई वहाँ पर आई, वह सुकुमारी के मन भाई ॥१५॥  
 जब विचित्र उसकी निहार के, मन में अति आनन्द धार के ।  
 कहे उसे दिखाया उसने, मानों दग-फल पाया उसने ॥१६॥  
 कल्पित वाणी अति भोली, सुकुमारी सबसे यों बोली—  
 देवो, देवो, ध्यान लगाकर, यह पङ्खी है कैसी सुन्दर ! १७॥  
 विनती इसे बनाया ऐसा, जाने वह होवेगा कैसा !  
 कल्पित रङ्ग इसका है, प्यारा अङ्ग अङ्ग इसका है ॥१८॥  
 जब कहती थी मुझसे माता, रचता अद्भुत सृष्टि विधाता ।  
 कल्पित ईश्वर की माया, उसे किसीने जान न पाया ॥१९॥  
 सुकुमारी का कहना सार्थ, समझा कोई शिशु न यथार्थ ।  
 कल्पित वे सब करके शोर, लगे कूदने चारों ओर ॥२०॥  
 जब बालिका ने फिर स्वर, ली वह तितली पकड़ दौड़ कर ।  
 कल्पित मारते साथ, पड़ वह गई अचानक हाथ ॥२१॥  
 तारा, तारा, यह क्या करती, क्यों इस बेचारी को धरती ।  
 कल्पित रोती यों सुकुमारी, तदपि झपट तारा ने मारी ॥२२॥  
 जब लड़की के कर में पड़ कर, गिरा एक पर उसका झड़ कर ।  
 कल्पित हुई उसे तब बोध, बोली सुकुमारी कर क्रोध ॥२३॥  
 तारा तू है बड़ी अज्ञान, है थोड़ा भी तुझे न ज्ञान ।  
 क्या इसने तेरा लिया, पकड़ इसे तूने जो लिया ॥२४॥  
 राम ! राम !! अब यह बेचारी, गई व्यर्थही तुझसे मारी ।  
 किस तरह जियेगी ऐसे ? पर के बिना उड़ेगी कैसे ? ॥२५॥  
 आप श्रेष्ठ तो है जैसा, इसका भी है निश्चय वैसा ।  
 कल्पित तो मुझे है तारा ! क्या तुझको निज प्राण न प्यारा ? ॥२६॥  
 यदि तेरा पद तोड़ा जावे, जिससे तू न कहीं चल पावे ।  
 कल्पित नहीं, तू व्याकुल होवे, पड़ी पड़ी पीड़ा से रोवे ।  
 कल्पित इसको जान, मान जगत् को आप समान ॥२७॥  
 तुझसे भारी चूक पड़ी है, होती मुझको व्यथा बड़ी है ।  
 कल्पित मांग तू अब ईश्वरसे, विनती कर उस करुणाकर से ॥२८॥

“सुन जो मैं कहती हूँ तुझसे, माँ ने कभी कहा था मुझसे—  
 करे चित्तसे जो अनुताप, तो मिट जाते हैं सब पाप” ॥३०॥  
 करके ऐसा वचन-विकास, सुकुमारी अति हुई उदास ।  
 जाकर शान्ति-निकट तत्काल, बोली तब कह कर सब हाल ॥३१॥  
 “तारा की करनी कर याद, होता है माँ ! मुझे विषाद ।  
 है वह दयाहीन निर्बोध, होता उस पर मुझको क्रोध” ॥३२॥  
 सुन कर सुकुमारी की बात, पुलक उठा जननी का गात ।  
 किन्तु छिपा कर मन का भाव, बोली वह करके अति चाव ॥३३॥  
 “निश्चय तारा की गति वाम, बुरा किया है उसने काम ।  
 पर है जब वह ऐसी क्रूर, क्यों न रहे तू उससे दूर ॥३४॥  
 “कभी बुरों का करै न साथ, उन्हें दूर से जोड़े हाथ ।  
 कई बार मैंने यह कहा, याद नहीं क्या तुझको रहा ?” ॥३५॥  
 बोली फिर माँ से सुकुमारी, थी उसकी वाणी अति प्यारी ।  
 “याद मुझे है तेरा कहना, “कभी बुरों के सङ्ग न रहना” ॥३६॥  
 “पर तू ने ही तो हे मात ! मुझे बताई थी यह बात—  
 जो कोई आवे निज गोह, करे मान उसका सस्नेह” ॥३७॥  
 उसी समय मन मोद बढ़ाये, सहसा वहाँ सुदर्शन आये ।  
 माँ-बेटी की बातें सारी, सुनी उन्होंने आकर सारी ॥३८॥  
 तब सुकुमारी को सानन्द, लेकर गोदी में स्वच्छन्द ।  
 उसके भोले मुख को चूम, बोले वत्सलता से भूम ॥३९॥  
 “धन्य धन्य तू बेटी मेरी, जीत हुई है निश्चय तेरी ।  
 तूने ऐसा वाद किया है, अपनी माँ को हरा दिया है !” ॥४०॥  
 मैथिलीशरण गुप्त ।

## शकुन्तला-रहस्य ।



वि के आशय को कवि ही समझ सकता है । कविता सुन कर या पढ़ कर वाह, वाह, बहुत लोग करने लगते हैं; पर कविता के गूढ़ार्थ को जानने वाले उन वाह वाह करने वालों में से थोड़े ही होते हैं । कोई केवल कवि की प्रसिद्धि ही पर मुग्ध हो जाते हैं । कोई कवि के एकाध अच्छे भाव को समझ



कर ही धन्य धन्य कहने लगते हैं। पर बात तो यह है कि कवि का यथार्थ आशय किसी विरले ही सहृदय की समझ में आता है। उदाहरण के लिए शकुन्तला ही को लीजिए। उसका नाम कौन नहीं जानता। हजारों आदमियों ने उसे पढ़ा है—किसी ने असल, किसी ने अनुवाद। परन्तु इनमें शायद ही किसी के ध्यान में यह आया हो कि दुर्वासा के शाप और हंसपदिका के गीत से कालिदास का क्या आशय था। बँगला के प्रसिद्ध कवि बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस आशय को जैसा समझा है शायद ही आज तक और किसी ने वैसा समझा हो। इस बात का पता रवि बाबू के शकुन्तला-रहस्य नामक लेख से लगता है। पटना-कालेज के अध्यापक, बाबू यदुनाथ सरकार, एम० ए० ने इस लेख का अनुवाद अँगरेजी में करके पूर्वोक्त कालेज के मगोज़िन में प्रकाशित किया है। इसी लेख का भावार्थ आज मैं आप लोगों को हिन्दी में सुनाता हूँ।

योरप के कवि गेटी ने शकुन्तला की समालोचना एक छोटे से पद्य में की है। उसने इस नाटक के एक एक अंश की अलग अलग समालोचना नहीं की। उसका यह पद्य दीपशिखा के समान बहुत ही छोटा है। पर उसका प्रकाश समूचे नाटक पर पड़ता है। उसकी सहायता से सब लोग शकुन्तला के गुप्त रहस्यों को भी समझ सकते हैं। गेटी का कहना है कि शकुन्तला वह चीज़ है जो यौवनावस्था में उत्पन्न हुई अनुराग रूपी कली को प्रौढ़ावस्था में उत्पन्न हुए भाव रूपी फल से मिला देती है। शकुन्तला वह चीज़ है जो पृथ्वी का स्वर्ग के साथ मेल कराती है।

इस प्रशंसामयी समालोचना को हम लोग गेटी की कवित्व-शक्ति का उच्छ्वास मात्र समझ सकते हैं; अथवा यह कह सकते हैं कि उसके उस समालोचना-पूर्ण पद्य से समालोचक का सिर्फ यह आशय था कि शकुन्तला एक बहुत ही उत्तम कविता का नमूना है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। उसके पद्य में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं। शकुन्तला की वह सच्ची समालोचना है। जो कुछ उसमें कहा गया है वह शकुन्तला

के विषय में बहुत ही ठीक कहा गया है। गेटी का मत है कि इस नाटक में विकास-सिद्धान्त का प्रत्यक्ष अपूर्व उदाहरण पाया जाता है। इसमें वह सिद्धान्त निहित है, जिसके द्वारा फूल में फल का, पृथ्वी स्वर्ग का, और जड़ में चेतन का विकास पाया जाता है।

इस नाटक में दो संयोगात्मक घटनाएँ हैं। नाटक के आदि में दुष्यन्त और शकुन्तला, पारस्परिक सौन्दर्य से मोहित होकर, आपस में मिलते हैं। यह मिलाप विषय-वासना-जन्म है। यह इस नाटक की पहली संयोगात्मक घटना है। दूसरी घटना नाटक के अन्त में है। वह उस समय की है जब विषय-वासना से रहित होकर सच्चे ईश्वरी प्रेम की प्रेरणा से मरीचि के आश्रम में दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों मिलते हैं। इस समूचे नाटक का उद्देश्य पहली संयोगात्मक घटना को दूसरी में परिणत कर देना है। अथवा यों कहिए कि प्रेम को सांसारिक सौन्दर्य के गढ़ों से निकाल कर धार्मिक सौन्दर्य के अश्वर स्वर्ग में स्थापित करना ही कालिदास का मुख्य उद्देश्य है।

इस उद्देश्य की पूर्ति, अर्थात् पृथ्वी और स्वर्ग का संयोग, कालिदास ने बहुत ही अच्छी तरह किया है। कालिदास की पृथ्वी ऐसी सुगमता से स्वर्ग में जा मिलती है कि पाठकों को दोनों सीमा का मेल मालूम ही नहीं पड़ता। पहले मैं कवि ने विषय-वासना-विवश शकुन्तला के पतन को छिपाने की चेष्टा नहीं की। युवावस्था का कारण नई नई बातें जो होती हैं उन सब का कवि चित्र सा खींच दिया है। यह शकुन्तला भोले का प्रमाण है। दुष्यन्त को देखने से उसके हृदय में प्रेम-सम्बन्धी जो जो भाव आविर्भूत हुए उनको सामना करने के लिए वह तैयार न थी। वह न जानती थी कि ऐसे अवसर पर अपने वृत्तियों को मैं कैसे रोक्ऊँ, और अपने हृदय में प्रेम के प्रपञ्च से निकलने वाले भावों को मैं कैसे छिपाऊँ। वह प्रेम के प्रपञ्च से बिलकुल ही अपरिचित थी। ऐसे मौकों के लिए जो शकुन्तला



भाग ७ ]  
 कार होते हैं वे उसके पास न थे। इससे उसने  
 अपने अपने हृदय के भावों पर ही अविश्वास किया  
 अपने प्रेमी दुष्यन्त के व्यवहारही पर। जैसे  
 उसके आश्रम की मृगियाँ भय से एकदम अपरिचित  
 कैसे ही यह आश्रमवासिनी कन्या भी इस तरह  
 आपत्तियों से बिलकुल अनजान थी।

दुष्यन्त ने शकुन्तला को सहज ही में जीत लिया  
 परन्तु उसके इस तरह सुगमता से अधःपतित  
 भी कविने उसके पातिव्रत और सतीत्व के  
 न कसर नहीं की। शकुन्तला के भोलेपन  
 यह दूसरा प्रमाण है।

जंगली कुसुम-कलिकाओं पर रजःकण पड़ते हैं।  
 दूर करने के लिए उन कलिकाओं को रक्षक की  
 देख्यता नहीं होती। उन कणों के रहने पर भी,  
 कर दोनों में टुकड़ों से ढँके हुए चन्द्रमा के समान, वे  
 एक सौम्य सुन्दर और स्वच्छ प्रभा को सब ओर फैलाती  
 के अति शकुन्तला पर भी कलङ्कुरूपी रजःकण गिरे;  
 स का पुण्य उनका उसे कुछ भी ज्ञान था। जंगली हिरनों  
 पहाड़ी भरनों की तरह वह, कलङ्कुरूपी कीचड़  
 होने पर भी, अपने अन्तर्गत सतीत्व की शुद्ध  
 विमल छटा दिखलाती रही।

प्रकृति का मार्ग प्रशस्त और असंदिग्ध है। कालि-  
 ने अपनी आश्रम-पालिता तरुणी नायिका को  
 रास्ते जाने से नहीं रोका। परन्तु उसे उसने  
 आदर्श पत्नी में परिणत किया है :—ऐसी पत्नी  
 सज्जता, सुशीलता, सहनशीलता और धार्मिक  
 से युक्त हो। शुरू में हम लोग उस नायिका  
 छोटी छोटी लताओं और फूलों की तरह अपने  
 न जानने वाली और प्राकृतिक भावों के  
 हुए उन्मत्त पाते हैं। परन्तु, अन्त में, हम उसे संयम-  
 धीरता और धार्मिक प्रवृत्ति से पूर्ण पाते  
 कवि ने अद्भुत कवि-कौशल से अपनी नायिका  
 शांति और कर्म, प्रकृति और नियम, समुद्र और  
 सङ्गम पर स्थापित किया है। उसका पिता  
 परन्तु उसकी माता एक अप्सरा थी।

उसका जन्म पिता के तपस्या-भङ्ग का फल था;  
 परन्तु उसका पालन-पोषण एक ऐसे आश्रम में हुआ  
 था जहाँ प्रकृति और तपस्या, सौन्दर्य और संयम,  
 एक साथ मिलकर अपूर्व शोभा धारण करते हैं।  
 वहाँ सामाजिक बन्धन तो कोई नहीं; पर धार्मिक  
 बन्धन अवश्य रहता है। शकुन्तला का गान्धर्व विवाह  
 इन्हीं भावों का सूचक है। उसमें प्राकृतिक स्वाधीनता  
 और विवाहरूपी सामाजिक बन्धन दोनों पाये जाते  
 हैं। सारे साहित्य-संसार में यह नाटक एक अमूल्य  
 और अनुपमेय रत्न है; क्योंकि इसमें स्वतन्त्रता  
 और परतन्त्रता के मेल का बड़ा ही अच्छा चित्र  
 देखने को मिलता है। इस नाटक में दिखलाये गये  
 सारे सुख और दुःख, और, सारे संयोग और वियोग,  
 इन्हीं दोनों शक्तियों के परिणाम हैं।

शकुन्तला का भोलापन स्वाभाविक है और  
 शेक्सपियर की मिरेंडा का अस्वाभाविक। दोनों का  
 भिन्न भिन्न दशा में पाला जाना ही इस विभिन्नता  
 का कारण है। शकुन्तला का भोलापन मिरेंडा की  
 तरह अज्ञानता से ढका न था। हम लोग पहले ही  
 अङ्क में देख चुके हैं कि शकुन्तला की दोनों सखियों  
 ने उसे यह बतला दिया था कि वह यौवन-विकास  
 की प्रथम अवस्था में थी। वह लज्जा की शिक्षा  
 भी पा चुकी थी। परन्तु ये सब केवल बाहरी आभू-  
 षण हैं। उसका भोलापन और शुद्धाचार एकदम  
 हृदय है। कवि ने उसे सांसारिक व्यवहार से बिलकुल  
 अनजान बताया है। परन्तु वह सांसारिक व्यवहार  
 से कुछ कुछ परिचित जरूर थी। क्योंकि, सांसारिक  
 समाज से उसका आश्रम एकदम बाहर न था।  
 वहाँ भी सामाजिक नियमों का पालन होता था।  
 पर शकुन्तला को उन नियमों का पूरा पूरा ज्ञान न  
 था। उसमें विश्वास-परायणता की मात्रा बहुत  
 अधिक थी। वही उसके अधःपतन का कारण हुई  
 और उसी ने उद्धार का रास्ता भी उसको बताया।  
 विश्वासघात के समय उसी विश्वास-परायणता से  
 उसमें क्षमा, दया, धैर्य आदि समयोचित गुणों का  
 विकास हुआ। मिरेंडा के भोलेपन की ऐसी कठिन



परीक्षा कभी नहीं हुई। वह इस तरह की कसौटी पर कभी नहीं कसी गई।

ऐसे अवसर पर हम लोगों के चित्त में राग-द्वेष की ज्वाला उत्पन्न होती है। इस नाटक में कालिदास ने उस राग-द्वेषरूपी अग्नि की सन्तापकारिणी ज्वाला को एक दुःखिनी के पश्चात्ताप के आँसुओं से ठंडा किया है। परन्तु, कवि ने इसका पूरा वर्णन नहीं किया—केवल उल्लेख मात्र करके उस पर परदा डाल दिया है। दुष्यन्त राजा था। उसके कई विवाह हो चुके थे। अतएव उसके द्वारा शकुन्तला का अस्वीकार किया जाना स्वाभाविक कहा जा सकता है। पर, इस नाटक में यह घटना दुर्वासा ऋषि के शाप का फल बनलाई गई है। ऐसा न करने से यह अस्वीकार-विषयक दृश्य इतना दया-विहीन, असत्य और हृदयविदारक होता कि इस नाटक की शान्ति और माधुर्य का क्षण भर में नाश हो जाता। किन्तु कवि ने एक छोटा सा छिद्र रख दिया है। उसके द्वारा हम लोगों को राजा के पापकर्म का कुछ कुछ पता लगता है। यह छिद्र पाँचवें अङ्क में है। राजसभा में शकुन्तला के पहुँचने पर—नहीं; कुछ नहीं पहले ही—कवि ने राजा के भोग-विलासभवन का परदा एक क्षण के लिए उठा दिया है। रानी हंसपदिका अपने संगीत-भवन में गा रही है—

अभिनवमदलोलुपे भर्वास्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।

कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥\*

विरहाग्नि से पीड़ित रनिवास की एक स्त्री का यह गीत है। इस अवसर पर हम लोगों के लिए यह गीत बहुत ही दुःखदायी है। शकुन्तला अभी अपने आश्रम से विदा हुई है। उसके पिता महर्षि कण्व ने

\* मधुप तुम मधु के चाखनहार ।

आम की रस भरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार ॥

रहसि रहसि नित रस लैबे को धावत है करि नेम ।

क्यों कल आई कमल बसेरे कित भूले प्यारी को प्रेम ॥

राजा लक्ष्मणसिंह

उसे आशीर्वाद देकर विदा किया है। वह शुद्ध और मधुर भाव से एक नये प्रेममय-भवन जा रही है। शकुन्तला और दुष्यन्त की प्रेम-पारस्परिक बातों का स्मरण होने से इस समय इस नये प्रेम-भवन का एक विलक्षण चित्र लोगों की आँखों के सामने उपस्थित है। अकस्मात् इस पर यह कलङ्क की कालिमा न मालूम क्यों टपक पड़ी।

विदूषक ने इस गीत का मतलब पूँछा। राजा हँसते हँसते उत्तर दिया कि हम लोग छोटी छोटी कन्याओं को थोड़ी देर के लिए प्रेम के जाल में फँस कर छोड़ देते हैं। अतएव रानी हंसपदिका का विषय में यह व्यङ्ग्य सर्वथा उचित ही है। एक अङ्क के आदि ही में राजा के प्रेम की अनिष्टता की सूचना देना निष्प्रयोजन नहीं। कवि ने विलक्षण कौशल से यह दिखाया है कि दुर्वासा के शाप जो फल था उसका बीज मनुष्य के हृदय में स्वयं से भी अङ्कुरित होता है।

चौथे अङ्क से पाँचवें अङ्क में जाते ही हम लोगों के सामने एक नये संसार का दृश्य उपस्थित होता है। आश्रम के आदर्श संसार से चलते हम लोग दया आदि मनोहर भावों से रहित, सार्वजनिक प्रपञ्च में फँसानेवाली टेढ़ी मेढ़ी रीतियों में भरी हुई राजसभा में पहुँचते हैं। वहाँ आश्रमवासियों का आशाजनक सुन्दर स्वप्न झूठा हुआ चाहता है। शकुन्तला के साथ दो युवा संन्यासी आते हैं। अकस्मात् वे अनुमान करते हैं कि एक नई दुनिया में आ गये। राजसभा को वे लोग धधकती आग से भरा हुआ घर सा समझते हैं। इन लोगों के छोटे सङ्केतों द्वारा कवि पहले ही से शकुन्तला का अस्वीकार किये जाने की सूचना देता है, जिससे उसका आघात असह्य न हो।

इसके बाद शकुन्तला अस्वीकार की जाती है। यह समाचार उसे वज्राघात के समान मालूम होता है। विश्वासपात्र मनुष्य के हाथ से ताड़ित होने की तरह वह घोर आश्चर्य, भय और दुःख में पड़



वह अतीत  
य-भवन के  
की प्रेम-पू  
इस सपने  
चित्र न  
। अकस्मा  
दूम कहा  
ठा। राजा  
गरी छे  
तल में स  
का का  
है। पन्च  
अनशिरा  
ने विलस  
के शाप  
र में स्व  
हम ले  
उपस्थित  
ने चल  
हत, सां  
रीतियों  
हैं आश्र  
झूठा दु  
न्यासी  
नई दुनि  
धकती  
इन छे  
कुत्तल  
है, जित  
जाती  
लाहुर  
डित ह  
में पड़

जाती है  
आलूम हो  
डित हरि  
में पड़

दुष्यन्त भी अन्त को असह्य विरह-दुःख से पीड़ित होता है। उसका पश्चात्ताप ही तपस्या और प्रायश्चित्त स्वरूप है। यदि राजा को इस प्रायश्चित्त के बिना शकुन्तला मिल जाती तो कुछ गौरव की बात न होती। नायक और नायिका का प्रेम-सम्बन्ध केवल यौवनेन्द्राद से उत्पन्न हुआ था। सच्चे प्रेम की डोरी से मजबूत किये बिना वह सम्बन्ध चिरस्थायी न हो सकता और तपस्या तथा सच्ची भक्ति के बिना सच्चे प्रेम का उत्पन्न होना असम्भव था। जो वस्तु जितनी सुगमता से मिलती है वह उतना ही जल्द खो भी जाती है। अतएव कवि ने नायक-नायिका के सम्बन्ध को अटल करने के लिए, विषय-भोग की कामना से उत्पन्न हुए प्रेम को तपस्या और प्रायश्चित्त की आग में तपा कर शुद्ध किया है। यदि वह जातेही दुष्यन्त से स्वीकृत हो जाती तो रनिवास के किसी कोने में पड़ी हुई विस्मृति और वियोग के दुःखपूर्ण दिन बिताती और हंसपदिका ऐसी रानियों की संख्या को बढ़ाती। और कुछ न होता।

अतएव दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला का अस्वीकृत होना उसके लिए हितकर हुआ। जब राजा के निर्दय व्यवहार का असर उसके चित्त पर पड़ा तब वह फिर भी शकुन्तला के लिए व्यग्र हुआ। घोर सन्ताप और विरहाग्नि की ज्वाला ने उसके वज्र-हृदय को गलाकर शकुन्तला के हृदय में मिला दिया। राजा को ऐसा तजरिबा पहले कभी नहीं हुआ था। इसके पहले उसने सच्चे प्रेम का कभी अनुभव नहीं किया था। राजाओं के लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि उनकी इच्छायें अनायास पूर्ण हो जाती हैं। इससे वे भक्ति-भाव के अमूल्य रहस्य को नहीं समझ सकते। सौभाग्यवश दुष्यन्त को विरह-सागर में डूबना



पड़ा। इससे वह सच्चे प्रेम का पात्र हुआ और कामुकों में गिने जाने से बचा।

इस तरह कालिदास ने पापी राजा के पाप कर्म के विरहाग्नि में जला दिया है। इस बात को कवि ने अपने पाठकों से भी छिपा नहीं रखा। नाटक के अन्त में जब यवनीका गिरती है तब हम लोगों को यह तत्काल भासित होने लगता है कि सारी अनुचित बातें न जाने कहाँ चली गईं। हम लोगों के हृदय में, उस समय, पूर्ण सन्तोष और शान्ति आ जाती है। कालिदास ने उस विषवृक्ष को, जो प्राकृतिक शक्ति से अकस्मात् उत्पन्न हो गया था, समूल नष्ट कर दिया है। उन्होंने दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय-सम्बन्ध को विरह और पश्चात्ताप की आग में अच्छी तरह शुद्ध करके उसे धार्मिक संयोग में परिणत कर दिया है। इसी से गेटी ने कहा है कि वसन्त-काल में उत्पन्न हुई कली को शकुन्तला शिशिर ऋतु में उत्पन्न हुए फल के साथ मिलती है। यहाँ पर पृथ्वी और स्वर्ग का संयोग हुआ है। सचमुच इस नाटक में एक ओर स्वर्ग से पतन और दूसरी ओर स्वर्गलाभ की बात है।

प्रथम अङ्क में दुष्यन्त और शकुन्तला के बीच कामुक और कामिनी के नाते जो प्रीति हुई है उसकी असारता, और अन्तिम अङ्क में भरत के माता-पिता के रूप में जो प्रीति हुई है उसकी सारता कवि ने अच्छी तरह दिखलाई है। पहला अङ्क चमक-दमक से भरा हुआ है। कहीं एक संन्यासी की कन्या खड़ी है; कहीं उसकी दो सखियाँ इधर उधर दौड़ रही हैं; कहीं वन की लतायें नवीन पल्लव और कलियों से युक्त अपूर्व शोभा धारण कर रही हैं; कहीं वृक्ष की ओट से राजा इन सब दृश्यों को देख रहा है। परन्तु अन्तिम अङ्क में मरीचि के आश्रम का दृश्य कुछ और ही है। यहाँ पर शकुन्तला भरत की माता और धर्म की प्रत्यक्ष-मूर्ति की तरह निवास करती है। यहाँ कोई सखी सहेली वृक्षसेचनादि नहीं करती और न कोई हरिण के छोटे छोटे बच्चों ही को खिलाती है। यहाँ केवल एक छोटा लड़का अपने

भोले भाले अनाखे ढँग से आश्रम को सुरोभि कर रहा है। वह उस आश्रम के वृक्ष, लता, फल, फूल आदि सबके सौन्दर्य और माधुर्य को अपने ही एकत्र सा कर लेता है। वहाँ की स्त्रियाँ भी उसी चञ्चल बालक के लाड़-प्यार में लगी रहती हैं। जब शकुन्तला रङ्गशाला में आती है तब शुद्धहृदय प्रायश्चित्तपरायणा, पीतवदना और मलिनवसन देख पड़ती है। बहुत दिनों के प्रायश्चित्त ने दुष्यन्त के पहले मिलाप के कलङ्क को एकदम धो दिया है। अब वह वात्सल्य-भाव से पूर्ण है। अब वह मातृ और गृहिणी में परिणत हो गई है। ऐसी दशा में कौन उसको अस्वीकार कर सकता था?

शकुन्तला और कुमारसम्भव दोनों में कवि ने साफ साफ यह दिखा दिया है कि धर्मावलम्बी होने से सौन्दर्य चिरस्थायी होता है; संयम-शील और हितवर्द्धक प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है; निग्रह न होने से वीर्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। महाकवि कालिदास केवल विषय-विलास को ही प्रेम का उद्देश न माना। उसने साफ कह दिया है कि प्रेम का यथार्थ उद्देश परोपकार है। उसके नाटक से यह शिक्षा मिलती है कि दाम्पत्य-प्रेम जब तक अपने ही सङ्कुचित रहता है; जब तक वह परोपकारी नहीं होता; जब तक समाज, पुत्र, कन्या आदि पर उसका असर नहीं पड़ता तब तक उसे निष्फल और क्षय भङ्गुर समझना चाहिए।

भारतवासियों के दो अनाखे सिद्धान्त हैं—एक हितकारी गृहस्थाश्रम का बन्धन, दूसरा आत्मा की स्वतन्त्रता। संसार की कई एक जातियों, धर्मों और देशों से भारतवर्ष का सम्बन्ध है। वह किसी के अलग नहीं कर सकता। परन्तु तपस्या के उपासन पर वह अकेले ही शोभित है। कालिदास ने इन दोनों सिद्धान्तों का घनिष्ठ सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया है। उसने मरीचि के आश्रम के छोटे छोटे लड़कों का सिंह के बच्चों के साथ खेलना लिखा है। संन्यास और गृहस्थाश्रम का मेल, कालिदास से अच्छा और शायद ही किसी ने दिखाया हो।



संन्यासियों की कुटी के आधार पर कालिदास ने गृहस्थ का घर बनाया है। उसने दाम्पत्य-प्रेम को विषय के पञ्जे में जाने से बचाया है और उसे संन्यासोचित ऊँचा आसन दिया है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध कठिन नियमों से जकड़ा हुआ है। कालिदास ने उस बन्धन के सम्बन्ध को सौन्दर्य के तत्त्व से भी सही सिद्ध किया है। कालिदास ने नम्रता, धर्म और माधुर्य मिले हुए सौन्दर्य को ही पूज्य माना है। केवल बाहरी सौन्दर्य को नहीं। उसका सौन्दर्य घनिष्ठता में एकाङ्गी किन्तु व्यापकता में सारे संसार को अपनी गोद में लिये हुए है। जैसे द्रुतप्रवाहा नदी समुद्र में मिल कर अखण्ड शान्ति-लाभ करती है, वैसे ही स्त्री-पुरुषों का प्रेम सौन्दर्य की गोद में पहुँच कर असीम शान्ति-सुख पाता है। ऐसा निग्रह-युक्त प्रेम निग्रह-हीन प्रेम से उत्तम ही नहीं होता, किन्तु आश्चर्य-कारक भी होता है।

इन्द्रजितसिंह ।

## “कालिदास” की समालोचना ।

समालोचना से बड़े लाभ हैं। जिस साहित्य में समालोचना नहीं वह विटप-विहीन महीरुह के समान है। उसे देख कर नेत्रानन्द नहीं होता। उसके पाठ और परिशीलन से हृदय शीतल नहीं होता। वह नीरस प्रलूम होता है। सत्कवि अपने काव्यों के द्वारा समाज का हित-साधन करता है। वह अपने काव्यों में आदर्श पुरुषों और आदर्श स्त्रियों का चरित वर्णन करके उसके द्वारा ऐसी ऐसी शिक्षायें देता है जो और किसी तरह नहीं दी जा सकती। काव्येतर शिक्षायें हृत्पटल पर उतनी अङ्कित नहीं होती जितनी कवियों की शिक्षायें होती हैं। नीति से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों में सच बोलने की भाँति जगह जगह पर गाई गई है। पर उसका

असर उतना नहीं होता जितना कि कवि-वर्णित हरिश्चन्द्र के चरित से होता है। राजा का सर्व-प्रधान कर्तव्य प्रजारञ्जन है। पुराणादि में हजारों जगह इसका उल्लेख है। पर ऐसे विधि-निषेधात्मक उल्लेखों की लोग ताटश परवा नहीं करते। केवल प्रजा को सन्तुष्ट रखने के लिए, निष्कलङ्क जान कर भी, जब सीता का रामचन्द्र के द्वारा परित्याग किया जाना हम रघुवंश में पढ़ते हैं तब वही बात हमारे हृदय में पत्थर की लकीर हो जाती है। कवि यह नहीं कहता कि यह काम करना अच्छा है और यह काम करना बुरा। वह इन बातों के चित्र दिखला कर उनके द्वारा समाज-हितकर शिक्षा देता है। पति के अनुचित आचरण को देख कर भी आदर्श सती स्त्रियाँ उसकी प्रतिकूलता नहीं करतीं। वे पति के सुख को अपना सुख समझती हैं। आन्तरिक वेदना सहने पर भी वे पति से कठोर और कोपप्रदर्शक व्यवहार नहीं करतीं। इस लोकोपकारी शिक्षा को कवि महारानी धारिणी, औशनरी और शकुन्तला के चरित-सम्बन्धी शब्दचित्र दिखला कर देता है; और ऐसी शिक्षा का असर अन्य रीति से दी गई शिक्षा की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक होता है। प्रत्यक्ष शिक्षा में रस नहीं। इस तरह की शिक्षा में अपूर्व रसास्वादन के साथ साथ चिरस्थायिनी शिक्षा भी प्राप्त होती है। जो समालोचक ऐसे रहस्यों का उद्घाटन करके कवि के आन्तरिक अभिप्राय को व्यक्त करता है वही सच्चा समालोचक है।

जिसके कार्य या ग्रन्थ की समालोचना करनी है उसके विषय में समालोचक के हृदय में अत्यन्त सहानुभूति का होना बहुत आवश्यक है। लेखक, कवि या ग्रन्थकार के हृदय में घुस कर समालोचक को उसके हर एक परदे का पता लगाना चाहिए अमुक उक्ति लिखते समय कवि के हृदय की क्या अवस्था थी, उसका आशय क्या था, किस भाव को प्रधानता देने के लिए उसने वह उक्ति कही थी—यह जब तक समालोचक को न मालूम होगा तब तक वह उस उक्ति की ठीक समालोचना कभी न कर



सकेगा। किसी वस्तु या विषय के सब अंशों पर अच्छी तरह विचार करने का नाम समालोचना है। वह तब तक सम्भव नहीं जब तक कवि और समालोचक के हृदयों में कुछ देर के लिए एकता न स्थापित हो जायगी। कवि की कविता किस समय की है; उस समय देश की क्या दशा थी; समाज की क्या दशा थी; तत्कालीन लोगों के आचार-विचार और व्यवहार कैसे थे—इन बातों को अच्छी तरह जाने बिना समालोचना करते समय समालोचित लेख के कर्त्ता पर अन्याय होने का बड़ा डर रहता है। जो सरसहृदय नहीं, जिसने काव्य-शास्त्र में अच्छी गति नहीं प्राप्त की, जिसने अलङ्कारशास्त्र का परिशीलन नहीं किया, जिसने अन्यान्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविता को विचार-पूर्वक नहीं पढ़ा वह यदि कालिदास के काव्यों की आलोचना करने बैठे तो उसकी समालोचना कभी आदरणीय न होगी। किसी ने किसी पत्र या पत्रिका में प्रकाशित होने के लिए कोई लेख भेजा। सम्पादक ने उसे अप्रकाशनीय समझ कर न छपा। बस, फिर क्या है, लगी उसकी समालोचना होने। किसी पत्र ने किसी अन्यपत्र के साथ बदला नहीं किया। लगी होने उस पर वाग्वाणों की वर्षा। फिर उस समालोचना में उसके घर-द्वार, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर, वस्त्राच्छादन तक की खबर ली जाने लगी। यह समालोचना नहीं, किन्तु समालोचक के पवित्र आसन को कलङ्कित और साहित्य-सरोवर को पङ्किल करना है।

कवि या ग्रन्थकार जिस मतलब से ग्रन्थ-रचना करता है उससे सर्वसाधारण को परिचित कराने वाले समालोचक की बड़ी ही ज़रूरत रहती है। ऐसे समालोचकों की समालोचना से साहित्य की विशेष उन्नति होती है और कवियों के गूढ़ आशय मामूली आदमियों की भी समझ में आ जाते हैं। कालिदास की शकुन्तला, प्रियंवदा और अनसूया के स्वभाव में क्या भेद है? उनके स्वभावचित्रण में कवि ने कौन सी खूबियाँ रक्खी हैं? उनसे क्या क्या शिक्षा

मिलती है? ये बातें सब लोगों के ध्यान में नहीं आ सकतीं। अतएव वे उनसे लाभ उठाने से वञ्चित रह जाते हैं। इसे थोड़ी हानि न समझिए। इससे कवि के उद्देश का अधिकांश ही व्यर्थ जाता है। ये समालोचक समाज को इस हानि से बचाने की चेष्टा करता है। इसीसे साहित्य में उसका काम इतना आदर की दृष्टि से देखा जाता है—इसीसे साहित्य की उन्नति के लिए उसकी इतनी आवश्यकता है।

अन्य भाषाओं के साहित्य-सेवियों ने अपने देश के कवियों के ग्रन्थों की नहीं, किन्तु विदेशी कवियों तक के काव्यों की समालोचनाएँ लिख कर अपने साहित्य का कल्याण-साधन किया है। परन्तु भारत के कविकुलचक्रचूड़ामणि कालिदास के ग्रन्थों की विस्तृत समालोचना का अपनी देशभाषा में अब तक अभाव था। यों तो कालिदास के ग्रन्थों की अच्छी अच्छी समालोचनाएँ बंगाली, मराठी और तैलङ्गी भाषाओं में निकल चुकी हैं। कविकुल-गुरु के काव्यों और नाटकों की समष्टि-रूप से भी दो एक समालोचनाएँ हुई हैं। पर वे विस्तृत नहीं। उनमें प्रत्येक बात पर विचार नहीं किया गया। थोड़े ही में मुख्य मुख्य बातें कह दी गई हैं। बड़े आनन्द का विषय है, इस अभाव को पूरक वङ्गवासी विद्वान् ने दूर कर दिया। श्रीयुत राजेन्द्र नाथ देव शर्मा, विद्याभूषण, कलकत्ते के संस्कृत कालेज में अध्यापक हैं। आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के परीक्षक और व्याख्याता (Lecturer) भी हैं। कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ भी आपने बनाये हैं। “कालिदास और भवभूति” नाम की भी एक उपयोगी पुस्तक की आपने रचना की है। आपका एक नया ग्रन्थ हाल में प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है—“कालिदास”। वह माननीय विचाररत्न डाकूर आशुतोष मुखोपाध्याय सरस्वती, सी० आई०, एम० ए०, डी० एल०, डी० एस सी० के समर्पित किया गया है। कलकत्ते की इम्पीरियल लाइब्रेरी के अध्यक्ष, अनेकभाषावित् परम विद्वान् श्रीयुत हरिनाथ दे, एम० ए० की लिखी हुई पुस्तक



भाग १२  
संख्या ७ ]  
नहीं आ  
ने विचि  
र। इससे  
है। थोड़ा  
की चेष्टा  
गाम इतने  
साहित्य  
ता है।  
अपने ही  
विदेशी  
लिख का  
। परन्तु  
के समग्र  
देशभाषा  
के का  
बंगला  
चुकी है।  
समग्र-र  
वे विस्तर  
हों कि  
गई है।  
को एक  
राजेन्द्र  
संस्कृत  
श्वविद्या  
er) भी  
नाये हैं।  
भी एक  
आपका  
सकाना  
चचारपी  
० पस  
सी० के  
प्रीति  
विद्वान  
पुस्तक

संख्या ७ ]  
में एक विचारपूर्ण भूमिका अंगरेजी में प्रका-  
शित की गई है। पुस्तक बंगला में है और कई  
लोहर चित्रों से अलंकृत है। छः सौ से अधिक  
छात्रों में यह समाप्त हुई है। इसमें कालिदास के  
खुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल,  
किमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र की विस्तार-  
पूर्ण समालोचना है। समालोचना बड़ी ही योग्यता  
के समालोचना से की गई है। समालोचक महोदय  
अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है जिनका  
अर्थ जनों के ध्यान में आना बिलकुल ही अस-  
भव था। कालिदास क्यों कविकुलगुरु कहे जाते  
उनकी कविता में कौन सी ऐसी बातें हैं जिनके  
द्वारा उनका इतना नाम है, उनकी कविता से  
कौन सी शिक्षायें मिलती हैं, उनके नाटकपात्रों  
का विशेषता है—यह सब इस समालोचना को  
पढ़ने से तत्काल मालूम हो जाता है और कालिदास  
को सहस्र मुख से प्रशंसा करने को जी चाहता  
है। इस समालोचना से यह भी ज्ञात हो जाता है  
कि समालोचक के लिए कितनी विद्वत्ता की अपेक्षा  
होगी और उससे साहित्य तथा सर्वसाधारण  
जो कितना लाभ पहुँच सकता है। हमारी प्रार्थना  
है कि जो लोग बंगला पढ़ सकते हैं वे इस पुस्तक  
को अवश्य पढ़ें। जो नहीं पढ़ सकते वे, यदि हो  
सके तो, उसे सीखने का प्रयत्न करें। अकेली इस  
पुस्तक के पढ़ने के लिए ही यदि वे बंगला  
नहीं तो भी उन्हें अपना परिश्रम सफल सम्भना  
होगा। क्योंकि, थोड़े ही परिश्रम से वे कालिदास  
की कविता का मर्म समझ सकेंगे और यह जान  
सकेंगे कि कवीश्वरों के चक्रवर्ती कालिदास की  
कविता की क्यों इतनी प्रशंसा है। उसमें क्या गुण  
हैं जिनसे कितना रस है और उससे कितनी और  
कितनी तरह की शिक्षायें मिल सकती हैं। यह थोड़ा  
अपेक्षा वह बहुत अधिक है।  
कालिदास के ग्रन्थों में रघुवंश सबसे श्रेष्ठ है।  
उसकी सर्वोत्तमता का कारण यह है कि उसमें

महाकवि ने सृष्टिनैपुण्य का सबसे अच्छा चित्र खींचा  
है। और, सृष्टि-चातुर्य का सूक्ष्म और सच्चा ज्ञान  
होना ही कवि का सबसे बड़ा गुण है। इस गुण के  
विषय में विद्याभूषण महोदय ने बहुत कुछ लिखा  
है। उसका मतलब नीचे दिया जाता है।  
कवि का प्रधान गुण सृष्टिनैपुण्य है। सुन्दर  
सुन्दर चरित्रों की सृष्टि और उस चरित्रावली का  
देश, काल और अवस्था के अनुसार काव्य में समा-  
वेश करना ही कवि का सर्वश्रेष्ठ कौशल है। यह  
कौशल जिसमें नहीं उसमें अन्य गुण चाहे जितने  
हों उसकी रचना उत्कृष्ट नहीं हो सकती। सृष्टि-  
वर्णन स्वभावानुरूप होने से मनोरम होता है। पर  
स्वभावप्रतिकूल होने से वही विरक्तिजनक हो  
जाता है। इसी से आरव्योपन्यास की अधिकांश घट-  
नायें सहृदय-सम्मत नहीं। स्वभाव के अनुसार जो  
व्यापार होते हैं, कवि की सृष्टि में तदनुयायी व्यापारों  
का होना ही उचित है। यदि कवि अपने सृष्टि-  
कौशल में सांसारिक व्यापार-समूह को स्वाभाविक  
व्यापार की अपेक्षा अधिकतर मनोहर और वैचित्र्य-  
विभूषित बना सके तो उसका काव्य और भी सुन्दर  
होगा। मनुष्य के प्रधान गुणों में आत्म-त्याग भी एक  
गुण है। वह एक प्रकार की श्रेष्ठ सम्पत्ति है। संसार  
में इस आत्मत्याग के अनेक उदाहरण देखे जाते हैं।  
यदि कवि अपने काव्य में इस आत्मत्याग की उत्तम  
मूर्ति बना सके तो उसका काव्य निःसन्देह बहुत ही  
हृदयहारी होगा। किन्तु आत्मत्याग के जैसे दृष्टान्त  
संसार में दृष्टिगोचर होते हैं उनकी अपेक्षा यदि कवि  
ऐसे दृष्टान्तों को अधिकतर मनोहर बना सके तो उस  
की सृष्टि स्वाभाविक सृष्टि की अपेक्षा समधिक  
चमत्कारिणी और आह्लाददायिनी होगी। इस चम-  
त्कारिणी कवि-सृष्टि में यदि कुछ भी स्वभाव-विरुद्ध,  
अर्थात् अस्वाभाविक, न होगा तभी वह सृष्टि  
सर्वोत्तम में निरवद्य होगी। स्वभाव में जो बात सोलह  
आने पाई जाती है उसे कवि अठारह आने कर  
सकता है। परन्तु स्वभाव में जिस वस्तु का अस्तित्व  
एक आना भी नहीं उसकी रचना करने से यही



सूचित होगा कि कवि में नैपुण्य का सर्वथा अभाव है। स्वभावानुरूप चरित्र-सृष्टि करने से भी कवि की तादृश प्रशंसा नहीं। क्योंकि, ऐसी सृष्टि से कवि-सृष्टि का उत्कर्ष नहीं सूचित होता। उससे समाज का उपकार नहीं हो सकता। जो व्यवहार हम लोग प्रति दिन संसार में अपनी आँखों से देखते हैं उन्हीं का प्रतिबिम्ब यदि कवि-सृष्टि में देखने को मिला—उन्हीं का यदि पुनर्दर्शन प्राप्त हुआ—तो उसमें विशेषता ही क्या हुई? जिस काव्य से संसार का उपकार-साधन न हुआ वह उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता। समुद्र के किनारे बैठ कर अस्तगमनेन्मुख सूर्य की शोभा को देखना बहुत ही आनन्ददायक दृश्य है। पर्वत के शिखर से अधोगामिनी नदी या अधोदेशवर्तिनी हरितवसना पृथ्वी का दर्शन सचमुच बड़ा ही आह्लादकारक व्यापार है। अपनी प्रतिभा के बल पर कवि इन दोनों प्रकार के दृश्यों की तद्वत् मूर्तियाँ निर्मित कर सकता है। परन्तु उनके अवलोकन से क्षणस्थायी आनन्द के सिवा दर्शकों और पाठकों का और कोई हितसाधन नहीं हो सकता। उससे कोई शिक्षा नहीं मिल सकती। जिस सृष्टि से आमोद-प्रमोद के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं वह काव्य उत्कृष्ट नहीं। संसार में ऐसे संख्यातीत पदार्थ हैं जिनसे क्षण भर के लिए चित्त का विनोदन हो सकता है—हृदय को आह्लाद प्राप्त हो सकता है। फिर काव्य की क्या आवश्यकता? अतएव स्वीकार करना पड़ेगा कि पाठकों के आमोद-विधान के सिवा काव्य का और भी कुछ उद्देश है। परन्तु वह उद्देश काव्य-शरीर के अन्तर्गत इतना छिपा हुआ होता है कि पाठकों को उसकी उपलब्धि सहसा नहीं होती। देवशक्ति जिस प्रकार अज्ञात-भावपूर्वक अपना काम करती है उसी तरह कवि का वह गूढ़ उद्देश भी पाठकों के हृदय पर असर करता है; पर उनको उसके अस्तित्व की कुछ भी खबर नहीं होती। इस प्रकार का गूढ़ उद्देश पाठकों के अन्तःकरण में चिरस्थायी संस्कार उत्पन्न किये बिना नहीं रहता। कवि का वह प्रच्छन्न उद्देश है—पाठकों के हृदय का

उत्कर्ष-साधन और शुद्धि-विधान, तथा जगत् की शिक्षा प्रदान। कवि जन पहले तो सौन्दर्य पराकाष्ठा दिखलाते हैं। फिर, उसी प्रयत्न-सौन्दर्य के द्वारा परोक्षभाव से पाठकों के हृदय को सौन्दर्य-पूर्ण कर देते हैं। सुन्दर फूल को देखने वालों को अवश्य तृप्ति होती है; पर यदि ऐसे फूल सौरभ भी हो तो उसके साथही मन भी तृप्त जाता है। नेत्रों की तृप्ति क्षणस्थायी होती है; पर मन की तृप्ति चिरस्थायी होती है। इसी से कवि-जन शिक्षोपयोगी आदर्शों को सौन्दर्य रूप हृदय पर आवेष्टन से आवृत करके संसार में शिक्षा का प्रसार करते हैं। धीरता और सत्यप्रियता सर्वश्रेष्ठ हैं। अतएव सबको धीर और सत्यप्रिय होना चाहिए। भीष्म और युधिष्ठिर की सृष्टि करके महाभारत में कवि ने बड़ी ही खूबी से इन गुणों की शिक्षा दी है। सैकड़ों वाग्मी हजारों वर्ष तक वक्तृता का भी जो काम इतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते, काम राज-शासन द्वारा भी सुन्दरतापूर्वक नहीं कर सकता, वही कवि अपने सृष्टि-कौशल द्वारा सब में कर सकता है। आत्म-त्याग अच्छी चीज स्वार्थपरता बुरी। इस तत्त्व को धर्मोपदेशों से तक प्रयत्न करके शायद लोगों के हृदय पर उतारना सुन्दरता से खचित न कर सकेंगे जितनी सुन्दरता से कि कवि ने राम के द्वारा सीता का निर्वासन कराकर खचित किया है। इसी से यह कहना पड़ता है कि कवि संसार के सर्व-प्रधान शिक्षक और सर्व-प्रधान उपकारक हैं।

काव्य का सृष्टि-सौन्दर्य किसी निर्दिष्ट विधान ही सम्बन्ध नहीं रखता। केवल रूप, गुण या कवि की अवस्था-विशेष के वर्णन में ही सौन्दर्य परिलक्षित होता है। देश, काल, पात्र, रूप, गुण, अवस्था, आदि की समष्टि के द्वारा यदि किसी सुन्दर वस्तु की सृष्टि की जाय तो उस सृष्टि वस्तु के सौन्दर्य को ही यथार्थ सौन्दर्य कह सकते हैं। वही सृष्टि का परमोत्कर्ष है। अन्यथा, यदि कवि की उपेक्षा करके नायिका के चिकुर-वर्णन से



का अधिकांश भर दिया जाय तो उसमें सौन्दर्य कैसे सकेगा ? उससे तो उलटा विरक्ति उत्पन्न

सृष्टि-नैपुण्यही कवि का प्रथम और प्रधान गुण उस सृष्टि-नैपुण्य के किसी अंश में त्रुटि आजाने काय की जैसे अङ्गहानि होती है, वैसे ही, लोक-साधन जिस उच्च उद्देश-साधन के इरादे से कवि रच-प्रणयन करता है उसकी सिद्धि में भी बाधा आता है। जो कवि केवल दस पाँच श्लोकों रचना करके किसी पदार्थ का केवल बाहरी रूप दिखता है उसका आसन अधिकांश निरा-रहता है। जो लोग बाहरी सौन्दर्य के बीच में ही पदार्थ को स्थापित करके, इसी बाहरी रूप के प्रकाश द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं का काम भी उतना दुष्कर नहीं। किन्तु जो बाहरी सौन्दर्य को दूर रख कर, वर्णनीय वस्तु के भीतरी भाग पर दृष्टि रखता है—देशभूषा विषय में उदासीन रह कर भूषित व्यक्ति के हृदय की तरफ दृष्टि-क्षेप करता है, अर्थात् जो एक सृष्टि विराट् मूर्ति की सृष्टि करके तद्द्वारा समाज-शिक्षा देना चाहता है—उसका आसन बड़ा समया-पूर्ण समझा जाता है। उसे बात बात पर पद पद पर, अक्षर अक्षर पर, समाज की शिक्षा की भावना करनी पड़ती है—लोकहितैषण प्रोद्योत होना पड़ता है। जो बात समाज के अमङ्गलकर है, जिसकी आलोचना से समाज अरुण हित-साधन नहीं होता, उसका वह त्याग करता है। इसी से हमारे आर्य-साहित्य में मैकवेथ और ओथेलो का चित्र नहीं पाया। जिस वस्तु का सर्वांश उत्तम है—जो सत् है—उसी की सृष्टि होनी चाहिए।

महाकवि कालिदास के श्रेष्ठ काव्य, अथवा कल-भाषा के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य, रघुवंश, के अक्षर में यह सत्य विद्यमान है। लोक-साधन से रघुवंश आद्यन्त परिपूर्ण है। लोक-साधन में भक्ति, गुरु के वाक्य में अटल

विश्वास, मातृरूपिणी पयस्विनी धेनु की परिचर्या, भिक्षार्थी अतिथि की अभिलाषपूर्ति के लिए धरणी-पति राजा की व्याकुलता, लेकरज्जन और राज-सिंहासन निष्कलङ्क रखने के लिए नृपति के द्वारा अपनी प्राणपमा पत्नी का निर्वासनरूपी आत्मत्याग आदि अनेक लोकहितकर और समाजशिक्षोपयोगी विषयों से रघुवंश अलङ्कृत है।

विद्याभूषण महाशय की इस समालोचना, इस विवेचना, इस मर्मोद्घाटन से पाठकों को मालूम हो जायगा कि क्यों रघुवंश सर्वोत्तम काव्य माना जाता है और कालिदास को क्यों कविकुलगुरु की पदवी मिली है। ऐसे समालोचक का आसन कितना ऊँचा है और साहित्य की उन्नति के लिए उसकी कितनी आवश्यकता है, यह बात भी इससे अच्छी तरह विदित हो जायगी। जो कौमुदी के कीड़े और महाभाष्य के मतझुंज कालिदास का एक भी शब्द-स्खलन नहीं सहन कर सकते, अतएव उसे सही सिद्ध करने के लिए पाणिनि, पतञ्जलि और कात्यायन की भी उक्तियों पर हरताल लगाने की चेष्टा करते हैं उन्हें विद्याभूषणजी का आसन कभी प्राप्त नहीं हो सकता। कालिदास की कीर्ति की रक्षा उनके दो चार शब्द-स्खलनों को शुद्ध सिद्ध करने की चेष्टा से नहीं हो सकती। उसकी रक्षा ऐसी समालोचनाओं से हो सकती है जैसी कि विद्याभूषणजी ने प्रकाशित की है।

अभिज्ञान शाकुन्तल के विषय में श्रीयुत राजेन्द्र-नाथजी ने बहुत कुछ लिखा है। उसकी समालोचना से उन्होंने अपनी पुस्तक के सौ पृष्ठ से भी अधिक खर्च किये हैं। उनकी सम्मति का सारांश यह है :—

अभिज्ञान शाकुन्तल कालिदास की विश्वतोमुखी प्रतिभा, ब्रह्माण्ड-व्यापिनी कल्पना और सर्वाति-शायिनी रचना की सर्वोत्तम कसौटी है। विक्रमो-र्वशीय और मालविकाग्निमित्र में कवि ने जिन दिव्य दृश्यों और दिव्य मूर्तियों का अङ्कण किया है वे सब तो शाकुन्तल में हैं ही; परन्तु उसमें ऐसी और भी



अनेक मूर्तियाँ और अनेक चीजें हैं जिनका मनही मन केवल अनुभव किया जा सकता है, दूसरे को उनका अनुभव नहीं कराया जा सकता। वे केवल आत्मसंवेद्य हैं, भाषा की सहायता से वे दूसरे पर नहीं प्रकट की जा सकतीं। इसी से अभिज्ञान शाकुन्तल कवि-सृष्टि का चरम उत्कर्ष है। सहृदय जनों ने यथार्थ ही कहा है—“कालिदासस्य सर्वस्व-मभिज्ञान-शाकुन्तलम्”। अभिज्ञान शाकुन्तल कालिदास का सर्वस्व है; उनकी अपार्थिव कल्पनारूपिणी उद्यान-वाटिका की अमृतमयी पारिजात-लता है। धर्म और प्रेम, इन दोनों के सम्मेलन से जगत् में जिस मधुर आनन्द की उत्पत्ति होती है, अभिज्ञान शाकुन्तल रूपी स्वच्छ दर्पण में उसी का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। शकुन्तला महाकवि की चरम सृष्टि है—वाणी के वर-पुत्र का अक्षय आलेख्य है।

शकुन्तला के प्रत्येक पात्र, प्रत्येक घटना और प्रत्येक अंश की विशेषता और तद्विषयक महाकवि के अलौकिक चातुर्य से अभिज्ञता प्राप्त करना ही तो विद्याभूषणजी की लिखी हुई समालोचना साद्यन्त पढ़ना चाहिए।

विद्याभूषण महाशय को कालिदास का अन्ध-भक्त न समझिए। उन्होंने कालिदास की रचनाओं में दोषोद्भावनाये भी की हैं। कुमार-सम्भव के विषय में आपकी राय है :—

“कुमारसम्भव रघुवंश का पूर्ववर्ती है। पहली रचना का बिलकुलही निर्दोष होना सम्भव नहीं। इसी से कुमार-सम्भव में जो जो स्थल किञ्चित् असंलग्न हैं तत्सदृश स्थल-समूह का कालिदास ने रघुवंश में संशोधन कर दिया है। हर-पार्वती के विवाह का अज-इन्दुमती के विवाह से और रति-विलाप का अजविलाप से मिलान करने पर यह सिद्धान्त सबको स्वीकार करना पड़ेगा”।

मतलब यह कि शिवपार्वती के विवाह और रति-विलाप में कालिदास को खुदही अनौचित्य मालूम हुआ। इससे उन्होंने अज-इन्दुमती के विवाह और अज-विलाप को और तरह से लिखकर पूर्व-दोष को रघुवंश में नहीं आने दिया।

मेघदूत के अन्यान्य अंशों की प्रशंसा करने बाद विद्याभूषणजी लिखते हैं :—

“मेघदूत में कोई ऐसा आदर्श-चरित्र नहीं जिससे लोक-हितकर या समाज-हितकर शिक्षा मिल सके। राम, और दुष्यन्त-शकुन्तला के आदर्श-चरित्र से समाज का कुछ उपकार-साधन हो सकता है। परन्तु मेघदूत के यत्न-पत्नी के चरित्र से उस तरह का कोई उच्च उद्देश्य नहीं हो सकता”।

ऋतुसंहार में सृष्टि-नैपुण्य नहीं। अतएव विद्याभूषणजी प्रधान काव्य नहीं मानते। विषयक चातुर्यही को आप काव्य का जीवन मानते हैं। अतएव और सब बातों के होने पर भी काव्य में यह गुण नहीं उसे प्रायः निर्जीवही समझना चाहिए।

राजेन्द्रनाथ महोदय अपनी पुस्तक में एक जगह लिखते हैं :—

“रघुवंश के सातवें सर्ग के अन्त में, इन्दुमती को पाने के कारण निराश हुए अपरापर राजाओं के साथ कवि कालिदास ने इन्दुमती-बल्लभ अज का युद्ध-वर्णन किया है। उसे पढ़ने से कवि के हृदय की कोमलता का कुछ पता लगता है। युद्ध-वर्णन में अपनी विश्वविषय कल्पना की स्वाभाविक लीला दिखाने में कालिदास नहीं हुए। इस विषय में कविगुरु वाल्मीकि ही सिद्धांत थे। उन्होंने ऐसे प्रसङ्गों में जैसा अद्भुत रचना-कौशल दिखाया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अर्थात् इनकी सम्मति में कालिदास को युद्ध का अच्छा वर्णन करना न आता था। मालविकाग्निमित्र के विषय में भी इन्होंने एक जगह प्रतिकूल आलोचना दी है। लिखा है कि इसमें कालिदास अपनी स्वाभाविक विक और उन्मादिनी वर्णना करने में असमर्थ हुए—अथवा उन्हें इस तरह का वर्णन करने के लिए अवसरही नहीं मिला।

विक्रमोर्वशी के विषय में आप लिखते हैं :—  
“विक्रमोर्वशीय आद्योपान्त शकुन्तला की तरह सुन्दर नहीं। उसमें आदर्श रमणीचरित्र-प्रदर्शन तो कालिदास



[ भाग ७ ]

न कर सकें; पर आदर्श पुरुष की सृष्टि नहीं कर सके। शायद  
वैसा करना अभीष्ट ही न था” ।

अर्थात् राजा पुरुष का जो चित्र कालिदास ने  
विक्रमोर्वशीय में खींचा है वह निष्कलङ्क नहीं ।

मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय के विषय  
में, अन्त में, समालोचक महाशय एक और जगह  
प्रकार लिखते हैं :—

“विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र में समाज के  
विपुल हितकर आदर्श चरित्र नहीं । महाकवि ने वैसा चरित्र  
निर्माण करने का प्रयास ही नहीं किया । इन काव्यों में  
कवि ने प्रणय और प्रणयोन्माद-वर्णना को ही प्रतिपाद्य  
किया है । + + + + धर्म-भाव-शून्य प्रणय के द्वारा  
अत्यन्त रूपी पाश-बन्धन के द्वारा प्रणयी का भी अमङ्गल-  
साधन होता है, समाज का भी अमङ्गल-साधन होता है  
और जगत् का भी अमङ्गल-साधन होता है । ऐसे प्रणय में  
जिससे जितना अमङ्गल होता है धर्मभावमय प्रणय के द्वारा  
उतना ही, किम्बहुना उससे भी अधिक, मङ्गल होता है । कवि  
इस तत्त्व का इन दोनों काव्यों में उद्घाटन नहीं किया” ।

वस, अब और अधिक लिखने के लिए स्थान  
नहीं । जिन्हें कालिदास के काव्यों का तत्त्व विशेष-  
रूप से जानना हो उन्हें श्रीयुत राजेन्द्रनाथ विद्या-  
रूप की समग्र पुस्तक पढ़नी चाहिए ।

## माला ❀ ।

रमणी उन रूपवती ललनाओं में से  
थी जो कभी कभी प्रारब्ध के दोष  
से निर्धन माता-पिता के घर जन्म  
लेती हैं । इस कारण न तो अमीरों  
का सा इसका रहन-सहन हुआ, न  
नाच-रङ्ग में जाने का अवसर ही इसे

फ्रांस के एक विख्यात कहानी-लेखक की नेक-  
(Necklace) नामक कहानी का भावानुवाद ।

अनुवादक

मिला । कोई अच्छा प्रेमपात्र मित्र भी इसे न मिला  
और न ऐसा मित्र पाने की इच्छा ही इसे हुई । जब  
माता-पिता ने शिक्षा-विभाग के एक मामूली मुला-  
जिम से विवाह करने का इससे अनुरोध किया  
तब बेचारी ने चुपचाप उनकी आज्ञा मान ली ।

धन की कमी के कारण यह किसी तरह अपने  
दिन काटने लगी, परन्तु इसके चित्त को शान्ति न  
थी । वह यह अनुमान करती थी कि नीच सम्भ्रम कर  
धनवानों ने हमको जाति से निकाल दिया है । स्त्रियों  
को अपने रूप का बड़ा अभिमान होता है । यदि  
ईश्वर ने उनको सौन्दर्य दिया तो वे अपने को उच्च  
घराने की नारियों के समान सम्भ्रमती हैं ।

इसी कारण इस रमणी को बड़ा कष्ट था । वह  
सोचती थी कि मैं सब तरह के सुख भोगने के योग्य  
हूँ । फिर क्यों ईश्वर ने मुझे एक दरिद्र घर में डाला ?  
अपने घर की टूटी फूटी कुर्सियों, पुरानी दीवारों  
और मैली छतों को देख देख कर उसका मन दुखी  
होता था । वह यह सोचा करती थी कि मुझ सी  
कोई दूसरी रूपवती नारी कभी ऐसी बुरी वस्तुओं  
से निर्वाह न करती । एक छोटी लड़की घर का  
काम काज करने आती थी । उसका आना जाना  
इसे और भी कष्ट देता था । दिन भर बेचारी अपने  
मन में अमीरों के सजे हुए कमरों का स्वप्न देखती  
और सोचती कि वे लोग कैसे कीमती कालीन बिछे  
हुए सुन्दर कमरों में रहते हैं और मैं यहाँ इस कारागार  
में दिन काटती हूँ ।

सन्ध्या को जब उसका पति काम करके लौटता  
तब दोनों स्त्री-पुरुष खाना खाने बैठते । उस समय  
पति महाशय तो सामने रखी हुई भोजन की  
सामग्री की प्रशंसा करते और उसे बड़ी प्रसन्नता से  
खाते । परन्तु स्त्री अपने मन के घोड़े दूर दूर दौड़ाती  
और धनियों के दस्तरखानों का स्वप्न देखती ।

इस रमणी के पास कोई अच्छा वस्त्र या आभू-  
षण न था । आभूषणों का इसे बहुत शौक था । वह  
मन ही मन चाहती थी कि अच्छे अच्छे आभूषण  
पहन कर घूमै जिसमें लोग उसे देख कर उसकी



सुन्दरता की प्रशंसा करें। पर ऐसा होना असम्भव था।

इसके बालपन की एक धर्म-बहन थी। वह अमीर थी। बहुत दिनों से इसने उसके यहाँ जाना छोड़ दिया था; क्योंकि उसको देख कर इसके मन में ईर्ष्या होती थी। यह दिन भर घर में बैठी रोया करती थी। हर समय शोक! हर समय दुःख!

एक दिन सन्ध्या-समय इसका पति बहुत खुश खुश घर आया। उसके हाथ में एक बड़ा सा लिफाफा था। पत्नी के सामने लिफाफे को फेंक कर वह बोला:—

“यह लो, तुम्हारे लिए कुछ लाया हूँ।”

स्त्री ने तत्काल लिफाफा उठा लिया। उसे खोल कर देखा तो उसमें एक छपा हुआ कार्ड था। उस पर शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष की तरफ से निमन्त्रण-पत्र छपा हुआ था। उसमें अध्यक्ष ने इस पति-पत्नी को, १८ जनवरी की शाम को, अपने घर आने के लिए निवेदन किया था।

पति ने समझा था कि मेरी अर्द्धाङ्गिनी निमन्त्रण-पत्र पाकर बहुत प्रसन्न होगी, किन्तु फल उसका उलटा हुआ। उसने कुढ़ कर उस कार्ड को मेज़ पर पटक दिया और पति का तिरस्कार करके बोली:—

“किस लिए तुमने यह कार्ड मुझे दिया है?”

“प्रियतमे, मैंने समझा था कि तुम इसे देख कर खुश होगी। तुम कहीं भी नहीं जाती हो; अतएव अच्छा अवसर हाथ आया है। बड़ी मुश्किल से मैंने यह कार्ड पाया है। भला मामूली मुलाजिमां को कहीं ऐसे निमन्त्रणपत्र मिल सकते हैं? वहाँ पर बड़े बड़े लोगों से तुम्हारी भेंट होगी।”

स्त्री ने क्रोधभरी दृष्टि से पति की ओर देखा और बेसबरी से कहा:—

“क्या पहन कर मैं वहाँ जाऊँगी, तुम्हीं कहो?”

उस बेचारे को इसकी खबरही न थी। वह थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर बोला:—

“जो कपड़े पहन कर तुम नाटक देखने गई हो वही पहन कर जाना। मुझे तो वह जोड़ा बहुत मालूम होता है—”

पति ने देखा कि स्त्री रो रही है। दो बड़े बड़े जल-बिन्दु उसके नेत्रों के कोनों से धीरे धीरे नीचे आ रहे थे। उसने दुःखित हो कर पूछा:—

“बात क्या है? कहती क्यों नहीं?”

अपने मन को स्थिर करके और आंसू पोछ कर स्त्री ने शान्त भाव से उत्तर दिया:—

“कुछ नहीं। बात यह है कि मेरे पास पहन लायक अच्छे कपड़े नहीं। इस कारण अध्यक्ष के घर जाना मैं उचित नहीं समझती। अपना काम किसी दूसरे को दे दो, जिसकी स्त्री के पास सुन्दर वस्त्र-आभूषण हों।”

कानर-स्वर से पति ने कहा:—

“प्रिये, बतलाओ, अच्छे कपड़ों के लिए कितने रुपये दरकार होंगे—ऐसे कपड़े जो इस तरह मौकों पर काम आवें और बहुत दाम के भी न हों।”

स्त्री बड़े सोच-विचार में पड़ी। वह मन ही मन हिसाब जोड़ने लगी। साथ ही साथ वह यह सोचने लगी कि मुझे इतना दाम न कहना चाहिए जो उससे दिया न जा सके। आविर्कार वह डरते बोली:—

“मैं ठीक नहीं कह सकती कि कितना लोगो परन्तु अन्दाज़न २५० रुपये से काम चल जायगा।”

पति बेचारा चुप हो रहा। उसने उतनी रफ़्तार गरमी के दिनों की सैर के लिए रख छोड़ी थी उसका विचार था कि अगली गरमी की छुट्टियों पर अपने मित्रों के साथ शिकार खेलने कहीं जाऊँगा। पर उसने जी कड़ा करके कहा—

“बहुत अच्छा। मैं तुमको ढाई सौ रुपये दूँगा पर कपड़े बहुत अच्छे बनवाना।”

अध्यक्ष के घर जाने के दिन निकट आये। के कपड़े भी तैयार हो चुके थे, तथापि उदास और चिन्तायुक्त ही रहती थी। एक शाम को उसके पति ने पूछा:—



संख्या ७ ]

“अब उदासी का क्या कारण है ? सच कहो, तुम पिछले तीन दिन से इतनी परेशान क्यों हो ?”

स्त्री ने जवाब दिया:—

“मेरे पास कोई गहना नहीं; क्या पहन कर वहाँ जाऊँगी। यही चिन्ता मुझे खाये डालती है। बेहतर होगा कि मैं न जाऊँ।”

पति ने कहा,—

“फूलों के गहने क्यों नहीं पहनती ? आज कल तो ऐसे ही गहने पहनने का अधिक रवाज है।”

परन्तु पत्नी की तसल्ली इससे न हुई। वह बोली:—

“अमीर औरतों में वे गहने के जाना बड़े सन्ताप का कारण है। इससे बढ़ कर और कोई दुःख नहीं।”

इस पर उसका पति चिल्लाकर बोला:—

“तुम कैसी स्त्री हो ! अपनी सखी राधिका के पास क्यों नहीं जाती ? वह तुमको बहुत अच्छे अच्छे आभूषण मँगनी दे देगी। वह तुम्हारा इतना तो एतबार जरूर ही करेगी।”

यह सुनते ही पत्नी खुशी के मारे उछल पड़ी। उसने प्रसन्न होकर कहा:—

“बात तो तुमने लाख रुपये की कही। मैं तो राधिका को भूल ही गई थी।”

दूसरे दिन वह रमणी अपनी सखी के पास गई और अपनी रामकहानी सुनाकर उससे गहने ली। राधिका तुरन्त राजी हो गई। उसने अपने कमरे में जा कर सन्दूक खोला और गहनों का डिब्बा निकाल कर इसके सामने रख दिया। फिर वह बोली:—

“लो, जो पसन्द आवे ले लो।”

अब इस रमणी के लिए गहना पसन्द करना बड़ा काम हो गया। कभी वह मोतियों की माला पहनती; कभी रत्नजटित कण्ठा गले में डालती; कभी और कोई आभूषण पहन कर आईने के सामने खड़ी होती। बहुत देर तक वह यही गोरख-धंधा करती रही। पर निश्चय न कर सकी कि क्या ले

जाय, क्या छोड़ जाय। अपनी सखी से वह बार बार पूछती:—

“तुम्हारे पास कुछ और भी है ?”

“हाँ, हाँ, और भी है। न जानें तुझे कौन चीज पसन्द आवेगी।”

अन्त में काले साटन के एक छोटे से डिब्बे में उसने हीरों की एक माला देखी। खुशी से उसका दिल धड़कने लगा। डरते डरते उसने उसे उठाया; अपने गले में डाला; और मूर्ति की तरह आईने के सामने खड़ी होकर वह अपनी रूप-राशि देखने लगी।

चिन्ता से काँपते काँपते उसने अपनी सखी से पूछा:—

“क्या मुझ को केवल यह—केवल यही—मँगनी दे सकती हो ?”

“हाँ, क्यों नहीं।”

यह उत्तर सुनते ही वह रमणी उछल पड़ी और अपनी सखी के गले में बाँह डाल कर प्रेम से उसका मुँह चूमने लगी। थोड़ी देर बाद वह उस माला को लेकर अपने घर लौट आई।

निमंत्रण का दिन आ गया। उस मुलाजिम की धर्मपत्नी खूब बन टन कर अध्यक्ष के यहाँ गई। वहाँ सभी ने उसके रूप की प्रशंसा की। सभी ने प्रेमभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। बहुतों ने उसका नाम पूछा। बहुतों ने उसका परिचय पाकर अपने को भाग्यवान् समझा। अध्यक्ष महाशय ने भी उससे खूब बात चीत की।

अब उस रमणी की खुशी का ठिकाना न रहा। अपने मद में वह उन्मत्त सी हो गई। अपने सामने वह किसी को कुछ न समझने लगी। उसे मानो संसार का राज्य मिल गया।

सबरे चार बजे सब लोग अपने अपने घर चले। इसका पति नित्य के पहनने के गरम कपड़े अपने साथ लेता आया था। अपनी प्यारी पत्नी को शीत से बचाने के लिए उसने वे कपड़े देने चाहे। पर वह ऐसे मामूली कपड़े कब पहन सकती। पति



का इरादा समझते ही वह दूसरी स्त्रियों की आँख बचा कर बाहर भागी ।

पति ने उसको रास्ते में रोक कर कहा :—

“यह क्या गुज़ब करती हो । तुम्हें सरदी लग जायगी । ज़रा ठहरो, मैं गाड़ी ले आऊँ । पर वह कब सुनती थी । खट खट सीढ़ियों से नीचे उतर गई । वे गली में पहुँचे तो कोई गाड़ी न मिली । अब वे गाड़ी की तलाश में चले । जिस गाड़ी वाले को सामने से गुज़रते वे देखते उसी को पुकारते । किन्तु उनकी सब चेष्टायें व्यर्थ हुई ।

सरदी से काँपते हुए दोनों को दूर तक जाना पड़ा । आखिरकार उनको एक खराब सी गाड़ी मिली । उसी में चढ़ कर वे घर पहुँचे ।

बस हो गया । स्त्री का मन ठिकाने आया । उसका चाव जाता रहा । इधर पति इस सोच में था कि दस बजे दफ़्तर पहुँचना होगा ।

अब अपने कपड़े उतारने के लिए वह स्त्री आईने के सामने खड़ी हुई । एक बार फिर वह अपने सौन्दर्य की शोभा देखने लगी । देखते ही वह चिल्ला उठी, अरे !

उसका पति अपने आधे कपड़े उतार चुका था । हैरान होकर उसने पूछा :—

“अब क्या हुआ ?”

थर थर काँपती हुई स्त्री ने पति की ओर देखा :—

“मैं—मैं—मैंने राधिका की माला खो दी !”

पति भय के मारे काँप उठा :—

“हैं ! क्या ? कैसे ? क्या सच मुच खो गई ?”

उन दोनों ने सब कहीं रत्ती रत्ती ढूँढ़ डाला, परन्तु माला न मिली । पति ने पूछा :—

“क्या तुमको अच्छी तरह याद है कि अध्यक्ष का घर छोड़ते समय माला तुम्हारे गले में थी ?”

“हाँ मैंने उसे हाथ से छू कर देखा था ।”

“यदि वह गली में गिरती तो हम लोग उसके गिरने का शब्द सुनते । वह ज़रूर गाड़ी में रह गई ।”

“हाँ, यही बात है । क्या तुमको गाड़ी का नम्बर मालूम है ?”

“नहीं । और तुमने तो नम्बर की तरफ़ आँखें उठा कर भी न देखा होगा ।”

“नहीं ।”

दोनों एक दूसरे के मुँह को देर तक ताकते रहे । आखिरकार पति ने फिर कपड़े पहने और खो को सम्बोधन करके कहा :—

“मैं फिर उसी रास्ते जाता हूँ । देखूँ जो कहां मिल जाय ।”

पति तैयार हुआ । स्त्री वैसी ही कठपुतली की कुरसी पर बैठी रही । उठने की भी शक्ति उसमें नहीं थी । न उसने आग जलाई, न लेट कर आराम किया । सात बजे उसका पति वापस आया । माला का कुछ भी पता न चला ।

इसके बाद पति ने पुलिस में खबर दी ; डिंडी पिटवाया ; अखबारों में इश्तिहार दिये ; इनम लालच भी दिया ; गाड़ी का भी पता लगाया ; पर कुछ भी फल न हुआ । चिन्ता के मारे रमणी धीरे धीरे भर भूखी प्यासी बैठी रही ।

शाम को पति घर आया । उसका चेहरा सदा से दुःख भरा हुआ था । पत्नी से उसने कहा :—

“अपनी सखी को लिख दो कि माला का कुछ ढूँढ़ लिया है । उसे ठीक करवाकर मैं जल्दी ही माला लौटा दूँगी । इस बीच मैं शायद हम लोगों के उसका कुछ पता लग जाय ।”

स्त्री ने वैसा ही किया ।

एक सप्ताह बीत गया । इनकी सारी आशाएँ व्यर्थ गईं । पति ने अन्त को स्त्री से कहा :—

“हमको वैसी ही माला खरीद कर देना चाहिए ।”

दूसरे दिन माला का डिब्बा लेकर वे उस जौहरी के पास गये जिसका नाम डिब्बे पर लिखा था । जौहरी ने अपनी बही देख कर कहा :—

“मैंने केवल यह डिब्बा बेचा था । माला विषय में मैं कुछ नहीं जानता ।”

तब वे अन्यान्य जौहरियों के पास गये । दुकान घूम घूम कर वे दरियाफ़्त करते फिरे ।



अन्त में एक दुकान पर उनको ठीक वैसी ही माला मिली। उसकी कीमत चालीस हजार रुपये थी। पर जौहरी छत्तीस ही हजार लेकर देने पर एजी हुआ।

इन्होंने जौहरी से प्रार्थना की कि तीन दिन तक वह उस माला को न बेंचे। उन्होंने उसके साथ यह भी तय किया कि यदि फरवरी के अन्त तक पहली माला मिल जायगी तो उसको यह माला चौतीस हजार पर वापस कर देंगे।

उस रमणी के पति के पास अठारह हजार रुपये अपने मित्र के थे, जिन्हें उसका पिता उसके लिए खर्च कर मरा था। बाकी रुपये उसने ऋण लेकर किये। किसी दोस्त से एक हजार, किसी से दो सौ, किसी से सौ, किसी से पचास। इस तरह बड़ी कठिनाई से उसने वह रकम इकट्ठी की। चौतीस हजार रुपये देकर जौहरी की दुकान से उसने वह नई माला खरीदी।

रमणी वह माला लेकर राधिका को वापस देने गई। राधिका भुँभला कर बोली :—

“तुम जल्दी क्यों न लाई। मुझे जरूरत पड़ती तो ?”

रमणी को डर था कि कहीं बदली हुई माला पहचान न ली जाय। लेकिन राधिका ने उस डिब्बे का ढक्कन भी न खोला। चुपचाप उसे रख लिया। अब कर्ज अदा करने के दिन आये। उन दोनों शीरता से आपत्ति का सामना किया। घर का धन मौकफ कर दिया और दूसरा सस्ता मकान देने के लिए ठीक किया।

खोने घर के सब काम अपने हाथ करने सीखे। अपने हाथ से वह बर्तन धोती; घर बुहारती; कपड़े धोकर धुलाई करती; मैले तौलिए मल मल कर धोती; बरतन काल पानी भर लाती; साधारण कपड़े पहन कर आटा, दाल, नमक, मिर्च, मसाला और तरकारी आदि खरीदने जाती; मण्डी में धेले धेले के

मिर्च कुंजड़ा आदि से लड़ती भगड़ती।

पति भी दिन रात काम करता। एक एक पैसे के बचाने की वह फिक्र में रहता। इस तरह प्रति मास कुछ कुछ ऋण चुकाया जाता।

यह दशा दस वर्ष तक रही। दस वर्ष में उन्होंने सूद सहित सब ऋण चुका दिया।

वह रूपवती रमणी अब वृद्धा सी बोध होने लगी। हाथ पैर पुष्ट, शरीर मजबूत, गरीबों की औरतों का सा रहन-सहन। उसके पहले के दिन गये; युवावस्था की बातें स्वप्न हो गईं।

कभी कभी जब उसका पति दफ्तर में होता तब वह खिड़की के पास बैठ जाती और उस सायङ्कालीन घटना की याद करती जब वह अतीव सुन्दरी थी; जब लोगों ने उसके रूप की तारीफ़ की थी; जब उसकी मूर्खता के कारण उसका सर्वस्व स्वाहा हो गया था।

यदि वह माला न खो जाती तो कौन जानता है, क्या होता। संसार में मनुष्य का जीवन बड़ा ही विचित्र है। छोटी छोटी बातों पर भी हम लोगों के जीवन का बिगाड़ या सुधार अवलम्बित रहता है।

एक रविवार को सैर करने के लिए वह रमणी शहर के बाहर बाग में गई। एक बेंच पर बैठी वह वायुसेवन कर रही थी। इतने में उसने एक स्त्री को एक बच्चे के साथ जाते देखा। देखते ही उसने उसे पहचान लिया। वह उसकी सखी राधिका थी।

इसके मन में तरह तरह के खयालात पैदा होने लगे। “क्या मैं इसके साथ बात चीत करूँ? हाँ, वेशक। अब तो सब बखेड़ा तय ही हो गया है। इसलिए इससे सब बातें याथातथ्य कह डालनी चाहिए।”

उठ कर वह उसके पास गई :—

“राधिका, अच्छी हो ?”

राधिका ने आश्चर्य में आकर कहा :—

“मुझे याद नहीं, मैंने कभी आपको देखा हो।”

“मेरा नाम श्यामा है।”



राधिका अवाक् हो गई—

“श्यामा !—क्या सचमुच !—तुमको हो क्या गया है ?”

“हाँ, तुमसे पिछली बार भेंट होने के बाद से मुझ पर बड़ी बड़ी विपत्तियाँ आईं—पर उनका कारण तुम्हीं हो।”

“मैं ?—सो कैसे ?”

“तुमको याद होगा कि मैंने अध्याक्ष के यहाँ जाने के लिए तुमसे माला मँगनी ली थी।”

“हाँ, फिर क्या हुआ ?”

“वह माला खो गई।”

“खो गई ? कैसे ? यह कैसे हो सकता है ? तुमतो उसे वापस दे आई थीं ?”

“मैं ठीक उसी तरह की दूसरी माला वापस कर आई थी। तबसे दस वर्ष तक हम लोग उसकी क्रीमत चुकाते रहे हैं। तुम समझ सकती हो कि हमारे जैसे निर्धनों के लिए यह आसान बात न थी। आखिरकार हमने सब रुपया अदा कर दिया।”

राधिका बोली :—

“तुम कहती हो कि मेरी माला के बदले तुम हीरों की एक दूसरी माला वैसी ही मोल लाई थीं ?

“हाँ, पर तुमतो इस बात को न जान सकों। क्या वह ठीक वैसी ही थी ?” यह कह कर वह कुछ मुसकराई।

राधिका का हृदय करुणा से भर आया। उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर उसने कहा :—

“आह, प्यारी श्यामा ! बड़ी भूल हुई। मेरी माला के हीरे तो नकली थे। अधिक से अधिक उनकी क्रीमत पाँच सौ रुपये रही होगी !”

सत्यदेव, अमेरिका।

## च्यवन-पत्नी सुकन्या ।

( १ )

वैवस्वत मनु के बेटे का था शर्याति भूमिपति नाम ;  
इसकी एक लाडली बेटी रम्य सुकन्या थी गुणधाम ।  
शीलवती थी, समझदार थी, पढ़ी लिखी थी, स्थानी थी ;  
बालपने की भली भाँति से गई नहीं नादानी थी ॥

( २ )

संग पिता के रहती थी यह उसे मुक्ति अति करती थी ;  
अपनी भोली भाली बातें सुना हृदय को हरती थी ।  
एक बार शर्याति भूप ने जंगल के भीतर जाकर ;  
किया पास विश्राम च्यवन के आश्रम के अति सुख पाकर ॥

( ३ )

आश्रम की शीतल छाया में करने नृप आराम लगे ;  
परिजन नौकर-चाकर सारे अपने अपने काम लगे ।  
जुही, चमेली, मृदुल मालती और मल्लिका की बेली  
संग सखी के इधर सुकन्या लगी देखने अलबेली ॥

( ४ )

दृश्य देखती हुई मनोरम चली सुकन्या सुकुमारी ;  
चुनती कुसुम, बनाती गुच्छे, करती बात मनोहारी ।  
इस अनुपम सौन्दर्य-मूर्ति को, इस स्वर्गीय दृश्य को देख,  
आश्रम के तरुलता नृत्य कर आदर करने लगे विशेष ॥

( ५ )

इसी तरह यह भोली भाली बड़ी दूर तक चली गई ;  
वहाँ एक अद्भुत कौतुकमय देखी इसने बात नई ।  
लगा हुआ है ढेर भस्म का मिट्टी जिस पर पड़ी हुई ;  
थे इसके भीतर गड्ढे से, दीमक भी थी लगी हुई ।

( ६ )

इन गड्ढों में चमक रहे थे अति उज्ज्वल सुन्दर तारे—  
बड़े मनोहर, अतिशय सुन्दर, अनियारे, प्यारे, प्यारे ।  
जान वस्तु ज्योतिर्मय उनको, खोदा कण्टक के द्वारा,  
किन्तु दुःख पाया फिर उसने निकली देख रक्त-धारा ॥

( ७ )

चली गई पछताती मन में जहाँ पिता का डेरा था,  
देखा तो सेनादल सारा महारोग ने घेरा था ।  
“इस पवित्र आश्रम का किसने कहा सत्य अपराध किया”  
पूछा एक एक से नृप ने किसने है यह दुःख दिया ?



( ८ )

“अज्ञ के दाता ! किया नहीं हमने कुछ पाप” ;  
मुझमें सुकुमारी कन्या बोल उठी यों अपने आप—  
“पिता हुआ है मुझसे इस आश्रम में अनुचित काम ;  
जन्तु-वेधन हा राम !”

( ९ )

रानी, नौकर, चाकर, हो अवीर सब गये वहां—  
जहाँ रक्त की धार जहाँ ।  
हटा दे देखा बैठे थे संयमधारी,  
कृशतनु, तेजोधारी ॥

( १० )

दोनों आँखों से बूँद बूँद गिरता था रक्त  
मुझ कह नृपविह्वल हो, मुनि-चरणों पर गिरा अशक्त :—  
“तुम ! तुम ! कल्याणकर ! भगवन् ! तुम ! तुम ! योगीश महान  
तुम ! तुम ! मुनिराज ! महोदय ! तुम ! तुम ! विज्ञाननिधान !

( ११ )

इस औषध पुत्री ने किया नाथ का बड़ा अक्राज ;  
विकट वेदना इससे मेरे हृदय-स्थल में आज ।  
मुझे “भय करो न राजन् ! नहीं किसी का इसमें दोष ;  
सहार हो ही जाता है !” यों कह कर कुछ किया न शेष ॥

( १२ )

और तो नृपवर ! मुझको कुछ भी दुःख नहीं ;  
तुम ही चिन्ता मुझ को छूट न जावे धर्म कहीं ।  
करो दे पहले ही अब आँखें भी नहीं रहीं ;  
कर्म क्यों कर साधूंगा जब जीवन भी निभे नहीं ॥

( १३ )

हे महिपाल ! धर्म-हित मेरी वाणी पर दे ध्यान ;  
मेरी लकड़ी होने को दो मुझको निज-कन्या-दान ” ।  
मुनि के मुख से यह वाणी सन्नाटा सब पर छाया ;  
“ना” का कुछ भी उत्तर तब नहीं किसीसे बन आया ॥

( १४ )

कितु सुकन्या बाला दिव्य दृष्टि, बोली कर जोड़ ;  
पिता ! स्नेहमयि माता ! द्विविधा से लो निज मुख मोड़ ।  
“जो अपराध किया है, मैं ही इनकी बन चाकर,  
सूँ कहूँगी, अपना धर्म निभाऊँगी शुचितर ॥

( १५ )

इसी लिए है जन्म स्त्री का—सहधर्मिणी पुरुष की हो—  
धर्म-कर्म में बड़े प्रेम से—सुखी सभी का ज्यों जी हो ।  
होगी कोई हाथ सुता क्या जग भीतर ऐसी अज्ञान—  
आत्मसमर्पण नहीं करे जो पाकर अति उत्तम विद्वान ?

( १६ )

धर्म यही है आर्य्य-सुता का, आर्य्य-पुत्र का धर्म यही ;  
सत्य प्रेम में भूले आपा, करे ज्ञान से शुद्ध मही ।”  
निश्चय देख सुता का नृप भी विधिपूर्वक दे कन्या-दान  
लौटा हो निश्चिन्त, लगे त्यों मुनि करने धर्मानुष्ठान ॥

( १७ )

सेवा करने लगी सुकन्या मनसे मुनिवर की दिनरात ;  
पहले उठती, पीछे सोती, रह प्रसन्न मलती मुनि-गात ।  
प्रति दिन सुन्दर सुन्दर वन से ले आती चुन कर फल फूल ;  
काम सदा करती ऐसे ही जो होते ऋषि के अनुकूल ॥

( १८ )

एक बार वन की वीथी में आयुर्वेदशास्त्र के धाम ,  
मिले इसे स्ववैद्य किया तब इसने सादर उन्हें प्रणाम ।  
इसे देख कर वे बोले यों “सुन्दर ! यह सौन्दर्य्य कहाँ !  
त्रिभुवन-दुर्लभ ! और वृद्धतर, जराजीर्ण वे च्यवन कहाँ !”

( १९ )

उनकी ऐसी वाणी सुन कर इसको दुःख हुआ भारी ;  
मुख से कुछ भी वचन न बोली भट घर पहुँची सुकुमारी ।  
करते हुए प्रशंसा मन में आश्रम में वे भी आये ;  
मुनि की आज्ञा से वे दोनों गये भली विधि ठहराये ॥

( २० )

दिया उन्हें मुनि की पत्नी ने शुचि आसन मुनिवर के पास ;  
पाकर दर्शन वे भी मुनि के हो प्रसन्न फिर हुए उदास ।  
“इस औषध को मल सब तनु पर करो सिद्ध धारा में स्नान  
कायाकल्प सिद्ध होगा तब”—बोले ऋषि से वे मतिमान ॥

( २१ )

औषध सारे तन में मल कर उनका कहना सच्चा मान ,  
होकर मग्न शुद्ध धारा में करने लगे मुनीश स्नान ।  
ह्वा कर जो वे निकले बाहर जरा-जीर्णता दूर हुई ;  
पाये दिव्य चक्षु ; त्यों पाई अनुपम, सुन्दर, देह नई ॥



( २२ )

ऐसा कौतुक देख सुकन्या मनमें अतिशय घबराई,  
किसी तरह उनको पहचाना; पूछपाछ, कर चतुराई ।  
“देव-वैद्य, है किया आपने मुझ पर आज बड़ा उपकार ;  
धन्यवाद है ! धन्यवाद है !” बोले मुनि तब बारंबार ॥

( २३ )

“मान निषिद्ध; वैद्य होने से, देते नहीं यज्ञ का भाग—  
लोग आपको, सो मैं दूँगा ; तुम पर मेरा महानुराग” ।  
कर प्रणाम मन में प्रसुदित हो तब स्ववैद्य गये स्वस्थान ;  
संग सुकन्या के सुख से मुनि रहने लगे रूप-गुणखान ॥

( २४ )

एक दिवस शर्याति भूमिपति संग लिये अपना परिवार ;  
जामाता के आश्रम भीतर करने आये यज्ञ उदार ।  
अपनी प्यारी बेटी देखी बैठी एक तरुण के पास ;  
मधुर मधुर मुसकाती करती भांति भांति के हास-विलास ॥

( २५ )

इसने भी जो देखा उनको, जल्दी से उठकर धाई—  
“मा ! मा !” “तात ! तात !” कहती वह लगने गले तुरत आई ।  
हाथ भटक इसका वे बोले—“दुराचारिणी ! हट पापिन ;  
तूने ऋषि का बता किया क्या ? है यह कौन ? बता डाकिन ॥

( २६ )

दोनों कुल को पापपुंज में तूने हाथ डुबो डाला !  
लगा लिया अपने माथे पर कुलटा का टीका काला !”  
“पिता ! पिता ! वे समझे बूझे भ्रम में पड़ क्या कहते हो ;  
अपनी बेटी का हृदय-स्थल क्यों अनुचित कह दहते हो !

( २७ )

पाणि-ग्रहण हुआ था जिनसे वेही तो हैं ये भर्तार ;  
वेही तो हैं तपो-धनी ये, वेही तो हैं प्राणाधार ।  
सुरवैद्यों का कहना करके कायाकल्प साध सविचार ;  
न्हा कर सिद्ध धार में नीके हुए रूपगुणशोभा-धार” ॥

( २८ )

हो प्रसन्न नृप ने बेटी को खींच गले से लगा लिया ;  
डाल प्रेम के आंसू उसके दग्ध हृदय को शान्त किया ।  
गये पास सब मुनि के, पूछी कुशल परस्पर, तजा विषाद ;  
देख मुहूर्त यज्ञ का अच्छा, जगह जगह भेजे संवाद ॥

( २९ )

जहाँ तहाँ से वैदिक आये; यज्ञ रीति से करवाया ;  
सुरवैद्यों को भी तब ऋषि ने खूब सोम-रस पिलवाया ।  
इससे होकर क्रुद्ध इन्द्र ने करना चाहा वज्रप्रहार  
ऋषि पर,—पर वह स्वयं हो गया शक्ति-हीन, निर्बल, लाचार ॥

( ३० )

ऋषि के तप के सम्मुख उसका चला ज़रा भी ज़ोर नहीं  
तपोधनी के सम्मुख बल क्या चल सकता है कभी कहीं  
महा प्रभाव जान मुनिवर का उनके पद पर रख मस्तक,  
होकर नम्र इन्द्र ने स्तुति की जब तक वहाँ रहा तब तक ॥

( ३१ )

“धन्य ! च्यवन ऋषि ! धन्य सुकन्या ! धन्य भूप शर्याति  
धन्य आर्य्य सुरवैद्य ! धन्य तप ! धन्य यज्ञ !” करते गुण-  
सुर, नर, सब मुनि के आश्रम से पाकर सब विधि परमात्म-  
उत्तम चरित सुकन्या का सुन होकर बिदा चले स्वच्छन्द ॥

( ३२ )

इधर सुकन्या और च्यवन मुनि बैठे पाकर हर्ष अपार ;  
कूज उठे मधुर-स्वर कोकिल, बौरे सब सुन्दर सहकार ।  
भांति भांति के कुसुम उठे खिल ; करने लगे मधुप गुंजा  
प्रकृति सुन्दरी हुई प्रफुल्लित ; पुरुष लगा अपने व्यापार ॥

( ३३ )

दृश्य देख कर बोल उठा यों गिरिधर धन्य धन्य जगदीश  
निर्मल प्रेम-धर्म इस भूपर रखिए सदा सांवरे ईश !  
प्रेम क्या नहीं कर सकता है, है उसका माहात्म्य महान ;  
हो सकता है उसके कारण धराधाम वैकुण्ठ-समान ॥

गिरिधर शम्भु

## उल्का-पात ।

हुधा अँधेरी रात को, निर्मल आकाश में, महताबी की तरह छूटते हुए दिखाई पड़ते हैं । उनका प्रकाश पीला और कभी हरापन लिये सफ़ेद रंग का होता है । इन ताँतों से अधिकतर तो प्रज्वलित होते ही शान्त हो जाते हैं परन्तु किसी किसी के पीछे फुलभूझी सी



[ भाग ७ ]

पड़ती है, जो कुछ देर तक बनी रहती है। इन तारों के विषय में सर्वसाधारण लोगों के मतों के विचार हैं। परन्तु हम इस लेख में उन बातों को लिखेंगे जिनको पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अनुभव से सिद्ध किया है। योराप के ज्योतिषियों का विचार है कि उल्का वास्तव में छोटे छोटे तारे हैं, जो आकाश में प्राकृतिक नियमों के अनुसार घूमते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं।

एक जो घूमते घूमते अचानक वायु-मण्डल में घुस कर बाहर निकल जाते हैं और प्रज्वलित होते हुए देख पड़ते हैं। द्वितीय वे जो बहुत से, एक एक मिल कर, एक विशेष नियम के अनुसार नियत दिशि घूमते हैं।

अनुभव से सिद्ध है कि जब दो पदार्थ आपस में टकराते हैं तब उष्णता उत्पन्न होती है। सब लोग जानते हैं कि तोप का गोला केवल वायु से टकरा कर ऐसा गरमा जाता है कि रात को अग्नि एक लाल अंगारा सा जान पड़ता है। उल्काओं का, जिसकी तेजी पृथ्वी के निकट पहुँचते ही जाती है, तोप के गोले से पन्द्रह सौ गुना अधिक गति की गई है। अतएव जिस समय ये छोटे तारे, जो आकाश-मण्डल में वे रोक टोक घूमते हैं, अचानक वायु-मण्डल में प्रवेश करते हैं, समय हवा से रगड़ खाते ही उनमें उष्णता उत्पन्न होती है, और वे तोप के गोले के समान जलत हो उठते हैं।

इन तारों के लोप हो जाने के कई कारण हैं।

प्रथम यह कि ये वायु में प्रवेश करते ही बाहर निकल जाते हैं और तुरन्त शान्त हो जाते हैं; फिर दूसरा यह कि वे छोटे हैं उनका, वायु-मण्डल से बाहर निकलना ही होता है; वे घुल कर भाफ बन जाते हैं। तृतीय यह कि जिन तारों का गमनमार्ग पृथ्वी की ओर होता है वे उसकी आकर्षण

शक्ति से खिंच कर एक दम पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। परन्तु गिरने के पहले जितना ही वे पृथ्वी के निकट होते जाते हैं उतना ही वे, गिरते हुए पत्थर की भाँति, अधिक वेगगामी होते जाते हैं। इसके साथ ही हवा की रुकावट भी बढ़ती जाती है। फल यह होता है कि वे उसका सामना करने में असमर्थ हो कर, पृथ्वी तक पहुँचने के पहले ही, फट कर टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं।

९ जून १८६६ ई० में हंगरी देश के निवासियों को एक उल्का सीधी पृथ्वी की ओर आती हुई देख पड़ी। यह तारा ज्यों ज्यों निकट आता गया अधिक प्रज्वलित होता गया। यहाँ तक कि लगभग ८० फीट की उँचाई तक आते आते इसमें इतनी उष्णता बढ़ गई कि यह टुकड़े टुकड़े होकर पृथ्वी पर छः मील के घेरे में गिरा। इसके छोटे छोटे टुकड़े तो सहस्रों पाये गये; परन्तु एक टुकड़ा बहुत बड़ा भी मिला, जो तैल में दस मन से अधिक था। इस उल्का-पात के बाद सारा आकाश लगभग आधे घंटे तक घटाटोप अन्धकार से आच्छादित रहा। चारों ओर धुएँ के भर जाने से कुछ दृष्टिगोचर न होता था और इसकी असह्य दुर्गन्धि से श्वास रुकता था। इससे अधिक भयङ्कर उल्का-पात न्यूजर्सी नामक प्रान्त में हुआ था। १५ नवम्बर १८५९ ई० को, ठीक बारह बजे दिन के समय, तमाम आकाश लाल हो गया और एक बड़ी भारी उल्का बड़े वेग से पृथ्वी की ओर आती हुई देख पड़ी। पृथ्वी के निकट पहुँच कर वह इतने जोर से फटी और ऐसी भयङ्कर गजना उत्पन्न हुई कि सैकड़ों जानवर भयभीत होकर मर गये। कितनी ही स्त्रियाँ और बालक बेहोश होकर गिर पड़े। प्रलय का सा दृश्य आँखों के सामने आ गया। इसी प्रकार नारमैडी प्रदेश वाले, ६ अप्रैल १८५२ ई० को, लगभग दो बजे दिन के, एक महा भयङ्कर शब्द सुन कर चौंक पड़े। इसके बाद अस्सी मील की लम्बाई और चौबीस मील की चौड़ाई में, जलते हुए पत्थर के टुकड़ों की वर्षा हुई। सारांश यह कि ऐसे ऐसे



सहस्रों उदाहरण मौजूद हैं। जिसकी इच्छा हो अजायबघरों में जाकर आकाश से गिरे हुए पत्थर के टुकड़ों को स्वयं देख ले।

उल्का के टुकड़ों के परमाणुओं की रसायनशास्त्र के अनुसार परीक्षा करने से यह बात प्रकट होती है कि इनमें कोई ऐसा तत्त्व (Element) नहीं है जिसको हम लोग न जानते हों। हाँ, यह बात अवश्य है कि इनकी रासायनिक योगविधि विचित्र है। फास्फोरस, मेनिकनीस, मैग्नीशियम तथा सोडियम इत्यादि के अतिरिक्त, जो अति शीघ्र थोड़ी सी उष्णता से प्रज्वलित हो उठते हैं, लोहा, ताँबा तथा क्रोमेम इत्यादि तत्त्व भी इनमें पाये जाते हैं। किसी किसी टुकड़े में लोहा, फास्फोरस और बंगल मिश्रित एक ऐसा योग पाया जाता है कि रसायनशास्त्र-पारङ्गत उसकी यौगिक विधि जानने में असमर्थ हैं। इन टुकड़ों को गरम करने से जो हाईड्रोजन, कार्बन आदि गैस (Gas) निकलते हैं वे सब पृथ्वी पर पाये जाते हैं।

उल्काओं का समूह जो श्रेणीबद्ध होकर भ्रमण करता है सो भी सौर जगत् में मौजूद है। इन तारों का एक ऐसा दल है जो पृथ्वी के भ्रमणमार्ग को काट कर निकल जाता है। ये तारे तैत्तीसवें वर्ष भ्रमण करते हुए पृथ्वी के निकट आ जाते हैं और जब पृथ्वी लुढ़कती हुई वहाँ पहुँच जाती है तब इन दोनों का सामना हो जाता है। फिर क्या है, जितने तारे वायु-मण्डल में होकर निकलते हैं सब प्रज्वलित हो उठते हैं और आकाश-मण्डल में आतश-बाज़ी सी छूटने लगती है। जिसने कभी इस घटना को देखा है उसे स्मरण होगा कि जिधर देखो यही जान पड़ता है कि आकाश के सब तारे टूट टूट कर गिर रहे हैं। परन्तु वास्तव में तारे टूटते नहीं। जब उल्कादल वायु से बाहर निकल जाता है और हमारी दृष्टि से लोप हो जाता है तब आकाश के सब तारे उसी प्रकार जगमगाते दिखाई पड़ते हैं।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कारण है कि यह दृश्य प्रति तैत्तीसवें वर्ष नियम से

नहीं देख पड़ता? इस घटना के न दिखाई पड़ने कई कारण हैं। प्रथम तो यह है कि यदि तारों का समूह उस स्थान से कुछ देर पहले या बाद निकल जाय, जहाँ पर कि वह पृथ्वी से मिलता तो पृथ्वी का सामना नहीं होता। दूसरे यदि लिया जाय कि सामना हो भी जाय, परन्तु वायु-मण्डल से ऊपर ही ऊपर निकल जाय तो प्रज्वलित ही नहीं हो सकते। फिर देखना सम्भव है? परन्तु इतना अवश्य होता है कि एक अवसर निकल जाय और यह विचित्र न दिखाई दे तो समझ लेना चाहिए कि आप ३२ वर्ष के भीतर इसका दिखाई पड़ना असम्भव है। और यदि दूसरी बार भी दृष्टिगोचर न हो इस घटना के देखने का अवसर फिर ३२ वर्ष बाद आता है।

इतिहास से पता लगता है कि पूर्वोक्त समूह इस सौर जगत् में प्रवेश करने के दिन कर आज तक ५२ चक्कर लगा चुका है। एक हास-कार अरब के इतिहास में लिखता है कि अक्तूबर ९०२ ई० की जिस रात को शाह इब्न विन अहमद मरा था उस रात को तारे इतनी कता से टूट टूट कर गिर रहे थे कि मानो तारे वर्षा हो रही थी। इसके पहले २२ दौरे और चुके थे। यह तेईसवाँ दौरा था जो अरबों ने देखा था। छद्दीसवें दौरे के विषय में के इतिहास-लेखक कहते हैं कि १४ अक्तूबर ई० के असंख्यात तारे एक साथ श्रेणीबद्ध पश्चिम से पूर्व की ओर उड़ते चले गये। इतिहास में लिखा है कि १९ अक्तूबर १२०२ ई० तारों का एक बड़ा भारी दल असाधारण देखा जाता हुआ आकाश-मण्डल में दिखाई पड़ा ३२ वाँ दौरा था। इसी प्रकार अन्य दौरे भी तारीखवार इतिहास और ज्योतिष के पाया जाता है जिसको स्थानाभाव से हम नहीं लिखते।



[ भाग १५ ]  
 खाई पड़ने  
 यदि तारों  
 या बाद  
 से मिलता  
 सरे यदि  
 य, परन्तु  
 जायें तो  
 देखना  
 ता है कि  
 विचित्र  
 कि आप  
 डना अस  
 चर न हो  
 रु ३३ व  
 पूर्वोक्त  
 के दिन  
 है। एक  
 वता है कि  
 शाह इ  
 इतनी  
 ानो तारों  
 दैरे औ  
 अरबतिया  
 घषय में  
 प्रकृत्वर  
 णीबद्ध  
 गये। मि  
 १२०२ ई  
 धारण  
 ई पड़ा  
 दैरों का  
 तेष के  
 हम



# सरस्वती



सन्ध्या ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



इस लेख के सम्बन्ध में दो बातें और जानने  
 चाहते हैं। एक तो यह कि जब यह आश्चर्यजनक  
 घटना, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, इस पृथ्वी  
 के निवासियों को दिखाई पड़ती है तब सब तारे  
 सिंहा राशि की ओर से आते हुए और एक ही  
 दिशा को जाते हुए दिखाई पड़ते हैं। दूसरी बात  
 यह है कि जिस समय इन उल्काओं का पहला दौरा  
 निवासियों को दिखाई दिया था वह अक्तूबर की  
 १४ तारीख थी। परन्तु इसके बाद प्रत्येक दौरे की  
 तारीख बढ़ती गई। यहाँ तक कि सत्रह सौ वर्षों में  
 एक मास का अन्तर पड़ गया। अन्तिम दौरे का  
 हम लोगों को १८६६ ई० में देख पड़ा था वह नव-  
 म्बर की १४ वीं तारीख को हुआ था। ध्यान देकर  
 इनसे तारीख के घटने बढ़ने का कारण यह  
 समझ में आता है कि इन उल्काओं के पृथ्वी से  
 जाने का बिन्दु, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है,  
 एक दौरे में आगे बढ़ता जाता है। कारण यह है  
 कि यह उल्कादल सौर जगत् में अभी थोड़े ही समय  
 आया हुआ है। अतएव इसका भ्रमण-मार्ग अभी  
 स्थिर नहीं है। सम्भव है कि कुछ दिनों बाद इस  
 मार्ग निश्चित हो जाय और प्रत्येक दौरे, जो लग-  
 बग १३ वर्षों के बाद हुआ करता है, सदा एक ही  
 दिशा को हुआ करे।

उदयनारायण वाजपेयी ।

## सन्ध्या ।

जब कितिज के गर्भ में छिप भास्कर-प्रतिभा गई  
 तब प्रतीची-न्योम में आकर अरुणिमा छा गई ।  
 देख कर उसकी प्रभा को यों उठी जी में तरङ्ग—  
 थोड़ा जाते हैं बड़े जन अन्त यश अपना अभङ्ग ॥१॥  
 मनु नो चलता हुआ लेकिन प्रभाली रह गई,  
 मग गया जोगी कहीं है खाक़ खाली रह गई ।  
 मन से दिन को मिलाने आ गई सन्ध्या सदेह,  
 दो ! यकी-सम्बोध से हैं वर-वधू मिलते सनेह ॥२॥

यह अरुणता भासती मानों निशा की सहचरी,  
 देख कर रवि का पराभव हँस रही सुख से भरी ।  
 कह रही जग से निरातप रात का है यह प्रताप,  
 कुजन पहले आपको सूचित किया करते अपाव ॥३॥  
 रात ने पाया विजय जयकेतु यह फहरा रहा,  
 या उसी के राग का है सिन्धु यह लहरा रहा ।  
 छिप गया सूरज, तदपि है कुछ प्रभा छाई अभी,  
 न्यायी नृपति के बाद भी जाता न उसका यश सभी ॥४॥  
 पूर्व से पहले प्रकाशित थी हुई पश्चिम दिशा,  
 हाय ! अब उस ओर से दौड़ी चली आती निशा ।  
 मूँद लीं आँखें कमल ने देख कर तम का विकास,  
 मौन ही रहते सुजन हैं दुर्जनों को देख पास ॥५॥  
 है प्रतीची ने अरुण-पट प्रेम से धारण किया,  
 हो गया अन्दाज़ कुदरत ने बदल परदा दिया ।  
 घट चला आलोक अब बढ़ने लगा है अन्धकार,  
 हा ! प्रतीची को निगल जावे न प्राची एक बार ॥६॥  
 उल्लुओं-चमगीदड़ों की देख लो अब बन पड़ी,  
 निशि-समागम से खुशी है जार-चोरों को बड़ी ।  
 एक दो करके चमकने अब लगे तारे तमाम,  
 होता कुपूतों से नहीं है वंश कोई नेकनाम ॥७॥  
 देखते थे सब अभी तो फिर कहां वह छिप गई,  
 अन्त में सबकी तरह निर्जीव सन्ध्या भी हुई ।  
 मीर चुपके हो रहो अब रात का है अन्ध-राज,  
 फिर उदय होगा प्रभाकर फिर सजेगा साज बाज ॥८॥

सैयद अमीरअली ।

## भारतीय दर्शन-शास्त्र ।

वेद के उपनिषद्-भाग के प्रकाशित होने  
 का समय ही दर्शन-शास्त्र की  
 उत्पत्ति का आदि काल है । वैदिक  
 युग में सब लोग वैदिक रीति के

अनुसार सारा व्यवहार करते थे । उस समय प्रचलित  
 रीति रवाज का कोई विरोध नहीं करता था ।  
 कालान्तर में कुछ प्रतिभाशाली विद्वान् उत्पन्न हुए ।  
 वे प्राचीन रीतियों की युक्तिविरुद्ध बातें स्वीकार



करने में आना कानी करने लगे । उन लोगों में ईश्वर, जीव, लोक, परलोक, जन्म, मरण आदि विविध विषयों पर तर्क-वितर्क होने लगा । काल-क्रम से वही दर्शन-शास्त्र के बीज रूप में परिणत हुआ । दर्शन-शास्त्र छः हैं—सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, पातञ्जल और वेदान्त । इन दर्शनों के आविर्भाव के विषय में निर्णय करना सहज नहीं है । बहुतें का मत है कि सांख्यदर्शन ही सबसे पहले उत्पन्न हुआ है । उसके उत्पादक महर्षि कपिल हैं । वेद में भी इस बात का उल्लेख है । शङ्कराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्य में श्वेताश्वतरोपनिषद् से सांख्यदर्शन के प्रवर्तक कपिल के सम्बन्ध में यह श्रुति लिखी है—“श्रुतिश्च भवति, ऋषिं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानं पश्येत्” । आनन्द-गिरि ने इसका यह भाष्य किया है कि सृष्टि के आदि में त्रिकालज्ञ कपिल ने इस ईश्वरनिदर्शक ज्ञान का प्रकाश किया । भागवत में कपिल सबसे पहले ज्ञानी माने गये हैं । सांख्य के बाद न्याय-दर्शन की उत्पत्ति मानी जाती है । न्यायदर्शन के कर्त्ता गौतम ऋषि हैं । उसके बाद वैशेषिकदर्शन उत्पन्न हुआ । उसके कर्त्ता महर्षि कणाद हैं । फिर महर्षि जैमिनि ने मीमांसा, पतञ्जलि ने योगदर्शन और कृष्ण द्वैपायन ने वेदान्त का निर्माण किया ।

### सांख्यदर्शन ।

सांख्यदर्शनकार कपिल के समय का निश्चय करना कठिन है । वेद, रामायण, महाभारत, भागवत आदि प्राचीन ग्रन्थों में इस नाम का उल्लेख है । महर्षि कपिल सांख्य के सर्वप्रथम प्रवर्तक हैं । उनसे आसुरि ने ज्ञानलाभ किया । पञ्चशिख ने आसुरि से शिक्षा पाकर उसका प्रचार किया । परम्परा से ईश्वरकृष्ण ने यह ज्ञान पाया । उन्होंने आर्याछन्दों में उसे पुस्तकाकार लिखा । उसके बाद वाचस्पति मिश्र ने सांख्यतत्त्वकौमुदी बना कर सांख्यदर्शन का मार्ग खूब प्रशस्त कर दिया । इस समय सांख्यदर्शन पर जितने ग्रन्थ हैं उनमें सांख्यतत्त्वकौमुदी सबसे प्राचीन है ।

सांख्यसूत्र के नाम से आज कल जो प्रचलित है और जिस पर विज्ञान-भिक्षु ने सांख्य प्रवचनभाष्य और अनिरुद्ध ने टीका लिखी है, बहुतें के मत में कपिलकृत सांख्यसूत्र नहीं है । वाचस्पति की सांख्यतत्त्वकौमुदी से सङ्कलित है । सांख्यदर्शन का मत महाभारत की रचने बहुत पहले माना जाता था । महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों में जिन सांख्यतत्त्वों का उल्लेख है वे परस्पर में एकता नहीं रखते । शङ्कराचार्य ब्रह्मसूत्रभाष्य में लिखा है कि जैसे महावीरों के मरण में प्रधान योद्धा को हरा देने से बाकी योद्धा आ हार मान लेते हैं वैसे ही सांख्यमत का स्वरूप करने से बाकी मत आपसी खण्डित हो सके हैं इससे सांख्यदर्शन का महत्त्व और उसकी प्राप्ति नता सिद्ध होती है ।

### न्यायसूत्रकर्त्ता गौतम की जन्मभूमि

यह जानना दुस्तर है कि न्यायदर्शन की उत्पत्ति कब हुई । न्यायसूत्रकर्त्ता गौतम कौन थे ? किस काल या नगर में उनका जन्म हुआ ? उनके पिता का नाम क्या था ? वे संसारी थे या त्यागी ? ये बातें ठीक नहीं जानी गईं । वायुपुराण में लिखा है कि महर्षि गौतम ने श्वेत-वाराहकल्प में ब्रह्मा का मानस पुत्र होने से जन्म लिया था । वाल्मीकि-रामायण में एक गौतम का उल्लेख है जो अहल्या के पति थे । उन्होंने शक्र-इन्द्र सहस्रलोचन हुए थे । महामहेपाचार्य महर्षि चन्द्र व्यायरत्न ने अपने एक लेख में लिखा है कि सारन ज़िले के रिदेलगंज कसबे के पास गटन में गौतम टमसन नामक पाठशाला थी । किसी के मत से वही स्थान न्यायदर्शन-कर्त्ता की जन्मभूमि है । कोई कहते हैं, मगध से मिल जाने वाले मार्ग में, बकसर के पास, गङ्गा के किनारे पर गौतम का आश्रम था । बहुतें का मत दरभङ्गा से सीतामढ़ी को जो रेल की लाइन उसके पास कहीं गौतम का आश्रम था । पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा है । लोग कहते



संख्या ७]

ही ब्रह्म की पाषाण-देह है। वहीं गौतम का प्राथम भी था। यह स्थान दरभङ्गा से तीन कोस पर ईशान-कोण में है।

प्राचीन समय से आज तक मिथिला में न्याय-शास्त्र की विशेष चर्चा चली आती है। इससे ज्ञात होता है कि गौतम की जन्मभूमि मिथिला में ही रही होगी। दिग्विजय शङ्कराचार्य ने मिथिला के प्रसिद्ध वैदिक और मीमांसक मण्डन मिश्र को पराजित किया था। गौतमसूत्र के भाष्यकर्ता पक्षिल स्वामी (वात्स्यायन), तत्त्वचिन्तामणि के कर्ता गङ्गशंकराचार्य, न्यायपदार्थमाला के लेखक पक्षधर मिश्र, किरणावतीप्रकाश के निर्माता वर्द्धमान उपाध्याय, न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका के प्रणेता वाचस्पति मिश्र आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने मिथिला ही में जन्म-ग्रहण किया था।

नवद्वीप में न्याय-शास्त्र की चर्चा।

पन्द्रहवीं शताब्दि के शेष भाग में पण्डित सुनाथ शिरोमणि ने मिथिला में न्यायदर्शन का अध्ययन करके बङ्गदेश में उसका प्रचार किया। उसके बाद नवद्वीपनिवासी जगदीश तर्कालङ्कार, सुनाथ तर्कवागीश, विश्वनाथ न्यायपञ्चानन, पक्षधर भट्टाचार्य आदि विद्वानों ने इस शास्त्र की बहुत उन्नति की। यह जानना कठिन है कि नवद्वीप में प्रथम नैयायिक कौन थे। महेशचन्द्र न्यायरत्न जी अपने किसी प्रबन्ध में लिखा है कि कुसुमाञ्जलि टीकाकार रामभद्र सिद्धान्तवागीश नवद्वीप के आदि नैयायिक थे। उनके बाद वासुदेव सार्वभौम, सुनाथ शिरोमणि, भवानन्द सिद्धान्तवागीश आदि नैयायिकों का जन्म हुआ।

गौतम ने जो सूत्र बनाये थे उनके आदि भाष्यकार पक्षिल स्वामी हैं। उनके बाद उद्योतकर, वाचस्पति, उदयनाचार्य आदि ने क्रम से न्यायसूत्रों पर तार्किक, वार्तिकतात्पर्य टीका, वार्तिकतात्पर्यटीका-इत्यादि की रचना की। इसके सिवा विश्वनाथ आदि विद्वानों की भी न्यायसूत्र-

वृत्ति वर्तमान है और रामकृष्णकृत तर्कचन्द्रिका—उदयनाचार्यकृत द्रव्यप्रकाश, किरणावली, आत्म-तत्त्वविवेक और कुसुमाञ्जलि—रघुदेव भट्टाचार्य-कृत द्रव्यसारसंग्रह, महादेव-पण्डित-कृत न्यायकौस्तुभ, बल्लभ-पण्डित-कृत न्यायलीलावती, अनन्तभट्ट-कृत-पदार्थचन्द्रिका, धर्मोत्तराचार्य-कृत \* न्यायविन्दु-टीका इत्यादि बहुत से ग्रन्थों से न्यायशास्त्र की पुष्टि हुई है।

न्यायभाष्यकार पक्षिल स्वामी और दिङ्नाग का वृत्तान्त।

पक्षिल स्वामी किस समय हुए—यह निश्चित नहीं। जैन पण्डित हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि ग्रन्थ में पक्षिल स्वामी और चाणक्य को एकही व्यक्ति माना है। पक्षिल स्वामी और चाणक्य यदि एकही व्यक्ति हों तो ईसा के पहले, चौथी सदी में चन्द्रगुप्त के यहाँ उनका होना निश्चित हो सकता है। वाचस्पति मिश्र ने न्यायवार्तिक-तात्पर्य-टीका में लिखा है—“भगवान् पक्षिल स्वामी ने न्यायसूत्र पर जो भाष्य लिखा था दिङ्नागाचार्य आदि बौद्ध पण्डितों के कुतर्क से वह दब सा गया। उसके उद्धार के लिए उद्योतकर ने न्यायवार्तिक लिखा था और उसकी मैंने टीका लिखी है।” कालिदास ने मेघदूत में दिङ्नाग को अपने काव्य का निन्दक माना है। उससे मालूम होता है कि दिङ्नाग कालिदास के समय में वर्तमान थे। राय शरश्चन्द्रदास बहादुर, सी० आई० ई०, ने तिब्बती ग्रन्थों के अनुसन्धान से निश्चित किया है कि दिङ्नागाचार्य ने, दक्षिण में, काञ्ची नगर के पास सिंहवक्र गाँव में जन्म लिया था। वे ब्राह्मण थे और बाल्यकाल में उन्होंने न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। पीछे, बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर, वे नागदत्त

\* धर्मोत्तराचार्य बौद्धमतावलम्बी थे। उन्होंने बौद्ध मत के अनुसार न्यायविन्दु की टीका बनाई है।



के सम्प्रदाय के अनुयायी हुए। वे वसुबन्धु \* के शिष्य थे। उत्कलदेशाय दार्शनिक पण्डितों को परास्त करके उन्होंने तर्कपुङ्गव की पदवी प्राप्त की थी। दिङ्नाग का प्रमाणसमुच्चय ग्रन्थ तिब्बत के एक पुस्तकालय में वर्तमान है।

न्यायदर्शन का संक्षिप्त उद्देश यह है:—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन इन्हीं ९ पदार्थों को महर्षि गौतम नित्य मानते हैं और इन्हीं से सम्पूर्ण विश्व की रचना भी वे मानते हैं। उनका कथन है कि पृथ्वी, जल, तेज आदि के परस्पर संयोग से जड़ जगत् की उत्पत्ति हुई है। जड़ जगत् के साथ जीवात्मा के संयोग से बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, भावना, धर्म, और अधर्म इन नौ प्रकार के गुणों की सृष्टि हुई है। पृथ्वी पर जन्म लेकर हम लोग इन गुणों से बंध से जाते हैं। इस बन्धन में पड़ते ही हमको सुख-दुःख का अनुभव होने लगता है। संसार में दुःख की अधिकता है। इससे जो थोड़े से सुख का अनुभव होता है वह भी दुःख में ही परिणत हो जाता है। जन्म लेने से सदा दुःख ही भोगना पड़ता है। जड़ जगत् के साथ जीवात्मा का संयोग न होने देना और तद्द्वारा दुःख का नाश करना ही न्यायदर्शन का प्रधान उद्देश है। न्यायदर्शनानुसारी तत्त्वज्ञान के अनुशीलन से किस तरह दुःख का नाश होकर आत्मा को मोक्षलाभ होता है, यही इस शास्त्र में वर्णित है।

### सांख्यदर्शन के आधार पर न्यायदर्शन की उत्पत्ति ।

सम्भव है कि महर्षि गौतम ने कपिल का मत अवलम्बन करके अपना दर्शन बनाया हो। कपिल ने कहा है, प्रकृति (जड़जगत्) और पुरुष (जीवात्मा) के परस्पर सम्बन्ध से यथाक्रम महत्, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्र और पञ्चमहाभूत की

\* वसुबन्धु ५४० ईसवी में विद्यमान थे।

सृष्टि हुई है। गौतम ने इन पच्चीस तत्त्वों से महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र और वाक्, पाणि, पाद, पाशु, उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियों को छोड़ कर, शेष जीवात्मा, पञ्चभूत और चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वग् और मन इन छः इन्द्रियों का अस्तित्व स्वीकार किया है और इन्हीं से जगत् की रचना मानी है। कपिल ने परमात्मा, काल और दिक्-इन तीनों पदार्थों को छोड़ दिया है। गौतम ने इनको नहीं छोड़ा।

### बौद्धदर्शन का समय ।

बौद्ध धर्म के संस्थापक शाक्य मुनि थे। उन्होंने कपिल का मत लेकर अपने मत का प्रचार किया है। बौद्धदर्शन, प्रधान रूप से, चार श्रेणियों में विभक्त है—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। इनमें माध्यमिक दर्शन अधिक प्राचीन है। ईसा के पहले, चौथी या पाँचवीं सदी में बने हुए प्रज्ञापारमिता नामक ग्रन्थ में माध्यमिक दर्शन का जैसा वर्णन है उससे मालूम होता है कि यह मत बहुत काल पहले से प्रचलित था। ईसा के पहले, दूसरी सदी में, विदर्भदेशीय आर्य नागार्जुन नामक सुप्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक ने इन दार्शनिक मतों का संग्रह करके माध्यमिक सूत्र की रचना की। चन्द्रकीर्ति ने उस पर वृत्ति बनाई। राजा शरच्चन्द्रदास बहादुर ने तिब्बतीय ग्रन्थों से निष्कर्ष किया है कि नागार्जुन ने ईसा के पहले, दूसरी सदी में, विदर्भ देशीय ब्राह्मण-वंश में जन्म लिया और बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर प्रज्ञापारमिता-टीका आदि बहुत से ग्रन्थ लिखे। बोधिचर्यावतार के निर्माता शान्तिप्रभ ने लिखा है—“दर्शनशास्त्र सभी सूत्र-ग्रन्थ अवलोकनीय हैं। विशेष करके आर्यनागार्जुन-कृत सूत्र-समुच्चय तो जरूर ही देखना चाहिए। चीन देश के प्रसिद्ध परिव्राजक ह्युयन्सांग ने अपने भारतवर्षीय भ्रमणवृत्तान्त में लिखा है—“जिन चार सूर्यों के उदय से संसार प्रकाशित होता है उनमें एक आर्यनागार्जुन भी हैं।” राजा



[ अन्तर्ग ७ ]

पण्डितों में नागार्जुन नामक किसी बौद्ध पण्डित का उल्लेख मिलता है। उन्होंने बहुत से आराम और विहार इत्यादि बनवाये थे। माध्यमिक-सूत्र-कर्ता नागार्जुन और वे एकही थे या दो, यह ज्ञात नहीं। माध्यमिक सूत्र के वृत्तिकार चन्द्रकीर्ति ईसा की सातवीं या आठवीं सदी में थे।

रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार इन पाँच स्कन्धों को छोड़ कर बौद्ध लोग और कोई पदार्थ नहीं मानते। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाँच विषय-चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् और मन ये छः इन्द्रियाँ-इन सब को मिला कर एकादश पदार्थों की रूपस्कन्ध संज्ञा मानी गई है। विषयों के साथ इन्द्रियों का जो सम्बन्ध है उससे बुद्धिनास्कन्ध (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है। उसके बाद 'अहं' किंवा 'मैं'-संज्ञक जो ज्ञान पैदा होता है वह विज्ञानस्कन्ध कहलाता है। ज्ञान के साथ नाम और रूप का जो बोध होता है वह संज्ञास्कन्ध है। इस अहंज्ञान और नाम-रूप इत्यादि ज्ञानसमूह से संस्कार-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। इन पाँच स्कन्धों से वर्तमान जो ज्ञान-समूह है वही आत्मा है। बौद्ध लोग कार्य-कारण में भेद नहीं मानते।

माध्यमिक योगाचार आदि सम्प्रदाय वाले बौद्धों के मत।

माध्यमिक-सम्प्रदाय के बौद्ध किसी भी पदार्थ को यथार्थ सत्ता नहीं मानते। तात्त्विक दृष्टि से वे लोग जड़ और चेतन को भी कोई पदार्थ नहीं मानते। उनके मत में विश्व शून्यता का विवर्त और विश्व का परिणाम शून्यता है। दृश्यमान जगत् माया मात्र है। हमारी अविद्या का नाश होते ही जगत् शून्यता में परिणत हो जायगा। योगावस्था-पूर्वक इस असीम, अनादि, अतिगम्भीर और अगाध शून्यता की भावना करना उचित है। इस तरह भावना करते करते योगी शून्यता में लीन हो जायगा और उसकी मुक्ति हो जायगी। उसको पारमार्थिक दुःखों से दुःखित होना न पड़ेगा। योगा-

चारी बौद्ध ज्ञान के सिवा दूसरे विषय का अस्तित्व नहीं मानते। वे कहते हैं कि ज्ञानसमूह क्षणिक है। ज्ञानसमूह जो अविच्छिन्न प्रवाह पैदा करता है वही आत्मा है। सौत्रान्तिक लोग ज्ञान को मानते हैं और कहते हैं कि यद्यपि हम बाहरी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने में असमर्थ हैं तथापि ज्ञान से उनका अस्तित्व स्वीकार कर सकते हैं। वैभाषिक लोग बाहरी पदार्थ और ज्ञान दोनों को मानते हैं। इससे साफ मालूम होता है कि सांख्यदर्शन की छाया लेकर ही बौद्धदर्शन की रचना हुई है।

वैशेषिक और बौद्धदर्शन, न्यायदर्शन के बाद बने हैं।

ध्यान देकर आलोचना करने से ज्ञात होता है कि बौद्ध और वैशेषिकदर्शन न्यायदर्शन के पीछे बने हैं। महर्षि गौतम परमाणुवाद के संस्थापक हैं। जड़पदार्थ परमाणुओं से बने हैं, यह गौतम का ही आविष्कार है। कणाद ने परमाणुवाद को पूर्ण रूप से माना है; किन्तु उनके मत में विशेषता यह है कि परमाणुसमूह के परस्पर भेद की सिद्धि के लिए उन्होंने परमाणुगत एक एक विशेष पदार्थ को भी माना है। इसीलिए उनके दर्शन का नाम 'वैशेषिक' पड़ा। कणाद ने महर्षि गौतम के स्वीकृत प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान और शाब्द-इन चार प्रमाणों में उपमान और शाब्द को छोड़ कर प्रत्यक्ष और अनुमान को ही प्रमाण माना है।

मालूम होता है कि बौद्धों का क्षणविज्ञानवाद गौतम के परमाणुवाद का अनुकरण मात्र है। गौतम ने कहा है—जड़ पदार्थ बहुत थोड़ी जगह घेरते हैं। योगाचारी बौद्ध कहते हैं—ज्ञानसमूह बहुत थोड़ी देर तक रहते हैं।

मीमांसादर्शन, जैमिनि, शबरस्वामी

और कुमारिल भट्ट।

बहुतों का मत है कि मीमांसादर्शनकार महर्षि जैमिनि ने शाक्य मुनि के पीछे जन्म लिया है। कहा



जाना है कि जैमिनि बौद्धधर्मावलम्बी बन कर किसी बौद्ध के पास पढ़ने गये थे। परन्तु गुरु के मुख से निरीश्वरवाद सुन कर उनकी आँखों में जल भर आया। इससे बौद्धों ने उनको कपटी समझ कर निकाल दिया। पीछे, बौद्धों के वेदविरोध का प्रमाण पाकर, उन्होंने अपने बुद्धिबल से मीमांसा-दर्शन की रचना की। किन्तु उनके हृदय में पूर्व-गुरु का निरीश्वरवाद दृढ़ हो गया था। इसलिए उन्होंने मीमांसा में ईश्वर का अस्तित्व नहीं स्वीकार किया। उनके बाद शबर स्वामी ने मीमांसाभाष्य और कुमारिल भट्ट ने \* मीमांसावार्तिक में अनेक दार्शनिक तत्त्वों का समावेश किया। भट्टपाद, गुरु-पाद, प्रभाकर आदि दार्शनिक पण्डितों ने इस दर्शन के जटिल तत्त्वों का स्पष्टीकरण किया। कहते हैं कि शबरस्वामी का असल नाम आदित्यदास था। बौद्धों के भय से शबरो, अर्थात् भीलों, के साथ रहने से उनका नाम शबरस्वामी पड़ा। किसी किसी का मत है कि ये उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य के पिता थे। इस मत के सत्यासत्य का पता लगाना कठिन है।

### पतञ्जलि और योगदर्शन।

महाभाष्यकार और योगदर्शनकार पतञ्जलि एक ही थे या भिन्न भिन्न, इस विषय में अनेक मत हैं। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भाष्यकार पतञ्जलि ईसा के पहले, दूसरी सदी के आरम्भ में, विद्यमान थे। योगदर्शन-कर्त्ता पतञ्जलि ने सब विषयों में सांख्यदर्शनकार कपिल का अनुसरण किया है। विशेषता यह है कि कपिल ने ईश्वर की सत्ता नहीं मानी; किन्तु पतञ्जलि ने परमात्मा की सत्ता स्वीकार करके योग द्वारा जीवात्मा का परमात्मा में लीन होना प्रतिपादन किया है।

\* कुमारिल भट्ट का समय अज्ञात है। किन्तु अपने मीमांसावार्तिक में 'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त-करणप्रवृत्तयः।' यह कालिदास के शाकुन्तल का श्लोक उन्होंने लिखा है। इससे सिद्ध है कि वे कालिदास के बाद हुए हैं।

### वेदान्तदर्शन, बौधायन भाष्य और द्वैत तथा अद्वैतवाद इत्यादि।

यह निर्णय करना कठिन है कि ब्रह्मसूत्र, अद्वैत वेदान्तदर्शन, का वास्तविक कर्त्ता कौन है। सूत्रों में बादरि, बादरायण और जैमिनि का नाम नहीं है। बहुत लोग कहते हैं कि यह दर्शन महर्षि कृष्णद्वैपायन का बनाया हुआ है। परन्तु इससे बादरायण और कृष्णद्वैपायन के भिन्न व्यक्ति सिद्ध होते हैं। मूल सूत्र में योगदर्शन क्षणिकवाद, शून्यवाद इत्यादि दार्शनिक मतों का उल्लेख होने से मालूम होता है कि यह दर्शन इन सब दर्शनों के बाद बना है। शङ्कराचार्य, रामानुज, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य आदि दार्शनिकों ने अपने अभिप्राय के अनुसार इसी सूत्र-ग्रन्थ आधार पर अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और द्वैतवाद आदि मतों का आविर्भाव किया है। ब्रह्मसूत्रों पर बौधायन भाष्य सबसे प्राचीन है। अपने वेदान्तभाष्य में रामानुज ने बौधायन मत उद्धृत किया है।

### माध्यमिक-दर्शन और शङ्करस्वामी का अद्वैतवाद।

माध्यमिक-सम्प्रदाय के बौद्धों तथा शङ्कर के मत में विशेष समता देखी जाती है। माध्यमिकों ने जैमिनि के पारमार्थिक और सांघातिक ये दो प्रकार की अवस्थाएँ मानी हैं वैसे ही शङ्कराचार्य ने भी पारमार्थिक और व्यावहारिक अवस्थाएँ मानी हैं। माध्यमिकों का मत है कि मुक्तावस्था में जीवात्मा और जगत् ब्रह्मभाव में परिणत हो जाते हैं। शङ्कराचार्य का मत है कि जीवात्मा और जगत् ब्रह्मभाव में लीन हो जाते हैं। शङ्कराचार्य जिसे निर्गुण ब्रह्म कहते हैं उसी को बौद्ध शून्य कहते हैं। वेदों के मत के अनुसार मुक्तावस्था में अविद्या का नाश होना माना जाता है। वेदान्तियों के मत से 'ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान उत्पन्न होने से मुक्तिलाभ होता है।



[ भाषा ७ ]

बौद्धों के मत से “मैं शून्य हूँ” इस ज्ञान से निर्वाणलाभ होता है । सर्वदर्शनसंग्रह के कर्त्ता महावाच्य ने पद्मपुराण \* से जो वाक्य उद्धृत किया है उसमें लिखा है कि मायावाद छिपा हुआ बौद्ध मत है । पण्डित राजेन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए० का मत है कि यह वचन शङ्कराचार्य के बाद मायावाद पर कटाक्षमात्र करने के लिए लिखा गया है । विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि मायावाद को प्राचीन बौद्धमत में स्थान नहीं मिला ।

### महात्मा चैतन्य और वैष्णवदर्शन ।

बहुत लोगों का मत है कि रामानुज-स्वामी वैष्णवदर्शन के प्रचारक हैं । नवद्वीप में चैतन्यस्वामी १४८४ ईसवी में जन्म लेकर भगवद्गीता, भागवत और महावाच्य के ब्रह्मसूत्र-भाष्य आदि के आधार पर जो नवीन मत फैलाया उससे वैष्णवदर्शन को बहुत उन्नति हुई । चैतन्य प्रभु द्वैतवादी थे । उन्होंने भक्तिमार्ग का बङ्गाल में बहुत प्रचार किया । वैष्णव लोग सच्चिदानन्द ब्रह्म के परमानन्द-भाव को उपासक हैं । वे लोग, वेदान्तियों की भाँति, जीव और ब्रह्म की एकता नहीं मानते । वे ईश्वर और जीव का उपास्य-उपासक सम्बन्ध मानते हैं । ईश्वर साथ जीव शान्त, दास, सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव में स्थिति कर सकता है । इन सब भावों के अलग अलग अर्थ हैं । भक्त का ईश्वर में तन्मय-भाव ही मुक्ति है । सांख्य, न्याय, वैशेषिक, बौद्ध, और वेदान्त दर्शनों के अनुसार संसार दुःखमय है । उससे छूटना ही परमपुरुषार्थ है । परन्तु चैतन्यप्रभु का मत है जन्म-जन्मान्तर पाकर ईश्वरसेवा करना ही परमपुरुषार्थ है । जन्म का उच्छेद—प्रेममय संसार का निरवियोग—वैष्णवों को अभिमत नहीं । प्राचीन दर्शनियों ने ईश्वर को निर्गुण वर्णन किया है ; वे वैष्णवों के मत से ईश्वर सगुण है ।

\* “मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छेदं बौद्धमेव तत् ।  
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥  
पद्मपुराण ।

### पाश्चात्यदर्शन ।

आज कल के पाश्चात्य दार्शनिकों में कोई कोई जीवात्मा को स्वतन्त्र और नित्य नहीं स्वीकार करते । वे कहते हैं कि रूप से चाक्षुष स्नायु पर आघात होने से स्नायु-गत एक प्रकार के स्वच्छ और तरल पदार्थ का जो कम्पन होता है उसमें एक प्रवाह उत्पन्न हो जाता है । वह जब मस्तिष्क-गत स्नायु पर आघात करता है तब दर्शन प्रत्यक्ष होता है । रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द द्वारा क्रम से जिह्वा, नासिका, त्वक् और कर्ण के स्नायु पर आघात पहुँचने से इन सब इन्द्रियों का उसको बोध होता है । निर्विकल्प ज्ञान से सविकल्प ज्ञान की उत्पत्ति होती है । इस मत में मानव देह एक स्नायविक यन्त्र मात्र है । बाह्य जगत् की शक्ति से इस अत्याश्चर्यपूर्ण यन्त्र का परिचालन होता है । गति, स्थिति, अनुभूति इत्यादि इस यन्त्र के काम हैं । स्नायविक उत्तेजना किस प्रकार ज्ञान में परिणत हुई—इसका यथार्थ विचार किसी से नहीं हो सका । योरप के कोई कोई दार्शनिक, ज्ञानसमूह को मान कर भी, आत्मा को ज्ञान का आश्रय नहीं मानते ।

### भारत में जन्मान्तरवाद ।

हिन्दुओं और बौद्धों के सिवा किसी और धर्माबलम्बी ने जन्मान्तर को नहीं माना । हिन्दू और बौद्ध धर्म ही सबसे पहले भारतवर्ष में उत्पन्न हुए । इसलिए जन्मान्तरवाद भारतवर्ष ही का है । ईसा की छठी सदी में पियागोरस आदि दार्शनिकों ने ग्रीस देश में इस मत का प्रचार किया था । परन्तु वे इसके उद्भावक न थे । पुरातत्त्वविशारदों का अनुमान है कि पियागोरस भारतवर्ष से ही इस मत को ले गया था । प्राचीन काल में मिश्र देश में भी जन्मान्तरवाद माना जाता था । उन लोगों ने हिन्दुओं या ग्रीक लोगों से इस मतकी शिक्षा पाई थी । भारतवर्ष में किस समय किस ऋषि ने इस मत का आविर्भाव किया, इसका निश्चय करना कठिन है ।



बहुत से यूरोपीय तथा भारतवासी विद्वानों का मत है कि जन्मान्तरवाद निरीश्वरवादी लोगों का प्रचलित किया हुआ है। यदि पहले जन्मों का कर्म-फल ही आगे के जन्मों में सुख-दुःख का कारण माना जाय तो सबसे पहले के जन्म और कर्मफल का निर्णय करना कठिन हो जाता है। इसी लिए दार्शनिक विद्वानों ने संसार को अनादि माना है। कालान्तर में जैसे फूल ही फल के रूप में स्वयं परिणत हो जाता है वैसे ही इस जन्म और दूसरे जन्म में किया गया पाप-पुण्य आत्मा में संस्कार रूप से विद्यमान रह कर कालान्तर में स्वयं आत्म-ग्लानि या आत्मप्रसाद में परिणत हो जाता है। इस आत्मग्लानि या आत्मप्रसाद के ही कारण हम लोग रोग, शोक, परिताप, बन्धन आदि भोगते हैं और दया, क्षमा, परापकार आदि कामों में दत्त-चित्त रहते हैं।

परन्तु जन्मान्तरवाद को निरीश्वरवादी लोगों का ही प्रचलित किया हुआ मानना भ्रम है। ऋग्वेद, उपनिषदों और पुराणों में बहुत तरह की ईश्वर की कथायें वर्णित हैं। उनसे जन्मान्तरवाद भी अच्छी तरह सिद्ध होता है। हमारे सुख-दुःख का उपादान कारण धर्म और अधर्म है सही, किन्तु उसका निमित्त कारण ईश्वर है। जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है और उसका निमित्त कारण कुम्हार। हम लोग धर्म और अधर्म के अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करते हैं; पर उस सुख-दुःख का नियन्ता कौन है? इस-लिए यह अवश्य कहना होगा कि सुख-दुःख के साथ जीव को ईश्वर ही संयुक्त करता है। प्रोफ़ेसर मोक्ष-मूलर ने लिखा है—“जन्मान्तर हो या न हो; पर जगत् में कोई सुखी, कोई दुखी, कोई धनी, कोई दरिद्र—इस प्रकार का वैषम्य क्यों देखा जाता है? भारतीय ऋषियों ने इसका कारण जन्मान्तर मान कर अपनी असीम प्रतिभा का परिचय दिया है। भूमण्डल के किसी देश में कोई विद्वान् ऐसी सूक्ष्म विचारशक्ति प्रकट करने में समर्थ नहीं हुआ”।

## भारतीय मुक्तितत्त्व

मुक्ति के विषय में भारतवर्ष के ऋषियों ने जो तत्त्व आविष्कार किया है वह किसी देश में नहीं पाया जाता। मुक्तावस्था में जीवात्मा परमात्मा के स्वभाव में अवस्थान करता है। कपिल कहते हैं कि जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, और मुक्तस्वभाव है। सांसारिक स्थिति में देह के सहित जीवात्मा का जो अनिर्देशनीय बन्धन होता है—उत्का पूर्ण नाश होने पर वह अपने रूप को प्राप्त हो जाता है। गौतम कहते हैं कि देहबन्धन से मुक्त हुआ जीवात्मा, सुख-दुःख-रहित होकर, निर्गुणभाव को प्राप्त होता है। वेदान्ती कहते हैं कि मुक्तावस्था में जीवात्मा परमात्मा में लीन हो कर सच्चिदानन्द-भाव को प्राप्त होता है। कोई कोई मीमांसक कहते हैं कि मुक्ति में आनन्द नित्य-सुख का साक्षात्कार-लाभ करता है। महाभारत में यान (माध्यमिक) सम्प्रदाय के बौद्ध कहते हैं कि मुक्ति में जीवात्मा शून्यता में लीन हो जाता है। वैष्णवों का मत है कि मुक्ति की अवस्था में जीवात्मा ईश्वर के समीप और तन्मय भाव को प्राप्त होता है। मुक्तावस्था में दुःख का समूल नाश होता है। यही सारे मतों का अभिप्राय है। ज्ञान, योग, कर्म और भक्ति—मुक्ति के ये चार उपाय हैं।

## ईश्वर

श्रुतियों में लिखा है कि स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माता एक देव है। वह विश्व का नियन्ता भुवन का रक्षक है\*। उसी को जानने से मुक्ति प्राप्त करने में जीव समर्थ होता है†। महर्षि गौतम और कणाद ने कहा है कि कार्यमात्र का कोई कर्ता नहीं है। इस पृथ्वी-रूप कार्य का जो कर्ता है वही ईश्वर है।

\* द्यावाभूमी जनयन् देव एक आस्ते विश्वस्य भुवनस्य गोप्ता । श्रुतिः

† तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विवर्जितः नाय । श्वेताश्वतरोपनिषत् ।



संख्या ७ ]

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि योग द्वारा प्रत्यक्ष किया जा सकता है । व्यासजी कहते हैं कि जिससे इस दृश्यमान जगत् का आविर्भाव हुआ है वही ईश्वर है ।

यही भारतीय दर्शनों का संक्षिप्त वृत्तान्त है । वैदिक रहस्यों का ऐसा विचार किसी देश की किसी जाति में आज तक नहीं हुआ ।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

## प्रेम ।

जो कल्पना, जो लालसा, जो चोभ, मोद विचार हैं, मानव-हृदय के बीच उगते प्रेम के उद्गार हैं । प्रेम जग का आदि कर्ता, सृष्टि का यह सार है, प्रेम का पोषक, समर्थक ईश का आकार है ॥ १ ॥ प्रेम श्रेष्ठ कार्यों का जगत् में प्रेम ही उद्देश है, प्रेम, योग, ज्ञान, तर, ध्यान का यह प्रेम ही अवशेष है । आनन्द आध्यात्मिक समुत्पत्ति का यही भाण्डार है, प्रेम धर्म कर्म पवित्र का यह प्रेम ही आधार है ॥ २ ॥ प्रेम के आशीर्ष नभ में जगत्गती तारिका, प्रेम के लीलावन में 'लगन' वर कोकिला शुक सारिका । प्रेम प्रसन्नलोक समीरण का विदित संसार में, प्रेम में शरी, रवि भ्रमण करते शुद्ध प्रेम-प्रचार में ॥ ३ ॥ प्रेम भेद गिरिवर-गात्र को, अविच्छन्न अलौकिक टेक से, प्रेम जलधि की ओर नदियां प्रेम के उद्गार से । प्रेम नैलाकाश में जब खिलखिलाता चाव से, प्रेम जलनिधि है उमड़ता, प्रेम ही के भाव से ॥ ४ ॥

इत्येतेः सकर्तृका कार्यत्वात् घटवत्—इत्याद्यनुमानेन प्रतीतिरिति गौतम-कणादमतम् ।

जन्माद्ययतः । ब्रह्मसूत्रम् ।

महामहोपाध्याय सतीशचन्द्रविद्याभूषण, एम० ए०, डी० के बैंगलाग्रन्थ आत्मतत्त्वप्रकाश के आधार पर

घन-अङ्क में बिजुली समाती प्रेम के उच्छ्वास से, शोभा बढ़ाता गुल्म गुम की प्रेम के आभास से । घन देख केकी नाचते हैं विवश होकर प्रेम से, हिमकर चकोर निहारते हैं प्रेम ही के नेम से ॥ ५ ॥ वर कामनी के वसन के हित कीट देते प्राण हैं, करती पुरुष के हेत रमणी रूप-यौवन-दान है । हैं भृङ्ग के सुख के लिए खिलते तड़ागों में कमल, हैं मीन के सुख के लिए सहते कठिन हिम ताप जल ॥ ६ ॥ मृग के लिए है वेणु रोती छेद छाती में किए, दीपक जलाता देह अपनी शलभ के सुख के लिए । अपने लिए न कदापि बरबस प्रेम करना चाहिए, परहित विमल जल से सदा हिय-ताल भरना चाहिए ॥ ७ ॥ है प्रेम जग का देवता सिद्धान्त सहज पुनीत है, मिथ्या जगत् का सब प्रपञ्च न प्रेम दैविक गीत है । नाना स्वरूपों से विचरता प्रेम है संसार में, छवि देख लो इसकी मनोहर लोक में परिवार में ॥ ८ ॥ वह शिष्य-श्रद्धा, तात का वात्सल्य भाव पवित्र है, त्यों स्नेह माता का सुपावन स्वजन नेह विचित्र है । सात्विक सती का सत्य धर्म कठोर प्रेमोपासना, त्यों भक्ति भक्तों की भली संन्यासियों की साधना ॥ ९ ॥ साहित्य की सेवा प्रशंसित देश की हितकामना, त्यों धर्म का पालन जगत् में वैरियों का सामना । ये प्रेम के सब भिन्न रूप अनूप परम पुनीत हैं, सब धर्म वृत्त साधन क्रियायें प्रेम ही के मीत हैं ॥ १० ॥ जो भक्ति, संयम, ध्यान, पूजन कीर्तनादिक हैं कड़े, वे विविध सुन्दर नाम केवल प्रेम ही के हैं पड़े । है यज्ञ अद्भुत प्रेम प्यारे उच्च प्रेमी के लिए, यज्ञाग्नि में निज स्वार्थ का शाकल्य देना चाहिए ॥ ११ ॥ है प्रेम यज्ञ न पूर्ण होता स्वार्थ की आहुति बिना, निःस्वार्थ प्रेमी के गुणों को मैं नहीं सकता गिना । है आत्म-विस्मृत महा योगी सहज प्रेमी सदैव, इस बाह्य जग की ओर उसकी दृष्टि है जाती कदा ॥ १२ ॥ अपने सुखों की ओर वह भूत्प्रेम भी करता नहीं, उपहास, निन्दा, तापः दुख से वह कभी डरता नहीं । उठती नहीं है भूल कर भी कामना उसको कभी, हैं वासनार्यें सहज उसकी दग्ध हो जाती सभी ॥ १३ ॥



आराध्य प्रियतम के सिवा वह और किस को मानता;  
 आराध्य प्रियतम छोड़ कर जग में नहीं कुछ जानता ।  
 आराध्य प्रियतम को सदा सब वस्तु में अवगाहता;  
 आराध्य प्रियतम छोड़ कर वह और किसको चाहता ? १४  
 तन्मय सदाही मग्न रहता प्रेम ही के ध्यान में ।  
 निज को सदाही भूल जाता प्रेम ही के ज्ञान में ।  
 कर त्याग संस्रव स्वार्थ का वह प्रेम में अनुरक्त है,  
 आदर्श प्रेमी पुण्य-भाजन प्रेम का वह भक्त है ॥१५॥  
 जग में कभी प्रेमी नहीं कुछ मुक्ति को है मानता;  
 है मुक्ति प्रेम पुनीत ही मन में सदा वह जानता ।  
 अनुपम, मनोहर, सरल, सुखमय भाव उसके हैं सभी,  
 कोई नहीं है दुःख पाता विश्व में उससे कभी ॥१६॥  
 प्रभु के अनुग्रह के बिना कोई प्रणयि होता नहीं;  
 है प्रेम में उन्मत्त होकर दिवस निश रोता नहीं ।  
 प्रेमाश्रु मन को शुद्ध करता स्वार्थ को देता बहा,  
 सङ्कीर्णता, अपवित्रता, ममता नहीं रहती अहा ! ॥१७॥  
 पाकर प्रणयनिधि फिर नहीं नर याचना करता कभी,  
 उसके हृदय से निकल जातीं और इच्छायें सभी ।  
 सेवी प्रणय के पद-जलज का अन्य पुष्प न चाहता,  
 है प्रेम उज्ज्वल कल्पतरु सुख अपर है चञ्चल-लता ॥१८॥  
 शिवास्थली है प्रेम की संसार निश्चय जानिए,  
 जो प्रेम की शिवा न पाता अधम उसको मानिए ।  
 नर-जन्म उसका व्यर्थ है जो प्रेम का भूखा नहीं,  
 जो प्रेम का करता निरादर सुख नहीं पाता कहीं ॥१९॥  
 अतएव, वाचक, छोड़ कर झल प्रेम की सेवा करो,  
 हिय की कटोरी प्रेम के पीयूष से प्यारे भरो ।  
 पारस्परिक द्वेषादि तज कर प्रेम के रंग में रंगो,  
 अवसर नहीं फिर मिलेगा मोह-निद्रा से जगो ॥२०॥

व्रजनन्दनसहाय ।

## कारनेगी का शिल्पविद्यालय ।

It is really astonishing how many of the world's foremost men have begun as manual laborers. The greatest of all, Shakespeare, was a woolcarder; Burns,

a plowman; Columbus, a sailor; Hamilton, a blacksmith; Lincoln, a rail-splitter; Grant, a tanner. I know of no better foundation from which to ascend than manual labor in youth.

—Andrew Carnegie

भारतवर्ष के शिक्षित समाज को शिल्प-विद्यालय की आवश्यकता और उसकी महिमा का अनुमान होने लगा है, यह बड़े ही सौभाग्य की बात है देश के युवकों को आत्मावलम्बन का सबक सिखाने का एक मात्र यही उपाय है। हिन्दू-जाति में ऊँच-नीच का भेद-भाव है—हाथ से काम करने वालों पर जो घृणा है—उसको दूर करने का यह सहल तरीका है। देश की सम्पदा बढ़ाने, देश की भावी सन्तति को राजगार में लगाने, उनकी जाति के हितसाधन के योग्य बनाने का सर्वोत्तम अच्छा ढंग यही है कि उनको कलाकौशल यंत्रविद्या की शिक्षा दी जाय। भारत धन-धाय-पूर्ण देश है। वहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं,—सर्व आनन्द-पूर्वक रह सकते हैं—यदि हम अपनी सन्तति को आधुनिक जीवनयुद्ध के शस्त्रों से सजित करें

हमें प्राकृतिक दुनिया से मुकाबला करना है सस्ती चीजें बनाकर उन्हें भारत में बेचने वाले योरप तथा अमरीका से हमारा सामना है। इस जीत उसी की होगी जो अपने प्रतिद्वन्द्वियों के समान बुद्धिमान और कार्यपटु होगा। सुस्त, काहिल, अशिक्षित, साम, दाम, दंड और भेद को न जानने वाली जाति से यह काम न होगा। जिनका हाथ मुकाबला करना है उनके गुण-दोषों की पहचान करनी चाहिए; उनकी सी कार्यपटुता सीखनी चाहिए; उनके सहश दलबद्ध होना चाहिए, उनकी भाँति अपने यहाँ शिल्प-विद्यालय खोलने चाहिए और सबसे बढ़कर हाथ से काम करने वालों को आदर करना चाहिए—क्योंकि यही लोग देश को दौलत बढ़ाते हैं। इन्हीं के सिर पर स्वजाति का भार है। यही सबको टुकड़ा देते हैं। ऐसा



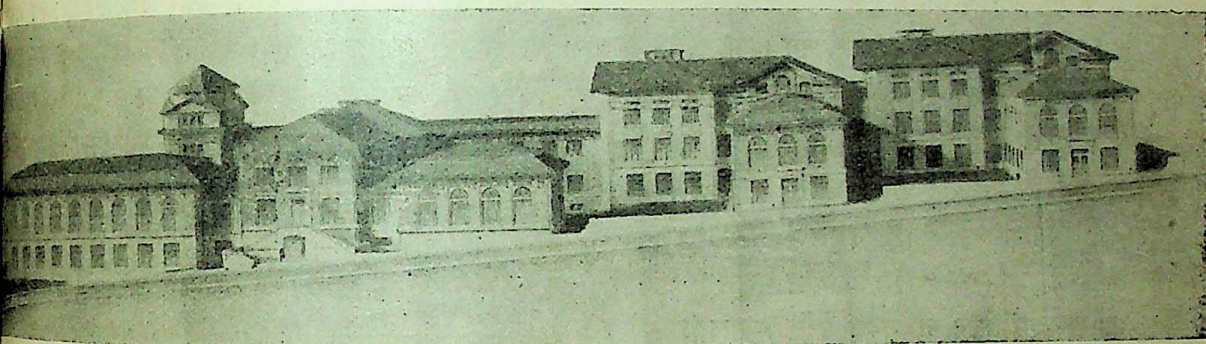
संख्या ७ ]

देश में आलसियों और बड़ी तोंदवालों की कदर हो जायगी और जो लोग दूसरों की कमाई पर बैठा उड़ाते हैं उनका हास हो जायगा ।

आइए, आज हम आपको अमेरिका के प्रसिद्ध कारनेगी-शिल्पविद्यालय का वृत्तान्त सुनावें । हमने उसे अपनी आँखों देखा है । इस वृत्तान्त से अमेरिका की उन्नति के कारण अल्पांश में आपकी समझ में आजायेंगे ।

अमेरिका की संयुक्त रियासतों की पेन्सिल-वेनिया रियासत में पिट्सबर्ग नामी एक बड़ा भारी नगर है । यहाँ पर जगद्विख्यात धनिक कारनेगी

साहब का स्थापित किया हुआ शिल्पविद्यालय देश के संख्यातीत युवकों को कलाकौशल और यंत्र-विद्या आदि की शिक्षा देता है । कारनेगी के विशाल पुतलीघर भी यहीं पर हैं । उनमें लोहे का काम होता है । यही इस 'लोहा-नरेश' (Steel King) की राजधानी है । अपनी इस राजधानी में, जहाँ श्रीमान् कारनेगी को करोड़ों रुपये की आमदनी है, ऐसे विद्यालय का खोलना बहुत ही उचित हुआ । इस विद्यालय के लिए आपने सत्तर लाख डालर दे दिये हैं ! एक डालर तीन रुपये का होता है । इस हिसाब से आपने दो करोड़ दस लाख रुपये खर्च करके यह शिल्पविद्यालय खोला है ।



कारनेगी शिल्पविद्यालय ।

या भारत का कोई सपूत ऐसा विद्यालय कलकर अपनी राजधानी की शोभा बढ़ावेगा ?

कारनेगी—शिल्पविद्यालय तीन भागों में विभक्त—ललित-कला, अजायबघर और कलाभवन । छः एकड़ भूमि में इनकी इमारतें हैं । विद्यार्थियों की इमारतों को पूरा करने का यहाँ सब सामान है ।

इमारतों का हाल सुनिए—

पहले कारनेगी-पुस्तकालय को लीजिए । पुस्तकालय क्या है शाही महल है । इस इमारत को देख कर हम दङ्ग रह गये । व्यसन हो तो ऐसा । इस संगमरमर के विशाल भवन में विद्यार्थियों के लिए चुन चुन कर पुस्तकें रक्खी गई हैं । इनकी संख्या तीन लाख पचास हजार के

करीब है । इनमें से ३५००० पुस्तकें वैज्ञानिक और यंत्र-विद्या-सम्बन्धी हैं, जो एक से एक बढ़ कर हैं । तीन सौ के करीब पत्रिकायें यहाँ आती हैं जिनको पढ़ कर विद्याव्यसनी जन अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं । इतनेही अखबार और साप्ताहिक पत्र भी इस पुस्तकालय की शोभा बढ़ाते हैं । पुस्तकालय का यह विभाग विद्वान् वैज्ञानिक लोगों की संरक्षा में है जिनसे हर प्रकार की सूचनायें मुफ्त मिलती हैं ।

और तमाशा देखिए । इस पुस्तकालय की एक सौ बीस शाखायें पिट्सबर्ग नगर में हैं । नगर के हाई स्कूलों के छात्र, कल्याणों के समाज, तथा मजदूरों की सोसाइटियाँ इन शाखाओं के द्वारा इस बृहत् पुस्तकालय से पूरा पूरा लाभ उठा सकती हैं । जो किताब जिसको चाहिए वह अपने शाखा-



विभाग के पुस्तकाध्यक्ष से कह देता है। वह उसकी खबर बड़े पुस्तकालय में कर देता है। दूसरे दिन किताब वहाँ पहुँच जाती है। यह सब मुफ्त, मुफ्त, मुफ्त।

देखा आपने। ऐसे तरीकों से विद्या-प्रचार हुआ करता है। बातों से काम नहीं निकला करते। हम लोग लाखों रुपया काशी आदि क्षेत्रों में व्यर्थ लुटा रहे हैं—निबद्धों की संख्या बढ़ा रहे हैं। पर काशी और गया में पुस्तकालय कितने खोले हैं? शिक्षित समाज से इतना नहीं हो सकता कि इस 'दान' का उचित प्रबन्ध करे और इससे विद्यालय, पुस्तकालय आदि खोलकर देश के बच्चों को विद्यादान दे।

अब अजायबघर की बात सुनिए। यह अजायबघर अमेरिका के चार बड़े बड़े अजायबघरों में से एक है। इसमें पन्द्रह लाख छोटी बड़ी दर्शनीय चीजें रखी हैं। यह संग्रह बहुत सा धन खर्च करके बड़े परिश्रम से किया गया है। इसमें खनिज, जड़ी बूटी और कीट-विद्या सम्बन्धी नमूने बड़े काम के हैं। पुरातत्त्व और नर-वंश-विद्या सम्बन्धी संग्रह भी अपने ढंग का इसमें एक ही है।

ललित-कला वाला विभाग और भी बढ़िया है। धनेक कारनेगी ने चुन चुन कर कुशल चित्रकारों के तैल चित्र यहाँ रखे हैं। अमेरिका तथा योरोप के चित्रकारों का सर्वोत्तम कौशल यहाँ देखने में आता है। जो विद्यार्थी इस कला में प्रवीण होने के लिए विद्यालय में भरती होते हैं वे घंटों इन चित्रों के सामने बैठ कर अभ्यास करते हैं।

इस विभाग की ओर से सार्वभौमिक (भारत को छोड़कर!) प्रशिक्षित होती हैं जिनमें सबसे अधिक कुशल चित्रकार को पुरस्कार दिया जाता है। इससे चित्रकारों का उत्साह बढ़ता है। वे दिन दूनी रात चौगुनी मेहनत करके अपने अभ्यास को बढ़ाते हैं।

साथही संग-तराशी और भवननिर्माण विषयक कमरे भी इसमें हैं, जहाँ इन कलाओं के उस्तादों

की कारीगरी के नमूने रखे हुए हैं। विद्यार्थी लोग यहाँ भी आकर अभ्यास करते हैं। बड़ी इमारतों के नमूने यहाँ हैं। उनको देख कर विद्यार्थी वैसाही, या उससे बढ़ कर, काम बनाने का उद्योग करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस विभाग में सङ्गीत भी प्रबन्ध है। एक बड़ा कमरा इसके लिए शनि और रविवार को यहाँ गायनाचार्यों धूम रहती है। व्याख्यान आदि भी यहाँ होते हैं।

कलाभवन-सम्बन्धी चार स्कूल हैं, जिनमें दिन को और रात को भी पढ़ाई होती है। जो दिन आ सकते हैं वे दिन में पढ़ते हैं, जो रात में आ सकते हैं उनके लिए रात का प्रबन्ध है। विद्यार्थी जो कुछ सीखना चाहता है, उसके समय के अनुसार तदर्थ सब प्रबन्ध कर दिया जाता है।

पहले स्कूल में विद्युत्, रसायन, वाणिज्य, धार्यन्त्र, खनिज पदार्थ तथा आरोग्य सम्बन्धी विद्या सिखाई जाती हैं।

दूसरे स्कूल में सब काम हाथ से कर सिखाया जाता है, जिनमें विद्यार्थी कल-पुरजों को खोल सके; यदि कुछ टूट जाय तो उसको फाँट बना सके; कलों की भीतरी और बाहरी सब बातें समझ जायँ; पुरजों को जोड़ देने में कुशल जायँ। यहाँ पर ऐसे लोग भी भरती किये जाते हैं जो वाणिज्य-विद्यालयों में अध्यापकों का काम करना चाहते हैं।

तीसरे स्कूल में मकान बनाने और उनको सजाने आदि का काम सिखाया जाता है। इस स्कूल के लिए एक बड़ी भारी इमारत तैयार हो रही है। उसके बनने पर और बहुत बातें सुभीती हो जायगा।

चौथे स्कूल में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध है। उनको गृहसम्बन्धी कार्यों की शिक्षा यहाँ दी जाती है। सोना-पिरोना, भोजन बनाना, गाना, मकान सजाना तथा साहित्य, विज्ञान आदि सभी आवश्यक बातें यहाँ सिखाई जाती हैं। यह चौथा स्कूल विद्यालय है।



3610, 5th ave.,


ईश्वर करे भारतवर्ष में भी एक ऐसा ही विद्या-  
खुले जिसमें ऊँच नीच सभी जाति के बालक  
। हानिकारक बन्धनों की गाँठ कटे और देश के  
कला-कौशलों में कुशल होकर भारत की निर्ध-  
दूर करें ।

सत्यदेव, अमेरिका ।

Carnegie Technical Schools,

Pittsburg, Pa., U. S. A.

## अमेरिका की स्त्रियाँ ।



मेरिका में मुझे पहले पहल शिकागो के बाज़ार में काम की तालाश में फिरना पड़ा। उस समय सब से बढ़ कर अचरज मुझे इस देश की स्त्रियों की चाल ढाल को देख कर हुआ। आठ बजे सुबह से शाम तक यहाँ सड़कों और बाज़ारों की पटरियों में इतनी भीड़ रहती है कि निकलना कठिन हो जाता है। इस भीड़ में स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक होती है। जैसे इन स्त्रियों की पोशाकें रङ्ग-बिरङ्गी होती हैं उसी तरह इनकी चाल में भी अनूठापन पाया जाता है। कोई कोई लपकती हुई जाती हैं। कोई कोई दो दो करके पैर मिलाये, गर्दन उठाये, चलती हैं। कोई कोई गोंद चूसती हुई जाती हैं; उनका मुँह बात करते समय भी चूसने में लगा रहता है। जिस ट्राम गाड़ी पर चढ़िए और तेँ ही अधिक दिखाई देती हैं। कभी कभी तो इनकी संख्या इतनी हो जाती है कि प्रतिष्ठा के लिहाज़ से उनको अपनी जगह देनी पड़ती है, और स्वयं खड़े खड़े जाना पड़ता है। रविवार के दिन गिर्जे में जाइए या उद्यान की सैर कीजिए, वहाँ भी उनकी संख्या पुरुषों से कम नहीं देख पड़ती। किसी दुकान में सौदा मोल लेने जाइए तो वहाँ भी सौदा बेचने

विद्यार्थी ने अपनी माता की यादगार में खोला है। वह अपने माता से किसको स्नेह नहीं होता ?  
अपनी माता से किसे थोड़े ऐसे हैं जो उस स्नेह को अमर बनाने के लिए कोई चिरस्थायी यादगार बनाते हैं ।  
हमने बहुत संक्षेप में इस शिल्प-विद्यालय का वर्णन किया है । हमने अपनी आंखों से इन स्कूलों का जाकर देखा है । उनका सब काम हाथ से करते देख चित्त बहुत प्रसन्न हुआ ।  
इस विद्यालय के विषय में अधिक जानना हो तो लिखे पत्र पर पत्र-व्यवहार करें :—

The Registrar,  
Carnegie Technical Schools,  
Pittsburg, Pa., U. S. A.

इस स्कूल में दाखिल होने वाले की उम्र कम से कम सोलह वर्ष की होनी चाहिए। जो रात को आर पढ़ना चाहें उनकी उम्र अठारह वर्ष से कम न हो। फीस साठ रुपये सालाना दिन के विद्यार्थियों और पन्द्रह रुपये सालाना रात के छात्रों से ली जाती है। यह फीस पिट्सबर्ग में रहने वाले विद्यार्थियों के लिए है। दूसरे छात्रों से नब्बे रुपये सालाना ली जाती है और इकीस रुपये रात वाले विद्यार्थियों से ली जाती है।

भारतवर्ष के स्कूलों से एट्रेस पास विद्यार्थी  
जो ही में यहाँ भरती हो सकते हैं। जो विद्यार्थी  
एक साल का खर्च एक हजार रुपया यहाँ लेकर  
आता है। पर विद्यार्थी चतुर, तीक्ष्णबुद्धि और  
अभ्यासी हो तो। पिट्सबर्ग में वेदान्त की एक  
प्रवृत्ति है जो हिन्दू छात्रों की सहायता करने  
के लिये उद्यत रहती है। स्वामी बोधानन्दजी  
को भी सहायता करते हैं। यदि किसी को उनसे  
सहायता करना हो तो नीचे लिखे पते पर कर



वाली और खरीददार स्त्रियाँ ही अधिक नज़र आयेंगी। अखबारों में भी स्त्रियों की तारीफ़ और उनकी प्रतिष्ठा के सूचक लेख प्रायः देखने में आते हैं। जिस कोठी में मैं काम करता था उसमें सौदा बेचनेवाली और टाइप राइटिङ्ग तथा लेखक का काम करनेवाली स्त्रियाँ डेढ़ दो हजार से कम न थीं। मैं इनसे कम मिलता जुलता था।

अमेरिका की स्त्रियों की बात चीत, चाल ढाल, पहनने ओढ़ने का तर्ज़ और घमण्डी मिज़ाज मुझे अस्वाभाविक सा प्रतीत होने लगा। पर अमेरिका वालों के लिए शायद वह अस्वाभाविक न हो। अतएव मेरे मन में उनके जीवन का रहस्य जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। पाश्चात्य स्त्रियों का स्वभाव समझना हिन्दू के लिए पहले पहल इतना कठिन होता है जितना कि पाश्चात्य लोगों के लिए ब्रह्मा की सृष्टि का माया-जाल समझना। जैसे अमेरिकावालों के लिए हिन्दुस्तान के बाजीगरों का पिटारीवाला तमाशा आश्चर्यजनक है वैसे ही हिन्दुस्तानियों के लिए अमेरिका की स्त्रियों के हाव-भावादि का अवलोकन कौतूहलजनक है। हिन्दुस्तानी बच्चा भी अच्छी तरह जानता है कि बाजीगर की पिटारी में एक पोशीदा खाना रहना है जिसमें बालक को छिपा कर बाजीगर कह देता है कि वह लोप हो गया। अमेरिका के पुरुष भी अपनी इन बाजीगरनियों की मोहिनी लीलाओं को भली भाँति समझते हैं। परन्तु हिन्दुस्तानी आदमी उनके यथार्थ अभिप्राय को बहुधा नहीं समझ सकते। अमेरिका की स्त्रियाँ, स्वतन्त्र होने के कारण, जब किसी पुरुष से मिलती हैं तब मुसकराती हैं। हिन्दुस्तानी इसका मतलब उलटा समझता है। इससे मेरा मतलब किसी पर अनुचित आक्षेप करने का नहीं। अमेरिका में शिक्षित भारतवासियों का आचरण अति उत्तम है। किन्तु यह मेरी देखी हुई बात है कि अनेक बार अमेरिका में हमारे देश के मेहनत मजदूरी करने वालों ने अमेरिकन औरतों के इस हास्य-भाव को उलटा समझ कर धोखा खाया है।

मुझे शिकागो में रहते बहुत दिन हो गये। लोगों से थोड़ी बहुत जान पहचान भी हो गई। बहुतेरी स्त्रियों से भी मेल जोल हो गया। शिकागो में एक थियोसोफ़िकल सोसायटी है। मैं कई बार गया। बहुत से मेम्बरों ने मुझे घर बुलाया। उनमें एक स्त्री के साथ मेरी पहचान बढ़ गई। वह मुझे बेटा कह कर पुकारती थी और मैं उसको माँ कहा करता था। बार के दिन वह मुझे बुला कर खातिर तैयार किया करती थी। इस पर मुझे इस रिश्ते का मतलब जानने की इच्छा हुई। खोज करने पर मुझे मालूम हुआ कि थियोसोफ़िकल सोसायटी के लोग भाग्यवासियों के प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। मेडम ब्लाइन्ड्सकी की बातों का वे विशेष आदर करते हैं। सम्भव है, प्रत्येक पढ़े लिखे भारतवासी को मेडम ब्लाइन्ड्सकी के उल्लिखित त्रिब्वतीय क्रान्ति समान, समझते हों। परन्तु थियोसफ़ी और वेद से शौक रखने वाले लोग बहुत नहीं हैं।

थियोसफ़ी मत की अनुयायिनी स्त्रियों के हेल मेल रखने से मेरा प्रबोध न हुआ। क्योंकि अनेक स्त्रियों का स्वभाव मुझे विभिन्न देख पड़ता। अतएव मैं कोई राय कायम न कर सका। लेकिन मुझे मालूम लगा कि २०-२५ वर्ष की कुमारिकाएँ अपने उम्र युवकों के साथ चाँदनी रात में अकेली बाहर जाकर भी कैसे सदान्तरणशील रह सकती होंगी। मैं उद्यान में अपनी आँखों देखता हूँ कि युवक-युवतियाँ प्रेमपूर्वक एक दूसरे से बात इत्यादि करती हैं। घन्टों एकान्त में बैठती हैं, तब क्योंकर विश्वास हो सकता है कि कितनी वर्षों तक इस तरह प्रेम को बढ़ाकर दूसरे की परीक्षा करने और विवाह के लिए उनकी राह देखने में ये मन की चञ्चलता का न हो जाती होंगी। यदि ऐसा न होता तो धन्य हैं। पर भारतवासी के मन में ऐसा दृष्टिकोण से दूसरा ही भाव उत्पन्न होता है। अतएव मैं ही में पड़ा रहा।



[ भाग ७ ]

इस समय मैं दिन को काम करता और रात  
एक कालेज में रसायनशास्त्र का अध्ययन  
करता था। क्लास ७ बजे से १० बजे तक हुआ  
मैं बराबर ट्रामगाड़ी पर सवार होकर  
करता था। एक दिन मेरा चित्त कुछ  
आया जाता था। इस कारण मैंने सोचा कि चलो आज  
आस था। इस कारण मैंने सोचा कि चलो आज  
चले। मेरा डेरा वहाँ से कोई १३ मील  
का थोड़ा दूर था। आधे मील चलने के बाद रास्ता काट कर मैं  
एक अँधेरी गली से चला। कुछ कदम चलने पर  
मेरे दाहने हाथ की तरफ एक नवीना  
महिला ने रोते रोते मुझ से पूछा:—“क्या आपने इस  
लोग को से किसी को जाते देखा है ?

मैं—“नहीं, मैंने नहीं देखा। क्यों ?”

युवती—(रोते रोते) “एक आदमी मुझसे  
डालर छीन कर भाग गया”।

मैं—“वह किस तरफ गया है ?”

यु०—“इधर ही से गया है”।

मैं—“कितनी देर हुई ?”

यु०—“कोई पाँच मिनट”।

मैं—“तब तो उसे पकड़ना कठिन है। आपका  
कहाँ है ?”

यु०—“मैडीसन स्ट्रीट में”।

मैं—“तो आप इस रास्ते क्यों घर जाती थीं ?”

यु०—“मैं यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर काम  
करती हूँ। इसी से इस रास्ते घर जाती थी”।

यह कह कर वह रोने लगी। मैंने उससे कहा,  
पुलिस को खबर कर दें। इस पर वह बोली  
वह समय पर घर न पहुँचेगी तो उसकी  
उस पर नाराज होगी। मैं कुछ कहने ही को  
कि उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहने लगी  
मुझे घर पहुँचा दो। पाँच सैन्ट गाड़ी का  
मैंने उससे बिदा माँगनी चाही; पर  
वह न लेकर अपने घर पहुँचा देने ही की उसने  
समझ कर मैं उसके साथ हो लिया।

कुछ दूर जाने पर जब हम एक नुकड़ पर पहुँचे  
तब उससे मैंने पूछा कि तुम्हारा घर अब कितनी  
दूर है। वह बोली नजदीक ही है। चलो इस गली  
से जाने से और भी नजदीक पड़ेगा। वह गली  
अधिक अँधेरी थी। इसलिए मैंने कहा कि उधर से  
जाना अच्छा न होगा। मुझे उस रोज तनवाह मिली  
थी। मेरे पास दो सप्ताह की मजदूरी के डालर थे।  
इससे मैं उस रास्ते जाना न चाहता था। पर उससे  
यह सुन कर कि उसका घर नजदीक ही है, मैं  
उसके साथ चल दिया। थोड़ी देर में उसका घर  
आ गया। घर के अन्दर घुसने के पहले वह मुझ से  
बोली—एक मिनट नीचे ठहरिए। मैंने कहा, अब मैं  
जाता हूँ। आपकी सहायता करना अपना धर्म समझ  
कर मैं आपको यहाँ तक पहुँचाने आया हूँ। यहाँ  
पर मैं ठहरना नहीं चाहता। उसने कहा, नहीं, मैं  
अपनी माता से कह कर आपको इस सहायता का  
धन्यवाद दिलाना चाहती हूँ। इतने ही में मकान  
की खिड़की से भाँक कर एक बुढ़िया जोर से  
बोली—“पकड़ो इस चोर को; इसने मेरी लड़की  
को लूट लिया।” यह सुनते ही मैं बिजली की तरह  
भाग। एक आदमी ने दौड़ते हुए मेरा पीछा किया,  
पर मैं बिना पीछे देखे दस मिनट तक बराबर भागते  
ही चला गया और एक दौड़ती हुई ट्राम गाड़ी पर,  
जो मेरे घर की ओर न जाकर किसी दूसरी ओर  
जाती थी, उछल कर चढ़ गया।

खैर, मैं गाड़ी बदल कर रात के डेढ़ बजे अपने  
घरे पर पहुँचा। मैं जिस घर में रहता था वह एक  
गृहस्थ आदमी का था। इससे घर का दरवाजा मुझे  
बन्द मिला। खटखटाने पर वह खुला। सुबह मुझे  
काम पर जाना था। नियत समय पर उठ कर जो  
मैं भोजन करने बैठा तो घर वाले की स्त्री और बेटी  
ने मेरी हँसी उड़ानी शुरू की। वे बोलीं—“क्यों,  
पाँडे, रात को क्या अपनी प्रेयसी से मिलने गये थे।  
बड़े ही आनन्द से समय व्यतीत किया होगा ?”  
मैंने जब उनको रात का सारा वृत्तान्त सुनाया तब  
सब लोग चकित होकर कहने लगे—“बच गये,



नहीं तो न जाने क्या होता। ऐसे वीरत्व का काम करने फिर कभी न जाना। यह शिकागो शहर है। यहाँ पर ऐसे भी गुंडे रहते हैं जो धोखे से अनजान आदमी को अपने घर ले जाते हैं। फिर दो एक बदमाश उसके सिर पर रेत और कुछ मादक चीजों से भरी पोटली मार कर उसे बेहोश कर देते हैं और रुपया पैसा छीन लेते हैं।” काम पर जाकर मैंने अपने साथियों से रात की घटना का हाल कहा। वे सब मुझे तरह तरह के ऐसे ही किस्से सुनाने लगे। एक ने कहा कि एक हफ्ता हुआ, रात के समय उसके एक मित्र को इसी तरह दो लड़कियों ने आ घेरा और बातों में उसे लगा रखा। कुछ देर में पीछेसे एक मनुष्य ने आकर भरा हुआ पिस्तौल उसकी तरफ कर दिया और उससे कहा कि अपने दोनों हाथ उठा कर सिर पर रखो। उसके ऐसा करने पर उन लड़कियों ने उसकी जेब से सब रुपये निकाल लिये।

इस अनुभव के बाद भी मैंने यहाँ की स्त्रियों के विषय में अपनी राय कायम करना उचित न समझा, क्योंकि मुझे सभ्य स्त्रियों के साथ मिलने जुलने का भी मौका मिलता था। परन्तु बड़ी बड़ी दुकानों और कारखानों में काम करने वाली युवतियों का आचरण अच्छा नहीं—यह शङ्का मुझे प्रतिदिन अधिकाधिक होने लगी। इसका कारण यह था कि इनको तनखाह अधिक नहीं मिलती और जब ये अपनी तनखाह बढ़ाने की विज्ञप्ति करती हैं तब मैंनेजर इनकी बात को हँसी में उड़ा कर यह जवाब देते हैं—( Get a fellow ) अर्थात् किसी को फाँसो। और अकसर इनको ऐसा ही करना भी पड़ता है। खाने, पीने और पहनने आदि का खर्च तो इनको नौकरी से मिल जाता है, पर थियेटर और नाच-तमाशों का खर्च बिना “फैलो” के नहीं निकलता। “फैलो” का साधारण अर्थ साथी समझना चाहिए। अमेरिका की सभ्यता की बँदोलत मनुष्य की ज़रूरतें यों ही बहुत अधिक होती हैं। तिस पर लोगों के शौक दिन दिन बढ़ते जाते हैं। इस कारण

कभी कभी एक एक, दो दो, तीन तीन, “फैलो” दाव में फाँसा कर अन्त में यदा कदा सभी को लो कर देती हैं। इन “फैलो” महाशयों के साथ जो यह ज़रूरी नहीं है कि युवतियाँ अपने आचरण कलङ्कित कर बैठें। परन्तु इसका भी कुछ समुचित कि वे सदाचारिणी ही बनी रहती हों। इसका एक कारण है। वह यह कि अमेरिका के स्त्री-विवाह-बन्धन की विशेष परवा नहीं करते। साल लाखों स्त्रियाँ मुकद्दमेबाजी करके अपने पति से पृथक् हो जाती हैं। पुरुष भी ऐसा ही करते हैं।

पर यहाँ की स्त्रियों की गम्भीरता देखने उनके साथ बात चीत करने से स्वप्न में भी खयाल नहीं होता कि इनके घरों में इस प्रकार अशान्ति रहती होगी।

काम छोड़ कर, कुछ दिनों में, मैं विश्वविद्यालय में पढ़ने लगा। यहाँ के विश्वविद्यालयों में युवतियाँ साथ ही पढ़ती हैं, साथ ही रहती हैं। एक ही क्रिस की पढ़ाई भी होती है। विश्वविद्यालय में मुझे और ही प्रकार का देखने में आया। दो चार युवतियों से मेरी मित्रता हो गई। कभी कभी मैं इनके घर भी जाने लगा। साथ बात चीत करने और विश्वविद्यालय के छात्रों की जीवनचर्या का अच्छी तरह निरीक्षण करने पर मुझे मालूम होने लगा कि अधिकांश में इसकी महिलायें देवियाँ हैं, उनके मन पवित्र हैं, उनमें मनोविकारों को दमन करने की शक्ति भी है।

विश्वविद्यालयों में युवक-युवतियों के अति एक से हैं। वे पढ़ने-लिखने में पुरुषों से कम योग्य नहीं रखतीं। नैतिक भाव उनके आदर्श होते हैं। बहुत सी नवयुवतियों को विद्योपाजन के लिए बलव्ययन करना पड़ता है। आप पूछ सकते हैं, बरसों तकलीफ़ उठाने की उनको आवश्यकता क्यों है? विवाह कर लेने से वे आराम से रह सकती हैं स्त्री को इतना पढ़ कर करना क्या है? ऐसे विचार भारतवासियों के हृदय में ही उत्पन्न हो रहे हैं। इन महिलाओं को, जो विद्या के गुणों को



विवाह की चिन्ता नहीं रहती। उनका आदर्श विवाहों के आदर्श से भिन्न है। यथासम्भव वे सब स्त्रियों में स्वतन्त्र रहना चाहती हैं। परावलम्बन से उन्हें घृणा है।

उनका खयाल है कि विवाह कर लेने से स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता कम हो जाती है। इसीसे वे विवाह की इच्छुक सहसा नहीं होतीं। अमेरिका के लोग अपनी स्त्रियों को आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं; परन्तु इतने से उन रमणियों को प्रभाव नहीं। विद्या के प्रभाव से, इस समय, स्त्रियों की स्त्रियों को अपने अधिकारों का ज्ञान होने लगा है। वे पुरुषों के व्यवहार को बुरा बताती हैं। वे कहती हैं कि किसी भी कार्य के लिए स्त्रियों को पुरुषों मुंह न ताकना पड़े। वे कहती हैं कि एक दफ़े पराधीन हो जाने से फिर स्वतन्त्रता प्राप्त करने की शक्ति ही रहती है और न इच्छा ही होती है। विवाहों से पता लगता है कि करोड़ों ऐसे भी पराधीन हो गये हैं जो गुलामी को स्वाभाविक समझते थे।

प्रशिया देश के किसानों को जब सफ़ाई नामक प्रकार की गुलामी के कष्ट से छुड़ाने का प्रयत्न सुनाया गया तब उन्होंने उज्र किया कि यदि मालिकों से उनका तत्काल छुड़ा दिया जायगा तो उनकी बीमारी के समय कौन उनकी देखभाल करेगा?

जब थोड़े ही समय की पराधीनता से मनुष्य की दशा को पहुँच जाता है तब उस पराधीनता से, जिसका उत्पीड़न हजारों वर्ष से जारी निकलता सहज बात नहीं। स्त्रियों की पराधीनता बहुत काल से चली आती है। विचार करने से स्पष्ट होता है कि सब से पहले स्त्रियों ने ही पराधीनता की वेड़ी पहनी। मनुष्य की आदिम अवस्था में पुरुष और स्त्री एक प्रकार से तुल्य थे। उनकी शक्ति में कोई अन्तर न था। बोरनियो, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका की असभ्य जातियाँ इस बात का

आदिम अवस्था में न कोई किसी का पति था और न कोई किसी की पत्नी थी। किन्तु इस सामाजिक व्यवस्था का परिणाम बुरा होने लगा। इससे प्रत्येक जाति भिन्न भिन्न शाखाओं में विभक्त हो गई और अपनी शाखा या विभाग में विवाह करना वर्जित हो गया।

धीरे धीरे मनुष्य-संख्या बढ़ने लगी। सभ्यता ने भी कदम बढ़ाया। मनुष्य आग बनाना, खाना पकाना और मछली मारना सीख गया। क्रम क्रम से उसने जानवरों को पालना भी शुरू किया। इन व्यवसायों के लिए पृथक् पृथक् लोक-विभाग किये गये। कोई मछुवा बन बैठा। किसी ने गोपालन किया। किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। कुछ समयानन्तर हथियारों का बनना भी आरम्भ हुआ। तब मर्द शिकार खेलने जाने लगे, पर स्त्रियाँ घर के काम में ही लगी रहीं। शस्त्रों का व्यवहार न करने और गृहस्थी के कामों में ही लगी रहने से स्त्रियों की चित्तवृत्ति कोमल हो गई। उनके शारीरिक बल का भी हास होने लगा। उधर मर्दों की चित्तवृत्ति शिकार खेलने, जानवरों को मारने और शारीरिक बल वाले काम करने से कठोर हो गई। अस्त्रों द्वारा अपनी और अपने कुटुम्ब की रक्षा करने में लगे रहने से वे बलिष्ठ भी होने लगे।

धीरे धीरे हल भी ईजाद हुआ। कृषि की पैदावार से खाद्य पदार्थों की वृद्धि हुई। मनुष्य कुछ का कुछ हो गया। खेती की बदैलत वाणिज्य भी होने लगा, और पुरुष, जो इस बीच में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सबल और स्वतन्त्र हो गया था, इस सारी सम्पत्ति का स्वामी बन बैठा।

ज्यों ज्यों आवादी बढ़ती गई त्यों त्यों उपजाऊ भूमि और चरागाहों पर अधिकार जमाने के लिए मनुष्यों में लड़ाई भगड़े होने लगे। इन लड़ाइयों में विजयी लोगों ने विजित लोगों की स्त्रियों पर अत्याचार किये। उन्हें अपने वश में कर लिया। कुछ को तो उन्होंने अपने घर में डाल लिया और कुछ से खेती पाती का काम कराया।



इस प्रकार पराधीन हो जाने से स्त्रियों के अनेक शुभ गुणों का लोप हो गया। चिरकाल की पराधीनता के फल से उनकी मानसिक शक्ति का विकाश न हो सका। किसी देश में ये बातें कम हुईं, किसी में अधिक।

इस तरह उन्नति का द्वार अवरुद्ध होते देख कर समाज के हितैषियों ने स्त्री-शिक्षा की परिपाटी चलाई। माताओं की सुशिक्षा के प्रभाव से उनकी सन्तानों में सद्गुणों का उदय हुआ और देशकी उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी।

पाश्चात्य देशों में इस स्त्रीशिक्षा ने कुछ विलक्षण रूप धारण किया। वहाँ लोगों ने निश्चय किया कि स्त्रियों को प्रत्येक विषय की शिक्षा मिलनी चाहिए। इसी लिए स्त्रियों को सामाजिक स्वतन्त्रता दी गई। इन देशों की स्त्रियाँ सभा-समितियों में, नाच-तमाशों में, बाग-बगीचों में, जहाँ चाहें, बिना रोक टोक के जा सकती हैं और जीविकोपार्जन के लिए पुरुष पर अवलम्बन न करके स्वयं मनमाना व्यवसाय कर सकती हैं। इस भाँति सामाजिक स्वतन्त्रता मिल जाने से इन देशों की स्त्रियाँ आर्थिक स्वतन्त्रता खोजने लगीं। इसमें भी इन्होंने बहुत कुछ सफलता प्राप्त करली है।

एक बार अमेरिका के युक्तसंस्थानों की गवर्नमेंट ने नवीन कलाकौशल आदि की ईजाद करनेवाली स्त्रियों की नामावली प्रकाशित की थी। उससे मालूम हुआ कि सैकड़ों स्त्रियों ने ऐसे ऐसे आविष्कार किये हैं जिन्हें देख कर बड़े बड़े कारीगरों और विद्वानों की बुद्धि चक्र में आ जाती है।

अमेरिका की स्त्रियाँ बराबर उन्नति करती चली जा रही हैं। बहुत सी स्त्रियाँ तो यहाँ जज हैं। शिकागो में दो तीन स्त्रियाँ पुलिस में इन्स्पेक्टर हैं। गत वर्ष से आइओवा के कृषि-महाविद्यालय में पढ़ने वाली स्त्रियों ने सामरिक विद्या सीखना आरम्भ किया है। उन्होंने अपनी एक रेजीमेन्ट बना ली है। इन्होंने हृदय कर दी। आपही कहिए, इनके और पुरुषों के काम में अब क्या अन्तर रह गया।

अमेरिका की स्त्रियाँ व्यवसाय करने में भी प्रवीण हैं। कुछ कारखाने तो ऐसे हैं जिनमें प्रायः वही देख पड़ती हैं। कपड़े के कारखाने, और पिन के कारखाने, शक्कर बनाने के कारखाने, कागज़, साबुन, मोमबत्ती आदि के कारखाने, चूने की चीज़ों के कारखाने, सिगरेट के कारखाने, कैंची आदि के कारखाने, कंघी, बटन आदि के कारखाने—ऐसे ही और भी अनेक कारखाने हैं जिनमें विशेषतः स्त्रियाँ ही काम करती हैं।

पुरुष और स्त्रियों के लिए भिन्न भिन्न नियमों का होना यहाँ की स्त्रियों के जी में बुरा खटकता है। वे चाहती हैं कि यह भेदभाव दूर हो जाय—दोनों के लिए एक से नियम हों और दोनों को सब कामों में समान अधिकार रहे। उनका नैतिक सिद्धान्त यह है—

तुम दूसरों के साथ वैसाही व्यवहार करो जैसे तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।

भोलानाथ पाँडे

## गरमी ।

पड़-ऋतु क्रम से भ्रात ! जगत में गरमी आई तब हुआ भू-गात अमित आकुलता छाई। दिनकर हुआ प्रचण्ड हुई जल की कठिनार्द्रता; भाग रहे सन्ताप सभी जड़-चेतन भाई ॥१॥ उष्ण पवन सब ओर आग सी बरसाती है; अवनी-तल में धार रौद्र-रस दरसाती है। रजःपूर्ण हो दिशा दीनता में परिणत हैं; दिवस बढ़ रहा, निशा क्षीणता में परिणत हैं। करके बंद किवाड़ सभी देखो हैं, सोते; घर से बाहर कभी न दोपहरी भर होते। विहग तृषाकुल सफल न खोते तज सकते हैं; खोल चाँच, तज गान, सुखद छाया तकते हैं। दोपहरी भर लूह विकल जीवों को करती; रवि-कर-तापित रेणु चक्षु-नासा में भरती।



[ भाग ७ ]

लता-कुञ्ज तरु-पुञ्ज पुष्प से रहित मलिन है ;  
 लुप्त भ्रमर-कुल-गुञ्ज दग्ध कल्हार नलिन है ॥४॥  
 दवानल विकराल डाल कर वन में डेरा ;  
 वन-खग-मृग का काल हर रहा विपिन अँधेरा ।  
 पासे आकुल-प्राण जीव कानन के सारे ;  
 धारे जल का ध्यान फिर रहे मारे मारे ॥५॥  
 सिंह, हरिण, अहि, भेक, बाघ, शूकर, गो, चीते  
 तज स्वाभाविक बैर साथही पानी पीते ।  
 शीतल छाया कहीं देख तरु की जो पाते  
 प्राण-भीति तज वहीं दौड़ सबके सब जाते ॥६॥  
 भीग रही है देह, स्वेद-धारा बहती है ;  
 हुआ चिता सा गेह; प्राण को लू दहती है ।  
 रहा न जाता ज़रा बिना पंखा के भाई ;  
 पावक-गिरि सी धरा हो रही अति दुखदाई ॥७॥  
 पानी से है प्राण, ध्यान है सब का जल में ;  
 पानी बिना महान कष्ट मिलता पल पल में ।  
 शीतल जल जो मिले, न चिन्ता फिर भोजन की ;  
 हरी भरी हो खिले कली तप-तापित मन की ॥८॥  
 वस, चन्दन, कर्पूर, व्यजन, छाया, शीतल जल,  
 होता इनसे दूर ग्रीष्म के आतप का बल ।  
 जल-विहार, गिरिवास, शीत-उपचार मृदुल पट,  
 निशा, निशाकर-भास विश्व का हरते संकट ॥९॥  
 जब थोड़े दिन बाद बीत गरमी जावेगी ;  
 देती बहु आलहाद सुखद वर्षा आवेगी ।  
 नव-जीवन से लता-महीरुह लहरावेंगे ;  
 सजल सघन घन-पुञ्ज गगन में घहरावेंगे ॥१०॥  
 लोचनप्रसाद पांडे ।

## सीता-स्वयंवर-सम्बन्धिनी शंका का समाधान ।

स विषय का एक नोट एप्रिल की सर-  
 स्वती में ठाकुर शङ्करसिंह की धर्म-  
 पत्नी का लिखा हुआ छपा था ।  
 उसके विषय में मुझे भी कुछ

इस विषय में सभी लोग सहमत होंगे कि तुलसी-  
 दास की रामायण आदि-काव्य वाल्मीकि-रामायण  
 का छायानुवाद है । यदि इसमें कोई शङ्का हो तो  
 आदिकाव्य का हवाला देना अनुचित न होगा ।  
 आदिकाव्य में सीता-स्वयंवर की रचना का वर्णन  
 इस प्रकार नहीं किया गया कि सब राजा  
 रङ्गभूमि में बैठे हैं और उनके सामने ही राम  
 ने धनुष तोड़ा हो । वहाँ यह लिखा है कि राम और  
 लक्ष्मण, विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुँचे । राम  
 ने धनुष देखने की इच्छा प्रकट की । धनुष लाया  
 गया । राम ने ज्योंही प्रत्यञ्चा चढ़ाने का प्रयत्न  
 किया त्योंही धनुष टूट गया । रामचन्द्र के आने  
 के पहले ही सब राजा लोग अपने अपने बल का  
 परिचय दे चुके थे और निराश होकर अपने अपने  
 घर चले गये थे ।

अस्तु । रामचन्द्र के विवाह को स्वतन्त्र स्वयंवर  
 कहना ठीक नहीं, क्योंकि यह उस प्रकार का  
 स्वयंवर न था कि राजा लोग चारों ओर रङ्गशाला  
 में बैठे हुए हैं; वन्दी जन प्रत्येक राजा का यशोगान  
 करते हुए आगे आगे चले जा रहे हैं; पीछे से  
 राजकन्या जयमाला लिए दासियों के साथ है;  
 जिसे उसने पसन्द किया उसी के गले में जयमाल  
 डाल दी । यहाँ यह बात न थी कि कन्या जिसको चाहे  
 उसे ही वर ले । यहाँ तो “परीक्षा-विवाह” था—जो  
 कोई धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ा दे वही कन्या  
 पावे । अतएव इस प्रकार के स्वयंवर को यदि हम  
 परतन्त्र स्वयंवर कहें तो अनुचित न होगा ।

अतएव सीता-स्वयंवर स्वतन्त्र स्वयंवर न  
 होने से मेरी तुच्छ बुद्धि में यह उचित नहीं ज्ञात  
 होता कि जनक सब राजाओं को न्योता देने के लिए  
 बाध्य थे । उनके लिए यही पर्याप्त था कि वे अपने  
 प्राण को सर्वत्र प्रकाशित कर दें । यह सूचना ठीक  
 विज्ञापन के सदृश थी, न कि निमन्त्रण-पत्र के रूप  
 में । निमन्त्रण-पत्र आने पर निमन्त्रित व्यक्ति का  
 धर्म है कि वह या तो उसको स्वीकार करे या  
 कारणवश स्वीकार न करने के लिए क्षमा



माँगे । परन्तु विज्ञापन के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती । सम्भव है, इसी प्रकार का विज्ञापन-पत्र राजा दशरथ के पास, रामचन्द्र की अनुपस्थिति में, गया हो ।

यदि निमन्त्रित लोगों को ही स्वयंवर में जाने की आज्ञा होती तो पाण्डव लोग द्रौपदी के स्वयंवर में कदापि न जा सकते, क्योंकि उनके पास न्योता गया ही न था । उनको तो लोग समझते थे कि वे लाक्षा-गृह में भस्म हो गये ।

फिर, दशरथ यह कहीं नहीं कहते कि जनक ने उनको अपनी कन्या के स्वयंवर की सूचना नहीं दी । रामचन्द्र के कुशल-समाचार का न मिलना एक स्वाभाविक बात थी, क्योंकि वे विश्वामित्र के साथ जङ्गलों में घूम रहे थे ।

यदि जनक ऐसे परतन्त्र विवाह में निमन्त्रण भेजने के लिए बाध्य होते और राजा दशरथ ऐसे चक्रवर्ती राजा के पास निमन्त्रण-पत्र न भेजते तो अवश्य राजा दशरथ अपना अपमान समझ कर क्रोध-प्रकाश करते । परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । अतएव सिद्ध है कि राजा जनक के लिए निमन्त्रण-पत्र भेजना कोई अनिवार्य बात न थी ।

बदरीदत्त पाँडे

## कालिदास की निरङ्कुशता ।

श्रीयुत पण्डित इन्दु शर्मा, मुख्याध्यापक, आर्यसंस्कृत-पाठशाला, गाज़ियाबाद लिखते हैं:—

“सरस्वती में कई महीने से साधारणतया अन्य कवियों के और विशेषतया कविकुलगुरु कालिदास के महाकाव्यों की जो सहृदय-हृदय-ग्राहिणी समालोचना हो रही है वह बड़ी ही आल्हादकारिणी है । कालिदास की दो निरङ्कुशतायें दिखाने का मैं भी साहस करता हूँ । तद्यथा:—

( १ )

रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक १२ के “राजा प्रह्लाद रञ्जनात्” से महाकवि की निरङ्कुशता साफ़ ज़ाहिर है । इस विषय में मल्लिनाथ लिखते हैं:—

यद्यपि राजशब्दो राजतेर्दीप्यथात्कनिन् प्रत्ययान्तो न तु रञ्जनात्  
स्तथापि धातूनामनेकार्थत्वाद्भजनाद्वाजेत्युक्तं कविना ।

( २ )

रघुवंश, सर्ग २, श्लोक १२ देखिए:—

स कीचकैर्मरुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।  
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥

वक्तव्य यह है कि इस श्लोक में—“कीचकैः” “मारुतपूर्णरन्ध्रैः,” “कूजद्भिः” ये तीन पद हैं । पदों का विचारपूर्वक देखिए तो केवल “कीचकैः” का ही उस बाँस को हैं कि जो वायु से पूर्णरन्ध्र होकर गूँज रहा हो । अतएव उत्तर के दोनों पद व्यर्थ हैं । इस विषय में प्रमाण लीजिए:—

वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्भताः” इत्यमरः ।  
कीचको दैत्यभिद्वताहृतस्स्वनवंशयोरिति मेदिनी ॥

( ३ )

आदिकवि वाल्मीकिजी ने रघुवंशावलि का प्रारम्भ इस प्रकार किया है:—

सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादधांशुमान् ।  
दिलीपोऽंशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ॥ ३८ ॥  
भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा ।  
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ॥ ३९ ॥  
कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खणः ।  
सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥ ४० ॥  
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः ।  
मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीपः प्रशुश्रुकात् ॥ ४१ ॥  
अम्बरीपस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः ।  
नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ॥ ४२ ॥  
नाभागस्य बभूवाज अजादशरथोऽभवत् ।  
अस्मादशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥  
बाल-काण्ड, सर्ग ७०

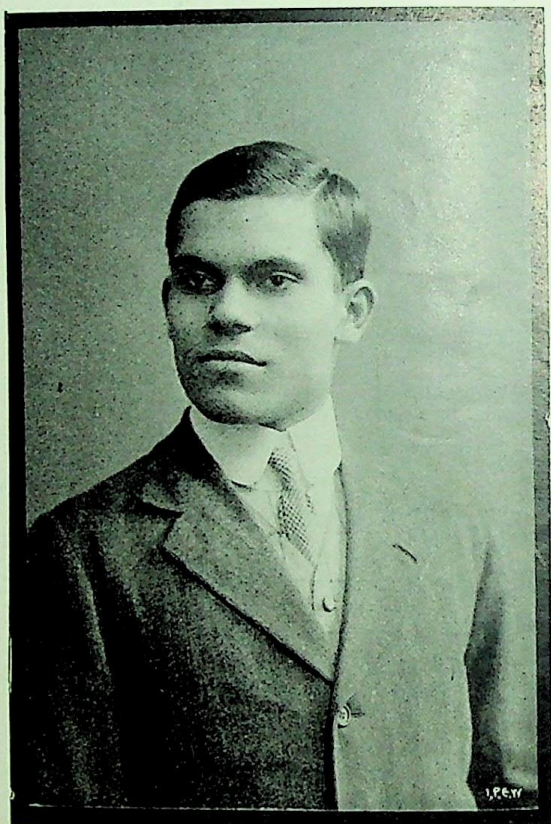


[ भाग ११ ]  
राजा प्रह्लाद  
साफ ज्ञानि  
न्तो न तु  
विना ।  
:—  
कृत्यम् ।  
ताभिः ॥  
“कीचकै  
पद हैं ।  
चकै”  
कीचक’ कह  
गिरन्ध्र हो  
पद व्यर्थ है  
पुण्यमरः ।  
ती ॥  
लि का व  
।  
थः ॥ ३८ ॥  
था ।  
॥ ३९ ॥  
एः ।  
॥ ४० ॥  
: ।  
त् ॥ ४१ ॥  
॥ ४२ ॥  
।  
॥ ४३ ॥  
सर्ग ७०

अथ राजा प्रह्लाद उवाच ॥  
( ३८ ) ॥ ३९ ॥ ४० ॥  
( ४१ ) ॥ ४२ ॥ ४३ ॥



सरस्वती



डाकृ श्रीधर नहरू, बी० ए०, बी० एस सी०  
( प्रयाग ); बी० ए० ( केम्ब्रिज ),  
पी एच० डी० ( हीडलबर्ग )

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



[ ७ ]

इसके विरुद्ध कवि कालिदास यों लिखते हैं, कि  
रघु से अज, अज से दशरथ, दशरथ  
से राम लक्ष्मण ।

श्लोक ३९ के अनुसार रघु दिलीप के प्रपौत्र थे,  
कालिदास पुत्र लिखते हैं । रघु से बारहवीं  
पौढ़ों में अज हुए ।

अब कहिए कि ऐतिहासिक दृष्टि से किसे सत्य-  
मानें ? सिद्धान्त तो यही है कि :—  
मुत्थाऽपुत्र्यथामुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः ।

## विविध विषय ।

### पारलियामेंट के सभासदों का वेतन ।

अब तक जो लोग विलायती  
पारलियामेंट के मेम्बर होते थे  
उन्हें मुफ्त में काम करना पड़ता  
था । प्रजा के प्रतिनिधि होकर  
वे पारलियामेंट में बैठते थे और  
प्रजा की हितचिन्तना करते थे । पर इसका  
फला उन्हें कुछ भी न मिलता था । हाल में इस  
विषय का परिवर्तन हुआ है । अब मेम्बरों का सालाना  
१०० पाँड, अर्थात् ६००० रुपये, वेतन मिला  
गया । यह ५०० रुपये महीना हुआ । इससे  
अधिक वेतन तो यहाँ के कितने ही डेप्युटी कलेक्टर  
प्राप्त हैं । पारलियामेंट के मेम्बरों का वेतन कम है  
क्या हुआ, प्रतिष्ठा तो उनकी बहुत है ।

### डाक्टर श्रीधर नेहरू, पी एच० डी०

यदि भारतवासियों को मौका दिया जाय तो  
किसी भी विषय में योरोप और अमेरिका वालों से  
जितने रहें, प्रत्युत उनके आगे निकल जा सकते  
हैं । और उनसे अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं ।  
प्रकार से भारतवासियों का बुद्धिप्राखर्य ही  
उनके उन्नतिमार्ग का बाधक हो रहा है । उनके इस  
प्रकार में जो कभी कभी काँटे बिछ जाया करते हैं

इसका अधिकांश कारण आप हमारी बुद्धिविषयक  
योग्यता ही समझिए । प्रयाग के प्रसिद्ध वकील  
माननीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के भतीजे अल्प-  
वयस्क डाक्टर श्रीधर नेहरू ने भारतवासियों के  
बुद्धितैक्ष्ण्य का अभी हाल में एक जाज्वल्यमान  
प्रमाण दिया है । श्रीधर जी भूत-पूर्व संब-जज पण्डित  
वंशीधर नेहरू के चिरञ्जीव हैं । इन्होंने केवल  
१६ वर्ष की उम्र में इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की  
बी० ए० और बी एस० सी० की परीक्षाएँ पास  
कीं । तदनन्तर आप, १९०५ ईसवी में, विशेष शिक्षा-  
प्राप्ति के लिए विलायत गये । वहाँ केमिज-विश्व-  
विद्यालय में आप दाखिल हुए और दो वर्ष में गणित  
और एक वर्ष में विज्ञान की शिक्षा पाकर इन विषयों  
में वहाँ के भी बी० ए० हुए । तत्पश्चात् आप जर्मनी  
गये और वहाँ हीडलबर्ग में दो वर्ष दर्शन-शास्त्र  
का अध्ययन करके आपने पी एच० डी० की पदवी  
पाई । इस समय आपकी उम्र कोई २२ वर्ष से  
अधिक नहीं । इतनी छोटी उम्र में शायद ही और  
किसी एतद्देशीय युवक में इतनी विद्याभिरुचि, इतनी  
योग्यता और शिक्षासम्बन्धिनी इतनी उच्च आकांक्षा  
देखी गई हो । सुनते हैं अब आप भारतीय सिविल सर्विस  
की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे हैं । ईश्वर  
करे आपके सारे मनोभिलषित पूर्ण हों ।

### ३-वैशाख मास का सूर्यग्रहण ।

गत वैशाख-कृष्ण अमावस्या (२८ एप्रिल १९११)  
को एक खग्रास सूर्यग्रहण हुआ था । यह ग्रहण  
सूर्योदय के बाद कोई पाँच ही मिनट तक ठहरा ।  
इससे अनेक स्थानों में लोग इसे नहीं देख सके ।  
आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्व अञ्चल में सूर्योदय के  
समय यह ग्रहण पूर्ण रूप से देखा गया था । पर  
अमेरिका के प्रायः सम्पूर्ण संस्थानों में तथा  
कनेडा के सीमान्तराज्यों में इसका अर्धग्रस्त रूप  
ही दिखाई दिया था । कैलीफोर्निया में यह ग्रहण  
अपराह्न में कोई ३ बजे आरम्भ हुआ और सूर्यास्त  
से पहले ही समाप्त हो गया । भारत वर्ष के किसी



स्थान में यह ग्रहण नहीं देखा गया । इसीसे शायद हमारे यहाँ के ज्योतिषियों ने इसके विषयमें कुछ नहीं लिखा । पर योरप और अमेरिका के ज्योतिषियों ने इस ग्रहण की सूचना बहुत पहले से दे दी थी ।

#### ४—आदिनाथ और गौतम बुद्ध के चित्र ।

गत एप्रिल की सरस्वती में सप्तदशाचार्यों के चित्रों का जो समुदाय प्रकाशित हुआ है उनमें आदिनाथ और गौतम बुद्ध के चित्रों के विषय में श्वेताम्बर-जैन-धर्मोपदेशक श्रीयुत बालचन्द्र मुनि खामगाँव से लिखते हैं:—

“आदिनाथ के चित्र में जो मुँह पर पट्टी और सिर पर चादर दिखाई गई है वह ठीक नहीं । आदिनाथ जी इस वेश में न रहते थे । जैन-कुमार-सम्भव महाकाव्य तथा जैनियों के अन्यान्य ग्रन्थों में न कहीं पट्टी का उल्लेख है और न कहीं चादर का । श्रीमद्भागवत में भी उनके लिए—“शरीरमात्रपरिग्रह” लिखा है । आदिनाथ, अर्थात् ऋषभ देव जी, जैनियों के पहले तीर्थङ्कर थे । ढूँडिये जैनी मुँह पर पट्टी बाँधते हैं । परन्तु उनका पन्थ कोई ढाई सौ वर्ष से ही चला है । तथापि वे भी ऋषभ देव के मुँह पर पट्टी और सिर पर चादर रखना स्वीकार नहीं करते । अतएव गोस्वामी जी को यह चित्र इस तरह न अङ्कित करना चाहिए था ।

“गौतम बुद्ध भारतवासी थे । उनका पहनाव इसी देश का था । वे बौद्ध-सन्घासियों के लिबास में रहते थे । इस समय भी कई बौद्ध-मन्दिरों की मूर्तियाँ तदनुसार ही पाई जाती हैं । श्रीयुत बालकृष्ण गोस्वामी जी ने उनका चित्र चीना लोगों का जैसा बनाकर अनुचित काम किया । यह बड़े खेद की बात है ।”

#### ५—दर्शनाचार्य परिडित प्रभुदत्त शास्त्री ।

जर्मनी आज कल प्रधान विद्यापीठों में गिना जाता है । वहाँ देश की भाषा के सिवा संस्कृत, अरबी आदि भाषाओं में भी ऊँचे दर्जे की शिक्षा

दी जाती है । उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त करने इच्छा रखने वाले कितने ही विद्यार्थी दूर दूर प्रत्येक वर्ष वहाँ जाते हैं । लाहौर के पण्डित प्रभुदत्त शास्त्री भी उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के लिए जर्मनी के द्वारा जर्मनी ही भेजे गये थे । उनके विषय एक नोट सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है । उन्होंने कील के सुविख्यात विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया और गत जनवरी उसी विश्वविद्यालय से उत्तम श्रेणी में पी-एच-डी ( Ph. D.—Doctorate in Philosophy ) दर्शनाचार्य की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । परीक्षा पहले उनकी वादानुवाद-शक्ति की भी परीक्षा हुई थी । दार्शनिक सभा (Philosophical Faculty) के सब सभ्यों ने इस विषय में प्रभुदत्त जी की योग्यता स्वीकार की ।

डाकूर प्रभुदत्त के पहले कोई भी भारतीय जर्मनी में इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ था । भी कतिपय छात्रों ने वहाँ जाकर अध्ययन किया था । परन्तु उन लोगों का मुख्य विषय संस्कृत अथवा अरबी था; दर्शनशास्त्र को उन्होंने केवल विषय ( Secondary Subject ) की तरह अध्ययन किया था ।

डाकूर प्रभुदत्त की राय है कि जो लोग जर्मनी में शिक्षा-ग्रहण करना चाहते हैं उन्हें पहले जर्मनी भाषा का कुछ अभ्यास कर लेना चाहिए । जर्मन भाषा के ज्ञान के वहाँ की पढ़ाई ठीक तरह से समझ में नहीं आ सकती । इसके सिवा वादानुवाद की परीक्षा के प्रश्नों का आशय समझ में बड़ी दिक्कत होती है । डाकूर प्रभुदत्त की भी राय है कि भारतीय विद्यार्थी कील के दक्षिण जर्मनी के किसी दूसरे विश्वविद्यालय शिक्षा-ग्रहण करें तो अच्छा हो । कील-विश्वविद्यालय के नियम बहुत कड़े हैं और वहाँ की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए अधिक योग्यता की भी आवश्यकता है । किन्तु दक्षिण-जर्मनी के विश्वविद्यालयों की परीक्षा के लिए वैसी योग्यता आवश्यक नहीं ।



[ भाग ७ ]

एथेंस (Athens) के विश्वविद्यालय में अब ग्रीक भाषा और सापेक्ष-भाषा-विज्ञान (Comparative Philology) सीखने के लिए जाता चाहते हैं। पेरिस के विश्वविद्यालय में भी आप कुछ दिन रहना चाहते हैं।

६—देवनागरी वर्णमाला का उत्पत्ति-स्थान।

श्याम-शास्त्री ने इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है कि देवनागरी वर्णमाला का जन्म किसी देश में हुआ था। उनकी युक्तियों का आज तक किसी ने सप्रमाण खण्डन नहीं किया। “बाह्रस्पत्य” ने भी इस विषय में कई लेख लिखे हैं। वे सब सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं। कई विदेशी विद्वानों का भी वही मत है जो “बाह्रस्पत्य” आदि का है। उनके मतों का भी उल्लेख सरस्वती में हो चुका है। इस मत को कि हमारी वर्णमाला विदेशी है अब योरप के प्रतिकूलमतवादी पण्डित धीरे धीरे छोड़ रहे हैं। पर, खेद की बात है, हमारे दो एक स्वदेशी पण्डित इस भ्रान्त मत की ओर ध्यान देकर एक पोषकता करते चले जाते हैं। फ्रीट साहब ने विद्वान और प्रतिष्ठित पुरातत्त्ववेत्ता हैं। नई प्रसायकोपीडिया ब्रिटानिका में उनका लिखा हुआ, अशोक के शिला-लेखों पर, एक लेख है। पहले जगह लिखा है कि अशोक के बहुत पहले इस देश में लिखने का प्रचार था। बस्ती जिले में एक जगह लिखा है। वहाँ एक शिला-लेख खुदा हुआ है। वह ईसा के ३०० वर्ष पहले से भी बहुत पुराना है। उसकी लिपि से सूचित होता है कि वह बहुत पुरानी है। किसी वर्णमाला की उत्पत्ति ही वह देश में सर्वत्र, हजारों मील दूर दूर तक, प्राप्त नहीं हो जाती। ऐसा होने के लिए बहुत समय दरकार है। जिस समय न रेल थी न डाक-घर, उस समय ट्रावनकोर में यदि कोई नया आविष्कार हुआ होगा तो सौ पचास वर्ष में उसका प्रचार उत्तरी भारत में होना असम्भव रहा होगा। अतएव यह बात युक्ति-सङ्गत नहीं जान पड़ती कि

हमारी वर्णमाला विदेशी है—उसे हमारे पूर्वज किसी पश्चिमी देश से लाये थे। जिन्हें इस विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो उन्हें प्राचीन-लिपि-माला नामक पुस्तक देखनी चाहिए।

७—मस्तिष्क और बुद्धिबल।

डाकूर लोग बहुत दिनों से इस बात की खोज में हैं कि बुद्धिमत्ता और बुद्धिहीनता का कारण क्या है। बहुत दिनों की जाँच के बाद यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि मस्तिष्क की पुष्टि पर ही बुद्धिबल अवलम्बित है। जिस आदमी का मस्तिष्क जितना भारी होता है वह उतना ही बुद्धिमान भी होता है। परन्तु अब एक विज्ञानवेत्ता डाकूर ने इस सिद्धान्त का भी खण्डन किया है। योरपवालों के मस्तिष्क के वजन का औसत उनचास से पचास औंस तक है। किन्तु पागलों के मस्तिष्क की परीक्षा से जाना गया है कि इकतीस पागलों में पाँच के मस्तिष्क का वजन पचास से छप्पन औंस तक था। इससे यह सिद्धान्त निकला कि मस्तिष्क का भारी होना बुद्धिमत्ता का चिह्न नहीं। क्योंकि पागल आदमियों की गिनती बुद्धिमानों में नहीं की जा सकती।

८—गाने वाली तसवीरें।

पाठकों ने अमेरिका के विश्वकर्मा क्या प्रतिब्रह्मा एडिसन साहब का नाम सुना होगा। ग्रामोफोन उन्हीं के दिमाग से निकला है। ऐसी ऐसी सैकड़ों अजूबा चीज़ें उन्होंने बना डाली हैं। अब उन्होंने एक ऐसी कल बनाई है जिसमें मनुष्यों के चित्र चलते फिरते दिखाई देते हैं और साथही बोलते भी हैं। इस तरह के चित्रों का तमाशा बायस्कोप वाले बहुत दिनों से करते हैं। पर उनके चित्र बोलते नहीं। ये चित्र बोलेंगे भी। अब मालवीयजी और सुरेन्द्र बाबू की तसवीरें इस कल में ज़बरदस्ती पकड़ कर बन्द की जा सकेंगी और जब चाहें उनसे स्पीच भी दिलाई जा सकेंगी। गौहरजान की भी अब खैर नहीं। ९० रुपये का टिकिट लेकर शौकीनों को सर-



कारी नुमायश की नाट्यशाला में उनके दर्शन और गान-श्रवण के लिए जाने की अब तादृश जरूरत न रहेगी ।

### ६—भूकम्प-ज्ञापक यन्त्र ।

जापान में बहुत भूकम्प आया करते हैं । उनसे बचने के उपाय भी वहाँ वालों ने निकाले हैं । वहाँ घर भी इस तरह से बनते हैं कि भूकम्प से उन्हें बहुत कम हानि पहुँचने का डर रहता है । आज तक यूरप और अमेरिका के वैज्ञानिक विद्वानों ने भूकम्प-ज्ञापक जितने यन्त्र बनाये हैं सबमें जापान के बने हुए यन्त्र विशेष अच्छे और विशेष उपयोगी हैं । इस पर भी जापान वाले अपने यन्त्रों में नये नये संशोधन करके उनकी उपयोगिता को बढ़ाते जाते हैं । टोकियो के टैजिरो योनेज़वा नामक एक वैज्ञानिक ने अब एक ऐसा यन्त्र बनाया है जिससे ६० घंटे पहले यह मालूम हो जाता है कि भूकम्प आने वाला है । उससे यह भी मालूम हो जाता है कि कहाँ कहाँ कम्प होगा और उसकी गति कितनी होगी । इसके सिवा इस यन्त्र से आने वाले तूफान की खबर भी सात दिन पहले हो जाती है । इस यन्त्र से मानवजाति को बहुत अधिक लाभ पहुँचने की सम्भावना है ।

### १०—अमेरिका के अखबारों की नीतिमत्ता ।

माडर्न-रिव्यू में एक बंगाली महाशय ने अमेरिका से लिख कर एक लेख प्रकाशित कराया है । उसमें और और बातों के सिवा अमेरिका के समाचार-पत्रों की सुनीति और सदाचार पर भी आपने बहुत कुछ लिखा है । उनका कथन है कि वहाँ के बड़े से बड़े पत्र तिल का ताड़ बनाना, झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा कह देना, और पाठकों के आश्चर्य और विस्मय को बढ़ाने के लिए मनघड़न्त बातें लिखना अपना फ़र्ज सा समझते हैं । समाचार संग्रह करके उन्हें सबसे पहले प्रकाशित करने की जल्दी में कभी कभी वे कुछ का कुछ छाप डालते हैं । पर इसकी वे ज़रा भी परवा नहीं करते । अनुचित मार्ग से रुपया इकट्ठा करने को भी कोई कोई पत्र

बुरा नहीं समझते । जो लोग इन दोषों से आहत हैं—जो सचाई को किसी तरह हाथ से नहीं देते—उनके समाचार-पत्रों का बहुत ही कम प्रचार है । अधिक से अधिक २८ हजार कापियाँ उनसे निकलती हैं । पर रुपये के लोभी और सुनीति शत्रु पत्रों की एक एक आवृत्ति सात सात लाख कापियों की निकलती है ! परमेश्वर इस देश के को इस लूट से बचावे ।

### ११—बहुमूल्य चित्र ।

एक लेखक ने एक अँगरेज़ी मासिक पत्र इंग्लैंड के प्रसिद्ध प्रसिद्ध चित्रों का मूल्य फ्री मुरद्वा के हिसाब से दिया है । इन चित्रों की मूल्यता का विचार करके बड़ा विस्मय होता है । लन्दन में जो जातीय चित्रशाला है उसमें इटली विख्यात चित्रकार रैफ़ल का बनाया हुआ मैडोना का एक चित्र है । उसका मूल्य है एक लाख पैंतीस हजार रुपये । इस हिसाब से उसका फ्री इंच मूल्य ६९० रुपये हुआ । इसी चित्रकार का एक और भी मैडोना का चित्र है । उसका मूल्य इस समय दस लाख पचास हजार रुपया कूता जाता है । परन्तु चित्र बहुत बड़ा है । इससे उसका फ्री इंच मूल्य केवल २५५ रुपये होता है । चित्रकार मिज़ोनिओ का बनाया हुआ नेपोलियन प्रथम का एक चित्र है वह इंग्लैंड में एक गृहस्थ के पास है । उसे उन्होंने १८८२ ईसवी में कोई ९० हजार रुपये में लिया था । इसके फ्री इंच मुरद्वा का दाम ८२५ रुपये हुए । रैफ़ल का अङ्कित एक चित्र थी ग्रेसेज़ (Three Graces) नाम का है । यह चित्र फ्रांस में एक जगह है जिसके पास वह है उसने उसे अलैं आव् डडले के तीन लाख पचहत्तर हजार रुपये में लिया था । इसका फ्री इंच मुरद्वा मूल्य ८३२५ रुपया हुआ ।

### १२—अठारह मील तक गोला

मारनेवाली तोप ।

मनुष्य-संहार करनेवाले अस्त्र-शस्त्रों की अत्यन्त उन्नति हो रही है । पश्चिमी देश इस विषय में



## पुस्तक-परीक्षा ।

१—गर्भरत्ना । लेखक डाकूर प्रसादीलाल भा, पृष्ठ-संख्या ३२ । दाम तीन आठ आने । बाबू हरदेवनारायण भा, गोसाँई टोला, इलाहाबाद से प्राप्य । इसमें गर्भवती स्त्री के लक्षण और उनके चिकित्सा तथा वर्जित कार्यों का वर्णन है । कुछ रोगों का उल्लेख और उनकी चिकित्सा भी इस पुस्तक उपयोगी है । चिकित्सा-भाग में अँगरेजी के बदले देसी दवाइयाँ बतलाई जातीं तो अच्छा होता; क्योंकि अँगरेजी दवाइयाँ हर जगह नहीं मिल सकतीं ।

✽

२—वैतानन्दतरङ्गिणी । १४२ पृष्ठ । मूल्य आठ आने । श्री वीरदास, मैनेजर पुस्तकालय, धामी स्टेट, रायबरेली से प्राप्य । पण्डित मूलचन्द ने इसे रचा है और धामा रियासत के राजा हीरासिंह बहादुर ने इसके मूल-संस्कृत शीका हिन्दी में की है । मायावादी और तार्किक

के प्रभात्तर-रूप में मायावाद का इसमें खण्डन और द्वैत-मत का मण्डन है । जीव और ब्रह्म का भेद इसमें खूब दिखाया गया है । पुस्तक बड़े मजे की है ।

✽

३—गीतासंग्रह । पुत्रगीता, मङ्गलगीता आदि बारह गीताओं का यह संग्रह है । ऊपर मूल संस्कृत-श्लोक हैं, नीचे पण्डित भीमसेन-कृत विस्तृत हिन्दीटीका । पृष्ठ १२५; दाम छः आने; प्राप्तिस्थान ब्रह्मप्रेस, इटावा ।

✽

४—श्रीरामहृदयम् । यह अध्यात्म-रामायण वाला रामहृदय है । अलग छपा गया है । इसमें पदच्छेद भी है और पण्डित ज्वालाप्रसाद-वाजपेयि-कृत हिन्दी-अनुवाद भी । पृष्ठ ३०, दाम दो आने, प्राप्ति-स्थान, ब्रह्मप्रेस, इटावा ।

✽

५—कल्याण-शतक । श्रीयुत-अमीचन्द ( शर्मा ) विरचित । मूल्य एक आना । देवाश्रम, लाहौर के पते पर कर्ता से प्राप्य । इस छोटी सी पुस्तक में दोहा-छन्द में सदुपदेश दिये गये हैं । दोहों के भाव बहुत अच्छे हैं; पर रचना दूषित है । जिसे छन्दोरचना का ज्ञान नहीं उसे पद्य में कुछ भी न लिखना चाहिए ।

✽

६—शुभपथप्रदर्शक । इसके भी कर्ता पूर्वोक्त अमीचन्द महाशय हैं । पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य ३ आने । यह पुस्तक भी पद्यात्मक है । दयाभाव, सहानुभूति, परोपकार, दान आदि कितने ही विषयों पर इसमें पद्य हैं । विचार प्रायः सभी अच्छे हैं । लेखक का उद्देश प्रशंसनीय है । परन्तु आपको अपने भाव गद्य में प्रकट करने चाहिए, पद्य में नहीं । जो जिस बात को नहीं जानता उसे चाहिए कि वह उस बात को करने का कष्ट न उठावे । अथवा, यदि, अमीचन्दजी के पद्य से विशेष प्रेम हो तो छन्द-शास्त्र के प्रारम्भिक नियम तो पहले पढ़ लें ।

✽

७—बाला-विचार । “लक्ष्मी” के सम्पादक लाला भगवानदीनजी की धर्मपत्नी “बुँदेलाला” जी



हिन्दी भाषा अच्छी जानती थीं। वे हिन्दी में कविता भी करती थीं। उनकी कई एक फुटकर कवितायें “लक्ष्मी” में प्रकाशित हो चुकी हैं। खेद है, ये अब जीवित नहीं। यह “बाला-विचार” इन्हीं की कविताओं का संग्रह है। सब मिला कर १२ कवितायें इसमें हैं। विषय सबके अच्छे हैं। कविता भी आज-कल के कितने ही पुरुष-कवियों से अच्छी हैं। मूल्य पुस्तक का ३ आने। मिलने का पता—लक्ष्मी-प्रेस, गया। इस संग्रह में एक कविता है—“अबला-उपालम्भ”। “बाला-विचार” के प्रकाशक बाबू चतुर्भुजसहाय वर्मा ने लिखा है कि इस कविता के उपलक्ष में ठाकुर जगन्नाथसिंह ने बालाजी को पुरस्कार दिया था और जाँच कविता की इस नोट के लेखक ने की थी। इस बात का पता उन्हें “विश्वसनीय मार्ग से” लगा है। इस पर निवेदन है कि वर्माजी कृपा करके उस मार्ग की विश्वसनीयता की जरा जाँच कर देखें। कहीं भूल तो नहीं हुई ?



—जैन-शिक्षा-दिग्दर्शन । जैनाचार्य—श्रीविजय-धर्मसूरि ने इस छोटी सी पुस्तक की रचना की है। मूल्य है दो आने। मिलती है काशी की जैनयशोविजय पाठशाला से। इसमें जैन धर्म की शिक्षा का सारांश हिन्दी-भाषा में बहुत अच्छी तरह दिया गया है। कुछ समय हुआ प्रयाग में जो सब धर्मों से सम्बन्ध रखने वाली एक कानफरंस हुई थी उसी के लिए यह पुस्तक रची गई थी और वहीं पढ़ी भी गई थी।

### मनोरञ्जक श्लोक ।

विधाय निर्मलं चेतो दूरीकृत्य दुराग्रहम् ।

मानवैः सत्यकामैस्तु समालोच्या गिरः सताम् ॥

सत्य की अभिलाष रखने वाले मनुष्यों को चाहिए कि वे चित्त को निर्मल बना कर और दुराग्रह को दूर कर सज्जनों की वाणी की समालोचना करें।

गिरिधर शर्मा

### चित्र-परिचय

( १ )

कालिदास ने मेघदूत में जिस यक्ष का वर्णन किया है उसकी प्रियतमा यक्षिणी का चित्र इस संख्या के आरम्भ में प्रकाशित किया जा रहा है। यह एक जापानी चित्रकार का अङ्कित चित्र हुआ है। पाठक देखेंगे कि विरहिणी की वेश-भूषा उसकी शरीरावस्था और उसके मानसिक भाव की खूबी से चित्र में दिखलाये गये हैं।

( २ )

पार्वती का शिवाराधन—चित्र “कांगड़ा-स्वामी” के नाम से प्रसिद्ध चित्रों में से है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह चित्र कांगड़ा का बना हुआ है। कांगड़ा के नामी चित्रकार जैसी कलम और प्रणाली से चित्र बनाते थे उसी का इसमें अनुकरण किया गया है। बस इसका इतनाही मतलब है कि पार्वती के चेहरे और उनकी बैठक से चित्रकार उनके हृदय के भक्ति-भाव को बड़ी ही कुशलता से इस चित्र में अङ्कित किया है।

( ३ )

गत जून की २२ तारीख को राजराजेश्वरी पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी का राज्यभिषेक सम्बन्धी उत्सव लन्दन में बड़े समारोह से सम्पन्न हो गया। इस खुशी में हम महाराज के महारानी के नये चित्र इस संख्या में प्रकाशित करते हैं।

### क्षमा-प्रार्थना ।

सरस्वती की गत संख्या में शास्त्र-विद्वान् जैनाचार्य श्रीविजय-धर्मसूरि का चित्र नहीं छपा जा सका। कारण यह हुआ कि ब्लाक अच्छा नहीं था। से चित्र खराब छपा। और ऐसा चित्र छापना ही अच्छा समझा गया।



# सरस्वती



पार्वती का शिवाराधन ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।







सरस्वती



राजासज्जेभवत् पंचम जार्ज ।

महारानी मैरी ।





भाग १

स्वर्गव

व

वृद्धदेव

के सस्

स सम

दोष-ग्रह

विषयाक

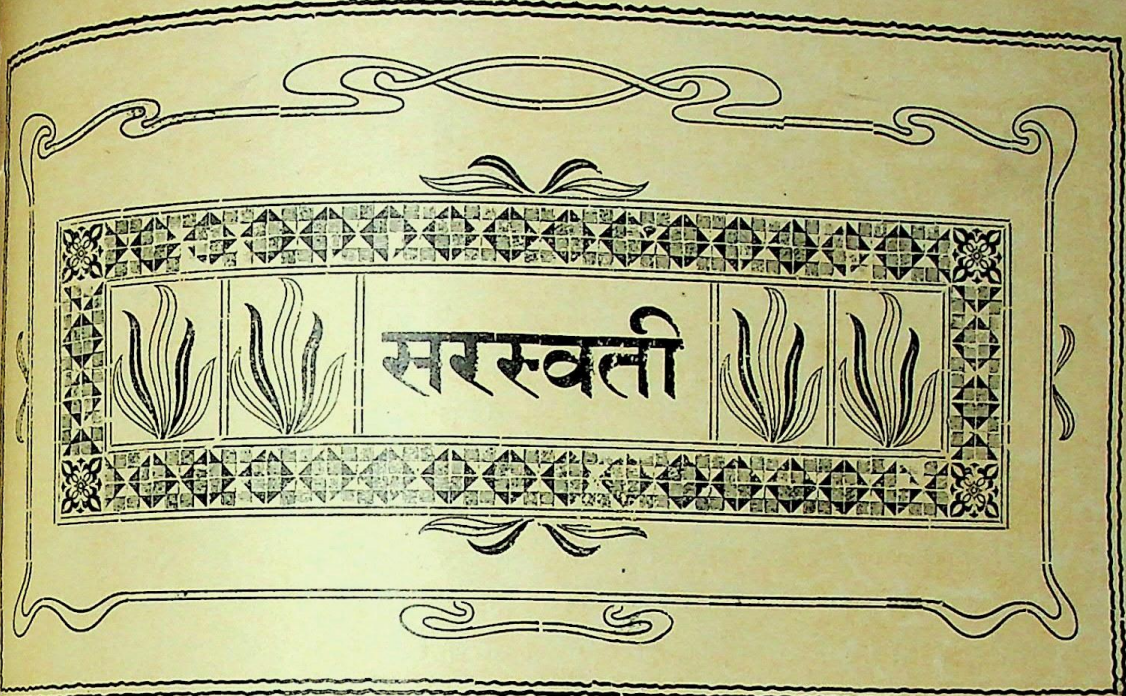
हृष्टि धी

नका

हुआ ४

स सरका





# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ] १ अगस्त, १९११—श्रावण शुक्ल ७, १९६८ । [ संख्या ८

## सर्गवासी वेदज्ञ पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी ।

वङ्ग देश के प्रसिद्ध वेदज्ञ पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीजी का देहान्त गत जून की १ तारीख को कलकत्ते में हो गया । आप वङ्गदेशीय राढ़ी ब्राह्मण वङ्गदेशीय पण्डितों में ही क्या आपके समान साम-सत्यव्रत के सखर गान और वेदार्थ-ज्ञान में भारतवर्ष उस समय कोई न था । वेदपाठी लोग प्रायः सत्यव्रत-ग्रहण में निपुण नहीं होते, पर सामश्रमी जी सत्यव्रत-ग्रहण भी थे । और और शास्त्रों में भी आपकी निपुणता थी ।

इनका जन्म पटना शहर में सन् १८४६ ईसवी हुआ था । इनके पिता सूबे विहार में किसी सरकारी पद पर अधिष्ठित थे । वे कभी मुझेर

और कभी पटने में रहा करते थे । नाम था उनका बाबू रामदास । सामश्रमीजी का पूर्व नाम कालिदास था । सत्यव्रत नाम उन्होंने अपनी सत्यपरता से उपार्जित किया था । नाम-परिवर्तन का वृत्तान्त सुनिप । जब कालिदास पाँच वर्ष के थे तब एक दिन भृत्य के साथ अपने पिता की पुष्पवाटिका की सैर करने गये । वहाँ मनमाने सुन्दर गुलाब के फूलों को इन्होंने तोड़ा । नौकर फूलों को घर लाया । बाप ने देखा तो आग हो गये । भृत्य को डाटने लगे । उन्होंने समझा था कि उसी का यह काम था । पर बालक कालिदास ने पिता से विनती की कि नौकर का कुछ भी अपराध नहीं; सब दोष मेरा है । बाबू साहब बालक की सत्यपरता देख कर गद्गद हो गये और पारितोषिक स्वरूप उसका सत्यव्रत नाम रक्खा । तभी से इनका नाम सत्यव्रत हुआ ।



इसके दो तीन वर्ष बाद बाबू रामदास विहार का वास छोड़ कर काशीवासी हुए । काशी ही में सत्यव्रत ने विद्योपार्जन किया । उनके पिता का यही मनोरथ था कि बेटा वैयाकरण और वेदज्ञ हो । बङ्गालियों में न पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन है, न वेदपाठ । बङ्गदेश उभय-वर्जित है । बङ्गदेश में वेद लुप्त हैं । आज ही नहीं, चिरकाल से, कोई हजार वर्ष हुए, बङ्गदेश में आदिशूर नाम का एक राजा था । उसने देखा कि अपने देश में वैदिक ब्राह्मण नहीं है, जो राजभवन में कर्मकाण्ड करावे । कनौज के राजा को लिख कर ५ ब्राह्मण उसने बङ्गाल में बुलाये और उन्हें वहाँ बसाया । पर बङ्गाल की भूमि का कुछ ऐसा प्रभाव है कि वेद की जड़ वहाँ न जमी । कुछ दिनों बाद फिर ज्यों का त्यों होगया । बङ्गाल वेदशून्य होगया । तन्त्र की चर्चा तो वहाँ खूब है । दुर्गा की पूजा तो जैसी वहाँ होती है वैसी भारतवर्ष भर में कहीं नहीं होती । सौ वर्ष पहले ऐसा एक भी अच्छा गृहस्थ का घर न था जिसमें चण्डीमण्डप न हो । चण्डीमण्डप \* अँगरेजी बङ्गले की तरह का होता था । उसमें एक बड़ा कमरा और एक दालान होता था । वह घर के बाहर आँगन में बनता था । वहाँ दुर्गाजी का वार्षिकोत्सव हुआ करता था और बारह महीने वह बैठक का काम देता था । हर एक बड़े मकान में चण्डीमण्डप का होना ही तान्त्रिकी उपासना का प्राधान्य सूचित करता है । जब महाप्रभु श्रीचैतन्य देवजी ने नदिया से सारे बङ्गाल में वैष्णवधर्म फैलाया तब मृदङ्ग और करताल के साथ हरिवोल की ध्वनि गाँव गाँव नगर नगर में प्रतिध्वनित होने लगी । पर बङ्गाल में वेदध्वनि कहीं सुनने में न आती थी । न्यायशास्त्र की चर्चा तो

\* अँगरेज पहले पहल बङ्गाल में बसे । वहाँ से जब हिन्दुस्तान में आगे बढ़े तब छावनियों में मकान उसी नमूने के उन्होंने बनाये जैसे बङ्गाल में बनाते थे । इसीसे अँगरेजों के मकान का नाम बँगला पड़ गया । कमिश्नर साहब का बँगला, कलेक्टर साहब का बँगला इत्यादि ।

मिथिला को छोड़ कर भारतवर्ष में और कहीं ऐसी नहीं हुई जैसी की नदिया में थी । पर भी बङ्गाली पण्डित वहाँ न मिलेगा जो वेद ऋचा को सस्वर पाठ कर सके या उसका अर्थ सके । वेद की रक्षा तो दक्षिण के पञ्चद्राविड़ों की है ।

व्याकरण में भी बङ्गाल में 'मुग्धबोध' संक्षिप्त ही ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं । पाणिनीय टीका, भाष्य वहाँ है ही नहीं । यह नहीं कि वे पण्डितों को संस्कृत का बोध नहीं होता । पद्य-रचना करने वाले वहाँ प्रत्येक ढोल में संस्कृत-पाठशाला को ढोल कहते हैं । निकल ही आते हैं । काव्यादि ग्रन्थरचना की परिधि भी वहाँ है; साहित्य की चर्चा, वैद्यक-शास्त्र, योग-शास्त्र, स्मृति-शास्त्र का अभ्यास वहाँ बराबर आया है । पर व्याकरण में पाणिनीय ग्रन्थों का पढ़ाने वाला वहाँ एक भी नहीं । इसी कारण वहाँ पण्डितों की सभा में बङ्गदेशियों को नीचा पड़ता है । हाँ न्याय की फकिकाओं में वे जल चढ़े रहते हैं । जब अवच्छेदकावच्छिन्न आदिकी परिभाषाओं के लच्छे वे छोड़ते हैं तब व्याकरण भी दंग रह जाते हैं । इन महाशयों के पूरी दक्षिणा मिलती है ।

बाबू रामदासजी की आकाङ्क्षा यह थी कि पुत्र को काशी की रीति के अनुसार संस्कृत में शिक्षा दे । इसलिए उन्होंने लड़के को गौड़ स्वामी के मठ में व्याकरण पढ़ने को भेजा । वहाँ वे सिद्ध कौमुदी से लेकर महाभाष्य तक व्याकरण-शास्त्र पारङ्गत हुए । गौड़ स्वामी के प्रधान शिष्य, विश्वरूप स्वामी के पास उन्होंने पढ़ा । विश्वरूप स्वामी विशुद्धानन्दजी के बड़े गुरु-भाई थे । वे बड़े सतिष्ठ पुरुष थे । दण्डी संन्यासी का जैसा चाहिए वैसा ही उनका स्वरूप भी था ।

शरीर का वर्ण गौर था । कृद नातिदीर्घ, ह्रस्व—न कृश, न स्थूल—स्फूर्तिमान था । मुँह से पवित्रता झलकती थी । बुढ़ापे में भी वे



और कहो  
थी। पर  
गा जो वेद  
सका अर्थ  
चन्द्रविद्वं  
ग्यवेध'  
पाणिनीय  
नहीं कि  
होता।  
ल में  
ने हैं।  
ना की पार  
शास्त्र, जो  
न बराबर  
ग्रन्थों का  
कारण  
नीचा  
में वे जल  
पड़ता है।  
छन्न आदि  
ने हैं तब  
हाश्यों के

ते चलते थे। दशाश्वमेध घाट से कामाख्या  
निकल जाने का उन्होंने  
निय अपराह्न में निकल जाने का उन्होंने  
कर लिया था। मुझको पथ में दर्शन मिल  
था और मैं कृतार्थ हो जाता था। इस बात  
जान लग भग चार युग, अर्थात् कोई ४८ वर्ष,  
ले, पर मेरी आँखों के सामने उनकी वह मूर्ति  
अब भी खड़ी है। क्या वैसे महापुरुष अब  
में आते हैं? अथवा फिर कभी आवेंगे?

बुद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि बुद्धदेव राजपुत्र  
राजसी सुख से रहने वाले राजपुत्र का दुःख  
वैय होना क्या सम्भव था? पर होनहार  
था। रथ पर सवार होकर सन्ध्या को वे एक  
हवा खाने निकले तो क्या देखते हैं कि एक  
अत मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कङ्कालमात्रावशिष्ट  
धारण किये हुए पथ पर पड़ा है और हाय  
मचा रहा है। यह देख कर उन्होंने सारथि से  
यह क्या बात है? तब उसके कहने से राज-  
जाना कि दुनिया में मनुष्यों को ऐसा दुःख  
पड़ता है। राजपुत्र घर लौट आये। वे  
लोकि यह क्या देखने में आया! मनुष्य-  
में इतना दुःख!

एक दिन जो वे फिर हवा खाने निकले तो क्या  
हैं कि एक शव को लिये हुए कुछ लोग रोते  
प्रशान्त को चले जा रहे हैं। राजपुत्र ने पूछा,  
य? तब सारथि ने समझाया कि मनुष्यों की  
नि यही है। राजपुत्र की आँखें खुल गईं।  
जाना कि यहाँ की लीला समाप्त करके  
को इस रङ्गभूमि से सदा के लिए अन्तर्हित  
होता है। ऐसी ही ऐसी घटनाओं से राजपुत्र  
पर विषाद-पटल छाता गया। एक दिन  
और ही दृश्य दिखाई पड़ा। उन्होंने देखा  
मनुष्य काषाय वस्त्र परिधान किये दण्ड-  
लिये चला जाता है। धीर, प्रशान्त, निश्चिन्त  
था। मुँह से सूचित हो रहा है। नेत्र-ज्योति  
की प्रसन्नता अलौकिक शोभा दे

राजपुत्र ने पूछा, यह कौन है? सारथि ने  
बताया कि ये साधु चतुर्थाश्रमी संन्यासी हैं। साधु  
को देख कर राजपुत्र के हृदय में बड़ा उल्लास हुआ।  
उन्होंने सोचा कि गृहस्थ में तो रोग और दुःख से  
छुटकारा मिलना कठिन है। अतएव जिस मार्ग से  
चल कर इस संन्यासी की अवस्था को मैं पहुँच  
सकूँ और इसी विरक्त का जैसा आनन्द प्राप्त कर  
सकूँ उसी से मुझे चलना चाहिए। इस तरह का  
निश्चय करके एक दिन आधी रात के समय अपनी  
रानी और उसके गोद के बच्चे को सोते हुए छोड़,  
निर्वाण की खोज में, वे महलों से बाहर निकल गये।

मुझे जब बुद्ध-चरित का यह पिछला दृश्य याद  
आता है तब स्वामी विश्वरूपजी का स्मरण आये  
बिना नहीं रहता। आश्चर्य नहीं जो वे संन्यासी,  
जिनको देख कर बुद्ध देवजी को घर से निकल जाने  
की इच्छा हुई थी, विश्वरूप स्वामी के ही सदृश रहे  
हों। अहो पवित्र मूर्ति! अहो पवित्र जीवन! अहो  
पवित्र स्वभाव! वे विद्या में बृहस्पति के समान थे।  
महाभाष्यान्त व्याकरण और वेदान्त की प्रस्थानत्रयी  
के आचार्य्य थे। काशी का माहात्म्य ऐसे ही विद्वानों  
और सत्पुरुषों के वास से बढ़ा है।

स्वामीजी से व्याकरण पढ़ने के साथ ही साथ  
सत्यव्रतजी ने सामवेद का अध्ययन गुर्जर सामवेदी  
पण्डित नन्दरामजी के पास किया। साङ्गोपाङ्ग  
वेदाध्ययन समाप्त करके उन्होंने सामश्रमी की  
पदवी पाई। सत्यव्रतजी बड़े ही सुस्वर थे। जब  
वे विद्यार्थियों के साथ साम-गान करते थे तब  
महल्ला भर वेद-ध्वनि से गूँज उठता था। एक दिन  
की बात मुझे अब तक याद है। मैं नियमानुसार  
व्याकरण-पाठ पढ़ने के लिए वहीं पहुँचा। वेद-ध्वनि  
से कमरा प्रतिध्वनित हो रहा था। पण्डितजी के  
पिता एक साम का गान सुन कर मोहित हो गये।  
भीतर कोठे पर से नाम लेकर उन्होंने बेटे को पुकारा  
और कहा कि यह तो गान्धर्ववेदी इमन् कल्याण के  
राग को लिये है। हाय! ऐसे सामवेद के गवैये  
अब नहीं रहे।



सामश्रमीजी के पिता के ब्रह्मण्य और उनकी स्वदेशहितैषिता का कुछ परिचय तो पाठकों को मिल ही गया है । लड़के को उन्होंने अँगरेजी नहीं पढ़ाया । पढ़ाते तो बनारस-कालेज में अँगरेजी की उच्च शिक्षा पाकर बेटा यथेष्ट धनोपार्जन करता और किसी बड़े सरकारी काम पर नियुक्त हो कर यथेष्ट सुखोपभोग भी करता । पर दुनियावी लालचों से बच कर उन्होंने पुत्र को वेद पढ़ाया, जिसमें वेद-रहित बङ्गदेशियों में मला एक तो वेदज्ञ उत्पन्न हो ।

उच्चाशय का तो यह प्रमाण हुआ । उनका रूप-रङ्ग और चाल-ढाल भी अपूर्व थी । सफ़ेद दाढ़ी, श्वेतकेश वाले सिर पर पण्डिताई काट की सफ़ेद ही टोपी; उनकी सब चाल ढाल एतद्देशीय रईसों की सी थी । लड़के को भी उन्होंने ब्राह्मण बटु का वेष धारण करना सिखलाया । ऐसी गोलाङ्गुलीय शिखा तो कभी बङ्गालियों के मस्तक पर हमने नहीं देखी । इस शिखा के कारण सत्यव्रतजी को कलकत्ते में बहुतेरे अनजान बङ्गाली उड़िया समझते थे । सामाध्यायी बाबूजी के द्वितीय पुत्र पण्डित ब्रह्मव्रतजी भी बड़े भाई सत्यव्रतजी के अनुसार पर शिक्षित हुए थे ।

बाबू साहब का मनोरथ यहाँ तक तो पूर्ण हो गया । उन्होंने बेटों को पूर्ण पण्डित बना दिया । पर अब इनकी अन्न-चिन्ता के दिन आये ।

विद्या को प्रकट किये बिना दक्षिण की प्राप्ति कैसे हो सके ? सो सामश्रमीजी ने संस्कृत में एक मासिक पत्रिका निकाली । नाम उसका रक्खा “प्रज्ञकभ्रनन्दिनी” । यथा नाम तथा गुणः । यह पत्रिका प्राचीन विषयों पर अच्छे अच्छे सम्पादकीय लेखों से पूर्ण रहा करती थी ।

उस समय काशी में एक ही संस्कृत-पत्रिका थी । जिसका नाम था “काशीविद्यासुधानिधि” । उसका अपर नाम “पण्डित” था । इसके सम्पादक थे बनारस-कालेज के प्रधानाध्यक्ष विद्वज्जनानुग्रहप्रिय त्रिफिथ साहब महोदय, जिनकी भाषाभिज्ञता और कविता-शक्ति का परिचय उनके रचित कुमारसम्भव

काव्य, वाल्मीकीय रामायण और चारों वेदों के अँगरेजी पद्यात्मक अनुवाद से पाया जाता है । कालेज के बड़े बड़े पण्डितों के लेखों से सम्पन्न अपनी पत्रिका की शोभा बढ़ाते थे । उनमें से एक का परिचय यहाँ दिया जाता है । प्रथम थे वे सांख्य्याचार्य पण्डित विठ्ठल शास्त्री । बनारस कालेज के प्रसिद्ध प्रधानाध्यक्ष त्रिफिथ साहब के पहले डाकूर बालनटाइन प्रधानाध्यक्ष थे । उस ही समय से इस बात का प्रयत्न होने लगा था काशी के पण्डितों को पाश्चात्य विद्या का ज्ञान करना चाहिए । इस बात के शास्त्रीजी स्वयं ही प्रेरित हुए थे । इन्होंने लाटिन भाषा सीख कर प्रथम अँगरेज़ वैज्ञानिक लार्ड वेकन के नोवम ऑर्गानम [Novum Organum] नामक ग्रन्थ का आदिशब्दवाद संस्कृत में किया था । ये पाठशाला के रूप में थे । ज्योतिषाचार्य पण्डित बापूदेव शास्त्री नाम तो भारतवर्ष के ज्योतिषियों में प्रख्यात । पण्डित राजाराम शास्त्री, पण्डित बालनटाइन पण्डित बेचनरामजी प्रभृति पण्डितवर्ग “पण्डित पत्र” के लेखक थे । इस “पण्डित” का सम्पादन करना बड़े साहस का काम था । पर सामश्रमीजी निर्भय पुरुष थे । न उन्हें धन-बल था, न लोक-प्रशंसा । तिस पर भी एकाकी उन्होंने एक दूसरा पत्र निकाला ही तो दिया ।

नहीं मालूम “प्रज्ञकभ्रनन्दिनी” के पुराने अङ्क मिल सकते हैं या नहीं । यदि मिल सकें तो जिन जनों को उस अङ्क को जरूर ही देखना पड़ेगा जिसमें उन बातों का विचार है जो स्वामी दयानन्द जी और काशी के पण्डितों के बीच, आर्यसमाज प्रतिष्ठा के पहले, हुई थीं । काशी-नरेश महाराज ईश्वरीनारायणसिंह सभापति थे । सामश्रमीजी “प्रज्ञकभ्रनन्दिनी” में विचार का वृत्तान्त छापा सभा में वे स्वयं उपस्थित थे । उभय पक्ष के समाधान सब उन्होंने यथावत् प्रकाशित किए । इस तरह सम्पादकीय विद्वत्ता प्रकट करके श्रमीजी यशस्वी होने लगे ।



# सरस्वती



आचार्य सत्यव्रत सामश्रमीजी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



संख्या  
सा  
उपपन्न  
ने में  
होने  
ही सम  
अने  
साथ वि  
इसी  
विद्यास्थान  
सर्वमान  
स्मृतिरह  
आकरण  
आह्लाद  
होगों भा  
प्रमी जी  
होने लग  
कठिन है  
खोज में  
मित्र से,  
नस्वान्वे  
न्होंने  
समादन  
कलकत्ते  
सामर्थ्य  
कर मुद्रि  
को भी  
कालन  
गम की  
छात्र  
किया । र  
क नामी  
परिदर्शन  
आल  
याम में वे  
हैना तो  
विद्वान् क



साथ ही साथ पण्डित-मण्डली में उपस्थित होकर  
युवक भी वे प्राप्त करने लगे । हरिद्वार के कुम्भ के  
में काश्मीरनरेश महाराज रणवीरसिंह से  
सम्मान पाया । राज-दरबारों और पण्डितों  
की समीपों में पहुँच कर, विद्यालोक की चमक से  
अपने तेज का परिचय देकर, आदर-सत्कार के  
साथ वित्तोपार्जन करना भी उनका व्यवसाय हुआ ।

इसी समय वङ्गदेश के नैयायिकों के प्रसिद्ध  
विद्यास्थान नदिया में एक विचित्र लीला हुई । वहाँ के  
सर्वमान्य स्मृति-शास्त्राचार्य पण्डित ब्रजनाथ  
स्मृतिरत्न ने इनकी और इनके सहोदर की कुशबुद्धि,  
आकरण शास्त्र में परिपूर्णता, तथा वेदज्ञता देख कर  
आश्चर्य से गद्गद होकर अपनी दोनों पौत्रियों का  
दोनों भाइयों के साथ विवाह कर दिया । अब साम-  
श्रमी जी पूरे गृहस्थ हो गये । धन की जरूरत अधिक  
होने लगी । आकाशवृत्ति से गृहस्थ का निर्वाह होना  
असंभव हो गया । अतएव ये नियत आमदनी की  
बोज में लगे । इसी समय राजा डाकूर राजेन्द्रलाल  
मित्र से, जो कलकत्ते के बड़े नामी विद्वान् और प्रत्न-  
तत्त्वान्वेषी थे, सामश्रमी जी का परिचय हुआ ।  
उन्होंने इनको एशियाटिक सोसाइटी के ग्रन्थों के  
सम्पादन-कार्य में लगा दिया । तब से पण्डितजी  
कलकत्ते ही में रहने लगे । एशियाटिक सोसाइटी ने  
सामश्रमीजी के द्वारा सम्पादित करा  
कर मुद्रित किया । सामश्रमीजी ने निरुक्त ग्रन्थ  
को भी प्रकाशित किया । प्रत्नकभ्रनन्दिनी का  
निकालना तो बन्द कर दिया । अब उन्होंने ऊषा  
सम की और मासिक पत्रिका निकाली । उन्होंने कई  
छोटे मोटे ग्रन्थों को बनाया और प्रकाशित  
किया । सामगान में तो वे प्रवीण थे ही । कलकत्ते के  
प्रत्न नामी थिएटर में कुछ दिन तक नाट्याभिनय का  
निर्देशन भी उन्होंने किया ।

आलस्य तो उनमें था ही नहीं । एक न एक  
धाम में वे लगे ही रहते थे । विद्यार्थियों को विद्या दान  
देना तो उनका प्रधान कर्त्तव्य था । दूर दूर के  
विद्वान् कलकत्ते आकर उनसे वेदाभ्यास करते थे ।

खेद की बात है कि दूर दूर के लोगों ने तो साम-  
श्रमीजी के पाण्डित्य से इतना लाभ उठाया पर  
उनके स्वदेशीय ब्राह्मणों में वेदज्ञ कोई तैयार न हुआ जो  
उनकी गद्दी पर बैठता । राजा आदिशूर के निमन्त्रित  
पाँच ब्राह्मणों में एक सामश्रमी जी के पूर्व पुरुष भी  
थे । हजार वर्ष पीछे कदाचित् यही सामश्रमी जी  
उनके कुल में वेदज्ञ पण्डित हुए । इतने दिनों तक  
वङ्ग देश में वेदाभाव रूप अन्धकार छाया था । एक  
दीपक जला भी तो शीघ्र ही बुझ गया । चाहते तो  
वङ्ग देश के पण्डित और राजा-बाबू सामश्रमी जी  
के द्वारा वेद-विद्या की पाठशाला खुलवा कर  
कितनों को वैदिक बना देते । पर बड़ा भारी अवसर  
हाथ से निकल गया । “मन पछतैहो अवसर बीते” ।  
नहीं मालूम अब दूसरा वङ्गदेशीय सामश्रमी कब  
पैदा होगा ।

आ० भ०

## पञ्जर-बद्ध कीर ।

प्रकट पद पद पर हृदय को सर्वदा रस-दायिनी;  
विविध-भाव-भरी हुई शुभ सदुपदेश-विधायिनी ।  
मनन करने योग्य है जो श्रवण कर के सर्वथा  
आज हम हे कीर ! तेरी कुछ सुनाते हैं कथा ॥ १ ॥  
कनक-पञ्जर-मध्य तेरा राज-गृह में वास है;  
सौख्य-सामग्री सभी सब काल तेरे पास है ।  
कौन तेरे तुल्य ऐसा भाग्यशाली अन्य है ?  
कीर, निस्सन्देह तू द्विज-वंश में अति धन्य है ॥ २ ॥  
नेत्र-हितकर रुचिर तेरा रूप सुन्दर है यथा ;  
मधुर भाषण भी मनोहर श्रवण-सुखकर है तथा ।  
दिव्य दोनों गुण यही बुध मुख्य जग में मानते;  
शुक ! इसी कारण तुझे सब पुण्यवान बखानते ॥ ३ ॥  
यदपि अन्य पिकादि खग भी रम्य वाणी बोलते;  
कर्ण-पुट में मञ्जु मधु-मय शर्करा सी घोलते ।  
किन्तु उनमें चारुता है कीर ! तेरी सी कहाँ ?  
अखिल गुण एकत्र मिलना है अहो ! दुर्लभ महा ॥ ४ ॥



अरुणिमा-मिश्रित असित यह कण्ठ मैं कण्ठी भली  
 देख छवि तेरी हरी खिलती सदा मन की कली ।  
 ललिन लाल-समान लोहित चांच की क्या बात है ?  
 सत्य है सौन्दर्य की जो नाक तू प्रख्यात है ॥ ५ ॥  
 कीर ! तेरा रूप योंही है हृदय-हारी बड़ा;  
 चरण मैं तिस पर रुचिर यह कनक का कङ्कण पड़ा ।  
 प्रीति उसकी ध्वनि बढ़ाती भूरि तेरे भूप की;  
 भूषणों से और भी बढ़ती रुचिरता रूप की ॥ ६ ॥  
 कीर ! जिसमें निकष-निर्मल विविध मणियाँ जड़ रहीं;  
 चारु चित्र-विचित्र जिनकी हैं प्रभायें पड़ रहीं ।  
 स्वर्ण का पञ्जर तुझे यह निज गुणों से है मिला;  
 क्यों न फिर तेरा हृदय सन्तत रहे इसमें खिला ॥ ७ ॥  
 देखते हैं भूप भी मुख-भाव जिसका सर्वदा;  
 चक्रवर्ती नृप वही है तव मुखापेक्षी यदा ।  
 कीर ! तेरे भाग्य का फिर करें और बखान क्या ?  
 राज के सम्मान से होता अधिक सम्मान क्या ? ॥ ८ ॥  
 देख कर प्रियदृष्टि से निज नाथ को प्रत्यक्ष तू ;  
 नृत्य कर करता सुशोभित नित्य पञ्जर-कक्ष तू ।  
 और ग्रीवा-भङ्ग करके प्रचुर छवि छाई हुई,  
 बोलता है सरस-वाणी प्रथम सिखलाई हुई ॥ ९ ॥  
 “भूमि पर जब तक मनोहर सुरसरी का जल बहे,  
 सौख्य कर श्रीमान् का ऐश्वर्य भी निश्चल रहे” ।  
 वचन सुन तेरे सदा यों, मुदित होता नाथ है;  
 फेरता फिर फिर कृपा-कर पाँजरे पर हाथ है ॥ १० ॥  
 भ्रमण का श्रम भूल कर भी हो कभी तुझको नहीं;  
 सकल सुख भोगा करे तू सर्वदा रह कर यहीं ।  
 कारुणिक प्रभु ने इसीसे पक्ष-हीन किया तुझे;  
 सोच, कैसा निज दया का दिव्यदान दिया तुझे ! ॥ ११ ॥  
 विश्व में जो वस्तुयें हैं और को दुर्लभ महा,  
 शुक ! सहज ही मैं तुझे वे प्राप्त होती हैं यहाँ ।  
 भूप की जिस पर कृपा हो क्या उसे दुर्लभ रहा ?  
 मुख्य ईश्वर के अनन्तर भूप का ही पद कहा ॥ १२ ॥  
 कर रहा मल दूर करके स्वच्छ कोई गेह है;  
 खान-पान करा रहा कोई तुझे सस्नेह है ।  
 यों अनेकों भृत्य तेरी कीर ! सेवा कर रहे;  
 त्रुटि नहीं रह जाय कुछ, इस बात से हैं डर रहे ॥ १३ ॥

शकुनि ! इस संसार में है सब प्रकार प्रसन्न तू;  
 राज-गृह में नित्य रहता नृपति के आसन्न तू ।  
 भोजनार्थ यथेष्ट पाता विमल जल, फल, अन्न तू;  
 है कभी तुझको न कुछ भी सकल-सुख-सम्पन्न तू ।  
 जो अवर्षण आदि से पैदा यथेष्ट न अन्न हो,  
 तो दशा संसार की दुर्वार दुःखापन्न हो ।  
 किन्तु तो भी नृप-कृपा से सुख नहीं तेरा घटे;  
 पूर्ववत् आनन्द से ही समय सब तेरा कटे ॥ १४ ॥  
 विहग सब करते विपिन में श्रम सहस्र जहाँ तहाँ;  
 तब कहीं उनका उदर भरता किसी विध है वहाँ ।  
 किन्तु नित्य यथासमय मिलता यहाँ भोजन तुझे;  
 तृप्त रखते हैं भली विध भूप-सेवक जन तुझे ॥ १५ ॥  
 जीविका-हित जीव सब करते अनेक उपाय हैं;  
 उदर-पोषण में अनेकों कष्ट होते हाय ! हैं ।  
 पर तुझे सब कुछ यहाँ पर प्राप्त होता श्रम बिना;  
 क्यों न फिर सुकृती जनों में जाय तू पहले गिता ? ॥ १६ ॥  
 शर्करा-मिश्रित सुधोपम दुग्ध में जो है सना,  
 भव्य भात प्रभात यह मिलता यहाँ तुझको घना ।  
 विहगवर ! बतला विपिन में तू कभी पाता इसे ?  
 विपिन में क्या, ग्राम में भी यह सदा मिलता किसे ? ॥ १७ ॥  
 शुक ! तुझे न महीष ने ही यों किया स्वीकार है;  
 प्रीति महिषी भी सदा रखती अतीव अपार है ।  
 पाश जो पति-कण्ठ का है प्रेम के व्यापार में,  
 फेरती तुझ पर वही कर तव सुवर्णगार में ॥ १८ ॥  
 शत्रु जिस के हों बने उस को कहाँ विश्राम है ?  
 किन्तु शुक ! इस सोच से भी कुछ न तुझको काम है ।  
 है यहाँ शङ्का न तुझ को श्येन रूपी काल की;  
 और दुर्द्धर-दृष्टि-धारी अति विरूप विडाल की ॥ १९ ॥  
 भ्रमण करना क्लेशकारी है नहीं वन का यहाँ;  
 फिर भयङ्कर प्रखरतर दावाग्नि का भय है कहाँ ?  
 शीत, वर्षा और तप का नहीं कुछ भी त्रास है;  
 वास करने में यहाँ शुक ! सब प्रकार सुपास है ॥ २० ॥  
 किन्तु सूक्ष्म विचार खग ! यदि किया जावे ध्यान से ।  
 तो बड़ा ही खेद हो तेरी दशा के ज्ञान से ।  
 दुःख में हो जाय परिणत सौख्य यह तेरा समी;  
 है भलाई भी बुराई हाय ! बन जाती कभी ॥ २१ ॥



[ भाग २२ ]  
 दुख एक न एक सब को है बना रहता सदा;  
 प्राप्त होती है किसे संसार में सब सम्पदा ?  
 किन्तु सुख में कीर ! तेरे एक ऐसी त्रुटि पड़ी,  
 सब सुखों को दुख बनाती जो भयङ्कर है बड़ी ॥२३॥  
 कीर ! तूने यदपि पूरा विभव है पाया यहाँ;  
 भोगता तू नृप-रूपा से भोग मन-भाया यहाँ ॥  
 सर्व-सुख-संहारिणी है किन्तु जो परतन्त्रता;  
 ध्यान उस पर भी गया है क्या कभी तेरा बता ? २४ ॥  
 शोक है हे कीर ! तू कुछ भी नहीं स्वाधीन है;  
 देख तेरी इस दशा को चित्त चिन्ता-लीन है ।  
 सोच अब तू आज तुझ सा कौन भाग्य-विहीन है ?  
 विभव रहते भी अहो ! तू दीन से भी दीन है ॥२५॥  
 कर न सकता काम कोई चित्त के अनुसार तू;  
 कीर ! फिर क्या सुख तुझे है तनिक सोच विचार तू ।  
 नित्य अवलम्बित रहे गति अन्य पर जिसकी सभी;  
 कभी सुख की उसे क्या प्राप्त हो सकती कभी ? ॥२६॥  
 विभव ये, जिनका तुझे है गर्व अति अपने हिये;  
 कीर ! निश्चय हैं सभी थोड़े दिनों के ही लिए ।  
 कमल-दल के तरलतर जल-कण स्वयं ढलते हुए,  
 चल रह सकते भला क्या अनिल के चलते हुए ? २७  
 विहावर ! इस बात का है खूब दृढ़ निश्चय मुझे;  
 प्राप्त होते हैं तभी तक ये रुचिर भोजन तुझे ।  
 मृत रहा है नाथ जब तक रस-भरी तेरी गिरा;  
 कौन काम लिये बिना वेतन दिये देता निरा ? ॥२८॥  
 आपगी कुछ ही दिनों में बल-विनाशक जब जरा;  
 कर सकेगा तू न ऐसा भव्य भाषण रस-भरा ।  
 सब सखे ! जो दशा होगी, ध्यान भी उसका बुरा;  
 तब तज देते सभी हैं अन्त में जी को चुरा ॥ २९ ॥  
 तब से इस समय जो जन शुक ! तुझे हैं चाहते;  
 नाना भाँति से तुझको सदैव सराहते ।  
 फिर यही हो जायँगे सब शत्रु-रूप यथार्थ ही;  
 किन्ते हैं लोक में सब लोग केवल स्वार्थ ही ॥ ३० ॥  
 शोक करके चित्त में, या भूल कर ही जो कहीं;  
 कीर ! तेरा नाथ तुझको अन्न-पानी दे नहीं ।  
 विनाथ-समान सत्वर तू यहाँ पर मर रहे;  
 विवशता के विषय में है ठीक जो जितना कहे ॥३१॥

हेतु रहते भी न तू यदि ईश-इक्षित पर चले,  
 काल-रूप कराल उसकी रोष-ज्वाला में जले ।  
 भूप और भुजङ्गों का साथ एक समान है;  
 चूक होने पर कहीं भी फिर नहीं कल्याण है ॥ ३२ ॥  
 चकित मत हो तू नहीं यह कल्पना या गल्प है;  
 कर न बैठें भूप जो कुछ वही जग में अल्प है ।  
 स्ववश नृप के कठिन हठ का कौन पाता छोर है ?  
 राज-मदसा और मद होता न कोई घोर है ॥ ३३ ॥  
 तू यहाँ चिरकाल से है जिस अवस्था में रहा;  
 बहुत सम्भव है न भावे कुछ तुझे उस पर कहा ।  
 मानता आता सदा से आत्म-हित जो है जिसे,  
 तद्विरुद्ध विचार सहसा उचित जँच सकते किसे ? ॥३४॥  
 धन्य प्रेम-कटाक्ष से तुझको अभी जो कर रही,  
 देख तुझको क्षीण पीछे स्वामिनी तेरी वही ।  
 शुक ! विड़ाली-सम करेगी दृष्टि सम्मुख रोष से,  
 सकल जन प्रतिकूल होते दुर्दिनों के दोष से ॥ ३५ ॥  
 देख कर हे कीर ! तेरी यदि कभी छवि ही नई;  
 नासिका की तुल्यता पर उसे ईर्ष्या आगई ।  
 तो उसी दिन आयु तेरी जान तू पूरी सभी;  
 सह न सकते और का उत्कर्ष मानी जन कभी ॥ ३६ ॥  
 शुक ! तुझे इस पीँजरे में बोल क्या आनन्द है ?  
 कठिन कारागार में यों क्या नहीं तू बन्द है ?  
 यदि इसी का नाम सुख है, दुःख फिर क्या है अरे !  
 अहित को हित मानते हैं अब जन भ्रम से भरे ॥३७॥  
 निकल जाय न हाथ से तू कर हृदय में लक्ष्य ये,  
 काटता है नाथ तेरे कीर ! दोनों पक्ष ये ।  
 हाय ! इतना भी जिसे तेरा नहीं विश्वास है ;  
 प्रेम-पूर्वक वास करता तू उसी के पास है ! ॥३८॥  
 बन्धु-बान्धव आदि सारे निज जनों को छोड़ के;  
 और नाता प्रीति-पूरित पर-जनों से जोड़ के ।  
 हो यहाँ निश्चिन्त जो तू भोगता सुख-भोग है ;  
 भोग कहना भ्रम उसे है वह भयङ्कर रोग है ॥३९॥  
 यह चरण-कङ्कण कभी शुक ! आभरण मत जान तू,  
 बद्ध जन की बेड़ियों का बन्धु इसको मान तू ।  
 हेम का पञ्जर तथा यह प्रिय कभी न विचार तू;  
 समझ इसको निज हृदय में काल-कारागार तू ॥४०॥



विपिन दहनादिक विपद से अन्य सब खग तो वहाँ  
 त्राण पा सकते त्वरित उड़ कर तुरन्त जहाँ तहाँ ।  
 किन्तु सहसा आ पड़े आपत्ति यदि कोई यहाँ  
 कीर ! तो इस पीजरे से जा सके फिर तू कहाँ ? ॥४१॥  
 कीर ! जो बैठक तुझे यह पीजरे में है बनी,  
 कुञ्ज की पुष्पित-लता-सम है न वह शोभा-सनी ।  
 बैठ इस पर तू खगों से गर्व करता, खेद है !  
 मूल से प्रतिबिम्ब में होता बड़ा ही भेद है ॥४२॥  
 पाक जो तुझको यहाँ मिलते विविध सब काल हैं,  
 शुक ! न हो सकते फलों से वे कदापि रसाल हैं ।  
 मानते इस बात को विज्ञानवान अशेष हैं :—  
 गुण फलों में अन्न से होते अनेक विशेष हैं ॥४३॥  
 स्वजन से कर दूर जिसने बन्द तुझको है किया ;  
 हाय ! भोजन कर रहा तू उस अदय काही दिया !  
 उस बुरे व्यवहार का रखता न रज्ज्व विचार है ;  
 मूढ़ ! बारम्बार तुझको कोटिशः धिक्कार है ॥४४॥  
 स्वर्ण के जिस पीजरे पर प्रीति तेरी हो रही,  
 विपिन का वह विटप-कोटर श्रेष्ठ इससे है सही ।  
 शुक ! तुझे क्या याद है पैदा हुआ था तू वहीं ;  
 जन्म-भूमि-समान सुन्दर स्वर्ग भी होता नहीं ॥४५॥

मानता हो भूप को जो वह बुरा ही क्यों न हो ;  
 मानना पड़ता उसे तो विवश होकर भी अहो !  
 किन्तु शुक ! सच मान तू यह बात निश्चय है सही ;  
 प्राप्त हो निज जाति से जो मान सच्चा है वही ॥ ४६ ॥  
 शुक ! यहाँ बतला विपिन की है कहाँ वह छवि भली ?  
 फूल-फल-पल्लव-कलित अति ललित वह विटपावली ।  
 वह महा आरोग्यकारी कहाँ शुद्ध समीर है ?  
 और खेतों की कहाँ वह सघनता गम्भीर है ? ॥४७॥  
 सुजन-संयुत विपिन में स्वच्छन्दता से घूमना ;  
 सुहृद्गण के प्रेम-पथ में मत्त होकर झूमना ।  
 नित्य मन का काम कर के शान्ति-सुख पाना हिये ;  
 हो गईं बातें सभी वे स्वप्न अब तेरे लिए ॥ ४८ ॥  
 शुक ! जिन्होंने इस जगत में जन्म तुझ को था दिया,  
 और नाना क्लेश सहकर था तुझे पोषित किया ।  
 जरठ जननी-जनक तेरे हैं कहाँ कैसे वही ?  
 हाय ! उनकी भी यहाँ क्या सुध न कुछ तुझको रही ४९

समय जिन से बीतता था नित्य तेरा मोद में,  
 साथ छोटे से रहे थे जो विशेष विनोद में ।  
 वे सुहृज्जन भी तुझे क्या याद अब आते नहीं ?  
 मित्र जैसी वस्तु जग में सर्व जन पाते नहीं ॥ ५० ॥  
 प्राण, धन, सर्वस्व जिसका एक तू ही लोक में,  
 शुक ! वही तेरी शुकी है विकल तेरे शोक में ।  
 किन्तु उसका भी अहो ! आता न तुझ को ध्यान में  
 अधमता इस से अधिक अब और कौन महान है ?  
 'सुगुण भी संसार में हैं दोष बन जाते कहीं'—  
 बुध जनों के इस कथन में भूल कुछ भी है नहीं ।  
 शत्रु अपना आप ही बनता कभी प्राणी अहो !  
 हो न पसूर-बद्ध शुक ! तू जो मधुरभाषण न हो  
 मैथिलीशरण गुप्त

अमेरिकाभ्रमण ।

( मेरी दिनचर्या )

( ३ )



न १२—प्रातःकाल नाश्ता करने  
 एक मुसलमान भाई के  
 सिक्खों के घरों में गया ।  
 वेंकोवर में कोई तीस आ  
 काम करते हैं—आधे मुसलमान  
 आधे हिन्दू । पर इन्हें हम  
 भारतीय ही कहना चाहिए, क्योंकि भारत-माता  
 सन्तान होने से सभी भारतीय अपने बन्धु हैं  
 सब लोग कारखानों में काम करते हैं और पास  
 ही रहते हैं ।

एक बड़ा भारी दोष मैंने इन लोगों में पाया  
 यही क्या जो लोग पंजाब से आते हैं वे  
 सफ़ाई से मानों दूर भागते हैं । यद्यपि यहाँ इन  
 को छः छः रुपये रोज मिलते हैं, पर इनके रहने का  
 वही है जो भारत में था । एक कोठरी में दस  
 बारह बारह आदमी सोते हैं और मैले कपड़े  
 हैं । बाहर सैर करने के लिए सिर्फ एक अच्छा जोड़ा



## सरस्वती



वाशिङ्गटन रियासत की राजधानी ओलिम्बिया का प्रधान राजकीय कार्यालय ।  
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



॥ पर ते  
 जाता है  
 समझाओ  
 हो कैसे ?  
 नवन इ  
 जानते ही  
 देश ने  
 और काम  
 हार की  
 हत्व बहु  
 भाई  
 आप मु  
 ॥ उन्  
 हर त  
 ॥ आस  
 ना सुन  
 किसी  
 मियाँ प  
 मय में  
 समान  
 अपने श  
 ममाया  
 नयकत  
 मुंशीरा  
 ज नहीं  
 मैं—प्य  
 का भी  
 ने वाला  
 मुंशीरा  
 की से हम  
 को की ह  
 मैं—अल  
 नि सम  
 लो ।  
 और उर



[ ८ ]

पर नीचे के कपड़े, जिनका शरीर के साथ स्पर्श होता है, प्रायः मैले होते हैं। इनको चाहे जितना धोया हो, इन पर बहुत थोड़ा असर होता है। असर किसे? ये बातें बचपन से सीखनी चाहिए। पर जवान इन लोगों का कैसे गुजरता है, यह पाठक जानते ही हैं।

देश में अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हुए बिना कोई काम नहीं हो सकता। देश के बच्चों को सब प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए। उनको सफाई का बहुत अच्छी तरह सिखलाना चाहिए।

भाई रलसिंह से मेरी पहले से ही मुलाकात थी। आप मुझसे सियेटल मिलने गये थे। मैं उनके घर था। उन्होंने मेरी बहुत खातिर तवाजो की। वहाँ तब तक मुझसे अनेक प्रकार की बातचीत थी। आस पास जो देशबन्धु रहते थे वे भी मेरा आस सुन कर वहाँ इकट्ठे हो गये। इन लोगों की सो के भी सर पर बाल न थे। सभी ने पहनी पहनी थीं। वार्तालाप अधिकांश शराब के समय में हुआ। ये लोग शराब पीते थे। केवल वर्तमान भाई इससे बचे हुए थे। मैंने इनके अपने शराब की बुराइयों का फोटू खींचा और बताया कि भारत-माता को कैसे पुत्रों की आवश्यकता है। एक भाई ने प्रश्न किया:—

मुंशीराम—थोड़ी सी शराब पी लेने में कोई बुराई नहीं। हाँ ज़ियादा पीना नुक़सान करता है।

मैं—यारे भाई, एक पैसे की चोरी करने का भी चोर है और एक सौ डालर की चोरी करने वाला भी चोर है।

मुंशीराम—चोरी मैं और शराब में फ़रक़ है। मैं तो दूसरे की चीज़ चुराते हैं, शराब से अपनी हानि नहीं करते।

मैं—अच्छा देखिए, मैं आपको थोड़े में इसकी समझा देता हूँ। सब लोग ध्यान से मेरी ओर आँखें लगाएँ। क्योंकि मुंशीराम इन सबमें पढ़ा लिखा था और उसका इन सब पर अच्छा प्रभाव था। इस

लिए ये लोग यह जानना चाहते थे कि मेरा कहना ठीक है या मुंशीराम का।

आप इस देश में रुपया कमाने के लिए आये हैं। आपकी स्त्री है, माता-पिता हैं। आपका फ़र्ज है कि एक पैसा भी फ़िज़ूल खर्च न करें। सभी बचा कर घर भेजें जिससे घर का दरिद्र दूर हो। शराब में आपके दो चार डालर महीने में खर्च हो जाते हैं। देश में दस बारह रुपये से महीने भर का खर्च चलता है।

दूसरे, शराब से शरीर-हानि होती है। पहले आप थोड़ी पियेंगे; फिर चस्का लग जाने से अधिक पीना आरम्भ करेंगे। हर इलाक़ का आरम्भ थोड़े से ही होता है। वृद्धि धीरे धीरे होती है।

तीसरे, आप पढ़े लिखे हैं। आपका सम्बन्ध बीस पच्चीस अनपढ़ लोगों से है। वे आपको अपना आदर्श समझते हैं। एक आपकी मिसाल से बीस पच्चीस लोगों का आचार बिगड़ता है; क्योंकि ये लोग समझते हैं कि जब पढ़ा लिखा मुंशीराम शराब पीता है तब हमें क्या डर है। आप शायद इतने संयमी हों कि थोड़े से ही आपकी तृप्ति हो जाती हो। पर इन अनपढ़ों को दो दो चार चार बातें चाहिए। देखिए, आपकी बर्दाश्त कितनी हानि हो रही है।

चौथे, आप ऐसे देश के रहने वाले हैं जहाँ १३ फ़ी सदी लोग अनपढ़ हैं। देश के बच्चों को शिक्षा नहीं मिलती। काफ़ी स्कूल नहीं हैं। आप यहाँ बीस पच्चीस आदमी मिल कर दो तीन सौ रुपये की शराब हर महीने पीते हैं। आपका दिल पत्थर का है जो देश की वर्तमान दशा को देख कर भी नहीं पसीजता। इस दो तीन सौ रुपये महीने से कई गाँवों के स्कूल चल सकते हैं। वहाँ हजारों बालकों को विद्या-दान मिल सकता है—उनकी आँखें खुल सकती हैं।

पाँचवें, आप में से कौन ऐसा है जिसको देश के दुर्भिक्ष का ज्ञान नहीं। वहाँ लाखों आदमी भूख से मर जाते हैं। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि हमारे देशबन्धु तो भूखों मरें और हम यहाँ शराब के प्याले उड़ावें?







[ भाग ८ ]

पर्वत-श्रेणियों और प्रशान्त महासागर के बीच से इस रियासत के पूर्वी और पश्चिमी भागों की आवेष्टिका में बड़ा भेद है। कहीं बहुत सरदी होती है कहीं बहुत गरमी होती है। यह पश्चिमी भाग उपजाऊ भी बहुत है, खेती यहाँ खूब फलती फूलती है। पूर्वी भाग में आबपाशी के बिना काम नहीं चलता।

वाशिंगटन रियासत में अधिकांश खाने कोयले की हैं जिनसे १९०७ में ३,६८०, ५३२ टन कोयला निकला था। इसकी कीमत २३,०३९,४०३ रुपया थी। कोयले के सिवा सोने, चाँदी, ताँबे और जस्ते की भी खानें यहाँ हैं। लोहे की खानों से भी पता चला है।

जंगल तो इस रियासत में बहुत ही बड़े बड़े बड़े पहाड़ों के पूर्वी भाग में तथा कोलम्बिया के उत्तर में देवदार आदि के विकट जंगल हैं। इन पर्वतों के पश्चिमी भाग में “फर” (Fir) जंगल ४००० फीट की उँचाई तक चले गये और प्रायः समुद्र तक फैले हुए हैं।

इस रियासत को मछलियों के व्यापार से बड़ा लाभ है। १९०४ में इस व्यापार में १५, ९५७, ६०३ अधिक रुपया लगा हुआ था और नौ मजदूरों की रोज़ी इससे चलती थी। इस जल कोई ३० लाख डालर की मछलियाँ बिकीं। एक डालर तीन रुपये के बराबर समझ कर व्यापार लगा लीजिए। मछलियाँ टीनों में बन्द करके भेजी जाती हैं।

खेती का तो कहनाही क्या है। यह रियासत दुनिया में खेती के लिए प्रसिद्ध है। १९०८ में १० करोड़ रुपये की उपज हुई। कुछ ठिकाना है। रियासत के आदिमियों को देख कर तबीयत खुश होती है। सभी हड्डे कड़े, सुन्दर, सुडौल—क्यों? जब खाने पहिनने को इतना मिलता है कि वे दृष्ट-पुष्ट हों। एक हमारा देश है जहाँ किसान भूखों मरते हैं।

गेहूँ की यहाँ दो फ़सलें होती हैं—एक सरदी में, दूसरी वसन्त में। स्नेक नामक नदी के दक्षिणी भाग में, तथा स्पोकेन नाम की नदी के आस पास, गेहूँ की फ़सल बिना सोंचे ही होती है। अल-फालफा नाम की घास बिना सोंचे नहीं होती। इस घास के विषय में मैं फिर कभी लिखूँगा। क्योंकि इसकी पैदावार से भारतीय कृषकों को बहुत लाभ हो सकता है।

अमेरिका में घोड़ों से खेती होती है। गाय दुध के लिए और बैल मांस के लिए पाले जाते हैं। खेती के लिए घोड़ों ही की अधिक ज़रूरत होने के कारण किसान लोग घोड़े भी पालते हैं। पर बैलों, भेड़ों और सुअरों की खपत अधिक होने से इनको वे अधिक पालते हैं। इनसे भी लाखों रुपये की आमदनी होती है।

वाशिंगटन रियासत में कल-कारखाने भी बहुत हैं। जहाँ जलप्रपात से कलें चलाने का सुभीता है, अथवा जहाँ कहीं नदियाँ पास हैं, वहाँ कारखाने खोल दिये गये हैं।

अब ज़रा शिक्षा का भी वृत्तान्त सुन लीजिए।

रियासत की ओर से एक स्टेट सुपरिन्टेन्डेन्ट शिक्षाविभाग के लिए चुना जाता है। वह चार बरस तक रहता है। रियासत के गवर्नर तथा सेनेट की ओर से उसके चार सहायक मुक़र्रर किये जाते हैं। इन पाँचों की मण्डली को स्टेट बोर्ड ऑफ़ एजुकेशन (State Board of Education) कहते हैं। हर एक कौन्टी \* में अपने अपने सुपरिन्टेन्डेन्ट का चुनाव लोग खुद करते हैं, जो दो वर्ष तक अपने पद पर रहता है। हर ज़िले में तीन वर्ष के लिए तीन डाइरेक्टर्स का चुनाव होता है। यह सब यहाँ वालों के ही हाथ में है। ज़िले के डाइरेक्टर उचित शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। साल में कम से कम छः महीने

\* कई जिलों को मिला कर एक कौन्टी बनती है।  
लेखक



स्कूल जरूर खुले रहते हैं। ६ वर्ष के बच्चे से लेकर २१ वर्ष तक के युवक यहाँ शिक्षा पाते हैं। आठ वर्ष की उम्र से १५ वर्ष की उम्र वाले बच्चों को स्कूल जाना लाज़मी है। बड़े क़सबों में हाई स्कूल खोले गये हैं।

इस सुप्रबन्ध का यह फल हुआ है कि १९०० की मर्दुमशुमारी में दस वर्ष की उम्र वाले बालकों में केवल ३ फी सैकड़ा अनपढ़ निकले। १९०७ में ६ वर्ष से लेकर २१ वर्ष तक के विद्यार्थियों की संख्या २३५,०६१ थी। शिक्षकों की संख्या ६,२०९ थी जिन में ४,९५२ स्त्रियाँ थीं। रियासत की ओर से शिक्षा में कुल ५, ५०३, ८९६ डालर खर्च किया गया था।

रियासत की ओर से एक बड़ा भारी विश्व-विद्यालय सियेटल में है और एक कृषिकालेज पुलमेन नाम के शहर में है। इन दो भारी विद्यालयों के अतिरिक्त और भी कई कालेज भिन्न भिन्न शहरों में हैं जो चन्दे और दान से चलते हैं।

और भी सुन लीजिए। दान का भी यहाँ एक महकमा है। यह नहीं कि आँखें बन्द करके पंडेजी ने महाराज के नाम संकल्प पढ़ दिया कि—अमुक अमुक पुण्य क्षेत्र में, अमुक यजमान ने, अमुक तिथि को इतना दान दिया। बस हो गया और दाता ने लुट्टी पाई। पहुँच गये वैकुण्ठ !

यहाँ दान के महकमे के अधिकारी योग्या-योग्य कार्यों का विचार करके दान का उपयोग करते हैं। उसके द्वारा पागलों के अस्पताल, शरीर लड़कों के स्कूल, लंगड़े, लूले, नौजवानों के लिए शिक्षालय आदि कई एक उपयोगी शाखायें खोली और चलाई जाती हैं।

वाशिंगटन रियासत में सियेटल, टकोमा, स्पोकैन और वालावाला आदि प्रसिद्ध नगर हैं।

१३ जून सोमवार से मैंने आरेगन रियासत का भ्रमण आरम्भ किया। पहले चार पाँच हफ़्ते मैं पोर्टलैंड शहर में रहा। क्यों रहा ? कैसे रहा ?

क्या किया ? क्या देखा ? इन सब प्रश्नों का जवाब अगले लेख में मिलेगा।

सत्यदेव, अमेरिका।

## कालकौतुक ।

( सुभद्रा-छन्द )

सविता के सब ओर, मही माता चकराती है  
धूम धूम दिन, रात, महीना वर्ष बनाती है ॥

कल्पलों अन्त न आता है।

हा ! इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है ॥

( चैत्र )

छोड़ छुदन प्राचीन, नये दल वृक्षों ने धारे।

देख विनाश विकाश, रूप रूपक न्यारे न्यारे।

दुरङ्गी चैत दिखाता है।

हा ! इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है ॥

( वैशाख )

सूख गये सब खेत, सुखा दी सारी हरियाली

गहरी तीत निचाड़, मेदिनी रुखी कर डाली।

धूलि वैशाख उड़ाता है।

हा ! इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है ॥

( ज्येष्ठ )

भील सरोवर फूँक, पजारे नदियों के सेते

व्याकुल फिरें कुरङ्ग, प्राण तृष्णा पै खोते ॥

जलों को जेठ जलाता है।

हा ! इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है ॥

( आषाढ़ )

दामिनि को दमकाय, दहाड़े धाराधर धाये।

मारुत ने भकझोर, झुकाये झूमे भर लाये ॥

लगी आषाढ़ बुभाता है।

हा ! इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है ॥

( श्रावण )

गुल्म लता तर पुञ्ज, अनूठे दृश्य दिखाते हैं।

बरसे मेह विहङ्ग, विलासी मङ्गल गाते हैं ॥

बड़ाई श्रावण पाता है।

हा ! इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है ॥



( भाद्रपद )

उपजे जन्तु अनेक, झिलारे भील नदी नाले ।  
भेद मिटा दिन रात, एक से दोनों कर डाले ॥  
सुधा भादों बरसाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ ७ ॥  
( आश्विन )

फूल गये सर काँस, बुढ़ापा पावस पै छाया ।  
खिलने लगी कपास, शीत का शत्रु हाथ आया ॥  
कृषी को कार पकाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ ८ ॥  
( कार्तिक )

गुद्व हुए जल वायु, खुला आकाश खिले तारे ।  
धोये विवेध अनाज, उगे अंकुर प्यारे प्यारे ॥  
दिवाली कार्तिक लाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ ९ ॥  
( मार्गशीर्ष )

शीतल बहै समीर, सभी को शीत सताता है ।  
हायन भर का भेद, जिसे दैवज्ञ बताता है ॥  
अग्रहायन से पाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ १० ॥  
( पौष )

उपके ओस तुषार, पड़े जम जाता है पानी ।  
कट कट बाजें दाँत, मरी जल-शूरा की नानी ॥  
पुजारी पौष न न्हाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ ११ ॥  
( माघ )

बुधा मकर का अन्त, घटी सरदी अम्बा बौरे ।  
बिकसे सुन्दर फूल, अरुण, नीले, पीले, धौरे ॥  
माघ मधु को जन्माता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ १२ ॥  
( फाल्गुन )

बेत पके अब आँख, ईश ने उन्नति की खोली ।  
अब मिला भरपूर, प्रजा के मनमानी होली ॥  
फाल्गुन फाग खिलाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ १३ ॥

( अधिमास )

विधु से इन \* का शब्द, बड़ाई इतनी लेता है ।  
जिसका तिगुना मान, मास पूरा कर देता है ॥  
वही तो लोंद कहाता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ १४ ॥  
( कवि की आयु )

किया न प्रभु से मेल, करेगा क्या मन के चीते ॥  
यों ही दृग शर वष, वृथा "शङ्कर" तेरे बीते ॥  
न पापों पै पछताता है ।

हा ! इस अश्वि काल-चक्र में जीवन जाता है ॥ १५ ॥  
नाथूराम शङ्कर शर्मा

मेघदूत-रहस्य ।



विता-कामिनी के कमनीय नगर में  
कालिदास का मेघदूत एक ऐसे भव्य  
भवन के सदृश है जिसमें पद्मरूपी  
अनमोल रत्न जड़े हुए हैं—ऐसे रत्न,  
जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए  
रत्नों से भी कहीं अधिक है । ईंट

और पत्थर की इमारत पर जल-वृष्टि का असर  
पड़ता है, आँधी-तूफान से उसे हानि पहुँचती है,  
विजली गिरने से वह नष्ट-भ्रष्ट भी हो सकती है ।  
पर इस अलौकिक भवन पर इनमें से किसी का  
कुछ भी जोर नहीं चलता । न वह गिर सकती है,  
न घिस सकती है, न-उसका कोई अंश टूट ही  
सकता है । काल पाकर और इमारतें जीर्ण होकर  
भूमिसात् हो जाती हैं; पर यह अद्भुत भवन न  
कभी जीर्ण होगा और न कभी इसका ध्वंस ही  
होगा । प्रत्युत इसकी रमणीयता-वृद्धि की ही  
आशा है । इसे अजर भी कह सकते हैं और  
अमर भी ।

अलकाधिपति कुवेर के कर्मचारी एक यक्ष ने  
कुछ अपराध किया । उसे कुवेर ने, एक वर्ष तक,  
अपनी प्रियतमा पत्नी से दूर जाकर रहने का दण्ड

\* सूर्य ।



दिया । यक्ष ने इस दण्ड को चुपचाप स्वीकार किया । अलका छोड़ कर वह मध्य-प्रदेश के रामगिरि नामक पर्वत पर आया । वहाँ उसने एक वर्ष विताने का निश्चय किया । आषाढ़ का महीना आने पर बादल आकाश में छा गये । उन्हें देख कर यक्ष का पत्नी-वियोग-दुःख दूना हो गया । वह अपने को भूल सा गया । इसी दशा में उस विरही यक्ष ने मेघ को दूत कल्पना करके, अपनी कुशलवार्ता अपनी पत्नी के पास पहुँचानी चाही । पहले कुछ थोड़ी सी भूमिका बाँध कर उसने मेघ से अलका जाने का मार्ग बताया, फिर सँदेसा कहा । कालिदास ने मेघदूत में इन्हीं बातों का वर्णन किया है ।

मेघदूत की कविता सर्वोत्तम कविता का एक बहुतही अच्छा नमूना है । उसे वही अच्छी तरह समझ सकता है और उससे पूरा पूरा आनन्द भी वही उठा सकता है जो स्वयं कवि है । कविता करनेहों से कवि-पदवी नहीं मिलती । कवि के हृदय को—कवि के काव्यमर्म को—जो जान सकते हैं वे भी एक प्रकार के कवि हैं । किसी कवि के काव्य के आकलन करने वाले का हृदय यदि कहीं कवि के ही हृदय-सदृश हुआ तो फिर क्या कहना है । इस दशा में आकलनकर्त्ता को वही आनन्द मिलेगा जो कवि को उस कविता के निर्माण करने से मिला होगा । जिस कविता से जितनाहीं अधिक आनन्द मिले उसे उतनीहीं अधिक ऊँचे दरजे की समझना चाहिए । इसी तरह, जिस कवि या समालोचक को किसी काव्य के पाठ या रसास्वादन से जितनाही अधिक आनन्द मिले उसे उतनाहीं अधिक उस कविता का मर्म जानने वाला समझना चाहिए । इन बातों को ध्यान में रखकर, आइए, देखें, कालिदास ने इस काव्य में क्या क्या करामाते दिखाई हैं । पर इससे कहीं यह न समझ लीजिएगा कि मैं कवि या समालोचक होने का दावा करता हूँ । मैं तो ऐसे महानुभावों के चरणों की रज भी नहीं । तथापि:—

नमः पतन्यात्मसमं पतत्रिणः

इस कविता का विषय—यहाँ तक कि इसका नाम भी—कालिदास के परवर्ती कवियों को हतास पसन्द आया है कि इसकी छाया पर हंसदूत, पदाङ्कदूत, पवनदूत और कोकिलदूत आदि कितने दूत-काव्य बन गये हैं । यह इस काव्य की ऐसी प्रियता का प्रमाण है ।

कालिदास को इस काव्य के निर्माण करने का बोज कहाँ से मिला ? इसका उत्तर “इत्यादि पवनतनयं मैथिलीचोन्मुखी सा”—इत्यादि इस काव्य में है:—

“इतनो कहत तोहिँ मम प्यारी ।

जिमि हनुमत को जनकदुलारी ॥

सीस उठाय निरखि घन लै है ।

प्रफुलित चित है आदर दै है” ॥

यक्ष की तरह रामचन्द्र को भी वियोग-सहनी पड़ी थी । उन्होंने पवनसुत हनूमान को अपना दूत बनाया था । यक्ष ने मेघ को बनाया । मेघ का साथी पवन है, हनूमान की उड़ान पवन से है । अतएव दोनों में पारस्परिक समानता भी हुआ । यह सम्बन्ध काकतालीय सम्बन्ध कह सकते हैं । परन्तु मैथिली के पास रामचन्द्र सँदेसा भेजना वैसा सम्बन्ध नहीं । बहुत समझ है, कालिदास को इसी सन्देश-स्मृति ने प्रेरित करके इस काव्य की रचना कराई हो । बहुत समझ है, यह मेघसन्देश कालिदासही का आत्मसन्देश है ।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि कालिदास का जन्मभूमि काश्मीर है । वे धारात्रिप विक्रम के समान रत्न थे । यदि यह बात सत्य हो तो काश्मीर धारा के मार्ग में जो नदियाँ, नगर, पर्वत और पर्वत आदि पड़ते हैं उनसे कालिदास का बहुत अच्छा परिचय रहा होगा । धारा और काश्मीर के पास के प्रदेश, नगर और पर्वत आदि भी उतने अवश्य देखे होंगे । मेघ को बतलाये गये मार्ग विशेष करके इन्हीं का वर्णन है और यह वर्णन बहुतही मनोहर और प्रायः यथार्थ है । अतः कोई आश्चर्य नहीं जो काश्मीरही कालिदास



[ भाग १ ]

क कि इस  
येों को इत  
पर हस  
रादि कितने  
य की को

प्राण करने  
“इत्यादि  
इत्यादि

।  
री ॥  
।  
” ॥

वियोग-  
हनूमान्  
घ को  
ान् की उ  
रिक सम्  
य सम्बन्ध  
रामचन्द्र  
बहुत सम्  
ति ने प्रे  
बहुत सम्  
मसन्देश हो

कालिदास  
क्रम के स  
काश्मीर  
र्वत और  
बहुत अ  
श्मीर के  
दि भी उ  
गये मा  
र यह व  
है । अ  
कालिदास





विरही यक्ष ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।







# सरस्वती



विरहिणी यक्ष-पत्नी ।

संख्या  
जन्मभूमि  
उन्होंने इ  
अपने दे  
कवि  
छन्दोयोग  
प्राजापति  
सता, औ  
वद जात  
रस के मि  
कारणिक  
कारणिक  
कारण अ  
है वह न  
है, न रथ  
जाते भुज  
किसी वृ  
गहर कर  
अपने मन  
जान्ता वृ  
वृत्त के उ  
कर कालि  
ने किया  
पौरों ने  
लिया है  
कवि  
है जिन  
समभ  
पूर्ण  
अंगूर क  
मसाद-गु  
मलकता  
लगती ।  
कार प्रेमा  
की कितन  
बताना न  
समभ में



जन्मभूमि हो और जिन वस्तुओं और स्थलों का उन्होंने इस काव्य में वर्णन किया है उनको उन्होंने प्रत्यक्ष देखा हो।

कवियों की यह सम्मति है कि विषय के अनुकूल छन्दयोजना करने से वर्ण्य विषय में सजीवता सी आजाती है। वह विशेष खुलता है। उसकी सर-सता, और सहृदयों को आनन्दित करने की शक्ति, बढ़ जाती है। इस काव्य में शृङ्गार और करुण रस के मिश्रण की अधिकता है। यक्ष का सन्देश कारुणिक उक्तियों से भरा हुआ है। जो मनुष्य कारुणिक आलाप करता है, या जो प्रेमाद्रेक के कारण अपने प्रेम-पात्र से मीठी मीठी बातें करता है, वह न तो साँप के सदृश टेढ़ी मेढ़ी चाल चलता है, न रथ के सदृश दौड़ता ही है। अतएव उसकी बातें भुजङ्गप्रयात या रथोद्धता, या और ऐसे ही किसी वृत्त में अच्छी नहीं लगतीं। वह तो ठहर ठहर कर, कभी धीमे और कभी कुछ ऊँचे स्वर में, अपने मन के भाव प्रकट करता है। अतएव मन्दा-लाता वृत्त ही उसकी अवस्था के अनुकूल है। इस वृत्त के गुण इसके नाम ही से प्रकट हैं। यही जान कर कालिदास ने इस वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। और, यही जानकर, उनकी देखादेखी कवियों ने भी दूत-काव्यों में इसी वृत्त से काम लिया है।

कवि यदि अपने मन का भाव ऐसे शब्दों में बोलें जिनका मतलब, सुनने के साथ ही, सुनने वाले को समझ में आ जाय तो ऐसा काव्य प्रसाद-गुण से पूर्ण कहा जाता है। जिस तरह पके हुए आम का रस बाहर से झलकता है उसी तरह प्रसाद-गुण-परिप्लुत कविता का भावार्थ शब्दों से झलकता है। उसके हृदयङ्गम होने में देर नहीं लगती। अतएव, जिस काव्य में करुणार्द्र-सन्देश और प्रेमातिशय-द्योतक बातें हों उसमें प्रसाद-गुण की कितनी आवश्यकता है, यह सहृदय जनों को बताना न पड़ेगा। प्यार की बात यदि कहते ही समझ में न आ गई—कारुणिक सन्देश यदि कानों

की राह से तत्काल ही हृदय में न घुस गया—तो उसे एक प्रकार निष्फल ही समझिए। प्रेमालाप के समय कोई कोश लेकर नहीं बैठता। करुणाक्रन्दन करने वाले अपनी उक्तियों में ध्वनि, व्यंग्य और छिष्टता नहीं लाने बैठते। वे तो सीधी तरह सरल शब्दों में अपने जी की बात कहते हैं। यही समझ कर कहाकवि कालिदास ने मेघदूत को प्रसादगुण से ओतप्रोत भर दिया है। यही सोच कर उन्होंने इस काव्य की रचना वैदर्भी रीति में की है—चुन चुन कर सरल और कोमल शब्द रक्खे हैं; लम्बे लम्बे समासों को पास तक नहीं फटकने दिया।

देवताओं, दानवों और मानवों को छोड़ कर कवि-कुलगुरु ने इस काव्य में एक यक्ष को नायक बनाया है। इसका कारण है। यक्षों के राजा कुवेर हैं। वे धनाधिप हैं। ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ उनकी दासियाँ हैं। सांसारिक सुख धन की ही बँदौलत प्राप्त होते हैं। जिनके पास धन नहीं वे इन्द्रिय-जन्म सुखों का यथेष्ट अनुभव नहीं कर सकते। कुवेर के अनुचर, कर्मचारी और पदाधिकारी सब यक्ष ही हैं। अतएव कुवेर के ऐश्वर्य का थोड़ा बहुत भाग उन्हें भी अवश्य ही प्राप्त होता है। इससे जिस यक्ष का वर्णन मेघदूत में है उसके ऐश्वर्यवान् और वैभव-सम्पन्न होने में कुछ भी सन्देह नहीं। उसके घर और उसकी पत्नी आदि के वर्णन से यह बात अच्छी तरह साबित होती है। निधन होने पर भी प्रेमी जनों में पति-पत्नी-सम्बन्धी प्रेम की मात्रा कम नहीं होती है। फिर जो जन्म ही से धन सम्पन्न है—जिसने लड़कपन ही से नाना प्रकार के सुख-भोग किये हैं—उसे पत्नी-वियोग होने से कितना दुःख, कितनी हृदय-व्यथा, कितना शोक-सन्ताप हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। ऐसा प्रेमी यदि दो चार दिन के लिए नहीं, है। ऐसा प्रेमी यदि दो चार दिन के लिए नहीं, किन्तु पूरे साल भर के लिए, अपनी प्रेयसी से सैकड़ों कोस दूर फँक दिया जाय तो उसकी विरह-व्याकुलता की मात्रा बहुत ही बढ़ जायगी। इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसे प्रेमी का वियोगताप



वर्षा में और भी अधिक भीषणता धारण करता है। उस समय वह उसे प्रायः पागल बना देता है। उसके प्रेम की परीक्षा उसी समय होती है। उसी समय इस बात का निश्चय किया जा सकता है कि इस प्रेमी का प्रेम कैसा है और यह अपनी प्रेयसी को कितना चाहता है। कालिदास ने इस काव्य में आदर्श-प्रेम का चित्र खींचा है। उस चित्र को सविशेष हृदयहारी और यथार्थता-व्यञ्जक करने के लिए यक्ष को नायक बनाकर कालिदास ने अपने कवि-कौशल की पराकाष्ठा कर दी है। अतएव आप यह न समझिए कि कवि ने योंहीं, बिना किसी कारण के, विप्रयोग-शृङ्गार वर्णन करने के लिए, यक्ष का आश्रय लिया है।

विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिए ही जिस प्रेम की उत्पत्ति होती है वह नीच प्रेम है। वह निन्द्य और दूषित समझा जाता है। निर्याज प्रेम ही उच्च प्रेम है। निर्याज प्रेम अवान्तर बातों की कुछ भी परवा नहीं करता। प्रेम-पथ से प्रयाण करते समय आई हुई बाधाओं को वह कुछ नहीं समझता। विघ्नों को देख कर वह केवल मुसकरा देता है। क्योंकि इन सब को उसके सामने हार माननी पड़ती है। मेघदूत का यक्ष निर्याज प्रेमी है। उसका हृदय बड़ा ही उदार है। उसमें प्रेम की मात्रा इतनी अधिक है कि ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, हिंसा आदि विकारों के लिए जगह ही नहीं। यक्ष को उसके स्वामी कुवेर ने देश से निकाल दिया। परन्तु उसने, इस कारण, अपने स्वामी पर जरा भी क्रोध प्रकट नहीं किया। उसको एक भी बुरे और कड़े शब्द से नहीं याद किया। उसकी सारी विप्रयोग-पीड़ा का कारण कुवेर था। पर उसकी निन्दा करने का उसे खयाल तक नहीं हुआ। फिर, देखिए, उसने अपनी मूर्खता पर भी आक्रोश-विक्रोश नहीं किया। यदि वह अपने काम में असावधानता न करता तो क्यों वह अपनी पत्नी से वियुक्त कर दिया जाता। अपने सारे दुःख-शोक का आदि-कारण वह खुदही था। परन्तु, न, इसका भी उसे कुछ खयाल नहीं।

उसने अपने को भी नहीं धिक्कारा। वह धिक्कारा कैसे? उसके हृदय में इस प्रकार के भावों के लिए जगह ही न थी। उसका हृदय तो अपनी प्रेयसी के निर्याज-प्रेम से ऊपर तक लबालब भरा हुआ था। वहाँ पर दूसरे विकार रह कैसे सकते थे?

जो ऐसे सखे प्रेम-मद से मत्त हो रहा है जिसकी सारी इन्द्रियाँ अन्यान्य विषयों से खिन्न कर एक मात्र प्रेमरस में सर्वतोभावे से खो रही हैं, जिसके प्रेम-परिपूर्ण हृदय में और को सांसारिक भावनायें या वासनायें आने का साहस तक नहीं कर सकतीं वह यदि अचेतन मेघ दूत बनावे और उसके द्वारा अपनी प्रेयसी के अपना सन्देश भेजे तो आश्चर्य ही क्या है? मत्त है और जो संसार की प्रत्येक वस्तु में प्रेमपात्र को देख रहा है उसे यदि जड़-चेतन मेघ भेद मालूम रहे तो फिर उसके प्रेम की उच्चता स्थिर रह सकती है? वह प्रेम ही क्या जो इस तर्क के भेद-भाव को दूर न करदे। कीट-योनि में पतंगों के लिए दीप-शिखा की ज्वाला अपने पतंगों के लिए दाहक गुण से रहित मालूम होती है। प्रेमी यक्ष को यदि मेघ की अचेतनता का खयाल न रहे तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं है? वह मेघदूत के आरम्भ ही में कहता है:—  
“ घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह  
ऐसो घन कैसे दूत-काज भुगतो  
नेह कौ संदेसो हाथ चातुर पठै जोग  
बादर कहो जी ताहि कैसे के सुनावेगो।  
बाढ़ी उत्कण्ठा जक्ष बुद्धि विसरानी सब  
वाही सों निहारयो जानि काज कर आवेगो  
कामातुर होत हैं सदाई मतिहीन तिन्हें  
चेत औ अचेत माँह भेद कहाँ पावेगो ॥”  
उस समय यक्ष को केवल अपनी खयाल था। वही उसके तन और मन में थी। अन्य सांसारिक ज्ञान उसके चित्त से तिरोहित हो गया था। वह एक प्रकार की



भाग १२

कृष्ण ८ ]

निमग्न था। इस समाधिस्थ अवस्था में यदि उसने निर्विघ्न मेघ को दूत कल्पना किया तो कोई ऐसी बात नहीं की जो समझ में न आ सके। कवि का काम वैज्ञानिक के काम से भिन्न है। वैज्ञानिक प्रत्येक वस्तु के उसके यथार्थ रूप में देखता है। परन्तु कवि ऐसा करे तो उसकी कविता का सौन्दर्य, सारा का सारा, विनष्ट हो जाय। कवि को कल्पना या कल्पक समझना चाहिए। उसकी कविता ही दूसरी है। वह निर्जीव को सजीव और जीव को निर्जीव कर सकता है। अतएव मध्य-प्रदेश से हिमालय की तरफ जाने वाले पवन-प्रेरित सन्देश-वाहक बनाना ज़रा भी अनौचित्य-पूर्ण नहीं। फिर एक बात और भी है। कवि यह आशय नहीं कि मेघ सचमुच ही यक्ष का सन्देश ले जाय। उसने इस बहाने विप्रयुक्त यक्ष अवस्था का वर्णन मात्र किया है और उसके द्वारा दिखाया है कि इस तरह के सच्चे वियोगी प्रेमियों के हृदय की क्या दशा होती है, उन्हें कैसी कैसी तकलीबें सँभती हैं, और उन्हें अपने प्रेमपात्र तक अपना पहुँचाने की कितनी उत्कण्ठा होती है। यक्ष को अपने मरने जीने का कुछ भी खयाल न था। खयाल उसे था केवल अपनी प्रियतमा के जीवन का। “दयिताजीवितालम्बनार्थम्”—ही उसने सन्देश भेजा था। उसकी दयिता का जीवन उसके जीवन पर अवलम्बित था। उसके मरने, अथवा जीवित होने में सन्देह उत्पन्न होने से उसकी दयिता जीवित रह सकती थी। अतएव यक्ष का सन्देश यक्षिणी को जीती रखने की रामबाण प्रार्थना थी। यह औषधि वह जिसके द्वारा पहुँचाना चाहता था उसके सुख-दुःख का भी उसे बहुत खयाल था। इसी से उसने मेघ के लिए ऐसा मार्ग ढाला जिससे जाने में उसे ज़रा भी कष्ट न हो। उसके मार्गश्रम का परिहार होता रहे, अच्छे अच्छे पक्षियों को देखने को मिलें, और देवताओं और देवियों के दर्शन भी हों। ऐसा न होने से मेघ भी उसका सन्देश पहुँचाने को राजी होता। फिर,

एक बात और भी है। विरह-कातर यक्ष का सन्देश उसकी प्रियतमा तक पहुँचा कर उसे जीवन-दान देना कुछ कम पुण्य का काम नहीं। संसार में परोपकार की बड़ी महिमा है। उसे करने का मौका भी मेघ को मिल रहा है। फिर भला क्यों न वह यक्ष का सन्देश ले जाने के लिए राजी होता। रामगिरि से अलका तक जाने में विदिशा, उज्जयिनी, अवन्ती, कनखल, रेवा, सिन्धु, भागीरथी, कैलास आदि नगरों, नदियों और पर्वतों के रमणीय दृश्यों का वर्णन कालिदास ने किया है। उन्हें देखने की किसे उत्कण्ठा न होगी? कौन ऐसा हृदय-हीन होगा जो उज्जयिनी में महाकाल के और कैलास में शङ्कर-पार्वती के दर्शनों से अपनी आत्मा को पावन करने की इच्छा न रखे? कौन ऐसा आत्मशत्रु होगा जो जंगल में लगी हुई आग को जल की धारा से शान्त करके चमरी आदि पशुओं को जल जाने से बचाने का पुण्य-सञ्चय करना न चाहे? मार्ग रमणीय, देवताओं और तीर्थों के दर्शन, परोपकार करने के साधन—ये सब ऐसी बातें हैं जिनके लिए मूढ़ से मूढ़ मनुष्य भी थोड़ा बहुत कष्ट, खुशी से उठा सकता है। मेघ की आत्मा तो आर्द्र होती है, सन्तसों को सुखी करना उसका विरुद्ध है—अतएव वह यक्ष का सन्देश प्रसन्नतापूर्वक पहुँचाने को तैयार हो जायगा, इसमें सन्देह ही क्या है। अपनी प्रियतमा को जीवित रखने में सहायता देने वाले मेघ के लिए यक्ष ने जो ऐसा श्रमहारक और सुखद मार्ग बतलाया है वह उसके हृदय के औदार्य का दर्शक है। कालिदास ने इस विषय में जो कवि-कौशल दिखाया है उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। यदि मेघ का मार्ग सुखकर न होता—और, याद रखिए, उसे बहुत दूर जाना था—तो क्या आश्चर्य जो वह अपने गन्तव्य स्थान तक न पहुँचता। और, इस दशा में, यक्षिणी की क्या गति होती, इसका अनुमान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। इसी दुःखद दुर्घटना को टालने के लिए ऐसे अच्छे मार्ग की कवि ने कल्पना की है।



आप कहेंगे, यह निर्व्याज प्रेम कैसा कि यक्ष ने, सन्देश में, अपनी वियोगिनी पत्नी का कुशल-समाचार तो पीछे पूछा, पहले अपने ही को 'अव्यापन्नः' कह कर अपना कुशल-वृत्त बतलाने और अपनी ही वियोगव्यथा का वर्णन करने लगा। इससे तो यही सूचित होता है कि उसे अपने सुख-दुःख का अधिक खयाल था, यक्षिणी के सुख-दुःख का बहुत ही कम। नहीं, ऐसा न कहिए। यक्ष का यह काम आपके इस अनुमान का उलटा खण्डन करता है। आप इस बात को भूल गये हैं कि यक्षिणी का जीवन यक्ष के जीवन पर ही अवलम्बित है। उसमें संशय उत्पन्न होने से वह जीवित नहीं रह सकती। मेघदूत को पढ़ कर यदि आपने इतना भी न जाना तो कुछ न जाना। यक्षिणी के प्राणवलम्ब का हेतु यक्ष है। अतएव उसी के कुशलसमाचार सुनने से यक्षिणी अपना जीवन धारण करने में समर्थ हो सकती है। यक्ष को स्वार्थी न समझिए। वह अपनी दशा का वर्णन करके अपनी स्वार्थपरता नहीं प्रकट करता। वह अपनी दयिता के जीवन को नष्ट होने से बचाने की दवा कर रहा है। यक्ष के सन्देश की पहली पंक्ति है :—

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं

आप देखिए, इसमें यक्ष ने 'भर्तुः' पद रख कर पूर्वोक्त आशय को कितनी स्पष्टता से प्रकट किया है। जान बूझकर उसने सन्देश के आदि में ही पति-शब्द का वाचक भर्तु-शब्द इसलिए रक्खा है जिसमें यक्षिणी को तत्काल इस बात का ज्ञान हो जाय कि मेरा पति जीवित है। वियोगिनी पतिव्रताओं के कान में यह शब्द जैसी अमृतवर्षा करता है उसका अन्दाजा सभी सहृदय कर सकते हैं। कवि यदि चाहता तो 'भर्तुर्मित्रं' की जगह 'मित्रं भर्तुः' कर सकता था। उससे भी छन्द की गति में व्याघात न आता। परन्तु नहीं, उसने यक्षिणी के कान में सबसे पहले 'भर्तुः' का सुनाना ही उचित समझा।

पूर्वोक्त पंक्ति में 'भर्तुः' का समकक्ष और विशेष से भरा हुआ 'अविधवे' पद भी है। सन्देश की पहली ही पंक्ति में इसके रखने का भी यक्ष ने यह सूचित किया है कि तू विधवा नहीं हो तो सौभाग्यवती बनी हुई है; तेरा स्वामी अब तक जीवित है। इससे अधिक आनन्ददायक समाचार खी-पतिप्राणा स्त्री—के लिए और क्या हो सकता है। यक्ष का सन्देश उसकी पत्नी के लिए सचमुच 'श्रोत्रपेय' है।

स्त्रियाँ नहीं चाहती कि उनके पति के प्रेम छोटे से छोटा अंश भी कोई और ले जाय। वे सर्वोपशान्त पर अपना अधिकार समझती हैं। विधवा वस्था में उन्हें अपने इस अधिकार के छिन जाने डर रहता है। यक्ष इस बात को अच्छी तरह जान रहा है। उसके परिणाम से भी वह अनभिज्ञ नहीं है। कारण है जो वह अपनी वियोग-कातरता का एक वर्णन कर रहा है। यही कारण है जो छोटी छोटी चीजों में भी अपनी पत्नी की सहानुभूति दूँद रहा है। यही कारण है जो वह उत्तर-दिश आये हुए सुरभित पवन के स्पर्श को भी बहुत समझ रहा है। वह यह बतला रहा है कि दूर जाने से मेरे प्रेम में कमी नहीं हो गई; प्रत्युत पहले से भी अधिक प्रगाढ़ हो गया है। अतएव अपने मन में किसी प्रकार की अनुचित आशङ्का स्थान न दे।

यक्ष के निःस्वार्थ और निर्व्याज प्रेम की सीमा निर्धारित की जा सकती। वह अपने कुशल-समाचार भेज कर और अपनी विरह-व्याकुलता का वर्णन करके ही चुप नहीं रहा। उसे शङ्का हुई कि मेरी पत्नी इस सन्देश को बनावटी न समझे। प्रेमियों की दशा बड़ी ही विचित्र होती है। कुछ को बहुत कुछ समझने लगते हैं और गाँठें लगाना भी वे खूब ही जानते हैं। यक्ष अजीब अवस्था है। उसे डर है कि कहीं ऐसा न हो जो इतना आश्वासन देने पर भी यक्षिणी इन







उनकी सभा के स्वरूप थे; उन्हीं में कालिदास की गिनती थी। खोज से यह बात भ्रममूलक सिद्ध हुई है। “धन्वन्तरि-क्षपणकामरसिंहशकु” —आदि पद्य में जिन नौ विद्वानों के नाम आये हैं वे सब समकालीन न थे। वराहमिहिर भी इन्हीं नौ विद्वानों में थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका में लिखा है कि शक ४२७, अर्थात् ५०५ ईसवी, में इसे मैंने समाप्त किया। अतएव जो लोग ईसा के ५७ वर्ष पूर्व उज्जैन के महाराज विक्रमादित्य की सभा में इन नौ विद्वानों का होना मानते हैं वे भूलते हैं। कालिदास विक्रमादित्य के समय में ज़रूर हुए; पर ईसा के ५७ वर्ष पहले नहीं। ईसा के चार पाँच सौ वर्ष बाद किसी और ही विक्रमादित्य के समय में वे हुए। इस राजा की भी राजधानी उज्जैन थी।

यह नया मत है। इसके पोषक कई देशी और विदेशी विद्वान् हैं। इन विद्वानों में कई एक का तो यह कथन है कि कालिदास किसी राजा या महाराजा के आश्रित ही न थे। वे गुप्तवंशी किसी विक्रमादित्य के शासनकाल में थे ज़रूर; पर उसका आश्रय उन्हें न था। हाँ, यह हो सकता है कि वे उज्जैन में बहुत दिनों तक रहे हों और उज्जयिनी-नरेश से सहायता पाई हो। परन्तु उज्जयिनी के अधीश्वर के वे अधीन न थे। उनका नाटक अभिज्ञान—शाकुन्तल उज्जैन में महाकाल महादेव के किसी उत्सव-विशेष में विक्रमादित्य के सामने खेला गया था। यदि वे राजाश्रित थे तो इस नाटक को उन्होंने अपने आश्रयदाता को क्यों न समर्पण किया? खैर, अभी इस विषय में बहुत कुछ कहना है।

कालिदास के स्थिति-काल के विषय में, आज तक भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न, न मालूम कितने, मत प्रकाशित किये हैं। उनमें से कौन ठीक है, कौन नहीं—इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। सम्भव है उनमें से एक भी ठीक न हो। तथापि उनमें से दो चार मुख्य मुख्य मतों का उल्लेख करना हम यहाँ पर उचित समझते हैं।

सर विलियम जोन्स और डाकूर पीटर्सन का मत है कि कालिदास ईसवी सन् के ५७ वर्ष पूर्व उज्जयिनी के नरेश महाराज विक्रमादित्य के समय पण्डित थे। पूने के पण्डित नन्दर्गीकर का मत है कि कालिदास किसी पिछली संख्या में हो चुके होंगे। उनका भी यही मत है और इस मत को उन्होंने ही योग्यता और युक्तिपूर्ण कल्पनाओं से हटाने का प्रयत्न किया है। अश्वघोष ईसा की पहली शताब्दी में विद्यमान थे। उनके बुद्धचरित नामक महाकाव्य से अवतरण देकर नन्दर्गीकर ने यह सिद्ध किया है कि कालिदास के काव्यों को देख कर अश्वघोष ने उनका काव्य बनाया है; क्योंकि उसमें कालिदास के काव्य के पद ही नहीं, कितने ही श्लोकपाद भी ज्यों के पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में एक लेख बहुत सरस्वती में निकल चुका है।

डाकूर वेबर, लासन, जैकोबी, मानियर, यस्स और सी० एच० टानी का मत है कि कालिदास ईसा के दूसरे शतक से लेकर चौथे शतक के बीच में विद्यमान थे। उनके काव्य इसके पक्ष में नहीं हो सकते। उनकी भाषा और उनके विषय आदि से यही बात सिद्ध होती है।

वत्सभट्टि की रची हुई एक कविता एक पद्य पर खुदी हुई प्राप्त हुई है। उसमें मालविकाग्निमित्र का उल्लेख है। यह ५२९, अर्थात् ४७३ ईसवी, अङ्कित है। यह कालिदास की कविता से मिलती जुलती है। एव अध्यापक मुग्धानलाचार्य का अनुमान है कि कालिदास ईसा की पाँचवीं शताब्दी के कवि होंगे। विन्सेट स्मिथ साहब भी कालिदास को इसी पुराना मानते हैं, अधिक नहीं। डाकूर भाजदार का मत है कि उज्जैन के अधीश्वर हर्ष—विक्रमादित्य के द्वारा काश्मीर पर शासन करने के लिए गये मातृगुप्तही का दूसरा नाम कालिदास अतएव उनका स्थिति-काल ईसा की छठी शताब्दी के दक्षिण के श्रीयुत पण्डित के ० बी० पाठक का मत है कि कालिदास का यही समय निश्चित किया है।



फ्लैट, डाकूर फर्गुसन, मिस्टर आर० सी० दत्त और पण्डित हरप्रसाद शास्त्री भी इस निश्चय या अनुमान के पृष्ठपोषक हैं ।

इसी तरह और भी कितने ही विद्वानों ने कालिदास के विषय में लेख लिखे हैं और अपनी अपनी तर्कना के अनुसार अपना अपना निश्चय सर्वसाधारण के समुख रक्खा है । कालिदास के समय के विषय में कोई ऐतिहासिक आधार तो है नहीं । उनके कार्यों की भाषा-प्रणाली, उनमें जिन ऐतिहासिक पुरुषों का उल्लेख है उनके स्थिति-समय, और जिन परवर्ती कवियों ने कालिदास के ग्रन्थों के हवाले या उनसे अवतरण दिये हैं उनके जीवनकाल के आधार पर ही कालिदास के समय का निर्णय विद्वानों को करना पड़ता है । इसमें अनुमान ही की मात्रा अधिक रहती है । अतएव जब तक और कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता, अथवा जब तक किसी का अनुमान औरों से अधिक युक्ति-सङ्गत नहीं होता, तब तक विद्वज्जन इस तरह के अनुमानों से भी तथ्य संग्रह करना अनुचित नहीं समझते ।

दो तीन वर्ष पहले, विशेष करके १९०९ ईसवी में, लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में डाकूर हार्नले, मिस्टर विन्सेन्ट स्मिथ आदि कई विद्वानों ने कालिदास के स्थिति-काल के सम्बन्ध में कई बड़े ही गवेषणा-पूर्ण लेख लिखे । इन लेखों में कुछ नई युक्तियाँ दिखाई गईं । डाकूर हार्नले आदि ने और और बातों के सिवा रघुवंश से कुछ पद्य ऐसे उद्धृत किये जिनमें 'स्कन्द', 'कुमार', 'समुद्र' आदि शब्द पाये जाते हैं । यथा:—

- (१) आसमुद्रक्षितीशानां—
- (२) आकुमारकथोद्धातं—
- (३) स्कन्देन साक्षादिव देवसेनां—

यहाँ 'स्कन्द' से उन्होंने स्कन्दगुप्त, 'कुमार' से कुमारगुप्त और 'समुद्र' से समुद्रगुप्त का भी अर्थ निकाला । उन्होंने कहा कि ये श्लिष्ट पद हैं, अतएव व्यर्थ हैं । इनसे दो दो अर्थ निकलते हैं । एक तो

साधारण, दूसरा असाधारण जो गुप्त राजाओं का सूचक है । इस पर विलासपुर के एक बँगाली विद्वान ने इन लोगों की बड़ी हँसी उड़ाई । उन्होंने दिखाया कि यदि इस तरह के दो दो अर्थ वाले श्लोक ढूँढ़े जायँ तो ऐसे और भी कितने ही शब्द और श्लोक मिल सकते हैं । परन्तु उनके दूसरे अर्थ की कोई सङ्गति नहीं हो सकती । हम यह लेख देहात में बैठे हुए लिख रहे हैं । एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के वे अङ्क हमारे पास यहाँ नहीं । इस कारण न हम उन बाबू साहब का नाम ही दे सकते हैं, न उनके कोटिक्रम के उदाहरण ही दे सकते हैं ।

जब से हार्नले आदि ने यह नई युक्ति निकाली तब से कालिदास के स्थिति-काल-निर्णायक लेखों का तूफान सा आया है । इसी युक्ति के आधार पर लोग आकाश-पाताल एक कर रहे हैं । कोई कहता है कि कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में थे; कोई कहता है कुमारगुप्त के समय में थे; कोई कहता है स्कन्दगुप्त के समय में थे; कोई कहता है यशोधर्मन् विक्रमादित्य के समय में थे । इसी पिछले राजा ने हूण-नरेश मिहिरगुल को ५३२ ईसवी में मुल्तान के पास कारूर में परास्त करके हूणों को सदा के लिए भारत से निकाल दिया । इसी विजय के उपलक्ष्य में वह शकारि विक्रमादित्य कहलाया । इस विषय में, आगे और कुछ लिखने के पहले, मुख्य मुख्य गुप्त-राजाओं की नामावली और उनका शासन-काल लिख देना अच्छा होगा । इससे पाठकों को पूर्वोक्त पण्डितों की युक्तियाँ समझने में सुभीता होगा । अच्छा अब इनके नाम आदि सुनिः—

- (१) चन्द्रगुप्त, प्रथम, (विक्रमादित्य) मृत्यु ३२६ ईसवी
- (२) समुद्रगुप्त-शासन-काल ३२६ से ३७५ ईसवी तक
- (३) चन्द्रगुप्त, द्वितीय, (विक्रमादित्य) शासन-काल ३७५ से ४१३ ईसवी तक
- (४) कुमारगुप्त, प्रथम } शासन-काल ४१३ से
- (५) स्कन्दगुप्त } ४८० ईसवी तक



(६) नरसिंह गुप्त } शासन-  
(७) यशोधर्मन् ( विक्रमादित्य ) } काल ईसा  
की पाँचवीं शताब्दी के अन्त से छठी शताब्दी के  
प्रथमाब्द तक ।

इनमें से पहले ६ राजाओं की राजधानी पुष्पपुर  
या पटना थी । पर अन्तिम राजा यशोधर्मन् की  
राजधानी उज्जैन थी । यह पिछला राजा गुप्त-  
राजाओं का करद राजा था । पर गुप्तों की शक्ति  
क्षीण होने पर यह स्वतन्त्र हो गया था । इन राजाओं  
में से तीन राजाओं ने—पहले, तीसरे और चौथे ने—  
विक्रमादित्य की पदवी ग्रहण की थी । ये राजा बड़े  
प्रतापी थे । इसी से ये विक्रमादित्य उपनाम से  
अभिहित हुए ।

परन्तु डाकूर हार्नले आदि की पूर्वोक्त युक्तियों  
के आविष्कार-विषय में एक भगड़ा है । बाबू बी०  
सी० मजूमदार कहते हैं कि इसका यश मुझे मिलना  
चाहिए । इस विषय में उनका एक लेख जून १९११  
के माडर्न-रिव्यू में निकला है । उसमें वे कहते हैं कि  
१९०५ ईसवी में मैंने इन बातों को सबसे पहले ढूँढ़  
निकाला था । बँगला के भारतसुहृद् नामक पत्र में  
“ शीत-प्रभाते ” नामक जो मेरी कविता प्रकाशित  
हुई है उसमें सूत्र रूप से मैंने ये बातें छः सात वर्ष  
पहले ही लिख दी थीं । १९०९ में इस विषय में मेरा  
जो लेख रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में  
निकल चुका है उसमें इन बातों का मैंने विस्तार  
किया है । अब इनका मत सुनिए ।

डाकूर हार्नले की राय है कि उज्जैन का राजा  
यशोधर्मा ही शकारि-विक्रमादित्य है और उसी के  
शासन-काल या उसी की सभा में कालिदास थे ।  
कारण यह कि ईसा के ५७ वर्ष पूर्व विक्रमादित्य नाम  
का कोई राजा ही न था । जैसी कविता कालिदास  
की है वैसी कविता—वैसी भाषा, वैसी भावभङ्गी—  
उस जमाने में थी ही नहीं । ईसा की पाँचवीं और  
छठी सदी में, संस्कृत भाषा का पुनरुज्जीवन होने  
पर, वैसी कविता का प्रादुर्भाव हुआ था । इन सब  
बातों को मजूमदार महाशय मानते हैं । पर यशो-

धर्मन् के समय में कालिदास का होना नहीं  
मानते । वे कहते हैं कि रघुवंश में जो इन्दुमती का  
स्वयंवर-वर्णन है उसमें उज्जैन के राजा का तीसरा  
नम्बर है । यदि कालिदास यशोधर्मन् के समय में  
या उसकी सभा में होते तो वे कभी ऐसा न  
लिखते । क्योंकि यशोधर्मन् उस समय चक्रवर्ती  
राजा था । मगध का साम्राज्य उस समय प्रायः  
विनष्ट हो चुका था । यशोधर्मन् मगध की अधी-  
नता में न था । अतएव मगधाधिप के पास पहले  
और उज्जैन-नरेश के पास उसके बाद इन्दुमती का  
जाना यशोधर्मन् को असह्य हो जाता । अतएव  
इस राजा के समय में कालिदास न थे । फिर किस  
के समय में थे ? बाबू साहिब का अनुमान है कि  
कुमार-गुप्त के शासन के अन्तिम भाग में उन्होंने ग्रन्थ-  
रचना आरम्भ की और स्कन्दगुप्त की मृत्यु के कुछ  
समय पहले इस लोक की यात्रा समाप्त की । इस  
अनुमान की पुष्टि में उन्होंने और भी कई बातें  
लिखी हैं । आपका कहना है कि रघुवंश में जो रघु  
का दिग्विजय है वह रघु का नहीं, यथार्थ में वह  
स्कन्दगुप्त का दिग्विजय-वर्णन है । आपने रघुवंश में  
गुप्तवंश के प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजाओं के  
नाम ढूँढ़ निकाले हैं । यहाँ तक कि कुमारगुप्त को  
खुश करने ही के लिए कालिदास के द्वारा कुमार-  
सम्भव की रचना का अनुमान आपने किया है । इस  
के सिवा और भी कितनी ही बड़ी विचित्र कल्पनाएँ  
आपने की हैं । इनके अनुसार कालिदास ईसा की  
पाँचवीं सदी में विद्यमान थे ।

कुछ समय से साहित्याचार्य पाण्डेय रामावतार  
शर्मा भी इस तरह की पुरानी बातों की खोज में  
प्रवृत्त हुए हैं । आपने भी इस विषय में अपना मत  
प्रकाशित किया है । आपकी राय है कि कालिदास  
द्वितीय चन्द्रगुप्त और उसके पुत्र कुमारगुप्त के समय  
में थे । यह खबर जब मजूमदार बाबू तक पहुँची  
तब उन्होंने माडर्नरिव्यू में वह लेख प्रकाशित किया  
जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है । उसमें आप  
कहते हैं कि कालिदास का स्थिति-काल ढूँढ़ निकाल



लेने का यश जो पाण्डेय जी लेना चाहते हैं वह उन्हें नहीं मिल सकता। उसके पाने का अधिकारी अकेला मैं ही हूँ। क्योंकि इस आविष्कार को मैंने बहुत पहले किया था। इस लेख के निकलने की खबर शायद पाण्डेय जी को पहले ही हो गई। इसीसे उधर जून के माडर्न-रिव्यू में मजूमदार बाबू का लेख निकला, इधर जून ही के हिन्दुस्तान रिव्यू में पाण्डेय जी का। पाण्डेय जी कहते हैं कि जो आविष्कार मैंने किया है उसका इङ्गित मुझे स्थित साहब और मुग्धानलाचार्य से मिला था। उसी इशारे पर मैंने अपने अनुमान की इमारत खड़ी की है। मेरी सारी कल्पनायें और तर्कनायें मेरी निज की हैं। इनके अनुसार कालिदास ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवीं के आरम्भ में थे। श्रीराजेन्द्रनाथ-विद्याभूषण प्रणीत 'कालिदास' नामक समालोचना-ग्रन्थ की भूमिका में श्रीयुत हरिनाथ दे महाशय ने भी पाण्डेय जी का मत लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि:—

(१) तस्मै सभ्याः सभाय्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः

(२) अन्वास्य गोप्ता गृहिणी-सहायः

इत्यादि रघुवंश के श्लोकों में गोप्ता, गुप्त, गोप्त्रे आदि पद गुप्तवंशी राजाओं के सूचक हैं। इसके सिवा

तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी  
इस श्लोकार्द्ध में जो उपमा है उससे द्वितीय गुप्त का ध्वनितार्थ निकलता है। रघुवंश में जो रघु का दिग्विजय-वर्णन है उसका आरम्भ इस प्रकार है:—

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्श्विर्नयान्वितः ।

पङ्क्तिं बलमादाय प्रतस्थे दिग्-जिगीषया ॥

इसमें भी गुप्त-शब्द गुप्त-वंश का सूचक है। प्रथम में समुद्रगुप्त का जो स्तम्भ है उस पर उसके विजय की वार्ता खुदी हुई है। वह रघु के दिग्विजय से बहुत कुछ मिलती है। अर्थात् कालिदास ने रघु के दिग्विजय के बहाने समुद्रगुप्त का दिग्विजय-वर्णन

किया है। मजूमदार महाशय ने रघु का दिग्विजय स्कन्दगुप्त का दिग्विजय बताया। इन्होंने उसे समुद्रगुप्त का बताया !! आगे चल कर पाठकों को मालूम होगा कि एक और महाशय ने उसे ही यशोधर्मन् का दिग्विजय समझा है !!! कुमारसम्भव के “कुमारकल्पं सुषुवे कुमार” और “न कारणाद् स्वाद् विभिदे कुमारः”—आदि में जो कुमार शब्द है उसे आप लोग कुमारगुप्त का गुप्तवाची बतलाते हैं।

पाण्डेयजी की यशःप्राप्ति में बड़ी बाधायें आ रही हैं। डाकूर एच बेक (Beckh) तिब्बती और संस्कृत भाषा के बड़े पण्डित हैं। कालिदास के समय-निश्चय के विषय में जिन तर्कों का आविष्कार पाण्डेयजी ने किया है ठीक उन्हीं का आविष्कार डाकूर साहब ने भी किया है। परन्तु पण्डितों की राय है कि दोनों महाशयों को एक दूसरे की खोज की कुछ भी खबर नहीं थी। दोनों निश्चय या निर्णय यद्यपि मिलते हैं तथापि उनमें परस्पर आधार-आधेय भाव नहीं। यही ठीक भी होगा। क्योंकि विद्वान् किसी के यश का जानबूझ कर हरण नहीं करते। पाण्डेयजी इस समय कालिदास के स्थिति-काल-सम्बन्ध में एक बड़ा ग्रन्थ लिख रहे हैं। कालिदास का भाग्य हजारों वर्ष बाद चमका है। इस बीच में कई ग्रन्थ उनके विषय में लिखे गये। और यह क्रम अभी जारी है।

अब एक और आविष्कारक के आविष्कृत तत्त्व सुनिए। कलकत्ते में ए० सी० चैटर्जी, एम० ए०, बी० एल० एक वकील हैं। आप की रचित कालिदास-विषयक ढाई सौ पृष्ठ की एक पुस्तक अभी कुछ दिन हुए प्रकाशित हुई है। पुस्तक अँगरेजी में है। उसमें कालिदास से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों का वर्णन और विचार है। एक अध्याय उसमें कालिदास के स्थिति-समय पर भी है। चैटर्जी महोदय का भी मत है कि कालिदास मालव-नरेश यशोधर्मा के शासन-काल, अर्थात् ईसा की छठी सदी, में वर्तमान थे। इन्होंने भी बहुत सी पूर्वोलिखित कल्पनाओं के आधार पर ही यह निर्णय किया है।



पर इनकी एक कल्पना बिल्कुल ही नई है। उसे भी थोड़े में सुन लीजिए।

बड़े बड़े पण्डितों का मत है कि कपिल के सांख्य-प्रवचन सूत्र सब से पुराने नहीं। किसी ने पीछे से उन्हें बनाया है। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिकायें ही सांख्य-शास्त्र का सब से पुराना ग्रन्थ है। और ईश्वर-कृष्ण ईसा के छठे शतक के पहले के नहीं। कालिदास ने कुमारसम्भव में जो लिखा है:—

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्त्तिनीम् ।

तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः ॥

वह सांख्यशास्त्र का सारांश है। जान पड़ता है कि उसे कालिदास ने ईश्वरकृष्ण के ग्रन्थ के अच्छी तरह देखने के बाद लिखा है। दोनों की भाषा में भी समानता है और सांख्यतत्त्व-निर्दर्शन में भी। इस बात की पुष्टि में चैटर्जी महाशय ने रघुवंश के तेरहवें सर्ग का एक पद्य, और रघुवंश तथा कुमारसम्भव में व्यवहृत 'सङ्घात' शब्द भी दिया है। आप की राय है कि 'सङ्घात' शब्द भी कालिदास को ईश्वरकृष्ण ही के ग्रन्थ से मिला है। यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है कि ईसा के छठे ही शतक में ईश्वरकृष्ण भी हुए और कालिदास भी। फिर किस तरह अपने समकालीन पण्डित की पुस्तक का परिशीलन करके कालिदास ने उसके तत्त्व अपने काव्यों में निहित किये ? क्या मालूम ईश्वरकृष्ण छठी सदी में कब हुए और कहाँ हुए ? यदि यह मान भी लिया जाय कि कालिदास छठी ही सदी में थे तो भी इसका क्या प्रमाण कि वे ईश्वरकृष्ण से दस बीस वर्ष पहले ही लोकान्तरित नहीं हुए ? इसका भी क्या प्रमाण कि ईश्वरकृष्ण की कारिकाओं के पहले सांख्य का और कोई ग्रन्थ विद्यमान न था ? सम्भव है कालिदास के समय में रहा हो और पीछे से नष्ट हो गया हो। कुछ भी हो, चैटर्जी महाशय की सब से नवीन और मनोरञ्जक कल्पना यही है। आपकी राय में रघुवंश और कुमारसम्भव ५८७ ईसवी के पहले के नहीं।

चैटर्जी महोदय ने अपने मत को और भी काँ बतों के आधार पर निश्चित किया है। कालिदास के काव्यों में ज्योतिषशास्त्र-सम्बन्धी जो उल्लेख हैं उनसे भी आपने अपने मत की पुष्टि की है। कालिदास कुलगुरु शैव थे; अथवा यों कहना चाहिए कि उनके ग्रन्थों में शिवोपासनाद्योतक पद्य हैं। ऐतिहासिक खोजों से आपने यह सिद्ध किया है कि इस उपासना का प्राबल्य, बौद्ध मत के हास होने पर, छठी सदी में ही हुआ था। यह बात भी आपने अपने मत को पुष्ट करने वाली समझा है। आपकी सम्मति है कि रघु का दिग्विजय काल्पनिक है। यथार्थ में रघु सम्बन्धी सारी बातें यशोधर्मन् विक्रमादित्य से ही सम्बन्ध रखती हैं। रघुवंश के:—

( १ ) प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद् व्यानशे दिशः ।

( २ ) ततः प्रतस्थे कौवेरीं भास्वानिव रघुदिशम् ॥

( ३ ) सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसे रविः ।

( ४ ) मत्तेभरदनेत्कीर्णं व्यक्तविक्रमलक्षणम् ॥

इत्यादि और भी कितने हों श्लोकों में जो रघु, भानु, और भास्वान् आदि शब्द आये हैं उनसे आपने विक्रमादित्य के आदित्य का अर्थ लिया है और 'विक्रम' और 'प्रताप' आदि शब्द आये हैं उनसे 'विक्रम' का। इस तरह आपने सिद्ध किया कि यशोधर्मन् विक्रमादित्य ही को लक्ष्य कर कालिदास ने इन श्लोकों की रचना की। अतएव वे उसी के समय में थे। उस जमाने का इतिहास और कालिदास के ग्रन्थों की विशेषतायें इस मत को पुष्ट करती हैं। यही चैटर्जी महाशय की गवेषणा का सारांश है। इन विद्वानों की राय में विक्रमादित्य कोई नाम-विशेष नहीं, एक उपाधिमात्र थी।

अश्वघोष के बुद्धचरित और कालिदास के काव्यों में जो समानता पाई जाती है उसके विषय में चैटर्जी महाशय का मत है कि दोनों कवियों के विचार मिल गये हैं। अश्वघोष ने कालिदास के काव्यों को देखा है। अश्वघोष ने अपना ग्रन्थ नहीं बनाया। दो कवियों के विचारों का लड़जाना सम्भव है; पर क्या यह



## तातार और लामा ।

## देश की प्राकृतिक स्थिति ।



तातार देश की ज़मीन बहुत ऊँची है ।

उसका अधिकांश मरुस्थल है ।

वहाँ आबादी बहुत कम है । उत्तर

में घने जङ्गल और ऊँचे ऊँचे

पहाड़ हैं । बारहसिंघे, पहाड़ी

बकरे, घोड़े, ऊँट, भेड़िये, शेर, तेंदुए, भालू

आदि जानवर यहाँ अधिकता से पाये जाते हैं ।

पहाड़ों से निकलने वाली यहाँ अनेक नदियाँ हैं ।

मरुभूमि में नमक पैदा होता है । यहाँ के कुओं में कोई

दो सौ फ़ीट के नीचे पानी मिलता है ।

तातार देश में दो ऋतु प्रधान हैं—जाड़ा और

गरमी । जाड़ा वहाँ नौ महीने रहता है; गरमी केवल

तीन महीने । जाड़ों में ऐसी सरदी पड़ती है कि ज़मीन

पर बर्फ़ की फर्श सी बिछ जाती है और नदियों का

पानी जम जाता है । उस समय तातार लोग अपने

पशुओं को प्रायः पहाड़ों की कन्दराओं में रखते हैं ।

जब उत्तर-पूर्व की हवा चलने लगती है तब बर्फ़

पिघलता है और रास्ता साफ़ हो जाता है । गरमी

के दिनों में यद्यपि कभी कभी कड़ी धूप होती है, तो

भी पिछली रात को गुलाबी जाड़ा पड़ता है ।

## तातारों के घर ।

तातार लोग प्रायः झोपड़ियों में रहते हैं । इनकी

झोपड़ियाँ बहुत मामूली होती हैं । सफ़ाई का उनमें

प्रायः अभाव रहता है । उनसे ऐसी बदबू आती

है कि दूसरे देश के लोगों को वहाँ अधिक समय

तक ठहरना कठिन हो जाता है । बहुत से तातारी

झोपड़ियाँ भी नहीं बनाते । वे कभी यहाँ कभी वहाँ;

साल भर बराबर घूमा ही करते हैं ।

## आकृति और स्वभाव ।

तातार लोगों का मुख चिपटा, गालों की हड्डियाँ  
उभड़ी हुई, ठुड्ठी छोटी और दबी हुई, माथा पीछे



की ओर ढालू, आखें तिरछी और पीली, बाल काले और मोटे, दाढ़ी छोटी, चमड़ा मोटा, रङ्ग काला और गेहुआ, और कद छोटा होता है। वे लम्बा जूता और भेंड़ के चमड़े के वस्त्र पहनते हैं। तातारों की स्त्रियों का पहनावा भी प्रायः पुरुषों के समान होता है। वे एक लम्बा हरित या श्यामारुण वस्त्र पहनती हैं; उसके ऊपर एक पटका कमर में लपेटती हैं। नीचे कञ्चुकी, अंगरखा भी पहनती हैं। पैरों में वे पुरुषों की तरह लम्बे जूते पहनती हैं। तातार लोगों का स्वभाव सरल और शान्त होता है। वे प्रायः डरपोक होते हैं। किन्तु जब किसी से बदला लेने की वे ठानते हैं तब बड़े प्रबल और साहसी हो जाते हैं। वे आश्चर्यजनक किस्से-कहानियों के बड़े प्रेमी होते हैं। गुरु-भक्ति तातारों में अधिक होती है। लामाओं को वे पूज्य दृष्टि से देखते हैं और उनके दर्शनों से अपना सौभाग्य समझते हैं।

### शिक्षा।

तातार प्रायः अशिक्षित होते हैं। जो लोग सिर मुड़ते हैं वे मठों में जाकर लिखना-पढ़ना सीखते हैं। जो मठों में नहीं जाते उनको धनुष-बाण और बन्दूक चलाने की शिक्षा दी जाती है। घोड़े पर चढ़ना भी उन्हें सिखाया जाता है। घोड़े पर चढ़ने का अभ्यास उन्हें बहुत छोटी उम्र से कराया जाता है। पहले वे दूसरे सवारों के पीछे बिठाये जाते हैं। कुछ दिनों बाद वे अकेले सवार होते हैं। अमीर लोग अपने लड़कों को मठों में न भेज कर प्रायः घर पर ही उन्हें शिक्षा दिलाते हैं। तातारों को भूगोल का ज्ञान बहुत कम है। बहुत लोग तो तिब्बत और उसके आस पास के देशों तक ही पृथिवी की पश्चिमी सीमा मानते हैं।

तातार लोग कपड़े, टोपियाँ, जूते आदि जरूरी काम की चीजें बनाना जानते हैं। इनकी बनाई चीजों में खूबसूरती तो नहीं होती; किन्तु मजबूती हद से ज़ियादह होती है। ज़रदोज़ी का काम ये लोग अच्छा करते हैं।

तातार लोग पशुचिकित्सा में बड़े निपुण होते हैं। प्रायः सब तातार पशुओं की हड्डियों के नाम,

स्थान, संख्या आदि जानते हैं। उनकी चिकित्सा प्रणाली कुछ विलक्षण होती है। वे पशुओं को जड़ी-बूटी भी खिलाते हैं; किन्तु बहुधा पशुओं को भिन्न भिन्न अंगों में छेद तथा घाव करके ही वे उन्हें आराम करते हैं।

### धर्म और आतिथ्य।

तातार लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। वे बुद्धदेव को निराकार ईश्वर मानते हैं। वे कहते हैं कि उसी निराकार ईश्वर को भारतवर्ष में बुद्ध, तिब्बत में सामचीफो चेवा ( सर्वशक्तिमान ), चीन में फो और तातारों में बोहरन कहते हैं। उनको एक दलाई लामा सिवा और कोई नहीं देख सकता।

अतिथि-सत्कार करना तातार लोग अपने परम धर्म समझते हैं। यदि कोई अतिथि उनके दरवाजे पर आ जाय तो वे आदरपूर्वक उसे अपने झोंपड़ी में ले जाते हैं। वहाँ अपनी दाहिनी तरफ आसन देकर उसे तम्बाकू पिलाते हैं; फिर कुछ समाचार पूछते हैं। उनके कुशल-प्रश्न प्रायः इस तरह के होते हैं—क्या आपका गौचर हरा है? क्या आपके पशु सुरक्षित हैं? आपकी भैंड़ बच्चे देती हैं न? इत्यादि। ये वाक्य बड़ी गर्मी से उच्चारण किये जाते हैं। तदनन्तर गृहिणी काटोरे में दूध और चाय लाकर अतिथि के मुख पर रखती है। अमीरों के यहाँ मक्खन, जव की और पनीर आदि से अतिथि का सत्कार किया जाता है। विशेष सत्कार करना हुआ तो कोई कोई मीठा है। विशेष सत्कार करना हुआ तो कोई कोई मीठा नाम की मदिरा भी अतिथि के सामने रखते हैं। मदिरा दूध से बनती है और मिट्टी के बरतों में रक्खी जाती है।

### भोजन और आजीविका।

तातारों का प्रधान भोजन मांस और दूध है। वे भेंड़ का मांस अधिक पसन्द करते हैं। वे और चाय बराबर पीते रहते हैं। जव भी वे खाते हैं, पर बहुत कम। मछली खाने की



उन लोगों की आदत है। मछली पकड़ने के लिए कभी कभी वे रात रात भर हैरान रहते हैं।

तातार लोगों की प्रधान आजीविका पशुपालन है। वे भेंड़, बकरे, गाय, घोड़े आदि जानवरों को अधिक पालते हैं। वे खेती भी करते हैं और शिकार भी। जङ्गली घोड़ों को पकड़ने में वे बड़े निपुण होते हैं और बड़ी बहादुरी से उन्हें पकड़ते हैं। वे एक लम्बे बाँस के ऊपरी भाग में एक मजबूत रस्सी बाँध कर उसमें सरफँदी-गाँठ लगा देते हैं। उसी बाँस को हाथ में लिये हुए अपने घोड़ों पर सवार होकर वे जङ्गल को जाते हैं। जङ्गली घोड़ों के गले में बाँसवाली रस्सी वे डाल देते हैं और फिर उन्हें घसीट कर ले आते हैं। ऐसे समय वे अपनी सवारी के घोड़े की लगाम दाँतों से पकड़ लेते हैं और दोनों हाथों से बाँस को खोंचते हैं। कभी कभी रस्सी अथवा बाँस के टूट जाने से शिकार भाग जाता है, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता कि सवार अपने घोड़े से गिर पड़े या जङ्गली घोड़ा उसे घसीट ले जाय।

### विवाह ।

तातारों के लड़के-लड़कियों का विवाह उनके माता-पिता की इच्छा पर अवलम्बित रहता है। विवाह के समय लड़की वाले को कुछ देना नहीं पड़ता। उल्टा घर की तरफ से उसे वैवाहिक दान मिलता है। वास्तव में वह स्त्री को मोल लेता है। लोग बड़े चाव से कहते हैं कि मैंने अपनी लड़की मुक्त घराने में बेची है। वैवाहिक दान में प्रायः घोड़े, बैल, भेंड़, मक्खन, कपड़े आदि दिये जाते हैं। इन दान की बात तय हो जाने पर गवाहों के सामने लिखा जाता है। तब कन्या घर पक्ष की हो जाती है और उसके यहाँ चली आती है।

कानून, धर्म और देश की प्रथा के अनुसार विवाह निम्नित नहीं है। किन्तु पहली स्त्री का अधिक सम्मान होता है और घर की स्वामिनी भी होती है।

तातारों में तलाक भी प्रायः हुआ करता है। इसके लिए स्त्री का दोष दिखाने की आवश्यकता

नहीं होती। पुरुष चाहे तो अपनी स्त्री को उसके पिता के घर छोड़ आ सकता है। कभी कभी लड़की के माता-पिता उसे दुबारा दूसरे के हाथ बेच देते हैं।

### गृहप्रबन्ध ।

तातार देश में परदे का रिवाज नहीं है। वहाँ की स्त्रियाँ जहाँ चाहें स्वतन्त्रतापूर्वक जा सकती हैं। वे चीन देश की स्त्रियों की तरह सुकुमार और निर्बल नहीं, किन्तु बहुत यज्ञवृत्त, परिश्रमी, और साहसी होती हैं। पशुओं को बाँधना, दूध दुहना, भोजन बनाना, बहुत दूर से जल लाना, भेंड़ों के चमड़ों के कपड़े बनाना इत्यादि घर के आवश्यक काम स्त्रियाँ ही करती हैं। पुरुषों से उन्हें इन कामों में कुछ भी सहायता नहीं मिलती। केवल छोटे छोटे बच्चे ही उन्हें यथाशक्ति सहायता देते हैं।

पुरुष पशुओं को चराते हैं, खेती का काम करते हैं और घोड़े पर सवार होकर मैदान में चक्कर लगाते हैं। घोड़े की सवारी का उन्हें इतना शौक होता है कि जानवरों को भी वे घोड़े ही पर चढ़े हुए चराते हैं। भटके हुए पशुओं के पीछे खराब से खराब पहाड़ी रास्ते में भी वे घोड़े को सरपट दौड़ाते हैं। किन्तु घर पर वे चुपचाप आलसी बने चाय पीते रहते हैं।

### चिकित्सा और प्रेत-बाधा-निवारण ।

तातार देश में लामा लोग धर्माचार्य का भी काम करते हैं, चिकित्सा भी करते हैं और ओषधियाँ भी बेचते हैं। किसी रोग से पीड़ित होने पर तातार लोग इन्हीं की शरण जाते हैं। इनकी दवायें प्रायः वनस्पतियों से बनी होती हैं। किन्तु, यदि किसी समय कोई दवा तैयार नहीं होती तो ये लोग दवाओं के नाम कागज़ पर लिख देते हैं। वही कागज़ रोगियों को खिला दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इससे बहुत लाभ होता है।

तातार लोग कहते हैं कि बीमारी में चुटगोअर नामक प्रेत आदमी को सताता है। जब तक उस प्रेत का निवारण न किया जाय तब तक रोग नहीं



जाता। प्रेत-निवारण भी लामा ही करते हैं। रोगी की आर्थिक अवस्था के अनुसार प्रेत-निवारण की दक्षिणा देनी पड़ती है। सुन्दर वस्त्र, अच्छे जूते, चालाक घोड़े आदि दक्षिणा में दिये जाते हैं। प्रेत-निवारण आधी रात को किया जाता है। सूखी जड़ी-बूटियों की एक प्रेत-मूर्ति बनाई जाती है। रोगी उसके सामने बिठाया जाता है। लामा के सम्मुख एक ताँबे के पात्र में बाजरे और गोंद की बनी मूर्तियाँ रखी जाती हैं। इसके बाद बाजे बजा कर प्रेत-सम्बन्धी गाना गाया जाता है। फिर लामा भाड़फूँक आरम्भ करता है और चारों तरफ घूमता हुआ अनेक प्रकार की लीलायें—अङ्गविक्षेप आदि—करता है। यह सब हो चुकने पर प्रेत की मूर्ति में आग लगाई जाती है। फिर वह मकान से बहुत दूर फेंक दी जाती है। इसके बाद रोगी को पड़ास के किसी दूसरे झोंपड़े में ले जाते हैं। वहाँ वह एक महीने रहता है। तब वह अपने घर जाता है।

### मृतक-संस्कार ।

तातारों में मृतक-संस्कार की प्रथा भी विलक्षण है। वे समझते हैं कि पञ्चदुर्ग नामक पुण्यभूमि में मृतक की हड्डियाँ गाड़ देने से वह उत्तम जन्म पाता है। इसी धारणा के वशीभूत होकर तातार लोग बहुत कष्ट सहते हैं और बहुत धन भी खर्च करते हैं। पञ्चदुर्ग नामक स्थान चानसी प्रदेश में है। वहाँ जाने के लिए तातारों को दूर तक मरुभूमि पार करना होता है। स्थान पर पहुँच कर और जमीन मोल लेकर वे अपने सगे-त्रियों की हड्डियाँ वहाँ समाधिस्थ करते हैं।

साधारण लोगों के शव-दाह का कोई विशेष नियम नहीं है। किसी पहाड़ की चोटी पर अथवा किसी दर्रे में वे शव को जला देते हैं। किन्तु धनी लोग शव-दाह के समय बड़ा आडम्बर रचते हैं। एक शुण्डाकार भट्टी में शव रखा जाता है। उस भट्टी के ऊपर धुआँ निकलने के लिए एक छेद रहता है। नीचे एक छोटा सा द्वार होता है। जब तक शव जलता रहता है लामा उसके चारों ओर घूम

घूम कर प्रार्थना करता रहता है। पीछे, भट्टी को डाली जाती है और अस्थिसञ्चय किया जाता है। फिर प्रधान लामा उन हड्डियों का बारीक चूने करे उनके बराबर गेहूँ का आटा मिला कर तरह तरह की टिकियाँ बनाता है। ये टिकियाँ एक ऊँची जगह रखी जाती हैं। वहाँ एक बुर्ज सा पहले ही तैयार रखा जाता है।

राजाओं की लाशें जलाई नहीं जाती। वे के एक मकान में रखी जाती हैं। उस मकान पत्थर के बने हुए मनुष्य, सिंह और हाथी की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। घर के बीच में बड़ी गुफा बनाकर उसी में लाश रखी जाती है। सोना, चाँदी, वेशक्रीमती पत्थर, सुन्दर वस्त्र आदि इन समाधियों में शव के साथ रखे जाते हैं। इस अतिरिक्त कई सुन्दर लड़के-लड़कियाँ भी रखी जाती हैं। इनको जबरदस्ती पारा खिलवाया जाता है, जिससे श्वासावरोध होने से उनके प्राण निकल जाते हैं। कहा जाता है कि इस तरह हुए लड़के-लड़कियों की लाशें खराब नहीं होतीं वे दास-दासी की तरह अपने स्वामी के चारों तरफ बिठाये जाते हैं। उनके हाथों में पंखा, बाँसुरी आदि चीजें रहती हैं। धन की रक्षा के लिए वहाँ धन रखे जाते हैं। उन पर ज़हरीले बाण ऐसी युक्त से चढ़ाये रहते हैं कि गुफा का द्वार खोलते ही धड़ाधड़ बाण छूटने लगें।

### सङ्गीत-प्रेम ।

तातार लोग सङ्गीत के प्रेमी होते हैं। वे शंख, मृदङ्ग, सारंगी, बाँसुरी आदि बजा कर गाने गाते हैं। गाने का वहाँ एक पेशा हो गया है। गाने जातीय गीत गाते हैं और सब जगह घूमते रहते हैं। कहीं कहीं ये बहुत दिन तक ठहरते हैं। बिदाई इन्हें शराब, पनीर आदि दिये जाते हैं।

### लामाओं का जाति-विभाग ।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि लामा-जाति तातारों के धर्मगुरु, पुरोहित और वैद्य का वर्ग है।



[ भाग १ ]

करते हैं। इसके सिवा वे मूर्तियाँ और चित्र बनाने का भी व्यवसाय करते हैं। साधारण तौर पर उनकी तीन श्रेणियाँ हैं,—प्रधान लामा, परिव्राजक लामा और गृहस्थ लामा। प्रधान लामा वे कहलाते हैं जो बड़े बड़े मठों में रहते हैं। उनका काम धर्मसम्बन्धी पुस्तकें पढ़ना और दूसरों को पढ़ाना है। उनके हजारों शिष्य होते हैं। परिव्राजक लामा वे कहलाते हैं जो न घर में रहते हैं न मठ में। वे बराबर घूमते हैं। कहीं भी स्थिर होकर वे नहीं रहते। वे चीन, मंचूरिया, दक्षिणी मंगोलिया, तिब्बत, भारतवर्ष, तुर्किस्तान आदि देशों में भ्रमण किया करते हैं। गृहस्थ लामाओं का निवास प्रायः बड़े बड़े मठों के पास होता है। वे गाय, घोड़े, भेड़ आदि पशुओं का पालन करते हैं। वहीं वैद्य और ज्योतिषी का काम भी करते हैं। उन्हें योग्यतानुसार राजाओं से भी सहायता मिलती है।

### घर और मन्दिर ।

लामाओं के मकान प्रायः पत्थर के और साफ़ सुधरे होते हैं। जो गरीब हैं वे मिट्टी के मकान बनाते हैं; पर वे भी चूने से पुते हुए और साफ़ होते हैं।

मन्दिर बनाने की आवश्यकता होने पर लामा लोग द्रव्य इकट्ठा करने के लिए कुछ लोगों को भेजते हैं। वे गाँव गाँव घूम कर महाराज बुद्ध के नाम पर सहायता माँगते हैं। ऐसे काम में सहायता देना एक तातार अपना कर्तव्य समझता है। अमीर लोग सोने चाँदी की सिले देते हैं और साधारण लोग बैल, घोड़ा, ऊँट आदि। जो दरिद्र हैं वे लकड़ी ही दे कर अपना कर्तव्य पालन करते हैं। परन्तु ऐसा कोई भी न होगा जो ऐसे काम में सहायता न दे। इस तरह बहुत आसानी के साथ बड़े मन्दिर बन जाते हैं। इन मन्दिरों में गावदुम या लकड़ी के तख्त पर पद्मासनस्थित बुद्ध की मूर्तियाँ पधराई जाती हैं। सामने प्रधान लामा

के बैठने की वेदी रहती है। उसके दाहने बायें और लोगों के बैठने के लिए स्थान बना रहता है। बीच में आने जाने के लिए रास्ता रहता है। मन्दिर के भीतर बौद्धधर्मसम्बन्धी चित्र भी लगे रहते हैं।

### पूजन और बीभत्स-संस्कार ।

पूजन के समय से कुछ पहले प्रधान लामा अपने आसन पर आ बैठता है। उसके बाद और लामा भी यथास्थान बैठ जाते हैं। तब द्वारपाल लामा खूब जोर से शंख बजाता है। उसकी आवाज़ सुन कर भूले भटके सब लोग इकट्ठे हो जाते हैं। फिर प्रधान लामा घंटी बजा कर कुछ प्रार्थना करता है। दो बार घंटी बज चुकने पर बाजे के साथ स्तोत्र-गान आरम्भ होता है। ये स्तोत्र लक्ष्मोबद्ध होते हैं और बड़े मधुर स्वर से गाये जाते हैं। प्रार्थना के समय मन्दिर में सुगन्धित धूप दी जाती है।

तातार देश में राचचूरिन नाम का एक स्थान है। वहाँ मठ में लामा लोग एक बहुतही भयानक धार्मिक संस्कार करते हैं। एक लामा अपना पेट फाड़ कर आँतें बाहर निकाल देता है। फिर थोड़ी ही देर में उन्हें ज्यों का त्यों पेट में रख देता है। इस क्रिया के करने की शक्ति किसी बिरलेही लामा में होती है। इस क्रिया का जब समय आता है तब यात्री लोग मठ में इकट्ठे होते हैं। फिर प्रधान लामा एक ऊँची वेदी पर आकर बैठता है। अन्य लामा उसके चारों तरफ बैठते हैं। फिर प्रार्थना आरम्भ होती है और क्रिया करने वाला लामा अपने अङ्गों को हिलाने लगता है। ज्यों ज्यों वह बदन हिलाता है त्यों त्यों लामा लोग जोर से प्रार्थना करते हैं। अन्त में प्रधान लामा अपना पेट फाड़ कर आँतें बाहर निकाल देता है। ऐसा करतेही सब लोग उसे प्रणाम करते हैं और अपने अपने भविष्यत् के सम्बन्ध में उससे अनेक प्रश्न करते हैं। उस समय की उसकी वाणी देववाणी समझी जाती है। प्रश्नों का उत्तर देने के बाद फिर प्रार्थना की जाती है और प्रधान लामा आँतों को पेट में रख कर उस पर



हाथ फेरता है। ऐसा करने से उसका पेट ज्यों का त्यों हो जाता है। किन्तु उसमें शिथिलता बहुत आ जाती है। इसके बाद सब लोग चले जाते हैं। सिर्फ कुछ लोग वेदी की पूजा करने के लिए रह जाते हैं। पेट फाड़ने के अतिरिक्त और और साहस के काम भी किये जाते हैं। लोहे के टुकड़े आग में तपाये जाते हैं। जब वे लाल हो जाते हैं तब कोई लामा उन्हें हाथ से उठा लेता है और कोई उन्हें अपने बदन में लगाकर जला देता है। ऐसा करने से शरीर पर घाव हो जाते हैं। पर एक ही मिनट में न मालूम वे कहाँ चले जाते हैं।

शिवरत्न शुक्ल ।

## विहारी का विरह-वर्णन ।



हिन्दी भाषा के महाकवि विहारीलाल की “सतसई” एक “कोषात्मक” काव्य है। उसमें किसी विषय का शृङ्खलाबद्ध वर्णन नहीं है। विहारीलाल ने प्राकृत की “गाथासप्तशती” और संस्कृत की “आर्या-सप्तशती” के समान अपनी “सतसई” की रचना की है। उसमें भिन्न भिन्न विषयों पर फुटकर कविता है। परन्तु जिस किसी विषय पर उन्होंने लिखा है, बस कलम तोड़ दिया है। इस लेख में हम सरस्वती के पाठकों को “विहारी का विरह वर्णन” सुनाना चाहते हैं। पूर्वानुराग, मान और प्रवास—इस तीन प्रकार के विरह पर विहारी की जो अनूठी उक्तियाँ हैं वे प्रायः अन्यत्र कम देखने में आती हैं। विहारी का काव्य अलङ्कारों से बेहद अलङ्कृत है—शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार की उसमें अत्यन्त बहुलता है। यह बात दूसरे कवियों के काव्य में नहीं देखी जाती। सतसई का एक भी दोहा ऐसा नहीं जो कई कई अलङ्कारों से अलङ्कृत न हो। शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार का ऐसा विलक्षण और अपूर्व समावेश किसी कवि के काव्य में इस उत्तमता से नहीं पाया जाता। हम इस लेख में

अलङ्कारादि की चर्चा छोड़ कर केवल विहारी के विरहविषयक वर्णन-वैचित्र्य दिखलाना चाहते हैं। अलङ्कारादि का निदर्शन किसी अन्य लेख में करेंगे। इस विषय के कई उत्तमोत्तम दोहे, प्रसङ्गशास्त्र “सतसई-संहार” में आ गये हैं। उनका उल्लेख लेख में न करके कुछ और दोहे लिखे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य दोहे भी इस विषय के “सतसई” में हैं। लेख बढ़ जाने के भय से वे नहीं लिखे गये। विहारी के वर्णन से टकराता हुआ जिस किसी कवि का जो पद्य याद आ गया है, उसे भी साथही लिख दिया गया है। उससे काव्य रसज्ञ सहृदय पाठक इस बात का अनुमान कर सकेंगे कि सतसई के विषय में जो यह कहा प्रसिद्ध है कि:—

“सतसैया के दोहरा ज्यों नावक के तीर ।  
देखत में छोटे लगैं घाव करें गम्भीर ॥”

वह कहाँ तक ठीक है।

इस प्रसङ्ग में मैं यह भी निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि मेरा यह कदापि अभिप्राय नहीं कि जिन संस्कृत-कवियों के पद्यों से विहारी के काव्य का मुकाबला किया है, मैं उन महाकवियों को उत्तम कोटि का कवि नहीं समझता हूँ, उनमें भी मेरी उतनीही मान्य बुद्धि है जितनी कि विहारी में। अपने अपने ढङ्ग के वे भी अद्वितीय कवि थे। उनके अनुपम काव्य इस बात के साक्ष्य हैं—

१—सीरे जतननि सिसिररितु सहि विरहिनितनता

बसिवे को ग्रीष्म दिननि परचौ परौसिन पा

सखी नायक से अथवा सखी से नायिका के विरह-निवेदन कर रही है—शीतलोपचार से—उपायों से, शिशिर ऋतु (अगहन-पौष) में विरहिणी के तन की ताप पड़ोसियों ने सहन की पर अब ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़) के दिनों में बसने पर अब ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़) के दिनों में बसने पर उसके पास बसना पाप (दुःखप्रद) हो गया।

२—आड़े दै आले बसन जाड़े हू की राति ।

साहस कैकै नेहबस सखी सबै दिग जाति



[ भाग १ ]

भावार्थ:—जाड़े की रात में भी, पानी से भीगे कपड़े की आड़ करके ( ओढ़कर, या सामने करके ) खरी सखियाँ प्रीति के कारण हिम्मत कर कर उस ( विरहिणी ) के समीप जाती हैं ।

जाड़े की रात में, शीताधिक्य से ठिठरे हुए आग को आग तपाकर ठीक करने की आवश्यकता पड़ती है । जलती हुई भट्टी, सुलगती हुई लौ और दहकते हुए अलाव के सामने बैठना कितना सुखकर प्रतीत होता है । ऐसे समय में विरहिणी के पास उसकी सखियाँ, प्रीति से प्रेरित होकर, हिम्मत कर करके गीले कपड़े की आड़ में आती हैं ।

विरह-ताप की प्रबलता का कुछ ठिकाना है । विरहिणी के पड़ोसियों ने ठंडे उपायों से—धारागृहों में बैठ कर, तहखानों और खसखानों में लेट कर, गर्मिश्चित चन्दनपट्ट शरीर से लपेट कर, जाड़ों के दिन तो किसी प्रकार काट दिये । पर गर्मियाँ कैसे काटी जायँ ! गाँव छोड़कर भागना पड़ेगा !

—मोथाई सीसी सुलखि विरह बरति बिललात !  
बीचहि सूख गुलाब गौ छोटौ छुई न गात ॥

भावार्थ:—विरह से बलती हुई को कराहते हुए रोते देख कर सखी ने गुलाब-जल की सीसी उसके ऊपर उलट दी । पर बीच में ही गुलाब खस गया; शरीर पर एक छोट भी न गिरी ।

विरहाग्नि की लपटें कितनी प्रचण्ड होंगी, इन्होंने निरक्षदेश की सन्तप्त भूमि की प्रखर ऊष्मा को तरह ऊपर ही सारे जल को सोख लिया; नीचे एक बूँद भी न पहुँचने दी !

—निहि निदाघ दुपहर रहै भई माह की राति ।

तिहिँ उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥

भावार्थ:—जिस ( रावटी ) में ग्रीष्मकाल की रात ( मध्याह्न ) भी माघ की रात्रि हुई रहती है, उसी खस की रावटी ( टट्टी या बँगले ) में वह विरहिणी अत्यन्त आटी जाती है ।

५—हैंही बैरी विरहबस कै बैरो सब गाम ।  
कहा जानि ये कहत हैं ससिहि सीतकर नाम ॥

भावार्थ:—विरह के कारण मैंही बावली हूँ, या सारा गाँव ही बावला है । क्या समझ कर ये लोग चन्द्रमा को “सीतकर” ( ठंडी किरणोंवाला ) कहते हैं ?

विहारी के इस अतिप्रसिद्ध दोहे को देख कर पण्डितराज जगन्नाथ का, इसके भाव से मिलता जुलता, यह पद्य याद आ जाता है :—

\* सङ्गामाङ्गणसम्मुखाहतकियद्विश्वमराधीश्वर—  
व्यादीर्णांकृतमध्यभागविवरोन्मीलन्नभोनीलिमा ।

अङ्गारप्रखरै करैः कवलयन्नेतन्महीमण्डलं

मार्त्तण्डेयमुदेति केन पशुना लोके शशाङ्कीकृतः ॥

चन्द्रोदय को देख कर विरही कहता है कि अङ्गारों की तरह तीक्ष्ण किरणों से भूमण्डल को भस्म करता हुआ यह तो खासा सूर्य निकल रहा है । कौन पशु है जो इसे चन्द्रमा कहता है । इसमें जो श्यामता दीखती है वह शशलाञ्छन नहीं है, किन्तु रणभूमि में सम्मुख लड़ कर मरे हुए वीर क्षत्रियों के द्वारा फटे हुए मध्य भाग से आकाश की नीलिमा चमक रही है !

सहृदय सज्जन ! दोनों कवियों के यहाँ वर्णनीय विषय एकही हैं; पर दोनों की उक्तियों में वक्तृभेद स्पष्ट झलक रहा है ।

“मैं ही बावली हूँ, या सारा गाँव पागल है” इत्यादि सन्देहयुक्त कथन से कहने वाली की उद्वेग-दशा, विरहव्याकुलता, दीनता, आत्मविस्मृति इत्यादि दशा का बोध होता है । विपत्ति और व्याकुलता की दशा में मनुष्य संज्ञाशून्य सा हो जाता है । उसे अपने अनुभव और ज्ञान पर पूरा भरोसा नहीं रहता । प्रत्यक्षसिद्ध विषयों पर भी सन्देह होने लगता है । निश्चयात्मक ज्ञान जाता रहता है । विहारी ने विरहिणी की उद्वेगदशा का यह बड़ा ही सुन्दर चित्र

\* द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ सूर्यमण्डलभेदिनौ ।

परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ( म० भा० )



खींचा है। इस बयान में क्या ही भोलापन है! “मालूम नहीं इस जलानेवाले चन्द्रमा का नाम “शीतकर क्यों रखा गया है!” इस विवक्षित अर्थ में से “विरहिजनों को दुःखप्रद—जलाने वाला” यह भाव शब्द द्वारा प्रतीत नहीं कराया गया, किन्तु “विरह-बस” पद से ध्वनिद्वारा बतलाया गया है। यह विरहिजनों को जला रहा है, इससे इसे “शीतकर” न कहकर “चण्डांशु” कहना चाहिए—इस प्रकार हेतुपुरःसर खुले कथन में यह “सहृदयहृदयैकसंवेद्य” आनन्द नहीं रहता। विरह-व्याकुल जन को उस उद्वेग और दैन्यदशा में इस हेतुवाद, या “कौन पशु इसे चन्द्रमा कहता है यह तो सूर्य निकल रहा है” इस प्रकार के “प्रौढिवाद” का साहस कैसे हो सकता है? विरहजन्य पागलपन की दशा में यह शास्त्रीय ज्ञानगुदड़ी (रण में सम्मुख लड़ कर मरा हुआ वीर सूर्यमण्डल को भेदन कर दिव्य लोक को प्राप्त होता है) और वीररसोचित मीलों लम्बे समास, कुछ वैसे अच्छे नहीं लगते जैसा कि “विरह के कारण मैं ही बावली हो रही हूँ, या यह सब गाँव बावला है। क्या समझ कर ये लोग चन्द्रमा को “शीतकर” कहते हैं—यह सीधा सादा, भोला भाला, दैन्यदशोचित सन्देहात्मक कथन।

६—ह्याँ ते ह्याँ ह्याँ तें यहाँ नैको धरति न धीर ।

निसि दिन डाढी सी रहै बाढी गाढी पीर ॥

भावार्थः—यहाँ से वहाँ जाती है और वहाँ से यहाँ आती है। ज़रा भी धीरज नहीं धरती। रातदिन जली सी रहती है। विरह-पीड़ा अत्यन्त बढ़ी हुई है।

पीड़ा के लिए आग की जलन प्रसिद्ध है। जले हुए आदमी को किसी ढब कल नहीं पड़ती। वह व्याकुलता का मारा इधर से उधर, बेचैनी से घूमता रहता है।

७—इत आवत चलि जाति उत चली छ सातिक हाथ ।

चढ़ी हिँडारे से रहै लगी उसासनि साथ ॥

भावार्थः—श्वास छोड़ने के समय छः सात हाथ इधर, आगे की ओर, चली आती है, और श्वास लेने के समय छः सात हाथ पीछे चली जाती है।

मानो उच्छ्वासों के साथ लगी हुई हिँडोले पर चढ़ रही है।

तन्वी की विरहकृशता और दीर्घोच्छ्वासों की बहुलता और प्रबलता, कैसे अच्छे ढंग से वर्णन की गई है! अर्थात् नायिका विरह में इतनी कृश हो गई है कि श्वासों के हिँडोले पर चढ़ी इधर से उधर झूलती रहती है!

विरहकृशता का वर्णन महाकवि बिल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित के नवम सर्ग में अत्यन्त किया है। यथाः—

प्राप्ता तथा तानवमङ्गयष्टिस्त्वद्विप्रयोगेण कुरङ्गच्छे ।

धत्ते गृहस्तम्भनिवर्त्तितेन कम्पं यथा श्वाससमीरणे ॥

राजा से चन्द्रलेखा के पूर्वानुराग का वर्णन करता हुआ दूत कहता है कि तुम्हारे वियोग से उसकी शरीरलता इतनी कृश हो गई है कि मकान के खम्भे से टकरा कर लौटे हुए श्वास-वायु से भी हिलने लगती है!

विहारी का वर्णन बिल्हण के वर्णन से बड़ा है। इन्होंने गृहस्तम्भ से टकरा कर लौटी हुई श्वास-वायु से शरीर को सिर्फ कँपाया ही है; पर विहारी ने श्वासों के हिँडोले पर बिठला कर छः छः सात हाथ लम्बे झोटे दिला दिये हैं। दया की आह की आँधी में जिस्म को पत्ते की मानिन्द उड़ान दिया। जुरअत का यह शेर भी दोहों की तुलना नहीं पहुँचताः—

ना तवाहूँ बल्कि फुरकत\* से तेरी चूँ बगँकाह† ।

अब सबा‡ फेरे है इस पहलू से उस पहलू § मुझे ।

८—करके मीँडे कुसुम लौं गई विरह कुम्हिलाय ।

सदा समीपिनि सखिनिहूँ नोठि पिछानी जाय ।

भावार्थः—हाथ से मसले फूल की तरह विरह से मुरझा गई है। सदा समीप में रहने वाली सखियाँ भी उसे मुश्किल से पहचानती हैं।

कोमलाङ्गी नायिका की विरह-विवर्णता को मसले हुए फूल की उपमा कितनी अनुरूप और सुन्दर है।

\* फुरकत—वियोग ।

† बगँकाह—घास का पत्ता ।

‡ सबा—हवा ।

§ पहलू—करवट ।



मले हुए पुष्प को चतुर माली भी कठि-  
न से पहचान सकता है, कि यह क्या फूल  
का है। जिसे हमेशा पास रहने वाली सखियाँ भी  
कठिनाई से पहचान सकें उसकी दशा उस मले दले  
फूल से क्या किसी प्रकार कम हो सकती है ?

—करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़तु नीच ।  
दीनेहु चसमा चखनि चाहै लखै न मीच ॥

भावार्थ:—मौत आँखों पर चश्मा लगा कर भी  
देखना चाहे तो उसे नहीं देख सकती । निरुष्ट विरह  
उसकी ऐसी दशा कर दी है । पर वह प्रेम-पन्थ  
को इतने पर भी नहीं छोड़ती !

विरहजन्य कृशता की पराकाष्ठा है । आँखों पर  
चश्मा चढ़ा कर भी मौत नहीं देख सकती ।

जुफर भी एक बार हिज्र ( वियोग ) में नातवानो  
( दुबलता, कृशता ) के कारण ही क़ज़ा ( मौत ) की  
आह से बच गये थे । शायद उस वक्त ढूँढ़नेवाली  
उसके पास चश्मा नहीं था । वरना वह जरूर ढूँढ़  
ली, क्योंकि ज़ुफर की नातवानो, विहारी की विर-  
हिणी की तरह परमाणुता को नहीं पहुँची थी !  
जुफर की शेर सुनिः—

नातवानो ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।  
कोने कोने ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी मैं न था ॥

“मैं न था” पद यह भी प्रकट करता है कि  
जुफर मौत के डर से मौका वारदात छोड़ कर  
यहाँ जा छिपे थे ! इसलिए भी क़ज़ा उन्हें न  
सुझ सकी । पर विहारी की विरहिणी घटनास्थल से  
नहीं, किन्तु वहाँ डटी रही । “तऊ गैल न छाँड़तु”  
इस बात की गवाही दे रहे हैं ।

—निति संसौ हंसौ बचतु मानौ इहि अनुमान ।  
विरह अगनि लपटनि सकै भपट न मीच सिचान ॥

भावार्थ:—नित्य प्रति सन्देह रहता है कि इस  
विहारी का हंस ( जीव ) किस प्रकार बचा हुआ  
है । सो यही अनुमान ठीक है कि मृत्युरूपी बाज़  
( विरहाग्नि की लपटों से डर कर हंस-  
जीव पर भपट नहीं सकता !

विरहाग्नि की ज्वालायें इतनी प्रचण्ड हैं कि उनके  
पास जाते हुए मृत्यु के भी पर जलते हैं !

११—पजरचौ आग वियोग की बहौ विलोचन नीर ।  
आठों जाम हियौ रहै उड्यौ उसास समीर ॥

भावार्थ:—आठों पहर वियोग की आग में हृदय  
पजरता—जलता—रहता है; नेत्रों के जल  
( आँसुओं ) में बहता रहता है; और श्वास-वायु के  
भकोरों में उड़ता रहता है !

ज़रा सा दिल और इतनी मुसीबतों का सामना !  
आग की भस्मी, जल की बाढ़, और आँधी का तूफ़ान—  
इन सब में से बारी बारी गुजरना । आग से बचा  
तो जल बहा रहा है । वहाँ से छूटा तो आँधी उड़ा  
रही है ! ऐसे मुकाबले से घबराकर ही शायद  
किसी ने यह प्रार्थना की है:—“मेरी किस्मत में गुम  
गर इतना था—दिल भी यारब कई दिये होते ।”

१२—गनती तनवे तैं रहे छतहू अछत समान ।

अलि ! अब ये तिथि औमलों परे रहौ तन प्रान ॥

भावार्थ:—गिनती में तो आने से रहे; इन प्राणों  
का होना न होने के बराबर है । हे सखी ! अब  
( इस विरह-दशा में ) अवमतिथि की तरह ये प्राण  
शरीर में पड़े रहें ।

जो तिथि घट जाती है वह अवम अर्थात् लुप्त  
तिथि कहलाती है । उसे भी याददाश्त के तौर पर  
तिथिपत्र में ज्योतिषी लिख छोड़ते हैं । जैसे, यदि  
दशमी तिथि घटी हो तो उसे भी नवमी और  
एकादशी के बीच में यथास्थान लिख देते हैं । पर वह  
गिनती में नहीं आती-किसी काम भी नहीं आती ।  
विरहिणी कहती है कि मेरे ये प्राण भी शरीर में  
खाली भले ही पड़े रहें; पर अवमतिथि की तरह  
इनका रहना केवल व्यर्थ है ।

प्राणपति के बिना प्राणों की नाममात्र की  
विद्यमानता, परन्तु उनकी व्यर्थता और अनुपयोगिता  
प्रकट करने के लिए अवमतिथि की उपमा जितनी  
अनूठी, अछूती और निराली है उतनी ही अनुरूप और  
हृदयहारिणी भी है । ऐसी ऐसी उपमायें, जिनकी



सतसई में कमी नहीं है, विहारीलाल को ब्रजभाषा का कालिदास सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं ।

१३—विरह विपत्ति दिन परत ही तजे सुखनि सब अंग ।

रहि अबलौँ दुखौ भये चला चली जिय संग ॥

भावार्थ:—विरह-विपत्ति का दिन पड़ते ही सब सुख तो शरीर को कभी के छोड़ कर चले गये थे । अब तक रह कर—शरीर का साथ देकर—दुःख भी अब जी के साथ चलने को चञ्चल हो रहे हैं; वे भी तैयार बैठे हैं ।

प्रियवियुक्त जन को सारे सुख तो वियोग के आते ही छोड़ कर भाग जाते हैं । उनकी जगह दुःख आ घेरते हैं और वे ऐसा धरना धर कर बैठते हैं कि बिना जी के लिये नहीं टलते ।

“यह दर्द सर ऐसा है कि सर जाय तो जाये” \*

१४—मरन भलौ बह विरहते यह विचार चित जोय ।

मरन छुटै दुख एक को विरह दुहूँ दुख होय ॥

भावार्थ:—विरह की अपेक्षा, मरना बहुत भला है—यह बात चित्त में विचार कर देखो, क्योंकि मरने से एक ( मरने वाले ) का तो दुख छूट जाता है; पर विरह में दोनों को दुख होता है ।

मौत को, जो सारे दुःखों की सरताज है, जिन्दगी पर क्या अच्छी तरजीह दी है ! यह लेशा-

\* विरह-दशा में प्राणों का भारभूत और दुःखप्रद होना, किसी विरहिणी की इन उक्तियों में भी, जिन्हें उसने अपने दूरदेशस्थ प्राणपति को उद्देश्य करके कही हैं, अच्छे और निराले ढंग से वर्णित हैं:—

तुम बिन एती को करे कृपा हमारे नाथ ।

मोहि अकेली जानि कै दुख राख्यौ मो साथ ॥ १ ॥

पिय तन तज मिलतो तुम्हें प्रानपिया को प्रान ।

रहती जो न घरी घरी औधि परी दरम्यान ॥ २ ॥

भेजत हैं यह पत्र संग दूत हाथ दुखरास ।

नहि आओ तो राखियो प्रान आपने पास ॥ ३ ॥

तुम पहुँ धावन ते प्रथम चलन कहत ये प्रान ।

पत्रोत्तर लागि हम इन्हें राखे अति सनमान ॥ ४ ॥

लङ्कार का उत्कृष्ट उदाहरण और प्रतिभा का नमूना है ।

छूट जाऊँ गम के हाथों से जो निकले दम कहों ।  
खाक ऐसी जिन्दगी पर तुम कहों और हम कहों ।

१५—मरिबे को साहस कियौ बढी विरह की पीर ।  
दौरति है समुहै ससी सरसिज सुरभि समीर ।

भावार्थ:—विरह की पीड़ा जो बढी तो (विरहिणी) मरने का साहस करके चन्द्रमा के सामने और कमल से सुगन्धित पवन की ओर दौड़ती है । उद्दीपन विभाव का यह क्याही उदा उदा है । विचित्रालङ्कार का क्याही ललित लक्ष्य है जो चीजें सुख का हेतु हैं वही दुःखद हो रही हैं उनसे ही मृत्यु माँगी जा रही है ।

१६—सुनत पथिक मुँह माह निसि लुएँ चलति उहि गाँव ।  
बिन बूझे बिनही सुने जियति विचारी वाम ।

भावार्थ:—पथिक के मुँह से यह सुन कर उस गाँव में, माघ मास की रात में भी, लुएँ चलती हैं, (वियुक्त पथिक ने) बिना बूझे बिना सुने ही स्त्री का जीवित होना जान लिया ।

कोई दूरदेशस्थ वियुक्त पथिक अपनी प्राणपति का मङ्गल-समाचार सुनने के लिए चिन्तित है । मुद्दत से घर की खबर नहीं मिली । यह मालूम नहीं कि घरवाली जीवित है या उसका प्राण-पखेरू प्रिय को ढूँढ़ने के लिए प्रयाण चुके हैं । इसी समय उसके गाँव की ओर से आने वाले कुछ बटोही आपस में बैठे बातें कर रहे हैं कि “अमुक गाँव में माघ-मास की रात में भी लुएँ चलती हैं । यह बड़े आश्चर्य की बात है” । यह सुन कर उसने अनुमान कर लिया कि उसकी प्राणपति अवश्य जीवित है, अन्यथा माघ मास की रात में वहाँ लुएँ क्यों चलतीं ! मेरी विरहिणी के तन ताँ और विरहसन्तप्त निःश्वास ने ही वहाँ की माघ रात्रि को ज्येष्ठ-आषाढ़ का मध्याह्न बना रक्खा है । वे मौसम माह की रात में लुएँ चलने का कोई कारण हो ही नहीं सकता । इसलिए उल्टे को उल्टे उनसे इस विषय में कुछ और पूछना या सुनना



संख्या ८ ]

भाग १२  
का वाता  
म कहों।  
हम कहों।  
की पीर।  
मे समीर।  
तो (विरह)  
के सामने  
दौड़ाती है।  
गद्गद उल्लेख  
लक्ष्य है।  
हो रही हैं।  
ति उहि गा  
री वाम।  
न कर वि  
भी, लु  
बूझे और  
लिया।  
प्राणप्रिय  
न्तित है।  
। यह  
या उसका  
प्रयाण का  
र से आ  
कर रहे।  
में भी लु  
है।" य  
सकी प्रिय  
की रात  
के तन ता  
की मा  
रकबा है।  
न का और  
लेप उस  
या सुन

समझा। प्रिया को जीवित समझ घर  
चलने की ठानी।

एक और कवि ने भी किसी प्रवासी को, वर्षा-  
श्रु की मूसलाधार वृष्टि में भी उसके घर से  
धूल के बबूले उठते रहने का समाचार किसी के  
द्वारा पहुँचा कर विरहिणी की जीवित दशा का  
बोध कराया है:—

बरखत मेह अछेह अति अवनि रही जल पूरि।

पथिक तऊ तुव गेह ते उठत भभूरन धूरि ॥

विहारी का दोहा इससे कहीं भावभरा और  
और गम्भीर है; क्योंकि यहाँ तो स्पष्टतापूर्वक  
प्रत्यक्षरूप में स्वयं पथिक से ही कोई उसके घर  
का वर्णन कर रहा है कि निरन्तर मूसलाधार मेह  
बरस रहा है, जिससे जल जङ्गल एक हो गया  
है। सर्वत्र पानी ही पानी दीखता है। खुशकी या  
धूल का कहीं नामोनिशान भी नहीं; परन्तु तुम्हारे  
घर से इतने पर भी धूल के बबूले उठ रहे हैं।

सम्भव है, यह वक्ता दूत बन कर आया हो  
और उसकी नायिका के विरह-सन्ताप का अत्युक्ति-  
पूर्ण वर्णन करके उसे घर लेजाया चाहता हो।  
यद्यपि धूल उड़ने के कारण विरह-सन्ताप का  
वर्णन यहाँ भी साफ शब्दों में नहीं है; तथापि  
या उसका का इस प्रकार पथिक को अभिमुख करके  
प्रयाण का वर्णन, गाँव भर में केवल उसी के घर से धूल के  
बबूले का उठना, विरह-सन्ताप का का बोध स्पष्ट  
रूप से अनायास करा रहा है।

अब ज़रा विहारी के विरही पर दृष्टि डालिए।  
उसकी दशा बिलकुल इससे भिन्न है। वे पथिक जो  
स रास्ते के गाँव की लुग्रों का वर्णन आपस में  
करते हैं वे योही आश्चर्य-घटना समझ कर कर रहे हैं उन्हें  
मालूम नहीं कि हमारे इस कथन को लुग्रोंवाले गाँव  
का कोई आदमी भी सुन रहा है। लुग्रें उस गाँव में  
क्यों चलती हैं? किस घर से चलती हैं? वहाँ कोई  
विप्रेत-पतिका रहती है या नहीं? इत्यादि बातों का  
बोध पता नहीं। वे इस किस का कोई जिक्र  
नहीं करते जिससे प्रतीत होता है कि वे एक

अनुभूत और आश्चर्यकारक सत्य-घटना का वर्णन  
कर रहे हैं। क्योंकि उनके कथन में किसी प्रकार की  
अत्युक्ति, बनावट या अतिरञ्जना का कोई कारण  
किसी प्रकार भी लक्षित नहीं होता। उनकी बेलाग  
बातों से सच ही मालूम होता है कि ज़रूर किसी  
गाँव में माघ की रात में लुग्रें चल रही होंगी। लुग्रें  
चलने के परम्परा-कारणीभूत उस सुननेवाले ने  
इतने ही से अपनी विरहविधुरा प्रिया के जीवित  
होने का अनुमान कर लिया। लुग्रें चलने के कारण  
को वह समझ गया। उसे उस सुनी हुई आश्चर्य-  
घटना और अपने अनुमान पर इतना विश्वास था  
कि उसने उन कहनेवालों से अधिक पूछना या  
जिरह करना तक फ़िजूल समझा। चुपचाप उसने  
अपनी राह ली।

गाँव भर में लुग्रें चल रही हैं और सिर्फ एक  
घर से धूल उड़ रही है—दोनों में “अन्तरं मह-  
दन्तरम्”।

१७—चलत चलत लैं लैं चले सब सुख सङ्ग लगाय।  
ग्रीष्म वासर सिसिर निसि पिय मो पास बसाय ॥

प्रोषितिपतिका विरहिणी सखी से कह रही है  
कि मानो चलते चलते प्रिय मेरे सब सुखों को अपने  
साथ लगा कर ले गये, और ग्रीष्म के दिन तथा  
शिशिर की रात्रियाँ मेरे पास छोड़ गये। (१) सारे  
सुख प्रिय के साथ चले जाते हैं। सुखहीन वियुक्त  
को दिन और रात बड़े बड़े दीखने लगते हैं, काटे  
नहीं कटते। गर्मियों के दिन और जाड़ों की रातें  
बड़ी होती हैं। (२) शिशिर की रात्रि में ग्रीष्म के  
दिन रक्खे गये हैं—अर्थात् जाड़े की रात में भी  
ग्रीष्म की गर्मी प्रतीत होती है। (३)—ग्रीष्म के  
दिन में शिशिर की रात्रि छोड़ गये हैं—अर्थात्  
शीत के समान कामजन्य कम्प होता है। (४) दिन  
में विरह से तपती हूँ और रात में काम से  
काँपती हूँ।

विद्वच्चक्रचूड़ामणि, कवितार्किकशिरोमणि महा-  
कवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती की दशा का वर्णन करते हुए  
लिखा है:—

सन्दर्भ ग्रन्थ  
REFERENCE BOOK



“अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम् ।  
तपतु पूर्तावपि मेदसांभरा विभावरीभिर्विभरां बभूवरे ॥

अर्थात् आश्चर्य्य है कि उस कामपीडिता दम-  
यन्ती के प्रति जाड़ों के दिनों में भी दिन बड़े हो गये,  
और गर्मियों की रातें बड़ी लम्बी हो गईं ।

श्रीहर्ष महाराज के इस कथन में कोई ऐसी  
विशेषता या चमत्कारिता नहीं है, जिस पर “अहो”  
कह कर आश्चर्य्य प्रकट किया जाय । यहाँ “अहो”  
से अनुप्रास मात्र का ही आशय लिया जाना  
चाहिए । क्योंकि “स्मरार्दिता” दमयन्ती के प्रति  
वियोग-दशा में दिन और रातों का बड़ा प्रतीत होना,  
जैसा कि प्रत्येक वियुक्त को प्रतीत हुआ करता है,  
एक अति-प्रसिद्ध तथा अनुभव-सिद्ध घटना है,  
जिसमें कुछ नवीनता या निरालापन नहीं ।

परन्तु विहारी के उक्त वर्णन में बहुर्यता और  
गम्भीरता के अतिरिक्त एक बाँक पन है जो साफ  
भलक रहा है ।

“सुखों को संग लगा कर ले जाना”—ले  
जानेवाले के लौटने पर सुखों के लौटने की आशा  
दिलाता है । “ग्रीष्म के दिन और जाड़ों की रात  
को एक साथ छोड़ जाना”—दो परस्पर विरुद्ध  
बातों के एकत्र समावेश का, एक बिलकुल नई और  
असम्भवनीय घटना होने पर भी, कहनेवाली की  
उसस्थिति में यथार्थ प्रतीत होना—और कवि का उसे  
इस प्रकार चुपचाप “अहो” “अहा” की आश्चर्य्य  
और विचित्रताद्योतक घोषणा के बिना, सादगी और  
सरलता से बयान कर जाना, वर्णन-वैचित्र्य की  
निराली और अनोखी छटा दिखला रहा है ।

१८—मैं लै द्यौ लयौ सुकर छुवत छनक गो नीर ।

लाल तिहारो अरगजा उर है लग्यौ अबीर ॥

पूर्वानुराग में नायिका के विरह की दशा सखी  
नायक से कहती है—मैंने ले जाकर अरगजा दिया ।  
उसने सुन्दर हाथ में लिया । पर छूते ही पानी छुन्न  
होकर जल गया । सो, हे लाल ! तुम्हारा वह अरगजा  
( कई सुगन्धित पदार्थों के योग से बनाया हुआ एक

प्रकार का उबटना ] उसकी छाती में अबीर होकर  
लगा ।

प्रिय-प्रेषित पङ्कमय अरगजे को हाथ में लेते  
ताप से उसका पानी इस प्रकार छुन्न होकर  
गया जैसे तत्ते तवे पर डाली हुई पानी की बुँदें  
वह जलाने अरगजा सूख कर अबीर बन गया  
और दीर्घोच्छ्वास की वायु से उड़ कर छाती पर पड़  
गया ! चलो, खैर, किसी प्रकार काम तो आ गया  
अरगजा न सही—अबीर सही । वह प्रेमोपा-  
हृदय से स्वीकार तो कर लिया गया । भेजने के  
के लिए यह कम सन्तोष की बात नहीं है \* ।

पद्मसिंह शर्मा

## माँडू की सैर ।



इ एक ऐतिहासिक स्थान है ।  
बड़े संग्राम इसके कारण हुए  
पर आजकल इसकी बड़ी  
दशा है । वह महल जहाँ  
राजाओं और नवाबों का निवास  
था आज गीदड़, बाघ और  
जंगली जानवरों की माँद हो रहा है । जहाँ सु-  
सुन्दर कालीन और फ़र्श बिछते थे वहाँ आज

\* श्री सातवाहन की “गाथा-सप्तशती” में भी  
गाथा ऐसी ही है । भेद केवल इतना ही है कि इसमें  
के ताप का वर्णन है और उसमें संयोग के सात्विक भाव का  
यहाँ अरगजे का अबीर बन गया है और वहाँ अबीर  
गन्धोदक (सुगन्धित) अर्क हो गया है :—

गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं हर्षोत्सुकिताया वेपमानायाः ।

अवकिरामीति प्रियतमं हस्ते गन्धोदकं जातम् ॥

हर्षोत्सुक काँपती हुई कामिनी की अबीर की मूठ  
वह प्रियतम पर फेंकना चाहती थी, (सात्विक स्वेद से)  
में गन्धोदक हो गई । खैर, कोई घबराने की बात  
अबीर की मूठ न मारी, एक चुल्लू रङ्ग डाल  
होली है !



[ भाग १० ]

अवीर हेम

थ में लेने

होकर

ती की वृद्धि

वीर वन

गती पर कि

तो आ ग

वह प्रेम

भेजने

हैं # ।

संह शर्मा

न है ।

नारण हु

नी बड़ी

जहाँ

का लि

घ और

जहाँ सु

हैं आज

में भी

के इसमें

स्विक भाव

वहाँ अवीर

पायाः ।

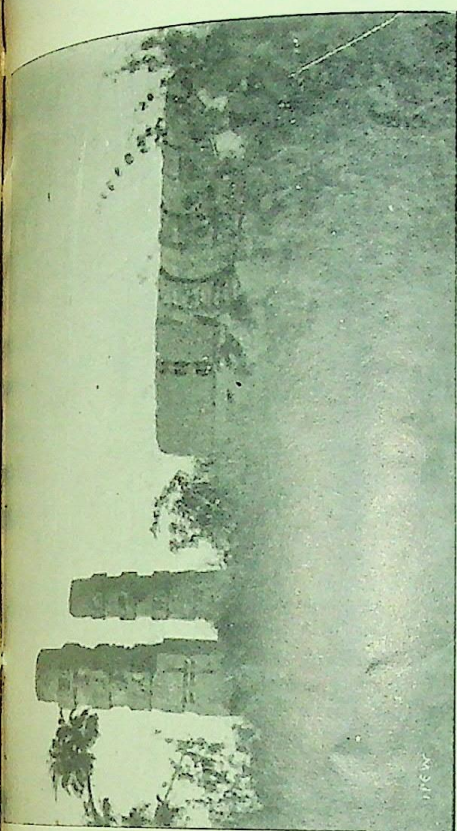
तम् ॥

र की मू

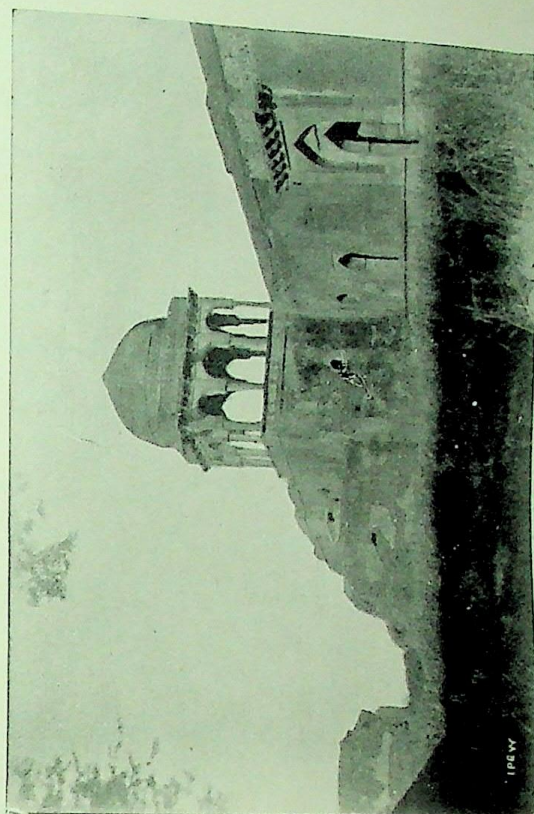
स्वेद से

नी बात

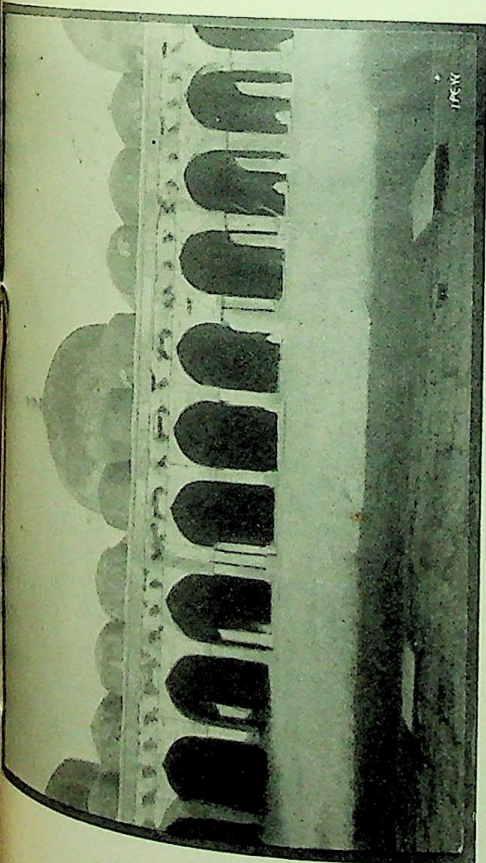
डाल



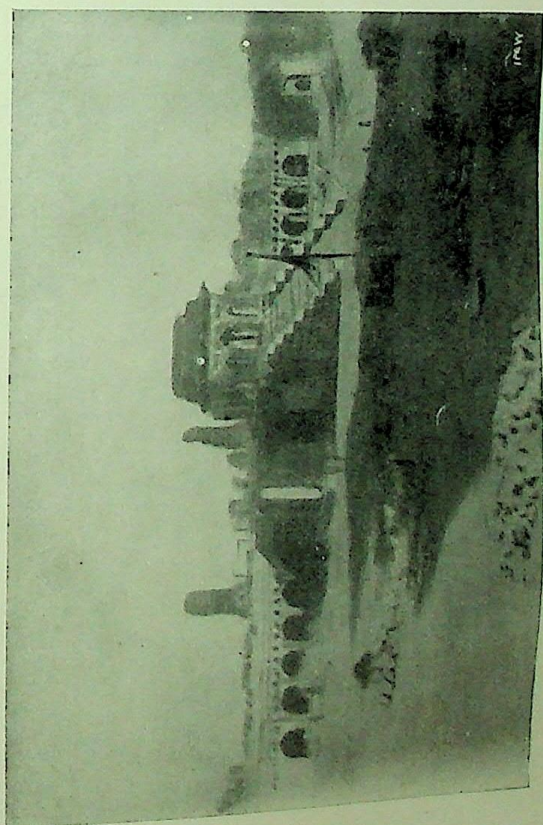
तेर थम्ब के निशान ( माँझ )



बाजबहादुर के महल का पश्चिमी दृश्य ( माँझ )



महमूद की जुमा मसजिद का भीतरी दृश्य ( माँझ )



महमूद की पाठशाला और कीर्तिस्तम्भ के टूटे फूटे निशान ( माँझ )  
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



संख्या

का जंगल  
दाहर वर  
शोण्डिय  
मनुष्य नि  
गिदड़ व  
माँहू चम  
रहा है।  
शोर मक  
हुमायूँ व  
नगर के  
विचार  
दुर्दशा हे  
उसका प

जब  
था तब में  
यह पूछा  
दूर से न  
आड़ से  
पड़ा। माँ  
1000 फी  
है। पहाड़  
खच्छ पान  
करने से  
माँहू वि  
के बीच  
करन  
नियों पर्वत  
कलता है  
गाँवों में हे  
चि चहार  
जग सतव  
महल को  
खगन के  
सो को  
स्थानों  
कराव है।



का जंगल खड़ा है। जहाँ किसी समय वैभवशाली शहर बसा था वहाँ आज केवल थोड़े से भीलों की होपड़ियाँ रह गई हैं। जिन मसजिदों में सैकड़ों मनुष्य नमाज़ पढ़ने जाते थे वहाँ आज चम-गोद बसते हैं। परन्तु इस विगड़ी दशा में भी माँडू चमक रहा है और यात्रियों को मोहित कर रहा है। पाठकों को स्मरण रहे कि माँडू के महलों और मकानों की शोभा अकबर बादशाह के पिता हुमायूँ के समय से भी पहले की है। इस मनोहर नगर के अधिकारियों को कभी स्वप्न में भी यह विचार न आया होगा कि उनके नगर की यह दुर्दशा होगी। परमात्मा की लीला अपरम्पार है। उसका पार कौन पा सकता है।

जब मैं धार से माँडू को मोटरगाड़ी से जा रहा था तब मैंने अपने साथ के एक सज्जन से कई बार यह पूछा था कि माँडू कहाँ से देख पड़ेगा। माँडू दूर से नहीं देख पड़ता। जब हम एक पहाड़ी की आड़ से निकले तब माँडू एकाएक निकटही देख पड़ा। माँडू का पर्वत बड़ा विकट है। वह लग भग १००० फीट ऊँचा है। उस पर चढ़ना बहुत कठिन है। पहाड़ का घेर ३२ मील का है। उसके ऊपर खूब पानी के सरोवर हैं। घास बहुत है और खेतों से खेती भी हो सकती है। केवल उत्तर दिशा में माँडू विन्ध्याचल पर्वत से मिला है। परन्तु पर्वत के बीच में इतने भारी भारी दर्रें हैं कि उनको पार करना असम्भव है। केवल थोड़ा सा टुकड़ा पर्वतों को मिलाता है। यहीं होकर रास्ता चलता है, जिस पर दरवाजे बने हुए हैं। इन दर-वाजों में होकर सड़क पहाड़ पर चढ़ती है। किले की चहारदीवारी साबित है। मोटरगाड़ी पर हम लोग सतकोठड़िया महल पहुँचे। इस सतकोठड़िया महल को छप्पन महल भी कहते हैं। क्योंकि संवत् १००० के साल में इसकी मरम्मत की गई थी। इसी को डाक-बंगला भी कहते हैं। माँडू के पास कालान्तर के ताँगे में जाना होता है। रास्ता बड़ा खराब है। पहाड़ में घास और वृक्ष इतने हैं कि

उसे जंगल ही कहना चाहिए। तालाबों में घास और काई भरी है और कमलों का तो ठिकानाही नहीं। यहाँ पर एक वृक्ष है जिसे खुरासानी इमली कहते हैं। इसकी पेड़ी बहुत भारी है; शायद ४० फीट के घेर की हो। ऊपर से वृक्ष हलका है।

माँडू किसने बसाया—इसका कुछ पता नहीं है। परन्तु फ़रिश्ता अपनी पुस्तक में लिखता है—“आनन्ददेव नामक बौद्ध जाति के एक राजपूत ने मालवे में माँडू का दुर्ग बनाया था। यह आनन्ददेव फ़ारस के शाह खुसरू परवेज़ के समय में हुआ था और १६ वर्ष तक राज्य करके परलोकगामी हुआ था।”

करनल टाड अपने राजस्थान के इतिहास में लिखते हैं—“पर्वारों ने अपना राज्य पहले पहल महेश्वर में स्थापित किया था। उसके बाद उन्होंने विन्ध्याचल पहाड़ पर धारानगर और माँडू बसाया। पुराने शिलालेखों से जान पड़ता है कि चित्तौड़ का अन्तिम प्रमार राजा सन् ७१४ में हुआ था।”

माँडू के विषय में बहुत कुछ लिखने के बाद जहाँगीर बादशाह अपने रोज़नामचे में लिखता है—“राजा विक्रमादित्य के समय से भी पहले इस देश में जयसिंहदेव नाम का राजा राज्य करता था। उस समय एक मनुष्य जंगल में घास काटने गया। लौट कर वह देखता है कि उसका दराता पीतल का हो गया है। घसियारे ने मानदन नाम के लुहार को यह बात बतलाई। सुनतेही उसने जान लिया कि दराता स्वर्ण का है। उसने सुना था कि इन पहाड़ों में पारस मिलता है जिससे छूते ही लोहा और ताँबा स्वर्ण हो जाता है। उसने घसियारे को साथ लिया और वहाँ गया जहाँ उसने घास काटी थी। ठूँढ़ने पर उसे पारस मिल गया। लुहार ने इस पारस को अपने राजा की भेंट किया। इसकी सहायता से राजा ने बहुत धन जमा किया। इसमें से कुछ धन उसने माँडू के दुर्ग बनाने में लगाया। १२ वर्ष में दुर्ग तैयार हुआ। जब महाराज जयसिंहदेव की उम्र ज्यादा हो गई तब उन्होंने माँडू के निकट



नर्मदा नदी के किनारे बहुत से ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया और उनको बहुत कुछ दान दिया। अन्त में अपने किसी कृपापात्र ब्राह्मण को उन्होंने पारस भी दे दिया। इस तुच्छ पत्थर के दान से उसको इतना क्रोध हुआ कि उसने पारस को नर्मदा में फेंक दिया। आजतक वह वहीं पड़ा है।”

मुसलमानों से पहले का माँझू का इतिहास नहीं मिलता। सन् १३०४ ईसवी में अलाउद्दीन खिलजी ने आईनुल मुल्क मुलतानी को मालवा विजय करने के लिए भेजा। राजा कोका ने ४० हजार राजपूत सवार और एक लाख पैदल सेना लेकर उसका सामना किया, परन्तु परास्त हुआ। इस प्रकार उज्जैन, धारानगरी, माँझू और चंदेरी ये चारों नगर मुसलमानों के हाथ में आगये।

इसी समय से मालवा देहली के अधीन हुआ और सन् १३९७ तक रहा। जब दिलावर गोरी सूबेदार बनाकर यहाँ भेजा गया तब वह स्वतंत्र हो गया। सन् १४०५ में पिता की मृत्यु पर अल्फ़ खाँ मालवा की गद्दी पर बैठा। राज्य पाने पर उसने अपना नाम सुलतान होशंग रक्खा और धार से उठा कर माँझू में अपनी राजधानी बनाई।

होशंग के गद्दी पर बैठतेही गुजरात के बादशाह मुजफ्फर खाँ ने मालवे पर चढ़ाई की। धार के निकट भारी संग्राम हुआ। होशंग की पराजय हुई और वह पकड़ा जाकर गुजरात पहुँचाया गया। मुजफ्फरशाह का भाई नसरतशाह मालवे में सूबेदार बनाया गया। परन्तु मालवियों ने उसको तुरन्त निकाल दिया और दिलावर खाँ के भतीजे मूसा खाँ को अपना सरदार बनाया। यह सुनकर होशंग ने मुजफ्फर से विनती की। इस पर उसने उसको छोड़ दिया और अपने पोते अहमद को साथ भेजा कि उसको उसकी गद्दी दिलवा दे। होशंग की विजय हुई और उसको अपना राज्य मिल गया। उसके बाद जब मुजफ्फरशाह मरा और उसका पोता अहमद गद्दी पर पैठा तब होशंग ने उससे लड़ाई आरम्भ की। होशंग की पाँच बार पराजय हुई। उसने और

भी कई युद्ध किये और मालवे का राज्य बड़ाया। अन्त में हुशंगाबाद में उसकी मृत्यु हो गई। पहले वह वहीं दफनाया गया। परन्तु पीछे उसकी लाश माँझू में लाकर गाड़ी गई। क़बर भी अच्छी दशा में है।

होशंग के बाद उसका पुत्र गाजी खाँ गद्दी पर बैठा और अपना नाम सुलतान मुहम्मद रक्खा। तीन वर्ष बाद वज़ीर के कहने से उसने सेवकों ने उसे विष दे दिया। इस प्रकार गोरी का अन्त हुआ। सुलतान मुहम्मद ने अपनी पत्नी धानी का नाम शादियाबाद (आनन्दशहर) रखा। इसके वज़ीर का नाम महमूद था।

सन् १४३५ के मई महीने की १६ तारीख को सुलतान महमूद खिलजी गद्दी पर बैठा। सुलतान मुहम्मद के पुत्र मसऊद गोरी की सहायता से गुजरात से अहमदशाह आया। परन्तु पराजय होकर लौट गया। महमूद ने होशंग की क़बर मसजिद तैयार की और दिल्ली लेने का विचार किया। परन्तु सफलता न हुई। सन् १४४५ में उसने चित्तोड़ के महाराना से संग्राम किया। उसमें पूरी विजय तो न पाई, पर महाराना को पराजय करके क़िले में बन्द कर दिया। उसी की याद में उसने सात खंड का ऊँचा कीर्तिस्तम्भ बनवाया। उसके बाद उसने पाठशाला के आगे बनवाया। उसके बाद उसने संग्राम जीते। सन् १४५१ में उसने गुजरात विजय करने का विचार किया। एक लाख सेना लेकर अहमदाबाद पर चढ़ाई की, परन्तु उस की पराजय हुई। सन् १४५३ में गुजरात और मालवे के महाराना ने मिलकर चित्तोड़ के महाराना को हमला किया। इस विजय में महाराना ने वह कीर्तिस्तम्भ तोड़ दिया जो अबतक खड़ा है और जिसकी बराबरी का कोई नहीं है। कोई ६० वर्ष की आयु में परलोक को सिधारा।

महमूद के मरने पर उसका जेठ पुष्ट गंगोत्री गद्दी पर बैठा। उसने अपने भाई फ़िदवी को



राज्य दिया और अपने पुत्र अबदुल-गिर को नासिरुद्दीन की पदवी देकर अपने राज्य का प्रबन्धकर्ता बनाया। यह करके वह अब अपनी उम्र आराम से बिताने लगा। उसने अपने महलों में कुल उहदे स्त्रियों को बाँट दिये। कहते हैं कि इसके हरम में १५००० स्त्रियाँ थीं। इसी समय माँडू पर शादियाबाद का नाम फ़बता १४ वर्ष इसी तरह बीते। जब सन् १४९२ में बहलोल लोदी मालवे पर चढ़ आया तब पुत्र ने सब वृत्तान्त कहा। पर गयासुद्दीन ने ऐसी चली कि बहलोल लोदी ने मारे भय के संधि ली। फिर आनन्द का सागर उमड़ने लगा। अन्त गयासुद्दीन का पुत्र महलों में गया और अपने बरस के पिता को स्वयं अपने हाथ से विष प्याला देकर पीने को कहा। उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि मेरे मरने का पाप मेरे पुत्र को न मिले। इसलिए उसने अपने हाथ से उस यंत्र को, उससे दो बार ज़हर निष्फल हो चुका था, खोल डाला और विष पीकर प्राण दे दिये।

नासिरुद्दीन ने अपने भाई को उसके कुटुम्ब में अपने हाथ से मारा। क्योंकि वह गद्दी का दावेदार बनना चाहता था। इसके बाद उसने अपने भाई के मित्रों को ढूँढ ढूँढ कर मारना आरम्भ किया। सब को मार कर वह ऐशो इशरत में डूब गया। एक दिन हैज़ के किनारे सोता हुआ वह एक कर अन्दर गिर पड़ा, जहाँ से उसे चार स्त्रियाँ निकाली। जागने पर जब उसे सब हाल मालूम हुआ तब उसने अपने हाथ से उन चारों स्त्रियों को मार डाला। नासिरुद्दीन ने कुछ छोटे मोटे युद्ध लिये। अन्त में नशे में आकर एक दिन वह फिर हैज़ गिर पड़ा। परन्तु इस बार किसी स्त्री ने उस पर दया की। इसलिए वह डूब कर मर गया।

सन् १५१२ में नासिरुद्दीन का तीसरा पुत्र महलवाल के भाई साहब ख़ान ने बलवा मचाया। इसलिए उसके भाई साहब ख़ान ने बलवा मचाया। इसलिए उसके भाई साहब ख़ान ने बलवा मचाया। इसलिए उसके भाई साहब ख़ान ने बलवा मचाया।

सेना जमा की। उसमें उसके साथ बहुत से राजपूत भी थे। उसका सरदार मदनराय था। संग्राम में मदनराय और राजपूतों ही की सहायता से उसे विजय प्राप्त हुई। अतएव मदनराय महमूद का कृपापात्र हो गया। अन्त में मुसलमानों को दूर करके राज के सब उहदे वह अपने आदमियों को देने लगा। महमूद ने मदनराय और उसके मित्र शीलवाहन को मरवाना चाहा। शीलवाहन धोखे में मारा गया। परन्तु मदनराय निकल गया। अन्त में और कुछ उपाय न देखकर महमूद माँडू से भाग कर गुजरात चला गया। वहाँ से मुज़फ़्फ़रशाह को साथ लेकर कर माँडू चढ़ आया। संग्राम में १९००० राजपूत काम आये। माँडू में अपना आतंक जमा कर महमूद मदनराय के पीछे गया। परन्तु उसकी सहायता को चित्तोड़ से महाराना साँगाजी आ गये। विकट युद्ध हुआ। महमूद की पराजय हुई। वह घायल हो कर पकड़ा गया। महाराना ने उसका इलाज करा कर खूब खातिर की और आराम होने पर १००० राजपूत साथ करके उसको माँडू पहुँचा दिया। इसके बाद गुजरात के बादशाह बहादुरशाह से लड़ाई हुई। उसने हल्ला करके माँडू ले लिया। महमूद पकड़ा गया। शायद उसके साथ अच्छा बरताव होता; परन्तु मारे रोष के उसने बहादुरशाह के सामने गालियाँ देना आरम्भ किया। इसका फल यह हुआ कि अपने परिवार सहित उसको चाँपानेर के दुर्ग में भेजने की आज्ञा मिली। मार्ग में भीलों ने इनपर धावा मारा। आसुफ़ ख़ान (जो इनके साथ था) समझा कि हल्ला बादशाह को छुड़ाने के लिए किया गया है। इसलिए उसने उसको पुत्रों सहित मरवा डाला। इस तरह खिलजी घराने का अन्त हुआ।

सन् १५३४ तक माँडू गुजरात के अधीन रहा।

सन् १५३४ में हुमायूँ बादशाह ने गुजरात पर चढ़ाई की। मन्दसोर के समीप संग्राम हुआ। उसमें बहादुरशाह हार कर माँडू में घुसा। हुमायूँ ने माँडू का क़िला भी ले लिया। इसलिए बहादुरशाह



भाग कर गुजरात चला गया। दूसरे वर्ष जब हुमायूँ आगरे लौट गया तब खिलजी घराने के समय के एक अफसर मालू खाँ ने मालवा विजय किया और कादिरशाह के नाम से बादशाह बन गया। जब शेरशाह ने मालवे पर चढ़ाई की तब कादिरशाह सारंगपुर तक उसकी पेशवाई के लिए गया। वहाँ उसका सत्कार तो अच्छा हुआ, पर उसका राज्य शुजात खाँ को दे दिया गया। कादिरशाह ने मारे भय के शेरशाह को छोड़ दिया और गुजरात भाग गया। फिर उसने माँडू पर चढ़ाई की। परन्तु पराजय हुई। शेरशाह के पुत्र सलीमशाह के गद्दी पर बैठने पर शुजात को माँडू छोड़ना पड़ा। परन्तु फिर क्षमा मिली और राज लौटा दिया गया। सन् १५५४ में उसकी मृत्यु हुई और उसका जेष्ठ पुत्र बाज़बहादुर के नाम से गद्दी पर बैठा। यह वही बाज़बहादुर है जिसकी प्यारी रानी रूपमती थी।

बाज़बहादुर राज का काम न सँभालता था। यह देख कर अकबर ने मालवा विजय करने के लिए आदम खाँ को भेजा। सारंगपुर के निकट युद्ध हुआ। उसमें बाज़बहादुर परास्त होकर आसीरगढ़ में मियाँ मुबारक खाँ की शरण गया। फिर दूसरा संग्राम नर्मदा के किनारे हुआ, जिसमें बाज़बहादुर विजयी हुआ। उसने फिर माँडू ले लिया। परन्तु अकबर ने एक बड़ी सेना के साथ अबदुला खाँ उज्जवेग को भेजा। इस समय बाज़बहादुर पहले ही भाग गया। सन् १५७० में उसने अकबर की शरण ली। अकबर के दरबार में उसे दो हजारी मनसब मिला।

बाज़बहादुर के साथ ही माँडू की शोभा जाती रही। अकबर की मृत्यु के बारह बरस पीछे जहाँगीर बादशाह माँडू आया। देखिए वह अपने रोज़-नामचे में क्या लिखता है—“माँडू के महल टूट गये हैं। अपने आने से पहले मैंने इनकी मरम्मत कराई, जिसमें तीन लाख रुपये खर्च हुए। ऐसे मकान मैंने और किसी नगर में नहीं देखे।” एक समय चालीस दिन तक बरसात हुई। अन्त में सूर्य देव ने दर्शन दिये। जहाँगीर बादशाह उसका वर्णन करता है—

“घास और फूलों की शोभा वर्णन करने की कोशिश लेखनी में शक्ति नहीं। उनसे तो हर पहाड़ी और मैदान ढका पड़ा है। आज कल गरमी है। परन्तु मनुष्य रज़ाई ओढ़े बिना रात को बाहर नहीं निकल सकता। दिन को पंखे की आवश्यकता नहीं। जो कुछ देखा है वह माँडू की अन्तिम शोभा का थोड़ा सा अंश है।”

उस समय से माँडू बिगड़ता ही गया। सन् १६९६ में मरहटों ने इसको लिया; परन्तु वे दक्षिण को चले गये। फिर सन् १७३४ में तिरहूँ समीप संग्राम हुआ, जिसमें मरहटों की विजय और माँडू धार के अधीन हुआ। तब से यहाँ का किला उजाड़ पड़ा है।

फ़ारिश्ता के इतिहास के अंगरेज़ी अनुवादक करनल ब्रिग्स, सन् १८२७ में, लिखते हैं—“हिन्दुस्तान में इतने शेर शायद और स्थान में न होंगे जितने माँडू में हैं। राजधानी उजड़ गई है और अब जंगल खड़ा है। पेशा आराम और वैभव का होने के बदले अब वह जंगली जानवरों का घर है। वहाँ कोई यूरोपियन शिकार करने के सिवा किसी काम से नहीं जाता।”

समय अब बदल गया है। तीस बरस से कोई शेर नहीं देखा गया। मालवे की राजधानी के बदले माँडू अब धार की रियासत की एक छोटी सी तहसील है।

माँडू के मुख्य मुख्य स्थान ये हैं—जहाज़-महल, हिंडोला महल, बाज़बहादुर का महल, रूपमती महल, होशंग गोरी की क़बर और मसजिद, मलिक मुग़हीस की मसजिद, पाठशाला, नीलकंठ, दिलीप शाह की मसजिद, खाँ की मसजिद, राज-मन्दिर।

जहाज़-महल माँडू में सब से अच्छा भवन है। इसकी लम्बाई कोई २०० गज़ होगी। यह एक खण्ड का महल है। परन्तु छत बहुत ऊँची है। इसमें काम बहुत अच्छा है। इसके पूर्व और पश्चिम की ओर सरोवर हैं। इसका सदर दरवाज़ा



भाग ८ ]

सुन्दर बना हुआ है। आज भी वह ऐसा सुन्दर मालूम होता है जैसा कि चार सौ वर्ष पहले रहा होगा।

जहाज-महल के उत्तर ५० गज पर हिंडोला-महल है। इस चाल का महल भारतवर्ष में शायद ही कहीं होगा। दीवारें बहुत मोटी और ऊँची हैं। काम उत्तम है। इस भवन का नक़्शा मिसर के मकानों से मिलता हुआ है। अनुमान है, इसमें दरबार किया जाता होगा।

बाज़बहादुर का महल माँडू के दक्षिणी प्रान्त में और बहुत मनोहर स्थान में बना है। इसके निकट रेवाकुड है। इस महल में लाल पत्थर का काम और कहीं कहीं मकराना भी है। यहीं माँडू का अन्तिम राजा बाज़बहादुर आनन्दमग्न रहता था।

इस महल से पाव मील दूर, पहाड़ी की चोटी पर एक लम्बा स्थान है। उसके दोनों ओर छत-छत बनी हुई हैं। इसको रूपमती का महल कहते हैं। यह महल कुछ बहुत अच्छा नहीं है। इसके दक्षिण नर्मदा नदी और नीमाड़ का मैदान है। उत्तर ओर सारा माँडू देख पड़ता है। बाज़बहादुर की रूपमती यहाँ नित्य नर्मदा के दर्शन करने आती थी।

हौशंग गोरी की क़बर बहुत भारी, ऊँची और सबसे अच्छी इमारत है। बादशाह के साथ और भी तीन चार मनुष्य दफ़नाये गये हैं। उनके हाते के अन्दर आने का मार्ग बहुत उत्तम है। इसके पश्चिम ओर एक बहुत सुन्दर शाला है। किसी मन्दिर से तोड़ कर बनाई गई है।

हौशंग की क़बर के निकट ही उसकी बनाई हुई मसजिद है। मसजिद बहुत बड़ी है। इसमें बहुत ही कम है। सब काम पत्थर का है। मसजिद के संगीन बनी है कि बहुत कम बिगड़ी है। इतिहास में लिखा है कि यह सात खण्ड ऊँचा है। इसके निकट ही महमूद की पाठशाला थी। महमूद की क़बर के निकट ही महमूद की पाठशाला थी। महमूद की क़बर के निकट ही महमूद की पाठशाला थी। महमूद की क़बर के निकट ही महमूद की पाठशाला थी।

नीलकंठ महादेव का स्थान एक पहाड़ी की कन्दरा में है। परन्तु मकान का नमूना मुसलमानी ढंग का है। यहाँ पर अकबर बादशाह एक समय ठहरा था। यहाँ पर एक झरना है जिसका जल महादेव पर टपकता रहता है।

दिलावर ख़ाँ की मसजिद माँडू में सबसे पुरानी है। यह सन् १४०५ में बनाई गई थी। इसकी छत बहुत नीची है। इसमें जो पत्थर लगा है वह हिन्दुओं के मन्दिरों से निकाला हुआ है।

मलिक मुग़हीस की मसजिद आज कल टूटी फूटी दशा में है। परन्तु तो भी उसकी उत्तमता छिप नहीं सकती। इसके द्वार पर बहुत सुन्दर मकराने का काम है। अन्दर खम्भों पर भी बड़ा मनोहर काम है। यह भी हिन्दुओं के मन्दिर तोड़ कर बनाई गई है। पुरानी पुस्तकों से जान पड़ता है कि मुसलमानों से पहले माँडू में जैनियों के बहुत मन्दिर थे।

राजमन्दिर वर्तमान महाराज के पितामह ने बनवाया था। कहते हैं कि उनको स्वप्न में एक मूर्ति देख पड़ी। उसने कहा कि मुझे गड़े बहुत दिन हुए; अब मैं बाहर आऊँगी। महाराज ने उस स्थान को खुदवाया। उसमें रामचन्द्र की मूर्ति निकली। उसको हाथी पर रख कर धार ले जाने लगे तो हाथी न चला। उसी रात को मूर्ति ने महाराज से स्वप्न में कहा कि मैं माँडू में ही रहूँगी। प्रातःकाल महाराज ने वहीं मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी। मन्दिर अच्छा है।

धार के महाराज माँडू में नहीं रहते। यदि साल में दो तीन महीने भी वे यहाँ रहें तो स्थान और का और हो जाय। थोड़े से खर्च में जहाज-महल की वह शोभा हो जाय कि जैसी और स्थानों में दूँढ़े न मिले। जब हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड करज़न माँडू में पधारे थे तब उन्होंने पचास हजार रुपये मरम्मत के लिए दिया था। उससे बहुत से महल और मसजिदें नष्ट होने से बच गईं। यदि महाराजा साहब थोड़े से रुपये हर साल लगाया करें



तो भी यह स्थान बहुत शोभायमान हो सकता है। लेखक को आशा है कि महाराज साहब ऐसा अवश्य करेंगे। अन्त में मैं महाराज साहब को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मेरी माँझ-यात्रा का बन्दोबस्त बहुत अच्छा किया और हर तरह की सहायता दी। उनकी सहायता बिना मेरा वहाँ जाना और तीन दिन तक रहना बहुत कठिन होता।

अमरसिंह।

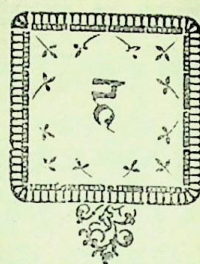
### पुस्तक।

आओ, आओ, प्यारी पुस्तक, मम कर-पङ्कज में खेलो;  
खेलो तीनों द्वार दया कर भीतर मेरा मन ले लो।  
तुम मयङ्क हो; मैं चकोर हूँ; सुमति-सुधारस पीता हूँ;  
इससे ही सम-विषम-समय में शान्ति-भाव रख जीता हूँ।  
घर में, वन में, कारागृह में सदा सदा होकर आओ;  
महामहिम मनुजों के अतिशय रोचक चरित सुना जाओ।  
सुन कर चरित महापुरुषों के मैं उदार बन जाऊँगा;  
सम्भव होगा तो इस विध में तेरा वंश बढ़ाऊँगा।  
चाहे तुम अतिजीर्ण साज सज क्यों न निकट मेरे आओ;  
टूटे ही फूटे शब्दों में अपना मतलब कह जाओ।  
पै न तुम्हारा साथ छोड़ मैं राजा होना चाहूँगा;  
आजीवन प्रण कर कहता हूँ, प्रणय पवित्र निबाहूँगा।  
तुम को मंत्री पद पर पाकर, हाँ, यदि राजा हो जाऊँ;  
तब सङ्गति-सुख छोड़ स्वर्ग-सुख-हेतु भी न मैं ललचाऊँ।  
जब तक जीता हूँ, न दगों से तुमको दूर हटाऊँगा;  
तभी साथ छूटेगा जब मैं अन्त समय मर जाऊँगा।  
मैं अपने मन के मन्दिर में मूर्ति तुम्हारी धरता हूँ;  
हे पुस्तक-वर, तुमसे बस मैं यही प्रार्थना करता हूँ।  
निशि दिन सोते जगते मेरे पास बनी रहना सब काल,  
तब वियोग से कभी न होना पड़े मुझे विह्वल बेहाल ॥

रामनरेश त्रिपाठी।

### मिस्टर ग्लैडस्टन की कुछ विशेष बातें।

( १ )



मारे बहुत से पाठक यह बात जानेंगे कि ईंग्लैंड के प्रधान मन्त्री महात्मा ग्लैडस्टन को कई बार लार्ड की उपाधि प्रदान की थी; परन्तु आपने लार्ड की उपाधि से विभूषित होना स्वीकार नहीं किया। आप केवल मिस्टर ही कहे जाने से सन्तुष्ट थे।

( २ )

कदाचित् पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि ग्लैडस्टन प्रति दिन एक वृक्ष काटते थे उनके व्यायाम का ढंग था।

( ३ )

ग्लैडस्टन सदा रेल के तीसरे ही दरजे में यात्रा किया करते थे। इस पर उनके किसी व्यक्ति ने पूछा कि, आप तीसरे दरजे में क्यों यात्रा करते हैं? मिस्टर ग्लैडस्टन ने उत्तर दिया—“क्योंकि चौथा दरजा होता ही नहीं।”

( ४ )

ग्लैडस्टन तो तीसरे दरजे में यात्रा करते थे उनके पुत्र सदा पहले ही दरजे में यात्रा करते थे उनके किसी मित्र ने उनसे एक बार प्रश्न किया कि कहां महाशय, यह क्या बात है कि आप का पुत्र पहले दरजे में यात्रा करे, और आप तीसरे दरजे में यात्रा करें? आपने उत्तर में कहा—“क्या आप नहीं जानते मेरा पुत्र ईंग्लैंड के सचिव—प्रधान—का पुत्र है परन्तु मैं ईंग्लैंड के केवल एक क्षुद्र किसान का पुत्र हूँ।”

( ५ )

एक विचित्र रोग होता है, जिसका नाम “क्लेप्टोमेनिया”—(Kleptomania) है, जिसका अर्थ है चोरी करने का रोग। मिस्टर ग्लैडस्टन भी यह रोग था। आप जब कभी किसी



संख्या ८ ]

हैं जाते थे तब वहाँ जो कोई वस्तु—तश्तरी, चूल्हा इत्यादि—रक्खी हुई देख कर आपको भली प्रतीत होती थी चुपके से उठा कर उसे आप अपनी जेब में रख लेते थे । घर पहुँचने पर आपकी पत्नी का पहला कार्य यह होता था कि आप उनसे उन जेबों के नाम पूछ लेतीं जिन जिन के यहाँ वे गये हों । तत्पश्चात् उनकी जेबों की तलाशी लेकर, जो जेबें उनको मिलती थीं उन्हें वे, सधन्यवाद उनके स्वामियों के पास लौटा देती थीं ।

( ६ )

एक बार कोई बहुत बड़ा आदमी आप से मिलने आया । उस समय आप अपने एक पोते से खेल रहे थे । आप हाथ पैर के बल ज़मीन पर थे । पोता उन्हें गोड़ा बनाये उनके ऊपर सवार था । वह आदमी यह खेल देख कर चकित रह गया । उसकी प्रशंसा देख कर ग्लैडस्टन हँस कर बोले—“विरक्त हो जाइए । ज़रा ठहरिए” । कोई पाँच मिनट तक आप यह खेल खेलते रहे । अनन्तर आप उठ खड़े हुए और उस आगत व्यक्ति का आदर-सत्कार किया । उससे आपने सिर्फ़ इतना ही कहा कि मुझे में क्या विश्वास है, आप के भी बाल-बच्चे हैं ।

जगद्विहारी सेठ ।

तारीख से दिन निकालने की रीति ।

सरस्वती के मई मास के अङ्क में सदानन्द-लालजी विद्यार्थी ने तारीख से दिन निकालने की रीति प्रकाशित की है । रीति उत्तम है । इसके पूर्व भी एक महाशय ने तारीख से दिन निकालने की रीति सरस्वती में प्रकाशित की थी । परन्तु इन रीतियों में कोष्टक और चक्र आदि दोषों के कारण दिन निकालने में कठिनता प्रतीत होती है ।

एक विद्वान् ने बिना चक्र आदि की सहायता के तारीख से दिन निकालने की एक सुगम रीति

निकाली है । उसे हम सरस्वती के पाठकों के विनोदार्थ प्रकट करते हैं ।

गद्य की अपेक्षा पद्य में कही गई बात अधिक याद रहती है । इसी से यह रीति पद्य में लिखना उचित समझा गया ।

वर्तमान, भूत, या भविष्यत्, किसी भी सदी में, किसी महीने की किसी तारीख का दिन जानने की सरल रीति इस प्रकार है:—

देहा ।

उत्तरार्धसन चौथ फल पुनि तिथि मासिक अंक ।  
चहुन जेारि सत भागिये शेष वार निःशंक ॥

( मासाङ्क )

जनवरि दूबर एक है गस्त तीन मे दाय ।  
मार्च, नवम्बर फरवरी अङ्क चारि पुनि होय ॥  
प्रेल, जुलाई शून्य दुइ जून पाँच गनि लेहु ।  
सेप्ट, दिसम्बर अङ्क छः पूछ्यो दिन कहि देहु ॥

( दिवसाङ्क )

शून्य शनी, रवि एक है, सोम दाय, कुज तीन ।  
चारि बुद्ध, पंचम गुरु, षष्ठम शुक्रहिँ चीन ॥

( अधिक-मास-नियम )

अधिक मास में फ़रवरी मास अङ्क कहु तीन ।  
शून्य जनवरि जानिये जोतिष मत परवीन ॥  
( भूत या भविष्यत् सदी के लिए नियम )

सदी बीसवीं नियम यह गत में दो अधिकाय ।  
सदी भविष्यत योग तें अङ्क दाय घटि जाय ॥  
उदाहरण—यह जानना है कि १९११ ईसवी के अप्रेल महीने की ग्यारहवीं तारीख को कौन दिन था ?  
लीजिए । सन् का उत्तरार्ध ११ + चौथ \* फल २ + तिथि ( तारीख ) ११ + मासाङ्क ० = इन चारों का योग हुआ २४ । इसे सात से भाग दिया तो शेषांक रहा ३ । यही दिन हुआ—अर्थात् मंगलवार । “शून्य शनी रवि

\* उत्तरार्ध के जिन अङ्कों से चतुर्थीश पूर्णांक निकले वही चौथफल लेना चाहिए । जैसे सन् १९११ का उत्तरार्ध हुआ ११—इसका चतुर्थीश पूर्णांक नहीं निकलता । इसलिए = का चतुर्थीश २ लिया जायगा । शेष ३ अङ्क निरर्थक रहे । वे छोड़ दिये जायेंगे ।



एक है सोम दोय कुज तीन” इससे तीन का अङ्क मङ्गलवारही का सूचक है। इसका खुलासा यह है कि  $११ + २ + ११ + ० = २४ \div ७$  शेषाङ्क ३ अर्थात् मङ्गलवार। इससे मालूम हुआ कि सन् १९११ के अप्रैल की ११ तारीख को मङ्गलवार था।

नोट—(१) जिस वर्ष में अधिक मास हो, अर्थात् फरवरी २९ दिन का हो, उसमें जनवरी का मासाङ्क शून्य मानना होगा और फरवरी का ३ मानना होगा।

(२) पूर्वोक्त नियम बीसवीं सदी के लिए हैं। यदि पिछली किसी सदी के किसी वर्ष में दिन पूछा जाय तो प्रति सदी २ अङ्क योग में जोड़ देना चाहिए और, यदि भविष्यत् सदी में पूछा जाय, तो २ अङ्क योग में से घटा देना चाहिए। बाकी रीति सब वही रहेगी।

चम्पालाल सादानी ।

## भूपति कवि का यथार्थ समय ।



हिन्दी-साहित्य का इतिहास, जो कुछ समय

हुआ एक विद्वान की लेखनी से निकला हुआ कई पत्रों में छपा है, उसमें भूपति का समय १२८७ ई० लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं।

कविता का नमूना भी जो दिया गया है वह भी ठीक नहीं। लेखक महाशय ने १२८७ ई० में भूपति के होने का न तो कोई प्रमाण दिया है और न कविता पर ही कुछ विचार किया है कि वह किस समय की भाषा में है। ईसवी सन् तो भारतवर्ष में सौ सवा सौ वर्ष से ही लिखा जाने लगा है। भूपति के समय में वह कहाँ से आया? आज कल यह बड़ी खराब चाल चल निकली है कि हिन्दू विद्वान भी विक्रम-संवत् को छोड़ कर पुरानी घटनाओं के सम्बन्ध में ईसवी सन् लिख देते हैं। इस पर जो कोई महाशय यह कहें

कि ईसवी सन् विक्रम-संवत् के बना लिये जाते तो हम कहेंगे कि सन् बनाने की क्यों तकलीफ उठाय जाय? यथार्थ संवत् ही क्यों नहीं लिख दिया जाय? हिन्दुओं की घटनाओं में हिन्दू-संवत् को क्यों बना देना कौन युक्ति की बात है? महाराना प्रताप सिंह के उत्तराधिकारी महाराना अमरसिंह की प्रतीतियों का वर्णन करते हुए एक कवि ने कहा कि जैसे तू ने अपने देश और रीतियों की प्रशंसा मुसलमानी मत की रसमें का बरताव न करके है वैसे ही तिथियों को भी तारीखों की छत लगाने दी है।

एक राना अमरसिंह क्या, मुसलमानी समय किसी भी हिन्दू-ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ में मुसलमानी तारीख, महीना और सन् नहीं लिखा। मुसलमानों ने भी मालूम कि आज कल के लेखक उन कर्त्ताओं का समय ईसवी सनों में किस आधार पर लिख मारते हैं?

भूपति का समय यदि १२८७ ईसवी है तो लेखक इस करने से यह सन् विक्रम-संवत् १३४३ और आता है। पर भूपति की कविता इतनी पुरानी है कि विक्रम-संवत् की १४ वीं शताब्दि में उक्त विद्यमान होना माना जाय।

यह सम्भव है कि भूपति नाम के कई कवि हों, परन्तु यहाँ तो उन भूपतिजी से प्रयोजन जिन्होंने भागवत का उलथा किया है और जिन की कविता का नमूना हिन्दी-साहित्य के इतिहास में प्रकार दिया गया है:—

ताको तुम कीजो जो जानो ।  
इतना वचन हमारो मानो ॥  
जबहि अवीची वह नुक हो ।  
कंस बहीना मारन रहे ॥  
दोनों के पग बेरी डारों ।  
चहूँ दीस चौकी बैठारों ॥

( देखो श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार २८ अप्रैल १९११ )

मेरे पास जो हिन्दी-भाषा की भागवत हैं भूपति-कृत भागवत भी फारसी अक्षरों में लिखी



सावन सुदी ११ बुधवार, संवत् १८५५ की लिखी हुई है। उसके अन्त में ग्रन्थ समाप्त होने का समय इस प्रकार दिया हुआ है:—

संवत् सतरे से हते चार अधिक चालीस ।

मृगशिर की एकादसी शुद्ध वार रजनीस ॥

अब सोचने की बात है कि कहाँ सन् १२८७ ई० और कहाँ संवत् १७४४ जिसके अनुसार ईसवी सन् १६८७-८७ होते हैं। यदि लेखक के दोष से १६८७ की जगह १२८७ लिखा जाना माना जाय तो भूपति का कवि चन्द के पीछे और सोलहवीं शताब्दी के पहले विद्यमान मानना सर्वथा असम्भव है। हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने वाले महाशयजी ने, निधान पड़ता है, भूपति-कृत भागवत देखे बिना ही उन प्रसङ्गों से उनका समय निर्धारित किया है। डेढ़ चौपाई नमूने की जो उन्होंने लिखी है वह भी अशुद्ध और सुनी सुनाई जान पड़ती है। उसका शुद्ध है तो ऐसा इस तरह है:—

सुनत कंस मन संसै आये ।  
मारन कारन खड़ग उठाये ॥  
जब देवकी मारन धाये ।  
तब बसुदेव आन समझाये ॥  
राजन तिरिया बध नहिं कीजै ।  
बहिन मार के पाप न लीजै ॥  
इहि के गर्भ होय सुत जोई ।  
तुमको आन देऊँगो सोई ॥  
ताको तुम कीजो जो जानो ।  
एतो बचन हमारो मानो ॥  
जब बहनेऊ या बिध कह्यो ।  
कंस बहिन मारन तै रह्यो ॥  
करा कोट तब राखे दोऊ ।  
तिन ढिग जान न पावे कोऊ ॥  
दोहुन के पग बेरी डारों ।  
चहुँ दिस बहु चौकी बैठारों ॥  
ऐसैं दिन बीते कछु भई देवकी आस ।  
प्रथम पुत्र जबही भयो लाये राजा पास ॥

इस कवि का कुछ परिचय भी इसी ग्रन्थ में दिया हुआ है। उसे भी सुन लीजिए:—

भूपति जन हरि लीला गाई ।

परम पुनीत सदा सुखदाई ॥

ताहि उनायो कायथ जानो ।

लेखराज को सुत पहिचानो ॥

तिनको पिता हरी मन लाये ।

बिठ्ठलदास नाम जिन पाये ॥

कन्हरदास जो उनके भइया ।

तिनके मन में बसो कन्हैया ॥

जिन गृह करे इटाये माहीं ।

रहे आप राजन के पाहीं ॥

कन्हरदास भये बड़ भागी ।

जिनकी रट कन्हर सौं लागी ॥

तिनके वंश जन्म धर आये ।

भक्ति अंश तिनको अब पाये ॥

गुन निधान के प्रेम सँ बानी भई प्रकास ।

भव बिधान बानी दई जानि आपनो दास ॥

सारांश यह कि भूपति कवि उनाये जाति के कायस्थ थे। इटावे में रहते थे। उन्होंने संवत् १७४४ के द्वितीय सावन सुदी ११ बुधवार का दशम-स्कन्ध भागवत का हिन्दी-अनुवाद दोहा, चौपाई में किया था।

देवीप्रसाद ।

## विविध विषय ।

### १—बे धुवें का कोयला ।

इच्छालय देश के वैज्ञानिक अद्भुत आविष्कार करके संसार को चकित कर रहे हैं। उन्हें नित नई कल्पनायें सुझती हैं। योरप में ईंधन का काम

प्रायः कोयले ही से निकलता है। यहाँ की तरह बबूल के चैले नहीं जलाये जाते। कोयले में लकड़ी से कम धुवाँ निकलता है। पर उतना थोड़ा भी



धुवाँ योरप वालों को बरदाश्त नहीं। वे चाहते हैं कि कोयले से बिलकुल ही धुवाँ न निकले। पार्कर नाम के एक विद्वान् ने इसकी युक्ति निकाली है। उसने कोयले को शुद्ध करके धुवें को दूर कर दिया है। उसकी तरकीब से कोयला शुद्ध करके जलाने से ज़रा भी धुवाँ नहीं निकलता। और एक बड़ा भारी फ़ायदा यह होता है कि मामूली कोयले से यह कोयला एक तिहाई कम खर्च होता है। आशा है, अब सब लोग यही कोयला काम में लावेंगे। क्योंकि धुवें से आँखों को तकलीफ़ होने के सिवा बहुत से रोग हो जाने का डर भी रहता है।

## २—अद्भुत प्रतिभाशाली मनुष्य ।

एक ही मनुष्य का चित्रकार, लेखक, कवि, गायक और कारीगर होना बहुत कठिन है। यह हो सकता है कि वह इनमें से कई या सब कामों में थोड़ा बहुत दखल रखता हो; पर पूर्णरूप से निपुण एक ही काम में हो सकता है। इन सब कामों में एक सा नैपुण्य और यश प्राप्त करनेवाला संसार भर में शायद एक ही मनुष्य है। उसका नाम है लुई एम० यलशीमस ( Louis M. Elshemus ) आप प्रसिद्ध चित्रकार हैं। आप ने अब तक तीन हजार चित्र बनाये हैं। इतने चित्रों का बनाना कोई साधारण काम नहीं है। इसके सिवा ये लेखक भी बड़े ज़बरदस्त हैं। संसार भर की मुख्य मुख्य भाषाओं का जानना और बात है; पर उन सब के लेखक होने का दावा रखना बहुत मुश्किल है। आप अँगरेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन, इटेलियन, स्पैनिश, अरबी, संस्कृत और चीनी आदि कितनी ही भाषाओं के लेखक हैं। इन भाषाओं में अब तक आपने कोई चालीस उपन्यास और नाटक लिखे हैं ! इस बात को थोड़ा न समझिए। यही नहीं, किन्तु आप कवि भी हैं। आपने अब तक पूरे सौ पद्य, गीत, भजन आदि लिखे हैं। गाने बजाने में भी आप कमाल रखते हैं। सैल सपाटे का भी आपको बेहद शौक है। कोई सात दफ़े आप दुनिया के चारों ओर घूम आये हैं। सम्बोसे बनाने

में आपने अच्छी ख्याति लाभ की है। आपके बनाने सम्बोसे योरप और अमेरिका वाले बड़े बातें लेते हैं।

## ३—जापानी भाषा सीखने का उपाय ।

पहले की अपेक्षा आज कल अधिक भारतीय युवक शिक्षा प्राप्त करने के लिए जापान जाने लगे हैं। सैर के लिए भी बहुधा लोग जापान जाते हैं। परन्तु जापानी भाषा न जानने के कारण बहुत से कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जापानी भाषा बहुत क्लिष्ट नहीं है। थोड़े ही परिश्रम से वह मतलब निकालने भर के लिए सीखी जा सकती है। जिनको इस भाषा के सीखने के साधन प्राप्त नहीं हैं उन्हें चाहिए कि जापान के किसी प्रस्थान करने के पहले नीचे लिखी हुई किताब पढ़ कर जापानी भाषा का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर लें:—

- ( १ ) Japanese Conversation by Matsu.
- ( २ ) Colloquial Japanese by Chamberlain.
- ( ३ ) English-Japanese Dictionary by Sato.
- ( ४ ) Kelly and Walsh's Handbook of Japanese language

ये सब पुस्तकें टोकियो के एक पुस्तक-वाले के यहाँ मिल सकती हैं। उसका पता—

Maruya Nionbashi,  
Booksellers,  
Tokyo, Japan

## ४—अमेरिका का राजकीय छापाखाना

अमेरिका के संयुक्त संस्थानों के राजकीय छापाखाने की इमारत बहुत ही आलीशान है। वह मंज़िल की है। इस छापाखाने में कोई छः सौ मंज़िलें हैं। वे सब बिजली से चलती हैं। रोशनी भी बिजली की होती है। हथियार तैज़ करने, टाइप करने, हाज़िरी और छुट्टी के वक्त घंटियाँ बजाने और उठाने आदि के काम भी बिजली ही की सहायता



से होते हैं। तो भी इस छापेखाने में कोई चार हजार आदमी नियमित रूप से काम करते हैं। इसका सालाना खर्च कोई तीस लाख रुपये है। इस छापेखाने में बहुत बड़े बड़े काम भी तुरंत तुरंत हो जाते हैं। कुछ समय हुआ, चार सौ पचहत्तर पृष्ठों की फ्रेंच भाषा की एक पुस्तक यहाँ केवल अड़तालीस घंटे में छपा गई। छपी ही नहीं, उसकी हजारों कापियों की छिद्र भी बँध गई। इतना शीघ्र एक विदेशी भाषा की इतनी बड़ी किताब को कम्पोज करना, प्रफ़ देखना, अशुद्धियाँ सुधारना, छापना और जिल्दबंदी भी करना बड़े आश्चर्य की बात है।

### ५—शब्दविहीन टाइप-राइटर ।

अब हमारे देश में भी टाइप राइटरों का बहुत प्रचार हो गया है। शहरों की कौन कहे, देहात में भी टाइप राइटर पहुँच गये हैं। अतएव अब यह समझने की आवश्यकता नहीं रही कि टाइपराइटर क्या वस्तु है। १८६६ ईसवी में इसकी ईजाद हुई थी। तब से अब तक इसकी बराबर उन्नति होती चली आई। किन्तु अब तक जितने टाइप राइटर बने हैं उनके चलते समय जो खरखराहट होती है उस दोष को दूर करने के लिए इसके आविष्कर्ता बहुत दिनों से व्यस्त थे। इतने दिनों बाद अब उन्हें इसमें सफलता हुई है। पहले के टाइप राइटरों के कल-पुरजों के हेर फेर से अपने उद्देश की सिद्धि असंभव समझ कर उन्होंने एक नई कल ईजाद की है। पहले के टाइप-राइटरों में टाइपों की डंडियाँ इस तरह लगाई गई थीं कि दबाने से वे अपने स्थान से उठ कर हथौड़े की तरह कागज़ पर आघात करती थीं। इस नये टाइप राइटर में यह बात नहीं। इसके टाइपों की डंडियाँ आहिस्ते से कागज़ पर जा टिकती हैं। इस नये टाइप-राइटर में और भी कई बातें सुनीते की हैं। इसकी घंटी भी—जो लाइन के प्रारंभ होने की सूचना देती है—बहुत धीमी बजती है। इस कल से उतना ही शब्द होता है जितना प्रारंभ से लिखने के समय हुआ करता है। किन्तु

इस पर भी पहले ही की तरह तेज़ी से काम होता है। धन्य है पाश्चात्य वैज्ञानिकों का बुद्धिबल और अध्यवसाय।

### ६—मनुष्यमांस-भक्षिणी नारी ।

प्रशान्त-महासागर में हैटी नाम का एक टापू है। वहाँ हबशियों की बस्ती अधिक है। वही वहाँ के राजा हैं। उन्होंने प्रजातन्त्र राज्य वहाँ बना रखा है। यद्यपि अधिकांश हबशी किरिस्तान हैं, तथापि अब तक उनमें से कितने ही लोग देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इनके एक देवता का नाम ऊदू है। उसे शेष-नाग का अवतार कहना चाहिए। पहले इस देवता को नरबलि दी जाती थी। अब बन्द है। तथापि कोई कोई भक्त, भक्ति के आवेश में, अब भी मनुष्य की बलि चढ़ा देते हैं। ऐसी ही एक स्त्री का पता अभी हाल में लगा है। उसका नाम है एस्टर्स लाइबरिस। उम्र उसकी २४ वर्ष की है। वह अपने समाज की धार्मिक अगुआ है। उसने पाँच लड़कों की बलि ऊदू को दे दी और उन्हें खा भी गई। उसके घर पर, दूँढ़ने से, नरमांस का मुरद्दा एक पीपे में रखा हुआ मिला। एक लड़के की लाश का कुछ अंश भी मिला। अब वह पकड़ी गई है। उस पर मनुष्य मार कर खा जाने का इलज़ाम लगाया गया है।

### ७—सरस्वती के लेखों की नक़ल ।

अनेक बार निवेदन-आवेदन और अनुनय-विनय करने पर भी हिन्दी के कुछ सम्मानास्पद लेखक सरस्वती के लेखों को चुपचाप नक़ल करने से बाज़ नहीं आते। जिन लेखों को सरस्वती में निकले मुद्दते हुई वे नवजात पत्रों और पत्रिकाओं में कभी कभी तद्वत् और कभी कभी अल्प-स्वरूप रूपान्तर पाकर निकला करते हैं। इससे सरस्वती की विशेष हानि नहीं। विशेष हानि उन्हीं की है जो ऐसा काम करते हैं। क्योंकि इससे उन्हीं की नैतिक भ्रष्टता सूचित होती है। गत मई की सरस्वती में श्रीपण्डित श्रीकण्ठ पाठक जी, एम० ए० का एक लेख



अलबरूनी पर प्रकाशित हुआ है । उसे बिहार के एक गङ्गा-जमुनी पत्र ने, कोई दो सप्ताह बाद, ज्यों का त्यों नक़ल कर लिया और नीचे लेखक महाशय का नाम भी छाप दिया । जैसे यह लेख आपही के लिए लिखा गया हो अथवा इसकी दो दो कापियाँ की गई हों—एक आप को भेजी गई हो दूसरी सरस्वती को । और, जब श्रीमान् से हमने प्रार्थना की कि यदि भूल से सरस्वती का नाम देना रह गया हो तो अब दे दिया जाय तब आप चुप्पी साध गये । अथवा यों कहना चाहिए कि आपने साधुत्व और सदाचार का एक और सबक सिख-लाया । यह मामला अभी हाल का है । इससे हमने उदाहरणार्थ इसी का उल्लेख किया । ऐसी ऐसी घटनायें बहुधा हुआ करती हैं । जिन हिन्दी-लेखकों का यह हाल है उन्हीं के लिए सम्मेलन किया जाता है ।

#### ८—पुरातत्त्वानुसन्धान-सम्बन्धी सभा ।

पूर्वी देशों की प्राचीन विद्या, कला और इति-हास आदि विषयों के अध्ययन और अनुसन्धान के सम्बन्ध में गवर्नमेंट की आज्ञा से शिमले में अनेक विद्वानों का एक सम्मेलन जुलाई में हुआ । इस सम्मेलन में डाकूर थीवो, डाकूर वीनिस, डाकूर डेनिसन रास, डाकूर स्पूनर आदि विदेशी और डाकूर भाण्डारकर, डाकूर गङ्गानाथ भा, राय बहादुर वेंकैया, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, प्रोफेसर इस्पहानी और शम्सुलउल्मा मौलवी शिबली नेमानी आदि देशी विद्वान् शरीक थे । अनेक विषयों पर विचार हुआ । उनमें से मुख्य मुख्य विषय ये थे । (१) भारतीय विद्वानों को गवर्नमेंट के पुरात-त्त्वानुसन्धान महकमे में काम करने योग्य बनाने के लिए अभीष्ट शिक्षा का प्रबन्ध (२) प्राच्य-देशीय विद्याओं और कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों को उत्साह-दान (३) पुरानी बातों की खोज के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है उनका सुलभीकरण (४) प्राच्यदेशीय भाषाओं में

परीक्षा देनेवालों के लिए नियम-निर्माण आदि । सम्मेलन ने बड़े ही महत्त्व-पूर्ण विषयों पर विचार किया । इसकी रिपोर्ट प्रकाशित होने पर मालूम होगा कि इन विषयों के सम्बन्ध में क्या निश्चय हुआ ।

#### ९—संयुक्त-प्रदेश की प्रदर्शिनी-सम्बन्धी पुस्तक के लिए पुरस्कार ।

खैरी गढ़ की रानी शरकुंवर ने गत दिसम्बर में एक विज्ञापन इस विषय का दिया था कि जो कोई संयुक्त-प्रान्त की प्रदर्शिनी पर उर्दू या हिन्दी में सब से अच्छी पुस्तक लिखेगा उसे वे ५०० रुपये पारितोषिक देंगी । इस प्रदर्शिनी से इन प्रान्तों के औद्योगिक उन्नति में कहाँ तक सहायता मिल सकती है, यह इस पुस्तक का प्रधान उद्देश्य होना चाहिए । बहुत कम लोगों ने इस विषय पर पुस्तक रचना की । जो दो चार पुस्तकें लिखी गईं उनमें से हिन्दी में लिखी गई श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी की पुस्तक सबसे अच्छी समझी गई । श्रीमतीजी लखनऊ के पण्डित मार्कण्डेयप्रसाद भट्टाचार्य की धर्म-पुस्तक हैं । आपही को पूर्वोक्त इनाम मिला । सो शायद हिन्दी और उर्दू के लेखकों के होते, पहले तो लिखना ही का साहस ही बहुत कम महाशयों ने किया । और जिन्होंने किया भी उनकी पुस्तक पुरस्कार-योग्य समझी गई । समझी गई एक बङ्गाली पण्डित की । संयुक्त-प्रान्त के पण्डितों और मुशियों के लिए यह बड़ी बहादुरी की बात हुई ! खैर श्रीमती हेमन्तकुमारी ने हिन्दी वालों की इज्जत तो रख ली ।

#### १०—पेरिस में भारतवर्षीय साहित्य की उन्नति का प्रयत्न ।

फ्रांस की राजधानी पेरिस में वहाँ के प्रवासी हिन्दुस्तानियों ने एक सभा की स्थापना की है । भारतवर्ष के इतिहास, विज्ञान, कला-कौशल, धर्म आदि पर पुस्तक-रचना करने वालों को उपहार दिया करेगी । गीत, कविता, नाटक,



संख्या ८ ]

आदि। इस सभा के लिए लिखी गई पुस्तकों में वह विशेषता होनी चाहिए कि उनके पाठ से पाठकों के हृदय में स्वदेशाभिमान और पूर्वजों के प्रति आदर का भाव उत्पन्न होकर दृढ़ हो सके। पहला पुरस्कार दो हजार रुपये का रक्खा गया है। प्राचीन समय से लेकर अब तक का जो सब से अच्छा भारतीय इतिहास—उर्दू या हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, तामिल अथवा अँगरेजी में—लिखेगा उसे पुरस्कार मिलेगा। पुस्तक अठपेजी आकार के ३०० पृष्ठों से कम न होनी चाहिए। १० मई १९१२ तक पुस्तक सभा के पास पहुँच जानी चाहिए। प्राचीनतम पुस्तक के सिवा यदि और भी पुस्तकें अच्छी समझी जायँगी तो उनके लेखकों को भी, प्रति लेखक देश होना ही सौ रुपये के हिसाब से, पारितोषिक दिया पर पुस्तक बाँटी। जिन्हें इस विषय में कुछ पूछना हो वे इस गईं उनके पर पत्र-व्यवहार करें:—

Thakur Dass, c/o Banquo Parisienne,  
Rue Chauchat, Paris.

## पुस्तक-परीक्षा ।

१—भारतवर्ष का इतिहास । काँगड़ी, हरद्वार, के गुरुकुल में श्रीयुत रामदेवजी प्रोफ़ेसर हैं । आप ही इस पुस्तक की रचना की है । इसका विषय इसके नाम ही से स्पष्ट है । इसमें वेदों और ऋषियों के विषय का भी निरूपण है । इलाहाबाद वाली कांग्रेस के समय इसके जो विज्ञापन बाँटे गये थे उनमें इसकी बड़ी प्रशंसा की गई थी । इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक का विषय बड़े महत्त्व का है । गत मई के पुस्तक माडर्नरिव्यू में इसकी समालोचना निकली जिसके लेखक पटना-कालेज के प्रोफ़ेसर श्रीयुत रामदेवजी सरकार, एम० ए० हैं । सरकार महाशय का इतिहास के अद्वितीय ज्ञाता हैं । आपकी गिनती उन विद्वानों में है । प्रेमचन्द-रायचन्द-छात्रवृत्ति

भी आपने प्राप्त की है । आपकी समालोचना का आशय हम नीचे देते हैं:—

इस तरह की पुस्तक को 'इतिहास' कहना भूल है । वैदिक और पौराणिक समय के जन-समुदाय के जीवन और रीति-रवाज का यह केवल 'वर्णन' है । न इसमें सामयिक परिवर्तनों का उल्लेख है, न इसमें देश के साहित्य और मनुष्यों के विश्वास आदि का वर्णन है, और न इसमें भिन्न भिन्न राज्यों और राजवंशों के उत्थान और पतन ही का वर्णन है । इसमें सिर्फ़ इस बात का पूरा पूरा वर्णन है कि हमारे पूर्वज किस तरह अपना जीवन-निर्वाह करते थे और किस तरह के विचारों में वे निमग्न रहते थे । इस पुस्तक में महत्त्व की जो बात है वह केवल इतनी ही है कि अपने कथन की पुष्टि के लिए इसमें संस्कृत के सैकड़ों पद्य प्रमाणस्वरूप उद्धृत किये गये हैं ; उन पद्यों के अङ्क और अध्याय के हवाले बड़ी मिहनत से दिये गये हैं ; और प्राचीन भारतवासियों के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बात का बड़ी बारीकी से व्यौरे-वार हाल दिया गया है । लिखने का ढङ्ग बहुत अच्छा नहीं । तथापि पढ़ने में कष्ट नहीं होता और लेखक का मतलब समझ में आ जाता है ।

लेखक ने भारत की भूतकाल-सम्बन्धिनी बातों का मतलब आर्यसमाज की सर्व-विश्रुत समझ के अनुसार साफ़ ही साफ़ समझाया है । उस समझ—उस सिद्धान्त—का सार एक ही वाक्य में इस प्रकार कहा जा सकता है—“जितनी बातें संसार में अच्छी हो सकती हैं सबकी सब वैदिक काल के भारत में विद्यमान थीं ; वे एक मात्र भारत ही में थीं, और कहीं नहीं ।” यह पुस्तक सर्वथा विवादास्पद बातों से भरी हुई है । पुस्तक-प्रणेतों में न तो सदसद्विचारपूर्ण समालोचन-शक्ति ही है और न उसमें मनोबुद्धिविषयक वह आवश्यक सामग्री ही है जिसके बल से मनुष्य—“अपने ही सपूतों के द्वारा लिखे गये भारतवर्ष के इतिहास” के रूप में एक सर्व-मान्य ग्रन्थ तैयार कर सकता है । गुरुकुल से ऐसे ही अच्छे ग्रन्थ निकलने की हमें उत्सुकतापूर्ण आशा थी । (पर यह आशा पूरी नहीं हुई) अध्यापक रामदेवजी ने अपनी विशाल-काय तोपों की बाढ़ ल्यथब्रिज और रगोज़िन जैसे साहित्य के मच्छड़ों पर दागी है । इस बात को वे बिलकुल ही भूल गये हैं कि कोई भी विद्वान् इन लोगों के प्रलापों की परवा नहीं



करता। योरप के प्राच्य-विद्या-विशारदों के सम्बन्ध में अध्यापक महाशय ने अपने मनःकालुष्य का प्रमाण आदि ही में दे दिया है। इस कारण प्राचीन भारत की घटनाओं का पत्रपात-रहित विचार करने के योग्य आप नहीं समझे जा सकते। इससे एक और बात यह भी हुई है कि आपके लेखों का महत्त्व कम हो गया है। आप रामायण को इतिहास समझते हैं ! इससे इस बात का फैसला सहज ही में किया जा सकता है कि आप पुरातत्त्वानुसंधान के सिद्धान्त से कितनी दूर जा पड़े हैं। फिर, एक बात और भी है। जान पड़ता है, आपको यह नहीं मालूम कि ल्यथब्रिज के जिस सिद्धान्त की आपने भूमिका के दूसरे पृष्ठ पर उचित हँसी उड़ाई है उसका खण्डन बी० ए० स्मिथ साहब के द्वारा पहले ही हो चुका है। यह साहब योरप के ही इतिहासकार हैं। तिस पर भी अध्यापक महोदय ने भारत के इतिहास-प्रणेता योरप-निवासी विद्वानों के सारे समुदाय को फटकार बतलाई है।

इस पुस्तक के पाठ से हमें दुःख पहुँचा है। इस लिए कि जिस तरह की चित्तवृत्ति से प्रणोदित होकर भारतवर्ष का—सच पूछिए तो भारत ही का नहीं, किन्तु सभी देशों का—इतिहास लिखा जाना चाहिए वह वृत्ति पुस्तक-प्रणेता के चित्त से बहुत दूर चली गई देख पड़ती है। इतिहास लिखने के लिए सत्य की खोज की पिपासा ही सर्वश्रेष्ठ गुण है। इतिहासकार को उसी की सबसे ज़ियादह ज़रूरत है। उसे अपनी चित्तवृत्ति को तन्मय कर देना चाहिए। तदर्थ उसे श्रम, हानि और अपमान की कुछ परवा न करनी चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु, आवश्यकता होने पर ऐसी बातें कहने से भी उसे न सकुचना चाहिए जिनके कहने से हमारे चिरन्तन विश्वासों और हमारे अत्यन्त सुखद जातीय विचारों तक को धक्का पहुँचे। क्योंकि—सत्यमेव जयते नानृतम्।

गत जून के हिन्दुस्तान-रिव्यू में उसके सम्पादक ने भी इस पुस्तक की प्रतिकूल आलोचना की है।

✽

२—ज्ञानोदयप्रकाश। परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामि-रामानन्द-विरचित। हुशङ्गाबाद-निवासी श्रीयुत राम-चन्द्र केशव शुक्ल से प्राप्य। २४ पृष्ठ की संस्कृत पुस्तक है। आकार और आयतन छोटा है। पर विषय इसका बड़ा है। गंभीर है। पण्डितों के पढ़ने

लायक है। पुस्तक वेदान्त विषय की है। पद्य ललित और सरल हैं। इसके निर्माता स्वामीजी हुशङ्गाबाद ही की भूमि को पावन कर रहे हैं। अच्छे विद्वान् और ज्ञानी मालूम होते हैं।

✽

३—खेतीवारी। पण्डित आनन्दीप्रसाद मिश्र इसे लिखा है। आप टिकारी राज्य में वैद्य हैं। पुस्तक बड़े टाइप में मोटे कागज़ पर छपी है। खेती फूल-बाग़ से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी बातें हैं। ऐसी पुस्तकों की बड़ी ज़रूरत है। मिश्रजी यह पुस्तक किसानों के बड़े काम की है। जिन बाग़ का शौक़ है उनके लिए भी यह लाभदायक पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ३१० है और मूल्य दो रुपया जो कुछ अधिक मालूम होता है।

✽

४—तेज़ी मन्दी प्रकाश। रिवाड़ी-निवासी पण्डित प्रह्लाददत्त शर्मा ज्योतिषी ने इसे लिखा है। दाम आने है। इसमें संवत् १८६८ के व्रत-आदि-निर्णय सिवा वर्ष तथा मास के फलादि का भी उल्लेख वस्तुओं की तेज़ी मन्दी की भी भविष्यद्वाणी है।

✽

५—ब्रह्मचर्य। पण्डित गिरिजादत्त-नैथाणी लिखित। ८१ पृष्ठ की पुस्तक। मूल्य ५ आने। इस विषय इसके नाम ही से सूचित है। ब्रह्मचर्य रक्षा के लाभ और उसकी अरक्षा की हानियाँ अच्छी तरह दिखलाई गई हैं।

✽

६—रामोपदेशमाला। पण्डित गिरिजादत्त-नैथाणी द्वारा सङ्कलित। पृष्ठ-संख्या ५८। मूल्य ३ आने। स्वामी रामतीर्थ के एक व्याख्यान का नाम है। मुल्कों के तजरिबे। उसी का यह हिन्दी अनुवाद पढ़ने लायक है। यह और ब्रह्मचर्य नामक पुस्तक पण्डित मथुराप्रसाद नैथाणी, बारूनी खंदक, नऊ से मिल सकती है।

✽

७—सरवेइंग और लेवलिंग। लश्कर-गवालियर विक्टोरिया कालेज के इंजिनियरिंग विभाग के



संख्या ८ ]

मास्टर बाबू निहालचन्द्र गौड़ इसके लेखक हैं। पुस्तक हिन्दी में है। ऐसी पुस्तकों की बड़ी जरूरत है। पुस्तक में कई एक आवश्यक बातें समझाई गई हैं। पुस्तक में कई एक आवश्यक बातें और नकशे भी हैं। नकशों में नाम आदि जो अंगरेजी में हैं वे भी यदि हिन्दी में होते तो बहुत सुविधा होता। पुस्तक के भीतर जो A, B, C, आदि लिखे हैं उनके स्थान में भी क ख ग आदि का व्यवहार यदि दूसरी आवृत्ति में कर दिया जाय तो अच्छा हो। पुस्तक का मूल्य बारह आने है।

✽

—साहित्य-शिक्षा। लेखक बाबू मुरलीधर, बी० ए०। इसके तीन विभाग हैं—गद्य, पद्य और सरल व्याकरण। गद्य-भाग में अनेक शिक्षापूर्ण कहानियाँ और जीवनचरित आदि हैं। पद्य-भाग में नई और पुरानी चाल की अच्छी अच्छी कविताएँ हैं और व्याकरण विभाग में हिन्दी-व्याकरण के साधारण नियम हैं। इसके लेखक एक तजरिवेकार अध्यापक हैं। बहुत दिनों तक आप हेड मास्टर रह चुके हैं। आप की यह पुस्तक पाठशालाओं में पढ़ाने लायक है। इसे आप शालोकवासी राजा कमलानन्दसिंह को अर्पण करने वाले थे; पर राजा साहब के मरने के बाद यह निकली। इसमें राजा साहब का एक चित्र भी है। २११ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य आठ आने है। यह लेखक ही के पास पुराना गंज, मुंगेर के पते पर मिलती है।

✽

—सन्तति-रत्न। यह एक मराठी पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं कटनीमुड़वारा के बाबू जीवराखनलाल। आप पहले मदर्सों के डिप्टी थे, अब पेन्शन पाते हैं। पुस्तक में ११२ पृष्ठ हैं। इसकी खी सुन्दरी की पारस्परिक बात चीत के द्वारा शिशु-शिक्षा का महत्त्व बतलाया गया है। पुस्तक का विषय और विचार बहुत अच्छे हैं। स्त्रियों का इसे अवश्य ही पढ़ना चाहिए।

१०—जिज्ञासु। श्रीयुत भक्त ईश्वरदासजी लाहौर में नामी पुरुष हैं। आप वहाँ के चीफ़कोर्ट के पेडवोकेट हैं। विकालत करके जितना नाम और धन आपने कमाया है शायद ही लाहौर में और किसी ने कमाया हो। पर नाम और दाम से आपकी आत्मा को तुष्टि नहीं हुई। इन बातों को तुच्छ समझ कर आपने विकालत छोड़ दी है। सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के अभि-प्राय से अब आप जिज्ञासु बने हैं। सादा खाना, सादे कपड़े पहनना और ऊँचे विचारों से आत्मा को उन्नत करना ही आपका अब एकमात्र व्रत है। आपने “जिज्ञासु” नाम का एक पाक्षिक पत्र अंगरेजी में निकालना आरंभ किया है। उसमें हर महीने ३२ पृष्ठ रहते हैं। मूल्य केवल ३ रुपये है। इतने ही थोड़े मूल्य पर हर महीने ६४ पृष्ठ-पूर्ण अच्छे अच्छे लेख देने का आपने नियम किया है। आपका यह कार्य सर्वथा प्रशंसनीय है। आपके विचार बड़े ही उच्च और उदार हैं, यह बात आपके पत्र से अच्छी तरह सिद्ध होती है। “जिज्ञासु” के पहले अङ्क के सब लेख उत्तम और मननयोग्य हैं। अंगरेजी जानने वालों को चाहिए कि इस पत्र को लेकर उससे लाभ उठावें।

✽

११—पुस्तक-चतुष्टय। इन चारों पुस्तकों का नाम और मूल्य आदि इस प्रकार है :—

नाम	पृष्ठ संख्या	मूल्य
१—स्त्री-चरित्र	२४४	१२ आने
२—गृहधर्म	१५४	६ ”
३—भरतमिलाप	८४	४ ”
४—महर्षि नारद का जीवनचरित्र	१५	१ आना

चारों पुस्तकें ब्राह्मधर्म-प्रचार आफिस, अनार-कली, लाहौर से मिलती हैं। पहली पुस्तक बाबू प्रतापचन्द्र मजूमदार की और तीसरी बाबू श्रीनाथ-चन्द्र की बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवा-दक हैं ब्राह्मधर्म-प्रचारक श्रीप्रकाशदेवजी। दूसरी पुस्तक भी बँगला का अनुवाद है। मूल पुस्तक पण्डित शिवनाथ शास्त्री की लिखी हुई है। इसका हिन्दी अनुवाद श्रीप्रकाशदेव की लड़की श्रीमती



सुमतिबाला ने किया है। चौथी, मालूम नहीं, किसने लिखी या अनुवादित की है। प्रकाशक उसके वही प्रकाशदेवजी हैं। स्त्री-चरित्र स्त्रियों के लिए विशेष लाभदायक है। गृह-धर्म स्त्री-पुरुष सभी के पढ़ने योग्य है। भरतमिलाप में भ्रातृप्रेम और स्वार्थत्याग का अच्छा चित्र खींचा गया है। नारदजी के चरित्र में भगवद्भक्ति की महिमा है; पुस्तकान्त में नारद के कुछ भक्ति-सूत्र भी अनुवाद-सहित दिये गये हैं। इन पुस्तकों में ब्राह्मधर्म के तत्त्व भी यत्र तत्र निहित हैं। पर उनसे पुस्तकों की उपयोगिता कम नहीं हुई।

## मनोरञ्जक श्लोक ।

( १ )

क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः,  
क्वचिद्वीणावादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् ।  
क्वचिद्रम्या रामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु-  
र्न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः ॥

✽

कोविद-जनों की कहीं सोहती है श्रेष्ठ सभा ;  
मद्यपों का यूथ कहीं कलह मचाता है ।  
देती है सुनाई कहीं वीणा की सुवाणी व्यक्त ;  
क्रन्दन का नाद कहीं खेद उपजाता है ।  
प्यारी सुकुमारी चारु नारी कहीं सोह रहों ;  
जराजीर्ण गात कहीं देखने में आता है ।  
सुधा से भरा है या विष से भरा यह विश्व ;  
रञ्जक भी भेद कहीं जाना नहीं जाता है ॥

( २ )

अस्मिन्नम्भोदवृन्दध्वनिजनितरूपि प्रेक्षमाणेऽन्तरिक्षं  
मा काक ! व्याकुलोभूस्तरुशिखरशवक्रव्यलेशानशान ।  
धत्ते मत्तेभकुम्भव्यतिकरकरजग्रामवज्राग्रजाग्रद्-  
ग्रास-व्यासक्तमुक्ताधवलितकवलो न स्पृहामत्र सिंहः ॥

✽

सुन घन-घोष कर रोष इस काल यह  
देख रहा घूर घूर सिंह नभो देश है ;  
मत डर काक ! कर भक्षण द्रमस्थ स्वस्थ  
चांच में लिये जो तू शवामिष का लेश है ।

वज्र-तुल्य प्रखर नखाग्रों से विदीर्ण किया  
मुक्ता युक्त धवल विशेष जो अरोष है,  
प्रेमी उसी मत्त-करि-कुम्भ के कवल का जो  
रखता न इच्छा इस मांस की मृगेश है ॥  
मैथिलीशरण गुप्त ।

( ३ )

मनः कुत्रोद्योगः सपदि वद मे गम्यपदवीं  
नरे वा नाय्यां वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम् ।  
यतस्ते क्लीबत्वं प्रतिपदमहो हास्यपदवीं  
जनस्तोमे भागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम् ॥

अर्थात्—मन महाराज, कहाँ जाने का विचार है—किधर चलने के लिए उद्योग हो रहा है ? किती स्त्री की तरफ जाने की तैयारी है या पुरुष की ? याद रखिए, इन दोनों जगहों में आपका जाना उचित नहीं। क्योंकि आप हैं क्लीब ( नपुंसक )। अतएव आपका न स्त्री ही के पास जाने का काम, न पुरुष ही के। दोनों जगह जाने से आपकी हँसी है। हास्य बतलावे। आप मनुष्यों की भीड़ में जाने की आदत छोड़ दीजिए। आपको ब्रह्ममार्ग की तरफ जाना चाहिए। कारण यह कि ब्रह्म भी आपही की तरफ ही है। अतएव आपको उसी की तलाश करनी चाहिए। उसी की सङ्गति आपके लिए हितकारक है।  
दक्षिणीय—स्वामी ( असनी )

## चित्र-परिचय ।

( १ )

शेषशायी विष्णु और लक्ष्मी का जो चित्र इस संख्या में प्रकाशित है उसमें तरङ्गमालाकुल समुद्र का दृश्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। यह चित्र उसी से है जो प्रयाग की प्रदर्शनी में रक्खे गये थे।

( २ )

नृत्य नाम का चित्र भी प्रयाग की प्रदर्शनी में प्रदर्शित किये गये चित्रों में से है। चित्र-विद्या ज्ञाताओं ने इस चित्र की बड़ी प्रशंसा की थी।



# सरस्वती



शेषशायी विष्णु और लक्ष्मी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



102. 229



# सरस्वती



नृत्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।





भाग

रा



समाचा

गवर्नर

और रा

एक सु

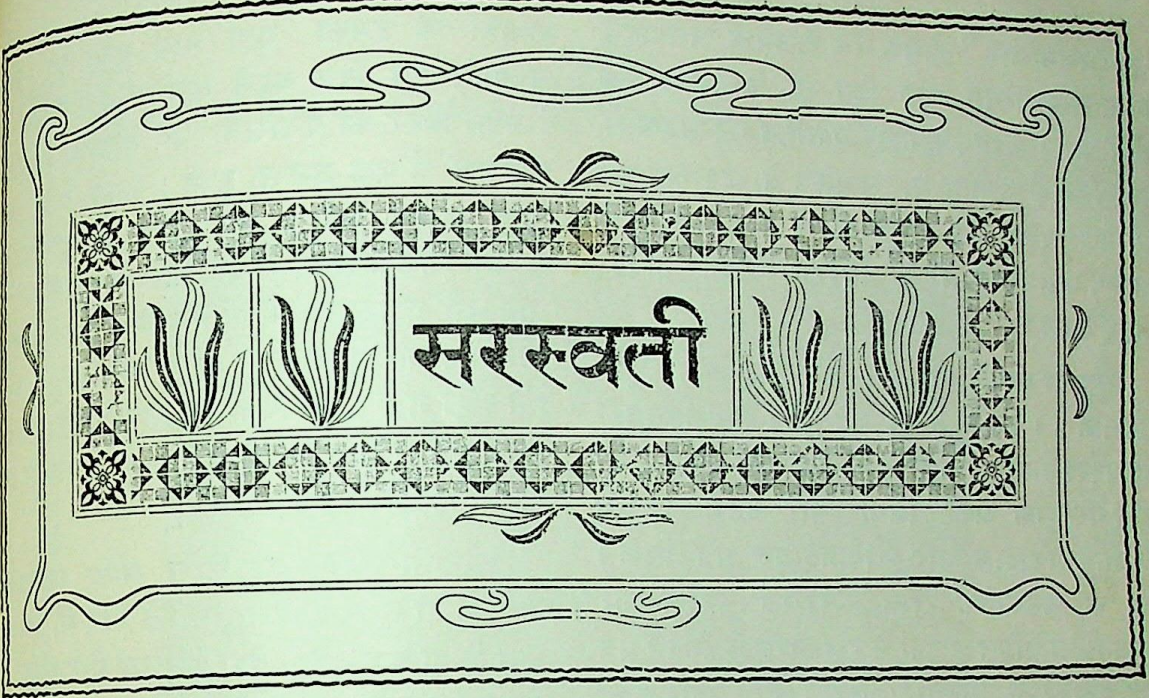
उसका

“

सेन व

गवर्नर



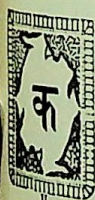


# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ] १ सितम्बर, १९११—भाद्रपद शुक्ल ८, १९६८ । [ संख्या ६

## राय नरेन्द्रनाथ सेन बहादुर ।



लकते के प्रसिद्ध दैनिक समाचारपत्र—  
इंडियन मिरर—के सम्पादक राय  
नरेन्द्रनाथ सेन बहादुर का, गत  
जुलाई में, परलोकवास हो गया ।  
मृत्यु के समय इनकी उम्र कोई ६८  
वर्ष की रही होगी । इनकी मृत्यु का  
समाचार प्रकाशित होने पर बंगाल के लफ्टिनेंट  
गवर्नर ने, भरी कौंसिल में, शोक भी प्रकाशित किया  
और राय बहादुर के गुण भी गाये । इस विषय की  
एक सूचना गवर्नमेंट-गैज़ट में प्रकाशित की गई ।  
उसका आशय नीचे दिया जाता है :—

“इंडियन मिरर के सम्पादक राय नरेन्द्रनाथ  
सेन बहादुर की मृत्युवार्ता सुन कर लफ्टिनेंट  
गवर्नर को अत्यन्त दुःख हुआ । परलोकगत राय

बहादुर कलकत्ते की म्युनिसिपालिटी के बहुत दिनों  
तक कमिश्नर थे । १८९७ से १८९९ ईसवी तक,  
म्युनिसिपालिटी की तरफ से वे बंगाल की लेजिस्लेटिव  
कौंसिल के मेम्बर भी थे । १९०८ में उन्हें राय बहा-  
दुर का खिताब मिला । यह इस उपलक्ष्य में दिया  
गया कि भारतवर्ष के युवकों को वैज्ञानिक और  
औद्योगिक शिक्षा देने के लिए जो सभा कलकत्ते में  
है उसके सभापति के आसन पर आसीन होकर  
इन्होंने बड़े ही महत्त्व-पूर्ण काम किये । इसके सिवा  
इस पदवीदान का एक और भी कारण था । वह  
यह कि अँगरेज़ी के जिस दैनिक पत्र के ये सम्पादक  
थे उसका सम्पादन इन्होंने बड़ी ही योग्यता से  
किया । भाषासरणि, विचार-परम्परा और राजकीय  
बतों की समालोचना आदि किसी भी विषय में  
इन्होंने सम्पादकीय उच्च आदर्श को गिरने नहीं  
दिया । इनका यह काम गवर्नमेंट की प्रसन्नता का  
कारण हुआ । गवर्नमेंट की मंजूरी से इन्होंने



“सुलभसमाचार” नामक एक राजभक्त साप्ताहिक बंगला-समाचारपत्र कुछ दिन से, निकालना शुरू किया था । राय बहादुर प्रतिष्ठित सम्पादक थे, सर्वसाधारण के नेता थे, सच्चरित्र थे, उदारता-पूर्ण धार्मिक तत्त्वों के अनुयायी थे । इन गुणों के कारण, क्या स्वदेशी क्या विदेशी, सभी आपका आदर करते थे ” ।

यह तो बंगाल के छोटे लाट का किया हुआ गुणगान है । इसके सिवा बड़े लाट और कितनेहीं उच्चपदस्थ अँगरेज शासकों ने भी राय बहादुर की मृत्यु पर दुःख प्रकट किया और उनके बड़े पुत्र को शोक-प्रकाशक और धैर्यप्रदायक पत्र लिखे । देश के अनेकानेक राजा, महाराजा, रईस और अन्यान्य प्रतिष्ठित पुरुषों ने इस तरह के कितने पत्र भेजे, इसकी तो गिनतीही नहीं । राय बहादुर की सर्वप्रियता का इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण हो सकता है ? वे राजप्रिय भी थे और प्रजाप्रिय भी । यह सच है कि कुछ समय से उनके राजनैतिक विचार ज़रा और तरह के हो गये थे; तथापि उनकी उच्च और उदार आकांक्षाओं और स्वदेशहित-चिन्तनाओं में कोई त्रुटि नहीं आने पाई । एक समाचार-पत्र के भारतवर्षीय सम्पादक का इतना मान हाते देख सम्पादकीय व्यवसाय की उच्चता का बहुत अच्छी तरह अनुमान किया जा सकता है ।

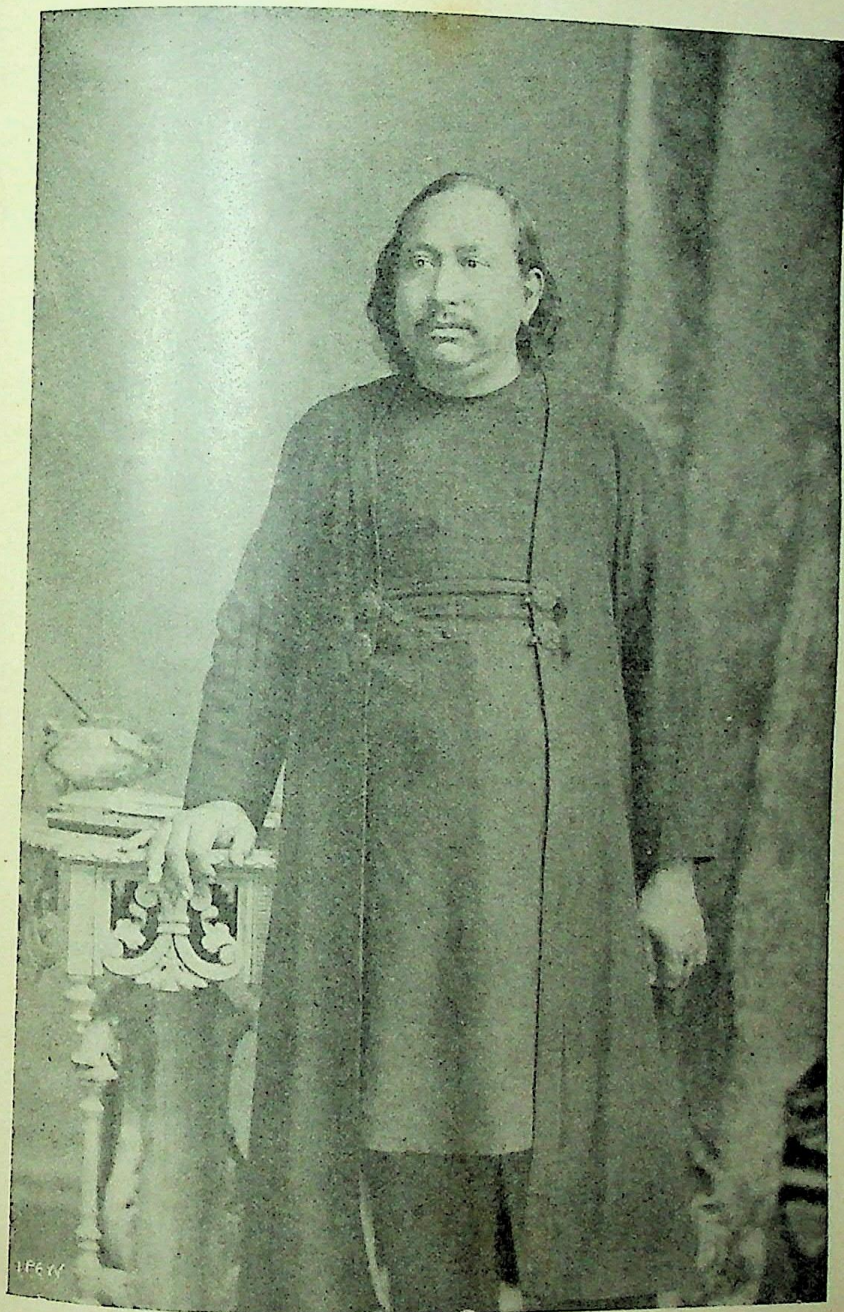
इंडियन मिरर को निकलते ५१ वर्ष हो गये । १८६० के दिसम्बर में उसका पहला अङ्क निकला था । उस समय वह पाक्षिक था और अँगरेजी तथा बंगला दोनों भाषाओं में निकलता था । बंगाल में इस तरह का यही पहला पत्र था । जिस समय यह पत्र निकला नरेन्द्रनाथ सेन की उम्र बहुत कम थी । परन्तु आरम्भ ही से ये इसके लेखक हुए । कुछ दिनों बाद ये “मिरर” के सहायक सम्पादक हुए । अन्त को, कोई २० वर्ष बाद, अर्थात् १८७९ ईसवी में, ये उसके प्रधान सम्पादक हुए । तबसे मृत्यु-काल तक ये इस प्रतिष्ठित पद पर अधिष्ठित रहे और आपने सम्पादकीय कर्तव्य को इस योग्यता से

निवाहा कि इनका बड़ा नाम हुआ और इनकी सुख्याति दिन दिन बढ़ने लगी । गत दिसम्बर में इंडियन मिरर की पचासवीं वर्ष गाँठ के उपलक्ष्य में कलकत्ते में एक जलसा हुआ । उसमें अनेक गणमान्य सज्जन शरीक हुए । राय बहादुर को एक अभिनन्दन-पत्र दिया गया और उनके कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा हुई । इंडियन मिरर पहले पाक्षिक था, फिर साप्ताहिक हुआ और अन्त को, १८७८ के दैनिक हो गया । अँगरेजी का सबसे पहला स्वदेशी दैनिक पत्र इंडियन मिरर ही है । नरेन्द्रनाथही इस स्वत्वाधिकारी थे ।

नरेन्द्रनाथ सेन का सारा समय सम्पादकीय कार्य में ही न खर्च होता था । वे और भी कितनेही काम किया करते थे । देश के लाभ और समाज की उन्नति का उन्हें सदा खयाल रहता था । इस विषय में वे सदा प्रयत्नशील रहते थे । कलकत्ते की जो सभा प्रति वर्ष कितनेही युवकों को वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा-प्राप्ति के लिए अमेरिका, जापान और योरोप को भेजती है उसके प्रतिष्ठापकों और उन्नायकों में यही सर्व-प्रधान थे । आत्मगौरव का इन्हें बड़ा खयाल था । ये बड़े ही निडर, स्पष्टवादी और स्वतन्त्रप्रकृति थे । एक बार प्रजा के कुछ प्रतिनिधियों के साथ ये लार्ड डफरिन से मिलने गये । लार्ड साहब को इनका कोई लेख पसन्द न आया था । उसके विषय में उन्होंने नरेन्द्र बाबू से कैफियत माँगी । यह बात नरेन्द्र बाबू को अच्छी न लगी । उन्होंने इससे अपना अपमान समझा । अतएव उन्होंने लार्ड साहब से साफ़ साफ़ कह दिया कि मैं गवर्नमेंट हाउस में आपसे अपमानित होने नहीं आया । अपने पत्र में मैंने जो कुछ लिखा है उसका जवाबदेह मैं हूँ । उसकी कैफियत आपको देना मेरा फ़र्ज नहीं । इस पर, सुनते हैं, लार्ड साहब ने उनसे क्षमा माँगी ।

इंडियन एसोसिएशन, महाबोधी सोसायटी, थियासफ़िकल सोसायटी, सोशियल रिफ़ॉर्म एसोसिएशन, साहित्य-सभा, नेशनल मेडिकल सोसा-





राय नरेन्द्रनाथ सेन बहादुर ।



संख्या

की आति  
न समापा  
होंने व  
स्तु-निव  
दुआ था  
कलकत्ते  
आसन भी  
का कोई व  
न होते हैं।  
१९०५ के  
और ले  
प्रचार के

कुछ स  
गये थे।  
ने का वाता  
मंडल में  
न निकल  
गये। गव  
अस्तित्व भार  
ति के  
रलियाँमें  
लोचनायें  
भी विच  
योगों और  
कठोर स

राय नरे  
नहीं प्र  
हस्त थे  
विद्वा  
मे इनका  
से इन्हें  
लोभाव  
सममे  
इन्होंने  
में दी



की आदि कितनीहीं सभाओं और सोसायटियों के सभापति थे। इन संस्थाओं के उन्नति-साधन में उन्होंने बहुत श्रम और यत्न किया। १९०७ में मादक-वस्तु-निवारिणी सभा का जो अधिवेशन सूरत में हुआ था उसके यही सभापति थे। १८९६ वाली कलकत्ते की सोशल कानफरन्स के सभापति का आसन भी उन्होंने ग्रहण किया था। देश के कल्याण का कोई काम ऐसा न होता था जिसमें ये सम्मिलित न होते हों। ये स्वदेशी-वस्तु-प्रचार के पक्षपाती थे। १९०५ के अगस्त में जब पहले पहल स्वदेशी वस्तुओं की ओर लोगों का ध्यान गया तब इन्होंने उनके प्रचार के पक्ष में प्रस्ताव किया।

कुछ समय से गवर्नमेंट के ये विशेष कृपाभाजन माने जाते थे। इसी से साढ़े बासठ हजार रुपये साल के का वादा करके बंगाल की गवर्नमेंट ने इनसे बंगाल में "सुलभसमाचार" नामक एक साप्ताहिक निकलवाया। उसका सम्पादन अब इनके पुत्र कर रहे हैं। गवर्नमेंट की इस नीति को विचारशील भारतवासियों ने अच्छा नहीं समझा। इस नीति के विरुद्ध संख्यातीत लेख लिखे गये। एप्रिल १९०६ तक में प्रश्न हुए। बड़ी ही कड़ी समीक्षा हुई। परन्तु इससे नरेन्द्रनाथ सेन भी विचलित नहीं हुए। अपने ऊपर किये गये आरोपों और अपने लेखों पर लिखी गई कठोर से कठोर समालोचनाओं से ये क्षुब्ध न हुए।

राय नरेन्द्रनाथ सेन ने किसी कालेज से कोई डिग्री नहीं प्राप्त की। तथापि अँगरेजी लिखने में ये बहुत दक्ष थे। इनकी अँगरेजी की प्रशंसा बड़े बड़े विद्वानों ने की है। यद्यपि अँगरेजी लिखने में इनका जन्म गया, तथापि अपनी मातृभाषा से इन्हें कम प्रेम न था। ये उसकी उन्नति के लिए सदैव से अभिलाषी थे। एक बार बंगाल के विद्वत्-सम्मेलन के ये सभापति भी बनाये गये थे। इनने एक बड़ी ही प्रभावोत्पादक वक्तृता की थी।

राय बहादुर के पिता का नाम हरिमोहन सेन था। ये अपने पिता के कई पुत्रों में चौथे थे। फरवरी सन् १८४३ इसवी में इनका जन्म हुआ। १६ वर्ष की उम्र तक इन्होंने कलकत्ते के हिन्दू-कालेज में शिक्षा पाई। बीमारी के कारण असमय में ही इन्हें कालेज छोड़ना पड़ा। तबीयत अच्छी होने पर इनके पिता ने कप्तान पामर को इनका शिक्षक नियत किया। कप्तान साहब अपने समय के एक विख्यात सम्पादक थे। उन्हीं की शिक्षा और सान्निध्य के कारण नरेन्द्रनाथ के हृदय में सम्पादक बनने की कामना का बीज उत्पन्न हुआ। उसने यथासमय अङ्कुरित होकर कैसे फल दिये, यह बात पाठकों को विदित ही हो चुकी है।

नरेन्द्रनाथ सेन पाँच भाई थे। इनके बड़े भाई अब तक जीते हैं। वे पेंशन पाते हैं। करन्सी आफिस में वे एक उच्च कर्मचारी थे। नरेन्द्रनाथ के पिता और कई भाइयों ने महाराजा जयपुर के आश्रय में बहुत दिन तक रह कर अच्छी प्रतिष्ठा पाई थी।

नरेन्द्रनाथ सेन ने कुछ समय तक कलकत्ते की हाईकोर्ट के अटार्नी का भी काम किया था। इस व्यवसाय में इन्हीं का पहला नंबर था।

ऐसे प्रतिभाशाली लेखक और सुख्यात सम्पादक की मृत्यु से किस भारतवासी को दुःख न होगा ?

अमेरिका-भ्रमण । ✓

मेरी दिनचर्या ।

( ४ )

जून, सोमवार से २४ जूलाई, रविवार तक मैं पोर्टलैंड में रहा। इतने दिनों तक मैं क्यों एक स्थान में रहा, इस प्रश्न का उत्तर मैं अपनी इतने दिनों की दिनचर्या में दूँगा। इस दिनचर्या को जुदा जुदा तिथि देकर न लिखूँगा।



पाँच पाँच छः छः दिनों के हालात इकट्ठे लिख कर पाठकों का मनोरञ्जन करूँगा। हाँ, खास खास दिनों की दिनचर्या अपने पिछले ढंग के अनुसार लिखूँगा।

सब से पहले मैं पोर्टलैंड शहर तथा उसके इर्द गिर्द के कस्बों का हाल बतलाता हूँ। इससे पाठकों को मेरी दिनचर्या समझने में आसानी होगी।

पोर्टलैंड, आरेगन रियासत का प्रधान नगर है। इसकी आबादी ढाई लाख से ऊपर है। मेरी राय में यह शहर प्रशान्त महासागर के किनारे बसे हुए सब शहरों से खूबसूरत और अच्छा है। यह ऐसी जगह बसा है जहाँ बड़े बड़े जहाज समुद्र से आते जाते हैं। प्रशान्त महासागर इस जगह से १२० मील है। पर पोर्टलैंड के निवासियों के लिए वह उनके द्वार पर ही है। गहरे पानी की नदी के किनारे होने के कारण इस शहर को वैसा ही सुभीता है जैसा समुद्र-तट पर बसे हुए नगर को प्राप्त होता है। जिसको जापान, चीन या भारत जाना हो वह पोर्टलैंड से स्टीमर पर सवार होकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकता है। यहाँ, दुनिया की चीजों की खरीद व फ़रोख्त होती है। प्रायः सब जातियों के स्टीमर इस शहर के बंदरगाह में अपने अपने झंड़े उड़ाते हैं।

इस नगर की उन्नति बहुत शीघ्र हुई है। १९०० में इसकी आबादी नव्वे हजार थी। अब दस बरस में ढाई लाख के ऊपर हो गई है।

इतनी उन्नति का कारण यह है कि पोर्टलैंड का सम्बन्ध दो नदियों—विलामेट और कोलम्बिया—के साथ होने के कारण इसका सम्बन्ध उन नगरों से भी हो गया है जो इन नदियों के किनारे बसे हैं। जो पैदावार उन नगरों में होती है या वहाँ आती है वह शीघ्र ही, थोड़े किराये में, पोर्टलैंड पहुँच जाती है और वहाँ से देसावरों को भेजी जाती है। इससे दुकानदार और किसान दोनों ही अधिक खर्च से बचते हैं। दूसरे, यह कि पोर्टलैंड रेलवे का बड़ा भारी जंक्शन है। न्यूयार्क, शिकागो, सेंटपाल

ओमादा, साल्टलेक सिटी, वैंकोवर बी० सी०, सैन फ्रांसिस्को आदि से रेल द्वारा इसका सम्बन्ध है। सदर्न पेसेफ़िक कम्पनी का यह अड्डा है। मुसफ़िरों को सब तरह का सुभीता है। इन कारणों से इसकी आबादी दिन दिन बढ़ रही है।

शहर में गली गली बिजली की गाड़ियाँ दौकरी हैं। इर्द गिर्द के कस्बों से भी इनका सम्बन्ध है, जो दो चार आने देने से आदमी जल्द पहुँच जाता है।

नगर की खूबसूरती देखने लायक है। सुन्दर ऊँचे भवनों से सुसज्जित साफ़ सुथरी, चौकी गलियाँ दर्शक का मन मोह लेती हैं। शहर इर्द गिर्द पहाड़ों के दृश्य बड़े ही मनोहर हैं। बर्फ़ ढकी हुई पर्वतों की चोटियाँ शहर से देख पड़ती हैं। इन पर्वतों तथा समुद्र की वायु के कारण पोर्टलैंड की आवा हवा बहुत ही स्वास्थ्यकर है।

शहर में शिक्षा का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम है। कई अच्छे अच्छे हाई-स्कूल हैं; पुस्तकालय, अस्पताल हैं; दो चार कालेज भी हैं। हर साल, यहाँ एक बड़ा भारी मेला होता है उसको Festival अर्थात् पुष्पात्सव कहते हैं। इसमें पुष्पों की भरमार रहती है। घर, द्वार, हवेलियाँ, दुकानें गाड़ियाँ, सड़कें सभी गुलाब के फूलों से सुसज्जित होती हैं। दूर दूर से लोग मेला देखने आते हैं। बड़ा आनन्द रहता है।

जब मैं पोर्टलैंड पहुँचा तब मेला खतम हो चुका था। इससे देखने में नहीं आया। हाँ, मैंने मेले के पोस्टकार्ड खरीद लिये थे। उनसे इस मेले के दृश्यों का बहुत कुछ आनन्द मिला।

जून १३ से जून १८ तक—इस सप्ताह में सेंट-जान में रहा। इन दिनों सेंट-जान वाले मुकदमे पेशियाँ पोर्टलैंड में होती थीं। अतएव सुनने की बहस सुनने के लिए मैं पोर्टलैंड भी चला जाता करता था। भारतवासी और गोरे कुलियों से मुकदमे का सम्बन्ध था। गोरो ने भारतीयों पर ज़ियादती की थी। जज महोदय ने पक्षों को समझाकर अपना काम किया। पोर्टलैंड की



भाग १२

सी०, से-

मम्य है।

मुसाफिरो

से इसकी

याँ दौड़ने

थ्य है, जो

जाता है

है। सुन

थरी, चा

। शहर

हैं। वफ

देख पड़

कारण पो

है।

उत्तम है

कालय

साल, ज

सको B

इसमें पु

याँ, दुका

ने सुसजि

आते हैं

तम हो चु

मैंने मेले

ले के द

ताह में से

मुकदमे

एव मुक

चला ज

लियों से

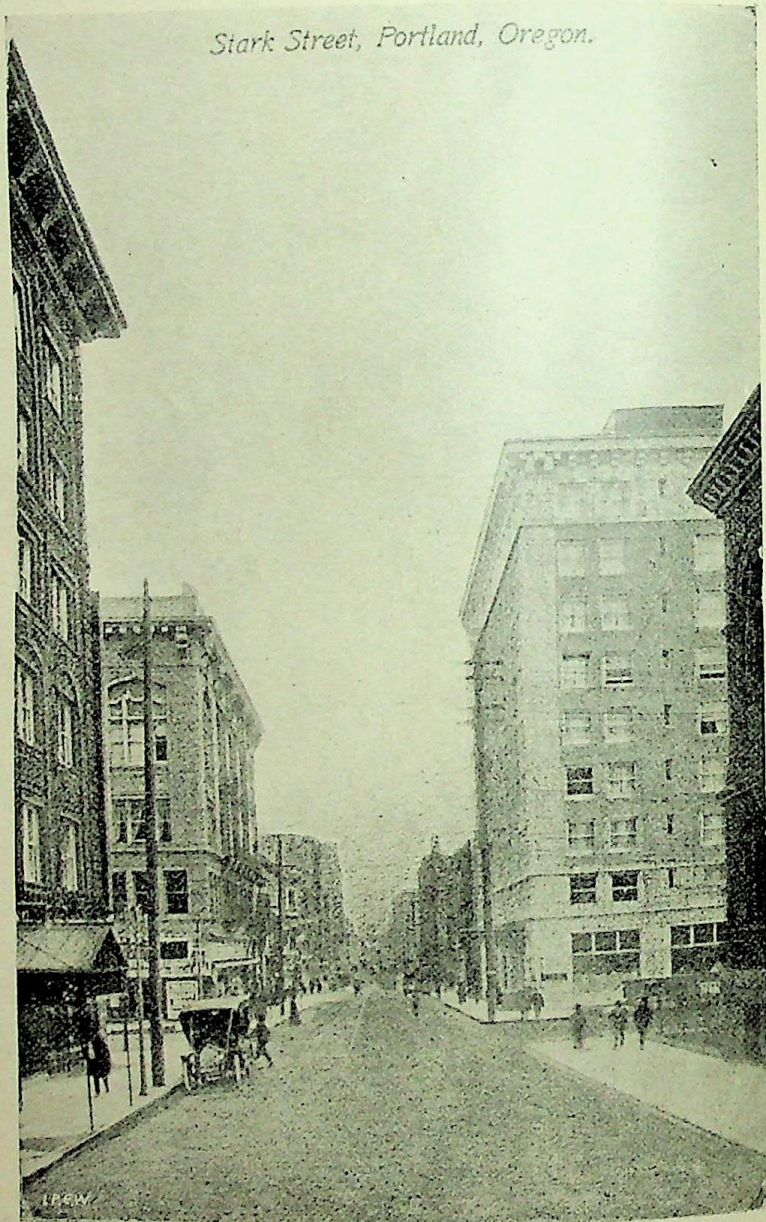
रतीय

ने पस

ड की वि



# सरस्वती

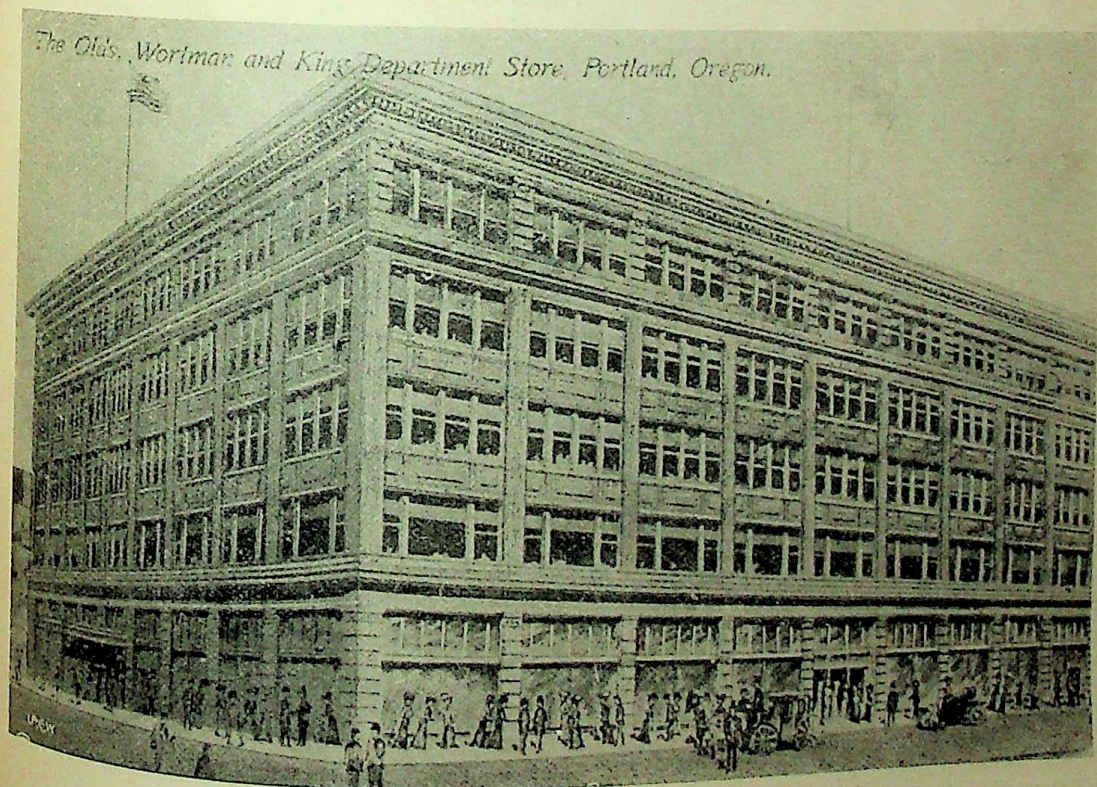


पोर्टलैंड की स्टार्क नामक गली ।  
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।





पोर्टलैंड में गुलाब का एक उद्यान ।



पोर्टलैंड की एक दुकान ।



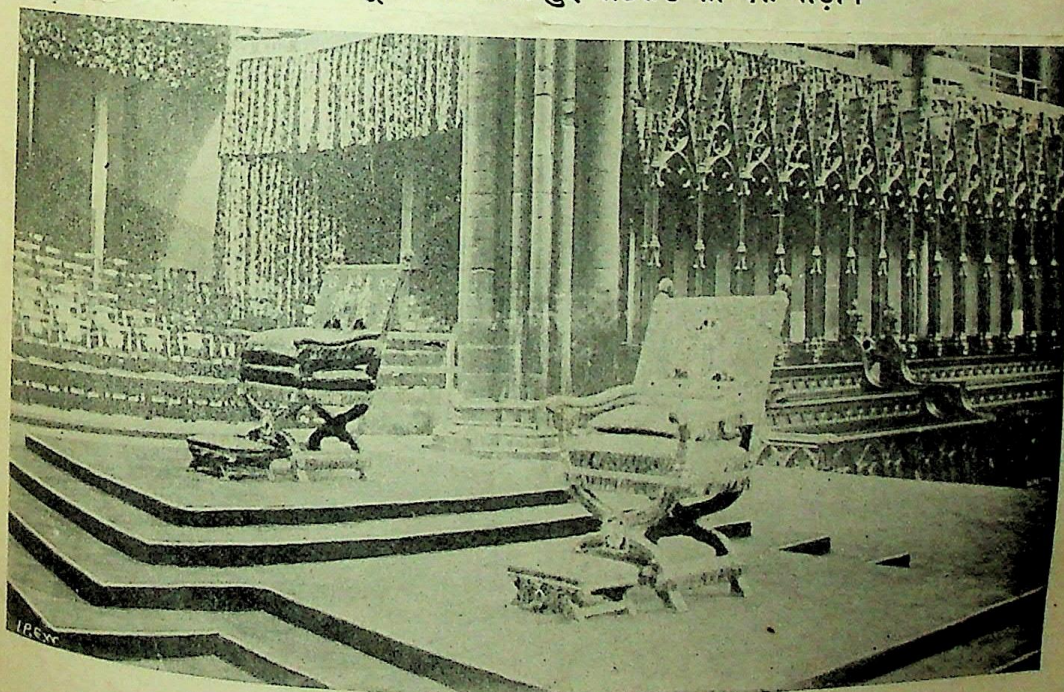




# सरस्वती



गुलाब के फूलों से सजी हुई पोर्टलैंड की एक गाड़ी ।



महाराज पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी के राज्याभिषेक-सम्बन्धी सिंहासन ।  
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



संख्या ९

संसल ने  
प्रति प्रकट  
की। सेंट-  
अदिमियां  
के अगुवा

शहर  
वे। क्योंकि  
अववारों  
साधारण  
कूल है।  
साथ बहने

शहर  
लोग पेशी  
करते थे  
जातियों व  
देश में ये  
हैं। यही  
जोगों को  
आप अमेरि  
द्वारे मज  
के दिल छे  
ये। अब  
जहां सब  
बहुत ब  
महापहीन  
भड़का  
इन लो  
जोगों के  
पता  
कुछ नहीं  
कि मैं प  
आप नहीं

में अ  
प्रीयुत व  
अताव वि



हैं। सल ने भी हमारे आदमियों के साथ बड़ी सहानु-  
भूति प्रकट की और यथाशक्ति उनकी सहायता भी  
की। सेंट-जान-वासी अमेरिकन सज्जनों ने भी हमारे  
आदमियों को निर्दोष प्रकट किया और गोरे मजदूरों  
के अगुवा, डिकी, की उद्दण्डता सप्रमाण सिद्ध की ।

शहर के दैनिक पत्र हमारे आदमियों के विरोधी  
थे। क्योंकि वे मतलब के साथी हैं। उनको अपने  
अनुभवों की बिक्री अभीष्ट है। प्रान्त के जन-  
साधारण का मत-प्रवाह भारतीय मजदूरों के प्रति-  
कूल है। इसलिए दैनिक पत्र भी उसी के साथ  
साथ बहते हैं ।

शहर में इस मुकद्दमे की बड़ी चर्चा थी। बहुत  
लोग पेशी के दिन मुकद्दमे की काररवाई देखने आया  
करते थे। इस तरफ समुद्र तट पर दूसरी दूसरी  
जातियों के लोग आकर अधिक बस गये हैं। अपने  
देश में ये लोग निर्धन थे। अब यहाँ आकर धनी हुए  
हैं। यही लोग अफलातून के नाती बन बैठे हैं। हम  
लोगों को ये परदेशी ( Foreigners ) बतलाते हैं और  
अपने अमेरिकन बनते हैं। ऐसे ही लोग अधिकतर  
हमारे मजदूरों से भगड़ा करते हैं। क्योंकि इन लोगों  
के दिल छोटे होते हैं। पहले कभी अच्छे दिन देखे नहीं  
थे। अब एक ऐसे धन-धान्य-पूरित देश में आगये हैं  
जहाँ सब तरह का सुभीता है। इससे अपने आपको  
बहुत बड़ा समझते हैं; अपने से कमजोर और  
सहायहीन पर अत्याचार करते हैं। ऐसे ही लोगों  
भड़काने से यहाँ इस तरह के भगड़े होते हैं।  
इन लोगों के साथ रहा हूँ। मैंने कारखानों में इन  
लोगों के साथ काम किया है। जब तक इन लोगों  
का पता नहीं था कि मैं भारतीय हूँ तब तक तो  
कुछ नहीं, सब ठीक था। ज्योंही इनको पता लगा  
कि मैं एक ऐसे देश का हूँ जिसका यहाँ कोई माँ-  
बाप नहीं है त्योंही ये मेरे पीछे पड़ गये ।

मैं अधिक समय तक सेंट-जान ही में रहा।  
प्रसिद्ध काशीरामजी ने मेरे साथ बहुत अच्छा  
कराया, जिसके लिए मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ ।

शनिवार, जून १८—आज का सारा दिन मेरा  
इधर उधर लोगों के पास आने जाने में ही खर्च  
हुआ; क्योंकि मेरा इरादा भारतीय मजदूरों को  
एकत्र करके एक सभा करने का था। हमारे देश-  
वासियों को अभी तक एक जगह बैठना नहीं आता।  
उनके हृदय में मत-मतान्तरों के भंभट घुसे हैं;  
धार्मिक सहनशीलता उनमें नहीं। इसीलिए हिन्दू  
अपने को मुसलमान से पृथक् और सिक्ख भी अपने  
को मुसलमान से पृथक् समझता है। इन लोगों में  
अभी तक जातीयता का भाव नहीं ।

सब मिला कर कोई दो सौ भारतीय बन्धु यहाँ  
कारखानों में काम करते हैं ।

सभा के लिए जगह दरकार हुई। मैंने पोर्टलैंड में  
यंगमेन-क्रिश्चियन-एसोसियेशन के मंत्री महोदय  
से आज्ञा लेकर उनके सभाभवन में सभा करने का  
प्रबन्ध किया और सब लोगों को सूचना देदी कि  
रविवार—१९ जून को, शाम के छः बजे, सब लोग  
पोर्टलैंड पहुँच जायँ ।

रविवार, जून १९—प्रातःकाल मैं वेंकोवर गया  
और वहाँ सब भाइयों को सभा में आने की  
प्रार्थना की ।

नियत समय पर लोग आने लगे। अच्छी  
अच्छी पगड़ियाँ बाँधे “मानक-लम्बर-कम्पनी” के  
सिक्ख भाई बड़े शौक से आये। सेंट-जान और  
वेंकोवर से भी कुछ लोग आये। भजन-कीर्तन के  
बाद मैंने सभा का उद्देश समझाया। सेंट-जान  
वाला मुकद्दमा लोगों के दिलों पर ताज़ा था। इस  
लिए उनसे कहा गया कि इस भगड़े में हिन्दू,  
मुसलमान, सिक्ख सभी लोगों की हानि हुई है। यदि  
सेंटजान में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी एक  
होकर न रहते तो गोरे कुली सारे आरोग्य प्रान्त से  
भारतीय कुलियों को मार कर निकाल देते। एक  
माता के पुत्र होने से सभी भाई भाई हैं। सब  
भाइयों को एक होकर रहना चाहिए। हम लोग  
परदेश में हैं। अतएव यहाँ हमारे देशवासी ही



हमारे बन्धु हैं । यदि हम लोग यहाँ भी धर्म-सम्बन्धी तअस्सुब में डूबे रहेंगे तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा ।

फिर सबसे प्रार्थना की गई कि सप्ताह में एक बार अवश्य सब लोग मिला करें, जिसमें सबके दिलों से मत-मतान्तर के गोरखधंधे निकल जायँ और जातीयता के भाव उत्पन्न हों ।

२०—जून से ३ जूलाई तक कोई विशेष बात नहीं हुई । लोगों से मिलने और कल-कारखाने देखने में मेरा समय गया ।

जूलाई ४—आज का दिन अमेरिकन लोगों के लिए बड़े गौरव का था । आज ही के दिन अमेरिका की विजय-पताका उड़ी थी । आज ही के दिन, १७७६ में, अमेरिका के प्रतिनिधियों ने स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र दिया था । इस दिन को अमेरिकन लोग अपनी जाति का जन्म-दिन मानते हैं । आज वे खूब उत्सव मनाते हैं । मैं भी एक मित्र के साथ प्रातःकाल ही भोजनादि से निवृत्त हो कर बाहर निकला । हम दोनों ४ जूलाई की महिमा देखने चले । बाजार, दुकानें, घर आज अमेरिका के जातीय झंडों से सुशोभित थे । श्वेत तारागणों के समूह को नीले आकाश में चमकते देख किसका मन प्रसन्न नहीं होता ? ऐसा सुन्दर झंडा दूसरी जाति का नहीं है । अमीर लोगों ने अपनी गाड़ियाँ और टोपियों को भी क्रीमी झंडियों से सजाया था । बाजारों में बड़ी भीड़ थी । लड़के, लड़कियाँ, वृद्ध, बालक, स्त्री-पुरुष सभी आज बन ठन कर बाजारों में घूमने निकले थे । कोई कोई रामदुलारे अपनी प्रियायों का हाथ पकड़े हँसते बोलते जा रहे थे ।

गाड़ियाँ आज खचाखच भरी हुई थीं । सभी यह आनन्दोत्सव मनाने के लिए घर से निकल पड़े थे । उत्सव-प्रोग्राम सप्ताहों पहले बना लिया गया था ।

हम दोनों मित्र भी पोर्टलैंड-वासियों के आनन्द से आनन्दित होते चले जाते थे । हमने विचार कर लिया था कि आज वेंकोवर चलकर जलसा देखेंगे ।

उधर कोलम्बिया के किनारे कई तरह के खेल-तमाशे होने वाले थे ।

धकाधूम में हम भी गाड़ी पर चढ़ गये । उधर के धक्के गँवारी धक्के नहीं ; सभ्यता के होते हैं । इनमें “ I beg your pardon ” ( धक्का प्रार्थी हूँ ) का आनन्द मिलता है । हष्ट पुष्ट नौजवान कोट, पतलून पहने अपने मित्रों से हँसते बातें करते थे । उनको देख कर मेरे दिल में नाराजगी क्या क्या तरंगें उठने लगीं । मैं विचार-सागर में डूब गया । मेरी अन्य सारी ज्ञानेन्द्रियाँ मन में घुस गईं । मेरे मित्र को इसकी कुछ भी खबर न थी । स्टेशन आ गया । उन्होंने मुझे जोर से पकड़ कर हिलाया और कहा चलो, उतरो, नदी पार करें ।

तीन तीन पैसे देकर हम लोग छोटे स्टीमर पर चढ़ गये । बड़ी भीड़ थी । स्टीमर लदा हुआ था । आज हव्शी जानसन और गेरे जेफरी की घूँसेवाली होने वाली थी । इसलिए कितने ही जोशीले जवान जेफरी के नाम पर करतलध्वनि करते थे ।

वेंकोवर पहुँच कर मैं और मेरे दोनों मित्र उधर टहलने और जगह जगह लोगों की देखने लगे । कई जगह तमाशों की धूम थी । बाजा बज रहा था । एक जगह नाच की तैयारी रही थी । लड़के लड़कियाँ अपना अपना साथी कर नाचने की धुन में लगी थीं ।

कैसा शान्त समागम था । हमारे देश के की तरह यहाँ शोरो-गुल का नाम नहीं था । चुपचाप अपनी अपनी धुन में लगे थे । झुंड के झुंड घूम रहे थे । किसी प्रकार असभ्यता देखने में नहीं आई ।

मैंने मित्र से कहा,—चलो अपने देश-नकुल से मिलें । मैं उनका घर जानता था । वहाँ पहुँच देखते क्या हैं कि चार पाँच आदमी शराब के में चूर हैं । एक दो को होश था ; उनसे मालूम हुआ कि सुबह से ही इन लोगों में शराब का चल रहा है । एक आदमी शराब के कारण भी पहुँच चुका है । सिवा उन भाइयों के



शराब छोड़ने का प्रण किया था और सब उस  
 सत में मुक्तिला थे । सोहबत का बड़ा असर होता  
 था । गार-दोस्त आ गये; उनके अनुरोध से इन्होंने  
 सत-तरह ४ जुलाई का दिन मनाना आरम्भ किया ।

दुखी होकर हम दोनों उस तरफ से निकले ।  
 हमारे साथ एक आदमी शराबी चला आता था ।  
 ऐसी बाहियात बातें करता था कि मेरा  
 कलेजा मुँह को आने लगा । बड़ी मुश्किल से हम  
 लोगों ने उससे पीछा छुड़ाया । उस समय मेरी  
 । स्नेह की भी नसीहत काम न कर सकी ।

यहाँ सोचने के लिए बहुत मसाला था । एक  
 तरफ तो हजारों शिक्षित लोगों का मेला है । वहाँ  
 स्टीमर पाई भगड़ा फसाद नहीं; सब आनन्द से उत्सव  
 हुआ था । दूसरी तरफ बीस पच्चीस अनपढ़ों की  
 घूँ सेबाजी है, जिसमें एक हवालात की सैर कर रहा है ।  
 गोले जवाब शराब के नशे में गाली गलौज कर रहे हैं ।  
 लोगों के नीचे बैठे हुए हम लोग घंटों इस बात पर  
 मित्र झगड़ते रहे ।

मित्र के साथ मैं फिर पोर्टलैंड वापस आया ।  
 वहाँ बाजारों में झुंड के झुंड लोगों को दैनिक पत्रों के  
 तैयारी के पास खड़े पाया । ये लोग हवशी जानसन  
 साथी गोरे जेफरी की घूँ सेबाजी का परिणाम जानने  
 चाहते थे । आखिर तार खड़का । गोरे के चेहरे  
 देश के मेले गये । हवशी जीत गया; गोरे की हार हुई ।

यहाँ था । सत-तरह हुआ ! गोरा काले से हार गया ! गोरो पर  
 । खियों जीत सा हुआ । उनका अभिमान चकनाचूर हो  
 प्रकार की शेर अत्यायी नहीं । उसके लिए गोरे काले  
 शराब हैं । जो जिस विद्या में अधिक परिश्रम  
 उसमें उसी की जीत होगी । बाजारों में  
 सा छा गया । रंग में भंग पड़ गया । किसी  
 गोरे के हार जाने की उम्मीद न थी । हवशी  
 काम देख कर गोरे बहुत ही लज्जित हुए ।

राब का जीत के साथ सहानुभूति रखने वाले  
 रण हवालात जीत से मारे खुशी के फूले नहीं समाते थे ।  
 के जिन्दगी सब देखते सुनते हम लोग भी अपने अपने  
 को चले गये ।

५ जुलाई से २४ तक—इतने दिन मैं पोर्टलैंड में  
 और रहा । मेरे इतने दिन ठहरने का यह कारण था  
 कि मैं अपने भारतीय बन्धुओं की शिक्षा का प्रबन्ध  
 करना चाहता था । अमेरिका में जो भारतीय मजदूर  
 हैं वे सभी पञ्जाब प्रान्त के हैं; उनमें अधिकांश  
 सिक्ख ही हैं । ये लोग विद्याहीन हैं । अशिक्षित होने  
 के कारण ये बहुधा धोखा खाते हैं । कोई चालाक  
 आदमी मिल गया तो वह अनायास ही इनको  
 फुसला कर इनसे रुपये ठग लेता है । कई एक ने  
 तो इन अनपढ़ों के द्वारा हजारों रुपये के वारे न्यारे  
 किये हैं ।

पाँच सप्ताह पोर्टलैंड में रह कर मैंने लोगों को  
 सचेत किया । उनको समझाया कि यदि तुमसे कोई  
 देश के कामों के लिए रुपया माँगे तो उसके जाल  
 में न फँसो । यदि रुपया भेजना हो तो देश भेजो । वहाँ  
 स्कूलों, अनाथालयों आदि में धन की बड़ी आव-  
 श्यकता है ।

२४ जुलाई को मैंने पोर्टलैंड से पैदल चलने का  
 निश्चय किया । यहाँ से सानफ्रिस्को की ओर जाने  
 का इरादा पक्का हुआ । रात को मित्रों से विदा हुआ  
 और सेंटजान में ही सो रहा ।

✓ सत्यदेव—अमेरिका ।

## अंगरेजों की रहन-सहन ।



अंगरेजों की रहन-सहन अनुकरणीय है ।  
 उससे कई सबक मिल सकते हैं ।  
 हर एक काम वे नियमानुसार करते  
 हैं । छोटे बड़े सब नियम के पाबन्द  
 हैं । उनके पास समय की बड़ी  
 कीमत और क़दर है । समय का

यथोचित उपयोग करना अंगरेजों को मालूम है और  
 उसका नष्ट करना हम लोगों को । विलायत में रह  
 कर भी हममें से बहुतें की समय नष्ट करने की  
 आदतें नहीं जाती ।



## सबेरा

होते ही सब लोग अपने अपने काम में भिड़ जाते हैं। घर की स्त्री, लड़कियाँ और टहलनी शौचादि से निवृत्त हो ब्रेकफास्ट ( नाश्ता ) तैयार करने लगती हैं। जो धनाढ्य हैं उनके यहाँ नौकरनी काम करती हैं। पर इस लेख में हम मध्यम स्थिति के लोगों की हैं। पर इस लेख में हम मध्यम स्थिति के लोगों की ही दिनचर्या दिखावेंगे। नाश्ता जिस कमरे में बनता है उसे किचिन अथवा बाबर्चीखाना कहते हैं। उसमें एक लम्बी मेज़, कुछ कुर्सियाँ, खाने पीने का सामान और खाने पकाने के बर्तन रक्खे रहते हैं। सामान आलमारियों में चीनी मिट्टी के बर्तनों में रक्खा जाता है। चाय के प्याले, छोटी छोटी खूंटियों पर टाँगे जाते हैं। इसी भाँति रक्खियाँ साफ़ कर के लकड़ी की खुली आलमारी में रक्खी रहती हैं। खाना खाने के बाद तशतरियाँ गरम पानी और सोडा से साफ़ की जाती हैं। अच्छे साफ़ कपड़े से पोछ कर वे जहाँ की तहाँ रख दी जाती हैं। ब्रेकफास्ट तैयार होने पर दूसरे कमरे में मेज़ पर रक्खा जाता है। सब लोग हाथ मुँह धो कर और कपड़े पहन कर अपनी अपनी जगह मेज़ के आस पास जा बैठते हैं। मेज़ के बीच फूलों का खूबसूरती से सजाया कम से कम एक गमला रक्खा रहता है। यदि जाड़े का मौसम हुआ तो एक और कोयला जलता रहता है। नाश्ते के बाद सब लोग अपने अपने काम पर जाते हैं। चाकरानी सब के जूते साफ़ करके हर एक के कमरे के सामने रख जाती है। स्कूल में पढ़ने वाले बालक-बालिकायें स्कूल जाती हैं। जो घर में रह जाते हैं वे पढ़ने-लिखने और दोपहर का भोजन बनाने की तैयारी करते हैं।

## दोपहर का भोजन

एक बजे होता है। स्कूल से बच्चे बारह बजे आ जाते हैं। फिर एक बजे भोजन करके लौट जाते हैं। घर रहने वाले एक बजे भोजन करते हैं। बारह बजे खानेवाले, एक बजे, पास के हाटलों में, भोजन कर लेते हैं, क्योंकि घर लौटने में

समय लगता और ट्रेम इत्यादि का किराया देना पड़ता है। दोपहर के भोजन के समय कुछ समय पहले घंटी बजती है, जिसे सुन कर सब लोग, घर पर, अपनी अपनी जगह आ बैठते हैं। भोजन के बाद बूढ़े स्त्री-पुरुष घंटे दो घंटे आराम करते हैं। तब नौकर चाकर बर्तन भाँडे साफ़ कर कमरों को चाय लिए तैयार रखते हैं। जवान स्त्री-पुरुष इस समय लिखने-पढ़ने या सीने-पिरोने में लगाते हैं। अब बजे। लड़के-लड़कियाँ पढ़ कर लौटों। बुद्ध से सोकर उठे। हाथ मुँह धोया। नौकरों ने भी बनाई। सब चाय पीने को बैठे। याद रहे कि भोजन और चाय के पूर्व छोटे बड़े सब हाथ मुँह धोते, साफ़ करते और साफ़ कपड़े पहनते हैं। जो साफ़ पोशाक में नहीं आ सकते, वे सबके मेज़ पर नहीं खा पी सकते; क्योंकि ऐसा असभ्यतासूचक समझा जाता है। नाश्ता करते चाय पीते समय खूब गप शप उड़ती है। का का समय बहुधा सन्ध्या का है; क्योंकि उस वक्त को फुरसत रहती है। इतवार के दिन भी के लिए अच्छा समय मिलता है।

## सन्ध्या का भोजन ।

सन्ध्या हुई। स्त्री-पुरुष अपने अपने काम लौटे। कुछ देर आराम किया। कुछ पढ़ा। मुँह धोये। भोजन का घंटा बजा। सब पहने अपने अपने स्थान पर जा पहुँचे। भोजन होने लगे। सन्ध्या के भोजन का साथ, कहीं आठ, बजे का है। घर की स्त्री भी देर से खाती हैं। सन्ध्या के बे-फिकरी खूब भोजन किये जाते हैं। भाँति भाँति पर वार्तालाप होता है। हँसी ठड्डा उड़ता से निवृत्त होकर नौकर-चाकर घर चले घर में रहने वाले घंटे आध घंटे या मित्रों से मिलने जाते हैं। लौट कर करना हुआ तो काम करते हैं। नहीं तो ताश वगैरह खेलते हैं। जिन्हें पढ़ना लिखना



वे पढ़ते लिखते हैं । ग्यारह बजे के करीब सब अपने अपने कमरे में सोने चले जाते हैं । सोने को जाने के पूर्व एक दूसरे को गुड नाइट (Good Night) कहता है । इसी प्रकार सबेरे सब एक दूसरे से गुड मॉर्निङ्ग (Good Morning) कहते हैं । बाहर जाने समय गुड बाई (Good-Bye) कहते हैं । सब कुछ प्रेमपूर्वक रहते हैं । समय सुख से कटता है । रहने का यहाँ गुजारा नहीं ।

## घर की सफ़ाई वगैरह ।

सफ़ाई में विलायत बहुत बढ़ी चढ़ी है । अमीरों का गृह, सब प्रति सप्ताह अपने अपने घर, बाहर भीतर, खूब साफ़ करते हैं । इसके लिए सप्ताह में एक दिन नियत कर लिया जाता है । उस दिन कमरे नीचे ऊपर साफ़ किये जाते हैं । कमरों में फर्श धोये जाते हैं । कालीन, दरियाँ बागीचे में धोये जाते हैं । बिछौने ओढ़ने सुखाये जाते हैं । कुरसी, कुर्सी, आलमारी, छत, एक नहीं बचने पाते । बाहर भीतर खूब सफ़ाई होती है । किवाड़ों की शीशे धोये पोछे जाते हैं । लम्प, चिमनी, ज़ोने का भकाभक किये जाते हैं । सब सफ़ाई घर तक हो जाती है । घर की स्त्रियाँ और नौकर भी मिलाते हैं । इस दिन को “क्लीनिङ्ग डे” (Cleaning Day) कहते हैं । सफ़ाई के दिन की कपड़े धोने का भी एक दिन मुक़र्रर रहता है । इसको (Washing Day) “वाशिङ्ग डे” कहते हैं । घर तक यह काम भी ख़तम हो जाता है । कालर, चादर, रूमाल वगैरह को छोड़ कर कपड़े सब लोग घर ही पर धो लेते हैं । घर में लड़की या स्त्री इसे खुद कर लेती है । जो न कर सकते हैं उनके यहाँ नौकर साफ़ करते हैं । थुलाई बड़ी चतुराई से की जाती है । भट्ठी से साबुन से कपड़े मले जाते हैं । कपड़ा के लिए कल रहती है । पीछे बागीचे पर सब कपड़े सुखाये जाते हैं । सूखने पर ही पर इसतरी की जाती है । सफ़ाई के ये

कायदे सारे देश में पाले जाते हैं । हमारे यहाँ दश-हरे, दिवाली को बड़ी मुश्किल से सफ़ाई होती है । सो भी अच्छी तरह नहीं । अँगरेज़ लोग इसी प्रकार समय के बड़े पाबन्द हैं । वे हर एक बात समय पर करते हैं । यहाँ तक कि भोजन की हर एक चीज़ भी नियमित समय पर पकाते हैं । जैसे आलू बनाने में पाव घंटा लगेगा तो घड़ी देख कर उतने ही समय में वह तरकारी तैयार हो जाती है । रसोई-घर में घड़ी रक्खी रहती है जिसे देख कर वे सब सामग्री तैयार करते हैं ।

## और दो एक बातें ।

अब दो एक बातें और कहेंगे । जैसे महमानों का आदर, नौकर-चाकरों के बर्ताव इत्यादि । कोई स्त्री-पुरुष बिना बुलाये किसी के यहाँ नहीं जाता । पहले सब बात पत्र-द्वारा तै हो जाती है । घर आने पर महमान का अच्छा सत्कार होता है । दरवाज़े पर महमान लिया जाता है । उसके ऊपरी कपड़े जैसे ओवरकोट, छाता, छड़ी सब लेकर उसे भीतर ले जाते हैं । यहाँ वहाँ की बात चीत होकर हँसी मज़ाक़ होता है । अगर महमान स्त्री हुई तो फिर बातों का क्या ठिकाना है । बातों में फिर वे सब भूल जाते हैं । दो चार दिन ठहर कर महमान चला जाता है । फिर वह बदला चुकाता है । पत्र-द्वारा जितनों को बुलाना चाहता है लिख भेजता है । दिन नियत कर दिया जाता है । जिसको उसने अपने पत्र में नहीं लिखा वह कभी नहीं जाता । यदि माँ को बुलाया तो लड़की कभी न जायगी । इसी प्रकार पिता को बुलाया तो पुत्र न जायगा । नौकर-चाकर से बहुत अच्छा बर्ताव किया जाता है । अगर घर में जगह होती है तो वह घर में रहता है । उससे बात चीत बड़ी मुलायमत से करते हैं । हमारे देश की भाँति गाली-गलोज, डाँट-दपट, अवे-तवे करके नहीं बोलते । बल्कि काम करते समय उसे कई बार धन्यवाद देते हैं । बीच बीच में मालिक ‘कृपा कर’ (Please) शब्द उपयोग में लाते हैं । नौकर बहुधा



थोड़ा बहुत पढ़े होते हैं। इससे सब काम जल्द समझ लेते हैं और बिना कहे समय पर ठीक ठीक करते हैं। वे काम करने में बड़े चुस्त होते हैं। जिस काम में हमारे यहाँ के नौकर तीन घंटे लगाते हैं उसे वे बात की बात में कर डालते हैं। ईमानदार कम नहीं होते। यों तो भले बुरे सभी जगह पाये जाते हैं, पर विलायती नौकर ईमानदार देखे गये हैं। झूठ भी कम बोलते हैं। बहानेबाजी भी बहुत नहीं करते। बड़े आज्ञाकारी और तमीज़दार होते हैं। बिना पूछे चुपचाप घर नहीं बैठते, न बाज़ार के सौदे-सुलुफ से चोरी करते हैं। वे बहुत साफ़ रहते हैं। निदान ऐसे नौकरों से बड़ा आराम मिलता है और बेफ़िक्री भी रहती है। नौकर बहुधा जवान स्त्रियाँ होती हैं। कहीं कहीं मर्द भी नौकर रखे जाते हैं। नौकरों की तनज़ाह पन्द्रह बीस रुपया माहवार होती है। इसके सिवा भोजन देना पड़ता है। कहीं कहीं इससे कम, कहीं अधिक तनज़ाह मिलती है। देहात में नौकर और भी सस्ते मिलते हैं। विलायत में मालिकमकान नौकर रखता है जो घर भर का काम करता है। किराये वाले को अलग नौकर रखने की ज़रूरत नहीं। उसके किराये वगैरह में नौकर की तनज़ाह शामिल रहती है। इससे बड़ा सुभीता होता है। हमारे देश में नौकर अलाहदा रखना पड़ता है। सिवा बड़े आदमियों के विलायत में लोग सफ़र करते समय नौकर साथ नहीं ले जाते, न ले जाने की आवश्यकता ही है। रेल के स्टेशनों पर ढेरों कुली मिलते हैं। जिस जगह उतरना हुआ वहाँ होटलों में नौकरों की कमी नहीं होती। जाति-भेद न रहने से नौकरों की सफ़र में कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। जहाँ एक जाति और एक धर्म है वहाँ अनेकों भंभटे आपही आप दूर हो जाती हैं। हमारे देश में नौकर सस्ते होने से लोग और नहीं तो दिखलाने को उन्हें साथ ले जाते हैं। ज़रा ज़रा सी चीज़ उठाने को उन्हें नौकर की आवश्यकता होती है। नहीं तो हमारी इज़्जत कम हो जाती है। बड़े आदमी न कहलावेंगे। वहाँ के बड़े आदमी मामूली बातों के

लिए नौकरों की परवा नहीं करते। खुद बहुत से काम आपही कर लेते हैं। इसलिए उन्हें कोई बुरा नहीं कहता। न उनकी इज़्जत घट जाती है।  
प्यारेलाल मिश्र ।

## ग्राम्य जीवन ।

( १ )

अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है ?

( २ )

यहाँ शहर की बात नहीं है, अपनी अपनी घात नहीं है, आडम्बर का नाम नहीं है, अनाचार का काम नहीं है ॥

( ३ )

वे रईस सरदार नहीं हैं, वे मलुप बाज़ार नहीं हैं। कुटिल-कटाक्ष-बाण के द्वारा—जाता नहीं पथिक जन मारा

( ४ )

भोगों में वह भक्ति नहीं है, अधिक इन्द्रियासक्ति नहीं है, आलस में अनुरक्ति नहीं है, रूपों में ही शक्ति नहीं है ॥

( ५ )

वह अदालती रोग नहीं है, अभियोगों का योग नहीं है। मरे फौजदारी की नानी—दीवाना करती दीवानी ॥

( ६ )

यहाँ गठकटे चोर नहीं हैं, तरह तरह के शोर नहीं हैं। गुण्डों की न यहाँ बन आती, इज़्जत नहीं किसी की जाती

( ७ )

सीधे सादे भोले भाले, हैं ग्रामीण मनुष्य निराले। एक दूसरे की ममता है, सबमें प्रेममयी समता है ॥

( ८ )

यद्यपि वे काले हैं तन से, पर अति ही उज्ज्वल हैं मन से। अपना या ईश्वर का बल है, अन्तःकरण अतीव सरल है।

( ९ )

प्रायः सब की सम विभूति है, पारस्परिक सहायभूति है। कुछ भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं है, कहीं कपट का लेश नहीं है ॥

( १० )

सब कामों में हिस्से ले कर, पति को अति सहायता देते। प्राणों से भी अधिक प्यारियाँ—हैं अर्द्धाङ्गी ठीक नारियाँ और



( ११ )

थे । स्वयं भी कवि थे । शकों, अर्थात् सीदियन ग्रीक लोगों, को उन्होंने बहुत बड़ी हार दी थी । इससे वे शकारि कहलाते हैं । इसी जीत के उपलक्ष्य में उन्होंने अपना संवत् चलाया, जिसे १९६७ वर्ष हुए । इस हिसाब से विक्रमादित्य का समय ईसा के ५७ वर्ष पहले सिद्ध होता है ।

( १२ )

परन्तु इस परम्परा-प्राप्त जनश्रुति या विश्वास को कितनेही पूर्व-विद्या-विशारद् विश्वसनीय नहीं समझते । डाक्टर फ्लीट, हार्नली, कीलहार्न, वूलर और फर्गुसन आदि विदेशी और डाक्टर भाण्डारकर, भाऊ दाजी आदि स्वदेशी विद्वान् ऐसेही विद्या-विशारदों की कक्षा के अन्तर्गत हैं । इस अविश्व-नीयता का कारण सुनिए :—

( १३ )

डाक्टर कीलहार्न के मन में, नाना कारणों से, विक्रम-संवत् के विषय में एक कल्पना उत्पन्न हुई । इस बात को हुए कई वर्ष हुए । उन्होंने एक लम्बा लेख लिखा । वह “इंडियन ऐंटिक्वेरी” के कई अङ्कों में लगातार प्रकाशित हुआ । उसमें उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि इस संवत् का जो नाम इस समय है वह आरंभ में न था । पहले वह मालव-संवत् के नाम से उल्लिखित होता था । अनेक शिला-लेखों और ताम्रपत्रों के आधार पर उन्होंने यह दिखाया कि ईसा के सातवें शतक के पहले लेखों और पत्रों में इस संवत् का नाम मालव-संवत् पाया जाता है । उनमें अंकित “मालवानां गणस्थित्या” पद का अर्थ उन्होंने लगाया—मालव देश की गणना का क्रम । और यह अर्थ ठीक भी है । कीलहार्न की इस गवेषणा का निष्कर्ष निकला कि सातवें शतक के बाद विक्रम-संवत् का नाम मिलता है, उसके पहले नहीं । पहले तो वही—“मालवानां गणस्थित्या” की सब कहीं दुहाई है । अच्छा तो इस मालव-संवत् का नाम विक्रम-संवत् किसने कर दिया; कब किया और किस कारण किया । डाक्टर कीलहार्न का कथन है कि ईसा के छठे शतक में यशो-धर्मन् नाम का एक प्रतापी राजा मालवा में राज्य करता था । उसका दूसरा नाम हर्षवर्धन भी था ।

( १४ )

कालों पर बेलें छाईं—फूली, फली, हरी, मन भाईं ।  
कालफल-कृष्माण्ड कहीं हैं; कहीं लौकियां लटक रही हैं ॥

( १५ )

वैसा गुण यहाँ हवा में, प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में ।  
समय-समय गांव के बाहर—होता नन्दन-विपिन निछावर ॥

( १६ )

समय-समय सब जन होते हैं; आलस में न पड़े सोते हैं ।  
दिन भर खेतों पर रह कर, करते रहते काम निरन्तर ॥

( १७ )

जो कहीं जव आ जाता है; वह आतिथ्य यहाँ पाता है ।  
आता जाता है ऐसे—कोई सम्बन्धी हो जैसे ॥

( १८ )

कभी कोई फुरयादी—तो न उसे आती बरवादी ।  
तो शद उसे चौपालें; फिर क्यों वे घूँसें घर वाले ?

( १९ )

जो कहीं ज्ञान की ज्योती—शिक्षा की यदि कमी न होती ।  
तो प्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते ॥

मैथिलीशरण गुप्त

## विक्रम-संवत् ।

हारे समान इतर साधारण जनों का विश्वास है कि प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य मालव-देश के अधीश्वर थे । धारा नगरी उनकी राजधानी थी । जनों और कवियों के वे बड़े भारी आश्रयदाता



उसने, ५४४ ईसवी में, हूणों के राजा मिहिरकुल को मुलतान के पास करूर में परास्त करके हूणों का बिलकुलही तहस नहस कर डाला। उनके प्रभुत्व और बल को उसने प्रायः समूल उन्मूलन कर दिया। इस जीत के कारण उसने विक्रमादित्य उपाधि ग्रहण की। तबसे उसका नाम हुआ हर्षवर्धन विक्रमादित्य। इसी जीत की खुशी में उसने पुराने प्रचलित मालव-संवत् का नाम बदल कर अपनी उपाधि के अनुसार उसे विक्रम-संवत् कहे जाने की घोषणा दी। साथ ही उसने एक बात और भी की। उसने कहा, इस संवत् को ६०० वर्ष का पुराना मान लेना चाहिए, क्योंकि नये किंवा दो तीन सौ वर्ष के पुराने संवत् का उतना आदर न होगा। इसलिए उसने ५४४ में ५६ जोड़ कर ६०० किये। इस तरह उसने इस विक्रम-संवत् की उत्पत्ति ईसा के ५६ या ५७ वर्ष पहले मान लेने की आज्ञा लोगों को दी।

इसी कल्पना के आधार पर विक्रमादित्य ईसा की छठी शताब्दी में हुए माने जाने लगे और उनके साथ महाकवि कालिदास भी खिंच कर ६०० वर्ष इधर आ पड़े। इस कल्पना के सम्बन्ध में आज तक सैकड़ों लेख लिखे गये हैं। कोई इसे ठीक मानता है, कोई नहीं मानता। कोई इसके कुछ अंश को ठीक समझता है, कोई कुछ को। डाकूर कील-हार्न तो इस कल्पना के जनक ही ठहरे। डाकूर हार्नली भी इसे मानते हैं। विन्सेंट स्मिथ साहब और डाकूर भाण्डारकर कहते हैं कि मालव-संवत् का नाम विक्रम-संवत् में बदला ज़रूर गया; पर बदलने वाला गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त प्रथम था। डाकूर फ्लीट का मत है कि विक्रम-संवत् का चलाने वाला राजा कनिष्क था। इसी तरह ये विद्वान अपनी अपनी हाँकते हैं। एकमत होकर सबने किसी एक कल्पना को निर्भ्रान्त नहीं माना और न इस बात के माने जाने के अब तक कोई लक्षण ही देख पड़ते हैं।

राव बहादुर सी० बी० वैद्य, एम० ए०, एल० एल० बी० ने इस विषय में एक बहुत ही युक्तिपूर्ण लेख लिखा है। उनका लेख प्रकाशित हुए कुछ समय

हुआ। उन्होंने पूर्वोक्त कल्पनाओं को निःसार सिद्ध करके यह दिखलाया है कि विक्रमादित्य नाम का एक राजा, ईसा के ५७ वर्ष पहले, ज़रूर था। उसने शकों को परास्त भी किया था। उसी ने अपने नाम से यह संवत् चलाया। हमने इस विषय के जितने लेख पढ़े हैं सबमें वैद्य महाशय का लेख हमें अधिक मनोनीत हुआ और अधिक प्रमाण तथा युक्ति-पूर्ण भी मालूम हुआ। अतएव उनके कथन का सारांश हम नीचे देते हैं :—

इस संवत् के सम्बन्ध में जितने वाद, विवाद और प्रतिवाद हुए हैं, सब का कारण डाकूर कीलहार्न का पूर्वोक्त लेख है। यदि वे यह साबित करने की चेष्टा न करते कि मालव-संवत् का नाम पीछे से विक्रम-संवत् हो गया तो पुरातत्त्ववेत्ता इस बात की खोज के लिए आकाश-पाताल एक नजर देते कि इस संवत्सर का नाम किसने बदला, कब बदला और कब बदला। जिन लेखों और पत्रों के आधार पर डाकूर साहब ने पूर्वोक्त कल्पना की उनके अस्तित्व और प्रामाणिकत्व के विषय में किसी को कुछ सन्देह नहीं। सन्देह इस बात पर है कि पुराने जमाने के शिलालेखों और ताम्रपत्रों में “मालव-गणस्थित्या” होने से ही क्या यह सिद्ध माना जा सकता है कि इस संवत् का कोई दूसरा नाम न था। इसका कोई प्रमाण नहीं कि जिस समय के ये लेख पृथिवी तो छान डाली गई नहीं और न सारे मकान, मन्दिर, खंडहर आदि ही ढूँढ़ डाले जा सकें। इस संवत् के प्रचारक मालव-देशवासी ही हैं। पर इससे क्या यह अर्थ निकाला जा सकता है कि मालवा के किसी एक मनुष्य ने किसी विशेष के उपलक्ष्य में यह संवत् नहीं चलाया? कोई असंभव बात तो मालूम होती नहीं। पुरुष-विशेष के द्वारा, किसी बहुत बड़े काम



मालव में, चलाया जा सकता है। रोमन संवत् मालव-निवासियों के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु वह रोम-नगर की नींव डालने की घटना-विशेष की यादगार में चलाया गया था। इसी तरह मालव-संवत् का भी, किसी एक मनुष्य के द्वारा, किसी विशेष घटना के कारण, चलाया जाना सर्वथा संभव है। मालवा में मालव लोग बहुत पुराने जमाने से रहते थे। गौतम बुद्ध के समय से तो उनका नाम-विदेश साफ तौर पर किया गया पाया जाता है। पर उस जमाने में मालव-संवत् का प्रचार न था—उसका अस्तित्व ही न था। इस संवत्सर की उत्पत्ति ईसा के ५७ वर्ष पहले हुई मानी जाती है। इससे यह देखना चाहिए कि उस समय मालवा में कोई बहुत बड़ी घटना हुई थी या नहीं और विक्रमादित्य नाम का कोई राजा वहाँ था या नहीं।

जिन ताम्रपत्रों के आधार पर डाकूर कीलहान ने अपनी कल्पना का मन्दिर खड़ा किया है उनमें से एक बहुत पुराने पत्र में 'मालवेश' शब्द आया है। यह शब्द इसी मालव-संवत् के सम्बन्ध में है। इससे यह सूचित है कि इसमें यद्यपि संवत्सर के प्रवर्तक राजा का नाम नहीं है, तथापि यह संवत् किसी राजा का चलाया हुआ ज़रूर है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस ताम्रपत्र के खोदने या खोदवाने वालों को उस राजा का नाम न मालूम था। जैसे शक-संवत् का प्रयोग करने वाले उसके प्रवर्तक का नाम सदा नहीं देते वैसेही, जान पड़ता है कि इस संवत् के प्रवर्तक का नाम इन पुराने शिला-लेखों और ताम्रपत्रों में नहीं दिया गया; केवल मालव-संवत् या मालवेश-संवत् दिया गया है। पर इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि इसका प्रवर्तक कोई राजा या पुरुष-विशेष न था। मालव-निवासियों के एक देश या स्थान छोड़ कर अन्य देश या स्थान में जाने की किसी घटना का कुछ पता नहीं। न उनके किसी प्रसिद्ध नगर या इमारत बनाने की किसी घटना का कहीं कोई उल्लेख है। न उनके द्वारा कोई किसी और ही बहुत बड़ी बात का कोई

प्रमाण। फिर मालव-निवासियों के द्वारा इस संवत् का चलाया जाना क्यों माना जाय? उसका प्रवर्तक क्यों न कोई राजा माना जाय? 'मालवेश' का अर्थ क्या 'मालव देश के राजा' के सिवा और कुछ हो सकता है?

जरा देर के लिए मान लीजिए कि इसका आदिम नाम मालव-संवत् ही था। अच्छा तो इस नाम को बदल कर कोई 'विक्रम-संवत्' करेगा क्यों? कोई भी समझदार आदमी दूसरे की चीज़ का उल्लेख अपने नाम से नहीं करता। किसी विजेता राजा को दूसरे के चलाये संवत् को अपना कहने में क्या कुछ भी लज्जा न मालूम होगी? वह अपना एक नया संवत् सहजही में चला सकता है। किसी के संवत् का नाम बदल कर उसे अपने नाम से चलाना और फिर उसे ६०० वर्ष पीछे फेंक देना बड़ी ही अस्वाभाविक बात है। भारतवर्ष का इतिहास देखने से मालूम होता है कि जितने विजेता राजाओं ने संवत् चलाया है सबने नया संवत् अपनेही नाम से चलाया है। पुराणों और भारतवर्ष की राजनीति-सम्बन्धिनी प्राचीन पुस्तकों में इस बात की साफ़ आज्ञा है कि बड़े बड़े नामी और विजयी नरेशों को अपना नया संवत् चलाना चाहिए। युधिष्ठिर, कनिष्क, शालिवाहन और श्रीहर्ष आदि ने इस आज्ञा का पालन किया है। शिवाजी तक ने अपना संवत् अलग चलाने की चेष्टा की है। अतएव दूसरे के संवत् को अपना बनाने की कल्पना हास्यास्पद और सर्वथा अस्वाभाविक है। अपना संवत् चलाने की अपेक्षा दूसरे के संवत् को अपना बनाना बहुत कठिन है। संवत् चलानेवाले का एक मात्र उद्देश यह रहता है कि उसके द्वारा उसका नाम चले और जिस उपलक्ष्य में संवत् चलाया गया हो उसकी याद लोगों को बनी रहे। साथही उस सरणीय घटना का काल भी लोगों को न भूले। इन सब बातों पर ध्यान देने से यही कहना पड़ता है कि जो विद्वान् यशोधर्मन् को मालव-संवत् का नाम बदलने



वाला समझते हैं उन्होंने बिना पूर्वापर विचार किये ही ऐसा समझ रक्खा है ।

डाक्टर भाण्डारकर कहते हैं कि गुप्तवंशी राजा प्रथम चन्द्रगुप्त ने पहले पहल अपना नाम विक्रमादित्य रक्खा और उसी ने मालव-संवत् का नाम, अपने नामानुसार, बदल कर विक्रम-संवत् कर दिया । परन्तु इस बात पर विश्वास नहीं होता । इसलिए कि गुप्तवंशी राजाओं ने अपना संवत् प्रथम चन्द्रगुप्त के बहुत पहले ही चला दिया था । अतएव अपने पूर्वजों के चलाये हुए संवत् का तिरस्कार करके मालव-देश के संवत् को चन्द्रगुप्त क्यों अपने नाम से चलाने लगा । फिर एक बात और भी है । चन्द्रगुप्त के सौ वर्ष पीछे के ताम्रपत्रों में भी मालव-संवत् का उल्लेख मिलता है । यदि चन्द्रगुप्त उसका नाम बदल देता तो फिर क्यों कोई मालव-संवत् का उल्लेख करता ? अतएव इस तरह की कल्पना विश्वासयोग्य नहीं ।

यशोधर्मन् का जो एक शासनपत्र मिला है उसमें उस बेचारे ने न तो कोई संवत् चलाने की बात कही है, न विक्रमादित्य उपाधि ग्रहण करने की बात कही है, और न मालव-संवत् का नाम बदलने की चर्चा की है । उसने सिर्फ इतनी बात कही है कि मेरे राज्य का विस्तार गुप्त-नरेशों के राज्य-विस्तार से भी अधिक है । वह गुप्त-नरेशों के प्रभुत्व को अपने प्रभुत्व से बहुत अधिक समझता था । इसीलिए उसने इस शासनपत्र द्वारा यह सूचित किया है कि अब मेरा राज्य गुप्तों के राज्य से कम नहीं, प्रत्युत अधिक है । अर्थात् अब मैं उनसे भी बड़ा राजा हूँ । यदि उसने मालव-संवत् का नाम विक्रम-संवत् में बदला होता तो वह इस बात को भी जरूर कहता कि गुप्तों की तरह मैंने भी अपना संवत् चलाया है । परन्तु उसने यह कुछ भी नहीं किया । अतएव यह उक्ति, यह तर्कना, यह कल्पना भी सब तरह निःसार जान पड़ती है ।

यहाँ तक जिन बातों का विचार हुआ उससे यही मालूम होता है कि ईसा के ५७ वर्ष पहले

विक्रमादित्य नाम का कोई राजा जरूर था । उसी ने विक्रम-संवत् चलाया । वह मालव-देश का राजा था । इसलिए शुरू शुरू के शिलालेखों और ताम्रपत्रों में यह संवत् मालव-संवत् के नाम से भी अभिहित हुआ है । अब यदि उस समय विक्रमादित्य के अस्तित्व का कोई प्रमाण मिल जाय तो उसके विषय में की गई बहुत सी शंकाओं के लिए जगहही न रहे ।

पुरातत्त्ववेत्ता ईसा के पूर्व पहले शतक में किसी विक्रमादित्य का होना मानने में बेतरह सड्डोच करते हैं । इसलिए कि उस समय का न कोई ऐसा सिक्का मिला है जिसमें इस राजा का नाम हो, न कोई शिलालेख ही मिला है, न कोई ताम्रपत्र ही मिला है । परन्तु उनकी यह युक्ति बड़ी ही निर्बल है । तत्कालीन प्राचीन इतिहास में इस राजा के नाम का न मिलना उसके अस्तित्व का बोधक नहीं माना जा सकता । पुराने जमाने के सारे ऐतिहासिक लेख प्राप्त कहाँ ? यदि वे सब प्राप्त हो जाते और उनमें विक्रमादित्य का नाम न मिलता तो ऐसी शङ्का हो सकती थी । पर बात ऐसी नहीं है । विक्रमादित्य का नाम जरूर मिलता है । दक्षिण में शातवाहन-वंशीय हाल नामक एक राजा हो गया है । विन्सेंट स्थित साहने उसका समय ६८ ईसवी निश्चित किया है । हाल ने गाथा-सप्तशती नाम की एक पुस्तक प्राचीन महाराष्ट्री भाषा में लिखी है । उसके पसंठवें पृष्ठ पर संस्कृतरूपान्तर इस प्रकार है :—

संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लक्षम् ।  
चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥

इस पद्य में विक्रमादित्य की उदारता का वर्णन है—उसके द्वारा एक लाख रुपये दिये जाने का उल्लेख है । इससे इस बात का पूरा प्रमाण मिलता है कि हाल-नरेश के पहले विक्रमादित्य नाम का दानशील राजा कोई जरूर था । अब इस बात का विचार करना है कि इस राजा ने शकों का पराजय किया था या नहीं ? उसका शकारि होना या नहीं है या अयथार्थ ?



डाकूर हार्नेली और कीलहार्ने आदि का खयाल है कि मुल्तान के पास करूर में यशोधर्मन् ने ही मीरकुल को, ५४४ ईसवी में, परास्त किया था । पर इसका कोई प्रमाण नहीं । यह सिर्फ इन विद्वानों का खयाली पुलाव है, और कुछ नहीं । इन्होंने अलबरूनी के लेखों का जो प्रमाण दिया है उनसे यह बात कदापि सिद्ध नहीं होती । अलबरूनी के लेख का पूर्वापर विचार करने से यह मालूम होता है कि उसके मत से पूर्वोक्त करूर का युद्ध ५४४ ईसवी के बहुत पहले हुआ था । अतएव इस बात को मान लेने में कोई बाधा नहीं कि विक्रमादित्य ने ही इस युद्ध में शकों को परास्त किया था । इसी विजय के कारण वह शकारि नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसी समय से और इसी उपलक्ष्य में उसने अपने नाम से विक्रम-संवत् चलाया । यह जीत बहुत बड़ी थी । इसी कारण, उसके अनन्तर शकों और अन्याय श्लेच्छों का पराभव करनेवाले राजाओं ने विक्रमादित्य उपाधि धारण करना अपने लिए गर्व की बात समझा । तबसे विक्रमादित्य एक प्रकार की उपाधि या पदवी हो गई ।

कल्हण ने राजतरङ्गिणी में विक्रमादित्य-विषयक खो भूलें की हैं । हर्ष-विक्रमादित्य और शकारि विक्रमादित्य, दोनों को गड़ु मड़ु कर दिया है । डाकूर और आदि विद्वानों ने इस बात को अच्छी तरह सिद्ध करके दिखा दिया है । पुरातत्त्वज्ञ पण्डित कल्हण की इन भूलों को बिना किसी सोच-विचार के भूलें कहते हैं । कल्हण के वर्णन से स्पष्ट है कि बादमीर के इतिहास का सम्बन्ध दो विक्रमादित्यों से रहा है । एक मातृगुप्त को भेजनेवाले हर्ष-विक्रमादित्य से, दूसरे प्रतापादित्य के सम्बन्धी शकारि विक्रमादित्य से । इनमें से हर्ष-विक्रमादित्य ईसा की छठी शताब्दी के प्रथमार्द्ध में विद्यमान था । रहा शकारि विक्रमादित्य । सो वह हाल की सप्तशती में किये गये विक्रमादित्य के सिवा और कोई नहीं हो सकता । ईसा के पूर्व, प्रथम शतक में, शकों का पराभव करनेवाला वही था । इसका एक और प्रमाण लीजिए:—

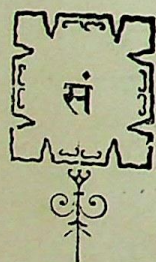
विन्सेट सिथ साहब ने अपने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में लिखा है कि शक जाति के श्लेच्छों ने ईसा के कोई १५० वर्ष पहले उत्तर-पश्चिमाञ्चल से इस देश में प्रवेश किया । उनकी दो शाखायें हो गईं । एक शाखा के शकों ने तक्षशिला और मथुरा में अपना अधिकार जमाया और क्षत्रप नाम से प्रसिद्ध हुए । इनके सिक्कों से इनका पता ईसा के १०० वर्ष पहले तक चलता है । उसके पीछे उनके अस्तित्व का कहीं पता नहीं लगता । दूसरी शाखा-वालों ने ईसा की पहली शताब्दी में काठियावाड़ को अपने अधिकार में किया । धीरे धीरे इन लोगों ने उज्जैन को भी अपने अधीन कर लिया । इन्हें गुप्त-वंशी राजाओं ने हरा कर उत्तर की ओर भगा दिया । अच्छा, तो इनके पराभवकर्त्ता तो गुप्त हुए । पहली शाखा के शकों का विनाश किसने साधन किया ? क्या बिना किसी के निकाले ही वे इस देश से चले गये ? अपना राज्य अपना—अधिकार—क्या कोई योंही छोड़ देता है ? उनका पता पीछे के ऐतिहासिक लेखों से चलता क्यों नहीं ? इसका क्या इसके सिवा और कोई उत्तर हो सकता है कि ईसा के ५७ वर्ष पहले विक्रमादित्य ही ने उन्हें नष्ट-विनष्ट करके इस देश से निकाल दिया ? इसी विजय के कारण उसको शकारि उपाधि मिली और संवत् भी इसी घटना की याद में उसने चलाया । मुल्तान के पास करूर वाला युद्ध इन्हीं तक्षशिला और मथुरा के शकों और विक्रमादित्य के मध्य हुआ था । इसके सिवा इसका अब और क्या प्रमाण चाहिए ?

इस पर भी शायद कोई यह कहे कि यह सब सही है । पर कोई पुराना शिलालेख लाओ, कोई पुराना सिक्का लाओ, कोई पुराना ताम्रपत्र लाओ जिसमें विक्रमसंवत् का उल्लेख हो । तब हम आपकी बात मानेंगे, अन्यथा नहीं । खुशी की बात है कि इस तरह का एक प्राचीन लेख भी मिला है । यह पेशावर के पास तख्तेबाही नामक स्थान में प्राप्त हुआ है । इसलिए उसी के नाम से यह प्रसिद्ध है । यह उत्कीर्ण लेख पार्थियन राजा गुडफर्स के समय का



है। यह राजा भारत के उत्तर-पश्चिमाञ्चल का स्वामी था। इस लेख में १०३ का अङ्क है; पर संवत् का नाम नहीं। गुड्फर्स के सिंहासन पर बैठने के छद्दीसवें वर्ष का यह लेख है। डाकूर फ्लीट और मिस्टर विन्सेट स्मिथ ने अनेक तर्कनाओं और प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि यह १०३ विक्रम-संवत् ही का सूचक है। राजा गुड्फर्स का नाम यहूदियों की एक पुस्तक में आया है। यह पुस्तक ईसा के तीसरे शतक की लिखी हुई है। इससे और इस सध्वन्थ के और प्रमाणों से, यह निःसंशय प्रतीत होता है कि विक्रम-संवत् का प्रचार ईसा के तीसरे शतक के पहले भी था और मालवा ही में नहीं, किन्तु पेशावर और काश्मीर तक में उसका व्यवहार होता था। इस पर भी यदि कोई इस संवत् का प्रवर्तक माल-वाधिपति शकारि विक्रमादित्य को न माने और उसकी उत्पत्ति ईसा के छठे शतक में हुई बतलाने की चेष्टा करे तो उसका ऐसा करना हठ और दुराग्रह के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

## आत्मोत्सर्ग ।



सार के विस्तीर्ण कर्म-क्षेत्र में सब प्राणियों द्वारा अगणित काम प्रति दिन नहीं, प्रति घन्टा, प्रति मिनट, यहाँ तक कि प्रति पल होते रहते हैं। अच्छे कामों के सम्पादन में कुछ विशेष गुणों का परिचय, किसी विशेष दशा में, देना ही आत्मोत्सर्ग कहलाता है। अच्छे काम करने में ही आत्मोत्सर्ग किया जाता है; परन्तु प्रत्येक अच्छे काम के करने में आत्मोत्सर्ग करने की आवश्यकता नहीं होती। अच्छे काम करने के लिए आत्मोत्सर्ग की विशेष आवश्यकता नहीं; परन्तु यह निश्चित है कि आत्मोत्सर्ग सुकर्म के लिए ही किया जाता है।

आत्मोत्सर्ग करने वाले में साहस का होना परमावश्यक है। संसार के सब काम—बड़े अथवा

छोटे—बुरे अथवा भले—साहस के बिना नहीं होते हैं। बिना साहस के बड़े कामों का होना तो कठिन ही नहीं, किन्तु असंभव सा है। संसार के सभी महा-पुरुष, जिन्होंने बहुत से विलक्षण खेल इस संसार रूपी नाट्य-शाला में दिखला कर इतिहास के पृष्ठों को अपने नाम से सुशोभित किया है, साहसी थे। बिना किसी प्रकार का साहस दिखलाये किसी जाति या किसी देश का इतिहास ही नहीं बन सकता। अपने साहस के कारण ही अर्जुन, भीम, भीष्म, अभिमन्यु इत्यादि आज हमारे हृदय में जागरूक हैं। आल्पस पर्वत के विशाल शिखरों को पार करने वाले हनीबाल और नपोलियन का नाम वीर-वरो के शुभ नामों के साथ केवल उनके अतुलनीय साहस के कारण ही लिया जाता है। यह साहस ही का प्रभाव था, जिसने तैमूर ऐसे लंगड़े गड़रिये को, बाबर ऐसे सैकड़ों दफे पराजित किये गये क्षुद्र भूमिपाल को, शिवाजी और क्रोमवेल ऐसे सामान्य व्यक्तियों को रणजीतसिंह और संग्रामसिंह ऐसे काने खुतरे को कुछ से कुछ साहस दिया।

आत्मोत्सर्ग करने वाले मनुष्य का साहस होना तो परमावश्यक है, परन्तु साहसी मनुष्य का आत्मोत्सर्गी होना आवश्यक नहीं, क्योंकि केवल साहस ही प्रकट करना आत्मोत्सर्ग नहीं कहलाता। सूर-वंश के क्रूरकर्मा बादशाह महम्मद आदिल पर भरे दरबार में, कितने ही सिरों और धड़ों को धरणी पर गिराकर एक मुसलमान युवक ने आत्मोत्सर्ग करने का असीम साहस प्रकट किया था। कारण यह था कि बादशाह ने उसके पिता की जागीर जब्त कर ली थी। इसी से उस युवक ने इतने साहस का काम किया। युवक मारा गया। उसके साहस और उसकी निर्भीकता का कुछ ठिकाना है। परन्तु क्रोधान्ध होकर स्वार्थ-वश ऐसा साहस करने से युवक का यह कार्य किसी प्रकार प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का साहस चार और डाकू भी कभी कभी कर गुजरते हैं।



महाराजे भी अपनी कुत्सित इच्छाओं को पूरे करने के लिए कभी कभी इससे भी बढ़ कर साहस के काम कर डालते हैं। ऐसा साहस नीच श्रेणी का साहस है।

मध्यम श्रेणी का साहस प्रायः शूर-वीरों में पाया जाता है। वह उनके उच्च विचार और निर्भीकता को भली भाँति प्रकट करता है। इस प्रकार के साहस वाले मनुष्यों में बेपरवाही और स्वार्थ-हीनता की कमी नहीं होती; परन्तु उनमें ज्ञान की कमी अवश्य पाई जाती है। अकबर बादशाह के पास दो राजपूत नौकरी के लिए आये। अकबर ने उनसे पूछा कि तुम क्या काम कर सकते हो ? उनमें से एक बोले—“जहाँपनाह, करके दिखलावेँ या केवल कह कर”। बादशाह ने करके दिखलाने की आज्ञा दी। राजपूतों ने घोड़ों पर सवार होकर अपने अपने बछें सँभाले और अकबर के सामने ही एक दूसरे पर वार करने लगे। थोड़ी देर बाद एक दूसरे पर बेतरह टूट पड़े। बादशाह के देखते दोनों घोड़े से नीचे आ रहे और मर डंडे हो गये। बादशाह पर इस वीरता का बड़ा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार का साहस निस्संदेह श्रेणीय है; परन्तु ज्ञान की आभा की कमी के कारण निस्तेज सा प्रतीत होता है।

आत्मोत्सर्ग के लिए सर्वोच्च श्रेणी के साहस आवश्यकता होती है। ऐसे साहस के काम करने के लिए हाथ पैर की बलिष्ठता आवश्यक है; धन, मान इत्यादि का होना भी आवश्यक है—जिन गुणों का होना आवश्यक है वे हृदय की पवित्रता तथा उदारता और चित्र की दृढ़ता हैं। ऐसे गुणों की प्रेरणा से उत्पन्न हुआ साहस तब तक पूर्णतया प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता जब तक उसमें एक और गुण सम्मिलित न हो। वह गुण का नाम कर्तव्य-परायणता है। कर्तव्य विचार से युक्त होने ही पर साहसी मनुष्य आत्मोत्सर्गी बन सकता है। कर्तव्य का विचार केवल साहसी मनुष्य में होना चाहिए। इस विचार

से शून्य होने पर, कोई भी मनुष्य, फिर चाहे उसके और विचार कैसे ही अच्छे क्यों न हों, मानव जाति की कुछ भी भलाई नहीं कर सकता। अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ मनुष्य कभी भी परोप-कारपरायण या समाज-हितचिन्तक नहीं कहा जा सकता। विना इस विचार के मनुष्य अपने परि-वार—नहीं नहीं, अपने शरीर अथवा अपनी आत्मा तक का कोई उपकार नहीं कर सकता। कर्तव्य-ज्ञान-शून्य मनुष्य को मनुष्य नहीं, पशु समझना चाहिए।

आत्मोत्सर्गकर्ता के लिए कर्तव्य-परायण बनना परमावश्यक है। विना कर्तव्य-परायण हुए मनुष्य आत्मोत्सर्ग नहीं कर सकता। परन्तु विदित रहे कि कर्तव्य-परायण ही होना आत्मोत्सर्गी होना नहीं है। आत्मोत्सर्गी के हृदय में यह बात अवश्य उत्पन्न होनी चाहिए कि जो कुछ मैंने किया वह केवल अपना कर्तव्य किया। मारवाड़ के भौरुदा गाँव का ज़मींदार बुद्धनसिंह किसी भगड़े के कारण स्वदेश छोड़ जयपुर चला गया और वहाँ बस गया। थोड़े ही दिनों बाद मरहटों ने मारवाड़ पर आक्रमण किया। यद्यपि बुद्धन मारवाड़ को विलकुल ही छोड़ चुका था, तथापि शत्रुओं के आक्रमण का समाचार पाकर और मातृभूमि को संकट में पड़ा हुआ जान कर, उसका रक्त उबल पड़ा। स्वदेश-भक्ति ने उसे बतला दिया कि यह समय ऐसा नहीं है कि तू अपने घरेलू भगड़ों को याद करे। उठ और अपना कर्तव्य-पालन कर। इस विचार ने उसे इतना मतवाला कर दिया कि वह अपने १५० साथियों को लेकर, विना किसी से पूछे, जयपुर से तुरन्त चल पड़ा। देश भर में मरहटे फैले हुए थे। उनके बीच से होकर निकल जाना कठिन काम था। परन्तु बुद्धन के साहस के सामने उस कठिनता को मस्तक झुकाना पड़ा। एक दिन अपने मुठ्ठी भर साथियों को लिये वह मरहटों के बीच से होकर निकल ही गया। इस तरह निकल जाने से उसके बहुत से साथी रण-



क्षेत्र रूपी अग्नि-कुण्ड में हुत हो गये । जीवित बचे हुएों में बुद्धनसिंह भी था । वह समय पर अपने देश और राजा की सेवा करने के लिए पहुँच गया । इस घटना को हुए बहुत दिन हो गये ; परन्तु आज तक वीर-जाति राजपूत अपने कर्तव्य-परायण वीर बुद्धन की वीरता को सम्मान-पूर्वक याद करती है । राजपूत-महिलायें आज भी बुद्धन और उसके वीर साथियों की वीरता के गीत गाकर चंचलों के चित्त को भी गंभीर और स्तब्ध करती हैं । भौरुदा में आज भी एक स्तम्भ उन वीरों की यादगार में खड़ा हुआ इतिहास-वेत्ताओं के हृदय को उत्साहित करता है ।

इन गुणों के होने पर भी आत्मोत्सर्ग करने वाले के लिए स्वार्थत्याग करना भी परमावश्यक है । इस संसार में हजारों ऐसे काम हुए हैं जिनको लोग बड़े उत्साह से कहते और सुनते हैं । उन कामों को वे बहुत अच्छा समझते हैं और उनके करने वालों को सराहते हैं । परन्तु वास्तव में उन कामों में थोड़े ही से ऐसे हैं जो स्वार्थ से खाली हों । समय पड़ने पर अपनी जान पर खेल जाने, अथवा असामान्य साहस प्रकट करने, में सदा आत्मोत्सर्ग नहीं होता; क्योंकि बहुधा ऐसे काम करने वाले यशो-लाभ के लाभ से, अपने नाम को कलंकित होने से बचाने के इरादे अथवा लूट मार के द्वारा धनोपार्जन करने की इच्छा से, ऐसे मदान्ध हो जाया करते हैं कि वे अपने मतलब के लिए कठिन से भी कठिन काम करने में संकोच नहीं करते ।

आत्मोत्सर्गी व्यक्ति में एक गुप्त शक्ति रहती है, जिसके बल से वह दूसरे मनुष्य को दुःख से बचाने के लिए प्राण तक देने को प्रस्तुत हो जाता है । धर्म, देश, जाति और परिवार वालों ही के लिए नहीं, किन्तु संकट में पड़े हुए एक अपरिचित व्यक्ति के सहायतार्थ भी, उसी शक्ति की प्रेरणा से वह सारे संकटों का सामना करने को तैयार हो जाता है । अपने प्राणों की वह लेश मात्र भी परवा नहीं करता । हर प्रकार के क्लेशों को वह प्रसन्नता-पूर्वक

सहता और स्वार्थ के विचारों को वह अपने चित्त में फटकने तक नहीं देता है ।

इस संसार में लाखों मनुष्य ऐसे हैं जो दुर्गुणों में शैतान के भी कान काटते हैं । उनके क्रूर कामों को सुन कर रोमांच हो आता है । संसार में ऐसे कामों की कुछ कमी नहीं है । ऐसे काम “कुर्म” कहलाते हैं । कुर्म बहुत ही बुरा है । परन्तु बुरी बातों से कभी कभी भलाई भी हो जाती है । यदि सब काम अच्छे होते और कुर्म का नाम न होता तो अच्छे कामों की क्रूर ही न होती । इस दुःख में वे सब सामान्य काम समझे जाते; कोई किसी को भी अपने से उच्चतर न समझता—सब कृतज्ञता दास और अभिमान की मूर्ति बन बैठते । परन्तु ईश्वर की माया बड़ी विचित्र है । उसने संसार को नाश शाला बना रक्खा है । उसकी रंगभूमि पर मनुष्य त्मायें नटवत् अपना अपना अच्छा या बुरा सा दिखा रही हैं । अच्छे बुरे दोनों तरह के काम हैं । पर बुरे काम अधिक होते हैं । बुरे कामों की अधिकता ही के कारण हमने अच्छे कामों और उन करनेवालों का सम्मान करना सीखा है । संसार में बुरे कामों ने अन्धकार-पूर्ण बना रक्खा है । अन्धकार का काम उसमें लेम्प का काम देते हैं । चन्द्र और तारा गण का काम सुकर्म उसी समय दे सकते हैं । कुर्म-रूपी रात्रि वर्तमान है । तात्पर्य यह कि कुर्म की अधिकता ही के कारण अच्छे काम प्रशंसित समझे जाते हैं और अच्छे कामों की असलियत अज्ञान-तरह प्रकट होने के लिए ही संसार में बुरे कामों को होना आवश्यक है । आत्मोत्सर्गरूपी सूर्य भी अन्धकार के पूर्ण तेज से तभी प्रकट होता है जब संसार अन्धकार से घिरा रह चुका हो ।

यदि आप आत्मोत्सर्गी बनने के लिए तैयार हैं तो आपको अवसर की राह देखने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि आत्मोत्सर्ग करने का अवसर मनुष्य के जीवन में, पल पल में, आया करता है । देश, काल, और कर्तव्य पर विचार कीजिए ।



वर्षा-रहित होकर साहस को न छोड़ते हुए कर्तव्य-परायण बनने का प्रयत्न कीजिए ।

गणेश-शङ्कर विद्यार्थी ।

## वर्षा-विलास ।

( १ )

ह वर्षा नहीं है । प्रकृति देवी का आतप शान्त करने वाला प्रातःस्नान है । प्रकृति का बिखरा हुआ सघन और कृष्ण केश-कलाप मेघ-मण्डल है । बीच बीच में चमकने वाले उसके आभूषण विद्युलतायें हैं । जल-कुम्भों के परस्पर घर्षण से जो नाद उत्पन्न होता है वही मेघों की गर्जना है ।

( २ )

यह देखो, कई महीने लगातार परिश्रम करने से थका और मलीन मुख-मण्डलधारी पथिक सूर्य, अपनी प्रिया वर्षा ऋतु के सहवास में, कुछ समय आनन्दपूर्वक विताने का निश्चय करके, उससे मिलने के लिए अत्यन्त व्याकुल होकर, कभी घनी भाड़ियों की छिपते और कभी विस्तृत मैदान में प्रकट होते-होते कभी शीघ्र शीघ्र पग बढ़ाता हुआ आरहा है ।

( ३ )

ज्ञानोपरान्त मलिन वस्त्र त्याग कर आज प्रकृति ने मङ्गलदायक हरित वस्त्र धारण किया है । सजित होकर प्रिय पति की मार्ग-प्रतीक्षा करने के लिए जिस समय वह द्वार पर आई उस समय अपने सवृष्णानेत्रों से उसे ( सूर्य को ) अपनी ओर देखी । वह हर्ष से गद् गद् हो गई; शरीर पुलकित हो उठा । अतएव आनन्दातिरेक धारण उसके सारे अङ्गों से प्रस्वेद बहने लगा ।

( ४ )

“प्रिये ! प्रकृति ! धरणि ! हाय हाय ! मुझ दुष्ट को अत्यन्त विरह-ताप से तू कितनी निर्बल और जर्जर

हो गई है । तुझ सहश साध्वी को सतानेवाला मैं बड़ा ही दुष्ट और अधम हूँ” इस प्रकार कह कर बादल-रूपी काले कपड़ों में अपना मुख छिपा कर सूर्यदेव ने दिन दहाड़े बड़े बड़े अश्रु-बूँदों की झड़ी लगा दी ।

( ५ )

पाठक, इन्हें यहाँ एकान्त में छोड़िए । आइए, देखिए, यह वर्षा ऋतु का सायंकालीन बादल बहुरूपिये के समान कैसे कैसे रंग बदल रहा है । कभी तो वह नवयौवना नायिका के आरक्त अधरो की उपमा पाने की कोशिश करता है । कभी उसके काञ्चन-वर्ण अङ्ग की बराबरी करने का प्रयत्न करता है । परन्तु किसी में कृतकार्य न होते देख अब उसका मुख-मण्डल क्रमशः मलिन होने लगा । अन्त में वह यहाँ तक मलिन हुआ कि रमणी के केश-कलाप की उपमा को पहुँच ही गया ।

( ६ )

“सावधान, अब आनन्द-महोत्सव होने ही वाला है ” द्वारपाल के ये कड़केदार शब्द सुन कर, मारे हर्ष के, सौदामिनी देवी आपे से बाहर होगई । बादलचन्दों ने चँदोवा तान दिया; मयूर द्विगुणित उत्साह से नाचने लगे; दादुर नकीयों ने विरदावली पढ़ना शुरू किया । यह समारोह देख, हरित वस्त्र परिधान की हुई सुन्दरी प्रकृति रमणी भी हँसती हुई तमाशा देखने लगी ।

( ७ )

बादल कुछ देर के लिए हट गये । वर्षा ऋतु के चन्द्रमा की निर्मल चाँदनी चारों ओर छिटक गई । प्रकृति देवी का सौन्दर्य अवर्णनीयता को पहुँच गया । उसे देख मदमत्त हो कर रसिक समुद्र ने वंशी बजाना शुरू किया । उसकी तान सुन कर नदियाँ लोक-लाज छोड़ एक दम प्रियतम से मिलने के लिए बाहर निकल पड़ीं । मार्ग में दो-दो चार चार आपस में मिल कर मंजुल ख से गाते बजाते प्राणेश्वर के पास जा पहुँचीं । अहा ! वह देखो रसिक समुद्र दूर से इन्हें अपनी ओर आते देख, हर्ष और प्रेम से गद्-गद् हो कर, वंशी द्वारा आलाप की लहरें ऊँची उठा



रहा है । पल भर में समस्त नदियाँ उससे जा मिलीं ।  
अद्भुत नृत्य होने लगा । उसे देख श्रीमद्भागवत के  
दशम स्कन्ध में वर्णन की गई श्रीकृष्ण की रास-  
क्रीड़ा का मुझे सन्देह हुआ ।

( ८ )

नदियाँ रूपी गोपियों से वेष्टित, चुम्बित और  
अलङ्कृत मन्द मन्द बाँसुरी बजा कर उन्हें रिक्ताने  
वाला, वर्ण में समानता रखने वाला, वर्षा ऋतु का  
यह रसिक समुद्र रास-क्रीड़ा में गोपियों द्वारा परि-  
वेष्टित श्रीकृष्ण की समानता को पहुँच गया है ।

( ९ )

एक पथिक कहता है :—“ हे मेघ, वर्ण में तू  
श्रीकृष्ण के समान है । आतप से व्याकुल हुए मनुष्यों  
को शान्त करने में केवल तू ही समर्थ है । दादुर,  
पिक, मयूर आदि के लिए तो तू ईश्वर-तुल्य है ।  
इतना होने पर भी कवियों ने तुझे मेरे सदृश विरही  
जनों का शत्रु लिखा है । इसके लिए तू खिन्न न हो ।  
कवियों की यह बड़ी भूल है । विरही मनुष्यों की  
असल शत्रु तो तेरी प्रिया चपला है, जो बारम्बार  
तुझसे उलझ कर मुझे अपनी प्रिया की याद दिला  
कर, कम्पित और व्याकुल कर रही है । ”

( १० )

स्मरणमात्र से ही मनुष्यों के सांसारिक ताप  
को हरण करने वाला, अक्षय कान्ति वाली अनेक  
विद्युलताओं से वेष्टित, यमुना-तट के श्रेष्ठ वृक्षों का  
अवलम्बन करने वाला—विचित्र मेघ, श्रीकृष्ण मुझे  
सदा याद आता रहे ।

( सङ्कलित )

लक्ष्मण गोविन्द आठले ।

## उचित उत्तर ।

( १ )

हैं मूढमति वह जो समझता है कि ‘ मैं मतिमान हूँ,  
मैं सर्व-साधारण मनुष्यों से अधिक सज्जन हूँ ’ ।  
यदि देखना चाहो कि है यह सत्य अथवा अन्यथा,  
तो ध्यान से सुन लीजिए यह एक छोटी सी कथा ॥

( २ )

जलकुम्भ कन्धे पर धरे, जलता हुआ दीपक लिये,  
नर एक अन्धा रात में एकाग्र मन अपना किये;  
भर कर घड़े को घाट से था लौट कर घर आ रहा;  
यह देख एक अबोध ने उपहासयुक्त उससे कहा—

( ३ )

“ क्या कुछ तुम्हें है दीखता यों हाथ में दीपक लिये ?  
यदि कुछ नहीं, यह स्वांग तुमने है रचा फिर किस लिये ?  
अन्धे दगों के ही नहीं हो, जान पड़ता है यही,  
प्रयुक्त तुम्हारी सर्वथा हृद्दृष्टि भी जाती रही ! ”

( ४ )

आक्षेप-पूरित वचन सुन अन्धा नहीं लज्जित हुआ;  
परिणामदर्शी भी कभी कोई कहीं लज्जित हुआ ?  
वह जानता था जो किया है ठीक ही मैंने किया;  
सत्वर उसे अतएव उसने यह उचित उत्तर दिया ॥

( ५ )

“ भाई, यहाँ मैंहीं अकेला हूँ नहीं अन्धा खड़ा;  
है एक और अबोध अन्धा स्थित यहाँ मुझ से बड़ा ।  
जो जानता है यह नहीं यदि दीप यह होता नहीं  
तो फूटकर मेरे घड़े का चूर हो जाता यहीं ॥

( ६ )

“ परिणामदर्शी लोग भी यदि अन्धश्रेणी में रहें,  
प्रत्यक्ष भी जो देख सकते हैं न उनको क्या कहें ?  
तुमही कहो किसने कहा तुम से कि तुम बच कर चलो;  
तुमही कहो है कौन अन्धा ? सोच लो, सुविचार लो ॥ ”

( ७ )

सुन कर उचित उत्तर वहाँ से मूढ़ तत्क्षण चल दिया;  
लज्जित हुआ जब चित्त में सिद्धान्त यह स्वीकृत किया—  
हैं मूढमति वह जो समझता है कि ‘ मैं मतिमान हूँ,  
मैं सर्वसाधारण मनुष्यों से अधिक सज्जन हूँ ’ ॥\*

सत्कविदास

\*एक फारसी हिकायत के आधार पर—



## कालिदास की विद्वत्ता ।

### कवित्वशक्ति ।

कालिदास ने यद्यपि अपने जन्म से भारत ही को अलङ्कृत किया, तथापि वे अकेले भारत के ही कवि नहीं । उन्हें इस भूमिमण्डल का महाकवि कहना चाहिए । उनकी कविता से भारतवासियों ही की आनन्दबुद्धि नहीं होती । उसमें कुछ ऐसे गुण हैं कि अन्य देशों के निवासियों को भी उसके पाठ और परिशीलन से वैसाही आनन्द मिलता है जैसा कि भारतवासियों को मिलता है । जिसमें जितनी अधिक सहृदयता है, जिसने प्रकृति के प्रसार और मानव-हृदय के भिन्न भिन्न भावों का जितनाही अधिक ज्ञान प्राप्त किया है कालिदास की कविता से उसे उतना ही अधिक प्रमोदानुभव होता है । कविकुलगुरु की कविता में प्रमोदात्पादन की जो शक्ति है वह अविनाशनी है । हजारों वर्ष से न उसमें कमी हुई है—न उसमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हुआ है—और न आगे होने का भय ही है । जब तक इस विशाल विश्व के साक्षर जन सच्ची और सरस, स्वाभाविक और सुन्दर, कविता का आदर करते रहेंगे तब तक कालिदास के विषय में उनकी पूज्य बुद्धि भी अक्षुण्ण रहेगी । प्रमोदजनक और शिक्षादायक वस्तुओं को जब तक मनुष्यसमुदाय अपने लिए हित-कर समझेगा तब तक कालिदास की कीर्ति, यदि उत्तरोत्तर बढ़ेगी नहीं, तो कम भी न होगी ।

कालिदास को संस्कृत-कविता-रूपी आकाश का पूर्ण चन्द्रमा कहना चाहिए । उनके किस किस गुण की प्रशंसा की जाय । संस्कृत-भाषा पर उनका अधि-कार असामान्य था । उन्होंने अपनी कविता में चुन चुन कर सरल, पर सरस और प्रसङ्गानुरूप शब्दों की ऐसी योजना की है जैसी कि आज तक और किसी कवि की कविता में नहीं पाई जाती । उनकी प्रतिभा विश्वतोमुखी थी । उनकी कल्पनाओं की पहुँच

पृथ्वी, आकाश, पाताल सब कहीं थी । उनके वर्णन का ढंग बड़ा ही सुन्दर और हृदयस्पर्शी है । व्याकरण, ज्योतिष, अलङ्कारशास्त्र, नीतिशास्त्र, वेदान्त, सांख्य, पदार्थविज्ञान, इतिहास, पुराण आदि जिस शास्त्र, जिस विद्या और जिस विषय में उन्हें जो बात अपने मतलब की देख पड़ी है उसी को वहाँ से खींच कर उसके उपयोग द्वारा उन्होंने अपने मनोभावों को मनोहर से मनोहर रूप देकर उन्हें व्यक्त किया है ।

### कालिदास और शेक्सपियर ।

रचनानैपुण्य और प्रतिभा के विकाससम्बन्ध में कालिदास की बराबरी का यदि और कोई कवि हुआ है तो वह शेक्सपियर ही है । भिन्न भिन्न देशों में जन्म लेकर भी सारे संसार को अपने कवित्व-कौशल से एकसा मुग्ध करनेवाले यही दो कवि हैं । इनकी रचनायें इस बात का प्रमाण हैं कि इन दोनों के हृदय-क्षेत्र में एकही सा कवित्व-बीज वपन हुआ था । इनके विचार, इनके भाव, इनकी उक्तियाँ अनेक स्थलों में परस्पर लड़ गई हैं । जिस वस्तु को जिस दृष्टि से कालिदास ने देखा है प्रायः उसी दृष्टि से शेक्सपियर ने भी देखा है । शेक्सपियर ने अपने नाटकों में भिन्न भिन्न स्वभाववाले मनुष्यों के भिन्न भिन्न चित्र अङ्कित किये हैं । कालिदास ने भी ठीक वैसाही किया है । जिसका जैसा स्वभाव है उसका जैसा वैसाही चित्र उन्होंने उतारा है । जिस कार्य का परिणाम होना चाहिए उसका वैसाही निदर्शन उन्होंने किया है । प्रेमियों की जो दशा होती है, उनके हृदय में जिन विकारों का प्रादुर्भाव होता है, वे अपने प्रेम-पात्र को जिस दृष्टि से देखते हैं—कालिदास और शेक्सपियर दोनों के नाटकों में—इन बातों का सजीव चित्र देखने को मिलता है । शेक्सपियर के मैकबेथ, ओथेलो, रोमियो, जूलियट, मिरांडा और देसदेमोना आदि के चित्रों का मिलान कालिदास के दुष्यन्त, अग्निमित्र, पुरुरवा, शकुन्तला, प्रियंवदा आदि के चित्रों से करने पर यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि इन दोनों महाकवियों को



मानवी स्वभाव का कितना तलस्पर्शी ज्ञान था । कहीं कहीं पर तो इन महाकवियों के नाटक-पात्रों ने तुल्य प्रसङ्ग आने पर ठीक एकही सा व्यवहार किया है । शकुन्तला के विषय में दुष्यन्त कहता है:—

अभिमुखे मयि संहतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्

रोमियो भी जूलियट के विषय में प्रायः यही कहता है:—

She will not stay the siege of loving terms,  
Nor bide the encounter of assailing eyes.

शेक्सपियर और कालिदास में यदि कुछ भेद-भाव है तो यह है कि कालिदास प्रकृति-ज्ञान में अद्वितीय थे और शेक्सपियर मानवमनोभाव-ज्ञान में । मानव जाति के मनोभावों का जैसा सजीव चित्र शेक्सपियर ने चित्रण किया है वैसाही सजीव चित्र कालिदास ने प्राकृतिक पदार्थों का चित्रण किया है । कालिदास बहिर्जगत् के चित्रकार या व्याख्याता थे और शेक्सपियर अन्तर्जगत् के । मानवी मनोविकारों का कोई भेद शेक्सपियर से छिपा नहीं रहा । उसी तरह सृष्टि में जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं—जितने प्राकृतिक दृश्य हैं—उनका कोई भी रहस्य कालिदास से छिपा नहीं रहा । कवित्वशक्ति दोनों में ऊँचे दर्जे की थी ; परन्तु एक की शक्ति अन्तर्जगत् के रहस्यों का विश्लेषण करने की तरफ विशेष झुकी हुई थी, दूसरे की बहिर्जगत् के । इस निष्कर्ष से सब लोग सहमत हों या न हों ; परन्तु इन दोनों महाकवियों की रचनाओं को खूब ध्यान से पढ़ने और उन पर विचार करनेवाले इस बात से अवश्य सहमत होंगे कि कालिदास की तुलना यदि किसी महाकवि से की जा सकती है तो शेक्सपियर ही से की जा सकती है ।

### कालिदास और भवभूति ।

भवभूति भी नाटक-रचना में सिद्धहस्त थे । कृष्ण-रस का जैसा परिपाक उनकी कविता में देखा जाता है वैसा किसी अन्य कवि की कविता में नहीं

देखा जाता । मानवी हृदय के अन्तर्गत-भावों को जान लेने और उनके शब्द-चित्र बनाकर तद्वत्ता उन्हें सामाजिकों को हृदयङ्गम करा देने की विद्या भवभूति को खूब ही साध्य थी । कृष्ण-रस का—यत्र तत्र शृङ्गार और वीर का भी—भवभूति ने जहाँ जहाँ उत्थान किया है वहाँ वहाँ घटनाक्रम के अनुसार उस रस का धीरे धीरे तूफान सा आया है । कालिदास ने जिस बात को बड़ी खूबी के साथ थोड़े में कह दिया है उसी को भवभूति ने बेहद बढ़ाया है । मनोभावों का बढ़ा कर वर्णन करना कहीं अच्छा लगता है, कहीं नहीं अच्छा लगता । देश, काल, पात्र और अवस्था का खयाल रख कर प्रसङ्गोपात्त विषय का आकुञ्चन किंवा प्रसारण किया जाना चाहिए । युद्ध के लिए किसी को उत्तेजित करने के लिए वीररस-परिपोषक लम्बी वक्तव्य असामयिक और अशोभित नहीं होती । परन्तु मनुष्य इष्ट-वियोग अथवा अन्य किसी कारण से व्यथित है उसके मुख से निकली हुई धाराप्रवाह वक्तव्य अप्राकृतिक मालूम होती है । थोड़े में अप्रत्यक्ष-कथा कह कर चुप हो जाना ही व्यथा-गभीरता का दर्शक है । शकुन्तला के वियोग दुष्यन्त ने, और मालती के वियोग में माधव ने, कुछ कहा है वह इस बात का प्रमाण है कि जिस को भवभूति बड़े बड़े श्लोकों, लम्बे लम्बे समासों और चुने हुए शब्दों में कह कर भी पाठकों को भवभूति न कर सकते थे उसी को कालिदास थोड़े में इस खूबी से कह सकते थे कि वीर-दर्शकों या पाठकों के चित्त में चुभ सी जाती थी शब्दचित्रण में भवभूति बड़े चढ़े थे, भावोद्बोधन में कालिदास ।

एक उदाहरण लीजिए । भवभूति का एक शब्दचित्र है:—

सन्तानवाहीष्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि  
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतःसहस्रैरिव संभवन्ते ॥

अर्थात्—प्रेमी जन को देखने से बन्धु-वियोग जन्म दुःख मानो हजार गुना अधिक हो जाता है ।



वह इतना बढ़ जाता है मानो उससे हजारों सोते निकलते हैं । इसी बात को—इसी भाव को—देखिए, कालिदास थोड़े ही शब्दों में, पर किस खूबी से कहते हैं :—

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।  
अर्थात्—स्वजनों के आगे छिपे हुए दुःख को बाहर निकल आने के लिए हृदय का द्वार सा खुल जाता है ।

इसी से कहते हैं कि भवभूति के भाव शब्द-समूह के सघन वेष्टन से वेष्टित हैं । कालिदास के भावों का शब्द-वेष्टन इतना बारीक और इतना थोड़ा है कि वे उसके भीतर झलकते हुए देख पड़ते हैं । यही उन दोनों नाट्यकारों की कविता में विशेषता है ।

### कालिदास की उपमायें ।

सुन्दर, सर्वाङ्गपूर्ण और निर्दोष उपमाओं के लिए कालिदास की जो इतनी ख्याति है वह सर्वथा यथार्थ है । किसी देश और किसी भाषा का अन्य कोई कवि इस विषय में कालिदास की बराबरी नहीं कर सकता । इनकी उपमायें अलौकिक हैं । उनमें उपमान और उपमेय का अद्भुत सादृश्य है । जिस भाव, जिस विचार, जिस उक्ति को स्पष्टतर करने के लिए कालिदास ने उपमा का प्रयोग किया है उस उक्ति और उपमा का संयोग ऐसा बन पड़ा है जैसा कि दूध-का संयोग होता है । उपमा को उक्ति से अलग करने से वह अत्यन्त फीकी किंवा नीरस होती है । यह बात केवल उपमाओं ही के लिए नहीं हो जा सकती । उपमाओं के सिवा उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त और निदर्शनालङ्कारों का भी प्रायः यही हाल है । कालिदास की उपमाओं में उपमान और उपमेय के लङ्का और वचन में कहीं कहीं विभिन्नता पाई जाती है, पर कालिदास की उपमाओं में शायद ही ऐसा दोष हो । देखिए :—

- (१) प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ।
- (२) नन्दमार्गाद इव प्रपदे विवर्णभावं स सभूमिपालः ।
- (३) समीरणोरयेव तरङ्गलेखा पञ्चान्तरं मानसराजहंसीम् ।

- (४) बिभर्षि चाकारमनिवृत्तानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ।
- (५) पथ्यातपुष्पस्तवकावनम्रा सञ्चारिणी पल्विनी लतेव ।
- (६) नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनापनुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवोपधीनाम् ।

कैसी सुन्दर उपमायें हैं, कैसी श्रुतिमुखद और प्रसाद-गुणपूर्ण पदावली है । किसकी प्रशंसा की जाय ? उपमा की “कोमल-कान्त पदावली” की अथवा हृदयहारिणी उक्ति की ?

कालिदास की कुछ उपमायें बहुत छोटी छोटी हैं; अनुष्टुप् छन्द के एक ही चरण में वे कही गई हैं । ऐसी उपमाओं में भी वही खूबी है जो लम्बे लम्बे श्लोकों में गुम्फित उपमाओं में है । ये छोटी छोटी उपमायें नीति, सदाचार और लोक-रीति-सम्बन्धिनी सत्यता से भरी हुई हैं । इसी से पण्डितों के कण्ठ का भूषण हो रही हैं । साधारण बात-चीत और लेख आदि में इनका बेहद व्यवहार होता है :—

- ( १ ) आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।
- ( २ ) त्याज्यो दुष्टः प्रियेऽप्यासीदङ्गुलीवोरगन्तता ।
- ( ३ ) विपवृत्तोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेतुमसाम्प्रतम् ।
- ( ४ ) हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्ज्यत्यपः ।
- ( ५ ) उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः ।

आदि ऐसी ही उपमायें हैं ।

### शास्त्र-ज्ञान ।

कालिदास के काव्य और नाटक इस बात का साक्ष्य दे रहे हैं कि कालिदास केवल महाकवि ही न थे । कोई शास्त्र ऐसा न था जिसमें उनकी गति न हो । वे असामान्य वैयाकरण थे । अलङ्कार-शास्त्र के वे पारंगाम थे । संस्कृत-भाषा पर उनकी निःसीम सत्ता थी । जो बात वे कहना चाहते थे उसे कविता द्वारा व्यक्त करने के लिए सबसे अधिक सुन्दर और भाव-व्यञ्जक शब्दों के समूह के समूह उनकी जिह्वा पर नृत्य सा करने लगते थे । कालिदास की कविता में शायद ही कुछ शब्द ऐसे होंगे जो असुन्दर और अनुपयोगी अथवा भावोद्बोधन में असमर्थ समझे जा सकें । वेदान्त के वे ज्ञाता थे; आयुर्वेद के वे ज्ञाता थे; सांख्य, न्याय और योग के वे ज्ञाता थे; ज्योतिष



के वे ज्ञाता थे; पदार्थ-विज्ञान के वे ज्ञाता थे । लोकाचार, राजनीति, साधारण नीति आदि में भी उनकी असामान्य गति थी । प्रकृति-परिज्ञान के तो वे अद्भुत पण्डित थे । प्रकृति की सारी करामातें, उसके सारे कार्य उनकी प्रतिभा के मुकुर में प्रतिबिम्बित होकर उन्हें इस तरह देख पड़ते थे जिस तरह कि हथेली पर रक्खा हुआ आमला देख पड़ता है । वे उन्हें हस्तामलक हो रहे थे । उनकी इस चतुर-शास्त्रज्ञता के प्रमाण उनकी उक्तियों और उपमाओं में जगह जगह पर रत्नवत् चमक रहे हैं ।

### दर्शन-शास्त्रों का ज्ञान ।

ग्रन्थारम्भ में की गई कालिदास की रचनाओं से यद्यपि यह सूचित होता है कि वे शैव थे, किंवा शिवोपसना की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक थी, तथापि वे पूरे वेदान्ती थे । वेदान्त के तत्त्वों को वे अच्छी तरह जानते थे । ईश्वर और जीव, माया और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को वे वैसा ही मानते थे जैसा कि शङ्कराचार्य ने पीछे से माना है । ईश्वर की सर्व-व्यापकता भी उन्हें मान्य थी । अभिज्ञान शाकुन्तल का पहला ही श्लोक—  
“या सृष्टिः स्पष्टुराद्या”—इस बात का साक्षी है । इसमें उन्होंने यह स्पष्टतापूर्वक स्वीकार किया है कि ईश्वर की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है । परमात्मा की अनन्तता का प्रमाण इस श्लोक में है :—

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।  
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्त्या रूपमित्यया वा ॥

पुनर्जन्म अथवा आत्मा की अविनश्वरता का प्रमाण रघुवंश के निम्नोद्धृत पद्यार्थ में पाया जाता है :—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः

कालिदास की योग-शास्त्र-सम्बन्धिनी विज्ञता उनकी इस उक्ति से स्पष्ट है :—

तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः ।

माया का आवरण हट जाने और सञ्चित कर्म क्षीणता को प्राप्त होने से आत्मा का योग परमात्मा

से हो जाता है । यह वेदान्त-तत्त्व है । इसे कालिदास जानते थे, यह बात भी उनकी पूर्वोक्त उक्ति से सिद्ध है । वेदान्तियों का सिद्धान्त है कि कर्मों या संस्कारों का बीज नष्ट नहीं होता । कालिदास ने—

( १ ) प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः

और

( २ ) भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि

कह कर इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है । सांख्यशास्त्र-सम्बन्धिनी उनकी अभिज्ञता के दशम एक श्लोक का अवतरण गत संख्या में पहले दिया जा चुका है ।

### ज्योतिष का ज्ञान ।

इस में तो कुछ भी सन्देह नहीं कि कालिदास ज्योतिष-शास्त्र के पण्डित थे । इस बात के कितने ही प्रमाण उनके ग्रन्थों में पाये जाते हैं । उज्जयिनी बहुत काल तक ज्योतिर्विद्या का केन्द्र थी । जिस समय इस शास्त्र की बड़ी ही ऊर्जितावस्था उसी समय, अथवा उसके कुछ काल आगे पीछे कालिदास का प्रादुर्भाव हुआ । अतएव ज्योतिष उनका परिचय होना बहुत ही स्वाभाविक था :—

( १ ) दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरः-शुक्रमिव प्रयाणे

( २ ) ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंस्थैर्ब्राह्मे मुहुर्ते किल तस्य देवी

( ३ ) मैत्रे मुहुर्ते शशज्जाङ्घनेन योगं गतासूत्तरफल्गुनीषु ।

( ४ ) हिमनिर्मुक्तयोग्येगे चित्राचन्द्रमसेरिव ।

( ५ ) तित्थौ च जामित्रगुणान्वितायाम् ।

इत्यादि ऐसी कितनी ही उक्तियाँ कालिदास ग्रन्थों में विद्यमान हैं जो उनकी ज्योतिष-शास्त्रज्ञता के कभी नष्ट न होनेवाले सर्तिफिकेट हैं ।

### वैद्यविद्या से परिचय ।

कालिदास चाहे अनुभवशाली वैद्य न रहे हो, चाहे उन्होंने आयुर्वेद का विधिपूर्वक अभ्यास किया हो; परन्तु इस शास्त्र से भी उनका थोड़ा बड़ा परिचय अवश्य था । और, सभी सत्कवियों का परिचय प्रधान प्रधान शास्त्रों से अवश्यही होना चाहिये ।



संख्या ९ ]

विना सर्वशास्त्रज्ञ हुए—विना प्रधान प्रधान शास्त्रों का ज्ञान बहुत ज्ञान प्राप्त किये—कवियों की कविता सर्वमान्य नहीं हो सकती । महाकवियों के लिए तो इस तरह के ज्ञान की बड़ी ही आवश्यकता होती है । श्वेदेन्द्र ने इस विषय में जो कुछ कहा है बहुत ही ठीक कहा है । वैद्य-विद्या के तत्त्वों से कालिदास अनभिज्ञ न थे । कुमारसम्भव के दूसरे सर्ग में तारक के देवराज्य और पराक्रम आदि का वर्णन है । उस सर्ग में कालिदास ने लिखा है :—

तस्मिन्नुपायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहतक्रियाः ।

वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सान्निपातिके ॥

मालविकाग्निमित्र में सर्पदंशचिकित्सा के विषय कविकुलगुरु की उक्ति है :—

ब्रेदो दंशस्य दाहो वा क्षतस्यारक्तमोक्षणम् ।

एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥

इन अवतरणों से यह सूचित होता है कि कालिदास की इस शास्त्र में भी बहुत नहीं तो थोड़ी ज्ञान आवश्यक थी ।

### पदार्थविज्ञान से परिचय ।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में यह दिख-  
या जा चुका है कि ग्रहण के यथार्थ कारण को कालिदास अच्छी तरह जानते थे । कुमारसम्भव के :—

हासु किञ्चिद्विलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः

इस श्लोक से सूचित होता है कि समुद्र में भू-भाटा आने का प्राकृतिक कारण भी उन्हें अच्छे तरह मालूम था । ध्रुव-प्रदेश में दीर्घ काल रहनेवाले उषःकाल का भी उन्हें ज्ञान था । उन्होंने लिखा है :—

मौल्यान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ।

उनके उषःकाल-सम्बन्धी ज्ञान का यह दृढ़ प्रमाण है । सूर्य की उष्णता से पानी भाफ बन कर उठता है । वही बरसता है । इस बात को भी कालिदास जानते थे । कुमारसम्भव का चौथा सर्ग इस बात का प्रमाण दे रहा है :—

रविपीतजला तपात्यये पुनरोधेन हि युज्यते नदी ।  
रघुवंश के—

सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसे रविः ।

इस पद्यार्द्ध से भी यही बात सिद्ध होती है । “अयस्कान्तेन लोहवत्”—लिख कर उन्होंने यह सूचना दी है कि हम चुम्बक के गुणों से भी अनभिज्ञ नहीं ।

### राजनीति-ज्ञान ।

इस विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं । रघुवंश में राजाओं हों का वर्णन है । उसमें ऐसी सैकड़ों उक्तियाँ हैं जो इस बात की घोषणा दे रही हैं कि कालिदास बहुत बड़े राज-नीतिज्ञ थे । राजा किसे कहते हैं, उसका सबसे प्रधान धर्म या कर्तव्य क्या है, प्रजा के साथ उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए—इन बातों को कालिदास जैसा समझते थे वैसा शायद आज कल के बड़े से भी बड़े राजा और राजनीतिनिपुण अधिकारी न समझते होंगे । कालिदास की—“स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः”—सिर्फ यह एक उक्ति इस कथन के समर्थन के लिए यथेष्ट है ।

### भूगोल-ज्ञान ।

मेघदूत में कालिदास ने जो अनेक देशों, नगरों, पर्वतों और नदियों आदि का वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि उन्हें भारत का भौगोलिक ज्ञान भी बहुत अच्छा था । उन्होंने अनेक देशदर्शन करके—दूर दूर की मात्रा करके—यह ज्ञान प्राप्त किया होगा । चाल, केरल और पांड्य देश का उन्होंने जैसा वर्णन किया है; विन्ध्यगिरि, हिमालय और काश्मीर के विषय में उन्होंने जो कुछ लिखा है; रघुवंश के तेरहवें सर्ग में भारतीय समुद्र के सम्बन्ध में जो उक्तियाँ उन्होंने कहीं हैं उन्हें पढ़ते समय यह जान पड़ता है, जैसे कोई इन सबका आँखों देखा हाल लिख रहा हो । उनके इन वर्णनों में बहुत ही कम भौगोलिक भ्रम है । अतएव यही कहना पड़ता है कि कालिदास ने भारत में दूर दूर तक भ्रमण



करके अनेक प्रकार के भौगोलिक दृश्यों का परिज्ञान प्राप्त किया था।

इच्छा थी कि इस वर्ष की सरस्वती की प्रत्येक संख्या में कालिदास के विषय में एक न एक लेख अवश्य प्रकाशित हो । परन्तु शरीरारोग्य फिर जवाब दे रहा है । अतएव, केवल नौ महीने यह क्रम चल सका । अब अधिक नहीं चल सकता । जान पड़ता है; यह इस विषय का अन्तिम लेख होगा । अतएव कालिदास के स्वर में स्वर मिला कर हम भी अब यही कहना चाहते हैं कि :—

प्रवर्त्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहती न हीयताम् ।  
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥

सौर जगत् ।



इस विषय में उपर्युक्त विद्वानों के कई वाद बहुत प्राचीन समय से चले आते हैं। पर वे सब विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। उनमें से कई तो निरी कल्पनाये ही हैं। पर जर्मन दार्शनिक कान्ट का मत समीचीन समझा जाता है। इस तत्त्ववेत्ता का गणित-ज्योतिष में भी अच्छा अधिकार था। सन् १७५५ ई० में उसने इस विषय पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उसमें उसने अपने मत की पुष्टि ज्योतिषशास्त्र के अखण्डनीय सिद्धान्तों के द्वारा की है। शिक्षित समाज में इस ग्रन्थ का बड़ा आदर है। तबसे कई विज्ञानवादी इस विषय में अपने अपने मत प्रकाशित करते आये हैं। इस सिद्धान्त को कई लोग मानते हैं कि इन सब पिण्डों का उपा-

दान कारण एक प्रकार का सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ है जिसे प्रोटाइल कहते हैं। कदाचित् यह प्रोटाइल हमारे पूर्वजों की मूल प्रकृति ही हो। यह प्रोटाइल एक ही प्रकार का अमिश्रित पदार्थ है और साँ ब्रह्माण्ड में भरा पड़ा है। इन पिण्डों की रचना में पहले वह शून्य के किसी विशेष भाग में था किन्तु सर्वत्र पाया जाता था। यही प्रोटाइल संसार पदार्थ किसी कारण-विशेष से सघनता प्राप्त करने लगे बड़े बड़े पदार्थ-समूहों में विभक्त हो गया। ये समूह और भी अधिक सघन होते होते उन अनेक तत्वों में परिवर्तित हो गये जिनके मेल से सूर्यादि पिण्ड बने हैं।

इन पिण्डों की रचना आकाशमण्डल में एक-एक करके परिपूर्ण  
समय नहीं हुई। एक की रचना के कई सहस्र वर्ष बीतने के बाद  
बाद दूसरा बना है। आश्चर्य नहीं कि यह रचना इस प्रकार की  
अब भी हो रही हो और नये नये पिण्ड बनते जा रहे हैं। दो  
हैं। हज़रत मूसा का यह कथन कि सारी सृष्टि दश में  
दिन में बन गई, इस सिद्धान्त के प्रतिकूल है। अनेक कश्  
करोड़ों पिण्डों की रचना में कितना समय व्यतीत होगा। इस  
हुआ है इस बात का अनुमान करना मानवीय शक्ति से  
के बाहर है। यदि मनुष्य सारे ब्रह्माण्ड को एक ही  
सके तो उसे प्रोटाइल से लगाकर पिण्ड तक पहुँचा  
की सब दशायें देखने में आवें। कहीं तो यह ब्रह्मा  
सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं का संचय देखे, कहीं तो  
सघनता प्राप्त किये हुए पदार्थ-समूह, कहीं तो सूक्ष्म  
भी अधिक घनिष्ठ-समूह, कहीं तो तत्त्वों के मेल  
अधबने पिण्ड और अनेक स्थानों में सूर्यों की  
क्रमा करते हुए कोटिशः सौर जगत् उसकी  
में पड़े।

सन् १८२४ ई० में लाह्यास नामक एक फ़रासीसी विद्वान् ने सौर जगत् की रचना सम्बन्ध में एक उत्तम ग्रन्थ लिख कर अपना "नेथिबरी" नामक सिद्धान्त प्रकट किया, जिसका प्रयोजन सौर जगत् की रचना का स्पष्टीकरण उसका सत्यासत्य-निरूपण तो अत्यन्त इतना तो अवश्य मालूम होता है कि यह



प्रति आदि शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुकूल है और किसी भी सत्य सिद्ध हुए सृष्टि के नियम का उससे विरोध नहीं। उसकी सत्यता का यही एक प्रमाण है कि अन्यान्य वादों की त्रुटियों के सदृश उसमें कोई त्रुटि नहीं है।

अब लाप्लास का वह मत हम संक्षिप्त रूप से यहाँ पर बतलाते हैं। आकाश के उस भाग के प्रोटाइल ने, जहाँ अब सौर जगत् है, किसी अनिश्चित अवस्था में सघनता प्राप्त की और धीरे धीरे उससे सूर्य आदि पिण्डों की रचना हुई।

सौर जगत् का विस्तार २, ७२१.७ × १० लाख मील लम्बा है। यह सब स्थान किसी समय प्रोटाइल से परिपूर्ण था और समय पाकर वह इन पिण्डों में विभक्त हो गया।

इस कथन का अनुमान इसी एक बात से होता है कि दो चार को छोड़ कर ये सब पिण्ड एक ही दिशा में सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं और उनकी कक्षाएँ एक ही धरातल में हैं। किसी अनिश्चित समय के इस प्रोटाइल-समूह में गति का सञ्चार और सौर जगत् की रचना के कार्य का आरंभ हुआ और कई सहस्र वर्षों में कहीं समाप्त हुआ।

यह बात अनुभव-सिद्ध है कि प्रायः सभी पदार्थ शीतल होने से संकुचित होते हैं। इसी नियम के अनुसार यह प्रोटाइल-समूह भी शीतल होकर संकुचित होता गया। एक दूसरा नियम है कि चक्कर खाता हुआ पदार्थ जब संकुचित होता है तब उसकी गति का वेग भी बढ़ता है। फिर यह वेग जैसे जैसे बढ़ता है वैसे ही वैसे पदार्थ के भागों की दृष्टि से बाहर की ओर उचटने की शक्ति भी बढ़ जाती है। गाड़ी जितने वेग से भागती है उतने ही वेग से चक्के में लगा हुआ कीचड़ बाहर को उछलता है। वेग के बहुत बढ़ जाने से चक्कर खाने वाले पदार्थ के वृत्तलाकार भाग का निकल कर निकलना संभव है। शीतलता के बढ़ने से सघनता की भी वृद्धि होती है और उससे गति का वेग बढ़ता है। इससे दूसरा भाग निकल कर दूर

गिरता है। इसी प्रकार कई भागों का निकल निकल कर दूर गिरना संभव है। जिस बृहत् पिण्ड से ये भाग निकल निकल कर दूर गिरते हैं वही उनका केन्द्र बन जाता है और वे उसी की परिक्रमा करने लगते हैं। क्योंकि सब पदार्थों में आकर्षण-शक्ति रहती है जिससे वे एक दूसरे को खींचते हैं। और केन्द्र रूपी बृहत् पदार्थ की गति जिस दिशा में होती है उसी दिशा में वे भी उसी धरातल में परिक्रमा करने लगते हैं। केन्द्ररूपी पदार्थ इन सबकी अपेक्षा बहुत बड़ा होता है और उसमें उष्णता भी उनकी अपेक्षा कई गुना अधिक होती है।

उपर्युक्त कारणों से परिक्रमा करने वाले पिण्डों में से भी, जब तक वे खूब उष्ण रहते हैं, एक वा एक से अधिक छोटे पिण्ड निकल निकल कर दूर जा गिरते हैं और उनकी परिक्रमा करने लगते हैं। जब यह क्रिया समाप्त हो जाती है तब एक सौर जगत् का निर्माण हो चुकता है। मध्य का सब से बड़ा केन्द्ररूपी पिण्ड सूर्य कहलाता है और उसकी परिक्रमा करने वाले उससे छोटे पिण्ड ग्रह कहलाते हैं। प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा करने वाले पिण्ड उपग्रह कहलाते हैं।

(२)

अब चलिए इसी विषय को उलटी रीति से देखें। सूर्य से आरम्भ करके यदि उसकी वर्तमान दशा पर विचार किया जाय तो हम अनुमान कर सकते हैं कि सौर जगत् इस दशा को कैसे प्राप्त हुआ। सूर्य-पिण्ड से प्रति दिन अनियमित गरमी निकला करती है। इस विषय पर भी यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो लाप्लास के मत का समर्थन होता है। सूर्य-पिण्ड से प्रति दिन जितनी उष्णता निकलती है उसका २० करोड़ अंश से भी कम भाग हमारी पृथ्वी में आता है।

यदि लोहे की एक खूब गरम गेंद कुछ समय हवा में रखी जाय तो वह शीतल हो जायगी, अर्थात् उस की उष्णता निकल कर समीपस्थ पदार्थों में जा मिलेगी और जब तक उस गेंद और समीपस्थ पदार्थों



की उष्णता बराबर न हो जायगी तब तक यही हाल होता रहेगा। यह एक स्वाभाविक नियम है। यह भी सरण रहे कि उस गेंद के शीतल होने का समय सदा एक सा न होगा। वही गेंद शीतकाल में जितना शीघ्र शीतल होगी उतनी जल्दी गरमी की ऋतु में न होगी और दस घनात्मक फुट की गेंद ५ घनात्मक फुट वाली से देर में ठंडी होगी। किसी पदार्थ की उष्णता के हास का काल उसके परिमाण और वायु की उष्णता पर अवलम्बित है। इतना तो निश्चित है कि उष्ण पदार्थों की उष्णता प्रतिक्षण निकलती रहती है और समय पाकर वे अवश्य ठंडे हो जाते हैं। इस नियम के अनुसार सूर्य को भी प्रति दिन एवं प्रति वर्ष थोड़ा बहुत शीतल हो जाना चाहिए। आश्चर्य की बात है कि सहस्रों वर्ष व्यतीत होने पर भी सूर्य-पिण्ड तनिक भी शीतल नहीं हुआ। इसका क्या कारण है ?

सूर्य में उष्णता का संचय जो, इस प्रकार, एक सा बना रहता है, भिन्न भिन्न विद्वान् उसके भिन्न भिन्न कारण बतलाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि धूमकेतुओं का सूर्य-पिण्ड में निरन्तर पतन हुआ करता है, जिससे उसकी उष्णता कम नहीं होने पाती। हिसाब लगा कर देखा गया है कि सूर्य-पिण्ड में से प्रति दिन जितनी उष्णता निकलती है उसकी पूर्ति के लिए उसके प्रत्येक वर्गात्मक फुट पर ५६० मन कायला जलना चाहिए। सूर्य-पिण्ड का क्षेत्रफल लाखों वर्गमील माना गया है। अतएव उर्पयुक्त पूर्ति के लिए उसमें इतने धूमकेतु गिरने चाहिए जिनका वजन करोड़ों मन हो। चन्द्रमा के बराबर वजन वाले धूमकेतु यदि प्रति दिन गिरें तो इस गरमी की क्षतिपूर्ति हो सकती है। सूर्य-पिण्ड की उष्णता की रक्षा का यह कारण ठीक नहीं जँचता। इतने वजन के धूमकेतुओं का पतन कैसे संभव हो सकता है।

यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि सूर्यपिण्ड अत्यन्त संतप्त धातु के समान सदा लाल बना रहता है और उसके भीतर से ज्वाला निकलती रहती है।

इस उष्णता के रक्षित रहने का कारण एक तो सूर्य-पिण्ड का बृहत् रूप है; दूसरे उष्णता के नियमों से ही उसकी रक्षा होती है। प्रत्येक प्रकार का बल जब उपयोग में लाया जाता है तब वह उष्णता में परिणत हो जाता है। दो बाँसों को परस्पर रगड़ने से कुछ काल में अग्नि का आविर्भाव होता है। यह अग्नि कहाँ से आती है ? वैज्ञानिक कहते हैं कि उनके रगड़ने में जो बल लगाया जाता है वही अग्निरूप में परिवर्तित हो जाता है। जब कोई भी गैस एकाएक फैलता है तब उसमें शीतलता उत्पन्न होती है। इसका यह कारण है कि उस गैस के फैलने का काम गरमी बन जाता है और वह गरमी आकाश-मण्डल में विलीन हो जाती है। गरमी के अभाव से उस गैस में शीतलता आ जाती है। वही विस्तीर्ण गैस थोड़े संकुचित होने लगे तो यह संकोचनरूपी कार्य उष्णता में परिवर्तित हो कर उसमें पूर्ववत् उष्णता आजाय।

इन दृष्टान्तों से यह नियम सिद्ध होता है कि बल या कार्य उष्णता में और उष्णता बल या कार्य में परिणत हो जाती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार जब सूर्य-पिण्ड में गरमी निकलती है और वह ठंडा होने लगता है तो उसके व्यणुक या त्रसरेणु कुछ समीप आजाते हैं अर्थात् वह सिकुड़ने लगता है और यह सिकुड़ने का कार्य उष्णता में परिवर्तित हो जाता है, जिससे सूर्य-पिण्ड की जितनी उष्णता का बहिष्कार होता है उतनी उसमें फिरसे बन जाती है। धूमकेतु-पतन से उष्णता पैदा होने के सिद्धान्त की अपेक्षा यह अधिक विश्वास-योग्य है।

सूर्य-पिण्ड की उष्णता की रक्षा के लिए उसका व्यास एक शताब्दी में ४ मील छोटा हो जाता है। इस व्यास की लम्बाई १० लाख मील के लगभग कूती गई है। अतएव सौ वर्ष में केवल ४ मील की न्यूनता कुछ अधिक नहीं है। १० लाख वर्ष पूर्व उसकी लम्बाई अब की अपेक्षा ४० हजार मील अधिक रही होगी। इसी हिसाब से करोड़ों वर्ष



संख्या ९ ]

हले सूर्य-पिण्ड आकाश के उस भाग में प्रोटाइल-  
राम में व्याप्त रहा होगा जहाँ अब सौर जगत् के  
अनेक पिण्ड अपनी अपनी कक्षाओं में घूम रहे हैं।

अब पाठकों को यह अनुमान करना कि, सूर्य-  
पिण्ड हमारी भूमि की अपेक्षा कितना बड़ा है, सहज है।  
भूमि का व्यास केवल ८ सहस्र मील है। पर सूर्य  
का १० लाख मील के लगभग है। जहाँ भूमि की  
परिधि केवल २५ सहस्र मील है वहाँ सूर्य की ३०  
लाख मील से ऊपर है। हमारे सौर जगत् में तो  
सूर्य-पिण्ड और सब पिण्डों से बहुत बड़ा है; पर इस  
ब्रह्माण्ड में ऐसे ऐसे असंख्य सौर जगत् और  
सूर्य-पिण्ड भरे पड़े हैं। ज्योतिषी विद्वान् कहते हैं कि  
अनेक शिर तारा एक सूर्य है। अतएव सौर  
जगत् की संख्या कौन बतला सकता है। क्या इन  
सब नक्षत्रों की रचना हमारे सौर जगत् के पिण्डों के  
सदृश ही हुई है ?

सर विलियम हर्षेल नामक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् का  
मत है कि आकाशमण्डल में ऐसे अनेक भाग हैं जिन  
में प्रोटाइल व्याप्त है। किसी किसी में वह कुछ सघन  
हो रहा है और कहीं कहीं इस सघनता प्राप्त किये  
हुए पदार्थ-समुदाय का केन्द्र ताराओं के सदृश  
दीप्यमान है। इन्हीं पदार्थ-समूहों से किसी काल में  
सूर्य-पिण्ड के सदृश संतप्त एवं प्रकाशमय पिण्ड बन  
जायेंगे और उनसे निकले हुए छोटे छोटे पिण्ड उन  
की परिक्रमा करने लगेंगे। जिस मनुष्य की आयु  
आठों वर्ष की हो वह यदि निरन्तर अवलोकन करता  
जाय, तो यह रचना किस प्रकार होती रहती है, यह  
बतला सकता है और उसे लाप्लास के मत का ज्ञान  
अत्यन्त प्रमाण से प्राप्त हो सकता है।

पाठक, जिस बात को बहुमूल्य यन्त्रों के द्वारा  
देख लेने के लिए इतना बड़ा जीवनकाल चाहिए उसे  
हमारे पूर्वज एक ऐसे उपाय से देख सकते थे जिस  
से अब अनेक शिक्षित (?) पुरुष चण्डू खाने की  
तलाश में व्यस्त हैं। पर हर्ष की बात है कि  
लाप्लास, हर्षेल, कान्ट आदि तत्त्ववेत्ताओं एवं वैज्ञा-  
निकों के आधुनिक मत से, जो हमारे लिए ब्रह्मवाक्य

बन रहा है, हमारे पूर्वजों के ही सिद्धान्तों का सम-  
र्थन हो रहा है। वह उपाय क्या है ? वही, जिसके द्वारा  
धर्मक्षेत्र-कुक्षेत्र में भगवान् कृष्णचन्द्रजी ने अपने  
शिष्य अर्जुन को एक निमिषमात्र में सारी ब्रह्माण्ड-  
लीला दिखला दी थी। उस उपाय को हमारे यहाँ  
योगदर्शन कहते हैं। इससे परे कोई बल नहीं है—  
“नास्ति योगसमं बलम्”। इस योग-विद्या का  
सम्यक् ज्ञान और अभ्यास हो जाने पर एक साधा-  
रण मनुष्य भी किसी काल में त्रिकालदर्शी बन जाता  
है और भगवान् की कृपा से अर्जुन के सदृश  
ब्रह्माण्ड-रचना देखने में समर्थ होता है। जिसे आधु-  
निक विद्वान् प्रोटाइल कहते हैं उसे हमारे पूर्वजों ने  
मूलप्रकृति कहा है। जिसको डार्विन आदि आधु-  
निक विद्वानों ने इवोल्यूशन ( Evolution ) संज्ञा  
दी है वह हमारे पूर्वजों को सैकड़ों वर्ष पूर्व मालूम  
हो गया था। जिस सर्वव्यापिनी सत्ता को अध्यापक  
जगदीशचन्द्र वसु ने हाल ही में पहचाना है उसे  
हमारे ऋषि-महर्षि अनादि काल से ब्रह्म कहते चले  
आते हैं। यदि हमारे नव-शिक्षित, विश्वविद्यालयों  
की उपाधियाँ प्राप्त किये हुए, नव युवक विद्वान्  
नवीन और प्राचीन ज्ञान-भाण्डार का मन्थन कर  
दोनों के बीच की एकता का अन्वेषण करें तो विद्यो-  
न्नति के अतिरिक्त हमारा गिरा हुआ कीर्तिस्तम्भ फिर  
से खड़ा हो जाय और हमारी जन्मभूमि एक बार  
फिर अपने खोये हुए पद को प्राप्त कर ले। एवमस्तु।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी।

महात्मा सुन्दरदासजी ।

महात्मा सुन्दरदासजी हिन्दी के पुराने  
कवियों में उत्तम श्रेणी के कवि हैं।  
उनकी कविता सरस हो कर गंभीर  
है। उनके ग्रन्थ नाना प्रकार के छन्द्,  
दाहे, चौपाई, कवित्त सवैयाँ आदि से परिपूर्ण  
हैं। हिन्दी के कवियों में सुन्दरदासजी को दादू पन्थी  
सुजन सर्व-शिरोमणि मानते हैं। शायद हिन्दी के



अन्य रसिक इस पदवी का अधिकार गुसाईं तुलसीदास ही को देंगे, पर मेरी अल्प बुद्धि में ये दोनों महात्मा बराबरी की पदवी पाने योग्य हैं। गुसाईंजी की रामायण युक्त प्रदेश में बहुत प्रचलित है। इसलिए गुसाईंजी की महिमा वहाँ अधिक सुनने में आती है। पर सुन्दरदासजी के काव्य बहुधा साधु-सन्तों ही में प्रचलित हैं; सर्व साधारण में उनका प्रचार रामायण की तरह नहीं हुआ। जब सुन्दरदासजी के ग्रन्थ अच्छी तरह प्रचलित हो जायँगे तब उनकी भी कीर्ति हिन्दी-रसिकों में उसी प्रकार फैल जायगी।

सुन्दरदासजी केवल कवि ही नहीं, किन्तु षट्-शास्त्रों के पूरे ज्ञाता थे—सांख्य, योग और वेदांत के अद्वैत वाद में अति निपुण थे। कर्म-योग, भक्ति-योग और ज्ञान-योग को जिस प्रकार इन्होंने पहले पहल हिन्दी में दर्साया है उस प्रकार किसी दूसरे ग्रन्थकार ने नहीं किया। इसलिए शास्त्रीय विषयों के हिन्दी-ग्रन्थकारों में महात्मा सुन्दरदासजी का आसन सबसे प्रथम है। अपने भक्तमाल में महात्मा राघवदासजी ने सुन्दरदासजी को शङ्कराचार्य के बराबर बतलाया है।

सुन्दरदासजी ने एक छोटा सा काव्य संवत् १६९१ विक्रम में रचा था। उसका नाम है पञ्चेन्द्रियचरित्र। सुन्दरदासजी के अनेक ग्रन्थ छप चुके हैं; पर यह ग्रन्थ मैंने अभी तक छपा हुआ नहीं देखा। यह ग्रन्थ है छोटा, पर अद्वितीय है। मैं इसे प्रकाशित करने की फ़िक्र में हूँ। सुन्दरदासजी के और कई ग्रन्थ अभी तक नहीं छापे गये। ये सब ग्रन्थ पुरानी हस्त-लिखित पुस्तकों में मिलते हैं।

सुन्दरदासजी का जन्म-समय किसी ने नहीं लिखा; पर अनुमान से संवत् १६५३ विक्रम में उनका जन्म हुआ मालूम होता है। महात्मा सुन्दरदासजी ने अपने अन्त समय में एक साखी कही थी। उसमें उन्होंने ९३ वर्ष की अपनी आयु बतलाई है। वह साखी यह है :—

सात बरस सौ मैं घटै इतने दिन की देह।

सुन्दर आतम अमर है देह पेह की पेह ॥

संवत् १८८४ की लिखी हुई इनकी एक पुस्तक के अन्त में ये पद मिलते हैं :—

चौपाई।

संवत सत्रह सौ छियाला।

कातिक की अष्टमी उजाला ॥

तीजै पहिर बृहस्पति वार।

सुन्दर मिलिया सुन्दर सार ॥

देहा।

इकती ती तिराणवे, इतने बरष रहन्त।

स्वामी सुन्दरदास कौ, कोई न पायै अन्त ॥

धनि जननी ऐसौ जयौ, धनि धनि वाकौ वाप।

स्वामी सुन्दरदास के, गुरु दादू की छाप ॥

इस लेख के अनुसार संवत् १७४६ में इनका अन्तकाल हुआ था। उसमें से ९३ वर्ष उनकी आयु के घटा दें तो संवत् १६५३ उनके जन्म का समय निकलता है।

महात्मा राघवदासजी ने सुन्दरदासजी के जन्म के विषय में लिखा है कि दौसा नगर में दूसा वैश्य महाजनों के घर में सुन्दरदासजी का जन्म हुआ था। जयपुर के पास दौसा नामक आज का एक रेलवे-स्टेशन है। वही इनका जन्म-स्थान है। सुन्दरदासजी के माता-पिता पुत्र की कामना से दयालजी के पास गये। दयालजी ने कहा कि पुत्र तुम्हारे अवश्य होगा; पर वह तुम्हारे घर में न रहेगा। इस के बाद सुन्दरदासजी का जन्म हुआ। जब वे पाँच वर्ष के थे तब स्वामी दादू दयाल नाना स्थानों में उपदेश करते हुए दौसा भी गये। सुन्दरदासजी की माता ने बालक सुन्दरदासजी को स्वामी के चरणों में लाकर डाला। दयालजी ने कृपापूर्वक सुन्दरदासजी के मस्तक पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। महात्मा जन-गोपालजी ने (जो दयालजी के साथ उस समय गये थे) स्वामी दादूदयाल की जन्म-लीला में यह चौपाई लिखी है :—

पुनि दौसा मैं कियौ प्रवेस।

बेमदास अरु माधौ जेस ॥



बालक सुन्दर सेवग छाजू ।  
मथुरा बाई हर सौं काजू ॥

सुन्दरदासजी ने स्वयं भी अपने “गुरु-सम्प्रदाय” नामक ग्रन्थ में अपना हाल इस प्रकार वर्णन किया है—

चौपाई ।

प्रथमहिं कहैं आपनी बाता ।  
मोहि मिलाये प्रेरि विधाता ॥  
दादू जी जब द्यौसैं आये ।  
बालपनँ हम दरसन पाये ॥  
तिनके चरणेन नाथौ माथा ।  
उन दीयौ मेरै सिरि हाथा ॥  
स्वामी दादू गुरु है मेरौ ।  
सुन्दरदास सिष्य तिन केरौ ॥

ग्यारह वर्ष की अवस्था तक सुन्दरदासजी अपने घर पर ही रहे। पीछे गृह-त्याग कर वे काशीजी गये। चिरकाल तक वे वहाँ रहे और विद्या-धन प्राप्त करके योग-मार्ग में भी पारङ्गत हुए। कहते हैं कि एक विद्वान् पण्डित वहाँ नित्य कथा कहा करते थे। काशी के अनेक पण्डित कथा-श्रवण के लिए वहाँ आया करते थे। सुन्दरदासजी भी जाते थे। एक दिन समस्त श्रोताओं से सभा भरी हुई थी; पर सुन्दरदासजी उस समय तक वहाँ न पहुँचे थे। इस कारण कथा कहने वाले महात्मा सुन्दरदास जी के लिए ठहरे रहे। जब वे आगये तब कथा आरम्भ की। इस पर कुछ श्रोता असन्तुष्ट हुए। वे कहने लगे कि बड़े बड़े विद्वान् श्रोताओं के प्रस्थित होने पर आपने कथा आरम्भ न की; एक शिष्य के आने तक आप रुके रहे। यह अनुचित बात हुई। इस पर कथा कहने वाले महात्मा ने कहा कि आप शान्त हूजिए। मैं आपको सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूँगा। तदनन्तर सब श्रोताओं से आप ने कहा कि जो कथा हमने आज तक कही है उसका सारांश आप एक सुन्दर कविता में लिख जाए। दूसरे दिन सुन्दरदासजी ने ज्ञान-समुद्र नामक काव्य रचकर सभा में पेश किया। औरों ने

भी अपनी अपनी कविता दिखाई। मिलान करने पर सिद्ध हुआ कि कथा का सार जैसी अच्छी तरह सुन्दरदास ने खींचा था वैसी अच्छी तरह और किसी से नहीं बन पड़ा। तबसे सब पण्डितों ने सुन्दरदासजी को शिरोमणि स्वीकार किया।

सुन्दरदासजी के निम्न लिखित काव्य-ग्रन्थ हस्त-लिखित पुरानी पुस्तकों में मैंने देखे हैं—

- १—साखी
- २—सबद ( पद गाने के )
- ३—सवैये—सुन्दर-काव्य
- ४—सर्वाङ्ग-जोग
- ५—ज्ञान-समुद्र
- ६—पञ्चेन्द्रिय-चरित्र
- ७—सुख-समाधी
- ८—स्वप्न-बोध
- ९—वेद-विचार
- १०—उक्त अनूप
- ११—अद्भुत उपदेश
- १२—पञ्च-प्रभाव
- १३—गुरु-सम्प्रदाय
- १४—उत्पत्ति-निशानी
- १५—सतगुरु-महिमा
- १६—बावनी
- १७—सहजानन्द
- १८—ग्रह-वैराग्य-बोध
- १९—हरि-बोल-चितावणी
- २०—तर्क-चितावणी
- २१—विवेक-चितावणी

अष्टकाः—

- १—गुरु-दया
- २—भर्म-धूषण
- ३—गुरु-कृपा
- ४—गुरु-उपदेश
- ५—गुरुदेव-महिमा
- ६—रामजी-नामाष्टक
- ७—आत्म-अचल



- ८—पञ्जाबी भाषा
- ९—ब्रह्म-स्तोत्र
- १०—पीर-मुरीद
- ११—ज्ञान-झूलना
- १२—अजब-ख्याल

फुटकर छन्दः—

- १—पवङ्गम छन्द
- २—अडिला छन्द
- ३—मडिला छन्द
- ४—बारहमासा
- ५—आयुर्बल-भेद-विचार
- ६—त्रिविद अन्तःकरण
- ७—पूर्वी-भाषा-वरवय
- ८—चौबोला
- ९—गूढ़ अर्थ

छन्दय छन्दः—

- १—नौ निद्धि
- २—अष्ट-सिद्धि
- ३—सप्त-बाद
- ४—बारहमासा
- ५—बारह राशी
- ६—छत्र-बन्द छन्द
- ७—कमल-बन्द छन्द
- ८—आदि-अक्षर-दोहा-छन्द
- ९—मध्य-अक्षरी
- १०—निगड़-बन्द
- ११—सिंहावलोकनी
- १२—प्रतिलोम-अणुलोम
- १३—वृक्ष-बन्द दोहा
- १४—अन्त समय की साखी

इन सब ग्रन्थों का जोड़ आठ हजार श्लोकों के बराबर माना जाता है। एक पुस्तक की प्रति संवत् १७७१ विक्रम की लिखी हुई मैंने देखी है। उस में ये सम्पूर्ण ग्रन्थ पाये जाते हैं।

सुन्दरदासजी अपने जीवन-काल में यातो समाधिस्थित रहते थे या ग्रन्थ रचा करते थे। बहुत

काल पीछे वे काशी त्याग कर, नाना प्रदेशों में भ्रमण करते हुए, पुण्यधाम नराणे आये। उस समय स्वामी गरीबदासजी दादूदयालजी की गद्दी पर विराजमान थे। उनको अपने शिष्य-भाव का परिचय देने के लिए और दयालजी में अपनी सच्ची भक्ति दिखाने के लिए सुन्दरदासजी ने वे सवैया रच कर सुनाये जो सुन्दर-काव्य नामक ग्रन्थ के आदि में गुरुदेव के अङ्ग के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सवैयाओं को पढ़कर विद्वज्जन सुन्दरदासजी की कविता और उनके किये हुए गुरु के सच्चे लक्षणों के वर्णन को सराहे बिना नहीं रह सकते। इस सुन्दर-काव्य में ३४ अङ्ग हैं। प्रत्येक अङ्ग में, नाना प्रकार के छन्दों में, उपदेश-पूर्ण कविता है, जिस का स्वाद पाठक पढ़ने ही से पा सकते हैं। इस ग्रन्थ को देखने से अपूर्व काव्यरस-पान भी प्राप्त होता है और हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

भारत के मत-मतान्तरों के भेद, उनसे होने वाले हानि-लाभ और उनके संशोधन की आवश्यकता को सुन्दरदासजी ने बहुत ही उत्तमता से दिखाया है।

स्वामी दादूदयाल का पन्थ पक्षपात-रहित सर्व सार्वभौमिक मार्गों को बतलाता है। उनका वर्णन सुन्दरदासजी ने बहुत अच्छी तरह से किया है। सुन्दरदासजी ने बहुत अच्छी तरह से किया है। सहजानन्द नामक उनका ग्रन्थ मनुष्यों को सरल प्राकृतिक भाव से जीवन की उद्देश-सिद्धि के प्रति सरल मार्ग का प्रदर्शक है। न इन्होंने किसी प्रकार का क्लेश उठाने के लिए कहा है न किसी प्रकार अपूर्ण प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य के लिए किसी साधन की आवश्यकता बतलाई है। जिस तरह मनुष्य अपना यास ही, बिना परिश्रम के, श्वासोच्छ्वास लेता रहता है, उसी तरह ज्ञान-योगी सहजानन्द में निमग्न हो कर जीवन का लाभ उठा सकता है।

सुन्दरदासजी बहुत काल तक दादू-द्वारे, नराणे ग्राम में, निवास करके पञ्जाब की तरफ चले गये और लाहौर, अमृतसर आदि स्थानों में विचरण करते



नवावाटी, जयपुर राज्य, के फ़तहपुर में आये । वहाँ वे भगवत उपासना करते रहे । अन्त में आप अपने गुरुमाई महात्मा रज्जब जी से मिलने को साँगांनेर की ओर चले । रास्ते में सुना कि रज्जबजी महाराज की ओर लाग कर गये । यह सुनते ही सुन्दरदासजी ने वहाँ समाधि लगा कर ब्रह्म में लीन हो गये ।

सुन्दरदासजी के पाँच शिष्य प्रसिद्ध हैं—अर्थात्—

- १—पण्डित दयालदासजी ।
- २—पण्डित श्यामदासजी ।
- ३—पण्डित दामोदरदासजी ।
- ४—पण्डित नारायणदासजी ।
- ५—पण्डित बालकरामजी वेदान्ती ( ये बड़े योगी थे ) ।

सुन्दरदासजी के महिमा-सूचक गीत जो महा-योगों ने गाये हैं उन्हें मैं आगे उद्धृत करता हूँ :—  
पण्डित राघवदास-कृत भक्तमाल में, जो संवत् १७७० विक्रम में रचा गया था, इस प्रकार सुन्दर-दासजी के विषय में लिखा है :—

छप्पय छन्द ।

भक्ताराज्य दूसरो दादू के सुन्दर भयौ ।  
द्वैत भाव कर दूर एक अद्वैत ही गायौ ।  
आत भगत षट दरस सबनि कै चारु क लायौ ।  
धरणी मत मजबूत थप्यौ अर गुर पष भारी ।  
आन धर्म करि षंड अजाघट तैं निरवारी ।  
योगी ज्ञान हठ सांध्य लैं सर्व शास्त्र पारही गयौ ।  
भक्ताराज्य दूसरो दादू कै सुन्दर भयौ ॥

मनहर छंद ।

सुन्दर के पन्थ में सुन्दर सुखदाई संत  
जगत न आवै अन्त ज्ञानी गलतान हैं ।  
गुर निगम षड षोडस अठार नव  
योग को विचार सार धरयो सुन कान है ।  
योग जोग कर्मजोग भक्ति भजन पन  
जो जानै सकल अकल को निधान है ।  
गुर कुल जन्म विचित्र विग बाणी जाकी  
जो कहै ग्रन्थन के अर्थन को भान है ॥ १ ॥

घौसा है नगर चौषा दूसर है साहूकार  
सुन्दर जन्म लीयो ताही घर आईकै ।  
पुत्र की चाह पति दर्ई है जनाइ तया  
कह्यौ समझाई स्वामी कहा सुखदाई कै ।  
स्वामी मुष कही सुत जनमें गो सही पै  
वैराग लेगो वही घर रहै नही माईकै ।  
ऐकादस वर्ष में त्यागो घर माल सब  
वेदान्त पुराण सुनै बानारसी जाईकै ॥ २ ॥  
आयो है नवाब फतेपुर में लग्यो है पाइ  
अजमत देहु तुम गुसंझया रिभायौ है ।  
पल्लौ जौ गलीचा कौ उठाइ कर देख्यो तब  
फतेपुर बसै नीचै प्रगट दिषायौ है ।  
येक नीचै सहर येक नीचै लसकर  
येक नीचै गैर बन देषि भय आयौ है ।  
राघौ अदभुत बात बरनौ कहा बषान  
सुन्दर ज्ञानी को कोऊ पार नहीं पायो है ॥ ३ ॥

सुन्दरदास के शिष्य पण्डितवर बालकरामजी ने इस प्रकार अपने गुरु की महिमा वर्णन की है :—

छप्पय छन्द

सतगुर सुन्दरदास जगत में पर उपगारी ।  
धन्य धन्य अवतार धन्य सब कला तुम्हारी ॥  
सदा एक रस रहे दुःष द्वंदन को नाहीं ।  
उत्तम गुन सो आहिं सकल दीसैं तन मांहीं  
सांध्य जोग अरु भक्ति पुनि सब्द ब्रह्म संयुक्त है ।  
कहै बालकराम विवेकनिधि देषै जीवनमुक्त है ॥  
चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ।

## सरस्वती ।

सरस्वती भगवती, प्रभा प्रतिभा की धारे ।  
भाव-भावना श्वेत कमल पर आसन मारे ॥  
लिये कल्पना-कमल एक कर, क्रीड़ा करती ।  
वर्ण-माल की अक्षमाल दूजे कर धरती ॥  
शिक्षा की पुस्तक लिये तीजे कर महँ भारती ।  
रचना की बीना गहे चौथे कर झनकारती ॥ १ ॥



गद्य-पद्य के लसत वसन उज्ज्वल अति सुन्दर ।  
 शब्द-वाक्य-विन्यास-घटित आभरन मनोहर ॥  
 शान्ति-पूर्ण मुख-कान्ति भ्रान्ति सब मेटत मन की ।  
 दया-दृष्टि हरि लेत तुरतही जड़ता जन की ॥  
 सकल-कला-कौशल-कलित राजत मुकुट किरीट सिर ।  
 ज्ञान और विज्ञान के कुण्डल कानन में रुचिर ॥ २ ॥  
 आदि अन्त से रहित, तदपि तू नित्य नयी है ।  
 पराशक्ति, विधि-बधू, बोध विज्ञान-मयी है ॥  
 ब्रह्म-सच्चिदानन्दरूपिणी अम्बे ! तू है ।  
 सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी अम्बे ! तू है ॥  
 तुव सेवा में श्रम किये दूर होत अज्ञान-भ्रम ।  
 कालिदास से मूढ़ नर पण्डित-पद पावै परम ॥ ३ ॥  
 व्यासदेव, वाल्मीकि आदि कवि विद्यासागर ।  
 दण्डी, भारवि, माघ, बाण, श्रीहर्ष गुणागर ॥  
 बिल्हण, नरहरि, प्रवरसेन, भवभूति यशस्वी ।  
 जगन्नाथ, जयदेव, भर्तृहरि महा मनस्वी ॥  
 सूरदास, तुलसी सुकवि, केशव, देवादिक अपर ।  
 तुव प्रसाद-पीयूष-कण पाय भये भूपर अमर ॥ ४ ॥  
 सेवा तेरी तजी, मोह से कर ली यारी ।  
 यद्यपि यह अपराध हुआ है हमसे भारी ॥  
 तदपि भारती मात रूठना तुम्हें न चाहिए ।  
 भारत-नाते पुत्र जान कर दूर न रहिए ॥  
 पुत्र कुपुत्र अनेक हैं देखे सुने जहान में ।  
 किन्तु कुमाता की भनक कहीं पड़ी नहि कान में ॥ ५ ॥

रूपनारायण पाण्डेय

( कमलाकर )

## संस्कृत और हिन्दी कविता का विम्ब-प्रतिविम्ब भाव ।

( १ )

कुचावस्थाः कामद्विपकलभकुम्भाविति परे  
 वदन्त्यन्ये वक्षः सरसि कमले काञ्चनघटौ ।  
 ममायं सिद्धान्तः स्फुरति मदनेन त्रिजगतीं  
 विनिर्जित्य “न्युब्जीकृतमिव निजं दुन्दुभियुगम्” ॥

चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार यगीरत सौं  
 छोरि परी है सुकंचुकी न्हानको अंगन तेज में ज्योतिरु कै  
 छाड़ उरोजन की छवि ज्यों पदमाकर देखत ही चकचक  
 “भाज गई लरिकई मनौ लरिकै करिकै दुहुँ दुन्दुभि औषि”  
 ( पञ्चाकर )

( २ )

हंसाः पद्मवनाशया मधुलिहः सौरभ्यलाभाशया  
 पान्थाः स्वादुफलाशया बलिभुजो गृध्राश्च मांसाशया ।  
 दूराग्निफलरक्तपुष्पनिचयैर्निःसारमिथ्योन्नते  
 रे रे शात्मलिपादप ! प्रतिदिनं केन त्वया वञ्चितः ॥

कंज वन मानि मून हंसगण आइ फिरे,  
 गन्धवन भृंग की भंग करि डारे तैं ।  
 पाके फलजानि सुकपुंज पछिताने आइ,  
 पाइ के वसन्त बात वृथा पात डारे तैं ॥  
 दूरिते विलोकि अरुणाई अति फूलन की,  
 आमिष अकार गीध वापस विडारे तैं ।  
 परे तरु सेमर के सिफत तिहारी कहा ?  
 आस दिये पच्छिन निरास करि डारे तैं ॥  
 ( मून कवि )

( ३ )

नासामौक्तिकमवल्ले किमधरविम्बेन विद्रुमं कुरुषे ?  
 दृष्ट्या गुञ्जावीजं शिव शिव भूयस्तदेव हसितेन ॥  
 अधर जोति विद्रुम लसत पिय मुक्ता कहि दीन  
 निरखत ही गुंजा भयो पुनि हंसि मुक्ता कीन  
 ( विहारी )

( ४ )

ननु नीलाञ्जलसंवृतमाननमाभाति हरिणनयनायाः ।  
 प्रतिविम्बित इव यमुनागभीरनीरान्तरेणाङ्कः ॥  
 छप्यो छबीलो मुख लसै नीले अंचल चीर ।  
 मनो कलानिधि भलमलै कालिन्दी के नीर ॥  
 ( विहारी )

( ५ )

कस्तूरीतिलकं भाले बाले ! मा कुरु मा कुरु ।  
 अद्य साम्यं भजामीति जृम्भते शशलाञ्छनः ॥  
 पिय तिय सों हंसि कै कछो लखें दिठोना दीन ।  
 चन्दमुखी ! मुखचन्द तैं भलो चन्द सम कीन ॥  
 ( विहारी )



( ६ )

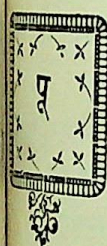
जनि प्राञ्चि दिनानि यत्र रजनी सेहे तमिस्रापदं  
आ मुष्टिर्विराम यत्र भवति ज्योत्स्नामयो नातपः ।  
ब्रह्मन् समस्तयाहि तिथयोऽयस्यामुखस्योदये  
हृदहस्तिकया हरन्ति परितो राकावराकी यशः ॥

स्वा ही तिथि पाइयत वा घर के चहुँ पास ।  
जित प्रति पून्थोई रहै आनन ओप उजास ॥

( विहारी )

पद्मसिंह शर्मा ।

## राव-बहादुर, गणेश वेङ्कटेश जोशी, बी० ए० ।



ने के प्रसिद्ध विद्वान्, बम्बई के गवर्नर  
की कौंसिल के मेम्बर, राव बहा-  
दुर, गणेश वेङ्कटेश जोशी का गत  
२० मई को शरीरान्त हो गया ।  
ये अच्छे पण्डित थे । राजकीय  
विषयों में इनकी अच्छी गति थी ।

ये शास्त्र के ये उत्कृष्ट ज्ञाता थे । राजनीति, व्यापार  
और उद्योग-धन्धे आदि के सम्बन्ध में इनका ज्ञान  
बहुत बड़ा था ।

कोल्हापुर के पास एक कसबा मीरज है ।  
१९०१ ईसवी के जून महीने में वहाँ जोशी जी का  
जन्म हुआ । पहले मीरज में, फिर कोल्हापुर में इन्होंने  
पढ़ाई । स्कूल की शिक्षा समाप्त होने पर ये  
वहाँ के एल्फिन्स्टन कालेज में भर्ती हुए । वहाँ से  
इन्होंने बी० ए० की पदवी प्राप्त की । कालेज छोड़ने  
पर इन्होंने शिक्षा-विभाग में नौकरी कर ली । धीरे  
धीरे उनकी उन्नति होती गई । पूना, सतारा, रत्ना-  
गिरी, नासिक और शोलापुर आदि कई बड़े बड़े  
स्कूलों के सरकारी स्कूलों में इन्होंने अध्यापन का  
काम किया । १९०५ ईसवी में पेन्शन ले कर ये पूने  
चले गये ।

जोशी जी बड़े निस्पृह और विद्याव्यसनी थे ।  
सादगी के ये मूर्तिमान अवतार और अर्थशास्त्रीय  
ज्ञान के अक्षय्य भाण्डार थे । अध्यापन-कला में  
इन्होंने इतनी प्रवीणता प्राप्त की थी कि भूगोल  
सदृश महानोरस विषय को भी ये सरस बना देते  
थे । जिस विषय को ये पढ़ाते थे उसमें ये मनो-  
रञ्जकता भी उत्पन्न कर देते थे । इनके विद्यार्थि  
इनके मुख से निकले हुए ज्ञानामृत को बड़े ही चाव  
से पान करते थे । इनके हृदय में कभी विरक्ति न  
उत्पन्न होती थी । इस समय इनके शिष्यों में हजारों  
ऐसे हैं जो बड़े बड़े उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं । वे  
सब जोशी जी के अप्रतिम शिक्षण-कौशल की हृदय  
से प्रशंसा करते हैं ।

जब से ये सार्वजनिक विषयों की चर्चा में संलग्न  
हुए और भारतवर्ष की आर्थिक तथा औद्योगिक  
अवस्था पर इनके महत्त्व-पूर्ण लेख निकलने लगे  
तबसे इनकी योग्यता का विशेष परिचय सर्व-  
साधारण को हुआ । इस कारण प्रजा ने इनको  
गवर्नर की कौंसिल में अपना प्रतिनिधि बना कर  
भेजा । इनके गुणों को देख कर गवर्नमेंट ने भी  
राव-बहादुर की पदवी देकर इनका सत्कार किया ।

हम लोग दस पाँच अड़ों को देख कर घबरा  
जाते हैं । दो चार बड़ी बड़ी संख्याओं को एक पास  
देख कर तो उन्हें दुबारा देखने को जी नहीं चाहता ।  
हिसाब से यों भी लोगों को बहुत कम प्रेम होता है ।  
फिर कहीं यदि करोड़ों तक की सैकड़ों संख्याओं  
को जोड़ने, अथवा उनसे कोई निष्कर्ष निकालने की  
ज़रूरत आ पड़े तो यही जान पड़ता है कि सिर पर  
कोई बहुत बड़ी आफ़त आ गई । परन्तु जोशीजी  
की चित्तवृत्ति की विचित्रता को देखिए । इनको  
ऐसीही बातों से प्रेम था । और, प्रेम भी ऐसा वैसा  
नहीं—उत्कट प्रेम था । भारत के व्यापार-वाणिज्य,  
आर्थिक अवस्था और उद्योग-धन्धे आदि से सम्बन्ध  
रखनेवाली कितनीही बड़ी बड़ी रिपोर्टें गवर्नमेंट की  
आज्ञा से हर साल प्रकाशित होती हैं । उनमें अड़ों  
की ही विशेषता रहती है । पढ़ने योग्य मज़मून बहुत



नहीं होता। ऐसी रिपोर्टें जोशीजी को प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं। संख्यातीत बातें—संख्यातीत हिसाब—अङ्कों के रूप में उनके दिमाग में भरे रहते थे। उनके पुस्तक-संग्रह में ऐसी ही पुस्तकों की अधिकता थी। उन्हीं के बीच में बैठ कर जोशीजी उनके अङ्क-सागर में डुबकियाँ लगाया करते थे। उनसे यदि कोई यह पूछता कि इस साल भारत से अमेरिका को कितना चमड़ा गया, अथवा विलायत से कितने टन लोहा भारत में आया, अथवा कितने की शकर मिर्च के टापू से बम्बई या कराची बन्दर में उतरी तो उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर जोशीजी तत्कालही अङ्कों के रूप में दे देते। इस विषय में जोशी का सानी नहीं देख पड़ता।

माननीय महादेव गोविन्द रानडे से जोशीजी की बड़ी घनिष्ठता थी। रानडेजी के लेखों और वक्तृताओं में भारत की आर्थिक और व्यापार-सम्बन्धी अवस्था के द्योतक जो अङ्क पाये जाते हैं, सुनते हैं, वे सब जोशीजी के ही दिमाग की बदैलत रानडे महाशय को प्राप्त हुए थे।

जब तक जोशी जी अध्यापन-कार्य करते रहे तब तक उन्हें राजकीय विषयों पर लेख लिखने, अथवा उनकी और तरह चर्चा करने, का मौका नहीं मिला। उस कार्य से विरत होते ही उन्होंने अपने ज्ञान-भण्डार से नये नये रत्न निकालने आरम्भ किये। उनके लेख विद्वान् और उच्च शिक्षा पाये हुए जन टाइम्स आब इंडिया आदि पत्रों में बड़ी उत्कठा से पढ़ने लगे। जोशी जी ने गर्वनमेंट की भूमिक-सम्बन्धनी नीति का बहुत ही अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। यही कारण था जो इस विषय में लिखे गये उनके लेख बड़े ही गम्भीर, प्रमाण-पूर्ण और अखण्डनीय होते थे। अकाल के सम्बन्ध में उन्होंने जो लेख लिखे थे उनका फल भी बहुत अच्छा हुआ। तत्सम्बन्ध में गर्वनमेंट ने जाँच की और जोशी जी की शिकायतों को अनेकांश में दूर कर दिया। विलायत के नेविन्सन साहब ने—“न्यू स्पिरिट इन इंडिया” नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा

है कि जोशी जी के मुँह से अङ्कों की लम्बी लम्बी लड़ियाँ इस तरह निकलती हैं जिस तरह की फौवारे से पानी की सैकड़ों पतली पतली धाराएँ निकलती हैं।

मिस्टर डिग्बी और मिस्टर आर० सी० ने भारत की आर्थिक और औद्योगिक अवस्था के विषय में जो बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखी हैं उन सङ्कलन में उन्हें भी जोशी जी से बहुत सहायता मिली थी।

कौंसिल में गर्वनमेंट भी जोशी जी के काम के बड़े महत्त्व का समझती थी। जो कुछ वहाँ इन्होंने कहा या लिखा उसमें सचाई और न्यायशीलता का कभी हाथ से नहीं जाने दिया। इनकी न्यायमूर्ति बड़ी ही प्रबल थी। कौंसिल में इनके कार्य-कलाप से प्रसन्न होकर ही गर्वनमेंट ने इन्हें राव-बहादुर बनाया था। धन्य है वह पुरुष जो राजा और प्रजा दोनों का कृपापात्र और विश्वास-भाजन हो।

जोशी जी के मरने पर माननीय मिस्टर गोले आदि पूने के प्रतिष्ठित जनों ने सभा करके शोक प्रदर्शन किया। अब जोशी जी की स्मृति-रक्षा का प्रबन्ध हो रहा है।

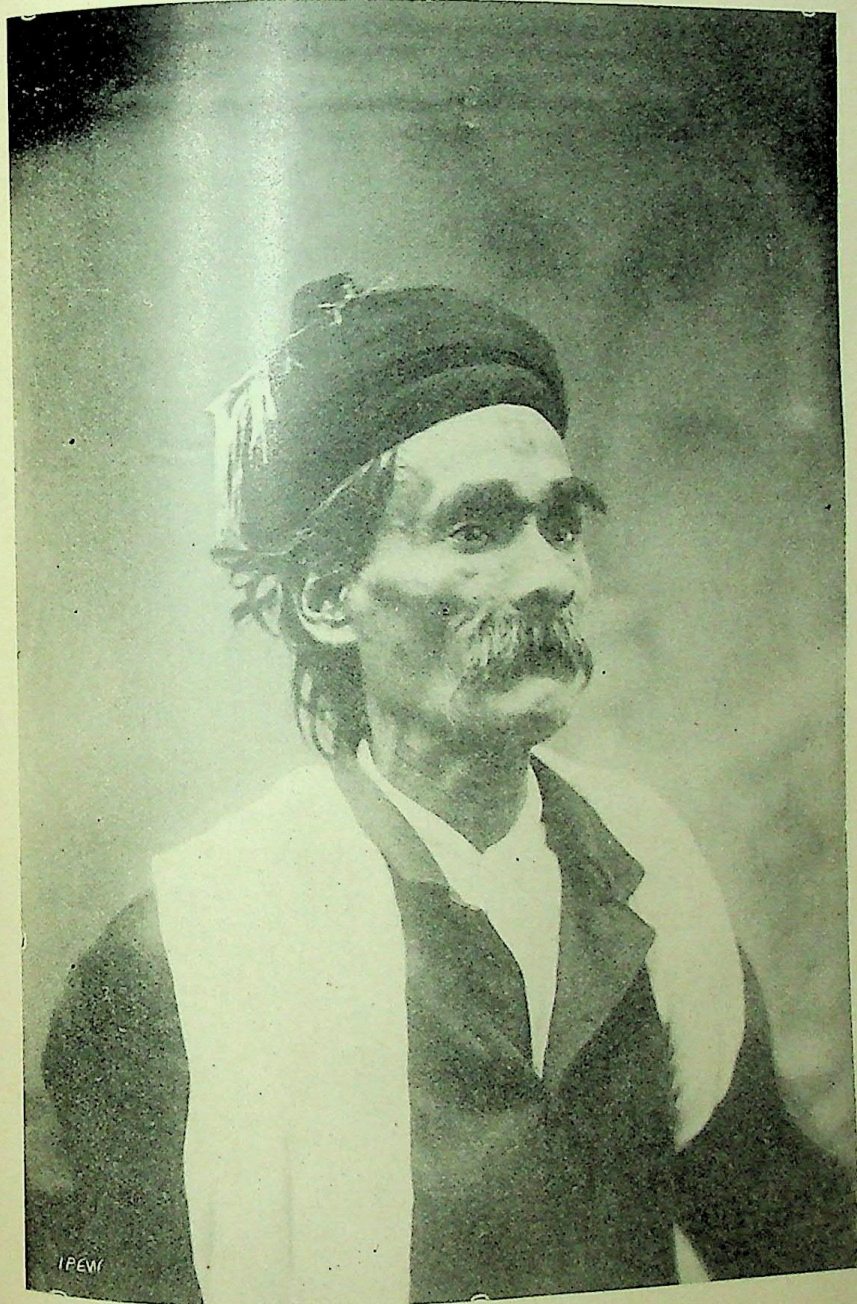
## प्रशान्त महासागर के टापुओं की कुछ असभ्य जातियाँ।



प्रशान्त महासागर में छोटे बड़े सैकड़ों टापू हैं। वे सब ओशनिया के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें से टोंगा ताहिती, समोआ और हवाई आदि टापुओं के समूह का नाम पालीनेशिया है; और फीजी, न्यू कैलेडोनिया, सालोमोन आदि के समूह का नाम मेलानेशिया। इन टापुओं के पहले समूह में जो असभ्य आदमी रहते हैं वे पालीनेशियन कहलाते हैं और जो दूसरे में रहते हैं वे मेलानेशियन। यही लोग यहाँ के मूल निवासी



# सरस्वती



राव-बहादुर गणेश वेङ्कटेश जोशी, बी० ए० ।

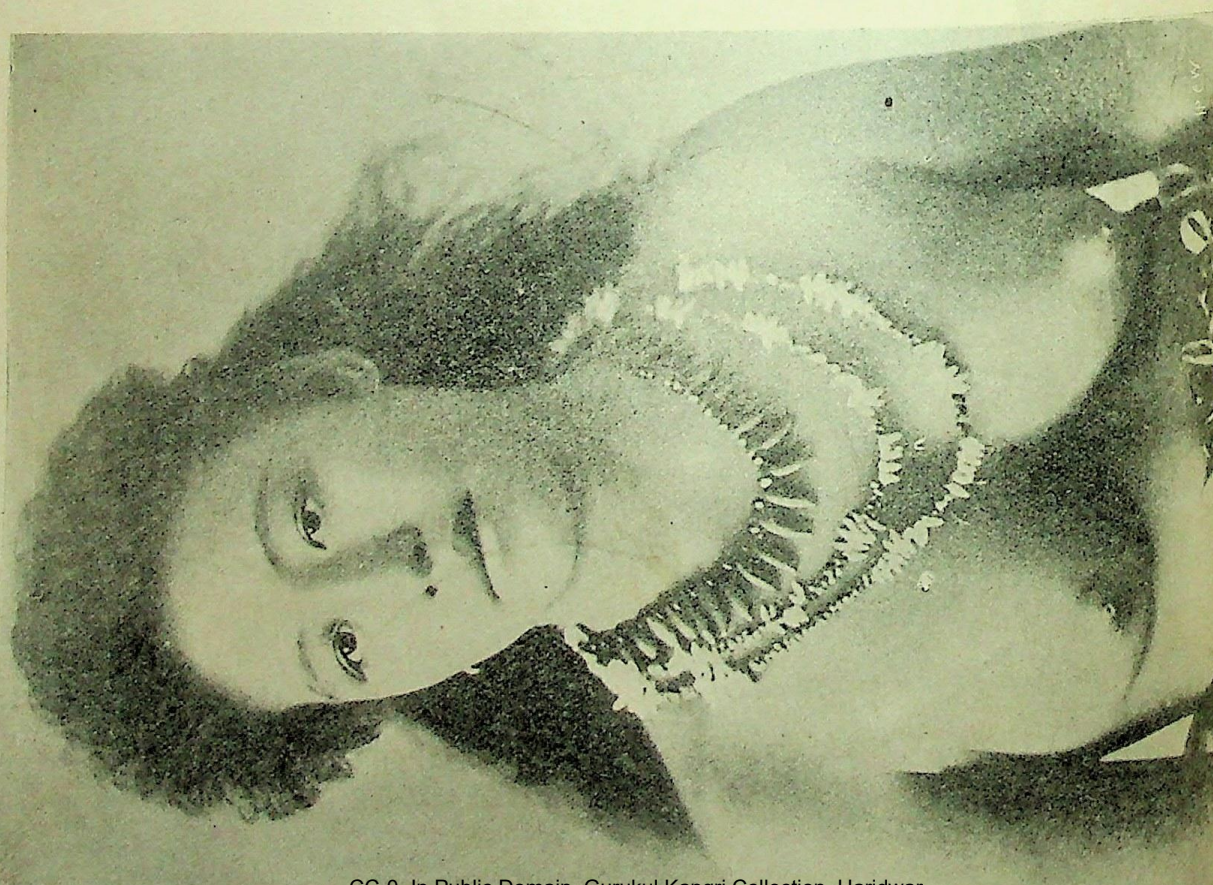
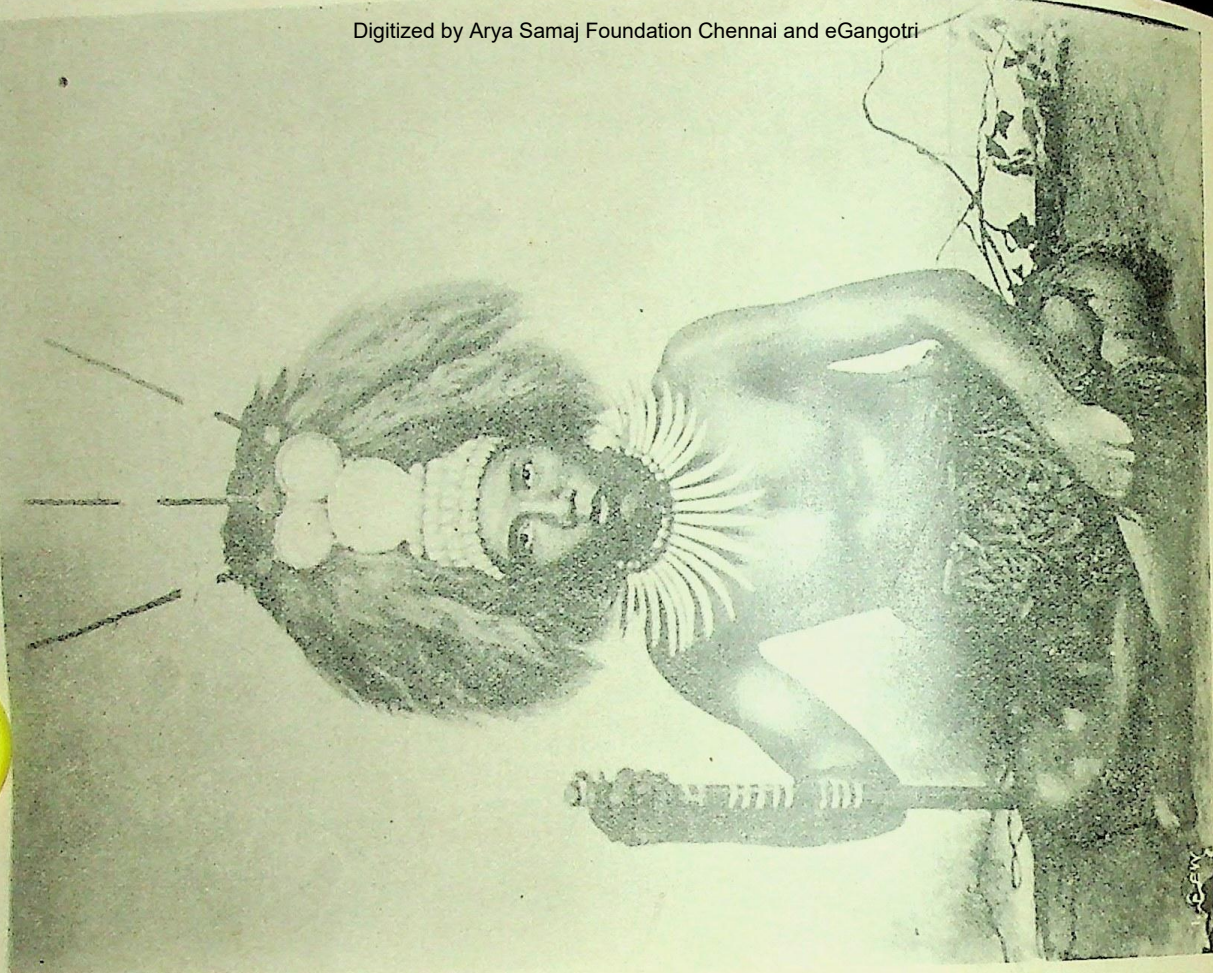












तब १  
हैं। पहले  
कोर अमे  
थारे तब  
अव तो व  
है। परन्तु  
को होता  
त लोगो  
को इनकी  
को जाति  
दुआर है  
मै पाँच ही  
संस्था की  
पाली  
वहाँ के मूल  
उत्तर-पश्चि  
हूँ हैं।  
मेरी है।  
अच होते हैं  
रा रा कुरु  
के संसर्ग र  
वर्ण की व  
विश्रमी है  
शोरप  
वहाँ के निर  
लोहा रो  
स-मछली  
। ये लो  
ये वड़े ह  
ये वहाँ हे  
मजबूत  
देख क  
कर उ  
माटा क  
हीथर  
के व  
ये।



पहले ये बेहद असभ्य थे । पर जबसे योरप  
अमेरिका के सभ्य सज्जन इन टापुओं में  
तबसे इनकी असभ्यता कम होने लगी ।  
वह और भी दिन दिन कम होती जाती  
है । परन्तु इसके साथ ही उनका विनाश-साधन  
भी होता जाता है । पश्चिमी सभ्यता की बढ़ोतरी  
इन लोगों में नये नये रोगों का प्रादुर्भाव हो गया है,  
इनकी संख्या बराबर कम करता जा रहा है ।  
जाति इस मनुष्य-गणना में, कल्पना कीजिए, एक  
दस वर्ष बाद, दूसरी मनुष्य-गणना  
ही सौ रह जायगी । यह दशा है ! इनकी  
संख्या की कमी के और भी कई कारण हैं ।

पालीनेशिया के टापू पहले विलकुल उजाड़ थे ।  
उनके मूल निवासी और ही कहीं रहते थे । वे किसी  
उत्तर-पश्चिम के देश या प्रान्त से वहाँ गये जान  
हुते हैं । यह बात उनके रूप-रंग और कद से सूचित  
होती है । यहाँ वाले, कद में, कोई कोई ६ फुट तक  
होते हैं । बाल काले और सीधे होते हैं । चमड़े  
का रंग कुछ कुछ भूरापन लिये होता है । योरपवालों  
के संसर्ग से ये लोग अब काहिल हो गये हैं और दुरा-  
चरण की लत भी इनमें पड़ गई है । अन्यथा ये बड़े  
पश्चिमी और, कुछ को छोड़ कर, सदाचरणशील थे ।

योरपवालों के पालीनेशिया में पहुँचने के पहले  
उनके निवासी खेती करना अच्छी तरह जानते थे ।  
ये लोग रोटी और तरकारी ही अधिक खाते थे,  
मछली कम । नारियल यहाँ अधिकता से होता  
था । ये लोग नाव बनाना भी जानते थे । तैरने में  
ये बड़े ही निपुण थे । शहतूत की जाति का एक  
प्रकार यहाँ होता है । उसकी रस्सी ये लोग ऐसी अच्छी  
मजबूत बनाते थे, और, अब भी ऐसी बनाते हैं, कि  
उसके दोर कर आश्चर्य होता है । एक पेड़ की छाल  
को उसके बारीक तन्तुओं से ये लोग एक प्रकार  
का कपड़ा भी बनाते थे । धनुर्बाण और भाले  
भी हाथियार थे । फावड़ा, कुदाली आदि ये लोग  
भी बनाते थे । इनके कुछ और भी सीपी के भी

पालीनेशिया के निवासियों में अधिकांश अब  
क्रिश्चियन हो गये हैं । परन्तु, पहले वे विशेष करके  
सूर्य और चन्द्रमा के उपासक थे । उन्हीं की वे पूजा  
करते थे; उन्हीं की मूर्तियाँ स्थापित करते थे । हवाई  
नाम के टापुओं के निवासी और भी कई देवताओं  
को पूजते थे । वहाँ कई ज्वालामुखी पर्वत हैं । अतएव  
उनके कितने ही देवताओं की सृष्टि पर्वतों के कारण  
हुई थी । इन देवताओं के सामने मनुष्यों तक की  
बलि दी जाती थी ! खाने की चीजें और शराब भी  
इन पर चढ़ाया जाता था । नर-बलि तो नहीं, पर  
और सब प्राचीन प्रकार की पूजा अब तक वहाँ होती  
है । इन लोगों की कितनी ही प्राचीन देव-मूर्तियाँ  
पश्चिमी सभ्यता के प्रसाद से नष्ट भ्रष्ट हो गई हैं ।  
कुछ योरप के बड़े बड़े अजायबघरों में पहुँच गई हैं ।  
बची खुची जो रह गई हैं वे यत्र तत्र पाई जाती हैं ।

असभ्य जातियों में जैसे नाचों का प्रचार है वैसे  
ही नाच पहले यहाँ भी होते थे । खेल कूद के तरीके  
भी इनके बड़े विचित्र थे । उन्हें देख कर सभ्यता-  
भिमानीयों के मन में भय और घृणा के भाव एक ही  
साथ उदित होते थे । जितने धार्मिक उत्सव होते  
थे सब में भयानक नाच और उछल-कूद के तमाशे  
होते थे । यहाँ वाले किसी ज़माने में कमज़ोर बच्चों  
और बुढ़ों को, गले में फाँसी लगा कर, मार डालते थे ।  
अपने समाज में निर्बल मनुष्यों को जीता रखना ये  
लोग अपनी तैहीन समझते थे । जवान और सशक्त  
आदमियों ही को जीते रखने के ये पक्षपाती थे ।  
उन्हीं से ये अपने समाज की शोभा समझते थे ।

परन्तु, योरपवालों के संसर्ग से इन लोगों ने  
अपनी पुरानी चाल ढाल बहुत कुछ बदल डाली है ।  
धर्मान्तर भी इन्होंने कर डाला है और कपड़े लत्ते  
में भी रूपान्तर कर दिया है । अब इनमें से कितने ही  
आदमी कोट और पतलून पहनने लगे हैं । पहले तो  
ये प्रायः दिगम्बर ही रहते थे । अब भी इन लोगों  
में अधिकांश दिगम्बर नहीं तो अर्द्ध-दिगम्बर ही बने  
बिचरा करते हैं । इनकी स्त्रियाँ भी कमर के ऊपर  
का सर्वाङ्ग खुला रखती हैं; जो कुछ सभ्य हो गई हैं



वही उस अंग को ढके रहती हैं। पुराने नाच-कूद अब इनके बन्द हो चले हैं। किसी किसी बहुत बड़े महत्त्व के मौकों पर अब ये लोग पुराने ढंग का नाच नाचते हैं। समोआ टापू के निवासी यद्यपि मामूली तौर पर कपड़े लत्ते पहनने की बिल्कुल ही परवा न करते थे, सिर्फ पत्तियों से अपने अङ्ग-विशेष को ढके रहते थे—तथापि बड़े बड़े उत्सवों और धार्मिक कामों के समय एक लंबा जामा पहनते थे। यहाँ के धार्मिक नर्तक एक ऊँची टोपी, नाचने के समय, पहनते थे। उसे देख कर सभ्य आदमियों को बड़ा कैतुक होता था। हवाई द्वीप के मूल निवासी पक्षियों के पर लगा कर एक अजीब तरह का लंबा कोट बनाते थे। उसके तैयार करने में बरसों लग जाते थे। यह कोट बड़े मोल का होता था। खास खास मौकों पर यह कोट पहना जाता था। पर ये पुराने ढंग के वस्त्राच्छादन अब योरप और अमेरिका-वालों के कोट और हैट को अपना स्थान देते चले जा रहे हैं। क्रम क्रम से उनका रवाज कम हो रहा है।

पालीनेशिया और मेलीनेशिया के मूल निवासियों के विषय में सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इन टापुओं में योरपवालों का प्रवेश हुए कोई सौ वर्ष हुए। तबसे आज तक इन लोगों के रीतिरवाज आदि पर बराबर पुस्तकें लिखी जा रही हैं। इनमें से जो बहुत पुरानी पुस्तकें हैं उनमें लिखी हुई कोई कोई बातें बड़े ही अचम्भे की हैं। उन बातों का अब बहुत ही कम रवाज है। इससे सूचित होता है कि इन टापुओं के निवासी अपनी पुरानी चाल को बहुत शीघ्र छोड़ सकते हैं। एक पुस्तक में लिखा है कि टोंगा द्वीप के निवासी पहले कमर से जांघों तक गुदना गुदाते थे। उसमें वे पीले रंग की कोई चीज़ लगाते थे। इससे उनका यह अङ्ग उम्र भर पीला बना रहता था और देखने में बड़ा ही विलक्षण मालूम होता था। ये लोग, स्त्री और पुरुष दोनों, कमर में मोटे कपड़े या चट्टाई का एक छोटा सा टुकड़ा मात्र लपेटते थे। बाकी सारा अङ्ग नंगा रहता था। सङ्कोच और लज्जा का कहीं इनमें नाम न था। तरुण

लड़कियाँ पिता और गुरु-जनों के सामने इस वेष्ट में आते जरा भी न सकुचती थीं। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों एक ही तरह के गहने पहनते थे। ये लोग माला या हार पहनने के बड़े शौकीन थे। इनके हार विशेष करके चिड़ियों की टाँगों की हड्डियाँ और शार्क नामक मछली के दाँतों के होते थे। सोपियाँ और जंगल फलों की गुठलियों के भी ये लोग हार बना कर पहनते थे। चिड़ियों के बाजू और चाँचें भी कभी कभी ये अपने हारों में पिरो देते थे। कलुबे की हड्डियों की अँगूठियाँ और बाजबन्द भी इन्हें प्रिय थे। प्रत्येक कान में ये लोग दो दो छेद करके उनमें हाथीदाँत या मामूली हड्डियों की तीन तीन इंच व्यासवाली बालियाँ पहनना बहुत पसन्द करते थे। यद्यपि ये बिल्कुल ही असभ्य थे, तथापि अपने बदन को ये हमेशा साफ रखते थे। इस लिए ये तब भी दो दो तीन तीन दफे तालावों में नहाते थे। यदि समुद्र में नहाने का मौका आता था तो तालाव का पानी मिलते ही उसे अपने ऊपर डाल कर बरसों दुबारा धो डालते थे। समुद्र के पानी से चमक फट जाता है। इस तकलीफ से बचने के लिए ये लोग पेसा करते थे।

पालीनेशियन और मेलानीशियन लोग बाल सँवारने के पीछे बेतरह पागल रहते हैं। मर्द और स्त्री सभी अपने बाल रँगने, सँवारने और उन्हें सोपियों और पक्षियों के पंखों तथा फूल-पत्तियों से आभूषण करने में घंटों खर्च करते हैं। रात को जब वे सोते हैं तब सिर के नीचे काठ की एक चिड़िया सोते हैं तब सिर के नीचे काठ की एक चिड़िया तकिया रखते हैं। वह इस तरह की होती है कि बालों का सिंगार ज्यों का त्यों बना रहता है—बाल बिखरने नहीं पाते। इस तकिये के कारण इन लोगों को सोते समय बहुत तकलीफ मिलती है; परन्तु उन्हें ये खुशी से सह लेते हैं। तकलीफ चाहे जितनी हो; बाल न बिखरने पावें!

इन द्वीपसमूहों के निवासी एक प्रकार के सोमरस यागी किंवा सोमपायी हैं। इनके सोमरस का रंग है कावा। किसी किसी टापू वाले इसे आवा

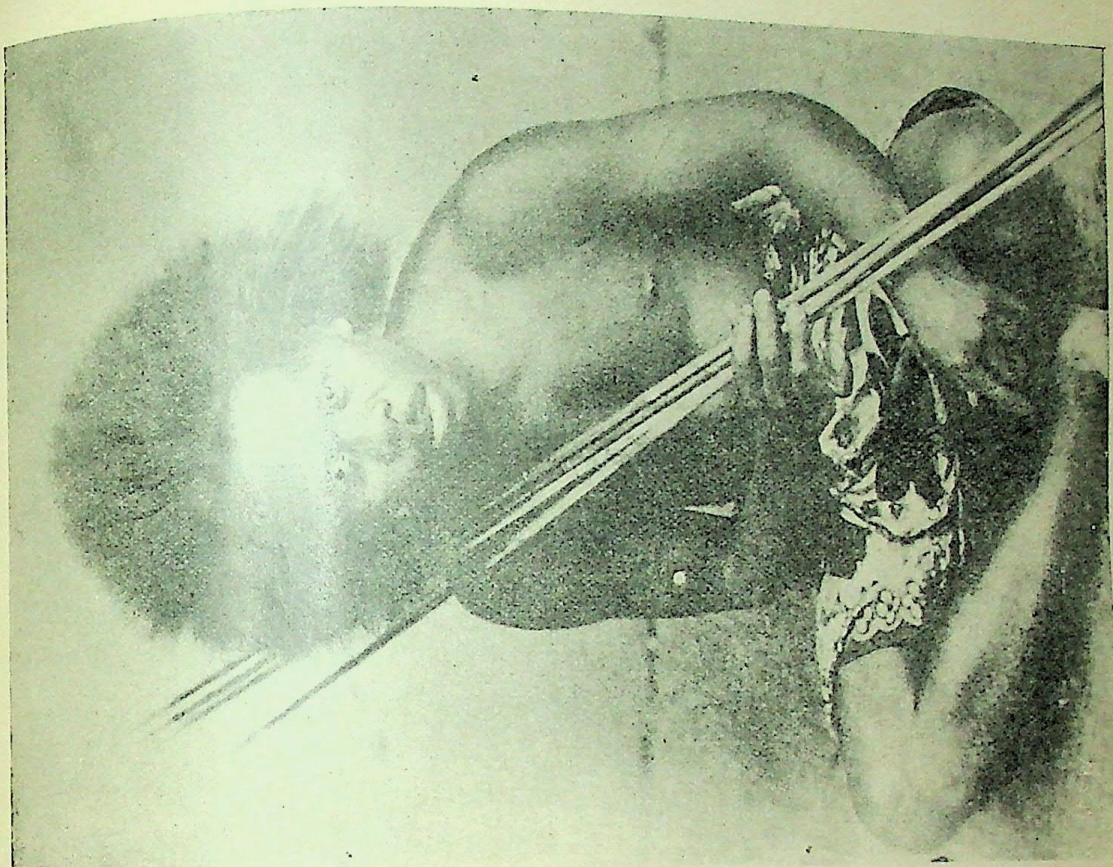


इस वेत  
घोर पुरा  
लोग माला  
हार विरोध  
तार्क नाम  
घोर जंगल  
वना का  
भी कहे  
कछुवे को  
इन्हें को  
छेद कर  
तीन ती  
पसन्द कर  
थापि अके  
लिए ये कि  
नहाते थे  
तो ताल  
ठ कर व  
से चम  
के लिए

लोग वा  
मई-घोर  
सीपियों को  
ने आभूषण  
जब ये लोग  
एक विचित्र  
होती है कि  
ता है—ज  
ण इन लोग  
परन्तु ज  
वाहे जित

हार के से  
स का क  
ने आवा

सरस्वती



सालोमन टाप का एक रक्तपिपास वीर ।



सालोमन टाप की एक रक्तपिपास



संख्या ९  
होते हैं।  
और त्योहा  
नी लड़ सं  
तकड़ों अ  
बुलार  
निर सब  
ते नाव व  
सारी की  
बाद वह  
नलर छा  
होती हैं त  
करते हैं।  
रुड़के तक  
भारते हैं  
मैं कावा र  
पुल्ल के स  
रुही साँ  
नार लोग  
का काम व  
अति  
मय देश  
गांव में ए  
श्यों के अ  
मिपुद कि  
माना है।  
रियत रह  
ते हैं वे  
मारा  
सच र  
अच्छ अरु  
मुचित  
नकार के  
अब त  
मैं एक ट  
पट कर  
के अभिप







है। जो इनके बाणों से मारे जाते हैं उनके सिर ये काट लेते हैं। उन्हें वे अपनी बस्तियों में जमा कर देते हैं। इनके क्रूर कर्म की वे सदा याद दिलाया करते हैं। धनुर्बाण और भाला ही इनके प्रधान शस्त्र हैं।

सालोमन टापू के निवासी अपने कान छेद कर उस छेद को धीरे धीरे इतना बड़ा कर देते हैं कि उनके भीतर मोटी मोटी लकड़ियाँ तक चली जाती हैं। एक साहब ने तो यहाँ तक लिखा है कि उस छेद के भीतर इन लोगों का सिर तक चला जाता है। कान भी इनके बहुत लंबे होते हैं। इनके बाल ऊपर को उठे और बिखरे हुए होते हैं।

इस द्वीप-पुञ्ज में एक छोटा सा टापू बोगेनविली नाम का है। इसके निवासियों को मनुष्य नहीं राक्षस कहना चाहिए। वे मनुष्यभक्षी हैं। अपरिचित आदमी उनसे भागे नहीं बचता। पकड़ कर उसे ये फौरन खा जाते हैं। लड़ाकू ऐसे होते हैं कि पड़ोस के टापुओं पर अकारण चढ़ाई करके वहाँ वालों के सिर काट लाते हैं। मनुष्य मारना और मार कर खा जाना इनके लिए खेल है। आर लाइ-डेकर नामक एक साहब ने अपनी एक किताब में ऐसा ही लिखा है।

## विविध विषय ।

### १-ऐकार का उच्चारण ।



ज कल लोगों का ध्यान हिन्दी वर्णमाला की न्यूनता की ओर झुका हुआ है। अन्य भाषाओं की वर्णमालाओं में प्रत्येक अक्षर का नाम कुछ और उच्चारण कुछ होता है; पर नागरी-वर्णमाला इस दोष से निर्मुक्त समझी जाती है। जैसे अँगरेजी में अवर्ण का नाम 'ए' व 'यू' और उर्दू में 'अलिफ़' है। पर इसके उच्चारण अथवा ध्वनियाँ अ, आ, ए, ऐ आदि कई एक हैं Ball, Rate, Hat, Law इत्यादि में कई एक विलक्षण ध्वनियाँ हैं। पर नागरी

में इस वर्ण की ध्वनि और नाम दोनों एकही अर्थात् 'अ' हैं। देवनागरी-वर्णमाला के इस उत्तम गुण की प्रशंसा संसार कर रहा है। परन्तु यह बात अविवाद सिद्ध हो चुकी है कि कुछ ध्वनियाँ हिन्दी भाषा में आज कल ऐसी प्रयुक्त होने लगी हैं जिन्हें लिए इस वर्णमाला में सङ्केताक्षरों की न्यूनता है। यदि यह वर्णमाला भी पूर्वोक्त दोष से कलङ्कित हो तो आज हम भी अन्य भाषाओं की तरह एक-एक अक्षर से कई ध्वनियों का काम निकाल लेते; अपनी वर्णमाला की निर्दोषता बनी रखने के लिए हमारे आधुनिक साहित्याचार्य इस कुप्रथा को चला पाप समझने लग गये हैं; उनको यह दोष असह्य सा प्रतीत होने लग गया है। वे कुछ अधिक संकेताक्षरों को बना लेना ही अच्छा समझते हैं। जिन्होंने महानुभावों ने इस न्यूनता को पूर्ण करने के लिए बीड़ा उठाया हो उनसे मेरी एक प्रार्थना यह कि वे ऐकार का भी फैसला कर दें। संस्कृत में ऐकार का उच्चारण 'रामैः' 'गजैः', 'एकैक' इत्यादि में जैसा होता है वैसा हिन्दी में 'वैसा,' 'है' इत्यादि में नहीं होता। इसकी एक विलक्षण ऐकार की सी है। हमारे प्राचीन वैदिक कर्णों ने ऐकार का कण्ठतालु स्थान कह कर उसका द्वादश भेद बताये हैं। पर हिन्दी भाषा में प्रयुक्त उक्त ऐकार का उनमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता। यही दशा औकार की भी है:—गङ्गौघः, कृष्णौघः, ण्यम्, इत्यादि में जैसा औकार का उच्चारण होता है वैसा 'और,' 'गौर,' 'दौड़' इत्यादि में नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह कि प्राचीनों के ऐकार में प्रयुक्त प्रकार की 'आई' की सी ध्वनि निकलती है और औकार में 'आउ' की सी; यह बात हिन्दी में प्रयुक्त उक्त उदाहरणों के ऐकार या औकार में नहीं प्रतीत होती। इनमें उनकी अपेक्षा कुछ ह्रस्वता होती है। अतः ये उनसे अवश्यमेव पृथक् प्रतीत होते हैं। मेरी राय में इन ध्वनियों के लिए अलग सङ्केताक्षर बनाने की आवश्यकता है।



## २-आर्यों का आदिम स्थान ।

आज कोई ४० वर्ष से पश्चिमी विद्वान् इस बात की खोज में लगे हैं कि आर्यों का आदिम स्थान कौन है। अर्थात् इस भूमिमण्डल के किस भाग-विशेष में पहले उन्होंने रहना स्वीकार किया। आर्यों से मतलब यहाँ पर हम लोगों तथा पारसी, ग्रीक, रोमन, स्लाव, केल्ट और जर्मन लोगों के पूर्व-पुरुषों से है—वे पूर्व-पुरुष जो एक ही भाषा बोलते थे और बहुत करके एकही जगह रहते थे। आज तक इस विषय में जिन जिन विद्वानों ने गवेषणा की है उन उनकी गवेषणा का फल एल० एम० मजूमदार नामक एक महाशय ने जूलाई १९११ के “माडर्न एशिया” में प्रकाशित किया है। उसका निष्कर्ष नीचे दिया जाता है :—

आर्यों के आदिम स्थान का निर्देश सन् ईसवी	
कास्पियन समुद्र के पश्चिम	१८६८
काले समुद्र के उत्तर-मध्य और	
पश्चिमी जर्मनी में	१८७१
यूराल पर्वत से ले कर उत्तरी जर्मनी	
और उत्तरी फ्रांस तक के मध्यवर्ती	
देश में ।	१८७१
यूरोप में ४५ वीं से लेकर ६० वीं	
देशान्तर-रेखा के बीच में ।	१८७३
जर्मनी में—अकेले जर्मन वाले ही	
आदिम आर्यों की यथार्थ सन्तति हैं ।	१८७८
स्कैंडनेविया ।	१८८३
योरप—अर्थात् आर्यों के पूर्व-पुरुष	
योरप में रहते थे ।	१८८५
उत्तरी ध्रुव-प्रदेश ; फिनलैंड के उत्तर	१८८७
गल्फ रेटज़ियस स्कैंडनेविया	१९०६
प्रोफेसर रेंडल और सेस की भी वही राय है	
कि आर्यों के आदिम स्थान के विषय में विद्वान्	
कम से कम उत्तर को बढ़ते गये । यहाँ तक	
कि फिनलैंड और स्कैंडनेविया तक, जो उत्तरी ध्रुव-	

प्रदेश की सीमा के कुछ ही इधर है, पहुँच कर ही नहीं रुके, किन्तु ठेठ ध्रुव तक चले गये। शायद और आगे भी बढ़ते ; पर क्या करें, आगे बत्ती ही नहीं। इससे यह भी सिद्ध है कि ध्रुव-प्रदेश को आर्यों का आदिम स्थान बताना श्रीमान् बाल गङ्गाधर तिलक की कल्पना नहीं। इस कल्पना को, उन की पुस्तक प्रकाशित होने के बहुत पहले, और लोग कर चुके थे। तिलक महाशय ने ऋग्वेद के मंत्रों का अवतरण देकर उसे केवल पुष्ट किया है। उन्होंने ने ऐसे मंत्र ढूँढ निकाले हैं जिनमें उत्तरी ध्रुव-प्रदेश की प्राकृतिक घटनाओं की सूचना है। इससे उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला है कि वैदिक आर्यों के पूर्वजों ने इन घटनाओं को अवश्य देखा था। यदि न देखते तो उनका वैसा वर्णन वेद में न मिलता। अतएव वे जरूर ध्रुव-प्रदेश में किसी समय रहते थे।

## ३-मनुष्य की प्रथमोत्पत्ति ।

अच्छा, आर्यों के पूर्व-पुरुष तो उत्तरी ध्रुव के आस पास कहीं रहते थे। अब यह बतलाइए कि मनुष्य सबसे पहले पैदा किस देश में हुए थे। अथवा यह कहिए कि डारविन साहब के अनुसार अपनी अधस्तन श्रेणी के प्राणी मर्कट से मनुष्यों का क्रम-विकाश कहाँ हुआ था। डारविन साहब कहते हैं, यह विकाश अफ्रीका में हुआ था। डि कार्टीफ्रेजेस की राय है कि एशिया में। वैगनर नाम के विद्वान् की राय में मानवविकाश यूरोप में हुआ था। फ्रांस के एक पण्डित, एम० डि सपोर्टी का अनुमान है कि ध्रुव-प्रदेश के किसी सामुद्रिक तट पर पहले पहल मनुष्योत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि उष्ण होने के कारण और देश उस समय मनुष्यों के निवासयोग्य न रहे होंगे। अमेरिका के डाकूर वारन की भी यही राय है। एक साहब का नाम कीन है। उनका कहना है कि किसी समय आस्ट्रेलिया का टापू एशिया और अफ्रीका से जुड़ा हुआ था। उसी समय इन्हीं दोनों भूखण्डों में कहीं पर मानव जाति की उत्पत्ति हुई होगी। इसी सिद्धान्त की और विद्वान् अब झुकते जाते हैं। वे कहते हैं



हैं कि यह बात असम्भव नहीं। हो सकता है कि अफ्रीका में, या दो चार सौ मील इधर उधर कहीं एशिया में, पहले पहल मनुष्य उत्पन्न हुए हों। वहाँ से उनकी कोई शाखा उत्तरी ध्रुव-प्रदेश की तरफ चली गई हो। वहाँ उस शाखा के मनुष्य मुद्गों तक रहे हों। अनन्तर प्राकृतिक कारणों से उन्हें वह प्रान्त छोड़ना और धीरे धीरे दक्षिण की ओर आना पड़ा हो।

#### ४—वेदों का रचना-क्रम और रचना-काल ।

काशी की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में कुछ समय से “प्राचीन आर्य” नामक एक लेखमाला निकल रही है। पुरातत्त्व के प्रसिद्ध पण्डितों ने प्राचीन आर्यों और उनके परम पूज्य वेदों के विषय में जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं उनका सार इसमें सङ्कलित होता है। इस पत्रिका की गत जून की संख्या में वेदों के विषय में कई एक महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। यथा:—“ऋषि लोग गद्य, पद्य और गीत में, नाना घटनाओं पर, मंत्रों को रचते गये और यह रचना कई हजार वर्षों तक जारी रही। ..... महर्षि वेदव्यास ने वेदों की भली प्रकार जाँच पड़ताल कर उन्हें चार संहिताओं में विभक्त किया। इससे सुनिश्चित है कि महाभारत-युद्ध के कुछ ही पूर्व यह संहितायें बनीं। ..... शुक्ल यजुर्वेद की संहिताओं का संकलन महाभारत-युद्ध से बहुत पीछे हुआ और यह अन्तिम संकलन है। इस संकलन के पीछे जो मन्त्र बने वा जो छूट गये थे उनको कात्यायनजी ने, जो पाणिनिजी से बहुत पीछे हुए, संग्रह करके अवशिष्ट में रख दिया”। सो अब हिन्दी में भी इस तरह की बातें आज्ञादी के साथ कही जाने लगीं और पाठक उन्हें सहन भी करने लगे।

#### ५—कालिदास की एक और ऐतिहासिक निरङ्कुशता ।

यह बात-विश्व विश्रुत है कि भगीरथ के राजत्व-काल में गङ्गा का प्रादुर्भाव हुआ था। आदि-कवि

वाल्मीकि ने भगीरथ ही के द्वारा स्वर्ग से गङ्गा लाया जाना लिखा है। इसीसे गङ्गा का दूसरा नाम भगीरथी है। संस्कृत-कवियों की तो कुछ बात नहीं, हिन्दी के कवियों ने भी गङ्गा को इस दूसरे नाम से याद किया है। यथा:—

भगीरथी हम दोस भरे

पै भरोस यही की परोस तिहारे

परन्तु जिन कालिदास की निरङ्कुशता नाम सुन कर बड़े बड़े शास्त्री और विद्वद्गुरु लते कूदते हैं उन्होंने राजा दिलीप के समय में गङ्गा के अस्तित्व का उल्लेख किया है। भगीरथ पिता राजा दिलीप वाल्मीकि-रामायण में कहते हैं—

कथं गङ्गावतरणं कथं तेषां जलक्रिया ।

तारयेयं कथञ्चैतानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥

तस्य चिन्तयतो नित्यं धर्मेण विदितात्मनः ।

पुत्रो भगीरथो नाम जज्ञे परमधार्मिकः ॥

सो दिलीप बेचारे सदा गङ्गावतरण की फिर में रहे; पर उनकी वह चिन्ता न गई। उनके बाद परम धार्मिक पुत्र भगीरथ ने गङ्गावतरण कराया

अब कालिदास की सुनिष्ट। दिलीप के सन्तति न थी। एतदर्थ वशिष्ठ के आश्रम में, मुनि आज्ञा से, नन्दिनी नामक धेनु की सेवा में वे बसे हुए। इस सम्बन्ध में कविकुलगुरु रघुवंश के सर्ग में लिखते हैं:—

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनु ।

गङ्गाप्रपातान्तविरूढशप्यं गौरीगुरोर्गङ्गमाविवेश ॥

अब प्रश्न यह है कि दिलीप के समय में गङ्गा का अस्तित्व ही न था तब गङ्गा का प्रपात कहाँ आया? महाकवि कि यह ऐतिहासिक निरङ्कुश ही है या और कुछ?

इन्दु शर्मा (गाजियाबाद)

६—“अहिंसा परमो धर्मः” का विलोप में कीर्तन ।

“अहिंसा परमो धर्मः” का घोष अब विलोप में भी सुनाई देने लगा है। फीरोजपुर में जैन



विश्व-प्रचारक नामक एक सभा है । उसने बहुत  
 कि हस्तपत्रक हमारे पास भेजे हैं । उनसे विदित  
 होता है कि लन्दन और मैनचेस्टर में इस प्रकार  
 की कितनी हीं सभायें स्थापित होगई हैं जो जीव-  
 विज्ञान-निवारण का यत्न करती हैं और निरामिष  
 भोजन के लाभ दिखाने के लिए समाचार-पत्र और  
 मासिक पुस्तकें प्रकाशित करती हैं । ऐसी अनेक  
 पुस्तकें उन सभाओं के प्रयत्न से प्रकाशित हुई हैं  
 जिनमें मांस-भोजन से होने वाली हानियों और रोगों  
 का बड़ाही भक्षण चित्र खींचा गया है । ये पुस्तकें  
 दो दो चार चार आने की हैं । आमिष और  
 निरामिष भोजन के सम्बन्ध में थोरपवाले आज कल  
 जांच कर रहे हैं । ब्रुसेल्स विश्व-विद्यालय में  
 एक लेडी महाशया अध्यापिका हैं । आप बड़ी विदुषी  
 । कुछ समय हुआ आप इस बात की जांच करने  
 उतारु हुई कि कुछ विशेष औषधियों का असर  
 मित्र खाद्य-भोजी मनुष्यों पर कैसा होता है ।  
 उन्होंने मांसभोजियों पर उनके असर की  
 परीक्षा की, फिर निर्मांस भोजियों पर । पिछले लोगों  
 की परीक्षा का फल देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ ।  
 परीक्षा उन्होंने एरगोग्राफ नामक एक यंत्र से  
 की । उससे सिद्ध हुआ कि निरामिषभोजी लोग परि-  
 श्रम के काम अधिक कर सकते हैं । वे आमिष-  
 भोजियों की अपेक्षा कम थकते हैं । उनमें अधिक  
 शक्ति और श्रमसहिष्णुता होती है । पहले उन्हें  
 पर विश्वास न हुआ । इस कारण उन्होंने यथा-  
 शक्ति अनेक निरामिष भोजियों की वैज्ञानिक परीक्षा  
 की । इन परीक्षाओं से उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला  
 कि निर्मांसभोजियों की अपेक्षा वनस्पति-भोजियों की  
 शक्ति और श्रमसहिष्णुता तिगुनी होती है ।  
 हिन्दुस्तान में सूत और कपड़े के  
 कारखानों की संख्या-वृद्धि ।  
 हिन्दुस्तान में गत पाँच वर्षों में सूत और कपड़े  
 कारखानों की संख्या बहुत बढ़ गई है । इससे  
 कि हिन्दुस्तान में कपड़े और सूत के व्यव-

साय में बहुत उन्नति हुई है, और यदि हम लोगों  
 की व्यावसायिक प्रवृत्ति ऐसी ही बनी रही तो और  
 भी उन्नति होने की आशा है । नीचे का हिसाब  
 देखिए :—

सन् १९०५ १९०६ १९०७ १९०८ १९०९ १९१०  
 कारखानों की

संख्या १९७ २१७ २२४ २४१ २५९ २६३

इससे पाठकों को मालूम होगा कि पाँच वर्षों में  
 इस तरह के कारखानों की संख्या १९७ से २६३ हो  
 गई है—अर्थात् फ्री सदी ३४ की वृद्धि हुई । यह  
 बहुत आशाजनक और सन्तोषदायक है ।

### ८—जर्मन में संस्कृताध्ययन ।

काशी के सेंट्रल हिन्दू कालेज में मिस्टर आइ०  
 जे० एस०, तारापुर वाले अँगरेजी के एक अध्यापक  
 हैं । आप बी० ए० भी हैं और बारिस्टर-एट-ला  
 भी । आप संस्कृत, जर्मन और फ्रेंच भाषाओं में  
 भी पारङ्गुत हैं । आपको भारतीय गवर्नमेंट ने २२५०  
 रुपये की वार्षिक छात्रवृत्ति इसलिए दी है कि  
 आप विलायत जाकर अपने संस्कृत-ज्ञान को परिष्क  
 कर आवें । आप बहुत करके जर्मनी जायँगे । वहाँ  
 किसी विश्वविद्यालय में भरती होकर आप संस्कृत  
 की उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे और पीएच० डी० की  
 पदवी लेकर लौटेंगे ।

### ९—पूर्व-जन्म की स्मृति का एक अद्भुत

#### उदाहरण ।

युक्तप्रदेश, ज़िला इटावा, तहसील विधूना, के  
 औतां नामक ग्राम में पण्डित मूलचन्दजी दुबे के  
 यहाँ मिति आषाढ़ शुक्ला १५, संवत् १९६० को  
 एक कन्या उत्पन्न हुई । जब वह चार पाँच वर्ष की  
 हुई तब अपनी तोतली बोली में माता-पिता को पूर्व  
 जन्म की बातें सुनाने लगी । परन्तु उन्होंने उसकी  
 बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया । जब वह सात वर्ष  
 की हुई और उसका तोतलापन जाता रहा तब वह  
 साफ़ साफ़ इस तरह कहने लगीः—



“बरालोकपुर, जिला इटावा, तहसील इटावा में मेरे दो लड़के, इन्द्रजीत और बच्चनलाल, रहते हैं। मैं उनकी पूर्व जन्म की माँ हूँ। मेरे घर के सामने एक बट वृक्ष और पक्का कुवाँ है, इत्यादि। मेरा पौत्र महामारी से पीड़ित होकर मर गया था। मुझे उसका बड़ा शोक है।”

लड़की के माता-पिता ने अपने इष्ट-मित्रों से लड़की की कही हुई बातें कहीं। सब लोग विस्मित होकर कहने लगे कि सम्भव है इसका कथन यथार्थ हो; क्योंकि हिन्दुओं को पुनर्जन्म में अटल विश्वास है। अस्तु। इस लड़की की बातों की सत्यता की जाँच के लिए उन लोगों ने पण्डित इन्द्रजीत को औतों बुलवा भेजा। उनके आने पर लड़की ने उनको भले प्रकार पहचान लिया। पण्डित इन्द्रजीत ने विस्मित होकर कहा कि मैं आपको नहीं पहचानता। कन्या ने उत्तर दिया कि बेटा! बरालोकपुर में जब महामारी ने आक्रमण किया था तब तुम्हारा लड़का उसी रोग से पीड़ित होकर मर गया था। तदनन्तर मेरा भी देहान्त उसी रोग से हुआ था और तुमने मेरे मृत शरीर को अहनैया नदी में प्रवाहित कर दिया था। कुछ दिन के अनन्तर मूलचन्दजी दुबे का आगमन इस नदी पर से हुआ। उनके घोड़े की पूँछ पर बैठ कर मैं औतों चली आई और अब इन्हीं के यहाँ पुत्री होकर जन्मी हूँ। तुम मेरे पूर्व जन्म के पुत्र हो। यह सुन कर पण्डित इन्द्रजीत ने कहा कि निःसन्देह मेरी माँ, जिनकी आयु लगभग ६० वर्ष की थी, करीब ७ वर्ष के हुए, प्लेग से मरी थीं और उनका मृत शरीर अहनैया में प्रवाहित कर दिया गया था। यह नदी इस जिले के इसी परगने में, जिला मैनपुरी की तरफ से, आती है और परगना विधूना में एक दूसरी नदी से मिल जाती है। बरालोकपुर इसके किनारे है। औतों तथा बरालोकपुर में २८ मील का अन्तर है। कन्या ने गड़ा हुआ धन भी अपने पूर्व पुत्र को बतलाया। उन्होंने निर्दिष्ट स्थान को खोदा तो यथार्थ ही मैं वहाँ धन निकला। यही नहीं, बल्कि लड़की के बतलाये हुए और भी

चिह्न मिले। अब इस कन्या का विवाह पण्डित शिव नारायण के पुत्र बाबू रामस्वरूप के साथ, जेठ शुकला ११, संवत् १९६८ को हो गया है। पण्डित शिवनारायण इटावा के शिक्षा-विभाग में सुपरी हैं। उन्होंने स्वयं यह सब वृत्तान्त मुझसे कहा है।

लीलाधर चौबे

### १०.—मर्यादा के “सत्यदेव” ।

मानासपद पण्डित मदनमोहन मालवीयजी कृपाकटाक्ष से अब तक अकेला “अभ्युदय” प्रयाग से निकलता था; अब, दस महीने से, उन प्रेस से एक “मर्यादा” भी निकलने लगी है। मर्यादा की इसी महीने की संख्या में एक लेख “हमारे सत्यदेव” नामक निकला है। उसका आरम्भ इस प्रकार है :—

हमारे पाठक श्रीमान् सत्यदेवजी से अच्छी प्रशंसा चित हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए हम लोगों ने सत्यदेव के साथ वाशिङ्गटन नगरी की शेर की थी। अब हमारे अमेरिका, इङ्गलैण्ड, स्वीजरलैण्ड, फ्रांस आदि देशों में मृत मातृभूमि की सेवा के निमित्त यहाँ आ गये हैं।

सत्यदेवजी ने सरस्वती पर छः सात वर्षों लगातार कृपा की। सरस्वती ने भी यथाशक्ति

\* पण्डित लीलाधर चौबे, बी० ए०, इटावे में स्कूल सब डेपुटी इन्स्पेक्टर हैं। आपने इस विषय में हमें जो लिखा है उसकी नक़ल नीचे दी जाती है :—

MY DEAR DVIVEDIJI—I beg to send you the above note for publication in the Sarashvati under “विविध विषय.” Please give it some place in your world-wide journal, if you approve of it. I assure you that what has been stated in the note is a fact.

The girl is still alive and remembers the past very well

Yours sincerely,  
LILA DHAR CHAUBE,  
son of Pt. Banarsi Das Chaudhary  
of Agra, your old friend



उनकी सेवा की। अब उन्हें मर्यादा ने अपनाया है। सबसे नाता तुड़वाकर उसने अब उन्हें एकमात्र अपना कर डाला है। अब से न और कोई सत्यदेव जी का, न सत्यदेव जी ही और किसी के। “हमारे सत्यदेव” का इसके सिवा और क्या अर्थ हो सकता है? सत्यदेवजी ने सरस्वती को नेटिस दिया है कि मैं अब और कोई लेख न भेजूंगा। जो भेज चुका सो भेज चुका। मर्यादा अब आप के लेख छापेगी और अभ्युदय प्रेस आपकी किताबें। मर्यादा को सत्यदेवजी की यह मित्रता मुबारक हो। जो पाठक सरस्वती को केवल सत्यदेव जी के लेख पढ़ने ही के लिए लेते रहे हों वे अब मर्यादा को लिया करें। सत्यदेवजी बड़े उदारहृदय, सम-दर्शी और गीता-पाठ के प्रेमी हैं। सरस्वती से यदि उनकी इस छः सात साल की सेवा में कोई त्रुटि हुई हो तो, आशा है, उसे वे दया करके क्षमा कर देंगे।

## पुस्तक-परीक्षा ।

१—मायावी । जासूसी कहानी है। गहमर-निवासी बाबू गोपालराम द्वारा बंगला से अनुवाद की गई है। “जासूस” में निकली थी। पीछे से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। उसी का यह दूसरा संस्करण है। छोटी साँची के २३२ पृष्ठ हैं। मूल्य है डेढ़ रुपया। जान पड़ता है लोगों ने उसे बहुत पसन्द किया। उसीसे अधिक मूल्य रखने पर भी उसकी दूसरी आवृत्ति निकालनी पड़ी। हिन्दी के लिए यह शुभ संकेत है और जासूस-सम्पादक के लिए खुशी की बात। मिलने का पता—मैनेजर जासूस, गहमर, गाजीपुर।

✽

२—तारामती । सामाजिक उपन्यास। १५६ पृष्ठ। मथुरा आठ आने। मथुरा जंकशन के असिस्टेंट स्टेशन पर पण्डित—केदारनाथ कृत। उन्हीं से प्राप्य। पुस्तकारम्भ में दस सतरों की एक प्रार्थना संस्कृत में है। वह गलतियों से भरी हुई है। उसके

आगे कुछ सोरटे हैं। उनमें भी गलतियों की भर-मार है। पहले परिच्छेद का आरम्भ भी गलतियों से खाली नहीं। खैर। तारामती के लेखक ने इस पुस्तक में जो दिखलाया है वह यह है :—“पिता को अपनी पुत्री के लिए बर खोजने में किस प्रकार की देख जाँच करनी आवश्यक है। और इस बात पर ध्यान न देने से अंत में कैसा पश्चात्ताप होता है। तथा कुसंगत में पड़ने के कारण कैसे कैसे योग्य पुरुष भी अपनी मर्यादा को जलाजली दे बैठते हैं और उनकी अन्तिम दशा कैसी शोचनीय तथा कष्टदायक होती है।”

✽

३—खानखानानामा । पुस्तक के दो भाग हैं। दोनों एक ही जिल्द में हैं। सब मिला कर पुस्तक में कोई ढाई सौ पृष्ठ हैं। इसे कलकत्ते के भारत मित्र प्रेस में छपे दो वर्ष हुए। प्रसिद्ध इतिहासप्रेमी, जोधपुर-निवासी, मुन्शी देवीप्रसाद ने इसे अनेक प्राचीन तबारीखों के आधार पर लिखा है। उन्हीं ने इसकी एक कापी कृपा करके हमें भेजी है। इसके पहले भाग में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना (रहिमन कवि) के वंश का, उनके पिता बैरमख़ाँ का, और हुमायूँ तथा अकबर का संक्षिप्त वर्णन है। दूसरे भाग में खानखाना का उपलब्ध चरित है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। बड़ी खोज और परिश्रम से लिखी गई है। सुपाठ्य है। संग्रहणीय है।

✽

४—जैनहितैषी । यह मासिक पत्र छः सात वर्ष से जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरिगाँव, बम्बई से निकल रहा है। वार्षिक मूल्य इसका डेढ़ रुपया है। इसके प्रत्येक अङ्क में छोटी साइज के कोई ७०—८० पृष्ठ रहते हैं। इसमें जैनधर्मावलम्बियों के सिवा अन्य लोगों के लिए भी हितकर लेख रहते हैं। कभी कभी इसमें ऐतिहासिक लेख बहुत अच्छे निकलते हैं।

✽

५—स्वास्थ्य-रत्ना । पण्डित-हरिदास-वैद्य-कृत । हरिदास एंड कम्पनी, २०१ हैरीसन रोड, कल-



कत्ता से प्राप्य । पृष्ठ-संख्या ३३२ । मूल्य १॥) — अने-  
कोंश में यह पुस्तक उपयोगी और लाभदायक है ।  
यह इसका दूसरा संस्करण है । इससे जान पड़ता  
है कि लोगों ने इसके पहले संस्करण को पसन्द  
किया है । इस संस्करण का कलेवर पहले से बढ़ाया  
गया है । पर इसके दूसरे भाग का वह अंश जिसे  
हमने पहले संस्करण की समालोचना में अना-  
वश्यक बतलाया था नहीं निकाला गया । इससे  
सूचित होता है कि लेखक ने इस पुस्तक को व्यापा-  
रिक दृष्टि से प्रकाशित किया है । नवयुवकों के लिए  
यह अंश चुम्बक का काम देगा और वैद्यजी की  
पुस्तक का यह संस्करण भी शीघ्र ही बिक जायगा ।

✽

६—क्षत्रिय समाचार । यह एक नया मासिक पत्र  
है । धर्मशाला घाट, पटना, से प्रकाशित होने लगा  
है । चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ के तीन अङ्क इसके  
एक ही साथ हमें मिले हैं । हर अङ्क में ८ पृष्ठ  
हैं । वार्षिक मूल्य इसका केवल ॥३॥ है । क्षत्रियों  
का यह जातीय पत्र है । उन्हीं की उन्नति के लिए  
इसका जन्म हुआ है । ईश्वर करे इसका उद्देश  
सफल हो ।

✽

७—Leprosy and its Treatment. कुष्ठ-  
रोग-चिकित्सक पण्डित रूपाराम ने इस महारोग की  
चिकित्सा में बड़ा नाम पैदा किया है । आप पञ्जाब  
के रहने वाले हैं । इनके पिता को इस रोग की  
अव्यर्थ ओषधि और चिकित्सा-विधि बड़े परिश्रम,  
व्यय और खोज से ज्ञात हुई थी । उन्हीं से वह आप  
को प्राप्त हुई है । आपने कलकत्ते की ८ नंबर, नन्दी  
बगान, सलकिया में एक कुष्ठालय खोला है । वहाँ  
कोढ़ियों की आप चिकित्सा करते हैं । आज तक  
अनेक गलित कुष्ठियों को आप आराम कर चुके हैं ।  
इस अँगरेजी पुस्तक में पण्डित रूपाराम जी ने कुष्ठ-  
रोग के कारण, लक्षण और चिकित्सा आदि के  
सिवा उन कई एक कोढ़ियों के चित्र भी दिये हैं जिन्हें  
उन्होंने अच्छा किया है । अमृत-बाजार-पत्रिका के

भूतपूर्व सम्पादक, परलोकवासी बाबू शिशिर-कुमार  
घोष को यह पुस्तक अर्पण की गई है । उनके छोटे  
भाई बाबू मोतीलाल घोष ने इस पुस्तक की भूमिका  
लिखी है । इन दो सज्जनों के सर्टीफिकेटों के सिवा  
और भी कितने हों सर्टीफिकेटों की नकल इस पुस्तक  
में है । बड़े बड़े वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों को  
विश्वास था कि इस महारोग की कोई अच्छी ओषधि  
नहीं । पण्डित रूपाराम ने इस विश्वास को भ्राम्य  
सिद्ध कर दिया । यदि पण्डित जी योरप या अमेरिका  
में पैदा हुए होते तो आज उनका यशःसौरभ सारा  
दुनिया में फैल गया होता । अभाग्ये भारत में पैदा  
होने के कारण पण्डितजी की किसी राजे, महाराज  
या धनी पुरुष ने एक कुष्ठालय तक खोलने के लिए  
मदद नहीं दी । तिस पर भी वे हताश न होकर  
यथाशक्ति दीन कोढ़ियों की अपने हाथ से चिकित्सा  
और सेवा-सुश्रूषा करते हैं ।

इस पुस्तक से सूचित होता है कि पण्डितजी अपने  
चिकित्सा-विधि को गुप्त रखना चाहते हैं । यह बुरा है ।

✽

८—सचित्र विवरण । भिवानी की सनातन-धर्म-  
सभा का यह गत दस वर्षों का विवरण है ।  
तत्सम्बन्धी शिवालय, सभा के स्थान और ब्रह्मचरियों  
के चित्र भी इसके साथ प्रकाशित किये गये हैं । दस  
वर्ष में २६५९२ रुपये की आमदनी हुई । खर्च हुआ  
१८८४६ रुपये । सभा का एक विद्यालय है और  
ब्रह्मचर्याश्रम भी । विवरण से मालूम होता है कि  
यह सभा अपना काम उत्तमता से कर रही है ।

✽

९—भगवद्भजनावली । श्रीयुगलकिशोर जी, मुल्तान,  
तार, जमुई, जिला मुंगेर कृत—पृष्ठ १४१ । दस  
पाँच आने । इसमें देवी-देवताओं के 'भजन'  
कोई कोई भजन विशेष सरस हैं । पुस्तक बड़े दर्जे  
में छपी है । अच्छी है ।

✽

१०—उद्धार का उपाय, दूसरा भाग । लेखक रामजस  
राय भाटिया । इसमें पहले योग की श्रेष्ठता दिखाई



है। फिर प्रकृति, परमात्मा और जीवात्मा का वर्णन किया गया है। फिर पातञ्जल योगसूत्र और योग के आधार पर यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम की विधियों का वर्णन किया गया है। पुस्तक उपयोगी है। लेखक के पास ११, पगैयापट्टी स्ट्रीट, कलकत्ता के पते पर डाक-खर्च के लिए आधे आने का टिकट भेजने से यह पुस्तक मिलती है।

✽

११—साहित्यरत्नमाला । जिस साहित्य-रत्नमाला के निकलने की सूचना, कई महीने पहले, सरस्वती में प्रकाशित हुई थी उसकी पहली माला गत ज्येष्ठ में निकल गई। इस पहले अङ्क में सावित्री-सत्यवान्, भ्रुवलोक में शीत काल, नपोलियन बोनापार्ट, अपना सहारा, हाजी बाबा और टाम चाचा की झोपड़ी—एक छः अनुवादों का अष्टपत्री एक एक फार्म प्रकाशित हुआ है। अनुवाद की भाषा भी अच्छी है। छपाई और कागज भी बुरा नहीं। आरम्भ में सावित्री-सत्यवान् का एक चित्र भी है। यह माला मासिक निकल करेगी। वार्षिक मूल्य इसका दो रुपये है। मिलने का पता—बाबू दामोदरदास खत्री, नागरी-प्रचारणी सभा का दफ्तर, १७८ सूतापट्टी, कलकत्ता।

✽

१२—सीने की कल । व्यापारी और कारीगर के उपयोग के, काशी-निवासी, बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री ने इसे बनाया है। पृष्ठ-संख्या इसकी ६० है। मूल्य आठ आने है। अच्छी छपी है। पुस्तक सचित्र है। सीने की कल से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी ज्ञातव्य बातों का इसमें समावेश किया गया है। आज कल शहरों में गली गली सिंगर की मैशीनें दरजियों की श्रृंखला पर देखी जाती हैं। देहात तक में उनका प्रचार है। अब तक जितनी खानगी काम की मैशीनें चली हैं उन सबमें इसने जितना नाम पाया है उतना और किसी ने नहीं। ऐसी उपयोगी और कीमती मैशीन में जब कोई ऐब हो जाता है तब उसको ठीक करने वाला हर जगह नहीं मिलता। बड़े शहरों में भेज कर मरम्मत कराने में खर्च बहुत पड़ता है।

अतः मैशीनें जरा सी बात के लिए वे काम दे जाती हैं। इस पुस्तक में मैशीनें के पुरजों के काम अच्छी तरह समझा कर मामूली ऐबों को ठीक कर लेने के उपाय भी बताये गये हैं। अतएव ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। बाबू ठाकुरप्रसाद ने इस उपयोगी पुस्तक को लिख कर बड़ा काम किया। यह पुस्तक दरजियों के भी काम की है और जिन कुटुम्बों में स्त्रियाँ इस मैशीन से सीने का काम करती हैं उनके भी काम की है। बाबू साहब इस पुस्तक में यदि खास खास मैशीनों की कीमत और जिन खास खास शर्तों पर सिंगर के एजेंट इन मैशीनों को बेचते हैं उनका भी उल्लेख कर देते तो बहुत अच्छा होता।

✽

१३—समर-सार । उन्नाव जिले में एक कसबा रज्जित-पुरवा है। शाही जमाने में यहाँ अचलसिंह नाम के एक राजा हो गये हैं। वे बड़े विद्याव्यसनी और गुणग्राही थे। शूर वीर भी अच्छे थे। उनके दरबार में तीर्थराज नामक एक पण्डित थे। उन्होंने राजा अचलसिंह की आज्ञा से इस पुस्तक की रचना हिन्दी-पद्य में की थी। समर-सार संस्कृत का एक संग्रह ग्रन्थ है। उसमें अनेक ग्रन्थों से ले कर युद्ध-विषयक उपयोगी बातों का संग्रह किया गया है। समालोच्य पुस्तक उसी का अनुवाद है। अनुवाद सरल है। उसके देखने से ज्ञात होता है कि अनुवादक अच्छे कवि थे। तीर्थराज का यह अनुवाद अनेक छन्दों में है। जगह जगह पर चक्र भी हैं। विषय ज्योतिष का है। अतएव ज्योतिषी और मूल समर-सार का ज्ञाता ही इस बात को कह सकता है कि यह अनुवाद कहाँ तक ठीक है। पुराने जमाने में ऐसे ग्रन्थों और उनके ज्ञाताओं का बड़ा मान था। पर इस समय तो ऐसी पुस्तकें बिल्कुल ही निरुपयोगी हैं। युद्ध के समय आज कल घड़ी घड़ी में शत्रु नई नई चाल चलते हैं। इस दशा में मुहूर्त देख कर उनकी चालों का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। पुस्तक में जय-पराजय-विचार, पञ्चस्वर-कथन, अस्त्र-वारणौषधि, कालचक्र-वर्णन, ज्ञान-पुरुष-दर्शन, भू-

सन्दर्भ ग्रन्थ

REFERENCE BOOK



बल-साधन आदि कितने ही विषय हैं। ऐसी पुस्तकें समयानुसार उपयोगी हों या अनुपयोगी, पूर्वजों की कीर्ति-रक्षा के निमित्त उनका प्रकाशन बहुत ही आवश्यक है। उन्नाव जिले के भरथीपुर-ग्रामवासी, पेन्शनयाफ़ा पुलिस इन्स्पेक्टर, महाराज-कुमार चण्डिकासिंह ने इसे १८८९ ईसवी में छपवा कर प्रकाशित किया था और आठ आने इसका मूल्य रक्खा था। गहरेंदा-ग्राम-निवासी, कुँवर दिलीपसिंह ने इसे हमारे पास समालोचना के लिए भेजा है। अतएव हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं।

## चित्र-परिचय ।

( १ )

### कमलासना

इस अङ्क का रङ्गीन चित्र वङ्गदेश की एक पुरानी कहानी के आधार पर तैयार किया गया है। कहानी इस प्रकार है:—

एक सौदागर था। वह शैव था। शास्त्रों में शिव और शक्ति में भेद नहीं माना गया। पर तो भी वह शक्ति को छोड़ कर शिव की ही पूजा किया करता था। यह देख शक्ति रुष्ट होगई। एक दिन की बात सुनिए। वही सौदागर व्यापार के लिए परदेश गया। माग में, जहाज़ पर बैठे बैठे उसने एक जगह पानी के ऊपर कमलवन देखा और उसी के बीच कमलपुष्प पर एक परमरूपवती युवती बैठी देखी। यह देख कर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। सिंहलद्वीप में पहुँच कर उसने वहाँ के राजा से यह सब हाल कहा। सुन कर राजा को विश्वास न आया। राजा को साथ ले कर वह सौदागर फिर उसी जगह आया तो वहाँ कुछ भी न दिखाई दिया। न वहाँ कमलवन था, न कोई रमणी। यह देख राजा ने उसको कैद कर लिया और कारागृह में डाल दिया। इस घटना के कई वर्ष बाद उस सौदागर का पुत्र

भी अपने पिता को ढूँढ़ता हुआ वहाँ से आ निकला। उसने भी मार्ग में कमलासना की वही लीला देखी। वह भी सिंहलद्वीप के राजा को उसे दिखाने के लिए वहाँ गया। पर जब राजा वहाँ पहुँचा तब वहाँ के सिवा और कुछ न था। राजा ने रुष्ट होकर उसका सिर काटने की आज्ञा दे दी। घातक उसका सिर उड़ाना ही चाहता था कि वही कमलासना, शिव शक्ति बुढ़िया का रूप बना कर, वहाँ उपस्थित हुई और घातक से कहने लगी कि यह लड़का मेरा नात है। इसे मुझे दे दो। घातकों ने राजा के डर से वैसा करने में आनाकानी की। बुढ़िया बिगड़ गई उसने ऐसी 'हुड्कार' की कि घातक अचेत होकर गिर पड़ा। राजा को इस बात की खबर हुई। उसने आकर पूछा तो बुढ़िया ने कहा—यह लड़का ठीक कहता है। जा कर देखने से वहाँ कमलवन एक युवती ज़रूर दिखाई देगी। उस लड़के के साथ जा कर राजा ने देखा तो कमलवन दिखाई दिया वहाँ जल पर उसने उस रूपवती नारी को भी देखा तो वह अपनी करनी पर बड़ा पछताया। तब से भी कमलासना की भक्ति करने लगा। फिर उस सौदागर को छोड़ दिया और उससे क्षमा भी माँगी तब से सौदागर भी शिव और शक्ति में अभेद मान कर उनकी पूजा करने लगा। बंगाल में इसे "कमले कामिनी" कहते हैं। यह चित्र इसी घटना के सम्बन्ध रखता है। इसके चित्रण-चातुर्य को पाठक स्वयं देखें। कैसा मनोहर चित्र है!

( २ )

गत जून की बारहवाँ तारीख को लन्दन में महाराज पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी का राज्याभिषेक हुआ उसके जलसे आदि का वर्णन पाठकों ने सामयिक पत्रों में पढ़ा ही होगा। इस जलसे और जुलूस से सम्बन्ध रखने वाले कुछ चित्र पाठकों के अवलोकनार्थ इस संख्या में प्रकाशित किये जाते हैं।



# सरस्वती



कमलासना ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।







CORONATION OF KING GEORGE V.  
Procession at Trafalgar Square



महाराज पंचम जार्ज का राज्याभिषेक हो चुकने पर जुलूस  
वेस्ट मिनिस्टर एबी से बकिंहम महल को लौट रहा है।



भाग १

महाराज

मे

(प



७

पञ्चांग

हस्त

वे

जाति

यह



# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ] १ अक्टूबर, १९११—आश्विन शुक्ल ६, १९६८ । [ संख्या १०

## महाराज पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी का राज्याभिषेक ।

(एकमात्र सरस्वती के लिए लिखित)

गरेजी-साम्राज्य के महाराज का राज्याभिषेक एक बहुत ही बड़ा उत्सव है। उसमें सम्मिलित होने के लिए अनेक देशों के सहस्रों लोग इंग्लैंड जाते हैं। वेस्टमिन्स्टर अबी नामक ऐतिहासिक गिरजा घर, जहाँ सम्राट् राज्याभिषेक किया जाता है, इतना छोटा स्थान है कि वहाँ कोई ७००० दर्शकों से अधिक नहीं बैठ सकते। ऐसे समय में जब कि लन्दन समस्त देशों की बातियों के बड़े बड़े लोगों से खचाखच भरा हुआ है, यह थोड़ी प्रतिष्ठा की बात नहीं, यदि कोई पूर्वोक्त

उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया जाय। राज्याभिषेक देखने की लालसा रखने वाले सहस्रों नरनारी अन्यान्य देशों से आये हुए राजदूतों की बेहद खुशामद करते हैं कि वे कह सुन कर उन्हें या उनके मित्रों या जान-पहचान वालों को राज्याभिषेक देखने के लिए वेस्टमिन्स्टर अबी में जगह दिला दें। किसी किसी की दर्शनात्कण्ठा तो इतनी प्रबल होती है कि यदि वहाँ जाने के लिए टिकट बिकते होते तो वे अर्ल मार्शल को जी खोल कर रुपया दे डालते और टिकट मोल ले लेते। वेस्टमिन्स्टर अबी में राज्याभिषेक के समय दर्शकों के बैठने का प्रबन्ध अर्ल मार्शल ही किया करता है। एक दिन एक भारतवासी सज्जन अपनी आँखों में आँसू भर कर मुझसे कहने लगे “इसकी परवा नहीं कि मुझे कितना खर्च करना पड़े, मैं अभिषेक देखना ही चाहता हूँ।” यह क्या, ऐसे सैकड़ों ही लोग गत जून के महीने में इसी तरह कहते थे। परन्तु यह



बात वहाँ के प्रबन्धकर्ताओं के लिए बड़ा गौरव बढ़ाने वाली है कि दर्शकों को स्थान-प्रदान करने में वे रुपये पैसे का ज़रा भी ख़याल नहीं करते। वेस्टमिन्स्टर अबी में ऐसे समय केवल उन्हीं लोगों का प्रवेश हो सकता है जो उतनी प्रतिष्ठा के योग्य समझे जाते हैं। पाठक, अब आप मेरे आश्चर्य का अनुमान कीजिए जो भारतवर्ष से इंग्लैंड पहुँचने पर, एक दिन तीसरे पहर, भारतसचिव के उस पत्र मिलने पर मुझे हुआ जिसमें उन्होंने मुझसे यह बात पूछी थी कि आया मैं वेस्टमिन्स्टर अबी में राज्याभिषेक देखने के लिए अर्ल मार्शल का आमंत्रण स्वीकार करूँगा? मुझे बड़ा ही विस्मय हुआ, क्योंकि मैंने तो इस कृपा के लिए प्रार्थना ही की थी और न मुझे यही मालूम था कि मैं इसका पात्र समझा जाऊँगा। मैंने फ़ौरन ही उत्तर भेजा कि ऐसे आमंत्रण को मैं सादर स्वीकार करूँगा। यथासमय मेरे पास एक सुन्दर कार्ड आ पहुँचा, जिसमें निम्नलिखित शब्द लिखे हुए थे—“By command of the king, the Earl Marshall invites Saint Nihal Singh to witness the coronation of their Majesties in Westminster Abbey on June 22nd Norfolk.”

“अर्थात् महाराज के आज्ञानुसार अर्ल मार्शल सेंट निहालसिंह को महाराज और महारानी का राज्याभिषेक देखने के लिए २२ जून को वेस्टमिन्स्टर अबी में आमंत्रित करते हैं।” थोड़े ही दिनों बाद सवारी का “पास” आया जिसके द्वारा अबी तक सवारी में जाने की इजाज़त मिलती है और एक और पास जिसके ज़रिये से अबी के अन्दर प्रवेश करने और नियुक्त स्थान में बैठने का अधिकार दिया जाता है।

बाईसवीं जून को प्रातःकाल बड़ी सर्दी थी। मैं चार बजे सुबह उठा; कपड़े पहने; और भट पट एक प्याला चाय और एक टुकड़ा रोटी खाकर घर से निकल मोटरकार पर सवार हुआ और ५ बजे के करीब वेस्टमिन्स्टर अबी की ओर रवाना हुआ। दरवाज़े खुलने के एक घंटा पहले ही मैं वहाँ

जा पहुँचा। इस जल्दी का कारण यह था कि पुलिस और अख़बारवालों ने आमंत्रित सज्जनों को आगाह कर दिया था कि राज्याभिषेक वाले दिन का देर तक सोते न रहें जो सड़कों पर भीड़ हो जाने से वेस्टमिन्स्टर अबी तक पहुँचना कठिन जाय। बस ठीक समय पर पहुँच जाने की फ़िक्र मुझे ऐसा सताया कि मैं वहाँ ज़रूरत से ज़िम्मे पहले जा पहुँचा। अस्तु, यह विचार कर कि सड़कों को किसी काम में लगाना चाहिए मैंने अपने मोटर चलाने वाले से कहा कि मुझे अब उन सड़कों में मोटर चला दो जिधर से महाराज की सवारी आवेगी। सुबह ही से लोग सड़कों पर जा डेरे और सड़कें स्त्री-पुरुषों की क़तारों से लगी भरने लगी थीं। कितने ही लोगों को तो वहाँ पहुँचने में कुछ दिनों हो चुके थे, पर ज़रा भी थकान या चहेरे से न जान पड़ती थी। प्रसन्न-मुख बड़ी सड़कों से वे सवारी की राह देख रहे थे। सड़कों के किनारे जो काठ के मचान बनाये गये थे वे खूब खूब भर चले। जब अबी के फाटक बन्द होने का नियत समय निकट आ पहुँचा तब मैंने ज़रा से कहा कि जल्दी पहुँचाओ। हाइट हाल चौड़ी सड़क पर, जिसकी एक तरफ़ इंडिया आर्मी है, गाड़ियाँ और मोटर ही मोटर दिखाई पड़ते हैं परन्तु लन्दन के गाड़ी और मोटर चलाने वाले इतने सावधानी और चतुराई से अपना काम करते हैं कि वे ऐसी जगह भी सवारी निकाल ले जाते हैं जहाँ कि साधारण कोचमैन और ड्राइवर नहीं जायें। इसके सिवा लन्दन की पुलिस, जो सड़कों पर चलने वाली सवारियों और पैदल चलने वालों का प्रबन्ध करती है, बड़ी ही कुशलता और धैर्य साथ अपना कार्य करती है। गाड़ी और पैदल चलने वाले लोग भी पुलिसवालों की इशारों की पूरी पूरी पाबन्दी करते हैं। उस समय इस काम पर कोई दस हजार पुलिसमैन नियुक्त किये गये थे। इनमें से कुछ तो सवारियों और कुछ मोटर चलनेवालों का प्रबन्ध करते थे, और कुछ मोटर



भाग १२

यह था कि  
 सड़कों के  
 ले दिन का  
 ढ हो जा  
 कठिन हो  
 की फिर  
 से ज़िन्दा  
 कर कि स  
 अपने म  
 सड़कों में  
 की स  
 जा ड  
 से ठस  
 तो वहां  
 थकान उ  
 ख बड़ी  
 । सड़कों  
 थे वे स  
 वन्द  
 मैंने ड  
 ट हाल  
 डिया आ  
 ई पड़ते  
 ने वाले इ  
 नाम करते  
 ले जाते  
 ड्राईवर  
 , जो स  
 चलने वा  
 और धे  
 गाड़ी च  
 पुलिसवा  
 हैं । उस  
 समैन  
 यों और  
 कुल



# सरस्वती



महाराज पञ्चम लाल जी और महाराजनी मेरी ।

भारत के, प्रयाग ।



रवें और सड़क के किनारे खड़े हुए लोगों का ।  
बहुतेरे बिना बर्दी के पुलिसमैन दर्शकों की रक्षा  
करते और चारों से करते थे और बहुतेरों को  
मुद्रिकल और नाजक काम सौंपा गया था कि  
वे इस बात का प्रबन्ध रखें कि कहीं से कोई ऐना-  
बिन्द (राजविद्रोही) महाराज के ऊपर, सवारी  
काल में, बम का गोला या पिस्तौल न चला  
दे । पुलिस का प्रबन्ध हर तरह अच्छा था; कहीं  
भी दुर्घटना न होने पाती थी । एबी पहुँच कर  
अपने आसन पर आसीन हो गया ।

बाद को मुझे मालूम हुआ कि और लोगों को  
भी तक पहुँचने में बड़ी तकलीफ हुई । उदाहरण  
के लिए मेरी लेडी जिरार्ड ही को मान लीजिए ।  
आप का मकान एबी से एक ही मील पर था ।  
आप ६ बजे सुबह रवाना हुईं । दो घंटे रास्ते ही  
पहुँच गये और एबी न पहुँच सकीं । जब आपने  
सुना कि ९ बजने वाले हैं और एबी का फाटक अब  
बन्द होने के लिए बन्द हो जायगा, तब आप को  
उधर से उतर कर अपना कीमती साया घसीटते  
हुए करीब १०० गज पैदल चलना पड़ा । लौटते  
समय भी आप पर ऐसी ही मुसीबत आई । आप  
काले घर ६ बजे शाम को पहुँच पाईं । सुबह से शाम  
तक बिना खाये पिये इस तरह रहना एक उच्च श्रेणी  
की योरोपीय रमणी के लिए बड़ी ही मुसीबत है ।

एबी के अन्दर ऐसा सुन्दर दृश्य देखने में  
आजो कदापि विस्मरण नहीं हो सकता । ऐसा  
दृश्य देखने का सौभाग्य शायद ही कभी लोगों को  
मिलता हो ।

विविध प्रकार के राज-चिह्नों से सुशोभित  
लाल रंग के सुन्दर कालीन सर्वत्र बिछे हुए थे ।  
सजाये गये थे कि उनका रंग सैकड़ों वर्ष के  
प्राचीन पत्थरों में खप जाय । आल्टर (बेदी), अर्थात् गर्ज  
स्थान जहाँ पादरी प्रार्थना किया करते हैं, जवा-  
हरों की तरह चमक रहा था । उसके चारों ओर

सोने और चाँदी के तार धार्मिक संकेतों को  
प्रकाशित कर रहे थे । उसी पर वे अमूल्य पात्र  
रखे हुए थे जिनका उपयोग राज्याभिषेक में होने  
वाला था । एबी के भीतर, जहाँ चारों ओर  
से रास्ते मिले हुए हैं, 'थियेटर' अर्थात् अभि-  
षेकस्थान बना था । उसके चारों ओर चार  
स्तम्भ बने थे और ऊपर एक सुन्दर लालटेन  
लटक रही थी । बीचों बीच दोहरे चवूतरे की  
शकल का एक उच्चस्थान बना था जिस पर दो  
सिंहासन रखे थे :—एक कुछ ऊँचे पर महाराज  
के लिए; दूसरा उससे कुछ नीचे महारानी के लिए ।  
मुकुट रखे जाने के अनन्तर महाराज और महारानी  
ने इन्हीं सिंहासनों को सुशोभित किया । उससे  
कुछ ही दूर आगे एक और ऐतिहासिक राजस्थान  
था जहाँ 'लायफैला' नामक पत्थर सेन्ट एडवर्ड की  
कुर्सी पर रखा था । यह पत्थर कई शताब्दियों से  
यहाँ है । इसमें प्राचीन समय से साम्राज्य की  
रक्षा करने की अलौकिक शक्ति मानी जाती है ।  
यह कुर्सी आल्टर के सम्मुख रखी थी । इसके एक  
ओर रिकनीशन चेयर थी जहाँ महाराज को पहले  
बैठना पड़ा । ये कुर्सियाँ पुराने ढंग की बनी हुई  
थीं । बैंगनी कपड़े इन पर पड़े हुए थे । इन कुर्सियों  
के नीचे महाराज के घुटने टेकने के लिए गद्दियाँ थीं ।  
आल्टर से सिंहासन तक, फर्श पर, फ़ारिस के  
पुराने चाल के सुन्दर कालीन बिछे थे ।

वेस्टमिन्स्टर एबी की शोभा उस दिन अवर्ण-  
नीय थी । बड़े बड़े राजा और महाराजा लोगों के  
कामदार जवाहरात से लदे हुए, सोने और चाँदी  
के काम से खचित, रंग बिरंगे अमूल्य वस्त्र धारण  
किये हुए थे । उनकी तलवारों की मूठों पर जवा-  
हरात जड़े हुए थे, जिनकी कारीगरी की प्रशंसा  
नहीं हो सकती ।

इंग्लैंड के लार्डों की भी शोभा पूर्वीय नरेशों  
की तुलना कर रही थी । बहुतेरे अपने मुकुटों को  
अपने हाथों में लिये थे । बहुतेरों के मुकुट उनके  
अनुचरों के हाथ में थे । स्त्रियों की शोभा तो पूछिए



ही नहीं। प्रत्येक लेडी हजारों रुपये की क्रीमती पोशाक पहने हुई थी। ये पोशाकें अपने रंग ढंग में निराली ही थीं; परन्तु हम भारतवासियों की दृष्टि में बहुत ही बुरी थीं, क्योंकि उन रमणियों के वक्षःस्थल दिखलाई पड़ते थे। भूमण्डल के सभी भागों के लोग वहाँ एकत्र थे। श्वेतवर्ण से लगा कर अत्यन्त कृष्णवर्ण तक सभी प्रकार के लोग वहाँ देख पड़ते थे। आकृति से ही उनकी जाति और देश का ज्ञान हो जाता था। परन्तु राजराजेश्वर की राजभाषा अँगरेज़ी सभी बोलते थे। यद्यपि उनके शब्दोच्चार में भेद था, तथापि सभी राजदम्पती के अधीन और अनुरक्त थे और उन्हीं का अभिषेक देखने के लिए वे दूर दूर से आये थे। नाना प्रकार की पगड़ियों और टोपियों को देख कर जिन से साम्राज्य के पूर्वीय भाग का बोध होता था, और साम्राज्य के विविध भागों और उपनिवेशों से आये हुए स्त्रियों और पुरुषों के शब्दोच्चार को सुन कर 'जानबुल' (अँगरेज़ों) के उस गर्विष्ठ वचन की सत्यता कि ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्यास्त नहीं होता, पूर्णरूप से सिद्ध होती थी। अपने जीवन में पहले ही पहल इस वाक्य का वास्तविक अर्थ मुझे वहाँ भासित हुआ। परन्तु सब से बड़ी बात इस विभिन्नता में यह थी कि इसमें दृढ़ एकता विद्यमान थी, जो साम्राज्य की विविध जातियों को एक सूत्र में बाँधे हुए थी। इसमें संदेह नहीं कि वहाँ सभी प्रकार की प्रजा थी। उन द्वीपों के निवासी जहाँ नियंत्रित राज्यव्यवस्था है, उन उपनिवेशों के लोग जो स्वराज्य का सुख भोग रहे हैं और जिन्हें शुद्ध प्रजातन्त्र राज्य के सिवा कोई राज्यव्यवस्था अच्छी ही नहीं लगती, और ऐसे देशों के भी लोग जो अपने शासन में कोई राय नहीं दे सकते, और जिन पर केवल राज-दण्ड के भय से ही शासन किया जाता है—सभी वहाँ थे। परन्तु उन सबको एक स्नेह-सूत्र में बाँधने के लिए यह बात काफ़ी थी कि वे एबी में महाराज का राज्याभिषेक देखने और उन्हें साम्राज्य का स्वामी स्वीकार करने के लिए एकत्र हुए थे।

खैर, पारलियामेंट की लार्डसभा के सब लार्ड और कामन्स सभा के सब सभासद किसी तरह अपनी अपनी जगह पर बैठ गये। शाही जुलूस धीरे धीरे एबी की तरफ बढ़ने लगा। दूर परतों की वाद यह सूचना दी कि महाराजा और महाराज अपने वकिंघम महल से रवाना हो चुके। सात नौ बजे के कुछ देर बाद भेरियों के घनघोर ने इस बात का विज्ञापन दिया कि भिन्न देशों के राजे, महाराजे और उनके प्रतिनिधि रहे हैं। यह जुलूस बहुत ही भव्य और बहुत दर्शनीय था। जर्मनी के युवराज और उनकी इस जुलूस में सबके आगे थीं। दुबारा भेरियों निनाद सुनाई पड़ा, जिससे ज्ञात हुआ कि ग्रेट ब्रिट के बड़े बड़े अमीर, उमरा और रईस आ रहे हैं। पिछले जुलूस के आगे प्रिन्स आर्च वेल्स, महाराज पञ्चम जार्ज के युवराज, अपनी पोशाक में थे। उनके साथ राजकुमारी मेरी युवराज के छोटे भाई भी थे। इसके बाद कुछ तक सन्नाटा रहा। बड़ी ही उत्कण्ठा से लोग प्रतीक्षा करने लगे कि अब क्या होता है। इतने दूर सड़कों से जयजयकार की धीमी आवाज़ सुनाई दी। साथ ही उन सवारों के घोड़ों की टापें आवाज़ भी सुनाई दी, जो महाराज के जुलूस के आगे आगे आ रहे थे। लोगों ने समझ लिया उत्कण्ठापूर्ति का समय आ गया। आरगन बजने लगा। बाइबल का एक समयानुकूल गायाने लगा। उसकी मधुर ध्वनि से वह गिरजाघर गूँज उठा। इतने में वह जुलूस भी धीरे एबी के भीतर आ पहुँचा। बड़े बड़े पादरी आगे थे। उनके पीछे पताका-वाहक आदि ईंग्लैंड, भारत, आस्ट्रेलिया, कनाडा—एक एक की पताका एक एक अमीर के हाथ में थी। कर्जन ने भारत की पताका वहन की थी। लोगों के पीछे लार्ड रोजबरी और लार्ड मिंटो चार लार्ड थे। यही लोग राजतिलक के महाराज पर छत्र धारण करने वाले थे। उनके



भाग १२

व लाई और  
 तरह अपनी  
 म थोरे थोरे  
 की वाढ़  
 महारत  
 बुके । स  
 नघोर  
 भिन्न सि  
 रतिलिधि  
 र बहुत  
 उनकी र  
 भेरियों  
 के ग्रेट वि  
 रहे हैं ।  
 लस, अप  
 अपनी रा  
 ति मेरी  
 द कुछ मि  
 लोग इस  
 है । इतने  
 गावाज सु  
 ती टापों  
 के जु  
 भ लिया  
 रगन वा  
 चुकूल गि  
 वह विशा  
 लूस भी  
 बड़े पाद  
 आदि  
 एक एक  
 में थी ।  
 की थी ।  
 मिंठा  
 क के स  
 । उनके





CORONATION OF KING GEORGE V.  
The King and Queen returning to Buckingham Palace  
wearing their Crowns

Coronation of King George V. The King and Queen returning to Buckingham Palace wearing their Crowns



wearing their Crowns



# CORONATION OF KING GEORGE V.

After the Ceremony : Their Majesties leaving Westminster Abbey on their return to Buckingham Palace



महाराज पद्मनाभ जी का राजतिलकोत्सवसम्बन्धी जुलूस ।



लार्ड चैम्बरलेन, लार्ड चैंसलर, दो आर्क विशप, लार्ड और प्रधान मंत्री मिस्टर ऐसक्विथ थे। इन और-उमरा और रईसों के पीछे महारानी का जुलूस था। अपनी सहेलियों के बीच में बड़ी ही सज्जन से आती हुई वे देख पड़ीं। उनकी चाल-चल और आकृति से उनका महारानीपन टपक रहा था। उनकी पोशाक सफ़ेद साटन की थी। उस पर ज़रदोज़ी का काम था। गुलाब, कमल और भारतीय ताराओं आदि के चित्र उस पर कढ़े हुए थे। पोशाक बड़ी ही अद्भुत थी। महारानी के पीछे अर्ल नाम के रईसों की छः कुमारीयाँ थीं। उनके भी वस्त्र, जो कि साटन और मखमल के थे, बहुत ही अमोल्य थे। उनके आभूषणों की चमक-दमक मिराली ही छटा दिखा रही थी। महारानी के सिर पर मुकुट न था। परन्तु उनके जवाहरात अद्भुत शोभा दे रहे थे। महारानी के साथ लार्ड लोगों की चार लड़ियाँ भी थीं। वही राजतिलक के समय महारानी पर छत्र धारण करने वाली थीं।

वेदी पर रखी हुई दो कुर्सियों में से बाईं कुर्सी पर जब महारानी बैठ गईं तब महाराज का जुलूस आगे बढ़ा। पहले वे लोग आये जो मुकुट आदि राज-चिह्न लिये हुए थे। साथ ही तीन तलवारें आईं जिनकी मुँह लार्ड किचनर, लार्ड राबर्ट्स और ड्यूक ऑफ़ ग्लोस्टर के हाथ में थीं। तदनंतर शस्त्ररक्षक, लार्ड मेयर, लार्ड ग्रेट चैम्बर लेन इत्यादि ने प्रवेश किया। तिलक के समय काम आनेवाले पात्र, खड्ग, मुकुट, राज-दण्ड लिये हुए लार्ड लोगों ने भी पदार्पण किया। बाइबिल इत्यादि धार्मिक वस्तु लिये हुए तीन विशप भी आये। तब सबके पीछे महाराज ने प्रवेश किया। उनके आभूषण कैसे थे, इसके वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं। उनकी विशेषता तो महाराज के उस समय के चित्र से ही पाठकों को विदित होजायगी। उस समय का चित्र सरस्वती में निकल भी चुका है। महाराज ने महारानी के पास से गुज़रते समय उनके सामने बड़ी गम्भीरता से सिर झुकाया और उनकी दाहिनी तरफ़ रखी हुई कुर्सी पर बैठ गये।

तदनंतर महाराज, और महारानी, दोनों ने, अपने सामने रखे हुए दो स्टूलों पर घुटने टेक कर कुछ प्रार्थना की। प्रार्थना के अनन्तर फिर वे अपनी कुर्सियों पर बैठ गये। तब राज्याभिषेक का काम आरम्भ हुआ।

कैटरबरी के आर्क विशप वेदी के उत्तरी किनारे पर रखे हुए अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए। लार्ड चैंसलर, लार्ड हार्डिंकास्टेबल और अर्ल मार्शल भी उठे। ये चारों चवूतरे के एक किनारे पर आये। वहाँ आर्क विशप ने महाराज के विषय में इस प्रकार सबको सम्वोधन करके कहा—

“महाशयो ! इस देश के निर्विवाद नरेश महाराज जार्ज को मैं आपके सामने पेश करता हूँ। कहिए, आप लोग, जो उनका आदर-सत्कार और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए और उन्हें अपना राजा मानने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं, ये सब बातें करने के लिए तैयार हैं ?”

यह सुनते ही उस विशाल जन-समूह से व्याम-व्यापी निनाद उत्थित हुआ। सात हजार लोगों ने एकही साथ “महाराज चिरञ्जीव हों”—का घोष किया। आर्क विशप अपने उन चारों साथियों के साथ उस चवूतरे के चारों तरफ़ गये और हर तरफ़ सब से यही प्रश्न किया। जब तक वे यह कहते रहे तब तक महाराज उन उन दिशाओं की तरफ़ अपना मुख करके खड़े रहे। हर दफ़े आर्क विशप के प्रश्न का पूर्ववत् उत्तर मिला। भेरियों का निनाद उस विशाल गिर्जाघर में बार बार गुञ्जायमान होने लगा।

धीरे धीरे शीरोगुल बन्द हुआ। महाराज, महारानी, राजकुमार, बड़े बड़े अमीर-उमरा आदि घुटनों के बल बैठ गये। सबने कुछ प्रायश्चित्त-बोधक संस्कार किया। तब धार्मिक संस्कार आरम्भ हुआ। महाराज और वह सारा दर्शक-समुदाय खड़ा हो गया। आर्क विशप ने पहले कुछ धर्मोपदेश किया। तदनन्तर एक और आर्क-विशप उठे और महाराज की कुर्सी के पास आये। आकर उन्होंने महाराज से पूछा कि क्या आप शपथ करने के लिए



तैयार हैं। महाराज ने कहा—“मैं तैयार हूँ”। तत्काल ही शपथ हुई। महाराज ने कहा—

“मैं शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं ग्रेट ब्रिटन और आयरलैंड के संयुक्त राज्य, तथा उसके अधीनस्थ उन सब देशों और उपनिवेशों के निवासियों का शासन पारलियामेंट के नियम, कानून और रीति-रवाज के अनुसार करूँगा। जितने राजकीय काम मैं करूँगा न्याय और दया को हाथ से न जाने दूँगा। मैं प्रोटेस्टेंट धर्म और बाइबल को मानूँगा, और, इस धर्म के सम्बन्ध में कानून की रू से जो कुछ मेरा कर्तव्य होगा मैं सब करूँगा”।

महाराज कुरसी से उठे। एक रईस राजकीय खड्ग लेकर उनके आगे आगे चले। वेदी पर जाकर महाराज ने बाइबल पर हाथ रखवा और शपथ की। तदनन्तर लिखी हुई शपथ पर आपने दस्तखत किये और फिर अपनी जगह पर लौट आये। तब आर्क-बिशप ने एक छोटी सी प्रार्थना करके अपना हाथ उस गरुडाकार सुवर्णपात्र पर रखवा जिसमें अभिषेक-तैल था। इधर महाराज ने ऊपरी पोशाक उतारनी शुरू की, उधर उस समय के लिए रचे गये कुछ विशेष पवित्र पद्य गाये जाने लगे। महाराज अपनी जगह से उठ कर “सेंट एडवर्ड” नाम की कुरसी पर जा विराजे। लार्ड रोजबेरी आदि चार पुरुषों ने महाराज पर छत्र धारण किया। आर्क-बिशप ने वेदी से अभिषेक-तैलपात्र और चम्मच उठा कर उससे महाराज के सिर, वक्षःस्थल और हाथों को अभिषिक्त किया। यह हो चुकने पर महाराज उठ खड़े हुए। तब वेस्टमिन्स्टर के बड़े पादरी ने महाराज को धार्मिक सङ्केतपूर्ण परिच्छ-दादि प्रदान किये। नवाभिषिक्त महाराज तब से स्वर्गगत उस प्रसिद्ध धर्मावतार के प्रतिनिधि हुए।

तदनन्तर और भी कई संस्कार हुए। लार्ड चैम्बरलेन ने महाराज की एडिंगों को सोने के अश्व-तोदन, काँटे, से लुवा और फिर उसे वेदी पर रख दिया। लार्ड वोचम ने राजकीय खड्ग लार्ड चैम्बरलेन को दिया। लार्ड चैम्बरलेन ने उन्हें एक और खड्ग बदले में दिया। वह आर्क-बिशप को दिया

गया। उन्होंने उसे वेदी पर रखकर महाराज को दे दिया। महाराज ने कुछ देर उसे धारण किया। जब तक वे उसे धारण किये रहे, पादरी साहब मन्त्र पाठ करते रहे। इसके बाद महाराज अपने आसन से उठे, कमर से तलवार खोली, वेदी पर उसे रखवा और फिर अपनी जगह आकर बैठ गये। तबसे लार्ड वोचम उस नङ्गी तलवार को ऊपर उठाये रहे।

यह सब हो चुकने पर महाराज पर एक विशेष प्रकार का सुनहरी आच्छादन-पट डाला गया। उसे राजकीय अँगूठी और दस्ताने दिये गये। दो राज-दण्ड भी उन्हें मिले।

सुनहरी परिच्छद पहने हुए, राजकीय अँगूठी और दस्ताने धारण किये हुए, दोनों हाथों में एक एक राज-दण्ड लिये हुए, परन्तु अब तब नंगे सिर महाराज ने पूर्ववर्ती-राजाओं के सिंहासन पर जाकर आसन ग्रहण किया। “क्रौन आर्च सेंट एडवर्ड” नामक राजमुकुट, जो पहले पहल राजा द्वितीय चार्ल्स के लिए बनाया गया था, वेस्ट-मिन्स्टर के बड़े पादरी द्वारा वेदिका से उठाया जाकर आर्क-बिशप के हाथ में दिया गया। आर्क-बिशप ने बड़े भक्ति भाव से उसे महाराज के सिर पर रख दिया। उधर अरुण वस्त्रधारी लार्ड लोगों ने भी अपने अपने पद सूचक शिरश्चिह्न या लघु-मुकुट अपने सिरों पर रखे। सारा जनसमुदाय एकदम खड़ा हो गया और “ईश्वर महाराज की रक्षा करे” की ध्वनि गूँज उठी। बाजे बाजने लगे। दूरस्थित सलामी की तोपों ने भी बाढ़ें दागनी आरम्भ कीं।

शोरोगुल कम हुआ। बाज़ा बजा। मधुर स्वर में एक भजन गाया गया। आर्क बिशप ने महाराज को आशीर्वाद दिया और आगत जनों से बड़े ही शान्त और गम्भीर भाव से कुछ समयोचित बातें कहीं।

अभिषिक्त होकर, राजमुकुट धारण करके, और राजोचित वस्त्रालङ्कार आदि से विभूषित होकर महाराज अब राजाओं, राजकुमारों और अमीरों के कृत सम्मान को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो गये। जहाँ पर वे आसीन थे वहाँ से उठ कर



जब ववूतरे पर रखी हुई दाहने तरफ़ की कुरसी पर आप जा बैठे। कैंटरबरी के आर्क-बिशप ने, तब, महाराज के सामने घुटने टेके। अन्य बिशप लोगों ने अपने अपने स्थान ही पर घुटनों के बल बैठ कर महाराज की अधीनता और प्रभुता स्वीकार की। महाराज की अश्वीनता और प्रभुता स्वीकार की। साथ ही उन्होंने राजभक्ति-सूचक कुछ विशेष वाक्यों का उच्चारण भी किया। आर्क-बिशप ने उठ कर महाराज के बायें कपोल का चुम्बन किया। उनके बाद महाराज के वंशज राजकुमारों का नम्र आया। सबसे पहले युवराज, प्रिंस आर्व वेल्स, उठे। वे घुटनों के सहारे अपने पिता के सामने बैठ गये। उन्होंने कहा:—

“मैं, एडवर्ड नामक का प्रिंस आर्व वेल्स, आज से आपका श्रेष्ठ प्रजाजन हुआ। जीवनावधि मैं आपकी सेवा-कृत्य करूँगा। मैं अपने को आपसे अलग न समझूँगा। आप में श्रद्धापूर्वक विश्वास करूँगा। प्रति-पक्षियों के मुकाबले मैं आपके साथ मरने जीने को सदा तैयार रहूँगा। परमेश्वर मेरी रक्षा करे”।

इतना कह कर वे बड़े गम्भीर भाव से उठ खड़े हुए, राजमुकुट को हाथ से छुआ और वहाँ से उठने लगे। परन्तु पिता ने उन्हें जाने न दिया। बड़े आनन्द से उन्होंने पुत्र को अपनी तरफ़ खींच कर छाती से लगा लिया और कुछ देर तक वैसे ही लगाये रक्खे। महाराज ने बार बार पुत्र का मुख चुम्बन किया। प्रिंस आर्व वेल्स के बाद ड्यूक आर्व कनाट और प्रिंस आर्थर आर्व कनाट महाराज के सम्मुख खड़े हुए। उनके बाद अमीर-उमरा, अर्थात् लार्ड लोगों की बारी आई। ड्यूक, मार्कुइस, अर्ल, वाइकाँट और बैरन—सब लोगों ने अपने अपने स्तम्भ के सामने खड़े होना स्वीकार किया। जब तक यह रस्स होती थी सर फ्रेडरिक ब्रिज का रचा हुआ एक गीत-कवि बराबर गाया जाता रहा। अन्त में नकारे गये, मेरियों भी बजीं और उपस्थित जन-समुदाय ने तबस्वर में कहा:—

“परमेश्वर राजा जार्ज की रक्षा करे !  
राजा जार्ज चिरजीव हों !  
राजा सदा-सर्वदा जीते रहें !”

इस प्रकार महाराज का राजतिलकोत्सव समाप्त हुआ।

अब महारानी के अभिषेक की बारी आई। अब तक जितने संस्कार और कार्य हुए सबको वे उसी कम ऊँची कुरसी पर बैठी हुई चुपचाप देखती रही थीं जिस पर कि गिरजाघर में प्रविष्ट होकर वे पहले बैठी थीं। अब वे उठीं। उठ कर उस स्टूल पर वे नतजानु हुईं जो वेदी और “सेंट एडवर्ड” नामक कुरसी के बीच में रक्खा था। ड्यूक नामक रईसों की चार लेडियों ने महारानी के ऊपर सुवर्ण-रञ्जित वस्त्र, जिसे छत्र कहना चाहिए, धारण किया। आर्क-बिशप ने पवित्र-अभिषेक-तैल से उनके केश-कलाप को अभिषिक्त किया। ज्योंही प्रधान धर्माधिकारी—आर्क-बिशप—ने महारानी के सिर पर धीरे से मुकुट रक्खा त्योंही अमीरों और रईस लार्डों की पत्नियों ने भी अपने अपने पद और योग्यतासूचक चिह्न अपने अपने सिर पर रक्खे। यह हो चुकने पर महारानी उठीं। इस समय उनके मुकुट पर लगा हुआ कोहनूर हीरा अपनी अप्रतिम प्रभा को चारों ओर छिटका रहा था। महारानी दोनों हाथों में दो राजचिह्न-सूचक दण्ड लिये हुए अपने सिंहासन की तरफ़ बढ़ीं और महाराज के पास जाकर बैठ गईं। उधर समयानु-कूल गीत और वाद्य हो रहा था। इधर महाराज और महारानी दोनों वेदी पर गये, कुछ उपहार चढ़ाया और अन्तिम धर्म-कृत्य समाप्त करके आर्क-बिशप के हाथ से मद्य और रोटी का प्रसाद प्राप्त किया। तदनन्तर दोनों, राजा-रानी, ने अपनी अपनी कुरसियाँ छोड़ कर वेदी की प्रदक्षिणा की और कुछ देर के लिए सेंट एडवर्ड नामक गिरजा घर में गये। वहाँ से लौटने पर उन्हें लोगों ने जो देखा तो शाही पोशाक में पाया। सिर पर उनके शाही-ताज था, जिस पर बहुमूल्य रत्न चमक रहे थे।



अब जुलूस के लौटने का उपक्रम हुआ । ज्योंही सब लोग गिरजाघर से निकलने को हुए त्योंही वेस्टमिन्स्टर के हेड मास्टर ने महाराज और महारानी के लिए तीन बार जय-ध्वनि करने की सूचना की । फिर क्या था । हर्षसूचक-ध्वनि का सागर उमड़ उठा । इतने में सब लोग गिरजाघर के द्वार से बाहर निकल गये । उस पुराने प्रार्थना-मन्दिर के बाहर महाराज की प्रजा ने महाराज का और भी अधिक हर्ष और आनन्द से स्वागत किया ।

एबी से लौटती दफ़े जिस रास्ते से महाराज और महारानी को जाना था उसके दोनों तरफ़ जो दर्शक क्रतार बाँधे हुए खड़े थे उन वेचारों को न मालूम कब तब खड़ा रहना पड़ा । मेले को छाँट छाँट कर अनेक मार्गों से निकल जाने के लिए यथा-सम्भव सब तरह का सुभीता किया गया । पर वह मनुष्यों का महार्णव शीघ्र नहीं छुट सका । घंटों की देरी लग गई । उस दिन का वह दृश्य बड़ा ही अलौकिक था । सड़कों के दोनों ओर की सजावट देखते ही बन आती थी । उसका वर्णन नहीं हो सकता । जहाँ देखिए फूल ही फूल देख पड़ते थे । पृथ्वी, मकान, आकाश पुष्पमय हो रहा था । नवाभिषिक्त राजा और रानी, दोनों एकही सवारी पर, उसी सुसज्जित मार्ग से बकिंहम महल को वापस गये । जिस शाही 'कोच' (गाड़ी) पर वे सवार थे उसमें इस तरह काँच लगे हैं जिसमें प्रजाजन तीन तरफ़ से राज-दम्पती के दर्शन कर सकें । महाराज की पोशाक शुभ्र थी । सिर पर सुनहरी मुकुट था । रत्नराशि से आप अलङ्कृत थे । महारानी के दक्षिण भाग में आप आसीन थे । आपके दाहने हाथ में राजदण्ड था । महारानी के मुकुट से बहुमूल्य रत्नों की किरणें अपनी प्रभा दूर दूर तक विस्तार कर रही थीं । तिलकोत्सव-सम्बन्धी उनके परिच्छद और उनका रत्नहार देखने की चीज़ें थीं, वर्णन करने की नहीं । महारानी के चेहरे से जान पड़ता था कि वे कुछ थकी सी हैं, पर प्रजाजनों के हर्षनाद और जयध्वनि का उत्तर वे हँस हँस कर और झुक झुक कर देती जाती थीं ।

राजा जार्ज तो प्रजा के अभिवादन का उत्तर कभी कोच के इस तरफ़ से झुक कर देते थे, कभी उस तरफ़ से । इस तरह बड़ी देर में धीरे धीरे सवारी बकिंहम महल के फाटक पर पहुँची । शरीररक्षक सैन्य एक तरफ़ को गया । महाराज ने महल के भीतर प्रवेश किया । चार ही मिनट बाद महाराज और महारानी दोनों ने, उसी पोशाक में, महल के सामने, ऊपर बरामदे में, फिर दर्शन दिया । तोपों ने फिर सलामी उतारी । "परम पिता राजा की आज्ञा करें"—इस प्रार्थना का वादन बँड ने दूने उत्साह से आरम्भ किया । महल के फाटक के नीचे जल और थल सेना के समूह में प्रजाजन भी मिल गये । तीनों एक होकर, जी खोल कर, अभ्रभेदी जय-जय-का किया । फौजी अफ़सर और सेना के साधारण जवान, जो, अब तक परा बाँधे खड़े थे, अपने अपनी क्रतार तोड़ कर महल के फाटकों पर दौड़े आये । उन्होंने टोपियाँ उतार कर अपनी रफलों पर रखीं और बड़े उत्साह से उनको वे हिलाने लगे । इस हार्दिक हर्ष प्रकाशन और इस भक्तिप्रकर्ष को देख कर महाराज और महारानी दोनों गद्गद हो गये । वे बरामदे में कुछ और आगे बढ़ आये और बार बार उस तुमुल जयध्वनि का अभिनन्दन किया ।

राज्याभिषेक की रात को लन्दन के मकानों, दूकानों, बाज़ारों और सड़कों की शोभा और सजावट का यथेष्ट वर्णन करना असम्भव है । उसका अनुमान शाब्दिक वर्णन से नहीं हो सकता ।

२३ जून को महाराज और महारानी का जुलूस लन्दन की खास खास सड़कों से होकर निकला । २४ जून को महाराज और महारानी ने जहाज़ी के का मुलाहजा किया । २७ जून को बकिंहम राज भवन में उन्होंने छः हजार मेहमानों को प्रीति-भोजन दिया । ३० जून को अपने क्रिस्टल राजप्रासाद में उन्होंने कोई एक लाख छोटे छोटे बच्चों को नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन कराये । यह सब हो चुके पर राजदम्पती ने आयरलैंड और स्कॉटलैंड



भाग १० ]

लन्दन से प्रस्थान किया। विस्तार-भय  
के लिए लन्दन से प्रस्थान किया। विस्तार-भय  
ने इन सबका वर्णन नहीं करता।

सेन्ट निहालसिंह।

## सन्देश ।

(हिन्दी के दूसरे साहित्य-सम्मेलन के लिए लिखित)

( १ )

सब सज्जन, विद्वज्जन, प्रिय-हिन्दी-भाषा-भाषी,  
पूज्य, पवित्र, मातृभाषा की उन्नति के अति अभिलाषी ।  
तुम प्रेरणा से हिन्दी की यहाँ आज मैं आया हूँ ;  
उसका ही सन्देश आपको स्वल्प सुनाने लाया हूँ ॥

( २ )

हिन्दी ने सेवक-समूह में महा तुच्छ मुझको जाना ;  
इससे यह सन्देश भेजने योग्य मुझी को अनुमाना ।  
बड़े हैं, बड़े काम सब कर, साधे उसका परमार्थ ;  
मैं सन्देश-वहन करके ही हो जाऊँगा आज कृतार्थ ॥

( ३ )

हैं या बड़े, काम जो करके कुछ दिखलाते हैं ;  
वही लोग अपने स्वामी के सख्सेवक कहलाते हैं ।  
सोच, सङ्कोच छोड़ सब, माना मैंने यह आदेश ;  
अब मेरी खिचड़ी भाषा में सुनिए हिन्दी का सन्देश ॥

( ४ )

यार्थ मातृभाषा का यदि तुम सबने जाना है ;  
मेरे अन्तर्गत भावों को यदि तुमने पहचाना है ।  
तुम निःसन्देह करोगे मुझसे सुत-समान व्यवहार ;  
मेरी सकल आपदाओं का होगा भी अवश्य संहार ॥

( ५ )

बड़-जन्म जग में सब के दिन न एक से जाते हैं ;  
दुःख भोगने पर निश्चय ही सुख के भी दिन आते हैं ।  
तुम के सुख-दुःख किन्तु सब होते सन्तति के स्वाधीन ;  
चाहे भिखारिनी वह कर दे, चाहे उच्चासन-आसीन ॥

( ६ )

तुम मातृभाषा तुम कहना दो इस दिन से छोड़ ;  
मेरा शब्द न मुँह पर लावो अँगरेज़ी सीखो सर तोड़ ।  
तुम दुर्देश देख कर कुछ तो मन में शरमाओ ;  
जो कहती हूँ उसे करो तुम, अब तो मुझको अपनाओ ॥

( ७ )

वैमनस्य आपस का, ईर्ष्या, मस्सर, और दुराग्रह, द्वेष—  
परित्याग पहले इनका कर कर लो मन निर्मल निःशेष ।  
ऐसा करने से सम्मेलन दूनी शोभा पायेगा ;  
मेरे बहुत विशेष कार्य भी यह करके दिखलायेगा ॥

( ८ )

करो वही प्रस्ताव “पास” तुम जिनसे हो कुछ मेरा काम ;  
रहने दो तुम, बहुत हो चुका, अपना वाद-विवाद तमाम ।  
मेरे इस जर्जर शरीर की बार बार कर लेना याद ;  
लक्ष्य उसी पर रखना, अपना करना नहीं वक्त-वरवाद ॥

( ९ )

एक लिखी है, या एकादश पुस्तक—यह सब व्यर्थ विचार ;  
बूढ़ा है, या प्रौढ़, या युवा—यह भी निःसंशय निःसार ।  
जो मेरा उपकार करे कुछ वही सपूत सभापति-योग्य ;  
यही देख, हर साल, सम्मेलन-समय समझना योग्य-अयोग्य ॥

( १० )

कोई क्यों न सभापति हो, क्या वह न तुम्हारा भाई है ?  
पिशाचिनी ईर्ष्या इन बातों में भी हाथ समाई है !  
दूर करो अपने मन से तुम ऐसे अति अनुदार विचार ;  
दया करो, होने भी दोगे मुझ अभागिनी का उद्धार ॥

( ११ )

आज ईद, कल वक्र-ईद है, परसें घट-स्थापना योग ;  
होली और दिवाली का भी लगा तुम्हारे पीछे रोग ।  
जितनी हैं छुट्टियाँ सभी तुम त्योहारों ही पर पाते ;  
खेल-कूद, पूजा-अर्चा की उनमें तुम सब ठहराते ॥

( १२ )

बतलाओ अब तुम्हीं, सु-अवसर और कौन सा पावोगे ?  
सम्मेलन की छुट्टी क्या तुम बड़े लाट से लावोगे ?  
धर्म करो, त्योहार मनावो, मुझको कुछ भी नहीं विषाद ;  
पर इतना तो बतला दो तुम, पाऊँगी कब तुमसे दाद ॥

( १३ )

यदि घर में सुत-सुता किसी के, आने पर कोई त्योहार  
महा-भयङ्कर-व्यथा-व्यथित हो लगे मचाने हाहाकार ।  
तो क्या घर ही बैठ रहोगे करते निज वार्षिक व्यापार ;  
या नङ्गे पावों दौड़ोगे किसी वैद्य-विद्वानिधि-द्वार ॥



( १४ )

कितना कष्ट तुम्हें मिलता है उंगली जो कट जाती है ;  
मेरा तो सब अङ्ग गलित है; पीड़ा प्रबल सताती है ।  
ऐसे में भी जो इलाज का अवसर दूँ दोगे प्यारे,  
तो मैं यही कहूँगी, मेरे सुत न शत्रु हो तुम सारे ॥

( १५ )

बाणी की पूजा करते हो ; क्या मैं उसका अंश नहीं ?  
मृतवत् मुझे पड़ी रखने में क्या स्वधर्म विध्वंस नहीं ?  
फिर क्यों तुम सम्मिलन-कार्य में पखें अनेक लगाते हो ?  
अत्याचार घोर मुझ पर कर बातें व्यर्थ बनाते हो ॥

( १६ )

आर्त्त जनों के परित्राण से धर्म किस तरह जाता है ?  
क्या कर्तव्य-विमुख होना ही परम धर्म कहलाता है ?  
भरत-भूमि के धर्मज्ञों का यदि ऐसा ही धर्म-ज्ञान—  
व्याकुल, व्यथित जनों की तो फिर क्या गति होगी हे भगवान !

( १७ )

यदि तुम कहो शीघ्रता क्या है ? क्यों इतना घबराती हो ?  
क्यों कातरतापूर्ण कण्ठ से इतना शोर मचाती हो ?  
तो मैं अपनी करुण-कथा का तुम्हें सुना देती हूँ सार ;  
सम्भव है उससे हो आवे तुममें दया-दृष्टि-सञ्चार ॥

( १८ )

जब देखती और बहनों को किये हुए सुन्दर शृङ्गार,  
बहु-वैभव-मद से मतवाली, मृदु मुसकाती, सालझूक ।  
तब जो गति मेरी होती है; कुछ मत पूछो उसका हाल ;  
फटती यदि पृथ्वी प्रयाग की मैं जाती तुरन्त पाताल ॥

( १९ )

कई करोड़ बोलने वाले हैं मेरे भारतवासी ;  
हृत्भागिनी हाय तिस पर भी मरती मैं भूखी, प्यासी !  
जो सुदृष्टि इन नर-रत्नों की मेरी ओर न जाती है,  
विश्वम्भर ! तो क्या तुमको भी मुझ पर दया न आती है ?

( २० )

दुख-दारिद्र्य भोग करने से अच्छा ही मर जाना है—  
कवि के इस कठोर कहने को मैंने तो सच माना है ।  
जीती हूँ, परन्तु, आशा-वश, बड़े कष्ट से किसी प्रकार,  
नहीं तरस तुमको आता है क्या कुछ भी हे प्राणधार !

( २१ )

यद्यपि तुम विरक्त हो मुझ से ; नहीं फटकने देते पास ;  
मैं तुम से अनुरक्त पूर्ववत्; मुझे तुम्हारी ही है आस ।  
ऐसी निःसहाय अबला को यदि तुम और सतावोगे,  
न्यायी नारायण को अपना मुँह कैसे दिखलावोगे ॥

( २२ )

जो मेरे प्रेमी, जो मेरी कभी कभी कर लेते याद ।  
मत हों अप्रसन्न वे मन में उनसे मेरा नहीं विवाद ।  
अपनी छोड़ पराई भाषा में आता है जिन को स्वाद ।  
उन्हीं कुलिश-कर्कश हृदयों के सत्पुरुषों से है फर्याद ।

( २३ )

या उनसे जो मेरे दुख को कर सकते हैं कुछ कुछ दूर ;  
पर जो कर तक नहीं हिलाते; रहते हैं आलस में सूर ।  
अथवा उनका दोष नहीं कुछ; यह मेरा ही पापाचार ;  
ऐसे भी जिसके सपूत हों उस माता ही को धिक्कार !

( २४ )

तुम में किसी किसी पर व्यापी जिस भाषा की माया है;  
सच कहना किस किस ने उससे कितना लाभ उठाया है;  
इस दिन अभी मधुर मोदक कुछ पूने से जो आये थे,  
कैसे थे वे ! मीठे थे क्या ! किस किस ने ले खाये थे

( २५ )

घोर घृणा तुम से जो करती, पास उसी के जाते हो !  
मृत सुन कर भी नाम न लेती, उस को सदा उजाते हो ।  
आते नहीं होश में, यद्यपि होता है इतना अपमान;  
अधःपात का इस से बढ़ कर हो सकता क्या और प्रमान

( २६ )

हिन्दू हो कर भी हिन्दी में यदि कुछ भी न भक्ति का लो ।  
दूरदेश की भाषाओं से यदि इतना है प्रेम विशेष ।  
इंगलिस्तान, अरब, फारिस को तो अब तुम करदो प्रत्याप ।  
यहाँ तुम्हारा काम नहीं कुछ; छोड़ो मेरा हिन्दुस्तान ॥

( २७ )

दिव्यदेव बाणी की दुहिता मैं हूँ वह हिन्दी प्राचीन,  
तुलसी, सूर, बिहारी आदिक रहे भक्ति में जिसकी लीन ।  
परित्याग उसका ही करके बनते हो विद्याधारी ;  
ऐसी अद्भुत गुणशता की बलिहारी है बलिहारी !



संख्या १० ]

( २८ )

हो-मुझमें है ही क्या ! मुझसे कुछ न निकलता काम !  
मेरे धावों पर नश्वर सा चलता है सुन यह इलजाम ।  
इसका दोष तुम्हारे ही सिर ; फिर यह कैसी उलटी बात !  
जिसे जानती दुनिया सारी वह भी क्या तुमसे अज्ञात ?

( २९ )

जन्मी, और जन्म की भाषा, जन्मभूमि सब सुख की खान-  
चाहे जहाँ पूछ तुम देखो, तीनों का सम्मान समान ।  
पर तुमने मेरी उन्नति का किया न कोई कभी उपाय ;  
तिस पर भी ताने देते हो ! क्यों करते इतना अन्याय !

( ३० )

क्यायी से परमेश्वर भी कभी नहीं खुश होता है ;  
जो कर्त्तव्य नहीं करता है वह अवश्य कुछ खोता है ।  
जमा करे वह क्षमातीरनिधि ईश तुम्हारा यह अपराध ;  
जीते रहे ; कभी तो मेरा दूर करोगे दुःख अगाध ॥

( ३१ )

संस्कृत, अरबी, और फ़ारसी, उर्दू, अँगरेज़ी सारी-  
भाषाओं से प्रेम करो तुम जिसको जो जो हों प्यारी ।  
जान नहीं मैं करती तुमको ; पर इस दुखिया की भी याद ।  
कभी कभी कर लिया कीजिए ; मेरी इतनी ही फ़रयाद ॥

( ३२ )

खे थे तुम तब से ही मैं काम तुम्हारे आती हूँ ;  
पत्नी और सुता-सुत के भी मैं ही काम चलाती हूँ ।  
तो सकते मेरे विनाश से बन्द तुम्हारे सब व्यापार ;  
नहीं अन्य भाषाये कोई कर सकतीं कुछ भी उपकार ॥

( ३३ )

तुम मुझको ही यदि अभाग्यवश अब इस समय भुलाओगे ;  
कृतघ्नता के घोर पाप से क्या तुम बच भी जाओगे ?  
जो कुछ हुआ हो गया सो तो ; सोचो अब आगे की बात ;  
लोक-लाज पर भी क्यों करते इतना निष्ठुर वज्र-निपात ?

( ३४ )

जो ही प्रभाव से भारत पायेगा परमोज्ज्वल ज्ञान ;  
मिट अवश्य ही जायेगा यह अति अनर्थकारी अज्ञान ।  
गंगा-घर, घर-घर में मेरा जब प्रचार हो जायेगा ;  
दुःख, दैन्य, दारिद्र्य, दुःख सब क्रम क्रम से घट जायेगा ॥

( ३५ )

जितने उन्नत देश, सभी हैं करते निज भाषा की वृद्धि ;  
देख क्यों नहीं लेते उनकी कितनी है निःसीम समृद्धि ।  
अपना, मेरा, भारत का भी यदि चाहो कुछ भी कल्याण,  
तो मेरा उद्धार करो अब ; व्याकुल हैं ये पापी प्राण ॥

( ३६ )

और लोग इस भारत में भी निज भाषाओं का उपकार,  
देखो आंख उठा कर, कितना करते हैं सब विविध प्रकार ।  
उन्हें देख कर भी उत्साहित होते नहीं आप, क्या बात ?  
करो न अपने ही पैरों पर महा कठोर कुठाराघात ॥

( ३७ )

समय नहीं, अभ्यास नहीं है, लिखना मुझे न आता है—  
यह सुन मेरा कठिन कलेजा दो दुकड़े हो जाता है ।  
विकट विदेशी भी भाषाये लिखनेवालों के उस्ताद !  
मत अब और बहाने ऐसे किया करो तुम बे-बुनियाद ॥

( ३८ )

इस सम्मेलन की सहायता करना काम तुम्हारा है ;  
जी से मैं कहती हूँ, इससे मुझको बड़ा सहारा है ।  
यहाँ उपस्थित रह कर सोचो कोई ऐसा उच्च उपाय ;  
जिससे मिले मुझे भी थोड़ा गुस्तापूर्ण ग्रन्थ-समुदाय ॥

( ३९ )

इसकी श्रुतियाँ अपनी समझो ; दोषों को अपने ही दोष ;  
भाई को अपने भाई पर करना नहीं चाहिए रोष ।  
यदि कुछ भी गौरव रखते हो, यदि कुछ भी है तुम में जोश ;  
ग्रन्थ-रत्न रच पूर्ण क्यों नहीं कर देते हो मेरा कोश ?

( ४० )

सारे भारत में व्यापकता मेरी ही है यदपि विशेष ;  
निःसंशय तथापि मुझको है सबसे प्यारा यही प्रदेश ।  
निर्दयता, निष्ठुरता कम कर, हो जाओ कुछ अधिक उदार ;  
दया-द्रवित हो कर सत्वर ही कर दो अब मेरा उद्धार ॥

( ४१ )

विकल, आर्त, आतुर को होता नहीं उचित-अनुचित का ज्ञान ;  
यदि कदु वचन कहे हों कोई क्षमा करो हे क्षमानिधान !  
अधिक क्या कहूँ मैं अब तुमसे, मेरी लाज तुम्हारे हाथ ;  
चाहे और झुका दो, चाहे ऊँचा कर दो मेरा साथ ॥



( ४२ )

हे गोविन्द दया के सागर नारायण अन्तर्यामी !

शरणागतवत्सल तुमसे है छिपा नहीं कुछ हे स्वामी !

सुमति और सद्बुद्धि दीजिए सबको करुणा के आगार !

जिसमें इस अभागिनी का भी हो जावे अब बेड़ा पार ॥

## हिन्दी की वर्तमान अवस्था ।

[ दूसरे साहित्य-सम्मेलन के लिए लिखित ]

### १—बीज-वपन ।



हिन्दी का बीज-वपन हुए बहुत काल हुआ । परन्तु, निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि किस सन्, किस संवत् या किस समय में वर्तमान

हिन्दी की आद्यावस्था का आरम्भ हुआ । इस अनिश्चय का कारण यह है कि भाषाओं की उत्पत्ति एक दिन में नहीं होती । अनेक प्राकृतिक कारणों से देश, काल और समाज की अवस्था-विशेष के अनुसार, उनमें परिवर्तन हुआ करते हैं । नई भाषायेँ उत्पन्न हो जाती हैं और पुरानी भाषाओं का प्रचार कम हो जाता है । कभी कभी तो पुरानी भाषायेँ धीरे धीरे विलय हो भी प्राप्त हो जाती हैं । चन्द्र बरदायी ने जिस हिन्दी में पृथ्वीराज-रासौ लिखा है उसके पहले भी हिन्दी विद्यमान थी । उस पुरानी हिन्दी के पूर्ववर्ती रूप भी प्राकृत भाषाओं में पाये जाते हैं और उनके भी प्राकृतिक रूप भारत के प्राचीनतम ग्रन्थों में मिलते हैं । अतएव इस परिवर्तन-परम्परा की प्रत्येक अवस्था का ठीक ठीक पता लगाना सहज काम नहीं । हमारी हिन्दी-भाषा विकास-सिद्धान्त का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । उसका क्रम-विकाश हुआ है । धीरे धीरे वह एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त हुई है । वह एक प्रकार से अनादि है । नहीं कह सकते कब से मानव-जाति उसके सबसे पहले रूपवाली उसकी पूर्ववर्तिनी भाषा बोलने लगी । वर्तमान हिन्दी की प्रथमावस्था का

सबसे प्रतिष्ठित ग्रन्थ जो अब तक उपलब्ध हुआ है पृथ्वीराज-रासौ ही है । अतएव निश्चयपूर्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वर्तमान हिन्दी का बीज-वपन चन्द्र बरदायी के समय में, या उसके कुछ पहले, हुआ । चन्द्र के पूर्ववर्ती भी कुछ कवियों और उनके काव्यों का पता चलता है । पर, चन्द्र के और उनके स्थितिकाल में बहुत अधिक अन्तर नहीं ।

### २—अङ्कुरोद्भव ।

बोने के अनन्तर बीज से अङ्कुर निकलता है । चन्द्र बरदायी आदि कवियों ने जिस बीज को बोया उससे अङ्कुर तो शीघ्र निकल आया, परन्तु पत्तियाँ बहुत देर में निकलीं । जिस हिन्दी में आज कल समाचारपत्र और पुस्तकें लिखी जाती हैं उसके उद्भव तक हिन्दी में प्रायः काव्य-ग्रन्थों ही की उत्पत्ति हुई । संख्यातीत ग्रन्थ बने ; पर बहुत करके सब पद्यात्मक । भक्त कवियों ने अपने अपने उपास देवता पर कविता की । राजाश्रित कवियों ने अपने अपने आश्रयदाता की रुचि के अनुकूल शृङ्गार या वीररसात्मक काव्य निर्माण किये । किसी ने अलङ्कार शास्त्र पर लिखा, किसी ने नायिकाभेद पर । सबकी प्रवृत्ति केवल कविता ही की ओर रही । सात आठ सौ वर्ष तक यही हाल रहा । हिन्दी का अङ्कुर निकला तो सही ; पर वह अङ्कुर ही रहा । वह पुष्ट ज़रूर होता गया ; पर उसे अपनी अगली अवस्था की प्राप्ति बहुत काल के अनन्तर हुई ।

### ३—पत्रोद्गम ।

अंगरेज़ी शासन की कृपा से जब शिक्षा का प्रचार बढ़ा और अन्य भाषाओं में अच्छे अच्छे समाचारपत्र और पुस्तकें निकलने लगीं तब हिन्दी के दो चार हितचिन्तकों का ध्यान अपनी मातृभाषा की हीनता की ओर गया । अतएव उन्होंने उसे उन्नत करने के इरादे से प्रचलित प्रणाली की हिन्दी में काव्य, नाटक और इतिहास आदि की पुस्तकें



संख्या १० ]

लिखनी और समाचारपत्र तथा सामयिक पुस्तकें निकालनीं आरम्भ कीं। उस समय मानों हिन्दी के अङ्कुरित पौधे में, चिरकालोत्तर, पत्रोद्गम हुआ। जो अङ्कुर सैकड़ों वर्ष तक प्रायः एक ही रूप में था उसमें पत्तियाँ निकल आईं। इसके भी पहले यद्यपि कलकत्ते के फोर्ट-विलियम में हिन्दी की पूर्वागत अवस्था परिवर्तित करने की चेष्टा हुई थी, तथापि वह विशेष फलवती नहीं हुई। नये ढंग की दो एक पुस्तकें निकलने से ही हिन्दी का अवस्था-परिवर्तन नहीं हो सकता।

### ४-वर्तमान अवस्था ।

हिन्दी के जिस नये पौधे में आज से तीस पैंतीस वर्ष पहले केवल दो चार कोमल कोमल पत्ते दिखाई दिये थे वे अब, इस समय, अनेक पल्लव-पुष्पों से आच्छादित हैं। यद्यपि उसमें अब तक शाखा-प्रशाखाओं का प्रायः अभाव है; यद्यपि उसका तना अभी बहुत पतला और कमजोर है; यद्यपि उसमें फूल और फल लगने में अभी बहुत देरी है—तथापि वह बढ़ रहा है और आशा है कि किसी समय उसके अङ्क-प्रत्यङ्गों की पूर्ति और पुष्टि भी देखने को मिलेगी। हिन्दी की वर्तमान अवस्था को देख कर यही अनुमान होता है।

### ५-साहित्य का महत्त्व ।

ज्ञान के कई विभाग किये जा सकते हैं। विश्व में जो कुछ जानने योग्य है वह कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। ऐसे प्रत्येक भाग की शास्त्र संज्ञा है।

आकाशस्थित ज्योतिर्मय पिण्डों से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र का नाम ज्योतिषशास्त्र है। बिजली से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र का नाम विद्युच्छास्त्र है। मानव-शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र को शारीरिक शास्त्र कहते हैं। तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी शास्त्र दर्शन-शास्त्र कहलाता है। इसी तरह आयुर्वेद-शास्त्र, वैवाण-शास्त्र, कृषिशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, ज्यामिति-

शास्त्र, भूगर्भशास्त्र, रसायन-शास्त्र, अङ्कशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र, सम्पत्ति-शास्त्र—यहाँ तक कि कीट-पतङ्ग आदि से सम्बन्ध रखने वाला शास्त्र भी है। शारांश यह कि इस विशाल विश्व में जो कुछ है वह सब अपने अपने वर्ग या विभाग के अनुसार पृथक् पृथक् शास्त्र-सम्बन्धिनी सामग्री प्रस्तुत कर सकता है। मनुष्य की बुद्धि को जैसे जैसे विकास होता जाता है वैसे ही वैसे ज्ञेय वस्तुओं का ज्ञान भी उसे क्रम क्रम से अधिकाधिक होता जाता है। ज्ञान-वृद्धि के साथ ही साथ शास्त्रों की संख्या भी बढ़ती जाती है। जिस विषय का ज्ञान जितना ही अधिक होता है उस विषय का शास्त्र भी उतना ही अधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण होता है। भिन्न भिन्न प्रकार का यह शास्त्रीय ज्ञान पुस्तकों में संगृहीत रहता है। उनके प्रकाशन और प्रचार से सारे देश का भी कल्याण होता है और जुदा जुदा समाज का भी। एक मनुष्य के ज्ञानार्जन या ज्ञानानुभव से अनेक मनुष्यों को तभी लाभ पहुँचता है जब पुस्तकों के द्वारा उसका प्रचार होता है। इस ज्ञान-समुदाय को संगृहीत करने और फैलाने वाली पुस्तकों के समूह का नाम साहित्य है। जिस भाषा में ज्ञान-वर्द्धक शास्त्रों और पुस्तकों की जितनी ही अधिकता होती है उस भाषा का साहित्य-भाण्डार उतना ही अधिक श्रीसम्पन्न होता है।

ज्ञानार्जन का प्रधान साधन शिक्षा है। विना शिक्षा के मनोविकाश नहीं होता और विना मनो-विकाश के ज्ञानोन्नति नहीं होती। अतएव ज्ञान-वृद्धि के लिए शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों से भी शिक्षा मिलती है। उनसे भी ज्ञानोन्नति होती है। इससे उन्हें भी भाषा-साहित्य का एक अङ्ग नहीं, तो एक अंश अवश्य समझना चाहिए। इन्हीं कारणों से मनोरञ्जन, समालोचन, इतिहास और जीवनचरित आदि से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें भी साहित्य के अन्तर्गत हैं। इन बातों को ध्यान में



रख कर अब यह देखना है कि हिन्दी के वर्तमान साहित्य की अवस्था कैसी है। हिन्दी के दूसरे साहित्य-सम्मेलन के अधिकारियों ने मुझे इसी विषय पर एक निबन्ध लिखने की आज्ञा दी है।

### ६—समाचारपत्र ।

समाचारपत्रों और निर्दिष्ट समय में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की संख्या से प्रत्येक देश की शिक्षा और सभ्यता की इयत्ता जानी जा सकती है। जो देश जितना ही अधिक सभ्य और सुशिक्षित होता है उसमें उतने ही अधिक पत्र और पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। शिक्षित जनों की संख्या पर ही इस प्रकार के साहित्य की अधिकता या न्यूनता अवलम्बित रहती है। हिन्दी में निकलनेवाली पुस्तकों और समाचारपत्रों की संख्या पर विचार करने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि पच्चीस तीस वर्ष पहले जिस अवस्था में हिन्दी थी उससे अब वह अधिक उन्नत अवस्था में है।

पत्रों और पुस्तकों की संख्या अब बहुत बढ़ गई है; विवेचनीय विषयों का विस्तार भी अधिक हो गया है; भाषा भी पहले की अपेक्षा अधिक परिमार्जित और विशुद्ध हो गई है। कई एक साप्ताहिक पत्र और मासिक पुस्तकें योग्यतापूर्वक सम्पादित होती हैं। नये नये पत्र निकलते जाते हैं। सामयिक पुस्तकों की भी संख्या दिनोंदिन वृद्धि पर है। बहुत पुराने पत्रों में विशेष करके कविता, नाटक, हँसी-दिल्लीगी की बातें और बहुत ही साधारण लेख और समाचार रहते थे। सामयिक पुस्तकों की भी निकृष्ट अवस्था थी। वह बात अब नहीं रही। अब बहुत कुछ उन्नति है। सम्पादक-समुदाय अपने कर्तव्य को अब पहले की अपेक्षा अधिक समझने लगा है। सुहृत्ति का भी अब अधिक खयाल रखा जाता है, लोकशिक्षण का भी, और जनसमुदाय के हित तथा मत-बाहुल्य का भी।

परन्तु, जब हम अँगरेजी और एतद्देशीय अन्य समुन्नत भाषाओं के इस साहित्य की ओर देखते हैं

तब हमें अपनी भाषा की हीनावस्था को देख कर दुःख और आश्चर्य होता है। दुःख का कारण तो स्पष्ट ही है। आश्चर्य का कारण यह है कि हिन्दी बोलनेवालों की संख्या इतनी अधिक होने पर भी हमारी मातृभाषा की ऐसी अनुन्नत अवस्था। इस दुरवस्था के कई कारणों में से तीन मुख्य हैं। पहला कारण लोकशिक्षा की कमी; दूसरा कारण मातृभाषा से शिक्षित जनों की अरुचि; तीसरा कारण पत्र-सम्पादकों और सञ्चालकों की न्यूनाधिक अयोग्यता है।

जितने समाचारपत्र इस समय हिन्दी में निकलते हैं उनमें से प्रायः सभी के सम्पादकीय लेखों और समाचारों के लिए, अनेक अंशों में, पायनियर, वंगाली, अमृतबाजारपत्रिका और ऐडवोकेट आफ इंडिया आदि अँगरेजी पत्र उत्तमरूप का काम देते हैं। मासिक पुस्तकों का भी यही हाल है। वे भी प्रायः औरों के दिमाग से निकले हुए लेखों की छाया और अनुवाद से ही अपना कलेवर पूर्ण करती हैं। प्रत्येक भाषा की आदिम अवस्था में बहुत करके यही हाल होता है। अपने से अधिक उन्नत भाषाओं की सहायता से ही वे अपनी अङ्ग-पुष्टि करती हैं। इस अवस्था में धीरे धीरे परिवर्तन होता है। जैसे जैसे अधिक शिक्षित जन समाचार-पत्रों के सम्पादन-कार्य में प्रवृत्त होते हैं वैसेही वैसे परावलम्बन की प्रवृत्ति कम हो जाती है, स्वाधीन विचारों की सृष्टि होती है और सामयिक बातों की स्वतन्त्रतापूर्वक समा-लोचना होने लगती है। शिक्षा की कमी के ही कारण स्वावलम्बन-समर्थ योग्य सम्पादक कम मिलते हैं जो अतएव समाचारपत्रों से होनेवाले लाभों को जो लोग समझते भी हैं वे भी हिन्दी के पत्रों का बहुधा इसलिए आदर नहीं करते कि वे सुचारुरूप से सम्पादित नहीं होते। आशा है, यह वृद्धि धीरे धीरे दूर हो जायगी।

कुछ लोग अँगरेजी भाषा और उसके जाननेवालों से द्वेष करते हैं। उन्हें उनकी प्रत्येक बात से अँगरेजी बू आती है। उनको जानना चाहिए कि



हिन्दी में समाचारपत्रों का निकालना हमने अँगरेजी के जमाने की बँदौलत सोखा है। वह अँगरेजी के जमाने का ही प्रसाद है। अँगरेजी में इस प्रकार के जमाने ने जितनी उन्नति की है उतनी उन्नति करने के लिए हमें सैकड़ों वर्ष चाहिए। अँगरेजी के समाचारपत्र-साहित्य को, अनेक बातों में, आदर्श माने जाते हैं। हिन्दी के साहित्य को हम कभी यथेष्ट उन्नत नहीं कर सकेंगे। मेरी जड़ बुद्धि में तो सम्पादकों के अभाव अच्छी अँगरेजी जानना आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य है। मैं तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि हमारे साहित्य की इस शाखा की जो उन्नति हीन दशा है उसका एक कारण यह भी है कि हम, हिन्दी-लेखक, अँगरेजी नहीं जानते और जानते भी हैं तो बहुत कम।

### ७—वैज्ञानिक पुस्तकें ।

‘विज्ञान’—शब्द आज कल ‘शास्त्र’—शब्द का उपयोग हो रहा है। शास्त्र किसे कहते हैं, उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। ज्ञान और विज्ञान में ऐसी वैसे चीज़ नहीं। उसकी महिमा सीमा-बद्ध है। संसार में सबसे अधिक महत्त्व की ज्ञेय वस्तु परमेश्वर है। वह भी ज्ञानगम्य है। ज्ञान की सीमा-बद्धता ही उसका ज्ञान हो सकता है। ऐसे ज्ञानात्मा—ऐसे “निरतिशय-सर्वज्ञ-बीज” जगत्-पिता को जिसके प्रसाद से मनुष्य पहचान सकता है उसका माहात्म्य सर्वथा अकथनीय है। परन्तु, इस ज्ञानगर्भ साहित्य का हिन्दी में सर्वतो-मुख से अभाव है। यह बड़े दुःख, बड़े खेद, बड़े शोच की बात है। ज्ञान की जो अनेक शाखाएँ हैं—शास्त्रीय विषयों के जो अनेक भेद हैं—उनमें से एक पर भी दो चार अच्छे अच्छे ग्रन्थ हिन्दी में नहीं मिलेंगे। एक जीव-विज्ञान-विटप, या एक पदार्थ-ज्ञान-ग्रन्थ, या एक छोटा सा रसायन-शास्त्र या और कोई ऐसा ही एक आध ग्रन्थ हुआ तो क्या और न हो सकेगा। उससे किसी ज्ञानांश के अभाव की शिकायत नहीं हो सकती। अन्य समुन्नत भाषाओं में

जिस ज्ञान या विज्ञान की एक एक शाखा पर सैकड़ों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विद्यमान हैं उसकी किसी शाखा-विशेष से सबन्ध रखनेवाली दो चार या दस पाँच छोटी मोटी पुस्तकें हिन्दी में हुई भी तो वे न होने के बराबर हैं। जिस ज्ञानही की बँदौलत ही अन्य प्राणियों में मनुष्य को श्रेष्ठता मिली है उसी ज्ञानात्मक साहित्य का हिन्दी बोलनेवाले मनुष्य नामक प्राणियों की भाषा में प्रायः पूर्णभाव होना बड़ी ही लज्जा की बात है। गीता, सिद्धान्त-शिरोमणि, सांख्य, योग और मीमांसा आदि सूत्रों के टूटे फूटे हिन्दी-अनुवाद से इस अभाव का तिरोभाव नहीं हो सकता। इसका तिरोभाव तभी होगा जब संस्कृत और अँगरेजी, दोनों भाषाओं, के ज्ञानार्णव का मन्थन करके सब प्रकार के ज्ञानांश-सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना होगी।

### ८—कोश और व्याकरण ।

बहुत दिनों से यह निर्घोष सुनाई दे रहा है कि हिन्दी में न तो एक अच्छा सा कोश है और न एक व्याकरण। अतएव इन दोनों की बड़ी आवश्यकता है। इनकी आवश्यकता है अवश्य, परन्तु बड़ी आवश्यकता नहीं। इनसे साहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति अवश्य हो सकती है; पर यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि अन्यान्य परमावश्यक वस्तुओं की पूर्ति की अपेक्षा इस अङ्ग की पूर्ति के विषय में क्यों इतना जोर दिया जाता है। क्या बिना इसके हिन्दी-साहित्य की थोड़ी भी पुष्टि असम्भव है? तुलसीदास, सूरदास, बिहारीलाल, पण्डित वंशीधर वाजपेयी, बाबू हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, पण्डित प्रताप-नारायण आदि ने किस कोश और किस व्याकरण को सामने रखकर ग्रन्थ-रचना की है? हिन्दी के सौभाग्य से उसमें एक अच्छा वैज्ञानिक कोश शर्वर्तमान है। उसे बने कई वर्ष हुए। उसकी सहायता से आज तक कितने वैज्ञानिक ग्रन्थों की सृष्टि हिन्दी में हुई है! बँगला और मराठी में वैसा कोई कोश नहीं। तथापि इन भाषाओं की पुस्तकें बेचने वाले किसी भी प्रति-



ष्ठित दुकानदार या प्रकाशक के यहाँ प्राप्य पुस्तकों की सूची यदि आप देखेंगे तो आपको अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों के नाम मिलेंगे। इससे सिद्ध है कि यह काम आरम्भ में बिना कोश की सहायता के भी हो सकता है। हिन्दी-साहित्य अभी अत्यन्त हीनावस्था में है। उसकी एक भी शाखा अभी तक नाम लेने योग्य समृद्ध नहीं। और, किसी भी बृहत्कोश में साहित्य की सब शाखाओं के शब्द होने चाहिए। अतएव, जब सब प्रकार के शब्दों की सृष्टि ही नहीं हुई तब बहुत बड़ा और पूर्ण कोश कैसे बन सकेगा? अनेक महत्त्व-पूर्ण शब्दों के उदाहरण कहाँ से आवेंगे? इस दशा में यदि कोई कोश बनेगा भी तो उसमें संख्यातीत शब्दों की कमी रह जायगी। जब उन शब्दों की सृष्टि होगी तब या तो एक नया ही कोश बनाना पड़ेगा या पुराने कोश का सर्वाङ्गीण संशोधन करना पड़ेगा।

यही हाल व्याकरण का भी है। बिना एक बहुत बड़े व्याकरण के भी हिन्दी के साहित्य की वृद्धि में, अभी इस समय, विशेष बाधा नहीं उपस्थित हो सकती। कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य ऐसा है जो न तो हिन्दी का अच्छा व्याकरण ही जानता है और न उसके पास हिन्दी का कोई अच्छा सा कोश ही है। परन्तु हिन्दी उसकी मातृभाषा है। वह अपने घर में अपने कुटुम्बियों से हिन्दी में ही बात-चीत करता है। उसे यह लिखना है कि—“प्रातःकाल सूर्योदय सदा पूर्व में होता है।” कोश और व्याकरण से अच्छा परिचय न होने के कारण, सम्भव है, वह इस वाक्य को इस तरह लिखे:—

- (१) सूरज हमेशा पूरब में निकलता है—या
- (२) सूर्य सदा पूर्व में उदय होता है—या
- (३) सूरज का उदय हमेशा पूर्व की तरफ होता है—या

(४) सूर्य रोज पूर्व से उदय होता है—या

इस भाव को वह किसी और ही तरह प्रकट करे। परन्तु वह चाहे जैसे शब्द प्रयोग करे और व्याकरण की दृष्टि से उसका वाक्य चाहे जितना अशुद्ध हो

उसके कहने का मतलब सुननेवाला अवश्य समझ लेगा। यह तो सम्भव ही नहीं कि वह इस वाक्य को इस तरह लिखे:—

में है होता सूरज पूरब उदय हमेशा।

फिर कैसे कोई कह सकता है कि बिना उस कोश और व्याकरण के हिन्दी का काम इस समय चल सकता? लिखने का एक मात्र प्रयोजन यह कि लेख का भाव पढ़नेवाले की समझ में आ जाय यदि मतलब समझ में आ गया तो लिखने का प्रयोजन सिद्ध हो गया। अतएव व्याकरण और कोश अच्छी तरह न जानने पर भी मन का भाव प्रकट किया जा सकता है। हिन्दी के वैयाकरणों की राय है कि मैं व्याकरण नहीं जानता। मैं जानता तो रामायण, महाभारत, लोटा, सोटा शब्दों के लिङ्ग-प्रयोग में मुझसे भूलें न हों। जो कुछ मैं लिखता शुद्धतापूर्वक लिखता। हिन्दी के व्याकरण से इतना अनभिज्ञ होने पर भी इस लिखने या कहने का मतलब, सच कहें तो आपकी समझ में आता है या नहीं। यदि आप तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि व्याकरण कोश में उत्तमतापूर्वक पारङ्गत हुए बिना भी समझ लायक हिन्दी लिखी जा सकती है।

हिन्दी के व्याकरण और कोश से विशेष वही उठा सकते हैं जिनकी जन्मभाषा हिन्दी नहीं सरकारी कचहरियों और दफ्तरों के अफसरों अधिकांश कर्मचारियों का भी हिन्दी के बृहत्कोश से बड़ा काम निकल सकता है। हिन्दी लिखने का काम तो, इस समय, उन्हीं कई एक छोटे व्याकरणों और कोशों से निकल सकता है जो वर्तमान हैं। जो हिन्दी लिखना या पढ़ना विल्कुल ही नहीं जानते उनकी बात जुदी है। उनका काम बिना कोश और व्याकरण के चाहे न भी सके; पर जो साधारण हिन्दी जानते हैं वे आलङ्कारिक भाषा लिखने के लिए कोश व्याकरण का अच्छा ज्ञान अवश्य



ऐसी भाषा लिखने का यही एक साधन नहीं।  
लेखक नहीं हो सकता।

इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि  
सर्वोद्गुण व्याकरण और कोश न बनें।  
उनके बनने से हिन्दी-साहित्य के एक  
अवश्य पुष्टि होगी और हिन्दी लिखने और  
लेखकों को लाभ भी होगा। मेरे कहने का  
सिर्फ इतना ही है कि बिना एक बृहत्कोश  
व्याकरण के भी वर्तमान हिन्दी-साहित्य  
आवश्यक अङ्गों की साधारण उन्नति  
सकती है।

## ६-इतिहास और जीवनचरित।

हिन्दी-साहित्य के किस किस अङ्ग की कमी पर  
प्रकाश किया जाय? एक भी अङ्ग तो परिपुष्ट  
साहित्य में इतिहास का आसन बहुत ऊँचा  
हिन्दी में ऐतिहासिक पुस्तकों का यद्यपि  
अभाव नहीं, तथापि नाम लेने योग्य दस  
ऐसी पुस्तकें हिन्दी में नहीं। मिस्टर आर०  
दत्त ने भारतीय सभ्यता का जो इतिहास  
लिखा है उसका अनुवाद, टाड साहिब  
आर० के राजत्वकाल से सम्बन्ध रखनेवाले दो  
आर० के भी अनुवाद उल्लेख-योग्य  
पुराणों के भी पुराने हिन्दी में है और पद्या-  
वली में वह यदि इतिहास कहा जा सकता हो  
तो भी गिनती साहित्य की इस शाखा के  
में हो सकती है। हाँ, सोलहियों का इतिहास  
लेने योग्य है। वह बड़ी खोज और  
लिखा गया है। इनके सिवा और भी कुछ  
पुस्तकें हिन्दी में हैं। परन्तु हिन्दी  
लेखकों की संख्या और हिन्दी-भाषा की  
विचार करने से दो चार या दस  
ऐतिहासिक पुस्तकों का होना बड़ी बात नहीं।  
लेखकों के बोलनेवालों और पक्षपातियों की संख्या

हिन्दी बोलनेवालों के मुकाबले में बहुत ही कम है  
उसमें दस दस पन्द्रह पन्द्रह जिल्दों वाले भारतीय  
इतिहास बन जायँ और हिन्दी में हजार पाँच सौ  
पृष्ठों का भी एक अच्छा इतिहास न बने यह हम  
लोगों के लिए बड़ी ही लज्जा की बात है।

जीवनचरित भी साहित्य की एक बड़ी ही  
महत्त्वपूर्ण शाखा है। इस शाखा के ग्रन्थ छोटे-बड़े,  
स्त्री-पुरुष, सब की समझ में आ सकते हैं। सबको  
उनसे लाभ भी पहुँचता है और साथ ही मनोरञ्जन  
भी होता है। न ऐसे ग्रन्थों का आशय समझने के  
लिए विशेष चिन्तन की आवश्यकता होती है और  
न विशेष विद्वत्ता की। ऐसे सुखपात्र, मनो-  
रञ्जक और सर्व-जनोपयोगी साहित्यांश की कुछ  
ही पुस्तकें हिन्दी में हैं। उनको भी बने अभी कुछ  
ही समय हुआ और वे भी अच्छे तरह खोज और  
विचारपूर्वक नहीं लिखे गईं। बँगला में माइकेल  
मधुसूदन दत्त और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के जैसे  
चरित हैं वैसा एक भी जीवनचरित हिन्दी में नहीं।  
अँगरेजी में बासवेल-कृत डाकूर जान्सन का और  
लार्ड—मार्ले—कृत मिस्टर ग्लैडस्टन का जीवन-  
चरित इस शाखा के आदर्श ग्रन्थ हैं। हिन्दी में ऐसे  
ग्रन्थ निकलने के लिए अभी बहुत समय दरकार  
है। परन्तु अँगरेजी शिक्षा पाये हुए हिन्दी-भाषा-  
भाषी दो चार सज्जन भी यदि हिन्दी लिखने का  
अभ्यास करें तो छोटे मोटे अनेक जीवनचरित थोड़े  
ही समय में तैयार हो सकते हैं। हिन्दी की कई  
मासिक पुस्तकों में प्रसिद्ध पुरुषों के जीवनचरित  
नियमपूर्वक निकलते हैं। उन्हें लोग बड़े चाव से  
पढ़ते हैं, यह मैं अपने निज के अनुभव से कह  
सकता हूँ। इससे यह सूचित है कि इस साहित्य  
को लोग पसन्द करते हैं। अतएव यदि अच्छे अच्छे  
जीवनचरित प्रकाशित हों तो उनसे लेखक, प्रकाशक  
और पाठक सभी को लाभ पहुँच सकता है।

## १०-पर्यटन-विषयक पुस्तकें।

देश-दर्शन और पर्यटन-विषयक पुस्तकें भी  
साहित्य की एक अङ्ग हैं। उनसे बहुज्ञता बढ़ती है।



उन्हें पढ़ने में भी मन लगता है। जो देश या जो स्थान जिसने नहीं देखा उसका वर्णन पढ़ कर उसे तत्सम्बन्धिनी अनेक नई बातें मालूम हो सकती हैं। हिन्दी में इस विषय का एक बहुत अच्छा ग्रन्थ है। उसके कई भाग हैं। लेखक ने भारत के अनेक प्रान्तों में स्वयं भ्रमण कर के इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवा चीन, जापान और इंग्लैंड की जिन लोगों ने सैर की है उनमें से भी दो एक हिन्दी-हितैषियों ने अपनी यात्रा का वर्णन हिन्दी में पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। इस विषय की और भी दो एक पुस्तकें निकली हैं। पर इस अङ्क की पुष्टि के लिए इतनी पुस्तकें समुद्र में एक बूँद के बराबर हैं। अनेक भारतवर्षीय युवक प्रति वर्ष विदेश-यात्रा करते हैं। यदि उनमें से दो एक भी अपनी यात्रा का वर्णन हर साल प्रकाशित करें तो साहित्य के इस अङ्क की बहुत शीघ्र उन्नति हो जाय। परन्तु, बड़े दुःख की बात है कि ऐसे यात्रियों या प्रवासियों में से जो सज्जन हिन्दी से प्रेम रखते हैं और विदेश से हिन्दी में लिख लिख कर लेख भी भेजने की कृपा करते हैं वे जब इस देश को लौटते हैं तब औरों की तो बात ही नहीं, वे भी हिन्दी लिखने से पराङ्मुख हो जाते हैं।

## ११—काव्य और नाटक ।

हिन्दी के साहित्य में काव्यों का बाहुल्य है। अनेक अच्छे अच्छे काव्य हैं। अनन्त काव्य-ग्रन्थ तो अब तक अप्रकाशित अवस्था में ही पड़े हैं। सर्वाधिक संख्या शृङ्गार-रस-प्रधान काव्यों की हैं; उससे कम भक्त कवियों के काव्यों की; उससे भी कम वीर-रस के काव्यों की। फुटकर विषयों के काव्य भी बहुत हैं। यह सब पुराने काव्यों की बात हुई। वर्तमान समय में जो काव्य हिन्दी में निकले हैं या निकल रहे हैं उनमें से कुछ विरले कवियों की कृतियों को छोड़ कर शेष का काव्य या कविता कहते सङ्कोच होता है। आज कल कवियों की संख्या बहुत बढ़ रही है। परन्तु जिस तरह के काव्य प्रकाशित होते हैं उनसे विशेष लाभ नहीं। 'रङ्ग में भङ्ग' और 'जयद्रथ-वध'

की कक्षा के काव्यों की इस समय आवश्यकता है। काव्यों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सबकी समझ में आ जाय—चाहे वह बोल-चाल की भाषा हो चाहे ब्रज की भाषा। ब्रज-भाषा न जानने या न लिखने वालों को शाखामृग कहने का अब समय नहीं। काव्यों की रचना और उनका विषय ऐसा होना चाहिए जो देश और काल के अनुकूल हो। पढ़ने वाले के हृदय पर कविता पाठ का कुछ असर होना चाहिए; उससे सदुपदेश मिलना चाहिए; और कुछ नहीं, तो थोड़ी देर के लिए प्रमोदानुभव तो अवश्य होना चाहिए। भारत में अनन्त आदर्श-नरेश, देव-भक्त, वीर-शिरोमणि और महात्मा हो गये हैं। हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य करें तो बहुत लाभ हो पलाशी का युद्ध, वृत्रसंहार, मेघनाद-वध और यन्त्राव वन्तराव महाकाव्य की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं। वर्तमान कवियों को इस तरह का काव्य लिख कर हिन्दी की श्रीवृद्धि करनी चाहिए।

बाबू हरिश्चन्द्र के कई काव्य और अनुवाद बहुत अच्छे हैं। राजा लक्ष्मणसिंह-रुत मेघदूत का अनुवाद भी प्रशंसा के योग्य है। संस्कृत-काव्यों के जो अनेक अनुवाद हिन्दी में हुए हैं वे उतने अच्छे नहीं। गोल्डस्मिथ के "हरमिट" का अनुवाद एकान्तवासि योगी भी अच्छा है। पुराणादि के जो अनेक अनुवाद हिन्दी में हुए हैं उनसे हिन्दी-साहित्य को लाभ अवश्य हुआ है। पर उन में पंडिताऊ ढंग वाले अनुवादों की भाषा संशोधन-योग्य है।

कुछ नाटकों को छोड़ कर हिन्दी में अच्छे नाटक भी नहीं। इन 'कुछ' में से अर्द्धाधिक तो संस्कृत तथा कई अन्य भाषाओं के नाटकों के अनुवाद हैं। समाज की भिन्न भिन्न अवस्थाओं और दृष्टियों जैसा अच्छा चित्र अभिनय द्वारा दिखाया जा सकता है वैसे अच्छा और किसी तरह नहीं। अभिनय के लिए ही नाटकों की रचना होती है। परन्तु, हिन्दी में नाटकों के नाम से इस समय जो अनेक पुस्तकें वर्तमान में उन में अधिकांश का ठीक ठीक अभिनय ही नहीं हो सकता। जो अच्छा कवि है, जिसने अनेक



देखे हैं, जो अभिनय-थल और नेपथ्य की रचना आदि से परिचित है, जो मनुष्य-स्वभाव और मानवी मने-विकारों का ज्ञाता है वही अभिनय करने योग्य अच्छे नाटकों की रचना कर सकता है। जो नाटक आज कल इन प्रान्तों में नाटक-कम्पनियों के द्वारा खेले जाते हैं वे प्रायः उर्दू में हैं। उनमें दिखलाये जाने वाले सामाजिक चित्र बहुधा अच्छे नहीं। उन्हें देख कर दर्शकों की—विशेष करके युवकों की—चित्त-वृत्ति के कलुषित होने का डर रहता है। अतएव योग्य लेखकों के द्वारा हिन्दी में अच्छे अच्छे नाटकों के लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है।

## १२—उपन्यास ।

खुशी की बात है, हिन्दी-साहित्य का यह अङ्क दिन पर दिन पुष्ट होता जा रहा है। यद्यपि हिन्दी में अच्छे उपन्यास, ढूँढ़ने से, दस ही पाँच निकलेंगे—यद्यपि हमारा साहित्य बुरे उपन्यासों के लिए वदनाम सा हो रहा है—तथापि उपन्यासों का अधिक प्रकाशित होना हिन्दी के उत्थान का शुभ लक्षण है। उपन्यासों ही की बढौलत हिन्दी-पाठकों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। उपन्यास चाहे जासूसी हों, चाहे मायावी, चाहे तिलिस्मी, विशेष करके कम उम्र के पाठकों को उन्होंने हिन्दी पढ़ने की ओर अवश्य आकृष्ट किया है। हिन्दी के उपन्यासों का अधिकांश अन्य भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद मात्र है। अतएव दुःख इस बात का है कि यदि अनुवाद ही करना था तो चुन चुन कर अच्छी अच्छी पुस्तकों का ही अनुवाद क्यों न किया गया। परन्तु, जब किसी भाषा का उत्थान होता है तब सुरुचि की ओर एक दम ध्यान नहीं जाता। यह काम धीरे धीरे होता है। बंकिम बाबू और रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यासों को आदर्श मान कर हमें उसी तरह के उपन्यासों से हिन्दी-साहित्य को अलङ्कृत करना चाहिए। इनके कई उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में हो भी चुके हैं। और विषयों की पुस्तकों की अपेक्षा उपन्यासों के पढ़नेवालों की संख्या अधिक हुआ

करती है। अतएव अच्छे उपन्यासों से बहुत लाभ और बुरे उपन्यासों से बहुत हानि होने की सम्भावना रहती है। उपन्यासों में समाज के ऐसे चित्र होने चाहिए जिनसे दुराचार की वृद्धि न होकर सदाचार की वृद्धि हो। इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि कहानी बनावटी या अतिप्रकृत न जान पड़े। यदि कहानी की घटनायें स्वाभाविक होंगी तभी पाठकों के चित्त पर उनका असर होगा और समझदार पाठकों का जी भी तभी पढ़ने में लगेगा। इन गुणों से पूर्ण कहानी लिखना कोई सरल काम नहीं। इसके लिए बड़ी योग्यता चाहिए। आज कल हिन्दी में जो कहानियाँ निकलती हैं उनके अच्छे न होने का कारण स्पष्ट है। योग्य लेखकों को चाहिए कि उपन्यास-रचना को ओला काम न समझ कर अच्छे अच्छे उपन्यासों से समाज और साहित्य दोनों का कल्याण-साधन करें।

## १३—समालोचना ।

वर्तमान हिन्दी-साहित्य में समालोचनाओं की कमी नहीं। कोई समाचारपत्र, कोई सामयिक पुस्तक, ऐसी नहीं जिसमें समालोचनायें न निकलती हों। परन्तु उनको समालोचना कहना भूल है। वे विज्ञापन मात्र हैं। और, जो लोग समालोचना के लिए पुस्तकें भेजते हैं उनका आन्तरिक अभिप्राय भी बहुधा यही होता है कि इसी बहाने हमारी पुस्तक का विज्ञापन प्रकाशित हो जाय। यथार्थ समालोचनायें भी कभी कभी निकलती हैं, परन्तु बहुत कम। समालोचना साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। उससे बड़े लाभ हैं। योग्य समालोचक अपनी समालोचना में समालोचित ग्रन्थ के ऐसे ऐसे रहस्य प्रकट करते हैं जो साधारण विद्या-बुद्धि के पाठकों के ध्यान में नहीं आ सकते। कभी कभी तो ऐसा होता है कि ग्रन्थ-कर्त्ता के आशय को समालोचक इस विशद भाव से व्यक्त करके दिखलाता है कि स्वयं ग्रन्थ-कर्त्ता को चकित होना पड़ता है। शकुन्तला और दुष्यन्त तथा पुरुरवा और उर्वशी की कथायें



पुराणों में जिस प्रकार वर्णित हुई हैं कालिदास के नाटकों में उस प्रकार नहीं हुईं। उनमें कवि ने क्यों और कहाँ तक परिवर्तन किया है; शकुन्तला में कवि ने दुर्वासा के शाप की क्यों अवतारणा की है; मेघदूत में कवि ने यक्षही को क्यों नायक बनाया है; धारिणी और औशीनरी, प्रियंवदा और अनसूया के स्वभाव में क्या अन्तर है—ये ऐसी बातें हैं जो सबकी समझ में नहीं आसकतीं। समालोचक ऐसी ही ऐसी बातों की मीमांसा करता है और कवि के हृदय को मानों खोल कर सर्व-साधारण के सामने रख देता है। उसके गुणों को भी वह दिखाता है और दोषों को भी। बँगला में शकुन्तला-रहस्य और शकुन्तलातत्त्व आदि समालोचना-पुस्तकें ऐसी ही हैं।

दुःख है, ऐसी एक भी समालोचनात्मक पुस्तक हिन्दी में मेरे देखने में नहीं आई। हाँ, दो एक सत्समालोचनात्मक निबन्ध अवश्य मैंने देखे हैं। सच तो यह है कि ग्रन्थकार की जीवितावस्था में उसके ग्रन्थों की यथार्थ समालोचना नहीं हो सकती; अथवा यह कहना चाहिए कि होनी ही न चाहिए। इसी से पश्चिमी देशों के विद्वान् बहुधा ऐसेही ग्रन्थों की विस्तृत आलोचनायें करते हैं जिनके कर्त्ता इस लोक में विद्यमान नहीं। परन्तु, हमारी हतभागिनी हिन्दी के विलक्षण साहित्य-संसार में ऐसा करने की आज्ञा ही नहीं। जो बात अन्य उन्नत भाषाओं के साहित्यसेवी भूषण समझते हैं वही यहाँ दूषण मानी जाती है। यदि किसी प्राचीन कवि या ग्रन्थकार के ग्रन्थ की समालोचना में कोई उसके दोष दिखलाता है तो उसके लिए हिन्दी में यह कहा जाता है कि उसने उस ग्रन्थकर्त्ता को चचेर डाला; उस पर मुष्टिकाप्रहार किया; उसका अञ्जर पञ्जर ढीला कर दिया; और, सैकड़ों मन भूसी फटक कर गेहूँ का एक दाना निकाल लाया। समालोचक मूर्ख, उद्दण्ड, अभिमानी और उपहासपात्र बनाया जाता है!! बड़े बड़े शास्त्री, विशारद, उपाध्याय और आचार्य उसके पीछे पड़ जाते हैं और उस पर यह इलजाम लगाते हैं कि इसने पूजनीय प्राचीन ग्रन्थ-

कारों की कीर्ति को कलङ्कित करने की चेष्टा की!!! जीवित ग्रन्थकारों के ग्रन्थों की समालोचना करना और प्रसङ्गवश उनके दोष दिखाना मानों उन्हें अपना शत्रु बनाना है; और परलोकवासी कवियों या लेखकों की पुस्तकों के प्रतिकूल कुछ कहना उनकी यशोराशि पर धवा लगाना है। इस “उभयतः पाश-रज्जुः” की दशा में भगवान् ही हिन्दी-साहित्य की इस शाखा की उत्पत्ति और उन्नति की कोई युक्ति निकाले तो निकल सकती है।

### १४—फुटकर विषयों के ग्रन्थ।

साहित्य की जिन शाखाओं का नामोल्लेख ऊपर किया गया उनके सिवा पुरातत्त्व, भूगोल, भवन-निर्माण, नौकानयन, शिक्षण, व्यापार-वाणिज्य आदि और भी कितनी ही शाखायें हैं जिन पर अन्यान्य उन्नत भाषाओं में शतशः ग्रन्थों की रचना हुई है। तदतिरिक्त फुटकर विषयों के भी अनेक ग्रन्थ हैं। हिन्दी में इन शाखाओं और विषयों की बहुत ही थोड़ी पुस्तकों को छोड़ कर उल्लेख-योग्य अधिक पुस्तकें मेरे देखने में नहीं आईं।

### १५—भाषा।

विषय के अनुसार भाषा में बहुत कुछ भेद हो सकता है। जैसा विषय हो, और जिस श्रेणी के पाठकों के लिए पुस्तक लिखी गई हो, तदनुसार ही भाषा का प्रयोग होना चाहिए। बच्चों और साधारण जनों के लिए लिखी गई पुस्तकों में सरल भाषा लिखी जानी चाहिए। प्रौढ़ और विशेष शिक्षित जनों के लिए परिष्कृत और आलङ्कारिक भाषा लिखी जा सकती है। वैज्ञानिक ग्रन्थों में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। अतएव उनमें कुछ न कुछ क्लिष्टता आ ही जाती है। वह अनिवार्य है। मैं तो सरल भाषा के लेखक को ही बहुत बड़ा लेखक समझता हूँ। लिखने का मतलब औरों पर अपने मन के भाव प्रकट करना है। जिसका मतोभाव जितने ही अधिक लोग समझ सकेंगे उसका प्रयत्न



और परिश्रम उतना ही अधिक सफल हुआ समझा जायगा। जितने बड़े बड़े लेखक हो गये हैं प्रायः सभी सीधी सादी और बहु-जन-बोधगम्य भाषा के पक्षपाती थे।

आज कल कुछ लेखक तो ऐसी हिन्दी लिखते हैं जिसमें संस्कृत-शब्दों की प्रचुरता रहती है। कुछ संस्कृत, अँगरेज़ी, फ़ारसी, अरबी सभी भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। कुछ विदेशीय शब्दों का विलकुल ही प्रयोग नहीं करते; ढूँढ ढूँढ कर ठेठ हिन्दी-शब्द काम में लाते हैं। मेरी राय में शब्द चाहे जिस भाषा के हों, यदि वे प्रचलित शब्द हैं और सब कहीं बोल चाल में आते हैं तो उन्हें हिन्दी के शब्द-समूह के बाहर समझना भूल है। उनके प्रयोग से हिन्दी की कोई हानि नहीं; प्रत्युत लाभ है। अरबी-फ़ारसी के सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनको अपढ़ आदमी तक बोलते हैं। उनका बहिष्कार किसी प्रकार सम्भव नहीं।

### १६—उन्नति के उपाय।

तीस चालीस वर्ष पहले हिन्दी-साहित्य की जो अवस्था थी उससे इस समय की अवस्था अवश्य अच्छी है। परन्तु इस देश की अग्र्य समृद्धिशालिनी भाषाओं की अपेक्षा अब भी वह अत्यन्त हीनावस्था में है। हम हिन्दीभाषाभाषियों के लिए यह बड़े ही परिताप की बात है। जैसा ऊपर, एक जगह पर, कहा जा चुका है पुस्तकों ही के द्वारा ज्ञान-वृद्धि होती है। और, जो समाज या जो जनसमुदाय जितना ही अधिक ज्ञानसम्पन्न होता है वह लौकिक और पार-लौकिक, दोनों विषयों में, उतनी ही अधिक उन्नति कर सकता है। अतएव अपनी सामाजिक, नैतिक, धार्मिक आदि हर तरह की उन्नति के लिए सब विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकों की हिन्दी में बड़ी ही आवश्यकता है। हिन्दी में इसलिए कि यही हमारी मातृ-भाषा है। इसी भाषा में दी गई शिक्षा से समाज का सर्वाधिक अंश लाभ उठा सकता है। इसी भाषा में वितरण किये गये ज्ञान का प्रकाश

गाँव गाँव, घर घर पहुँच सकता है। यही हमारी भाषा है; यही हमारी मानाओं की भाषा है; यही हमारी बहनों की भाषा है; यही हमारे बच्चों की भाषा है। अँगरेज़ी या अन्य किसी भाषा में दी गई शिक्षा से जितना लाभ पहुँच सकता है उससे सैकड़ों गुना अधिक लाभ मातृ-भाषा में दी गई शिक्षा से पहुँच सकता है।

किसी भी भाषा में नये नये ग्रन्थ पहले ही से नहीं निकलने लगते। जैसे जैसे शिक्षा-प्रचार और ज्ञानोन्नति होती जाती है वैसे ही वैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी बनते जाते हैं। अतएव जब तक नये नये ग्रन्थ निकलने का समय न आवे तब तक हमें चाहिए कि हम अँगरेज़ी और संस्कृत आदि भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का सरल हिन्दी में अनुवाद करके अपने देश और अपने जनसमुदाय का कल्याण-साधन करें। इन भाषाओं के साहित्य में अनन्त ज्ञान-राशि भरी हुई है। उसकी प्राप्ति से जब हम लोगों की विद्या-भिरुचि और ज्ञानसम्पन्नता बढ़ेगी तब हम लोग भी नाना विषयों के नये नये ग्रन्थ लिख कर अपने साहित्य की पुष्टि करेंगे। हाँ, जो लोग इस समय भी अपनी उन्नत शिक्षा और विशद विद्या के कारण नये नये ग्रन्थ लिख सकते हैं उनके लिए भाषान्तर-कार्य में प्रवृत्त होने की तादृश आवश्यकता नहीं। परन्तु प्रत्येक भाषा के साहित्य में कुछ न कुछ विशेषता होती है। अतएव भिन्न भिन्न भाषाओं के विशिष्ट ग्रन्थों के अनुवाद की आवश्यकता भी सदा बनी रहती है। अँगरेज़ी बहुत उन्नत भाषा है। परन्तु उसमें भी, अब तक, प्रति वर्ष, अन्य भाषाओं की पुस्तकों के सैकड़ों अनुवाद होते हैं।

हमारी भाषा की शिक्षा और हमारे साहित्य की उन्नति के विषय में गवर्नमेंट और विश्वविद्यालय का जो कर्तव्य है उसके पालन में यदि एक भी दोष न हो, एक भी त्रुटि न हो, एक भी भूल न हो तो भी उस मार्ग से हमारे साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति नहीं हो सकती। ऐसी उन्नति का होना एक मात्र हमारे हाथ में है। उद्योग करने से हमें अपने साहित्य



को उन्नत कर सकते हैं और उद्योग न करने से हमों उसे रसातल पहुँचा सकते हैं। और प्रान्तों के राजा, महाराजा, तअल्लुकेदार और धनी अपनी मातृभाषा के लिए लाखों रुपये खर्च करते हैं। वे जानते हैं कि अज्ञानों को सज्जन करना, अशिक्षितों को शिक्षा देना, और ज्ञान-प्रसार के प्रधान साधन उत्तमोत्तम ग्रन्थों के रचयिताओं को उत्साहित करना पुण्य कार्य है। परन्तु, बड़े दुःख की बात है, इन प्रान्तों में ऐसे एकही दो रमारमण निकलेंगे जो इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य-पालन करते हों। हिन्दी की वर्तमान हीनावस्था में बहुत कम लोग साहित्य-सेवा का व्यवसाय करके सुख से जीविकानिर्वाह कर सकते हैं। अतएव साहित्य-सेवकों के लिए उत्साह-दान की बड़ी आवश्यकता है।

परन्तु सबसे बड़ी आवश्यकता एक और ही बात की है। हम लोगों में अपनी मातृ-भाषा के प्रेम की बहुत कमी है। जिन्होंने अँगरेजी की उच्च शिक्षा पाई है—जो संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् हैं—वे हिन्दी का अनादर करते हैं। यदि यह इसलिए कि हिन्दी भिखारिनी है तो इसके एक मात्र उत्तरदाता हमों हैं। इसका पाप एक मात्र हमारे ही सिर है। जो मनुष्य अपनी माता का अनादर करता है, जो मनुष्य रेशमी परिच्छद पहन कर चीथड़ों में लिपटी हुई अपनी माता की तरफ घृणाव्यञ्जक कटाक्ष करता है, जो मनुष्य समर्थ होकर भी अपनी माता का उद्धार आपदाओं से नहीं करता उसे यदि और कुछ नहीं तो क्या लज्जा भी न आनी चाहिए? माता के बिना मनुष्य का काम केवल बाल्यावस्था में नहीं चल सकता; परन्तु मातृ-भाषा के बिना तो किसी भी अवस्था में मनुष्य का काम नहीं चल सकता। इसी से माता और मातृभाषा की इतनी महिमा है। अतएव हमारे उच्च शिक्षा पाये हुए भाइयों को चाहिए कि वे हिन्दी लिखने और पढ़ने का अभ्यास करें; हिन्दी के साहित्य को उन्नत करने की चेष्टा करें; हिन्दी को नफरत की निगाह से देखना बन्द कर दें। यदि वे इस तरफ ध्यान दें तो न किसी और से कुछ

कहने की आवश्यकता है, न किसी और से सहायता माँगने की आवश्यकता है, न किसी और से उत्साह पाने की आवश्यकता है। और, कोई कारण नहीं कि वे अपनी भाषा की उन्नति का यत्न न करें। जिस अँगरेजी शिक्षा का उन्हें इतना गर्व है उसके आचार्य बड़े बड़े विद्वान् अँगरेजी क्या अपनी मातृभाषा की सेवा नहीं करते? बड़े बड़े बंगाली, मदरासी, गुजराती, महाराष्ट्र और मुसल्मान सिविलियन तक क्या अपनी अपनी भाषाओं में पुस्तक-रचना नहीं करते? क्या हिन्दी-भाषा-भाषियों की उच्च शिक्षा में सुरक्षा का पर लगा हुआ है? यदि हमें अँगरेजी से अति-शय प्रेम है तो हम खुशी से उसमें अपने विचार प्रकट कर सकते हैं, लेख लिख सकते हैं, पुस्तक-रचना कर सकते हैं। परन्तु क्या वर्ष छः महीने में एक आध लेख भी हिन्दी में लिख डालना हमारे लिए कोई बड़ी बात है? हमें याद रखना चाहिए कि अँगरेजी लेखों और पुस्तकों से समाज या देश के बहुत ही थोड़े लोगों को लाभ पहुँचा सकता है। अतएव उसकी तरफ कम और अपनी निज की भाषा की तरफ हमें विशेष सद्य होना चाहिए। जिस समाज में हम उत्पन्न हुए हैं—जिस प्रान्त या देश में हमने जन्म लिया है—उसका विशेष कल्याण उसी की भाषा को उन्नत करने से हो सकता है। जिस समाज और जिस देश की बदैलत हम सभ्य, शिक्षित और विद्वान् हुए हैं उसे अपनी सभ्यता, शिक्षा और विद्वत्ता से लाभ न पहुँचाना घोर कृतघ्नता है। इस कृतघ्नता के पाश से हम तक तक नहीं छूट सकते जब तक अपनी निज की भाषा में पुस्तक-रचना और समाचारपत्र-सम्पादन करके अपनी सभ्यता, अपनी शिक्षा और अपनी विद्वत्ता से सारे जन-समुदाय को लाभ न पहुँचावें।

आइए, तब तक हमी लोग, अपनी अल्प शक्ति के अनुसार, कुछ विशेषत्वपूर्ण काम कर दिखाने की चेष्टा करें। 'हमी' से मेरा मतलब, शिक्षितों के मतानुसार, उन अल्पज्ञ और अल्पशिक्षित जनों से है जो इस समय हिन्दी के साहित्य-सेवियों में नि



हैं और जिनमें मैं अपने को सबसे निकृष्ट सम-  
जता हूँ। पिछले साहित्य-सम्मेलन ने क्या काम  
किया और क्या न किया, इस पर विचार करने की  
हो, इस लेख में, आवश्यकता नहीं। उसकी तो  
पोर्ट भी अब तक मेरे देखने में नहीं आई।  
आवश्यकता इस समय हिन्दी में थोड़ी सी अच्छी  
छोटी पुस्तकों की है। विभक्तियाँ मिला कर लिखनी  
चाहिए या अलग अलग; पाई, गई और आई आदि शब्दों  
केवल ई-स्वर लिखना चाहिए या ई-युक्त यकार;  
ए-सवर्ण-सम्बन्धी नियम का पालन करना चाहिए  
या केवल अनुस्वार से काम निकाल लेना चाहिए—  
यथा और भी ऐसी ही अनेक बातों पर विचार  
करने की भी आवश्यकता है। परन्तु तदपेक्षा अधिक  
आवश्यकता उपयोगी विषयों की कुछ पुस्तकें लिखने  
की है। आइए, हम लोग मिल कर भिन्न भिन्न विषय  
की एक एक पुस्तक लिखने का भार अपने ऊपर  
ले; और, एक वर्ष बाद, उसकी छपी हुई या हस्त-  
लिखित कापी अगले सम्मेलन में उपस्थित करके यह  
दिखला दें कि अपनी मातृ-भाषा हिन्दी पर हमारा  
कितना प्रेम है और उसकी सेवा करना हम कहाँ तक  
अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं  
कि अल्पज्ञता के कारण हमसे यह काम उतना अच्छा  
न हो सकेगा जितना अच्छा कि संस्कृत और अँगरेज़ी  
के पारङ्गत विद्वानों से हो सकता। परन्तु इसके  
लिए हमें दोष नहीं दिया जा सकता। मुझे आशा  
है कि हमारी दोषपूर्ण रचनाओं को देख कर, स्तन्य-  
पान के समय अपनी प्यारी माँ से सीखी हुई भाषा  
की दुर्दशा को देख कर, हिन्दी-भाषा-भाषी अँगरेज़ी  
पर संस्कृत के विद्वानों को हम पर—और हम पर  
होती तो अपनी मातृ-भाषा पर—अवश्य दया  
आवेगी और वे अवश्य ही उसके उद्धार का कार्य  
आरम्भ कर देंगे। बस, मुझे अब इतनी ही प्रार्थना  
करनी है कि—

“अयुक्तमस्मिन्यदि किञ्चिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा ।  
धौदार्य्यकारुण्यविशुद्धधीभिर्मनीषिभिस्तत्परिमार्जनीयम्” ॥

## हे हंस !

राजहंस, अवतंस वंस के, उज्ज्वल, विज्ञ, विवेक-निधान ।  
नीर-धीर-परखैया, दुर्लभ, सुसमालोचक, सुजन, सुजान ॥  
सुनो सुनो, कर्तव्य न छोड़ो, भव्य-भाव से मुड़ो न नेक ।  
गुण-दोषों को दिखला कर तुम अविकृत रखो अपनी टेक ॥१॥  
ये अविवेकी बक, बक बक कर, जो करते हैं तुम्हें विरक्त ।  
तो क्या तुम भी, अन्धभक्त बन, होगे आलस में अनुरक्त ? ॥  
नहीं नहीं, तुम निर्भय होकर दिखलाओ सबके गुण-दोष ।  
क्या कर्तव्य-विमुख होते हैं धर्मनिष्ठ, निरपेक्ष, अदोष ? ॥२॥  
द्विज-वृन्दों में वन्दनीय हो, सरस्वती के वाहन वीर ।  
पक्ष-पात ते रहित हिताहित विहित विचारो बन कर धीर ॥  
मानसरोवर में रहते हो, धारे हो व्रत कठिन कठोर ।  
सुरसुन्दरी-गमन-गौरव-गुरु, सहृदय, देखो अपनी ओर ॥३॥  
निन्दा करते ही रहते हैं, तुम ऐसों की, ओछे, चोर ।  
कुशल, कुशाग्रबुद्धि, तुम ऐसे, किन्तु न सुनते हैं वह शोर ॥  
सरस सुधामय पय-पायस में पानी मिला रहे हैं मूढ़ ।  
रोको इनको, पोल खोल दो, हो अपने पद पर आरूढ़ ॥४॥  
युक्ति-युक्त यह उक्ति, हृदय का है सच्चा उद्गार, पवित्र ।  
आत्मश्लाघा-दोष मान कर अस्वीकृत मत करना मित्र ॥  
हे सम्बन्ध तुम्हारा मेरा अति समीप, अत्यन्त घनिष्ठ ।  
मैं हूँ कमलाकर, तट-स्थ तुम न्यायनिष्ठ गुणज्ञानगरिष्ठ ॥५॥

रूपनारायण पाण्डेय

(कमलाकर)

## अमेरिका-भ्रमण ।

### मेरी दिनचर्या ।

( ५ )



लाई २५—प्रातःकाल सब मित्रों से  
मिल जुल कर मैं निकला । बिजली  
की गाड़ी पर सवार होकर पोर्ट-  
लैंड आया । इस समय मेरे पास  
छः डालर और पचहत्तर सेंट थे ।  
सबसे पहले एक्स प्रेस कम्पनी  
के दफ्तर में गया और पहनने के कपड़े का बेग सन-



फ्रांसिस्को को रवाना किया। फ्रांसिस्को यहाँ से ७७३ मील दूर है। बेग का किराया एक डालर पच्चीस सेंट लगा।

आज का दिन खूब साफ़ था; बादल का नाम न था। पोर्टलैंड के बाज़ार में कुछ भीड़ देखने में आई। मैं भी उधर चला गया और एक किनारे खड़ा होकर देखने लगा। बहुत सी मोटर गाड़ियाँ जा रही थीं जिन पर W. O. W. का चिह्न था। पूछने पर पता लगा कि यह चिह्न दुनिया के लकड़िहारों का है। यहाँ उनकी एक सभा होगी। प्रत्येक रियासत के लकड़िहारों के प्रतिनिधि अपनी अपनी मोटर-गाड़ियों पर बैठे जा रहे थे। उन्हीं को लोग देख रहे थे।

वहाँ से चल कर मैं अपने एक मित्र से मिलने गया। चलते समय उनसे भेंट कर लेना उचित समझा। पर वे न मिले। एक कागज़ पर अपना प्रेमाभिवादन लिख कर उनके कमरे में मैं छोड़ आया।

इस समय साढ़े ग्यारह बज चुके थे। धूप तेज़ थी। पर मैंने ठहरना उचित न समझा। ईस्ट मारीसन नाम की गली से निकल कर जल्दी जल्दी मैंने क़दम बढ़ाया। शहर से निकलने के लिए मैंने रेल की सड़क पकड़ना ज़रूरी समझा। पोर्टलैंड से कई तरफ़ गाड़ियाँ जाती हैं, इसलिए मैंने एक भले-मानस से सन फ्रांसिस्को वाली पटड़ी पूछी। ठीक उत्तर पाकर मैंने अपना रास्ता लिया।

शहर के दक्षिणी भाग को लाँघता, गली-कूचों से होता हुआ मैं एक छोटी नहर के किनारे पहुँचा। वहाँ एक दस वर्ष का लड़का मछली पकड़ रहा था। हरियाली देख कर मैं खड़ा हो गया और लड़के से पूछा:—

“यह पटड़ी सेलम की ओर जाती है?”

“हाँ।”

“तुम कभी सेलम गये हो?”

“एक बार पापा (पिता) के साथ गया था।”

“कैसा शहर है?”

“सेलम बड़ा खूबसूरत शहर है। वह हमारी राजधानी है। इसलिए वहाँ बहुत अच्छी अच्छी इमारतें हैं।”

मैं (क़दम उठा कर) “अच्छा चलता हूँ, मुझे दूर जाना है।”

“कहाँ?”

“फ़िस्को।”

“फ़िस्को! क्या ऐसे ही जावगे? गाड़ी पर क्यों नहीं चढ़ लेते?”

मैं (ज़रा हँस कर) “ऐसे ही घूमते घूमते चले जायँगे।”

“मैं आपसे एक बात कहता हूँ। आप माल गाड़ी पर क्यों नहीं चढ़ जाते; उससे जाने में पैस नहीं लगता।”

“माल गाड़ी पर कौन चढ़ने देगा?”

लड़का (मुसकुरा कर) “मैंने बहुत दफ़े लोगों को चढ़ते देखा है। जब गाड़ी चलने लगती है वे चढ़ जाते हैं।”

“अच्छा, देखूँगा।”

यह कह कर मैं चला। होवो—दुनिया का पहला सबक इस लड़के ने दिया। इस समय मुझे इन लोगों का कुछ भी पता न था। समय आने पर मुझे अमेरिकन होवो लोगों की हवा लगी और उन सब बातों को देखने और करने की नौबत आई जिन को मैं उपन्यासों में पढ़ कर हैरान हुआ करता था।

आज बहुत कड़ी धूप थी। सारा बदन पसीने से हो रहा था। दो बजने पर हुए। मुझे थकान जोर की लगी। एक छोटा सा गाँव नज़र आया। मैं उसके पास पहुँचा। एक ग़रीब किसान के पास जाकर खाने को माँगा। वह किसान जर्मनी का निवासी था। उसको अच्छी तरह अँगरेज़ी बोलने का आता था। उसकी स्त्री, और बच्चे नीरोग और दृष्ट-पुष्ट थे। उसने मुझे आलू, रोटी, मक्खन और दूध दिया। मैंने यथेच्छ भोजन किया। पैसे देने लगा उसने न लिये।



उस कृषक को धन्यवाद देकर मैं बाहर निकला। उसका घर बहुत साधारण सा था—एक पुराना दो मंजिला लकड़ी का मकान था; पर यही कृषक दो चार साल के बाद धनी हो जायगा। अभी तो नया नया उस मुल्क में आया है। अपनी पूँजी ज़मीन में लगा रहा है और मेहनत करता है। धीरे धीरे परिश्रम सफल होगा और यही भूमि इसके लिए स्वर्णमयी हो जायगी।

मैं नाना प्रकार के विचारों में मग्न चला जाता था। धूप के कारण कभी कभी वृक्षों की छाया में चलता था। चलता चलता शाम के पाँच बजे आरेगन सिटी में पहुँचा।

रेल की सर्जन-पेसेफ़िक लाइन पर यह एक छोटा सा क़सबा है। यह पोर्टलैंड से १५ मील दूर है। इस क़सबे में भी बैंक, पुस्तकालय, वचनालय और पानी साफ़ करनेवाली एक फ़ेक़री मशीन। इससे इर्द गिर्द के क़सबों को शुद्ध जल मिलता है।

अमेरिका के क़सबों में अच्छे खासे बाज़ार होते हैं। सड़कों के पार्श्वपथ (Side walks) पक्के होते हैं। ज्यों ज्यों क़सबे का शहर बनता जाता है वहाँ नई सड़कें और गलियाँ पक्की बनती जाती हैं। कहीं कहीं गलियों में लकड़ी के तख़्ते जोड़ कर पार्श्वपथ बनाये जाते हैं। वर्षों में इन पर चलने में सुभीता रहता है। पैरों में कीचड़ नहीं लगती। पर इन पर चलते हैं, और गाड़ी-घोड़े बीच सड़क पर चलते हैं। इस प्रकार सबके लिए सुभीता रहता है। मुझे मज़ा फिरता जब मैं पानी साफ़ करने वाली मशीन के कारख़ाने के पास पहुँचा और वहाँ खिड़कियों से देखने लगा तो किसी ने ऊपर से मुझे लक्ष्यकारा। मैंने उधर देखा। मालूम हुआ कि ऊपर छत पर काम करने वाले मेरे इस ओर आने और जाने के विरोधी हैं और मुझको गलियाँ दे रहे हैं। ये लोग मज़दूर थे। ये परदेशियों को घृणा दृष्टि से देखते हैं। मैं तो इस समय साफ़ ही परदेशी मालूम होता था। सड़क से चला आता था; चेहरे

और कपड़ों पर धूल जमी हुई थी। खैर, मैं वहाँ से गलियाँ खाकर लौट आया और कमरे की तलाश में लगा।

पच्चीस सेंट पर एक कमरा मिल गया। मुँह हाथ धोकर खाने के लिए दस पैसे का कुछ ले आया। उससे क्या होता था? पर लाचारी थी। वही खाकर सोने की तैयारी कर रहा था कि इतने में घर की मालिकिन ने मेरा दरवाज़ा खटखटाया। मैंने दरवाज़ा खोला तो देखा कि आप ठंडे पानी की सुराही लिये खड़ी हैं। मैंने उन्हें बहुत धन्यवाद दिया। जब जाने लगीं तो उन्होंने मुझसे पूछा :—

“आप खाना खाने नहीं जायँगे?”

“मैं फलाहारी हूँ। मांस नहीं खाता। इसलिए होटल में जाकर क्या करूँगा।”

“होटल में आलू और दूसरी तरकारियाँ भी मिल सकेंगी।”

“हाँ, पर वे सब चरबी में डूबी रहती हैं। मुझे उनसे घृणा है।”

“अच्छा, देखो मैं कुछ खाने को लाती हूँ।”

मैंने बहुतेरा मना किया; पर वह भद्रा कब मानने वाली थी। भट कुछ आलुओं का मुरब्बा, रोटी, दूध और मक्खन ले आई और रख कर चली गई। मुझे धन्यवाद भी देने का अवसर न दिया।

मैंने घोटुयेटेक भूमि पर आसन लगाया और उस सर्वशक्तिमान् करुणासिन्धु प्रभु को धन्यवाद दिया, जिसकी कृपा से मुझे ऐसी भद्रा रमणी के दर्शन हुए। प्रार्थना से निश्चिन्त होकर मैंने भोजन किया। फिर शान्तचित्त होकर शय्या पर लेटा।

जुलाई २६—प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे उठ कर मैंने हाथ-मुँह धोये और अपना रास्ता पकड़ा। ठंडे में भ्रमण करने में बड़ा मज़ा आया। मकई, गेहूँ आदि खेतों में लहलहा रहे थे। कहीं कहीं घास के खेतों में गाय, बैल आदि चरते थे। कहीं शूकर देवता अपने परिवार के साथ विहार करते देख पड़ते थे। बड़े आनन्द का समय था। आज अधिक धूप भी न थी। घूमता-फिरता मैं एक छोटी सी नदी के



किनारे पहुँचा । वहाँ एक पेड़ की छाया में बैठ गया । बहुत देर तक वहाँ बैठा बैठा यहाँ के किसानों की अवस्था के साथ भारतवर्ष के किसानों की अवस्था का मिलान करता रहा । भारतीय किसानों की अवस्था पर बहुत अफ़सोस हुआ । परन्तु शीघ्र ही भाव बदल गया । मन ही मन कहने लगा—“होइ हैं बहुरि वसन्त में इन डारन वे फूल” । फिर वहाँ से उठ आगे बढ़ा । आज मैं घोड़े-गाड़ी की सड़क पर चल रहा था; क्योंकि इधर के दृश्य मनोहर थे । गर्द को दबाने के लिए इन सड़कों पर अलकतरा (Coal-Tar) छिड़का जाता है । उससे सड़कों की मिट्टी एकदम दब जाती है । गाड़ी, घोड़े चलने से भी धूल नहीं उड़ती ।

आरेगन रियासत स्वाधीन है । यहाँ का हर एक प्रान्त मानो एक प्रतिनिधिसत्ताक राज्य है । लोग अपने आप बादशाह हैं । अपना प्रबन्ध आप करते हैं । अपने क़ानून आप पास करते हैं ।

वहाँ से आगे बढ़ कर मैंने हीटो नामक एक आठ दस घर का गाँव देखा । उस समय बारह बज चुके थे । वहाँ एक घर के इर्द गिर्द लकड़ियों का अहाता था । उसका दरवाज़ा खोल मैं निधड़क अन्दर चला गया । घर के अन्दर नहीं, किन्तु अहाते के अन्दर । वहाँ घर के पीछे छाया में जाकर मैं एक लकड़ी पर बैठ गया । एक छोटा बालक खेल रहा था । मैंने उसे बुलाया :—

लड़का एक छोटी गुड़िया से खेल रहा था । मुझे देख कर वह डरा नहीं, किन्तु हँस कर मुझसे कहने लगा :—

“देखो मेरी गुड़िया !” ऐसा कह कर गुड़िया खींचता हुआ वह मेरे पास आया । कैसा प्यारा बच्चा था ; गहरी नीली आँखें, बाल भूरे, हाथ-पैर मज़बूत, गालों पर लाली, सुफेद कपड़े पहने बहुत ही भला मालूम होता था । मैंने पास बुला कर पूछा :—

“तुम्हारा नाम क्या है ?”

“मेरियन”

थोड़ी ही देर में मेरियन मुझसे हिल गया । बहुत देर तक वह मेरे साथ खेलता रहा । कुछ देर बाद अन्दर से आवाज़ आई ! “मेरियन ! मेरियन !”

मेरियन अन्दर गया और अपनी माता को लेकर बाहर आया । उसे देख कर मैं खड़ा हो गया और टोपी सिर से उतार ली । वह युवती बड़े नम्रता से बोली :—

“आप धूप में न खड़े रहिए । इधर आकर बैठ जाइए । मेरे पति आते होंगे । उनके आने पर भोजन कीजिएगा ।”

देवी इतना कह कर अन्दर चली गई और साये में बैठ गया ।

थोड़ी देर में मिस्टर डेडिक्सन उस युवती के पति आये । पहले अन्दर गये । फिर बाहर आकर मुझे लिवा ले गये, और हाथ मुँह-धोने के लिए जल, साबुन और साफ़ अँगोछा दिया । मैंने धोया और अपनी कंधी से बाल साफ़ किये ।

पीछे हम चारों ( बालक मेरियन भी ) मेज़ के इर्द गिर्द कुरसियों पर खाने को बैठे । मेरियन के लिए एक खास तरह की ऊँची कुरसी थी, जो बच्चों के लिए खाने के समय इस्तेमाल की जाती है । ऐसी होती है कि बालक गिर न सके ।

मिस्टर डेडिक्सन खाना परोसने लगे तो उससे अपना भोजन-सम्बन्धी निवेदन कर दिया वे बोले :—

“यद्यपि हम लोग कृषक हैं, तथापि हम अधिक नहीं खाते । हाँ, न खाने की क़सम खाई ।” ऐसा कह उन्होंने मेरे लिए शाक-तरकारी परोस दी और अपने सब के लिए अपना भोजन मिला कर परोस लिया । हम लोग भोजन करने लगे और वार्तालाप भी आरम्भ हुआ ।

मिस्टर डे०—“आप कहाँ से आते हैं ?”

मैं—“पोर्टलैंड से”

मिस्टर डे०—“कहाँ जाने का विचार है ?”

मैं—“सन-फ्रांसिस्को की ओर जा रहा हूँ”



संख्या १० ]

जब इस प्रकार के दो चार और प्रश्न उन्होंने और मैंने साधारण उत्तर दिये तब वे चुप हो गये। मैंने दिल में सोचा कि अपना परिचय देना ही होगा। इसलिए मैंने कहा:—

“मैं भारतवर्ष से आता हूँ। इधर पैदल सफ़र करने के लिए निकला हूँ”।

युवती—“अच्छा! आप इंडिया से आते हैं!

आप को इधर आये कितनी मुदत हुई?”

मैं—“पाँच वर्ष हो गये।”

युवती (आश्चर्य से) “और पाँच ही वर्ष में आपने इसी अच्छी अँगरेजी बोलना सीख लिया?”

मैं—“मैं यहाँ विश्वविद्यालय में पढ़ता रहा हूँ।

पाँच वर्ष मैंने विद्यालय में लगाये हैं॥”

युवती—“आप के देश में भी तो अँगरेजी बोल जाती है।”

मैं—“हाँ, मेरे देश में भी स्कूल-कालेज हैं; पर फ़ी नहीं”।

मिस्टर डे०—“यह क्यों?”

अब इन लोगों की दिलचस्पी बढ़ी।

मैं—“वहाँ तीस करोड़ की तो आबादी है; पर लिखे लोग केवल छः फ़ी सदी हैं! यह न होने बराबर हैं। आप के देश में तो दस घरों के पीछे एक स्कूल है”।

युवती, हँस कर—“तो आप हमारे देश को बहुत पसन्द करते हैं?”

मैं—“हाँ, आप के देश में लोगों को हर प्रकार उन्नति करने के साधन हैं। स्कूल हैं, कालेज हैं, विश्वविद्यालय हैं। इसके अतिरिक्त हर प्रकार के म-धन्ये सिखलाने के लिए भी प्रबन्ध है।

थोड़ी देर बाद मिस्टर हेडिक्सन ने पूछा:—

“आपको हमारी गवर्नमेंट पसन्द है?”

मैं—“आपकी गवर्नमेंट बहुत अच्छी है। यद्यपि हमें भी कई तरह की बुराइयाँ हैं। पर उनको दूर करने की शक्ति भी आप लोगों के हाथ में है।”

मिस्टर डे०—“आपका मतलब पूंजी वालों और ज़दूरों के सम्बन्ध में है।”

मैं—“हाँ, उसके भी, और, और बातों के भी सम्बन्ध में।”

मिस्टर डे०—“प्रेज़िडेंट रोज़वेल्ट उन बुराइयों को दूर करने की केशिश कर रहे हैं।”

मैं (ज़रा धीरे से) —“उम्मेद नहीं कि प्रेज़िडेंट रोज़वेल्ट कामयाब हों।”

मिस्टर डे०—“क्यों?”

मैं—“प्रेज़िडेंट रोज़वेल्ट साम्राज्यपद्धति (Imperialism) के पक्षपाती हैं। एक बात और भी है। ख़ाली क़ानून पास कर देने से पूंजी वालों के पंख नहीं कट सकते। जो धनवान् हैं और जिन्होंने अन्याय पर क़मर कसी है वे क़ानून बनाने वालों तथा क़ानून के अनुसार फ़ैसला करने वालों को मोल ले लेते हैं। बस हो गया ख़ातमा! ग़रीब बेचारे मारे गये।”

मिस्टर डेडिक्सन थोड़ी देर चुप रहे। फिर युवती ने कहा:—

“आपने तो हमारे देश की बहुत सी बातें जान लीं। हम लोग भी उतना नहीं जानते।”

मैं (हँस कर) —“बहुत तो नहीं, थोड़ा अवश्य सीखा है। यही बातें मैंने विश्वविद्यालय में पढ़ी भी हैं—राजनीति-विज्ञान, समाज-विज्ञान और शिक्षण-विज्ञान”।

युवती—“अच्छा, आरेगन रियासत की गवर्नमेंट तो आपको पसन्द है?”

मैं (हँस कर) —“क्या कहना है। वहाँ की गवर्नमेंट अलबत्ता गवर्नमेंट कही जा सकती है। वहाँ की गवर्नमेंट लोगों के ठीक हाथ में है।”

युवती—“यह देश नया है। धीरे धीरे सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी”

मैं—“बेशक, इस बात को मैं मानता हूँ।”

भोजन से निश्चिन्त हो कर मैंने मिस्टर डेडिक्सन से उनके विषय में कुछ बातचीत की, तो पता लगा कि उनके पूर्वज हालैंड से इस स्वतंत्र देश में आये थे। पहले ये पोर्टलैंड में कुछ काम करते थे। पीछे यह सोचा कि कृषि-कर्म सबसे अच्छा है। अपनी पूंजी से भूमि मोल लेली। अब यहाँ ख़ी-सहित रहते



हैं। ये खुद खेती का काम करते हैं; जरूरत होने पर मजदूर भी रख लेते हैं। मजे में काम चला जाता है।

खाना खा चुकने पर मिस्टर डेडिक्सन को काम करने जाना था। मुझे कह गये कि आप बाहर साये में कुरसी पर सुस्ता लीजिए और जी में आवे तो फल तोड़ कर खाइए। खूब आराम करके जाइएगा।

वे तो चले गये। मैं बाहर बरामदे में कुरसी पर बैठ कर आराम लेने लगा।

तीन बजे के करीब मैंने चलने की ठानी। कुछ फल तोड़ कर ले लिये। मिस्टर डेडिक्सन कुछ काम के लिए घर आये थे। मैंने उनसे बिदा माँगी और उन्हें धन्यवाद देकर अपनी राह ली। मेरियन और उसकी माता शायद सो गये थे। इसलिए उनसे जाते समय भेंट न हो सकी।

पाँच बजे मैं उडबर्न पहुँचा। यहाँ से सेलम थोड़ी ही दूर है। मैंने सोचा कि प्रातःकाल उठ कर वहाँ जाऊँगा। इसलिए रात को सोने का स्थान ढूँढ़ा। कमरे का किराया यहाँ पचास सेंट माँगते थे। मैंने दरियाफ़ किया तो मालूम हुआ कि यहाँ से विजली की गाड़ी सेलम जाती है और उसका किराया भी कम है। इसलिए उस पर चढ़ कर शीघ्र ही सेलम पहुँचा।

रात को सेलम की शोभा दर्शनीय थी। बाजारों में ऐसा मालूम होता था जैसे दीपावली हो। विजली से शोभा-वृद्धि के काम खूब लिये जाते हैं।

घूमते फिरते एक भद्र पुरुष, मिस्टर ग्रेहम, से भेंट हुई। उनकी सहायता से एक सस्ता कमरा प्राप्त किया। वहाँ अपने पास जो फल थे उन्हीं को खा कर सो रहा।

जुलाई २७—प्रातःकाल हाथ-मुँह धोने पर सबसे पहले भोजन की सूझी। एक जगह थोड़े में काम बनता था। वहाँ से दस पैसे में श्रुधानिवृत्ति करके सेलम शहर देखने चला।

सेलम आरेगन की राजधानी है। विलामेट तराई के ऐन बीच में होने के कारण यहाँ

नगर-वृद्धि के सब सामान मौजूद हैं। आये-हवा बहुत अच्छी है। भूमि इर्द गिर्द की बड़ी उपजाऊ है। और चारों ओर के दृश्य भी बड़े सुन्दर हैं। जिस दिन आकाश साफ़ रहता है उस दिन पर्वतों की पाँच चौटियाँ बर्फ़ से ढकी हुई दीख पड़ती हैं।

इस शहर की आबादी १८,००० आदमियों की है। सड़कें और गलियाँ चौड़ी तथा फलदार वृक्षों से शोभायमान हैं। कई एक गलियाँ सौ फीट चौड़ी हैं। घरों के आस पास भी फलदार पेड़ हैं।

शहर की बड़ी बड़ी इमारतें देखने लायक हैं। मैं सबसे पहले राजधानी की इमारत (Capital Building) देखने गया। कहते हैं इसमें तीस लाख रुपये से अधिक खर्च हुआ है। बहुत भारी इमारत है। इसके भीतर एक विशाल पुस्तकालय है। मैं घूम कर सब देखा। पुस्तकालय की तत्त्वावधानिका (Lady-Superintendent) से कुछ पुस्तकें लेकर मैंने सरस्वती-सम्पादक को भेजीं।

शहर में और भी कई अच्छी इमारतें हैं। एक नाम है फिडरल-बिल्डिंग (Federal Building) उसमें साढ़े तीस लाख रुपये खर्च हुए हैं। अदालत की इमारत में भी उतने ही रुपये लगे हैं। सिटी-हॉल ढाई लाख के खर्च से बना है। एक बड़ा भारी हाई स्कूल है। उसकी लागत दो लाख पचीस हजार रुपये की है। दूसरे छोटे स्कूलों के लिए कई लाख रुपये खर्च किये गये हैं। एक विश्वविद्यालय भी है जिसको विलामेट-यूनीवर्सिटी कहते हैं। और कई एक उपयोगी पाठशालायें हैं। वहाँ ग्रंथ, बच्चे और गूंगे बालक तथा बालिकायें पढ़ती हैं। एक सुधारक-शिक्षालय है, जहाँ उद्दण्ड बालक रखे जाते हैं। आरेगन के असली वाशिंगटन के लिए भी एक स्कूल है, जिसको "Government Training School" कहते हैं।

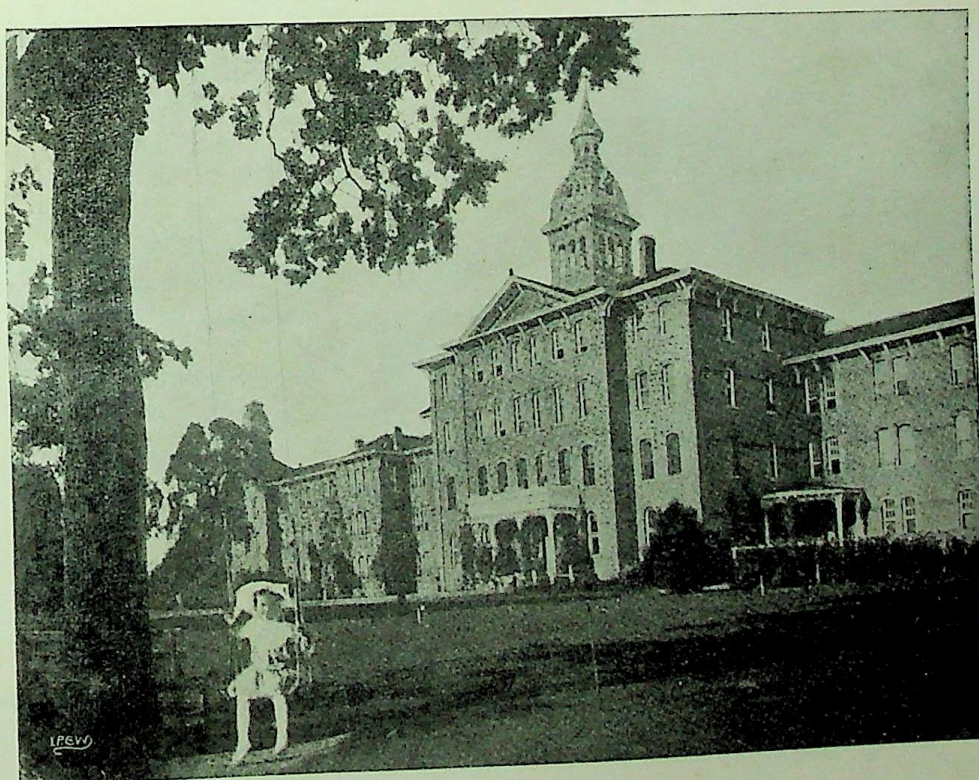
सेलम के इर्द गिर्द फलों की भरमार है। संतनाशपाती, बेर, करौंदा, अखरोट आदि खूब होते हैं। असल में सेलम को (Cherry City) कहते हैं।



# सरस्वती



सलेम ( आरेगन ) का प्रधान राज-मन्दिर ।



सलेम ( आरेगन ) का पागलखाना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



संख्या  
हैं। चेरी  
यह फल  
गौर म  
की शक  
होती है  
हैं। चेरी  
लिये हु  
प्रकार व  
फले  
Hop  
यह वेले  
फूल तो  
बनती है  
आस प  
अधिक  
उनको र  
सेर चु  
क मि  
अन तक  
राज क  
कमाते हैं  
सप्ताह  
राज  
निवृत्त हैं  
र पर  
हुत उँ  
वहाँ  
सने  
मिलाय  
देखा।  
के वश  
पढ़ाने-  
प्रबन्ध  
व  
मुझे ब  
अलब



चेरी फल कई रंग के होते हैं। मैंने भारत में यह फल कभी नहीं खाया। यह खाने में खट्टा-मीठा और मीठा दोनों तरह का होता है। यह आलूचे की शकल का होता है। इसकी गुठली भी वैसी ही होती है। मगर आलूचा इससे ज़रा बड़ा होता है। चेरी के रंग में विभिन्नता है। लाल, सुरखी लिये हुए सफ़ेद, काला—इसी तरह चार पाँच प्रकार के चेरी के फल होते हैं।

फलों के अतिरिक्त यहाँ विलामेट तराई में हाप (Hop) नामक एक फूल की फसल होती है। यह बेलों की तरह लगाया जाता है। फसल पर फूल तोड़ लिये जाते हैं। इन्हीं फूलों से शराब बनती है, जिससे लोग करोड़ों रुपये कमाते हैं। आस पास की बस्ती से हर साल तीस हजार से अधिक मजदूर हाप चुनने के लिए यहाँ आते हैं। उनके सेरों के हिसाब से मजदूरी मिलती है। एक सेर चुनने वाले को एक आने से लेकर डेढ़ आने तक मिलता है। कोई कोई दिन भर में साढ़े तीन आने तक चुन लेते हैं। इस तरह वे आठ नौ रुपये गोज़ कमाते हैं। जापानी लोग इन दिनों खूब रुपया कमाते हैं। पर हाप चुनने का काम केवल छः सात सप्ताह रहता है। मैंने भी यह काम किया है।

राजधानी, पागलखाना आदि देख और काम से विवृत्त हो मैंने चलने की ठानी। सेलम से आगे कुछ दूर पर रियासत का रिफ़ार्म-स्कूल है। यह एक बहुत ऊँची पहाड़ी पर बना है। बारह बजे के बाद मैं वहाँ पहुँचा। दरवाज़े पर एक लड़का मिला। उसने अन्दर ले जाकर मुझे अपने प्रिंसिपल से मिलवाया। उसकी आज्ञा से मैंने सारा स्कूल घूम कर देखा। यहाँ वे लड़के लिये जाते हैं जो अपने माँ-बाप के वश में नहीं। कुल ९५ लड़के हैं। उनके लिए पढ़ाने-लिखाने, खेलने-कूदने आदि का बहुत अच्छा व्यवस्था है। रियासत इसका सब खर्च देती है।

वहाँ से निकल कर मैंने आगे पैर बढ़ाया। आज मुझे बहुत दूर जाना था। इसलिए जल्दी जल्दी चला। अलबनी शहर में मेरा एक मित्र रहता है। यही

बेहतर समझा कि आज की रात उसके यहाँ बिताऊँ। न इधर देखा, न उधर, बस चला ही गया। छः बजते बजते टरनर से मेरियन होता हुआ जेफ़रसन पहुँच गया। ज़रा भी दम नहीं ली। बराबर चला ही गया और रात होते होते अलबनी में दाखिल हो गया।

मेरे मित्र, मिस्टर बी०, यहाँ रहते हैं। मैं उनके घर पहुँचा तो आप अपना आटोमोबील (मोटर गाड़ी) साफ़ करने में लगे थे। मुझे देख कर हैरान हो बोलें—

“हेलो देवा! तुम यहाँ कहाँ?”

मैं (हँस कर)—“इसी तरह घूमता फिरता आ निकला। दिल में आया, चलूँ आज आपको कष्ट दूँ।”

“कष्ट! अच्छा कहा। पर यह तो बताओ कहाँ से आते हो?”

“पोर्टलैंड से पैदल आता हूँ।”

तब अजब है कि हम लोगों ने तुमको नहीं देखा। मैं और मेरी स्त्री दोनों आज ही पोर्टलैंड से वापिस आये हैं। हम लोग आटोमोबील पर थे। क्या ही अच्छा होता यदि तुम रास्ते में मिल जाते।”

मैं (मुस्कुरा कर)—“मेरी ऐसी किस्मत कहाँ।” मैंने फिर अपना लहजा बदल कर कहा—

“क्या इतनी जगह आप के आटोमोबील में थी?”

“जगह करने से हो जाती है, हमने रास्ते में एक आदमी को इसी तरह बिठा लिया था और उसे दस मील ले आये थे।”

“अच्छा आओ, अन्दर चलें। तुम थके हुए हो।”

चुपचाप मैं अपने मित्र के साथ हो लिया। उन्होंने पहले आटोमोबील को ठिकाने रक्खा। फिर मुझे घर के अन्दर ले गये।

उनकी स्त्री से मैं पहले ही से परिचित था। बहुत ही नम्र स्वभाव वाली हैं। एक विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट हैं। बड़े प्रेम से मुझे भोजन कराया। मैं पहले उन लोगों के यहाँ आ चुका था। मेरे खान पान से ये लोग वाकिफ़ थे। इसलिए मेरे इच्छा-नुसार भोजन दिया।



खाना खाने के बाद कुछ देर वार्तालाप हुआ ।  
पीछे, मेरे सोने का प्रबन्ध एक दूसरे कमरे में कर  
दिया गया । साफ़ सुथरे बिस्तरे पर मैं मैले बदन  
कैसे सो सकता था । कपड़े उतार कर स्नान-  
गृह में घुस गया और खूब मल मल कर नहाया ।  
फिर निश्चिन्त हो सो गया ।

सत्यदेव—अमेरिका ।

## शय्याष्टक ।

( १ )

शय्ये ! सबसे पहले तूने ही अंक में लिया मुझको ।  
मानव नाम पड़ा है तेरे ही अंक में मेरा ॥

( २ )

तथा करेगी तूही फिर भी अंकस्थ वत्स जान मुझे ।  
होगा विधि-वश मेरा जीवन-लीलान्त जब जग में ॥

( ३ )

पीड़ित हो रोगों से तेरी ही शरण ढूँढ़ता हूँ मैं;  
जिससे तुरन्त मेरी व्यथा घटे, आंख लग जावे ॥

( ४ )

चिन्तित जब रहता हूँ तेरे ही चरण चतुजल से मैं ।  
रो रोकर धोता हूँ; सो कर निश्चिन्त होता हूँ ॥

( ५ )

स्वेच्छा-स्वीकृत श्रम से होता शिथिलांग, श्रान्त हूँ जब मैं ।  
तेरीही सेवा में तब विश्रामार्थ आता हूँ ॥

( ६ )

तूही मुझे कराती परमानन्दानुभव अकथ्य महान् ।  
कोर कृपा की निद्रा है मुझ पर जब कभी करती ॥

( ७ )

दुख भी है, सुख भी है, दृश्य शुभाशुभ अनेक हैं तुझमें ।  
शिक्षा देती है तू जैसी आचार्य्य देते हैं ॥

( ८ )

“शुभ में और अशुभ में, देखो अत्यन्त अल्प अन्तर है ।  
मिला हुआ है जग में, सुख से दुःख, दुःख से सुख भी ” ॥

सत्कविदास ।

## श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसाद जी ।



रन ज़िले में गोआ परगने के अन्त-  
र्गत मुबारकपुर नाम का एक  
गाँव है । यहाँ एक कायस्थकुल  
में श्रीसीतारामशरण भगवान्  
प्रसादजी का जन्म हुआ ।

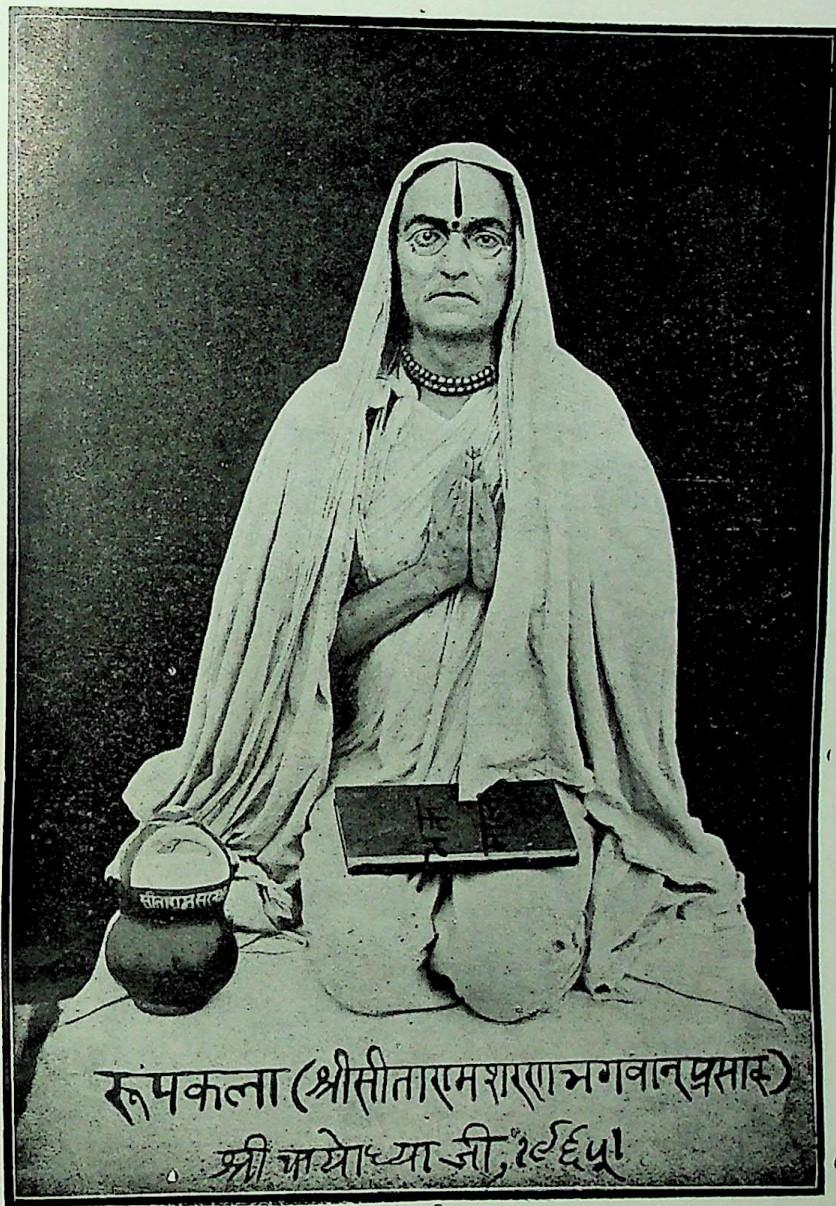
## बाल्यकाल और शिक्षा ।

इनके दादा केवलकृष्ण इलाहाबाद ज़िले के  
आलमगंज नामक स्थान की नील-कोठी में मीरमुंशी  
का काम करते थे । आप सपरिवार वहीं रहते थे ।  
संवत् १८९७ की श्रावणशुक्ला नवमी को भगवान्  
प्रसादजी का जन्म हुआ । पाँचवें वर्ष में कुल की  
रीति के अनुसार इनका विद्यारम्भ हुआ । किन्तु  
इनके पढ़ने का कोई अच्छा प्रबन्ध उस समय नहीं  
किया गया । मुंशी केवलकृष्णजी बड़े हरिभक्त और  
साधुसेवी थे । अपने काम-काज से जब कभी उन्हें  
अवकाश मिलता तब वे साधु-महात्माओं के दर्शन  
को जाया करते । भगवान्प्रसादजी जब सात वर्ष  
के हुए तब मुंशी केवलकृष्णजी इन्हें भी अपने साथ  
साधुओं के पास ले जाने लगे । इससे छोटी उम्र में  
ही इनके हृदय में भक्ति का बीज अंकुरित हुआ ।  
लड़कपन में ये पत्थर के टुकड़े लेकर शालग्राम की  
तरह उनकी पूजा करते थे । पितामह के स्नेहपात्र  
होने के कारण कोई इनके पूजापाठ में विघ्न नहीं  
डालता था । अतएव आठ वर्ष की उम्र तक इन्होंने  
कुछ भी नहीं पढ़ा ।

आठ वर्ष की उम्र में भगवान्प्रसादजी अपने  
माता-पिता के साथ मुबारकपुर आये । यहाँ इनकी  
शिक्षा का ठीक प्रबन्ध हुआ । पहले दो तीन वर्ष  
तक इन्होंने मौलवी अशरफ़अली से फ़ारसी पढ़ी ।  
उसके बाद ग्यारहवें वर्ष में ये स्थानीय मिडिल वर्ग के  
क्यूलर स्कूल में भरती हुए । यहाँ ये फ़ारसी के  
साथ साथ हिन्दी-उर्दू भी पढ़ने लगे । इनके पिता  
स्वयं भी इन्हें घर पर पढ़ाते थे । परन्तु पाठ



# सरस्वती



रूपकला (श्रीसीतारामशरणभगवान्प्रसाद)  
श्री ज्योत्ष्या जी, १९६५

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



संख्या

शाला क  
शिक्षा में  
हादद  
मक व  
गणव र  
ही।

१८

शिक्षा में  
पये म  
जिला स्  
दते भी

१८

हास में  
वच्छता  
होंने त  
समर्पण  
गवान्  
भाषाओं  
नके अ  
ए इत  
से ईश्व

सन

का विव  
१९० ई  
गया  
हस्थाश्  
जन व

ये।

र ईश्व  
शास्त्रों  
परमाव  
में इन्होंने



शाला की शिक्षा के कारण कभी इनके धर्म की शिक्षा में बाधा नहीं पड़ी। मुबारकपुर में पंडित महादत्त पाण्डेय और मुंशी शिवचरण भगत नामक दो बड़े धार्मिक और सदाचारी रामानन्दीय साधु रहते थे। उनसे इन्हें धर्म की शिक्षा मिलती थी।

१८५९ ईसवी में भगवान्प्रसादजी मिडिल शिक्षा में उत्तीर्ण हुए। इन्होंने चार वर्ष के लिए चार रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिली। तब ये छपरे के जिला स्कूल में भरती हुए। यहाँ ये जी लगाकर पढ़ते भी थे और हरिभजन भी किया करते थे।

१८६३ ईसवी में भगवान्प्रसादजी एंट्रेंस क्लास में आये। इसी समय इन्होंने “तन मन की वृच्छता” नामक एक पुस्तक हिन्दी में लिखी। उसे इन्होंने तत्कालीन स्कूल-इन्स्पेक्टर डाकूर फैलन को समर्पण किया। इन्स्पेक्टर साहब ने प्रसन्न होकर भगवान्प्रसादजी को ३० मासिक वेतन पर देशी भाषाओं के स्कूलों का सब-इन्स्पेक्टर नियत किया। उनके अध्यापकों ने बहुत समझाया कि नौकरी के लिए इतनी जल्दी न करनी चाहिए। पर इन्होंने उसे ईश्वर की कृपा समझ स्वीकार कर लिया।

### विवाह ।

सन् १८५७ ईसवी में बाबू भगवान्प्रसादजी का विवाह हुआ। सन्तति कोई नहीं हुई। १८९० ईसवी में इनकी सहधर्मिणी का शरीरपात हो गया। तथापि इन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। गृहस्थाश्रम के बन्धन से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक भजन करना ही इन्होंने अच्छा समझा।

### दीक्षा ।

यों तो लड़कपन से ही बाबू भगवान्प्रसादजी पर ईश्वर-प्रेम का गाढ़ा रङ्ग चढ़ा हुआ था। परन्तु शास्त्रों में ज्ञान-प्राप्ति के लिए सद्गुरु का आश्रय लेना परमावश्यक बताया गया है। इसी से १८५८ ईसवी में इन्होंने परसा-ग्राम-निवासी स्वामी रामचरणदासजी

से दीक्षा ग्रहण की। प्रचलित साम्प्रदायिक प्रथा के अनुसार इनके गुरु महाराज ने इनका नाम “श्रीसीतारामशरण” रक्खा। तभी से ये श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसाद कहे जाते हैं।

बाबू भगवान्प्रसादजी रामानन्दीय सम्प्रदाय के वैष्णव हैं। ये श्रीसीतारामजी कि युगल मूर्ति के उपासक हैं। इनका इस सम्बन्ध का नाम रूपकला है। ये अपनी कविता में प्रायः यही नाम देते हैं।

### मुलाजिमत का हाल ।

स्कूलों के सब-इन्स्पेक्टर होने के कुछही दिनों बाद इनकी तरकी हुई। ये पचास रुपये पर शाहाबाद भेजे गये।

मार्च १८६७ में इनका वेतन ८० हुआ। ये पूर्निया जिले के डिप्टी-इन्स्पेक्टर और वहाँ के नार्मल स्कूल के हेड मास्टर नियत हुए। इनके समय में उस स्कूल की बहुत उन्नति हुई। इससे पूर्वोक्त डाकूर फैलन तथा तत्कालीन छोटे लाट सर जार्ज कैपवेल ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। पूर्निया में इन्होंने संस्कृत, अरबी और बँगला का अध्ययन किया।

१८६९ ईसवी में ये १०० मासिक पर मुँगेर के डिप्टी-इन्स्पेक्टर हुए। १८७३-७४ में विहार-प्रान्त में भयङ्कर अकाल पड़ा। उस समय बाबू भगवान्प्रसादजी भी दरिद्रों को सहायता देने के लिए नियुक्त हुए। इन्होंने इस काम को बड़ी योग्यता से किया।

१८७५ में इनका वेतन १५० हुआ और १८७८ से ये २०० पाने लगे।

ये साधु-सेवा में बहुत खर्च किया करते थे। इस कारण कभी कभी इन्हें कष्ट मिलता था। भक्त-वत्सल भगवान् से भला अपने भक्त का ऐसा कष्ट कब देखा जा सकता था। मुँगेर के एक मुसलमान मुख्तार को रात में स्वप्न हुआ कि तुम भगवान्प्रसाद को इतने रुपये भेंट करो। बाबू भगवान्प्रसादजी ने पहले तो रुपये लेने से इनकार किया। पर मुख्तार साहब के बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने ले लिया। उस समय ये मुँगेर ही में थे।



१८८४ ईसवी में बाबू भगवान्प्रसादजी की तरकी तीन सौ रुपये के ग्रेड में हुई। अपने भाग्य-भाजन पुत्र की इतनी उन्नति देख कर, सन् १८८५ ईसवी में, बाबू भगवान्प्रसादजी के पूजनीय पिता मुंशी तपसीराम ने स्वर्ग-यात्रा की।

१८८६ ईसवी में बाबू भगवान्प्रसादजी फिर पटने आये। तबसे बराबर ये यहीं रहे। १७९३ ईसवी की ३१ वीं अक्तूबर तक बहुत योग्यता के साथ काम करके यहीं से इन्होंने १४६८ पेंशन प्राप्त किया। इन आठ वर्षों के बीच में कितनी ही अलौकिक घटनाएँ हुईं, जिनसे स्पष्ट मालूम होता है कि भगवान्प्रसादजी पर ईश्वर की पूर्ण कृपा है। स्थानाभाव से हम उन सबका उल्लेख नहीं कर सके।

बाबू भगवान्प्रसाद ने प्रतिज्ञा की थी कि काम से फुरसत मिलते ही मैं श्रीअवध चला जाऊँगा और श्रीयुगल सरकार की श्यामगौर मूर्ति के ध्यान में अपना समय बिताऊँगा। अतएव पेंशन पाते ही उन्होंने श्रीअवध की यात्रा कर दी।

### श्रीअवधवास।

सन् १८९३ ईसवी के नवम्बर में श्रीसीताराम-शरण भगवान्प्रसादजी अयोध्यावास के निमित्त बाँकीपुर से रवाना हुए। अयोध्या पहुँचकर प्रमोद-वन कुटिया से अँचला, लंगोटा, कमण्डलु इत्यादि प्राप्त करके इन्होंने विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम का त्याग किया। तबसे ये महात्मा वहाँ रह कर श्रीसीताराम के भजन और ध्यान में तत्पर रहते हैं। अपनी भावना, अष्टयाम नाम की पुस्तक में, इन्होंने इस प्रकार लिखी है:—

छाड़ि मोह अभिमान सब, सन्तन सों अति दीन।  
वसि प्रमोदवन सरयुतट, फिर मन अनत न कीन ॥  
नागेश्वर हनुमत कृपा, सरयू कौशल धाम।  
वसि सन्तन मधि दीन रहि, सुमिरत सीताराम ॥

इनके धर्मात्मा पिता और सौभाग्यवती स्त्री का तो पहले ही शरीरपात हो चुका था। पर इनके पेंशन पाने के समय इनकी माताजी वर्तमान थीं।

इन्होंने बहुत चाहा कि वे भी अयोध्या-वास करें पर वे राजी न हुईं। अतएव वे बराबर उनके लिए प्रति मास ५१ भेजा करते थे। १८९५ ईसवी में श्रीशिवरात्रि के दिन इनकी माता ने भी परलोक की यात्रा की।

श्रीसीतारामशरणजी की अनन्य-भक्ति का परिचय तो लोगों को इनकी नौकरी के समय में ही मिल चुका था। परन्तु उस समय वे अपने काम-काज में फँसे रहते थे। इससे लोगों को इनसे सख्त पदेश-ग्रहण करने का अवसर नहीं मिलता था। जबसे ये अयोध्या आये हैं तबसे अनेकानेक मनुष्यों को इन्होंने भक्तित्व का उपदेश देकर सन्मार्ग में लगाया है।

बाबू बलदेवनारायणसिंहजी गया के प्रतिष्ठित वकील हैं। पहले आप स्मार्त धर्मावलम्बी थे। आधुनिक साधु-नामधारी लोगों के आचरण देख कर साधुओं की ओर से उनकी बहुत कम हो गई थी। सन् १९०० ईसवी में वे अयोध्या गये। वहाँ साधु श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसादजी के इन्होंने दर्शन किये। वे अपने मन में वैष्णवधर्म-सम्बन्धी कई प्रश्न सोच कर आये थे। किन्तु श्रीसीतारामजी की ऐसी कृपा हुई कि बलदेव बाबू के बिना पूछे ही भक्तप्रवर श्रीसीतारामशरणजी ने उनके सब प्रश्न तथा उनके उत्तर कह सुनाये। बाबू बलदेवनारायणसिंह पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसी समय उन्होंने श्रीसीतारामजी की उपासना करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। वहाँ से लौट कर उन्होंने वैष्णवी ग्रहण की।

अयोध्या के प्रमोदवन में उन्होंने श्रीसीतारामशरण के नाम पर “रूपकला-कुञ्ज” नामक सुन्दर भवन बनवाया। श्रीसीतारामशरणजी की पुस्तकें भी इन्होंने अपने खर्च से छपवाई हैं।

### पुस्तक-रचना।

श्री सीतारामशरण भगवान्प्रसादजी होने के सिवा कवि और ग्रन्थकार भी हैं। पुस्तकें



वना की ओर इनका लड़कपन से ही ध्यान है। अब तक इन्होंने तेरह पुस्तकें लिखी हैं। उनमें चार उर्दू में हैं। शेष सब हिन्दी में। उनकी पुस्तकों के नाम ये हैं :—

(१) तन मन की स्वच्छता—यह पुस्तक छात्रा-स्था में लिखी गई थी। इसी की बदौलत भगवान्-प्रसादजी को नौकरी मिली थी। इसका विषय नामहीन प्रकट है।

(२) तहारते जाहिर वो बातिन—यह पहली पुस्तक का उर्दू-अनुवाद है। इन्स्पेक्टर की भाषा से यह अनुवाद किया गया था।

(३) तुहफे तुल शायकीन, और

(४) उर्दू रोमन रीडर्स—ये दोनों छात्रों-के योगी उर्दू की किताबें हैं।

(५) शरीरपालन—यह एक बंगला-पुस्तक का अनुवाद है। यह बहुत दिनों तक विहार के मिडिल स्कूलों में पढ़ाई जाती थी।

(६) हिफ्जे सेहत की उमदः तदवीरें—यह शरीर-पालन का उर्दू-अनुवाद है। यह पुस्तक वे अब तक कहीं कहीं पढ़ाई भी जाती है।

(७) भागवत—गुटका—यह हिन्दी-पुस्तक है। इसके पूर्वार्द्ध में भगवन्नामकीर्तन और उत्तरार्द्ध में श्रीसीतारामजी के काम की कितनी ही बातों का उल्लेख है।

(८) श्रीपीपाजी की कथा—इसकी रचना एक पर इम नये ढंग की है। इसमें भगवान् ही को श्रोता बना कर सब बातें सुनाई गई हैं। पीपा जी के सम्बन्ध के जितने कवित्त भक्तमाल में हैं वे सब इसमें सन्निविष्ट हैं।

(९) श्रीभगवद्भचनामृत—कहने को तो यह भगवद्गीता के बारहवें अध्याय की टीका है, पर शास्त्र में लेखक ने इसमें गीता के श्लोकों के आधार पर भक्तियोग की विशद व्याख्या की है।

(१०) भक्तमाल की टीका—ऐसी पुस्तक आज तक नहीं बनी थी। इसमें पहले श्रीनाभाजी के छाप्य देकर उसके नीचे प्रियादासजी के कवित्त दिये गये हैं। उनके नीचे सरल हिन्दी में व्याख्या की

गई है। स्थान स्थान पर अन्यान्य धर्म-ग्रन्थों के प्रमाणों से भी कथा की पुष्टि की गई है। गया के वकील बाबू बलदेवनारायणसिंहजी ने इसे प्रकाशित किया है।

(११) श्रीसीताराममानसपूजा या भावना-अष्टयाम—इसमें श्रीसीतारामजी की आठों पहर की मानस-पूजा-विधि है। ग्रन्थकार स्वयं इसी विधि के अनुसार कर्म करते हैं।

(१२) भगवन्नामकीर्तन—नित्य पाठ करने योग्य एक छोटा सा संग्रह है।

(१३) श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक—इसमें अनेक ग्रन्थों से भिन्न भिन्न देवता-सम्बन्धी श्लोकों तथा हिन्दी-पद्यों का संग्रह है।

### स्वभाव ।

साधु महात्मा स्वभावही से सरल-हृदय होते हैं। बाबू भगवान्प्रसादजी में यह गुण शुरू से ही वर्तमान है। विरक्त होने के पहले कभी कभी रोष भी हो आता था ; परन्तु अकारण नहीं। जब कभी इनके ईश्वर-भजन, पूजा-पाठ या साधुसेवा में बाधा पड़ती तभी इन्हें क्रोध आता था। किन्तु वह शीघ्र ही शान्त भी हो जाता था। ये ब्राह्मणों का विशेष आदर करते हैं। इन्होंने आज तक किसी ब्राह्मण को रसोई बनाने या और किसी काम के लिए अपने यहाँ नौकर नहीं रखा। ये बड़े ही मिलनसार हैं। विधर्मियों से भी ये भ्रातृभाव रखते हैं। श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसादजी में अनेक गुण हैं। उन सबका बहुत संक्षिप्त वर्णन भी किया जाय तो एक बड़ी पोथी बन जाय। छपरा-निवासी बाबू गोविन्ददेवनारायणसिंह बी० ए० ने इनका विस्तृत जीवनचरित पुस्तकाकार छपवाया है। जिन पाठकों को बाबू भगवान्प्रसादजी के जीवन की अलौकिक घटनाओं का हाल जानने की इच्छा हो वे इस पुस्तक को अवश्य देखें। उससे बहुत शिक्षा मिल सकती है। ईश्वर के कृपापात्र भक्त का चरित्र प्रकाशित करके प्रकाशक ने हिन्दु-समाज का बहुत उपकार किया है।



## लङ्का-द्वीप



ल समुद्र की दम घुटाने वाली गरमी और हिन्द सागर की तूफानी लहरों से छुटकारा पाकर ता० १० सितम्बर को दस बजे रात के समय हम लङ्का की राजधानी कोलम्बो पहुँचे। कई दिन की बेचैनी और बीमारी के बाद ज़मीन देख कर फिर जान में जान आई। हमारे साथ बहुत से आस्ट्रेलिया जाने वाले मुसाफ़िर थे। हमें जहाज़ से उतरते देख वे लम्बी साँस खींचने लगे। उन्हें १५ दिन का सफ़र और करना था। जहाज़ किनारे से कोई आध मील के फ़ासले पर खड़ा हो गया। किराये की किश्तियों के माँझियों ने चारों ओर से जहाज़ को घेर लिया। मन चाहता था कि कब जहाज़ का पीछा छूटे। पर सामान सब जहाज़ में पड़ा था, जिस का निकलना कोई सहज बात न थी। हमारे साथ मुक्ति फ़ौज के चार सिपाही और एक कप्तान था। ये लङ्का-निवासी थे। इनकी सलाह हुई कि रात भर जहाज़ पर ही ठहरना ठीक होगा। हमें बड़ी निराशा हुई। ग्यारह से ऊपर बज चुके थे। अब एक एक पल कठिनाई से कटने लगा। ऐसा जान पड़ता था कि सबेरा होगा ही नहीं। नौद कोसों दूर भाग गई। जहाज़ के चारों ओर टहलने लगे। दो चार मिनट से अधिक किसी से बातचीत करने को जी नहीं चाहता था। ले दे कर सबेरा हुआ। सबेरा होने के पूर्व हमारा सालवेशन-आर्मी (मुक्ति-फ़ौज) वाला साथी किनारे चला गया था। हम सब ऊपर से टकटकी लगाये उसके लौटने की राह देख रहे थे। जैसे तैसे वह एक डोंगी में बैठ कर जहाज़ के पास आया। हम छहों आदमी ज़रूरी सामान रख कर डोंगी में किनारे को रवाना हुए। डोंगी में बैठने पर भी मन की घबराहट कम न हुई। आँख ज़मीन की ओर थी। ख़ैर डोंगी किनारे पर आई। हम लोग जल्द बाहर जा कूदे। डोंगी का किराया डेढ़ रुपया चुका कर चुङ्गीघर में प्रवेश किया। चुङ्गी वाले थोड़ा

बहुत सब जगह तंग करते हैं, पर हमारे साथ बतौर ठीक रहा। हम पूरी साहिबी पोशाक में थे। इस कारण कदाचित् हमसे कोई पूछपाछ नहीं हुई। चुङ्गीघर से निकल हम बाहर सड़क पर आये और होटल की ओर पैदल रवाना हुए।

## कोलम्बो शहर ।

शहर में प्रवेश करते ही लम्बी चौड़ी सड़कें ऊँचे होटल और दूकानें नज़र आईं। धूप बरस कड़ी थी। पाँच मिनट में होटल पहुँचे। कार उतार कर जल्द स्नान किया और कुछ नाश्ता शहर देखने निकले। शहर का नया और साफ़ हिस्सा समुद्र के किनारे किनारे बसा है। गवरनर की बड़ी बड़ा डाकखाना, सरकारी दफ़्तर, बड़ी बड़ी दूकानें और होटल सब समुद्र के निकट हैं। टामस कुक दफ़्तर बड़ी सड़क पर चुङ्गीघर से दो मिनट का रास्ता है। कोलम्बो की मनुष्य-संख्या अनुमान दो लाख है। वह लन्दन से करीब ६००० मील दूर लङ्का-द्वीप में यह सबसे बड़ा नगर है और दिन दिन बढ़ती पर है। यहाँ संसार के सब तरह के सामान दिखाई देते हैं। कोलम्बो संसार में एक बड़ा बाज़ार समझा जाता है। यहाँ आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, जापान, बर्मा, भारत, इत्यादि के जहाज़ विश्राम करते हैं। कोलम्बो व्यापार के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ से मूँगा, मोती, चा, जायफल, नारियल इत्यादि भी बाहर जाते हैं। केले यहाँ बहुत सस्ते मिलते हैं अर्थात् दो तीन पैसे दर्जन। पहले हम टामस कुक के दफ़्तर गये। वहाँ ज़रूरी बातें पूछ कर सड़कें घूमे। यहाँ वहाँ घूमे। पर धूप असह्य होने से जल्द होटल को लौट आये। यहाँ इटली से भी अधिक धूप थी। नहीं जानते थे कि कोलम्बो इतना गरम स्थान है। सबेरे आठ नौ बजे के पश्चात् बाहर निकलना कठिन हो जाता है। शाम को पाँच के बाद कुछ गरमी होती है। दिन में दो बार नहाने पर भी हमें गर्मी से बे चैनी रहती थी। जी चाहता था कि अब स्थान का पीछा छूटे। पर देखने की इच्छा से



रास्ते होकर आये थे। इस कारण सब कष्ट झेलने पड़े। नई बस्ती के मकान बम्बई, कलकत्ते, के अंग्रेजी महलों की तरह हैं। सड़कों पर ट्राम-गाड़ी चलती है। पर ये गाड़ियाँ कुछ सुस्त और पुराने फैशन की हैं। ट्राम केवल बड़ी बड़ी और खास खास सड़कों पर चलती है। रात को सड़कों पर गैस की रोशनी होती है। पुरानी बस्ती की सड़कें तंग हैं। मकान बहुधा नीचे और कच्चे हैं। बस्ती बहुत घनी है। तम्याकू और बीड़ियों की दूकानों पर नारियल की एक मोटी रस्सी लटकी रहती है। उसका एक छोर जलता रहता है। बीड़ी खरीदने वाले इस जलते छोर से बीड़ी सुलगाते हैं। विलायत तथा अन्य देशों में इसके बदले बीड़ी बेचने वाले स्प्रिट का छोटा सा लम्प जलता हुआ रखते हैं। कहीं कहीं दियासलाई रखी रहती है। शहर के खास खास स्थानों में—जैसे होटल, बाज़ार, डाकखाना बड़ी बड़ी दूकानों इत्यादि के निकट-रिक्शा ( Rickshaw ) खड़ी रहती हैं। रिक्शा एक प्रकार की दो पहिये की छोटी, हलकी गाड़ी होती है जो एक मनुष्य हाथों से खींचता है। इसके पहिये खरदार होते हैं। इससे हलकी चलती है। धूप बचाने का टब रहता है। आदमी खूब दौड़ता है; कभी कभी गाड़े-गाड़ी का मुकाबला करती है। किराया एक छेदे का आठ आने देना पड़ता है। मुसाफ़िरों को चाहिए कि किराया ठहरा कर इन गाड़ियाँ को ले जायँ, नहीं तो खींचने वाले मनमाना किराया माँगते हैं। इन गाड़ियों में सवारी के सिवा बाज़ारू चीज़ें भी रख सकते हैं। शौकीन लोग शाम-सवेरे इन गाड़ियों पर बैठ कर समुद्र के किनारे हवा खाने जाते हैं।

### बौद्ध-मन्दिर ।

लङ्का में बौद्धों के केवल दो मन्दिर हैं। और भी तो हमें ज्ञात नहीं। पर बौद्धों के पुरोहितजी भी कहते हैं कि दो ही हैं। दोनों नये हैं। सबसे पुराना ८० साल का है। दोनों कोलम्बो में हैं। पुरोहितों से मालूम हुआ कि रोमन कैथलिक तथा

हमारे अन्यान्य क़स्तानों के अत्याचार के कारण बहुत से मन्दिर तोड़ फोड़ डाले गये। पर जबसे लङ्का में अँगरेजों का राज्य हुआ है तबसे शान्ति है। अँगरेजी राज्य की बदौलत लङ्का को यह लाभ हुआ है। सब से पुराने मन्दिर का नाम कोट्टहन है। इसके आस पास रोमन कैथलिक क़स्तान रहते हैं। मन्दिर के पुजारीजी से मालूम हुआ कि ये लोग अब भी मन्दिर का अनादर किया करते हैं। मन्दिर के भीतर पुजारीजी ने अँगरेजी में एक लम्बा चौड़ा नोटिस टाँग रक्खा है जिसमें क़स्तानों को मन्दिर की सरहद के भीतर जाने की मनाई की गई है। क्रोध में आकर पुजारी ने कुछ अपशब्द भी लिख डाले हैं। हमने पूछा कि इस स्थान में इस नोटिस से क्या मतलब? उन्होंने कहा कि इन आस पास के क़स्तानों के मारे मन्दिर के बागीचे तथा अन्य चीज़ों को नुक़सान पहुँचता है। मन्दिर एक मामूली घर सा है। चारों ओर बागीचा है। एक ओर लड़कों के पढ़ने की शाला है जिसमें अनुमान ८० छात्र हैं। मन्दिर और इनका काम दान-पुण्यद्वारा चलता है। इस मन्दिर की एक ओर एक नया मन्दिर बन रहा है जिसका नमूना गयाजी के मन्दिर से लिया है। लङ्का में यह मन्दिर अपने ढंग की एक ही चीज़ होगी। मन्दिर के भीतर बौद्ध-देव दाहिनी कर-वट सो रहे हैं। बरामदे में उनके माता-पिता की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के आस पास परिक्रमा है। दो छोटे छोटे बालक हमें मन्दिर के भीतर ले गये। ये पुरोहित थे। दोनों को हमने कुछ इनाम दिया। बाहर आने पर मन्दिर के बड़े पुजारीजी से भेंट हुई। आप बड़े प्रसिद्ध पुरुष हैं। संस्कृत, पाली इत्यादि के सिवा आप अच्छी अँगरेजी भी जानते हैं। इनका कुछ परिचय उन्हीं बालकों ने दे दिया था। बातचीत अँगरेजी में होने लगी। जो पूछा गया उन्होंने बड़े प्रेम से बताया। पुजारीजी स्याम देश के राजा के नज़दीकी नातेदार हैं। कोई ३० वर्ष पूर्व आप लन्दन में छात्र थे। स्याम को लौटने पर पलची बन कर फिर लन्दन गये। छात्रावस्था में आप



ने खूब नाम प्राप्त किया था। स्वयं ग्लेडस्टन ने इनकी बुद्धि की प्रशंसा की थी। एलची का काम इन्होंने बहुत अच्छी तरह चलाया। कुछ दिन बाद स्याम आये और ऐसी विपत्ति में फँसे कि राजा ने देश निकाले की आज्ञा दे दी। जान जाने का भय हुआ। कई देशों में भागते फिरे। अब पुजारी बनकर लङ्का में हैं। आपका नाम कोजनवीरवंश है। इसका अर्थ है बौद्ध देव के वंशज। इनके पास अब कोई जायदाद नहीं है। निर्वाह भिक्षा पर होता है। खाने पीने का सब सामान मन्दिर ही में आ जाता है। बहुधा बना बनाया भोजन आता है। जाति पाँति का कोई विचार नहीं। ये लोग मांस भी खाते हैं। यह सुन कर हमें बहुत आश्चर्य हुआ। अहिंसा बौद्ध मत का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है। बौद्ध लोग चिउँटी तक मारना पाप समझते हैं। पर ये लोग सब तरह का मांस खाते हैं। हमने पूछा, यह आप क्या करते हैं। कहने लगे, इसमें कोई दोष नहीं। हमें कोई बना बनाया मांस दे जावे तो उसके उत्तरदाता हम नहीं; हमें खुद हिंसा न करनी चाहिए। हमने कहा आप हिंसा न करके भी उसके जवाबदेह हैं, क्योंकि आप के भोजनों की चिन्ता आपके चेलों को करनी पड़ती है। इसलिए मांस बेचने वालों को अधिक मांस बेचने के लिए अधिक पशु मारना पड़ते होंगे। यदि आप अपने भक्तों से स्पष्ट कह दें कि यदि मांस-भोजन तुम लोग लाओगे तो हम कदापि न ग्रहण करेंगे तो दूसरे ही दिन कितने ही जानवरों की जान बच जायेगी। और भी बहुत कुछ वार्तालाप इस विषय में हुआ। पर उनके ध्यान में कुछ न आया। तबसे हमारी इन लोगों पर एकदम श्रद्धा घट गई। चीता, सर्प इत्यादि को छोड़ कर और सब प्रकार के जानवरों का मांस बौद्ध लोग खाते हैं। सर्प, चीता इत्यादि इस कारण नहीं खाते कि वे स्वास्थ्य को हानिकारक होते हैं। बौद्धों के पुरोहित झोली ले कर भिक्षा माँगने को बाहर निकलते हैं। वे किसी के द्वार पर खड़े नहीं होते, न किसी से सवाल ही करते हैं। यदि किसी की दृष्टि इन पर पड़ी तो वह इन्हें

बुला कर भोजन दे देता है। पर जहाँ तक होता है पका पकाया भोजन लेते हैं। पुरोहित लोग बीड़े चुरट सब पीते हैं। सुनते हैं कि शराब से भी कोई परहेज नहीं करते। इन पुरोहितों की पोशाक पीली होती है। सिर घुटा हुआ। पाँव में जूते, मोड़े पहनते हैं। पान खाना पाप नहीं समझते। हाथ में छाता, लकड़ी और हवा झलने को ताड़ के पत्तों लिये रहते हैं। बहुधा अपढ़ होते हैं। निठले होकर से बाजारों में घूमते दिखाई देते हैं। इनमें और भी कई दोष हैं जो हम यहाँ पर प्रकट करना उचित नहीं समझते। पर यह हाल सभी का नहीं। कुछ अच्छे महात्मा और विद्वान् भी हैं। कहते हैं कि कुछ वर्ष पहले स्त्रियाँ भी साधुओं की तरह विरक्त होकर मन्दिरों में रहा करती थीं। पर गोलमाल होने पर अलग कर दी गईं। अब सुनते हैं, वह फिर आ जाता रहा। कोई कोई कहते हैं कि अब भी कुछ हैं, पर वे मन्दिरों में नहीं रहतीं। कोलम्बो-निवास हमारे एक परम मित्र, जो वहाँ बैरिस्टरी करते हैं और जिन्हें मतमतान्तर की बातों में बड़ी रुचि है और कई पुस्तकें भी लिखी हैं, कहते थे कि वे पुरोहितों के पास पहले बड़ी जायदाद थी, जो आप के भगड़ों और भृष्टाचरणों के कारण नष्ट हो गई।

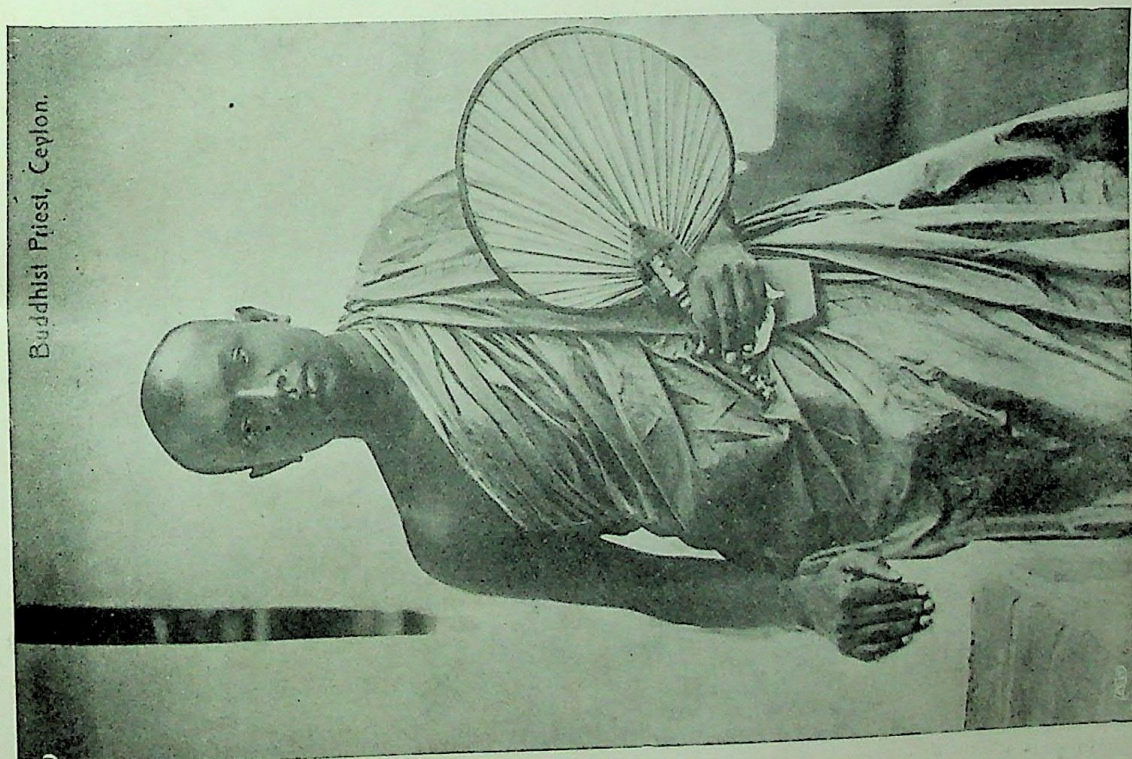
बौद्धों का दूसरा मन्दिर मानलङ्ग कहलाता है। इस मन्दिर के प्रधान पुरोहित श्रीसुमङ्गल देहान्त हाल ही में हुआ है, जिसको सुन कर सर्वत्र बौद्ध कोलम्बो पहुँचे थे। श्रीसुमङ्गल अठारह वर्ष के थे। वे अँगरेजी भी पढ़े थे। पाली भाषा के आप धुरन्धर विद्वान् थे। इनके मन्दिर में पाली भाषा का एक कालेज है, जिसके आप मुख्याचार्य थे। इस कालेज में लङ्का के अतिरिक्त भारत, बर्मा इत्यादि देशों से बौद्ध लोग पढ़ने आते हैं। कालेज की इमारत और सामान पुराने ढङ्ग का है। पाली बोर्डिंगहौस है, जिसमें थोड़े से छात्र रहते हैं। छात्र ब्रह्मचारी हैं। अतएव उनका रहन-सहन साधारण है। कुल छात्र-संख्या २०० है। हमें एक बौद्ध छात्र मिले, जिनसे मन्दिर इत्यादि का सब हाल मालूम





"Veddhas" (Wild men), Ceylon.

लड़का के वेहा नामक जंगली आदमी ।



Buddhist Priest, Ceylon.

एक बौद्ध पुरोहित ।



सह्या

हुआ ।

इत्यादि

तसे भी

हुआ ।

हा हाथ

योग इन

समझते

वहाँ रह

करने को

सके ।

हमें ऐसे

महामहो

की छुट्टी

पढ़ने ग

हैं, पर

लिए के

भाषा में

वे इन

छुट्टी पा

गली के

लाट क

की राय

या । य

पढ़ा

थी । क

प्रकाश

लिख

छे ।

पर

हैं । उ

नाम प

से भी

ल

समझ

हैं । सि

कई वै



हुआ। उन्होंने ने मन्दिर, पुस्तकालय, बोर्डिंगहौस  
इत्यादि दिखाये। श्रीसुमंगल के दर्शन भी हुए।  
उनसे भी मांसाहार इत्यादि विषयों पर वार्तालाप  
हुआ। आप उस समय बहुत कमजोर थे। शिष्यों  
का हाथ पकड़ कर चल फिर सकते थे। बौद्ध  
लोग इनका बहुत सत्कार करते थे। उन्हें महात्मा  
समझते थे। अब उनकी बराबरी का विद्वान् पुरुष  
नहीं रहा। हमें आपने दूसरे दिन फिर बातचीत  
करने को बुलाया था, पर अभाग्यवश हम नहीं जा  
सके। हम अपना अहोभाग्य समझते हैं जो  
हमें ऐसे महात्मा के दर्शन हो गये। बंगाल के  
महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण छः महीने  
की छुट्टी लेकर श्रीसुमंगलजी के पास पाली भाषा  
पढ़ने गये थे। विद्याभूषणजी खुद पाली के विद्वान्  
हैं, पर सरकार ने उन्हें इस भाषा में पढ़ा बनाने के  
लिए कोलम्बो भेजा था। बौद्धों के ग्रन्थ पाली  
भाषा में हैं। जो लोग पाली अच्छी तरह नहीं जानते  
वे इन ग्रन्थों के मर्म को नहीं समझ सकते। अतएव  
बुद्ध पाली सीखने का स्थान कोलम्बो है। कोलम्बो  
पाली के लिए नदिया या काशी है। सतीश बाबू ने  
छोट कर बौद्ध धर्म और उनके आचरणों पर कलकत्ते  
की रायल एशियाटिक सोसायटी में एक व्याख्यान दिया  
था। यह व्याख्यान हमने कोलम्बो के समाचार-पत्रों  
में पढ़ा था। उसमें बौद्ध पुरोहितों की वेहद प्रशंसा  
थी। काशी और गया के पंडे पर अच्छी भाड़ थी।  
प्रकाश न होने से हम उस व्याख्यान का उत्तर  
न लिख सके। हम कह चुके हैं कि बौद्धों में कई  
अच्छे विद्वान् हैं और उनके आचरण भी प्रशंसनीय  
हैं, पर यह भी सच है कि वे सब श्रीसुमंगल नहीं  
हैं। उनमें कितने ही मूर्ख और बौद्ध धर्म के पवित्र  
नाम पर धब्बा लगाने वाले हैं। वे सांसारिक लोगों  
से भी गये बीते हैं।

लङ्का-द्वीप में एक प्राचीन स्थान अनुरुद्धपुर  
समझा जाता है। यह अब एक छोटा सा क़सबा  
है। सिंहली राजाओं की यह राजधानी थी। यहाँ  
कई बौद्ध मन्दिर हैं जो अब नाम मात्र के मन्दिर

हैं। उनमें से कई धरती में धँस गये हैं। पर फिर  
भी बहुत कुछ बाकी हैं। पृथ्वी भर के बौद्ध लोग  
इस स्थान के दर्शनों को जाते हैं। कोलम्बो से यह  
कोई १३० मील की दूरी पर है। इस पर कोई ९०  
राजाओं का राज्य रहा। अब यहाँ पुराने मन्दिरों  
की कोई वस्तु देखने योग्य नहीं है। जो मन्दिर हैं  
वे बड़े विचित्र हैं। उनकी कारीगरी देख चित्त बहुत  
प्रसन्न होता है।

### रावण की लङ्का।

इस विषय पर हमने बहुत खोज की, पर कुछ  
ठीक पता न चला। हमारे मित्र ने, जिनका हवाला  
हम ऊपर दे चुके हैं, कुछ इसका हाल बताया।  
इन्होंने प्राचीन वस्तुओं से असोम प्रेम है। सदैव इसी  
खोज में रहते हैं। इन्होंने कहा कि लङ्का द्वीप का  
नाम नहीं है। लङ्का नगर का नाम है, जहाँ रावण  
रहा करता था। पर अब वहाँ राम, रावण के युद्धों के  
कोई चिह्न नहीं है। लङ्का नगर उजाड़ है। वहाँ की  
कुछ धरती काली है। लोग कहते हैं कि वह यही  
स्थान है जिसे हनुमानजी ने जलाया था। पर यह  
सब अनुमान मात्र है। कोई प्रामाणिक आधार नहीं  
है। बड़े बड़े इतिहासवेत्ताओं ने खोज की, पर कुछ  
हाथ न आया। सहस्रों वर्ष के निशान कहाँ तक  
बाकी रह सकते हैं? पर बहुत से लोगों में राम,  
रावण की कथा अभी तक प्रसिद्ध है। लङ्का में  
विभीषण के नाम का मेला भी लगता है। रामलीला  
का प्रचार यहाँ भी है। हमारे मित्र के कथनानुसार  
लङ्का में सहस्रों वर्ष पूर्व एक महाबली राजा था,  
जिसका उस समय के जंगली लोगों पर पूरा अधि-  
कार था। ये जंगली लोग बड़े लड़ाके और भयानक  
थे। यही शायद रामायण के राक्षस थे। लङ्काद्वीप  
के जंगली हिस्सों में अभी तक ये लोग भयानक  
रूप में दिखाई देते हैं। वे बड़े मज़बूत, काले और  
ऊँचे पूरे होते हैं। तीर कमठा उनके शस्त्र हैं। वे  
प्रायः नंगे रहते हैं। बाहरी लोगों को देख कर वे  
जंगल को भाग जाते हैं। इनकी भाषा सिंहली है।



पर इसमें बहुत से जंगली शब्द मिश्रित हैं। असली सिंहली भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द पाये जाते हैं। हमारे मित्र का कहना है कि सिंहली लोग सिंह-भूमि से आये होंगे। इस पर उन्होंने बड़ा पाण्डित्य दिखाया है। कई निबन्ध और पुस्तकें लिखी हैं। आप अब किरिस्तान हैं। पर आपके पूर्वज हिन्दू थे।

### उपसंहार ।

लङ्कावासी बहुधा काले होते हैं। वे प्रायः सभी बौद्ध हैं। भाषा सिंहली है। उत्तर के निवासी कुछ गोरे होते हैं। वहाँ और भागों की अपेक्षा ठंड रहती है। पोर्चुगीजों का राज्य रहने से बहुत लोग किरिस्तान हो गये थे। खास कोलम्बो के लोग अच्छे शिक्षित हैं। लङ्का में कई कालेज हैं, जो मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखते हैं। पर बहुत से कालेज विलायती विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध रखते हैं। कोलम्बो से दो अँगरेजी दैनिक पत्र निकलते हैं। यहाँ हाईकोर्ट है, लेजिसलेटिव कौंसिल है, और गवर्नर रहता है। लङ्का का कानून हमारे कानून से भिन्न है। सिका, रुपया है; पर अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी के बदले दूसरे सिक्के हैं जो फ्रांस वगैरह से मिलते हैं। अठन्नी पचास सांती के बराबर होता है। स्टैम्प की शकल भी कुछ अलग रहती है। लङ्का मुक्ति-फौज (Salvation Army) का बड़ा अड्डा है। यहाँ का अजायबघर बहुत अच्छा है। इसमें जंगली लोगों के नमूने हैं। उन वस्तुओं के नमूने भी हैं जो इस द्वीप में पाई जाती हैं या पैदा होती हैं। लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी की यहाँ भी शाखा है। इसमें पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। ऐसी लाइब्रेरी हमने भारत में बहुत कम देखी। कोलम्बो के बाहरी महल्ले भी अच्छे हैं। यहाँ बहुधा अँगरेज या वहाँ के धनाढ्य लोग रहते हैं। कोलम्बो में हंगी जगह है। कम से कम पाँच रुपये रोज़ मामूली खर्च है। इतने में होटल और खाने पीने का खर्च चल सकता है। रिकशा तथा दूसरी गाड़ियों का खर्च अलग है। ट्रेन होने से आने जाने का अच्छा सुभीता है, नहीं तो गाड़ी और रिकशावाले मनमाना किराया

लेते। कोलम्बो खर्च में विलायत से भी बढ़कर है। लोग बहुधा चावल खाते हैं। पान खाने के भी बहुत शौक्लोन हैं। स्त्री-पुरुष साग-पात की तरह पान चबाते हैं। यहाँ वेदा जाति की संख्या अधिक है। ये लोग हर तरह की टहल करते हैं। कोई कोई वे मुँछ मुड़ाते और स्त्रियों की भाँति लम्बे बाल रखते हैं। बालों में घोड़े के नाल के आकार की एक कंघी की कंघी लगाते हैं। इस कंघी का खुला भाग सामने माथे पर रहता है जो देखने में विचित्र मालूम होता है। कभी कभी ऐसा जान पड़ता है जैसे सिर पर साँग निकले हों। बालों को ये लोग खूब साफ रखते हैं। कंघी उनकी टिकली या कुमकुम है। इसको वे बुरे दीखते हैं। कंघी इनकी खूबसूरती को बढ़ाती है। धोती बिना काछ की पहनते हैं। एक छोटा साफ़ टुकड़ा कमर से पैरों तक लपेटे होते हैं। आँखों में सुरमा भी लगाते हैं। हम और हमारे कई साथियों ने जब इनमें से कुछ लोगों को जहाज पर देखा तब कुछ समझ में न आया कि ये स्त्री या पुरुष। रात थी, इससे और भी भ्रम होगा। सबेरे जब अच्छी तरह पूछा और देखा तब मालूम हुआ कि ये मर्द हैं; पर जबरदस्ती स्त्री बनने का शौक रखते हैं। रंग इनका काला है। विलायत में सफ़रेजिस्ट मर्द बनना चाहती हैं; यहाँ वे (Vedda) लोग औरत बनना चाहते हैं। अजुन दुनिया है। ईश्वर को इन पर रहम करना चाहिए। इस परिवर्तन से उसकी कुछ हानि न होगी। शायद इस रद्दोबदल पर भी स्त्री-पुरुष की संख्या बराबर ही रहे: या घटे बढ़े भी तो बहुत कम।  
प्यारेलाल मिश्र।

### नर-जन्म की सार्थकता ।

( १ )

विद्या पढ़ो विशेष, कलायें सीखो सारी;  
राजमान्य हो बनो उच्चपद के अधिकारी।  
धन-बल-प्रभुता-युक्त लहो सातो-सुख, भाई!  
व्यर्थ सकल; कर सके न यदि तुम जाति-भलाई।



( २ )

जिस कुल में हो जात जगत में ख्यात हुए हो ;  
जिसमें रह कर भ्रात ! एक से सात हुए हो ।  
उसका उदय-उपाय, हाय ! यदि तुम्हें न भाया ,  
व्यर्थ हुआ नर-जन्म; हुई निष्फल यह काया ॥

( ३ )

बने धनी विद्वान् मान्यवर पृथ्वीस्वामी,  
पाकर प्रतिभापूर्ण बने कवि लेखक नामी ।  
जाति बन्धु धनहीन; अविद्या घर में छाई;  
आया फिर किस काम तुम्हारा वैभव भाई !

( ४ )

निज-पुरुषों ने जहाँ शान्ति से वास किया था;  
कर विद्या, धन प्राप्त सुकर्म-विकास किया था ।  
जिसके शुभोपकार तुम्हारे ऊपर अति हैं;  
क्या न लेश कर्तव्य तुम्हारा उसके प्रति है ?

( ५ )

जिस भू का जल-वायु आयुर्वर्द्धक अविकारी ,  
जिसका शुचि शाकान्न प्राण-तनु-रक्षा-कारी ।  
हो जिसकी यह धूल फूल की सी मृदु शय्या;  
उसके ऋण का ध्यान भूल मत जाना, भैया ॥

( ६ )

हर्षयुक्त दस मास गर्भ में तुमको धारा;  
त्यागा भोजन-शयन, सदा सह कर दुख सारा ।  
सीखो उसके दिव्य-दान का आदर करना—  
मातृभक्त बन सतत दुःख माता का हरना ॥

( ७ )

घर की उन्नति बिना न होती जाति-भलाई ;  
बिना जाति-हित कहाँ देश की उन्नति भाई ।  
देश-समुन्नति बिना शान्ति देता न विधाता ;  
घर की उन्नति करो; वही सब सुख की दाता ॥

( ८ )

देश-बन्धु-उत्कर्ष-हर्ष से जो नहीं फूला ;  
करने में परमार्थ स्वार्थ को जो नहीं भूला ।  
दीन-दुःख को देख न जिसने अश्रु बहाया ;  
वह केवल भू-भार रूप बन जग में आया ॥

( ९ )

हिल मिल जिसने प्रेम-सहित कर्तव्य न साधा ;  
क्षण क्षण में जो कुटिल उपस्थित करता बाधा ।  
पर-निन्दा, छल, कपट, द्वेष में जो है भूला ;  
वह जन वृथा मनुष्य-जन्म के मद में फूला ॥

( १० )

बन्धु-वर्ग को प्यार न करना जिसने सीखा ;  
विनय-युक्त व्यवहार न करना जिसने सीखा ।  
जाति-देश-उपकार न करना जिसने सीखा ;  
जन्म हुआ निःसार—न मरना उसने सीखा ॥

( ११ )

क्रोध, विरोध विसार एकता-तन्तु बढ़ा कर ;  
गिरे हुए निज बन्धु-वर्ग को उच्च चढ़ा कर ;  
हिंसा तज, जो धर्म-सहित नित चल सकता है ;  
उसके ही जग बीच जन्म की सार्थकता है ।

लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

## पानी के भीतर चलनेवाले धूमपोत ।



इ के लिए पश्चिमी देशों की तैयारियों का वर्णन पढ़ते समय "सब् मरीन" नाम के धूमपोतों का जगह जगह पर उल्लेख मिलता है । ये धूमपोत पानी के ऊपर ही नहीं, भीतर भी चलते हैं । यों तो और धूमपोतों की तरह ये सदा समुद्र के ऊपर ही रहते हैं; परन्तु, आवश्यकता होने पर, पानी के भीतर इन्हें डुबो कर, बिना किसी की नज़र पड़े, नीचे ही नीचे, जहाँ इच्छा होती है ले जाते हैं ।

बीच में ये मोटे होते हैं । बीच की मुटाई दोनों तरफ़ को धीरे धीरे कम होती जाती है । अन्त को दोनों छोरों पर बहुत ही कम हो जाती है । ये सौ डेढ़ सौ फ़ीट लंबे होते हैं । वज़न इनका तीन हजार से लेकर पाँच हजार मन तक होता है । इनके ऊपर सब तरफ़ लोहे की मोटी चादर जड़ी रहती है । ये



पोत सब तरफ से बन्द रहते हैं। केवल बीच में एक द्वार रहता है; उसी से आदमी भीतर बाहर जाते आते हैं। जब इन पोतों को पानी के भीतर डुबकी लगाने की जरूरत पड़ती है तब यह दरवाजा भी बन्द कर दिया जाता है। वह इतना पक्का बैठ जाता है कि पानी का एक बूँद भी भीतर नहीं जा सकता।

पानी के भीतर ले जाने के पहले इन धूमपोतों का वजन अधिक करने की जरूरत पड़ती है। बिना उनका भारीपन अधिक हुए वे पानी के भीतर नहीं ठहर सकते। इस कारण इनके भीतर एक खास जगह में कुछ छेद रखे जाते हैं। वे बन्द रहते हैं। जरूरत पड़ते ही वे सब खोल दिये जाते हैं। उनकी राह से समुद्र का पानी भीतर आ जाता है और जहाज का वजन बढ़ जाता है। यह पानी लोहे के बड़े बड़े पीपों में भरता है, जो इसी काम के लिए रहते हैं। इसके सिवा और भी कुछ ऐसा प्रबन्ध रहता है जिससे ये पोत नीचे को और भी अधिक गहरे पानी में पहुँचाये जा सकते हैं; अथवा आवश्यकता होने पर ऊपर उठाये जा सकते हैं।

जैसे एंजिन मोटर गाड़ियों में लगते हैं वैसे ही इनमें भी लगते हैं। इनमें भी पेट्रोलियम तेल जलाया जाता है। उसी से वे चलते हैं। पानी काटने के लिए मामूली अग्निबोटों में जैसे पंखे रहते हैं वैसे ही इनमें भी पीछे की ओर रहते हैं।

पाठकों को यह सन्देह हो सकता है कि यदि ये पोत सब तरफ से बन्द रहते हैं तो पानी के भीतर आदमी, बिना हवा के, जी कैसे सकता है ? परन्तु अर्वाचीन विज्ञान ने इस तरह की विघ्न-बाधाओं को दूर कर दिया है। प्रत्येक धूमपोत में कोई बारह आदमी रहते हैं। उनके श्वासोच्छ्वास के लिए निर्मल वायु दरकार होती है। ऐसी वायु बड़े बड़े पात्रों में खूब दबाकर भरी जाती है। वे पात्र पोत के भीतर एक स्थान-विशेष में रखे रहते हैं। उन्हीं से थोड़ी थोड़ी वायु बाहर निकला करती है। वही श्वासोच्छ्वास के काम आती है। जो वायु श्वास से

खराब हो जाता है उसे पम्पों में भर कर जहाज समुद्र के पानी में निकाल देते हैं। यह व्यवस्था बड़ी चतुरता और खूब समझ वृत्ति की जाती है। तथापि ऐसी बन्द जगह में रहने की आदत डालने के लिए खलासियों को बहुत दिन तक रहना पड़ता है।

पानी के भीतर चलने वाले इन धूमपोतों का मुख्य काम यह होता है कि लड़ाई के समय लड़के लड़ाकू जहाजों पर टारपीडो नामक एक भयानक नौका की टकर मार कर ये उन्हें उड़ा देते हैं। अच्छा, तो, ये धूमपोत लड़ाई के समय पानी भीतर चलते हैं और लड़ाकू जहाज पानी के ऊपर फिर इनको यह कैसे मालूम हो जाता है कि जहाज कहाँ पर है। इसके लिए एक बड़ी विलक्षण युक्ति निकाली गई है। वह युक्ति ओस्कोप नामक एक यंत्र का आविष्कार है। धूमपोत की पीठ पर एक लंबी नली रहती है। वह नली लगी रहती है। उसके ऊपर एक काँच रहता है पानी के भीतर धूमपोत के चले जाने पर भी नली का अग्रभाग पानी के ऊपर निकला रहता है। आस पास के पदार्थ-समुदाय के ऊपर से इस नली के अग्रभाग वाले काँच के अग्रभाग के ऊपर प्रतिफलित होकर नली की राह से पोत के भीतर चले जाते हैं। वहाँ कागज का एक तहता रहता है। उस पर समुद्र-तल के आस-पास का प्रतिबिम्ब पड़ता है। उससे यह साफ मालूम हो जाता है कि जिस जहाज पर टारपीडो मारा है वह कहाँ पर है। यह पेरिओस्कोप नामक धूमपोत की आँख है। टारपीडो मारने का काम दबाकर रखी गई हवा से किया जाता है। पीछे छोड़ने के बाद, अथवा आवश्यकता होने पर यों भी, धूमपोत को पानी के ऊपर लाने के लिए भीतर भरे हुए पानी के पीपों को बाहर निकाल दिया जाता है। यह काम भी दबाकर रखी हवा की सहायता से होता है।



लड़ाकू जहाज पानी के ऊपर रहता है, सब मरीन धूमपोत पानी के भीतर । इस दशा में टारपीड़े को सतह छोड़ना कि वह ठीक निशाने पर लगे बड़ा दिन काम है । बहुत सोच समझ कर और हिसाब लगा कर भीतर से टारपीड़े की वार की जाती है । रिस्क्रेकोप से जहाज का स्थान तो जरूर मालूम होता है, परन्तु ठीक उसी जगह पर टारपीड़े मारने से वह जहाज पर नहीं लगती । जहाज समुद्र के ऊपर रहता है और चलता जाता है । उसका वेग समुद्रान्तर्गमिनी सब मरीन के वेग की अपेक्षा कहीं अधिक होता है । अतएव जहाज और सब मरीन के वेग, तथा टारपीड़े के वेग का भी हिसाब लगा कर जहाज के कुछ दूर आगे लक्ष्य बाँध कर निशाना लगाया जाता है । हिसाब ठीक होने से टारपीड़े की गोली जहाज पर लगती है । ठोकर लगते ही टारपीड़े को स्फोट होता है और जहाज के टुकड़े टुकड़े होकर डूब जाता है । निशाना चूकने से टारपीड़े का नुक़ार व्यर्थ जाता है ।

इस सबमरीन धूमपोत का अन्तर्भाग मनुष्य की श्रम-शक्ति का बड़ा ही उत्कृष्ट उदाहरण है । पर इस बात का है कि यह शक्ति युद्ध में मनुष्यों का नुक़ार करने के काम में लाई जाती है । इस पोत के भीतर वायु-परीक्षक यंत्र रहते हैं । पानी के भीतर तब तक के जाने पर यन्त्रों की सहायता से वायु की प्राप्ति की जाती है कि वह श्वासोच्छ्वास के लिए शुद्ध है या नहीं । तिस पर भी अनेक दुर्घटनायें होती हैं । ऐसे पोत यदि कदाचित् समुद्र के ठेठ प्रदेश तक पहुँच जाते हैं तो फिर उनको ऊपर लाना कठिन हो जाता है । वे जहाँ के तहाँ ही पड़े जाते हैं और तद्रत मनुष्यों के प्राण गये बिना नहीं रहते । उनको ऊपर निकालने के लिए एक विशेष प्रकार की अलग ही नौकायें बनाई गई हैं । यद्यपि उनकी सहायता से भी मनुष्यों के प्राण बहुत कम बचते हैं । ऐसा प्रसङ्ग पड़ने पर इन सबमरीन धूमपोतों के भीतर के मनुष्यों की प्राणरक्षा के लिए एक विलक्षण शिरस्त्राण तैयार किया गया है । इसमें

श्वास से अशुद्ध हुई हवा आपही आप शुद्ध होकर फिर श्वासोपयोगिनी हो जाती है । यदि किसी दुर्घटना के कारण यह धूमपोत समुद्र की तह पर बैठ जाता है तो इसके भीतर के खलासी इस शिरस्त्राण को सिर पर बाँधते हैं । उस पर “लाइफ-बेल्ट” नाम का एक पट्टा लगा रहता है । वह कभी डूबता नहीं, सदा पानी पर तैरा ही करता है । शिरस्त्राण को सिर पर रख कर खलासी इस पट्टे को बाँधते हैं । फिर वे सबमरीन का दरवाज़ा खोल देते हैं । ऐसा करने से वे आपही आप ऊपर को उठते हैं और पानी की सतह पर आ जाते हैं ।

आज तक इन सबमरीन पोतों पर ऐसे तारयंत्र न थे जिनके द्वारा समुद्र तट पर रहने वाले अधिकारियों, अथवा अपनी गवर्नमेंट के अन्यान्य जहाजों के अफ़सरों, से बातचीत की जा सके । परन्तु, अब यह बाधा भी दूर हो गई है । अब बिना तार की तार-वर्क़ी के यंत्र ऐसे पोतों पर भी रखे जाने लगे हैं । सबमरीन की पीठ पर दो दो तीन तीन लकड़ियों को एकत्र करके दो तीन जगह उन्हें बाँध कर खड़ा कर देते हैं । उन्हीं के ऊपर तार खींच कर लगा देते हैं । तारयंत्र पोत के भीतर रखते हैं । इस प्रबन्ध से सबमरीन समुद्र के तल तक जाकर डूब ही क्यों न गई हो, उसके अधिकारी किनारे के अधिकारियों अथवा अन्य धूमपोतों से बातचीत कर सकते हैं ।

भिन्न भिन्न राष्ट्रों के समुद्रान्तर्गामी पोत भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं । उनकी रचना गुप्त रखी जाती है । तथापि यहाँ पर उनका जो वर्णन दिया गया है उससे उनकी रचना आदि का बहुत नहीं, तो थोड़ा सा ही अन्दाज़ा अवश्य किया जा सकेगा ।

कुछ समय से इस बात का विचार हो रहा है कि ऐसे धूमपोतों का उपयोग समुद्र के तल-देश की परीक्षा के लिए करना चाहिए । यदि ऐसा हो तो बहुत लाभ होने की सम्भावना है—

“बालबोध ।”



## हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ।

( १ )

होते हैं सम्मिलित कहीं जब भाई भाई ,  
होता है वह समय, कहे, कितना सुखदायी ?  
अहो भाग्य ! वह समय आज हमने पाया है ;  
यह शुभ दिन फिर एक वर्ष पीछे आया है ।

क्या कुछ कुछ भिन्नाचार से आतृ-भाव मिटता कभी ।  
हम जब कि एकदेशीय हैं भाई भाई हैं सभी ॥

( २ )

नहीं एक देशीय एक भाषा-भाषी भी ,  
एक हृदय से एक विषय के अभिलाषी भी ;  
दूर दूर से आज यहाँ एकत्र हुए हम ;  
हो सकता बन्धुत्व और क्या इससे उत्तम ?  
हाँ एक-व्यक्ति-गत ही नहीं काम एक भी आज का ;  
हित अवलम्बित है एक सा यहाँ समस्त समाज का ॥

( ३ )

कैसे कैसे भाव आज उठ रहे यहाँ है ?  
क्या ही प्रेमालाप हो रहे जहाँ तहाँ हैं ।  
“एक वर्ष हो गया, रहे कैसे क्या करते ?”  
इसी तरह के प्रश्न यहाँ सब ओर विचरते ।

है थोड़ा जो कुछ आज हम नवोत्साह मन में धरे ,  
निज लाभालाभ विचार कर भावी का निश्चय करें ॥

( ४ )

ज्ञानालोक विशेष बड़ेगा जिसके द्वारा ,  
उन्नति के सिर देश चढ़ेगा जिसके द्वारा ,  
वन कर विज्ञ, असंख्य अशिक्षित बन्धु हमारे ,  
जिसके द्वारा प्राप्त करेंगे सद्गुण सारे ।

उस हिन्दी की हित-कामना हम को लाई है यहाँ ;  
इस सम्मेलन की सिद्धि पर विपुल बधाई है यहाँ ॥

( ५ )

हिन्दी क्या है ? सुनो मातृ-भाषा है अपनी ,  
उन्नति की अत्यन्त अटल आशा है अपनी ।  
यदि माता जग बीच जन्मदात्री है अपनी ,  
हो हिन्दी वात्सल्यमयी धात्री है अपनी ।

बस इसके द्वारा ही प्रकट होता मनोविचार है ;  
फम नहीं मातृ-ऋण से कभी इसके ऋण का भार है ;  
( ६ )

अब बहु-भाषाभिज्ञ भले ही हम कहलावें ;  
पर वह शैशव-समय कभी हम भूल न जायें  
जब अम्बा-पद-निकट पहुँच घुटनों से चल के ,  
कहते थे—“माँ, दूध”—तोतले वचन सच हैं  
तब “मिल्क” शब्द आकर हमें दूध दिलाता था  
होती न मातृ-भाषा कहीं हम भूखों मरते वहाँ ॥

( ७ )

हिन्दी को केवल न मातृभाषा ही मानो ,  
व्यापकता में उसे देश-भाषा भी जानो ।  
होगी मन की बात परस्पर ज्ञात न जौलों ,  
होकर भी हम एक भिन्न ही से हैं तौलों ।

बस हिन्दी ही यह भिन्नता दिन दिन करती दूर है  
निःशेष शक्तिमय ऐक्य को भरती यह भरपूर है ।

( ८ )

जिस हिन्दी की प्रकट हो रही गुरुता ऐसी ,  
सोचो तो साहित्य-दशा उसकी है कैसी ?  
बड़ा दुःख है हाय ! उधर सन्तोष नहीं है  
पर क्या इसके लिए हमीं पर दोष नहीं है

बहु पुत्रों के होते हुए माता की सेवा न हो ;  
तो होगा उसका दोष क्या माता के ऊपर अहो !

( ९ )

जो हिन्दी-साहित्य समुन्नत कर सकते हैं ;  
निज भाषा-भाण्डार भली विधि भर सकते हैं  
अब तक उनका इधर यथोचित ध्यान नहीं है ;  
अन्य जनों में शक्ति और वह ज्ञान नहीं है ।

हैं हममें कितने योग्य जन उनको गिनिए तो सही  
जो रोना पहले था हमें प्रायः अब भी है वही !

( १० )

सच कहते भी हाय ! दुःख होता है दूना ;  
हिन्दी का साहित्य-सदन अब भी है सूना ।  
वन कर भी दस बीस ग्रन्थ-वाटिका-मालिनी ,  
कहला सकती कौन जाति साहित्य-शालिनी ।



जिस हिन्दी को अब राष्ट्र की भाषा मान रहे सभी,  
क्या उसका स्वल्पोत्थान भी सन्तोषप्रद है कभी ?

( ११ )

हैं प्रान्तिक बोलियाँ मराठी, बँगला, फिर भी,  
हिन्दी उनके निकट उठा सकती क्या सिर भी ?  
जो उर्दू बदनाम आशिकाना नालों से  
रखती है साहित्य-गर्व हिन्दीवालों से !

जो सबसे उन्नत चाहिए है सब से अवन्त वही ;  
क्या अब हम में पुरुषत्व की शेष न कुछ मात्रा रही ?

( १२ )

हिन्दी के जो लोग सुलेखक कहलाते हैं ;  
प्रायः वे सब भिन्न भिन्न मत फैलाते हैं ;  
मत-विभिन्नता बुरी नहीं, वह खोज कराती  
पर हममें वह पक्षपात के पीछे आती ।

यदि रखता एक विभक्त है प्रत्यय और विभक्ति को ;  
तो उन्हें मिला कर दूसरा दिखलाता निज शक्ति को ॥

( १३ )

व्यर्थ-वाद के लिए कौन है अपना सानी ?  
कहदे कोई एक बात फिर हमने जानी ;  
एक और से सभी पत्र काले कर डालें ।  
खींच खींच कर हाल बाल की खाल निकालें ।

हम दौड़ पड़ें दल बाँध कर वाग्वाणों की वृष्टि हो ;  
सौजन्यनाश को प्राप्त हो कटूक्तियों की सृष्टि हो ॥

( १४ )

नये नये बहु पत्र यद्यपि हैं नित्य निकलते ;  
पर उनमें से अधिक चार ही दिन हैं चलते ।  
इसका कारण नहीं पाठकों का अभावही ;  
वे समाज पर डाल नहीं सकते प्रभावही ।

कुछ इधर उधर से नकल कर काम चलाना और है ;  
पर भावों पर अधिकार कर आदर पाना और है ॥

( १५ )

इने गिने ही पत्र हमारे ऐसे होंगे;  
औरों के सम्मान्य सैकड़ों जैसे होंगे ।  
सच तो यह है कि जो सुमन जैसे सुरभित हैं,  
बस वैसे ही मधुप विमोहित उनके हित हैं ।

सो पत्रों से भी हो सका समुचित लाभ नहीं अभी;  
पर हाँ, विज्ञापन-वीर वे बन बैठे प्रायः सभी ॥

( १६ )

ग्रन्थकार अधिकांश हमारे अनुवादक हैं;  
बहुतों के निज भाव मद्य से भी मादक हैं ।  
उपन्यास जो यहाँ प्रकाशित होते इतने  
हैं उनमें से कहे, सुरुचि-सम्पादक कितने ?

मुझको जो चाहें दण्ड दें किसी पात्र के व्याज से;  
पर उपन्यास-कर्ता न यों वे सुध रहें समाज से ॥

( १७ )

कविता का भी यही हाल हो रहा यहाँ है;  
तुकबन्दी ही निरी दीखती जहाँ तहाँ है ।  
प्रतिभाशील मनुष्य इधर कुछ दया दिखाते;  
तो मुझ से मतिमन्द मनुज क्यों कवि कहलाते ?

कर्तव्य-कर्म में योग्य जन उदासीन रहते जहाँ,  
है प्रायः ऐसी ही दशा दिखलाई पड़ती वहाँ ॥

( १८ )

सच्चे और सु-योग्य समालोचक भी कम हैं;  
पक्षपात है जहाँ वहाँ क्या न्याय-नियम हैं ?  
जरा देखिए, समालोचना की विचित्रता  
यही निभाती यहाँ शत्रुता और मित्रता !

जिन बातों को निज लेख में हैं वे भूषण जानते;  
उनको औरों के लेख में वे ही दूषण मानते !!!

( १९ )

कहीं काम का समय कलह अपना खोता है;  
कहीं वही प्राचीन पिष्टपेषण होता है ।  
कहीं अर्थ के चोर महाजन बने अकड़ते;  
कहीं सुवर्ण-समूह देख कर डाके पड़ते ।

हम, जिनके ऐसे काम हैं, बीड़ा लिये सुधार का !  
क्या हमें प्रचार अभीष्ट है ऐसे ही आचार का ?

( २० )

कर के बस प्रस्ताव चैन से हम सोते हैं;  
पर विचार से काम कहीं पूरे होते हैं ?  
हम लोगों ने एक अनोखा स्वाँग रचा है;  
हिन्दी में इन दिनों अजब अन्धेर मचा है ।



पर अब भी मिल कर हम सभी काम करें जो प्रेम से,  
तो हिन्दी निज पद शीघ्र ही पावे कुशल-क्षेम से ।

( २१ )

हिन्दी का साहित्य न पूरा होगा जौलों;  
पूर्णोन्नति का द्वार खुलेगा कभी न तौलों  
अभी हमारे लिए बहुत से विषय नये हैं;  
हिन्दी में सद्ग्रन्थ न जिन पर लिखे गये हैं ।

है समय आज विज्ञान का होती खोज नई नई;  
पर हिन्दी में इस विषय की कितनी चर्चा की गई ?

( २२ )

किसी जाति की ठीक दशा साहित्य बताता;  
चित्रित उसका चरित उसी में होता जाता ।  
यदपि नहीं हैं आज हमारे पूर्वज प्यारे;  
पर संस्कृत-साहित्य भाव है उनका धारे ।

वह नष्ट हुआ बहु वार, पर है अब भी अतुलित बना ।  
सोचो तो प्यारे भाइयो ! उसका वह उन्नतपना ॥

( २३ )

ऐसा भी शुभ समय कभी हम देख सकेंगे  
जब हिन्दी-साहित्य समुन्नत लेख सकेंगे ।  
आओ ! इसके लिए करें हम यत्न हृदय से  
डरें न हरगिज़ कभी कोटि विघ्नों के भय से ।

रुक सकता आवश्यक गमन कांटों के डर से कहीं ?  
करना चाहें तो विश्व में हम क्या कर सकते नहीं ?

( २४ )

इस प्रबन्ध में स्वयं मुझे कटुता का भय है;  
क्षमा कीजिए उसे अन्त में यही विनय है ।  
गुण न देख कर मनुज प्रथम निज दोष विचारे,  
दोष-निर्दर्शन किन्तु क्यों न कुछ कटुता धारे ?

जो हो अब हम सब सजग हो हिन्दी-हित साधन करें;  
विश्वेश्वर बल देकर हमें सकल विघ्न-बाधा हरे ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

## पाताल-प्रविष्ट पाम्पियाई नगर ।



सी समय विसूवियस पहाड़ के पास  
इटली में एक नगर पाम्पियाई था ।  
रोम के बड़े बड़े आदमी इस रमणीय  
नगर में अपने जीवन का शेष  
व्यतीत करते थे । हर एक मकान चित्रकारियों से  
विभूषित था । दुकानें इन्द्रधनुष के समान तरह  
के रंगों से रंगी हुई नगर की शोभा को और  
भी बढ़ा रही थीं । हर सड़क के छोर पर छोटे  
छोटे तालाब थे, जिनके किनारे भगवान् मरीचि  
माली के उत्ताप को निवारण करने के लिए यदि  
कोई पथिक थोड़ी देर के लिए बैठ जाता था तो  
उसके आनन्द का पार न रहता था । जब लोग  
रंगबरंगे कपड़े पहने हुए किसी स्थान पर जमा होते थे  
तब बड़ी चहल पहल दिखाई देती थी । कोई कोई  
संगमरमर की चौकियों पर, जिनपर धूप से बचने के  
लिए पर्दे टंगे हुए थे, बैठे दिखाई पड़ते थे । उनके  
सामने सुसज्जित मेजों पर नाना प्रकार के स्वादिष्ट  
भोजन रक्खे जाया करते थे । गुलदस्तों से मेजें  
सजी रहती थीं । यह कहना अत्युक्ति न होगी  
कि वहाँ का छोटे से छोटा भी मकान सुसज्जित  
महलों का मान-भंग करनेवाला था । वहाँ का  
झोंपड़ा भी महल नहीं, स्वर्ग था ।

यहाँ पर हम केवल एकही मकान का थोड़ा सा  
हाल लिख कर पाठकों को बताना चाहते हैं कि  
पाम्पियाई उस समय उन्नति के कितने ऊँचे शिखर  
पर आरोढ़ था । पाम्पियाई में घुसते ही एक मकान  
दृष्टिगोचर होता था । उसकी बाहरी दालान रमणीय  
खम्भों की पंक्ति पर सधी हुई थी । दालान के  
भीतर घुसने पर एक बड़ा लम्बा चौड़ा कमरा  
मिलता था । वह एक प्रकार का कोशगृह था  
जहाँ लोग अपना अपना बहुमूल्य सामान जमा  
करते थे । वह सामान लोहे और ताँबे के संदूकों में  
रक्खा रहता था । सिपाही चारों तरफ पहरा दिला  
करते थे । रोमन-देवताओं की पूजा भी इसी



हुआ करती थी। इस कमरे के बराबर एक और कमरा था। उसमें मेहमान ठहराये जाते थे। उसी में कचहरी थी। इससे भी बढ़ कर एक गोल कमरा था। उसके फर्श में संगमरमर और संगमूसा का पच्चीकारी का काम था। दीवारों पर उत्तमोत्तम चित्र अङ्कित थे। इस कमरे में पुराने इतिहास और राज्यसम्बन्धी कागजात रहते थे। यह कमरा बीच से लकड़ी के पर्दों से दो भागों में बँटा हुआ था। दूसरे भाग में मेहमान लोग भोजन करते थे। इसके बाद देखनेवाला यदि दक्षिण की तरफ़ फिरता तो एक और बहुत बड़ा सजा हुआ कमरा मिलता था। उसमें सोने का प्रबन्ध था। कोचें बिछी हुई थीं। उन पर तीन तीन फ़ीट ऊँचे रेशमी गद्दे पड़े रहते थे। इसी कमरे में दीवार के किनारे किनारे अलमारियाँ रक्खी थीं। उनमें बहुमूल्य रत्न और अन्यान्य आश्चर्यजनक प्राचीनकाल की चीज़ें रक्खी रहती थीं। इस मकान के चारों तरफ़ एक बड़ा ही मनोहारी बागीचा था। जगह जगह पर फौवारे अपने सलिल-सीकर बरसाते थे। उनकी बूँदें बिलौर के समान चमकती हुई भूमि पर गिर कर बड़ाही मधुर शब्द पैदा करती थीं। फौवारे के किनारे किनारे माधवीलतायें कलियों से परिपूर्ण शरदऋतु की चांदनी का आनन्द देती थीं। फौवारों के कारण दूर दूर तक की वायु शीतल हो जाती थी। जहाँ तहाँ सघन वृक्षों की कुंजे थीं, जिनमें संगमरमर की मूर्तें बनी हुई थीं।

आगे चल कर गर्मियों में रहने के लिए एक मकान था, जिसे हम “मदनविलास” कह सकते हैं। पाठक, कृपा करके इसके भी दर्शन कर लीजिए। इसकी भी सजावट अपूर्व थी। इसमें जो मेज़ें थीं वे देवदार की सुगन्धित लकड़ी की थीं। उन पर चाँदी-सोने के तारों से तारकशी का काम था। सोने-चाँदी की रत्नजटित कुर्सियाँ भी थीं। उन पर रेशमी झालरदार गद्दियाँ पड़ी हुई थीं। कभी कभी मेहमान लोग इसमें भी भोजन करते थे। भोजनोपरान्त वे चाँदी के बरतनों में हाथ धोते थे। उसके

बाद बहुमूल्य शराब, सोने के प्यालों में, उड़ता था। पानोत्तर माली प्रसूनस्तवक मेहमानों को देता था और सुमनवर्षा होती थी। अन्त में नृत्य आरम्भ होता था। इसी गानवादन के मध्य में इत्र-पान होता था और गुलाबजल की वृष्टि होती थी। ये सब बातें अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक़ सभी के यहाँ होती थीं। त्योहार पर तो सभी ऐसा करते थे।

एक दिन कोई त्योहार मनाया जा रहा था। वृद्ध, युवा, बालक, स्त्रियाँ सभी आमोद-प्रमोद में मग्न थे। इतने में अकस्मात् विसूवियस से धुआँ निकलता दिखाई दिया। शनैः शनैः धुआँ का गुबार बढ़ता गया। यहाँ तक कि तीन घंटे दिन रहे ही चारों ओर अन्धकार छा गया। सावन भादों की काली रात सी होगई। हाथ को हाथ न सूझ पड़ने लगा। लोग हाहाकार मचाने और त्राहि त्राहि करने लगे। जान पड़ा कि प्रलय आ गया। जहाँ पहले धुआँ निकलना शुरू हुआ था वहाँ से अब चिनगारियाँ निकलने लगीं। लोग भागने लगे। परन्तु भाग कर जाते भी तो कहाँ? ऐसे समय में भाग निकलना नितान्त असम्भव था। अँधेरा ऐसा घनघोर था कि बहन भाई से, स्त्री पति से, माँ बच्चों से बिछुड़ गई। वायु बड़े वेग से चलने लगी। भूकम्प हुआ। मकान धड़ाधड़ गिरने लगे। समुद्र से चालीस चालीस गज़ ऊँची लहरे आने लगीं। वायु भी गर्म मालूम होने लगी और धुआँ इतना भर गया कि लोगों का दम घुटने लगा। इस महा घोर सङ्कट से बचाने के लिए लोग ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। पर सब व्यर्थ हुआ। कुछ देर में पत्थरों की वर्षा होने लगी, और, जैसे भादों में गंगाजी उमड़ चलती हैं वैसेही गर्म पानी की तरह पिघली हुई चीज़ें ज्वालामुखी से बह निकलीं। उन्होंने पाम्पियाई का सर्वनाश आरम्भ कर दिया। मेहमान भोजनगृह में, स्त्री पति के साथ, सिपाही अपने पहर पर, कैदी कैदखाने में, बच्चे पालने में, दुकानदार तराजू हाथ में लिये रह गये। जो मनुष्य जिस दशा में था वह



उसी में रह गया । मुद्दत बाद शान्ति होने पर अन्य नगरवासियों ने वहाँ आकर जो देखा तो सिवा राख के ढेर के और कुछ न पाया । वह राख का ढेर खाली ढेर न था, उसके नीचे हजारों मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा पूरी करके सदैव के लिए सोये हुए थे । हाय ! किस किस के लिए कोई अश्रुपात करे ? यह दुर्घटना २३ अगस्त ७९ ईसवी की है । १६४५ वर्ष बाद जो यह जगह खोदी गई तो जो जो वस्तु जहाँ थी वहीं मिली ।

यह प्रायः सारा शहर का शहर पृथ्वी के पेट से निकाला गया है । अब भी कभी कभी इसमें यत्र तत्र खुदाई होती है और अजूबा अजूबा चीजें निकलती हैं । पाम्पियाई मानों दो हजार वर्ष के पुराने इतिहास का चित्र हो रहा है । दूर दूर से दर्शक उसे देखने जाते हैं ।

“भ्रमर”

## कीर्ति और शान्ति ।

( १ )

महिष एक महा मतिमान थे; सुकृत-सागर ज्ञान-निधान थे ।  
विभववान, बड़े बलवान थे; विदित भूप विदेह-समान थे ॥

( २ )

युगल मंजुल-मूर्ति मनोरमा प्रियतमा उनकी अति उत्तमा ।  
सुखित थीं करती उनको सदा; निज गुणों पर मोहित सर्वदा ॥

( ३ )

स्वगुण-वाचन में जिसको सदा सुरुचि थी रहती वह एकदा ।  
निज प्रकर्ष-कथा पटुता-पगी निज स्वसा प्रति यों कहने लगी ॥

( ४ )

“नृपति ने कहिए किसके लिए विविध यत्न तथा श्रम हैं किये ?  
स्मरण वे किसका रखके हिये भजन में किसके चित हैं दिये ?

( ५ )

“निज मनोरथ अध्यवसाय से सतत सिद्ध किये सब न्याय से ।  
निधन से, धन के व्यय से कभी भय उन्हें न हुआ अणुमात्र भी ॥

( ६ )

“यह सभी जग के जन जानते, गुण अतः उनके सुखानते ।  
नरपतीश उन्हें सब मानते; महि-पुरन्दर भी अनुमानते ॥

( ७ )

“पर कहो किसकी शुभ प्राप्ति को किस वियोगज दुःख समाप्तिको ।  
नृपति नित्य नृपोचित भाव से कृति-प्रवृत्त रहे इस चाव से ?

( ८ )

“मुझ बिना कहिए किस काम के नृपति थे नृप केवल नाम के ?  
फिर न क्यों मुझको वह चाहते ? हृदय से फिर क्यों न सराहते ?

( ९ )

वचन ये सुन के तब दूसरी नृपति की सुभगा हृदयेश्वरी ।  
कथन जो उसको कथनीय था वह लगी कहने सच था यया ।

( १० )

“भगिनि ! सत्य कहा सब जो कहा, नृपति मुग्धकरी तुम हो महा ।  
न इस हेतु मुझे कुछ डाह है, वरन हार्दिक हर्ष अथाह है ॥

( ११ )

“पर स्वसे ! यह भी स्मरणीय है—(सब यथार्थ कथा श्रवणीय है)  
नृपति जो गुण-दूषण जानते न मुझको तुमसे कम मानते ॥

( १२ )

जब उन्हें हृदयार्ति-समग्रता विकलता मन की भ्रमव्यग्रता ।  
व्यथित है करती उस काल में वह जिसे भरते भुज-जाल में ॥

( १३ )

“प्रिय वही नृप को, सच जानिए, तज सभी सकते उसके लिए ।  
नित वही बसती उनके हिये, चित वही उनका वश है किये ॥

( १४ )

“विलग जो वह भूपति से रहे; निज रहस्य न जो उनसे कहे ।  
न उनका मन और कहीं लगे; सुखद शान्ति सभी उनसे भोगे ॥

( १५ )

यह विवाद उपस्थित था जहाँ नृपति भी सहसा पटुँचे वहाँ ।  
सुन कथा सचिनोद हुए महा-प्रकट यों हँसते हँसते कहा—

( १६ )

“उभय ही हमको प्रिय हैं सदा; उभय ही मम जीवन सम्पदा ।  
अधिक किन्तु हमें प्रिय है वही सुखद हो जिससे परलोक भी ॥”



( १७ )

राजा का सुन के विचार मन में जो भँपसी थी गई थी रानी वह 'कीर्त्ति' विश्वविदिता शत्रांशु-ज्योत्स्नामयी । जो संतुष्ट हुई विचार सुन के साध्वी सुशीला सदा सो थी 'शान्ति' महीपराज-महिषी निश्शेष सौख्यप्रदा ॥

सत्कविदास ।

## हैदराबाद के परलोकवासी निज़ाम ।

सन् १८८३ ई० में जब सर सालारजंग का स्वर्गवास हुआ तब राज्यप्रबन्ध के लिए एक कौंसिल बनाया गया । लार्ड रिपन के ज़माने में निज़ाम साहब को १८८४ में राज्याधिकार मिला । उस समय गवर्न-मेंट की सलाह से निज़ाम साहब ने सर सालार-जंग के पुत्र मीर लियाक़त अली को अपना दीवान नियत किया । जिस समय वे गद्दी पर बैठे उस समय निज़ाम-राज्य अँगरेज़ी गवर्नमेंट का ऋणी था ; पर इन्होंने धीरे धीरे सब ऋज्जु अदा कर दिया । राज्यारोहण के समय आपने जो विवक्षितपत्र प्रसिद्ध किया था उसका कुछ अंश इस प्रकार है :—

“जब मैं देखूँगा कि मेरी प्रजा शान्तिपूर्वक रह कर सब प्रकार से सुखी और संतुष्ट है और अपनी भौतिक उन्नति का प्रयत्न करते हुए बड़ी उत्कण्ठा से ज्ञानार्जन कर रही है तब मुझे जैसा आनन्द और समाधान होगा वैसा मुझे और किसी बात से नहीं हो सकता ।”

इस एक ही वाक्य से स्पष्ट जान पड़ता है कि राज्यारोहण के समय ही स्वर्गवासी निज़ाम साहब ने अपने जीवन का उद्देश्य “प्रजा-वत्सलता” रक्खा था ।

## कुलवृत्तान्त और जन्म ।

मुसल्मानी रियासतों में निज़ाम का घराना बहुत प्राचीन और प्रतिष्ठित है । औरंगज़ेब बादशाह के सेनापतियों में गाज़िउद्दीन नामक एक प्रसिद्ध योद्धा था । उसका लड़का, निज़ामुलमुल्क, निज़ाम के घराने का मूल पुरुष है । फ़रुख़सियर ने “निज़ामुलमुल्क” का खिताब देकर, सन् १७१३ में, उसे दक्षिण का सूबेदार नियत किया था ।

परलोकवासी निज़ाम का जन्म १८ अगस्त सन् १८६६ ई० को हुआ था । इनकी तीन ही वर्ष की अवस्था में इनके पिता निज़ाम अफ़ज़लुद्दौला का देहान्त हो गया । उनके बाद हैदराबाद राज्य के अधिकारी आप ही हुए ।

## राज्यारोहण ।

निज़ाम की अज्ञानावस्था में सारा राज्यप्रबन्ध प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर सालारजंग देखते रहे ।

## राज्यविषयक सुधार ।

राज्य का सुधार करने में निज़ाम को अपने सुयोग्य मंत्रियों से अच्छी सहायता मिली । तथापि, आप प्रधान-मण्डल के हाथ की कठपुतली बन जाने वाले राजाओं में न थे । मुग़लों के ज़माने में अनेक टंटे बखेड़े हुआ करते थे ; पर निज़ाम साहब ने अपने शासन-काल में वैसे भगड़े नहीं होने दिये । इस कारण, हैदरा-बाद के राज्य में बहुत सुधार हुआ । निज़ाम-सरकार ने अपने राज्य में रेलवे और सड़कों का विस्तार कर के व्यापार बढ़ाया, आरोग्य-रक्षा का भी प्रबन्ध हुआ और पीने के लिए यथेष्ट पानी मिलने का भी प्रबन्ध कर दिया । ज़मीन की पैमाइश भी की गई और शिक्षाविभाग में भी अनेक महत्त्व के सुधार किये गये । वाकर नाम के एक साहब की सहायता



से निज़ाम-राज्य ने जमाबन्दी-विभाग का भी सुधार किया। व्यय का परिमाण बहुत बढ़ा हुआ था। निज़ाम ने उसमें कमी करके उलटा ६, ७ करोड़ रुपये बचत में कर लिये। पुलिस और न्याय-विभाग का पुनर्गठन; कस्टम्स, आबकारी और जंगल-विभाग का सुधार; और म्युनिसिपैलिटी का प्रबन्ध और भूगर्भ-विभाग की योजना-इत्यादि अनेक महत्त्व के कार्य निज़ाम साहब ने अपने शासन-काल में किये।

## गवर्नमेन्ट और निज़ाम।

निज़ाम साहब अँगरेज़ी गवर्नमेंट के पक्के मित्र थे। उन्होंने संकटों के समय गवर्नमेंट को जो सहायता दी उससे उक्त बात अच्छी तरह प्रमाणित होती है। १८८५ में, जब यह भय था कि भारत पर रूस चढ़ाई करेगा, तब निज़ाम ने ब्रिटिश-सरकार को सहायता देने की इच्छा प्रकट की थी। घोर युद्ध के समय और ईजिप्ट की अराजकता के समय भी उन्होंने सहायता देने का निश्चय किया था। सन् १८८७ ई० में उन्होंने लार्ड डफरिन को यह लिखा कि हम भारत की वायव्य-सीमा की रक्षा के लिए, तीन वर्ष तक, प्रति वर्ष, २० लाख रुपये दे सकते हैं। तभी से “इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स” की उत्पत्ति हुई और परचक्र से भारत की रक्षा करने के लिए देशी राज्यों से सहायता मिलने का मार्ग खुला। निज़ाम साहब के राजत्व-काल में सबसे महत्त्व की बात जो हुई वह यह है कि बरार का प्रान्त निज़ाम-राज्य से सदा के लिए अलग किया जाकर, २० लाख रुपये सालाना ठेके पर, अँगरेज़ी-राज्य में मिला दिया गया।

## प्रजाप्रियता और समदृष्टि।

निज़ाम साहब में सबसे प्रशंसनीय गुण यह था कि वे प्रजावत्सल थे और अपनी सब जाति की प्रजा पर समभाव रखते थे। यद्यपि हैदराबाद मुसलमानों रियासत है, तथापि वहाँ हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से अधिक है। कुछ समय से कुछ सुशिक्षित

मुसलमानों में इस प्रकार की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है कि हिन्दू-मुसलमानों के हित में भिन्नता है। हिन्दुओं से अलग रह कर ही मुसलमान अपना हित-साधन कर सकते हैं। परन्तु बुद्धिमान निज़ाम साहब ने इस प्रवृत्ति को अपनी नीति से अलग ही रखा। निज़ाम साहब जाति और धर्म-सम्बन्धी भगड़ों से सदा अलिप्त रहे। वे अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को समदृष्टि से देखते थे। उनके राज्य में हिन्दुओं को भी बड़े बड़े अधिकार मिले हैं। निज़ाम-राज्य के मुख्य दीवान राजा सर कृष्णप्रसादजी हिन्दू ही हैं।

अपनी प्रजा पर निज़ाम साहब का निस्सीम प्रेम था। दो वर्ष पहले मूसा नदी में बड़ी भारी बाढ़ आने के कारण हैदराबाद के निवासियों पर जो विपत्ति आई थी उससे निज़ाम साहब भी बहुत दुखी हुए थे। जो राजा अपनी प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट रख सकता है उसकी प्रजा भी राजा से प्रेम रखती है। जिस राजा का मन प्रजा के विषय में सदैव पूर्ण रहता है, उसकी प्रजा उससे कभी सन्तुष्ट नहीं रहती। निज़ाम साहब का अपनी प्रजा पर पूर्ण विश्वास था। यह बात उन्होंने गवर्नमेंट पर भी, सन् १९०९ के अपने उस पत्र में प्रकट की है जो उन्होंने गवर्नमेंट के उस खलीफे के उत्तर में लिखा था जिसने गवर्नमेंट ने सब देशी राजाओं से भारत के राज-विद्रोह-दमन के विषय में सम्मति ली थी। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

“My people as a rule are contented, peaceful and law-abiding and I can say with pardonable pride, that they are bound to me by ties of affection and loyalty.....”

“For this blessing I have to thank my ancestors. They were singularly free from all religious and racial prejudices. Their wisdom and foresight induced them to employ Hindus and Mahomedans, Europeans and Parsis, alike in carrying on the adminis-



# सरस्वती



हैदराबाद के परलोकगत निज़ाम ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



संख

trati  
their  
or en  
as I  
deav  
It is,  
attrib

इ  
मालूम  
प्रजा प  
सब ज  
असीम

नि  
शालीन  
के मन  
यद्यपि  
तथापि  
विद्याव्य  
नमैं व  
निकल  
नमैं उ

हैद  
मी  
ला  
ना में  
तीस  
ज की  
ले रंग



tration, and they reposed entire confidence in their officers, whatever religion, race, sect or creed they belonged to.....Inheriting as I did the policy of my forefathers, I endeavoured to follow in their footsteps..... It is, in a great measure, to this policy that I attribute the contentment of my dominions."

इस अवतरण से पाठकों को यह अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि निज़ाम साहब का अपनी प्रजा पर कितना विश्वास था और उनके विषय में सब जातियों और सब धर्मों के लोगों के मन में असीम श्रद्धा और भक्ति किस कारण थी। अस्तु।

### स्वभाव आदि।

निज़ाम साहब के सरल स्वभाव, सादी पोशाक, शालीनता-सूचक बरताव देख कर प्रत्येक मनुष्य के मन में श्रद्धा उत्पन्न होती थी। दिल्ली-दरबार में यद्यपि निज़ाम साहब सब राजाओं में अग्रणी थे तथापि उनकी पोशाक बिल्कुल ही सादी थी। वे विद्याव्यसनी और कवि भी थे। गुणग्राहकता भी उनमें कम न थी। एक बार जो शब्द उनके मुँह से निकल जाते थे वे पत्थर की लकीर हो जाते थे। उनमें अपने धर्म का अनुचित आग्रह न था।

हैदराबाद-राज्य का विस्तार करीब एक लाख वर्ग मील है। आबादी सवा करोड़ है। उसमें सिर्फ़ १० लाख मुसलमान और बाक़ी हिन्दू हैं। निज़ाम-राज्य में ६ हजार रिसाला, २४ हजार पैदल और १० हजार तोपें हैं। इसके सिवा निज़ाम साहब की सैन्य की सेना अलग ही है। इस राज्य का भंडा गोलें रंग का है।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

## विविध विषय।

### १-एक पत्र के पन्द्रह हजार रुपये।



लायत वाले प्राचीन वस्तुओं की बड़ी क़दर करते हैं। पुरानी, विशेष करके ऐतिहासिक, चीज़ों के वहाँ बड़े दाम आते हैं। रैफल के बनाये हुए चित्रों के दाम वहाँ लाखों रुपये आते हैं। कुछ समय

हुआ लन्दन में एक नीलाम हुआ था। उसमें ग्रेट ब्रिटन के राजाओं, रानियों, कवियों और प्रसिद्ध लेखकों के हाथ के लिखे हुए पत्र आदि बेचे गये थे। उनमें एक पत्र स्काट लोगों की रानी मेरी का लिखा हुआ था। वह १५,३७५ रुपये पर ख़तम हुआ। फ़्रीलिंग नाम के एक पुराने लेखक की "टाम जोन्स" नामक एक पुस्तक है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। उसका स्वत्वाधिकार उसने एक पुस्तक-प्रकाशक को नौ हजार रुपये पर बेचा था। इस रक़म की जो रसीद उसने लिखी थी वह १५,२७५ पर नीलाम हुई। अर्थात् जो कीमत उसने अपनी पुस्तक की ली थी उससे ड़ौढ़े से भी अधिक उसकी लिखी हुई रसीद की कीमत आई। इंग्लैंड के प्रसिद्ध ग्रन्थ-कार ड्राइडन की एक पृष्ठ की एक चिढ़ी तीन हजार को बिकी। कविवर गोल्डस्मिथ की एक चिढ़ी के चार हजार दो सौ रुपये आये। इसी तरह और भी कितने ही पत्र, लेख और पुस्तकें हजारों रुपये पर बिकीं।

### २-जीवात्मा के चित्र।

हाल में अमेरिका के वैज्ञानिक पत्रों और पुस्तकों में एक बड़े ही महत्त्व-पूर्ण विषय पर लेख निकले हैं। अमेरिका के शिकागो नगर में ओ'डोनल नामक एक विद्वान् डाक़ूर हैं। एक्सरेज (X-rays) नामक उन किरणों के विषय में उन्होंने विशेष विज्ञता



प्राप्त की है जिनकी सहायता से शरीर के भीतर की हड्डियाँ बाहर से देखी जा सकती हैं। इन्होंने अब एक नई रासायनिक प्रक्रिया द्वारा एक ऐसी युक्ति निकाली है जिससे म्रियमाण मनुष्य के शरीर से निकली हुई प्राण-ज्योति या जीवात्मा का प्रतिविम्ब दिखाई देता है। प्राणोत्क्रमण के समय शरीर से एक सूक्ष्म प्रकाश बाहर निकलता है। प्राण निकलते ही वह प्रकाश पिण्डी-भूत हो कर अदृश्य हो जाता है। इस दृश्य को दिखा कर डाकूर साहब ने शिकागो के अनेक विद्वानों और वैद्यों को चकित कर दिया है। डाकूर साहब का कथन है कि मैं नहीं कह सकता, यह ज्योति यथार्थ में क्या वस्तु है। उसे जीवात्मा-संज्ञा दी जा सकती है या प्राण-संज्ञा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह ऐसी शक्ति है जो मरने के कुछ मिनट पहले शरीर से बाहर निकलने लगती है और उसके निकल जाने के साथ ही शरीर निश्चेष्ट और निर्जीव हो जाता है।

### ३—शिमले की चित्रप्रदर्शिनी ।

शिमले में हर साल एक चित्रप्रदर्शिनी होती है। इस साल भी, गत अगस्त में, वह हुई। एक हजार के ऊपर चित्र प्रदर्शित किये गये। अच्छे चित्रों के लिए इस प्रदर्शिनी में सौ सौ पचास पचास रुपया इनाम भी दिया जाता है। चित्रों के विषय पहले से निर्दिष्ट कर दिये जाते हैं। बड़े दुःख की बात है कि चित्रकला का शौक भारतवासियों को बहुत ही कम है। सब मिला कर तीस चालीस चित्रों के लिए इनाम दिया गया। दस दस बारह बारह वर्ष के बच्चों तक ने निर्दिष्ट विषयों पर चित्र बना कर इनाम लिया। पर इनाम पानेवालों की नामावली में केवल तीन भारतवासी हैं। शेष सभी नाम अंगरेजों के हैं।

### ४—“धर्मकुसुमाकर” का आविर्भाव ।

इसी जूलाई से धर्मकुसुमाकर नामक एक मासिक पत्र का आविर्भाव कानपुर में हुआ है।

इसके सम्पादक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और कानपुर के प्रसिद्ध वकील, समाजनेता और धार्मिकश्रेष्ठ राय देवीप्रसाद जी, बी० ए०, बी० एल०, एम० आर० ए० एस० हैं। इसका वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया मात्र है। पहले अङ्क में चालीस पृष्ठ हैं। आरम्भ में वेद व्यास का रङ्गीन चित्र है। कई एक बड़ी ही सरल कवितायेँ इस अङ्क में हैं। लेख भी सब अच्छे हैं। इस पत्र से बहुत कुछ लाभ होने की सम्भावना है। यद्यपि यह धार्मिक पत्र है, तथापि, आशा है, इस साहित्य-सम्बन्धी लेख भी प्रकाशित हुआ करेंगे। इसका उद्देश इसके मुख पृष्ठ पर इस प्रकार पद्य में निर्दिष्ट किया गया है :—

आकर है नीति को प्रभाकर है प्रतिभा को  
रसिक मलिन्दन को मञ्जु पदमाकर है।  
चाकर समान देश देशन में जाय जाय  
धर्म उपदेशन में पूरन गुनाकर है ॥  
आकर की आपदा हरन में बलाकर है  
रस को जलाकर विचार रतनाकर है।  
शान्ति को सुधाकर है ज्ञान को दिवाकर है  
धर्म-कुसुमाकर ये “धर्म-कुसुमाकर” है।

यदि हमारी चलती तो हम इस पद्य के पंक्तियों के ‘मञ्जु’ शब्द की जगह ‘पूर्ण’ और दूसरे पंक्तियों के ‘पूरन’ की जगह ‘अखिल’ कर देंगे।

### ५—एक अनेक भाषावित विद्वान् की मृत्यु

श्रीयुत हरिनाथ दे कलकत्ते के राजकीय उच्च कालय के अध्यक्ष थे। आपकी विद्वत्ता का सरस्वती में हुए अभी दो ही तीन महीने हुए। वेद की बात है, आपका परलोकवास हो गया। वे १८ देशी और विदेशी भाषाओं के पूरे पण्डित थे। बहुभाषा-पण्डित थे। आपकी बराबरी करने वाला भारत में कोई और विद्वान् न आज तक हुआ और न अभी होने की आशा है। आप विलक्षण मेधावी और प्रतिभाशाली थे। १५ वर्ष की उम्र में इन्होंने पंद्रह पास किया था।



और १९ वर्ष की उम्र में बी० ए० । पिछली परीक्षा में इन्होंने लैटिन और अँगरेजी भाषा में अपूर्व पारदर्शिता दिखलाई और ४० रुपये महीने की छात्रवृत्ति प्राप्त की । १८९६ में इन्होंने लैटिन में एम० ए० पास किया और प्रथम स्थान पाया । अगले साल ग्रीक भाषा में भी इन्होंने एम० ए० पास किया । तदनन्तर सरकारी छात्रवृत्ति पाकर ये विलायत गये । वहाँ पहले केंब्रिज में फिर फ्रांस और जर्मनी में अध्ययन किया । ग्रीक और लैटिन भाषाओं की कविता-रचना में वहाँ इन्होंने बड़ा नाम पाया । कुछ दिन बाद इन्होंने पाली में भी एम० ए० पास किया और संस्कृत में भी । इस तरह ग्रीक, लैटिन, पाली और संस्कृत इन चार प्राचीन भाषाओं के ये एम० ए० थे । दस वर्ष इन्होंने सरकारी नौकरी की । टाका-कालेज में बहुत दिन तक ये प्रोफेसर थे । कुछ समय के लिए इन्हें हुगली-कालेज के प्रधानाध्यक्ष का पद भी प्राप्त हुआ था । १९०७ से ये कलकत्ते के इम्पीरियल पुस्तकालय के अध्यक्ष थे । नौकर होने के बाद भी इन्होंने कई परीक्षाएँ पास कीं । संस्कृत और अरबी की योग्यता-सम्बन्धिनी ऊँची परीक्षा पास करके इन्होंने दो दो हजार रुपया इनाम लिया । उड़िया की भी परीक्षा इन्होंने पास की । तदर्थ इन्हें एक हजार रुपया इनाम मिला । इसके बाद संस्कृत और अरबी की सर्वोच्च परीक्षा पास की और पाँच पाँच हजार रुपये प्रत्येक के उपलक्ष्य में इनाम पाया । इस तरह कोई पन्द्रह हजार रुपये तो इन्होंने गवर्नमेंट से इनाम में पाया । ये परीक्षाएँ केवल सरकारी नौकरों के लिए नियत हैं । दे महाशय सब मिला कर इतनी भाषाएँ जानते थे :—१ अँगरेजी, २ लैटिन, ३ ग्रीक, ४ संस्कृत, ५ अरबी, ६ फ़ारसी, ७ पाली, ८ उर्दू, ९ उड़िया, १० हिन्दी, ११ बंगला, १२ इटालियन, १३ फ्रेंच, १४ स्पैनिश, १५ जर्मन, १६ टर्किश, १७ पोर्चुगीज, १८ पश्तो, १९ राशियन, २० पालिश, २१ हेब्रू, २२ चीनी, २३ जापानी, २४ बरमी, २५ स्यामी, २६ सोलोनी, २७ तिब्बती, २८ मराठी, और २९ गुजराती । चीनी और तिब्बती भाषाओं के कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों

का अँगरेजी में अनुवाद भी इन्होंने आरम्भ किया था । पर, बीच ही में आपको इहलीला समाप्त करनी पड़ी । काल बड़ाही निष्कण है ।

## ६—सचित्र “लक्ष्मी” ।

खुशी की बात है कि गया से “लक्ष्मी” नाम की जो मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है उसमें अब चित्र भी निकलने लगे हैं । इसके लेख और कविताएँ सब अच्छी होती हैं ।

## ७—उर्दू-कान्फरन्स की उदारता ।

जुलाई का उर्दू “जमाना” देर से निकला, पर बहुत अच्छा निकला ८ सितम्बर को पूर्वोक्त महीने की उसकी कापी हमें मिली । उर्दू-कान्फरन्स जो इस साल पूने में हुई थी उसके विषय में जमाना के सम्पादक इस संख्या में लिखते हैं :—

प्रेसिडेंट की तक्रार में—कान्फरन्स के रेजोल्यूशन्स में—उन हिन्दू इत्यापरदाजों का जो अपनी जिन्दगियाँ उर्दू की तरक्की में वक़फ़ कर चुके हैं, जिक्र तक नहीं । सरूर और बर्क जैसे जवरदस्त और लासानी इत्यापरदाजों की बे-वक्त, बफ़ात पर चार आंसू बहाना तो बड़ी बात थी एक कलमा-ख़ैर ही इनके हक़ में कह दिया जाता । ..... मगर मौलवी रफीउद्दीन और खानबहादुर महम्मदशफ़ीअ से मौके बेमौके हिन्दुओं को गालियाँ देने के सिवा और किसी बात की उम्मीद रखना फ़िज़ूल है ।

फिर भी तो हिन्दुओं की अक्ल ठिकाने नहीं आती ।

## ८—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

इस सम्मेलन का दूसरा वार्षिक अधिवेशन २४, २५ और २६ सितम्बर को, श्रीयुक्त पण्डित गोविन्द-नारायण मिश्र के सभापतित्व में, सानन्द समाप्त हो गया । प्रयागनिवासी हिन्दी-हितैषियों ने सभापति महोदय के स्वागत-सम्मान में अच्छा उत्साह दिखाया । इस सम्मेलन के स्वीकृत प्रस्तावों और हिन्दी-प्रेमियों के आन्तरिक उत्साह को देख कर हिन्दी का भविष्य बहुत कुछ आशापूर्ण प्रतीत होता है ।



## पुस्तक-परीक्षा ।

१—पुष्पवाटी । शेख सादी की गुलिस्ताँ नामक प्रसिद्ध पुस्तक के पहले चार बावों का यह संस्कृत-अनुवाद है । होशियारपुर-निवासी पण्डित कन्हैयालाल जोशी का किया हुआ है । उनके पुत्र पण्डित जगन्नाथ जोशी, वकील, होशियारपुर ने इसे प्रकाशित किया है । मूल्य इसका ८ आने है । अनुवादक महाशय के परलोकवासी हो जाने से यह अनुवाद अपूर्ण रह गया । यह दुःख की बात है । फ़ारसी भाषा में गुलिस्ताँ एक नामी चम्पू-ग्रन्थ है । उसमें गद्य भी है और पद्य भी । उसके नीति-विषय पद्य फ़ारसी जानने वालों की जिह्वा पर सदा नृत्य किया करते हैं । गुलिस्ताँ की भाषा जैसी सरल है जोशीजी का अनुवाद भी वैसा ही सरल है । अनुवादक महाशय ने मूल के गद्य का अनुवाद गद्य में और पद्य का पद्य में किया है । इस अनुवाद को देख कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ । लड़कपन में पढ़ी हुई गुलिस्ताँ के कितने ही पद्य याद आ गये । जोशीजी ने अपने अनुवाद में फ़ारसी का मूल अंश नहीं रक्खा । केवल अनुवाद ही दिया है । अनुवाद के दो एक पद्यात्मक उदाहरण हम पहले बाब से नीचे देते हैं । पाठक देखें, कैसा अच्छा अनुवाद है । मिलान के लिए साथ ही हम मूल फ़ारसी के पद्य भी दिये देते हैं :—

( १ )

मूल—अस्ये लागर मियाँ वकार आयद—

रेजे मैदाँ न गाव परवारी ।

अनुवाद—कृशस्त्रज्ञो युधि कार्य्यकृद्भवे-

न तादृशः स्थूलकलेवरो वृषः ॥

( २ )

मूल—न बीनी कि चूँ गुर्वा आजिज शवद—

बराद बचंगाल चरमे पलंग ।

अनुवाद—किं न पश्यसि मार्जारी यदा भयवती भवेत् ।

तदा तलप्रहारेण सिंहस्याक्षि विलुम्पति ॥

( ३ )

मूल—ऐ जवरदस्त ज़रदस्त-आज़ार—

गर्म ताकै बुमानद ईं बाज़ार ।

व चे कार आयदत जहाँदारी—

मुर्दनत बेह कि मरदुम-आज़ारी ॥

( ४ )

अनुवाद—वलिष्ठ है दुर्बल दुःखदातः—

कदाविधि स्थास्यति दीर्घलं ते ।

त्वज्जोवनान्किं फलमस्ति लोके—

वरा मृत्तिस्ते परदुःखदानात् ॥

पदच्छेद और लिपि-सम्बन्धितों कुछ भूलें इस पुस्तक में रह गई हैं । दूसरे संस्करण में उनका संशोधन हो जाना चाहिए ।

✽

२—पुस्तक-त्रितय । ब्राह्मण-सर्वस्व नामक मसिख पत्र के सम्पादक, धर्मप्राण, पण्डित भीमसेनजी शर्मा के ब्रह्म प्रेस, इटावा, के मैनेजर, “B. D. S.” महाशय ने अपने २ अगस्त १९११ के पोस्टकार्ड में लिखा है—  
“आपकी सेवा में तीन पुस्तकें समालोचनार्थ भेजी जाती हैं । याज्ञवल्क्यस्मृति १) । (२) विधवा-विवाह मीमांसा २) । (३) आदर्शरमणी ३) आशा है कि आप अपने सुप्रसिद्ध पत्र की आगामी संख्या में इन पुस्तकों की उत्तम समालोचना कर हम लोगों को कृतार्थ करेंगे ।” इसके आगे मैनेजर महाशय ने ब्राह्मण-सर्वस्व के उपहार के विषय में भी समालोचना में कुछ “नोट” दे देने की आज्ञा दी है । इस उत्तर में निवेदन है कि इन पंक्तियों का लेख उत्तर में निवेदन है कि इन पंक्तियों का लेख “उत्तम समालोचना” करना नहीं जानता । समालोचना के लिए बड़ी योग्यता चाहिए । मयूक निष्कृष्ट या जैसी समालोचक को उचित जान पड़े वैसे समालोचना तो आप चाहते नहीं । अतएव लाज नहीं है । चुप रहने के सिवा और कोई इलाज नहीं ।

✽

३—चन्द जुरुरी नसीहतें । यह १९१० की छपी पुस्तक है । बहुत ही चिकने कागज़ पर और बड़े



सुन्दर टाइप में ग्वालियर के दरबार प्रेस में छपी है। न इस पर दाम लिखा है, न बनाने वाले का नाम। भेजा इसे हमारे पास ग्वालियर के ज्यम्बक-नारायण ले ले महाशय ने है। वे अपने पत्र में लिखते हैं :—“मैं अपनी एक पुस्तक हिन्दी में लिखी हुई जिसका नाम—“चन्द्रजूरु नसीहते” है आप की सेवा में भेजता हूँ।” इसका लेखक चाहे जो हो वह फ़ारसीदां मालूम होता है। लेखक ने इस पुस्तक को बड़ी ही नफ़ीस और बामुहाबरा इबारत में लिखा है। पुस्तक की लिपि तो देवनागरी है, पर भाषा उर्दू। इसकी भूमिका में लिखा है—“यह चन्द्र जूरु नसीहते उन नौजवाँ असहाब के लिये लिखी गई हैं जो उमूमन आला दर्जे की खिदमात सरकारी में, खास कर उसकी आमिलाना शाख में, ताजा दाखिल हुए हैं, या होने की इवाहिश रखते हैं। ये नसीहतें, जान पड़ता है, खास कर रियासत ग्वालियर के मुलाजिमान के लिए लिखी गई हैं, पर वे ऐसी व्यापक हैं कि सभी राज्यों और सभी रियासतों के कर्मचारियों और अधिकारियों के काम की हैं। ये नसीहतें सर्वथा अनमोल हैं। आम बरताव और चालचलन से भी इनका सम्बन्ध है और सरकारी कामों से। यदि गवर्नमेंट और अन्यान्य देशी रियासतें भी इस पुस्तक को अपने प्रत्येक कर्मचारी और प्रत्येक गाँव के मालगुज़ार या नम्बरदार को देने का प्रबन्ध कर दें तो बड़ी बात हो। इसकी एक एक नसीहत एक एक लाख रुपये की है। इसकी नसीहतें लेखक की योग्यता, प्रभुभक्ति, सदाचार-शीलता आदि अनेक गुणों को व्यक्त कर रही है।

✽

४—शीघ्रज्ञान-व्याकरण। पण्डित श्रीधर त्रिपाठी लखनऊ में बहुत काल तक नार्मल स्कूल में हिन्दी और संस्कृत के अध्यापक थे। अब आप पेन्शन पाते हैं और लखनऊ के महल्ले गणेशगञ्ज में रहते हैं। आपकी उम्र इस समय कोई ७० वर्ष की है। आपका बनाया हुआ हिन्दी में एक अच्छा कोश है।

उसका नाम है—श्रीधरकोश। उसका मूल्य शायद २) है। बहुत दिन हुए हमने आपके इस कोश को देखा था। अब आपकी कृपा से आपके शीघ्रज्ञान-व्याकरण के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सच मुच ही इस पुस्तक से व्याकरण का शीघ्रज्ञान हो सकता है। इसके दो भाग अलग अलग हैं। पहले में नाम-व्याख्या है, दूसरे में धातु-व्याख्या। पहले का मूल्य ६ और दूसरे का ८ आने है। दोनों भागों में सब मिला कर कोई ४०० पृष्ठ हैं। अतएव दाम बहुत ही कम है। संस्कृत-व्याकरण की मुख्य मुख्य सभी बातें इन पुस्तकों में आ गई हैं। खूबी यह है कि जहाँ जहाँ आवश्यकता थी त्रिपाठीजी ने मूल संस्कृत का अनुवाद भी हिन्दी में दे दिया है। नामों और धातुओं आदि के प्रयोग भी अपने आवश्यकतानुसार वाक्यावली देकर दिखाये हैं। संस्कृत सीखने की इच्छा रखने वालों के लिए यह व्याकरण बहुत उपयोगी है। थोड़े दाम में बड़ा काम, ऐसी ही पुस्तकों से निकलता है। पुस्तक नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ की छपी हुई है।

✽

५—अहिंसादिदर्शन। सुन्दर कागज़ पर सुन्दर टाइप में छपी हुई यह ९५ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसे बनारस की जैन-यशोविजय-पाठशाला के शास्त्रविशारद, जैनाचार्य, श्रीविजयधर्म सूरि ने लिखा है। पुस्तक हिन्दी में है। बीच बीच में पुराण और स्मृत्यादि ग्रन्थों के वचन मूल संस्कृत-श्लोकों में दिये गये हैं। जीवहिंसा की बुराईयाँ इसमें अनेक युक्तियों से दिखाई गई हैं। पुस्तकान्त में जैन-धर्म की प्रशंसा और हिन्दुओं के श्राद्ध-कर्म की निन्दा है। इसके सिवा इसमें यह भी उल्लिखित है कि जैन-धर्म ही के सिद्धान्त सच्चे और निर्दोष हैं।

✽

६—प्रभुचरित्र। यह डेढ़ सौ पृष्ठ की पुस्तक है। आठ आने में पण्डित नीलकण्ठ द्वारकाप्रसाद, कुतुब-फ़रोश, अमीनाबाद, लखनऊ से मिलती है। बछरावाँ-



निवासी पण्डित शिवरत्न शुक्ल ने इसकी रचना की है। बाल, विपिन और उत्तर-काण्डों में विभक्त कर के सारी रामायण-कथा को शुक्लजी ने इसमें संक्षेप से वर्णन किया है। भाषा सरल है। कहीं कहीं पद्य भी हैं। इसकी समालोचना ही क्या—“रामकथा जग मङ्गलकरनी।”

✽

७—श्रीराघव-गीत । प्रणेता पण्डित प्रयागनारायण मिश्र । पृष्ठ-संख्या ५४—मूल्य ४ आने । चौधरी विश्वनाथ मिश्र, दौलतगञ्ज, लखनऊ से प्राप्य । चिकने कागज पर अच्छे टाइप में यह पुस्तक छपी है। पद्यमय है—सब गीत ही गीत हैं। चार काण्डों में रामचरित गाया गया है। रामचन्द्रजी के भक्तों के लिए यह सर्वथा उपादेय है। मिश्रजी ने इसकी ८०० कापियाँ बिना मूल्य दे डालने का सत्सङ्कल्प किया है।

✽

८—नीतिवाक्यरत्नावली । अजमेर-राजकीय-पाठालयाध्यापक साहित्योपाध्याय पण्डित शिवदत्त काव्यतीर्थ ने इसका सङ्कलन किया है। इसमें १११ पृष्ठ हैं। मूल्य केवल ४ आने। संस्कृत के कथा-सरित्सागर आदि गद्य-ग्रन्थों में नीति के जो छोटे छोटे वाक्य मिलते हैं उनका इसमें संग्रह है। साथ ही उनका हिन्दी-अनुवाद भी दोहों में दे दिया गया है। ऐसे दोहे जहाँ तक पुराने मिल सके हैं वहाँ तक वही रखे गये हैं। जहाँ नहीं मिले वहाँ सङ्कलनकर्त्ता ने नये बना कर रख दिये हैं। अपने ढंग की यह पुस्तक बहुत अच्छी है। जिन ग्रन्थों से नीति के वाक्य और दोहे इसमें उद्धृत किये गये हैं उनके नाम के सङ्केताक्षर मात्र वाक्यान्त और अनुवादान्त में दिये गये हैं। पर इन संकेतों का कहीं स्पष्टीकरण नहीं किया गया; यह नहीं बतलाया कि किस ग्रन्थ के लिए कौन सा संकेत है। इतनी इस पुस्तक में त्रुटि रह गई है।

९—भास्कर । “आर्य भाषा का नवीन मासिक पत्र” । धर्म और विज्ञान, शिक्षा और सुधार के लेखों से अलङ्कृत” । “अपने ढङ्ग का अत्यन्त सत्ता और मनोरञ्जक” । मूल्य दो रुपये साल। भास्कर प्रेस, मेरठ से प्राप्य । इस भास्कर का “उद्य वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करने और उनको चिरस्थायी तथा सर्वव्यापी बनाने के उद्देश्य को ग्रहण करते हुआ है” । पत्र आर्य-समाज के नियमों और सिद्धान्तों का अनुयायी है। ज्येष्ठ, संवत् १९६८ के पहले अङ्क में सरस्वती के आकार के ३२ पृष्ठ हैं। सेवायामे प्राचीन आर्य-शिक्षा-प्रणाली, इन्द्रिय-निग्रह, स्वामी विरजानन्द सरस्वती आदि सात लेख इस अङ्क में हैं। दो कवितायें भी हैं।

✽

१०—इतिहासतत्त्व-दीपिका । पृष्ठ ५३। मूल्य ४ आने। लेखक पण्डित मुन्नालाल जुगलकिशोर मिश्र, हेड मास्टर, करेली, जिला नरसिंहपुर। यह भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास है। पुस्तकान्त में वाइसराय और गवर्नर जनरलों के शासन-काल और भारत की मुख्य मुख्य लड़ाइयों की तालिकायें हैं। इतिहास के मुख्य मुख्य पारिभाषिक शब्दों का मनलब भी एक तालिका देकर, समझाया गया है। पुस्तक की भाषा कहीं कहीं संशोधन-योग्य है।

✽

११—जीवनचरित्र । रियासत कुरी सुदौली के तालुकदार माननीय राजा रामपालसिंह, सी० आर्० ई० का इसमें चरित है। राजा साहब के सेक्रेटरी ठाकुर तिलकसिंह ने इसे लिखा है। इंडियन प्रेस में मोटे चिकने कागज पर छपा है। राजा साहब के तीन हाफ-टोन चित्रों से विभूषित है। आद्य अंश का टिकट लेखक के पास भेजने से मुफ्त में मिला है। चरित योग्यतापूर्वक लिखा गया है। शिक्षाप्रद है। राजा साहब में अनेक गुण हैं। वे आदर्श राजा हैं। इन प्रान्तों के तालुकदारों को चाहिए कि उनके चरित से शिक्षा ग्रहण करें।



पृष्ठ १२

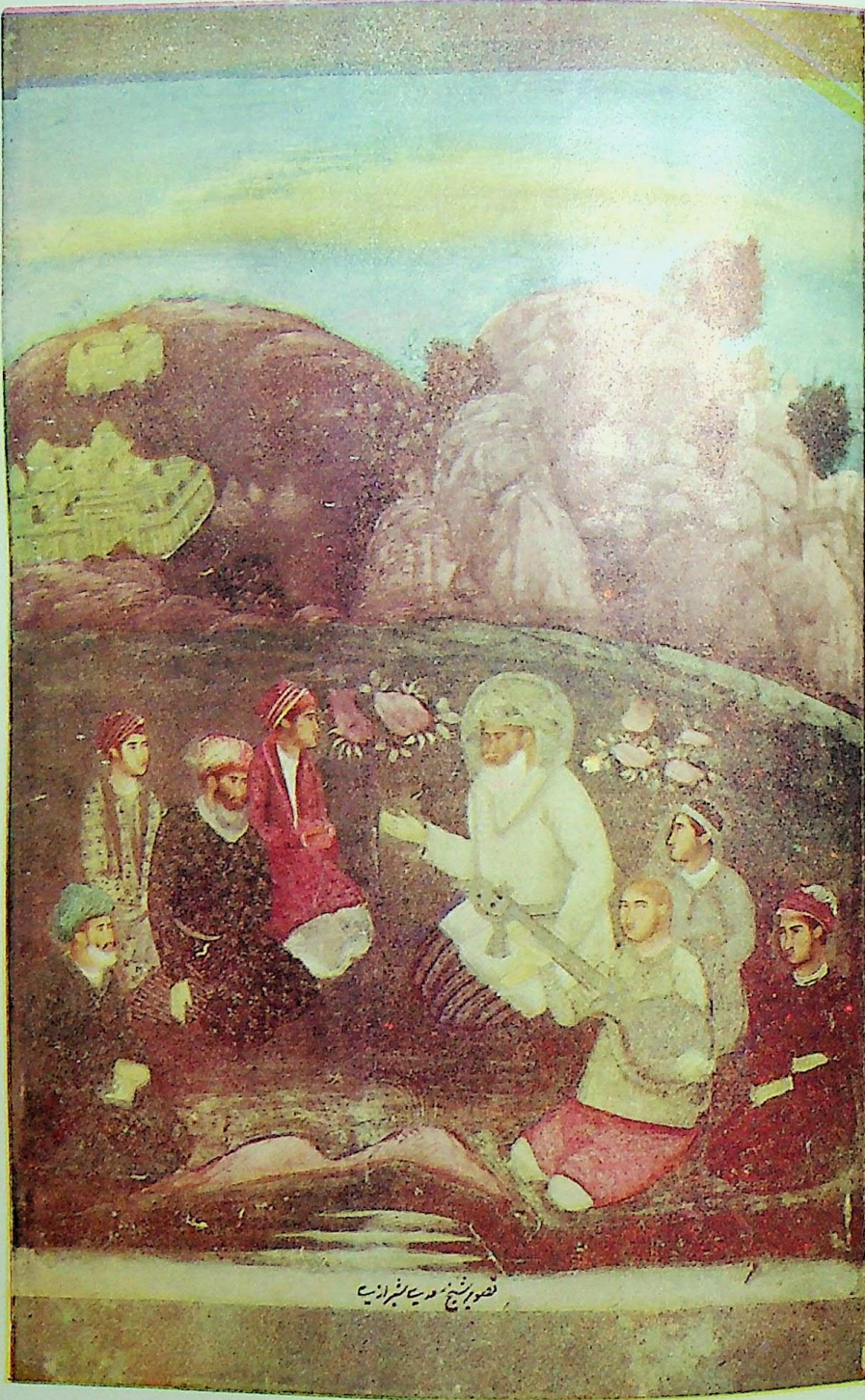
मासिक  
पुथार के  
सत्ता  
भास्कर  
य वैदिक  
चरस्थायी  
ण करत  
सेद्धान्त  
हले अङ्क  
वावायम  
स्वामी  
अङ्क में

४ आने  
ध्र, हेड  
तवप का  
य आ  
रत की  
इतिहास  
लव भी  
स्तक की

दोली के  
० आर्य  
सेकेटरी  
प्र प्रेस में  
जाहव के  
ध आते  
मिलता  
शिक्षाप्रद  
श राजा  
के उनके



# सरस्वती



शेख सादी शीराजी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



१२—हेरेशियास । लार्ड मेकाले ने इस नाम की एक बड़ी ही ओजस्विनी कविता अँगरेजी में लिखी है। उसी का यह छन्दोबद्ध हिन्दी-अनुवाद है। हावे के हाई स्कूल के अध्यापक पण्डित बच्चन पाँडे इसके अनुवादक हैं। पृष्ठ २० हैं, और मूल्य डेढ़ आना। पुस्तकान्त में ऐतिहासिक नामों पर टिप्पणी भी है। इस कविता का रस और मूलभाव कठिनता से हिन्दी में व्यक्त किया जा सकता है। अनुवादक इस बात में यद्यपि पूर्णतया कृतकार्य नहीं हुए तथापि उनके किये हुए अनुवाद के कुछ अंश जरूर अच्छे हैं।

### मनोरञ्जक श्लोक ।

अगस्त सन् १९११ की सरस्वती में—“मनः कुत्रोद्योगः” आदि श्लोक को देख कर, उसके सम्बन्ध में, मन की ओर से भी, उत्तर-स्वरूप, एक श्लोक मुझे याद आया है। उसे मैं नीचे देता हूँ। उचित समझिए तो पाठकों के विनोदार्थ प्रकाशित कर दीजिएः—

इह हि मधुरगीतं रूपमेतद्रसोऽयं

स्फुरति परिमलोऽसौ कोमलः स्पर्श एषः ।

इति हृत्परमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः

स्वहितकरणधूर्तैः पञ्चभिर्वञ्जितोऽस्मि ॥

अर्थात्—यह देखिए कैसा मधुर गीत है; यह कैसा सुन्दर रूप है; यह कैसा स्वादिष्ट रस है; यह कैसी अच्छी सुगन्धि है; यह कैसा कोमल स्पर्श है। इस प्रकार विषयसुख-सेवा की सामग्री प्रस्तुत करने वाली, परमार्थ को भुलाने वाली, अपने ही हित की परवा करने वाली इन पाँचों धूर्त इन्द्रियों के द्वारा हर तरफ़ खींचा जानेवाला मैं खूब ठगा गया हूँ। यही मुझे खींचे खींचे फिरती हैं। क्या करूँ, मेरा कुछ भी जोर नहीं चलता।

बालादत्त जोशी ।

### चित्र-परिचय ।

शेख़ सादी ।

शेख़ सादी फ़ारिस के विख्यात लेखक और उप-देशात्मक कवि थे। इनका जन्म शीराज़ में हुआ था। इनके जन्म का साल ११८४ ईसवी के लग भग (५८० हिजरी) है। इनका असल नाम मशरिफ़-उद्दीन था; किन्तु बहुत लोग इनका नाम मसलिह-उद्दीन भी बताते हैं। इनके पिता का नाम अब्दुल्लाह था। वे बड़े धार्मिक और बुद्धिमान् थे। वे अताबुक़ खानदान के शाही दरबार में नौकरी करते थे। उस खानदान का पाँचवाँ सुलतान साद-बिन-जुंगी मशरिफ़-उद्दीन को बहुत प्यार करता था। इनके पिता की अकाल-मृत्यु हो गई। तब सुलतान ने इनको बग़दाद के मशहूर मदर्स निज़ामिया में पढ़ने के लिए भेज दिया। ये वहाँ कोई तीस वर्ष तक रहे। उस मदर्स के कठोर नियम और धार्मिक शिक्षा के प्रभाव से इनके मन में कुछ उदासीनता उत्पन्न हो गई। परन्तु यह भाव अधिक दिनों तक नहीं रहा। कविता-शक्ति के विकास के साथ साथ फिर भी उनमें स्वाभाविक प्रसन्नता और रँगोलापन आ गया। इन्होंने अपने आश्रयदाता सुलतान साद के नाम पर अपना उपनाम ‘सादी’ रखवा। इनका यश थोड़े ही दिनों में बहुत दूर तक फैल गया। १२२० और १२२५ के मध्य में ये एक बार अपने किसी मित्र से मिलने इस्फ़हान गये। वहाँ से ये दमस्क चले गये। जब ये लौट कर इस्फ़हान आये तब इन्हें मालूम हुआ कि किरमान के बादशाह गयासउद्दीन ने अताबुक़ साद का तख़्त छीन लिया। यह सुन कर ये बहुत उदास हुए और वहाँ से खाने होकर बलूच, गुजनी और पञ्जाब की राह से ये गुजरात पहुँचे। वहाँ से ये दिल्ली आये और वहाँ कुछ दिनों तक रह कर हिन्दुस्तानी भाषा सीखी। दिल्ली से ये यमन गये। वहाँ इनके एक प्रियपुत्र की मृत्यु हो गई। इससे उदास होकर ये मक्का और मदीना की ओर चले गये। उसके बाद और भी कितनी ही जगहों की



सैर करते हुए १२५५ ई० के लगभग ये फिर शीराज लौट आये। उस समय साद का लड़का अबूबक्र वहाँ राज्य करता था। उसने इनका बहुत सम्मान किया। तब से ये बराबर वहाँ, शहर के बाहर एक झोंपड़ी बनाकर, फ़कीराना तौर पर दिन बिताने लगे और वहाँ १२९२ में ११० वर्ष की आयु भोग कर इन्होंने शरीर त्याग किया। शेख़ सादी ने फ़ारसी और अरबी भाषा में बहुत सी किताबें लिखी हैं। हिन्दी में तुलसीदास जी की रामायण का जैसा आदर है वैसाही आदर फ़ारसी में शेख़ सादी की गुलिस्ताँ, बोस्ताँ और करीमा का है। इनके ग़ज़ल, हबाइयात और क़सीदे भी बहुत मशहूर हैं। अन्यत्र, इसी संख्या में, इनकी गुलिस्ताँ के संस्कृत-अनुवाद की समालोचना पढ़िए।

इसी विख्यात कवि शेख़ सादी शीराज़ी का एक रंगीन चित्र इस महीने की सरस्वती में दिया जाता है। यह चित्र शाही ज़माने के किसी पुराने चित्रकार का बनाया हुआ है। इसमें शेख़ सादी एक प्रतिष्ठित पुरुष की तरह दिखाये गये हैं। उनके पास उनकी शिष्य-मण्डली बैठी हुई है। योरप में भी शेख़ सादी के कितनेही काल्पनिक चित्र बने हैं, किन्तु उन सब में वे मुसलमानी फ़कीर के वेश में अङ्कित किये गये

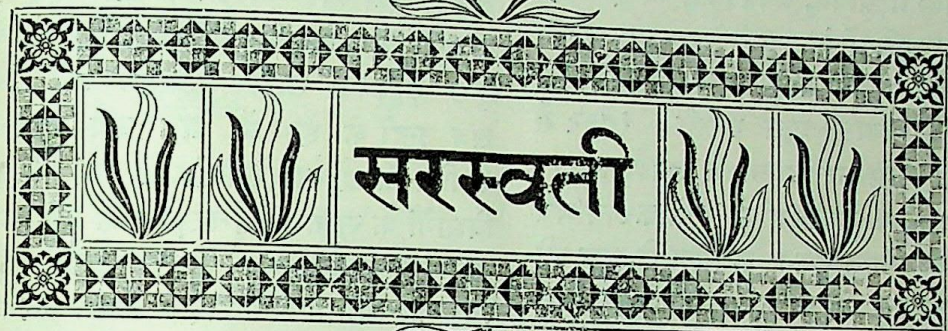
हैं। परन्तु यह चित्र शाही ज़माने का है अतएव अधिक आदरणीय है।

## अभ्युदय और मर्यादा की महत्ता।

सितम्बर १९११ के अभ्युदय में उसके १७ और मर्यादा के सम्पादक ने, श्रीयुक्त सत्यदेवजी का सहारा लेकर, सरस्वती और सरस्वती-सम्पादक पर जो उदारतापूर्ण आक्षेप किये हैं उनका उत्तर देने की हमारी इच्छा नहीं। हाँ, धन्यवाद देने की इच्छा अवश्य है। अतएव मर्यादा और अभ्युदय दोनों हमारा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। सत्यदेवजी ने सरस्वती-सम्पादक को “झूठा” बनाया है। अतएव उत्तर के बदले उनको भी बहुत बहुत धन्यवाद। सत्यदेवजी के इस प्रणयोपहार को सरस्वती-सम्पादक जीवनावधि अपने सिर पर बड़े प्रेम से धारण किये रहेगा। सरस्वती की इस संख्या में अन्यत्र जो आपका एक लेख प्रकाशित है वही आपका अन्तिम लेख है।







सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ] १ नवम्बर, १९११—कार्तिक शुक्ल १०, १९६८ । [ संख्या ११

राजा सर साहिबदयाल बहादुर,  
के० सी० एस० आई० ।

यश का मुख्य कारण आपका इतिहास-परिज्ञान ही था । युद्ध-विद्या भी आपने सीखी; धनुर्विद्या में तो आप सिद्धहस्त ही थे । आपके विषय में एक साहब लिखते हैं :—

“When he joined Lord Gough's army in the Second Punjab Campaign, he went into the field armed with a bow and arrow after the old Hindu fashion.”

अर्थात् पञ्जाब के द्वितीय युद्ध में जब आप “लार्ड गफ” की सेना में प्रविष्ट हुए तब रणभूमि में पौराणिक योद्धाओं की तरह आप हाथ में धनुष-बाण लिये हुए युद्ध में जाते थे ।

आप मल्ल-युद्ध भी किया करते थे । यही कारण है कि मृत्यु-पर्यन्त आप सर्वाङ्ग-सुन्दर और बलवान् बने रहे ।

ज मैं सरस्वती के पाठकों को एक प्रसिद्ध पञ्जाबी पुरुष का संक्षिप्त चरित सुनाता हूँ । आपका नाम था—राजा सर साहिबदयाल बहादुर । आपके पिता का नाम था—राजा प्यारामजी । आपका जन्म १८०० ईसवी में पञ्जाब प्रसिद्ध नगर अमृतसर में हुआ । आप पञ्च-मूल्य सारस्वत ब्राह्मण थे । आपने प्राचीन प्रणाली अनुसार शिक्षा प्राप्त की । संस्कृत और फ़ारसी पण्य प्राप्त करने के पश्चात् इतिहास और गणित आपने अच्छी तरह सीखा । आपके ऐश्वर्य तथा



## प्रारम्भिक जीवन ।

१८१९ ईसवी में आपने, अपने पिता की देखभाल में, महाराज रणजीतसिंह का राज्य-कार्य करना आरम्भ किया और आगामी तेरह वर्ष में राज्य के प्रत्येक विभाग में योग्यता प्राप्त करली। १८३२ में आपने राज्य के भूमि-कर-विभाग में कार्य करना आरम्भ किया। आप जालन्धर के भूमि-कर-विभाग के प्रधान अध्यक्ष नियत हुए। सतलज के युद्ध की समाप्ति तक आप इस पद पर रहे। आपके सुप्रबन्ध से इस विभाग की आय बहुत बढ़ गई।

उस समय मालगुजारी की तहसील करनेवाला एक प्रकार का ठेकेदार होता था। उसे सरकार को निश्चित द्रव्य देना पड़ता था, चाहे वह कितना ही कर प्रजा से क्यों न वसूल कर ले। परन्तु राजा साहिब प्रजा से एक पैसा भी अधिक न लेते थे। जो कुछ आय होती थी महाराज की भेंट कर देते थे। महाराज रणजीतसिंह बड़े दयालु थे। वे इनकी सचाई और इनके स्वभाव से परिचित थे। इसलिए बहुधा वे बहुत सा द्रव्य, अनुग्रह की दृष्टि से, इन्हें लौटा दिया करते थे।

१८४६ ईसवी में, सतलज के युद्ध के अनन्तर सिक्खों और अँगरेजों में एक सन्धि हुई। उसके अनुसार व्यास और सतलज का मध्यवर्ती प्रदेश अँगरेजों को मिला। इस कारण राजा साहिब को जालन्धर का राज्य-कार्य अँगरेजों को सौंप देना पड़ा।

तदनन्तर, लाहौर के दरबार की आज्ञा से आप अमृतसर के कर-विभाग के मुख्य अधिकारी बनाये गये। आपने इस नगर के व्यापार की उन्नति के लिए अनेक सुधार किये। नगर पर कर का बहुत बोझ था। अतएव व्यापार में उन्नति न होती थी। राजा साहब ने कर का पन्द्रह हजार रुपया छुड़वा दिया।

## भूमि-कर-विभाग का सुधार।

जब राजा लालसिंह देश से निकाल दिये गये तब सिक्खों और अँगरेजों में फिर एक सन्धि हुई। इस सन्धि के नियमानुसार एक रेजीडेंट और उसके कुछ सहायक लाहौर में रहने लगे। राज्य-प्रबन्ध सब उन्हीं के हाथ में था। जब देश में शान्ति स्थापित होगई और रेजीडेंट का ध्यान राज्य के सब विभागों के सुधार की तरफ गया तब राजा रण्याराम तथा उनके सुयोग्य पुत्र राजा सर साहिबदयाल भूमि-कर-विभाग के निरीक्षक नियत हुए।

सिक्खों के राज्य में प्रत्येक वस्तु पर कर लिया जाता था। आवश्यक और विलास की वस्तुओं में कोई भेद न समझा जाता था। निर्धन लोग कर के बोझ से दबे हुए थे। इतनाही नहीं, प्रत्युत कर वसूल करने की प्रणाली भी दुःखदायिनी थी। सारा देश चुंगीघरों से भरा था। लोगों को अनेक कष्ट उठाने पड़ते थे। ये दोनों पिता-पुत्र इन सारी कुरीतियों का सुधार करके समग्र पञ्जाब के कृतबन्धु भाजन हुए। इस उपलक्ष्य में, ७ अगस्त सन् १८४७ को, पितापुत्र को गवर्नमेंट ने उपाधियाँ दीं और रेजीडेंट साहब ने दोनों की भूरि भूरि प्रशंसा की।

## अन्यान्य कार्य।

कुछ समय बाद आप भंग के कारदार बनाये गये। रेजीडेंट साहिब इनकी विलक्षण बुद्धि को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। यहाँ तक कि उन्होंने उन्हें “मैसनुद्दौला” की उपाधि से विभूषित किया। आपके खास काम के सिवा इन्हें एकसाल आदि के भी बड़े काम करने पड़ते थे। अमृतसर और भंग के बन्दोबस्त में भी आपने बहुत काम किया।

मुलतान के ग़दर के समय आपने बड़ी योग्यता के साथ अपने जिलों में शान्ति रक्खी। शत्रुओं को परास्त करने के लिए आपने बड़ी सहायता भी दी और स्वयं भी लड़े। भाई महाराजसिंह की बागवत को भी आपनेही अपनी बुद्धि और बल से दम



# सरस्वती



राजा सर साहिबदयालसिंह बहादुर,  
के० सी० एस० आई० ।



संख्या १

किया । सि  
जो  
बार ने  
पाधि प्रद  
मनगर,  
आप बा

सन्  
रने अर्थ  
युत कर  
। परन्तु  
आये और  
दुखित  
सहा स  
ज के स  
हाराज  
पापूर्ण  
मय से  
गर्ह्य उन्

सर उ  
हाहिब के  
देना  
गीर और  
ले गये

मिस्ट  
इनके

I can  
estimon  
ery B  
tercou  
loya  
et his  
re inde  
en; I  
essed a



किया। सिक्ख-सरदारों की इन बगावतों को रोकने  
जो सहायता आपने दी उसके उपलक्ष्य में  
बार ने बहुत प्रसन्न होकर इन्हें “बहादुर” की  
प्राप्ति प्रदान की और एक बहुमूल्य भेंट भी दी।  
मनगर, वज़ीराबाद, चिल्लियाँवाला—इन तीनों युद्धों  
आप बागियों के साथ लड़े।

### देश-परित्याग।

सन् १८४९ में पञ्जाब को ब्रिटिश गवर्नमेंट ने  
अधीन कर, महाराजा दिलीपसिंहजी को राज्य-  
च्युत कर दिया। आप इस समय पिंडदादनावाँ में  
थे। परन्तु यह समाचार पातेही आप लाहौर चले  
आये और वास्तव में बहुत खिन्न हुए। वे इतने  
दुःखित हुए कि उन्हें पञ्जाब में निवास करना  
सह्य सा प्रतीत होने लगा। अतएव उन्होंने महा-  
राज के सामने अपना इस्तेफ़ा लिख कर रख दिया।  
महाराज ने उसे स्वीकार करते समय बहुत से  
व्यापक वचन कहे और महाराज रणजीतसिंह के  
समय से लेकर अपने राज्यच्युत होने तक जो जो  
कार्य उन्होंने किये थे सब की प्रशंसा की।

सर जॉन लारेन्स और उनके छोटे भाई राजा  
साहिब के परम मित्र थे। उन्होंने इन्हें अच्छे अच्छे  
सहायता देना चाहा; परन्तु इन्होंने एक न सुना। अपनी  
जागीर और ज़मींदारी को छोड़ कर ये पञ्जाब से  
चले गये।

मिस्टर हार्टसन, जो रेजीडेंट के सहकारी अध्यक्ष  
थे, इनके विषय में यों लिखते हैं:—

I can add nothing to the weight of the  
testimony in his favour volunteered by  
every British Officer with whom he has had  
intercourse, but I can safely assert that  
for loyalty, fidelity and talent I have not  
met his equal in India. He and his family  
are indeed bright examples to their country-  
men; had the Lahore Government pos-  
sessed a dozen of such servants as honest

and as able, it would not have now been  
involved in ruin.

अर्थात्—उन अँगरेज अफसरों ने जो इनसे परि-  
चित हैं, स्वयं इनकी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है।  
मैं उससे बढ़ कर क्या कह सकता हूँ? परन्तु फिर  
भी इतना तो मैं वेधड़क कहूँगा कि राजभक्ति,  
सच्चाई और बुद्धिमत्ता में भारतवर्ष भर में इनकी  
बराबरी का मुझे कोई नहीं मिला। ये और इनका  
वंश अपने देश-भाइयों के लिए एक सर्वोत्तम उदा-  
हरण हैं। यदि सिक्ख सरकार के पास ऐसे रिया-  
सतदार और योग्य पुरुष एक दर्जन और होते तो  
आज सिक्खराज्य की यह दशा न होती।

राजा साहिबदयालजी अपनी ज़मींदारी और  
जागीर, पञ्जाब छोड़ने के पहलेही, छोड़ चुके थे।  
परन्तु बोर्ड के मेम्बरो की कृपा से वे जागीरें उन्हीं  
के लिए रहीं। उन्होंने राजा साहिबदयाल को  
लिखा कि चाहे आप पञ्जाब में रहें चाहे न रहें,  
आपकी जागीरों की आमदनी आपको मिलती रहेगी।  
उन्होंने सलाह दी कि अपना अधिकार छोड़ना अच्छा  
नहीं। बहुत लिखा-पढ़ी के अनन्तर राजा साहिब ने  
यह बात स्वीकार की।

### सिक्खों का विवरण और सिक्खराज्य का नक्शा।

सर जॉन लारेन्स के अनुरोध से राजा साहिब ने  
व्यास और पेशावर के मध्यवर्ती प्रदेश में जो जो  
सिक्के प्रचलित थे उन सबका एक व्यौरेवार विव-  
रण लिखा। उनकी यह रिपोर्ट बड़ेही महत्त्व की है।  
सिक्खों के ज़माने में रिपोर्ट लिखना और नक्शा  
बनाना किसी को न आता था। आप भी, जैसा कि  
कहा जा चुका है, पुरानी प्रथा के अनुसार शिक्षित  
हुए थे। तथापि जब नई सरकार को महाराज रण-  
जीतसिंह के नक्शों की आवश्यकता पड़ी तब सिवा  
राजा साहिब के और कोई ऐसा मनुष्य न था जो इस  
कार्य को कर सकता। आप असाधारण बुद्धिमान् थे।



## कुरुक्षेत्र में निवास तथा तीर्थ-यात्रा ।

१८४९ में आप अमृतसर छोड़ सकुटुम्ब कुरुक्षेत्र गये। वहाँ आपने एक बड़ा सुन्दर भवन निर्माण कराया। एक मनेाहर बाग लगवाया। बहुत सा धन ब्राह्मणों को प्रदान किया। घाटों की मरम्मत कराई। और वहीं रहने लगे। एक वर्ष के अनन्तर हरद्वार, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, काशी, पुरी आदि तीर्थों की आपने यात्रा की। इस यात्रा में आपने तीन लाख के लगभग रुपया व्यय किया। इस यात्रा में आप महाराज दिलीपसिंह से, जो अपने रक्षक मिस्टर लोगन के साथ फर्रुखाबाद में रहते थे, मिले। महाराज अपने दरबार के परम योग्य और परम राजभक्त सभासद को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्हें पञ्जाब लौट जाने तथा ईश्वरेच्छा पर सन्तुष्ट रहने की सलाह दी। कलकत्ते में आप लार्ड डलहौजी से मिले और महाराज दिलीपसिंह को भारतवर्ष में ही रखने के लिए प्रार्थना की। लार्ड डलहौजी ने, उत्तर में, कहा—“महाराज खुद ही इंग्लैंड जाने को उत्सुक हैं। अतएव मैं कुछ नहीं कर सकता।” तब सब प्रकार से निराश होकर आपने अपने देश लौटने का विचार किया। मार्ग में काशी में अपने परम पूज्य पिता राजा रलयारामजी के पास ठहरे। यहाँ आपको सर जॉन लारेन्स का एक निमन्त्रण-पत्र मिला। इसमें आपको शिमले जाने के लिए आमन्त्रण था। तदनुसार आप शिमले गये। वहाँ २१ अक्टूबर सन् १८५१ को एक दरबार हुआ। उसमें समग्र पर्वतीय राजा उपस्थित थे। उसमें आपको “राजा बहादुर आव् किशनकोट” की उपाधि मिली। आप के पिता राजा रलयाराम को भी “राजा” की उपाधि प्राप्त हुई। इस उपाधि-प्रदान पर सर लेपल ग्रिफिन कहते हैं—“Never were honours better merited”

इस प्रकार आदर और सत्कार के बोझ से लदे हुए आप शिमले से हरद्वार होते हुए अमृतसर पहुँचे। फिर किशनकोट में शान्ति से जीवन व्यतीत करने लगे।

## कृष्णकोट ।

यह नगर आप ही का बसाया हुआ है। यह अमृतसर से तीस मील उत्तर की ओर व्यास नदी से तीन मील की दूरी पर बसा हुआ है। इसे आबाद करने के लिए आपने बहुत परिश्रम किया और खर्च भी किया। आपकी इच्छा भी पूर्ण हो गई। यह नगर है तो छोटा; परन्तु है बड़ा सुन्दर।

१८५२ से १८५४ ईसवी तक का समय ।

राजा साहिब को बहुत दिनों तक एकान्तवास का आनन्द न मिला। हर बात में सरकार उनसे मन्त्रणा और सहायता लेती थी। राजाओं और सरदारों के भगड़े उन्हीं को निपटाने पड़ते थे।

१८५७ के ग़दर में राजा साहबदयाल ने अपनी राजभक्ति का कई तरह से परिचय दिया। अतएव उनको सरकार की ओर से बहुमूल्य खिलत मिली।

१८६२ में आप नये प्रबन्ध के अनुसार जागीरदार मजिस्ट्रेट बनाये गये। १८६३ में, राजा तेज सिंह की मृत्यु पर, आपको अमृतसर के सुबेदार मन्दिर की प्रबन्धकारिणी सभा का सभापति-पद मिला। इसी वर्ष आपने सर लेपल ग्रिफिन के “पञ्जाब चीफस्” नामक पुस्तक लिखने में बहुत सहायता की।

## बड़े लाट के कौंसिल की सभासदी ।

१८५९ में, जब सरजान लारन्स ने पञ्जाब प्रस्थान किया था, तब राजा साहब ने उनसे कहा दिया था कि मुझे पूरा विश्वास है कि किसी दिन आप अवश्य गवर्नर जनरल होकर यहाँ आवेंगे। आपकी भविष्यद्-वाणी थोड़े ही वर्ष बाद सच निकली। १८६३ के नवम्बर में सर जॉन लारेन्स गवर्नर जनरल और वाइसराय के पद पर नियुक्त किये गये और जनवरी सन् १८६४ को कलकत्ते आ पहुँचे।



लारेन्स अपने पुराने मित्र को न भूले थे। आपने आते ही इन्हें हिन्दुस्तान की कानून बनानेवाली सभा का सभासद नियुक्त कर दिया। राजा साहब ने इस दो वर्ष के समय में बड़ी योग्यता से काम किया। आपकी वक्तृता तथा मंत्रणा ऐसी प्रभावशालिनी होती थी कि आप जिस बात के विरुद्ध होते वह या तो पास होने से रह जाती या आप के इच्छानुसार उसे संशोधित रूप धारण करना पड़ता।

### पिता की मृत्यु

अप्रैल सन् १८६४ ई० में आप के पिता राजा लयारामजी ने पार्थिव शरीर को त्याग परलोक को प्रस्थान किया।

### लार्ड लारेन्स और राजा साहब की मित्रता ।

लार्ड लारेन्स पञ्जाब के सरदारों और अमीरों से प्रसन्न न थे। परन्तु राजा साहबदयाल पर उनकी बड़ी कृपा थी, वे उन्हें बहुत मानते थे। यहाँ तक कि लोग इन्हें लार्ड लारेन्स की मूँछ का बाल कहा करते थे। वाइसराय आपको बहुधा कलकत्ते बुलाया करते थे और सैर तथा दौरे में भी इन्हें अपने साथ ले जाया करते थे।

सर राबर्ट मांटगोमरी, लेफ्टीनेन्ट गवर्नर, पञ्जाब, भी आपके मित्र थे। वे भी आपको बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। राजा साहब के अनुरोध से उन्होंने बहुत से सुधार किये और कानून बनाये।

### गवर्नमेंट से पदवी-प्राप्ति आदि।

सन् १८६६ ईसवी में एक बड़ा भारी दरबार आगरे में हुआ। इस दरबार में स्वर्गीया महारानी विक्रोरिया ने वाइसराय के द्वारा राजा साहब को स्टार ऑफ इंडिया (Star of India) के वीरों की श्रेणी का नाइट कमाण्डर (Knight Commander)

बनाया। अर्थात् आप के० सी० एस० आई० (K. C. S. I.) हुए।

सन् १८७७ के दिल्ली-दरबार में, जो कीन विक्रोरिया के भारतवर्ष की महारानी बनने के उपलक्ष्य में हुआ था, राजा साहब को सरकार की ओर से बहुमूल्य भेंट और “एमप्रेस” पदक मिला।

### मृत्यु ।

१७ जनवरी सन् १८८५ को इस महापुरुष ने परलोक का रास्ता लिया।

राजा साहबदयालजी पूरे योगी थे। बहुत छोटी उम्र से वे योगाभ्यास करते थे। अपने मरने का समय उन्होंने पहले ही से बतला दिया था। मरने के दिन प्रातःकाल आपने स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण किये। फिर चौकी पर बैठ कर एक घंटा समाधिस्थ रहे। तदनन्तर आपने सुखपूर्वक प्राण छोड़ दिये। अमृतसर में आपकी मनोहर समाधि बनी हुई है। \*

केशवानन्द शर्मा द्विवेदी।

### पूर्व-प्रभा ।

( १ )

संसार में किस का समय है एक सा रहता सदा !

हैं निशि-दिवा सी घूमती सर्वत्र विपदा-सम्पदा ।

जो आज राजा बन रहा है रङ्ग कल होता वही,

जो आज उत्सव-मग्न है कल शोक से रोता वही !

( २ )

चर्चा हमारी भी कभी संसार में सर्वत्र थी;

वह सद्गुणों की कीर्ति मानों एक और कलत्र थी ।

इस दुर्दशा का स्वप्न में भी क्या हमें कुछ ध्यान था;

क्या इस पतन ही को हमारा वह अतुल उत्थान था !

\* मुझे इस लेख के लिखने में उक्त राजा साहब के प्रपौत्र ठाकुर ललितचन्द्र महोदय से विशेष सहायता मिली है।

लेखक



( ३ )

‘ हाँ ’ और ‘ ना ’ भी अन्य जन करना न जब थे जानते,  
थे ईश के आदेश तब हम वेद-मन्त्र बखानते ।  
जब थे दिगम्बर वेश में वे जङ्गलों में घूमते  
प्रसाद-केतन—पट हमारे चन्द्र को थे चूमते ॥

( ४ )

जिस के प्रताप-समल रवि का तेज भी फीका पड़ा,  
अध्यात्म-विद्या का यहां आलोक था फैला बड़ा ।  
मानस-कमल सबके यहां दिन-रात रहते थे खिले,  
सब जीव मानों ईश की ज्योतिःप्रभा में थे मिले ॥

( ५ )

पाण्डित्य का इस देश में सब ओर पूर्ण विकास था,  
सब दुर्गुणों के ग्रहण में ही अज्ञता का वास था ।  
सब लोग निज कर्तव्य में संलग्न रहते थे यहां,  
हां, व्याध भी वेदान्त के सिद्धान्त कहते थे यहां !

( ६ )

थे योग-बल से वश हमारे नित्य पांचों तत्त्व भी;  
मर्त्यत्व में वह शक्ति थी रखता न जो अमरत्व भी ।  
संसार के पथ में हमारी गति कहीं रुकती न थी;  
विस्तृत हमारी आयु वह चिरकाल तक चुकती न थी ।

( ७ )

हम दूसरों के दुःख को थे दुःख अपना मानते;  
हम मानते कैसे नहीं, जब थे सदा यह जानते—  
“ जो ईश कर्ता है हमारा दूसरों का भी वही;  
हैं कर्म भिन्न परन्तु सब में तत्त्व-समता है सही ” ॥

( ८ )

थी दूसरों की आपदा-हरणार्थ अपनी सम्पदा,  
कहते नहीं थे किन्तु हम कर के दिखाते थे सदा ।  
नीचे गिरे को प्रेम से ऊँचा चढ़ाते थे हमीं,  
पीछे रहे को, घूम कर, आगे बढ़ाते थे हमीं ॥

( ९ )

सोचा प्रथम किस ने जगत में गूढ़ सृष्टि-महत्त्व को !  
जाना, कहो, किस ने प्रथम जीवन-मरण के तत्त्व को !  
आभास ईश्वर-जीव का कैवल्य तक किस ने दिया !  
सुन लो, प्रतिध्वनि हो रही—यह कार्य्य आय्यों ने किया ॥

( १० )

उन पूर्वजों की शक्ति का वर्णन अतीव अपार है;  
गाते हमीं गुण हैं न उन के गा रहा संसार है ।  
वे धर्म पर करते निष्ठावर तृण-समान शरीर थे;  
उन से वही गम्भीर थे; वर वीर थे; ध्रुव धीर थे ॥

( ११ )

उन के अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था;  
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था ।  
उपदेश उन के शान्ति-कारक थे निवारक शोक के;  
सब लोक उन का भक्त था वे थे हितैषी लोक के ॥

( १२ )

लखते न अघ की ओर थे; वे अघ न लखता था उन्हें;  
थे धर्म को रखते सदा वे; धर्म रखता था उन्हें ।  
वे कर्म से ही कर्म का थे नाश करना जानते;  
करते वही थे वे जिसे कर्तव्य थे वे मानते ॥

( १३ )

वे सजग रहते थे सदा दुःख-पूर्ण तृष्णा-भ्रान्ति से;  
जीवन बिताते थे सदा सन्तोषपूर्वक शान्ति से ।  
इस लोक में उस लोक से वे अल्प सुख पाते न थे;  
हँसते हुए आते न थे; रोते हुए जाते न थे ॥

( १४ )

वे ईश-नियमों की कभी अवहेलना करते न थे;  
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे ।  
अपने लिए वे दूसरों का हित कभी हर्ते न थे;  
चिन्ता-प्रपूर्ण अशान्ति-पूर्वक ने कभी मरते न थे ॥

( १५ )

वे मोह-बन्धन-मुक्त थे, स्वच्छन्द थे, स्वाधीन थे,  
सम्पूर्ण सुखसंयुक्त थे, वे शान्ति-शिखरासीन थे ।  
मन से, वचन से, कर्म से वे प्रभु-भजन में लीन थे  
विख्यात ब्रह्मानन्द-नद के वे मनोहर मीन थे ॥

( १६ )

जिन के मनोरम रूप से इन्द्रिय-मधुप-गण थे हिले;  
सद्भाव-सरसिज वर जहाँ पर नित्य रहते थे खिले ।  
लहरें उठाने में जहाँ व्यवहार-मारुत लग्न था;  
उन्मत्त आत्मा-हंस उनके मानसों में मग्न था ॥



( १७ )

उन के चतुर्दिक्कीर्ति-पट का है असम्भव नापना;  
की दूर देशों में उन्होंने उपनिवेश-स्थापना।  
प्रविशे जहाँ वे बस तिमिर का द्वार जानों रुक गया;  
वे झुक गये जिस ओर को संसार मानों झुक गया;

( १८ )

जहाँ उन्होंने ने जिस विषय का है किया पूरा किया;  
मानों प्रकृति ने ही स्वयं साहित्य उन का रच दिया।  
यह समय की स्थिति कहीं अनुकूल उन के हो नहीं;  
हैं किन्तु निश्चल एक से सिद्धान्त उनके सब कहीं ॥

( १९ )

संसार में जो कुछ जहाँ फैला प्रकाश-विकास है;  
इस जाति की ही ज्योति का उस में प्रधानाभास है।  
अते न उन्नति-पथ परिष्कृत आर्य्य पहले जो कहीं,  
सन्देह है तो आज यह विज्ञान बढ़ता या नहीं ॥

( २० )

सब देश विद्या-प्राप्ति को सन्तत यहाँ आते रहे;  
सुरलोक में भी गीत ऐसे देव-गण गाते रहे:—  
“हैं धन्य भारतवर्ष-वासी; धन्य भारतवर्ष है;  
सुरलोक से भी सर्वथा उस का अधिक उत्कर्ष है ॥”

( २१ )

इस भांति विश्व-शरीर में जो प्राणरूप प्रसिद्ध था;  
सब सिद्धियों में जो कभी सम्पूर्णता से सिद्ध था।  
हा हन्त ! जीते जी वही अब हो रहा बेजान है;  
प्राचीन गौरव-ज्ञान का अब ध्यान स्वप्न-समान है !

मैथिलीशरण गुप्त,

## महाबली कर्ण ।



हाभारत के सभी पात्रों के चरित शिक्षा-  
प्रद हैं। वे ध्यानपूर्वक मनन करने  
योग्य हैं। महाबली कर्ण भी उस  
दारुण युद्ध के सञ्चालकों में से एक  
प्रधान पुरुष थे। दुर्योधन के प्रगाढ़  
विश्वासपात्र होने के अतिरिक्त उनकी  
अन्तरङ्ग सभा के वे मानो सभापति थे। शकुनि

और दुःशासन इस सभा के प्रधान सभासद थे।  
इन चारों के अतिरिक्त इनके भेद को कोई न जानता  
था। ये जब साथ बैठते थे तब पाण्डवों का कुछ न  
कुछ अनिष्ट जरूर ही सोचते थे। जब जब छली  
शकुनि पाण्डवों के अहित की कोई बात, दुर्योधन  
को प्रसन्न करने के लिए, सोचता कर्ण सिर्फ उसका  
समर्थन ही न करते थे, किन्तु यह भी कहते थे—  
“इसे तुरन्त कार्यरूप में परिणत करो। जो परिणाम  
होगा मैं भुगत लूँगा। पाण्डवों से न डरो। मेरे  
सामने वे तृणवत् हैं”। दुर्योधन ऐसी ऐसी बातों  
के फेर में पड़ कर अपने को सुरक्षित समझता था।  
इसी कारण अन्तकाल तक, सन्धि के नाम के “स”  
अक्षर से भी वह नाक भौं चढ़ाता था।

क्या कर्ण सचमुच ही वीर थे? कवि कहता है,  
अवश्य थे। वह अर्जुन के बल-विक्रम के प्रभाव को  
लोगों पर प्रकट करने के लिए कर्ण को अर्जुन से भी  
बड़ा बताता है, क्योंकि यदि वह कर्ण, भीष्म, द्रोण  
आदि महारथियों से न लड़ाकर अर्जुन को अन्य  
सामान्य योद्धाओं से लड़ाता तो अर्जुन की उसमें  
कुछ भी कीर्ति न थी। कवि ने तो यह दिखलाया है  
कि अर्जुन ने अपने से भी अधिक बली कर्ण को  
मारा। इसी से वे योद्धाओं में श्रेष्ठ माने गये।

स्वयं श्रीकृष्ण ने कर्ण की प्रशंसा इस प्रकार की  
है—“जो कदाचित् यह कर्ण कवच-कुण्डलों समेत  
होता तो अकेला ही देवताओं समेत तीनों लोकों को  
जीत लेता। इन्द्र, कुवेर, बलि और यमराज भी युद्ध में  
कर्ण के सम्मुख होने का साहस न कर सकते।  
तुम गाण्डीव को, और मैं सुदर्शन को लेकर कवच-  
कुण्डलों से युक्त नरोत्तम कर्ण को जीतने के लिए  
समर्थ नहीं। कवच, कुण्डल और इन्द्र की शक्ति से  
हीन भी कर्ण सिवा तुम्हारे और किसी से मारा नहीं  
जा सकता”। बाणों की शय्या पर लेटे हुए भीष्म-  
पितामह से मिलने को जब कर्ण गये तब उन्होंने भी  
कहा—“मनुष्यमात्र में तेरे समान पराक्रमी कोई  
नहीं है। मैंने केवल कुल के द्वेष के कलङ्क से बचने



के लिए तुझसे कठोर वचन कहे । हस्तलाघव और अस्त्र-बल में तू श्रीकृष्ण और अर्जुन के समान है ।”

इसी महाबली कर्ण के डर से युधिष्ठिर को नींद न आती थी । शत्रु के बल का यथार्थ परिचय शत्रु ही को हो सकता है । युधिष्ठिर ने तो उसी दिन से कर्ण के महाबल का परिचय पा लिया था जिस दिन रङ्ग-भूमि में कर्ण ने अर्जुन से भी बढ़ कर शस्त्र-विद्या का परिचय दिया था । कर्ण लम्बे चौड़े, खूब बलिष्ठ शरीर वाले थे । विद्या भी कर्ण ने खूब पढ़ी थी । कृष्ण महाराज कहते हैं:—

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।

रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः ॥

म०भा० । ७ । १८१ । २४ ॥

इससे कर्ण के गुणवान् होने का ही पता नहीं लगता, किन्तु यह भी मालूम होता है कि उस समय उच्च शिक्षा का खूब प्रचार था । यहाँ तक कि एक सामान्य रथ हाँकने वाले का लड़का भी सब प्रकार की विद्याओं में सम्पन्न होकर राजदरबार में उच्च पद को प्राप्त कर सकता था ।

एक गुण कर्ण में सबसे प्रमुख था । वे वेहद निडर थे । घबराना वे जानते ही न थे । कई बार युद्धस्थल में पराजित होने पर भी वे भयभीत नहीं हुए । उनके असामान्य साहस का परिचय इससे अधिक और क्या हो सकता है कि एक विपैले कीड़े के दंश से मरणान्त वेदना होने पर भी उन्होंने अपने गुरु परशुरामजी के, जो उनकी जंघा पर सिर रक्खे लेटे हुए थे, जागने के भय से “सी” तक न की । पर इस अमानुषिक साहस का परिणाम अच्छा नहीं हुआ । प्रसन्न होने के बदले गुरु ने उन्हें उलटा शाप दिया । ब्राह्मण का रूप धारण करके छल करने के कारण कर्ण को गुरु ने शायद पूर्ण विद्या न दी हो, पर इतना उन्होंने अवश्य कहा था कि युद्ध में तेरे सहस्र क्षत्रियधर्म का पालन और कोई न कर सकेगा ।

कर्ण की बहादुरी के कामों के वर्णन में महा-भारत में बहुत स्याही खर्च हुई है । उन सब बातों

का वर्णन इस लेख में नहीं हो सकता । यहाँ सिर्फ इतना ही कह देना बस होगा कि जब जब अवसर पड़ा है कर्ण ने अपना कर्तव्य करने से पीछे पैर नहीं हटाया । मृत्यु-काल उपस्थित होने पर भी निडर होकर रथ के पहिये को ज़मीन से निकालने के लिए वे रथ से कूद पड़े । कर्ण के हृदय में शूरत्व और दयालुता दोनों का समावेश था । ऐसे मनुष्य शूरता के बड़े बड़े काम कर सकते हैं ; पर वे, न्याय की दृष्टि से, शासक, सेनापति या सायक के काम अच्छी तरह नहीं कर सकते । ऐसे पुरुष क्षमा भी बहुत करते हैं और दण्ड भी बहुत देते हैं । कभी करोड़ों रुपये व्यर्थ फूँक देंगे ; कभी दमड़ी के लिए लड़ बैठेंगे । इनके काम मर्यादा-रहित होते हैं । कर्ण छोटी मोटी बातों पर कभी विचार ही नहीं करते थे । इधर अर्जुन अस्त्र-विद्या में कुछ न कुछ नित्य सीखते ही जाते थे । उधर कर्ण अपने को युद्ध-विद्या में पूर्णनिपुण समझ कर दुर्योधन के साथ अपना समय कुमंत्रण में नष्ट करते थे । कर्ण यद्यपि कई अमानुषिक कर्मों में शरीक हुए, तथापि वे कभी असत्य नहीं बोले । कभी अपनी प्रतिज्ञा से, कितना ही आग्रह करने पर, वे डिगे तक नहीं । कर्ण का सच्चा आभ्यन्तरिक भाव कवि ने उस समय दिखाया है जब श्रीकृष्ण शान्तिस्थापन-कार्य से निराश होकर हस्तिनापुर से विराट-नगरी को लौट रहे थे । उस समय उन्होंने कर्ण को अपने रथ पर बिठा कर पाण्डवों की ओर होने के लिए उन्हें सलाह दी । साम-दाम-दण्ड-भेद भी दिखाये । परन्तु कर्ण ने उत्तर में कहा—“हे केशव ! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आपने सौहार्द से—प्रेम से—मेरे कल्याण की कामना से—मुझे ऐसी सलाह दी है । यद्यपि शास्त्रानुसार मैं पाण्डु का पुत्र हूँ, तथापि कुन्ती ने मेरे साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया । उन्होंने जनमते ही मुझे गंगा में फेंक दिया । दैवयोग से सूत-वंश के राजा अधिरथ ने मुझे पाया और मेरा पालन किया । मेरा विवाह भी उन्होंने किया । अब मैं अपने माता, पिता आदि को नहीं छोड़ सकता । न मैं उन्हें हर्ष से छोड़ सकता हूँ, न भय से । न मैं



इस सारी पृथ्वी के राज्य के लिए उन्हें छोड़ सकता हूँ, न सोने की राशियों के लिए। फिर, दुर्योधन की कृपा से मैंने तेरह वर्ष की अवस्था से आज तक अकण्टक राज्य भोगा है। उसने पाण्डवों से विग्रह मेरे ही भरोसे किया है। क्योंकि वह जानता है कि अर्जुन के साथ सिवा मेरे और कोई नहीं लड़ सकता। इससे अब मैं दुर्योधन के साथ बंधुवा बनने और आगत भय का सामना करने के लिए तैयार हूँ। युधिष्ठिर का पक्ष अब मैं नहीं ले सकता। अर्जुन ने भी मुझे मारने की प्रतिज्ञा की है और मैंने अर्जुन को मारने की। यदि हम दोनों इस प्रतिज्ञा को तोड़ेंगे तो हमारा दोनों का हास्य होगा। आपसे मेरी एक प्रार्थना है। अपनी और मेरी इन गुप्त बातों की खबर युधिष्ठिर को न होने पावे। क्योंकि, धर्मात्मा युधिष्ठिर जब मुझे अपना ज्येष्ठ भ्राता जानेंगे तब वे अपना राज्य मुझे दे देंगे और मुझको वह दुर्योधन को देना होगा। पर यह महा अनुचित कार्य होगा, क्योंकि धर्मात्मा युधिष्ठिर ही राजा होने योग्य हैं”।

यही वाक्य कर्ण ने, बड़ी धीरता और शान्ति से, कुन्ती से भी कहा। कुन्ती ने कर्ण को फुसला कर अपने पक्ष में लाने का बहुत प्रयत्न किया। वह भी कर्ण से कहा कि मैं तेरी सच्ची माता हूँ। परन्तु, कर्ण ने एक न मानी। कुन्ती ने कर्ण के साथ माता का सा व्यवहार नहीं किया था। उसने अपना अनुचित-कर्म-फल छिपाने के लिए कर्ण को नदी में फेंक दिया। इससे कर्ण के सद्रंश-प्रयत्न का नाश हो गया और उन्हें अनेक शरमिन्दा होना पड़ा। परन्तु यह बात कर्ण को उदारता का परिचय देती है कि उन्होंने अपनी माता के साथ भी असभ्यता का व्यवहार नहीं किया। उलटा कुन्ती की चित्त-शान्ति के लिए यह कहा—“अर्जुन के या मेरे मारे जाने पर तेरे फिर पाँच पुत्र रहेंगे।” आज कल के लोग तो ऐसी माता को कुर्वे में डुबो देंगे। परन्तु कर्ण के इस सद्व्यवहार से मालूम होता है कि कर्ण माता ही को नहीं, स्त्री-जाति मात्र को किस आदर की दृष्टि से

देखता था और दुर्योधन से दूर रहने पर किस प्रकार का सभ्याचरण करता था।

दानी भी वे बड़े विख्यात थे। इस विषय में कर्ण का आसन हरिश्चन्द्र और राजा बलि के आसन से नीचे नहीं। कर्ण सूर्यदेव के उपासक थे। उनकी उपासना के पश्चात् राजा याचकों को वे इच्छा-दान देते थे। वे ऐसे दानी थे कि अपने प्यारे प्राणों के रक्षक कवच-कुण्डलों तक को उन्होंने छली इन्द्र को देने में सङ्कोच न किया। हमारे यहाँ के धर्माचार्य कर्ण के इस दान की चाहे जितनी प्रशंसा करें, परन्तु पाश्चात्य अर्थशास्त्री तथा राजनैतिक ऐसे दान को अच्छा नहीं समझेंगे। ऐसे ही मर्यादारहित दानों ने इस काञ्चनमय भारत को दरिद्री बना दिया है।

जब हम कर्ण के जीवन का दूसरा पहलू देखते हैं तब मन सहसा अधीर हो उठता है। हाय, जिस महात्मा के बल, विक्रम और बुद्धि को देख कर महाक्रोधी परशुरामजी भी प्रसन्न हो गये थे, दैव-योग से वही दुर्योधन का साथी हो गया। इसका भी एक प्रबल कारण है। यद्यपि कर्ण का पालन-पोषण सूतवंश में हुआ था, तथापि उसका जन्म उच्च क्षत्रिय-वंश में हुआ था। उनकी रंगों में क्षत्रिय-रक्त बहता था। उनमें क्षत्रियों के सब गुण थे। कर्ण की आत्मा महान् थी। इसी से कर्ण भी उच्च सैनिक शिक्षा पाने के प्रबलाकांक्षी हुए। अपने ही उद्योग से उन्होंने परशुरामजी को प्रसन्न करके विद्या सीखी। राजकुमारों की परीक्षा के लिए द्रोणाचार्य द्वारा बनाई हुई रङ्ग-भूमि में कर्ण भी गये। राजकुमारों ने अपना रण-कौशल दिखाया। इस पर कर्ण से न रहा गया। कर्ण ने भी अपनी शस्त्र-विद्या की परीक्षा दी। देख कर सब लोगों ने कर्ण के गुणों की प्रशंसा की। पाण्डव-राजकुमारों को यह बात बहुत ही बुरी लगी। वे कहने लगे कि एक नीच सूतपुत्र राजकुमारों की समता नहीं कर सकता। कृपाचार्य ने यह बात भरी सभा में कही। इस पर उदारहृदय कर्ण यद्यपि लज्जित हो गया तथापि धीरतापूर्वक उसने कहा—“गुण से वंश



का कोई सम्बन्ध नहीं। क्षत्रियों में बल ही देखा जाता है।” दुर्योधन, जो जन्म ही से पाण्डवों का द्वेषी था, कर्ण के पराक्रम से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कर्ण को तुरन्त लार्ड की पदवी से भूषित कर अपने पक्ष में कर लिया। पाण्डवों तथा अन्य कौरवों से तिरस्कृत हुआ कर्ण खुशी से दुर्योधन के दल में जा मिला। दुर्योधन ने उसको यहाँ तक अपनाया कि उस समय से अन्तकाल तक कर्ण का मुख्य धर्म दुर्योधन को प्रसन्न करना हो गया। इसी लिए “द्रौपदी-वस्त्रहरण”, “द्वैतवन की घोषयात्रा”, “विराट-गो-हरण” आदि नीच कर्मों में कर्ण ने दुर्योधन का साथ दिया। पर, फिर भी कर्ण ने उदारता नहीं छोड़ी। वह क्षमा के उत्तम गुणों को जानता था। दुर्योधन की सी हठ कर्ण में न थी। जितने अनर्थ कौरव-सभा में हुए थे सब कर्ण के दिमाग से न निकले थे। वे नीच दुर्योधन और छली शकुनि के मनोविकार थे। कर्ण की सबसे बड़ी दुर्बलता यह थी कि उन्होंने बिना सोचे-विचारे इन सब अनर्थों में योग दिया। दुर्योधन में कुछ ऐसी शक्ति थी कि वह जिससे चाहता था अपना काम करा लेता था। वह बनना खूब जानता था। कभी वह रो देता, कभी हँस देता था। जैसे ही अपने कार्य-साधन से ही उसे प्रयोजन था। वह इसमें इतना दक्ष था कि विदुर की उदार नीति, भीष्म के सन्धि-व्याख्यान, माता-पिता के हितैषी वचन, कृप-द्रोणदि के सदुपदेश—उसके हठ के सामने सब व्यर्थ हो गये। उलटा इन लोगों को दुर्योधन ही का कहना करना पड़ा। फिर भला कर्ण तो उसके परम मित्र ही थे। यद्यपि कर्ण को विदित था कि पाण्डवों की ही जीत होगी और उसने पाण्डवों को कटु वचन कहने के कारण पश्चात्ताप भी किया था, तथापि दुर्योधन के प्रेम-पाश में फँसने और क्षत्रियत्व के मद से उत्तेजित होने के कारण उसे युद्ध करना ही पड़ा। दुर्योधन का कहना कर्ण को यहाँ तक मान्य था कि उन्होंने बिना आगा पीछा सोचे उस अमोघ शक्ति को, जो बड़े

यत्न से अर्जुन को मारने के लिए रखी हुई थी, घटोत्कच के ऊपर छोड़ दिया।

राजनीति का भी कर्ण को अच्छा ज्ञान था। यह उनकी उस समय की उक्ति से सूचित होता है जब दुर्योधन गन्धर्वों से हार कर और पाण्डवों के द्वारा मुक्त किये जाकर, लज्जावश आत्मघात करने पर उतारू हुआ था। कर्ण कहते हैं—“हे दुर्योधन! तुम राजा हो। पाण्डव तुम्हारी प्रजा हैं। प्रजा का धर्म है कि अपने राजा को संकट से छुड़ावे। इसलिए यदि पाण्डवों ने तुम्हें गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाया तो इसमें अनुचित क्या हुआ। दुःख की कौन बात है”। इन वचनों ने जादू का सा असर किया। दुर्योधन सारे दुःख भूल कर उठ खड़ा हुआ। भीष्मपितामह के मरने पर, स्वयं सेनापति बनने की प्रबल आकांक्षा करके भी, द्रोणाचार्य को सेनापति बनाने का परामर्श देना भी कर्ण आत्मत्याग को सूचित करता है।

हम लोगों की आदत सी पड़ गई है कि महाभारत और रामायण पढ़ते ही हम पाण्डवों और राम की बड़ाई करने लगते हैं और विपक्षी दुर्योधन और रावण की निन्दा। यह न्याय नहीं। यह पक्षपात को न कहा जायगा। समदर्शी न्यायाधीश वही कहा जायगा जो वादी-प्रतिवादी दोनों के विवेचन को ध्यानपूर्वक सुनेगा, न कि वह जो मुद्दई के इज्जत को तो लिख ले और मुद्दाअलेह की सुने ही नहीं। सिध हम रावण ही ने अन्याय नहीं किया। राम ने भी रावण की बहिन शूर्पणखा का नासिका-छेदन करके मानी रावण का अपमान किया। यद्यपि शूर्पणखा असभ्याचरण किया था, तथापि वह स्त्री थी और रावण की प्रजा थी, न कि राम की। अन्य राजा प्रजा ने राम के राज्य में (यद्यपि राम उस राजा न थे) ऊँधम मचाया था तो राम के पास इस बात की सूचना भेजनी थी। शूर्पणखा को कुरूप न करके उसे कैद कर लेना चाहिए। इस विचार से आज कल “International Law” और हेग-न्यायालय की स्थापना हुई है।



इसी तरह वीर बालक अभिमन्यु की मृत्यु के समय में यदि यह पूछा जाय कि सबसे अधिक पाप-किसने किया तो निष्पक्ष न्यायाधीश यही होगा कि द्रोणाचार्य ने। क्योंकि वे सेनापति थे, और इन्होंने यह पापपूर्ण युक्ति कर्ण को बतलाई थी—

अथैनं विमुवीकृत्य पश्चान् प्रहरणं कुरु ।

स धनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥

म० भा० ७। ४८। ३०

तो क्या और लोग पाप के भागी नहीं हैं ? वर्य हैं। उन्होंने तत्काल ही इसका दण्ड भी तो दिया। परन्तु वह समय वैसा ही था। घोर आपत्ति पर मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। फिर महाबली क्षत्री थे। वे अपमान को नहीं सह सकते थे। पाण्डवों तथा भीष्म, द्रोण आदि ने उनके साथ छोटेपन से ही बड़ा असभ्य व्यवहार किया था। पहले तो माता ही ने उसके साथ व्यवहार किया। फिर, कर्ण ने आत्मबल से अपने ऊँचा उठाने की जो चेष्टा की तो लोगों ने और रामोच नीच”, “अनधिकारी अनधिकारी”, इत्यादि कर उसको समाज से बिलगा कर उसके क्षत्रि-पक्षपात को नष्ट करना चाहा। आज कल जो होनहार ही कल विदेश जाकर और विद्यासम्पन्न होकर स्वदेश लौटते हैं, या यहाँ जो आत्म-उद्योग से अपनी प्रतिष्ठा करके समाज के हित की ओर झुकते हैं, उनके लिए हम भी, आज कल, बड़ा असभ्य व्यवहार करते हैं। हर प्रकार से उनका अनिष्ट सोच कर उनकी प्रति-शान्ति को दूर करने का उपाय करते हैं। ठीक वही अन्याय कर्ण के साथ भी हुआ। उसके आचारिक नैपुण्य की प्रशंसा करने के बदले कुरु लोगों ने उसको, “सूत-पुत्र, अर्द्धरथी, वृथाभिमानी” कह कर चिढ़ाया। वह समय ऐसा था कि क्या ब्रह्मण क्या क्षत्रिय, जरा से अपमान के कारण, शाप देने या क्षमा करने को उतारू हो जाते थे। क्षमा माँगने में क्षमा कठिनता से मिलती थी। अपमान के क्षणों में कर्ण कहीं तक असमर्थ था यह उसकी प्रकृति से—उस प्रतिज्ञा से—साबित होता है जो

उसने भीष्म-पितामह के कटुवचन कहने पर की थी कि पितामह के जीते मैं युद्ध न करूँगा। यह भूल दुर्योधन के लिए बड़ी घातक थी।

हमारी अल्प बुद्धि में तो यह आता है कि कर्ण को पाण्डवों ने अपने असभ्य व्यवहार से दुर्योधन के पक्ष में जाने को विवश किया। इसी तरह रावण के अनुचित बर्ताव से विभीषण को भ्रातृद्रोही होना पड़ा। किसी पर्वत से गिरती हुई पानी की धारा को रोकना जैसे बड़ा कठिन और भयानक काम है वैसे ही किसी होनहार महात्मा को छोटेपन से दबाने की चेष्टा करना भी अनर्थकारक है। मनुष्य-प्रकृति इस पर चिढ़ती है। यही कर्ण के चरित से सबसे बड़ी शिक्षा हमें मिलती है।

किसी महात्मा को अकारण कुपित करने का परिणाम यह होता है कि दो पक्ष हो जाते हैं। हर एक पक्ष दूसरे का अनिष्ट चाहता है। महा-भारत में भी यही हुआ। यद्यपि पाण्डवों की जीत हुई, तथापि उनको इस जीत का दण्ड व्याजसहित देना पड़ा। जो कुछ उनको प्यारा था—अभिमन्यु, द्रौपदी, कुमार—सभी द्वेषाग्नि में स्वाहा हो गये। और यह हुआ कि जब कौरव लोग शान्ति-पूर्वक स्वर्ग में विश्राम करते थे तब पाण्डव लोग अपने प्रेमी जनों के वियोग में रोते थे। किसी तरह उनका चित्त शान्त न हुआ। अन्त में विरक्त होकर उन्हें जंगल को जाना पड़ा। नहीं कह सकते कि इस युद्ध के कारण किसे अधिक लाभ हुआ।

खेद की बात है कि कर्ण ऐसा उदाराशय और वीर कुछ तो माता के दोष से और कुछ समाज के कुव्यवहार से, ऊब कर, दुर्योधन की दुष्ट संगति में पड़ गया। इसीसे वह कर्म-भ्रष्ट हुआ।

कर्ण ही की तरह अनेक होनहार युवक माता-पिता के दोष और समाज के कठोर तिरस्कार से पीड़ित होकर बड़े बड़े अनर्थ कर बैठते हैं।

बदरीदत्त पाँडे ।



## प्रेम-प्रशस्ति ।

( १ )

प्रेम है क्या वस्तु, यह कोई बता सकता नहीं ।  
है अनिर्वचनीय सुख, कोई जता सकता नहीं ॥  
प्रेम, मानव-धर्म है, सत्कर्म—सद्व्यवहार है ।  
प्रेम, प्यारा पतित-पावन शान्ति का आधार है ॥

( २ )

प्रेम है वेदान्त का सिद्धान्त, सिद्ध विचार से ।  
शुद्ध होता है हृदय सत्प्रेम के सञ्चार से ॥  
प्रेम का क्या मर्म है, सो सब समझ सकते नहीं ।  
प्रेम मिलता भी नहीं है सब समय या सब कहीं ॥

( ३ )

मग्न रहते हैं सदा जो प्रेम-पारावार में ।  
है उन्हें कोई नहीं सन्ताप इस संसार में ॥  
प्रेम है स्वर्गीय भाव, प्रभाव इसका है बड़ा ।  
प्रेम के अनुगत सदा आनन्द आगे है खड़ा ॥

( ४ )

प्रेम की बातें निराली देख पड़ती हैं सभी ।  
प्रेम-बन्धन कष्ट-कारण हो नहीं सकता कभी ॥  
प्रेम अक्षय है, अभय है, प्रेम आदरणीय है ।  
प्रेम योग, वियोग, तप, संयोग-फल कमनीय है ॥

( ५ )

शुद्ध सात्त्विक लोक-पावन प्रेम सच्चा है जहाँ ।  
हाँ, वहाँ फिर स्वार्थपरता-छल-कपट-कौशल कहाँ ॥  
प्रेम-पथ के प्रिय पथिक संसार-हित करते रहें ।  
संकटों का सामना साहस सहित करते रहें ॥

( ६ )

प्रेम का बदला, नहीं संसार की सम्पत्ति है ।  
प्रेम ही से प्रेम की होती अधिक प्रतिपत्ति है ॥  
प्रेमधन पाकर अकिञ्चन भी सुखी स्वाधीन है ।  
प्रेम-धनवञ्चित पुरन्दर हीन से भी हीन है ॥

( ७ )

मोम पत्थर को करे इस प्रेम में वह शक्ति है ।  
शत्रु भी हो मित्र, जो कुछ भावना की भक्ति है ॥  
हों सके सम्भव असम्भव प्रेम-कार्य-कलाप से ।  
हाँ, अयोग्य-सुयोग्य बनता प्रेम-पुण्य-प्रताप से ॥

( ८ )

पड़ प्रलोभन में अहो प्रेमी भटकते हैं नहीं ।  
हाय हाय मचाय हर दम सिर पटकते हैं नहीं ॥  
सब प्रकार विकार से बच कर भला करते रहें ।  
तत्त्वदर्शी दूसरों के वास्ते मरते रहें ॥

( ९ )

प्रेम ही सौन्दर्य है, सौन्दर्य ही बस स्वर्ग है ।  
देव-दुर्लभ प्रेम ही से प्राप्य पद अपवर्ग है ॥  
प्रेम-हीन हृदय अहो सचमुच उजाड़ मसान है ।  
प्रेम जिसमें है नहीं प्रत्यक्ष वह शैतान है ॥

( १० )

प्रेम-पण्डित ही प्रकृत 'अद्वैत' को है जानता ।  
ईश को संसार में सर्वत्र सब में मानता ॥  
है न उसके चित्त में हिंसा-प्रवृत्ति बलीयसी ।  
है उसे सब ही जगह विश्वेश की वाराणसी ॥

( ११ )

प्रेम के अधिकार में उलटा नियम देखा गया ।  
है अहो परतन्त्रता में पूर्ण सुख लेखा गया ॥  
सौंप कर सर्वस्व प्रिय को, आप खाली हाथ हैं ॥  
दूरही से देख कर गद्गद-प्रसन्न-सनाथ हैं ॥

( १२ )

प्रेम ही ऐश्वर्य आत्मा का, अलौकिक रत्न है ।  
प्रेम ईश्वर-प्राप्ति का उत्तम सहजतम यत्न है ॥  
बुद्ध, ईसा और प्रभु गौराङ्ग प्रेमाचार्य थे ।  
लोक के आदर्श उनके लोक-प्रिय सत्कार्य थे ॥

( १३ )

प्रेम नीरव साधना आराधना का पन्थ है ।  
प्रेम गूढ़ गभीर तत्त्वों से भरा सद्ग्रन्थ है ॥  
प्रेम के साहित्य में भाषा नहीं है, भाव है ।  
भावना ही प्रेमियों का स्वयंसिद्ध स्वभाव है ॥

( १४ )

किन्तु, देखो जिस जगह के प्रेम में कुछ स्वार्थ है ।  
जान लो, वह है बनिज, उसमें न प्रेम यथार्थ है ॥  
दूकानदारी पर भरोसा भूल कर करना नहीं ।  
मतलबी हैं मित्र लाखों, मुग्ध हो मरना नहीं ॥



( १५ )

स्वार्थ-कलुषित प्रेम इन्द्रिय-लालसा की पूर्ति है ।  
है असल की वह नकल, उसमें न कल, न स्फूर्ति है ॥  
जाल है वह दण्ड-लायक स्वार्थियों की 'चाल' है ।  
चातुरों में चल न सकता, क्योंकि खोटा माल है ॥

( १६ )

प्रेम है सोना खरा, तांबा तमोगुण की कला ।  
मेल में यह 'मेल' होना है नहीं बिल्कुल भला ॥  
आंच लगने से ज़रा यह रंग रहने का नहीं ।  
अन्त को खोटे खरे का संग रहने का नहीं ॥

( १७ )

सुर-असुर में और सुरभी-श्वान में जो भेद है ।  
कल्पतरु-तृण, ज्ञान औ अज्ञान में जो भेद है ॥  
नेक-बद में और काञ्चन-काच में जो भेद है ।  
प्रेम में त्यों आत्मसुख की चाह में सो भेद है ॥

( १८ )

सत्य, शिव, सुन्दर सदा प्रिय प्रेम प्रभु का रूप है ।  
और मतलब गाँठने की चाह अन्धा कूप है ॥  
प्रेम में आभास भी अश्लील बातों का नहीं ।  
नाम भी स्वार्थी जनों की घोर घातों का नहीं ॥

( १९ )

कर्मयोगी प्रेमियों को कर्म ही की चाह है ।  
कष्ट हों लाखों, मगर इसकी न कुछ परवाह है ॥  
प्रेमकाञ्चन की कसौटी दुःख संकट कष्ट है ।  
खूब कस कर देख लो, बस यह परीक्षा स्पष्ट है ॥

( २० )

फूल मलने ही से मिलता अति सुगन्धित इत्र है ।  
अगुरु जलने ही से फैलाता सुगन्ध पवित्र है ॥  
खूब पत्थर पर रगड़ने ही से चन्दन भी तथा ।  
सुष्टु सौरभ दान करता और हरता है व्यथा ॥

( २१ )

इस तरह जब जीव भी आपत्ति-पावक में पड़े ।  
मलरहित हो छोड़ छल सहता अनेकों दुःख कड़े ॥  
प्रेम परमानन्दमय दृढ़ सिद्ध होता है तभी ।  
तुच्छ तृण-सम जान पड़ते हैं जगत के सुख सभी ॥

( २२ )

अन्ध-तम में जिस तरह हीरा दमकता खूब है ।  
नील नभ में चन्द्रमा जैसे चमकता खूब है ॥  
रात ही में दीप की जैसे रहे रमनीयता ।  
कष्ट ही में प्रेम की वैसे बड़े कमनीयता ॥

( २३ )

प्रेम है पर्वत-सदृश सुस्थिर, कभी टलता नहीं ।  
इन प्रकृत की टकरों का जोर कुछ चलता नहीं ॥  
प्रेम, जो सूखे नहीं ऐसी अलौकिक भील है ।  
काल-गति के तुल्य हरदम प्रेम वर्द्धन-शील है ॥

( २४ )

प्रेम की पुस्तक न पूरी कर सके कवि भूमि का ।  
यह बहुत संक्षेप में लिख दी गई है भूमिका ॥  
प्रेम को प्रत्यक्ष पात्रोगे स्वयं सद्बुद्धि से ।  
विश्व को पावन बनाओगे हृदय की शुद्धि से ॥

( २५ )

प्रेम-परिचय के लिए ही यह प्रबन्ध निहारिये ।  
प्रेम ऐसा कीजिये जिसमें न बाज़ी हारिये ॥  
प्रेम से उपकार होगा आपका त्यों देश का ।  
प्रेम से दर्शन मिलेगा आपको परमेश का ॥

रूपनारायण पाण्डेय । ( कमलाकर )

## ❁ प्राचीन ग्रीस की जातीय शिक्षा ।



क लोगों की सभ्यता जितने दिनों तक स्वाधीन भाव से विकाश और विस्तृति लाभ कर रही थी उतने दिनों तक देश, काल और अवस्था के अनुसार उनकी शिक्षा-पद्धति में जो सब परिवर्तन हुए थे, इस लेख में केवल उन्हीं का संक्षिप्त उल्लेख किया जायगा । इस परिवर्तन-समूह में प्रधानतः दो बातें विशेष उल्लेख-योग्य हैं:—(१) डोरीय जाति की चिरस्थायिनी शिक्षापद्धति और (२) आयोनीय जाति की परिवर्तनशील शिक्षापद्धति ।

❁ बाबू बदरीनाथ वर्मा, बी० ए० ने बंगाला से हिन्दी में अनुवाद किया ।



डोरीय जाति की शिक्षापद्धति ने स्पार्टा नगर में विकाश पाया था। इस कारण स्पार्टा की सभ्यता और शिक्षा आलोचित हुई है। आयोनीय जाति की शिक्षापद्धति ने एथेन्स नगर में विशेष प्रतिष्ठा-लाभ किया था। इस कारण ग्रीक-शिक्षापद्धति के इतिहास में एथेन्स की सभ्यता और शिक्षा आलोचित हुई है।

यह न समझिए कि केवल जातिगत वैचित्र्य के कारण ही शिक्षा-वैचित्र्य हुआ था। समय के परिवर्तन के साथ अवस्था का परिवर्तन होने से शिक्षापद्धति का भी रूपान्तर हुआ था। इस रूपान्तर ने स्पार्टा के डोरीय समाज को किसी प्रकार स्पर्श नहीं किया था। एथेन्स में ही शिक्षापद्धति का क्रमिक विकाश और अवस्थान्तर हुआ था। इस कारण एथेन्स की सभ्यता और शिक्षापद्धति के क्रमविकाश की ओर विशेष भाव से दृष्टिपात करना पड़ा है।

इस प्रकार की विभिन्न शिक्षापद्धति का चित्र देने के लिए, समाज में वस्तुतः जिस प्रकार शिक्षाकार्य होता था उसी का वर्णन इस प्रबन्ध में किया गया है। स्पार्टा और एथेन्स में, भिन्न भिन्न युगों में, शिक्षा के सम्बन्ध में, साधारण लोगों का जैसा विचार था, शिक्षक और समाज का जैसा सम्बन्ध था, शिक्षार्थियों का जैसा उद्देश था, राष्ट्र के साथ शिक्षा-व्यवस्था का जैसा संस्व था,—इन्हीं बातों का विवरण इसमें दिया गया है। राष्ट्रीतिज्ञ अथवा व्यवस्थापक-सभा के प्रधान प्रधान मन्त्री शिक्षा के उद्देश, उपकरण तथा प्रणाली के सम्बन्ध में जिस प्रकार के मत प्रकाशित करते थे, अथवा साक्रेटिस, प्लेटो, अरिस्टाइल आदि पण्डितों और दार्शनिकों ने राष्ट्र और शिक्षा के सम्बन्ध में जिस प्रकार के मतवाद प्रतिष्ठित किये थे, शिक्षापद्धति के जैसे जैसे आदर्शों का उल्लेख किया था—इन बातों का वर्णन इसमें नहीं दिया गया। इनके दार्शनिक सिद्धान्तों का विशद वर्णन तो नहीं दिया गया, पर ये लोग आचार्य और अध्यापकभाव से शिक्षण का काम किस प्रकार करते थे, अपने अपने विद्यालयों के प्रतिष्ठाता की हैसियत से किस प्रकार विद्यादान और शिक्षाविस्तार करते थे, अपने शिष्यों के साथ कैसा व्यवहार करते थे—यही सब इस प्रबन्ध में आलोचित हुआ है।

इसके सिवा, दिग्विजयी सिकन्दर के उत्तराधिकारियों ने एशिया, यूरप और आफ्रिका के भिन्न भिन्न प्रदेशों को हस्तगत

करके सारी पृथ्वी के बीच में, पूर्वी और पश्चिमी भूभाग के मिलनमन्दिर के रूप में, सभ्यता-विस्तार करने का केन्द्ररूप नगर स्थापनपूर्वक मानवसमाज को ग्रीकसभ्यता द्वारा रञ्जित करने का जो प्रयास किया था, उस ग्रीकसभ्यता के आधिपत्य के समय शिक्षापद्धति का किस प्रकार परिवर्तन हुआ, इसका कोई चित्र इसमें नहीं दिया गया। नई नई शक्तियों के संस्पर्श और नई नई घटनावलियों के प्रभाव से ग्रीकसभ्यता ने नया रूप धारण किया। तदनन्तर वह अपने केन्द्र, प्राचीन ग्रीस, को छोड़ कर एशिया और आफ्रिका के भिन्न भिन्न स्थानों में प्रतिष्ठित हुई।

थोड़े ही समय में रोमन-साम्राज्य ने मैसिडोनिया-साम्राज्य के प्रदेशों का ग्रास करके ग्रीकसभ्यता के विस्तार का दायित्व ग्रहण किया और रोम की प्रचलित प्रणाली से ग्रीकसभ्यता का तदनुकूल संस्करण कर डाला। अतएव सन् ईसवी के पूर्व, तीसरी शताब्दी के आरम्भ से लेकर रोमसभ्यता के अवसान तक, ग्रीकसभ्यता ने अपनी पवित्रता और स्वातन्त्र्य खोकर मैसिडोनिया और रोम का रूप धारण किया। मैसिडोनिया की इस ग्रीकसभ्यता का प्रधान केन्द्र नीलनदतटवर्ती अलेग्ज़ांड्रिया नगर था और रोम की ग्रीकसभ्यता का प्रधान केन्द्र रोम नगरी थी। इस अवस्थाविपर्यय के कारण प्राचीन ग्रीस के एथेन्स नगर ने भी मैसिडोनिया तथा रोम की शिक्षा का भाव धारण किया।

नवभाव-प्राप्त एथेन्स, नवप्रतिष्ठित अलेग्ज़ांड्रिया, अथवा ग्रीकभावापन्न रोम, एक भी केन्द्र प्राचीन ग्रीस का निदर्शक नहीं। अतएव प्राचीन ग्रीस की जातीय शिक्षापद्धति के इतिहास में इनका कोई स्थान नहीं।

इस नव युग में, ग्रीक लोगों की स्वाधीनता नष्ट होने से, नवप्रवर्तित विजातीय राजतन्त्र की अधीनता में, उनके स्वाभाविक जातीय जीवन का गतिरोध हुआ। पुराने छोटे छोटे नगरराज्यों के बदले नये नये शासन-प्रणाली-विशिष्ट विभिन्न प्रदेशराज्य, साम्राज्य, युक्तराज्य-समूह ने प्राचीन जातीय भाव का विनाश करके अभिनव जातीयता तथा नये राष्ट्रीय जीवन का उत्पादन किया।

राष्ट्र-समूह विभिन्न भाषा-भाषियों और विभिन्न देश-वासियों की आवासभूमि होता गया। अपने अपने दल, जनपद अथवा नगर की चहारदीवारी के भीतर बंधे न रह कर लोग



नये नये देश-भ्रमण, नये नये समाज, नये नये आचार-व्यवहार और नये नये धर्म के संस्पर्श से प्रशस्तमना और उदार-चेता होने लगे। भिन्न भिन्न राज्यों के अधिवासियों और राजाओं की विवाहप्रथा प्रचलित होकर एक दूसरे के बीच सख्य, ऐक्य और सहानुभूति बढ़ाने लगी।

विचारालय और राजदरबार में सर्वत्र ग्रीकभाषा के प्रवर्तित होने से अनेक देशों में एक भाषा का प्रचलन हुआ; शिल्पवाणिज्यविस्तार के फल से, भाव और कर्म का आदान-प्रदान सुसाध्य हुआ और विभिन्न प्रदेशों में—विभिन्न स्थानों में—सभ्यताविस्तार के नये नये केन्द्र प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार नाना उपायों से व्यापकता और विश्वजनीनता की पुष्टि होने लगी।

इस तरह अवस्था-परिवर्तन के कारण वहाँ के निवासियों के विचारों में भी युगान्तर उपस्थित हुआ। स्वराज्य के राष्ट्रीय कामों में व्यक्तिविकाश और जीवनगठन के सुयोगसमूह के नष्ट होने से उसकी चिन्ता और कर्म राष्ट्रीय जीवन से विच्युत हो गये। अतएव नैतिक जीवन का भार, केन्द्र-स्थान से अष्ट होकर, जीवन के नये उद्देश्य और कर्म के नये लक्ष्य तथा समाज के नये प्रतिष्ठान की सृष्टि करने लगा।

कर्मठ, उत्साही, सामरिक-शक्तिसम्पन्न व्यक्तिगण स्वदेश में उपयुक्त कर्मक्षेत्र न पाकर दूर देश में जाकर अपनी प्रवृत्ति और प्रकृति के विकाश के साधनोपयोगी जीवन बिताने लगे। बुद्धिमान् पण्डितगण राष्ट्रविचारालय, मन्त्रणासभा आदि सामाजिक कर्मक्षेत्रों को छोड़ कर निभृतस्थान में शिष्यों द्वारा परिवृत्त होकर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार विद्यालय और आलोचनासङ्घ आदि चिन्ता के केन्द्र प्रतिष्ठित करने लगे।

अतएव व्यक्तिगत स्वाधीनता, और स्वातन्त्र्यप्रियता स्थिरप्रतिष्ठ हुई। जो स्वाधीन चिन्ता बहुत दिनों से ग्रीक-समाज में प्रवर्तित होरही थी, वह नई घटनावली के प्रादुर्भाव से, स्वाभाविक रूप से, अव्यवस्थित भाव से, बढ़मूल होने लगी। जेता और एपिकिउरस, और उनके मतवलम्बी सारे सम्प्रदाय, इस मत का खण्डन करके कि राष्ट्रीयजीवन की पुष्टि से व्यक्ति की सम्पूर्णता प्राप्त होती है—राष्ट्र और समाजविच्युत स्वाधीन और परिपूर्ण व्यक्तिविकाश के आदर्श और उपाय आदि के सम्बन्ध में मत प्रकाशित करने लगे।

ग्रीकजीवन ने ऐसी व्यापकता, विश्वजनीनता, व्यक्तित्व, स्वातन्त्र्य और स्वाधीनता द्वारा अनुरजित होकर साहित्य, कला, रीतिनीति आदि सभ्यता के विविध अङ्गों का रूपान्तर कर डाला।

साहित्यसेवी और विद्यानुरागी राजाओं ने ज्ञानानुशीलन और विद्याचर्चा के लिए गृहप्रतिष्ठा, भूसम्पत्तिदान, अर्थ-साहाय्य आदि विविध उपायों से पण्डितों के कार्य में सहायता दी। पण्डित-सभा, समालोचना-समिति, अजायबघर, पुस्तकालय, विज्ञान-मन्दिर आदि उनके सुभीते के लिए प्रतिष्ठित किये गये। ग्रीक, मिश्रदेशीय, बौद्ध आदि विभिन्न मतवालों के सङ्घर्षण से नये नये विचारों की उत्पत्ति हुई। प्राकृतिक और मानवीय, दोनों प्रकार की विचित्र घटनावलियों और कार्यों का विवरण तैयार होने लगा। भिन्न भिन्न देशों से विचित्र पदार्थ विद्वानों की सभाओं में लाये जाकर आलोचित होने लगे।

भिन्न भिन्न भाषाओं में रचित ग्रन्थों के अनुवादों ने विद्वन्मण्डली में प्रचार पाया। उन्होंने लोगों की ज्ञानेच्छा बढ़ाई। सब कहीं नाना विषयों को लेकर चिन्ता, गवेषणा, आलोचना, तर्क, वादानुवाद, व्याख्या आदि कार्य होने लगे। शिष्यजन अपने गुरुओं के मतवादों की टीका-टिप्पणी लिखने लगे।

धीरे धीरे तुलना और श्रेणी-विभाग-प्रणाली के अवलम्बन का सुयोग उपस्थित हुआ। सजीव और निर्जीव पदार्थ, तथा भाषा और विज्ञान आदि के नियम, क्रमान्वय, और कार्यकारण-सम्बन्ध आदि आविष्कृत होने लगे। परस्पर की तुलना और तारतम्य के फल से वैज्ञानिक और दार्शनिक मत-वाद तथा विचारपरम्परा का स्थान, क्रम और पर्याय निश्चित होने लगा। मतों ने श्रेणीबद्ध और शृङ्खलीकृत होकर प्रकृत विज्ञान का रूप धारण किया।

यथासमय एक सच्चा वैज्ञानिक युग आकर उपस्थित हो गया। गणित, ज्योतिष, ज्यामिति, भूगोल, इतिहास आदि विविध विद्याओं का उत्कर्ष हुआ। इस तर्क और युक्तिमूलक समालोचना के युग में धर्मतत्त्व और साहित्य भी तुलना-सिद्ध विज्ञान हो गये। काव्यादि की रचना छोड़ कर विद्वज्जन सङ्कलन, अनुवाद और समालोचना आदि के द्वारा गद्य-साहित्य की पुष्टि करने और विद्या-विस्तार के लिए अल्प मूल्य में पुस्तकें प्रकाशित करने लगे। जटिल लेख-प्रणाली और अद्भुत रचना-कौशल की अपेक्षा सरल और



सुबोध भाषा में भाव प्रकाश करने की ओर लोगों की दृष्टि गई। विचक्षण जनों ने वाग्मिता सीखनी छोड़ वैज्ञानिक और साहित्य-सम्बन्धी अनुसन्धान, दार्शनिक विश्लेषण, ऐतिहासिक गवेषणा और धर्मतत्त्व की प्रतिष्ठा आदि गम्भीर विषयों में मन लगाया।

अस्तु। इस युग की शिक्षा-पद्धति पूर्ववर्ती युग की शिक्षा-पद्धति से स्वतन्त्र हो गई। शारीरिक और सामरिक शिक्षा ने क्रमशः अवन्त और लुप्तप्राय होकर मानसिक शिक्षा का प्राधान्य प्रतिष्ठित किया। वर्तमान और पूर्व युग के मानसिक और शारीरिक उत्कर्ष में सामञ्जस्य स्थापन करने के लिए लोगों का जो प्रयास था, वह इतने दिनों बाद विफल हो गया। यहाँ तक कि राष्ट्र की नैतिक वाग्मिता और समा-लोचना आदि के बदले सृष्टि, स्थिति, जीव, धर्म, विज्ञान, गणित, दर्शन आदि के गम्भीर विषय मानसिक शिक्षा के विषय हो गये।

क्रमशः विद्यालय-समूह गवर्नमेंट के अधिकार में आकर उसी के व्यय से परिचालित होने लगे। राजशक्ति के प्रभाव से नई अलेग्जेंड्रिया ने पुराने एथेन्स को हतप्रभ और हीन-वीर्य कर दिया। रोमनगरी ने साम्राज्य-नीति द्वारा विजित प्रदेशों का कीर्तिकलाप ध्वंस करके ग्रीक-सभ्यता के साहाय्य से अपनी सर्वाङ्गीण श्रीवृद्धि करने के लिए अपने को ग्रीक-सभ्यता की राजधानी और प्रधान केन्द्र रूप बनाया। इस युग में एथेन्स जो चिन्तापूर्ण विषयों में अपनी सामान्य प्रतिपत्ति-रक्षा में समर्थ हुआ, वह अलेग्जेंड्रिया की नई चिन्ता-पद्धति के अनुकरण के फल से हुआ। यह बात उसके निज के विशेषत्व की परिचायक नहीं। इस प्रकार, प्राचीन ग्रीक-सभ्यता पहले अपना विशेषत्व, फिर अपनी वास-भूमि खोकर विल-कुल ही नई सभ्यता की सृष्टि का उपकरण हुई।

इस नई सभ्यता में जिस तरह प्राचीन ग्रीक लोगों का विशेषत्व नहीं देख पड़ता, उसी तरह होमर से सम्बन्ध रखने वाले कवि-सम्प्रदाय के काव्यों में ग्रीक-समाज की जिस अवस्था का वर्णन है उस में ग्रीक लोगों की स्वतन्त्र सभ्यता का भी कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। इस कारण होमर के द्वारा वर्णन की गई ग्रीक-जाति की शैशवावस्था का कोई उल्लेख मैं इस लेख में न करूँगा। होमर के महाकाव्यों में समाज और राष्ट्र का जो विवरण पाया जाता है वह इस समय की आर्थ्यभाषा

बोलनेवाली जातियों के पूर्व पुरुषों का साधारण चित्र कहा जा सकता है। तथापि वह ग्रीस देश और उसके उपनिवेशों में रचा और गाया गया था। इस कारण उस में ग्रीक-जाति के स्वभाव आदि का आभास पाया जाता है।

यह उस समय का चित्र है जब राष्ट्र और धर्म की प्रतिष्ठा हो गई थी; जब राजा के बाद चिकित्सक, कथा कहने वाले और और गणक लोग ही समाज के प्रधान व्यक्ति माने जाने लगे थे; जब साहित्य की सृष्टि न हुई थी; और जब लिखने की पद्धति भी आविष्कृत न हुई थी। उन दिनों चारण लोग देश देश में पुरानी कथाएँ गाते फिरते थे। विविध प्रकार के शिल्प उस समय तक भी आविष्कृत न हुए थे। समाज और राष्ट्र में जटिलता ने तब तक भी प्रवेश नहीं किया था।

जीवन-संग्राम के लिए सर्वदा प्रस्तुत रह कर और कर्मों जीवन का संगठन कर के शत्रुओं को परास्त करना ही उस समय समाज का मुख्य कार्य और उद्देश्य था। शारीरिक शक्ति और साहसिकता ही उस समय सब से बड़ा गुण समझा जाता था। अपनी शक्ति में सर्वसाधारण का विश्वास उत्पादन कर के समाज का नायकत्व ग्रहण कर सकना ही उस समय पहले दर्जे का वीरत्व था। इस कारण अवस्थोपयोगी आलोचना और विचारशक्ति ही मानसिक उत्कर्ष का मुख्य लक्षण थी। अतएव (१) उपयुक्त समय में काम करना, और (२) उपयुक्त विषय में सलाह देना ही होमर के अनुयायी ग्रीक लोगों के शिक्षालाभ का उद्देश्य था। इसके लिए किसी स्वतन्त्र विद्यालय अथवा शिक्षादाता की आवश्यकता न थी। राष्ट्रशासन के लिए जो साधारण सभा थी उसमें मतमत प्रकाश करते करते ही राष्ट्र के लिए मङ्गलकारी परामर्श देने और कर्तव्य करने की शिक्षा मिलती थी। शिक्षा का आदर्श था—प्रकृत कर्मवीर और योद्धा की सृष्टि। इस कारण समाज का प्राकृत कर्मक्षेत्र ही शिक्षालयरूप से विवेचित होता था।

अस्तु। राष्ट्रीयजीवन का विकास, शरीर की पुष्टि और मानसिक उत्कर्ष-साधन ही होमरसम्बन्धी शिक्षापद्धति के प्रधान आदर्श थे। ग्रीस की चरमोन्नति के समय यही आदर्श पराकाष्ठा को पहुँचे थे। जो भाव, जो आदर्श और जो ढँग परिपुष्ट ग्रीक-सभ्यता के अङ्ग थे उनके उपकरणों के बीच होमर वाले युग में बोये गये थे—यह कहना अत्युक्ति नहीं। होमर के अनुयायी कवियों ने जिन प्रतिष्ठानों का वर्णन किया



उन्होंने परवर्ती युगों में भिन्न भिन्न कारणों से पुष्ट होकर ग्रीक-सभ्यता के विकास में सहायता दी थी। इस युग की (१) कर्म-शिक्षा और (२) आलोचनाशिक्षा ही, परवर्ती युग के ग्रीस के सर्वत्र प्रचलित शिक्षणीय विषयों के द्विविध विभाग—(१) व्यायाम और (२) सङ्गीत (साहित्य) शिक्षा की प्रधान कारण थी।

स्वाधीनतापूर्वक विकास को प्राप्त हुई ग्रीक-शिक्षापद्धति के पौर्वापर्य्य और प्रकृति की विशेषभाव से आलोचना करने में यह ज्ञात होता है कि प्राचीन ग्रीक राष्ट्रीय कामों में सहायता देने के योग्य होने के लिए ही शिक्षा का आदर करते थे। राष्ट्र की उन्नति ही शिक्षा-विस्तार का उद्देश्य थी। इसी बात को लक्ष्य में रख कर ही शिक्षालाभ का समय-विभाग, शिक्षणीय विषयसमूह, शिक्षा के उपकरण, विद्यालय का शासन आदि निर्धारित और नियन्त्रित होते थे।

स्पार्टा में राष्ट्र ही एक मात्र शिक्षालय और शिक्षादाता था। एथेन्स में यद्यपि शिक्षाविस्तार का काम सरकार के अधीन न था, किन्तु प्रुटो, अरिस्टाटल आदि प्रधान प्रधान पण्डित स्पार्टा की शिक्षापद्धति को ही आदर्श शिक्षापद्धति समझते थे। सारे विद्यालय कुछ विशेष लोगों की ही सम्पत्ति थे। शिक्षा का खर्च, परिवार के अन्यान्य खर्च की तरह, किया जाता था। परन्तु शिक्षार्थियों के चरित्रगठन और संयमपालन के सम्बन्ध में विद्यालय के अधिकारियों और अभिभावकों को राष्ट्र के नियमानुसार ही चलना पड़ता था। इसके सिवा विद्यालय का अधिकांश समय समर और कानूनी शिक्षा में ही खर्च होता था। अस्तु, क्या स्पार्टा, क्या एथेन्स, दोनों प्रदेशों में, राष्ट्र ही शिक्षापद्धति का नियन्ता था—ऐसा कहना किसी प्रकार असङ्गत न होगा।

राष्ट्र के आधिपत्य का सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष में जितना ही बढ़ता गया, एथेन्स के जातीय जीवन में शिथिलता भी उतनी ही आती गई। फल यह हुआ कि व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का विकास और स्वाधीनता-प्रेम की वृद्धि के साथ साथ प्राचीन ग्रीस की पुरानी राष्ट्रगत सभ्यता का क्रम क्रम से क्षय ही हो गया।

सारे शिक्षणीय विषय प्रधानतः दो भागों में विभक्त थे—(१) शारीरिक-उत्कर्ष-साधनोपयोगिनी व्यायाम-शिक्षा। (२) मानसिक-उत्कर्ष-साधनोपयोगिनी सङ्गीत-शिक्षा।

स्पार्टा में पहली शिक्षा प्राधान्य प्राप्त करके दूसरी शिक्षा की उन्नति की बाधक हो गई थी। एथेन्स की शिक्षापद्धति में इसे विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ था। और, एथेन्स के पण्डित भी इसका आदर करते थे। वयोवृद्धि के साथ साथ विविध प्रकार के व्यायामों का लोग अभ्यास करते थे। जिस उम्र में समर-शिक्षा ही प्रधान शिक्षा समझी जाती थी, उस उम्र में इस शारीरिक उत्कर्ष की ओर स्वभावतः ही विशेष दृष्टि रखनी पड़ती थी। (२) मानसिक-उत्कर्ष-साधनोपयोगिनी सङ्गीत-शिक्षा की उन्नति स्पार्टा में नहीं हुई। एथेन्स में ही भिन्न भिन्न देशों से आकर सङ्गीतप्रेमियों ने इसका उत्कर्षसाधन किया। सङ्गीत-विद्या में सब प्रकार की ललित-कलायें सम्मिलित समझी जाती थीं। एथेन्स में पहले ही से काव्यशास्त्र का अनुशीलन होता था। क्रमशः इस शास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था में गणित, ज्योतिष, भाषा-विज्ञान, न्याय, दर्शन, नीति, पदार्थविज्ञान आदि और भी अनेक विद्याओं ने स्थान पाया।

धर्मशिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। जातीय-साहित्य में नीति और देवताविषयक जो तत्त्व विद्यमान थे उन्हीं की आलोचना धर्मशिक्षा का एकमात्र साधन थी। इसके सिवा रङ्गभूमि में होने वाले अभिनय, मकानों के प्राचीरों और दीवारों पर खचित हुई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, तथा विशेष विशेष त्योहारों के उपलक्ष्य में किये जाने वाले नाना प्रकार के यागयज्ञ आदि को देख कर ही सब लोगों का धर्मभाव उद्दीप्त होता था। सामाजिक और राष्ट्रीय कामों में लगे रहने, सर्व-साधारणों के साथ सम्भाषण करने, और स्वदेश के हितकर कार्यों का सम्पादन करते रहने से लोगों के नैतिक जीवन का विकास होता था। नैतिक चरित्रगठन की ओर परिवार के लोगों और राष्ट्रीय कर्मचारियों का विशेष ध्यान रहता था।

स्पार्टा में शिक्षा के किसी विशेष उपकरण का प्रयोजन नहीं हुआ। किसी पुस्तक की आवश्यकता नहीं हुई। हाथ से गिन कर गणित की शिक्षा दी जाती थी। कोरस (chorus) में दलबद्ध होकर नाचना-गाना सीखना पड़ता था। इस कारण किसी बाजे की आवश्यकता नहीं हुई।

एथेन्स ने इस सम्बन्ध में विशेष उन्नति की थी। पुस्तक और चित्रविद्या के उपयोगी यन्त्र आदि व्यवहृत होते थे। विद्यालय स्थापित हो गये थे। शिक्षार्थियों के बैठने के लिए बेंच, स्टूल



अदि का भी अभाव न था। सङ्गीतशिक्षा के लिए तरह तरह के वाद्ययन्त्र व्यवहार में लाये जाते थे।

स्पार्टा की बालिकाओं को बालकों की तरह शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी परन्तु एथेन्स में स्त्रीशिक्षा की उन्नति नहीं हुई। पेरिक्लिस के समय में कुछ ही विदुषी स्त्रियों का उल्लेख पाया जाता है। कहते हैं कि थूसिडिडिस की कन्या ने अपने पिता के लिखे इतिहास को पूर्ण किया था। किन्तु समाज में स्त्रीशिक्षा और स्त्रीस्वाधीनता ने प्रवेशलाभ नहीं किया था।

ग्रीस की शिक्षापद्धति की सङ्कीर्णता का दूसरा उदाहरण था—शिक्षालाभ में दास-दासियों का अनधिकार। स्पार्टा की बात तो दूर रही, स्वाधीनता-प्रिय एथेन्स के अत्युन्नत समय में भी दास लोग केवल शारीरिक परिश्रम और शिल्पवाणिज्य के काम के ही उपयोगी समझे जाते थे। इसी से वे शिक्षा से वञ्चित रखे जाते थे। केवल स्वाधीनजाति का ही शिक्षा में अधिकार है; मानसिक उत्कर्ष से गुलामों का कोई सम्बन्ध नहीं—एथेन्स के बड़े बड़े पण्डित तक अम्लानभाव से यह बात कहते थे।

पठनकाल तीन भागों में विभक्त था। ( १ ) सातवें वर्ष तक परिवार के लोगों की निगरानी में गृह-शिक्षा। ( २ ) सातवें से चौदहवें वर्ष तक छोटे छोटे विद्यालयों में शिक्षा। ( ३ ) चौदहवें से अठारहवें वर्ष तक कालेज में उच्च शिक्षा। पहले युग में समरशिक्षा ही प्रधान शिक्षा थी। पीछे से सोफिस्ट नामक सम्प्रदाय के लोगों के प्रभाव से साधारणतः उच्चशिक्षा दी जाने लगी और अनुच्चशिक्षा से उसका तारतम्यनिश्चित हुआ। स्पार्टा में द्वितीयावस्था बहुत दिन तक रहती थी। अठारहवें वर्ष तक बालकबालिकाओं को साधारण आयतन में वास करना पड़ता था। तीस वर्ष की उम्र में उनकी तृतीयावस्था समाप्त होती थी। कहने की आवश्यकता नहीं, स्पार्टा के शिक्षाविभाग में सामरिक शिक्षा के ही क्रमिक विकाश और उन्नति की व्यवस्था थी।

जिस समाज के परिवर्तन का अनुसरण करके शिक्षापद्धति का रूपान्तर दिखाया गया है उस समाज की प्रकृत जीवनीशक्ति राष्ट्रीय-कर्मक्षेत्र में ही स्थित थी। राष्ट्र की उन्नति या अवनति से ही जातीय उन्नति या अवनति समझी जाती थी। राष्ट्र को पुष्ट करना ही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य था। राष्ट्रीय जीवन को ही सब लोग अपने अस्तित्व का कारण समझते थे।

राष्ट्र से अलग, व्यक्तिगत स्वतन्त्र जीवन उनमें थाही नहीं। राष्ट्र के सामाजिक जीवनप्रवाह में अपना अपना व्यक्तित्व विसर्जन करके जातीय उन्नति करना ही प्रत्येक व्यक्ति के हृदय की उच्चतम आकांक्षा थी। उनका कर्तव्याकर्तव्य और उनका विधि-निषेध, सभी कुछ, राष्ट्र के सुचारुरूप से सञ्चालित होने पर अवलम्बित था। समाज के उपकार के लिए ही वे शिक्षालाभ करते थे—राष्ट्रीय कामों में सहायता देने के लिए ही वे साहित्यचर्चा करते और सङ्गीत सीखते थे। शिल्पी, कवि, गायक, लेखक, योद्धा, पण्डित सभी राष्ट्र का अनेक प्रकार से उपकार करने के लिए अपनी अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे। अनेक उपायों से उसे लाभ पहुँचाने के लिए ही वे अपनी अपनी शक्ति को विकसित करने की चेष्टा करते थे। सार्वसाधारण के काम में समय खर्च न कर सकने अथवा उसके लिए अपने में उपयोगिनी शक्ति न रहने से, वे अपने जीवन को व्यर्थ समझते थे।

वस्तुतः राष्ट्र की उन्नति करते करते ही वे न्यायशास्त्र, शब्दशास्त्र, गद्यसाहित्य, समालोचना आदि अनेक विद्याओं के अधिकारी होगये थे। उनकी ओजस्विता, उनका शिल्पनैपुण्य, उनकी कलाविद्या, उनका कारुकार्य, इन सभी विषयों ने, राष्ट्र की उन्नति को केन्द्र बना कर ही, विकाश पाया था। उनके धर्म, समाज, व्यवसाय, साहित्य, चिन्तापद्धति आदि जीवन के सभी विभागों को राष्ट्र ही नियन्त्रित करता था। लोग राष्ट्र के नियमपालन ही को चरम लक्ष्य समझ कर जीवन को सार्थक करना चाहते थे।

इस प्रकार क्षुद्र व्यक्ति-गत जीवन को विशाल सामाजिक जीवन में निमज्जित कर देना ही उनकी नीति का प्रधान उद्देश था। इसका मुख्य कारण यह है कि वे सब विषयों में सौन्दर्य और सामञ्जस्य का आदर करते थे। उनकी शिक्षापद्धति में प्रविष्ट होकर इस सौन्दर्यलिप्सा ने बाह्यसुन्दर और अन्तःसुन्दर व्यक्तिगठन का उपाय उद्भावित किया था। यही सामञ्जस्य और सौष्टवप्रियता उनको मन्दिर-प्रतिष्ठा, मूर्त्ति-गठन, चित्र-कर्म, तथा तरह तरह के स्थापत्यकार्य में लगाती थी। इस भाव के वशवर्ती होकर ही वे सङ्गीत-चर्चा करते थे। इसी से मानव-शरीर की सर्वाङ्गीण उन्नति और मानवचित्त का सर्वाङ्गीण विकाश ही उनके जीवन के लक्ष्य थे। इसी से वे व्यक्ति-जीवन के सभी कार्यों और



विन्ताओं को एक ही केन्द्र की तरफ सञ्चालित करके पार-  
स्परिक जीवन में सामञ्जस्य और शृङ्खलता लाने की चेष्टा  
करते थे। सङ्गीत-विद्या को मानसिक व्यायाम समझ कर  
उसके द्वारा वे चित्त का असामञ्जस्य और वैसादस्य दूर करके  
उसे सौन्दर्य्य और रमणीयता प्राप्त कराने को उत्कण्ठित होते  
थे। यह सौन्दर्य्यप्रियता ही उनकी राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन-  
प्रियता का मूल है। इसी लिए वे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के  
जीवन को, राष्ट्र के साधारण जीवन को लक्ष्य में रख कर,  
सिचालित करते थे और तदनुसार आपस में ऐक्य, सामञ्जस्य  
और अङ्गाङ्गीभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न करते थे। राष्ट्र की  
साधारण उन्नति को ही वे अपनी सब से बड़ी उन्नति सम-  
झते थे।

विनयकुमार सरकार।

## न्यायादर्श ।

( १ )

भारत के प्रत्येक खण्ड की छुटा निराली ;  
कोई एक प्रदेश नहीं है गौरवशाली ।  
बढ़ते से हैं एक दूसरे से सब आगे ;  
किन्तु बिना इतिहास मृतक हो रहे अभागो ॥

( २ )

है जिसका इतिहास उसी को मिली बढ़ाई—  
जैसे राजस्थान आदि की महिमा छड़ाई ।  
पर प्रत्येक प्रदेश परस्पर बढ़ चढ़ कर था ;  
शौर्य, शील, सम्पत्ति और सुकृतों का घर था ॥

( ३ )

यदि अब भी विद्वान इधर कुछ ध्यान लगावे,  
तो, आशा है, शीघ्र बहुत कुछ कर दिखलावे ।  
लुप्तप्राय अनेक, अलौकिक बातें पावे ;  
जो सचमुच ही मातृ-भूमि का मान बढ़ावे ॥

( ४ )

परम्परागत सुनी हुई विज्ञों के मुख से  
अब भी वृद्ध अनेक कथायें कहते सुख से ।  
उनको सुन कर हृदय आज भी भर आता है ;  
भूतकाल वह वर्तमान सा बन जाता है ॥

( ५ )

हम ऐसी ही एक कथा हैं आज सुनाते ;  
सुनो नीति को हैं विनीति कैसे अपनाते ।  
धीर धरा बुन्देल खण्ड की धन्य धन्य है ;  
ऐसी घटना घटी जहां अद्भुत अनन्य है ॥

( ६ )

काम एक से एक हुए जिनके महान हैं ;  
अब भी जिनके यशःस्तम्भ दण्डायमान हैं ।  
वीरसिंह का नाम जानता कौन नहीं है ?  
उन्हें महा बल-धाम मानता कौन नहीं है ?

( ७ )

कहते हैं बस एक पुत्र था पहले उनके,  
होते थे सब भीत नाम ही जिसका सुनके ।  
उनके कुल में जन्म लिया था उसने ऐसे—  
रत्नाकर से हुआ हलाहल प्रकटित जैसे ॥

( ८ )

कुल-कलङ्क वह राजपुत्र अति अविचारी था ;  
निष्ठुरता की मूर्ति भयङ्कर बलधारी था ।  
उसके कारण सदा प्रजा शङ्कित थी सारी ;  
रक्तक भक्त बने-समय की है बलिहारी !

( ९ )

मृग, शूकर, विहगादि मार कर बड़े चाव से  
साथ लिये दो चार श्वान स्वच्छन्द भाव से ।  
एक बार जब लौट रहा था वह शिकार से  
हार रहा सन्ध्या-प्रकाश था अन्धकार से ॥

( १० )

जाते हुए दिनेश और युग लोचन लाये  
सन्ध्या करता हुआ प्रेम से ध्यान लगाये ।  
अर्घ्य-पात्र जल-पूर्ण हाथ में लिये सुहाया,  
पथ में कोई पथिक दृष्टि में उसकी आया ॥

( ११ )

जाकर उसके निकट राज-सुत उससे बोला ;  
रख मागों नर-रूप पाप ने मुख को खोला ।  
“अर्घ्य-दान-मिष श्रे ! धूल में जल न मिला दे ;  
थके हमारे श्वान उसे तू इन्हें पिला दे !”



( १२ )

बेचारा वह पथिक राजसुत को क्या जाने ?  
जाने पर भी कौन वीर यह कहना माने ?  
दोनों भौंहें तान पथिक ने नयन तररे ;  
पर तुरन्त रिस रोक सूर्य-सम्मुख दग फेरे ॥

( १३ )

एक शुद्ध जन राजपुत्र पर करे रोष यों—  
हो सकता है कभी क्षमा के योग्य दोष यों ?  
“नीर नहीं तो रक्त पिला रे खल !” यों कह कर,  
राजपुत्र ने छोड़ दिये वे श्वान पथिक पर ॥

( १४ )

महा भयङ्कर और तीक्ष्णतर डाढ़ों वाले,  
दौड़े वे तत्काल पथिक पर काले काले ।  
इधर उधर से उसे पकड़ कर काटी काया,  
जरा देर में चीड़ फाड़ कर मार गिराया ॥

( १५ )

वीरसिंह को इस अनर्थ की खबर लगी जब,  
उनके मन में महादुःख की ज्वाल जगी तब ।  
पीछे सुत पर घोर अनादर उपजा उर में ;  
किन्तु छिपाकर भाव गये वे अन्तःपुर में ॥

( १६ )

उनको आया देख उठी आदर से रानी ;  
कर कुछ प्रेमालाप भूप बोले मृदुवानी ।  
“निष्ठुरता से कहीं किसी को कोई मारे,  
तो उसको क्या दण्ड ध्यान में जँचे तुम्हारे” ॥

( १७ )

तब सँभलती हुई शीश-पट परम सयानी  
नम्र-भाव परिपूर्ण विनय-युत बोली रानी ।  
“मुझ अबला को ज्ञान कहाँ से इतना आवे,  
पर जो जैसा करे क्यों न वैसा ही पावे ॥”

( १८ )

सुन रानी के वचन हुआ सन्तोष नृपति को,  
और उन्होंने बहुत सराहा उसकी मति को ।  
शोभित कर फिर शीघ्र उन्होंने न्यायालय को,  
वैसा ही दृढ़-दण्ड सुनाया आत्मतनय को ॥

( १९ )

न्याय-प्रियता देख भूप की विस्मित होकर,  
भूल गये सब राजपुत्र का कर्म कठिनतर ।  
गद्गद होकर सभ्य-जनों ने विनय सुनाया ;  
क्षमा-दान के लिए उन्हें बहुविध समझाया ॥

( २० )

वीरसिंह ने बात किसी की एक न मानी;  
फिर वह पलटी नहीं कही मन में जो वाणी ।  
न्याय-समय सम्बन्ध ! मुझे है ध्यान न तेरा,  
न मैं किसी का और न कोई सम्पति मेरा ॥”

( २१ )

अपने सम्मुख पुनः उन्होंने सुत के तनु पर  
लेप कराया दही और चीनी का सत्वर ।  
जिन हाथों में रत्न जड़े दो कड़े पड़े थे,  
बन्धन उनके लोह-शृङ्खलायुक्त कड़े थे ॥

( २२ )

राजपुत्र की दशा की गई आखिर वैसी,  
उसके द्वारा हुई पथिक जन की थी जैसी ।  
सर्वनाश हो, धीर न्याय को त्याग न सकते;  
पक्षपात, अविचार न उनके पास फटकते ॥

( २३ )

पर मारा न्यायार्थ जिन्होंने निज सुत ऐसे  
रखता निस्सन्तान उन्हें परमेश्वर कैसे ।  
उपजे सुत हरदौल-सदृश उनके सु-धाम में  
पूजित जो हो रहे आज भी ग्राम-ग्राम में ॥  
मैथिलीशरण गुप्त ।

## महाकवि मिल्टन ।

“And wisdom's self  
Oft seeks to sweet retired solitude,  
Where, with her best nurse, contemplation,  
She plumes her feathers, and lets grow her wings.  
That in the various bustle of resort  
Were all-to ruffled and sometimes impaired.”



न १६११ की सरस्वती में “कवि बनने के सापेक्ष साधन” पढ़ कर मैंने एक ऐसे पुरुष का जीवन-चरित सरस्वती के पाठकों की भेट करने का विचार किया जो पूर्णतः नहीं अधिकतर अपने अविचल परिश्रम और अध्यवसाय से कवि बनने का अभिलाषी रहा हो, जो कालान्तर में उच्चश्रेणी के कवियों में स्थान पाने की योग्यता भी प्राप्त कर सकता हो, जिसने अपने जीवन का मुख्य उद्देश कवि बन जाना ही स्थिर किया हो, जिसके हृदय ने काव्य-मार्ग के विघ्न-कण्टकों से वृद्धयुक्त किये जाने पर भी निराशा का दूषित रक्त बहा कर केवल आशा ही को सन्निहित रक्खा हो, और अपने उद्देश की पूर्ति के लिए जिसने सारे सांसारिक सुखों का विसर्जन कर दिया हो। संसार के महाकवियों में मिल्टन भी पूर्णतः कथन का एक अच्छा उदाहरण हो गया है। उसके जीवन-चरित के अध्ययन से यही विश्वास होता है। विघ्न-बाधाओं के घोर आक्रमण से जिसे कहीं छिपने को भी स्थान न मिला, जेल की यंत्रणा और अपने पक्षवालों का पूरा पराजय देख कर भी जो दुर्दम्य-हृदय अपना मन कविता-कामिनी से विलग करने को तैयार न हुआ, आपत्ति-पर्वत अपने ऊपर दृढ़ पड़ने पर तथा नेत्र खोजाने पर भी जिसने अपना सर्वोत्तम प्रयत्न बनाने में अपनी सम्पूर्ण योग्यता खर्च कर दी, उसी अनुप्रातिरिक्त परिश्रम करनेवाले मिल्टन का चरित हमारे उद्देश की पूर्ति कर सकता है। यही सोच कर उसका यह छोटा सा जीवन-चरित लिखा जाता है।

मिल्टन का दादा एक अमीर किसान था। जंगल के मह-कमे में वह कर्मचारी भी था। वह आक्सफ़र्ड से पाँच मील की दूरी पर स्टेंटन सेंट-जान नामक स्थान में रहता था। धार्मिक मत-भेद होने के कारण मिल्टन का पिता अपने पिता को छोड़ कर लन्दन में आ बसा और ब्रेडस्ट्रीट, चीप-साइड (Bread Street, Cheapside) नामक महल्ले में एक दुकान खोल ली। इस दुकान में कचहरी के कागज़-पत्र लिखने का भी काम होता था। इससे उसे अच्छा धन-लाभ हुआ। यहाँ ६ दिसम्बर १६०८ ई० को कवि मिल्टन का जन्म हुआ। थोड़ी ही उम्र में मिल्टन सेंट-पाल नामक स्कूल में भर्ती करा दिया गया। उसकी शिक्षा के लिए थॉमस यंग (Thomas Young) नामक एक अध्यापक भी रख दिया

गया। इसी थॉमस यंग ने मिल्टन को लैटिन और ग्रीक भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थ पढ़ने और कविता करने की ओर प्रवृत्त किया। लड़कपन में ही मिल्टन ने अनेक पुराने नामी कवियों के ग्रन्थ पढ़ डाले। यहाँ तक कि केवल १५ वर्ष की ही आयु में दाऊद के दो भजनों (Davidic Psalms) का अंगरेज़ी में अनुवाद कर डाला और लैटिन और ग्रीक भाषाओं में भी बहुत सी छोटी छोटी पद्य-रचनाएँ कर डालीं। मिल्टन बड़ा अध्ययन-प्रिय था। एक जगह वह स्वयं कहता है—“मुझे अध्ययन का इतना शौक था कि बारह वर्ष की आयु से ही आधी रात के पहले मैं कभी नहीं सोया”।

सोलह वर्ष की आयु में वह केंम्ब्रिज भेजा गया और वहाँ के प्रसिद्ध क्राइस्ट-कालेज में भरती हुआ। भरती होने के दो वर्ष बाद, अर्थात् १६३७ ईसवी में, वह अपने एक चेपल (Chappel) नामक अध्यापक से किसी बात पर लड़ पड़ा और कुछ काल के लिए कालेज से निकाल दिया गया। कहते हैं कि किसी अपराध के कारण उस पर बैत भी पड़े थे। कुछ महीने बाद वह फिर कालेज में लेलिया गया। उसके सहपाठी उसे “क्राइस्ट की वधू” (Lady of Christ) कहा करते थे, जिससे उसका सुस्वरूप और सच्चरित्र होना प्रकट होता है। १६२८ ईसवी में उसने “ओड आन दि नेटिविटी” (Ode on the Nativity) नामक कविता अंगरेज़ी में लिखी और १६३२ में वह एम० ए० हुआ। इस समय वह २४ वर्ष का था। अब केंम्ब्रिज छोड़ने का समय आया। कालेज के लोगों ने उससे बिदा होते समय उसे एक मानपत्र दिया जो उसकी सर्वप्रियता का साक्षी है।

वह बड़ा स्वतन्त्र-प्रकृति था। स्वतन्त्र-स्वभाव के कारण उसे बहुत सी आपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। उसके पिता का इरादा उसे पादरी बनाने का था। पहले तो मिल्टन भी राज़ी हो गया। पर जब उसे उस नादिरशाही का ज्ञान हुआ, जो उन दिनों गिरजाघरों में प्रचलित थी, तब उसका चित्त उस ओर से एक दम फिर गया। पादरियों को झूठी शपथें करनी पड़ती हैं और अनेक प्रकार से आत्मा का हनन करना पड़ता है, यह देख कर उसका खून उबल उठा और पादरी होने का इरादा उसने छोड़ दिया। उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि झूठी शपथें खा कर वाग्देवी को कलङ्कित करने की अपेक्षा मैं चुप रहना ही अच्छा समझता हूँ! १६३२ में उसने “लैलैगो”



(L' Allegro) और "इल पैन्सरोसो" (Il Penseroso) नामक प्रख्यात पद्य लिखे। इन दोनों में प्राकृतिक शोभा भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णित है। एक शान्तरस-प्रधान है, दूसरे में उसका विरोधी रस है। १६३७ में अपने एक मित्र की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए उसने "लिसीडास" (Lycidas) नामक कविता लिखी जिसकी बड़ी तारीफ हुई। मिल्टन का "कोमस" (Comus) काव्य भी इस समय छप चुका था। ये सब कविताये "हारटन" (Horton) नामक ग्राम में लिखी गई थीं। वहीं इन दिनों उसने लैटिन और ग्रीक की तमाम पढ़ने लायक पुस्तकें पढ़ डालीं। उसने अपने एक मित्र को एक पत्र के उत्तर में लिखा है— "तुम पूछते हो कि मैं अब क्या करूँगा? मेरा आन्तरिक उत्साह मुझे विश्वास दिलाता है कि परिश्रम, अवि-रल अध्ययन और दृढ़ निश्चय की बदैलत कदाचित् मैं कोई ऐसी पुस्तक लिख कर छोड़ जाऊँ जिसका भविष्य में लोग कभी नाश न होने देना चाहेंगे"—उसने पहले से ही अपना उद्देश महाकवि होना स्थिर कर लिया था। कवित्व-शक्ति को वह ईश्वराराधना का फल अथवा कृतपरिश्रम से प्रसन्न हुए परमेश्वर का प्रसाद मानता था। उसके लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, यह भी उसे मालूम था। जिस पुस्तक को वह पढ़ने के लिए हाथ में लेता उसे बिना खतम किये दूसरी को न छूता था। अध्ययन और मनन, दोनों ही को, वह बहुत आवश्यक समझता था। निम्न लिखित पद्य में वह मनन पर अधिक जोर देता है :—

"Who reads

Incessantly, and to his reading brings not

A spirit and judgment equal or superior,

Uncertain and unsettled still remains,

Deep versed in books, and shallow in himself."

१६३८ में वह देशाटन के लिए इटली गया। वहाँ अन्धे वृद्ध गैलिलियो के दर्शन करके वह कृतार्थ हुआ। वहाँ के कविसमाजों में भी उसने बड़ा मान पाया। १६३९ में, सैर कर करा कर वह इंग्लैंड को लौट आया। वहाँ वह जातीय और राजनैतिक झगड़ों में फँस गया। १६४१ से १६६० तक उसने धार्मिक तथा राजनैतिक विषयों पर छोटी छोटी कोई बीस पुस्तकें लिख डालीं। उनमें अधिकतर आक्षेपपूर्ण हैं। इन दिनों मिल्टन ने कविता करना भी बहुत कम कर दिया था।

उसके प्रतिद्वन्द्वियों ने भी उस पर खूब आक्षेपयुक्त पुस्तकें लिखीं और वह भी उनका बराबर जवाब देता रहा।

१६४३ में उसने मेरी पावल नामक लड़की से विवाह कर लिया। यह लड़की उसके प्रतिपक्षियों की थी। इसलिए थोड़ेही दिनों में इसके यहाँ से अपने माँ-बाप के घर भाग गई। बहुत दिन बाद, जब मिल्टन ने उसे तलाक़ देने की धमकी दी तब, आई। १६४६ में उसके पिता की मृत्यु हुई। दो वर्ष बाद यह लैटिन सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुआ और उस समय के प्रचण्ड विद्वान् सैलमेशियस के साथ राजनैतिक विचारों के विषय में झगड़ता रहा। उसने कई आक्षेपपूर्ण पुस्तकें लैटिन में लिखीं। इसने भी उनका लैटिन में ही उत्तर दिया और बड़ी ख्याति लाभ की। १६५२ में अधिक अध्ययन के कारण उसे अपनी आंखों से हाथ धोना पड़ा। इसी समय उसकी स्त्री भी परलोक सिधारी। उस समय के राजनैतिक झगड़ों का मुख्य कारण यह था कि राजा चार्ल्स को लोकसत्ता के पक्षपातियों ने फाँसी दे दी थी, जिससे राजसत्ता के पक्षपाती बड़े नाराज़ थे और तरह तरह के आक्षेप अपने प्रतिपक्षियों पर करते थे। मिल्टन लोकसत्ता तथा सामाजिक स्वतन्त्रता का पक्का पक्षपाती था, और अपने दल पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देना अपना प्रथम कर्तव्य समझता था। इसी से वह इस झगड़े में अग्रगण्य हो गया था। पर मिल्टन सच्ची स्वतन्त्रता का पक्षपाती था। जब पार्लिमेंट ने पुस्तक-प्रकाशन के मार्ग में बहुत से विघ्न उपस्थित करके प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली थी तब उसने "आरिओपैजिटिका" (Areopagitica) नामक एक छोटी सी पुस्तक लिख कर पार्लिमेंट वालों को बे तरह फट-कारा। इस पुस्तक की कुछ पंक्तियों का भावार्थ हम यहाँ पर देते हैं :—

"पुस्तकों को जड़ पदार्थ न समझ कर उतना ही चेतन समझना चाहिए जितना कि उनके लेखकों की आत्मा चेतन होती है। लेखक के तुल्य ही कार्यकारिणी-शक्ति उनमें भी विद्यमान रहती है। बल्कि यों कहना चाहिए कि पुस्तकें शरीरी शीशी में उसकी मेधाशक्ति और सर्वोत्कृष्ट योग्यता का सारसंभरा रहता है।"

पुस्तकों के प्रभाव और उनकी शक्ति का उल्लेख करते हुए मिल्टन लिखता है :—



“ किसी अच्छी पुस्तक को प्रकाशित न होने देकर अथवा किसी बिक्री रोक कर उसकी हत्या करना वैसा ही है जैसा कि किसी मनुष्य की जान निकाल लेना । जो किसी मनुष्य के लिए लेता है वह माने विचार-शक्ति-सम्पन्न ईश्वर की एक निर्मूर्ति की हिंसा करता है । किन्तु जो एक उत्तम पुस्तक की रक्षा करता है वह तो विचारशक्ति का ही गला घोटता है । पुस्तकों की स्वतन्त्रता छीनना अमरता और विचारशक्ति का नाश करने के बराबर है । ”

अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ होने पर भी मिल्टन ने अपने धार्मिक तथा राजनैतिक सिद्धान्त छः सात बार बदले । अन्त में वह आलिवर क्राम्वेल का अनुयायी हुआ । क्राम्वेल से उसकी बड़ी मित्रता थी । उसकी मृत्यु के कुछ काल बाद, १६६० में, लोकसत्ता के पैर फिर उखड़ चले और राज-सत्ता के पक्षपातियों का जोर बढ़ गया । मिल्टन उस समय लैटिन सेक्रेटरी के पद पर अधिष्ठित था । उससे वह निकाल दिया गया और उससे तीस हजार रुपये छीन लिये गये । उसके दल वाले बिल्कुल ही परास्त हो गये और उसके सिद्धान्त लाल में मिल गये । राजसत्ता वालों ने उसे बहुत तंग किया और आखिर को पकड़ कर थोड़े दिन तक बड़े घर की भीत में खिलाई । पर अंधा था तेज़ । किसी तरह पीछा छुड़ा कर, १६६३ में, उसने अपना तीसरा विवाह कर डाला !

वृद्धावस्था के कारण, तथा अपने दल के परास्त हो जाने के कारण, वह अब अधिकतर एकान्त में ही रहने लगा । लोगों से मिलना जुलना भी उसने प्रायः बंद कर दिया । वृद्धावस्था में धन और मान दोनों खोकर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्ट सह कर भी उसने अपने सर्वोत्तम काव्य पैराडाइज़ लौस्ट ( Paradise Lost ) की रचना प्रारम्भ कर दी । ऐसी अवस्था में, जब कि उसकी लड़कियाँ तक उसके पैसे खर्ची तथा आज्ञापालन की जगह उसकी हँसी करती थीं, उसने पैराडाइज़ रिगेन्ड ( Paradise Regained ) और सैमसन ऐगोनिस्टीज़ ( Samson Agonistes ) नामक प्रख्यात महाकाव्य और भी लिखे । वह इतना ही कर के नहीं रहा । विविध विषयों पर पांच छः पुस्तकें उसने और लिख डालीं । धन्य अध्यवसाय और अदम्य साहस ! अंधे होने पर मरते दम तक अपने उद्देश को मिल्टन ने जिस प्रकार से पूरा किया उसे याद करके और उसकी दुरवस्था पर

विचार करके यही कहना पड़ता है कि ‘महाकवि’ की उपाधि जितनी महँगी उसे मिली उतनी बहुत कम कवियों को मिली ।

इस तरह लौकिक साधनों द्वारा प्राप्त की हुई अपनी अलौकिक कीर्तिकौमुदी को दिगन्तव्यापिनी करके, सन् १६७४ ई० में, मिल्टन इस सुख-दुःख-मय संसार-सागर से ईश्वर का ध्यान करता हुआ पार हो गया ।

कवि बनने के लिए मिल्टन ने पच्चीस तीस वर्ष तक अध्ययनरूपी घोर तपस्या की । अंधे हो जाने पर पुस्तकें पढ़ कर सुनाने के लिए उसे नौकर तक रखने पड़े । तब कहीं वह पैराडाइज़ लौस्ट के सट्ठ महाकाव्य लिखने में समर्थ हुआ । इसके प्रतिकूल शेक्सपियर बिना अधिक परिश्रम के ही सर्वोत्तम काव्य-रचना कर सका । इस दशा में मिल्टन की कवित्व-शक्ति नैसर्गिक समझी जा सकती है या नहीं ? हमारे ध्यान में तो इसका उत्तर यही आता है कि मिल्टन को कविताशक्ति अधिकतर उसके अविचल काव्य-प्रेम, ईश्वर-भक्ति, अविनाशक अध्ययन, तथा अलौकिक अध्यवसाय आदिक साधनों द्वारा ही प्राप्त हुई थी । इसमें संदेह नहीं कि वह सखुनफ़हम पहले ही से था । यह सब होने पर भी उसके परम भक्त महाविद्वान् मार्क पैटीसन ने ही उसे शेक्सपियर से नीचा आसन दिया है । और लोग भी अंगरेज़ी के कवियों में उसे दूसरा ही स्थान देते हैं । इतनी तो मेहनत और नम्बर दूसरा !

जेमेन्ड की भांति मिल्टन ने भी कवि होने के कुछ साधन लिखे हैं जिनको विस्तारभय से हम यहाँ पर नहीं लिखते ।

मिल्टन को विश्वास था कि ईश्वर की कृपा से मैं महाकवि हो सकूँगा । कवि होने की इस उत्कट इच्छा ने उसके जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला और यह आकांक्षा भी उसकी दिन पर दिन बढ़ती ही गई । उसकी प्राप्ति के लिए उसने धन और सांसारिक मान-मर्यादा की कुछ भी परवा न की । उसी में सिद्धहस्त होने और अनुभव प्राप्त करने के लिए उसने असाधारण अध्ययन किया, देश-पर्यटन किया, राजनैतिक दलदल में पैर फँसाये, सरकारी नौकरी की और कई विवाह किये । सच्चे मन से ईश्वर की प्रार्थना करना, लैटिन और ग्रीक की सर्वोत्तम पुस्तकें पढ़ना, और हर जगह से जानने लायक अच्छी-अच्छी बातें जानना उसने अपने उद्देश की सिद्धि का साधन मात्र समझा । जब वह यूरोप में घूमने गया



था तब लैटिन आदि विदेशी भाषाओं में पद्य-रचना करके उसने बड़ा नाम कमाया था। इस बात का उल्लेख ऊपर हो चुका है। लोगों की राय थी कि वह अँगरेज़ी से लैटिन में अच्छी कविता कर सकता था। परन्तु मिल्टन ने, जैसा कि उसके एक पत्र से विदित होता है, केवल अपनी मातृभाषा और मातृभूमि की ख्याति के लिए अँगरेज़ी ही में काव्यग्रन्थ रचे। मातृभाषा की सेवा करना उसने अपना धर्म समझा। युवावस्था के मद में मस्त होकर आत्मेपपूर्ण लेख और पुस्तकें उसने लिखीं। उनको आज कल के विद्वान् दो कौड़ी की समझते हैं और सच कहते हैं कि ऐसा करके मिल्टन ने अपना बहुत सा समय व्यर्थ खोया। खैर, अब इन बातों को छोड़ कर हम उसकी कविता के दो एक उदाहरण देते हैं। हिन्दी में उसकी कविता का अनुवाद करना उसके महत्त्व को सरासर कम करना है। अतएव मूल का भावार्थ ही हिन्दी में दिया जायगा।

ईश्वर से हार कर नरक में पड़े हुए फ़रिश्तों में से अपने एक साथी (One next himself in power and next in crime) को शैतान यों कह कर उत्तेजित करता है:—“यार, क्या हुआ जो लड़ाई में हार गये। क्या सब कुछ थोड़े हार गये हैं। अभी हम बदला लेने की अपनी अदम्य इच्छा और घोरतर घृणा इत्यादिक से बहुत कुछ कर सकते हैं। अँगरेज़ी में यह पद्य इस प्रकार है:—

‘What though the field be lost?  
All is not lost; the unconquerable will  
And study of revenge, immortal hate,  
And courage never to submit or yield,  
And what is else not to be overcome?’

किसी वस्तु में सुख या दुःख का अनुभव मन जैसा चाहता है अपने आप कर लेता है। अर्थात् सुख और दुःख का अनुभव केवल कल्पनाप्रसूत है। इस सिद्धान्त को मिल्टन ने यों लिखा है:—

The mind is its own place, and in itself  
Can make a Heaven of Hell, a Hell of Heaven.

मिल्टन की कविता में आज की मात्रा अधिक है। उसके वर्णन बड़े ही मजेदार हैं। देखिए, नरक से शैतान के भागने का वर्णन कैसी उत्तमता से किया गया है:—

Springs upward, like a pyramid of fire,  
Into the wild expanse, and, through the shock  
Of fighting elements, on all sides round  
Environed, wins his way.

सैम्सन ऐगोनिस्टीज़ में सैम्सन के बहाने मिल्टन ने छिपे छिपे अपनी कथा कह डाली है। अपने शत्रुओं के बीच अंधा होकर सैम्सन को भी रहना पड़ा था और मिल्टन को भी। इस दुःख को उसने सैम्सन के मुख से यों कहलवाया है:—

Blind among enemies, O worse than chains,  
Dungeon, or beggary, or decrepit age!

\* \* \* \*

Why was this sight  
To such a tender ball as the eye confined,  
So obvious and so easy to be quenched?

\* \* \* \*

Then had I not been thus exiled from light,  
As in the land of darkness, yet in light,  
To live a life half dead, a living death,  
And buried; but O, yet more miserable!  
Myself my sepulchre, a moving grave  
Buried, yet not exempt,  
By privilege of death and burial,  
From worst of other evils, pains and wrongs:  
But made hereby obnoxious more  
To all the miseries of life,  
Life in captivity  
Among inhuman foes.

यह एक महाकवि का हृदयोद्गार है। यह उसके अनुभव का वर्णन है। यदि मिल्टन की कविता के अच्छे अच्छे उदाहरण एकत्र किये जायँ तो एक बड़ी पुस्तक बन सकती है। अतएव इस विषय को छोड़ कर मिल्टन की निरङ्कुशता के दो चार उदाहरण हम देते हैं:—

यथार्थ समालोचना (Honest criticism) के महत्त्व को समझने वाली अँगरेज़ी विद्वन्मण्डली ने इन दोषों को सहर्ष स्वीकार करके अपनी न्यायप्रियता का परिचय दिया है। पश्चिमीय विद्वान् अच्छी तरह जानते हैं कि चाहे महाकवि हो या न हो, चाहे महाकवि का बाबा, भूल चूक मनुष्यमात्र से होने का सम्भव है।

(१) मिल्टन के समय में पृथ्वी के विषय में दो सिद्धान्त प्रचलित थे। समस्त तारामण्डल का केन्द्र कोई



पत्नी को मानते थे और कोई कोई सूर्य को। हमारे महा-  
कवि ने कहीं किसी को और कहीं किसी को माना है।

(२) इल पेन्सोरोसो और लैलैग्रो में प्राकृतिक दृश्यों का  
वर्णन है। पर ऐसे वर्णन में आपने कहीं कहीं बेढव निर-  
वृत्ता दिखलाई है :—

Then to come in spite of sorrow,  
And at my window bid good morrow.

इसका भावार्थ यह है कि लवा पत्नी मिल्टन साहब की  
हड़की तक आजाता था। पर बहुत से विलायती पण्डितों की  
मति में मिल्टन ने ऐसा लिख कर बड़ी भारी प्रकृति-परिचय-  
वृत्ता दिखलाई है; क्योंकि लवा पत्नी कभी भी बस्ती के  
बाहर नहीं फटकता।

(३) आपने लिखा है कि लिसीडास की रथी पर प्रिम-  
स, उडलाइन, डैफोडिल, और जैसमिन नामक पुष्प बिखरे  
थे। पर इनमें से कितने ही पुष्प एकही ऋतु में नहीं  
फूलते हैं। फिर वे एकही साथ कैसे बिखरे दिये गये? ऐसी  
ही कितनी ही गलतियाँ इस महाकवि ने की हैं।

डाकूर जानसन जैसे विद्वानों की राय में मिल्टन साहित्य-  
विश्वनी चोरी भी बहुत करता था। लैटिन और ग्रीक  
कवियों के भाव ज्यों के त्यों वह अपने नाम से रख देता था।  
तो क्या अपना सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य पैरेडाइज़ लास्ट  
अधिकतर Caedmon, Andreini और Vondel,  
तीनों प्राचीन कवियों के भावों की चोरी करके उसने  
लिखा है! मिल्टन के पक्षपातियों का कथन है कि वह इतना  
परम और मनन करता था कि कहीं कहीं दूसरे कवियों  
की रक्तियाँ भी वह अपनी समझ कर लिख देता था! शायद  
ऐसा भी हुआ हो। पर जहाँ यह बहाना नहीं चलता  
वे लोग इस डकैती को महाकवि का स्वत्वविशेष (Epic  
privilege) बतला कर बात टाल देते हैं। खैर, कुछ भी हो,  
अंगरेज़ी भाषा का सर्वोत्तम कवि, अपनी अध्यवसाय-  
शक्ति, एकाग्रचिन्तन, विश्वास और परिश्रम के कारण ही  
सफल हुआ है। इसमें मतभेद नहीं। और, सिवा शेक्सपियर के  
किसी और कवि के जो आसन पाने का अधिकारी और कोई कवि नहीं  
है। यदि इतना परिश्रम और ऐसे ऐसे विकट साधनों

के द्वारा भी यह महाकवि न बन सकता तो हेमिन्द के “कवि-  
कण्ठाभरण” का हमें यह एक अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण न  
मिलता।

मदरीनाथ भट्ट।

## चन्दा वसूल करने वाले कुत्ते।



गलैड में धर्मकार्यों के लिए चन्दा वसूल  
करने का काम मनुष्यों की तरह  
कुत्ते भी करते हैं! इस काम के लिए  
जब कोई कुत्ता निकलता है तब  
उसके साथ किसी मनुष्य के  
रहने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

इसके सिवा एक और भी बात है—वह यह कि  
किसी विशिष्ट धर्मकार्य के लिए कोई मनुष्य जितना  
चन्दा वसूल कर लाता है कुत्ता उससे अधिक कर  
लाता है! चन्दा वसूल करने के लिए कुत्तों की  
शिक्षा को सिर्फ़ डेढ़ वर्ष चाहिए। खुशामद  
करना—चेहरे से दीनता दिखा कर किसी का मन  
आकर्षित करना—द्रव्य मिल जाने पर चेहरे की  
चेष्टा से धन्यवाद देना; ताँबे, रूपे और सोने के सिक्कों  
की आवाज़ पहचानना; ताँबे का सिक्का देने वाले की  
अपेक्षा रूपे का सिक्का देने वाले को अधिक धन्यवाद  
देना और रूपे का सिक्का देने वाले की अपेक्षा सोने  
का सिक्का देने वाले को अधिक धन्यवाद देना इत्यादि  
बातें कुत्ते को सिखला दी जाती हैं। इस प्रकार के  
शिक्षित कुत्तों में जितनी कर्तृत्व शक्ति होती है उतना  
ही न्यूनाधिक द्रव्य भी वे एकत्र करते हैं।

चन्दा वसूल करने के लिए जब कुत्ता बाहर  
निकलता है तब उसकी पीठ पर एक बक्स बाँध दिया  
जाता है। जिस धर्मकार्य के लिए, अथवा जिस परो-  
पकारी संस्था के लिए, द्रव्य एकत्र करना होता है  
उसका नाम भी उस बक्स पर लिखा रहता है।  
बक्स में ताला लगा रहता है और सिक्का डालने के  
लिए बक्स के ढकने पर छेद होता है।



धर्मकार्यों के लिए चन्दा वसूल करने में कई कुत्तों ने इंग्लैंड में बड़ा नाम पाया है। उनमें से कुछ का वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

महाराज सप्तम एडवर्ड का “सीजर” नामक प्रसिद्ध कुत्ता आज कल लन्दन के अस्पतालों के लिए चन्दा वसूल किया करता है। वह जहाँ पहुँच जाता है वहीं उसे बहुत सा द्रव्य मिल जाता है। जाने के लिए उसे कहीं रोक नहीं। सब जगह वह वेधड़क चला जाता है। यह कुत्ता लोगों को इतना प्रिय है कि उसके चरित का एक ग्रन्थ भी प्रकाशित हो गया है। और, जैसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों के चित्र बिका करते हैं वैसे ही इस कुत्ते के भी सैकड़ों चित्र लन्दन की दुकानों में बिकने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। रुई, ऊन और मिट्टी की बनी हुई उसकी प्रतिमायें भी लोगों ने अपने घरों में रखी हैं।

लन्दन के मुख्य मुख्य स्टेशनों पर, भिन्न भिन्न धर्मकार्यों के लिए, मुसाफ़िरों से चन्दा वसूल करने वाले अनेक कुत्ते हैं। ये कुत्ते मुसाफ़िरों के बीच, मनुष्यों की तरह, चक्कर काटा करते हैं; रेल के डब्बों में घुस जाते हैं; और धर्मार्थ देनेवालों से जब रुपये पैसे वसूल कर चुकते हैं तब डब्बे से प्लेटफार्म पर उतर आते हैं।

विलायत में “वाटरलू” नाम का एक रेलवे स्टेशन है। इस स्टेशन पर जो कुत्ते चन्दा वसूल किया करते हैं उन्हें “लन्दन जैक” कहते हैं। आज कल इस स्टेशन पर जो लन्दन जैक है उसके वसूल किये हुए चन्दे की रकम हजारों पाँड तक पहुँच गई है। यह कुत्ता सात आठ हजार रुपया वार्षिक चन्दा ले आता है। वाटरलू स्टेशन पर पहले भी एक ऐसा ही कुत्ता था। उसने अपनी जिन्दगी में जो हजारों रुपये जमा किये सो तो किये ही; अब मरने पर भी वह द्रव्य एकत्र कर रहा है। उसके मृत शरीर में मसाला भर कर उसे काँच की एक आलमारी में लोगों ने रख दिया है और आलमारी पर ये शब्द लिख दिये हैं :—

“यह लन्दन जैक है। रेल के नौकरों की अनाथ विधवाओं और बालकों के लिए इसने बहुत सा द्रव्य एकत्र किया। कृपा करके इसे कुछ न कुछ जरूर दीजिए।”

इस मृत कुत्ते की पीठ पर जो बक्स है उसमें मुसाफ़िर मुक्तहस्त होकर सिक्के डालते हैं।

इस लन्दन जैक के मरने पर उसका काम लन्दन जैक नं० २ को सौंपा गया है। इसने यद्यपि पहले जैक का इतना द्रव्य अब तक नहीं इकट्ठा किया है तथापि इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। आशा है कि यह भी आगे बहुत धन एकत्र कर सकेगा। इस कुत्ते ने दुलराने और रिभाने की अनेक चालें सीखी हैं। वह जब किसी रेल के डब्बे में घुस कर देखता है कि मुसाफ़िर अखबार पढ़ने में निमग्न है तब वह अपना पंजा मुसाफ़िर के घुटने पर धीरे से प्रेमपूर्वक रख देता है और ऐसा दीन-वदन होकर देखता है कि मुसाफ़िर को कुछ न कुछ देना पड़ता है। जो सिक्का बक्स में मुसाफ़िर डालता है उसके शब्द से कुत्ता पहचान लेता है कि वह ताँबे का है, या रूपे का, या सोने का। सिक्के की कीमत के अनुसार ही वह मुसाफ़िर को धन्यवाद देता है ताँबे का सिक्का देनेवाले मुसाफ़िर को वह साधारण दृष्टि से धन्यवाद देता है। चाँदी का सिक्का देनेवाले से हाथ मिलाने के लिए वह अपना पंजा आगे बढ़ाता है। और, सोने का सिक्का देनेवाले से हाथ मिलाकर प्रसन्नतापूर्वक मुँह बना कर कृतज्ञता भी प्रकट करता है। कितने ही मुसाफ़िर तो कुत्ते के ये मित्राभावाभिन्न प्रकार के धन्यवाद-दान के तमाशे देखने के लिए क्रमशः ताँबे, रूपे और सोने के सिक्के बक्स में डाला करते हैं। जब कुत्ता न्यूनता की प्रमाण से धन्यवाद देने लगता है तब मुसाफ़िरों की हँसी नहीं रोके रुकती। उस समय तमाम मुसाफ़िरों की बक्स में खनाखन रुपये, पैसे और गिनियाँ डालने लगते हैं।

लन्दन के पैडिंगटन नामक स्टेशन पर आज कल जो कुत्ता चन्दा वसूल करने का काम करता है



उसे "पैडिंग्टन् जिम्" कहते हैं। इस स्टेशन पर दूसरे से आनेवाली गाड़ियाँ ठहरती हैं। इन गाड़ियों से राजवंश के लोग अक्सर आते जाते हैं। उन्हें देख कर पैडिंग्टन् जिम् तुरन्त ही उनके नाम में घुस जाता है; और पहले स्वयं महाराज, फिर महारानी, फिर राजकुमारों और राजकुमारियों को क्रमशः ढूँढ़ कर उनसे चन्दा लेता है। तब वह और मुसाफ़िरों के पास पहुँचता है।

"साउथांष्टन् जैक्" नामक कुत्ता साउथांष्टन् स्टेशन पर चन्दा वसूल किया करता है। यह गाड़ियों और खलसियों आदि का बड़ा दुलारा भारतवर्ष, दक्षिण आफ्रिका आदि देशों को अग्रेज पर जो अँगरेज-सिपाही और खलसी जाते हैं पहले साउथांष्टन् के स्टेशन पर उतर कर फिर रगाह में अग्रेजों पर सवार होते हैं। इन लोगों को यह कुत्ता बहुत द्रव्य लेता है। यह धन साउथांष्टन् के निराश्रित रेलवे-कर्मचारियों के पालन-पोषण के लिये दिया जाता है।

रेलवालों की मदद के लिए चन्दा एकत्र करने आजकल, एक कुतिया नियत की गई है। उसे "बलडन् नेल" कह कर लोग पुकारते हैं। यह लॉडलैंड टापू की रिट्रीवर जाति की है। देखने में यह बड़ी सुन्दर है।

ऊपर जिन कुत्तों का वर्णन किया गया है उनको रेलवे स्टेशनों में वर्ष ही डेढ़ वर्ष लगा है। लन्दनजैक को रेल का काम करनेवाले एक मिस्त्री ने देखा था। साउथांष्टन् जैक को एक टिकिट-कलेक्टर को देखा था। रेलवे के अन्य नौकरों ने भी कई कुत्ते को तैयार किये हैं। कुत्तों की यह उपयोगिता यह है कि इंग्लैंड के अन्य छोटे छोटे स्टेशनों पर भी कुत्ते रखे जा रहे हैं। इस प्रकार के कुत्तों द्वारा इंग्लैंड में जो द्रव्य एकत्र किया जाता है उसका प्रतिवर्ष कोई ५० हजार रुपया है। इन कुत्तों के पीठ पर जो सन्दूकचा बाँधा रहता है उसे चुराने के लिये प्रयत्न आज तक एक बार भी नहीं किया गया। कुत्तों के द्वारा चन्दा वसूल करने की चाल

इंग्लैंड को छोड़ कर और कहीं भी अब तक जारी नहीं हुई।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

## प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकें।

(हिन्दी के दूसरे सम्मेलन के लिए लिखित)

### प्रारम्भिक शिक्षा का महत्त्व।



प्रारम्भिक शिक्षा का विषय बड़े महत्त्व का है। जिस प्रकार कोई विशाल भवन निर्माण कराते समय उसकी नौव की दृढ़ता पर विशेष ध्यान दिया जाता है और बिना नौव की दृढ़ता के कभी कोई

ऊँची इमारत तैयार नहीं करा सकता, ठीक उसी प्रकार पूर्ण पाण्डित्य और विद्वत्ता सम्पादन करने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की आवश्यकता है। प्रारम्भिक शिक्षा को विद्वत्ता की नौव समझना चाहिए। जिस प्रकार नौव कच्ची रह जाने से इमारत के गिर जाने का भय रहता है, भय क्या रहता है वह गिरही जाती है, उसी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा के बिगड़ जाने पर उच्च शिक्षा भी सर्वोद्गुण सुन्दर नहीं होती। इसीलिए मेरी तुच्छ बुद्धि में प्रारम्भिक शिक्षा के सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। हमारा सुख-दुःख, हमारी उन्नति-अवनति और हमारा सौभाग्य-दौर्भाग्य सभी कुछ प्रारम्भिक शिक्षा के ऊपर अवलम्बित है। यदि वह अच्छी हुई तो हमारा सुधार होसकता है और दुर्भाग्य से यदि वह बिगड़ गई तो फिर हमारे जीवन के बिगड़ने में लेश मात्र भी संदेह नहीं।

जब मैं इस बात का विचार करता हूँ कि यह प्रारम्भिक शिक्षा उन छोटे छोटे बालकों को दी जाती है जिनके कोमल, नवविस्फुटित हृदय-पुष्प को संसार के दूषित जल-वायु का स्पर्श तक नहीं हुआ, तब



इसका महत्त्व और भी विशेष बढ़ जाता है। बालकों के मन का भाव अत्यन्त सरल, कोमल, शुद्ध और निर्मल होता है। बालकों का शुद्ध हृत्पटल श्वेत वस्त्र के समान होता है। जिस प्रकार श्वेत वस्त्र को हम लोग इच्छानुसार रंग में रँग कर अपने काम का बना लेते हैं ठीक उसी प्रकार बालकों का मन भी इच्छानुसार शिक्षित किया जा सकता है। जिस प्रकार कोमल पौधे को हम चाहे जिधर को मोड़ सकते हैं उसी प्रकार हम चाहें तो बालकों के मन को भी अपनी इच्छा के अनुसार संस्कृत कर सकते हैं। वस्त्र जितना ही श्वेत या निर्मल होगा रँग भी उस पर उतना ही गहरा आवेगा। जिस प्रकार मैले या काले वस्त्र पर कोई रँग अच्छा नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार जिस बालक की प्रारम्भिक शिक्षा बिगड़ जाती है उस पर उच्चशिक्षा या विद्या का उत्तम प्रभाव अच्छा नहीं जमता। जिस बालक का कोमल चित्त बचपन ही से बुरी बुरी वासनाओं से दूषित हो जाता है उस का वह दोष आजन्म बना रहता है। लाख प्रयत्न करने पर भी वह मिटाये नहीं मिटता। क्या कोई काले कपड़े को सफ़ेद कर सकता है? कभी नहीं। बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा की ओर ध्यान न देना उन पर अन्याय करना है। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा की ओर से उपेक्षा करना मानो अपने हाथ से श्वेत वस्त्र पर काला रँग चढ़ाना है। जो लोग बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा के समय मूर्खता की लंबी चादर तान कर आलस्य की गाढ़ निद्रा में पड़े सोते रहते हैं वे पीछे जागने पर भी कुछ नहीं कर सकते। “संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः”। इसलिए जो लोग अपने बालकों को विद्या और सुशिक्षा से सम्पन्न बनाना चाहें उनको उनकी प्रारम्भिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

जो माता-पिता अपने बालकों के वस्त्राभूषणों पर आवश्यकता से भी कहीं अधिक ध्यान देते हैं, हम देखते हैं, वे उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का ध्यान कभी भूल कर भी अपने मन में नहीं आने देते।

आज कल के माता-पिता अपने बालकों के हाथ, पैर और गले आदि अंगों में चाँदी-सोने की बेड़ियाँ पहनाने में जितना समय, धन और मन लगाते हैं यदि उसका षोडशांश भी उत्साह वे उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के सुधार के लिए दिखावे तो फिर बेड़ा पार है। परन्तु हम देखते हैं कि लोग इस ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं देते। या देते भी हैं तो उदर पर सफ़ेदी के बराबर। जिस प्रारम्भिक शिक्षा पर बालक का सर्वस्व अवलम्बित है, जिस प्रारम्भिक शिक्षा पर बालक का ही नहीं सारे समाज, नहीं नहीं सारे देश की बुराई-भलाई अवलम्बित है उसकी तरफ़ हम आँख उठा कर भी नहीं देखते। क्या यह कम दुःख की बात है? क्या यह कम लज्जा का विषय है?

### प्रारम्भिक शिक्षा के भेद।

प्रारम्भिक शिक्षा दो प्रकार से दी जा सकती है। प्रत्यक्ष रीति से और परोक्ष रीति से। दूसरी तरह से आप इसे यों भी कह सकते हैं कि मौखिक और लेख-द्वारा। जो शिक्षा मौखिक दी जाती है, जिसमें ज़बानी कुछ समझाया जाता है, वही शिक्षा की प्रत्यक्ष रीति है। और, जो शिक्षा लेख-द्वारा दी जाती है, जिसमें पुस्तकों के द्वारा शिक्षण होता है, वह परोक्ष रीति है। हैं दोनों रीतियाँ आवश्यक। जब तक बालक अक्षराभ्यास नहीं करता—पुस्तक नहीं पढ़ता—तब तक उसको मौखिक शिक्षा का सहारा रहता है। यों तो बड़े होने पर, अनेक पुस्तकों के पढ़ लेने पर भी, बालक बीच बीच में मौखिक शिक्षा को ग्रहण करता रहता है; पर तो भी शैशव काल में उसको सर्वथा मौखिक शिक्षा का आधार रहता है।

मौखिक शिक्षा का मुख्य भार बालक के माता-पिता और उन लोगों के ऊपर ही रहता है जो बालक के समीप रह कर वह अपनी शैशव अवस्था को पूरा करता है। यह शिक्षा सर्वथा उसके माता-पिता की ही हाथ में है। इसलिए बालक के माता-पिता को



यह मुख्य कर्तव्य होना चाहिए कि वे अपने बच्चे को ऐसी मौखिक शिक्षा देते रहें जिससे उसके सुकोमल हृदय-क्षेत्र में सद्गुणों का बीज अङ्कुरित हो उठे; दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और वुराइयों से घृणा उत्पन्न हो जाय। छोटा बच्चा जैसा दूसरों को करते देखता है वैसा ही आप भी करने लगता है। बालक स्वभाव से ही अनुकरणशील होता है। इसलिए जो लोग अपने बालक को सद्गुणी और सुशील बनाना चाहें उनका कर्तव्य है कि वे सदैव उसके साथ शुभ गुणों की ही चर्चा करते रहें। चर्चा ही नहीं, किन्तु अपने आचरण से भी वैसा ही बर्ताव करके दिखाते रहें जैसा उनको बनाना चाहते हों। जो लोग अपने बालक के सामने बात बात में असत्य भाषण करते हैं उनके बालक कभी सत्यवादी नहीं बन सकते। जिनके माता-पिता बात बात में बच्चे को हवा आदि का झूठा डर दिखलाया करते हैं उनके बच्चे कभी साहसी, निडर और वीर नहीं बन सकते।

मौखिक शिक्षा के विषय में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। यदि उन सब आवश्यक बातों का यहाँ उल्लेख किया जाय तो लेख बहुत बढ़ जाने का डर है। मेरा मुख्य आलेख्य विषय भी दूसरा ही है। मौखिक शिक्षा का प्रारम्भिक शिक्षा के साथ सम्बन्ध होने ही के कारण उसका यहाँ पर कुछ उल्लेख करना पड़ा। आशा है, समस्त शिक्षाप्रेमी शिक्षा के इस आवश्यक अङ्ग की ओर भी विशेष ध्यान देने का प्रयत्न करके अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

**प्रारम्भिक शिक्षा की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकें**

यह बात कही जा चुकी है कि शिक्षा का दूसरा प्रकार परोक्ष रीति से, अर्थात् पुस्तकों के द्वारा, शिक्षा देना है। पहली रीति से शिक्षा देने का भार बालक के माता-पिता पर था और इस दूसरी रीति से शिक्षा देने का मुख्य भार पुस्तक रचने वालों और सरकारी शिक्षा-विभाग पर है। परन्तु आज कल प्रारम्भिक शिक्षा-विभाग की जो हिन्दी-पुस्तकें प्रचलित हैं उनको देखने से प्रत्येक विचारशील मनुष्य अच्छी तरह से समझ सकता है कि वे

हमारे बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए यथेष्ट उपयोगी नहीं हैं। उनमें एक नहीं अनेक त्रुटियाँ हैं। पुस्तक के उपयोगी होने के लिए दो ही बातें आवश्यक होती हैं। भाषा और विषय। पर आजकल की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकों की न तो भाषाही प्रशंसनीय है न विषय ही। पहली पुस्तक की जो भाषा है वही भाषा प्रायः छठी पुस्तक तक चली गई है। भला यह भी कोई न्याय की बात है। जैसा और जितना भोजन ६-७ वर्ष के बालक के लिए अपेक्षित है वैसा ही और उतना ही भोजन १० वर्ष के बालक के लिए कभी पर्याप्त नहीं हो सकता। कल्पना कीजिए कि ६ वर्ष का बालक दिन भर में तीन छटाँक अन्न से तृप्त हो जाता है तो क्या १० वर्ष का बालक भी ३ छटाँक अन्न के सहारे ही रह कर अपना जीवन-निर्वाह करे? जिसको ६ छटाँक की भूख है उसका काम ३ छटाँक से किस तरह चल सकता है? आधे पेट भोजन करके दुर्बल होता होता बालक क्या बहुत जल्द काल के गाल में न चला जायगा? अवश्य चला जायगा। तो फिर ६ छटाँक की भूकवाले बालक को ३ छटाँक से ही निर्वाह करने के लिए क्यों दबाव डाला जाता है? उसको यथेष्ट खाद्य सामग्री क्यों नहीं दी जाती? यह मैं भी मानता हूँ कि जितनी पाचन-शक्ति हो उतना ही भोजन करना चाहिए। अधिक खाने से अजीर्ण हो जाने का डर रहता है। पर आधे पेट खाना भी तो अच्छा नहीं। मेरी सम्मति में इससे अच्छी और कोई बात नहीं कि जिसको जितनी भूक हो उसको उतनाही भोजन दिया जाय। पेसा करने से उसकी तृप्ति भी होगी और उसका बल भी बढ़ेगा। जो लोग ६ से १० वर्ष के बालकों को समान भाषा की ही पुस्तकें पढ़ाते हैं वे अच्छा काम नहीं करते। कोई भी मतिमान् मनुष्य इस बात को कभी नहीं मान सकता कि जिस ढँग की भाषा पहली पुस्तक की है छठी पुस्तक की भी वैसी ही हो। जहाँ तक मुझे पूछने से पता लगा है, मैं कह सकता हूँ कि भारत-वर्ष को छोड़ कर और किसी भी देश में पेसा



अन्धेर नहीं है। दूर देशों की बात जाने दीजिए, इसी देश के और और प्रान्तों की पाठ्य-पुस्तकें, भाषा के विचार से, इस प्रान्त की पाठ्य-पुस्तकों से आकाश-पाताल का सा अन्तर रखती हैं। ५-६ वर्ष से तो यहाँ ऐसी पुस्तकें प्रचलित हैं जिनका पढ़नेवाला अपर प्राइमरी पास करने पर भी हिन्दी-समाचार-पत्रों को पढ़ कर नहीं समझ सकता।

भाषा की तरह विषयों की भी दुर्दशा है। ढूँढ़ने पर दस पाठों में कठिनता से एक पाठ ऐसा निकलेगा जिससे बालक कोई अच्छी बात सीख सकता है। शेष पाठ ऐसे अनावश्यक, अनुपयोगी और व्यर्थ विषयों से भरे पड़े हैं जिनको देख कर चित्त में दुःख होता है।

आर्यभाषाभाषी आर्य-सन्तानों की विद्यातृष्णा कुत्ते-बिल्लियों या गीदड़-उल्लुओं के पाठ पढ़ने से शान्त नहीं हो सकती। आर्यजाति जंगली जाति तो है ही नहीं जो पशु-पक्षियों के पाठ पढ़ने से ही तृप्त हो जाय। किसी पाठ में मक्खी की ६० हजार आँखें और ६ टाँगें बतलाने से ही आर्यबालक विज्ञानवेत्ता नहीं बन सकता। 'जादू के कुएं' के पाठ में परियों की असम्भव कहानी पढ़ने से हिन्दू-बालक अपना कितना सुधार कर सकता है—इसको प्रत्येक विचार-शील मनुष्य अच्छी तरह सोच सकता है। जिन पाठों से बालकों को न किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा मिल सकती है, न सामाजिक, और न नैतिक, उनके पढ़ाने से पढ़नेवालों का अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करना नहीं तो और क्या है?

प्रारम्भिक शिक्षा की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकों के दोष जान लेने पर भी हम लोग ऐसे निश्चिन्त बैठे हैं मानो हमें कुछ करना ही नहीं है। अपनी आँखों के सामने अपने बालकों की विद्याशिक्षा की नींव को सर्वथा कच्ची बनते देख कर भी हमारे कान पर जूँ नहीं रेंगती। क्या अपने बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा की इस दुर्दशा के हम उत्तरदाता ही नहीं? क्या हमारे इस अज्ञान, आलस्य या उपेक्षा का बुरा परिणाम हमको या हमारे बालकों को नहीं भोगना पड़ेगा

या पड़ रहा है? हमीं या हमारे बालकों को ही नहीं, इसका कुफल हमारे समाज को, नहीं नहीं, देश भर को भोगना पड़ेगा।

आज कल, हम लोगों में विद्या की ऊँची डिग्री प्राप्त कर लेने पर भी धार्मिक, सामाजिक और नैतिक बल की जो कमी दिखाई देती है इसका क्या कारण है? केवल प्रारम्भिक शिक्षा का विगाड़। हम विद्या पढ़ कर भी, अपने धर्म, देश और समाज को प्यार नहीं करते। या करते हैं तो उतना नहीं करते जितना हमको करना चाहिए। यह हमारी प्रारम्भिक शिक्षा के विगाड़ जाने का ही कुफल है कि हम ईश्वर को मानते ही नहीं, हममें स्वधर्मपालन का सत्साहस नहीं, हमारे हृदय में जननी जन्म-भूमि की प्रतिष्ठा ही नहीं और अपने भाइयों के प्रति हममें भक्ति, श्रद्धा और प्रेम ही नहीं। ऐसी विद्या के पढ़ने से क्या लाभ कि जिससे ईश्वर में भक्ति न हो, धर्म में श्रद्धा न हो, देश में अनुराग न हो, और अपने देशी भाइयों में प्रेम न हो। मेरी तुच्छ समझ में वह विद्या विद्या ही नहीं कहलाई जा सकती जिससे मनुष्य में सदाचार और कर्तव्य-पालन का भाव दृढ़ न हो। वह शिक्षा कभी शिक्षा कहलाने का दावा नहीं कर सकती जिससे

“कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ ।  
को वाहं काच मे शक्तिः.....”

का पूरा पूरा बोध न हो।

अब प्रश्न यह है कि यदि प्रारम्भिक शिक्षा की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकें बालकों के लिए अधिक लाभ-दायक नहीं हैं तो फिर उनके लिए कैसी पुस्तकें होनी चाहिएँ। निःसन्देह इस बात पर विचार करने की बड़ी आवश्यकता है। यह प्रश्न बड़ा गंभीर है। अब मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यहाँ यह बतलाना चाहता हूँ कि प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकें कैसी होनी चाहिएँ। सुनिए :—

१—सब से पहली बात भाषा की है। मेरी समझ में प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकों की भाषा बहुत सरल होनी चाहिए—ऐसी सरल कि जिसके समझने



में बालकों को अधिक कठिनता न हो। उनकी भाषा में न तो संस्कृत के कठिन शब्दों की भरमार होनी चाहिए और न उर्दू-फारसी आदि विदेशी भाषाओं के कठिन शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। जो शब्द अधिक प्रचलित हैं, फिर चाहे वे किसी भी भाषा के क्यों न हों, उनका व्यवहार करना अनुचित नहीं। जान बूझ कर उर्दू-फारसी के कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना मैं उचित नहीं समझता। इसी प्रकार 'घर' की जगह 'गृह', 'जगह' की जगह 'स्थान', 'कान' की जगह 'कर्ण', 'मुँह' की जगह 'मुख' शब्दों का प्रयोग करना मेरी तुच्छ सम्मति में अनावश्यक है। तात्पर्य यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकें बहुत ही सरल भाषा में लिखी जानी चाहिए। पहली पुस्तक की जैसी भाषा हो वैसी ही भाषा बराबर पाँचवीं छठी पुस्तक तक रखना अच्छा नहीं है। भाषा की कठिनता या गम्भीरता उत्तरोत्तर बढ़ती जानी चाहिए।

२—हम देखते हैं कि बालकों के स्वभाव का झुकाव आरम्भ से ही गद्य की अपेक्षा पद्य की ओर अधिक होता है। बालक कविता के पढ़ने और सुनने में अधिक रुचि रखते हैं। इस लिए बालकों की प्रारम्भिक पुस्तकों में पद्य-भाग कुछ अधिक होना चाहिए। कारण यह है कि छोटी और सरल कविता को बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं और बहुत जल्द याद कर लेते हैं। यही नहीं, किन्तु बचपन की याद की हुई कविता उनको आजीवन नहीं भूलती। परन्तु आज कल की प्रारम्भिक पुस्तकों में कविता का भाग बहुत ही कम है। जो है भी वह केवल प्राचीन हिंदी-कवियों की दो चार कविताओं का कुछ अवतरण मात्र है। वर्तमान मासिक पत्रों या पत्रिकाओं में जो नई प्रणाली की हिंदी-कवितायेँ प्रकाशित होती रहती हैं उनमें से भी बहुत सी कविताओं का समावेश, प्रारम्भिक पुस्तकों में, किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। अधिक नहीं तो कम से कम पुस्तक का एक चतुर्थांश तो अवश्य ही कविता से अलङ्कृत रखना चाहिए।

३—तीसरी बात भाव या विषय की है। विषय का काठिन्य और भाव का गाम्भीर्य क्रम क्रम से उन्नत होता जाना चाहिए। पहली पुस्तक के पाठों के भाव से आगे की पुस्तकों का भाव यथाक्रम गम्भीर होना चाहिए। ऐसा न होना चाहिए जैसा कि आज कल की पुस्तकों में है। पहली पुस्तक से छठी पुस्तक के भाव में जितना अन्तर होना चाहिए उतना आज कल की पुस्तकों में नहीं है। मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि भाषा के साथ साथ भाव का गाम्भीर्य भी क्रमशः बढ़ता जाना चाहिए।

४—प्रारम्भिक पुस्तकों में जो आज कल इतिहास की बातें पढ़ाई जाती हैं उनमें भी बहुत कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है। भारतीय बालकों की प्रारम्भिक पुस्तकों में पहले भारत के इतिहास की बातें अधिक होनी चाहिए। ऐतिहासिक शिक्षा में सब से मुख्य विचारणीय बात यही है कि बालकों को अपने देश में उत्पन्न हुए आदर्श महापुरुषों के जीवनचरितों से परिचय हो जाय और वे उनसे उचित शिक्षा ग्रहण करें। यदि ऐसा नहीं तो फिर इतिहास की शिक्षा देना निष्फल है। तात्पर्य यह कि बालकों को आरम्भ से ही ऐसी ऐतिहासिक बातें पढ़ानी चाहिए जिनसे उनके कोमल हृदय पर अपने प्राचीन पुरुषों के सदाचरण का चित्र अङ्कित हो जाय और वे अपने पूर्वजों को अधिक गौरव की दृष्टि से देखने लगे। अपना इतिहास पढ़ चुकने पर, फिर, दूसरों के इतिहास पढ़ने चाहिए।

५—प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे पाठ होने चाहिए जिनको पढ़ कर बालकों में सद्गुणों का सञ्चार हो, जिनसे बालकों में उच्च भावों की वृद्धि हो; दुर्गुणों-दुर्व्यसनों और दुराचरणों से उनको आन्तरिक घृणा हो। बालकों की पाठ्य पुस्तकों में ऐसे विषयों का समावेश होना चाहिए जिनको पढ़ कर वे अपने कर्तव्य को पहचान सकें और अपने हित को समझ सकें। आज कल की पुस्तकों में ऐसे पाठों का सर्वथा अभाव है जिनसे बालकों का स्वदेश और स्वधर्म में दृढ़ प्रेम और



गाढ़ी भक्ति हो। स्वदेश-प्रेम, स्वधर्म-भक्ति और स्वावलम्बन आदि ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक मनुष्य में होने चाहिये। पर हम देखते हैं कि आज कल की पुस्तकों में ऐसे आवश्यक विषयों का प्रायः अभाव है। बालकों की पाठ्य पुस्तकों में कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें स्वास्थ्य-सुधार की आवश्यक बातों का उल्लेख हो। यह देख कर किसको खेद न होगा कि प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकों में जिन जिन उपयोगी विषयों का समावेश होना आवश्यक था, प्रचलित पुस्तकों में उन्हीं अत्यावश्यक विषयों का बहिष्कार किया गया है।

### प्रारम्भिक शिक्षा के सुधार का उपाय ।

मेरे इस कथन से आपको यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई होगी कि प्रारम्भिक शिक्षा के लिए हिन्दी-पुस्तकें कैसी होनी चाहिये। परन्तु ऐसी पुस्तकों का लिखना हर एक आदमी का काम नहीं। इन पुस्तकों को वही लोग अच्छी तरह लिख सकते हैं जो हिन्दी के नामी लेखक होने के साथ ही, संस्कृत और अँगरेजी भाषा के भी अच्छे विद्वान् हैं। जो लोग अपने देश की आवश्यकताओं को नहीं समझते और यह नहीं जानते कि इस समय बालकों को किस प्रकार की शिक्षा किस ढंग से दी जानी चाहिए वे ऐसी पुस्तकें कभी नहीं लिख सकते; और, न उनको ऐसी पुस्तकों के लिखने का कभी साहस ही करना चाहिए। परन्तु हमारे दुर्भाग्य से आज हमारी प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकों के लिखने का काम बहुत करके दूसरे ही महात्माओं के हाथ में है। जो लोग हिन्दी का इमला तक शुद्ध नहीं लिख सकते वे लोग जब हिन्दी-पाठ्य पुस्तकें लिखने का दुस्साहस करते हैं तब हमको कैसे विश्वास हो सकता है कि हमारे बालकों के हाथ में शुद्ध और लाभदायक पुस्तकें पहुँचती हैं। जो लोग भारतवर्ष के पुराने इतिहास को दूसरों की दृष्टि से ही देखते हैं, जिनके हृदय में भारत के पुराने गौरव का अङ्कुर तक नहीं, वे लोग प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ऐतिहासिक पुस्तकें

नहीं लिख सकते। और जो लिखते भी हैं तो उनकी पुस्तकें हमारे किसी काम की नहीं होतीं।

हम देखते हैं कि हमारी कितनी ही प्रारम्भिक पुस्तकें ऐसे लोगों की लिखी हुई हैं जो भारतीयता का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते और जो सर्वथा विदेशी हैं। भला सात समुद्र पार का रहने वाला, चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो, कभी हमारी उन आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है जिनकी हमारे लिए आवश्यकता है? मेरी तो यह समझ है कि आवश्यकता की पूर्ति तो अलग रही वे हमारी आवश्यकताओं को समझ ही नहीं सकते। दूसरे लोगों का ज्ञान हमारे लिए सर्वांश में हितकर और उपादेय नहीं हो सकता। उनमें एक नहीं अनेक त्रुटियाँ हैं। पहले तो वे यही नहीं जानते कि हिन्दी कहते किसको हैं। दूसरे, भारतवासियों के आचार-विचारों के ज्ञान से भी वे कोरे ही रहते हैं। तीसरे, यहाँ रह कर उन लोगों ने जो थोड़ी बहुत बातें हम लोगों के विषय में जानी भी हैं वे सर्वांश में यथार्थ नहीं। उन्हें अभी यहाँ की बातों का बहुत ही कम ज्ञान है। जब उनकी यह दशा है तब आप स्वयं सोच सकते हैं कि उनकी लेखनी से लिखी गई अध-कचरी बातों से भारतवर्ष के बालकों को कितना लाभ हो सकता है। अकेले उन्हीं बेचारों का दोष नहीं; यहाँ वालों का भी दोष है। उनकी लिखी हुई पुस्तकें भी प्रायः दोषपूर्ण ही हैं।

हमें खेद है कि हमारे शिक्षित भाई, जो संस्कृत और अँगरेजी भाषा के विद्वान् हैं, इस ओर तनिक भी अपना ध्यान आकर्षित नहीं करते। हमारी प्रारम्भिक शिक्षा के बिगड़ने-सुधरने का सारा पाप पुण्य हमारे शिक्षित भाइयों पर ही है। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे विद्वान् भाई क्यों इस ओर ध्यान नहीं देते। हिन्दी के नामी नामी लेखकों को इस आवश्यक कर्तव्य की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

यहाँ की मुख्य मुख्य नागरी-प्रचारिणी सभाओं को इस आवश्यक विषय की ओर पूरा ध्यान देना



चाहिए। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ही इस कार्य को अपने ऊपर लेले तो भी बहुत कुछ सफलता की आशा है। हमें खेद है कि समाचारपत्रों के सम्पादक महाशयों का ध्यान इधर बिलकुल नहीं गया। प्रत्येक हिन्दी-हितैषी का यह कर्तव्य होना चाहिए कि अपने यहाँ की बुराइयों का धोर विरोध करें और उनके सुधार का उपाय लोगों को बतलावें। यदि कोई सभा या सम्मेलन पुस्तक-प्रकाशन का काम अपने ऊपर नहीं ले सकता तो कम से कम पुस्तक-प्रणयन का कार्य तो उनको अपने हाथ में अवश्य ही लेना चाहिए। यदि सम्मेलन अच्छे अच्छे विद्वान् लेखकों को पुरस्कार देदे कर प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकों की रचना कराने का काम आरम्भ करदे तो भारतवर्षीय बड़े बड़े पुस्तक-प्रकाशक उनके प्रकाशन का भार बड़ी खुशी से अपने ऊपर ले सकते हैं। ऐसा करने से, पाठ्य-पुस्तकों का सुधार भी हो जायगा और सम्मेलन को कुछ आर्थिक लाभ भी अवश्य होगा। परन्तु यह काम बड़ा कठिन। इसके लिए सम्मेलन के अधिकारियों को बहुत परिश्रम करना पड़ेगा और निरन्तर उद्योग जारी रखना होगा। उनको सरकारी शिक्षा-विभाग का ध्यान इस ओर आकर्षित करना होगा और उसके द्वारा अपनी पुस्तकों को स्वीकृत कराना होगा। मेरी सम्मति में यदि इस काम को उत्तमरूप से चलाने के लिए भारतवर्ष के ८।१० प्रतिष्ठित हिन्दी-हितैषी महानुभावों की एक शिक्षा-समिति संगठित हो जाय और वह निरन्तर उद्योग करती हो तो, मुझे विश्वास है कि, इस समय हिन्दी में प्रारम्भिक शिक्षा की जो अनुपयोगी या अल्प उपयोगी पुस्तकें प्रचलित हैं उनके स्थान में जैसी हम चाहते हैं वैसी ही निर्दोष और उपयोगी पुस्तकें प्रचलित कर सकती हैं। क्या हम लोगों की यह शुभाशा पूरी पूर्ण होगी? तथास्तु।

रामजीलाल शर्मा

## ज्ञानोदय ।

( १ )

एक सुवदनी निशा-मध्य निज पिता-सदन में  
अलग विनिद्रित पड़ी हुई थी शयन-अयन में ।  
यदपि अनवसर-प्राप्त, द्वार पर, उसका प्रिय पति  
कहने लगा अधीर-चित्त हो यों उसके प्रति:—

( २ )

“प्रिये ! हे प्रिये !—खुली नहीं क्या निद्रा तेरी ?  
होके भी क्या सजग नहीं सुनती तू मेरी ?  
निशा अंधेरी विपुल वारि वारिद बरसाते ;  
भ्रमन्तिल के प्रबल झरोके सहे न जाते ॥

( ३ )

“जिसने सरिता-पार मुझे इस रात उतारा ;  
था मेरा मँझधार-मध्य जो सुदृढ़ सहारा ।  
क्या स्वागत उस प्रणय-देव का तू न करेगी ?  
क्या मेरी इस विरह-व्यथा को तू न हरेगी ?

( ४ )

“जिन के बल से तरङ्गिणी तर कर हूँ आया,  
जिन के बल से अपने को बहु भाँति बचाया ।  
परिश्रान्त अति अहो प्रिये ! भुज-युग वे मेरे  
वियोगार्त्त परमातुर हैं मिलनेच्छुक तेरे” ।

( ५ )

शब्द द्वार पर बार बार सुन कर वह जागी;  
भय के कारण नींद दगों से उसकी भागी ।  
पर पहचानी जब उसने वाणी निज पति की  
करने तब यों लगी अपस्तुति उसकी मति की:—

( ६ )

“ऐसे व्याकुल व्यग्र विकल निज दशा भुलाये  
प्राणनाथ ! इस समय कहे तुम कैसे आये ?  
अस्थि-मांस-मय यह शरीर क्या तुमको ऐसा  
आकर्षक होगया लोह को चुम्बक जैसा ?

( ७ )

वशीभूत करते यदि इन्द्रिय मेरे प्यारे,  
तो प्रशमित हो जाते सारे ताप तुम्हारे ।



पर बन उन के दास भोग लिप्सा तुम करते  
क्षणभंगुर सुख हेतु हाय तुम पच पच मरते ।

( ८ )

“मन तो विधि से मिला आपको है प्रणयी अति  
मिली नहीं है किन्तु उचित-पथ-गमन-शील मति ।  
मुझ से जैसी प्रीति राम से वैसी करिए,  
अपने सब सन्ताप प्राणपति सत्वर हरिए” ।

( ९ )

सुन वाणी पत्नी की ऐसी मर्मस्पर्शी  
मिटा मोह-भ्रम, हुआ स्वयं पति अन्तर्दर्शी ।  
उदित हुआ उर-नभोदेश में ज्ञान-विभाकर  
हरने को निश्शेष मोह-तम उसका सत्वर ॥

( १० )

बोला तब हो कुछ का कुछ वह पत्नी-सेवी :—  
“गुरु सम मेरी हुई आज से तू हे देवी !  
कर सकते नर प्राप्त जिसे मथ कर निगमागम,  
सो तूने ही मुझे बताया मंत्र महत्तम ॥

( ११ )

“जब तुझ से ही सदा प्रकृत सुख मैंने पाये;  
और कहीं से प्राप्त हुए जब मुझे न भाये,  
तब सुख कोई और मुझे क्यों इच्छित होता  
यदि उसके लाभार्थ न तुझ से शिक्षित होता ?

( १२ )

“सत्पथ जिससे आज हुआ है मुझ को अवगत  
धन्य देवि ! तू, धन्यवाद तुझ को हैं शत शत !  
होता हूँ-यह-विदा, मुदित मन, अब मैं तुझ से ;  
स्मरण न रखना दोष हुए हों जो कुछ मुझ से !

जय निर्मल-ज्ञान-विकाश-रवि !

जय मुमुक्षु-हृद्-आन्तिहर !

जय पातक-पर्वत-पंक्ति-पवि !

पाहि परेश परातपर ! ”

सत्कविदास ।

## भूकम्प से लाभ ।



कम्प हमारी पृथ्वी को समय समय पर हिलाते रहते हैं । यह इस बात का प्रमाण है कि भूगर्भ के भीतर विलक्षण शक्तियाँ काम कर रही हैं । भूमि का एक छोटा सा झोका अनेक नगरों और ग्रामों का नाश कर देता है । सैकड़ों मनुष्य अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं । लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति मिट्टी में मिल जाती है । ऐसे भयानक दृश्य इस बात को भली भाँति प्रकट करते हैं कि प्रकृति के घोर संग्राम में मनुष्य अति लघु और तुच्छ वस्तु है । प्रकृति का श्वास मात्र मनुष्य के रंग-महलों को धूल में मिला देता है और उनके अभागे निवासियों की हड्डियाँ या तो दब कर चूर चूर हो जाती हैं या वे निःसहाय अवस्था में अपने मकानों को अपनी आँखों गिरता हुआ देखते रहते हैं ।

इस पर यह कहना कि भूकम्प से भी लाभ होते हैं, एक उलटी बात मालूम होती है । पर वास्तव में यह सत्य है । यदि सृष्टि के आदि में भूकम्प न आते तो आज मनुष्य पृथ्वी पर न रहता होता । और यदि भविष्यत् में भूकम्प न आवे तो मनुष्य-जाति का रहना इस संसार में कठिन हो जाय ।

भूगर्भशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार प्राचीन काल में हमारी पृथ्वी विलकुल गोल थी । अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय पानी के ऊपर सूखी भूमि कहीं भी न दिखाई देती होगी । सब कहीं ठोस ज़मीन पर समुद्र भरा रहा होगा । ऐसी दशा में भूगर्भ-शक्तियों के अतिरिक्त और कोई शक्ति महा-द्वीपों और टापुओं को न बना सकती थी । एक बार जब द्वीप और टापू बन गये तब रक्षक और नाशक शक्तियों में संग्राम आरम्भ हो गया । अब यह देखना है कि ये दो प्रकार की शक्तियाँ क्या हैं ।



नाशक शक्तियों में भूमि का सबसे बड़ा शत्रु जल है। वह दो प्रकार से भूमि का नाश करता है। समुद्र अपने किनारों पर बराबर टक्करें मारता रहता है। इस तरह बहुत सी मिट्टी को वह बहा ले जाता है। कोई शायद यह शङ्का करे कि यह कोई प्रबल नाशक शक्ति नहीं है; क्योंकि द्वीपों और टापुओं के आकार में बहुत काल पश्चात् भी कोई परिवर्तन नहीं होता। पर यह विचार ठीक नहीं। हम नाशक शक्तियों की इयत्ता को ठीक ठीक नहीं जान सकते, क्योंकि इनसे जो हानि पहुँचती है, नाशक शक्तियाँ बहुधा बहुत ही शीघ्र उसके परिणाम को दूर कर देती हैं। यदि ऐसा न होता तो नाशक शक्तियाँ दिन पर दिन जोर पकड़ती जातीं—अर्थात् समुद्र ज्यों ज्यों मिट्टी बहा कर अपनी तह पर जमा करता जाता त्यों त्यों उसका जल ऊँचा उठता जाता और उसकी नाशक शक्ति बढ़ती जाती।

समुद्र के नाशक बल के दो एक उदाहरण दीजिए। परन्तु यह बात ध्यान में रखिए कि यदि नाशक शक्तियाँ भूमि की सहायता न करतीं तो उसकी बहुत ही अधिक हानि हो जाती।

शेटलैंड टापू स्कौटलैंड के उत्तर में है। वह बड़े बड़े और ठोस पत्थर से बना है। उसके किनारों पर भी आटलान्टिक महासमुद्र ने टक्करें मार मार कर बड़ा परिवर्तन कर दिया है। सर चार्ल्स लायल कहते हैं कि ढालू चट्टानें घिस घिस कर उनमें बड़ी बड़ी गुफायें बन गई हैं। बहुत स्थानों पर ठोस पत्थरों की जगह केवल दो चार खंभे ही से खड़े रह गये हैं। कहीं कहीं समुद्र १५० फुट तक अन्दर घुस गया है। डाकूर हिबर्ट कहते हैं कि एक स्थान पर एक चट्टान के टुकड़े ने, जो कई कारणों से लड़खड़ा चुका था, बहुत समय के लिए बचा रह गया था, बन्द सा दिया था। उस पर, तूफान आने के समय, समुद्र की लहरें इस प्रकार टक्कर मारती थीं मानो लाले चल रहे हैं। अन्त में समुद्र ने उसे तोड़ ही डाला।

इंगलैंड के पूर्व में नौरफोक और सफ़क दो प्रान्त हैं। उनके किनारों को बहुत अधिक हानि पहुँची है। वहाँ शेरिंगम नामक स्थल पर एक सराय बनाई जाने लगी। तब यह हिसाब लगाया गया कि समुद्र उस स्थान पर ७० वर्ष में पहुँच जायगा, क्योंकि वह प्रति वर्ष १२ गज़ भूमि को निगल जाता था। इस हिसाब को लगाने के समय इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया था कि ज़मीन समुद्र की ओर से गाँव की ओर को ढालू थी। परिणाम यह हुआ कि समुद्र ज्यों ज्यों भूमि की ओर बढ़ता गया उसकी काटने की शक्ति भी बढ़ती गई। १८२४ और १८२९ ई० के बीच में समुद्र ने १७ गज़ भूमि को ग्रास कर लिया। १८२९ ई० में जिस स्थान पर ५० वर्ष पहले एक ५० फुट ऊँची चट्टान खड़ी थी वहाँ पानी का एक खाल हो गया। उसमें नाव भली-भाँति चल सकती थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज कल उस सराय का चिह्न भी शेष नहीं है।

यह हाल केवल ग्रेट-ब्रिटेन का ही नहीं है। प्रत्येक देश का, जो समुद्र के किनारे है, यही हाल है। बहुत लोगों की यह सम्मति है कि मनार की खाड़ी, जो भारतवर्ष और लङ्का के बीच में है, चौड़ी होती जा रही है।

इस प्रकार ठोस भूमि का बहुत बड़ा भाग कट कर समुद्र के भीतर जा रहा है। वह समुद्र की तह में बैठ जाता है। इससे समुद्र का तल-देश ऊँचा होता जाता है। फल यह होता है कि समुद्र का पानी भी ऊँचा उठता जाता है और पहले निचले फिर ऊँचे किनारों को डबोता है।

समुद्र के किनारों पर जल के प्रभाव के उदाहरण दिये जा चुके। अब थल के ऊपर होनेवाले उसके प्रभाव की बातें सुनिए :—

पहाड़ी नदियों के जल का रंग इस बात का साक्ष्य देता है कि उसमें बहुत सी मिट्टी और पत्थर के टुकड़े मिले हुए हैं। नदियों का पानी वर्षा-ऋतु में गदला हो जाता है। इस प्रकार वृहद् बहुत सी



मिट्टी समुद्र में बहा ले जाता है। और तरह से भी जलनाशक शक्ति का काम देता है। वह चट्टानों की दरारों में घुस जाता है। इससे कुछ मिट्टी भीग कर नीचे धँस जाती है। जाड़े के मौसम में चट्टानों के भीतर का यह जल जम जाता है। जमने से उसका घनत्व कम हो जाता है और शरीर बढ़ जाता है। इस कारण वह बड़े बड़े पत्थरों के टुकड़े कर देता है। वर्षा से ज़मीन के ऊपर की तह पोली हो जाती है। जब वह सूखती है तब रेत होकर हवा में इधर उधर उड़ा करती है। डार्विन साहब दक्षिणी अमेरिका के एक स्थान के विषय में लिखते हैं :— “कुछ काल तक वर्षा न होने के कारण धरती विलकुल सूख गई और हवा के साथ इतनी रेत उड़ी कि खेतों की मेंडें उसके भीतर दब गईं। इससे वहाँ के निवासियों में बड़े झगड़े हुए। बहुधा पहाड़ी घाटियों में बहुत सा पानी इकट्ठा हो जाता है। वह एक दम नीचे के मैदानों पर गिरता है। कुछ काल हुआ, हरद्वार में भी ऐसा ही हुआ था। इस बाढ़ का चिह्न बाज़ार की दीवारों पर पत्थर की शिलाओं पर खुदा हुआ है।

नदियों में बह कर जानेवाली मिट्टी का कुछ अंश उनके दहानों पर कभी कभी जमा हो जाता है। हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि एक सप्ताह में गंगाजी भारतवर्ष की भूमि से इतनी मिट्टी समुद्र में बहा ले जाती हैं जिससे मिश्रदेश के ऐसे दो मीनार बन सकें। हरशल साहब ने लिखा है कि इरावती नदी ब्रह्म-देश से प्रति सेकन्ड ६२ फुट मिट्टी समुद्र में ले जाती है। यही हाल और नदियों का भी है। जब तक वर्षा होती रहेगी ऐसा ही होता रहेगा। बहुत से विज्ञानवेत्ताओं की सम्मति है कि हमारी पृथ्वी का जल कम होता जा रहा है। परन्तु अनुमान है कि वर्षा के बन्द होने में अभी बहुत समय है।

वर्षा का मूल कारण सूर्य की गरमी है। अतः एव सूर्य नाशक शक्ति का मूल कारण है। परन्तु भूगर्भताप रक्षक शक्ति है। सूर्य के ताप और पृथ्वी

के ताप में बराबर संग्राम होता रहता है। पृथ्वी की गरमी प्रति दिन कम होती जाती है। और, सम्भव है कि एक समय ऐसा आवे जब केवल सूर्य का ही नाशक ताप रह जाय। किन्तु उस समय, जैसा कि चन्द्रमा में देखा जाता है, सूर्य के ताप का शायद इतना असर न हो जितना इस समय है। जिस शक्ति के प्रभाव से वर्षा होती है वह बहुत बड़ी है। सौ मील लम्बे चौड़े और एक इंच गहरे पानी को भाप बना कर उड़ा देने के लिए १४०,००००० मन कोयला जलाने की आवश्यकता है। इतनी ही गरमी १८,००० मन बोझ को १ मील ऊँचा उठा देने के लिए काफी है।

इस प्रकार वायु आदि की सहायता से, समुद्र और वर्षा भूमि को ग्रास करती हैं। यदि कोई दूसरी शक्ति इस हानि को पूर्ण करनेवाली न होती तो आज, हरशल साहब के कथन के अनुसार, सूखी भूमि का चिह्न तक न दिखाई देता।

इन ग्रासक और शामक शक्तियों के असर को दूर करने के लिए किसी ऐसे बल की आवश्यकता है जो भूमि को विषम बना दे। भूगर्भ की शक्तियाँ यही कार्य करती हैं। उनका असर सब स्थानों पर एकसा नहीं होता। ज़मीन कहीं समुद्र की सतह से ऊँची उठ जाती है, और कहीं नीचे बैठ जाती है। अनुमान से मालूम हुआ है कि भूमि का ऊपर उठना थल पर अधिकतर होता है—विशेष करके समुद्र के किनारों पर। और नीचे दबानेवाली शक्तियाँ समुद्र की तह पर अधिक काम करती हैं।

यह बात आवश्यक नहीं कि यदि भूमि किसी स्थान पर एक भूकम्प के समय उठ जाय तो उसके पास ही उसी समय नीचे भी बैठ जाय। यदि भूमि एक स्थान पर उठती है तो किसी दूसरे स्थान पर अवश्य नीचे बैठती है, चाहे यह बात कितने ही समय के पश्चात् और, कितनी ही दूर पर क्यों न हो। भूमि का उत्थान थल पर अधिक होता है। इस कारण समुद्र की तह अवश्य कहीं न कहीं नीचे को बैठती



होगी । प्रकृति ने ऊपर उठाने वाली शक्तियों को अधिकतर उसी स्थान पर रक्खा है जहाँ उनकी आवश्यकता है । ज्वालामुखी पहाड़ ऐसी ही शक्तियों के प्रमाण हैं । वे बहुधा समुद्र के किनारे ही देखे जाते हैं ।

अब हम पृथ्वी की समता में परिवर्तन होने के दो एक दृष्टान्त देकर अपने कथन को समाप्त करेंगे । स्वेडन देश शनैः शनैः ऊपर उठ रहा है ; और ग्रीनलैण्ड द्वीप नीचे बैठ रहा है ।

१९ नवम्बर १८२२ ईसवी को चिली देश में एक बड़ा भयङ्कर भूकम्प आया । उसके दूसरे दिन देखने से ज्ञात हुआ कि १०० मील से अधिक धरती, जो पहले समुद्र के भीतर थी, बाहर आ गई । बहुत सी चट्टानें और अन्तरीप, जिन पर समुद्र लहरें मारा करता था, सूखे पड़े हैं । वालपैरेसो में भूमि ३ फुट ऊँची उठ गई थी और किनटेरो में ४ फुट ।

१८१९ ईसवी में जो भूकम्प कच्छ में आया था उसने सिन्ध नदी के दहाने की भूमि को १८ फुट नीचे कर दिया । सिन्धि नाम का गाँव और उसका कोट पानी के भीतर डूब गये । केवल छतें और दीवारें उसकी कहीं कहीं पानी के ऊपर खड़ी रह गईं । सिन्धि के निवासियों ने अगले दिन देखा कि उनके गाँव से ५½ मील के अन्तर पर एक बड़ा टीला समुद्र के बाहर निकल आया है । उसका नाम उन्होंने अल्लाह बन्द रक्खा । यह टीला ५० मील लम्बा, बहुत से स्थानों पर १६ मील चौड़ा, और १० फुट ऊँचा था ।

इन सब बातों पर विचार करने से प्रकृति की विचित्रता का अच्छा प्रमाण मिलता है । जिस ओर दृष्टि उठा कर देखिए प्रकृति देवी एक नये रंग में लगी हुई मालूम होती हैं । धन्य हैं वे मनुष्य जो अपने आपको प्रकृति के रंग में रँग कर उस पर अपना अधिकार जमा लेते हैं ।

उमरावसिंह गुप्त ।

## पश्चात्ताप ।

इस निबन्ध में निम्न लिखित बातों पर विचार किया जायगा :—

( १ ) पश्चात्ताप क्या है ?

( २ ) पश्चात्ताप करने की आवश्यकता ।

( ३ ) पश्चात्ताप के लिए पापियों और अपराधियों को उत्साहित और आश्वासन देने की आवश्यकता ।

## पश्चात्ताप क्या है ?

पश्चात्ताप मनुष्य के उन सात्विक मनोविकारों का परिणाम है जिन के ऊपर संसार का नैतिक और धार्मिक जीवन अवलम्बित है । पश्चात्ताप के कारण व्यक्ति और समाज में महान् से महान् परिवर्तन हो जाते हैं । पश्चात्ताप मनुष्य को पाप से मुक्त करके सन्मार्ग में लगाता है; कुत्सित जीवन को पवित्र जीवन में परिवर्तित कर देता है; दुरात्मा को महात्मा बना देता है; प्रमाद की घोर निद्रा में पड़े हुएों को आत्म-स्मृति दिलाता है; और पापी को पाप के गढ़े से निकाल कर शुभासन पर बिठा देता है ।

संसार के पाप में पड़ कर हम लोग उस में बे-तरह मग्न हो जाते हैं । ज्योंही हम में सोचने, समझने और काम करने की शक्ति उत्पन्न होती है त्योंही हम पाप करने लग जाते हैं । बालकों को बुरे काम करने की नियमपूर्वक शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती ; प्रायः ये दुर्गुण बुरे साथियों, मूख कुटुम्बियों और दुष्ट नौकरों की बदौलत बच्चे सीख लेते हैं । परन्तु कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि ये दुर्गुण आप से आप उत्पन्न होते मालूम पड़ते हैं । मनो-विज्ञान-वेत्ताओं और मस्तिष्क-तत्त्व-ज्ञाताओं को ऐसे उदाहरण देख कर चकित होना पड़ता है । बच्चों का इन दुर्गुणों की ओर झुकाव इस बात को सिद्ध करता है कि मनुष्यजाति के पूर्व-पुरुषों के कुसंस्कार उनकी सन्तति में परम्परा से बने रहते हैं । पाप के उन सूक्ष्म बीजों के नष्ट कर डालने में हम नितान्त



असमर्थ हैं जो हमारे पूर्वजों के हृदय-क्षेत्र में किसी समय बोये गये थे। पर, हाँ, यह बात हमारे अधिकार में ज़रूर है कि हम अपने हृदय पर गहरा प्रभाव डालने वाले कुसंस्कारों की प्रबलता को सद्गुणों द्वारा कम कर दें और अन्य दुर्गुणों को अपने में प्रवेश न होने दें। ऐसा करते समय हमारे हृदय में एक धार संग्राम होगा। दुर्गुणों का सद्गुणों से, स्वार्थ का परार्थ से, अंधकार का प्रकाश से और दासता का स्वाधीनता से मुकाबला ही इस संग्राम का कारण है। जिस मनुष्य में इस प्रकार का परिवर्तन हो उसे हम पश्चात्ताप करनेवाला मनुष्य मानते हैं। इस विषय में इतना ही कहना यथेष्ट नहीं। आगे चल कर हम पश्चात्ताप के विभागों के ऊपर, अपने अनुभव और शक्ति भर, विवेचना करेंगे। इस विषय में हम ऐसी बातें कहने का प्रयत्न करेंगे जिनका अनुभव प्रत्येक सच्चे पश्चात्ताप करने वाले को होना चाहिए।

( १ ) पाप का ज्ञान—अपने पापों का ज्ञान होना ही सच्चे पश्चात्ताप का आरम्भ है। पश्चात्ताप करने वाले व्यक्ति के ज्ञान-चक्षु खुलने लगते हैं। वह आश्चर्य और भय-पूर्वक अपने पाप-मय जीवन के ऊपर विचार करने लगता है। यह जान कर वह बड़े सोच में पड़ जाता है कि मैं इतना नीच होकर अपने को इतना उच्च क्यों समझता रहा। वह जान लेता है कि मेरा हृदय बड़ा अशुद्ध है। उसे विदित हो जाता है कि वह यथार्थ में पापी जीव है। उसका गर्व धीरे धीरे कम होने लगता है। उसका ऊँचा सिर नीचे झुक जाता है। यही समझना पश्चात्ताप की प्रथम सीढ़ी है। क्योंकि बिना इस बात के ज्ञान के कि मैं सचमुच पापी हूँ, कौन मनुष्य अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करने को तैयार होगा ?

( २ ) पाप के लिए दुःख—पश्चात्ताप से मनुष्य दुखी होता है। अपने पूर्व पापों के कारण उसका हृदय दुःख के वेग से भर जाता है। इस बात पर विचार करके वह मन ही मन कुढ़ता है कि हाय मैंने बड़े धोर पाप किये—मैंने बड़ी ही कुत्सित रीति से

अपना जीवन व्यतीत किया। मेरा समय व्यर्थ नष्ट गया; मेरी बुद्धि निरर्थक कार्यों में खर्च हुई; और मैंने अपने आत्मा को नीच कर्मों में फँसाया—यह सोच कर उसके दुःख का पारावार नहीं रहता। इन बातों की स्मृति मात्र से उसका हृदय संतप्त हो जाता है। समय समय पर इन पापों का बोझ उसे असह्य प्रतीत होने लगता है। जब कोई मनुष्य इस प्रकार दुखी हो तब समझना चाहिए कि उसने पश्चात्ताप की दूसरी सीढ़ी पर पैर रखवा। यह दुःख हार्दिक होता है। दिन भर दुःख के कारण उसका हृदय वेचैन रहता है। पश्चात्ताप करने वाले के दुःख की मात्रा—उसकी प्रकृति, आयु, स्वास्थ्य, रहन-सहन आदि पर अवलम्बित रहती है। पश्चात्ताप की इयत्ता का अनुमान अश्रुधारा से करना भूल है। यह अनुमान पश्चात्ताप करने वाले के वास्तविक शोक को समझ कर करना चाहिए। इस शोक का अन्दाज़ा भी बाहरी कष्ट को देख कर न करना चाहिए। सच्चे शोक का अन्दाज़ा इस बात से करना चाहिए कि शोक करने वाले ने पापों से घृणा करना कहाँ तक सीखा है और उसने पापों को कहाँ तक तर्क किया है। आँसू-बहाना बहुत सरल है। बहुतेकों का तो आँसू बहाना स्वभाव ही होता है। कुछ लोग तो, आदत के कारण, तुच्छ बातों पर भी आँसू बहा सकते हैं। ईश्वर से डरना, पापों से बचना, अपने को तुच्छ समझना, नम्रता दिखाना और विनयशील बनना—ये सब दुःख और शोक के सच्चे चिह्न हैं।

( ३ ) पापों का स्वीकार करना—सच्चा पश्चात्ताप करने वाला मनुष्य अपने पापों और कमजोरियों को स्वीकार करने को सदा तत्पर रहता है। वह गर्वपूर्ण और आत्म-प्रतिष्ठा-ज्ञापक न विचार ही रखता है और न व्यवहारही करता है। वह हठ नहीं करता। वह अपना मान और अपनी भूलों के स्वीकार करने में समझता है और अपनी कमजोरियों का बेजा पक्ष लेकर उन्हें छिपाने का प्रयत्न नहीं करता। वह अपने हृदय की बातों को कह डालता है और अपने दुष्कर्मों को स्वीकार कर



लेता है। दुष्कर्मों की याद उसे सदा बोझ सी प्रतीत होती है। वह उन्हें अपने हृदय में बन्द करके नहीं रख सकता। वह उस मनुष्य के पास निधड़क चला जाता है जिसको उसने दुःख पहुँचाया है और उससे साफ़ साफ़ कह देता है “मित्र, मैंने तुम्हें दुःख पहुँचाया है; कृपापूर्वक मुझे क्षमा करो”—ऐसा करना पश्चात्ताप की तीसरी सीढ़ी पर चढ़ना है।

(४) दुर्व्यसनों का त्यागना—पश्चात्ताप करने वाले के जीवन में धीरे धीरे परिवर्तन आरम्भ होने लगता है। उसकी दिन-चर्या शनैः शनैः बदलने लगती है। उसके हृदय में सद्भावों का राज्य स्थापित हो जाता है। वह पाप-रहित रहने, पापों से संग्राम करने और पापों के ऊपर विजय प्राप्त करने में रत रहता है। वह बुरे रास्तों और बुरे साथियों को त्याग देता है। वह प्रयत्न करता है—यद्यपि यह प्रयत्न निर्वल सा होता है—कि वह अपने नव-जीवन को सार्थक करे। ऐसा करना पश्चात्ताप की चौथी सीढ़ी पर पैर रखना है।

(५) सच्चा पश्चात्ताप हृदय में पापों के प्रति बड़ी घृणा पैदा कर देता है। पश्चात्ताप करने वाले का हृदय पवित्र हो जाता है। वह बुरी बातों से घृणा और अच्छी बातों से प्रेम करने लगता है। हाँ यह जरूर है कि वह बार बार अपने आदर्श से गिरता है। परन्तु वह जितना ही अधिक गिरता है उतनी ही उसकी घृणा बढ़ती जाती है। वह पापों से अपने को उसी प्रकार बचाता है जिस प्रकार कोई बुद्धिमान मनुष्य अपने को प्लेग से बचाता है।

हम यह नहीं कह सकते कि प्रत्येक पश्चात्ताप करने वाले को पश्चात्ताप की एक ही सी यंत्रणा भागनी पड़ती है। पवित्र जीवन के प्रत्येक प्रेमी को पश्चात्ताप का अनुभव अवश्य होता है। परन्तु, याद रखिए, आपका पश्चात्ताप आपके हृदय ही का सौदा है। गम्भीरतासूचक मुखचर्या और कठिन पाखण्डपूर्ण व्यवहारों से काम न चलेगा। गिरजा, मन्दिर और मसजिदों में दौड़ कर जाना और वहाँ इष्ट देव के सामने अपने दोषों को स्वीकार

करके क्षमा-प्राप्ति हो लेना भी व्यर्थ है जोशीले मनुष्य दिल उमाड़ने वाले उपदेशों को सुन कर जोश में आ जाते हैं और आँसू बहाने लगते हैं। धार्मिक विवेचना या तत्त्वानुसन्धान भी—यदि उनके अनुसार कार्य न किया जाय—निरर्थक होने से भी बदतर हैं। केवल भावोद्दीपन—यद्यपि यह भी अपने समय पर लाभदायक होता है—पश्चात्ताप नहीं कहा जा सकता। अतः सच्चे और पूर्ण पश्चात्ताप में पूर्वोक्त सारी बातों का होना अत्यावश्यक है।

पश्चात्ताप के कारण क्या हैं ?

अपने अपने मतानुसार पश्चात्ताप के विविध कारण हो सकते हैं। अनेक कारणों से प्रेरित होकर मनुष्य पश्चात्ताप का पथ ग्रहण कर सकता है। चाहे आप का विश्वास ईश्वर, आवागमन, स्वर्ग और नरक पर हो चाहे न हो; चाहे आप ईसाई, मुसलमान, पारसी, जैन हों चाहे न हों; चाहे आप किसी ईश्वरीय पुस्तक या प्रचलित धर्म के अनुयायी हों चाहे न हों; परन्तु यदि आप को सत्य की जिज्ञासा है, और आप मनुष्य-जाति की आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति के इच्छुक हैं, चाहे आप अज्ञेयता-वादी अथवा नास्तिक ही क्यों न हों, तो भी आपका विवेक, मनुष्यत्व और नैतिक आचार-विचार ही आप के पश्चात्ताप का कारण बनेगा। यदि आप मनुष्य के जीवन और उसकी इच्छाओं की पवित्रता पर विश्वास नहीं रखते; यदि आप की दृष्टि में उन पुरुषों के जीवन की विलकुल ही कदर नहीं है जो सत्य-वादी, सदा-चारी और कर्तव्य-परायण थे; यदि आप ईसा, मूसा, बुद्धदेव, गुरु नानक और कबीर साहब के जीवन को उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से आप संसार के एक सामान्य मनुष्य के जीवन को देखते हैं; यदि आपके हृदय में किसी नैतिक भाव का प्रकाश नहीं है; यदि आपकी दृष्टि में पवित्र स्त्री का जीवन वेश्या के जीवन से बढ़ कर नहीं है तो हमें आपसे कुछ भी नहीं कहना। परन्तु, हाँ, धार्मिक कारणों को छोड़ कर अन्य कारणों से पश्चात्ताप करना कोई साधारण

सन्दर्भ ग्रन्थ

REFERENCE BOOK



बात नहीं है। जो व्यक्ति विवेक, बुद्धि और मनुष्यत्व के ख्याल से प्रेरित होकर पश्चात्ताप करता है वह मनुष्यत्व की महिमा को पूर्णतया समझता होगा। सत्य और साधुता के विजय-सिद्धान्त को वह अच्छी तरह जानता होगा। उसने मनुष्य-जीवन के आशय को पूरे तौर पर समझ लिया होगा। उसने धार्मिक और नैतिक सिद्धान्त और विश्वासों के इतिहास की सार्वभौमिक घटनाओं का भलीभाँति मनन किया होगा। उसने नैतिक संग्राम करनेवाले कर्म-वीरों के जीवन की हतोत्साह और निराश करनेवाली घटनाओं के ऊपर भी खूब विचार किया होगा। जिस व्यक्ति का ऐसा नैतिक विश्वास नहीं है उसका पश्चात्ताप अल्पकालिक और शिथिल होगा। स्थायी पश्चात्ताप ही सर्वोत्कृष्ट पश्चात्ताप है। ऐसा पश्चात्ताप शुद्धज्ञान, चिरकाल-व्यापी स्वाध्याय, उच्च नैतिक भाव और मनुष्य-जाति की सामाजिक भलाई में दृढ़ विश्वास इत्यादि सद्गुणों का फल होता है। यह पश्चात्ताप उस उच्च ज्ञान से उत्पन्न होता है जो मनुष्य-जाति की क्रमशः उन्नति, व्यक्तिगत जीवन की धार्मिकता और सत्य-प्रियता आदि पर अवलम्बित रहता है। ईसाई धर्म का त्रिमूर्ति-वाद अथवा इसलामी नरक का भय इस प्रकार के पश्चात्ताप की उत्पत्ति के आधार नहीं हो सकते।

ईश्वरवादी के लिए पश्चात्ताप करने की जरूरत इसलिए है कि बिना पश्चात्ताप के वह अपने मनोऽनुसार न तो पापों से छुटकारा पा सकता है और न अपने हृदय को पवित्र ही बना सकता है। यहाँ पर मुझे आप को एक बात से सचेत करना है और वह यह है कि पश्चात्ताप की अश्रुधारा पापों को नहीं धो सकती। पश्चात्ताप से पाप नष्ट नहीं हो जाते। यह कहना कि केवल शोक मात्र करने से पापों से मुक्ति हो जाती है नितान्त अनर्गल है।

सब ईश्वरवादियों को मान्य है कि हमें उस समय तक ईश्वर के दर्शन दुर्लभ हैं जब तक हमारे आत्मा, हमारे मन, वाणी और कर्मों की अपवित्रता से रहित न हो जाय। यह तो हुई पहली बात। दूसरी बात

जिस पर आस्तिकों को ध्यान देना चाहिए यह है कि बिना पश्चात्ताप के हमारा जीवन सुखमय हो ही नहीं सकता। हाँ यदि तुम ज्ञानशून्य हो तो जब तक तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है और धन तुम्हारे पास है तब तक हँसी-दिल्लीगी और खेल-कूद सब कुछ तुम कर सकते हो। पर, यदि तुम कुछ धार्मिक ज्ञान रखते हो—सत्य और असत्य, गुण और अवगुण का अन्तर समझने की तुममें शक्ति है—तो तुम्हें यह विदित हो जायगा कि तुम्हारी अन्तरात्मा सन्तुष्ट और शान्त नहीं है। अन्तरात्मा के ऊपर से जब तक बोझ न उठा लिया जाय तब तक सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सकता। यदि तुम अपने उचित स्थान पर स्थित नहीं तो तुम्हें शान्ति मिलना असम्भव है। अच्छा तो मनुष्य के जीवन का उचित स्थान कौन सा है? मनुष्य अपने जीवन के उचित स्थान पर उस समय तक नहीं होता जब तक वह पाप और असत्याचार से मुँह नहीं मोड़ लेता और अपने ईश्वर को, जो सर्वोच्च और परम पवित्र है, प्रसन्न नहीं कर लेता। यदि तुमने अपने किसी प्रिय जन को दुःख पहुँचाया है तो क्या तुम्हें उस समय तक सुख मिलेगा जब तक तुम अपने अनुचित व्यवहार का पश्चात्ताप न करोगे और उसे सन्तुष्ट न कर लोगे। यदि तुम ईश्वर पर विश्वास करते हो, यदि तुम अपने इष्ट-देव के सच्चे उपासक हो, यदि तुम्हारी ईश्वर-निष्ठा शुद्ध नीति और पवित्रता पर अवलम्बित है तो तुम्हें अवश्य ही पश्चात्ताप करना चाहिए।

इस भ्रम में कभी मत पड़े कि बिना पश्चात्ताप किये काम हो जावेगा। क्योंकि पश्चात्ताप के बिना पाप-विमोचन नहीं हो सकता।

हँसी, खेल और तमाशों में जीवन व्यतीत करते हुए तुम कह सकते हो कि अभी पश्चात्ताप के लिए बहुत समय है। हजारों आदमी इसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं और संसार में वे बड़े खुश दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु एकान्त में वे स्वयं अपनी दुर्दशा का अनुभव करते हैं। हाँ, ऐसे विचार उन



व्यक्तियों के हृदय में नहीं उत्पन्न होते जिन्होंने पाप और कुकर्म करते करते आत्मघात सा कर लिया है ।

जब वृद्धावस्था आ जाती है और हमारे केश खेत हो जाते हैं तब हमारी हीन दशा हमारे ऊपर शस्त्र-धारी शत्रु की तरह आक्रमण करती है । यदि तुम्हें कुछ भी ज्ञान है, यदि ईश्वर और आत्मा को तुम अविनाशी समझते हो—और ऐसा होने पर भी यदि तुमने बिना प्रार्थना, उपासना, पश्चात्ताप और भक्ति के अपना जीवन व्यतीत किया है—तो तुम्हारा अन्तिम समय तुम्हारे लिए और भी दुःखदायक होगा । दिल्ली अथवा कलकत्ते के किसी घण्टाघर की बड़ी घड़ी का हाल देखो । दोपहर को जब बड़ा गल-गपाड़ा रहता है, गाड़ी और छकड़ों की रेल पेल के कारण कान पड़ी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ती है, तब उन मनुष्यों को छोड़ कर जो घड़ी के पास रहते हैं, औरों को उसकी आवाज़ नहीं सुन पड़ती । दिन समाप्त होते ही, और काम बन्द होते ही, जब चारों ओर शान्ति का राज्य हो जाता है तब उसी घड़ी की आवाज़—उसमें बारह, एक, दो, तीन और चार का बजना—मीलों तक साफ़ साफ़ सुनाई पड़ता है । यह घड़ी पश्चात्ताप न करनेवाले मनुष्य के हृदय के सहृदय है । जब तक पश्चात्ताप न करनेवाले व्यक्ति के शरीर में बल है और जब तक वह अपने कारोबार में लिप्त है तब तक वह विवेक की आवाज़ नहीं सुनता । समय आता है—तब चाहे उसे रुचिकर हो या अरुचिकर—उसे विवेक की आवाज़ को सुनना ही पड़ता है । समय पर उसे संसार त्यागना पड़ेगा । उस समय मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए उसे विवेक की घड़ी की आवाज़ ज़रूर सुनाई पड़ेगी । यदि पश्चात्ताप और आत्म-ज्ञान द्वारा उसने अपना हृदय ही से कुछ सुधार न कर लिया होगा तो वह आवाज़ उसकी आत्मा को बहुत क्लेश पहुँचावेगी । मैं अपने हृदय-पटल पर यह बात अङ्कित कर लेनी चाहिए कि “बिना पश्चात्ताप के शान्ति अप्राप्य है” आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इन शब्दों पर गंभीर भाँति विचार करें । यह संसार छल और

कपट से भरा हुआ है । सचेत हूजिए, कहीं कोई आपको पश्चात्ताप की आवश्यकता से हटा कर धोके में न डाल दे । धार्मिक व्यक्ति के लिए, ईश्वर-प्रेमी के लिए, वैभव की आवश्यकता नहीं । मित्रों, स्नेहियों और सांसारिक सम्पदाओं की ज़रूरत नहीं है । बिना इन बातों के भी ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त हो सकता है । परन्तु अपनी पहली भूलों और पापों के लिए पश्चात्ताप किये बिना ईश्वर सर्वथा अप्राप्य है ।

यदि एक ओर ईश्वरवादियों के लिए ईश्वर का अस्तित्व, आवागमन का कष्ट, ईश्वरीय न्याय और धार्मिक पुस्तकों का प्रमाण और दूसरी ओर पापों और बुराइयों से उत्पन्न अशान्ति, पश्चात्ताप करने के लिए आपको प्रेरित नहीं करती तो फिर हमें पश्चात्ताप करने के लिए पापियों और अपराधियों को उत्साहित करने और आश्वासन देने की आवश्यकता नहीं ।

पश्चात्ताप करने के लिए मनुष्य किस प्रकार उत्साहित किया जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर बड़े महत्त्व का है । हम जानते हैं कि पश्चात्ताप का पथ बहुत कंटकाकीर्ण है । मनुष्य अपने दुर्व्यसनों की बड़ी कठिनता से छोड़ता है । कभी कभी तो यहाँ तक देखने में आता है कि दाहना हाथ काट डालना अथवा दाहनी आँख निकाल लेना दुर्व्यसनों को छोड़ने से अधिक आसान मालूम होता है । दुर्व्यसनों की शक्ति बड़ी ज़बर्दस्त होती है । आरम्भ में यह शक्ति मकड़ी के जाले से अधिक बलवती नहीं होती ; परन्तु शनैः शनैः लोहे की जंजीरों के सहृदय हृदय हो जाती है । राग-द्वेषादि हमारे परम शत्रु हैं । अहंकार और कामवासना के दमन करने में हम प्रायः असमर्थ होते हैं । किसी पशुशाला में एक शेर था । भोजन उसके सामने रख दिया जाता था । पशुशाले का संरक्षक कभी कभी उसके आगे रक्खे हुए भोजन को तमाशा देखने के लिए उठवा लेता था । आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि शेर अपना भोजन प्राप्त करने के लिए कितना चीखता, चिल्लाता और उछल-कूद मचाता होगा । इसी प्रकार



मद, मोह, काम, क्रोध आदि दुर्गुणों से पूर्ण व्यक्ति, सहज में, बिना चीखे चिल्लाये अपने दुर्व्यसनों को नहीं छोड़ता। इससे मनुष्य को इन दुर्व्यसनों को छोड़ने के लिए बहुत कुछ उत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।

बहुत सी उत्साहवर्धक बातें ऐसी हैं जिनके द्वारा कैसा भी कलुषित-हृदय व्यक्ति क्यों न हो, पश्चात्ताप का पथ जरूर ग्रहण कर सकता है। महा-पुरुषों के अनुभव हमें बहुत कुछ उत्साहित कर सकते हैं। महात्माओं के पवित्र जीवन प्रत्येक मनुष्य के लिए पथ-दर्शक का काम दे सकते हैं। महात्मा ईसा का कथन है—“मैं सब पापियों की रक्षा करने के लिए आया हूँ। तुम लोग, जो पापों के बोझ से लदे हो, मेरे पास आओ और; मैं तुम्हें शांति प्रदान करूँगा।” भगवान् कृष्ण कहते हैं—“मेरे पास आओ; मैं तुम्हें पापों से मुक्त करके शांति प्रदान करूँगा।” इन महात्माओं के इन वाक्यों से क्या मतलब है? इनका तात्पर्य है कि सत्य और असत्य, नीच और उच्च, भावों के दरमियान होने वाले घोर संग्राम को इन्होंने भलीभाँति समझ लिया था। इन्हें ऐसे उपाय मालूम हो गये थे जिनके द्वारा ये लोग पापों के ऊपर विजय प्राप्त कर सकते थे। यही महात्मा तुम्हारे जीवन-पथ के दर्शक और संरक्षक हो सकते हैं। इन महात्माओं का अपनी आत्मिक शक्ति पर विश्वास था। इन बातों से यह कदापि प्रकट नहीं होता कि इन्हें अपनी आध्यात्मिक उन्नति का गर्व था। नहीं, इन से यह सूचित होता है कि पाप के ऊपर जो विजय उन्होंने प्राप्त की थी उसे वे समझते थे। धन्य हैं वे लोग जो दीन और विनयशील हैं। ईश्वरी राज्य के वेही अधिकारी हैं। धन्य हैं वे जो सत्य के उत्कट जिज्ञासु हैं। महात्माओं के वाक्य बड़े उत्साह-वर्धक हैं। उच्च जीवन-प्राप्ति की पिपासा से पीड़ित व्यक्ति के लिए ये वाक्य सुधासदृश हैं। साधारण-जन-समूह को जीवन के उच्च-तर पथ का दर्शन इनके द्वारा कराया जा सकता है। हजारों मनुष्य प्रति-वर्ष अपने अनुचित कार्यों

पर पश्चात्ताप करते हैं; हजारों बुरी रीति से काटे हुए समय के लिए पछताते हैं; हजारों शराबखोरी, जुआ-बाजी, कामलिप्सा और आलस्य आदि के लिए शोक करते हैं। परन्तु ऐसा करके भी वे अपना सुधार इस कारण नहीं कर सकते कि वे उचित रीति से उत्साहित नहीं किये जाते। जब तक आत्म-सुधार के लिए उत्साह न मिलेगा—जब तक लोगों में यह विचार न फैल जायगा कि ऐसी आत्मायें भी विद्यमान हैं जो हमारी पूर्व-निर्वलता और निबुद्धिता से द्रवित होकर हमको दयादृष्टि से देखती हैं और हम से सहानुभूति रखती हैं—हमारी भलाई चाहती हैं—तब तक कुछ न होगा। पश्चात्ताप के पात्र को पहले अपने रोग का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। तब उसकी औषधि करनी चाहिए। यदि रोग असाध्य नहीं है तो वह जरूर जाता रहेगा। दैहिक रोगी उचित औषधोपचार से अच्छे हो जाते हैं। दवा होनी चाहिए; परन्तु अवस्था के अनुकूल।

“जिज्ञासु”

## धीर ।



धीर हैं, जो उद्वेगरहित हैं, वही इस संसार में कुछ कर सकते हैं। जो लोहे की चादर की भाँति ज़रा ही में गर्म और ज़रा ही में ठंडे हो जाते हैं उनके किये क्या हो सकता है।

मसल है:—“जो बादल गरजते हैं वे बरसते नहीं।”

धीर पुरुष का मन समुद्र के समान होता है। वह गम्भीर और अथाह होता है। समुद्र की तरह मर्यादा-पालन में उसकी यह दशा है कि आनन्द और ऐश्वर्यरूपी अनेक नद, नदियाँ उसमें गिरती हैं; पर क्या मजाल जो वह ज़रा भी मर्यादा का उल्लंघन करे। उसकी परिपूर्णता को देखिए। तापरूपी सूर्य दिन रात उसे तपाया करते हैं; यही नहीं, चिन्तारूपी विचार-बड़वाग्नि दिन रात उसी में जला करती



है। पर उसमें ज़रा भी कमी नहीं होती। साथ ही, जिस समय उसमें कोई तूफ़ान आ जाता है उस समय किसकी मजाल है जो उसे रोक सके। यह नहीं कि इधर पानी बरसा उधर पहाड़ी नदी उबल पड़ी। बीच में हाथी भी पड़ा तो वह चला। पर पहाड़ी ढेर में पानी नदारद। हाथी ज्यों का त्यों बच गया।

एक बड़ा भारी दार्शनिक कहता है—

“चाहे युद्ध हो, चाहे मरण ही क्यों न हो— जिसका मन ऐसे समयों में भी हिमाचल की तरह अचल रहता है वही धीर है”।

अहा, कितनी अच्छी परिभाषा है। सचमुच, जिसका मन ज़रा से सुख या दुःख से उद्विग्न हो गया वह क्या कर सकेगा। कैसा ही समय क्यों न आए, कैसी ही भारी बात क्यों न हो जाय, जिस पुरुष का मन निश्चल रहता है—जिसका मन बाल मर भी नहीं डिगता—वही कालचक्र की गति को बदल सकता है। वही संसार के वीरों में गिना जाता है। वही संसार में कुछ कर गुजरता है। उसी का नाम सारी जाति सच्चे आदर से लेती है। उसी का नाम इतिहासों में अजरामर हो जाता है। वही लोक का कुछ सच्चा उपकार करते हैं।

एक बार नेपोलियन से, जब वह योरप फूतह कर रहा था, किसी ने कहा “महाराज, आल्प्स (पर्वत) सामने खड़ा है। सेना क्योंकर उसके दूसरी ओर जायगी”। उस धीर के मन में ज़रा भी उद्वेग न हुआ। उसने जवाब दिया—“हाँ ऐसी ही बात है। आल्प्स को भी मालूम हो जायगा कि नेपोलियन धीर से गया”। आदेश हुआ। आल्प्स न रह गया। धीर का आदेश—भला कहीं टल सकता था। यह था नहीं कि कभी यह बात कभी वह बात। वहाँ जो जवान से जो निकला सो निकला। बस आल्प्स नहीं रह गया।

मानसिंह ने बरसात के दिनों में काबुल पर चढ़ाई की। अटक (सिन्धु) खूब बढ़ी हुई थी। पार करने के लिए कोई पुल न था। साथही कुछ

लोगों ने कहा कि अटक का पार जाना शाल्क सम्मत नहीं। पर क्या इससे प्रशान्तसागर-सदृश मन डावाँडोल हो सकता था। पर्वत भी प्रलय वायु से हिल जाते हैं; पर निश्चल मन कभी नहीं हिलता। निदान, मान ने कहा—

“सवै भूमि गोपाल की यामें अटक कहाँ।

जाके मन में अटक है सोई अटक रहा।”

पाठक, ज़रा इस पद्य के दूसरे चरण पर ध्यान दीजिए। देखिए कैसा विलक्षण भाव टपक रहा है। अस्तु। मान ने अपना घोड़ा सिन्ध में डाल दिया। कहते हैं, सिन्ध नदी उतर गई और घुटनों तक ही पानी रह गया। “आखिर तो बरसात में नदी हुई नदी न”। धीर के मन के सामने भला वह कब ठहर सकती थी। याद रखिए, यदि मान में इतना धैर्य न होता तो वह ऐसे दुर्जेय स्थान को जीत न सकता।

बाबर जब इब्राहीम लोदी पर चढ़ाई कर रहा था तब उससे एक नज्मी ने कहा कि सामने मंगल है। आप चढ़ाई न करिए। नहीं तो हार जायेंगे। पर इससे क्या होने को था। यदि वह धीर ऐसी ऐसी बातों से डर जाता तो भला भारत में इतना बड़ा मुगल-राज्य कैसे स्थापित कर सकता। अस्तु; उसने चढ़ाई कर दी। उस में उसी की जीत हुई।

महाराज प्रतापसिंह को २७ बरस तक कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े। क्या क्या विपत्तियाँ उन पर नहीं आईं? क्या क्या दुःख उन्हें नहीं उठाने पड़े? पर क्या इससे धीर का स्वरूप बदल सकता था। भला कड़ी से कड़ी धूप से तप्त होकर भी बरफ़ कहीं शीतता छोड़ सकती है? एक कवि कहता है—

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेन शक्यते धैर्यगुणः प्रमाणम् ।  
अधोमुखस्यापि कृतस्य बह्वेनाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥

अर्थात्—“धीर पर दुःख पड़ने से उसका कार्य-गुण थोड़े ही दूर हो सकता है। जलती आग को यदि उलट दीजिए तो भी उसकी शिखा ऊपर ही को जायगी। नीचे को नहीं”। धीर का प्रधान लक्षण है—



जलाहतौ विशेषेण विद्युताग्नेरिव द्युतिः ।

आपदि स्फुरति प्रज्ञा यस्य धीरः स एव हि ॥

( कथासरित्सागर )

अर्थात्—जलाहत विद्युदग्नि के समान विपत्ति में जिसकी प्रज्ञा की द्युति बढ़ती जाती है वही धीर है ।

संसार के किसी अनर्थकारी कृत्य को देख कर यदि किसी धीर महात्मा का हृदय जल उठता है तो फिर क्या पूछना है । मानो बाकू के मिट्टी के तेल की खान में आग लग गई । बिना उस अनर्थ का नाश किये वह जलन बुझने की नहीं । भला ब्रह्मास्त्र भी कहीं बेकार जा सकता है । ज़रा एक दृश्य इस तरह का भी देखिए :—

हज़रत ईसा मसीह ने जिस समय जेरुशलम में जन्म लिया उस समय वहाँ की क्या दशा थी, यह इतिहासप्रेमी पाठकों से अविदित नहीं । चारों ओर अधर्म फैल रहा था । चारों ओर अनर्थ और अविद्या का प्राबल्य था । सज्जन कष्ट में पड़े हुए थे । दुर्जनों की उन्नति हो रही थी । इस अन्धेरे को देख कर उस महात्मा का जी जल उठा । उसे यह सब असह्य होने लगा । बस फिर क्या था । उस धीर ने इस अधर्मचक्र की गति को उलटने की ठान ली । इस गति को फेरना शुरू कर दिया । दुरात्माओं को मालूम हो गया कि कोई अलौकिक शक्ति काम कर रही है । अनेक विरोधी खड़े हो गये । उन लोगों ने चाहा कि पापचक्र की गति न रुकने पाये । वह ज्यों की त्यों बनी रहे । लाख लाख उद्योग किये गये । पर उन सबसे क्या हो सकता था । जो स्वयं अधीर हैं ; जो खुद ही चञ्चल हैं ; जिनका मन सदा ही सरपट दौड़ा करता है ; भला उनकी क्या मजाल जो संसारचक्र की गति के बदलने को रोक सकें । पहले वे अपने मनश्चक्र का तो निग्रह कर लें ; फिर संसारचक्र का निग्रह करेंगे । अस्तु । ऐसे ही दुर्जनों ने ईसा के आन्दोलन को रोकना चाहा । धैर्य को अधीरता से जीतना चाहा । इसका नतीजा क्या हुआ । अधर्म से धर्म की जीत न हो सकी ; हाँ,

थोड़े दिन के लिए अधर्म—बल्कि यह कहिए कि पापचक्र—की चाल और भी बढ़ गई । अत्याचार दिनों दिन बढ़ने लगे । पापियों ने सोचा, अब हमारी जीत हुई । मगर यह बात उन्हें न सूझी कि मरने के समय चींटों के पंख निकल आया करते हैं । जब दीपक बुझने का होता है तब उसका प्रकाश बढ़ जाता है । निदान अत्याचारों की बढ़ती यहाँ तक हुई कि हज़रत धर्मविद्रोही सिद्ध किये गये और उन्हें सूली पर चढ़ाने का शाही हुक्म हुआ । हर एक आदमी अपने मन से संसार को तोलता है । इस बादशाह ने भी ईसा को अपने मनोरूपी काँटे से तोला । इस लिए वह अपने ही समान ईसा को भी अधीर समझ बैठा । उसे निश्चय था कि ईसा अब राह पर आ जायगा । मृत्यु का नाम सुन कर वह डर जायगा और ऊल जलूल बकवाद छोड़ कर चुप हो बैठेगा । पर भला धीर भी कहीं मृत्यु से डरते हैं । मृत्यु को तो वे फूल के हार की तरह ग्रहण करते हैं । आत्मबलि ही से तो उनके कार्य की सिद्धि होती है । ऐसे ही समय में तो उन्हें अपनी परीक्षा लेने का अवसर मिलता है । ऐसे ही समय में तो उन्हें अपने सबेरे या झूठे होने का पता चलता है । ऐसे ही समय में हृदय रहने से तो उनकी उपाधि ( धीर ) सार्थक होती है । खैर ; हज़रत सूली पर चढ़ गये । उनके हाथ पाँव में कीलें ठोक दी गईं । बस पापचक्र का यहाँ ख़ातमा हो गया । हज़रत के हाथ पाँव में कीलें नहीं ठोकी गईं बल्कि पापचक्र में कीलें ठोक दी गईं । एक धीर के आत्मोत्सर्ग से दुनिया के एक तिमिराच्छन्न हिस्से में सत्य का प्रकाश हुआ ; सत्यचन्द का उदय हुआ । उसकी मृत्यु से एक मृत जाति जीवित हो उठी ।

संसार के इतिहास में धीरों के एक नहीं लाखों उदाहरण पाये जाते हैं । बिना धैर्य के अवलम्ब के अनेक गुणों से विभूषित रहने पर भी, लोग कुछ नहीं कर सकते हैं । सदाचरण धैर्य की पहली सीढ़ी है । बिना धैर्य के जगत् में कोई सदाचार की उन्नत सोपान-परम्परा पर नहीं चढ़ सकता ।



जो अधीर हैं भला वे क्या कर लेंगे। शरत्कालीन बरदलों की तरह जिनके मन का रंग पल पल पर बदलता है क्या उनका किया भी कुछ हो सकता है? उनके मनोरथ कभी पूरे नहीं हो सकते। राई सा दुःख उन्हें पहाड़ सा प्रतीत होता है। उसे वे सह नहीं सकते। उसके कारण उन्हें अनेक आधि-आधियाँ घेर लेती हैं।

विना धीर हुए, बड़ी से बड़ी आपत्तियों को झेलते हुए भी सुख, एवं आरोग्यतापूर्वक लोकयात्रा कोई पूरी नहीं कर सकता। विना धीर हुए कोई संसार-समर को जीत नहीं सकता। कोई संसार की या अपनी उन्नति नहीं कर सकता। सबका निष्कर्ष यह कि जो धीर नहीं वह कुछ कर ही नहीं सकता। इसलिए यदि संसार में कुछ करने की इच्छा हो तो धीर बने।

कृष्णदास ।

## एक रात्रि ।\*

शूरबाला का सहपाठी था। उसी के साथ साथ पढ़ता और उसी के साथ खेलता भी था। मैं जब शूरबाला के घर जाता उसकी माँ मुझे बहुत लाड़ प्यार करती। हम दोनों को पास बुलाकर अपने सामने बिठाती और बड़े चाव से हमारी ओर देखती और कहती—“आहा ! क्याही अच्छी जोड़ी है”। मैं उम्र में छोटा था, किन्तु इन सब बातों का मतलब मेरी समझ में आगया था। मेरे मन में यह धारणा हो गई थी कि और लोगों की अक्षेपा शूरबाला पर मेरा विशेष अधिकार है। मैं इसी घमण्ड में रहता था। इसीसे उसकी खुशामद में रहने के बदले उस पर अपना आतङ्क जमाये रहता था। वह भी सहिष्णुता-पूर्वक मेरी आज्ञा का प्रतिपालन किया करती और दबाव भी सहन किया करती थी। सारे महल्ले में

उसके रूप की प्रशंसा थी; किन्तु उसके साथ खेलने-वाले और उसी की बराबरी के मुझ बालक की दृष्टि में उसका सौन्दर्य कोई बड़ी बात न थी। मैं तो यही सोचे बैठा था कि शूरबाला ने मेरे ही प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए अपने पिता के घर जन्म लिया है।

मेरे पिता चौधरी साहब के नायब थे। उनकी इच्छा थी कि मेरे समर्थ होने पर वे मुझे रियासत का काम-काज सिखा कर कहीं गुमास्ता बना दें। परन्तु मैं, मन ही मन, इस मन्तव्य से असन्तुष्ट था। मेरा इरादा था कि अपने गाँव के रतनलाल की तरह भग कर कलकत्ते जाऊँ और वहाँ पढ़-लिख कर कलेकूर साहब का नाज़िर बनूँ। यदि कलेकूर साहब का नाज़िर न बन पाया तो कम से कम जजी का हेडक्वार्टर तो अवश्य ही होना चाहिए। अपने इस गूढ़ मन्तव्य को मैंने अपने मन की कोठरी में छिपा रक्खा था। मैं बचपन ही से देखता आता था कि पिता जी उक्त अदालत के कर्मचारियों की बड़ी खातिर-तवाजो करते थे। जब कभी कोई कचहरी का कर्मचारी हमारे घर आता तो पिताजी उसके खाने की सामग्री में अप्राप्य वस्तु भी उपस्थित करते थे। अच्छे अच्छे भोजनों से कर्मचारियों के पेट की पूजा करके द्रव्य से उनके पाकटों की भी वै पूजा करते थे। एक छोटे से चपरासी का भी अपने गाँव में इतना सम्मान, इतनी पूजा और इतनी प्रतिष्ठा देख कर मैंने सरकारी नौकरी को अपना आदर्श माना। कर्मचारियों को मैं बड़ी ही पूजनीय दृष्टि से देखने लगा। और क्यों न देखूँ? ये कर्मचारी हमारे प्रान्त के जीते जागते देवता हैं। तैंतीस कोटि देवताओं के ये नवीन अवतार हैं। सिद्धिदाता गणेश महाराज से भी अधिक इन पर ग्रामीण लोगों का विश्वास है। अतएव पहले जो कुछ गणेश महाराज की भेंट चढ़ता था वह अब इन्हीं लम्बो-दरों के पेटों में समाता है।

रतनलाल के दृष्टान्त से उत्साहित होकर, मौक़ा हाथ आने पर, मैंने एक दिन कलकत्ते की राह ली।

\* श्रौत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कहानी का अनुवाद ।



पहले तो मैं अपने गाँव के एक परिचित पुरुष के साथ रहा। कुछ दिन बाद पिताजी मुझे पढ़ने का खर्च यथाशक्ति भेजने लगे। पढ़ना लिखना नियम-पूर्वक होने लगा। स्कूल में पढ़ने के सिवा मैं सभा-समाजों में जाने और वहाँ का काम करने लगा। इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं रहा कि देश के लिए प्राण-विसर्जन करना मेरा परम कर्त्तव्य है। किन्तु, किस प्रकार देशसेवा में अपना जीवन अर्पण किया जाय ? अथवा कैसी देश-सेवा में जीवन व्यतीत किया जाय ? इन बातों का दृष्टान्त तब तक मेरे ध्यान में नहीं आया। देशसेवा की प्रबल आकांक्षा का अङ्कुर मेरे हृदय में अवश्य उग आया था। मेरे उत्साह का कुछ ठिकाना नहीं था। मेरी निष्ठा बड़ी दृढ़ थी। हमारी सभा के सभासद वक्तृता दिया करते थे। मैं चन्दे का कागज़ लिये हुए, बिना खाये-पिये, धूप में, द्वार द्वार चन्दा माँगता फिरता था। चौराहे पर खड़ा होकर सभा के विज्ञापन बाँटता था। सभाभवन में जाकर मेज़, कुर्सी इत्यादि सजाता था। हमारे दल के नेता के विषय में यदि कोई अनादरसूचक वाक्य बोलता तो मैं कमर कस कर मरने मारने को उद्यत हो जाता था।

घर छोड़ कर मैं सरिश्तेदार या नाज़िर बनने के लिए कलकत्ते आया था। किन्तु यहाँ आकर मेज़नी और गेरीबाल्डी को मैंने अपना आदर्श बना लिया। इसी बीच मैं मेरे और शूरबाला के पिता शूरबाला के साथ मेरा विवाह करने का उद्योग करने लगे। मैं कलकत्ते १५ वर्ष की उम्र में आया था। उस समय शूरबाला की उम्र ८ वर्ष की थी। अब, इस समय, मैं १८ वर्ष का हूँ। पिता के देखने में मेरे विवाह की उम्र दिन पर दिन चली जा रही थी। इधर मैं मन में प्रतिज्ञा कर चुका था कि जीवनावधि विवाह न करके स्वदेशहित के लिए प्राण-विसर्जन करूँगा। किन्तु पिताजी से मैंने यह प्रकट किया था कि बिना विद्याध्ययन समाप्त किये मैं विवाह न करूँगा। तीन महीने बाद समाचार मिला कि शूरबाला का विवाह बाबू रामलोचन वकील के साथ हो गया। मैं,

अपनी माता, पतित भारत-भूमि, की उन्नति के लिए चन्दा जमा करने में लगा हुआ था। अतएव यह संवाद, जो साधारण अवस्था में हृदयविदीर्ण करने वाला था, तुच्छ जान पड़ा। मैंने पेंड्रस पास कर लिया था। अब एफ० ए० की परीक्षा देनी थी। इसी बीच मैं पिता जी स्वर्गधाम को सिधार गये। माता और दो बहनें मेरे पीछे थीं। इस कारण कालेज छोड़ कर रोज़गार की तलाश में फिरना पड़ा। बहुत प्रयत्न करने पर एक छोटे से ज़िला-स्कूल की सेकण्ड मास्टरी हाथ लगी।

मैं मन में प्रसन्न हुआ कि चलो अपने मन का काम मिल गया। अपने उपदेश से प्रत्येक छात्र को भावी भारत का एक एक सेनापति बना कर छोड़ूँगा। मैं खुद मेज़नी या गेरीबाल्डी न बन सका तो न सही। इस स्कूलरूपी टकसाल से मैं कई गेरीबाल्डो निकालूँगा। मैंने कार्य आरम्भ कर दिया। मुझे शीघ्रही मालूम हुआ कि स्कूल में भावी भारत की अपेक्षा परीक्षा की अधिक परवा करनी होगी। अपने विद्यार्थियों से यदि मैं बीजगणित और व्याकरण इत्यादि सम्बन्धित बातें छोड़कर (देश-सम्बन्धी) वार्तालाप करूँगा तो हेड मास्टर साहब आँखे दिखा देंगे। दो ही महीने में मेरा सारा उत्साह उड़ गया। कहीं कोई आग न लगा दे, इस डर से एक मास्टर को स्कूल ही में रहना पड़ता था। मैं था अकेला आदमी। अतएव स्कूल-भवन की रखवाली का यह काम मेरे ही सर पड़ा।

स्कूल के बड़े दीवानखाने के पास वाले एक कमरे में मैं अकेला पड़ा रहा करता था। स्कूल एक बड़े तालाब के पास, बस्ती से कुछ दूर, था। चारों तरफ़ सुपारी, नारियल इत्यादि के वृक्ष थे। स्कूल की इमारत के पासही इमली के दो बड़े बड़े पुराने पेड़ थे। हमारे स्कूल से थोड़ी ही दूर पर सरकारी वकील रामलोचन रहते थे। बाल्यावस्था की मेरी सखी, वकील महाशय की स्त्री, शूरबाला भी उनके साथ थी। रामलोचन बाबू के साथ मेरा उठना बैठना होने लगा। मुझे यह नहीं मालूम था कि रामलोचन



हम जानते हैं या नहीं कि मैं शूरबाला को शैशवावस्था में जानता हूँ। मैंने यह उचित भी न समझा कि थोड़े बच्चे के परिचित पुरुष से यह भेद खोलूँ। अतएव अपने प्रसङ्ग की चर्चा न होने के कारण अभी तक मेरे मन में यह बात न आई थी कि किसी समय शूरबाला का मेरे जीवन से क्या सम्बन्ध था।

एक बार, छुट्टी के दिन, मैं रामलोचन बाबू के कान पर उनसे मिलने गया। मन में यह निश्चय था कि मैं नहीं गया था कि अमुक विषय पर वार्तालाप करूँगा। अस्तु। जाकर मैं बैठ गया और इधर उधर बातें करने लगा। इतने में पासवाले कमरे से छड़ियों की खनखनाहट, कपड़ों की सरसराहट और पायजमों की झनझनाहट सुनाई पड़ी। छड़ियों के एक छिद्र से दो कौतूहलपूर्ण नेत्र मेरी तरफ टकटकी लगाये देख रहे थे। बाल्यावस्था के विश्वास, सरलता और शैशव प्रीति से भरे हुए दो बड़े बड़े नेत्र दो तारों तथा जलपूर्ण काले गालों के सहस्र मेरे हृदय पर आक्रमण करने लगे। छिड़की में प्रकट हुए थे। बाल्यावस्था के विहासवाचक युग्मनेत्रों के प्रहार से पीड़ित हुआ मेरा हृदय धक धक करने लगा। घर लौटने पर मेरे हृदय की वेदना घटने के बदले बढ़ने लगी। दिल बहलाने के प्रयत्न—लिखना, पढ़ना आदि सब—निष्फल हुए। मन की चिन्ता बढ़ती ही गई। ऐसा प्रतीत होता था मानो मेरा हृदय एक बड़ी शिला के भार से चूर्ण हुआ जाता है। सूर्यनारायण अस्त हुए, पर हृदय-विदा-ना वेदना विदा न हुई। मैं एकान्त में चुपचाप बैठ विचार करने लगा कि मेरे मन को हो क्या गया ? मन स्वयं मुझसे पूछने लगा कि तेरी शूरबाला कहाँ गई ? मैंने उत्तर दिया—मैंने तो उसे स्वयं अपनी छा से परित्याग कर दिया। क्या वह जन्म भर मेरी राह देखती बैठी रहती ? मन से फिर आवाज़ आई कि जिसे तू उस समय केवल इच्छा प्रकट करने, अथवा हाँ कहने, ही से पा सकता था उसे तू लाख सर पीटने पर भी पाना तो दूर रहा,

आँख भर कर देख भी नहीं सकता। शैशवावस्था में तेरे साथ बालक्रीडा करनेवाली शूरबाला आज तेरे पास ही क्यों न रहती हो ; उसकी छड़ियों की खनकार तेरे कान में भले ही क्यों न पड़ती हो ; तेरी घ्राणेन्द्रिय उसके सर के तेल की सुगन्ध से मुग्ध ही क्यों न होती हो ; पर, याद रखना, उसके और तेरे बीच पत्थर की दीवार खड़ी है। मैंने उत्तर दिया—दीवार है तो होने दो ; शूरबाला मेरी कौन है। मुझे उत्तर मिला—हाँ, आज शूरबाला से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं। किन्तु एक समय था जब वह तेरी क्या हो गई होती ! मैंने कहा—हाँ यह सच है कि शूरबाला मेरी क्या हो गई होती। मेरे आन्तरिक जीवन से उसका घना सम्बन्ध होनेवाला था। वह मेरे जीवन के सुख-दुःख की बाँटनेवाली, मेरी प्राणेश्वरी होनेवाली थी। आज वह मुझसे इतनी दूर है ! आज मेरे लिए उसे देखने का निषेध ! उससे बोलना दोष ! उसकी चिन्ता करना पाप ! रामलोचन सहसा आकर हमारे बीच खड़ा हो गया। मानो जादू का मन्त्र पढ़ कर वह उसे धरती और आकाश से उड़ा ले गया। मैं मानव-संसार में नूतन नीति प्रचार करने नहीं आया हूँ। मेरा मन्तव्य समाज की मर्यादा भंग करने का नहीं। मैं समाज के बन्धन तोड़ने नहीं चला। मैं केवल अपने मन के भावों को प्रकट कर रहा हूँ। जितने भाव मन में उदित होते हैं क्या वे सभी निःसार हैं ? मैं मन में यह नहीं सोच रहा कि शूरबाला पर, जो आज रामलोचन के घर की शोभा बढ़ा रही है, मेरा अधिकार अधिक है या रामलोचन का। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस प्रकार की चिन्ता करना बहुत बुरा है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि इस प्रकार की भावना अस्वाभाविक है।

सन्ध्या-समय इन मानसिक भावों और कल्पनाओं, तथा मन के तर्क-वितर्कों से हट कर मेरा मन और किसी काम में न लगा। दूसरे दिन दोपहर को, जब मैं अपनी छास में बैठा हुआ था, छात्रों के पढ़ने की आवाज़ और कीट-पतङ्गों की भाँ भाँ मेरे कानों में पड़ रही थी। अलपोष्ण वायु नीम की पुष्प-



मञ्जरी से सुगन्ध लिये हुए मेरी तरफ आ रही थी। सहसा मन में एक कामना उत्पन्न हुई। यह कामना किस बात की थी, पता नहीं।

स्कूल में छुट्टी हुई। मुझे अपने बड़े कमरे में अकेले रहना असह्य जान पड़ने लगा। शाम को, तालाब के तट पर, नारियल और सुपारी के वृक्षों की अर्थहीन ध्वनि सुन कर मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मनुष्य-समाज एक प्रकार का जटिल भ्रम-जाल है। उचित समय पर उचित काम करने को किसी का जी नहीं चाहता; पर अनुचित समय पर अनुचित काम करने की वासना प्राणों को संशय में डालती है। यदि मैं चाहता तो शूरबाला का स्वामी बन कर बुढ़ापे तक सुख से जीवन व्यतीत करता। किन्तु मुझमें गेरीबालडी बनने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। और आखिरकार बने क्या? एक छोटे से स्कूल के सेकन्डमास्टर! चौबे जी छुबे बनने गये थे, दुबे ही रह गये। दो घर से भी गये। रामलोचन से शूरबाला का विवाह होना असम्भव था। विवाह से पूर्व रामलोचन का शूरबाला से परिचय तक न था। उसके लिए शूरबाला एक साधारण लड़की थी। विवाह करके उसने वकालत आरम्भ की और अपने काम में लग गया। शूरबाला के आ जाने से उसके घर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। हाँ! खाने पीने का आराम अवश्य हो गया था। जिस दिन दूध में धुबे की गन्ध आजाय उस दिन शूरबाला पर रामलोचन बेतरह बिगड़ उठता था। और, जिस दिन खुश रहा उस दिन शूरबाला के लिए नये आभूषण बनवा देता था। बस यही विशेषता थी।

रामलोचन एक दिन किसी मुकद्दमें की पैरवी के लिए बाहर गये थे। जिस तरह मैं अपने स्कूल के कमरे में अकेला था उसी तरह उस दिन शूरबाला भी अपने घर में अकेली थी। सुबह से ही आकाश मेघों से आच्छादित था। दस बजे से वर्षा होने लगी। वर्षाधिक्य के भय से विद्यार्थियों को तकलीफ न हो, इस कारण—हेडमास्टर ने उस दिन छुट्टी

जल्दी दे दी थी। बादलों के काले काले टुकड़े आकाश में इधर उधर भ्रमण करने लगे। बड़ी जोर की झड़ी आरम्भ हुई। ज्यों ज्यों रात होने लगी, वर्षा का वेग बढ़ने लगा। पहले वायु पूर्व की ओर से चलती थी। अब उसका वेग उत्तर और उत्तर-पूर्व के कोने से बढ़ा। रात को नौद लेने की चेष्टा बृथा थी। मन में विचार उठा कि इस भयानक रात को शूरबाला अपने निर्जन घर में अकेली होगी। स्कूल की इमारत उसके घर की अपेक्षा अधिक मजबूत थी। मन में आया कि उसे लाकर स्कूल वाले अपने कमरे में रखूँ और खुद तालाब के पास वाले उसके घर में रात काटूँ। किन्तु किसी बात का मन में निश्चय करके मैं बिस्तरे से न उठ सका। धीरे धीरे रात के डेढ़ बज गये। इस बीच यकायक पानी की बाढ़ का शब्द सुनाई देने लगा। ऐसा विदित होता था मानो समुद्र ही पृथ्वी की ओर उमड़ा चला आ रहा है। मैं अपने कमरे से बाहर निकला। शूरबाला के मकान की ओर मेरे पैर चलने लगे। रास्ता तालाब के किनारे किनारे जाता था। पानी इतना चढ़ आया था कि रास्ते पर भी घुटनों तक जल हो गया था। मार्ग में, किनारे पर, कुछ भूमि प्रायः ग्यारह हाथ ऊँची थी। मैंने उस ऊँचे टीले पर चढ़ते ही क्या देखा कि उस ओर से कोई इधर चला आ रहा है। उस व्यक्ति को देखते ही मेरी अन्तरात्मा ही नहीं, किन्तु सिर से पैर तक सारा शरीर भी समझ गया कि वह कौन है। मुझे इसमें जरा भी सन्देह न रहा कि वह मेरी ओर पाँव बढ़ाता हुआ व्यक्ति भी मुझे अच्छी तरह पहचान गया है।

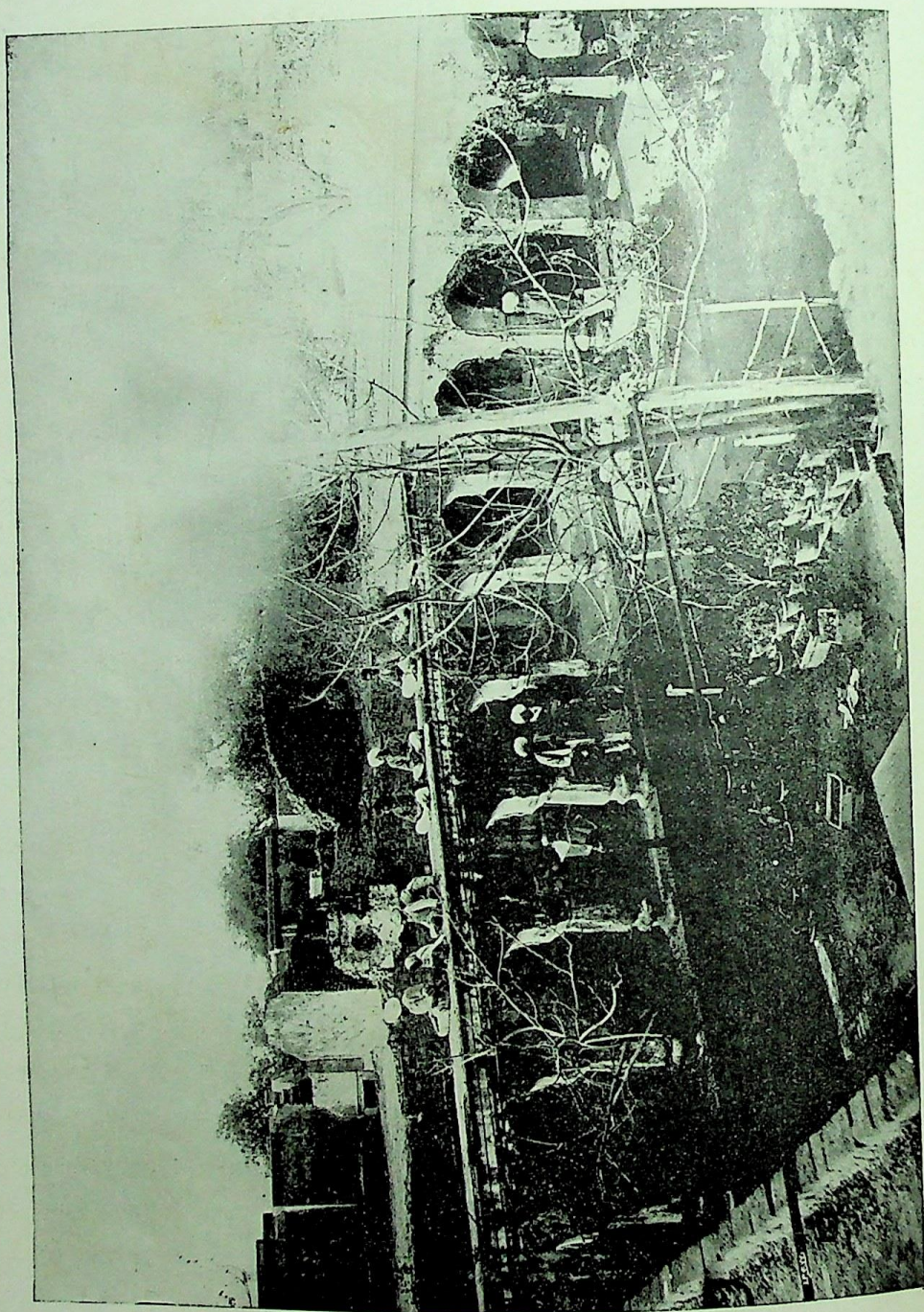
हमारे चारों तरफ सारी सृष्टि जलमय होगई थी। टापू के सदृश उठी हुई उस भूमि पर केवल हमों दो व्यक्ति जलमय संसार के अधिष्ठाता रह गये थे। वह समय प्रलय का था। आकाश मेघाच्छादित था। एक भी नक्षत्र दृष्टिगोचर न था। अन्धकारमय रात्रि ने भयङ्कर रूप धारण किया था। हम दोनों में एक शब्द भी मुँह से निकालने की शक्ति न थी। न मैंने, और न उसने ही कोई बात कही। यहाँ तक



दुकड़े  
 की जोर  
 में, वर्षा  
 मोर से  
 तर-पूर्व  
 वृथा  
 त को  
 स्कूल  
 मजबूत  
 अपने  
 वाले  
 का मन  
 धीरे  
 पानी  
 विदित  
 चला  
 शूर-  
 राता  
 इतना  
 नल हो  
 प्रायः  
 चढ़ते  
 ला आ  
 त्मा ही  
 समझ  
 देह न  
 क्त भी  
  
 होगाई  
 केवल  
 ह गये  
 गच्छ  
 नरमय  
 गनों में  
 थी।  
 तू तक



# सरस्वती



गुरुदासपुर का मूलना-महल ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

संस्कृत  
कि हम  
प्रश्न त  
ह  
देखने  
गर्जन  
छोड़ व  
कोई श  
से आ  
और इ  
है। उर  
वाला  
में आ  
आलो  
शून्य प्र  
प्रवाह  
यों का  
लाकर  
की केव  
के टुक  
मिला दे  
ईश्व  
अपने स  
प्रजे में  
प्रलय-व  
मृत्यु के  
का आ  
भो  
शूरबाल  
रफ  
शला  
घर  
न स  
सका ।  
मास्टर  
मेरे जी



कि हम में से किसी ने भी आपस में कुशल-क्षेम का प्रश्न तक न किया ।

हम दोनों अन्धकार की ओर टकटकी लगाये देखने लगे । हमारे पैरों के नीचे गम्भीर मृत्युस्रोत गर्जन करता था । आज शूरबाला सारे संसार को छोड़ कर मेरे पास आखड़ी हुई है । मेरे सिवा और कोई शूरबाला का रक्षक आज नहीं है । शैशव काल से आज कितना समय बीत गया है । उस काल और इस काल के बीच कितना अन्धकारमय समय है । उस घोर अन्धकारमय लोक को पार कर शूरबाला आज इस सूर्यचन्द्रालोकित लोक-परिपूर्ण पृथ्वी में आकर मेरे पास खड़ी है । अथवा आज वह आलोकमय जनपरिपूर्ण संसार से इस भयङ्कर जन-शून्य प्रलयान्धकारमय लोक में आ गई है । काल का प्रवाह उस नवकली को मेरे पास ले आया है । या यों कहिए कि मृत्युस्रोत उस विकसित पुष्प को लाकर मेरे पैरों के पास डाल गया है । यदि पानी की केवल एक और लहर चढ़ आवे तो इस ज़मीन के टुकड़े को तोड़ कर हम दोनों को वह एक में मिला देवे ।

ईश्वर करे पानी यहाँ न चढ़ सके । शूरबाला अपने स्वामी के घर में धन, जन, पुत्र, कन्या के बीच भजे में संसार के सुख भोगे । मैंने भी आज इस प्रलय-काल में महाप्रलयरूपी सरोवर के तट पर मृत्यु के मुँह में खड़े होकर अनन्त अपूर्व आनन्द का आस्वादन किया ।

भोर होने लगा । वर्षा थमी । पानी कुछ घटा । शूरबाला बिना कुछ मुँह से कहे अपने मकान की तरफ पधारी । मैं भी बिना कुछ कहे अपने घर चला आया ।

घर आकर मैं सोचने लगा कि न मैं नाज़िर बन सका, न सरिश्तेदार । गेरीबालडी भी मैं न बन सका । अन्त में एक छोटे से स्कूल का सेकण्ड मास्टर बना । सारे जीवन में एक क्षण भर के लिए मेरे जीवन की अनन्त-रात्रि का उदय हुआ । मेरी

इतनी उम्र में वही एक भीषण रात्रि मेरे इस तुच्छ जीवन की सार्थकता का कारण हुई ।

“वर्मा”

## गुरुदासपुर का झूलना-महल ।



गुरु नानक के समय में गोपीनाथ नामक एक महात्मा पञ्जाब में हुए । उनके वंश में अनेक प्रसिद्ध पुरुष और तपस्वी हुए । गुरुदासपुर का नाम इन्हीं के वंशजों के नाम पर पड़ा है । गुरुदासपुर की गुरुगद्दी पर बैठनेवाले महात्माओं ने समय समय पर अनेक करामतें दिखाई हैं । गुरु गोविन्दसिंह के समय में इस गद्दी पर दीपचन्द नाम के एक महात्मा थे । गुरु गोविन्दसिंह के यज्ञ के लिए इन्होंने अनन्त सामग्री एकत्र करके भेजी थी । इनकी सहायता से गोविन्दसिंह इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने इनको गज़ब-दश की पदवी दी । यह गद्दी अब तक बनी हुई है । चौथे गुरु रामदासजी ने इस गद्दी के अधिकारियों को गुरु की पदवी दी थी । दूर दूर से लोग यहाँ उपदेश लेने आते हैं । यहाँ के वर्तमान गद्दीधर श्रीयुत महन्त शङ्करनाथ जी हैं ।

औरंगज़ेब के शासन-काल में गुरुदासपुर की गद्दी पर श्रीनारायणनाथजी विराजमान थे । ये सारस्वत ब्राह्मण थे । इनके पिता श्रीदीपचन्दजी ने एक बहुत बड़ा महल बनवाना आरम्भ किया था । उस समय इनके पुत्र नारायणनाथजी की आयु ९ या १० वर्ष की होगी । ये खेलते खेलते इस महल के पास चले गये । इन्हें देख कर मेमारों ने कहा— “बाबाजी ! हम ऐसा मज़बूत महल बना रहे हैं कि इसकी दीवार पर हाथी भी टकर मारे तो न हिले” यह सुन कर महन्त नारायणनाथजी ने अपना पैर उसकी दीवार पर रख कर हिलाया तो दीवार हिलने लगी । उसे हिलती देख आपने बड़ी भोली वाणी में कहा—देखो यह तो हिलती है । यह दशा देख सारे कारीगर और गुरुदासपुरवासी चकित



हो गये। कारीगरों को आज्ञा दी गई की इस दीवार पर छत मत डालो। तब से यह वैसी ही खड़ी है और हिलाने से आज तक हिलती है। हजारों नर-नारी इसे देखने आते हैं। सैकड़ों अँगरेजों ने इसे देखा है। पञ्जाब के दो तीन लाटों तक ने भी इसे देखा है। यथा:—रोचीमन साहब और लायल साहब। कई अँगरेज इंजिनियरों ने इसकी परीक्षा की। पर उनकी भी समझ में न आया कि वास्तव में बात क्या है जो इतनी मजबूत दीवार हिलती है।

फरवरी १९०७ की सरस्वती में “हिलने वाली दीवार” पर एक छोटा सा नोट निकला था। वह यही दीवार है। इस दीवार का नाम है झूलना-महल। इसका चित्र भी इस बार दिया जाता है। चित्र में जिस दीवार पर कुछ मनुष्य, बालक और बालिकायें बैठी हैं वही झूलनामहल की दीवार है। ये लोग दीवार पर चढ़ कर उसे हिला रहे हैं। इस दीवार में नौ दरवाजे हैं। यह नौ खम्भों पर खड़ी है। सारी दीवार पर चूने का पलस्तर है।

महन्त नारायणनाथजी सिद्ध पुरुष थे। जब वे प्रातः और सायं स्नान करते थे तब एक बैल, जिसका नाम भाई उदासी था, नियमपूर्वक रहट का जुआ अपनी गर्दन पर स्वयं रख कर उसे चलाता था। उनके स्नान कर चुकने पर वह भी चला जाता था। जब यह बैल नगर की गलियों में गुजरता था तब लोग इसे गुड़ और आटे की लोई आदि देते थे। जाते समय यह गली की सिर्फ एक तरफ के घरों की लोई खाता था। जब यह वापस जाता था तब दूसरी तरफ वालों की दी हुई लोई खाता था।

इन्हीं महन्त साहब के पोते महन्त प्रजानाथजी भी सिद्ध थे। गुरुदासपुर से पाँच कोस पूर्व को विपाशा नदी के बायें तट पर वैरागी महन्तों का एक गुरुद्वारा पिंडोरी नाम के गाँव में है। वहाँ के महन्त हरीरामजी ने अपने गुरु का महोत्सव किया। उस समय अनेक साधु, महात्मा, वैरागी वहाँ पर उपस्थित हुए। एक वैरागी ने महन्त हरीरामजी से कहा कि

मेरी नारियल की कटोरी घी से भर दो। महन्तजी ने आज्ञा दी कि इसे घी दे दो। वे घी डालते थे, पर वह कटोरी न भरती थी। प्रायः सारा घी समाप्त हो गया। बहुत थोड़ा रह गया। तब आप प्रजानाथजी के पास दौड़े आये और सब वृत्तान्त कहा। तब प्रजानाथ जी अपना कमण्डलु घी से भर कर घटनास्थल पर आये। उसकी कटोरी में आपने घी डालना आरम्भ किया। पूरे आठ पहर खड़े आप घी डालते रहे। न तो वह कटोरी भरी और न कमण्डलु ही खाली हुआ। यह देख कर उस साधु ने महन्त प्रजानाथ की ओर ऊँची दृष्टि से देखा और कहा—“प्रजानाथ ! आप सचमुच ही प्रजा के नाथ हैं”। यह कह कर वह चला गया। परन्तु कमण्डलु देखा गया तो घी से भरा था।

फकीरचन्द शर्मा ।

## विविध विषय ।

### १—महाराज समुद्र-गुप्त के अश्वमेध की स्वर्णमुद्रा ।

महाराज समुद्र-गुप्त को हुए १५०० वर्ष हुए। वे भारत के चक्रवर्ती राजा थे। उन्होंने अश्वमेध-यज्ञ किया था। उसकी दक्षिण एक लाख अशर्फियाँ उन्होंने एक खास तरह की ढलवाई थीं। उनकी एक तरफ यूप-नामक यज्ञस्तम्भ में बंधे हुए घोड़े की मूर्ति अङ्कित की गई थी; दूसरी तरफ हाथ में परशु लिये हुए स्वयं राजा की मूर्ति। प्राचीन वस्तु के प्रेमी इन मुद्राओं को बड़े ही महत्त्व का समझते हैं। ये बहुत ही दुष्प्राप्य हैं। आज तक सिर्फ दो मुद्रायें इस तरह की प्राप्त हुई हैं। वे दोनों कलकत्ते के अजायबघर में हैं। कुछ समय हुआ, इस तरह की एक तीसरी मुद्रा राय-बहादुर राजा योगेन्द्रनारायण के देखने में आई। उसे उन्होंने बड़े प्रयत्न से, बहुत सा रुपया देकर खरीदा। पर उसे उन्होंने सन्दूक में नहीं बन्द कर



रक्खा। अपनी पौत्रियों के विवाहोपलक्ष्य में उसे उन्होंने कलकत्ते की साहित्यपरिषद् को दे डाला। राजा साहब के इस दान को बंगला-भाषा के साहित्यसेवियों ने अनमोल समझ कर बड़ेही भक्ति-भाव से ग्रहण किया। बंगाल के राजाओं और अमीर आदमियों की विद्याभिरुचि और मातृभाषा-प्रेम की कितनी प्रशंसा की जाय कम है। इस प्रान्त के अमीरवर्गों को उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। क्योंकि इन महामना महोदयों में से अनेकों के हृदयों का अजीब हाल है। अपने साहित्य को उन्नत करने की चेष्टा तो दूर रही, यदि प्रसङ्ग-वश कोई इनका उचित प्रकाशित करता है और उसमें उनके अच्छे कामों की तारीफ में कुछ कह देता है तो उलटा उस पर यह इलजाम लगाया जाता है कि कुछ ऐंठने के आदे से इसने खुशामद की है। काम लेकर उसका व्यतिथित मोल तक तो कभी कभी किसी किसी से मिलता नहीं; और कुछ भला इनसे किसी को क्या मिलेगा।

## २-भारत में भाषा-साहित्य की उन्नति।

गत ३० वर्षों में इस देश की भिन्न भिन्न भाषाओं का साहित्य ने बहुत नहीं तो थोड़ी सी उन्नति ज़रूर की है। नीचे के अङ्कों से मालूम होगा कि किस समय में कितनी उन्नति हुई है:—

विषय	१८८०	१९१०
छापेखाने	७५१	२,७३६
समाचारपत्र	३२८	७२६
सामयिक पुस्तकें	३२२	८२९
अंगरेज़ी पुस्तकें	५२३	२,११२
देशी भाषा की पुस्तकें	४,३४६	९,९३४

१९१० ईसवी में सबसे अधिक समाचारपत्र नई प्रान्त से निकले और सबसे अधिक पुस्तकें बंगाल से। हर साल धार्मिक पुस्तकें ही सब से अधिक निकलीं। धर्मप्राण भारत के लिए यह कोई बात नहीं।

## ३-पुरातत्त्व-विभाग में भारतवर्ष के

### एक विद्वान का प्रवेश।

संस्कृत के विख्यात विद्वान डाकूर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर की उम्र इस समय ७४ वर्ष की है। नेत्रदृष्टि से आप वञ्चित हो रहे हैं। तिस पर भी आपकी विद्याभिरुचि का यह हाल है कि गत जूलाई में पुरातत्त्वज्ञ पण्डितों की जो सभा शिमला में हुई थी उसमें आप अपनी इस अवस्था में भी पधारे थे। आप के पुत्र भी पिताही के सदृश विद्याप्रेमी और योग्य हैं। प्राचीन स्थान, इतिहास, सिक्के, शिलालेख आदि से सम्बन्ध रखनेवाला जो महकमा है उसमें अब तक भारतवर्षीय विद्वानों का प्रवेश न होता था। पहले पहल, कुछ समय हुआ, इस महकमे में राव-बहादुर वी० वेंकैया, एम० ए० ने प्रवेश प्राप्त किया। आपको गवर्नमेंट ने प्राचीन ताम्रपत्रों और शिलालेखों आदि को पढ़ने और उनका अर्थोद्धार करने का काम दिया। गैज़ट आर्च इंडिया देखने से मालूम हुआ कि अब इसी महकमे में वृद्ध डाकूर भाण्डारकर के पुत्र श्रीयुत डी० आर० भाण्डारकर को सुपरिंटेंडेंट का पद मिला है। इससे जान पड़ता है कि गवर्नमेंट ने आपको अच्छा पुरातत्त्वज्ञ समझा है। आशा है, इस पद पर रह कर आप विशेष प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

## ४-जापान का असामा नामक ज्वालाला-

### मुखी पर्वत।

विस्त्यूवियस नामक ज्वालालागर्भ पर्वत का हाल पाठक सरस्वती में पढ़ चुके हैं। कुछ ही दिन हुए सिसली टापू के इटना नामक इतिहासप्रसिद्ध ज्वालामुखी पर्वत ने भी फिर ज्वाला-उगलना आरम्भ किया था। पर दस पाँच दिन में उसका क्रोध शान्त हो गया। अब वह फिर चुप है। अब जापान के असामा नामधारी पर्वत ने अग्निक्कीड़ा आरम्भ की है। ये सब पर्वत समुद्र-तट से बहुत दूर नहीं। पृथ्वी का अधोभाग कहीं कहीं पर आग से तपाये



गये लाल लाल लोहे के समान अग्निमय है। प्रायः पहाड़ों के नीचे ही पृथ्वीतल में यह बात अधिक है। समुद्र का पानी दरारों की राह से ऐसी जगह जा कर बड़ा ही भीषण उपद्रव मचाता है। पानी की भाप हो जाती है और वह पर्वत को फाड़ कर पृथ्वी के पेट की चीजें ऊपर फेंकने लगती है। जापान का असामा पर्वत टोकिओ नगर से कोई १०० मील दूर है। उसकी लीला देखने के लिए जपानियों के सिवा विदेशी यात्री भी जाया करते हैं। उसका दृश्य मनोहर भी है और आतङ्क तथा भय का उत्पादक भी। १४० वर्ष पूर्व इस पर्वत ने आग, पत्थर और पिघली हुई धातुओं की नदियाँ बहा कर आस पास के खेत-पात और बस्तियों का तहस नहस कर डाला था। अब फिर उसने अपना विध्वंसकार्य आरम्भ किया है। गत अगस्त में वह कुछ चुप था। इस दशा में उसके ज्वाला-गर्भमुख का दर्शन करने के लिए अमेरिका, इंग्लैंड और जापान के अनेक यात्री गये। इतने ही में प्रचण्ड हाहाकार के साथ उसका मुँह खुल गया। आस पास की पृथ्वी हिलने लगी। पत्थरों की विषम वृष्टि आरम्भ हुई। पिघली हुई धातुओं की अग्निमय धारायें बहने लगीं। कितने ही यात्री वहीं ढेर हो गये; कितने ही बेतरह घायल हुए; कितनों ही का अङ्गभङ्ग हो गया। जो बचे थे उन्होंने भाग कर किसी तरह अपने प्राण बचाये।

### ५—देहरादून का दयानन्द-एंग्लो-वैदिक हाई स्कूल ।

इस स्कूल को स्थापित हुए कोई १६ वर्ष हुए। पहले यह मेरठ में था। आठ वर्ष हुए जब यह देहरादून को उठ आया। तब से वहीं है। इन प्रांतों में देहरादून की आवाहवा बहुत अच्छी है। स्कूल के लिए स्थान भी बहुत अच्छा और आरोग्यवद्धक मिला है। देहरादून के ज़मींदार और व्यापारी श्रीमान् नेगी पूरणसिंह ने कोई एक लाख के खर्च से इसके लिए ही मंजिला एक इमारत बनवा दी है।

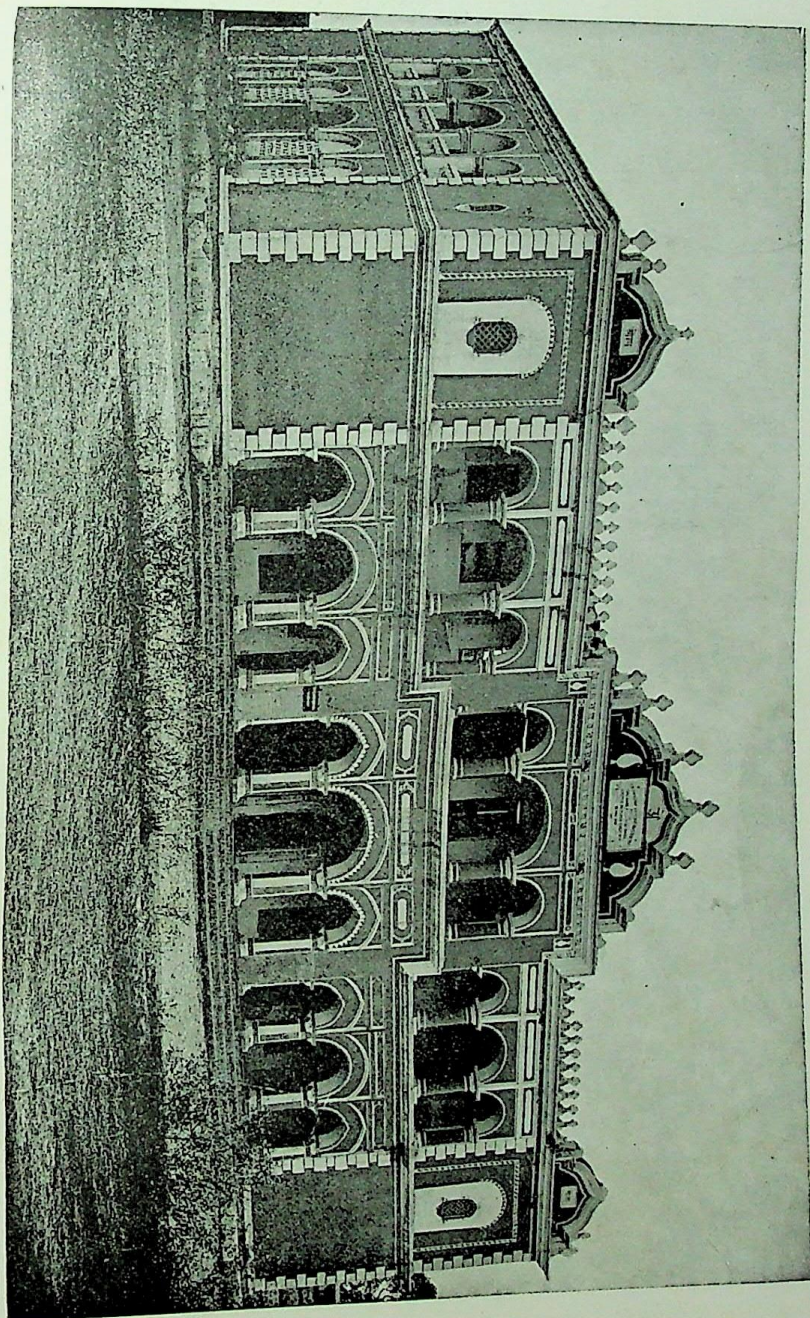
बोर्डिंग हास और हवन-मण्डप भी आप ही ने बनवा दिया है। यहाँ तक कि अपनी दो लाख की स्थावर-सम्पत्ति भी, सारी की सारी, आपने स्कूल को दान कर दी है। आपके बनवाये हुए बोर्डिंगहास का नाम है दयानन्दाश्रम। और भी कई सज्जनों ने धन से इस स्कूल की सहायता की है। इसमें एंट्रेंस तक पढ़ाई होती है। फीस भी कम ली जाती है। गरीब लड़कों को मुफ्त शिक्षा दी जाती है। बोर्डिंगहास में जो लड़के रहते हैं उनकी निगरानी का अच्छा प्रबन्ध है। १२ रुपये महीने देने से छात्रालय के छात्रों को भोजन भी मिलता है। छात्रों के लिए स्कूल का एक पुस्तकालय भी है। पुस्तकालय ही नहीं, एक पाठालय भी है। वहाँ लड़के पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़ सकते हैं। स्कूल के अधिकारियों ने व्यायाम का भी प्रबन्ध कर रक्खा है। इस स्कूल से सम्बन्ध रखने वाली एक कन्यापाठशाला भी है। उसमें लड़कियों को उपयुक्त शिक्षा दी जाती है। स्कूल में कोई ३०० विद्यार्थी हैं। कोई एक सौ विद्यार्थी आश्रम में रहते हैं। यह स्कूल प्रयाग के विश्वविद्यालय में सम्मिलित है। गत वर्ष १५ लड़के मैट्रिक्यूलेशन-परीक्षा के लिए भेजे गये थे। उनमें से १० “पास” हुए। इसे बहुत अच्छा नतीजा समझना चाहिए। इस स्कूल की पढ़ाई में विशेषता यह है कि इसमें आर्य्य-समाज की प्रणाली के अनुसार धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। छात्रों के लिए सन्ध्योपासन और हवन करना तथा धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना आवश्यक रक्खा गया है।

### ६—मनुष्य-भक्षक वृक्ष ।

कीड़े-मकोड़े खाने वाले वृक्षों का वृत्तान्त-सरस्वती के पाठक पढ़ चुके हैं। आज हम एक ऐसे वृक्ष का कुछ हाल सुनाते हैं जो मनुष्य को भी खा जाता है। यह भयङ्कर वृक्ष दूर से बड़ा सुन्दर, पर आश्चर्यजनक, देख पड़ता है। यह बहुत बड़ा नहीं होता। तने से बहुत सी मोटी मोटी सर्पाकृत शाखायें फूटती हैं। उनमें पत्ते बिल्कुल नहीं होते; पर उनसे घास खोदने के खुरपे के सदृश तिरछी और तीक्ष्ण डालियाँ निकलती हैं। इस वृक्ष की शाखायें



# सरस्वती



इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

देहराडून का दयानन्द ऐंग्लो वैदिक हाई स्कूल ।













महाराज कृष्ण बिहारी ।

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

Photo by Messrs. Bourne and Shepherd.

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

संख्य

ऊपर  
तिरछी  
जमीन  
ही मने  
अदभुत  
वह इ  
अधिक  
दूट प  
मृत्यु-स  
वृक्ष के  
की ती  
वे बड़  
हैं। थे  
भाग  
दूसरे  
चाप र  
किसी  
देहान्त  
विष र  
भी शा  
कर ज  
ने ऐसे  
उदर मे

क  
हैं। इ  
पृष्ठ हैं  
प्रकाश  
अच्छ  
स्वामी  
बड़े, र  
कवित  
हैं। इ  
कला,  
रखने



ऊपर की तरफ सीढ़ी, अथवा अन्य वृक्षों की तरह तिरछी भी नहीं जाती; किन्तु उनके सिरे नीचे, ज़मीन में आ लगते हैं। इससे यह हत्यारा वृक्ष बहुत ही मनोमोहक देख पड़ता है। मुसाफ़िर दूर से इस अद्भुत वृक्ष को देख कर मोहित हो जाता है। ज्योंही वह इस वृक्ष के पास जाता है त्योंही सर्प से भी अधिक भयंकर उसकी डालियाँ, अकस्मात्, उस पर टूट पड़ती हैं और उसके बदन में लिपट जाती हैं। मृत्यु-मुख में पड़ा हुआ वह मुसाफ़िर धीरे धीरे वृक्ष के मध्य भाग में खिँच जाता है और उस पेड़ की तीक्ष्ण टहनियाँ उसके बदन में घुस जाती हैं। वे बड़ी शीघ्रता से उसका रक्त शोषण करने लगती हैं। थोड़ी ही देर में मुसाफ़िर का अस्थिपंजरावशेष भाग नीचे गिर पड़ता है और यह वृक्ष-राक्षस दूसरे मुसाफ़िर की मार्ग-प्रतीक्षा करता हुआ चुपचाप खड़ा रहता है। कहते हैं कि आफ़्रिका के किसी किसी प्रदेश में अपराधियों को, इन्हीं वृक्षों के द्वारा, देहान्त-दण्ड देने की चाल है। इस वृक्ष में हलाहल विष रहता है। इसकी डालियों की नोक यदि ज़रा भी शरीर में लग जाती है तो वह सर्पदंश का काम कर जाती है। आफ़्रिका और अमेरिका के अरण्यों ने ऐसे कितने ही वनस्पति-राक्षसों को अपने गभीर उदर में स्थान दे रखा है।

लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

### ७—“जीवन” का जन्म ।

कानपुर में एक नये मासिक पत्र ने जन्म लिया है। इसका पहला अङ्क, अगस्त का, है। इसमें ४२ पृष्ठ हैं। छपाई लखनऊ के दामोदर-प्रेस की है। प्रकाशक इसके पण्डित रामप्रसादजी हैं। इस पहले अङ्क के आरम्भ में—“कलियुग-भीम प्रो० देरा-स्वामी” का एक अच्छा हाफ़्टोन चित्र भी है। छोटे बड़े, सब मिला कर, बीस के लगभग लेख हैं। कई कवितायें भी इसमें शामिल हैं। लेख पढ़ने योग्य हैं। इसका वार्षिक मूल्य १॥ है। विद्या, शिल्प-कला, कृषि, व्यापार, राजनीति आदि से सम्बन्ध रखने वाले लेख प्रकाशित करने के उद्देश से इसने

जन्म लिया है। मिलने का पता:—जीवन-कार्यालय, गिलिश बाज़ार, कानपुर ।

### ८—महाराज कूचबिहार का परलोकवास ।

कूचबिहार के अधीश्वर महाराज सर नरेन्द्र-नारायणभूप बहादुर, जी० सी० आई० ई०, सी० बी० राजेश्वर पञ्चम जार्ज का राज्याभिषेकोत्सव देखने के लिए इंग्लैंड गये थे। बीमार वे पहले ही से थे। उत्सव समाप्त होने के बाद बीमारी बढ़ गई। अन्त में उसने महाराज के प्राण ही लेकर छोड़े। जिस समय आपके पिता मरे, आप दो वर्ष के भी न थे। पहले इन्होंने बनारस में शिक्षा पाई; फिर पटना-कालेज में और फिर कलकत्ते के प्रेसी-डेन्सी कालेज में। जब आप छोटे थे, आपकी रियासत ने भूटान-युद्ध के समय गवर्नमेंट को बहुत सहायता दी। इस उपलक्ष में कूचबिहार-राज्य को दो तोपें उपहार में मिलीं। १८७८ में, जब आपकी उम्र १८ वर्ष की थी, आप अपनी शिक्षा परिपक्व करने के लिए, दो अँगरेज़ अधिकारियों की निगरानी में, विलायत गये। वहाँ से लौटने पर, १८८३ में, आपको राज्याधिकार मिला। श्रीयुत महात्मा केशवचन्द्र सेन की लड़की से आपने विवाह करके उन्हें अपनी रानी बनाया। १८७७ ई० वाले देहली दरबार में आपको एक पदक और एक तलवार मिली। गवर्नमेंट ने जी० सी० आई० ई० की महत्त्वपूर्ण उपाधि से भी आपको विभूषित किया। तीरा युद्ध में आप गवर्नमेंट की अनुमति से अफ़रीदियों से लड़ने गये थे। वहाँ आपने अच्छी शूरता दिखाई। आप बड़े ही उदार और प्रजावत्सल राजा थे। समाज-संशोधक भी थे। विद्याप्रेमी भी थे। पहले नम्बर के शिकारी भी थे। शिकार पर आपका लिखा हुआ एक उत्तम ग्रन्थ है। आपने अपनी राजधानी में एक कालेज खोल कर अपनी प्रजा के लिए उच्च-शिक्षा-प्राप्ति का साधन सुलभ कर दिया। आप कई दफ़े महारानी समेत इंग्लैंड गये। ब्रिटिश-सेना के आप आनरेरी मेजर थे। आपकी मृत्युवार्ता सुन



कर राजेश्वर पञ्चम जार्ज तक ने खेदसूचक तार भेजे। आपकी अन्त्येष्टि-क्रिया बहुत अच्छी तरह विलायत में हुई। अनेक सम्माननीय पुरुष और उच्च राजकर्मचारी उस समय उपस्थित थे। आपके चार पुत्र और तीन कन्याएँ हैं। ज्येष्ठ पुत्र ने पिता का सिंहासन प्राप्त किया है।

## ६—फरहंग आसफ़िया।

किसी भाषा का सर्वगुण सम्पन्न कोश बनाना बड़ी योग्यता, बड़ी विद्वत्ता, बड़ी खोज और बड़े परिश्रम का काम है। जानसन, वेब्सटर और आपटे आदि के कोश इस बात के प्रमाण हैं। आपटे ने तो अपने संस्कृत-अंगरेज़ी और अंगरेज़ी-संस्कृत कोश के कारण प्राण ही दे दिये। इस काम में उन्होंने इतना परिश्रम किया कि वे अल्पायु हो गये। हिन्दी का भी एक बहुत बड़ा कोश बन रहा है। इस परिश्रम-साध्य काम को कई सज्जन मिल कर कर रहे हैं। देखिए, यह कोश कब बन कर प्रकाशित होता है और हिन्दी के पण्डितों को कहाँ तक पसन्द आता है। उदू में इस तरह का कोश प्रकाशित हुए कई साल हुए। उसका नाम है—फरहंग आसफ़िया। देहली-निवासी मौलवी सैयद-अहमद साहब ने इसे बनाया है। आपने और भी अनेक पुस्तकें उदू में लिखी हैं। रसखान, रीतिबखान और नारीकथा आदि कई किताबें आपने ऐसी भी लिखी हैं जो हिन्दूजाति और हिन्दीभाषा से सम्बन्ध रखती हैं। गवर्नमेंट से आप कई दफ़े इनाम पा चुके हैं। १८६८ ईसवी में आपने फरहङ्ग लिखना आरम्भ किया। १८९२ में यह पुस्तक समाप्त हुई और १९०१ में छप कर प्रकाशित हुई। बीस पच्चीस वर्ष आपको इसके लिखने में लग गये। पहले आपने इसका एक भाग नमूने के तौर पर छाप कर प्रकाशित किया। पर द्रव्याभाव के कारण आगे काम न चल सका। फिर आप इसका एक संक्षिप्त संस्करण, मासिक पुस्तक के रूप में, निकालने लगे। उसके भी ४० अङ्क निकल कर रह गये। अन्त को निज़ाम के मदारुल-

हाम सर आस्मानजाह की सहायता और शम्सुल उल्मा मौलवी सैयद अली बिलग्रामी की सिफ़ारिश से मौलवी साहब इस पुस्तक को पूरी प्रकाशित करने में समर्थ हुए। निज़ाम साहब ने इस उपलक्ष्य में मौलवी साहब को पाँच हजार रुपया इनाम दिया और पच्चीस रुपया महीना वज़ीफ़ा भी नियत कर दिया। यह कोश निज़ाम को ही समर्पण किया गया है और इसका नामकरण भी उन्हीं के नामानुसार हुआ है। गवर्नमेंट और कई एक राजाओं, महाराजाओं और नवाबों ने भी मौलवी साहब को इस पुस्तक के लिए पुरस्कार दिया है। मौलवी साहब का जीवनचरित गत दिसम्बर के “अदीब” में प्रकाशित हुआ है। हिन्दी-कोश का काम करने-वाले महाशय, यदि उचित समझें तो, इस जीवनचरित को एक बार पढ़ जायँ और, आवश्यक समझें तो, फरहंग-आसफ़िया की भी एक कापी मँगा कर उसे देख जायँ।

## पुस्तक-परीक्षा।

१—रामायण-सार। ज़िला नरसिंहपुर, तहसील गाडरवारा, मौजे पलोहा-कलाँ के रहने वाले श्रीयुत गनपतलाल वैश्य की यह करतूत है। मूल्य इसका ॥) है। इसमें कोई १५० पृष्ठ हैं। इस पुस्तक को प्रकाशित करके वैश्य महोदय ने जैसा साहस किया है शायद ही किसी ने आज तक किया हो। इस पुस्तक के सङ्कलनकर्ता ने मनमानी कथाओं और मनमाने पद्यों को प्रक्षिप्त, प्रसङ्ग-विरुद्ध और पिष्टपेषण बतला कर छोड़ दिया है और मनमाने पद्यों को अपनी तरफ से रख कर तुलसीदास की सर्वगुणसम्पन्न कविता-कामिनी का बड़ी ही निर्दयता से अङ्गभङ्ग किया है। यह पुण्यकार्य आपने अपने एक “दीर्घ” भ्राता और एक पूज्य भ्राता की आज्ञा से किया है। अतएव इस संशोधन के उपलक्ष्य में, आप तीनों भाइयों का एक एक “आइल पेंटिंग” चित्र तुलसीदास के राजा-पुर वाले नव-प्रतिष्ठित मन्दिर में लगाना चाहिए।



# सरस्वती



देहली-निवासी मोलवी सैयद अहमद साहब ।



संख्य

२-

सभास

माला

दास वं

प्राक्षेप

है। ल

राम उ

राम दे

पौर हि

ने शाम

में कल

गोंडवा

को कर

३-

मूल्य ६

मन्त्री :

जुगल

दयानन

खण्डन

जैन ग

धी ।

प्रकाशि

के लेख

पौर नि

स्व

पढ़ना

न होग

४

का "५

इसका

श्रीमान

बड़े ब

है। म

वर्णन



२—अलौकिक-माला-मर्दन । आर्य-समाज के प्रतिष्ठित सभासद पण्डित शिवशङ्कर शर्मा ने अलौकिक माला नामक एक छोटी सी पुस्तक लिख कर तुलसीदास के रामचरितमानस पर सौ से भी अधिक आक्षेप किये हैं । उन्हीं का समाधान इस पुस्तक में है । लखनादैन, जिला सिवनी छपारा के श्रीशोभा-राम उपनाम छविराम ने यह माला-मर्दन किया है । राम दो आने हैं । तुलसीदास के संख्यातीत भक्तों और हिन्दी के सैकड़ों “विद्वद्भरो” में से अन्य किसी ने शर्मा जी की पुस्तक पढ़ कर तुलसीदास के पक्ष में कलम उठाने की ज़रूरत नहीं समझी । इसी से गोंडवाने के छविराम महाशय यथाशक्ति इस काम को करने के लिए विवश हुए जान पड़ते हैं ।

✽

३—आर्यमतलीला । बड़े आकार के १८४ पृष्ठ । मूल्य ६ आने । इटावे की जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा के मंत्री से प्राप्य । १९०८ ईसवी के जैन-गज़ट में बाबू जुगलकिशोर जैन, आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की कही हुई अनेक बातों का खण्डन बहुत दिनों तक करते रहे थे । सब मिला कर जैन गज़ट के २८ अङ्कों में उनकी लेखमाला निकली थी । वही अब आर्यमतलीला नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित की गई है । बाबू जुगलकिशोर ने स्वामीजी के लेख आदि का खण्डन युक्तिपूर्वक किया है । सभ्यता और शिष्टता को उन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया ।

स्वामी जी के अनुयायियों को तो इसे अवश्यही पढ़ना चाहिए । और लोग भी पढ़ें तो यदि और कुछ न होगा तो मनोरञ्जन तो अवश्यही होगा ।

✽

४—“कलानन्द विनोदम्” । यह इस नाम की पुस्तक का “प्रथम-भागम्” है । पण्डित श्री त्रिलोचन भा ने इसका सम्पादन किया है । इसे आपने बनेली-नरेश श्रीमान् राजा कलानन्दसिंह को समर्पण किया है । बड़े बड़े १७० पृष्ठ की पुस्तक है । बड़े टाइप में छपी है । मूल्य पुस्तक पर छपा नहीं । इसमें नायिका-भेद-वर्णन है । साथ ही नायक-भेद भी है । अज्ञातयौवना

नायिका के समकक्ष अनभिज्ञ नायक के उदारण-सवैये का चौथा चरण इसमें इस प्रकार है:—“हैं निरशङ्क भरो चह अङ्क पै बालम बङ्कन अङ्क में आवै” । लक्षण गद्य में है, उदाहरण घनाक्षरी, सवैया, कजली, ठुमरी, गज़ल आदि में । सम्पादक महोदय ने ऐसी पुस्तक लिखने के कारण “देश-कालज्ञ पण्डितों” से क्षमा माँगी है और दोषान्वेषियों की उपमा ‘मल-ग्राही’ मन्त्रियों से दी है । इस पर हमारी प्रार्थना है कि आपकी कृति से यदि आपके राजा साहब प्रसन्न हुए हों तो आप मन्त्रियों और मच्छड़ों की परवा न कीजिए और इसके अगले भाग भी शीघ्रही प्रकाशित कर दीजिए ।

✽

५—उपमिति-भव-प्रपञ्चारकथा । विक्रम के दशवें शतक में गुजरात के श्रीमाल नामक नगर में वर्मलाभ-नाम का एक राजा था । उसके मंत्री सुप्रभदेव के दो पुत्र थे:—दत्त और शुभङ्कर । दत्त के पुत्र माघ कवि ने शिशुपालवध नामक महाकाव्य बनाया और शुभङ्कर के पुत्र सिद्धर्षि ने उपमितिभवप्रपञ्चार-कथा । और भी कई ग्रन्थ सिद्धर्षि ने बनाये । यह कथा संस्कृत में है । इसमें १६ हजार श्लोक हैं । वे आठ प्रकरणों में विभक्त हैं । इसमें कथाओं के बहाने सांसारिक प्रपञ्चों की उपमिति दिखाई गई है । जैन धर्म के गूढ़ से भी गूढ़ सिद्धान्तों का, सरल भाषा में, कहानियों के द्वारा बड़ी ही योग्यता से प्रतिपादन किया गया है । इसी पुस्तक के पहले प्रस्ताव का यह हिन्दी अनुवाद है । अनुवादकर्त्ता हैं—श्रीयुत नाथू-रामजी प्रेमी । यह दो सौ से अधिक पृष्ठों की सुन्दरतापूर्वक छपी हुई पुस्तक बंबई के जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, से मिलती है । यह कार्यालय जैनधर्म-सम्बन्धी अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करके अपने धर्म की उन्नति और हिन्दी-साहित्य-भाण्डार की पूर्ति कर रहा है । जैनातिरिक्त जनों को भी इस पुस्तक को देखने से लाभ हो सकता है और जैनधर्म-विषयक बहुत सी बातें मालूम हो सकती हैं । पुस्तक की भाषा बोध-गम्य और प्राञ्जल है ।



## ० मनोरञ्जक श्लोक ।

( २ )

प्रसिद्ध विद्वान् बालभट्ट से किसी ने पूछा कि आज कल आपका पुत्र क्या करता है। बालभट्ट अपने कुपुत्र के आचरणों से दुखी थे। बोले :—

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति । परिपन्थं च तिष्ठति ।

व्रातेन जीवति । अधुना । न वशः । पूर्ववत्स नः ॥

अर्थात्—पक्षि, मत्स्य, और मृगों को मारता है ; कुमार्ग पर चलता है ; लुच्चे लुँगाड़ों के साथ रहता है ; अब वह पहले की तरह हमारे वश नहीं। इस श्लोक के छः टुकड़े हैं (जैसा कि चिन्हों से दिखाया गया है) और वे छःहों पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्र हैं। सूत्रों को जोड़ कर ही श्लोक बना दिया गया है।

श्रीचन्द्रधरशर्मा ।

## चित्र-परिचय ।

( १ )

दीक्षा ।

इस महीने का रंगीन चित्र उपनिषत्काल की एक प्रसिद्ध घटना से सम्बन्ध रखता है। इस का विस्तार-पूर्वक वर्णन देखना हो तो छान्दोग्य उपनिषद् के चौथे प्रपाठक का चौथा खण्ड देखना चाहिए। यहाँ इसका संक्षिप्त वर्णन सुनिए :—

जब सत्यकाम नामक शिष्य अपनी माता से आज्ञा लेकर गौतमगोत्रोत्पन्न हारिद्रुमत नामक ऋषि के समीप विद्याध्ययन करने के लिए गया तब वृद्ध गुरुजी ने उसका परिचय प्राप्त कर के उसको अपना शिष्य बना लिया। जिस समय सत्यकाम को शिष्य बना कर गुरुजी उस के सिर पर हाथ रख कर उस को दीक्षा देने लगे उस समय का ही पवित्र दृश्य चतुर चित्रकार ने इस चित्र में चित्रित किया है। अहा ! चित्र कैसा भावपूर्ण है ! इसमें भारत की प्राचीन दीक्षा-पद्धति की कैसी पवित्र झलक दिखाई गई है !

## दमयन्ती का स्वयंवर ।

दमयन्ती नल पर अनुरक्त थी, नल दमयन्ती पर। उधर इन्द्र, वरुण, यम और अग्नि ये चारों दिग्पाल देवता भी दमयन्ती का पाणिग्रहण करना चाहते थे। पर वे जानते थे कि नल को छोड़ कर और किसी को दमयन्ती नहीं चाहती। इस कारण स्वयंवर में नल के पास ही ये चारों भी नल ही का रूप धारण करके जा बैठे। और भी सैकड़ों राजा स्वयंवर में उपस्थित थे। दमयन्ती के साथ सरस्वती थी। वह प्रत्येक राजा का गुणगान करके उसका परिचय दमयन्ती से कराती जाती थी। दमयन्ती तो चाहती थी नल को। अतएव उसने उन राजाओं में से अन्य किसी को नहीं पसन्द किया। जब सरस्वती उसे नल के पास ले गई तब वह बेतरह चकित हुई। उसके होश उड़ गये। एक नहीं पाँच नल उसने देखे। सरस्वती ने उसका जो वर्णन किया वह सब श्रिष्ट। उससे नल का भी अर्थ निकलता था और उन चारों देवताओं का भी। दमयन्ती सोचने लगी—क्या मेरी हँसी करने के लिए नल ने ही इतने रूप धारण किये हैं ? अश्व-विद्या के लोकोत्तर ज्ञाता के लिए बहुरूपकल्पना-विद्या का जानना कोई असम्भव बात नहीं। अथवा क्या मैं ही फिर पागल हो गई हूँ ? विरह-व्यथा की दशा में मुझे सर्वत्र नल ही नल देख पड़ते थे। क्या वही दशा मुझे फिर भी प्राप्त हो गई ? यदि देवी सरस्वती से ही कहूँ कि जो यथार्थ नल हो उसके गले में माला पहना दो, तो देवता लोग व्यर्थ उसके शत्रु हो जायेंगे। मैं मर चाहे भले ही जाऊँ, पर यह न करूँगी। यदि यह कहूँ कि जो सच्चा नल हो वह स्वयं वरणमाल्य ग्रहण करे तो बड़ी निर्लज्जता की बात है—“कुर्वे कथं जगति शृण्वति ही विडम्बः”। नलाकृति पाँच पुरुषों के सामने जयमाल लिये हुए खड़ी दमयन्ती जिस समय इस तरह के विचारों में मग्न थी उसी समय का दमयन्ती-स्वयंवर नामक एक चित्र इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है।



## सरस्वती



दीक्षा ।

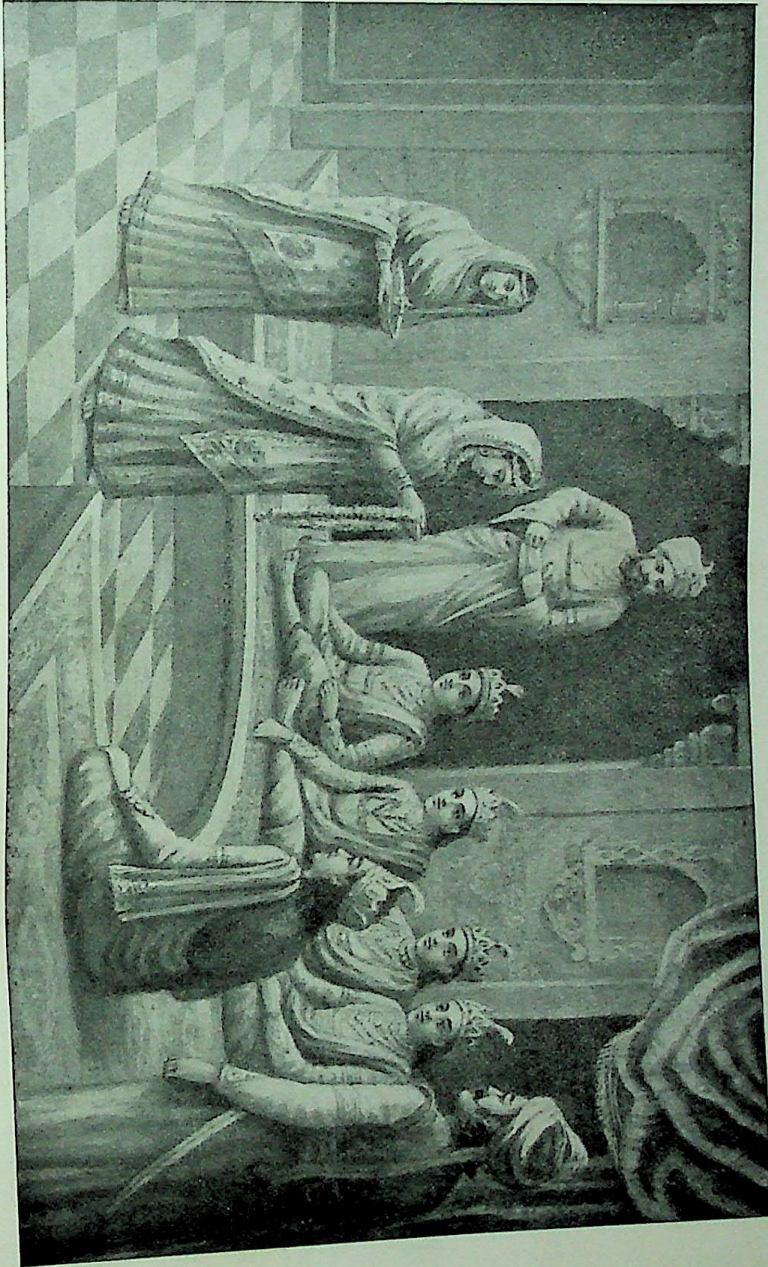
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।







# सरस्वती



हृदयन प्रेस, प्रयाग ।

दमयन्ती-स्वयंवर ।













महन्त नारायण ताथजी ।



# सरस्वती



महन्त नारायणनाथ के पिता महन्त दीपचन्दजी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।





भाग १



स  
मिमांसी,  
रके व  
र सब  
नुसार  
सके ले  
र उप  
र जारी  
क हिसा  
हो  
र पृष्ठ



# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १२ ] १ दिसम्बर, १९११—मार्गशीर्ष शुक्ल १०, १९६८ । [ संख्या १२

## वार्षिक विचार ।

सरस्वती को निकलते बारह वर्ष हो गये । इसे एक युग कहना चाहिए । इस इतने समय में उसने कभी कोई हीला हवाला नहीं किया । कार्याधिक्य, बीमारी, दुर्घटनायें आदि सारी विघ्न-बाधाओं को पार करके वह सदा समय पर निकलती रही । सम्पादक और सञ्चालक की अत्यल्प योग्यता और शक्ति के अनुसार उसके रंग-ढंग को, उसके कलेवर को, उसके लेखों को, उसके चित्रों को अधिकाधिक उन्नत और उपयोगी बनाने की चेष्टा भी क्रम क्रम से बराबर जारी रखी गई । १९०९ में हर महीने ४७ पृष्ठ के हिसाब से सरस्वती निकली । १९१० में यह संख्या ५६ हो गई । इस साल यह औसत बढ़कर कोई ५२ पृष्ठ तक पहुँच गया । परन्तु इतने से भी काम

चलता नहीं देख पड़ता । अनेक अच्छे अच्छे लेख महीनें अप्रकाशित पड़े रह जाते हैं । अतएव अगले साल से इसका हर अङ्क, कम से कम, ५६ पृष्ठ का निकाला जायगा । आवश्यकता होने पर यह संख्या और भी बढ़ा दी जायगी; कमी इसमें न होने पावेगी ।

१९०९ में केवल ६ रङ्गीन चित्र निकले थे । १९१० में उनकी संख्या ११ हो गई थी । इस साल ऐसे चित्र १२ निकले—अर्थात् प्रति संख्या में एक चित्र रङ्गीन निकला । अगले वर्ष रङ्गीन चित्रों की संख्या और भी बढ़ा देने का विचार है । यथासम्भव कभी कभी दो दो रङ्गीन चित्र देने की चेष्टा की जायगी । पाठक इस बात को जानते ही होंगे कि साधारण रीति से लाल, पीली और बैजनी स्याही से छापे गये चित्रों का नाम रङ्गीन चित्र नहीं है । विशेष प्रकार के यन्त्रों की सहायता से, एक विशेष प्रक्रिया द्वारा छापे गये एकाधिक रङ्गों वाले चित्र ही रङ्गीन चित्र कहलाते



हैं। ऐसे ही चित्र सदा सरस्वती में निकलते हैं। यह बड़े खर्च का काम है। अतएव इनकी संख्या की वृद्धि सरस्वती की प्रचार-वृद्धि पर ही सर्वथा अवलम्बित है। सरस्वती का प्रचार जितनाही बढ़ेगा ऐसे चित्रों की संख्या भी उतनी ही बढ़ेगी।

सादे हाफ्टोन चित्र, १९०९ में, केवल ९७ निकले थे। गत वर्ष इनकी संख्या १०६ थी। इस वर्ष यह संख्या १६४ तक पहुँच गई है। इस विषय में भी उत्तरोत्तर उन्नति ही की ओर बढ़ने का यत्न किया जायगा।

जब से सरस्वती निकली, हर साल, उसकी कुछ न कुछ प्रचार-वृद्धि होती ही गई है। पर, इस साल, इस वृद्धि में विशेषता हुई है। यह इसी का फल है जो अगले वर्ष सरस्वती की पृष्ठ-संख्या भी बढ़ेगी और उसके चित्रों के उत्कर्ष-साधन की भी चेष्टा की जायगी। इसके लिए हम लोग सरस्वती के प्रेमियों, सहायकों और लेखकों के हृदय से कृतज्ञ हैं। सरस्वती को उन्नत करना एक मात्र उन्हीं की कृपा और उदारता पर अवलम्बित है।

इस वर्ष कालिदास पर जो लेख निकले उन्हें पाठकों ने बहुत पसन्द किया। इस सम्बन्ध में सम्पादक के पास, काश्मीर और काठमाण्डू तक से, इतनी उत्साहवर्द्धक चिट्ठियाँ आईं जितनी कभी, और किसी सम्बन्ध में, आज तक, नहीं आई थीं। अनेक विद्यार्थियों और कालिदास के प्रेमियों का यह अनुरोध है कि इस वर्ष, और पहले भी, कालिदास और कालिदास की कविता के विषय में जो कुछ सरस्वती में लिखा गया है वह सब एकत्र करके पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया जाय। इस उत्साहदान के लिए सरस्वती इन सब सज्जनों की बहुत कृतज्ञ है। इंडियन प्रेस आप की आज्ञा का प्रतिपालन करने की यथाशक्ति अवश्य चेष्टा करेगा।

जिन महाशयों और जिन समाचारपत्रों ने, समय समय पर, सरस्वती को इस वर्ष किसी न किसी तरह याद किया—किसी किसी ने तो हर महीने नियमपूर्वक याद करने की कृपा की—उनकी सर-

स्वती बहुत ऋणी है। सरस्वती का सम्पादक एक अल्पज्ञ मनुष्य है। अल्पज्ञ से अनेक भूलों का होना सम्भव है; उसके काम में अनेक दोषों का रह जाना स्वाभाविक है। हिन्दी के जो समाचारपत्र उसके दोषों को दिखलाते हैं वे सरस्वती पर कृपा ही करते हैं। अपने समव्यवसायी की कृति को निर्दोष बनाने के लिए उनकी यह चेष्टा सर्वथा स्तुत्य है। सम्भव है, दोष दिखलाते दिखलाते कभी उन्हें इस काम से विरक्ति हो जाय और ठूँढ़ने से सरस्वती में उन्हें कुछ गुण भी देख पड़ें। ऐसा होने से वे उनका भी अवश्य ही उल्लेख करेंगे। क्योंकि :—

भानुर्य एव दहतीह खरैर्मयूखैः

सद्यः स एव जगदावृणुते पयोभिः ।

## राज्याभिषेक ।

### आशीष ।

- १—प्रबल प्रतापी धीर वीर भारत के प्यारे,  
जय जय “पञ्चम जाज” श्रेष्ठ सम्राट हमारे ।  
सम्राज्ञी-युत सदा चेम से जीते रहिए ;  
प्रजा-प्रेम-पीयूष प्रेम से पीते रहिए ॥

### स्वागत ।

- २—सानुकूल श्रीमान आज हैं यहाँ पधारे ;  
हम कृतार्थ होगये ; धन्य हैं भाग्य हमारे ।  
हम दीनों पर दया आप ने है दिखलाई ;  
स्वागत ! स्वागत ! हमें मिली है बहुत बड़ाई ॥



- ३—कुछ आदर-सत्कार आपका कर न सके हम ;  
इस त्रुटि का सन्ताप नहीं है हमको कुछ कम ।  
किन्तु दीन जन जान न इस पर ध्यान दीजिए ;  
भक्ति-भाव ही बहुत हमारा मान लीजिए ॥

### बधाई ।

- ४—देते हैं हम लोग स्वस्ति के साथ बधाई ;  
यह अपूर्व अभिषेक आपको हो सुखदायी ।



बड़ा गर्व है हमें हमारे राजेश्वर का—

अस्त नहीं जिनके सु-राज्य में है दिनकर का ॥

## राजभक्ति ।

—“राजभक्त हम सा न विश्व में और कहीं है”—

ऐसा कहना स्वयं हमें ही उचित नहीं है ।

यह अवश्य हम लोग कहेंगे उच्च-स्वर से—

है नृप का ही यहां दूसरा पद ईश्वर से ॥



—प्रभु का प्रतिनिधिरूप यहां हम भूप मानते ;

मानें कैसे नहीं, उसे जब उचित जानते ।

राजा के कर्तव्य प्रजा के प्रति ऐसे हैं—

विश्वेश्वर के भाव विश्व के प्रति जैसे हैं ॥

## राजधर्म ।

—जिसका पहला धर्म प्रजा-रञ्जन करना है ;

सभी राज्य का दुःख-शोक भञ्जन करना है ।

सुख देने को हमें कार्य्य सारे हैं जिसके,

होंगे उसके भक्त न हम, तो होंगे किसके ?



—अच्छे नृप की प्राप्ति भाग्य से ही होती है ;

पाकर ऐसा भूप प्रजा सुख से सोती है ।

भारत के प्राचीन चित्र जो देखे जावें ;

तो असंख्य आदर्श हमारे सम्मुख आवें ॥

## वाल्मीकि का समय ।

—त्याग दिया था पुत्र प्रजा-हित सगर भूप ने ;

सीता को था तजा राम कारुण्यरूप ने ।

यदपि राम हैं ईश ; उन्हीं की सब माया है ;

पर यों नृप का धर्म उन्होंने दिखलाया है ॥

## व्यास का समय ।

—सत्यवती का विरह न था शन्तनु को थोड़ा ;

पर धीवर के साथ उन्होंने न्याय न छोड़ा ।

पाकर ऐसा भूप किसे हो सकता दुख है ?

कुछ न प्रजा-सत्ताक राज्य उसके सम्मुख है ॥

## कालिदास का समय ।

११—भूपति जो कर-रूप प्रजा से धन लेते थे—

वे प्रजार्थ ही उसे बढ़ाकर दे देते थे ।

जैसे दिनकर प्रथम महीतल से जल लेता—

फिर सहस्रगुण अधिक उसी पर बरसा देता ॥



१२—“विधि-वश जिसे वियोग किसी प्रिय जन का होवे—

समझे उसकी जगह हमें, प्रिय प्रजा न रोवे ।”

फिरवाते थे यहां महीप ढिँढोरे ऐसे ;

राजभक्त हम लोग नहीं फिर होते कैसे ?

## ब्रिटिश राज्य ।

१३—ब्रिटिश राज्य से भी न हमें आशा कुछ कम है ;

उन्नति का पथ खुला और बहुधा वह सम है ।

अनाचार कोई न किसी पर करने पाता ;

बहुत तरह आराम हमें पहुँचाया जाता ॥



१४—चिरनिद्रा से ब्रिटिश राज्य ने हमें जगाया ;

धैर्य दिया है और भूरि भय दूर भगाया ।

अवनति से फिर हमें समुन्नति-तत्त्व सिखाया ;

हम कृतज्ञ हैं ; हमें हमारा रूप दिखाया ॥



१५—एक समय औरङ्गजेब जैसा अन्यायी—

बना जहाँ सम्राट, मार कर अपना भाई ।

वहाँ आज अभिषेक आप का देख मनोहर—

देते हैं हम धन्यवाद ईश्वर को सादर ॥

## प्रार्थना ।

१६—छिपी आपसे नहीं, हमारी स्थिति है कैसी ;

उसका कहना व्यर्थ, रहे वह चाहे जैसी ।

विनती है बस यही—हमारी याद न भूले ;

और, आपकी मूर्ति हमारे मन में सूलें ।

मैथिलीशरण गुप्त ।



## सम्राट् पञ्चम जार्ज ।

भारतवर्ष के वर्तमान सम्राट् का नाम पञ्चम जार्ज है । पर उनके पहले जार्ज नाम के चार राजा इंग्लैंड में और हो चुके हैं ।

### प्रथम जार्ज ।

रानी एनी के मरने पर, प्रथम जार्ज, १७१४ ई० में, ईसाई धर्म के प्राटस्टेन्ट सम्प्रदाय के नेता बना कर इंग्लैंड के राज्याधिकारी होने के लिए, जर्मनी के हैनोवर प्रदेश से बुलाये गये । स्टुअर्ट-वंश के राजा रोमन कैथलिक थे । इसलिए इंग्लैंड की प्रजा ने, उनका वंशज मौजूद होने पर भी, उस वंशवाले को राजा न बनाया । ये प्रथम चार्ल्स राजा के दौहित्र थे । पर इन्हें इंग्लैंड की प्रजा ने अपना राजा बनाने में हानि न समझी । ३४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अँगरेजी राज्य की बाग-डोर अपने हाथ में ली । इंग्लैंड के राजा तो ये बन गये; परन्तु अँगरेज न बन सके । इन्हें इंग्लैंड की अपेक्षा और देशों में रहना अधिक पसन्द था । अँगरेजी बोलना भी इन्हें पसन्द न था । इसी से देशहितैषी अँगरेजों के हृदय से इनके विषय की श्रद्धा उठ गई । अँगरेज ऐसे राजा का आदर नहीं कर सकते जो उनकी भाषा और उनके देश को तिरस्कार की दृष्टि से देखे ।

### द्वितीय जार्ज ।

प्रथम जार्ज के मरने पर उनके पुत्र द्वितीय जार्ज, १७२७ ई० में, सिंहासनारूढ़ हुए । वे भी, अपने बाप की तरह, पक्के अँगरेज न बन सके । अँगरेजी बोलना तो इन्होंने सीख लिया; उच्चारण फिर भी हैनोवर वालों का जैसा बना रहा । ये बड़े बहादुर थे । ये इंग्लैंड के आखरी राजा थे जो स्वयं सेना-नायक होकर रणभूमि में तलवार चलाने गये । एक बार, जब ये लड़ रहे थे, इनका घोड़ा मारा गया । उस समय ये तुरन्त ही चिल्ला उठे—“वाह, खूब हुआ । अब मैं लड़ाई से भाग न सकूँगा” ।

## तृतीय जार्ज ।

पिता के स्वर्गवास होने पर, १७६० ई० में, इंग्लैंड का राज-मुकुट इनके सिर पर रक्खा गया । अपने वंशजों में इन्होंने ही पहले पहल पूरे तौर पर अँगरेजियत का जामा पहना । विचार में, शील में, स्वभाव में, सभी बातों में ये अँगरेज बन कर अपनी प्रजा के प्रीतिभाजन हुए । वृद्धावस्था में, इनकी बीमारी के कारण, राजकार्य सम्पादन के लिए एक प्रतिनिधि (Regent) नियत किया गया । वह इनकी मृत्यु के समय तक इंग्लैंड के राज्य की नौका का कर्णधार रहा । इनकी मृत्यु १८२० ई० में हुई ।

### चतुर्थ जार्ज ।

१८२० ईसवी में चतुर्थ जार्ज का राज्यतिलक हुआ । ये बड़ी शौक्तीन तबीयत के बादशाह थे । घोड़े की सवारी इन्हें बहुत पसन्द थी । कपड़े भी ये बड़े क्रीमती पहनते थे । इनकी आदतें कुछ नवाबी ढंग की थीं । इनके दो खिताब थे, जिनसे इनका तरजेअमल बहुत कुछ ज़ाहिर होता है । एक था—“The First Gentleman in Europe”—अर्थात् योरोप में अवल नम्बर के शाइस्ता । दूसरा था :—“The Most Gorgeous George”—अर्थात् बड़े शानो शौकत वाले जार्ज । थे तो ये छैला; पर रियाया के साथ इनका बरताव बहुत अच्छा था । इसी से लोग इन्हें प्यार करते थे ।

### पञ्चम जार्ज ।

हमारे सम्राट् पञ्चम जार्ज का जन्म ३ जून सन् १८६५ ई० को हुआ था । आप स्वर्गवासी महाराज सप्तम एडवर्ड और महारानी एलज़बेथ के द्वितीय पुत्र हैं । ज्येष्ठ भ्राता की असमय मृत्यु से आपको युवराज का पद प्राप्त हुआ । बचपन से ही आपको राजकुलोचित शिक्षा अच्छी तरह दी गई । छोटी उम्र में ही आपने अपनी रुचि सामुद्रिक कामों की ओर प्रकट की । जिस समय इनके शिक्षक इन्हें कहानियाँ सुनाते समय समुद्र-विषयक बातें कहते



में,  
 मखा  
 पूरे  
 में,  
 बन  
 में,  
 लिए  
 वह  
 नौका  
 है।

लक  
 घोड़े  
 यो ये  
 वावी  
 नका  
 था—  
 यथात्  
 :—  
 यथात्  
 ; पर  
 था।

न सन  
 ताराज  
 द्वितीय  
 गणको  
 गणको  
 छोटी  
 की  
 इन्हें  
 कहने





GEORGE II



GEORGE I





GEORGE IV



GEORGE III



लगते  
विषय  
प्रवृत्ति  
ब्रिटानि  
भेजा  
कर उ  
अपेक्षा  
कि इन्  
कर ये  
सकते  
तरह  
कई ज  
कुशल  
गये ।  
के सा  
कर उ  
सीखी  
प्रकार  
फन मे  
कि क  
मित्रम  
का अ  
ल  
बड़े च  
अथवा  
ऐसी  
अपेक्षा  
ही से  
गोद  
बात  
रिया  
थे ।  
नारा  
नीचे  
तुम्ह  
निकत



लगते उस समय ये उन्हें बड़े चाव से सुनते और उनके विषय में नाना प्रकार के प्रश्न करते। इनकी ऐसी प्रवृत्ति देख कर पिता ने इन्हें १८७७ ई० के जून में ब्रिटानियाँ नामक जहाज़ में जहाज़ी विद्या सीखने भेजा। वहाँ इन्होंने साधारण मल्लाहों की तरह रह कर उस विद्या में खूब दक्षता प्राप्त की। औरों की अपेक्षा इनके साथ सिर्फ़ इतनी रियायत की गई थी कि इनके रहने की कोठरी ज़रा बड़ी थी जहाँ बैठ कर ये किताबें पढ़ सकते थे और चिट्ठियाँ भी लिख सकते थे। शेष जीवन इनका मामूली मल्लाहों की तरह व्यतीत होता था। ब्रिटानियाँ के सिवा और भी कई जहाज़ों पर इन्होंने काम किया और अपनी कार्य-कुशलता के कारण एडमिरल की पदवी तक पहुँच गये। आपके सरलस्वभाव और सौजन्य से आप के साथी आपको बहुत चाहते थे। जहाज़ में रह कर आपने मल्लाहों के आमोद-प्रमोद की बातें भी सीखीं। मल्लाह लोग 'हार्न पाइप' नामक एक प्रकार के बाजे को बजा कर नाचते हैं। आपने इस फ़न में भी अच्छी कामयाबी हासिल की। सुनते हैं कि कई दफ़े अपने राज्य-प्रासाद में आपने अपनी मित्रमण्डली को इस जहाज़ी जीवन के आनन्द का आस्वादन कराया है।

लड़कपन में हमारे महाराज बड़े उपद्रवी और बड़े चपल थे। जब कभी ये अपने भाइयों, बहनों अथवा और साथियों के साथ होते उस समय ये ऐसी कोई बात ज़रूर कर देते जिससे औरों की अपेक्षा इनमें कुछ विलक्षणता पाई जाती। बचपन ही से ये हृष्टपुष्ट और बली थे। अपने साथियों को गोद में उठा कर झुला देना, इनके लिए एक मामूली बात थी। एक बार आप अपनी दादी, क्वीन विक्टोरिया, तथा अन्य कुटुम्बियों के साथ भोजन कर रहे थे। वहाँ आपने कुछ ऐसी बात की जिससे महारानी नाराज़ हो गईं और इन्हें सज़ा के तौर पर मेज़ के नीचे बैठने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा कि जब तक तुम्हारा मिजाज़ ठिकाने पर न आवे, बाहर मत निकलना। मेज़ के नीचे जाने के थोड़ी ही देर बाद

आपने आवाज़ दी—“दादी मेरा मिजाज़ अब विलकुल ठीक हो गया है”। महारानी ने कहा—“अच्छा, निकल आओ, बैठो।” जब आप बाहर निकले तो विलकुल नड्डे। कपड़े की धज़ी भी आपके बदन पर न थी। मेज़ के नीचे बैठे बैठे आपने अपने सब कपड़े फाड़ डाले थे।

घोड़े की सवारी आपको बचपन ही से पसन्द है। आप बड़े अच्छे सवार हैं। शिकार खेलने में भी आपका जी बहुत लगता है। आप अच्छे निशाने-बाज़ भी हैं। शिकार में ये अपने साथियों को वार करने का बराबर मौक़ा देते रहते हैं। और बड़े आदमियों की तरह ये ऐसा नहीं करते कि अपने लिए तो बढ़िया मौक़े की जगह लेली और दूसरों को इधर उधर भेज दिया; शिकार सामने आई तो गोली मार दी। ये अपने बाहुबल और निशाने-बाज़ी पर ही विश्वास रखते हैं। यह गुण बड़े आदमियों में बहुत कम पाया जाता है। आप बहुत खेल तो नहीं खेलते हैं; पर जब खेलते हैं अच्छी तरह खेल लेते हैं। लान-टेनिस नामक खेल में आप बड़े सिद्धहस्त हैं। मल्लाही काम सीखने के ज़माने में आप जहाज़ के सबसे अच्छे खिलाड़ियों में समझे जाते थे।

आप सुवक्ता भी हैं। पहले से तैयार किये बिना भी आप प्रभावशाली व्याख्यान दे सकते हैं। आपको डाकखाने के टिकट जमा करने का बड़ा शौक़ है। दुनिया भर के बहुत पुराने पुराने टिकट आपके पास जमा हैं। समाचार-पत्रों से टुकड़े काट कर भी आप संग्रह किया करते हैं। जिस अख़बार में अपने मुतल्लिक कोई बात आप पाते हैं उसे अवश्य ही रख छोड़ते हैं।

१८९३ ईसवी के जुलाई महीने में आपने टेक (Teck) की राजकुमारी मेरी का पाणिग्रहण किया। इन दोनों में बचपन ही से स्नेह था। इनके इस सम्बन्ध से सभी को प्रसन्नता हुई। आपका वैवाहिक जीवन एक आदर्श-जीवन है। पति-पत्नी में विलक्षण प्रेम है। एक को दूसरे का बहुत ख़याल रहता है।



बेफायदे आप एक डबल तक खर्च नहीं करते ; पर मौका पड़ने पर समयाचित उदारता दिखाने में कभी कसर भी नहीं करते । एक समय की बात है कि आप टेनिस खेलने जा रहे थे । कोट उतारते समय आपकी जेब से एक रुपया जमीन पर गिर गया । आप फौरन ही उसे ढूँढने लगे । इनके साथी ने खेल में देर होने की याद भी दिलाई ; पर जब तक आपने उसे ढूँढ न लिया, सिर ऊपर को न उठाया । इसके थोड़ी ही देर बाद आपने अपने एक परिचारक को बहुत कुछ इनाम दिया ।

धर्मिष्ठता के गुण से भी आप भूषित हैं । यह आप के बचपन की शिक्षा का फल है । आपकी माता ने लड़कपन से ही रोज़ बाइबिल पढ़ने की आदत डलवाई थी । आप अब तक इस नियम का पालन किये जाते हैं ।

बच्चों से आपको बड़ी मुहब्बत है । ५ से ६ बजे तक रोज़ आप घर के बच्चों से बात चीत करते हैं । जब कभी आप बाहर जाते हैं उनके लिए खिलौने और मिठाई इत्यादि कुछ न कुछ जरूर लाते हैं । इससे बच्चे आपके प्रत्यागमन की प्रतीक्षा बड़े चाव से किया करते हैं । ये उन्हें बहुधा तरह तरह की भाव-पूर्ण कहानियाँ सुना कर उनका जी बहलाते हैं ।

मित्र बनाने में आप बड़ी सावधानी रखते हैं । इसीसे आपके इने गिने मित्र हैं । पर जितने हैं सब सच्चे मित्र हैं । आप अपने सालों, अर्थात् महारानी मेरी के भाइयों, से विशेष प्रेम रखते हैं । टेक के राजकुमार के मर जाने पर आपको बहुत शोक हुआ था । लार्ड किचनर आपके घनिष्ठ मित्र हैं ।

सम्राट् पञ्चम जार्ज राज्यभार के महत्त्व को अच्छी तरह जानते हैं । आप बड़े दयालु और कर्तव्य-परायण हैं । प्रजावत्सलता आपमें कूट कूट कर भरी है । हिन्दुस्तान का इन्हें विशेष ध्यान रहता है । जब से आप यहाँ की यात्रा समाप्त कर विलायत को वापस गये हैं तब से हिन्दुस्तान का प्रेम आपके हृदय में और भी अधिक हो गया है । यहाँ से

लौटने पर आपने अपने कई व्याख्यानों में हिन्दुस्तान की प्रशंसा करते हुए बहुत आशाजनक बातें कही हैं । आगामी दिल्ली-दरबार में स्वयं उपस्थित होने का प्रस्ताव आप ही का है । भारतवर्ष की प्रजा की प्रीति और राजभक्ति आपके हृदय-सिन्धु में अब तक लहरें मार रही है । इसीसे एक बार फिर भी शारीरिक कष्टों को सहन करके राजभक्त भारतीय प्रजा के तृपित नेत्रों को आप तृप्त करने आ रहे हैं । बहुत दिनों के बाद अब भारत का सम्राट् दीन हीन भारतवासियों की शुष्क आत्मा को अपने कृपा-कटाक्ष से पुनरुज्जीवित करेगा । थोड़े दिन के लिए सैकड़ों वर्ष बाद हम अपने राजा को अपनी आँखों देखेंगे । यह क्या थोड़ी बात है । बादशाह की हैसियत से आपका भारत आना यहाँ के राजनैतिक इतिहास में एक अनेखी घटना है । पहले दरबारों में आपके पूर्वजों ने अपने प्रतिनिधियों द्वारा अपनी चिट्ठियाँ पढ़वाई थीं । परन्तु इस दरबार में मूर्तिमान सम्राट् पञ्चम जार्ज स्वयं अपने मुखारविन्द से वचनामृत बरसावेंगे ।

सम्राट् पञ्चम जार्ज के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बातें ऐसी हैं जो लोगों को आश्चर्य में डालनेवाली हैं । आपके जन्म के एक दिन पहले ही, आपके माता-पिता मार्लबरा हाउस ( Marlborough House ) में चालीस आदमियों के एक समुदाय को भोजन करा रहे थे । आपके इतनी जल्दी पैदा होने का किसी को खयाल भी न था कि दूसरे ही दिन आपने अपने जन्म से लोगों को दूखित कर दिया । आपका युवराज होना भी थोड़े आश्चर्य की बात नहीं । आपसे राजकुमारी मेरी का विवाह होना भी एक आश्चर्यमयी घटना है । महाराज और महारानी बचपन के साथी हैं । इस शैशव-कालीन प्रेम का, विवाह के नाते, आजन्म के लिए चिरस्थायी हो जाना क्या सबको नसीब हो सकता है । इनमें वक्तृता-शक्ति का सहसा प्रादुर्भाव होना भी क्या कम आश्चर्य की बात है ! जब आप २२ वर्ष के हुए तब दाढ़ी मुँडाना बन्द कर दिया ।



तान  
कही  
होने  
की  
तक  
परी-  
प्रजा  
हैं।  
हीन  
रूपा-  
लिप  
गँखों  
सि-  
तिक  
वारों  
पनी  
में  
वार-

बन्ध  
को  
एक  
उस  
गं के  
तनी  
कि  
को  
थोड़े  
मेरी  
है।  
इस  
म के  
व हो  
भाँव  
आप  
दया।





Their Imperial Majesties King-Emperor George V, and Queen-Empress Mary.



इसी समय एक बार आप इटली में अपने पिता से मिलने जा रहे थे। रास्ते में इटली के चुंगी-घर के एक अफसर से आपका सामना हुआ। इनके दाढ़ी थी और इनकी दाढ़ीदार फोटो तब तक बनी न थी। इसीसे उस अफसर ने इन्हें न पहचान पाया। इन्होंने बहुत कुछ कहा; पर उसने एक न मानी। इनके कहने पर उसने इनकी बेदाढ़ी वाली फोटो से इनकी हुलिया का मिलान किया; पर मिलान, उसकी समझ में, ठीक न बैठा। अतएव उसने इनके माल असबाब की मामूली मुसाफ़िरों की तरह खूबही तलाशी ली। ऐसी और भी इनकी कितनी ही बातें हैं जो आश्चर्य से भरी हुई हैं।

आप जिस काम को करते हैं पूरे तौर से और अच्छी तरह करते हैं। यह गुण आपमें बचपन ही से पाया जाता है। घोड़े की सवारी की धुन चढ़ी तो एक अच्छे सवार होकर ही छोड़ा। बन्दूक चलाई तो अच्छा निशाना लगाना सीख कर ही कल की। टेनिस खेला तो उसमें भी कमाल किया। मल्लाही में तो ऐडमिरल ही बन गये। जिन्हें मित्र बनाया उन्हें एक जान दो क़ालिब के आदर्श तक पहुँचा दिया। राजा हुए तो बात बात पर गम्भीरता, दयालुता, उदारता और नीति-निपुणता का परिचय दिया। भारतवासियों का अहोभाग्य है जो उन्हें ऐसा सम्राट् मिला।

व्रजविहारी शुक्ल।

## महारानी मेरी।

मारी वर्तमान महारानी मेरी का जन्म लन्दन नगर के प्रसिद्ध और प्राचीन राजप्रासाद केन्सिङ्गटन पैलेस में हुआ था। इस महल को राजा तृतीय विलियम ने, २२० वर्ष पहले, अर्थात् १६९० ईसवी में लार्ड चैन्सेलर फ़िंच से मोल लिया था। तब से यह बराबर शाही खान्दान के अधिकार में है। इसी में, सन् १६९४ में, महारानी

द्वितीय मेरी की मृत्यु हुई थी। स्वयं तृतीय विलियम ने भी इसी में अपने जीवन की अन्तिम लीला समाप्त की थी। इसी में केंट के ड्यूक ने, सेक्सकोबर्ग की रानी से विवाहोपरान्त, निवास किया था। इसी महल के एक कमरे में उनकी एक मात्र कन्या, हम लोगों की श्रद्धाभाजन, मृत महारानी विक्टोरिया का जन्म, २४ मई सन् १८१९ ईसवी को हुआ था। यहाँ पर उनको केवल १८ बरस की अवस्था में, सन् १८३७ में, चतुर्थ विलियम की मृत्यु के बाद अपने राज्य पाने का शुभ समाचार मिला था। यहाँ पर उन्होंने अपनी मन्त्रिसभा (Council) की पहली बैठक की थी।

महारानी मेरी के माता-पिता—डचेस् आर्च डेक और ड्यूक आर्च डेक—इंग्लैंड के एक प्राचीन राजघराने से सम्बन्ध रखते हैं। इनकी बाल्यावस्था बड़ी ही सादगी से व्यतीत हुई थी। ये और इनके भाई जन-साधारण के बालकों की तरह, केवल दो एक दासियों ही के साथ, केन्सिङ्गटन प्रासाद के बाग में खेलने जाया करते थे। कुछ काल बाद इनके माता-पिता उक्त प्रासाद को छोड़ फ़ारेन्स में निवास करने लगे। वहाँ महारानी मेरी ने बड़े परिश्रम से साहित्य, सङ्गीत और ललित-कलाओं में निपुणता प्राप्त की। महारानी मेरी उत्तम चित्रकार ही नहीं हैं, किन्तु चार विदेशी भाषाओं की ज्ञाता भी हैं। उन चारों भाषाओं में ये सरलतापूर्वक वार्तालाप भी कर सकती हैं। इनकी वाणी बड़ी ही मधुर है। ६ जुलाई सन् १८९३ ई० को इनका विवाह महाराज फ़्रैंक जार्ज से हुआ। तभी से सर्व-साधारण में ये प्रसिद्ध हुईं। पहले इन्हें बहुत कम लोग जानते थे।

विवाह के पहले ये निरन्तर अपनी माता के साथ रहा करतीं और उनके प्रत्येक कार्य में उनकी सहायता करती थीं। नित्य प्रातःकाल ये अपनी माता के पत्रों को लिखतीं, अस्पतालों और दीन-दुखियों के लिए वस्त्र बनातीं, माता के साथ घूमने जातीं और शेष समय विद्याध्ययन में व्यतीत करती थीं।





इन्होंने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि जिस समय अन्याय युवतियाँ अध्ययन छोड़ दिया करती हैं वही समय वास्तव में अध्ययन आरम्भ करने का है। अतः इन्होंने अपने श्रमसाध्य अध्ययन को चिरकाल तक जारी रखा। इनके अध्ययन का खास विषय इतिहास था। इसी से ये अपने देश के भूत और वर्तमान इतिहास से पूर्णतः परिचित हो गईं और अपने देश की वर्तमान उन्नति के कारणों से भी अभिज्ञता प्राप्त कर ली।

हमारे वृत्तमान महाराज पञ्चम जार्ज से विवाह होने के उपरान्त ये यार्क की डचेस् के नाम से प्रसिद्ध हुईं। तभी से इन्होंने सर्वसाधारण में विशेष ख्याति प्राप्त की। कुछ कालोपरान्त ये अपनी शालीनता और विद्या-प्रेम के कारण महारानी विक्टोरिया के दरबारियों में सर्वप्रिय हो गईं और उनके दरबार की वास्तविक नेत्रो गिनी जाने लगीं। परन्तु महारानी विक्टोरिया के शासन-काल में इन्हें दरबार का कोई श्रमसाध्य कार्य नहीं करना पड़ता था; क्योंकि महारानी अलेक्जेंडरा, जो उस समय प्रिन्सेज आव् वेल्स थीं, अपने कर्तव्यों को सुन्दरता से पूरा करने के लिए हर समय प्रस्तुत रहती थीं।

इन्हें अपनी सन्तान से बड़ा प्रेम है। कदाचित् ही कोई माता इनसे अधिक अपनी सन्तति के लालन-पालन में कभी निमग्न रही होगी। ये अपने बच्चों के साथ बाग में आमोद-प्रमोद के लिए जातीं और कभी कभी स्वयं भी उनके साथ खेलने लगती थीं। महाराज जार्ज भी प्रायः उन सबके साथ ही बाग को जाते थे। यह बात महारानी होने के पहले की है।

महारानी मेरी को अपने बच्चों की शिक्षा का बड़ा खयाल रहता है। इनकी इच्छा है कि वे उन सब बातों को, जिनकी शिक्षा उन्हें दूसरों से मिल सकती है, अच्छी तरह सीख लें। अतएव इन्होंने स्वयं उनकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया है।

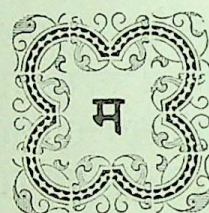
इन्होंने निःस्वार्थभाव और आत्मानुशासन के तत्त्व को भी भली भाँति उनके हृदय पर खचित कर

दिया है। महारानी मेरी का इतनी दृढ़ता से स्वकर्तव्यपालन में निरत रहना सारे राष्ट्र के लिए शिक्षा ग्रहण करने की बात है।

आप भी अपने प्रियपति, महाराज पञ्चम जार्ज, के साथ भारत को आ रही हैं। १२ दिसम्बर को, देहली में, महाराज के राज्याभिषेकोत्सव के समय, आप भी उपस्थित रहेंगी।

महादेवप्रसाद सेठ।

## युवराज प्रिन्स आव् वेल्स ।



महाराराज पञ्चम जार्ज के बड़े बेटे, युवराज प्रिन्स आव् वेल्स का जन्म २२ जून १८९४ ई० को हुआ था। इस हिसाब से इस समय आपकी उम्र १७ साल की है। आपही इंग्लैंड तथा अन्य अंगरेजी उपनिवेशों के भावी राजा और भारतवर्ष के भावी सम्राट् हैं। यद्यपि अभी आप लड़के ही हैं, तथापि अब आपकी उम्र इतनी है कि आपकी चाल-ढाल, रहन-सहन और शील-स्वभाव से आपके भावी जीवन का अन्दाजा किया जा सकता है।

इंग्लैंड का प्रिन्स आव् वेल्स कोई साधारण पुरुष नहीं। समय पाकर वह असंख्य जनसमुदाय का पालक और रक्षक बनता है। इसीसे उसकी शिक्षा-दीक्षा पर जन्म से ही ध्यान दिया जाता है। युवराज के पैदा होते ही महारानी मेरी ने बड़ी योग्य और बुद्धिमती धाये बच्चे के लिए नियत कीं। इसके बाद महाराज और महारानी ने अपने स्वर्गवासी पिता एडवर्ड सप्तम की सलाह से इस बात का निश्चय किया कि लड़के को किस प्रकार की शिक्षा देनी होगी। जलयान-विद्या अर्थात् मल्लाही में महाराज खुदही प्रवीण थे। इससे इन्हें विश्वास था कि जैसे इस विद्या ने इन्हें लाभ पहुँचाया है वैसे ही पुत्र के लिए भी यह लाभदायिनी होगी। यही सोच



कर बैठे को नौकानयन-विद्या सिखलाना इन्होंने निश्चित किया।

जब प्रिन्स पढ़ने योग्य हुए तब उनकी परदादी, ग्यायशीला महारानी विकोरिया, ने इन्हें पाटी छुआई। इन्होंने पहले पहल “ए० बी० सी० डी०” (A. B. C. D.) उन्हीं से सीखी। इसके बाद किंडरगार्टन प्रणाली के अनुसार उन्हें शिक्षा मिलती रही। महारानी मेरी बच्चों से बहुत मानसिक परिश्रम कराना पसन्द नहीं करतीं। उन्हें शारीरिक व्यायाम का बड़ा ध्यान रहता है। यही कारण है कि प्रिन्स की मानसिक उन्नति के साथ साथ शारीरिक उन्नति भी होती गई। इनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। इन्हें बचपन ही से, खुली हवा में, स्वास्थ्यवर्द्धक खेल खिलाये जाते रहे हैं। परलोकगत महाराज एडवर्ड भी कभी कभी इनको क्रीकेट, फुटबाल आदि खिलाया करते थे। कभी वह खुद ‘बोलिंग’ करते थे और कभी ‘बैट’ लेकर युवराज के फेंके हुए गेंद में ‘हिट’ लगाया करते थे। जब कभी इत्तिफाक से प्रिन्स इन्हें ‘बोटड्राउट’ कर देते थे तब खुशी की किलकारें मार कर वे आसमान को गुँजा देते थे।

जब प्रिन्स कुछ कुछ बोलने लगे तभी से एक छोटे से ट्यू पर ये सवार कराये जाने लगे। अपने पिता-माता के साथ जब कभी ये अस्तबल में जाते तब वेधड़क बड़े बड़े घोड़ों के पास चले जाते। दूसरे पशुओं से भी ये न डरते थे। भीमकाय कुत्तों के साथ ये निर्भय खेलने लगते। जब ये कुछ सयाने हुए तब एक खास तरह की पैर-गाड़ी पर चढ़ने लगे। उसे इनके लिए इनके पितामह ने बनवाया था। जब कभी इनके पिता अथवा पितामह शिकार खेलने जाते तब भी ये उनके साथ हो लेते और जंगल में शिकारियों के साथ शिकार हुसकाते फिरते।

कुछ दिन बाद इन्हें तैरना सिखलाया गया। यहाँ से इनकी नौ-विद्या की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। एक जलाशय में छोटी सी नाव डलवा दी गई। उसी पर ये मल्लाही की बाललीला किया करते थे।

युवराज को खेल-कूद के साथ शिक्षा दी गई। इनसे कठिन परिश्रम कभी नहीं लिया गया। परन्तु इन्हें अनुचित स्वतन्त्रता भी नहीं दी जाती थी। अपना काम इन्हें अवश्यमेव करनाही पड़ता था।

शैशव काल समाप्त होने पर इनकी शिक्षा का प्रबन्ध विशेष प्रकार से किया गया। एक तो ये राज-कुमार, दूसरे युवराज। इन्हें विस्तृत शिक्षा मिलनी चाहिए। योरप की कई भाषाओं का ज्ञान इन्हें होना चाहिए। संसार के इतिहास में पारदर्शी होना चाहिए। इंग्लैंड तथा अन्य देशों की सामुद्रिक शक्ति और सेनाबल से भी इन्हें परिचित होना चाहिए। राज्यशासन के भिन्न भिन्न सिद्धान्तों को भी जानना चाहिए। वक्तृत्वकला का भी अभ्यास होना चाहिए। अतएव इनकी शिक्षा में इन सब बातों का खयाल रक्खा गया है और बड़ी सावधानी से इन्हें सब विषय सिखलाये गये हैं।

बारह बरस की उम्र में ये आसबर्न के नौ-विद्या-सम्बन्धी कालेज में अध्ययन करने के लिए भेजे गये। यहाँ ये साधारण विद्यार्थियों की तरह रहते थे। सोने के कमरे में ये उन्हीं के साथ सोते थे। इनके बक्स पर सिवा इनके नाम के अक्षरों के और कुछ न लिखा था। कालेज की किताबों पर “वेल्स एडवर्ड” ही अङ्कित था। इन्हें अन्य लड़कों की ही तरह खेलना और काम करना पड़ता था। औरों की तरह इनको भी विगुल की आवाज़ पर साढ़े छः बजे सुबह उठना पड़ता था।

सात बजे से पढ़ाई शुरू होती थी और साढ़े छः बजे शाम तक जारी रहती थी। इसमें लड़कों के खेलने-कूदने का समय भी शामिल है। कालेज में इन्हें करारी मिहनत करनी पड़ती थी। कभी पढ़ने-लिखने और कभी कसरत करने में इन्हें लगे रहना पड़ता था। वहाँ ये अँगरेजी, फ्रेंच, लैटिन, इतिहास, भूगोल, गणित, यंत्र-विद्या, पदार्थ-विज्ञान, स्थापत्य-विद्या, जलयान-विद्या और नौका-वहन-विद्या सीखते थे।



कालेज के कारखाने में इन्हें इंजिनियरी और औजारों का इस्तेमाल बतलाया जाता था। आरा, हथौड़ा और बसूली चलाना भी इन्हें सीखना पड़ता था। जहाज के मुतलिक जितना बढ़ई का काम है उस सबका भी इन्हें अभ्यास करना पड़ता था। लुहार का काम भी सीखते थे। मोटर-नौका और मोटर-गाड़ी बनाना भी इन्हें सिखलाया जाता था। जल-यानसम्बन्धी इंजिनियरिंग का काम तो आपकी शिक्षा का प्रधान अङ्ग था।

क्या इन बातों को सुन कर हमारे यहाँ के भोंदू अमीर कुछ शिक्षा ग्रहण करने की कृपा करेंगे। कहाँ इंग्लैंड का युवराज—भारत का भावी सम्राट—और कहाँ हथौड़े और आरे का चलाना। हमारे अमीर तो अपने लड़कों को सुन्दर सुन्दर और कीमती खिलौने खिला कर उनका समय नष्ट करते हैं। गोद से उतर कर बच्चों का उल्ललना-कूदना गँवार-पन समझते हैं। सरकार! क्या महाराज एडवर्ड की तरह आपने भी अपने बच्चों को स्वयं गिल्ली-डंडा खिलाने की कभी तकलीफ उठाई है? क्यों नहीं? क्या आप इंग्लैंड के बादशाह से भी बढ़कर हैं?

आसबर्न-कालेज से प्रिन्स आर्च वेल्स डारमथ-कालेज में पढ़ने गये। वहाँ इन्होंने बड़ी योग्यता से मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की परीक्षाएँ पास कीं। वहाँ ये थोड़े ही समय तक रहे। राजकीय कारणों से ये वहाँ से बुला लिये गये।

राज्याभिषेक में प्रिन्स आर्च वेल्स को बहुत काम करना पड़ता है। उसी की तैयारी के लिए आपको कालेज छोड़ना पड़ा। इसके कुछ ही दिन बाद आप प्रिन्स आर्च वेल्स के पद पर यथानियम अधिष्ठित किये गये। जबसे आपको यह पद मिला है तबसे आप सम्मानसूचक राजकुमार (दि प्रिन्स) नाम से पुकारे जाते हैं। आप वेल्स नामक सूबे के प्रिन्स हैं। इस लिए आप वहाँ वालों की भाषा सीखने के बड़े उत्सुक हैं। आप वहाँ के म्यूनीसिपल कमिश्नरों से उन्हीं की भाषा में बातचीत करना चाहते हैं। इस

लिए आप वहाँ की भाषा सीखने में रोज़ थोड़ा सा समय खर्च करते हैं।

विद्याभ्यासनी होने के सिवा प्रिन्स बड़े प्रत्युत्तम-मति भी हैं। समयोचित व्यवहार करने में आप बड़े कुशल हैं। आप हर विषय में निडर होकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी सम्मति देने का यत्न करते हैं। इसी गुण के कारण अल्पवयस्क होने पर भी आपकी सम्मति ध्यान देने योग्य हुआ करती है। आप बहुत शान्त-स्वभाव, प्रसन्नवदन और नम्र हैं।

युवराज अब युवावस्था में अवतीर्ण हो रहे हैं। अब आपकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ रही हैं। इसी से अब आपके लिए विन्डसर और बकिंघम-महलों में अलग कमरे नियत कर दिये गये हैं। आपको अब परिचारक भी अलग मिले हैं। एक आपका निज का कारकुन भी है जो आपके फुटकर काम किया करता है। सम्राट भी छोटे छोटे कामों में युवराज की सलाह लिया करते हैं। पर राज्य के गहन विषयों के विचार से आप अलग ही रक्खे जाते हैं। इनको खर्च के लिए जो मासिक रुपया मिलता है उसका कुछ अंश इनकी सम्मति से धर्मार्थ भी जाता है। युवराज में सहानुभूति और उदारता के प्रचुर चिह्न पाये जाते हैं।

इनकी शिक्षा के सम्पूर्ण होने में अभी दो बातें बाकी हैं। एक तो स्थल-युद्ध-विद्या, दूसरा देश-पर्यटन। अब आप फ़ौज में भरती होंगे। तदनन्तर आप दुनिया की सैर करेंगे।

ईश्वर आपको चिरञ्जीव करे।

व्रजविहारी शुक्ल ।

## राज्याभिषेक का महत्त्व ।

राज्याभिषेक कोई ऐसी वैसी चीज़ नहीं; उसे खेल-तमाशा या कोई साधारण संस्कार न समझना चाहिए। वह बड़े महत्त्व का संस्कार है। राजा या बादशाह बनना बड़ी जिम्मेदारी का काम है। एक छोटे से कुटुम्ब का अच्छी तरह



शासन करने में मनुष्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फिर, बड़े बड़े देशों के शासन की कठिनाइयों का क्या ठिकाना है। प्रजा के दुख से दुखी और सुख से सुखी होना और उसका पुत्रवत् पालन करना राजा का प्रधान कर्तव्य है। इस कर्तव्य का पालन भारत के प्राचीन नरेश बड़ी हृदयता से करते थे। वे अपने को प्रजा का कर्मचारी नहीं दास, समझते थे। प्रजा की ही इच्छा से वे राजा हो सकते थे और प्रजा की ही इच्छा से उन्हें राजसिंहासन से हाथ धोने पड़ते थे। जिसे प्रजा अपना शासन करने योग्य समझती थी उसी को वह राजा बनाती थी। आलसी, अधार्मिक, अन्यायी और अशक्त को राजपद न मिलता था। रामायण और महाभारत में इस बात के एक नहीं, अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। प्रजा अपनी रक्षा के लिए, बलवान् अत्याचारियों के उपीड़न से निर्बलों को बचाने के लिए, समाज को धर्मपथ पर आरुढ़ रखने के लिए—अपने में से किसी व्यक्ति-विशेष को राजा बनाती है।

वेदों तक में इसके प्रमाण पाये जाते हैं। यजुर्वेद के नवें अध्याय की चालीसवीं कण्डिका देखिए :—

इमन्देवाऽऽसपत्न्यऽ सुवद्रमहते तत्राय महते  
ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।  
इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश्वऽपुष वोमी राजा  
सोमोस्माकम्ब्राह्मणाना १३ राजा ॥

इसका मतलब है—हे देवतागण! आप अमुक मनुष्य के इस पुत्र को बहुत बड़े क्षात्र धर्म और ज्यैष्ठ्य की प्राप्ति के लिए, अनेक बड़े बड़े लोगों का अधिप होने की योग्यता सम्पादन के लिए, आत्मज्ञान-लाभ के लिए, शत्रुहीन करके अमुक जाति का राजा बनाओ। हे अमुक जाति के जन! यही तुम्हारा राजा हो। और, हम ब्राह्मणों का राजा सोम हो।

इससे सिद्ध है कि बहुत पुराने समय में भी भारतवासी यह अच्छी तरह जानते थे कि राजा के लिए किन किन गुणों की आवश्यकता होती है और राजा का कर्तव्य क्या होता है। वे यह भी जानते थे

कि अपने मनोऽनुकूल राजा नियत करना प्रजा ही का काम है। जो प्रजा किसी व्यक्ति-विशेष को राजा बनाना चाहती थी वही उसमें राजोचित गुणों की प्राप्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना करती थी। इस देश की अभिषेक-सम्बन्धी पद्धतियों से भी यही बात सूचित होती है।

इस तत्त्व को इंग्लैंड की प्रजा बहुत अच्छी तरह समझती है। राजतिलक के समय जो संस्कार होते हैं, जो धर्मवाक्य उच्चारण किये जाते हैं, जो प्रतिज्ञायें राजा को करनी पड़ती हैं वे भारत के अभिषेक-विषयक नियमों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। आक्टूबर की सरस्वती में राज्याभिषेक-सम्बन्धी जो लेख प्रकाशित हुआ है उससे इसका थोड़ा बहुत आभास पाठकों को मिल चुका होगा। आज, इस विषय में, दो चार बातें और लिखनी हैं; क्योंकि, इसी महीने की १२ तारीख को, देहली में, महाराज पञ्चम जार्ज का अभिषेक होने वाला है। २२ जून को लन्दन की वेस्टमिन्स्टर एबी में महाराज के अभिषेक-संस्कार के समय जो बड़े ही महत्त्वपूर्ण क्रिया-कलाप हुए थे उनकी विशेषता थोड़े में सुन लीजिए।

अभिषेक के समय धार्मिक बातों और धर्माधिकारियों की श्रेष्ठता बात बात में प्रत्यक्ष होती थी। प्रायः सारा कार्य सबसे बड़े धर्माधिकारी—पादड़ी—को ही करना पड़ा था। मानों वही ईश्वर का प्रतिनिधि था। राजसिंहासन दिलाना मानों उसीके हाथ की बात थी। उसे ही महाराज को अपना राजधर्म-पालन करने की शक्ति देने के लिए, महाराज की रक्षा करने के लिए, महाराज को अपने शत्रुओं पर विजयप्राप्ति के लिए, महाराज में सच्चे धर्म-भाव को बना रखने के लिए बार बार परमेश्वर से प्रार्थना करनी पड़ी थी। जिस तरह एक बच्चा अपने पिता से कोई चीज माँगते समय बार बार अपनी प्रार्थना को दुहराता है—बार बार उसकी पुनरावृत्ति करता है—उसी तरह बड़े पादड़ी ने महाराज को परमेश्वर के सामने खड़ा करके, उनके



लिए तरह तरह की प्रार्थनायेँ की थीं और तरह तरह के वर माँगे थे । सबसे पहले पादड़ी ने महाराज को उपस्थित सज्जनों के सामने खड़ा करके उनसे यह पूछा कि क्या आप लोग जार्ज पञ्चम को अपना राजा स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं । जब सब ने एकस्वर से महाराज का जय जयकार करके उनको अपना राजा बनाना स्वीकार किया तब बड़े पादड़ी साहिब ने परमेश्वर से प्रार्थनायेँ आरम्भ कर दीं । इन प्रार्थनाओं के आशय के कुछ नमूने सुनिए :—

अपने दास और हम लोगों के राजा जार्ज को पवित्रता, सच्चरित्रता और धर्मपूर्वक जीवन अतिवाहित करने और आपकी सच्ची सेवा और भक्ति में लीन रहने की शक्ति दीजिए । हे प्यारे पिता ! आप हमारी इस प्रार्थना को सुनिए ।

आप अपना वरद हस्त जार्ज पर रखिए, जिसमें यह आप पर विश्वास करे, आपका प्यार करे, आप का भय करे ! आप इस पर ऐसी कृपा कीजिए जिससे आप में इसकी श्रद्धा और विश्वास दिन पर दिन बढ़ता जाय, और आपकी महिमा और प्रभुता को जानने में यह समर्थ हो । हे प्यारे पिता ! आप हमारी इस प्रार्थना को सुनिए ।

आप कृपापूर्वक इसकी रक्षा कीजिए और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की इसे शक्ति दीजिए । हे प्यारे पिता ! आप हमारी इस प्रार्थना को सुनिए ।

आप हमारे राजा और अपने सेवक इस जार्ज को ऐसी बुद्धि दीजिए जिससे आप की भक्ति में लीन रह कर यह अपने राज्य का इस योग्यता से शासन कर सके जिसमें आप का धर्म और आपके धर्मानुयायी लोग सुरक्षित और धनधान्य-सम्पन्न बने रहें ।

इन अवतरणों से यह स्पष्ट है कि राज्याभिषेक-संस्कार में धर्म को कितनी प्रधानता दी जाती है । पहले तो धर्माधिकारी प्रजा से यह प्रश्न करता है कि तुम अमुक मनुष्य को राजा बनाने में राजी हो या नहीं । अर्थात् किसी को राजा बनाना या न बनाना प्रजा के हाथ की बात है । प्रजा अपने हित के लिए राजा नियत करती है, राजा के हित के लिए नहीं—प्रजा का रुपया फूँक तापने के लिए नहीं ; पेशेआराम में लिप्त रहने के लिए नहीं । इससे यह

भी स्पष्ट है कि यदि कोई राजा अपने कर्तव्य को अच्छी तरह न करे—यदि वह प्रजा के हित का अच्छी तरह खयाल न रखे—तो उसे प्रजा राजासन से उतार भी सकती है । इसके अनन्तर धर्माधिकारी के दूसरे काम—अर्थात् परमेश्वर से राजा के लिए बल, सुनीति, सदाचार, धर्म में श्रद्धा आदि की प्रार्थना से ईश्वर की महत्ता और उसके सामने राजा की क्षुद्रता व्यक्त होती है । अभिषेक का यह अंश भी बड़े महत्त्व का है । जिस राजा को यह खयाल रहेगा कि अखण्डसत्ताधारी अखिलेश्वर परमात्मा के सामने मैं कोई चीज़ नहीं, वह अवश्य ही अधर्म और अन्याय से डरेगा—वह अवश्य ही प्रजा को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करेगा । उसकी धर्मभीरुता बढ़ेगी । जो कुछ वह करेगा बहुत सोच समझ कर करेगा ।

प्रजा की मंजूरी ले चुकने और परमेश्वर से वर-प्रदान की याज्ञा कर चुकने पर धर्माधिकारी महाराज की तरफ़ मुखातिब होता है । वह महाराज से पूछता है कि जो प्रजा आपको अपना राजा बनाती है उस पर न्यायपूर्वक और देश के कायदे-क़ानून के अनुसार शासन करने का आप इक़रार करते हैं ? वेस्ट मिन्स्टर एबी में अभिषेक के समय महाराज जार्ज और प्रधान धर्माधिकारी पादड़ी के बीच, इस विषय में, जो बातचीत हुई थी उसका भावार्थ, थोड़े में, सुन लीजिए :—

धर्माधिकारी—क्या आप इस बात का यथाविधि वचन देंगे और शपथपूर्वक कहेंगे कि आप ग्रेट-ब्रिटन और आयरलैंड तथा उनके अधीन देशों की प्रजा का शासन, पारलियामेंट में निश्चित की गई व्यवस्था और उन उन देशों के कायदे-क़ानून तथा रीति-रवाज के अनुसार, करेंगे ?

महाराज—ऐसा करने का मैं विधिपूर्वक, धर्म को साक्षी करके, वचन देता हूँ ।

धर्माधिकारी—जितने विधि-विधान आप करेंगे—प्रजा के कार्य-सम्बन्ध में जितने निश्चय आप करेंगे—उन्हें क्या आप अपनी शक्ति भर, न्याय और नियमों के अनुसार करेंगे ?

महाराज—हां, मैं वैसाही करूँगा ।



धर्माधिकारी—न्या आप अपनी सर्वाधिक शक्ति भर, ईश्वरीय नियमों का पालन, धर्मपुस्तक के वचनों का पालन और प्रोटेस्टेंट धर्म का भी पालन करेंगे ?

महाराज—मैं यह सब कुछ करने का वचन देता हूँ ।

इसके अनन्तर महाराज ने बाइबल पर हाथ रख कर यह शपथ की कि जिन बातों के करने का मैंने अभी वचन दिया उन्हें मैं अवश्य करूँगा । परमेश्वर मुझे अपने वचन-प्रतिपालन की शक्ति दे ।

देखिए, कैसे उदार वचन हैं ! कैसे गम्भीर प्रतिज्ञायेँ हैं !! कैसे गूढ़ भावों से भरे हुए धर्माधिकारी के प्रश्न हैं !!! पहले प्रश्न और प्रतिज्ञा की गुरुता को तो देखिए । राजा को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि मैं न्याय के अनुसार राज्य करूँगा । कानून को कभी न तोड़ूँगा । विधिबहिर्गत कोई काम न करूँगा । मैं क्षमा करूँगा ; परन्तु कानून का खयाल रखूँगा, धर्म का खयाल रखूँगा, परमेश्वर की आज्ञा का खयाल रखूँगा । इन सब बातों का खयाल रखने और न्यायसङ्गत शासन करनेवाले राजा को पाकर प्रजा क्यों न प्रसन्न हो !

महाराज के सिर, वक्षःस्थल और हाथों को पवित्र तेल से अभिषेक करते समय भी प्रधान धर्माधिकारी को परमेश्वर की सहायता माँगनी पड़ती है । उसने गत अभिषेक के समय, इस सम्बन्ध में, जो कुछ कहा था उसका आशय यह था:—

हे पावन पिता ! इस पवित्र तैलाभिषेक के द्वारा अपने इस सेवक जार्ज के हृदय को तू पवित्र कर दे । इसे शुभाशीर्वाद दे । इसे शक्ति और शिक्षा दे जिसमें यह तेरे जनसमूहों का शासन करने में समर्थ हो । इसे आत्मिक बल दे । इसे बुद्धि दे । अपनी सच्ची भक्ति से इसके हृदय को पूर्ण कर दे ।

जिस समय महाराज को अभिषेक-सम्बन्धी खड़ भेंट किया गया था उस समय धर्माधिकारी ने कहा था :—

इस खड़ से तू न्याय कर ; अन्याय को रोक ; परमेश्वर के निर्दिष्ट धर्म की रक्षा कर ; विधवाओं और अनाथों की सहा-

यता कर ; अनुचित का संशोधन कर ; और उचित को यथावत् बना रख ।

राजकीय परिच्छद, चक्र और मुद्रिका देते समय भी धर्माध्यक्ष ने इसी तरह के समयानुकूल वचन कहे थे और महाराज को आशीर्वाद दिया था । राजदण्ड को महाराज के हाथ में देते समय उसने निम्नलिखित बड़ा ही गौरवपूर्ण उपदेश दिया था :—

न्याय और क्षमा के सूत्रक ये दो दण्ड ग्रहण कर । परम न्यायी, परम ज्ञानी, परमोपकारकर्ता और परम क्षमाशील परमेश्वर तेरी सहायता उन शक्तियों के काम में लाने में करे जिन्हें उसने तुझे दी हैं । क्षमा कर, पर सावधानतापूर्वक । न्याय कर, पर क्षमा को न भूल । दुष्टों का दमन कर । शिष्टों की रक्षा कर । अपनी प्रजा को सुमार्गगामी बना ।

महाराज के सिर पर राजमुकुट और हाथ में धर्मपुस्तक—बाइबल—देते समय भी धर्माध्यक्ष ने बड़े ही प्रभावोत्पादक और धर्मभाव-व्यञ्जक उपदेश द्वारा महाराज के कर्तव्यों का निर्देश किया था ।

महाराज के सिंहासनासीन होने पर धर्माधिकारी ने उच्च स्वर में कहा था :—

इस आसन पर दृढ़तापूर्वक आसीन रह । परमेश्वर के प्रति-निधि हम लोग, उस के नाम पर, उसकी आज्ञा से, यह राज्य तुम्हें देते हैं । इसकी मर्यादा को अनुसरण रख । परमेश्वर को जब तक सूर्य-चन्द्रमा आकाश में वर्तमान हैं तब तक तेरा यह सिंहासन भी बना रहे !

इन सब उपदेशों और वाक्यों का सारांश यह है कि महाराज पञ्चम जार्ज को यह समझना चाहिए कि मैं राजा नहीं, किन्तु ईश्वर का सेवक मात्र हूँ । उसकी भक्ति मुझे करनी चाहिए; उस पर विश्वास रखना चाहिए, उससे प्रेम करना चाहिए; और उससे डरना भी चाहिए । यह राज्य मुझे प्रजा की अनुमति और परमेश्वर की कृपा ही से मिला है । अतएव परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन और प्रजा का न्यायपूर्वक शासन करना मेरा प्रधान कर्तव्य है । मुझे बुद्धिमानी और सावधानतापूर्वक राज्य करना चाहिए । अनाथों और निराश्रितों का पालन करना



चाहिए। अन्यायियों और अत्याचारियों को दण्ड देना चाहिए। प्रजा को सन्मार्गगामिनी बनाना चाहिए। और, ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे प्रजा को किसी तरह का कष्ट पहुँचे। ये बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं। तदनुसार व्यवहार करनेवाले राजा की प्रजा कभी असन्तुष्ट नहीं रह सकती।

वेस्ट मिन्स्टर एबी में अभिषेक के समय जो मुकुट, छत्र, खड्ग, दण्ड, चक्र, पात्र और परिच्छद आदि व्यवहृत हुए थे वही देहली में होनेवाले अभिषेक के लिए भी आनेवाले हैं। इससे जान पड़ता है कि उनमें से कुछ का उपयोग यहाँ भी होगा; परन्तु वहाँ की जैसी शपथें और प्रतिज्ञायें यहाँ न होंगी। यहाँ दरबार में सम्राट् का केवल घोषणापत्र पढ़ा जायगा, और भारतवर्ष तथा भारतवर्षीय प्रजा के सम्बन्ध में सम्राट् जो कुछ कहें या करेंगे उसकी सूचना दी जायगी।

## प्राचीन भारत में राज्याभिषेक ।

### ( १ ) प्रस्तावना ।



स समय दिल्ली में आनन्द छाया हुआ है। बड़े बड़े राजे महाराजे इकट्ठे हुए हैं। देश-देशान्तर तक के मनुष्य आये हुए हैं। जिधर देखो उधर ही आनन्द की बधाइयाँ बज रही हैं। अनेक भद्र पुरुष सरकार से निमन्त्रित हुए हैं। अनेक स्वयं उत्सव देखने गये हैं। क्योंकि १२ दिसम्बर को स्वर्गीया राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के पौत्र और स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्ड के पुत्र श्रीमान् पञ्चम जार्ज का भारतसाम्राज्य-सम्बन्धी अभिषेक है। अतएव, प्राचीन भारत में किस तरह राज्याभिषेक होता था, यह मैं इस शुभावसर पर बतलाना चाहता हूँ।

### (२) चुनाव ।

प्राचीन नरेश जब राज्य करते करते वृद्ध हो जाते थे और अपने पुत्र को राजकार्य अच्छी तरह चला सकने योग्य देखते थे तब उसे युवराज बना देते थे और उस पर राज्य का भार देकर स्वयं एकान्त-सेवन करते हुए प्रभुभजन में अपना समय व्यतीत किया करते थे। युवराज केवल उन्हीं की इच्छा से नहीं चुना जाता था। इसके लिए ब्राह्मणों से, अश्वीन मण्डलेश्वरों से, तथा प्रजा से भी सम्मति ली जाती थी। इस विषय में लोकमत का बड़ा आदर किया जाता था। यदि पुत्र राजा बनने योग्य न होता था तो उसका परित्याग कर दिया जाता था, चाहे फिर वह औरस ही क्यों न हो।

औरसानपि पुत्रान्हि त्यजन्त्यहितकारिणः ।

समर्थान् सम्प्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥

( वाल्मीकि )

जब दशरथ जराजीर्ण होगये और उन्होंने राम को युवराज करना चाहा तब उन्हें लोकमत लेना पड़ा था। उन्होंने अनेक नरपालों को बुलवाया; उनका यथेष्ट सत्कार किया; उनके पास बहुमूल्य वस्तु और अलङ्कार आदि भेजे। उनका यथायोग्य सम्मान कर के उनसे वे मिले :—

नानानगरवास्तव्यान् पृथग्जानपदानपि ।

समानिनाय मेदिन्यः प्रधानान्पृथिवीपतीन् ॥

तान् वेश्मनानाभरणैर्यथाहं प्रतिपूजितान् ।

ददर्शलङ्कृतो राजा..... ॥

( वाल्मीकि )

इसके बाद दरबार किया गया। भाँति भाँति के आसनों पर सब राजा और रईस इस तरतीब से बिठाये गये कि सबके मुख दशरथ की ओर रहें। वहाँ पर वही महिपाल थे जो लोकसम्मत थे और जो वहाँ आने योग्य थे :—

ततः प्रविशिशुः सर्वे राजानो लोकसम्मताः ।



अथ राजवित्तीर्णेषु विविधेष्वसनेषु च ।  
राजानमेवाभिमुखा निपेदुर्नियता नृपाः ॥

( वाल्मीकि )

दरबार में नगर के मुख्य निवासी और प्रजाजन भी थे। सबके सामने दशरथ ने प्रस्ताव किया कि मैं अब वृद्ध हूँ। राम सुयोग्य है। मैं इसे युवराज किया चाहता हूँ। यदि मेरी यह सम्मति ठीक हो तो आप सब अनुमति दीजिए और जो ठीक न हो तो कहिए मैं क्या करूँ ? यह काम मैं पुत्र-प्रीति के वशीभूत होकर कर रहा हूँ; पर यदि यह ठीक न हो तो और कोई राज्य के हित की बात सोचिए:—

यदीयं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमंत्रितम् ।  
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥  
यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम् ।

( वाल्मीकि )

उपस्थित दरबारियों ने राजा के भाव को समझ लिया। उन्होंने आपस में सलाह की। यह कहा गया कि दशरथ अब वृद्ध हो गये हैं। इन्हें शान्ति मिलनी चाहिए। राम वास्तव में योग्य है। अच्छी तरह विधिपूर्वक उसने विद्या पढ़ी है। साङ्ग वेद जानता है। सज्जन है। मधुरभाषी है। प्रजा के सुख से सुखी होने वाला है। सत्यवादी है। जितेन्द्रिय है। पराक्रमी है। बुद्धिमान है। प्रसन्नमुख है। गाँव या नगर के लिए लड़ाई करने जाता है तो जीत कर ही लौटता है। लौट कर आते समय नगरनिवासियों से आत्मीयजनों की तरह कुशल-समाचार पूछता है। मुसकरा कर बात करता है। व्यर्थ किसी पर कृपा नहीं करता, और न व्यर्थ किसी पर क्रुद्ध ही होता है। नीतिज्ञ है। धीर है। गम्भीर है। प्रजापालन के तत्त्वों को खूब जानता है। मोह में फँसने वाला नहीं है। तीनों लोकों को भोगने में समर्थ है। प्रजा के हित के सभी गुण इसमें मौजूद हैं। बड़ों की सेवा करता है। सबको कल्याण का मार्ग बतलाता है। इत्यादि:—

सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ।  
सत्यवादी महेश्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥

प्रजापालनतत्त्वज्ञो न रागोपहतेन्द्रियः ।

शक्तस्त्रैलोक्यमन्येको भोक्तुं ..... ॥

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ।

शान्तैः सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैर्नृणाम् ।

गुणैर्विरुचे रामः ... .. ।

( वाल्मीकि )

अन्त को सब एकमत हुए। उन्होंने दशरथ को सम्मति दी कि महाराज आप वृद्ध हैं। राम का अभिषेक कर दीजिए। हम सब चाहते हैं कि महा-पराक्रमी राम की महागज पर सवारी निकाली जाय और उस पर छत्र लगाया जाय, इत्यादि:—

ब्राह्मणा जनमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ।  
समेत्य मन्त्रयित्वा तु समतां गतबुद्धयः ॥  
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ।  
अनेकवर्षसाहस्रो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव ॥  
स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम् ।  
इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम् ।  
गजेन महता यान्तं रामं क्षत्रावृत्ताननम् ॥

( वाल्मीकि )

प्राचीन भारत में प्रायः इसी तरह चुनाव हुआ करते थे। और, इस प्रकार का चुनाव होने से सब प्रसन्न रहते थे। कभी किसी को किसी प्रकार की शिकायत का मौका न मिलता था। राजसूय-यज्ञादि में जितने मनुष्य निमन्त्रित होते थे उनका सारा खर्च सम्राट की ओर से ही दिया जाता था। उनके रहने, खाने-पीने, मनोरञ्जन आदि का सारा प्रबन्ध भी सम्राट के नियत किये हुए सम्बन्धी ही करते थे। बड़ी धूमधाम से उत्सव किया जाता था। सब कोई राजा के मेहमान होते थे।

( ३ ) अभिषेकक्रिया ।

इस प्रकार चुनाव हो चुकने पर स्थिर नक्षत्र में, योग्य मुहूर्त आने पर, उस भाग्यशाली व्यक्ति को तिल, सरसों के अभिमंत्रित तेल से मालिश कर स्नान कराते थे। एक दिन पहले उसे सख्तीक उपवास करना पड़ता था। स्नान कर के वह सब प्राणियों को



अभयदान देता था। इन्द्र के निमित्त शान्ति की जाती थी। इसके बाद फिर सुगन्धित तेल से मर्दन करके वह स्नानागार में लाया जाता था। वहाँ पर्वत के ऊपर की मिट्टी से उसके सिर को, बाँसी की मिट्टी से कानों को, देवस्थान की मिट्टी से मुख को, हाथी के दाँतों से खुदी हुई मिट्टी से भुजाओं को, इन्द्र-धनुष के नीचे की मिट्टी से ग्रीवा को, राजाङ्गण की मिट्टी से हृदय को, गंगा-यमुना के सङ्गम की मिट्टी से उदर को, तालाब की मिट्टी से पीठ को, नदी-तीर की मिट्टी से पसलियों को, गोशाला की मिट्टी से जंघाओं को, गजशाला की मिट्टी से जानु को, अश्वशाला की मिट्टी से पिंडलियों को और रथ के पहिये के नीचे की मिट्टी से चरणतलों को मलते थे। तदनन्तर सारी मिट्टियों को मिला कर समस्त शरीर को मलते थे। इसके बाद उसे सिंहासन पर बिठा कर घी, दूध, दही, शर्करा और मधु-मिश्रित पञ्चामृत से उसका अभिषेक किया जाता था। तदनन्तर सर्वौषधि मिले हुए जल से स्नान कराया जाता था। जिन घड़ों से स्नान कराया जाता था वे सोने के होते थे और उनमें सहस्रधारायेँ होती थीं। पुरोहित अग्न्याधान करके अभिषेक करते थे। तीर्थ और समुद्रों से अभिषेक के लिए जल लाया जाता था। सब जलाशयों का पानी भी उसमें रहता था। अभिषेक के समय मन्त्र पढ़े जाते थे। उनका आशय :—

प्रजापति ने जिस पवित्र जल से सोम, वरुण, इन्द्र मनु को राजा बनाया—अभिषेक किया—था उसी राष्ट्र को बढ़ाने वाली और राष्ट्र को अमर रखने वाली जलधारा से, तुझे राष्ट्रोचित बल के लिए, सम्पत्ति के लिए, यश के लिए और धान्यादि की समृद्धि के लिए, मैं (पुरोहित) अभिषिक्त करता हूँ। तू महाराजाधिराज हो। इत्यादि :—

इमा आपः शिवतमाः

इमा राष्ट्रस्य भेषजीः

इमा राष्ट्रस्य वर्द्धिनीः

इमा राष्ट्रभृतोऽमृताः

याभिरिन्द्रमभ्यषिञ्चत् प्रजापतिः

सोमं राजानं वरुणं यमं मनुं  
ताभिरद्भिरभिषिञ्चामि त्वामहं  
राज्ञां त्वमधिराजो भवेऽहं  
बलाय, श्रियै, यशसेऽन्नाद्याय ।  
महान्तं त्वा महीनां  
सम्राजं चर्षणीनां  
देवी जनिव्यजीजनत्  
भद्रा जनिव्यजीजनत्

इसके बाद वस्त्र-धारण की जाती थी। तिलक किया जाता था। भाई-बान्धवों में से योग्य पुरुष छत्र, चामर आदि लगाते थे। छत्रपात्र, तैलपात्र आदि का दान होता था। ब्रह्मभोज होते थे। भाँति भाँति के दान किये जाते थे। सब लोग नमस्कार करते थे :—

राजाधिराजाय प्रसह्याय साहिने  
नमो वयं वैश्रमणाय कुर्महे  
समे कामान् कामकामाय मङ्गं  
कामेश्वरो वैश्रमणो ददातु  
वैश्रमणाय कुबेराय महाराजाधिराजाय नमः ।

( राज्याभिषेकपद्धतिः )

इसके अनन्तर बड़े ठाठ से हाथी पर सवारी निकलती थी। शहर अच्छी तरह सजाया जाता था। जगह जगह अगर जला कर सुगन्धि की जाती थी। ध्वजा-पताकायेँ और बन्दनवारेँ लटकाई जाती थीं। झरोखों से स्त्रियाँ भी सम्राट् पर पुष्पों की वर्षा करती थीं :—

हर्म्यवातायनस्थाभिभूँषिताभिः समन्ततः ।  
कीर्यमाणः सुपुष्पैर्वैर्ययौ स्त्रीभिरिन्द्रमः ॥

( वाल्मीकि )

भारत में अनेक सम्राट् हुए हैं—कोई दुष्टों का नाश करके अपनी भुजा के बल से; कोई प्रजा-पालन करने की सुन्दर विधि से; और कोई तपोबल से :—

जित्वा जय्यान् यौवनाश्रिः पालनाच्च भगीरथः ।

... ... सम्राजस्त्वनुशुश्रुमः

( महाभारत )

भारत ने सदैव ही वीरों और योग्य व्यक्तियों को हृदय से अपना राजा माना है और उनका यथेच्छ



सम्मान भी किया है। यदि कोई राजमद से उन्मत्त होकर अपने कर्तव्य से विमुख हो गया तो वह मारा गया। बहुत दिन तक वह अपने आसन पर नहीं जम सका। भारत सदैव व्याय का पक्षपाती रहा है। आशा है, हमारे नवीन सम्राट् भी भारत का शासन न्यायपूर्वक करेंगे।

वर्तमान अभिषेक-क्रियायें प्राचीन क्रियाओं से कहाँ तक मिलती जुलती हैं इसका मिलान पाठक स्वयमेव कर सकते हैं। क्योंकि वे आक्रोबर की सरस्वती में वर्तमान अभिषेक की क्रिया का हाल पढ़ चुके हैं।

श्रीगिरिधर शर्मा।

## देहली।



सी साल, १२ दिसम्बर १९११ को, हमारे महाराजाधिराज पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी का राज्याभिषेक देहली में होगा। उसके उपलक्ष्य में वहाँ एक बहुत बड़ा राज-दरबार होगा। इसके पहले भी, इस ऐतिहासिक नगर में, महाराज जार्ज के पिता प्रथम एडवर्ड के राजतिलक के उपलक्ष्य में और उनकी माता महारानी विक्रोरिया के हिन्दुस्तान का शासन ग्रहण करने के उपलक्ष्य में बड़े बड़े राज-दरबार हो चुके हैं। परन्तु इस बार जो शाही-दरबार देहली में होगा वह अभूतपूर्व होगा; क्योंकि महाराजाधिराज पञ्चम जार्ज अपनी महारानी समेत स्वयं वहाँ विराजमान होंगे; और सैकड़ों भारतीय नरेशों और सहस्रों माननीय भारत-वासियों और अन्य देशवासी दरबारियों के सम्मुख राजसिंहासन को सुशोभित करके राजमुकुट अपने सिर पर रखेंगे। इसी आनन्द के समय वहाँ नाना प्रकार के खेल-तमाशे और नाच-राग-रंग होंगे। फौजों की जंगी कवायद भी होगी। अतएव

प्राचीन और नवीन देहली का संक्षिप्त वृत्तान्त इस लेख में सरस्वती के पाठकों को सुनाता हूँ।

## प्राचीन देहली।

दिल्ली का प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है। वह यमुना के तट पर स्थित है। महाभारत से ज्ञात होता है कि पाण्डवों ने हस्तिनापुर से आकर इस नगरी को बसाया था। युधिष्ठिर के पीछे ३० पीढ़ियों तक उन्हीं के वंश का राज्य यहाँ पर रहा। फिर कई अन्य वंशों के राजा इसके अधीश्वर हुए। चौथी शताब्दी के लगभग राजा धव ने लोहे का वह स्तम्भ स्थापित किया जो अब तक उनके नाम से विख्यात है। यह कोई ५० फुट ऊँचा है। इसी को लोहे की लाट कहते हैं।

इसके बाद कुछ काल तक दिल्ली उजड़ी पड़ी रही। ७३६ ई० में राजा अनङ्गपाल ने फिर देहली को बसाया। ११९३ ई० में महम्मद गोरी ने पृथ्वी-राज को थानेसर में परास्त किया। वह तो अपने देश को लौट गया। पर अपने सेनापति कुतुबउद्दीन को वहाँ छोड़ गया। तब से दिल्ली मुसलमानों की राजधानी हुई। कुतुबउद्दीन ने दिल्ली में कई प्रसिद्ध इमारतें बनवाईं, जिनमें से कुतुब मीनार या कुतुब साहब की लाट अब तक बनी हुई है। यद्यपि इसका धुर ऊपर का बुर्ज १८०३ ई० के भूकम्प में गिर गया, तथापि यह मीनार अब तक नवीन दिल्ली के दक्षिण में वर्तमान है। देहली के आस पास के सज्जन जल-वायु के परिवर्तन के लिए प्रायः कुतुब साहब जाया करते हैं। यह जगह पहाड़ी है। यहाँ का दृश्य बहुत ही चित्ताकर्षक है। इन छोटी छोटी पहाड़ियों का सिलसिला दूर तक चला गया है। प्रायः प्रति वर्ष, उतरते सावन या भादों में, यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, जिसे फूलवालों की सैर कहते हैं। यह मेला तीन दिन तक रहता है। परन्तु बुध और बृहस्पति के दिन यहाँ बड़ी भीड़ होती है। पचास पचास कोस से लोग आते हैं। अमीर लोग कुतुब साहब के पास मकान किराये पर लेकर उन्हें खूब



सजाते हैं। देहली के फूल बेचने वालों की, इस अवसर पर, खूब बन आती है। नाच-रंग, गाने-बजाने आदि की बड़ी बहार रहती है। अस्तु। यहीं कुतुब साहब की क़बर या मज़ार भी है।

गोरियों के बाद गयास-उद्दीन तुग़लक़ ने यहाँ से कोई चार मील के अन्तर पर जो देहली बसाई उसका नाम तुग़लक़ाबाद रक्खा। परन्तु उसके अब केवल खंडहर रह गये हैं। हिन्दू-नगर इन्द्र-प्रस्थ भी उजड़ा पड़ा है। उसके भग्नांशों से ही इसका परिचय मिलता है। तुग़लकों के वंश का नाश तातारी बादशाह तैमूरलङ्ग के आक्रमण से हुआ। उसने महम्मद तुग़लक़ को परास्त करके देहली में क़दम रखते ही भयानक उपद्रव किया। पाँच दिन तक नगर में लूट-मार और जन-संहार आदि हुआ। महाविपद आई। देहली फिर उजड़ी। तैमूर के बाद लोधी-वंश का राज्य रहा। अन्त को बाबर बादशाह ने देहली के पास पानी-पत में इबराहीम लोदी को परास्त करके मुग़ल-वंश की नींव डाली। बाबर तो आगरे में रहता रहा। उसके बाद उसके बेटे हुमायूँ ने देहली में ही रहना पसन्द किया।

### नवीन देहली।

हुमायूँ के पोते शाहजहाँ ने देहली का फिर से जीर्णोद्धार किया और शाहजहाँनाबाद नाम रक्खा। यही आजकल की देहली है। इसे शाहजहाँ ने आज से २७८ वर्ष पूर्व बसाया था। इसके तीन ओर पत्थर की बड़ी ऊँची और दृढ़ दीवार है। यह दीवार प्रायः साढ़े पाँच मील लम्बी, चार गज़ चौड़ी और नौ गज़ ऊँची है। इसमें बारह दरवाज़े, चार खिड़कियाँ और ६४ बुर्जे हैं। नगर बहुत साफ़ सुथरा है। जन-संख्या प्रायः दो लाख है। मकान प्रायः पक्के हैं। बाज़ार प्रायः चौड़े और शैलक़दार, पर गली-कूचे तंग हैं। नगरवासो बड़े शिष्टाचारी, मिष्टभाषी, सुन्दर-वस्त्र-परिच्छदधारी और चतुर हैं। शाहजहाँ के बनाये हुए शाहीमहल, क़िला और

जामे मसजिद दर्शनीय इमारतें हैं। शाहजहाँ का महल बड़ी ही भव्य और मनोहर इमारत है। उसमें एक जगह फ़ारसी में यह पद्य खुदा हुआ है :—

अगर फिरदौस बर रूये ज़मीनस्त,  
हमीनस्तो, हमीनस्ता, हमीनस्त।

अर्थात् यदि स्वर्ग पृथ्वी पर कहीं है तो यही है, यही है, यही है। किसी समय यह उक्ति सचमुच ही यथार्थ थी। परन्तु हाय ! यह स्वर्ग बहुत थोड़े दिनों का था। सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख, काल-चक्र के परिवर्तन से, आया ही करता है। मुग़ल बादशाहों ने ऐशो-आराम में लिप्त होकर अपना विनाश अपने ही हाथों साधन किया। पठानों और अफ़ग़ानों के कई आक्रमण हुए; बहुत लूट-मार और नर-हत्या हुई। अंत को मरहटों ने आख़री मुग़ल बादशाह का पराजय करके अँगरेज़ों के आने तक उसे कैद कर रक्खा। यह बात १८०३ ईसवी की है।

१८५७ ई० में सिपाही-विद्रोह के बाद अँगरेज़ों ने मुग़लों के नाममात्र के बादशाह को रंगून भेज दिया। वहाँ वह मरा। तब से अँगरेज़ों की ही विजय-पताका देहली पर लहरा रही है। इसके बीस वर्ष बाद, अर्थात् १८७७ ई० में, लार्ड लिटन ने देहली में पहला शाही दरबार किया। उसमें महारानी विक्रोरिया के राज-राजेश्वरी होने की घोषणा दी गई। १९०३ में लार्ड कर्जन ने उससे भी बढ़ चढ़ कर बड़ी धूम का राज-दरबार किया। उसमें महाराज सप्तम एडवर्ड के भारत-सम्राट् होने की घोषणा हुई। अब महाराजा-धिराज पञ्चम जार्ज अपनी महिषी सहित वहाँ अभिषेक के लिए स्वयं विराजमान होंगे।

### प्राचीन इमारतें।

प्राचीन काल की इमारतों में से राजा धव के स्तम्भ, अर्थात् लोहे की लाट, का उल्लेख हो चुका है। मुसलमानों के समय की पहली इमारत कुतुब साहब की मीनार है।



कोई कोई कहते हैं कि इसे, आरम्भ में, पृथ्वी-राज ने बनवाया था, क्योंकि उसकी बेटी प्रति दिन प्रातःकाल इसके ऊपर से गंगा के दर्शन करके भोजन करती थी। पीछे से मुसलमानों ने कुछ फेर फार करके इसे अधिक ऊँचा बनवाया। इसके आस पास हिन्दू-मन्दिरों और मुसलमानी-मसजिदों दोनों के खंडहर मिलते हैं। यह बुर्ज या लाट २०० फुट से अधिक ऊँची है। ऊपर से यदि कोई नीचे देखे तो डर लगता है और नीचे वालों को एक छोटा पुतला सा दिखाई देता है। इसके सिवा फ़ीरोज़शाह की लाट भी दर्शनीय है। कहते हैं कि राजा अशोक के बनवाये हुए एक पत्थर के स्तम्भ को तोड़ कर यह बनाई गई थी। पुराने मक़बरों में हुमायूँ बाद-शाह का मक़बरा बहुत सुन्दर है। यह आगरे के “ताज” के नमूने पर बना हुआ है, परन्तु छोटा है।

### जामे मसजिद ।

यह मसजिद शाहजहाँ की बनवाई हुई है। लाल क़िले के सामने, बहुत ऊँचे पर, यह बनी हुई है। बड़ी बड़ी अनन्त पौड़ियाँ चढ़ कर इसके ऊपर पहुँचते हैं। यह दो सौ फुट लम्बी और एक सौ फुट चौड़ी है। हर शुक्रवार को सारे नगर के मुसलमान यहाँ एकत्र होकर नमाज़ पढ़ते हैं। इसके भीतर संगमरमर का बड़ा सुन्दर हैज़ बना हुआ है। इसके दो मीनार १३० फुट ऊँचे हैं। यह मसजिद बड़ी शानदार है। महाराजाधिराज पञ्चम जार्ज का जुलूस इसके सामने से निकलेगा।

### लाल क़िला ।

यह भी शाहजहाँ का बनवाया हुआ है। इसकी चार-दीवारी लाल पत्थर की है। इसी से इसका नाम लाल क़िला पड़ गया है। इसका घेरा प्रायः डेढ़ मील है। ग़दर से पहले मुग़ल-बादशाह यहाँ रहते थे। अब यहाँ गोरों की पलटन रहती है। साठ सत्तर साल पहले जिस स्थान पर बैठ कर बादशाह दरबार किया करते थे उसका नाम दीवानेखास था। यह स्थान अब तक पूर्ववत् है। इसकी दीवारों

और फ़र्शों पर नगीने जड़े हैं और बड़े ही सुन्दर बेल-बूटे कढ़े हुए हैं। उन्हें देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। बादशाह जिस मसजिद में नमाज़ पढ़ते थे उसका नाम मोती-मसजिद है। यह वेशक़ीमती संगमरमर की है। किसी समय यह ऐसी सजती थी जैसे नथ में मोती। इसी से इसका नाम मोती मसजिद हुआ। जिसमें बादशाह स्नान करते थे वह हममाम भी बना हुआ है। जहाँ वेगमें नमाज़ पढ़ती थीं वह स्थान भी वर्तमान है। जिन भरोखों में बैठ कर वे यमुना की बहार देखती थीं वह भी है। पर बैठनेवाली नहीं हैं। काल ने देहली को क्या से क्या कर डाला !

दरबार के दिनों में इसी क़िले में, जहाँ शाही जलसे होते थे, एक गार्डन-पार्टी होगी। उसमें हमारे महाराजाधिराज जार्ज भी पधारेंगे। इसी क़िले में पञ्जाब के लाट साहिब एक प्रदर्शनी खोलेंगे। उसमें मुग़लों के समय के वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, पुस्तकें, नविशते और नाना प्रकार की अन्य चीज़ें सजा कर दिखाई जायँगी।

### जहाँनारा का मक़बरा ।

प्राचीन इमारतों में शाहजहाँ की बेटी जहाँनारा का मक़बरा भी देखने योग्य है। आकार-प्रकार और सौन्दर्य में यह हुमायूँ के मक़बरे से बढ़ कर नहीं ; परन्तु इसे देख कर मन में एक अपूर्व भाव का आविर्भाव होता है। जब पाषाणहृदय औरंगज़ेब ने अपने वृद्ध पिता शाहजहाँ को कैद कर रक्खा तब शाहजहाँ की यही पितृवत्सला कन्या जहाँनारा अपने विपत्तिग्रस्त पिता की सेवा के लिए उसके पास जाकर रही और उसके मरने तक उसकी सेवा-शुश्रूषा करती रही। यह बड़े ही सुशीला शाहजादी थी। जब यह परलोक सिधारी तब इसकी पूर्व दी हुई आज्ञा के अनुसार इसकी क़बर पर यह शेर खोदा गया :—

बग़ैर सबज़ा न पोशद कसे मज़ारे मरा  
कि क़ब्र पोशे ग़रीबाँ हमी गयाह बस अस्त ।



अर्थात् मेरी समाधि पर हरी हरी घास के सिवा और कुछ न ढका जावे, क्योंकि गरीबों के लिए यही हरी घास काफ़ी क़बरपोश है। कैसा हृदयद्रावक भाव है। जहाँनारा का हृदय बड़ा उदार था। यह दीन-दुखियों पर बहुत दया करती थी और दान भी बहुत दिया करती थी।

### चाँदनी चौक ।

चाँदनी चौक देहली का एक प्रसिद्ध बाज़ार है। यहाँ शाम को बड़ी शैल्युक्त रहती है। दरिबे का बाज़ार भी देहली के मशहूर बाज़ारों में है।

### सुनहरी मसजिद, घंटाघर आदि ।

चाँदनी चौक में, कोतवाली के पास, सुनहरी मसजिद भी देखने योग्य है। इस मसजिद के आगे, कुछ दूर पर, घंटाघर है। यह लाल पत्थर का एक ऊँचा और सुन्दर मीनार है। इस पर एक बड़ा भारी घंटा लगा हुआ है। दूर दूर तक उसकी आवाज़ सुनाई देती है। आगे चल कर मुनिस्पैलेटी का दफ़्तर और टाऊन हाल है, जहाँ बड़ी बड़ी सभायें होती हैं। इसके उत्तर की ओर रेल का स्टेशन है। उसके कुछ दूर आगे यमुना का पुल है, जो आध मील के लगभग लम्बा है। उस पर रेल-गाड़ियाँ दौड़ा करती हैं।

यमुना के किनारे प्रातःकाल स्नान करनेवालों की बड़ी भीड़ होती है। फूल, बताशे और दूध चढ़ाये जाते हैं। ज्येष्ठ में नदीतट पर एक मेला होता है। भादों में जब यमुना खूब चढ़ती है तब एक और बड़ा मेला होता है। उस समय बहुत से तैराक पुल पर से छलांगे मार मार कर नदी में कूदते हैं और तैरने में अपनी अपनी दक्षता दिखाते हैं। उस समय तीर पर नफ़ीरीवालों का लहरा लहरा कर मीठे राग सुनाना बड़ा आनन्द देता है।

### देहली की पैदावार, वाणिज्य-व्यापार आदि ।

दिल्ली शहर में कपड़े और गोटे-तिल्ले तथा सलमेसितारे का बड़ा व्यापार होता है। भाँति भाँति

की टोपियाँ भी यहाँ बहुत बनती और विकती हैं। बहुत सा माल दिसावर को भेजा जाता है। कहते हैं कि प्रतिदिन कोई एक लाख रुपये का कपड़ा ही विकता है। पञ्जाब में वाणिज्य के विचार से देहली ही सबसे बड़ा नगर है। यहाँ के हिन्दू-विस्कुट भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ इसके दो कारखाने हैं। खड़िया और विल्लौर की खानें भी इस ज़िले में हैं।

देहली वह जगह है जहाँ प्राचीन हिन्दू-राजा, बौद्ध, पठान, मुग़ल और आधुनिक अँगरेज़ सभी के राज्यों के चिह्न दिखाई देते हैं। यह नगर कई दफ़े उजड़ा और फिर बसा। इसके खंडहर मीलों तक फैले हुए हैं।

परमेश्वर करे इस ऐतिहासिक नगर में महाराज पञ्चम जार्ज का अभिषेकोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो।

श्रीहरनारायण अग्निहोत्री ।

### आगामी देहली-दरबार ।



दिसम्बर १९११ को तीसरा देहली दरबार होगा। इस दरबार के विषय में, २२ मार्च १९११ के गैज़ट आर्वा इंडिया में यह राजाज्ञा प्रकाशित हुई थी :—

“अपने पूजनीय पिता महाराजा सप्तम एडवर्ड का ६ मई १९१० को स्वर्ग-वास होने पर हम पञ्चम जार्ज संयुक्त ग्रेट ब्रिटन, आयरलैंड और अन्य अँगरेज़ी राज्यों के अधीश्वर, धर्म-संरक्षक, भारत-सम्राट् इत्यादि उपाधियों से विभूषित होकर सिंहासनारूढ़ हुए हैं। गत वर्ष की १९ जुलाई और ७ नवम्बर को अपने घोषणा-पत्रों में हमने अपने राज्याभिषेक की तारीख २२ जून १९११ नियत की है। हमारी यह इच्छा है कि हमारी प्यारी भारतीय प्रजा भी हमारे राज्याभिषेक के सुख को अनुभव करे और हमारे भारतीय गवर्नर, लफ़्टिनेंट गवर्नर, अन्य कर्म-चारी, राजा, महाराजा, सरदार आदि हमारे सम्मुख उपस्थित हों। इसलिए हम



देहली में १२ दिसम्बर १९११ को एक दरबार किये जाने की आज्ञा देते हैं। हम अपने विश्वास-पात्र सलाहकार भारत के वायसराय, चार्ल्स वेरन हार्डिंज आर्चबिशप पेन्सहर्स्ट को आज्ञा देते हैं कि वे इसका आवश्यक प्रबन्ध करें।" इत्यादि।

महाराज, महारानी सहित, सातवीं दिसम्बर १९११ को देहली पधारेंगे और १६ तक वहाँ रहेंगे। सात को प्रातःकाल महाराज की गाड़ी बम्बई से देहली पहुँचेंगी। बड़े लाट लार्ड हार्डिंज, अन्य भारतीय उच्च-पदाधिकारियों सहित, स्टेशन पर महाराज का स्वागत करेंगे। उच्च पदाधिकारियों से भेंट करा कर बड़े लाट उनको किले की दीवार के पास एक मण्डप में ले जायँगे। वहाँ भारतीय राजा-महाराजाओं से उनकी भेंट होगी। वहाँ से वे एक जुलूस के साथ नगर की मुख्य मुख्य सड़कों पर होते हुए अपने निवास-स्थल को जायँगे। जुलूस के तीन भाग होंगे। पहले भाग में उच्च पदाधिकारी; दूसरे में महाराज, महारानी और उनके अनुचर-वर्ग आदि; तीसरे में देशी राजा-महाराजा आदि होंगे। उच्च घराने की पर्दा-नशीन स्त्रियों के लिए भी जुलूस देखने का प्रबन्ध किया जायगा। पाठशालाओं के लड़कों के लिए भी मार्ग में एक स्थान चुना जायगा। तमाश-बीनों के लिए देहली की म्यूनीसिपैलिटी स्थान स्थान पर मंचों का प्रबन्ध करेगी। अपने डेरे में पहुँचने के पूर्व ही महाराज को ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधियों की ओर से बड़े लाट की लेजिस्लेटिव कौंसिल के उपसभापति महाशय एक छोटा सा अभिनन्दन-पत्र देंगे। ७ तारीख को सन्ध्या-समय और ८ और ९ को अपराह्न में भारतीय राजा-महाराजा लोग भारतेश्वर की भेंट करेंगे।

आठ तारीख को दो-पहर के बाद महाराज अपने हाथ से महाराज एडवर्ड के भारतीय स्मारक (All India King Edward Memorial) की नींव, उस प्रशस्त मैदान में, डालेंगे जो देहली नगर और किले के बीच में है। इस उत्सव के समय उपस्थित होने के लिए स्मारक-कोश में चन्दा देने

वाले सज्जन निमंत्रित किये गये हैं। १० तारीख को रविवार होगा। अतः महाराज और महारानी ईश्वरोपासना करेंगे। ११ को दो पहर के समय महाराज तीन अँगरेजी और दो हिन्दुस्तानी सेनाओं को पोले के मैदान में भंडा प्रदान करेंगे। उसी दिन, तीसरे पहर, पोले का खेल होगा। महाराज और महारानी दोनों उसे देखेंगे।

दरबार १२ तारीख मंगल को होगा। दरबार का स्थान वही है जहाँ सन् १८७७ में लार्ड लिटन, और १९०३ में लार्ड कर्जन ने दरबार किया था। स्थान के दो गोलाकार भाग कर दिये गये हैं। पहले भाग में जो छोटा है गवर्नर, लफ्टिनेंट-गवर्नर, कमांडर-इन-चीफ, भारतीय राजा-महाराजा, अन्य देशों के प्रतिनिधि और अन्य निमन्त्रित सज्जन स्थान पावेंगे। दूसरा भाग सर्व-साधारण के लिए होगा। दूसरे भाग में पचास हजार मनुष्यों के बैठने के लिए स्थान रहेगा, जिनमें से पाँच हजार पाठशालाओं के छात्र और ग्यारह हजार टिकट वाले लोग होंगे। मैदान में सैनिकों के लिए स्थान रहेगा। लगभग एक लाख मनुष्य दरबार देख सकेंगे। पहले देशी राजा-महाराजा और उच्च पदाधिकारी भारतेश्वर का अभिवादन करेंगे। इसके बाद मैदान के मण्डप में राजाज्ञापत्र पढ़ कर सबको सुनाया जायगा। सन्ध्या को राज-भोज होगा।

१३ तारीख को राजेश्वर भारतीय सेना के वालंटियर्स और देशी अफसरों का मुआयना करेंगे। तीसरे पहर किले में "गार्डन पार्टी" होगी। उसी समय किले की दीवार के नीचे एक मेला होगा और महाराज किले पर से नीचे वालों को शाही प्रथा के अनुसार दर्शन देंगे। मेले में बड़ी भीड़ होने की आशा है। मेले के प्रबन्ध का भार पंजाब गवर्नमेंट ने अपने ऊपर लिया है। "गार्डन पार्टी" में पर्दा-नशीन प्रतिष्ठित महिलाओं के लिए भी उचित प्रबन्ध किया जायगा। प्राचीन ऐतिहासिक चीजों की नुमायश भी होगी। सन्ध्या को किले में रोशनी होगी और अपूर्व आतिश-बाजी छूटेंगी।



गरीबों के खिलाने का भी प्रबन्ध किया गया है; इसके लिए राजेश्वर ने अपने पास से एक अच्छी रकम दी है।

बृहस्पति-वार १४ तारीख को फौजी कवायद होगी। तीसरे पहर हाकी का खेल होगा। सन्ध्या को महाराज अपने डेरे ही पर एक दरबार करेंगे, जिसमें लोगों को खिलअतें और उपाधियाँ दी जायँगी।

शुक्रवार १५ तारीख को राजेश्वर अनेक प्रकार के सैनिक खेल देखेंगे। १६ को महाराज और महारानी जुलूस के साथ शहर में होते हुए सलीम-गढ़ स्टेशन पर पहुँचेंगे। वहाँ से महाराज शिकार खेलने को नेपाल पधारेंगे और महारानी आगरे चली जायँगी। शिकार खेल चुकने पर महाराज कलकत्ते पधारेंगे। वहाँ भी जुलूस, जलसे, खेल-तमाशे और दरबार होंगे। वहाँ से, जनवरी के आरम्भ में, महाराज इंगलैंड लौट जायँगे।

प्रत्येक प्रान्त के प्रधान अधिकारी दरबार में निमन्त्रित किये गये हैं। निमन्त्रित अधिकारिगण अपने साथ खास खास यूरोपियन और हिन्दुस्तानी सज्जनों को, अपने प्रान्त के प्रतिनिधि-सदृश, लेकर चौथी दिसम्बर तक देहली पहुँच जायँगे। अनेक देशी राजाओं को भी निमन्त्रण दिया गया है। वे भी अपने सरदारों सहित दूसरी तारीख तक वहाँ पहुँच जायँगे। एशिया महाद्वीप के अन्तर्गत अन्य अँगरेजी राज्यों के मुख्य मुख्य अधिकारियों और विदेशी राज्यों के राजदूतों को भी निमन्त्रण गया है। मुख्य मुख्य समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि भी बुलाये गये हैं। सैकड़ों ऐसे वृद्ध योद्धा भी आवेंगे, जिन्होंने अपनी सैनिक योग्यता के उपलक्ष में प्रतिष्ठा-सूचक पदक प्राप्त किये हैं। १८७७ और १९०३ में लोगों के खेमे बहुत दूर तक फैलते चले गये थे। परन्तु इस बार सब खेमे यथाविधि राजेश्वर के चारों ओर पास पास लगाये गये हैं। इन खेमों के बाद फौजी खेमे हैं जो महाराज के डेरे से १½ मील की दूरी से लेकर ५ मील की दूरी तक चले गये हैं। यह अनु-

मान किया जाता है कि लगभग ढाई लाख आदमी इन खेमों में रहेंगे।

समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों का डेरा महाराज के डेरे के पास होगा। वहाँ से तार-घर भी पास पड़ेगा। इससे समाचार भेजने में सुभीता होगा।

देहली की बहुत सी सड़कें खूब चौड़ी कर दी गई हैं; कुछ बढ़ाई भी गई हैं। जिस भूमि पर खेमे लगाये गये हैं वहाँ नई सड़क बनाई गई है। रेल का जाल भी खूब बिछाया गया है। ३० मील बड़ी और १२ मील छोटी पटरी की रेल दौड़ेगी। बड़ी पटरी की रेल का अन्तिम स्टेशन किंग्स-वे (King's Way) है। यह स्टेशन खेमों के बीच में पड़ता है। यहाँ पर अधिकांश लोग उतरेंगे। खेमों में बिजली की रोशनी होगी। पानी के दो प्रकार के नल होंगे। पीने के लिए साफ शुद्ध किया हुआ पानी अलग और अन्य कामों के लिए यमुना की नहर का पानी अलग। एक पशु-चिकित्सालय रहेगा। सर्व-साधारण के शरीरारोग्य की रक्षा के लिए १२३ डाकूर नियत किये गये हैं। प्रबन्ध ठीक रखने के लिए पुलिस के अतिरिक्त कुछ गोरे सैनिकों को भी सवार और पैदल पुलिस का काम करना पड़ेगा। एक बड़ा और ३१ छोटे डाकखाने, और एक बड़ा और १० छोटे तारघर खुले रहेंगे। खेमों से टेलीफोन का सम्बन्ध होगा। स्थान स्थान पर ऐसे दफ्तर होंगे जो सर्व-साधारण को सब बात की सूचना देंगे।

७ दिसम्बर को राजेश्वर देहली पहुँचेंगे और १२ को दरबार करेंगे। इसलिए सब सरकारी दफ्तरों में इन दोनों दिनों की छुट्टी रहेगी। उन दफ्तरों में, जिनके बन्द रहने से व्यापार में कोई हानि पहुँचना सम्भव नहीं ८, ९, १०, और ११ तारीख को भी छुट्टी रहेगी।

१२ को दोपहर के समय महाराज के राज्याभिषेक का आनन्द प्रत्येक जिले, तहसील, कस्बे और गाँव में मनाया जायगा। जिले में कलकूर, तहसील में तहसीलदार, गाँव में पटवारी या जमौंदार महाराज के आज्ञा-पत्र को अँगरेजी अथवा देशी भाषा में पढ़-



सर्व-साधारण को सुना देगा और महाराज के विषय के दर्शन भी लोगों को करावेगा । जहाँ तक संकेत वहाँ एक छोटासा दरबार कर के यह सब काम किया जायगा । ऐसे समय पर सरकार की ओर से उन व्यक्तियों को प्रशंसा-पत्र और उपाधियाँ भी दी जायँगी जिन्होंने सरकार की कोई वास सेवा की होगी । भारत भर की अदालतों, डाकखानों, तारघरों, पाठशालाओं इत्यादि सरकारी इमारतों में रोशनी होगी । प्रजा भी अपने घरों में दिवाली की तरह दिये जलावेगी ; दान-दक्षिणा देगी ; गरीबों को भोजन करावेगी । इस प्रकार उस दिन सारे भारत में आनन्द मनाया जायगा ।

## देहली के भूत-पूर्व दो दरबार ।



हला देहली-दरबार १८७७ ईसवी में हुआ था । १८५७ में सिपाही-विद्रोह हुआ । विद्रोह के नाना कारणों में से एक कारण यह भी था कि लोग ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन से सन्तुष्ट न थे । शान्ति-स्थापना के बाद भारतीय शासन की डोर इंग्लैंड की रानी के हाथों में देना ही उचित समझा गया । इसी से इंग्लैंड की रानी, विक्टोरिया, भारत की भी रानी हो गई । परन्तु इंग्लैंड की रानी विक्टोरिया फिर भी रानी ही रहँ । भारत में बहुत से देशी राज्य हैं । उनके कितने ही अधिपति महाराजा कहलाते हैं और उनकी पत्नियाँ महारानी । अतएव इन महाराजाओं के ऊपर हुक्मत करने वाली विक्टोरिया का केवल रानी की उपाधि से भूषित होना पर्याप्त न समझा गया । इसी से १८७५-७६ में, प्रिन्स आर्चबिशप (महाराज सप्तम एडवर्ड) की भारत-यात्रा के बाद भारत-सरकार ने, लार्ड नार्थब्रुक के समय में, यह प्रस्ताव किया कि राजकीय पत्रों आदि में रानी विक्टोरिया 'महारानी' अथवा उसी प्रकार की किसी और सम्मानसूचक उपाधि से उल्लिखित हुआ करें ।

सन् १८७६ ईसवी में महारानी विक्टोरिया ने पार्लियामेंट खोलते समय, अपनी वक्तृता में, इस प्रस्ताव को स्वीकार किया । भारतीय गवर्नमेंट ने महारानी के लिए 'कैसर-हिन्द' की उपाधि चुनी । मध्य एशिया में रोम के सम्राट् "कैसर-रूम" के नाम से प्रसिद्ध थे । "कैसर-हिन्द" पदवी इसी "कैसर-रूम" के आधार पर निश्चित हुई । महारानी की इस नई उपाधि की प्रथम घोषणा पहले देहली दरबार में १ जनवरी सन् १८७७ ईसवी को की गई । उक्त दरबार में प्रत्येक प्रान्त के शासक, १२०० ऊँचे दर्जे के अफसर, १४,००० गोरे और देशी सैनिक, ७७ देशी राजा-महाराजा और ३०० सरदार उपस्थित थे । सब मिला कर ६८,००० भद्र पुरुषों को निमन्त्रण दिया गया था । पोर्तुगीज भारत के गवर्नर जनरल तथा विदेशी शक्तियों के राजदूत भी आये थे । इन सबकी उपस्थिति और ब्रिटिश भारत के गवर्नर जनरल, लार्ड लिटन, की अध्यक्षता में महारानी के "कैसर-हिन्द" की उपाधि ग्रहण करने का घोषणा-पत्र अँगरेजी और हिन्दी में पढ़ कर सुनाया गया । १०१ तोपों की सलामी हो चुकने पर लार्ड लिटन ने एक वक्तृता दी । उसमें उन्होंने महारानी के नवीन उपाधि-ग्रहण करने के कारण को बतलाते हुए गोरे और देशी सैनिकों, राजा-महाराजाओं और भारतीय प्रजा के कामों की आलोचना और प्रशंसा की । तदनन्तर उन्होंने महारानी का सन्देश पढ़ सुनाया, जो उसी दिन तार द्वारा आया था । उसका भाव, थोड़े में, नीचे दिया जाता है :—

“आज हमें अपने बाइसराय द्वारा अपने उन कर्मचारियों, राजाओं, सरदारों और प्रजा-वर्ग को बधाई देने का अवसर प्राप्त होता है जो देहली में एकत्र हुए हैं । साथ ही उन्हें यह विश्वास दिलाया जाता है कि हमें अपने भारतीय साम्राज्य से गाढ़ प्रेम है । उस आदर-सत्कार से जो उन्होंने हमारे प्रिय पुत्र का किया और उस भक्ति से जो उन्होंने हमारे वंश और सिंहासन पर प्रकट की, हमें बड़ा सन्तोष है । हमें विश्वास है कि इस दरबार के कारण



हमारा सम्बन्ध अपनी प्रजा से और भी घनिष्ठ हो जायगा । प्रजा को सुखी रखना ही हमारा परमोद्देश है ” ।

सन्देश के समाप्त होतेही उपस्थित जनों के हर्षनाद से स्थान गूँज उठा । भारतीय राजा, महाराजाओं ने भी बड़े ही उत्साहपूर्वक हर्षनाद में योग दिया ।

इस दरबार के उपलक्ष्य में राजाओं की सलामी की तौपों की संख्या बढ़ाई गई, पेंशन पाने वालों की पेंशन में वृद्धि की गई और सैकड़ों सज्जन विविध उपाधियों से विभूषित किये गये ।

दूसरा देहली-दरबार १९०३ ईसवी में हुआ । २२ जनवरी १९०१ को महारानी विक्टोरिया का स्वर्ग-वास हुआ । महारानी के ज्येष्ठ पुत्र महाराज सप्तम एडवर्ड ९ अगस्त १९०२ को सिंहासनारूढ़ हुए । राज्याभिषेक की घोषणा भारत-वर्ष में करने के लिए १ जनवरी १९०३ को देहली में एक शाही-दरबार होने की महाराज ने आज्ञा दी । लार्ड कर्जन दरबार के प्रबन्धकर्त्ता हुए । उक्त दरबार के हाथियों का जुलूस लोग अभी तक न भूले होंगे । राज्याभिषेक-सम्बन्धी घोषणा-पत्र सुनाया गया । पश्चात् १०१ तौपों की सलामी हुई । फिर लार्ड कर्जन ने वक्तृता दी । उसके अन्तर्गत उन्होंने महाराज का सन्देश सुनाया । उसका सारांश यह था :—

“मुझे अपनी भारतीय प्रजा को ऐसे अवसर पर बधाई देने में बड़ा ही हर्ष होता है जब वे मेरे राज्याभिषेक की खुशी मना रहे होंगे । लन्दन के राज्याभिषेकोत्सव में थोड़े ही से भारतीय राजा और प्रतिनिधि उपस्थित थे । इसी लिए मैंने अपने वायसराय और गवर्नर जनरल, लार्ड कर्जन, को आज्ञा दी कि वे देहली में एक बड़ा दरबार करें, जिसमें सारे भारतवासी राज्याभिषेक-सम्बन्धी आनन्द मना सकें । १८७५ ईसवी में मैं भारत-वर्ष गया था । उस समय से मुझे उस देश और उसके निवासियों से बड़ा प्रेम है । मैं उनकी सच्ची राजभक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ । गत थोड़े ही वर्षों में उन्होंने अपनी राजभक्ति का कितने ही बार परिचय दिया है । मेरी

भारतीय सेना ने भी साम्राज्य की बड़ी सेवा की है ” ।

“मैं आशा करता हूँ कि मेरे पुत्र और मेरी पुत्रवधू—प्रिन्स और प्रिन्सेज आर्च वेल्ज—शीघ्र ही भारतयात्रा करेंगे । मेरी यह इच्छा बहुत दिनों से है कि वे भारत को देखें । वे स्वयं भी भारत देखने के लिए बड़े उत्सुक हैं । आ सकता तो बड़े ही हर्ष से मैं इस दरबार में आता; तो भी मैं अपने प्यारे भाई डियूक आर्च कनाट को भेजता हूँ जो इस उत्सव में मेरे वंश के प्रतिनिधिस्वरूप उपस्थित रहेंगे ।”

“जब से मैं अपनी पूजनीया माता महारानी विक्टोरिया के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ हूँ, मेरी इच्छा सदा उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार शासन करने की रही है, जिनके अनुसार कार्य करके मेरी माता ने अपने लिए अपनी भारतीय प्रजा के हृदय में स्थान पाया था । मैं अपनी भारतीय प्रजा को विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनके स्वाधीनभाव, मान, स्वत्व, उन्नति और सुख का अच्छी तरह ध्यान रखूँगा । सर्व-शक्तिमान् परमात्मा के आशीर्वाद से मेरी भारतीय प्रजा सुखी हो और भारतीय साम्राज्य फूले फले ।”

इस दरबार में भी उपाधियाँ वितरण हुईं और भारत-सरकार ने ३ वर्ष के लिए उस सूद को माफ़ कर दिया जो उन रकमों पर देशी राजाओं को देना पड़ता जो उन्होंने १८९८ में, दुर्भिक्ष के कारण, गवर्नमेंट से बतौर कर्ज के ली थीं ।

## प्राचीन ग्रीस की जातीय शिक्षा और भारत\* ।

तनी सभ्यतायें हैं सबमें मनुष्य का एक न एक आदर्श अवश्य पाया जाता है । मनुष्य ने विश्व को जिस भाव से देखा है, विश्व के

\* बाबू बदरीनाथ वर्मा, बी० ए०, द्वारा वङ्ग-भाषा से अनुवादित ।



साथ अपने सम्बन्ध और अपने स्थान के विषय में जिस प्रकार की धारणा की है, उसकी सभ्यता में उसी भाव और धारणा का प्रकाश हुआ है। प्राचीन ग्रीस में उसके निवासी इस लोक के कर्मक्षेत्र को ही विश्व समझते थे। ग्रीक लोग मानवजीवन को अपने उस क्षुद्र कर्मक्षेत्र में ही आबद्ध समझते थे। उसी कर्मक्षेत्र में अपने अपने जीवन की सम्पूर्णता और सार्थकता की उपलब्धि की चेष्टा करते थे। अस्तु; उनके दैनिक जीवन की सङ्कीर्णता और असम्पूर्णता में जो स्वाभाविक द्वन्द्व, रोध और अनैक्य देखे जाते थे उन्हीं सबके समन्वयसाधन के लिए वे बृहत्तर पार्थिव ऐक्य का अनुसन्धान करते थे और उसी में व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और वैचित्र्य को विसर्जन कर देते थे। इस कारण, वैचित्र्यों का उच्छेद करके सामञ्जस्य स्थापन करना ही उनके सौन्दर्यबोध का प्रधान अङ्ग हो गया था। इस विचित्र सौन्दर्यबोध नेही ग्रीक सभ्यता के विविध अङ्गों को अनुरजित किया है। ग्रीक लोगों के राष्ट्रीय जीवन का प्राधान्य, शिल्प में आकृति-सौष्टव का गौरव, सङ्गीत-वर्चा का आदर और शिक्षापद्धति में व्यायाम और सङ्गीत का प्रभाव—ये सब इसी सौन्दर्यबोध के परिचायक हैं। सभी विषयों में उन्होंने अनैक्य को दूर करने का प्रयास किया है।

प्राचीन भारत में जो सभ्यता और शिक्षापद्धति प्रतिष्ठित हुई थी उसका बीजमन्त्र विलकुल ही और तरह का था। प्राचीन भारत के मत से व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का विसर्जन सौन्दर्य का लक्षण नहीं। भारत ने एक विचित्र स्वौन्दर्य की उपलब्धि की थी। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा का सम्पूर्ण विकास ही विश्वसौन्दर्य का एक मात्र लक्षण था। समाज के साधारण जीवन-सागर में व्यक्ति की विचित्र जीवनधाराओं के निमज्जन द्वारा सब प्रकार के स्वातन्त्र्य का विनाश-साधन न करके भारतवर्ष ने प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक दिन के क्षुद्र क्षुद्र जीवन-प्रवाहों में सारे ब्रह्माण्ड—सारे विश्व—की एकता उपलब्ध करने का प्रयास किया

था। इस प्रकार उसने स्वातन्त्र्य और वैचित्र्य की सर्वत्र रक्षा और पुष्टि की व्यवस्था की थी। अत्यल्प वर्तमान जीवन के साधारण कार्यों और चिन्ताओं के क्षुद्र समुदाय में अनन्त, युगयुगान्तर्यापी, जन्म-मरणातीत भविष्यत् के महत्त्व और ऐश्वर्य ने प्रतिष्ठित होकर ससीम को असीम की, असम्पूर्णता को सम्पूर्णता की, अविद्या को विद्या की, मृत्यु को अमृत की, बन्धन को मुक्ति की महिमा दान की थी। जिस दुःख की उत्पत्ति सब तरह की परवशताओं से होती है उसी आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति करके जिस स्वाधीनता से अनन्त सुख की प्राप्ति होती है, वह स्वाधीनता और मोक्ष-लिप्सा संसार के सारे कर्मों और भोगों का नियन्त्रण करनेवाली समझी गई थी। वही यहाँ अन्तिम लक्ष्यरूप से वर्तमान थी। इस कारण, भारतवर्ष मानवजीवन की वर्तमान सामान्य अवस्था में तदन्तर्गत सारे भविष्यत् को हृदयङ्गम करता था। यही नहीं, वह अपने स्वतन्त्र उपायों से विकाशलाभ करने में परमानन्द और अमृत का सौन्दर्य भी उपभोग करता था।

इस ससीम और वैचित्र्य में असीम और ऐक्य की उपलब्धि ही उनके विचित्र धर्मभाव का कारण थी। इसीसे वे प्रत्येक आत्मा के क्रमिक उन्नतिलाभ के विषय में निश्चिन्त रहते थे। यह इसी का फल था जो भारतवर्ष में लोग मनुष्य में देवत्व का आरोप करते थे। इसीसे वे यह भी समझ सके थे कि मानव-समाज के क्रमिक विकास में पशुत्व का क्षय होकर देवत्व की प्रभा प्रकट होती है। सभ्यता के इतिहास में धर्म का ही क्रमविकाश होता है, इस सत्य को प्राचीन भारतवासी भली-भाँति जानते थे। यही कारण है जो प्राचीन भारत-वासी परकालवाद को स्वीकार करके मुक्तिलाभ के सम्बन्ध में जीव की विचित्र स्थिति को समझ सके थे। इसीसे वे भिन्न भिन्न व्यक्तियों का भिन्न भिन्न आध्यात्मिक अवस्था में रहना स्वीकार करते थे और प्रत्येक व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास, सम्पूर्ण



स्वाधीनभाव और सम्पूर्ण मुक्तिलाभ की आशा करने में समर्थ होते थे ।

अस्तु । उनके वैचित्र्य की मर्यादारक्षा करने की प्रवृत्ति ने, धर्म में प्रवेशलाभ करके, प्रत्येक व्यक्ति के स्वातन्त्र्य की घोषणा की थी । भारत के इसी विशिष्ट धर्मभाव ने समाज-जीवन में प्रवेश करके, तथा समाज को आध्यात्मिकता पर प्रतिष्ठित करके, साधारण सभ्यता के सामने इस लोक की क्षुद्रता को खोल कर दिखा दिया था । इसी से समाज के विचित्र श्रेणीविभाग, अधिकारविभाग, कर्तव्य-विभाग और जातिविभाग करके, भिन्न भिन्न अवस्थाओं में विद्यमान, भिन्न भिन्न व्यक्तियों के सम्पूर्णता-लाभ की भिन्न भिन्न व्यवस्थायें भारतवासियों ने निर्दिष्ट की थीं । इसीसे वे लोग प्रत्येक मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के सहायक होसके थे । इस स्वातन्त्र्य और वैचित्र्य के बीच ऐक्य और परम सत्य की सत्ता वर्तमान थी । इसी ने प्रत्येक मनुष्य की अवस्था के अनुसार परिपूर्णता, दानोपयोगी विचित्र रीति-नीति, विचित्र विधिलिपेध, विचित्र आश्रमविभाग, विचित्र कर्तव्याकर्तव्य आदि घोर जटिलतापूर्ण बातों की सृष्टि की थी । इसी सत्यानु-यायिनी प्रवृत्ति के वशवर्त्ती होकर वे लोग विवाह-पद्धति में, श्राद्ध-सम्बन्धी कार्यकलाप में और अतिथि-सत्कार आदि में सारे विश्व को ही नहीं, किन्तु युगयुगान्त तक को प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख खड़ा करके सबको विशाल-हृदय, उदार और महान् बना डालते थे ।

इसी लिए उनकी समाज पद्धति में व्यक्ति का स्थान सबसे ऊँचा था । भारतवर्ष ने समझा था कि प्रत्येक व्यक्ति की एक ऐसी अवस्था है,—एक ऐसी प्रवृत्ति है—जिसके नियन्त्रित करने का अधिकार समाज को नहीं है, जिस पर किसी परिवार का कोई आधिपत्य नहीं है । उसे वे राष्ट्रीय जीवन के बहिर्गत समझते थे । प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो विराट् ऐश्वर्य्य-सामग्री छिपी हुई है उसकी सार्थकता के लिए उस व्यक्ति को एक ऐसी स्वाधीन अवस्था में

रहना पड़ता है जो सङ्कीर्ण और असम्पूर्ण राष्ट्र और समाज तथा परिवार के अधीन नहीं । उस स्वाधीन-नावस्था की क्रमिक परिस्फुटता और उपलब्धि से ही व्यक्ति का विकाश, आनन्द और मोक्ष होता है । उसी से जीवन की सफलता, मनुष्य-जन्म की सार्थकता और मानव को देवत्वप्राप्ति होती है । अस्तु । व्यक्ति के जीवन का चरमोत्कर्ष-साधन ही भारतवर्ष का आदर्श था । इस सत्य की उपलब्धि के फल से ही भारतवासियों ने व्यक्ति के ऊपर राष्ट्र, समाज और परिवार का अधिकार कम कर के व्यक्ति को सबसे ऊँचे आसन पर बिठाया था । इसी से उन्होंने व्यक्ति के जीवन को भिन्न भिन्न विभागों में बाँट कर राष्ट्र, समाज और परिवार को अपने चरम इष्ट-साधन का सहायक मात्र मान कर भिन्न भिन्न सम्बन्ध स्थापित किये थे ।

इसी लिए वे क्रमशः कर्म, भोग, संसार और प्रवृत्ति के द्वारा जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में, त्याग-संन्यास और निवृत्ति के भिन्न भिन्न समन्वय करके, मनुष्य को पूर्णता को पहुँचाने की चेष्टा करते थे । यह इसी का फल है जो उनकी शिक्षा-व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक सी न थी । वय के अनुसार उसमें विचित्रता रक्खी गई थी । इसी से उसने विचित्र रूप धारण किया था । उन्होंने प्रवृत्ति और प्रकृति के भिन्न भिन्न विभाग किये थे । यह इसलिए, जिसमें प्रवृत्ति और प्रकृति के विकाश-साधन में सहायता मिले । इस विभाग-परम्परा को उन्होंने मुक्ति-प्राप्ति का सोपान समझा था । इसी उद्देश्य से उन्होंने पहले ही से विशिष्ट धर्मभाव और मुक्तिवाद की अवतारणा की थी । उन्हीं के द्वारा शिक्षार्थी के सारे जीवन को संयत और नियन्त्रित करने की चेष्टा की जाती थी । इस कारण यद्यपि सर्वाङ्गीण उन्नति का अभाव था, तथापि प्रकृत आध्यात्मिक भाव का विकाश होने ही से वे सन्तुष्ट रहते थे । शरीर को वे धर्म का साधन मात्र समझते थे । धर्मजीवन की रक्षा के लिए ही शरीर को वे पुष्ट करते थे ।



इस प्रकार की स्वाधीनता और आध्यात्मिकता ही प्राचीन भारत-वासियों की व्यक्तिशिक्षा और जीवनचर्या की व्यवस्थापक थी। इससे उनके साधारण राष्ट्र की जटिलता नहीं बढ़ी। उनका राष्ट्र उनके व्यक्तित्व, परिवार और समाज का नियन्ता नहीं समझा जाता था। वह केवल लोकरक्षा और देश-रक्षा का उपाय मात्र समझा जाता था। इस कारण उन लोगों को राष्ट्र में कार्य-सम्पादन करने और राष्ट्र-सभा में वक्तृता देने में कालातिपात नहीं करना पड़ता था। श्रमविभाग के नियमानुसार उन्होंने राजा के हाथ में आभ्यन्तरिक शान्ति और बाहरी शत्रु से देशरक्षा का भार समर्पण कर दिया था। यह करके और उद्देगरहित हो कर वे जीवन के चार आश्रमों के कर्तव्यों का पालन करते थे। राष्ट्र की उन्नति या अवनति के विषय में वे निरपेक्ष थे। स्वाधीनभाव से उन्होंने अपने अपने स्वातन्त्र्य-विकाश की व्यवस्था की थी। इस कारण राजसभा और राजधानी ही उनकी सभ्यता का केन्द्र न थी। उनकी आवासभूमि, उनके ग्राम-समूह ही, उनकी जीवनी शक्ति के आधार थे। इसी से राष्ट्र उनके सर्वविध जीवन को आस नहीं कर सका।

जन्मान्तर और परकालवाद में उन लोगों का धर्मभाव बद्धमूल था। उसी ने उनकी व्यवसाय-पद्धति को नियन्त्रित करके प्रत्येक व्यक्ति का स्वतन्त्र स्थान निर्धारित कर दिया था। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति अथवा समाज-विशेष की कठपुतली के सदृश न था। सब कोई अपने चरम लक्ष्य के अनुसार विकाश-लाभ करने का सुयोग पाता था। इसी से उस समय समाज में परिपूर्णता प्राप्त करने का सब को सुभीता था। प्रतियोगिता और जीवन-संग्राम की सारी बाधाओं को वे लोग, इसी कारण से, दूर कर सकते थे। शिल्प और वाणिज्य के कामों में उन्हें समाज की सहानुभूति थी। राष्ट्र की बिना किसी विशेष सहायता के वे स्वाधीनतापूर्वक उन्नति-साधन करते थे। समाज, जीवन, परिवार और ग्राम से सम्बन्ध रखनेवाली अपनी सभ्यता की बदौलत वे

बड़े बड़े शिल्प और व्यवसाय के काम करते थे। सख्य, सहानुभूति और समवाय की उनमें कमी न थी। उनकी सभ्यता साधारणतः भोगप्रवृत्ति द्वारा नियन्त्रित न थी। त्याग और मुक्ति की आकाङ्क्षा द्वारा वह परिचालित होती थी।

इस वैचित्र्यप्रियता के ही प्रभाव से उन्होंने व्यक्ति-विषयक शिक्षा-पद्धति में स्थूलरूप से असामञ्जस्य और असर्वाङ्गीणता का प्रवर्तन किया था। इस स्वाधीनता और मुक्ति की आकाङ्क्षा द्वारा नियन्त्रित हो कर वे विषयसम्पत्ति को धर्मजीवन और परिपूर्ण मानवत्व-विकाश का केवल एक साधन समझते थे। इसी तरह स्वातन्त्र्य, स्वाधीनता, मुक्ति और चरमलक्ष्य-साधन की आकाङ्क्षा ही उन्हें स्थापत्य, मन्दिर-प्रतिष्ठा और मूर्त्ति-निर्माण-कार्य में लगाती थी, और उनके शिल्पनैपुण्य और कारुकार्य की उन्नति का कारण होती थी। चाहे जिस शिल्प का काम हो उसे वे केवल अपने मन का भाव प्रकाशित करने के लिए करते थे। स्थूल शरीर के उत्कर्ष से ही वे मूर्त्ति के सौन्दर्य का बोध न करते थे। मूर्त्ति की बनावट से यदि भीतरी उच्च भाव व्यञ्जित होते थे तभी शिल्पी लोग अपने को कृतार्थ समझते थे। इसी से वे हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर शरीर वाले पहलवानों की मूर्त्तियाँ स्थापित न कर के आध्यात्मिक-भाव-व्यञ्जक ध्यानी योगियों की मूर्त्तियाँ बनाते थे और तद्द्वारा देवत्व और महाप्राणता का परिचय देते थे। वे असौम को ससीम के भीतर बन्द कर रखने को असम्भव और सामान्य स्थूल पदार्थों के साहाय्य से विराट सत्ता का चित्र दिखाने को पागलपन समझते थे। इसी से वे आकृति की सुन्दर सदृशता और सामञ्जस्य पर विशेष अनुरक्त न थे। इस लोक में मनुष्यों की अनेक प्रकार की असम्पूर्णता, विसदृशता और असामञ्जस्य के अभ्यन्तर वे अनाद्यन्त परम सत्य का प्रभाव उपलब्ध करते थे। इसी से बाहरी और स्थूल कदर्यता और असुन्दरता में भी उन्हें सौन्दर्य देख पड़ता था। वे असम्पूर्णता में भी



सम्पूर्णता, अनेक्य में भी ऐक्य और विरोध में भी मिलन की उपलब्धि कर सकते थे ।

प्राचीन भारतवासियों के साहित्य में भी इस विचित्र सभ्यता के अङ्गप्रत्यङ्ग चित्रित हैं । परिवार-गत और समाजगत जीवन के आदर्शों ने प्राचीन भारत के साहित्य में जैसा विकाश-लाभ किया है वैसा और किसी साहित्य में नहीं किया । भारतवर्ष के आचार, व्यवहार, रीतिनीति, साहित्य, कला, शिल्प, वाणिज्य आदि सभी विषय इस बात के प्रमाण हैं कि व्यक्तित्व-विकाश और स्वातन्त्र्योपलब्धि ही व्यक्ति का चरम लक्ष्य है और यही उसकी मुक्ति है । यही सत्य भारतवर्ष की आध्यात्मिकता और धर्मभाव का मूल है । व्यक्ति अपने चरम-लक्ष्य-साधन के लिए परिवार को, समाज को और राष्ट्र को जिस अवस्था में जितना अधिकार देता था उतने ही से सब लोग सन्तुष्ट थे । इसीसे भारतवर्ष में राष्ट्रीय विप्लवों के होने पर भी, भारतवासियों की शिक्षापद्धति, चिन्तापद्धति और साधारण सभ्यताप्रवाह अपने पारस्पर्य की रक्षा कर सका, विघ्न-बाधाओं को दूर कर सका और स्वातन्त्र्य के साथ ही साथ नवयुगोपयोगी नव जीवनी शक्ति को प्रकाशित करने में भी समर्थ हुआ ।

विनयकुमार सरकार ।

## हिन्दू-विश्वविद्यालय ।

( १ )

उठो हिन्दुओ नींद को छोड़ दो,  
जगो, जाल आलस का तोड़ दो ।  
मिटो सर्वदा को अविद्या-निशा,  
प्रभा-पूर्ण हो जाय प्राची दिशा ॥

( २ )

हितैषी तुम्हारे बड़े से बड़े—  
जगाते तुम्हें द्वार पै हैं खड़े ।  
न सोओ, उठो, धर्म में ध्यान दो,  
सुविद्या-प्रचारार्थ सदान दो ॥

( ३ )

तुम्हें योग ऐसा मिलेगा कहाँ,  
अहोभाग्य ! जो आगये ये यहाँ ।  
न चूको, भली भाँति सेवा करो,  
यथाशक्य आतिथ्य आगे धरो ॥

( ४ )

कहो तो इन्हें चाहिए क्या भला ?  
तुम्हारी वही पूर्व-विद्या-कला ।  
उसी का इन्हें इष्ट उद्धार है,  
यहाँ स्वार्थ से क्या सरोकार है ?

( ५ )

न सीखे कभी स्वार्थ की सीख ये,  
उसी के लिए मांगते भीख ये ।  
तुम्हारा अहो ! खोगया रत्न है,  
उसी के लिए हो रहा यत्न है ॥

( ६ )

इन्हें ईश यों ही नहीं क्या दिये ?  
बने “ भिक्षु ” ये हैं तुम्हारे लिये ॥  
तुम्हारे लिए ही लिया योग है,  
दिया त्याग संसार का भोग है ॥

( ७ )

तुम्हारे लिए नींद आती नहीं,  
इन्हें और चर्चा सुहाती नहीं ।  
तुम्हारी भलाई—यही काम है,  
इसी में इन्हें पूर्ण विश्राम है ॥

( ८ )

इन्हें योग्य साहाय्य दोगे न जो,  
स्वकर्तव्य में भाग लोगे न जो ।  
नहीं है तुम्हें तो ठिकाना कहीं,  
इसे भाड़ो ! भूल जाना नहीं ॥

( ९ )

अनुष्ठान है ज्ञान के याग का,  
चढ़ा रङ्ग है देश के राग का ।  
अहा ! क्या मनोमोहिनी मूर्ति है,  
सुनो, भारती भावना-स्फूर्ति है—



( १० )

उषःकाल है आज देखो जहां,  
 रहेगी हरे ! रात ही क्या यहां !  
 उठो भाइयो ! और आगे बढ़ो,  
 समुत्थान की चोटियों पे चढ़ो ॥

( ११ )

ज़रा जाति को देखिए तो सही,  
 कि विद्या बिना डूबती जा रही ।  
 अभी क्या हुआ, जो यही हाल है,  
 नहीं दूर तो, पास पाताल है ॥

( १२ )

बनी विश्व में जो बड़ी से बड़ी—  
 वही जाति है आज नीचे पड़ी !  
 दशा क्या यही थी तुम्हारी कहो ?  
 अविद्या हुई प्राणप्यारी अहो !

( १३ )

यही ज्ञान की आदि जन्मस्थली,  
 यहीं सभ्यता-सुन्दरी थी पली ।  
 नहीं विश्व में भूमि ऐसी कहीं,  
 अहो ! आज छाई अविद्या वहीं !

( १४ )

बने चीन, जापान, लङ्का अभी,  
 इसी देश के शिष्य थे ये सभी ।  
 न संसार में देश ऐसा कहीं—  
 रहा हो हमारा ऋणी जो नहीं ॥

( १५ )

पुरावृत्त पूरा नहीं प्राप्त है,  
 यही ज्ञात है—ज्ञान से व्याप्त है ।  
 यहां दूसरे देश आते रहे,  
 सुशिक्षा भली भाँति पाते रहे ॥

( १६ )

कमी थी न विद्यालयों की यहां,  
 सहस्रों पढ़े ब्रह्मचारी जहां ।  
 तभी तो जड़ें ज्ञान की थीं जमीं,  
 उखाड़ा उन्हें हाथ ! वे हैं हमीं !

( १७ )

सहस्रों सुधी शिष्य लेते हुए—  
 स्वयं अन्न-वस्त्रादि देते हुए ।  
 पढ़ाते उन्हें, जीविका थी कृषी,  
 कुलाधीश\* ऐसे यहां थे ऋषी ॥

( १८ )

सुनो, बौद्धकालीन किञ्चित्कथा,  
 रही वृद्धि विद्यालयों की यथा—  
 कि नालन्दा,† ओदन्त, तत्तादि की—  
 सुकीर्ति-प्रभा आज भी है टिकी ॥

( १९ )

ज़रा पूर्व-साहित्य ही देखिए,  
 उसी से दशा पूर्व की लेखिए ।  
 बना आज भी गौरवागार है,  
 झुकाता उसे शीश संसार है ॥

( २० )

पुनः पूर्व की सी महत्ता वही,  
 वही ज्ञान, सम्पत्ति, सत्ता वही ।  
 यहां आज भी दुर्लभा है नहीं,  
 हमें चित्त से इष्ट हो जो कहीं ॥

( २१ )

तुम्हें भाइयो ! इष्ट उत्थान हो,  
 पुनः पूर्व का चाहना मान हो ।  
 सुनो, तो, बड़ा अस्त्र उद्योग है,  
 उठो आज उत्थान का योग है ॥

( २२ )

समुत्थान का ज्ञान ही मूल है,  
 इसे भूल जाना बड़ी भूल है ।  
 सु-शिक्षा बिना ज्ञान होता कहाँ ?  
 करो यत्न शिक्षार्थ जो हो जहाँ ॥

\* हमारे पुराणों के अनुसार कुलपति या कुलाधीश उसे कहते थे जो दस हजार विद्यार्थियों को अन्न-वस्त्र देकर पढ़ाता हो ।

† नालन्दा, ओदन्तपुरी, तत्ताशिला, विक्रमशिला और श्रोधन्यकटक के बौद्धकालीन विश्वविद्यालय प्रसिद्ध हैं ।



( २३ )

सु-शिक्षा जहाँ है वहीं सिद्धि है,  
जहाँ सिद्धि होगी वहीं वृद्धि है ।  
ज़रा भी न सिद्धान्त ये भ्रान्त है,  
यहाँ पश्चिमी देश दृष्टान्त है ॥

( २४ )

अहो, आज कैसी वहाँ वृद्धि है !  
खड़ी हाथ जोड़े सदा ऋद्धि है ।  
वहाँ हो रही नित्य बातें नई,  
न हों, क्यों ? वहाँ फैल विद्या गई ॥

( २५ )

नभोयान आकाश में छा गये,  
बने पोत पातालगामी नये ।  
चलीं मोटरें और रेलें धनी,  
खड़ी चञ्चला एक चेरी बनी ॥

( २६ )

बनाया गया कोयला रत्न है,  
मरे भी जिये, हो रहा यत्न है ।  
कलें काम देने लगी हैं सभी,  
करेगा न विज्ञान क्या क्या अभी ॥

( २७ )

करिश्में इसी भाँति चाहो कहीं,  
दिखाना तुम्हें शक्य क्या है नहीं ?  
सभी शक्य है, जो सु-शिक्षा मिले,  
निशा है, खिले कञ्ज तो क्या खिले ?

( २८ )

सु-शिक्षा वहाँ पा रहे अन्ध भी,  
न आई वहाँ की यहाँ गन्ध भी ।  
सुहाया वहाँ का हमें वेश ही—  
गुणों का न आया यहाँ लेश ही !

( २९ )

वहाँ ज्ञान का ही बड़ा मान है,  
इसी अर्थ होता वहाँ दान है ।  
धनी “कारनेगी” सरीखे महा—  
करोड़ों सदा दान देते वहाँ ॥

( ३० )

धनी तो यहाँ भी बड़े से बड़े—  
अभी, आज भी, हैं हज़ारों पड़े ।  
नहीं किन्तु औदार्य वैसा यहाँ,  
बना प्राण है एक पैसा यहाँ ॥

( ३१ )

दशा वे नहीं देखते देश की,  
तथा भाइयों के महा क्रेश की ।  
हुई स्वार्थ से दृष्टियाँ मन्द हैं,  
मरें दूसरे, आप सानन्द हैं ॥

( ३२ )

जहाँ द्रव्य के साथ औदार्य है,  
व्यय-व्यर्थता का वहाँ कार्य है ।  
धनी अल्प हैं वे हमारे अभी,  
जिन्हें ध्यान हो देश का भी कभी ॥

( ३३ )

अहो ! दैव ! कैसी दशा हो रही,  
स्वयं शारदा ही हमें रो रही ।  
उठो शीघ्र, माँ है, मनावें उसे—  
महा-मन्दिरस्था बनावें उसे ॥

( ३४ )

कहीं रूठ के माँ चली जायगी—  
हमें मूढ़ता-मृत्यु आजायगी ।  
न टीका लगे देखना नील का,  
नहीं काम है भाइयो ! ढील का ॥

( ३५ )

बने मन्दिर श्रेष्ठ जो ज्ञान का,  
नहीं योग ऐसा कहीं दान का ।  
स्वयं सिद्ध है लोल लक्ष्मी सदा,  
रहे नित्य विद्या वही सम्पदा ॥

( ३६ )

नहीं ज्ञान सा दान कोई कहा,  
हमें इष्ट भी है वही हो रहा ।  
उठो, मेटने को अविद्यापना,  
करो विश्वविद्यालय-स्थापना ॥



( ३७ )

पढ़ें पुत्र प्यारे तुम्हारे जहां,  
बढ़ें नेत्र-तारे तुम्हारे जहां ।  
वहां दान दो, हो सके जो, वही,  
यही अर्थना प्रार्थना है यही ॥

( ३८ )

रही सर्वदा ज्ञान की जो धुरी—  
वही मुक्ति की भूमि काशी-पुरी ।  
पुनः व्यास हो पूर्व की व्यासि से—  
महा विश्वविद्यालय-प्राप्ति से ॥

( ३९ )

सभी ओर देखो कि क्या हो रहा,  
वही खो रहा जो पड़ा सो रहा ।  
तुम्हें और सोना नहीं चाहिए,  
मिला योग खोना नहीं चाहिए ॥

( ४० )

हरिश्चन्द्र, कर्णादि की सी कड़ी—  
परीक्षा तुम्हारी नहीं है बड़ी ।  
दिखादो कि हां आर्य-सन्तान हो,  
सभी जातियों के शिरःस्थान हो ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

## फलित ज्योतिष ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुश्च ।  
मृषेद ।



रतवर्ष प्राचीन विज्ञानों की जन्म-भूमि है । काल की महिमा से विश्व के सभी पदार्थों में परिवर्तन हुआ करता है । कोई भी पदार्थ किसी अपने विशेष-गुण के बिना संसार में चिरकाल तक स्थित नहीं रह सकता । प्राचीन काल की बहुत सी बातें—विद्याये, आचार, व्यवहार, आदि—अब नहीं हैं । जो हैं उनका स्वरूप बदल गया है । यह काल की

और प्राकृतिक स्थिति की महिमा है । जो बातें किसी रूप में मौजूद हैं, उनमें कुछ न कुछ विशेषत्व अवश्य है और संसार में उस विशेषता का प्रयोजन भी है । परन्तु जो उसे जानता नहीं वह उसका उपयोग भी नहीं कर सकता । जो कलों और उनके अवयवों को भली भाँति नहीं जानता वह उनसे कैसे काम ले सकता है ? जिसे किसी एक ही विषय का ज्ञान है वह सब विषयों का प्रतिपादन कैसे कर सकता है ? जो जिस विषय का पूरा ज्ञाता नहीं, वह उसका पार-गामी नहीं गिना जा सकता । और, जिस विषय को वह नहीं समझता उसे यदि वह निर्मूल कहें तो उसकी बात विश्वासयोग्य नहीं हो सकती । प्रयोजन यह है कि जो पुरुष किसी विषय का पूरा ज्ञाता हो वही उसे भला बुरा कह सकता है, या उसकी समालोचना करने का अधिकारी समझा जा सकता है, और वही उस सम्बन्ध में सबका विश्वासपात्र भी हो सकता है ।

प्राचीन महर्षियों ने फलित ज्योतिष का बीज बोया । वह समय पर अङ्कुरित, पुष्पित और फलित हुआ । इस विद्या का इतना आदर हुआ कि इसकी कई एक शाखायें अलग अलग हो गईं और संहिता, होरा, जातक आदि उनके नाम हुए । प्राचीन आचार्यों ने इन विषयों पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे । इतने पर भी संतोष न हुआ तो उन्होंने ग्रीस देश के फलित ग्रन्थों का फ़ारसी भाषा से अनुवाद किया और उन पर अपना मत प्रकट करके उनके प्रचार की चेष्टा की । मतलब यह कि उन्होंने सब तरह से इस विद्या के अङ्गों को पुष्ट किया, जिसमें किसी समय इसका लोप न हो और मनुष्य इसके उपयोग से वञ्चित न रहें । तबसे आज तक भारतवर्ष में फलित की खूब चर्चा है । साधारण मनुष्य तक ग्रहों के शुभाशुभ फल जानने की इच्छा रखते हैं । यहाँ तक कि कोई भी बड़ा काम बिना ज्योतिषी से पूछे नहीं किया जाता । चाहे वह सत्य कहे या झूठ, पर उसके वाक्य पर लोगों को अटल विश्वास हो जाता है ।



समय के परिवर्तन से, इस समय, इस विद्या के पूरे पण्डित बहुत कम पाये जाते हैं। लोगों की रुचि भी इधर से धीरे धीरे हटती जा रही है। इसके दो कारण मुख्य हैं। एक पठन-पाठन का भली भाँति प्रचार न होना, दूसरा योग्य शिक्षक का अभाव। पाठशालाओं में एक दो मुहूर्त और फलित के ग्रन्थ जो पढ़ाये जाते हैं, केवल उतने ही पढ़ने को हम पढ़ना नहीं कह सकते। वह शिक्षा केवल काम चलाने मात्र के लिए है। जो पढ़ना केवल स्वार्थ ही के खयाल से है उससे विद्या का यथार्थ उद्देश कैसे सिद्ध हो सकता है? जब ऐसे नवीन ज्योतिषी पाठशालाओं में या अन्यत्र शिक्षा पाकर बाहर निकलते हैं तब वे अपना जाल इधर उधर फैलाते हैं। वे अपने को जैमिनि मुनि या शुक्राचार्य से भी बढ़ कर बताते हैं। ऐसे पुरुषों की बतलाई बातें नहीं मिलतीं—न भूत, न वर्तमान, न भविष्य। इस दशा में फलित की निन्दा के सिवा और क्या हो सकता है? ऐसे ही लोगों को देख कर बहुत लोग फलित की हँसी उड़ाते हैं। कोई अच्छा विद्वान् हो तो यह सारी निन्दा, आक्षेप, अश्रद्धा ज़रा देर में दूर हो जाय। पर इसके लिए पूर्ण विद्वत्ता की ज़रूरत है। केवल गाल बजाने की नहीं। यह विद्या हमारे पूर्वज महर्षियों की आविष्कार की हुई है। लोक-हितार्थ इसका आविष्कार हुआ है। यदि हमसे इस विद्या की रक्षा न हो सके तो पूज्य ऋषियों का क्या दोष? आज भी देश में इस विद्या के पूरे ज्ञाता पाये जाते हैं। उनका यश देश-विदेश में सर्वत्र फैला हुआ है।

आचार्य वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता के सांवत्सरसूत्राध्याय में ज्योतिष के लक्षण लिखे हैं। उनमें से एक भी लक्षण आज कल के फलिताभिमानी ज्योतिषियों में पूरे तौर पर नहीं पाया जाता। फिर भला वे कैसे महर्षियों की करामात का साक्ष्य दे सकते हैं? वराहमिहिराचार्य ने लिखा है :—

जगति प्रसारितमिव लिखितमिव मतौ निष्क्रियमिव हृदये ।  
शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥

अर्थात्—जिस दैवज्ञ-ज्योतिषी का शास्त्र-ज्ञान ऐसा है मानो वह सारे जगत् में फैला दिया गया हो, बुद्धि-पट पर लिख दिया हो, हृदय में रख दिया गया हो—उसका शुभाशुभ फलादेश कभी निष्फल नहीं होता। वही पूरा दैवज्ञ है। उसकी वाणी मुनियों की वाणी के समान सत्य होती है। दैवगति जानने में समर्थ होने से ही ज्योतिषी की दैवज्ञ संज्ञा है। पर इस समय न वैसा किसी का शास्त्र-ज्ञान ही है, न आचार-व्यवहार ही है। जो कुछ लिखा है उस से सब उलटा ही पाया जाता है। इस दशा में इस विद्या से लाभ होने की कोई आशा नहीं। इस विषम-प्रवाह को रोकना दिन दिन कठिन होता जाता है।

युरोप के विद्वानों ने ज्योतिष-विद्या की आशा-तीत उन्नति की है। वह महा-आश्चर्य-जनक है और प्रशंसनीय भी है। यह भारत प्राचीन विद्या की जन्मभूमि है। यहाँ प्रत्येक विषय की बहुत कुछ उन्नति प्राचीन काल में हुई थी। पर ज्योतिष के सिद्धान्त और गणित के विज्ञान को उसकी चरम सीमा तक युरोप के विद्वानों ने पहुँचा दिया है। इससे हमारे यहाँ के सिद्धान्त की बहुत सी बातें फीकी पड़ गई हैं। अब देखते हैं कि युरोपवाले फलित की तरफ भी झुके हैं और उसकी सत्यता की खोज में उन्हें बहुत कुछ सफलता भी हुई है। हम लोग फलित को ऋषियों के अनुभव और विज्ञान का फल मानते हैं। उन लोगों का भी यही मत है। उनमें से कितने ही इसे सत्य मानते हैं और इसे काम में भी लाने लगे हैं। मालूम होता है कि वे सिद्धान्त की तरह कुछ दिनों में फलित के भी गुरु बन बैठेंगे। परिश्रम से पुरुष क्या नहीं कर सकता? हमारे यहाँ के लोग तो प्राचीन प्रतिष्ठा और माहात्म्य-वर्णन से ही लुब्धी नहीं पाते; इन तत्त्वों का अनुसंधान वे कब करें? कुछ लोग इस तरह के कुतर्कपूर्ण प्रश्न करते हैं—मनुष्य का ग्रहों से क्या सम्बन्ध? ग्रह कैसे कोई फल दे सकते हैं? इत्यादि।

एलन लिओ ( Alan Leo ) नामक एक ज्योतिषी ने फलित विषय पर एक बड़ा भारी ग्रन्थ



लिखा है। इस बात को अभी थोड़े ही दिन हुए। उस ग्रन्थ का नाम है ऐस्ट्रालजी फ़ार ऑल—(Astrology for All) यह पुस्तक प्रत्येक फलितभिमानी के पढ़ने और विचार करने लायक है। इसकी भूमिका में ग्रन्थकर्त्ता ने एक जगह लिखा है—

The truth can never be destroyed, and when we recognize in astrology the law of the supreme rules we need some courage, as well as mental ability, before we commence the task of learning the harmony of that law. Yet the same energy that is expended in seeking to refute it, would, if turned in the direction of learning its first principles, unbolt the gate that leads to its understanding.

अर्थात्—सत्य का कभी नाश नहीं होता। फलित ज्योतिष ईश्वरी नियमों के अनुसार बना है। उसे जानने के लिए साहस और मानसिक योग्यता की जरूरत है। जो परिश्रम और बुद्धि इस शास्त्र के खण्डन में खर्च की जाती है वह यदि इसके मूल सिद्धान्तों पर विचार करने में लगाई जाय तो सब बातें समझ में आने लगे।

एक जगह उसने फिर लिखा है—

It is certain that the truth may be found in this science if any one will seek labouriously in it, without any hate. The result gained from it, no doubt, has proved its highest sentiment and perceptions of our ancient sages.

अर्थात्—यदि कोई छिद्रान्वेषण की इच्छा त्याग कर परिश्रम के साथ खोज करेगा तो उसे यह जरूर मालूम हो जायगा कि यह विद्या सच्ची है। इस विद्या से इस बात का प्रमाण मिलता है कि हमारे प्राचीन ऋषियों के नियम बड़े उच्च थे और उनका अनुभव सच्चा था।

पाठक, देखिए विदेशियों को फलित ज्योतिष से कैसा आनन्द मिला है और कैसे गौरव से वे हमारे प्राचीन महर्षियों की कृतज्ञता जाहिर कर रहे हैं।

लिओ महाशय ने उक्त ग्रन्थ के सिवा दो ग्रन्थ और भी लिखे हैं, जो संसार को चकित कर रहे हैं। सुनते हैं, आप “Modern Astrology” नामक फलित-विद्या-सम्बन्धी एक मासिक पत्र भी निकालते हैं।

मदरास में भी एक फलित-विशारद ज्योतिषी हैं। उनका नाम है बी० सूर्यनारायणराव, बी० ए०। सुनते हैं आप बड़े फलितज्ञ हैं और सदा श्रौत-स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान किया करते हैं। आप कुण्डली बनाने की फीस ६०० रुपये तक लेते हैं। प्रत्येक विषय के फल बतलाने में ५० रुपये से कम फीस नहीं लेते और किसी के बुलाने पर ५० रुपये रोज़ाना फीस ले कर जाते हैं। यदि फीस के निर्णय के हिसाब से आपकी विद्वत्ता का अन्दाज़ा किया जा सकता हो तो आप धुरंधर फलितज्ञ होंगे—इसमें संदेह नहीं। आपने ज्योतिष-सम्बन्धी कई एक ग्रन्थ भी लिखे हैं। आपके एक छोटे से निबन्ध का नाम है :—“An Introduction to the study of Astrology in the light of Physical Science.” यह पुस्तक बहुत उत्तम है और बड़े परिश्रम से लिखी गई है। मनुष्य का ग्रहों से सम्बन्ध, संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को सौर शक्ति का आश्रय, उसी शक्ति के आश्रय पर स्थावर-जड़म विश्व की स्थिति आदि विषयों का वैज्ञानिक विचार इस ग्रन्थ में अच्छी तरह किया गया है। उनमें से कुछ बातों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है।

१—मनुष्य पर ग्रहों का जो प्रभाव पड़ता है वह उसकी शारीरिक स्थिति पर पड़ता है, बुद्धि पर पड़ता है और जीवन पर भी पड़ता है। पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। इसी से दिन-रात होते हैं। वह सूर्य के चारों तरफ़ जब एक बार घूम आती है तब सौर वर्ष होता है। सूर्य भी अपने अक्ष पर घूमता है। इसी तरह दूसरे ग्रह भी घूमते हैं। ग्रहों



की द्विगुणित गति—अर्थात् सूर्य के चारों तरफ की और अपने अक्षों पर की—सम्पूर्ण मिश्रित भौतिक पदार्थों की वृद्धि करती है। सूर्यविम्ब की कालिमा, जो कभी कभी यन्त्रों से देखी जाती है, कभी सूर्य-मण्डल को लाँघ जाती है कभी जिस स्थान पर देखी जाती है वहीं भट पट लुप्त हो जाती है, कभी बड़े वेग से वह सूर्य पर पड़ती है। विज्ञानवेत्ता इसका कारण ढूँढ़ रहे हैं, पर अभी तक कोई ठीक कारण नहीं जान सके। ग्रहों में ध्वने दिखलाई देना मामूली बात है। पर जिस ग्रह में यह प्रकट होता है उस पर, और दूसरे ग्रहों पर भी, उसका बड़ा असर पड़ता है। विज्ञान से इन बातों के नियम जाने जा सकते हैं।

इस ब्रह्माण्ड में सूर्य सबसे बड़ा और आश्चर्यमय पिण्ड है। उसी से पृथ्वी को गरमी और प्रकाश पहुँचता है। एक भी भौतिक पदार्थ सूर्य के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता और न उसके प्रभाव से बच ही सकता है।

संयोग, वियोग, दृढ़ता, आकर्षण और रासायनिक मिश्रण आदि ही संसार की शक्तियाँ हैं। ये नित्य हैं। इनका काम सदा जारी रहता है। ये व्यापक हैं। अत्यल्प प्रकृतिगत परमाणु और बड़े से बड़े परमाणुपुञ्ज, जो हजारों आश्चर्यमय काम कर रहे हैं, इन्हीं शक्तियों के अधीन हैं। एक परमाणु एक हजार छोटी छोटी कणिकाओं के संयोग से उत्पन्न होता है। प्रत्येक कणिका को एलेक्ट्रान (Electron) कहते हैं। ये सब वैद्युत शक्ति से आपस में बँधे रहते हैं। मनुष्यों को इस परमाणु का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। केवल योगियों को इसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जिन शक्तियों के नाम ऊपर दिये गये हैं वे सब मूल शक्तियाँ नहीं। किन्तु उन बड़ी शक्तियों में से हैं जिनकी बदैलत प्रकृति का काम चलता है। सृष्टि, स्थिति, संहार में ये उसकी मदद करती हैं। ये शक्तियाँ कभी बेकार नहीं रहतीं। ज्ञानशक्ति-सम्पन्न मानव-जाति में तथा पशु, उद्भिज्ज और खनिज पदार्थों में जो

आश्चर्यकारक भेद देखे जाते हैं वे सब सौर शक्ति के ही प्रभाव से हैं। प्रकृतिगत वैचित्र्य का यही प्रधान कारण है।

प्राकृतिक स्थिति ग्रहशक्तियों के प्रभाव से खाली नहीं। सूर्य आदि ग्रहों की शक्तियों की क्रिया और प्रतिक्रिया सारे भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध में बराबर जारी रहती है। पाषाण-शिलाओं का विभाग, आकाशीय वायु-बल, शीत और उष्ण का कार्य, आकर्षणशील और वैद्युत प्रवाह, सामुद्रिक तरङ्गों का उपद्रव, अनेक प्रकार के गैसों का भयानक संयोग, वायु के निरन्तर कार्य और पदार्थों का संयोग और विश्लेषण, सब कुछ सूर्य-किरणों ही के कारण हैं।

२—वस्तुगत, जातिगत और व्यक्तिगत भेदों से प्रकृतिगत असंख्य स्थूल विभाग हुए हैं। वे सब अपने वर्तमान स्वरूप और अवस्था में उत्तम शक्तियों से ही उपनीत हैं। ये सब ग्रहकिरणों के सार्वभौम प्रभाव से किसी तरह बचाये नहीं जा सकते हैं। अपने आकार और अपनी स्थिति के कारण भूत शक्ति का आश्रय उन्हें लेनाही पड़ता है। खनिज, उद्भिज्ज या पशुओं में दो पदार्थ स्वभाव में कभी समान नहीं होते। ये आश्चर्यमय अनन्त भेद सूर्य की शासक शक्ति के अधीन कर्म करने वाले हजारों कारणों से उत्पन्न हैं। सौर किरणें, दूसरे ग्रहों से प्रति-विम्बित होकर भी, अपने ही प्रकाशमान मण्डल की सत्ता के अधीन हैं। और पदार्थों की तरह, मनुष्य भी सौर शक्ति के अधीन है। अतएव सौर किरणों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव पर जरूर पड़ता है। स्थानीय जल-वायु का इसी प्रभाव से निश्चय होता है। वायु में भूषृष्ट और जल का बड़ा प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी की अपेक्षा जल की उष्णता अधिक हो जाती है। इस कारण जल में उष्णता अधिक रहती है। उष्णता और शीत को पवन एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता है और उनमें भेदभाव पैदा कर देता है। स्थानीय मनुष्य, पशु, उद्भिज्ज आदि के स्वभाव में आबोहवा परिवर्तन उत्पन्न कर देती



है। इस परिवर्तन से शीत प्रदेश उष्ण और उष्ण-प्रदेश शीतल हो जाते हैं। भूगर्भविद्या, प्राणिविद्या और धातुविद्या की आलोचना से आवाहवा के प्रभाव का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। ग्रहों के ही प्रभाव से ये परिवर्तन होते हैं।

सूर्य और उसके अग्रही ग्रह अपनी गति से चलते हैं। उनमें काले धब्बों का होना भी एक साधारण बात है। वे न तो सदा रहते हैं, न उनकी कोई नियमित गति ही है। सूर्य के पृष्ठभाग का कालापन सदा एक सा नहीं रहता। सूर्य के खग्रास ग्रहण के समय कई प्रकार की रंगीन ज्योतिर्धारा देख पड़ती है, जो विष्व के किनारे चारों ओर दूर तक फैली रहती है। यह ज्योति एक प्रकार की जलमय गैस, अर्थात् बाष्प, की ज्वाला है जो कभी कभी १०० या १५० हजार मील से भी ऊँची उठती है। हाइड्रोजन गैस (Hydrogen Gas) अर्थात् बाष्प का अधिकांश भूमि पर जल में रहता है। सूर्यविष्व में भी यह बाष्प बहुत है। भूमि से सूर्य की दूरी बानवे लाख मील है। इतनी अधिक दूरी से भी सूर्यकिरणों का प्रभाव इतना प्रबल और प्रत्यक्ष है कि भौतिक पदार्थ मात्र इस प्रभाव के आश्रित हैं। किरण-विकिरण (Spectrum Analysis) से यह ज्ञात हुआ है कि सूर्यमण्डल में बहुत से पदार्थों का समावेश है :—जैसे हाइड्रोजन (Hydrogen) आक्सीजन (Oxygen) लोहा, जस्ता, मैग्नेसियम (Magnesium) काल-कियम (Calcium) बेरियम (Barium) सोडियम (Sodium) चाँदी, सोना, ताँबा इत्यादि। वैज्ञानिक रीति से किसी ग्रह या जानवर के निर्माण में स्थिति, उन्नति और विनाश के कारणीभूत इन सब पदार्थों की आवश्यकता रहती है।

३—एक वर्ष में पृथ्वी जितनी सौर शक्ति पाती है वह सूर्यमण्डल में वर्तमान शक्तिपुञ्ज के दस लाखवें भाग के २००० वें भाग से भी कम है। पृथ्वी के सब पदार्थ इसी अतिन्यून शक्ति के वशीभूत हैं। जब पृथ्वी के पहाड़, समुद्र, नदियाँ, जङ्गल आदि, तथा

असंख्य जीव-जन्तु इस सूक्ष्माति सूक्ष्म शक्ति का मुँह ताकते हैं तब खनिज, उद्भिज्ज तथा पशुओं और प्राणियों की जीवनी शक्ति के लिए सूर्य के प्रकाश और उसकी उष्णता का कितना कम भाग आवश्यक है, सो पाठक स्वयं समझ सकते हैं। जिस स्थूल पदार्थ के सम्बन्ध से मानवीय शरीर की सृष्टि है उसी के सम्बन्ध से हमारे भूगोल का भी निर्माण है। वही सम्बन्ध सूर्य के प्रकाश और ताप का निर्माता है। जिससे व्यक्तिगत देह की स्थिति है वह शक्ति-सम्बन्ध ९२ लाख मील की दूरी से पृथ्वी की रक्षा करता है। इस स्थिति में मनुष्य की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के लिए कितनी सौर शक्ति काफी होगी, यह जानना असाध्य है।

सूर्यकक्षा के चारों तरफ़ भूमि के भ्रमण-मार्ग का व्यास १८०, ०००, ००० मील है। सूर्य का स्पष्ट व्यास ८५०, ००० मील है। उसका मानपिण्ड (Mass) भूमि से १३८, ००० गुना और घनमान (Volume) १२६, ००० गुना अधिक है। सूर्य और पृथ्वी, समान दूरी से, यदि किसी पदार्थ पर प्रभाव डालें तो पृथ्वी से सूर्य का प्रभाव उस पदार्थ पर ३१५००० गुना अधिक होगा। पृथ्वी न मालूम कितने लाख खनिज, उद्भिज्ज, जन्तु आदि के मेल से बनी है। उसके आकार का ठीक प्रमाण नहीं ज्ञात हो सकता। इसीलिए शास्त्र में इसका नाम अनन्ता रक्खा गया है। सौर शक्ति का भी भागज्ञान बहुत कठिन है। वास्तव में प्रकृति-शक्ति के कार्य बड़े ही आश्चर्यमय हैं। उसकी सूक्ष्मता और कार्य-शीलता का ज्ञान योगियों के सिवा और किसी को नहीं हो सकता। सूक्ष्म से सूक्ष्म जितनी कल्पना हो सकती है उतनी को वास्तविक भाग से महास्थूल समझना चाहिए।

४—ज्योतिषियों ने कोई २५० ग्रह निश्चित किये हैं। उनमें बहुत से प्रायः बेकार हैं। उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं। पृथ्वीसहित केवल आठ बड़े बड़े ग्रह प्रभावशाली हैं। उनको हमारे पूर्वाचार्यों ने पहले ही से निर्धारित कर लिया है। सब ग्रह



अपनी दीर्घवृत्त-कक्षा ( Elliptical Orbits ) में सूर्य की आकर्षणशक्ति ( Gravitation ) से ठहरे हुए हैं। सूर्य सबका केन्द्र और जीवनदाता है। पृथ्वी का पृष्ठ-भाग सदा आकाशीय और भौतिक पदार्थों की आकर्षण और उत्सारण-शक्तियों का विषय है। विश्व के दूसरे उत्पादक पदार्थों में उनकी स्वाभाविक शक्ति रहती है। उत्पत्ति, वृद्धि और क्षय सब अवयवीय पदार्थों की शक्ति की तुलना से हो सकता है। यही शक्ति अनेक भेदों में व्याप्त हो कर अपना काम कर रही है। भूमि का अपने अक्ष पर घूमना, सूर्य और चन्द्र से समुद्र का खिंचाव और चढ़ाव ( ज्वार-भाटा ) ये सब उसी शक्ति के कार्य हैं। मेह, भरना, नदी, भील सब पर सूर्य की सत्ता चलती है।

सूर्य की किरणें दोपहर तक बढ़ती और उसके बाद सूर्यास्त तक घटती हैं। कोई पदार्थ इन बढ़ती-घटती किरणों के प्रभाव से नहीं बच सकता। प्राकृतिक और रासायनिक प्रभाव अवस्थाभेद से भिन्न भिन्न हुआ करता है। समय और ऋतु का प्रभाव और तरह का होता है। असंख्य परमाणुओं के संयोग से पदार्थों की सृष्टि-क्रिया और उनमें प्राकृतिक भेद होते हैं। अन्त को वे वायु द्वारा भूमि में मिल जाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक संयोग और वियोग की धारा चला करती है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से क्रियाशक्ति की सूक्ष्मता के बहुत ही आश्चर्यजनक उदाहरण ज्ञात हुए हैं। उस शक्ति का प्रभाव इतना सूक्ष्म है कि उसकी लाखों संख्या जोड़ने पर भी उसका परिमाण बालू की एक छोटी सी रेणुका से अधिक नहीं होता। विज्ञानवेत्ताओं ने हिसाब लगाया है कि निरक्ष देश में मध्याह्न-काल में एक घंटे में जो धूप पृथ्वी पर पड़ती है उससे ३००,०००,०००,००० टन बर्फ गल सकती है।

फूलों में तरह तरह की रङ्ग, सुगन्धि, उनका विकास, पत्तियों का भरना, मुरझाना, सब सौर शक्ति के प्रभाव से ही होता है। सौर शक्ति से वर्षा, वर्षा से अन्न और अन्न से मनुष्यादि का पालन होता है। मनु ने भी लिखा है—

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।

अन्न, जल, उद्भिज्ज, वस्त्र आदि पदार्थ जो मनुष्य उपयोग में लाता है, सब में सौर शक्ति विद्यमान रहती है। अन्न का स्वादिष्ट या अस्वादिष्ट होना इसी शक्ति पर अवलम्बित होता है। सारी सरदी-गरमी और जल वायु का असर मनुष्य-शरीर पर पड़ता ही है। सूर्य के उदय-अस्त का, अन्धकार का, चाँदनी का, वर्षा का—सभी का—प्रभाव मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था और बुद्धि पर पड़ता है। इस वैचित्र्य का अनुभव प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन, प्रतिक्षण, हुआ करता है। सब पदार्थों का वैज्ञानिक संयोग प्रकृतिगत है। इस प्रकार पूर्वापर विचार से निश्चित होता है कि भौतिक पदार्थ निस्सन्देह सौर शक्ति के अधीन हैं।

५—मनुष्य के मस्तिष्क में जो नाड़ियों का संयोग है वही संस्कार-बुद्धि और अनुभव का हेतु है। वहीं से प्रत्येक कार्य करने की प्रेरणा हुआ करती है। प्रत्येक प्राणी की उत्पत्ति का कारण वही है। जिस पञ्चभूत की शक्ति से मानवीय देह की सृष्टि हुई है वही शक्ति उसकी स्थिति और विनाश में सहायक होती है। यह शक्ति—भीतरी हो या बाहरी—सौर शक्ति से खाली नहीं। तो भी मनुष्यों और ग्रहों का सम्बन्ध बहुतेकों की समझ में नहीं आता। आश्चर्य !

आत्मा बुद्धि से शक्तिशाली है, और सूर्य चन्द्र से। यद्यपि चन्द्र भूमि से बहुत दूर नहीं है, तथापि उसका प्रभाव सूर्य से अधिक नहीं पड़ता। क्योंकि चन्द्र को सूर्य ही प्रकाश देता है। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति इन सबका स्थान मस्तिष्क है। वह भी सूर्य-शक्ति के अधीन है। व्यवहार, बुद्धि या विद्या के सम्बन्ध की जो शक्ति सूक्ष्म रूप से उसमें वर्तमान है वही अदृष्ट, भाग्य, प्रारब्ध, कर्म कहलाता है। जिसका प्राकृतिक संयोग अधिक है उसी की—सत्त्व, रज और तम इन गुणों के अनुसार—मनुष्य में विशेषता देखी जाती है। इसी से कोई विद्वान्, कोई मूर्ख, कोई धार्मिक और कोई दुराचारी होता है। सब गुण प्रकृति से ही उत्पन्न हैं और उसी से



सब काम होते हैं। मनुष्य के विचार और काम समय समय पर बदला करते हैं। उस परिवर्तन का कारण वही मस्तिष्क ( Mind ) में इकट्ठी हुई शक्तियाँ, और उनका बाहरी पदार्थों से संयोग या वियोग है। इस प्रकार कार्य-कारण-भेद से प्रत्येक मनुष्य के रूप, गुण, स्वभाव, आचार, व्यवहार, विद्या आदि में अन्तर देखा जाता है। यह प्रकृति का विचित्र खेल है। यही ईश्वर की अपार महिमा है—शक्ति है—व्यापकता है।

अब आप ही देखिए कि विज्ञान का फलित से सम्बन्ध है या नहीं और है तो कितना है। कैसी गूढ़ बातें हमारे महर्षियों ने खोज निकाली हैं और सर्वसाधारण के उपकार के लिए किस सरलता से अपने ग्रन्थों में उनका विस्तृत वर्णन किया है। वास्तव में ज्योतिष और वैद्यक दोनों व्यावहारिक शास्त्र हैं। सृष्टिविज्ञान के वे पूरे निदर्शक हैं।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

## तपोवन ।

कैसा अच्छा यह आश्रम है जहाँ द्वेष का तनिक न गम है ।  
मानो शान्ति देह को धर कर आ बैठी है वन के भीतर ॥ १ ॥  
सिंहवधू चुप चाप खड़ी है उसका थन बछड़ा पीता है ।  
पागुर करती धेनु पड़ी है उसको चाट रहा चीता है ॥ २ ॥  
कहीं सिंहशिशु को मीठे फल उठा उठा कर गज देता है ।  
सूँघ सूँघ कर चल देता है मुख में वह न उन्हें लेता है ॥ ३ ॥  
केहरि के कंधे पर चढ़ कर मृगशिशु तरु-पत्ते खाता है ।  
कहीं सूँड़ में पानी भर कर करी सिंह को नहलाता है ॥ ४ ॥  
कहीं मेखला टँगी हुई है कहीं कमण्डलु पड़ा हुआ है ।  
कहीं वेदिका बनी हुई है कहीं संरोवर कहीं कुआँ है ॥ ५ ॥  
कहीं मृगाजिन, कहीं कुशासन बिछे हुए हैं सुन्दर भूपर ।  
कहीं गुफायें कहीं लतायें कहीं महा-निर्मल जल के झर ॥ ६ ॥  
सामगान तोते करते हैं कहीं व्याकरण वटु पढ़ते हैं ।  
कहीं कथा मुनिवर कहते हैं बैठे भूप उसे सुनते हैं ॥ ७ ॥

कहीं सारिका सरस वचन से श्लोक पुराणों के पढ़ती है ।  
फूल फलों के भारीपन से कहीं लता टूटी पड़ती है ॥ ८ ॥  
कोई वटु समिधा लाता है नीर लिये कोई आता है ।  
कोई अग्निहोत्र करता है पूत धूम सब दुख हरता है ॥ ९ ॥  
चम्पादिक फूले हैं तो भी हव्यगन्ध मन को हरता है ।  
नृप के सज्जित महलों को भी यह आश्रम लज्जित करता है ॥ १० ॥

रामचरित उपाध्याय ।

## हुएनसंग की भारत-यात्रा ।

हुएनसंग चीन का एक बौद्ध यात्री था । वह कान्यकुब्जेश्वर महाराज हर्ष-वर्द्धन के समय में, सन् ६२९ ईसवी में, भारत आया था । वह यहाँ १५ वर्ष रहा । उसने चीन लौट कर उस समय के हिन्दुस्तान का सविस्तर वृत्तान्त लिखा । उसी के चीनी ग्रन्थ के अंगरेजी अनुवाद के आधार पर हम संक्षेप में, कुछ बातें यहाँ लिखते हैं । उसके वर्णन के चार भाग किये जा सकते हैं—(१) समाज (२) राज्यशासनप्रणाली (३) धार्मिक व्यवस्था (४) फुटकर बातें ।

### (१) समाज ।

उस समय हिन्दू-समाज चार वर्णों में विभक्त था । प्रथम वर्ण में ब्राह्मण थे, जो इतर वर्णों से श्रेष्ठ माने जाते थे । उनका मान और आदर यहाँ तक था कि भारतवर्ष का एक दूसरा नाम ब्राह्मण-देश पड़ गया था । ये लोग अपने विश्वास के बड़े पक्के और अपने सिद्धान्तों पर बड़े दृढ़ थे । ये बड़े शान्तिशील थे और पवित्रतापूर्वक रहते थे । दूसरा वर्ण क्षत्रियों अथवा राजपुत्रों का था । इसी वर्ण के लोग कई पुस्त से राज करते चले आये थे । क्षत्रिय का धर्म दया और परोपकार करना था । वैश्य अथवा व्यापारियों का तीसरा वर्ण था । ये लोग व्यापार करते थे । चौथे वर्ण में शूद्र लोग थे । ये लोग दास-वृत्ति और खेती करते थे । हर वर्ण के मनुष्य अपने ही वर्ण में विवाह सम्बन्ध करते थे ।



एक ही गोत्र या खानदान में विवाह-सम्बन्ध हो सकता था। पति के मरने पर स्त्री का दूसरा विवाह अर्थात् विधवा-विवाह न होता था। कई वर्णसङ्कर जातियाँ भी थीं। चाण्डाल, मत्स्यजीवी और मेहतरों को नगर के बाहर रहने की कठिन आज्ञा थी। नगर में यदि वे आते थे तो बहुत छिप कर आते जाते थे। भारतवासी किसी दबाव से नहीं, किन्तु स्वभाव ही से पवित्रतापूर्वक रहने वाले थे। भोजन करने के पहले वे अवश्य स्नान करते थे। मिट्टी के जूटे बर्तन फेंक दिये जाते थे। सोने, चाँदी, ताँवे और पीतल आदि के बर्तन फिर से साफ़ किये जाते थे। स्नान करने के बाद लोग एक दूसरे को न छूते थे। पाखाने जाने और पेशाब करने के बाद वे अवश्य नहाते थे। चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों को वे अपने शरीर पर लगाते थे। हिन्दू-समाज में पर्दे की चाल न थी। महाराज हर्षवर्द्धन की बहिन राज्यश्री बहुत पढ़ी लिखी थी। धार्मिक वादविवादों में वह भी सभा में उपस्थित रहती थी और अपने भाई को राज्य-शासन में सहायता भी देती थी।

## (२) शासन-प्रणाली ।

हुएनसंग को हर्ष की शासन-प्रणाली से बहुत सन्तोष हुआ। शासन नरमी से किया जाता था। राजा हर्ष अपने विस्तृत राज्य का निरीक्षण और शासन राज्य-कर्मचारियों ही पर न छोड़ कर स्वयं राज्य की देख-भाल किया करता था। बरसात के सिवा और सब ऋतुओं में वह लगातार अपने राज्य के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता और सब कहीं घूमा करता था। जहाँ वह जाता वहाँ अपराधियों को दण्ड देता और विद्वानों तथा गुणियों का धन आदि से उचित आदर-सत्कार करता था। राज्य की आमदनी का मुख्य द्वार भूमिकर था। भूमिकर उपज का छठा हिस्सा लिया जाता था। राजकर्मचारियों और शासकों को मासिक अथवा वार्षिक वेतन नहीं दिया जाता था। उन लोगों को वेतन के बदले कुछ ज़मीन मुफ़्त दे दी जाती थी।

बेगार किसी से नहीं ली जाती थी। प्रजा सन्तुष्ट और सुखी थी।

भयानक अपराध और पाप-कर्म बहुत कम होते थे। हुएनसंग को कई बार रास्ते में डाकुओं और चोरों ने लूटा था। इससे मालूम होता है कि सड़कें और नदी-के रास्ते सुरक्षित न थे। कैद कर लेना प्रायः हर अपराध के लिए एक साधारण सज़ा थी। कैदियों पर निर्दयता-पूर्ण अत्याचार किया जाता था। कैदियों की गणना मनुष्यों में न की जाती थी। वे मरते हैं या जीते, इसका कोई पूछने वाला न था। सामाजिक तथा माता-पिता-सम्बन्धी अपराधों के लिए अपराधियों के नाक, कान या हाथ काट लिये जाते थे। इस प्रकार के अपराधी कभी कभी जलावतन भी कर दिये जाते थे। बहुत छोटे छोटे अपराधों की सज़ा जुरमाना थी। कुछ कर्मचारी और शासक राज्य की अच्छी और बुरी घटनाओं का लेखा रखने के लिए नियुक्त थे।

सेना के चार भाग थे (१) पैदल, २ सवार, (३) रथ और (४) हाथी। युद्ध में हाथी कवच (ज़िराबख़्तर) से आवेष्टित रहते थे और उनके दाँतों में नुकीले भाले लगे रहते थे। प्रधान सेना-पति हाथी पर सवार होता था। हाथी के दोनों तरफ़ एक एक सैनिक हाथी की रक्षा के लिए रहता था। रथ, जिस पर एक सेनापति सवार होता था, चार घोड़ों से खींचा जाता था। रथ के दोनों तरफ़ उसकी रक्षा के लिए पैदल रहते थे। सवार बहुत फुर्तीले और बहादुर थे। वे लोग ढाल, तलवार और भाले से सुसज्जित रहते थे।

शिक्षा का प्रचार बहुत था। विशेष कर ब्राह्मणों और बौद्ध-संन्यासियों में बहुत लोग शिक्षित थे। राज्य की ओर से भी शिक्षा का प्रबन्ध था। राजा हर्षवर्द्धन धन आदि से विद्वानों का सत्कार करता था, यह लिखा ही जा चुका है, वह स्वयं भी संस्कृत का अच्छा विद्वान् और लेखक था। उसके रचित संस्कृत के कई ग्रन्थ अब तक विद्य-



मान हैं। एक व्याकरण के सिवा, नागानन्द और रत्नावली नामक दो नाटक उसीके रचे हुए हैं। महाकवि बाण हर्ष की ही सभा के एक रत्न थे। बाण ने महाराज हर्षदेव की प्रशंसा में हर्षचरित नाम का एक गद्य ग्रन्थ लिखा है, जिससे उस समय का बहुत कुछ इतिहास जाना जा सकता है।

### (३) धार्मिक व्यवस्था ।

उस समय भारतवर्ष के बौद्ध धर्म और पौराणिक हिन्दूधर्म, ये दो प्रधान धर्म थे। उस समय लोग धर्म के मामलों में बड़े उदार थे। एक ही घर के मनुष्य भिन्न भिन्न धर्म के अनुयायी, अपनी इच्छा के अनुसार, हो सकते थे। हर्ष के घर का भी यही हाल था। वे लोग धर्म के मामले में सब प्रकार स्वतन्त्र थे। पुण्यभूति हर्ष के प्राचीन पुरुषों में से थे। वे, और देवताओं को छोड़ कर, केवल शिव की आराधना करते थे। हर्ष के पिता भी शिव के बहुत बड़े भक्त थे। पर हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्द्धन और उनकी बहिन राज्यश्री कट्टर बौद्ध थे। हर्ष स्वयं शिव, सूर्य तथा बुद्ध तीनों के उपासक थे। उन्होंने तीनों के बड़े बड़े मन्दिर भी बनवाये थे। किन्तु, पीछे, बौद्धधर्म के उपदेशों की तरफ उनकी विशेष प्रवृत्ति हो गई थी। अन्त में हृणसंग के प्रभाव से बौद्धधर्म के हीनयान सम्प्रदाय को छोड़ कर महा-यान सम्प्रदाय को उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

हर्ष के राजघराने का यह चित्र दर्पण के समान है। उसमें उस समय की धार्मिक स्थिति का प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। बौद्धधर्म यद्यपि अपने पहले के सर्वोच्च पद से च्युत हो गया था, तथापि हर्ष के समय तक वह देश में एक शक्तिशाली धर्म था। सर्वसाधारण के ऊपर उसका बहुत प्रभाव था। जैन धर्म उत्तरीय भारत में कभी भी विशेष रूप से प्रचलित न था। परन्तु अब तक वैशाली और पूर्वीय बंगाल में उसका अधिक प्राबल्य था। तथापि बौद्ध या पौराणिक धर्म के समान उसका प्रचार न था। पौराणिक हिन्दूधर्म हर्ष के समय में अच्छी तरह

प्रचलित हो गया था। पुराण बहुत प्राचीन और पवित्र पुस्तकें समझी जाने लगी थीं। पुराण-पाठ बहुत आदर के साथ होता था। बहुत स्थानों में प्रजा का अधिक भाग, आज कल की तरह, उस समय भी पौराणिक देवताओं का उपासक था। हर एक पुरुष अथवा स्त्री शिव, सूर्य तथा विष्णु अथवा और देवताओं में से किसी विशेष देवता की उपासना करने में हर तरह स्वतंत्र थी। यह बड़ी भारी बात थी कि इन सब भिन्न भिन्न धर्मों के मानने वाले तथा भिन्न भिन्न देवताओं की पूजा करने वाले एक ही स्थान पर बहुत शान्ति और मेल के साथ रहते थे। तथापि धार्मिक झगड़े भी उठ खड़े होते थे और यदा कदा धर्म के नाम पर अत्याचार भी होता था।

### (५) फुटकर बातें ।

उस समय भारतवर्ष में असंख्य छोटे बड़े नगर थे। जो नगर नदी के तट पर थे उनमें प्रायः काठ और लकड़ियों के घर थे। जो शहर पहाड़ या किसी ऊँचे स्थान पर थे उनमें मिट्टी या ईंट के मकान थे। उस समय हिन्दू लोग सिले हुए कपड़े बहुत कम पहनते थे। लोग सफेद रंग का कपड़ा बहुत पसन्द करते थे। वे देह के अधोभाग में एक कपड़ा पहनते थे जो जाँघ तक पहुँचता था। एक कपड़ा कमर से लगा कर बाँयें कन्धे तक लपेट लेते थे और दाहना कन्धा खुला छोड़ देते थे। स्त्रियाँ एक बड़ा लम्बा और ढीला ढाला कपड़ा पहनती थीं, जो कन्धे से लगा कर पैरों तक रहता था। उन लोगों के वस्त्र “कौशेय” अर्थात् रेशम के और “क्षौम” अर्थात् सन के होते थे। उन के वस्त्र भी पहने जाते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय सिर मुड़ाये रहते थे। वे बहुत पवित्रता और सादगी से रहते थे और बहुत मितव्ययी भी थे। अमीरों के वस्त्र क्रीमती होते थे। उनका पहनाव बहुत अच्छा था। उनके कपड़ों में सोने के तार और रत्न टके रहते थे। वे लोग चिकने तथा महीन वस्त्र पहनते थे। रुचि के अनुसार लोग कपड़ों को भाँति भाँति के रंगों से रँगते थे। अधिकतर लोग नंगे पैर रहते थे। उस समय



जूते का प्रचार बहुत न था । लोग अपने दाँतों को लाल या काले रंग से रँगते थे और कान छेदते थे । राजा-बाबू हाथी पर सवार होते थे । हाथी सब से अच्छी सवारी गिनी जाती थी । हाथी के बाद घोड़े थे । बीमार आदमी सात दिन तक कुछ नहीं खाने पाता था । इस बीच में यदि वह अच्छा न हो जाता था तो उसे दवा दी जाती थी । उस समय के फल—आम, आँवले, महुआ, बेर, कैथ, केले, नारियल और कटहल थे । अंगूर, सेब, नारंगी आदि भी होते थे । लहसुन और प्याज बहुत कम लोग खाते थे; जो उन्हें खाते थे वे समाज से बहिष्कृत कर दिये जाते थे । दूध, घी, चीनी, रोटी, भुने हुए अनाज और सरसों का तेल प्रधान खाद्य पदार्थ थे । मांस, मछली भी बहुत लोग खाते थे । सोने और चाँदी के सिक्कों तथा कौड़ियों के द्वारा लेन-देन होता था ।

जनार्दन भट्ट ।

## आदर्श जीवन ।

( १ )

मत्त होकर मोह से आलस्य-नद में मत्त बहो;  
कर्म की गुरुता समझ कर्तव्य के पथ को गहो ।  
मधुर मञ्जुल सौख्यकर संसार में उद्योग ही;  
मुक्ति का है द्वार निर्मल कर्म का शुभ योग ही ॥

( २ )

अकर्मण्य मनुष्य चिन्ता-रहित हो सकता नहीं;  
स्वार्थपूरित हृदय नर का मुदित हो सकता नहीं ।  
अल्प जीवन-काल है, करना अनेकों काम है;  
काम करने के बिना किसको यहाँ आराम है ॥

( ३ )

नित्य जीवन-मार्ग में सुख-शान्ति बिथराया करो;  
नम्र वाणी बोल कर सब प्राणियों का मन हरो;  
मधुर भाषण से सदा मधु-विन्दु टपकाया करो;  
विश्व में सर्वत्र निज औदार्य्य दर्साया करो ॥

( ४ )

प्रेम-पूरित मधुर मृदु भाषण सुधा के तुल्य है;  
एक भी उससे न बढ़ कर स्वर्ण-रत्न अमूल्य है ।  
दया, ममता, प्रेम, ये गुण स्वर्ग के सोपान हैं;  
स्वार्थ, हिंसा, क्रूरता, मद, कपट, नरक-निदान हैं ॥

( ५ )

सूर्य की किरणें यथा तम दूर करतीं लोक का;  
सौख्य सरसाती हुई सब दुःख हरतीं लोक का ।  
यों दया, समवेदना से लोक-आलोकित करो;  
व्यथित, पीड़ित, प्राणियों का शोकरूपी तम हरो ॥

( ६ )

प्राण जिनका जल रहा दुःखान्नि-सम्भव-ताप से—  
जर्जरित जो हो रहे दारिद्र्य के सन्ताप से ।  
वाच धोर अभाव का दुख दे रहा जिनको घना;  
हरो ऐसे बन्धुओं की भाइयो तुम यातना ॥

( ७ )

दुःख अपने भाइयों के यथाशक्ति सदा हरो;  
इस धरा को सुजनता-आलोक से उज्ज्वल करो ।  
प्रेम से निष्कामसे-वा करो पीड़ित सृष्टि की;  
प्राप्त होगी अमृत-धारा तुम्हें भी प्रभु-दृष्टि की ॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

## कालिदास के ग्रन्थ ।



हाकवि कालिदास का परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं । उनका परिचय कराना सूर्य को उँगली उठा कर दिखलाना है । जब तक इस भूमण्डल पर संस्कृत-साहित्य का अस्तित्व रहेगा तब तक कालिदास का नाम भी जीवित रहेगा । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । यद्यपि इस भारत में अनेक कवि हो गये हैं, तथापि जितनी प्रतिष्ठा कालिदास की हुई उतनी और किसी की नहीं हुई और न अब किसी की होने की ही सम्भावना है । कवियों की गणना में



सबसे पहले कालिदास ही का नाम लिया जाता है। वस्तुतः यह सौभाग्य किसी दूसरे कवि के ललाट में ब्रह्मा ने नहीं लिखा। कालिदास के बाद जितने कवि हुए हैं सभी ने उनको पूज्यबुद्धि तथा आदर की दृष्टि से देखा है। याद रहे, कालिदास की यह प्रतिष्ठा यथार्थ है; बनावटी नहीं। संस्कृत-साहित्यज्ञ-समाज में उनका बड़ा गौरव है। जिस श्लोक के निर्माता का पता नहीं लगता उसके निर्माता कालिदास ही ठहराये जाते हैं। मानो समस्त संस्कृत-साहित्य उनका साम्राज्य है और उसके वे सम्राट् हैं। उनका सब पर पूर्ण अधिकार है। धन्य कालिदास ! धन्य तुम्हारा भाग्य !

कालिदास कब हुए, इस विषय में अनेक विवाद रहने पर भी इतिहास-तत्त्वज्ञ विद्वानों ने निश्चय कर दिया है कि कालिदास श्रीविक्रमादित्य की सभा के प्रधान पण्डित थे। श्रीविक्रमादित्य के समय का भी निर्णय प्रायः पूर्णरूप से हो गया है। उन इतिहास-तत्त्वज्ञ विद्वानों ने सप्रमाण इस बात को सिद्ध कर दिया है कि श्रीविक्रमादित्य को हुए आज १९६८ वर्ष व्यतीत हो गये। उन्हीं का चलाया यह विक्रम संवत् है और उन्हीं के यहाँ “नवरत्न” थे, जिनमें प्रधान कालिदास थे। कालिदास ने भी “अभिज्ञान-शाकुन्तल” नामक नाटक की प्रस्तावना में स्पष्टरूप से लिखा है :—

इयं हि रसभावविशेषदीप्तागुरोर्विक्रमादित्यस्य अभिरूप-भूयिष्ठा परिपत् । अस्यां च कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन अभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नाटकेन उपस्थातव्यमस्माभिः । तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यतः ।

इससे जान पड़ता है कि अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक श्रीविक्रमादित्य महाराज की सभा में खेला गया था। कालिदास अपने ग्रन्थ के साथ साथ अपने स्वामी विक्रमादित्य का नाम भी अमर करना चाहते थे। इसी अभिप्राय से उक्त कवि ने एक नाटक का नाम “विक्रमोर्वशी” रक्खा है जिसमें “विक्रम” शब्द एक प्रकार से निष्प्रयोजन है। उसमें पुरूरवा और उर्वशी की कहानी है। कालि-

दास ने उक्त नाटक के नाम में “विक्रम” शब्द इस कारण रक्खा जान पड़ता है जिससे अपने आश्रय-दाता विक्रम-महाराज का नाम बहुत दिनों तक चला जाय। अपने रचित एक ज्योतिषग्रन्थ में भी विक्रमादित्य के प्रताप और सेना आदि का वर्णन उन्होंने स्पष्टरूप से किया है। “मेघदूत” में भी उज्जयिनी, महाकाल, विक्रम आदि का वर्णन उन्होंने किया है।

मेरी समझ में संस्कृत-साहित्य में कालिदास नामक दूसरा कवि हुआ ही नहीं। यदि हुआ भी हो तो न उसने कोई ग्रन्थ लिखा, न उसकी प्रसिद्धि हुई।

बल्लाल-कवि-रचित “भोज-प्रबन्ध” में भोजराज के साथ कालिदास का नाम पाया जाता है। ये कालिदास कपोल-कल्पित जान पड़ते हैं। विक्रमादित्य के सभासद् और रघुवंश, शकुन्तला आदि अद्वितीय ग्रन्थों के निर्माता तथा कविकुल-चूड़ामणि कहलाने वाले कालिदास से और भोज-प्रबन्ध के कालिदास से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। यदि भोजराज की सभा में कोई अलौकिक कालिदास नामक कवि होता और उसने कोई ग्रन्थ बनाया होता तो वह अवश्य ही उस ग्रन्थ में अपने आश्रयदाता भोजराज का नाम लिखता। किन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं देखा गया जिसमें भोजराज का किसी भी प्रसंग से नाम आया हो और वह कालिदास का लिखा हुआ हो। बल्लाल-रचित भोज-प्रबन्ध प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं; क्योंकि उसमें उन कवियों का नाम भी आया है जो भोजराज से सैकड़ों वर्ष पहले या पीछे हुए हैं। बल्लाल ने संस्कृत के सम्पूर्ण कवियों को भोजराज की सभा में एकत्र कर दिया है। पर इनका एक समय में होना कदापि सम्भव नहीं; इस बातको इतिहास-तत्त्वज्ञ विद्वान् भली भाँति जानते हैं। भोज-प्रबन्ध में भोजराज के विषय में जो श्लोक कालिदास के बनाये लिखे हैं वे किसी और ही के बनाये होंगे। भोजराज निःसन्देह बड़े विद्वान् और गुणग्राही थे। उनकी सभा में कालिदास के समान विलक्षण विद्वान् का न होना



बल्लाल को खटका होगा । इसी लिए शायद उन्होंने कालिदास को भी वहाँ ला रक्खा है । यह भी सम्भव हो सकता है कि औरों के अच्छे श्लोकों को लोगों ने कालिदास-कृत मान लिया हो । अतएव बल्लाल ने भी उन्हें कालिदास ही के नाम से लिख दिया हो । जो हो । यह बात विज्ञानों ने उच्च स्वर से स्वीकार कर ली है कि जिनके बनाये अभिज्ञान-शाकुन्तल आदि अद्वितीय ग्रन्थ हैं और जिनका नाम सब कवियों से पहले लिया जाता है उन महाकवि कालिदास से और भोजराज-समास्थित कालिदास से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं ।

इस समय कालिदास के नाम से जितने ग्रन्थ मिलते हैं उन सबकी गणना यद्यपि उत्तम ग्रन्थों की श्रेणी में नहीं, तथापि वे ग्रन्थ साधारणतः सुपाठ्य अवश्य हैं और सत्काव्य के गुणों से भूषित भी हैं । अतएव यदि वे सभी कालिदास-कृत मान लिये जायँ तो क्या हर्ज है ?

यह सच है कि जैसी उच्चश्रेणी की रचना अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मेघदूत आदि की है, वैसी उच्चश्रेणी की रचना शृंगार-तिलक आदि की नहीं, पर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं । कवि का हृदय सर्वदा एक सा नहीं रहता । कभी वह अत्यन्त विकाशभाव में आ जाता है, कभी मध्य में और कभी अत्यन्त संकीर्ण भाव में । इसी से एक ही ग्रन्थ में कोई स्थल विशेष मनोहर हो जाता है और कोई अत्यन्त साधारण । जब कि एक ही ग्रन्थ में इतना अन्तर पड़ जाता है तब ग्रन्थान्तर में भेद पड़ जाना कोई आश्चर्य नहीं । कवि के हृदय का भाव ही रचना का प्रधान कारण है । और कवि जितनी ही अधिक रचना करता जायगा उतनी ही उसकी रचना परिष्कृत होती जायगी । अभ्यास भी तो एक चीज़ है । निःसन्देह कवि की प्रथम रचना से द्वितीय रचना कुछ अच्छी होगी । एवं क्रमशः आदि रचना से अन्तिम रचना में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ जायगा । हो सकता है कि साधारण काव्य कालि-

दास की आदिरचना के समय के हों और उच्च काव्य अन्तिम रचना के समय के ।

अब हम उन ग्रन्थों की सूची लिखते हैं जो कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

१—रघुवंश	९—पुष्पबाणविलास
२—कुमारसम्भव	१०—राक्षसकाव्य
३—मेघदूत	११—शृंगारतिलक
४—अभिज्ञान-शाकुन्तल	१२—ऋतुचर्या
५—विक्रमोर्वशी	१३—श्रुतबोध
६—मालविकाग्निमित्र	१४—गंगाष्टक
७—ज्योतिर्विदाभरण	१५—श्यामलादण्डक
८—ऋतु-संहार	१६—नवरत्नमाला

हो सकता है कि और भी उनके बहुत से ग्रन्थ काल-क्रम से लुप्त हो गये हों । क्योंकि पहले छापे का प्रचार न था । हस्तलिखित ही पुस्तकें रहा करती थीं । इसीसे बहुत सी दुर्लभ पुस्तकें राष्ट्र-विप्लव आदि कारणों से नष्ट हो गईं । अस्तु ऊपर लिखी पुस्तकें छप चुकी हैं । अब उनके लुप्त होने का डर नहीं । पूर्वोक्त पुस्तकों में, दो तीन को छोड़ कर, और सब पुस्तकें मैंने देखी हैं ।

अक्षयवट मिश्र ।

## सोने की थाली ।

मठ-चौक में वाराणसी के एक दिन अचरज-भरी शशि-रूप थाली स्वर्ण की नभ से अचानक आ गिरी । फिर साथ ही आकाश-वाणी गई मन्दिर में सुनी—  
सद्धर्म-पालक पायगा यह भेंट देवों की चुनी ॥ १ ॥  
आलोक सी फैली खबर चहुँ ओर भारतवर्ष में,  
आने लगे दर्शक अनेकों धर्म-वाले हर्ष में ।  
निधनी, धनी, मूरख, गुणी आये वहाँ छोटे बड़े,  
सुख-नींद सोते साधु भी संवाद पाकर चल पड़े ॥ २ ॥  
दौड़े कई धन के लिए, कोई निरी यश-चाह में,  
कोई प्रकट कौतुक-भरे आये विचरते राह में ।  
तन, बाल, बाला, भूमि, छल के लिए भी पहुँचे कई,  
आशा दिखा कर कुछ न कुछ तृष्णा सभी को ले गई ॥ ३ ॥



उच्च

जो

लास

क

क

ल-

चार

थों।

गादि

नके

हीं।

प्रौर

थ।

॥

## सोने की थाली।

अनुभव निराशा का स्वयं पाकर पुजारी ने कहा—  
 यह देनगी वह पा सकेगा पुण्य हो जिसका महा ।  
 तब दर्शकों में एक ने ज्यों चाव से थाली छुई,  
 त्यों अंगुली के परस ही से रांग वह पल में हुई ॥ ४ ॥  
 अवलोक यह कौतुक नया मद-मोह मिथ्या सब घटा;  
 फिर रांग का सोना हुआ कर कलुष का ज्योंही हटा ।  
 तो भी अनेकों ने परीक्षा की अनेकों रीति से;  
 सकुचे न कुछ भी लोभ में अघ की प्रकाशक भीति से ॥ ५ ॥  
 क्रमशः सभी को गूढ़ निज पातक अचानक दिख गये;  
 मन पर सुवर्ण विचित्र अघ के जन्म भर को लिख गये ।  
 बारह महीने तक यही आवागमन होता रहा;  
 पर एक भी ऐसा न निकला पुण्य हो जिसका महा ॥ ६ ॥  
 विद्वान, शूर, कुलीन, योगी आश तज लज्जित फिरे;  
 जैसे चढ़े अभिमान में अपमान में तैसे गिरे ।  
 जब कुछ महीने और भी थाली न निज थल से डगी,  
 तब प्रेरणा मन में पुजारी के अचानक यह जगी ॥ ७ ॥  
 सद्धर्म-पालक लोभ धन-यश का कभी करते नहीं;  
 खेल-छन्द के कुविचार उनके हृदय में भरते नहीं ।  
 अवकाश है उपकार के कर्त्तव्य से ऐसा कहाँ,  
 हीरा-जड़ी भी स्वर्ण-थाली जो उन्हें लावे यहाँ ॥ ८ ॥  
 यह सोच कर भेजे पुजारी ने निमन्त्रण विनय से;  
 संवाद पा विख्यात उपकारी कई जन आ लसे ।  
 मठ-द्वार पर रोगी दुखी कोढ़ी बसे थे जो कई,  
 उन पर बहुत सी स्वर्ण-चाँदी होड़ में फँकी गई ॥ ९ ॥  
 कौतुक पुराना फिर हुआ ज्यों एक ने थाली छुई;  
 पहले हुई वह रांग की, फिर मूल सोने की हुई ।  
 इस भाँति सब विख्यात उपकारी विदित दोषी हुए;  
 धिक है उन्हें सौ बार सोना रांग हो जिनके लुप ॥ १० ॥  
 घटना नई फिर लाख पुजारी हुए विस्मित हर्ष में;  
 धर्मी रहा अब नहीं कोई सत्य भारतवर्ष में !  
 दर्शक निराशा से इधर बकने लगे अभिमान में—  
 करतब रसायन का भरा है स्वर्ग के इस दान में ॥ ११ ॥  
 बारह महीने और भी विख्यात जन आये गये;  
 कौतुक पुराने संग में सब के हुए फिर-फिर नये ।  
 तीजे बरस के अन्त तक आशा सभी की घट चली;  
 धीरज गया, लज्जा बढ़ी, फिर मची घर की खलबली ॥ १२ ॥

अन्तिम दिवस आया वहाँ पर एक जन अति दीनसा,  
 जो पिस रहा था कठिन कारागार में तब तक फँसा ।  
 अवलोक रोगी दुखी कोढ़ी नदी सी उमड़ी दया;  
 तट-नैन डूबे प्रेम-जल में हृदय उसका भर गया ॥ १३ ॥  
 सेवा उचित कर रोगियों की प्रेम से उसने कहा—  
 हे भाइयो, मठ-पास भी तुम सह रहे हो दुख महा !  
 पर जिस विधाता ने दिया है दुख वही सुख देयगा;  
 है कौन ऐसा दूसरा जो दीन की सुधि लेयगा ॥ १४ ॥  
 फिर दुख दिखा कर सुख दिया था उसे जिस भगवान ने,  
 मठ में गया वह प्रेम से उसका निहोरा मानने ।  
 कर जोड़ लोचन मूँद उसने हृदय से की प्रार्थना;  
 हे नाथ, मैं हूँ शरण तेरे, दास निज मुझको बना ॥ १५ ॥  
 फिर दण्डवत पड़ दण्डवत कुछ काल वह करता रहा;  
 उसके हृदय का प्रेम पूरण कुछ नहीं जाता कहा ।  
 मन चाहता था मैं यहीं ऐसी अवस्था में रहूँ;  
 इन रोगियों का कष्ट मेढ़ूँ, आप उनका दुख सहूँ ॥ १६ ॥  
 जब वह उठाने पर किसी के विवश हो जाने लगा,  
 तब फिर अचानक भाव यह मन में पुजारी के जगा—  
 अचरज नहीं यह दीन प्रभु का गुप्त कोई दास हो;  
 ज्यों धनी दिखते हैं कई मानो न पैसा पास हो ॥ १७ ॥  
 यह सोच कर उसको पुजारी ने वहीं लौटा लिया;  
 फिर प्रेम से बोला, तुम्हें यह दान है प्रभु ने दिया ।  
 वह स्वर्णथाली देख भारी भीड़ के भीतर पड़ी,  
 डरसा गया हो कर चकित, मन में हुई शङ्का बड़ी ॥ १८ ॥  
 उसको अचञ्चल देख फिर बोला पुजारी, हे सखा,  
 क्या दान यह प्रभु का दिया तुमने नहीं अब तक लखा !  
 भगवान की जो वस्तु है वह अंश है भगवान का;  
 यह जान शङ्का त्याग तुम आदर करो इस दान का ॥ १९ ॥  
 थाली भिन्नकते कांपते कर से कलङ्की ने छुई;  
 मच गया कोलाहल चमक जब चौगुनी उसमें हुई ।  
 संवाद पा आकर वहाँ धर्मज्ञ काशीराज ने  
 हर्षित समर्पा पात्र को वह पात्र सब के सामने ॥ २० ॥  
 पीछे खुला यह भेद वह जन सत्यवादी कृषक था;  
 सुनता सुनाता था सदा अति प्रेम से हरि की कथा ।  
 साथी न जब वह ग्राम-पति का हुआ अत्याचार में,  
 तब चौगुने नौ मास काटे कठिन कारागार में ॥ २१ ॥

कामताप्रसाद गुरु ।



## मुद्रा-राक्षस का हिन्दी-अनुवाद ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने महा-कवि-विशाख-  
दत्त-कृत संस्कृत-मुद्राराक्षस का  
एक हिन्दी अनुवाद किया है ।  
संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग के  
अध्यक्षों ने उसे, अत्युत्तम होने के कारण, आजकल  
मेट्रिक्यूलेशन आदि क्लासों में आदर देने के अनन्तर  
यहाँ के नौर्मल स्कूल की पाठ्य पुस्तकों में भी रख  
कर अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया है । अतः  
मुझे भी इसे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । भार-  
तेन्दुजी ने आरम्भ में विस्तीर्ण “पूर्व-कथा” और  
अन्त में “उपहार” लिख कर अपनी अपूर्व ऐतिहा-  
सिक विद्वत्ता और गवेषणा का परिचय दिया है ;  
और, “क्रूरग्रहसंकेतः” इत्यादि श्लोक की व्याख्या  
के शास्त्रार्थ में पण्डितवर बापूदेव शास्त्री और  
सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों के लेखों को देकर  
यह दिखलाया है कि उन्होंने संस्कृत का ठीक आशय  
समझने के लिए तत्तत्स्थलों पर बड़ा परिश्रम किया  
है । इससे मुझे यह विश्वास हुआ था कि उक्त बाबू  
साहब ने राजा लक्ष्मणसिंह की शकुन्तला के गद्यपद्य-  
मय हिन्दी अनुवाद की तरह, इस अनुवाद में मूल  
का ठीक आशय लाने का अवश्य परिश्रम उठाया  
होगा । पर उनके अनुवाद के कुछ अंश का मिलान  
मूल के साथ करने पर मेरा यह विश्वास जाता रहा ।  
कहाँ कहीं तो मैंने उनके हिन्दी-अनुवाद को मूल  
के अत्यन्त प्रतिकूल पाया । अतः मैं मुद्राराक्षस के  
मूल के कुछ अंशों को बाबू साहब के हिन्दी-अनुवाद  
के साथ तुलना करना चाहता हूँ । इस लेख को पढ़  
कर बहुत से महाशय मेरा उपहास करेंगे । कोई  
कोई शायद इस पर जुगनू और सूर्य का दृष्टान्त  
चरितार्थ करें । परन्तु अपने कर्तव्य और कृतकार्य के  
उत्तरदाता वे हैं । उन्हें जो उचित समझ पड़े करें ।  
मेरा अभिप्राय केवल आधुनिक अनुवादकों को  
सचेत करना और हिन्दी-साहित्य को लाभ पहुँ-  
चाना है ।

भारतेन्दुजी ने पूर्व-कथा के पृष्ठ १ पंक्ति १७ में  
लिखा है—“महानन्द के दो मन्त्री थे । मुख्य का  
नाम शकटार और दूसरे का राक्षस था । शकटार  
शूद्र और राक्षस ब्राह्मण था” । इसी तरह इनके  
पूर्ववर्ती टीका-टिप्पणी-कारों ने भी प्रायः यही दो  
मन्त्री महानन्द के बताये हैं । केवल कहीं कहीं नामों  
में भेद कर दिया है । परन्तु प्रथम अङ्क में चन्दन-  
दास को धमकाते हुए चाणक्य कहता है :—

अन्यच्च नन्दमिव विष्णुगुप्त—इत्यर्द्धोक्ते लज्जां नाटयित्वा  
चन्द्रगुप्तममात्यराक्षसः समुच्छेत्स्यतीति मामैवं मंस्थाः ।

पश्य—विक्रान्तैर्नयशालिभिः सुसचिवैः श्रीर्वक्रनासादिभि-  
र्नन्दे जीवति या तदा न गमिता स्थैर्यं चलन्ती मुहुः ।  
तामेकत्वमुपागतां द्युतिमिव प्रह्लादयन्तीं जगत्  
कश्चन्द्रादिव चन्द्रगुप्तनृपतेः कर्तुं व्यवस्थेत्पृथक् ॥ २२ ॥

यहाँ सविशेषण “वक्रनासादिभिः” पद से स्पष्ट  
प्रतीत होता है कि नन्द के अमात्यों में राक्षसादि  
अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा वक्रनास अधिक बुद्धिमान  
था और अग्रगण्य भी वही था । यदि यहाँ पर हम  
शकटार ही का दूसरा नाम वक्रनास मान लें तो यह  
बात सङ्गत नहीं ; क्योंकि “चलन्ती श्रीः स्थैर्यं न  
गमिता” पदों से चाणक्य ने यह अच्छी तरह व्यक्त  
कर दिया है कि जिस समय मैंने नन्दों को राजलक्ष्मी  
से च्युत कर दिया था उस समय उन वक्रनासादि  
मन्त्रियों से भी कुछ करते नहीं बना—अर्थात् उस  
समय ऐसे महामन्त्रों के सहायक रहते भी राजलक्ष्मी  
अन्यत्र चली गई । यदि वक्रनास शकटार ही का  
दूसरा नाम होता तो चाणक्य ऐसा कभी न कहता,  
क्योंकि इसी शकटार का अपमान करने के कारण ही  
नन्दों को राज से हाथ धोना पड़ा था । वह उस समय  
उनका सहायक न था, किन्तु विरोधी था । राक्षस  
का भी वह दूसरा नाम नहीं हो सकता ; क्योंकि  
“नन्दमिव विष्णुगुप्तः चन्द्रगुप्तममात्यराक्षसः समु-  
च्छेत्स्यतीति” और “कश्चन्द्रादिव” इत्यादि पदों से  
चाणक्य ने राक्षस की निन्दा की है और वक्रनास  
की अपेक्षा उसे न्यून सिद्ध किया है । इससे ज्ञात  
होता है कि वक्रनास नन्द का कोई बड़ा बुद्धिमान



मन्त्री था जिसका जिक्र भारतेन्दुजी ने न तो अपनी विस्तीर्ण पूर्व-कथा में किया और न टीकाकारों ने ही किया ।

इसके सिवा प्रथम अङ्क के ग्यारहवें श्लोक में भी—“कामं मन्त्रिद्रुमेभ्यो नयपवनहतं मोहभस्म प्रकीर्य” इत्यादि में “मन्त्रिद्रुमेभ्यः” इस बहुवचनान्त पद से शकटार के व्यतिरिक्त नन्द के अनेक मन्त्रियों का होना सिद्ध होता है । पर यह मैं भी नहीं जानता कि वक्रनास कौन था । यदि पाठकों में से किसी को उसका कुछ वृत्तान्त ज्ञात हो तो बतलाने की कृपा करें ।

राक्षस के गुणों की प्रशंसा करते हुए चाणक्य कहता है:—

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः

प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात्फलम् ।

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये

ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च ॥

मुद्राराक्षस, अङ्क १, श्लोक १५

अर्थ—जो सेवक मूर्ख और कातर होकर स्वामि-भक्त है वह किसी काम का नहीं; क्योंकि स्वामिभक्त होने पर भी, अर्थात् अपने स्वामी की हृदय से भलाई चाहने पर भी, मूर्ख और कातर होने के कारण वह किसी बड़े कार्य को सफलतापूर्वक सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता । कार्यसफलता सदा सद्बुद्धि और महोत्साह का अनुसरण करती है । इसी तरह यदि कोई सेवक बहुत बुद्धिसम्पन्न और कार्यदक्ष है, पर स्वामिभक्त नहीं, तो वह भी किसी काम का नहीं, क्योंकि स्वामिभक्ति के अभाव के कारण वह अपने स्वामी के हितसाधन में प्रवृत्त ही नहीं हो सकता । अतः जिनमें प्रज्ञा, विक्रम और स्वामिभक्ति ये तीनों गुण होते हैं वही सेवक सम्पत्ति और आपत्ति काल में राजा का कार्य-साधन कर सकते हैं । इन तीनों गुणों में से यदि एक भी गुण की कमी सेवकों में हुई तो धनादि को व्यर्थ बरबाद करनेवाली स्त्रियों के समान वे हँसी-ठट्टा मात्र के पात्र होते हैं ।

इस श्लोक में कवि ने अप्राज्ञ और कातर की तुलना भक्तिमान सेवक के साथ अन्वय-व्यतिरेक-युक्तियों से करके यह सिद्ध किया है कि उत्तम सेवक में अवश्यमेव तीनों गुण होने चाहिए । पर इसका अनुवाद भारतेन्दुजी ने इस प्रकार किया है:—

मूर्ख कातर स्वामिभक्त कलु काम न आवै ।

पण्डित हू विन भक्ति काज कलु नाहिँ बनवै ॥

निज स्वारथ की प्रीति करं ते सब जिमि नारी ।

बुद्धि भक्ति दोउ होइ तवै सेवक सुखकारी ॥

देखिए, इसमें बाबू साहिब ने विक्रमशाली पदार्थ को विलकुल ही छोड़ दिया है । क्या वह मूल में निरर्थक है ? क्या इस बात को सब लोग एकस्वर से स्वीकार कर लेंगे कि जो सेवक स्वामिभक्त और बुद्धिमान तो है, पर कार्यकरणोत्साही नहीं है वह भी अच्छा सेवक है ? मेरे विचार में तो यह आता है कि जो मनुष्य अपने गुणों को कार्य में परिणत करने का उत्साही नहीं, वह किसी काम का नहीं । प्रकृत विषय मंत्री के चुनाव का है । इसलिए मंत्री को प्राज्ञ और स्वामिभक्त होने के अतिरिक्त कार्यदक्ष और उत्साही भी अवश्य होना चाहिए । भला वह किस काम का मन्त्री जो समय पर कार्य करने से मुख मोड़ ले ।

और चलिए—उसी के आगे—मूल:—

तन्मयाप्यस्मिन्वस्तुनि न शयानेन स्थीयते । यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्नः । कथमिव । अत्र तावद्बृषलपर्वत-कथोरन्यतरविनाशेनापि चाणक्यस्यापकृतं भवतीति विषकन्यया राजसेनास्माकमत्यन्तोपकारि मित्रं घातितस्तपस्वी पर्वतक इति सञ्चारितो जगति जनापवादः । लोकप्रत्ययार्थम् अस्यैवार्थस्याभि-व्यक्तये, पिता ते चाणक्येन घातित इति रहसि त्रासयित्वा भागुरायणेनापवाहितः पर्वतकपुत्रो मलयकेतुः । शक्यः खल्वेष राजसमतिपरिगृहीतोऽपि व्युत्तिष्ठमानः प्रज्ञया निग्रहीतुम् ।

इसका भावार्थ :— इस लिए मैं भी इस विषय में सोता नहीं हूँ । यथाशक्ति उस ( राक्षस ) को पकड़ने के लिए यत्न कर रहा हूँ । वह प्रयत्न ऐसा है— मैंने लोगों में यह अपवाद फैला दिया है कि राक्षस ने चन्द्रगुप्त और पर्वतक इन दोनों में से



किसी एक को भी मारने से चाणक्य का अपकार हो सकता है, इस खयाल से विष-कन्या के प्रयोग द्वारा, हमारा अत्यन्त उपकारी मित्र पर्वतक मरवा दिया है, और, लोगों के विश्वास के लिए तथा इस बात को पुष्ट करने के लिए, मैंने पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के पास एकान्त में भागुरायण को भेज कर 'चाणक्य ही ने तेरे बाप को मरवाया है और वह तुझको भी उसी तरह मरवा डालेगा', यह भय दिला कर यहाँ से उसे भी भगा दिया है। यद्यपि वह अब राक्षस के साथ मिल गया है और उसी के कथनानुसार लड़ने के लिए प्रवृत्त होगा, तथापि बुद्धि से जीता जा सकता है।

अब भारतेन्दुजी का अनुवाद पढ़िए:—“सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूँ, यथा शक्ति उसी के मिलने का यत्न करता रहता हूँ। देखो पर्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और पर्वतक मेरे मित्र हैं, तो मैं पर्वतक को मार कर चन्द्रगुप्त का पक्ष निर्वल कर दूँगा ऐसी शङ्का कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विष-कन्या प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा इससे मलयकेतु मुझ से विगड़ रहा है। जो हो यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ा जायगा”।

इस अनुवाद का मूल के साथ मिलान करने से ज्ञात होगा कि “राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है,—” इसके स्थान में “भागुरायण ने मलयकेतु के जी में”—इत्यादि होना चाहिए। और, “मैंने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा” के स्थान में राक्षस ने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा” यह होना चाहिए। “तथा जो हो यदि यह राक्षस लड़ाई करने को.....” इसके बदले “जो हो यदि यह मलयकेतु लड़ाई करने को” इत्यादि होना चाहिए।

अब कुछ उदाहरण हम ऐसे देना चाहते हैं जिन में भारतेन्दुजी ने मूल का अर्थ बिल्कुल ही छोड़ दिया है:—

कोजागरी पौर्णिमा की रात में चन्द्रिकोत्सव देखने के लिए राजमहल की छत पर चढ़ा हुआ राजा शरदऋतु का वर्णन करता है:—

राजा—नाट्येनारुह्य दिशोऽवलोक्य । ग्रहो शरत्समय-सम्भृतशोभानां दिशामतिरमणीयता, कुतः—

शनैः श्यामीभूताः सितजलधरच्छेदपुलिनाः

समन्तादाकीर्णाः कलविरुतिभिः सारसकुलैः ।

चिताश्रित्राकारैर्निशिविकचनक्षत्रकुमुदै-

र्नभस्तः स्यन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः ॥ ७ ॥

भावार्थ:—नाट्यपूर्वक राजमहल की छत पर चढ़ कर और चारों ओर दिशाओं को देख कर राजा कहता है—शरदऋतु की शोभा से दिशाएँ बहुत ही रमणीय हो रही हैं; क्योंकि—

इस ऋतु में दशों दिशाएँ, नदियों की तरह, शोभा दे रही हैं। जैसे श्रावणादि मासों में गँदली होने के कारण नदियाँ स्वच्छ दृग्गोचर नहीं होतीं, उसी तरह आकाश में बादलों से आच्छन्न रहने के कारण दिशाएँ भी स्वच्छ नहीं रहतीं। पर आज, चातुर्मास के बीत जाने पर, आकाश और नदियाँ दोनों स्वच्छ हैं। अतः इस समय दशों दिशाएँ आकाश में, श्रावण में बहती हुई नदियों की तरह, शोभा देती हैं। आज कल जिस प्रकार चतुर्मास के बीत जाने पर धीरे धीरे नदियाँ विमल और कृश हो गई हैं उसी प्रकार दिशाएँ भी मेघों के न रहने के कारण स्वच्छ और खाली हो गई हैं। अर्थात् इस शरद ऋतु में दिशाएँ नदियों की तरह साफ़ और नदियाँ दिशाओं की तरह विमल हो गई हैं। अतः यहाँ उनका परस्पर उपमानोपमेय भाव है। जिस तरह आज कल दिशाओं में कहीं कहीं सफ़ेद बादलों के खण्ड दृग्गोचर होते हैं उसी तरह नदियों के किनारों पर भी कहीं कहीं थोड़ा सा सफ़ेद कुहरा दिखाई देता है। दोनों में सारस पक्षी सुन्दर मधुर स्वर करते हुए इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं। आज कल जिस तरह दिशाओं में सब तरफ़ तारागण खिले हुए पुष्पों की तरह शोभा दे रहे हैं उसी तरह नदियों में भी तारागणों के समान खिले हुए



कमल शोभा दे रहे हैं। आकाश और नदियाँ दोनों साफ़ होने के कारण दोनों में दूर तक दृष्टि जाती है।

पाठक, यहाँ पर कवि ने आकाश और नदियाँ दोनों का परस्पर उपमानोपमेय भाव दिखा कर और उनके विशेषणों को श्लेष से दोनों पक्षों में घटा कर, कमाल किया है। संस्कृत भाषा के रसिक ही इस प्राकृतिक वर्णन का वास्तविक आनन्दानुभव कर सकते हैं।

इसके आगे का श्लोक है :—

अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं

दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले ।

मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो

कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा ॥ ८ ॥

चातुर्मास में बढ़ा हुआ नदियों का जो पानी अपनी मर्यादा को छोड़ कर इधर उधर किनारों को तोड़ते हुए बह रहा था उसे, इस शरद ऋतु ने कम करके, ठीक अपने मर्यादित मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है—अर्थात् जिस तरह न्यायी राजा अपने राज्य में मर्यादा को छोड़ कर चलनेवाले को दण्ड दे कर सीधा कर देता है उसी तरह इस शरद ऋतु ने भी नदियों के उद्धृत जल को शान्तता से बहाया है। और, इस ऋतु ने धान के पौधों को बालों के भार से झुका कर यह दिखलाया है कि सुराज्य में धन-धान्य-सम्पन्न उत्तम पुरुष नम्र होकर रहते हैं। और, मयूरों के विष की तरह उग्र मद की हरने वाली इस शरद ऋतु ने यह भी सूचित किया है कि सुराज्य में कटु-वादी मदीनमत्त लोग दण्ड द्वारा चुप कर दिये जाते हैं। इस प्रकार इसने मानो लोगों को विनय की शिक्षा दी है।

कवि ने यहाँ पर शरद ऋतु में एक अच्छे नीति-चतुर राजा का आरोप करके उसके सुराज्य का क्या ही अच्छा चित्र खींचा है।

एक और श्लोक मूल का सुनिष :—

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुबलभ्य

मार्गे कथञ्चिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।

सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती

गङ्गां शरन्नयति सिन्धु-पतिं प्रसन्नाम् ॥ ९ ॥

भावार्थ :—यदि किसी नायक के कई स्त्रियाँ हों और उनमें उसका स्नेहाधिक्य देख कर उसकी मुख्य नायिका मन में मान कर के उससे नाराज़ हो जाय तो वह कुछ दिनों तक कलुषित-चित्त होकर अवश्य अलग रहेगी और पतिवियोग के कारण वास्तविक सुख से वञ्चित होकर कृश-शरीर भी हो जायगी। इस अवस्था में नायक की भेजी हुई प्रवीणा दूती उसे मना कर नायक के पास ले जाने की चेष्टा करेगी। इसी तरह संसार भर की नदियों को प्यार करने वाले सरित्पति से नाराज़ हुई गङ्गा मानो चातुर्मास में मानवती हो गई थी। अतएव गँदली हो कर इतस्ततः बह रही थी। उसे यह शरद ऋतु प्रवीणा दूती की तरह स्वच्छ-हृदय बनाकर और जल के कम हो जाने के कारण ठीक मार्ग में लाकर मानो उसके प्यारे पति समुद्र के पास ले जा रही है।

इस श्लोक में कवि ने गङ्गा में मानवती नायिका का आरोप किया है। फिर शरद ऋतु में नर्म-साचिव्य-चतुर दूती का आरोप कर के गङ्गा का मान-भङ्ग करा कर उसे उसके नायक समुद्र के पास ले जाना दिखाया है।

अब इन तीनों पद्यों के स्थान में भारतेन्दु ने जो कविता लिखी है उसे सुनिष :—

राजा—( ऊपर चढ़ कर ) आहा शरद ऋतु की शोभा से दिशा कैसी सुन्दर हो रही है :—

सरदविमल ऋतु सोहई, निरमल नील अकाश ।  
निशानाथ पूरन उदित, सोलह कला प्रकाश ॥  
चारु चमेली बन रही, मह मह महँकि सुवास ।  
नदी तीर फूले लखै, सेत सेत बहु कास ॥  
कमल कमोदिनि सरन में, फूले सोभा देत ।  
भौर वृन्द जापै लखै, गूँज गूँज रस लेत ॥  
वसन चाँदनी चन्द्रमुख, उडुगन मोती माल ।  
कास फूल मधुहास यह, सरद किधौं नव-बाल ॥



देखा आपने बाबू साहब की इस गजनिमीलना को । कोई भी संस्कृतज्ञ इसे मूल का अनुवाद स्वीकार न कर सकेगा । बाबू साहब ने भी शरद ऋतु का वर्णन किया जरूर है, पर उसका मूल से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । अथवा उन्होंने शायद यह दिखलाया हो कि मूल के व्यतिरिक्त इस प्रकार भी शरद ऋतु का वर्णन हो सकता है । इससे कोई महाशय यह न समझे कि मूल की कविता कुछ सदाश होगी । इसी कारण से बाबू साहब ने अपनी कविता निर्दोष बनाकर विशाखदत्त के दोषों का परिमार्जन किया है ।

शरद ऋतु की कोजागरी पौर्णिमा की रात को कौमुदी-महोत्सव देखने की इच्छा से राजा राज-महल की छत पर चढ़ा है । उस समय जो कुछ प्राकृतिक दृश्य उसके दृग्गोचर हुआ उसको उसने कह सुनाया । इसीसे उसने “निरमल नील अकास” और “निशानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास” कहा । इतना ही नहीं, किन्तु राजा की दृष्टि उस ‘चारु चमेली’ पर भी जा पड़ी जो खूब महँक रही थी । यह चारु चमेली, जो प्रधानतया वसन्त में खिलती है, उस शरद ऋतु की रात को नहीं मालूम राजा ने कैसे देखी । सम्भवतः राजा के उपवन में दोहद का प्रयोग भी होता होगा ; पर रात को वह देखने में कैसे आई ! चन्द्रिकोत्सव तो बन्द कर दिया गया था । खैर, चाँदनी छिटकी हुई थी; इससे शायद देख पड़ी हो । परन्तु चाँदनी में भी उसका साफ़ खिली हुई देख पड़ना असम्भव सा प्रतीत होता है । और यही आपत्ति भारतेन्दुजी के नदी के किनारों में फूले हुए कासों को भी देखने में आती है । एक अनेखी बात और भी देखिए । उस रात को तालाबों में कमल भी खिले हुए शोभा दे रहे थे ? क्या आज तक रात को कमलों का खिलना किसी भी कवि ने बताया है ? इतना ही नहीं, खिले हुए कमल और कुमुदनी के फूलों पर उस रात को मधुकर भी गूँज गूँज कर रस लेने के लिए आ रहे थे । अब पाठक ही बतलावें कि कभी उन्होंने रात के समय

बन्द हुए कमलों पर मधुकरों को रस लेते हुए देखा है ?

मुद्रा-राक्षस के द्वितीय अङ्क में मलयकेतु का भेजा हुआ एक बूढ़ा कञ्चुकी राक्षस के पास जाते समय अपने बुढ़ापे पर रोता है :—

कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया चाणक्यनीत्या यथा  
धर्मो मौर्य इव क्रमेण नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि ।  
तं सम्प्रत्युपचीयमानमनु मे लब्धान्तरः सेवया  
लोभो राक्षसवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च ॥ ६ ॥

जिस तरह नन्द को चौपट करके चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर में चन्द्रगुप्त को स्थापित कर दिया है, उसी तरह बुढ़ापे ने मेरे विषयाभिलाष को नष्ट करके अब मुझ में धर्म की स्थापना कर दी है । अर्थात् बुढ़ापा आजाने से मेरी रुचि सांसारिक विषय-सुखों से हट कर धर्म की तरफ़ चली गई है । और, इस समय, मलयकेतु की सेवा करने से, मौका पाकर, जिस तरह राक्षस बढ़ते हुए चन्द्रगुप्त को जीतना चाहता है, पर चाणक्य की नीति के प्राबल्य से जीत नहीं सकता, उसी तरह पहले से उसमें संलग्न रहने के कारण गले में पड़ी हुई इस राजसेवा से अवकाश पाने पर भी मेरा लोभ धर्म को जीतना चाहता है ; पर मैं अपने धर्म में पक्का हूँ । अतः कुलपरम्परागत कञ्चुकी का काम करता हुआ भी वाङ्मकोचित शमदमादिक धर्म की उपेक्षा नहीं करता हूँ । इससे वह लोभ मेरे धर्म को दबा नहीं सकता । इसका अनुवाद बाबू साहब ने किया है :—

नृपनन्द काम समान चानक नीति जरजर जर भयो ।  
पुनि धर्म सम पुर देह सों नृप चन्द्र क्रम सों बढ़ि लयो ॥  
अवकाश लहितेहि लोभ राक्षस जदपि जीत न जाइ है ।  
पै शिथिल बल भे नाहिं कोउ विधि चन्द्र पै जय पाइ है ॥

देखा आपने ! यहाँ पर अनुवादक महाशय ने उपमेय को छोड़ कर केवल उपमान ही को प्रधानता दे डाली है ।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि महाकवियों के ग्रन्थों का अनुवाद करने में थोड़ी सी भी भूल हो



जाने से महा भयङ्कर उलट फेर हो जाता है। इस लिए जो लोग इस विषय में हस्तक्षेप करना चाहें उन्हें सावधान होकर काम करना चाहिए। पाठक यह न समझें कि पूर्वोक्त स्थलों का अनुवाद करने में भारतेन्दुजी से जो त्रुटियाँ हो गई हैं वे छन्दोनियम-पालन करने के कारण हुई होंगी। गद्य का अनुवाद करने में भी कहीं कहीं उन्होंने असावधानी की है। देखिए :—

राजा—यद्येवं तर्हि कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य तावत्प्रयोजनं श्रोतुमिच्छामि ।

भावार्थ :—यदि ऐसा ही है तो मैं कौमुदीमहोत्सव रोकने का प्रयोजन सुनना चाहता हूँ ।

चाणक्य :—वृषल, कौमुदीमहोत्सवानुष्ठानस्य किं प्रयोजनमित्यहमपि श्रोतुमिच्छामि ।

भावार्थ :—वृषल, कौमुदीमहोत्सव करने का क्या प्रयोजन है, यह मैं भी सुनना चाहता हूँ ।

राजा—प्रथमं तावन्ममाज्ञाव्याघातः ।

भावार्थ :—पहले तो मेरी आज्ञा का पालन न करना ।

चाणक्य :—वृषल, ममापि तवाज्ञाव्याघात एव कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रथमं प्रयोजनम् ।

भावार्थ :—वृषल, तुम्हारी आज्ञा का उलङ्घन करना ही मेरा भी कौमुदी-महोत्सव रोकने का पहला प्रयोजन है ।

चाणक्य :—अथ त्वमपरमपि प्रयोजनं श्रोतुमिच्छसि तदपि कथयामि ।

भावार्थ :—और, तुम जो दूसरा प्रयोजन सुनना चाहते हो तो उसे भी मैं कहता हूँ ।

अब भारतेन्दुजी का अनुवाद देखिए :—

चन्द्रगुप्त—जब यही है तो पहले मैं पूछता हूँ कि कौमुदीमहोत्सव का निषेध क्यों किया गया ?

चाणक्य—मैं भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का क्या प्रयोजन था ?

चन्द्रगुप्त—पहले तो मेरी आज्ञा का पालन ।

चाणक्य—मैंने भी आप के आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदी-महोत्सव का प्रतिषेध किया ।..... और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ ।

यहाँ पर बाबू साहब ने वृषल शब्द उड़ा दिया है। अतएव, उस शब्द के रहने से चाणक्य का महा अभिमान और चन्द्रगुप्त को तुच्छ दृष्टि से देखना आदि जो व्यञ्जित होता था वह भी उड़ गया। और “ममाज्ञाव्याघातः” के अनुवाद में जो ठीक उसका विपरीत अर्थ—“मेरी आज्ञा का पालन” हुआ है, उससे बड़ी भारी क्षति यह हुई कि टीकाकारों ने इसका जो “ममाज्ञाव्याघातजनितो मनस्ताप एव प्रथम—फलत्वेन पर्यवसित इति सोल्लुण्ठनं वचनम्”—अर्थ किया है उसका मूलोच्छेद हो गया। “आप के आज्ञा के अपालन के हेतु ही” में ‘आप के आज्ञा’ के स्थान में ‘आप की आज्ञा’ होना चाहिए था।

और—“जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ”—यह अनुवाद भी ठीक नहीं। वह मूलार्थ का सर्वथा विरोधी है।

ऐसे सरल स्थलों का अनुवाद भी भारतेन्दुजी ने बड़ी ही असावधानता से किया है।

इसी तरह—“उत्सिक्तः कुसचिवदृष्टराज्यभारः” का अनुवाद आपने “राज-काज मन्त्री चतुर करत बिना अभिमान” कर डाला है। यह भी ठीक नहीं।

आधुनिक अनुवादकों से मेरी प्रार्थना है कि इस तरह मूल की उपेक्षा कर के अर्थ का अनर्थ न किया करें।

मेरी इच्छा इस समालोचना को इसी तरह ग्रन्थान्त तक पहुँचा कर फिर कुछ गुणानुवाद करने की थी, और मूल ग्रन्थ की भी समालोचना करने का विचार था। पर कई कारणों से वह इस समय न हो सका। यदि ईश्वरेच्छा हुई तो कालान्तर में फिर देखा जायगा।

मनोरथ पाँडे—(अलमोड़ा)

## सम्राट्-स्वागत ।

स्वागत स्वागत सम्राज्ञी-युत हे प्रिय पञ्चम जार्ज नरेश !

स्वागत श्वेतद्वीप-पङ्कज-रवि भारत-प्रजापुञ्ज-हृदयेश !

स्वागत प्रबल-प्रताप-निकेतन प्रजा-परम-प्रिय, प्रभुतागार !

भूमण्डल के पञ्चमांश के अधिपति न्याय-नीति-अवतार ॥ १ ॥



धन्य धन्य यह अवसर शुभमय, धन्य भाग्य भारत का आज,  
 धन्य आज का दिवस, धन्य है आर्यभूमि का प्रजा-समाज ।  
 आज आठ सौ वर्ष बाद \* है हुआ उपस्थित यह शुभ योग;  
 मिला हमें ईश्वरस्वरूप निज-भूपति-दर्शन का संयोग ॥ २ ॥

सजला, सफला, शस्यश्यामला, शोभा-शान्ति-सुधा-संयुक्त,  
 धर्म-कर्म की भूमि पुरातन विषय-विलास-व्यसन से मुक्त ।  
 आर्यावर्त भूल कर अपने सब दुख-क्लेशादिक को आज;  
 सजता है उत्साह-सहित नृप ! तब सुस्वागत का शुभ साज ॥ ३ ॥

घर घर ध्वजा-पताका-संयुत शोभित है वर वन्दनवार;  
 शुभमय सुन्दर दीपमालिका करती है शोभा-विस्तार ।  
 रात-दिवस का भेद मिटा कर मोदमत्त है सारा देश;  
 उदित हुआ जनमनोव्योम में राजभक्ति का शुभ दिनेश ॥ ४ ॥

आर्यभूमि की परम पुरातन सुभग राजधानी विख्यात;  
 दिल्ली की शोभा विलोक कर सुरपुर में है स्पर्धा जात ।  
 आये नाना वेश-भाव के देश देश से जहाँ नरेश  
 है एकत्र सभी देशों की शोभा अद्भुत जहाँ विशेष ॥ ५ ॥

कलकत्ता, मदरास, बम्बई, काशी आदिक नगर प्रधान,  
 राजभक्ति-सूचक उत्सव के बने हुए हैं केन्द्रस्थान ।  
 एकत्रित हो जहाँ सुलेखक, सम्पादक, कवि, वक्ता, धीर,  
 राज-दम्पती के चिरायु-हित विभु से करते विनय गभीर ॥ ६ ॥

घर-घर, ग्राम ग्राम में उत्सव करती है तब प्रजा सहर्ष;  
 नाच-गान, बाजे-गाजे से पूरित है यह भारतवर्ष ।  
 देव-मन्दिरों में जप, पूजन, हवन, यज्ञ, अन्नादिक-दान,  
 तब मङ्गल-हित आज हो रहे संकीर्तन के उचित विधान ॥ ७ ॥

शान्ति सहित निर्विघ्न पूर्ण हो भूप ! आपका शुभ अभिषेक,  
 देते हैं आशीष आज हम हिन्दू-मुसलमान हो एक ।  
 ले आशीष प्रजा अपनी की सकुशल लौटें आप स्वदेश,  
 राज कीजिए सम्राज्ञी सह, सुख से, हो दीर्घायु विशेष ॥ ८ ॥

तब राजत्व-काल भारत को कल्पवृक्ष सा हो भूपाल !  
 चिरयाचित फल मिले इसे कट जावे दुख-दारिद्र्य कराल ।  
 राजभक्त बन अपना शासन आप करें हिल मिल हम लोग;  
 ब्रिटिश-पताका की छाया में पावें सकल समुन्नति-योग ॥ ९ ॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

## अमेरिका आनेवाले विद्यार्थियों को सूचना ।

मुझे अमेरिका आने में किन किन आफतों का सामना करना पड़ा है और किन किन बातों की आवश्यकता पड़ी है, इसका उल्लेख मैं करना चाहता हूँ जिससे यहाँ आने की इच्छा रखनेवाले सावधान हो जायँ ।

पहली बात जहाज की है। मुझे तीसरे दरजे में वे वे कष्ट सहने पड़े हैं कि मैं किसी हिन्दू-विद्यार्थी को तीसरे दरजे में आने की कदापि सलाह न दूँगा। इस दरजे में मुसाफिर जानवरों के सदृश बन्द कर दिये जाते हैं। रहने की जगह वायु का प्रवेश बहुत ही कम होता है। स्थान बदबू से भरा होता है—मैं इटैलियन जहाज-कम्पनी, खैटिनें लाइन का जिक्र करता हूँ। मैं इसी के जहाज पर सवार होकर आया था। सुनता हूँ और कम्पनियों के तीसरे दरजे अच्छे होते हैं, पर मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। इन इटैलियन जहाजों पर बिस्तरे टाट के होते हैं, जो लोहे की पत्तियों पर बिछे रहते हैं। शौच का स्थान बहुत गन्दा होता है। इसमें स्नान करने का सुभीता नहीं होता। भोजन बहुत खराब मिलता है, जिसे हिन्दू कदापि मुँह में नहीं डाल सकता। मैंने पन्द्रह दिन तक इस कम्पनी के जहाज पर फलाहार करके जीवनयात्रा का निर्वाह किया। जो जो कष्ट इस गन्दे जहाज पर मुझे सहने पड़े हैं उनका उल्लेख मैं कहाँ तक करूँ। मैं ही उन्हें जानता हूँ। इन इटली के जहाजों पर कोई कदापि न आवे; और खास कर तीसरे दरजे में। बड़ी कठिनता तो यह है कि इटैलियन लोग हमारी बात नहीं समझते। जब इनसे किसी बात की शिकायत की जाती है तब बड़ी मुश्किल में जान आती है।

जब कोई विद्यार्थी घर से अमेरिका के लिए चले तब जहाज के किराये इत्यादि के अतिरिक्त कम से कम आठ सौ रुपये अपने साथ ले ले। यदि वह

\* महाराज पृथ्वीराज के स्वर्गारोहण के समय से आज पर्यन्त ।



यहाँ बहुत समय नहीं व्यतीत करना चाहता और शीघ्र ही विद्या-लाभ कर देश को लौट जाना चाहता है, तो उसे जरूर इतने रुपये लाना चाहिए। क्योंकि यहाँ पढ़ने के साथ ही हिन्दू विद्यार्थी धन नहीं कमा सकता। अनेक स्थानों में रात के समय भी शिक्षा-प्राप्ति का प्रबन्ध है। पर इस प्रकार कुछ सीखने में कई साल लग जाते हैं। फिर आठ घंटे की सख्त मजदूरी के बाद स्कूल जाना बड़ा कठिन होता है। आठ सौ रुपये विद्यार्थी के लिए आठ महीने को काफी होंगे। तब तक वह निश्चित रूप से अपने सारे समय को विद्याप्राप्ति में लगाता हुआ कालेज के एक सेशन को पूरा कर लेगा। तदनन्तर गरमी की चार महीने की छुट्टी में वह कदाचित् दूसरे वर्ष के लिए धन भी कमा सकेगा। और, यदि नहीं, तो इतने दिन अमेरिका में रह कर उसे कुछ तजर्बेवा तो अवश्य ही हो जायगा और वह जीविका के लिए कोई न कोई ढंग निकाल ही लेगा। यहाँ मांस-त्यागी हिन्दू के लिए रहना कठिन काम नहीं। हाँ उसे अपने हाथ से भोजन बनाना होगा; अन्यथा उसे कष्ट होगा। यहाँ वाले इतने मांसभक्षी हैं कि जब वे यह सुनते हैं कि हम मांस नहीं खाते तब हँसते हैं। वे कहते हैं कि किस तरह हम लोग बिना मांस खाये जीवित रहते हैं। रास्ते में निस्सन्देह बड़ा कष्ट होता है। जब कोई बम्बई छोड़े तब मार्ग के लिए पकवान, बिस्कुट और फल आदि अपने साथ अवश्य ले ले। मेरी माता के हाथ के बने हुए पकवान ने मार्ग में मेरी बड़ी रक्षा की। यहाँ फल-फूल, आटा-दाल, चावल और सब तरह के मसाले मिल जाते हैं। पर मँहगे जरूर मिलते हैं।

यहाँ आने वाले को बहुत असबाब साथ न लाना चाहिए। भारत के बने कपड़े यहाँ बिल्कुल काम नहीं आते। यहाँ के लोग उन्हें देख कर हँसते हैं। यहाँ आकर सब वस्त्र, फ़ैशन के अनुसार, खरीदना अच्छा है। बिस्तरा वगैरह तो कदापि न लाना चाहिए। क्योंकि जहाँ जहाँ रहना पड़ता है वहाँ बिस्तरा, कम्बल इत्यादि मिल जाता है; किरायेदार

को खरीदना नहीं पड़ता। मेरे पिता ने, मेरे मना करने पर भी, मेरे साथ बिस्तरा बाँध दिया, जिसे यहाँ तक लाने में दूना तो किराया लगा और कष्ट अलग सहन करना पड़ा। फिर भी वह मेरे कमरे के एक कोने में उसी प्रकार बँधा पड़ा हुआ है।

यहाँ आने वाला विद्यार्थी कम से कम एन्ट्रेंस पास हो। जितना ही अधिक वह शिक्षित होगा उतना ही कम समय उसे यहाँ लगेगा और सुभीता भी अधिक रहेगा। यदि कोई कारीगरी सीखने आता हो तो उसका कुछ ज्ञान होने से बहुत अच्छा होता है। इन्जीनियरिंग सीखने के लिए पिट्सबर्ग बहुत अच्छी जगह है। यहाँ पर विजली और लोहे इत्यादि के अनेक कारखाने हैं। यहाँ विद्यार्थी अच्छी तरह काम सीख सकता है। यहाँ उसे छः रुपये रोज मजदूरी मिलती है। यद्यपि यहाँ की फ़ीस बहुत है, पर हिन्दू विद्यार्थियों की फ़ीस बहुधा माफ़ हो जाती है।

आने वाले विद्यार्थी की तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी होनी चाहिए। चाल-चलन भी उसका अच्छा होना चाहिए। यहाँ स्त्रियों को बड़ी स्वतन्त्रता है। अभी तक तो यहाँ हिन्दू अच्छी दृष्टि से देखे जाते हैं। लोग हमें चाल-चलन का पक्का समझते हैं। पर जब तक वे यह नहीं जानते कि हम हिन्दू हैं तब तक हमें हबशी समझ कर हमसे घृणा करते हैं। इस कारण मातृ-भूमि की प्रतिष्ठा बनी रखने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने वाले ही यहाँ आवें।

जगन्नाथ खन्ना ।

## संस्कृत और हिन्दी कविता का विम्ब-प्रतिविम्ब-भाव ।

( १ )

नैतस्याः प्रसूतिद्वयेन सरले शक्ये पिधातुं दशौ  
सर्वत्रापि च लक्ष्यते मुखशशिज्योत्स्नावितानैरियम् ।

इत्थं बालतया सखीभिरभितो दृञ्जीलनाकेलिषु  
व्याधिद्धा रुदती मुखं च नयने स्वे गहर्ते कन्यका ॥१॥

( प्रबन्धचिन्तामणि )



✽

कानन लौं अँखियाँ ये तिहारी हथेरी हमारी कहाँ लागि फैलिहैं  
मूँ दे तऊ तुम देखति हौ यह कोरैं तिहारी कहाँ धौं सकेलि हैं ।  
कान्हर हू को सुभाव यहै उनको हम हाथ नहीं परगेलि हैं  
राधे जू ! मानो भलो कि बुरो अँखि मीचन संग तिहारे न खेलिहैं ॥

( कान्ह प्राचीन कवि )

( २ )

\* निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो-

नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः ।

मिथ्यावादिनि दूति ! बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे !

वार्षो स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥२॥

✽

खैरि को राग छुट्यो कुच को मिटिगो अधरारस देखौ प्रकासहि  
अंजन गो दग कंजन ते तन कंपत तेरोरु मंच हुलासहि ।

नेक हितू जन को हित चीन्हों न, कीन्हों अरी मन मेरो निरासहि  
बावरी ! बावरी न्हान गई पै तहाँ न गई वहि पीय के पासहि ।

( ३ )

घनतरधनवृन्दच्छादिते व्योम्नि लोके

सवितुरथ हिमांशोः संकथैव व्यरंसीत् ।

विरहमनुभवन्ती सङ्गमञ्चापि भर्त्रा

रजनिदिवसभेदं चक्रवाकी शशंस ॥

✽

पावस घन अँधियार में रह्यो भेद नहिं आन ।

राति द्यौस जान्यो परै लखि चकई चकवान ॥

( विहारी )

पद्मसिंह शर्मा

## रघुवंश-सम्बन्धिनी कुछ शङ्कायें ।

आप के सम्मानिय मासिक पत्र के गत कई अङ्कों में कवि-कुलगुरु के काव्यों में नीतिबोध, उनमें चित्र बनाने योग्य स्थल, कालिदास की निरङ्कुशता, इत्यादि गहन विषयों पर प्रशंसनीय लेख प्रकाशित हुए हैं । उन्हें पढ़ कर मुझे बहुत

\* सरस्वती में एक बार पहले इस श्लोक के साथ पद्याकर का पद्य दिया जा चुका है । आज कुमारमणि भट्ट का इसी अभिप्राय का एक पद्य मिला है । लेखक ।

हर्ष हुआ । विद्यार्थि-दशा में मैंने रघुवंश के कुछ प्राथमिक सर्ग पढ़े थे । उस समय की मेरी कई शङ्काओं का समाधान अब तक नहीं हुआ । क्या आप के विद्वान् पाठकों में से कोई उन्हें समझाने का श्रम उठावेगा ? शङ्कायें निम्न-लिखित हैं:—

( १ ) महाराज दिलीप अन्त्य ऋण से पीड़ित हो कर वशिष्ठ के आश्रम को पधारे और उससे छुड़ाने की गुरु से प्रार्थना की । वशिष्ठजी ने समाधि लगा कर सन्तति न होने का कारण ज्ञात किया । उन्होंने कहा कि एक समय जब आप स्वर्ग में इन्द्र का काम सप्पादन करके पृथ्वी पर आ रहे थे तब मार्ग में कल्पतरु की छाया में कामधेनु बैठी थी । घर जाने की जल्दी में आप उसकी प्रदक्षिणा करना भूल गये । इससे उसने अपना अपमान समझा और आपको शाप दिया कि बिना मेरी सन्तति को प्रसन्न किये तेरे सन्तान न होगी । वह शाप न तो आपने सुना और न आप के सारथी ही ने । कामधेनु तो इस समय पाताल में है । उसके द्वारों की रक्षा भुजङ्ग करते हैं । इसलिए वहाँ जाना अतिशय कठिन है । उसकी लड़की नन्दिनी मेरे घर है । उसे उसकी प्रतिनिधि समझ कर आप सपत्नीक उसकी सेवा करें । इस में शङ्का यह है कि जब कामधेनु ने ही शाप देते समय यह कह दिया था कि बिना मेरी सन्तति की सेवा किये तुम्हारे सन्तान न होगी तब वशिष्ठजी को यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि कामधेनु तो इस समय पाताल में है, उसकी बेटी नन्दिनी जो मेरे आश्रम में है उसी की सेवा करो । ऐसा कहना तो उस समय उचित था जब कामधेनु ही की सेवा करना आवश्यक होता । विदित रहे कि नन्दिनी ने अपनी ही प्रसन्नता के फल से वर-प्रदान किया था । उसने यह कभी नहीं कहा कि मेरी सेवा से मेरी माता तुम पर प्रसन्न हुई हैं और मैं उनकी तरफ से तुम्हें वर देती हूँ ।

( २ ) तीसरे सर्ग के ३८ वें श्लोक में महाराज दिलीप ने ११ अश्वमेध यज्ञ करके १०० वाँ यज्ञ करने की इच्छा से अश्व छोड़ा । रघु अश्व के रक्षक थे । इन्द्र ने अश्व को पकड़ लिया । रघु और इन्द्र में घोर युद्ध हुआ । रघु की वीरता से प्रसन्न होकर इन्द्र बोले कि घोड़े को छोड़ कर जो कुछ तुम मांगोगे वही मैं दूँगा । रघु ने प्रार्थना की कि यदि आप अश्व नहीं छोड़ते तो यज्ञ के यथाविधि अनुष्ठान करने से जो फल प्राप्त होता है वह सब मेरे पिता को हो । इन्द्र ने 'तथास्तु' कहा और अपने ही दूत द्वारा अपने वरदान की



सूचना महाराज दिलीप को पहुँचाई। इस प्रकार सौ यज्ञ पूरे हो जाने पर भी कविकुलगुरु यही कहते जाते हैं (रघुवंश के तीसरे सर्ग का ६६ वाँ श्लोक देखिए) कि उस महान् राजा ने स्वर्गारोहण के लिए मानो अश्वमेध-यज्ञों की ६६ डण्डों वाली सीढ़ी तैयार की। या तो उन्हें सौ डण्डों की सीढ़ी कहना चाहिए था या इस श्लोक को ३८ वें श्लोक के बाद समीपही कहीं लिखना चाहिए था।

(३) राजा रघु दिग्विजय के लिए निकले। अपरान्त देश के राजा से कर ले कर वे पारस देश पर चढ़ाई करने को चले (देखो रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ६०) यहाँ कवि ने उपमा दी है कि मानो संयमी तत्त्व-ज्ञान द्वारा इन्द्रियों को जीतने जाता है। क्या आध्यात्मिक ग्रन्थों में यही क्रम बतलाया गया है कि मनुष्य पहले संयमी बने, फिर तत्त्व-ज्ञान द्वारा इन्द्रिय-दमन करे? यदि ऐसा है तो फिर संयमी कहते किसे हैं? क्या इन्द्रिय-दमन अन्तिम साध्य है और तत्त्वज्ञान द्वारा प्राप्त होता है?

मण्डला-निवासी एक जिज्ञासु।

## विविध विषय।

### १—राजमुकुट और राज्याभिषेक की सामग्री।

गलैण्ड के राजसिंहासन पर बैठनेवाले राजाओं के मुकुट ने आज तक सात रूप धारण किये हैं। अथवा यह कहना चाहिए कि उसका सात दफे रूपान्तर हुआ है। यह रूपान्तर (१) विलियम विजयी (२) रिचार्ड, प्रथम (३) हेनरी, सप्तम (४) रानी एलिज़बेथ (५) चार्ल्स, द्वितीय (६) महारानी विक्टोरिया और (७) जार्ज, पञ्चम के समय में हुआ है। क्रम क्रम से इसने अपना वर्तमान रूप पाया है और क्रम क्रम से इसकी शोभा, सुन्दरता और मूल्य बढ़ता गया है। महारानी विक्टोरिया के मुकुट में और रत्नों के सिवा २७८३ हीरे थे। वर्तमान महाराज के मुकुट में अफ़रीका में प्राप्त हुए दो अनमोल हीरों में से छोटा हीरा भी लगाया गया है। इन हीरों का वर्णन सरस्वती में एक बार प्रकाशित हो चुका है। इसके

सिवा सेंट एडवर्ड नाम का एक मुकुट और है। वह अभिषेक के समय केवल एक बार धारण किया जाता है। महारानी मेरी का मुकुट भी अनेक रत्नराजिमण्डित एक अद्भुत वस्तु है।

इंग्लैंड के राजाओं का राजदण्ड भी एक अजूबा और अनमोल चीज़ है। महाराज पञ्चम जार्ज के राजदण्ड में अफ़रीका वाला क्यूलियन नामक बड़ा हीरा भी अब जड़ दिया गया है। इससे उसका मूल्य और महत्त्व और भी बढ़ गया है। इसके सिवा एक और राजदण्ड है जिस पर फास्ता की मूर्ति है। हाथी-दाँत का भी एक राजदण्ड है। महारानी का राजदण्ड अलग ही है।

अभिषेक-तेल रखने का पात्र; जिसमें तेल डाल कर अभिषेक किया जाता है वह चम्मच; पूजा, चमा, न्याय और दण्ड के सूचक चार प्रकार के चार खड्ग और चक्र आदि और भी कई चीज़ें हैं जिनका काम अभिषेक के समय पड़ता है। इन सबके समूह का चित्र इसी संख्या में अन्यत्र दिया गया है। इनके अंगरेज़ी नाम और संक्षिप्त विवरण भी इस संख्या के अन्त में, पाठकों के सुभीते के लिए, दिये गये हैं। राजमुकुट के क्रम-विकाश के चित्र भी, इस संख्या में, पाठकों को देखने को मिलेंगे।

### २—समुद्र में डूबी हुई लक्ष्मी निकालने का यत्न।

अमेरिका में वरजीनिया नाम का एक भाग है। वहाँ के समुद्रतट से थोड़ी दूर पर मेरिडा नामक जहाज़ टकराकर डूब गया। उसमें साठ लाख की कीमती चीज़ें डूब गईं। सौ गज़ गहरे पानी में वह जहाज़ डूबा पड़ा है। परन्तु केप्टन विलियमसन नामक एक साहब इसकी दौलत को निकालने की फ़िक्र में हैं। इसके लिए उन्होंने एक दस्तावेज़ भी मालिकों को लिख दी है। आप इस तरह का काम बहुत दिनों से कर रहे हैं। गोताखोर लोग तीस गज़ से अधिक गहरे पानी में काम नहीं कर सकते। किन्तु केप्टन विलियमसन ने पानी के भीतर १०० गज़ से माल निकाल लाने का काम अपने ऊपर लिया है। पानी के भीतर काम करने की आपकी तरकीब सुनिए। एक बड़ा लम्बा चौड़ा नल समुद्र के नीचे तक आप पहुँचाते हैं। इस नल में सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। नल के नीचे के



हिस्से में एक ऐसा कमरा है जिसमें बहुत से मनुष्य मिल कर काम कर सकें । उसमें बिजली का प्रकाश रहता है । हवा नल से ही आती जाती है । नीचे का कमरा डूबे हुए जहाज़ के ऊपर रक्खा जाता है । काम करने वाले अपना अपना काम कमरे के भीतर करते रहते हैं । परिश्रम और अध्य-  
वसाय से क्या नहीं हो सकता । एक ये लोग हैं । एक हम हैं जो डूबी हुई पृथ्वी का वाराहजी के द्वारा निकाले जाने का वृत्तान्त सुन कर बैठे बैठे 'हरे हरे' किया करते हैं ।

गिरिधर शर्मा ।

### ३-मौर्य-वंशी राजाओं की जाति ।

इतिहास और पुरातत्त्व के कोई कोई विद्वान् मौर्यवंशी राजाओं को क्षत्रिय समझते हैं, शूद्र नहीं । बौद्ध-ग्रन्थों के आधार पर पहले मौर्य राजा चन्द्रगुप्त के पिता को वे एक ऐसे पहाड़ी राज्य का राजा बतलाते हैं जहां मोर पक्षी बहुत थे । वे कहते हैं कि इसीसे उसके वंशज मौर्य कहलाये । ब्राह्मणों ने यह झूठी लिख दिया है कि मुरा-नामक शूद्रा रानी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण चन्द्रगुप्त और उसके वंशजों का नाम मौर्य पड़ा । मौर्यवंशी राजा बौद्ध थे । वे ब्राह्मणों का आदर न करते थे । इस कारण ब्राह्मणों ने इन्हें शूद्र कह दिया । उनका यह भी कहना है कि किसी पुराण या मुद्राराक्षस नाटक में मुरा की कथा का उल्लेख नहीं है ।

( १ ) अच्छा तो मौर्य शब्द क्या मयूर से भी सिद्ध हो सकता है ? मुरा से तो हो सकता है ; मयूर से कैसे ? मयूर का अपभ्रंश मोर तो बहुत पुराना शब्द नहीं । क्या मोर से ही मौर्य बना है ? इसका प्रमाण ? ( २ ) ब्राह्मणों का अना-  
दर तो बौद्ध-धर्मावलम्बी राजा करने लगते थे । चन्द्रगुप्त तो बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुआ ब्राह्मण-द्रोही राजा न था । होता तो चाणक्य से उसकी कैसे बनती ? फिर ब्राह्मणों का उससे द्वेष करने का कारण ? ( ३ ) हाँ, ब्राह्मणों ने क्या और भी किसी बौद्धधर्म के अनुयायी को द्वेषवश शूद्र कहा है ? कहा है तो किस किस को ? ( ४ ) मुद्राराक्षस सातवीं या आठवीं सदी का नाटक है । उसमें मुरा का नाम तो, नहीं, पर चन्द्र-  
गुप्त शूद्र अवश्य उसमें कहा गया है । यथा :—

यदि भ्रशमभियुक्तः सोऽभ्युपेयाद्विनाशं  
ननु वृषल वियुक्तास्तादृशेनापि पुंसा ।

अथ निजवलमुख्यान् नाशयेत्सापि पीडा  
नवगज इव तस्मात्सोऽभ्युपायैर्विनेयः ॥

इसमें जो वृषल शब्द है उसका क्या कोई बड़ा अच्छा अर्थ है ? ( ५ ) विष्णुपुराण के चतुर्थांश में तो चन्द्रगुप्त के पिता की भी उत्पत्ति शूद्रा से बतलाई गई है और उससे आरम्भ करके आगे के सभी राजा शूद्र कहे गये हैं । देखिए :—

महानन्दिसुतः शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धो महापद्मो नन्दः परशु-  
राम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविता । ४ । ततः प्रभृति शूद्रा  
भूमिपाला भविष्यन्ति ।

इस पुराण के अनुसार महापद्म-नन्द के सुमाल्य या सुमाली आदि आठ पुत्र थे । नवां चन्द्रगुप्त था । यदि चन्द्र-  
गुप्त मुरा नामक नाइन के पेट से पैदा हुआ न भी माना जाय तो भी जब पिताही शूद्रागर्भ-सम्भूत था तब पुत्र का क्षत्रियत्व कैसे अक्षुण्ण रह सकता था । इस पुराण के टीका-  
कार रत्नगर्भ भट्टाचार्य ने इस सम्बन्ध में मुरा और मौर्य-  
वंश की बात इस तरह साफ़ साफ़ लिख दी है :—“ चन्द्रगुप्तं  
नन्दस्यैव पत्न्यन्तरस्य मुरासंज्ञस्य पुत्रं मौर्याणां प्रथमम् ” ।

### ४-अम्बाले का काच का कारखाना ।

अम्बाले में कई वर्ष से काच का एक कारखाना है ।  
उसका नाम है :—अपर इंडिया ग्लास वर्क स । इसके सेक्रेटरी  
श्रीयुत अलखधारीजी ने अपने यहाँ की बनी हुई शीशियों के  
कुछ नमूने भेजे हैं । शीशियाँ कई तरह की हैं । गोल हैं ;  
चिपटी हैं ; चौकोर हैं ; अण्डाकार हैं । इनके सिवा और भी  
अनेक आकार की हैं । प्रत्येक आकार की शीशी छुटाई बड़ाई  
के लिहाज़ से, फिर भी अनेक प्रकार की हैं ; एक ड़ाम से  
लेकर बीस औंस तक की हैं । जर्मनी और जापान की बनी  
हुई शीशियों से ये किसी बात में कम नहीं । उसमें भी यह  
विशेषता है कि विदेशी शीशियों की अपेक्षा इनके दाम कम  
हैं । हमारे एक डाकूर मित्र ने इन्हें देखा और बहुत पसन्द  
किया । उन्होंने अब यही शीशियाँ मँगाकर काम में लाने  
का निश्चय किया है । इस कारखाने में सफ़ेद, नीली, हरी  
आदि कई रंग की शीशियाँ बनती हैं । दवात, लैम्प, गोंद-  
दानी, चटनी रखने की बोतलें, इत्र रखने की खूबसूरत  
शीशियाँ आदि भी यहाँ बनती हैं । काच के काम में विशेष  
योग्यता रखने वाले एक महाशय की निगरानी में ये सब



चीजें यहाँ बनती हैं। कई भारतीय युवक इस कारखाने में काम भी सीख रहे हैं। हमारे हिन्दुस्तानी डाक़रों और वैद्यों को चाहिए कि वे इस कारखाने की शीशियों को मँगावें। एक बार आजमाकर तो उन्हें ज़रूर ही देखें। यदि उनके काम की हों तो क्यों अन्य देश की बनी चीज़ों का व्यवहार करें। गवर्नमेंट तक जब इस देश की बनी चीज़ें लेकर यहाँ की उद्योगशीलता बढ़ाने की चेष्टा कर रही है तब कोई कारण नहीं कि हम लोग विदेश की चीज़ों की अपेक्षा इस देश की चीज़ों का क्यों न अधिक आदर करें। उत्साह देने से इस कारखाने की और भी अधिक उन्नति होने की आशा है।

## ५—भारत की गत मनुष्य-गणना।

भारतीय मनुष्य-गणना की निश्चित संख्या प्रकाशित हो गई। सारे देश भर की जन-संख्या ३१,५१,३२,५३७ निकली। १९०१ ईसवी में जो मनुष्य-गणना हुई थी उससे इस वर्ष दस फी सैकड़ा वृद्धि हुई—अर्थात् गत दस वर्षों में २,०७,७१,४८१ मनुष्य बढ़े। जिन प्रांतों में जन-संख्या बढ़ी है उनमें शिकम प्रधान है। १९०१ में वहाँ की जन-संख्या ५६,०१४ थी; वह अब बढ़ कर ८७,६२० हो गई है। इस प्रकार शिकम की जन-संख्या ४६ फी सैकड़े के हिसाब से बढ़ी। मध्य-प्रदेश ने भी अच्छी उन्नति की। फी सैकड़े २६ के हिसाब से वृद्धि हुई। दस वर्ष पहले वहाँ १६,३१,१४० मनुष्य थे; पर अब २१,१७,००२ हो गये हैं। पूर्वी बङ्गाल और आसाम में भी २५ फी सैकड़े वृद्धि हुई, अर्थात् १,१८,०४५ मनुष्य बढ़े। बंगाल की जन-संख्या ५,२६,६८,२६६ निकली। यह संख्या अन्य प्रान्तों की जन-संख्या से अधिक है; परन्तु बंगाल उन सब प्रान्तों से पीछे है जिनकी जन-संख्या में वृद्धि हुई है। बंगाल ने केवल ३ फी सैकड़े के हिसाब से उन्नति की है।

कुर्ग, पंजाब, पंजाब के देशी राज्य, युक्त-प्रदेश और बिलोचिस्तान की जन-संख्या में कमी हुई है। बिलोचिस्तान में ७३, पंजाब के देशी राज्यों में ४३ और कुर्ग में ३ फी सैकड़े के हिसाब से कमी हुई। १९०१ ईसवी में युक्त-प्रदेश की आबादी ४,७१,८२,०४४ थी, जिसमें बढ़ना तो दूर रहा, गत दस वर्षों में ३,५५,०६६ मनुष्यों की कमी हो गई।

विशेष कमी अवध में हुई है। १९०१ में सब मिला कर १४,६६,५१,८२४ पुरुष थे; पर अब उनकी संख्या बढ़ कर १६,१३,२६,११० हो गई है। स्त्रियाँ १४,४४,०६,२३२ थीं। उनकी संख्या अब १५,३८,०६,४२७ हो गई है।

## ६—भारत में एक नया उत्कापात।

उत्कापात क्या चीज़ है—इस पर कई लेख और नोट सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं। सकर और लरखाना ज़िलों के अधिकांश भागों में, गत ८ अक्टोबर को, रात के दस बजे, एक अद्भुत दृश्य आकाश में देखा गया। पूर्व की ओर से एक बहुत बड़ी उत्का बड़े वेग से पश्चिम की ओर जाती हुई देख पड़ी। इस उत्का में कुछ कुछ हरे रंग का बड़ा ही तीव्र प्रकाश था। यद्यपि चन्द्रमा की चन्द्रिका उस समय छिटकी हुई थी, तथापि उत्का के ज्योतिर्मय प्रकाश के सामने उसकी छटा विलकुल ही हतप्रभ जान पड़ी। इस उत्का का प्रकाश इतना तेज़ था कि ज़मीन पर यदि सुई गिर जाती तो वह भी अच्छी तरह देखी जा सकती। इसके पतन का दृश्य कोई दो मिनट तक रहा। फिर इस उत्का के टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गये। वे आकाश में दूर तक फैल कर लुप्त हो गये। वह दृश्य ऐसा सुहावना था जैसा कि आतशबाज़ी का होता है। इसके दो तीन मिनट बाद एक विलक्षण प्रकार की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी। यह गड़गड़ाहट ऐसी थी जैसी कि भूकम्प या वज्रपात के समय सुनाई देती है। अभी तक इसका पता नहीं चला कि यह उत्का किस जगह ज़मीन पर गिरी।

## ७—सिस्टर निवेदिता का संसार-त्याग।

सिस्टर निवेदिता अब इस संसार में नहीं हैं। वे कुछ दिनों से अस्वस्थ रहा करती थीं। इसी लिए वे जल-वायु-परिवर्तनार्थ दाजिलिंग चली गई थीं। वहाँ उन्हें संग्रहणी हो गई और इसी रोग से उनका शरीरान्त हुआ। सिस्टर निवेदिता का असली नाम कुमारिका मारगरेट नेबुल था। उनके पिता आयरलेण्ड-निवासी और उनकी माता अमेरिकन थीं। अमेरिका में सिस्टर निवेदिता की भेंट स्वामी विवेकानन्द से हुई। भेंट का फल यह हुआ कि वह स्वामी विवेकानन्द की अनन्य भक्त हो गईं।



वे भारत में आई और मुख्य मुख्य स्थानों में धर्म-विषयक व्याख्यान देती रहीं। भारतवर्ष और भारतीय सभ्यता पर वे इतनी मोहित होगईं कि अपने कुटुम्बियों और देश को त्याग कर भारत ही में रह गईं। कलकत्ते में—भारत-वासियों के बीच में—एक तंग गली में उनका घर था। वहां वे हिन्दुस्तानी ढंग से रहा करती थीं। निष्काम कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करना उनका सिद्धान्त था। इसी लिए उन्होंने अपनी सारी शक्तियां भारतीय स्त्रियों और नीच जातियों को उन्नत करने और मानव-जाति के दुख-दर्द दूर करने में लगा रक्खी थीं। उन्होंने एक स्त्री-पाठशाला भी खोल रक्खी थी। कलकत्ते में जब पहले पहल प्लेग हुआ तब सिस्टर निवेदिता ने प्लेग-पीड़ितों की बड़ी सहायता की। जब बारी-साल ज़िले में बाढ़ आई तब भी सिस्टर निवेदिता ने दीन-दुखियों की बड़ी सहायता की। कितने ही अनाथ और कितनी ही विधवायें उनसे मासिक वृत्तियां पाती थीं।

सिस्टर निवेदिता लेख लिखने में भी पटु थीं। वे प्रायः अँगरेज़ी मासिक पत्रों में लेख लिखा करती थीं। उनकी रची हुई कितनी ही पुस्तकें भी हैं। वक्तृत्वशक्ति भी उनमें अद्भुत थी। भारतीय शिल्प-कला से भी उनका गाढ़ प्रेम था। उन्होंने उसकी उन्नति और प्रचार के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न भी किया था। ऐसी आत्मा के उठ जाने से किसे दुःख न होगा ?

## ८—वायु का एक नया तत्त्व ।

विद्वान् लोग मानते चले आये हैं कि वायु में २३ भाग आक्सीजन और ७७ भाग नाइट्रोजन है। २५०० में १ भाग कार्बोनिक एसिड गैस और थोड़ी सी जल की भाक है। परन्तु, अभी, हाल में, एक जर्मन विद्वान् ने प्रमाणित किया है कि वायु में एक और भी हलका सा तत्त्व बहुत ही थोड़े परिमाण में है। प्रातः काल सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से देखने से जान पड़ता है कि पृथ्वी के आस पास वाली वायु के ऊपरी भाग में उस नवीन तत्त्व का अस्तित्व है। उसका पृथक्करण करने से वह सूर्य के कोरोनियम नामक तत्त्व के सदृश मालूम हुआ है। उसका नाम, इसी से, जीओ-कोरियम रक्खा गया है। यह जीओकोरियम बहुत हलका है। आज तक विज्ञान-शास्त्री हाइड्रोजन को ही सबसे हलका मानते आये हैं और इसी लिए प्रत्येक वस्तु का भार हाइड्रोजन को १ मान कर

तौलते आये हैं। परन्तु यह नवीन तत्त्व हाइड्रोजन से ५० (चार दशांश) हलका है। वायु में ४० माइल पर यह तत्त्व मुख्य कर है। और १२० माइल की ऊँचाई पर हाइड्रोजन और जीओकोरियम बराबर हैं। यह बात सही हो तो वायु में इसका परिमाण  $\frac{1}{10000000}$  होगा।

श्रीगिरिधर शर्मा ।

## ९—नकली लकड़ी ।

फ्रांस और जर्मनी के वैज्ञानिकों ने रासायनिक प्रयोग से नकली लकड़ी बनाना आरम्भ कर दिया। वे लकड़ी के चूर में कांजी, सरेस, चूना, एल्यूमिनियम और गंधक से तैयार हुआ एल्यूमिनियक सल्फेट मिलाते हैं। उन्हें वे इतना दबाते हैं कि सब चीज़ें एक जीव हो जाती हैं। फिर कुछ ऐसी तरकीब करते हैं जिससे कुदरती लकड़ी के जैसे दाने और रेशे आदि उस पर निकल आते हैं। उस पर जब पालिश किया जाता है तब बहुत ही खूबसूरत मालूम होता है। यह बना-बटी लकड़ी सागोन की जाति की होती है। और कामों के सिवा यह मकान बनाने के काम भी आ सकती है। इसकी मज़बूती की अभी अच्छी तरह जांच होनी बाकी है।

श्रीगिरिधर शर्मा ।

## पुस्तक-परीक्षा ।

१—राजपूत । यह एक मासिक पत्र है। अँगरेज़ी में विलायत से निकलता है। बड़े अच्छे कागज़ पर छपता है। सुन्दर सुन्दर चित्र भी इसमें अनेक रहते हैं। बड़ी योग्यता से इसका सम्पादन होता है। इसके प्रायः सभी लेख बड़े महत्त्व के होते हैं। ठाकुर श्रीजसराजसिंहजी सीसोदिया इसके सम्पादक हैं। वार्षिक मूल्य इसका १५ रुपये है। मिलने का पता:—मैनेजर, “राजपूत”, २२७—२२८, स्ट्रैंड (Strand) लन्दन ।



२—पहली पाठावली । जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय में जो पाठ्य पुस्तकें प्रचलित हैं, यह भी उन्हीं में से है। पुस्तक सचित्र है। अच्छे टाइप में छपी है। जिल्द बँधी हुई है। इसमें गद्य भी है, पद्य भी। कथा-कहानी, हास-परिहास,



सन्दर्भ ग्रन्थ

REFERENCE BOOK



सिस्टर निवेदिता ।

SISTER NIVEDITA

سسٹر نیویدیتا

Indian Press, Allahabad.

सन्दर्भ ग्रन्थ

REFERENCE BOOK



सं

पदा

पाठ

सात

पाठ

भी

न्धर

मूल

पुस्त

ने इ

निव

वस्

का

योग

बड़े

यह

प्रेम

में

वय

ने

इ

स

न्य

क

यह

क

बै

हे

इ

है

क



पदार्थज्ञान, जीवनचरित, नीतिवचन आदि—सभी विषयों के पाठ इसमें हैं। कई संस्करण इसके निकल चुके हैं। यह सातवाँ संस्करण है। बहुत थोड़े परिवर्तन से यह सभी कन्या-पाठशालाओं में पढ़ाई जा सकती है। परिवर्तन न भी हो तो भी विशेष हानि नहीं। कन्यामहाविद्यालय के जीवात्मा, जालन्धर-निवासी, लाला देवराजजी ने इसकी रचना की है। मूल्य २ आने है।



३—वैद्यक की उन्नति किस प्रकार होगी। ४० पृष्ठ की पुस्तक है। व्यावर-निवासी व्यास पूनमचन्द तनसुखजी वैद्य ने इसे लिख कर प्रकाशित किया है। वैद्यक-सम्मेलन में यह निबन्ध पढ़ा गया था। इसमें चिकित्सा-शास्त्र की वर्तमान हीनावस्था, उसकी अवनति के कारण और उन्नति के उपायों का वर्णन है। इसमें कही गई बातें वैद्यों के विचार करने योग्य हैं।



४—सौन्दर्योपासक—हिन्दी में आज कल उपन्यासों की बड़ी अधिकता है। पर उनमें कितने उपन्यास काम के होते हैं, यह बात विज्ञ जनों को मालूम ही है। आज मैं उपन्यास-प्रेमियों को एक शुभ समाचार सुनाता हूँ।

“सौन्दर्योपासक” नाम का एक उपन्यास अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। आरा के बाबू ब्रजनन्दनसहायजी वकील ने इसे लिखा है और बांकीपुर के खड्गविलास प्रेस ने प्रकाशित किया है। मूल्य ॥॥ है।

इस पुस्तक को पढ़ कर जी बहुत खुश हुआ। यद्यपि इस में कोई घटना-वैचित्र्य नहीं है; पर भावों का इस में साद्यन्त साम्राज्य है। हिन्दी-उपन्यास-लेखकों के जितने उपन्यास मैंने देखे हैं उनमें से किसी भी हिन्दी-उपन्यासकर्ता की अपनी निज की रचना ऐसी भावपूर्ण मैंने नहीं देखी। यह मैं निःसङ्कोच कह सकता हूँ। बंगला के प्रधान उपन्यासकारों की रचनाओं के साथ यदि किसी हिन्दी-उपन्यास को बैठने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है तो इसी को। संयम-भ्रष्ट होने से किस तरह सोने का संसार मिट्टी में मिल जाता है, इसी बात का शब्द-चित्र दिखाने की इस में कोशिश की गई है और लेखक को उस में सफलता भी हुई है। प्रेम (भक्ति) की ऐसी अच्छी व्याख्या इस पुस्तक में है कि देखते ही बनता

है। सच तो यह है कि अपने मनोभावों को प्रकाशित करने के लिए ही इसमें एक घटना-विशेष की सृष्टि की गई है। स्वयं लेखक ने इस बात को स्वीकार किया है:—“उपाख्यान इसका चित्रपट और मनोभाव आलेख्य है”। अस्तु, इस शिक्षा-प्रद पुस्तक को लिखने के लिए बाबू ब्रजनन्दनसहायजी धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी मन्द बुद्धि के अनुसार इस पुस्तक की भाषा कहीं कहीं संशोधन के योग्य है। अन्त में बड़े भारी अशुद्धि-पत्र को देख कर भी जी घबराता है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस करुण-कहानी को पढ़ कर प्रत्येक सहृदय जन एकबार अवश्य ही तल्लीन हो जायगा।

मैथिलीशरण गुप्त ।



५—बृहदारण्यकोपनिषत् । आर्य-समाज के अनुयायियों में श्रीपण्डित शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ नामी पुरुष हैं। आप ने आज तक अनेक पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की हैं। उनकी कई पुस्तकों की समालोचना भी सरस्वती में निकल चुकी है। आठ नौ सौ पृष्ठ की इस बड़ी पुस्तक को देखने का सौभाग्य भी हमें आपही की बदौलत प्राप्त हुआ है। प्रसिद्ध बृहदारण्यकोपनिषत् पर आप ने एक भाष्य रचा है। मूल समेत यह वही भाष्य है। भाष्य हिन्दी में भी है और संस्कृत में भी। मूल का पदार्थ भी आपने हिन्दी में लिख दिया है और उसका अनुवाद भी। इन कारणों से पण्डितजी के भाष्य का आशय थोड़ी भी हिन्दी जानने वाले बड़ी सुगमता से समझ सकते हैं। आपकी हिन्दी बहुत अच्छी होती है। पुराने पण्डितों के ढंग की नहीं होती। पण्डितजी का अध्यवसाय और विद्या-प्रेम प्रशंसनीय है। आपके विचारों और भाष्यगत भावों से कोई सहमत हो या न हो, यह तो बात ही दूसरी है। परन्तु आपकी पुस्तकें पढ़ने से अनेक नई नई कल्पनाओं का आनन्द अवश्य मिलता है। इस भाष्य में भी इस प्रकार की नई नई कल्पनाओं की कमी नहीं। इस उपनिषद् के अन्यान्य भाष्यों का जिन्होंने अध्ययन या अवलोकन किया है उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे इसे भी कृपा करके देखें। इससे हानि नहीं, उलटा लाभ ही होगा। क्योंकि, इस में भाष्यकार ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए मूल का भावार्थ समझाया है। इस भाष्य के आरम्भ में भाष्यकार ने कोई सौ पृष्ठ की एक अवपातनिका हिन्दी-भावार्थ-



सहित संस्कृत में लिखी है। उसमें आपने आत्मनिर्णय, ब्रह्म-साक्षात्कार, आचार्यों की विद्यमानता आदि अनेक विषयों का उपपादन किया है। पण्डितजी के इस भाष्य की तुलनामूलक समालोचना वही अच्छी तरह कर सकता है जिसने इस उपनिषद् का अध्ययन, शङ्कराचार्य आदि के भाष्यों की सहायता से, अच्छी तरह किया हो। हम तो सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि अनेक स्थलों में आपका दिया हुआ अर्थ हम नहीं समझ सके। उदाहरण के लिए, पृष्ठ ७७१ में,— “कामं एनां यद्व्या वा पाणिना वा उपहत्य अतिक्रामेत्” का आपने जो यह अर्थ लिखा है कि—“यथेच्छ दण्ड का भय दिखला अथवा हाथ से उसे पकड़ अच्छे प्रकार उसे समझावे” वह हमारी समझ में नहीं आया। आपने शङ्कराचार्य आदि के किये हुए अर्थ को जो कई जगह—“सर्वथा त्याज्य” और “सर्वथा अमान्य” लिखा है वह यदि कुछ अधिक कोमल भाषा में लिखा जाता तो अच्छा होता। पुस्तक का मूल्य ३ रुपया है और अजमेर के वैदिक प्रेस में मिलती है।



६—नैपोलियन बोनापार्ट । पृष्ठ-संख्या १० + २३५ । आकार बड़ा। कागज़ और टाइप अच्छा। मूल्य डेढ़ रुपया। प्राप्ति-स्थान—सद्वर्त्म-प्रचारक प्रेस, गुरुकुल, कांगड़ी, हरद्वार। आदित्य-ग्रन्थमाला नामक पुस्तक-मालिका की यह पहली गुरिया है। गुरुकुल के अधिष्ठाता श्रीयुत मुंशीरामजी जिज्ञासु इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं। लेखक इसके कांगड़ी गुरुकुल के कोई महाशय हैं; नाम अपना उन्होंने नहीं दिया। अंगरेज़ी की अनेक पुस्तकों के आधार पर यह पञ्चभागात्मक पुस्तक लिखी गई है। कई चित्र भी इसमें हैं। फ्रांस के दिग्विजयी सम्राट नैपोलियन बोनापार्ट के भाग्योदय, साम्राज्य-लाभ, दिग्विजय-यात्रा और दुःखान्त जीवन का इसमें वर्णन है। इतिहास और जीवन-चरित दोनों का इसे संमिश्रण समझना चाहिए। ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। क्या ही अच्छा हो जो गुरुकुल, कांगड़ी, में शिक्षा पाये हुए छात्र, समर्थ होने पर, हिन्दी में अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखने की कृपा करें। यदि यह पुस्तक किसी छात्र ही की लिखी हो तो भी नाम छिपाने की आवश्यकता न थी। विद्यार्थियों की लिखी हुई पुस्तकें तो और भी अधिक आदर की दृष्टि से देखी जानी चाहिए। इस पुस्तक की भाषा और लिखने का

ढंग संशोधनीय है। परन्तु उसकी सदोपता या निर्दोषता का खयाल न करके इसे हिन्दी-प्रेमियों को ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि यह एक ऐसे विषय की पुस्तक है जिस पर लिखी गई पुस्तकों की हिन्दी में बहुत कमी है—कमी क्या, प्रायः अभाव ही है।



७—गङ्गाभरण । सीतापुर ज़िले में एक मौज़ा गन्धौली है। पण्डित नन्दकिशोरजी मिश्र, उपनाम लेखराज, उसमें एक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। शिवसिंह-सरोज के कर्ता ने आपकी बड़ी प्रशंसा की है। आपका परलोकावास हुए बहुत वर्ष नहीं हुए। आप गङ्गा के बड़े भक्त थे। संवत् १९३५ में आपने यह ग्रन्थ बनाया था। यह अलङ्कारशास्त्र का ग्रन्थ है। सब अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण इसमें हैं। विशेषता इसमें यह है कि जितने उदाहरण इसमें दिये गये हैं सब में गङ्गाही का वर्णन और उन्हीं की स्तुति, प्रशंसा या प्रार्थना है। लेखराजजी की कोई कोई कविता बड़ी ही सरस और भक्तिरस से भरी हुई है। इस पुस्तक को लेखराजजी के पौत्र पण्डित कृष्णविहारी मिश्र ने प्रकाशित किया है। आरम्भ में लेखराजजी का संक्षिप्त चरित भी आपने दिया है। मूल्य ६ आने। मिलने का पता:—मुंशी सूर्यबलीलाल, मौज़ा गन्धौली, डाकखाना सिधौली, ज़िला सीतापुर।



८—नूतन ब्रह्मचारी । छोटा सा चालीस पचास पृष्ठ का उपन्यास है। केवल ३ आने देने से मिलता है। पं० जनार्दन भट्ट अहियापुर, प्रयाग को लिखने से घर बैठे आजाता है। पण्डित बालकृष्ण भट्टजी का लिखा हुआ है। हिन्दी-प्रदीप के पुराने अङ्कों से निकाल कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है। शिक्षाप्रद है। औपन्यासिक दोषों से प्रायः रहित है। भट्टजी की लेखनी से निकले हुए रस में ढूँढ़ा हुआ है। अतएव लेने और पढ़ने लायक है।



९—बालहितैषी । इस नाम का एक मासिक पत्र जनवरी ११ से निकलने लगा है। प्रकाशन-स्थान इसका मेरठ है। नानकचन्द ऐंग्लो-संस्कृत हाई स्कूल के हेडमास्टर, बाबू विनोदविहारी सेन राय, एम० ए० इसके सम्पादक हैं। इसकी प्रत्येक संख्या में दो दो कालम के २४ पृष्ठ रहते हैं। चिकने



कागज़ पर छपता है। चित्र भी रहते हैं। कविता, जीवन-चरित, सदाचार, शिक्षा, पदार्थ-परिचय, विज्ञान, स्थलनिर्देश, कहानियाँ, समस्याएँ आदि अनेक बालक-उपयोगी विषयों पर इसमें छोटे छोटे लेख रहते हैं। इसके सम्पादक वङ्गवासी मालूम होते हैं। यदि यह अनुमान सच है तो आपका हिन्दी-प्रेम प्रशंसनीय है। भाषा इसकी संशोधनीय, पर सरल होती है। इसमें एक विशेषता यह है कि लड़कों—विद्यार्थियों—के भी लिखे हुए छोटे छोटे लेख प्रकाशित होते हैं। ईश्वर करे यह दीर्घायु हो। इसका वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया है।

✽

१०—शुभचिन्तक। इस नाम का एक साप्ताहिक पत्र प्रयाग से निकलने लगा है। इसका वार्षिक मूल्य ढाई रुपया है। यह—“चतुः सम्प्रदाय श्रीवैष्णव-महासभा का मुखपत्र है”। सुनते हैं, यह महाराजा रीवा की कृपा का फल है। २० सितम्बर १९११ से इसका जन्म हुआ है। अब तक जो अङ्क इसके निकले हैं उन्हें देखने से जान पड़ता है कि इसमें धार्मिक लेखों के सिवा और और विषयों के भी कुछ लेख रहेंगे। ईश्वर करे यह दीर्घजीवी हो। इसके दूसरे अङ्क में इसका जन्मपत्र प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि न इसे धन की कमी रहेगी न यश की। इसके शत्रु भी मित्र होजायेंगे। लाभ भी इसे खूब होगा और बन्धु भी इसके खूब बढ़ेंगे। पर इस जन्मपत्र के जन्मदाता ज्योतिषीजी एक बात लिखना भूल गये कि इससे देश को कितना लाभ पहुँचेगा।

✽

११—शिक्षा-विज्ञान। एक बंगाली विद्वान् शिक्षादान की भी वैज्ञानिक रीति निकालने में कृतकार्य हो गये। आपका नाम श्रीयुत विनयकुमार सरकार, एम० ए० है। आप कलकत्ते में वहाँ के नेशनल कालेज में प्रोफेसर हैं। शिक्षा-विषयक आपका एक लेख सरस्वती की गत संख्या में पाठक पढ़ चुके हैं। एक इसमें पढ़ेंगे। आप तीन-चार वर्ष से अनेक उपादेय पुस्तकें लिखने में लगे हैं। उनमें से दस बारह पुस्तकें प्रकाशित भी हो गई हैं। सम्पत्तिशास्त्र, राजनीति-विज्ञान आदि से सम्बन्ध रखने वाले कई उपयोगी ग्रन्थों के सिवा शिक्षा-विषयक जो कई पुस्तकें आपने बँगला में लिखी हैं वे बड़ी ही महत्त्वपूर्ण हैं। सरकार महाशय बड़े विद्वान् हैं और कई वर्ष से अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। आप शिक्षा-विज्ञान पर बीस पुस्तकें

लिखने वाले हैं। उनमें से दो अँगरेज़ी-शिक्षा पर, चार संस्कृत-शिक्षा पर तथा एक भाषा-शिक्षा पर इस समय हमारे सामने हैं। शिक्षा की भारत को बड़ी ज़रूरत है। उसकी वर्तमान प्रणाली दोषपूर्ण है। सरकार महाशय ने अपनी पुस्तकों में जिस प्रणाली का प्रकटीकरण किया है वह वर्तमान प्रणाली से बहुत अच्छी है। आपकी संस्कृत-शिक्षा-सम्बन्धिनी पुस्तकें देख कर हम मुग्ध हो गये। संस्कृत के सदृश क्लिष्ट भाषा की शिक्षा यदि सरकार महोदय की प्रणाली के अनुसार दी जाय तो उसकी क्लिष्टता बहुत कम हो जाय। भाषा-शिक्षा के सम्बन्ध में आपने जो कुछ लिखा है वह भी बहुत ही विचारपूर्ण है। उससे भाषा-सम्बन्धिनी अनेक नई नई बातें मालूम होती हैं। व्याकरण की विशेष शिक्षा के बिना भी, आपकी प्रणाली का अनुसरण करने से, कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। क्या ही अच्छा हो, यदि इन पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में हो जाय। विनय बाबू प्राचीन और अर्वाचीन सभी सभ्य देशों की शिक्षाप्रणाली की तुलनामूलक आलोचना करके शिक्षा का श्रेष्ठ आदर्श निश्चित करना चाहते हैं। ईश्वर उन्हें इस सदुद्योग में सफलता दे।

## मनोरञ्जक श्लोक ।

जब बालम्भट्ट का पुत्र कुमार्ग छोड़ सुमार्ग पर चलने लगा तब पिता ने उसे घर का सब कार्य सौंप दिया। उस समय नवम्बर की सरस्वती में प्रकाशित श्लोक सुनने वाले महाशय ने बालम्भट्ट से पूछा कि क्या आपने अपने पुत्र को फिर घर का काम सौंप दिया ? तब उन्होंने जो उत्तर दिया, तद्रूप यह श्लोक मैंने बनाया हैः—

पुत्रः पुम्यः । अधिकं । शीलं । धर्मं चरति । रक्षति ।

वशं गतः । पितुर्यच्च । पश्चात् । कृत्याः । तदर्हति ॥

अर्थात् अन्य पुरुषों की अपेक्षा मेरा पुत्र अधिक आचरण रखता है, धर्म भी करता है, और पिता के (मेरे) वश में भी हो गया है। इसी से वह पीछे के भी कार्यों के योग्य हो गया है। इस श्लोक में जो पृथक् पृथक् दस विभाग दिखाये गये हैं वे सब पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्र हैं। उन्हीं सूत्रों को जोड़ कर यह श्लोक मैंने बनाया है।

नित्यानन्द शास्त्री, दाधीच

(सूरत)



# अभिषेक-सम्बन्धिनी सामग्री ।

## THE ROYAL REGALIA

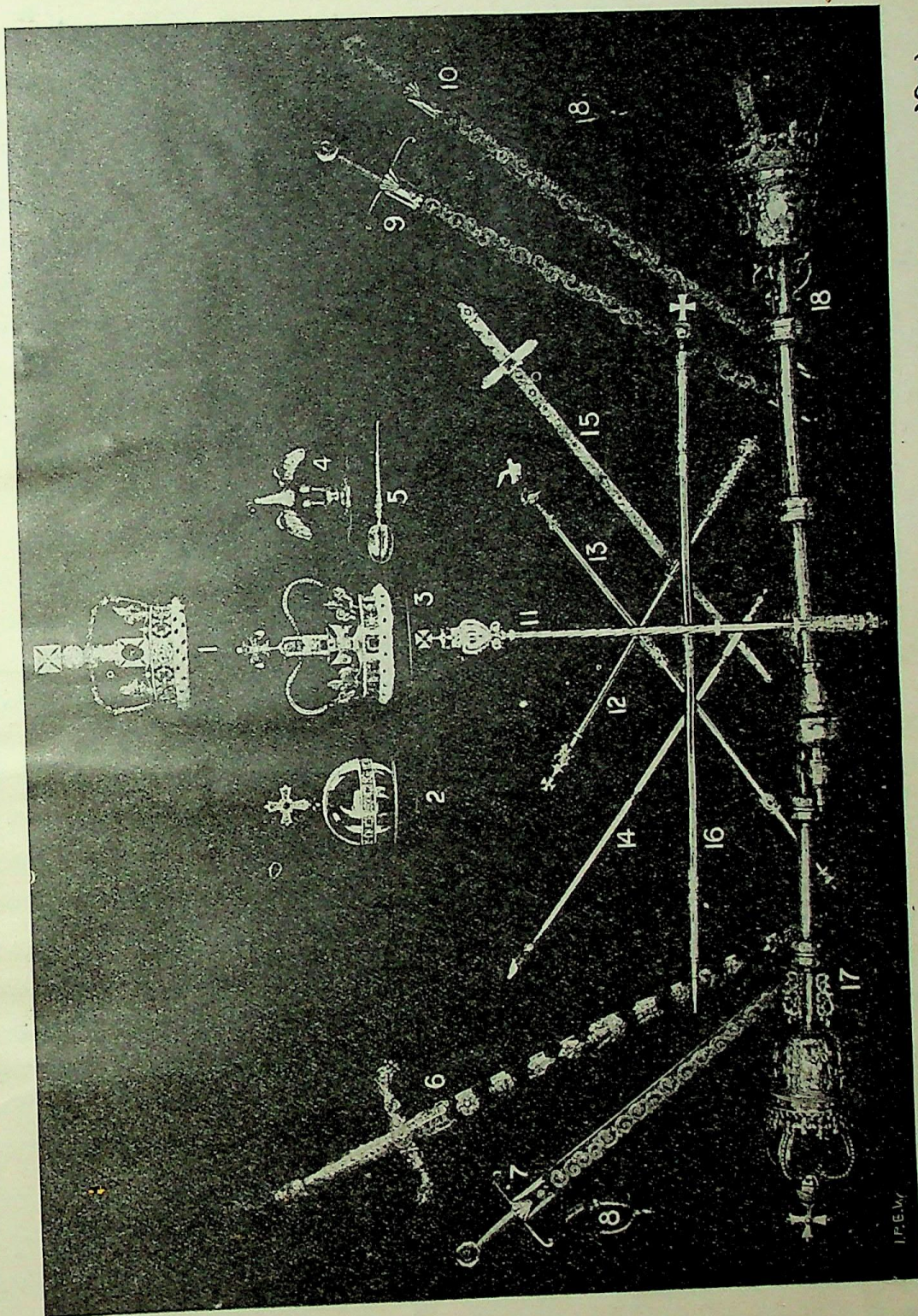
used at the Coronation Ceremony of KING GEORGE V and QUEEN MARY.

1. The Imperial Crown. It contains 227 pearls, 2,785 diamonds, 5 rubies, 17 sapphires and 10 emeralds, besides the great South African diamond. Many of these priceless stones have a romantic history. The Black Prince's Ruby in the cross immediately above the Star of South Africa was presented by Don Pedro the Cruel to the Black Prince, and was worn by Henry Fifth at Agincourt in the helmet, which may still be seen over his tomb in Westminster Abbey. In the Cross at the top of the Crown is the miraculous sapphire from Edward the Confessor's ring.
2. The Orb, a masterpiece of the jeweller's art, dating from 1662, copied from the orb of the Saxon Kings, and is symbolic of World Sovereignty, over which rises the cross of Christ.
3. St. Edward's Crown, with which the actual Ceremony of Coronation is performed. Copied in 1662 from the ancient Crown destroyed by Cromwell. This Crown is only worn once during the life of each sovereign, then only for a few minutes.
4. The Ampulla, to contain the Anointing Oil, and
5. the Anointing Spoon are the only remains of ancient regalia which escaped destruction in 1649.
6. The Sword of State, emblem of punishment to evil-doers.
7. The Curtana, or Sword of Mercy with blunt edges.
8. St. George's Spurs, an emblem of the King as the fount of all Knightly virtues, and first Soldier in the land.
9. The Sword of Temporal Justice.
10. The Sword of Spiritual Justice.
11. The Royal Sceptre, containing the Larger Pear Shaped "Star of Africa," the largest diamond in the world.
12. The Queen's Sceptre with Cross.
13. The Dove Sceptre, emblem of the King at peace with his subjects.
14. The Ivory Sceptre.
15. The Sword of Offering.
16. St. Edward's Staff, an emblem to guide the King in the footsteps of his canonised predecessor, St. Edward the Confessor.
- 17-18. The Maces of the Serjeants-at Arms.

Printed and Published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.



# सरस्वती



(इसके लिए ६२४ पृष्ठ देखिए)

अभिषेक-सम्बन्धनी सामग्री ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



जि  
खती  
ठन  
रीवृत्ति  
नेकली  
ता वि  
है। नि  
से हि  
हुई है  
था।  
था उ  
ऐसा  
से ले  
रखते  
का  
मनो  
के प्र  
भाग  
हुए  
उन  
हैं  
लो  
से  
व्य  
क्र  
उ  
दी  
अ  
मू





जिन सुप्रसिद्ध लेखक बाबू ज्ञानेन्द्रमोहनदास की लेखनी से चरित्र-सुधार की शिक्षा के लिए 'चरित्र-ठूटन' ग्रन्थ निकला है, उन्हीं की पवित्र लेखनी से श्रीवृद्धि की शिक्षा के लिए यह अपूर्व "ऋद्धि" निकली है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक को रच कर लोगों का कितना बड़ा उपकार किया है, यह वर्णनातीत है। हिन्दी में इस बँगला पुस्तक का अनुवाद हो जाने से हिन्दी-साहित्य भण्डार में उस अभाव की पूर्ति हुई है जिसका होना इस समय बड़ा ही आवश्यक था। जो हिन्दी-साहित्य का भण्डार ऋद्धि से खाली था उसे ऋद्धि से भरपूर देख किसे हर्ष न होगा ?

संसार से सम्बन्ध रखनेवाला प्रायः कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की अपेक्षा न हो। दरिद्र से लेकर कोट्यधीश तक सभी श्रीवृद्धि की इच्छा रखते हैं। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है।

जो लोग धनहीन हैं, ऋण-ग्रस्त हैं, बहु-कुटुम्बी हैं और जिनका सालाना आय भी बहुत कम है वे लोग भी इस ऋद्धि के उपदेशानुसार चल कर सुख से जीवन बिता सकते हैं। दो एक आना पूँजी से व्यवसाय करके लोग कैसे लखपती बन सकते हैं यह ऋद्धि से भलीभाँति सीख सकते हैं।

इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योगशील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वावलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं।

इतनी बढ़िया पुस्तक का सजिल्द होने पर भी मूल्य केवल १।) रक्खा गया है।

मिलने का पता—

मनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

[ खण्ड काव्य ]

हिन्दी-प्रेमियों के सुपरिचित बाबू मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित, श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी को अर्पित और उनके चित्रसहित, अति सचिक्रण और पुष्ट कागज़ पर इंडियन प्रेस में मुद्रित, रंगीन कवर से सुशोभित, सात सर्गों में समाप्त। बोलचाल की भाषा में वीर और करुण रस का अपूर्व ग्रन्थ। हिन्दी-साहित्य में एक नई चीज़। मूल्य केवल ॥) मिलने का पता :—

रामकिशोर गुप्त,

चिरगाँव ( भौंसी )

हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली,

औरैया, इटावा।

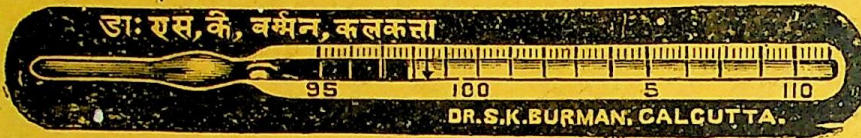
विदित हो कि यहाँ पर उपर्युक्त नाम की एक मण्डली स्थापित हुई है। मण्डली का उद्देश हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित करना है। अगले वर्ष निम्नलिखित ग्रन्थ क्रमशः प्रकाशित किये जायेंगे। जो महाशय स्थायी ग्राहक होना चाहें उन्हें चाहिये कि अपने नाम तथा पता की सूचना मण्डली को तुरन्त भेज दें। जो ग्रन्थ जिस समय प्रकाशित होगा, वह उसी समय उनकी सेवा में वी०, पी०, द्वारा भेज दिया जायगा। स्थायी ग्राहकों को एक रुपये की पुस्तक चौदह आने में दी जायगी। मण्डली के द्वारा अगले वर्ष प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के नाम यह हैं। ( १ ) प्राचीन भारतवासियों की विदेश यात्रा और वैदेशिक व्यापार ( २ ) कर्मक्षेत्र, ( ३ ) महाराज सप्तम एडवर्ड, ( ४ ) प्राकृतिक इतिहास, ( ५ ) भूतों की लीला, ( ६ ) भारत गवर्नमेंट का सङ्गठन। ये पुस्तकें बड़ी शोघ्रता से तैयार हो रही हैं। इनमें से पहिली पुस्तक मार्च के अंत तक प्रकाशित हो जायगी।

सम्पादक—हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली,  
औरैया, इटावा।



डाक्टर वर्मन का प्रसिद्ध थर्मामेटर (पुराना प्रभाव अब दूर हुआ) यह आज एक सम्पूर्ण नई चीज़ है।  
साधारण थर्मामेटर से इसमें कुछ विशेषता है।

अंगरेज़ी थर्मामेटर मोल १। हिन्दी थर्मामेटर २। वो उर्दू २।



डाक महसूल १ से ३ थर्मामेटर तक ।  
आशा है कि ग्राहकगण एक बार इसकी भी परीक्षा करेंगे।

डा: एस.के. वर्मन ५, ६, ताराचंद दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता।

१—इसके पारे की लकीर ख मोटी होने के कारण सहज में दिखाई पड़ती है और बिगड़ती नहीं।

२—जिस मूल्य में साधारण थर्मामेटर आप लिया करते हैं उससे कम में डाक्टर वर्मन का प्रसिद्ध थर्मामेटर मिलता है।

प्रत्येक थर्मामेटर स्पष्टली केम में रहता है और सुन्दर कागज़ के बक्स में व्यवहार विधि साथ मिलता है।

जगतविख्यात

कामिनीय तैल । ( रजिस्टर्ड )

Kaminia Oil



for the hair

यह अद्भुत और खुशबूदार तैल एक जगद्विख्यात चिकित्सालय में तैयार किया गया है जो सेवन में अत्युत्तम मनोहारी है। मन प्रसन्न करने, मुख की शोभा बढ़ाने, केश को स्वच्छ करने, गिरने से बचाने और बालों का रंगत को स्थिर रखने में यह अद्वितीय तैल है। गंजापन, शिर का दर्द, अनन्तबात, समलबाई और भी इस प्रकार के अनेक रोगों का तो यह शत्रुही है, वातरक्त और रक्तविकार से उत्पन्न हुये अनेक रोगों को क्षणमात्र में नाश करता है यदि इसका सेवन कुछ दिन किया जाय तो “अल्प केश” का कारण भी दूर होकर बाल बहुत बढ़ेंगे। यह शिर को ठंडा करता है, इसलिए विद्यार्थियों तथा दिमाग से काम लेने वालों के लिए यह अमूल्य तैल है इसके अनेकों प्रशंसापत्र और सर्टीफिकेट हमारे यहाँ हैं। एक बार इसको अवश्य मँगाइये फिर तो आप इसके सदा के ग्राहक हो जायेंगे।

मूल्य १ शीशी का १। वो० पी० खर्च । ३ शीशी का २॥ खर्च ।

पता:—एङ्गलो इण्डियन ड्रग एण्ड केमिकल कम्पनी—मारकेट बम्बई ।

इलाहाबाद देशीकारबार कम्पनी में भी मिलैगा ।



लकी  
सह  
विग

पारा  
रते हैं  
न क  
है।  
पहल  
सुन्दर  
वहार

लय में  
करने  
ओं क  
दरद  
शत्रुही  
नाश  
" का  
ता है,  
प तैल  
बार  
यँगे।

ई  
गा



Carried  
1859-2830

112817

सन्दर्भ ग्रन्थ  
REFERENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय  
NOT TO BE ISSUED







